पिछले चालीस सालों से उर्दू भाषा में लाखों की तादाद में प्रकाशित होकर क़ुरआनी उलूम को बेशुमार अफ़राद तक पहुँचाने वाली बेनज़ीर तफ़सीर

मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन

जिल्द (1)

उर्दू तफ़सीर

हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी देवबन्दी रह.

(मुफ़्ती-ए-आज़म पाकिस्तान व दारुल-उलूम देवबन्द)

हिन्दी अनुवादक

मौलाना मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी (एम. ए. अलीग.)

रीडर अ़ल्लामा इक़बाल यूनानी मैडिकल कॉलेज मुज़फ़्फ़र नगर (उ.प्र.)

फ़रीद बुक डिपो (प्रा.) लि.

2158, एम. पी. स्ट्रीट, पटौदी हाऊस, दरिया गंज

नई दिल्ली-110002

****

तफ़सीर मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन

हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह.

(मुफ़्ती-ए-आज़म पाकिस्तान)

हिन्दी अनुवाद

मौलाना मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी एम. ए. (अ़लीग.)

मौहल्ला महमूद नगर, मुज़फ़्फ़र नगर (उ. प्र.)

फोन न. 0131.2442408, 09456095608

जिल्द (1) सूरः फ़ातिहा ---- सूरः ब-क़रह

प्रकाशन वर्ष मार्च 2012

प्रकाशक

फ़रीद बुक डिपो (प्रा.) लि.

2158, एम. पी. स्ट्रीट, पटौदी हाऊस, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

بسم الله الرحمن الرحيم

WA'A TASIMOO BIHAB LILLAHI JAMEE-'AN WA LAA TAFARRAQOO

समर्पित

○ अल्लाह सुब्हानहू व तआ़ला के कलाम क़ुरआन मजीद के प्रथम व्याख्यापक, हादी-ए-आ़लम, आख़िरी पैग़म्बर, तमाम नबियों में अफ़ज़ल हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नाम, जिनका एक-एक क़ौल व अ़मल कलामे रब्बानी और मन्शा-ए-इलाही की अ़मली तफ़सीर था।

○ दारुल-उलूम देवबन्द के नाम, जो क़ुरआन मजीद और उसकी तफ़सीर (हदीसे पाक) की अ़ज़ीमुश्शान ख़िदमत और दीनी रहनुमाई के सबब पूरी इस्लामी दुनिया में एक मिसाली संस्था है। जिसके इल्मी फ़ैज़ से मुस्तफ़ीद (लाभान्वित) होने के सबब इस नाचीज़ को इल्मी समझ और क़ुरआन मजीद की इस ख़िदमत की तौफ़ीक़ नसीब हुई।

○ उन तमाम नेक रूहों और हक़ के तलाश करने वालों के नाम, जो हर तरह के पक्षपात से दूर रहकर और हर प्रकार की कठिनाईयों का सामना करके अपने असल मालिक व ख़ालिक़ के पैग़ाम को क़ुबूल करने वाले और दूसरों को कामयाबी व निजात के रास्ते पर लाने के लिये प्रयासरत हैं

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

दिल की गहराईयों से शुक्रिया

◎ मोहतरम जनाब अल-हाज मुहम्म नासिर ख़ाँ साहिब (मालिक फ़रीद बुक डिपो नई दिल्ली) का, जिनकी मुहब्बतों, इनायतों, क़द्रदानियों और मुझे अपने इदारे से जोड़े रखने के सबब क़ुरआन मजीद की यह अहम ख़िदमत अन्जाम पा सकी।

◎ मेरे उन बच्चों का जिन्होंने इस तफ़सीर की तैयारी में मेरा भरपूर साथ दिया, तथा मेरे सहयोगियों, सलाहकारों, शुभ-चिन्तकों और हौसला बढ़ाने वाले हज़रात का, अल्लाह तआ़ला इन सब हज़रात को अपनी तरफ़ से ख़ास जज़ा और बदला इनायत फ़रमाये। आमीन या रब्बल्-अ़लमीन।

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋

मुख़्तसर विषय-सूची

मआरिफ़ुल-क़ुरआन जिल्द नम्बर (1)

उनवान	पेज

उनवान	पेज

उनवान	पेज

पहला पारा

सूरः ब-क़रह

उनवान	पेज

उनवान	पेज

उनवान	पेज

उनवान	पेज

दूसरा पारा 'स-यक़ूलु'

उनवान	पेज

उनवान	पेज

उनवान	पेज

उनवान	पेज

तीसरा पारा 'तिल्करुसुलु'

✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪

प्रकाशक के क़लम से

अल्लाह तआला का लाख-लाख शुक्र व एहसान है कि उसने मुझे और मेरे इदारे (फ़रीद बुक डिपो नई दिल्ली) को इस्लामी, दीनी और तारीख़ी किताबों के प्रकाशन के ज़रिये दीनी व दुनियावी उलूम की ख़िदमत की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाई।

अल्हम्दु लिल्लाह हमारे इदारे से क़ुरआन पाक, हदीस मुबारक और दीनी विषयों पर बेशुमार किताबें शाया हो चुकी हैं। बल्कि अगर यह कहा जाये कि आज़ाद हिन्दुस्तान में हर इल्म व फ़न के अन्दर जिस क़द्र किताबें **फ़रीद बुक डिपो देहली** को प्रकाशित करने का सौभाग्य नसीब हुआ है उतना किसी और इदारे के हिस्से में नहीं आया तो यह बेजा न होगा। कोई इदारा फ़रीद बुक डिपो के मुक़ाबले में पेश नहीं किया जा सकता। यह सब कुछ अल्लाह के फ़ज़्ल व करम और उसकी इनायतों का फल है।

फ़रीद बुक डिपो देहली ने उर्दू, अ़रबी, फ़ारसी, गुजराती, हिन्दी और बंगाली अनेक भाषाओं में किताबें पेश करके एक नया रिकॉर्ड बनाया है। हिन्दी ज़बान में अनेक किताबें इदारे से शाया हो चुकी हैं। हिन्दी भाषा हमारी मुल्की ज़बान है। पढ़ने वालों की माँग और तलब देखते हुए तफ़सीरे क़ुरआन के उस अहम ज़ख़ीरे को हिन्दी ज़बान में लाने का फ़ैसला किया गया जो पिछले कई दशकों से इल्मी जगत में धूम मचाये हुए है। मेरी मुराद **तफ़सीर मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन** से है। इस तफ़सीर के परिचय की आवश्यकता नहीं, दुनिया भर में यह एक मोतबर और विश्वसनीय तफ़सीर मानी जाती है।

मौलाना मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी ने फ़रीद बुक डिपो के लिये बहुत सी मुफ़ीद और कारामद किताबों का हिन्दी में तर्जुमा किया है। हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद तक़ी उस्मानी के **इस्लाही ख़ुतबात** की 15 जिल्दें और **तफ़सीर तौज़ीहुल-क़ुरआन** उन्होंने हिन्दी में मुन्तक़िल की हैं जो इदारे से छपकर मक़बूल हो चुकी हैं। उन्हीं से यह काम करने का आग्रह किया गया जिसे उन्होंने क़ुबूल कर लिया और अब अल्हम्दु लिल्लाह यह शानदार तफ़सीर आपके हाथों में पहुँच रही है। हिन्दी ज़बान में क़ुरआनी ख़िदमत की यह अहम कड़ी आपके सामने है। उम्मीद है कि आपको पसन्द आयेगी और क़ुरआन पाक के पैग़ाम को समझने और उसको आ़म करने में एक अहम रोल अदा करेगी।

मैं अल्लाह करीम की बारगाह में दुआ़ करता हूँ कि वह इस ख़िदमत को क़ुबूल फ़रमाये और हमारे लिये इसे ज़ख़ीरा-ए-आख़िरत और रहमत व बरकत का सबब बनाये आमीन।

ख़ादिम-ए-क़ुरआन

मुहम्मद नासिर ख़ान

मैनेजिंग डायरेक्टर, फ़रीद बुक डिपो, देहली

अनुवादक की ओर से

الحمد لله رب العالمين. والصلوة والسلام على رسوله الكريم. وعلى آله وصحبه اجمعين.

برحمتك ياارحم الراحمين.

तमाम तारीफ़ों की असल हक़दार अल्लाह तआ़ला की पाक ज़ात है जो तमाम जहानों की पालनहार है। वह बेहद मेहरबान और बहुत ही ज़्यादा रहम करने वाला है। और बेशुमार दुरूद व सलाम हों उस ज़ाते पाक पर जो अल्लाह तआ़ला की तमाम मख़्लूक़ में सब से बेहतर है, यानी हमारे आक़ा व सरदार हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम। और आपकी आल पर और आपके सहाबा किराम पर और आपके तमाम पैरोकारों पर।

अल्लाह करीम का बेहद फ़ज़्ल व करम है कि उसने मुझ नाचीज़ को अपने पाक कलाम की एक और ख़िदमत की तौफ़ीक़ बख़्शी। उसकी ज़ात तमाम ख़ूबियों, कमालात, तारीफ़ों और बन्दगी की हक़दार है।

इससे पहले सन् 2003 ईसवी में नाचीज़ ने **हकीमुल-उम्मत हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह.** का तर्जुमा हिन्दी भाषा में पेश किया जिसको काफ़ी मक़बूलियत मिली, उसके बाद **तफ़सीर इब्ने कसीर मुकम्मल** हिन्दी भाषा में पेश करने की सआ़दत नसीब हुई, जो रमज़ान (अगस्त 2011) में प्रकाशित होकर मन्ज़रे आ़म पर आ चुकी है। इसके अ़लावा **फ़रीद बुक डिपो** ही से मौजूदा ज़माने के मशहूर आ़लिम **शैख़ुल-इस्लाम हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद तक़ी उस्मानी** दामत बरकातुहुम की मुख़्तसर तफ़सीर **तौज़ीहुल-क़ुरआन** शाया होकर पाठकों तक पहुँच रही है।

उर्दू भाषा में जो मक़बूलियत क़ुरआनी तफ़सीरों में तफ़सीर मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन के हिस्से में आयी शायद ही कोई तफ़सीर उस मक़ाम तक पहुँची हो। यह तफ़सीर हज़ारों की संख्या में हर साल छपती और पढ़ने वालों तक पहुँचती है, और यह सिलसिला तक़रीबन चालीस सालों से चल रहा है मगर आज तक कोई तफ़सीर इतनी मक़बूलियत हासिल नहीं कर सकी।

हिन्द महाद्वीप की जानी-मानी इल्मी शख़्सियत **हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब** देवबन्दी (मुफ़्ती-ए-आज़म पाकिस्तान) की यह तफ़सीर क़ुरआनी तफ़सीरों में एक बड़ा क़ीमती सरमाया है। दिल चाहता था कि हिन्दी जानने वाले हज़रात तक भी यह उलूम और क़ुरआनी मतालिब पहुँचें मगर काम इतना बड़ा और अहम था कि शुरू करने की हिम्मत न होती थी।

जो हज़रात इल्मी काम करते हैं उनको मालूम है कि एक ज़बान से दूसरी ज़बान में तर्जुमा करना कितना मुश्किल काम है, और सही बात तो यह है कि इस काम का पूरा हक़ अदा होना बहुत ही मुश्किल है। फिर भी मैंने कोशिश की है कि इबारत का मफ़्हूम व मतलब तर्जुमे में उतर आये। कहीं-कहीं ब्रेकिट बढ़ाकर भी इबारत को आसान बनाने की कोशिश की है। तर्जुमे में जहाँ तक संभव हुआ कोई छेड़छाड़ नहीं की गयी क्योंकि उलेमा-ए-मुहक़्क़िक़ीन ने इस तर्जुमे को इल्हामी तर्जुमा क़रार दिया है। जहाँ बहुत ही ज़रूरी महसूस हुआ वहाँ आसानी के लिये कोई लफ़्ज़ बदला गया या ब्रेकिट

के अन्दर मायनों को लिख दिया गया।

अरबी और फ़ारसी के शे'रों का मफ़्हूम अगर मुसन्निफ़ की इबारत में आ गया है और हिन्दी पाठकों के लिये ज़रूरी न समझा तो कुछ अश्आर को निकाल दिया गया है, और जहाँ ज़रूरत समझी वहाँ अरबी, फ़ारसी शे'रों का तर्जुमा लिख दिया है। ऐसे मौक़ों पर अहक़र ने उस तर्जुमे के अपनी तरफ़ से होने की वज़ाहत कर दी है ताकि अगर तर्जुमा करने में ग़लती हुई हो तो उसकी निस्बत साहिबे तफ़सीर की तरफ़ न हो बल्कि उसे मुझ नाचीज़ की इल्मी कोताही गरदाना जाये।

हल्ले लुग़ात और **किराअतों का इख़्तिलाफ़** चूँकि इल्मे तफ़सीर पर निगाह न रखने वाले, क़िराअतों के फ़न से ना-आशना और अरबी ग्रामर से नावाक़िफ़ शख़्स एक हिन्दी जानने वाले के लिये कोई फ़ायदे की चीज़ नहीं, बल्कि बहुत सी बार कम-इल्मी के सबब इससे उलझन पैदा हो जाती है लिहाज़ा तफ़सीर के इस हिस्से को हिन्दी अनुवाद में शामिल नहीं किया गया।

हिन्दी जानने वाले हज़रात के लिये यह हिन्दी तफ़सीर एक नायाब तोहफ़ा है। अगर ख़ुद अपने मुताले से वह इसे पूरी तरह न समझ सकें तब भी कम से कम इतना मौक़ा तो है कि किसी आ़लिम से सबक़न् सबक़न् इस तफ़सीर को पढ़कर लाभान्वित हो सकते हैं। जिस तरह उर्दू तफ़सीरें भी सिर्फ़ उर्दू पढ़ लेने से पूरी तरह समझ में नहीं आतीं बल्कि बहुत सी जगह किसी आ़लिम से रुजू करके पेश आने वाली मुश्किल को हल किया जाता है, इसी तरह अगर हिन्दी जानने वाले हज़रात पूरी तरह इस तफ़सीर से फ़ायदा न उठा पायें तो हिम्मत न हारें, हिन्दी की इस तफ़सीर के ज़रिये उन्हें क़ुरआन पाक के तालिब इल्म बनने का मौक़ा तो हाथ आ ही जायेगा। जो बात समझ में न आये वह किसी मोतबर आ़लिम से मालूम कर लें और इस तफ़सीरी तोहफ़े से अपनी इल्मी प्यास बुझायें। अल्लाह का शुक्र भेजिये कि आप तफ़सीर के तालिब इल्म बनने के अहल हो गये वरना उर्दू न जानने की हालत में तो आप इस मौक़े से भी मेहरूम थे।

फ़रीद बुक डिपो से मेरी वाबस्तगी पच्चीस सालों से है। इस दौरान बहुत सी किताबें लिखने, प्रूफ़ रीडिंग करने और हिन्दी में तर्जुमा करने का मुझ नाचीज़ को मौक़ा मिला है। इदारे के संस्थापक **जनाब मुहम्मद फ़रीद ख़ाँ मरहूम** से लेकर मौजूदा मालिक और मैनेजिंग डायरेक्टर **जनाब अल-हाज मुहम्मद नासिर ख़ाँ** तक सब ही की ख़ास इनायतें मुझ नाचीज़ पर रही हैं। मैंने इस इदारे के लिये बहुत सी किताबों का हिन्दी तर्जुमा किया है, हज़रत **मौलाना क़ारी मुहम्मद तैयब** साहिब मोहतमिम दारुल-उलूम देवबन्द की किताबों और मज़ामीन पर किया हुआ मेरा काम सात जिल्दों में इसी इदारे से प्रकाशित हुआ है, इसके अ़लावा **"मालूमात का समन्दर"** और **"तज़किरा अ़ल्लामा मुहम्मद इब्राहीम बलियावी"** वग़ैरह किताबें भी यहीं से शाया हुई हैं। जो किताबें मैंने उर्दू से हिन्दी में इस इदारे के लिये की हैं उनकी तायदाद भी पचास से अधिक है, इसी सिलसिले में एक और कड़ी यह जुड़ने जा रही है।

इस तफ़सीर को उर्दू से मिलती-जुलती हिन्दी भाषा (यानी हिन्दुस्तानी ज़बान) में पेश करने की कोशिश की गयी, हिन्दी के संस्कृत युक्त अलफ़ाज़ से परहेज़ किया गया है। कोशिश यह की है कि मजमूई तौर पर मज़मून का मफ़्हूम व मतलब समझ में आ जाये। फिर भी अगर कोई लफ़्ज़ या किसी जगह का कोई मज़मून समझ में न आये तो उसको नोट करके किसी आ़लिम से मालूम कर लेना चाहिये।

इस तफ़सीर से फ़ायदा उठाने वालों से आजिज़ी और विनम्रता के साथ दरख़्वास्त है कि वे मुझ नाचीज़ के ईमान पर ख़ात्मे और दुनिया व आख़िरत में कामयाबी के लिये दुआ फ़रमायें। अल्लाह करीम इस ख़िदमत को मेरे माँ-बाप और उस्ताज़ों के लिये भी मग़फ़िरत का ज़रिया बनाये, आमीन।

आख़िर में बहुत ही आजिज़ी के साथ अपनी कम-इल्मी और सलाहियत के अभाव का एतिराफ़ करते हुए यह अर्ज़ है कि बेऐब अल्लाह तआ़ला की ज़ात है। कोई भी इनसानी कोशिश ऐसी नहीं जिसके बारे में सौ फ़ीसद यक़ीन के साथ कहा जा सके कि उसके अन्दर कोई ख़ामी और कमी नहीं रह गयी है। मैंने भी यह एक मामूली कोशिश की है, अगर मुझे इसमें कोई कामयाबी मिली है तो यह महज़ अल्लाह तआ़ला का फ़ज़्ल व करम, उसके पाक नबी हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़रिये लाये हुए पैग़ाम (क़ुरआन व हदीस) की रोशनी का फ़ैज़, अपनी मादरे इल्मी दारुल-उलूम देवबन्द की निस्बत और मेरे असातिज़ा हज़रात की मेहनत का फल है, मुझ नाचीज़ का इसमें कोई कमाल नहीं। हाँ इन इल्मी जवाहर-पारों को समेटने, तरतीब देने और पेश करने में जो ग़लती, ख़ामी और कोताही हुई हो वह यक़ीनन मेरी कम-इल्मी और नाक़िस सलाहियत के सबब है। अहले नज़र हज़रात से गुज़ारिश है कि अपनी राय, मश्विरों और नज़र में आने वाली ग़लतियों व कोताहियों से मुत्तला फ़रमायें ताकि आईन्दा किये जाने वाले इल्मी कामों में उनसे लाभ उठाया जा सके। वस्सलाम

तालिबे दुआ

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

79, महमूद नगर, गली नम्बर 6, मुज़फ़्फ़र नगर (उ. प्र.) 251001

25 जनवरी 2012

फ़ोन:- 0131-2442408, 09456095608, 09012122788

E-mail: imranqasmialig@yahoo.com

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

मुक़द्दिमा

क़ुरआनी उलूम और इल्मे तफ़सीर के बारे में

ज़रूरी मालूमात

अज़- मुहम्मद तक़ी उस्मानी

उस्ताज़े हदीस दारुल-उलूम कराची - 14

(पुत्र लेखक तफ़सीर- हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि)

बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम

पेश-लफ़्ज़

वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब मद्द ज़िल्लुहुम की तफ़सीर **'मआरिफ़ुल्-क़ुरआन'** को अल्लाह तआ़ला ने अ़वाम व ख़्वास में असाधारण मक़बूलियत अ़ता फ़रमाई, और जिल्दे अव्वल का पहला संस्करण हाथों हाथ ख़त्म हो गया। दूसरे संस्करण की छपाई के वक़्त हज़रत मुसन्निफ़ मद्द ज़िल्लुहुम ने पहली जिल्द पर मुकम्मल तौर से दोबारा नज़र डाली और उसमें काफ़ी तरमीम व इज़ाफ़ा अ़मल में आया। इसी के साथ हज़रते वाला की इच्छा थी कि दूसरी बार छपने के वक़्त पहली जिल्द के शुरू में क़ुरआनी उलूम और उसूले तफ़सीर से मुताल्लिक़ एक मुख़्तसर मुक़द्दिमा भी तहरीर फ़रमायें, ताकि तफ़सीर के मुताले (अध्ययन) से पहले पढ़ने वाले हज़रात उन ज़रूरी मालूमात से लाभान्वित हो सकें, लेकिन लगातार बीमारी और कमज़ोरी की बिना पर हज़रत के लिये बज़ाते ख़ुद मुक़द्दिमे का लिखना और तैयार करना मुश्किल था, चुनाँचे हज़रते वाला ने यह ज़िम्मेदारी अहक़र के सुपुर्द फ़रमाई।

अहक़र ने हुक्म के पालन में और इस सौभाग्य को प्राप्त करने के लिये यह काम शुरू किया तो यह मुक़द्दिमा बहुत लम्बा हो गया, और क़ुरआनी उलूम के विषय पर ख़ास मुफ़स्सल किताब की सूरत बन गई। इस पूरी किताब को 'मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन' के शुरू में बतौर मुक़द्दिमा शामिल करना मुश्किल था, इसलिये हज़रत वालिद साहिब के इशारे और राय से अहक़र ने इस मुफ़स्सल किताब का ख़ुलासा तैयार किया और सिर्फ़ वे चीज़ें बाक़ी रखीं जिनका मुताला तफ़सीर मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन के मुताला करने वाले के लिये ज़रूरी था, और जो एक आ़म पाठक के लिये दिलचस्पी का सबब हो सकती थी। उस बड़े मज़मून का यह ख़ुलासा 'मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन' पहली जिल्द के इस संस्करण में मुक़द्दिमे के तौर पर शामिल किया जा रहा है, अल्लाह तआ़ला इसे मुसलमानों के लिये नाफ़े और मुफ़ीद (लाभदायक) बनाये और इस नाचीज़ के लिये आख़िरत का ज़ख़ीरा साबित हो।

इन विषयों पर तफ़सीली इल्मी मबाहिस (बहसें) अहक़र की उस विस्तृत और तफ़सीली किताब में मिल सकेंगे जो इन्शा-अल्लाह तआ़ला जल्द ही एक मुस्तक़िल किताब की सूरत में प्रकाशित होगी (अब यह किताब 'उलूमुल-क़ुरआन' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है)। लिहाज़ा जो हज़रात तहक़ीक़ और तफ़सील के तालिब हों वे उस किताब की तरफ़ रुजू फ़रमायें। व मा तौफ़ीक़ी इल्ला बिल्लाह, अ़लैहि तवक्कल्तु व इलैहि उनीब।

अहक़र
मुहम्मद तक़ी उस्मानी
दारुल-उलूम कोरंगी, कराची- 14
23 रबीउल-अव्वल 1394 हिजरी

मुक़द्दिमा

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ○

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ وَكَفٰى. وَسَلٰمٌ عَلٰى عِبَادِهِ الَّذِيْنَ اصْطَفٰى.

'वही' और उसकी हक़ीक़त

क़ुरआने करीम चूँकि सरवरे कायनात हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर वही के ज़रिये नाज़िल किया गया है, इसलिये सब से पहले वही के बारे में चन्द ज़रूरी बातें समझ लेनी चाहियें।

वही की ज़रूरत

हर मुसलमान जानता है कि अल्लाह तआ़ला ने इनसान को इस दुनिया में आज़माईश के लिये भेजा है, और उसके ज़िम्मे कुछ फ़रीज़े (ज़िम्मेदारियाँ) आ़यद करके पूरी कायनात को इसकी ख़िदमत में लगा दिया है। लिहाज़ा दुनिया में आने के बाद इनसान के लिये दो काम करने ज़रूरी हैं- एक यह कि वह इस कायनात से और इसमें पैदा की हुई चीज़ों से ठीक-ठीक काम ले, और दूसरे यह कि इस कायनात को इस्तेमाल करते हुए अल्लाह तआ़ला के अहकाम को मद्देनज़र रखे और कोई ऐसी हरकत न करे जो अल्लाह तबारक व तआ़ला की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हो।

इन दोनों कामों के लिये इनसान को "इल्म" की ज़रूरत है, इसलिये कि जब तक उसे यह मालूम न हो कि इस कायनात की हक़ीक़त क्या है? इसकी कौनसी चीज़ की क्या ख़ासियत है? इनसे किस तरह फ़ायदा उठाया जा सकता है? उस वक़्त तक वह दुनिया की कोई भी चीज़ अपने फ़ायदे के लिये इस्तेमाल नहीं कर सकता। साथ ही जब तक उसे यह मालूम न हो कि अल्लाह तआ़ला की मर्ज़ी क्या है? वह कौनसे कामों को पसन्द और किनको नापसन्द फ़रमाता है? उस वक़्त तक उसके लिये अल्लाह तआ़ला की मर्ज़ी के मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारना मुम्किन नहीं।

चुनाँचे अल्लाह तआ़ला ने इनसान को पैदा करने के साथ-साथ तीन चीज़ें ऐसी पैदा की हैं जिनके ज़रिये उसे मज़कूरा बातों का इल्म हासिल होता रहे- एक इनसान के हवास, यानी आँख, कान, मुँह और हाथ-पाँव, दूसरे अ़क़्ल और तीसरे वही। चुनाँचे इनसान को बहुत सी बातें अपने हवास के ज़रिये मालूम हो जाती हैं, बहुत सी अ़क़्ल के ज़रिये, और जो बातें इन

दोनों ज़रियों (माध्यमों) से मालूम नहीं हो सकतीं उनका इल्म वही के ज़रिये अ़ता किया जाता है।

इल्म के इन तीनों ज़रियों (वास्तों और माध्यमों) में तरतीब कुछ ऐसी है कि हर एक की एक ख़ास हद और काम का मख़्सूस दायरा है, जिससे आगे वह काम नहीं देता। चुनाँचे जो चीज़ें इनसान को अपने हवास से मालूम हो जाती हैं उनका इल्म केवल अ़क्ल से नहीं हो सकता, जैसे एक दीवार को आँख से देखकर आपको यह इल्म हो जाता है कि उसका रंग सफ़ेद है, लेकिन अगर आप अपनी आँखों को बन्द करके सिर्फ़ अ़क्ल की मदद से उस दीवार का रंग मालूम करना चाहें तो यह नामुम्किन है। इसी तरह जिन चीज़ों का इल्म अ़क्ल के ज़रिये हासिल होता है वे सिर्फ़ हवास से मालूम नहीं हो सकतीं, जैसे आप सिर्फ़ आँखों से देखकर या हाथों से छूकर यह पता नहीं लगा सकते कि इस दीवार को किसी इनसान ने बनाया है, बल्कि इस नतीजे तक पहुँचने के लिये अ़क्ल की ज़रूरत है।

ग़र्ज़ कि जहाँ तक पाँचों हवास काम देते हैं वहाँ तक अ़क्ल कोई रहनुमाई नहीं करती, और जहाँ ये पाँचों ज़ाहिरी हवास जवाब दे देते हैं वहीं से अ़क्ल का काम शुरू होता है। लेकिन इस अ़क्ल की रहनुमाई भी ग़ैर-महदूद (असीमित) नहीं है, यह भी एक हद पर जाकर रुक जाती है। और बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनका इल्म न हवास के ज़रिये हासिल हो सकता है और न अ़क्ल के ज़रिये, जैसे उसी दीवार के बारे में यह मालूम करना कि इसको किस तरह इस्तेमाल करने से अल्लाह तआ़ला राज़ी और किस तरह इस्तेमाल करने से नाराज़ होगा? यह न हवास के ज़रिये मुम्किन है न अ़क्ल के ज़रिये, इस क़िस्म के सवालात का जवाब इनसान को देने के लिये जो ज़रिया अल्लाह तआ़ला ने मुक़र्रर फ़रमाया है उसी का नाम "वही" है। और उसका तरीक़ा यह होता है कि अल्लाह तआ़ला अपने बन्दों में से किसी को मुन्तख़ब फ़रमाकर (चुनकर) उसे अपना पैग़म्बर क़रार दे देता है और उस पर अपना कलाम नाज़िल फ़रमाता है, उसी कलाम को "वही" कहा जाता है।

इससे वाज़ेह हो गया कि वही इनसान के लिये इल्म का वह सब से आला और बुलन्द ज़रिया और माध्यम है जो उसे उसकी ज़िन्दगी से मुताल्लिक़ उन सवालात का जवाब मुहैया करता है जो अ़क्ल और हवास के ज़रिये हल नहीं हो सकते, लेकिन उनका इल्म हासिल करना उसके लिये ज़रूरी है। इससे यह भी वाज़ेह हो जाता है कि सिर्फ़ अ़क्ल और अनुभव इनसान की रहनुमाई के लिये काफ़ी नहीं, बल्कि उसकी हिदायत के लिये अल्लाह की वही एक लाज़िमी ज़रूरत है, और चूँकि बुनियादी तौर पर वही की ज़रूरत पेश ही उस जगह आती है जहाँ अ़क्ल काम नहीं देती इसलिये यह ज़रूरी नहीं है कि वही की हर बात का इल्म व जानकारी अ़क्ल से हो ही जाये, बल्कि जिस तरह किसी चीज़ का रंग मालूम करना अ़क्ल का काम नहीं बल्कि हवास का काम है, इसी तरह बहुत से दीनी अ़क़ीदों का इल्म अ़ता करना भी अ़क्ल के बजाय वही का काम है, और उनके इदराक (समझने और जानने) के लिये सिर्फ़ अ़क्ल पर भरोसा करना दुरुस्त नहीं।

जो शख़्स (अल्लाह की पनाह) ख़ुदा के वजूद ही का क़ायल न हो उससे तो वही के मसले पर बात करना बिल्कुल बेफ़ायदा है, लेकिन जो शख़्स अल्लाह तआ़ला के वजूद और उसकी कामिल क़ुदरत पर ईमान रखता है उसके लिये वही की अ़क़्ली ज़रूरत, उसकी संभावना और वास्तविक वजूद को समझना कुछ मुश्किल नहीं। अगर आप इस बात पर ईमान रखते हैं कि यह कायनात एक क़ादिरे मुतलक़ ने पैदा की है, वही इसके संगठित और मज़बूत निज़ाम को अपनी हिक्मते बालिग़ा से चला रहा है, और उसी ने इनसान को किसी ख़ास मक़सद के तहत यहाँ भेजा है, तो फिर यह कैसे मुम्किन है कि उसने इनसान को पैदा करने के बाद उसे बिल्कुल अंधेरे में छोड़ दिया हो और उसे यह तक न बताया हो कि वह क्यों इस दुनिया में आया है? यहाँ उसके ज़िम्मे क्या फ़राईज़ हैं? उसकी मन्ज़िले मक़सूद क्या है? और वह किस तरह अपने ज़िन्दगी के मक़सद को हासिल कर सकता है? क्या कोई शख़्स जिसके होश व हवास सलामत हों ऐसा कर सकता है कि अपने किसी नौकर को एक ख़ास मक़सद के तहत किसी सफ़र पर भेज दे और उसे चलते वक़्त न सफ़र का मक़सद बताये और न बाद में किसी पैग़ाम के ज़रिये उस पर यह वाज़ेह करे कि उसे किस काम के लिये भेजा गया है और सफ़र के दौरान उसकी ड्यूटी क्या होगी? जब एक मामूली अ़क़्ल का इनसान भी ऐसी हरकत नहीं कर सकता तो आख़िर उस ख़ुदावन्दे क़ुद्दूस के बारे में यह तसव्वुर कैसे किया जा सकता है जिसकी हिक्मते बालिग़ा से कायनात का यह सारा निज़ाम चल रहा है। यह आख़िर कैसे मुम्किन है कि जिस ज़ात ने चाँद, सूरज, आसमान, ज़मीन, सितारों और सय्यारों का ऐसा अ़क़्लों को हैरान कर देने वाला निज़ाम पैदा किया हो, वह अपने बन्दों तक पैग़ाम पहुँचाने का कोई ऐसा इन्तिज़ाम भी न कर सके जिसके ज़रिये इनसानों को उनके ज़िन्दगी के मक़सद से मुताल्लिक़ हिदायत दी जा सकें? अगर अल्लाह तआ़ला की हिक्मते बालिग़ा पर ईमान है तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि उसने अपने बन्दों को अंधेरे में नहीं छोड़ा, बल्कि उनकी रहनुमाई के लिये कोई बाक़ायदा निज़ाम (सिस्टम) ज़रूर बनाया है, बस रहनुमाई के इसी बाक़ायदा निज़ाम का नाम **वही व रिसालत** है।

इससे साफ़ वाज़ेह हो जाता है कि "वही" महज़ एक दीनी एतिक़ाद ही नहीं बल्कि एक अ़क़्ली ज़रूरत है, जिसका इनकार दर हक़ीक़त अल्लाह तआ़ला की हिक्मते बालिग़ा का इनकार है।

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर वही नाज़िल होने के तरीक़े

वही व रिसालत का यह पवित्र सिलसिला सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व

सल्लम पर ख़त्म हो गया, अब किसी इनसान पर न वही नाज़िल होगी और न इसकी ज़रूरत है। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर मुख़्तलिफ़ (विभिन्न) तरीक़ों से वही नाज़िल होती थी। सही बुख़ारी की एक हदीस में हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा फ़रमाती हैं कि एक मर्तबा हज़रत हारिस बिन हिशाम रज़ियल्लाहु अन्हु ने आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से पूछा कि आप पर वही किस तरह आती है? तो आपने फ़रमाया कि कभी तो मुझे घंटी की सी आवाज़ सुनाई देती है और वही की यह सूरत मेरे लिये सब से ज़्यादा सख़्त होती है। फिर जब यह सिलसिला ख़त्म होता है तो जो कुछ उस आवाज़ ने कहा होता है वह मुझे याद हो चुका होता है, और कभी फ़रिश्ता मेरे सामने एक मर्द की सूरत में आ जाता है। (सही बुख़ारी जिल्द 1 पेज 2)

इस हदीस में आपने "वही" की आवाज़ को घन्टियों की आवाज़ से जो तश्बीह दी है, शैख़ मुहियुद्दीन इब्ने अ़रबी रहमतुल्लाहि अलैहि ने इसका मतलब यह बयान किया है कि एक तो वही की आवाज़ घंटी की तरह लगातार होती है और बीच में टूटती नहीं, दूसरे घंटी जब निरन्तर बजती है तो उमूमन सुनने वाले को उसकी आवाज़ की दिशा मुतैयन करना मुश्किल होता है, क्योंकि उसकी आवाज़ हर तरफ़ से आती हुई महसूस होती है और कलामे इलाही की भी यह ख़ुसूसियत है कि उसकी कोई एक दिशा नहीं होती, बल्कि हर दिशा से आवाज़ सुनाई देती है। इस कैफ़ियत का सही इदराक (इल्म व अन्दाज़ा) तो बग़ैर अनुभव के मुम्किन नहीं, लेकिन इस बात को आ़म ज़ेहनों से क़रीब करने के लिये आपने इसे घन्टियों की आवाज़ से तश्बीह दी है। (फ़ैज़ुल-बारी जिल्द 1 पेज 19, 20)

जब इस तरीक़े से आप पर वही नाज़िल होती तो आप पर बहुत ज़्यादा बोझ पड़ता था। हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा इसी हदीस के आख़िर में फ़रमाती हैं कि मैंने सख़्त जाड़ों के दिन में आप पर वही नाज़िल होते हुए देखी है, ऐसी सर्दी में भी जब वही का सिलसिला ख़त्म होता तो आपकी मुबारक पेशानी पसीने से तर हो चुकी होती थी। एक और रिवायत में हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा फ़रमाती हैं कि जब आप पर वही नाज़िल होती तो आपका साँस रुकने लगता, चेहरा-ए-अनवर का रंग बदलकर खजूर की शाख़ की तरह ज़र्द (पीला) पड़ जाता, सामने के दाँत सर्दी से कपकपाने लगते और आपको इतना पसीना आता कि उसके क़तरे मोतियों की तरह ढलकने लगते थे। (अल-इतक़ान जिल्द 1 पेज 46)

वही की इस कैफ़ियत में कई बार इतनी शिद्दत पैदा हो जाती कि आप जिस जानवर पर उस वक़्त सवार होते वह आपके बोझ से दबकर बैठ जाता। और एक मर्तबा आपने अपना सर मुबारक हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु की रान पर रखा हुआ था कि उसी हालत में वही नाज़िल होनी शुरू हो गई, उससे हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु की रान पर इतना बोझ पड़ा कि वह टूटने लगी। (ज़ादुल-मआ़द जिल्द 1 पेज 18, 19)

कई बार उस वही की हल्की-हल्की आवाज़ दूसरों को भी महसूस होती थी। हज़रत

उमर फ़ारूक़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि जब आप पर वही नाज़िल होती तो आपके चेहरा-ए-अनवर के क़रीब शहद की मक्खियों की भिनभिनाहट जैसी आवाज़ सुनाई देती थी। (तबवीब मुस्नद अहमद, किताब सीरते नबविया जिल्द 20 पेज 212)

वही की दूसरी सूरत यह थी कि फ़रिश्ता किसी इनसानी शक्ल में आपके पास आकर अल्लाह तआ़ला का पैग़ाम पहुँचा देता था। ऐसे मौक़े पर उमूमन हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम मशहूर सहाबी हज़रत दहया कलबी रज़ियल्लाहु अ़न्हु की सूरत में तशरीफ़ लाया करते थे, अलबत्ता कभी-कभी किसी दूसरी सूरत में भी तशरीफ़ लाये हैं। बहरहाल! जब हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम इनसानी शक्ल में वही लेकर आते तो वही नाज़िल होने की यह सूरत आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये सब से आसान होती थी।

(अल-इतक़ान जिल्द 1 पेज 46)

वही की तीसरी सूरत यह थी कि हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम किसी इनसान की शक्ल इख़्तियार किये बग़ैर अपनी असली सूरत में दिखाई देते थे, लेकिन ऐसा आपकी तमाम उम्र में सिर्फ़ तीन बार हुआ है- एक मर्तबा उस वक़्त जब आपने ख़ुद हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम को उनकी असली शक्ल में देखने की इच्छा ज़ाहिर फ़रमाई थी, दूसरी मर्तबा मेराज में और तीसरी बार नुबुव्वत के बिल्कुल शुरू के ज़माने में मक्का मुकर्रमा के मक़ाम अजयाद पर। पहले दो वाक़िआ़त तो सही सनद से साबित हैं, अलबत्ता यह आख़िरी वाक़िआ़ सनद के एतिबार से कमज़ोर होने की वजह से मशकूक (संदिग्ध) है।

(फ़तहुल-बारी जिल्द 1 पेज 18, 19)

चौथी सूरत डायरेक्ट और बिना किसी वास्ते के अल्लाह तबारक व तआ़ला से हम-कलामी (बात करने) की है, यह सम्मान और गौरव नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को जागने की हालत में सिर्फ़ एक बार, यानी मेराज के वक़्त हासिल हुआ है, अलबत्ता एक मर्तबा ख़्वाब में भी आप अल्लाह तआ़ला से हम-कलाम हुए हैं।

(अल-इतक़ान जिल्द 1 पेज 46)

वही की पाँचवीं सूरत यह थी कि हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम किसी भी सूरत में सामने आये बग़ैर आपके दिल मुबारक में कोई बात डाल देते थे, इसे इस्तिलाह में ''नफ़स फ़िरौंअ़'' कहते हैं। (अल-इतक़ान जिल्द 1 पेज 46)

क़ुरआन के नाज़िल होने का इतिहास

क़ुरआने करीम दर असल अल्लाह का कलाम है, इसलिये अज़ल (पहले दिन) से 'लौहे-महफ़ूज़'' में मौजूद है। क़ुरआने करीम का इरशाद है:

بَلْ هُوَ قُرْاٰنٌ مَّجِيْدٌ ۝ فِيْ لَوْحٍ مَّحْفُوْظٍ ۝ (٨٥: ٢١، ٢٢)

(बल्कि यह क़ुरआन मजीद है, लौहे-महफ़ूज़ में) फिर लौहे-महफ़ूज़ से इसका नुज़ूल दो

मर्तबा हुआ है, एक मर्तबा यह पूरे का पूरा दुनिया वाले आसमान के बैतुल-इज़्ज़त में नाज़िल कर दिया गया था। बैतुल-इज़्ज़त (जिसे बैतुल-मामूर भी कहते हैं) काबा शरीफ़ की बिल्कुल सीध में आसमान पर फ़रिश्तों की इबादत का मक़ाम है, यह नुज़ूल (उतरना) शबे-क़द्र में हुआ था। फिर दूसरी मर्तबा नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर थोड़ा थोड़ा करके ज़रूरत के अनुसार नाज़िल किया जाता रहा, यहाँ तक कि तेईस साल में इसकी तकमील हुई। नुज़ूले क़ुरआन (क़ुरआन उतरने) की ये दो सूरतें ख़ुद क़ुरआने करीम के अन्दाज़े बयान से भी वाज़ेह हैं, इसके अ़लावा इमाम नसाई, इमाम बैहक़ी और इमाम हाकिम रह. वग़ैरह ने हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से कई रिवायतें नक़ल की हैं जिनका ख़ुलासा यह है कि क़ुरआने करीम का पहला नुज़ूल एक ही बार में दुनिया वाले आसमान पर हुआ और दूसरी बार यह थोड़ा-थोड़ा नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर नाज़िल हुआ। (इतक़ान जिल्द 1 पेज 41)

क़ुरआने करीम को पहली मर्तबा दुनिया वाले आसमान पर नाज़िल करने की हिक्मत इमाम अबू शामा रह. ने यह बयान की है कि इससे क़ुरआने करीम की ऊँची शान को ज़ाहिर करना मक़सूद था और फ़रिश्तों को यह बात बतानी थी कि यह अल्लाह की आख़िरी किताब है जो ज़मीन वालों की हिदायत के लिये उतारी जाने वाली है।

शैख़ ज़ुरक़ानी रह. ने यह नुक्ता भी बयान किया है कि इस तरह दो मर्तबा उतारने से यह भी जताना मक़सूद था कि यह किताब हर शक व शुब्हे से ऊपर है, और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के दिल मुबारक के अ़लावा यह दो जगह और भी महफ़ूज़ है- एक लौहे-महफ़ूज़ में और दूसरे बैतुल-इज़्ज़त में। (मनाहिलुल-इरफ़ान 1, 39) वल्लाहु आलम।

इस पर तक़रीबन इत्तिफ़ाक़ (सब की सहमति) है कि क़ुरआने करीम जो थोड़ा-थोड़ा करके नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के दिल मुबारक पर उतरा इसका आग़ाज़ उस वक़्त हुआ जबकि आपकी उम्र चालीस साल थी। इस उतरने की शुरूआ़त भी सही क़ौल के मुताबिक़ शबे-क़द्र में हुई है। लेकिन यह रात रमज़ान की कौनसी तारीख़ थी? इस बारे में कोई यक़ीनी बात नहीं कही जा सकती, कुछ रिवायतों से रमज़ान की सत्रहवीं, कुछ से उन्नीसवीं और कुछ से सत्ताईसवीं रात मालूम होती है। (तफ़सीर इब्ने जरीर जिल्द 10 पेज 7)

सबसे पहले नाज़िल होने वाली आयत

सही क़ौल यह है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर क़ुरआने करीम की सबसे पहली जो आयतें उतरीं वो सूरः अ़लक़् की शुरू की आयतें हैं। सही बुख़ारी में हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा इसका वाक़िआ़ यह बयान फ़रमाती हैं कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर वही के उतरने की शुरूआ़त तो सच्चे ख़्वाबों से हुई थी, उसके बाद आपको तन्हाई में इबादत करने का शौक़ पैदा हुआ, और उस दौरान आप ग़ारे-हिरा में

कई-कई रातें गुज़ारते और इबादत में मशगूल रहते थे, यहाँ तक कि एक दिन उसी ग़ार (गुफा) में आपके पास अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से फ़रिश्ता आया और उसने सब से पहले यह बात कही कि "इक़रअ्" (यानी पढ़ो) हुज़ूरे पाक ने फ़रमाया- "मैं पढ़ा हुआ नहीं हूँ" इसके बाद ख़ुद हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने वाक़िआ बयान किया कि मेरे इस जवाब पर फ़रिश्ते ने मुझे पकड़ा और मुझे इस ज़ोर से भींचा कि मुझ पर मशक़्क़त की इन्तिहा हो गई, फिर उसने मुझे छोड़ दिया और दोबारा कहा कि "इक़रअ्" मैंने जवाब दिया कि "मैं पढ़ा हुआ नहीं हूँ" फ़रिश्ते ने मुझे फिर पकड़ा और दोबारा इस ज़ोर से भींचा कि मुझ पर मशक़्क़त की इन्तिहा हो गई, फिर उसने मुझे छोड़कर कहा कि "इक़रअ्" मैंने जवाब दिया कि "मैं पढ़ा हुआ नहीं हूँ" इस पर उसने मुझे तीसरी बार पकड़ा और भींचकर छोड़ दिया। फिर कहा:

اِقْرَاْ بِاسْمِ رَبِّكَ الَّذِىْ خَلَقَ ٥ خَلَقَ الْاِنْسَانَ مِنْ عَلَقٍ ٥ اِقْرَاْ وَرَبُّكَ الْاَكْرَمُ ٥ الَّذِىْ عَلَّمَ بِالْقَلَمِ ٥ عَلَّمَ الْاِنْسَانَ مَالَمْ يَعْلَمْ ٥

"पढ़ो अपने परवर्दिगार के नाम से जिसने पैदा किया। जिसने इनसान को जमे हुए ख़ून से पैदा किया। पढ़ो, और तुम्हारा परवर्दिगार सबसे ज़्यादा करम वाला है। जिसने क़लम से तालीम दी। इनसान को उस बात की तालीम दी जो वह नहीं जानता था।"

ये आप पर नाज़िल होने वाली पहली आयतें थीं। उसके बाद तीन साल तक वही का सिलसिला बन्द रहा, उसी ज़माने को "फ़त्रते वही" का ज़माना कहते हैं। फिर तीन साल के बाद वही फ़रिश्ता जो ग़ारे-हिरा में आया था, आपको आसमान व ज़मीन के बीच दिखाई दिया और उसने सूरः मुद्दस्सिर की शुरू की आयतें आपको सुनाईं, उसके बाद वही का सिलसिला जारी हो गया।

मक्की और मदनी आयतें

आपने क़ुरआने करीम की सूरतों के उनवान में देखा होगा कि किसी सूरत के साथ "मक्की" और किसी के साथ "मदनी" लिखा होता है। इसका सही मफ़्हूम समझ लेना ज़रूरी है। मुफ़स्सिरीन की इस्तिलाह में "मक्की आयत" का मतलब वह आयत है जो आपके हिजरत के मक़सद से मदीना तय्यिबा पहुँचने से पहले-पहले नाज़िल हुई, और "मदनी आयत" का मफ़्हूम यह है कि वह आपके मदीना पहुँचने के बाद नाज़िल हुई। कुछ लोग "मक्की" का मतलब यह समझते हैं कि वह शहर मक्का में नाज़िल हुई, और "मदनी" का यह कि वह शहर मदीना में उतरी, लेकिन यह मतलब दुरुस्त नहीं, इसलिये कि कई आयतें ऐसी हैं जो शहर मक्का में नाज़िल नहीं हुईं लेकिन चूँकि हिजरत से पहले नाज़िल हो चुकी थीं इसलिये उन्हें "मक्की" कहा जाता है। चुनाँचे जो आयतें मिना, अ़रफ़ात या मेराज के सफ़र के दौरान नाज़िल हुईं वे भी "मक्की" कहलाती हैं, यहाँ तक

कि जो आयतें हिजरत के सफ़र के दौरान मदीना के रास्ते में नाज़िल हुईं उनको भी "मक्की" कहा जाता है। इसी तरह बहुत सी आयतें ऐसी हैं जो शहर मदीना में नाज़िल नहीं हुईं मगर वे "मदनी" हैं, चुनाँचे हिजरत के बाद आपको बहुत से सफ़र पेश आये जिनमें आप मदीना तय्यिबा से सैंकड़ों मील दूर भी तशरीफ़ ले गये, उन तमाम मक़ामात पर नाज़िल होने वाली आयतें "मदनी" ही कहलाती हैं, यहाँ तक कि उन आयतों को भी "मदनी" कहा जाता है जो मक्का फ़तह होने या सुलह हुदैबिया के मौक़े पर ख़ास शहर मक्का या उससे मिले हुए इलाक़ों में नाज़िल हुईं। चुनाँचे क़ुरआन पाक की यह आयतः

إِنَّ اللّٰهَ يَأْمُرُكُمْ أَنْ تُؤَدُّوا الْأَمٰنٰتِ إِلٰى أَهْلِهَا.... (٤:٥٨)

"मदनी" है, हालाँकि यह मक्का मुकर्रमा में नाज़िल हुई।

(अल-बुरहान जिल्द 1 पेज 188, व मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 188)

फिर कुछ सूरतें तो ऐसी हैं कि वे पूरी की पूरी मक्की या पूरी की पूरी मदनी हैं, जैसे सूरः मुद्दस्सिर पूरी मक्की है, और सूरः आले इमरान पूरी मदनी, लेकिन बाज़ मर्तबा ऐसा भी हुआ है कि पूरी सूरत मक्की है लेकिन उसमें एक या चन्द आयतें मदनी भी आ गई हैं, और बाज़ मर्तबा इसके उलट भी हुआ है, जैसे सूरः आराफ़ मक्की है लेकिन उसमें:

وَسْئَلْهُمْ عَنِ الْقَرْيَةِ الَّتِيْ كَانَتْ حَاضِرَةَ الْبَحْرِ.

से लेकरः

وَإِذْ أَخَذَ رَبُّكَ مِنْ بَنِيْ آدَمَ........ الخ

तक की आयतें मदनी हैं (सूरत 7 आयत 163)। इसी तरह सूरः हज मदनी है लेकिन इसमें चार आयतें यानीः

وَمَا أَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ مِنْ رَّسُوْلٍ وَّلَا نَبِيٍّ إِلَّا إِذَا تَمَنّٰى.

से लेकरः

عَذَابُ يَوْمٍ عَقِيْمٍ.

तक मक्की हैं। (सूरत 22 आयत 52-55)

इससे यह भी वाज़ेह हो जाता है कि किसी सूरत का मक्की या मदनी होना उमूमन उसकी अक्सर आयतों के एतिबार से होता है, और अक्सर ऐसा होता था कि जिस सूरत की शुरू की आयतें हिजरत से पहले नाज़िल हो गई उसे मक्की क़रार दे दिया गया, अगरचे बाद में उसकी कुछ आयतें हिजरत के बाद नाज़िल हुई हों। (मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 192)

मक्की व मदनी आयतों की ख़ुसूसियात

उलेमा-ए-तफ़सीर ने मक्की और मदनी सूरतों के अन्दर ग़ौर-फ़िक्र और तहक़ीक़ व

तलाश करके उनकी कुछ ऐसी ख़ुसूसियात (विशेषतायें) बयान फ़रमाई हैं जिनसे पहली नज़र में यह मालूम हो जाता है कि यह सूरत मक्की है या मदनी। उनमें से कुछ ख़ुसूसियात एक मुस्तक़िल क़ायदे की हैसियत रखती हैं और कुछ में अधिकता का एतिबार है। मुस्तक़िल क़ायदे ये हैं:

1. हर वह सूरत जिसमें लफ़्ज़ 'कल्ला' (हरगिज़ नहीं) आया है, वह मक्की है। यह लफ़्ज़ 15 सूरतों में 33 मर्तबा इस्तेमाल हुआ है, और ये सारी आयतें क़ुरआने करीम के आख़िरी आधे हिस्से में हैं।

2. हर वह सूरत जिसमें (हनफ़ी मस्लक के मुताबिक़) कोई सज्दे की आयत आई है वह मक्की है।

3. सूरः ब-क़रह के अलावा हर वह सूरत जिसमें हज़रत आदम और शैतान का वाक़िआ ज़िक्र हुआ है, वह मक्की है।

नोटः- यह क़ायदा किताब 'अल-इतक़ान' वग़ैरह से लिया गया है और यह उस क़ौल के मुताबिक़ तो दुरुस्त है जिसके एतिबार से सूरः हज मक्की है, लेकिन अगर उसे मदनी क़रार दिया जाये जैसा कि कुछ सहाबा व ताबिईन हज़रात से मन्क़ूल है तो सूरः हज इस क़ायदे से अलग होगी।

मुहम्मद तक़ी उस्मानी

4. हर वह सूरत जिसमें जिहाद की इजाज़त या उसके अहकाम मज़कूर हैं, मदनी है।

5. हर वह आयत जिसमें मुनाफ़िक़ों का ज़िक्र आया है, मदनी है।

और निम्नलिखित ख़ुसूसियतें उमूमी और अक्सरी हैं, यानी कभी-कभी इनके ख़िलाफ़ भी हो जाता है लेकिन अक्सर व बेशतर ऐसा ही होता है।

1. मक्की सूरतों में उमूमन 'या अय्युहन्नासु' (ऐ लोगो!) के अलफ़ाज़ से ख़िताब किया गया है और मदनी सूरतों में 'या अय्युहल्लज़ी-न आमनू' (ऐ ईमान वालो!) के अलफ़ाज़ से।

2. मक्की आयतें और सूरतें छोटी-छोटी और मुख़्तसर हैं और मदनी आयतें व सूरतें लम्बी और तफ़सीली हैं।

3. मक्की सूरतें ज़्यादातर तौहीद, रिसालत और आख़िरत के साबित करने, मौत के बाद उठने और क़ियामत के मन्ज़र बयान करने, नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को सब्र व तसल्ली की तालीम व हिदायत और पिछली उम्मतों के वाक़िआत पर आधारित हैं और उनमें अहकाम व क़ानून कम बयान हुए हैं, इसके विपरीत मदनी सूरतों में ख़ानदानी और सामाजिक क़ानून, जिहाद व क़िताल के अहकाम और सज़ायें व फ़राईज़ बयान किये गये हैं।

4. मक्की सूरतों में ज़्यादातर मुक़ाबला बुतपरस्तों से है और मदनी सूरतों में अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) और मुनाफ़िक़ों से।

5. मक्की सूरतों का अन्दाज़े बयान ज़्यादा अ़ज़मत वाला व शाहाना है, उसमें मिसालें

और इशारे ज़्यादा हैं, और अलफ़ाज़ का ज़ख़ीरा बहुत फैला हुआ है, इसके विपरीत मदनी सूरतों का अन्दाज़ उनकी तुलना में सादा है।

मक्की और मदनी सूरतों के अन्दाज़ व उस्लूब में यह फ़र्क़ दर असल हालात, माहौल और मुख़ातबों के इख़्तिलाफ़ (भिन्न होने) की वजह से पैदा हुआ है। मक्की ज़िन्दगी में मुसलमानों का वास्ता चूँकि ज़्यादातर अ़रब के बुतपरस्तों (मूर्ति पूजकों) से था और कोई इस्लामी राज्य वजूद में नहीं आया था, इसलिये उस दौर में ज़्यादा ज़ोर अ़क़ीदों के सही करने, अख़्लाक़ के सुधार, बुतपरस्तों की दलील के साथ तरदीद और क़ुरआने करीम की सबसे अलग और दूसरों को आ़जिज़ करने देने वाली शान के इज़हार पर दिया गया। इसके विपरीत मदीना तय्यिबा में एक इस्लामी रियासत (राज्य) वजूद में आ चुकी थी, लोग गिरोह के गिरोह इस्लाम के साये तले आ रहे थे, इल्मी सतह पर बुतपरस्ती का ग़लत व झूठा होना सब पर ज़ाहिर हो चुका था और सारा का सारा नज़रियाती मुक़ाबला अहले किताब (यहूदी व ईसाईयों) से था, इसलिये यहाँ अहकाम व क़वानीन और हुदूद व फ़राईज़ की तालीम और अहले किताब की तरदीद पर ज़्यादा तवज्जोह दी गई और इसी के मुनासिब अन्दाज़े बयान इख़्तियार किया गया।

क़ुरआने करीम का थोड़ा-थोड़ा उतरना

पीछे आ चुका है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर क़ुरआने करीम अचानक और एक ही दफ़ा में नाज़िल नहीं हुआ, बल्कि थोड़ा-थोड़ा करके तक़रीबन तेईस साल में उतारा गया है। कई बार हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम एक छोटी सी आयत बल्कि आयत का कोई एक टुकड़ा लेकर भी तशरीफ़ ले आते और कई बार कई-कई आयतें एक ही वक़्त में नाज़िल हो जातीं। क़ुरआने करीम का सबसे छोटा हिस्सा जो मुस्तक़िल तौर पर नाज़िल हुआ वहः

غَيْرُ أُولِي الضَّرَرِ

'ग़ैरु उलिज़्ज़-ररि' (यानी सूरः निसा आयत 95) है, जो एक लम्बी आयत का टुकड़ा है, दूसरी तरफ़ पूरी सूरः अन्आ़म एक ही मर्तबा में नाज़िल हुई है। (इब्ने कसीर 2/122)

सारे क़ुरआने करीम को एक दफ़ा में नाज़िल करने के बजाय थोड़ा-थोड़ा करके क्यों नाज़िल किया गया? यह सवाल ख़ुद अ़रब के मुश्रिकों ने आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से किया था, बारी तआ़ला ने इस सवाल का जवाब ख़ुद इन अलफ़ाज़ में दिया है:

وَقَالَ الَّذِينَ كَفَرُوا لَوْلَا نُزِّلَ عَلَيْهِ الْقُرْآنُ جُمْلَةً وَّاحِدَةً كَذٰلِكَ لِنُثَبِّتَ بِهِ فُؤَادَكَ وَرَتَّلْنٰهُ تَرْتِيلًا ۝ وَلَا يَأْتُونَكَ بِمَثَلٍ إِلَّا جِئْنٰكَ بِالْحَقِّ وَأَحْسَنَ تَفْسِيرًا ۝ (الفرقان)

"और काफ़िरों ने कहा कि आप पर क़ुरआन एक ही दफ़ा क्यों नाज़िल नहीं किया

गया? इसी तरह (हमने क़ुरआन को थोड़ा-थोड़ा उतारा है) ताकि हम आपके दिल को मुत्मईन कर दें, और हमने इसको रफ़्ता-रफ़्ता पढ़ा है और वह कोई बात आपके पास नहीं लायेंगे मगर हम आपके पास हक़ लायेंगे और (उसकी) उम्दा तफ़सीर पेश करेंगे।"

इमाम राज़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इस आयत की तफ़सीर में क़ुरआने करीम के थोड़ा-थोड़ा उतरने की जो हिक्मतें बयान फ़रमाई हैं यहाँ उनका ख़ुलासा समझ लेना काफ़ी है, वह फ़रमाते हैं:

1. नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उम्मी (बिना पढ़े-लिखे) थे, लिखते पढ़ते नहीं थे, इसलिये अगर सारा क़ुरआन एक मर्तबा में नाज़िल हो गया होता तो उसका याद रखना दुश्वार होता, इसके उलट हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम लिखना पढ़ना जानते थे, इसलिये उन पर तौरात एक ही मर्तबा में नाज़िल कर दी गई।

2. अगर पूरा क़ुरआन एक दफ़ा में नाज़िल हो जाता तो तमाम अहकाम की पाबन्दी फ़ौरन लाज़िम हो जाती, और यह धीरे-धीरे अहकाम लागू करने की उस हिक्मत के ख़िलाफ़ होता जिसका शरीअ़ते मुहम्मदी में ध्यान रखा गया है।

3. नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को अपनी क़ौम की तरफ़ से हर रोज़ नई तकलीफ़ें बरदाश्त करनी पड़ती थीं, जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम का बार-बार क़ुरआने करीम लेकर आना उन तकलीफ़ों के मुक़ाबले को आसान बना देता था, और आपके दिल की मज़बूती का सबब बनता था।

4. क़ुरआने करीम का एक बड़ा हिस्सा लोगों के सवालात के जवाब और मुख़्तलिफ़ वाक़िआ़त से मुताल्लिक़ है, इसलिये उन आयतों का नुज़ूल उसी वक़्त मुनासिब था जिस वक़्त वे सवालात किये गये, या वे वाक़िआ़त पेश आये। इससे मुसलमानों की बसीरत (समझ व अ़क़्ल) भी बढ़ती थी और क़ुरआने करीम की ग़ैबी ख़बरें बयान करने से उसकी हक़्क़ानियत (हक़ और सच्चा होना) और ज़्यादा ज़ाहिर हो जाता था।

(तफ़सीरे कबीर जिल्द 6 पेज 336)

शान-ए-नुज़ूल

क़ुरआने करीम की आयतें दो क़िस्म की हैं- एक तो वो आयतें हैं जो अल्लाह तआ़ला ने ख़ुद अपनी तरफ़ से नाज़िल फ़रमाईं, कोई ख़ास वाक़िआ़ या किसी का कोई सवाल वग़ैरह उनके उतरने का सबब नहीं बना। दूसरी आयतें ऐसी हैं कि जिनका नुज़ूल किसी ख़ास वाक़िए की वजह से या किसी सवाल के जवाब में हुआ, जिसे उन आयतों का पसे-मन्ज़र कहना चाहिये, यह पसे-मन्ज़र मुफ़स्सिरीन की इस्तिलाह में "सबब-ए-नुज़ूल" या "शान-ए-नुज़ूल" (यानी उतरने का सबब और मौक़ा) कहलाता है। जैसे सूरः ब-क़रह की आयत नम्बर 221 है:

وَلَا تَنْكِحُوا الْمُشْرِكٰتِ حَتّٰى يُؤْمِنَّ وَلَاَمَةٌ مُّؤْمِنَةٌ خَيْرٌ مِّنْ مُّشْرِكَةٍ وَّلَوْ اَعْجَبَتْكُمْ......الخ

"और मुश्रिक औरतों से उस वक़्त तक निकाह न करो जब तक कि वे ईमान न ले आयें। यक़ीनन एक मोमिन बाँदी किसी भी मुश्रिक औरत से बेहतर है, चाहे वह मुश्रिक औरत तुम्हें पसन्द हो।"

यह आयत एक ख़ास वाक़िए में नाज़िल हुई थी। ज़माना-ए-जाहिलीयत (इस्लाम से पहले के ज़माने) में हज़रत मुर्सद बिन अबी मुर्सद ग़नवी रज़ियल्लाहु अन्हु के इनाक़ नाम की एक औरत से ताल्लुक़ात थे, इस्लाम लाने के बाद यह मदीना तय्यिबा चले आये और वह औरत मक्का मुकर्रमा में रह गई। एक मर्तबा हज़रत मुर्सद किसी काम से मक्का मुकर्रमा तशरीफ़ ले गये तो इनाक़ ने उन्हें गुनाह की दावत दी, हज़रत मुर्सद रज़ियल्लाहु अन्हु ने साफ़ इनकार करके फ़रमाया कि इस्लाम मेरे और तुम्हारे दरमियान रोक हो चुका है, लेकिन अगर तुम चाहो तो मैं हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से इजाज़त के बाद तुमसे निकाह कर सकता हूँ। मदीना तय्यिबा तशरीफ़ लाकर हज़रत मुर्सद रज़ियल्लाहु अन्हु ने आप से निकाह की इजाज़त चाही और अपनी इच्छा का इज़हार किया, इस पर यह आयत नाज़िल हुई और इसने मुश्रिक औरतों से निकाह की मनाही कर दी।

(असबाबुन्नुज़ूल, अल्लामा वाहिदी पेज 38)

यह वाक़िआ ऊपर ज़िक्र हुई आयत का "शाने-नुज़ूल" या "सबबे-नुज़ूल" है। क़ुरआने करीम की तफ़सीर में "शाने-नुज़ूल" बहुत अहमियत का हामिल है, बहुत सी आयतों का मफ़्हूम (मायने और मतलब) उस वक़्त तक सही तौर से समझ में नहीं आ सकता जब तक उनका शाने-नुज़ूल मालूम न हो।

क़ुरआने करीम के सात हुरूफ़ और क़िराअतें

अल्लाह तआला ने क़ुरआने करीम की तिलावत में आसानी पैदा करने के लिये उम्मते मुहम्मदिया को एक आसानी यह अता फ़रमाई है कि इसके अलफ़ाज़ को मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से पढ़ने की इजाज़त दी है, क्योंकि कई बार किसी शख़्स से कोई लफ़्ज़ एक तरीक़े से नहीं पढ़ा जाता तो उसे दूसरे तरीक़े से पढ़ सकता है। सही मुस्लिम की एक हदीस में है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम एक मर्तबा बनू ग़िफ़ार के तालाब के पास तशरीफ़ रखते थे कि हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम आ गये और उन्होंने फ़रमाया कि अल्लाह तआला ने आपको हुक्म दिया है कि आप अपनी उम्मत को हुक्म दें कि वह क़ुरआन को एक ही हर्फ़ पर पढ़े। आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मैं अल्लाह से इसकी माफ़ी और मग़फ़िरत तलब करता हूँ मेरी उम्मत में इसकी ताक़त नहीं है। फिर जिब्राईल अलैहिस्सलाम दोबारा आपके पास आये और फ़रमाया कि अल्लाह तआला ने

आपको हुक्म दिया है कि आपकी उम्मत क़ुरआने करीम को दो हर्फ़ों पर पढ़े। आपने फ़रमाया कि मैं अल्लाह तआ़ला से माफ़ी और मग़फ़िरत माँगता हूँ कि मेरी उम्मत में इसकी भी ताक़त नहीं है। फिर वह तीसरी बार आये और फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने आपको हुक्म दिया है कि आपकी उम्मत क़ुरआने करीम को तीन हर्फ़ों पर पढ़े, आपने फिर फ़रमाया कि मैं अल्लाह तआ़ला से माफ़ी और मग़फ़िरत चाहता हूँ मेरी उम्मत में इसकी भी ताक़त नहीं है, फिर वह चौथी बार आये और फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने आपको हुक्म दिया है कि आपकी उम्मत क़ुरआन को सात हर्फ़ों पर पढ़े, पस वे उनमें से जिस हर्फ़ पर पढ़ेंगे उनकी क़िराअत सही होगी। (मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 133)

सात हुरूफ़ से मुराद सात अन्दाज़ और तरीक़े हैं

चुनाँचे एक और हदीस में हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

اِنَّ هٰذَا الْقُرْاٰنَ اُنْزِلَ عَلٰى سَبْعَةِ اَحْرُفٍ فَاقْرَءُوْا مَا تَيَسَّرَ مِنْهُ. (صحيح بخارى مع القسطلانى ۷/۴۵۳)

“यह क़ुरआन सात हुरूफ़ पर नाज़िल किया गया है, पस उनमें से जो तुम्हारे लिये आसान हो उस तरीक़े से पढ़ लो।”

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इस इरशाद में सात हुरूफ़ से क्या मुराद है? इस बारे में उलेमा के अलग-अलग क़ौल हैं। लेकिन मुहक़्क़िक़ उलेमा के नज़दीक इस में राजेह (वरीयता प्राप्त) मतलब यह है कि क़ुरआने करीम की जो क़िराअतें अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से नाज़िल हुई हैं उनमें आपसी फ़र्क़ व इख़्तिलाफ़ कुल सात अन्दाज़ और तरीक़ों पर मुश्तमिल है और वो सात तरीक़े ये हैं:

1. **अस्मा का इख़्तिलाफ़:-** जिसमें इफ़राद, तस्निया, जमा और तज़्कीर व तानीस दोनों का इख़्तिलाफ़ दाख़िल है जैसे एक क़िराअत में:

تَمَّتْ كَلِمَتُ رَبِّكَ

है और दूसरी क़िराअत में:

تَمَّتْ كَلِمٰتُ رَبِّكَ

2. **अफ़आ़ल का इख़्तिलाफ़:-** कि किसी क़िराअत में माज़ी का सीग़ा है किसी में मुज़ारेअ़ और किसी में अमर का। मिसाल के तौर पर एक क़िराअत में:

رَبَّنَا بٰعِدْ بَيْنَ اَسْفَارِنَا

है और दूसरी में:

رَبُّنَا بَعَّدَ بَيْنَ اَسْفَارِنَا.

3. **वुजूहे एराब का इख़्तिलाफ़:-** जिसमें एराब या ज़ेर ज़बर पेश का फ़र्क़ पाया जाता

है। जैसे:

لَا يُضَآرُّ كَاتِبٌ

की जगह:

لَا يُضَآرَّ كَاتِبٌ

और:

ذُوالْعَرْشِ الْمَجِيْدُ

की जगह:

ذُوالْعَرْشِ الْمَجِيْدِ.

4. अलफ़ाज़ की कमी-बेशी का इख़्तिलाफ़:- कि एक क़िराअत में कोई लफ़्ज़ कम और दूसरी में ज़्यादा हो, जैसे एक क़िराअत में:

تَجْرِىْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ

और दूसरी में:

تَجْرِىْ تَحْتَهَا الْاَنْهٰرُ.

5. आगे-पीछे होने का इख़्तिलाफ़:- कि एक क़िराअत में कोई लफ़्ज़ पहले है और दूसरी में बाद में है। जैसे:

وَجَآءَتْ سَكْرَةُ الْمَوْتِ بِالْحَقِّ

और

وَجَآءَتْ سَكْرَةُ الْحَقِّ بِالْمَوْتِ.

6. बदलीयत का इख़्तिलाफ़:- कि एक क़िराअत में एक लफ़्ज़ है और दूसरी क़िराअत में उसकी जगह कोई दूसरा लफ़्ज़, जैसे:

نُنْشِزُهَا

और

نَنْشُرُهَا

तथा:

فَتَبَيَّنُوْا

और

فَتَثَبَّتُوْا

और

طَلْحٍ

और

طلع

7. लहजों का इख़्तिलाफ़:- जिसमें तफ़ख़ीम, तरक़ीक़, इमाला, मद, क़स्र, हमज़, इज़हार और इदग़ाम वग़ैरह के इख़्तिलाफ़ दाख़िल हैं। यानी इसमें लफ़्ज़ तो नहीं बदलता लेकिन उसके पढ़ने का तरीक़ा बदल जाता है। जैसे **मूसा** को एक क़िराअत में **मूसई** की तरह पढ़ा जाता है। (1)

बहरहाल क़िराअत के भिन्न होने के इन सात तरीक़ों और अन्दाज़ के तहत बहुत सी क़िराअतें नाज़िल हुई थीं और उनके आपसी फ़र्क़ से मायने में कोई क़ाबिले ज़िक्र फ़र्क़ नहीं होता था, सिर्फ़ तिलावत की आसानी के लिये उनकी इजाज़त दी गई थी।

शुरू में चूँकि लोग क़ुरआने करीम के उस्लूब (अन्दाज़ और ढंग) के पूरी तरह आ़दी नहीं थे इसलिये इन सात क़िस्मों के दायरे में बहुत सी क़िराअतों की इजाज़त दे दी गई थी, लेकिन नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मामूल था कि हर साल रमज़ान में जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम के साथ क़ुरआने करीम का दौर किया करते थे, जिस साल आपकी वफ़ात हुई उस साल आपने दो मर्तबा दौर फ़रमाया, उस दौर को "अ़रज़ा-ए-अख़ीरा" कहते हैं। उस मौक़े पर बहुत सी क़िराअतें मन्सूख़ (निरस्त और ख़त्म) कर दी गईं और सिर्फ़ वे क़िराअतें बाक़ी रखी गईं जो आज तक तवातुर (निरंतर पढ़ने और सुबूत) के साथ महफ़ूज़ चली आती हैं।

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने क़ुरआन तिलावत करने के मामले में ग़लत फ़हमियाँ दूर करने के लिये अपने ज़माना-ए-ख़िलाफ़त में क़ुरआने करीम के सात नुस्ख़े (प्रतियाँ) तैयार कराये और उन सात नुस्ख़ों में तमाम क़िराअतों को इस तरह से जमा फ़रमाया कि क़ुरआने करीम की आयतों पर नुक़्ते और ज़ेर ज़बर पेश नहीं डाले ताकि उन्हीं मज़कूरा क़िराअतों में से जिस क़िराअत के मुताबिक़ चाहें पढ़ सकें। इस तरह अक्सर क़िराअतें उस लिपि में समा गईं और जो क़िराअतें उस लिपि (लिखाई) में न समा सकीं उनको महफ़ूज़ रखने का तरीक़ा आपने यह इख़्तियार फ़रमाया कि एक नुस्ख़ा आपने एक क़िराअत के मुताबिक़ लिखा और दूसरा दूसरी क़िराअत के मुताबिक़। उम्मत ने उन नुस्ख़ों (प्रतियों) में जमा की गयी क़िराअतों को याद रखने का इस क़द्र एहतिमाम किया कि इल्मे क़िराअत

(1) क़िराअतों के इख़्तिलाफ़ में फ़र्क़ के लिये पीछे मज़मून में जो सात तरीक़े और उनके फ़र्क़ को बयान किया गया है, चूँकि यह अहले इल्म के समझने की चीज़ है और अ़वाम इससे कोई लाभ नहीं उठा सकते, बल्कि बहुत से लोग तो असमंजस और ज़ेहनी परेशानी में पड़ जाते हैं इसलिये इस मज़मून में ज़्यादातर अलफ़ाज़ को जूँ-का-तूँ लिख दिया गया, उनके आसान मायने नहीं लिखे गये। इसलिये इसको हल करने पर ज़्यादा ज़ोर देने के बजाय अगर इस विषय में रुचि है तो किसी आ़लिम से इसका ख़ुलासा मालूम किया जा सकता है। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

एक मुस्तकिल इल्म बन गया और सैंकड़ों उलेमा, क़ारी और हाफ़िज़ हज़रात ने उसकी हिफ़ाज़त में अपनी उम्रें ख़र्च कर दीं।

क़िराअत में क़ुबूलियत का मेयार

दर असल हुआ यह था कि जिस वक़्त हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने क़ुरआने करीम के सात नुस्ख़े मुख़्तलिफ़ ख़ित्तों में भेजे तो उनके साथ ऐसे क़ारियों को भी भेजा था जो उनकी तिलावत सिखा सकें, चुनाँचे ये क़ारी हज़रात जब मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में पहुँचे तो इन्होंने अपनी-अपनी क़िराअतों के मुताबिक़ लोगों को क़ुरआने करीम की तालीम दी, और ये मुख़्तलिफ़ क़िराअतें लोगों में फैल गईं। उस मौक़े पर कुछ हज़रात ने उन मुख़्तलिफ़ (अलग-अलग और भिन्न) क़िराअतों को याद करने और दूसरों को सिखाने ही के लिये अपनी ज़िन्दगियाँ वक़्फ़ (समर्पित) कर दीं और इस तरह "इल्मे क़िराअत" की बुनियाद पड़ गई और हर ख़ित्ते के लोग इस इल्म में कमाल हासिल करने के लिये क़िराअत के इमामों की तरफ़ रुजू करने लगे। किसी ने सिर्फ़ एक क़िराअत याद की, किसी ने दो, किसी नें तीन, किसी ने सात और किसी ने इससे भी ज़्यादा, इस सिलसिले में एक उसूली ज़ाब्ता पूरी उम्मत में मुसल्लम (माना हुआ) था और हर जगह उसी के मुताबिक़ अमल होता था, वह यह कि सिर्फ़ वह "क़िराअत" क़ुरआन होने की हैसियत से क़ुबूल की जायेगी जिसमें तीन शर्तें पाई जाती हों:

1. हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़रिये लिखे गये क़ुरआनी नुस्ख़ों की लिपि में उसकी गुन्जाईश हो।

2. अरबी ज़बान के क़वाईद के मुताबिक़ हो।

3. वह नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से सही सनद के साथ साबित हो और क़िराअत के इमामों में मशहूर हो।

जिस क़िराअत में इनमें से कोई एक शर्त भी न पाई जाये उसे क़ुरआन का जुज़ (हिस्सा) नहीं समझा जा सकता। इस तरह मुतवातिर (निरंतर बयान होने वाली) क़िराअतों की एक बड़ी तादाद एक नस्ल के बाद दूसरी नस्ल के ज़रिये नक़ल होती रही और आसानी के लिये ऐसा भी हुआ कि एक इमाम ने एक या चन्द क़िराअतों को इख़्तियार करके उन्हीं की तालीम देनी शुरू कर दी, और वह क़िराअत उस इमाम के नाम से मशहूर हो गई। फिर उलेमा ने उन क़िराअतों को जमा करने के लिये किताबें लिखनी शुरू कीं, चुनाँचे सब से पहले इमाम अबू उबैद क़ासिम बिन सल्लाम रह., इमाम अबू हातिम सजिस्तानी रह., क़ाज़ी इस्माईल रह. और इमाम अबू जाफ़र तबरी रह. ने इस फ़न पर किताबें तैयार कीं जिनमें बीस से ज़्यादा क़िराअतें जमा थीं। फिर अल्लामा अबूबक्र इब्ने मुजाहिद रह. (वफ़ात सन् 324 हिजरी) ने एक किताब लिखी जिसमें सिर्फ़ सात क़ारियों की क़िराअतें जमा की गई

थीं, उनकी यह किताब इस क़द्र मक़बूल हुई कि ये सात क़ारियों की क़िराअतें दूसरे क़ारियों के मुक़ाबले में ज़्यादा मशहूर हो गईं बल्कि कुछ लोग यह समझने लगे कि सही और मुतवातिर क़िराअतें सिर्फ़ यही हैं, हालाँकि हक़ीक़त यह है कि अ़ल्लामा इब्ने मुजाहिद रह. ने महज़ इत्तिफ़ाक़ से उन सात क़िराअतों को जमा कर दिया था, उनका मंशा यह हरगिज़ नहीं था कि उनके अ़लावा दूसरी क़िराअतें ग़लत या नाक़ाबिले क़ुबूल हैं। अ़ल्लामा इब्ने मुजाहिद रह. के इस अ़मल से दूसरी ग़लत-फ़हमी यह भी पैदा हुई कि कुछ लोग "सब्अ़तु अहरुफ़िन्" का मतलब यह समझने लगे कि इनसे वही सात क़िराअतें मुराद हैं जिन्हें इब्ने मुजाहिद रह. ने जमा किया है, हालाँकि पीछे बताया जा चुका है कि ये सात क़िराअतें सही क़िराअतों का महज़ एक हिस्सा हैं वरना हर क़िराअत जो उपरोक्त शर्तों पर पूरी उतरती हो सही, क़ाबिले क़ुबूल और उन सात हर्फ़ों में दाख़िल है जिनपर क़ुरआने करीम नाज़िल हुआ।

सात क़ारी

बहरहाल! अ़ल्लामा इब्ने मुजाहिद रह. के इस अ़मल से जो सात क़ारी सबसे ज़्यादा मशहूर हुए वे ये हैं:

1. नाफ़े बिन अ़ब्दुर्रहमान बिन अबी नुएम रह. (वफ़ात सन् 169 हिजरी) आपने सत्तर ऐसे ताबिईन से इल्मी लाभ उठाया था जो डायरेक्ट हज़रत उबई बिन कअ़ब, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास और हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के शागिर्द थे। आपकी क़िराअत मदीना तय्यिबा में ज़्यादा मशहूर हुई और आपके रावियों में अबू मूसा क़ालून रह. (वफ़ात सन् 220 हि.) और अबू सईद दरश रह. (वफ़ात सन् 197 हि.) ज़्यादा मशहूर हैं।

2. अ़ब्दुल्लाह बिन कसीर दारी रह. (वफ़ात सन् 120 हिजरी) आपने सहाबा किराम में से हज़रत अनस बिन मालिक, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर और हज़रत अबू अय्यूब अन्सारी रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की ज़ियारत की थी और आपकी क़िराअत मक्का मुकर्रमा में ज़्यादा मशहूर हुई और आपकी क़िराअत के रावियों में बिज़्ज़ी और क़ुम्बल रह. ज़्यादा मशहूर हैं।

3. अबू अ़मर ज़ब्बान अ़ला रह. (वफ़ात सन् 154 हिजरी) आपने हज़रत मुजाहिद रह. और सईद बिन जुबैर रहमतुल्लाहि अ़लैहि के वास्ते से हज़रत इब्ने अ़ब्बास हज़रत और उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा से रिवायत की है और आपकी क़िराअत बसरा में काफ़ी मशहूर हुई, आपकी क़िराअत के रावियों में अबू उमर दौरी रह. (वफ़ात सन् 246 हिजरी) और अबू शुऐब सोसी रह. (वफ़ात सन् 261 हिजरी) ज़्यादा मशहूर हैं।

4. अ़ब्दुल्लाह हिसबी रह. जो इब्ने आ़मिर के नाम से पहचाने जाते हैं (वफ़ात सन् 188 हिजरी) आपने सहाबा किराम में से हज़रत नौमान बिन बशीर और हज़रत वासिला बिन अस्क़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा की ज़ियारत की थी और क़िराअत का फ़न हज़रत मुग़ीरा बिन

शिहाब मख़ज़ूमी रह. से हासिल किया था जो हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अ़न्हु के शागिर्द थे। आपकी क़िराअत का ज़्यादा रिवाज मुल्क शाम में रहा और आपकी क़िराअत के रावियों में हिशाम और ज़कवान रह. ज़्यादा मशहूर हैं।

5. हमज़ा बिन हबीब ज़य्यात, मौला (आज़ाद किये हुए) इक्रिमा बिन रबीअ़ तैमी रह. (वफ़ात सन् 188 हिजरी) आप सुलैमान आमश रह. के शागिर्द हैं, वह यहया बिन वसाब रह. के वह ज़ुर्र बिन हुबैश रह. के और उन्होंने हज़रत उस्मान, हज़रत अ़ली और अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से इल्मी फ़ायदा उठाया था। आपके रावियों में ख़लफ़ बिन हिशाम (वफ़ात सन् 188 हिजरी) और ख़ल्लाद बिन ख़ालिद रह. (वफ़ात सन् 230 हिजरी) ज़्यादा मशहूर हैं।

6. आ़सिम बिन अबू नजूद असदी रह. (वफ़ात सन् 137 हिजरी) आप ज़ुर्र बिन हुबैश रह. के वास्ते से हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु और अबू अ़ब्दुर्रहमान बिन सुलमी रह. के वास्ते से हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु के शागिर्द हैं। आपकी क़िराअत के रावियों में शोबा बिन अ़य्याश रह. (वफ़ात सन् 193 हिजरी) और हफ़्स बिन सुलैमान रह. (वफ़ात सन् 180 हिजरी) ज़्यादा मशहूर हैं। आजकल उमूमन तिलावत इन्हीं हफ़्स बिन सुलैमान रह. की रिवायत के मुताबिक़ होती है।

7. अबुल-हसन अ़ली बिन हमज़ा कसाई नहवी रह. (वफ़ात सन् 189 हिजरी) इनके रावियों में अबू हारिस मरूज़ी रह. (वफ़ात सन् 240 हिजरी) और अबू उमर दौरी रह. (जो अबू अ़मर के रावी भी हैं) ज़्यादा मशहूर हैं। बाद में ज़िक्र हुए तीनों हज़रात की क़िराअतें ज़्यादातर कूफ़ा में राजेह हुईं।

दस और चौदह क़िराअतें

लेकिन जैसा कि पीछे अ़र्ज़ किया जा चुका है इन सात के अ़लावा और भी कई क़िराअतें मुतवातिर और सही हैं। चुनाँचे बाद में जब यह ग़लत-फ़हमी पैदा होने लगी कि सही क़िराअत इन सात ही में मुन्हसिर (सीमित) है तो कई उलेमा (जैसे अ़ल्लामा शज़ाई रह. और अबू बक्र बिन मेहरान रह.) ने सात के बजाय दस क़िराअतें एक किताब में जमा फ़रमाईं, चुनाँचे "क़िराअते अ़शरा" की इस्तिलाह मशहूर हो गई। इन दस क़िराअतों में उपरोक्त सात क़िराअतों के अ़लावा इन तीन हज़रात की क़िराअतें भी शामिल की गईं:

1. अबू जाफ़र यज़ीद बिन क़अ़क़ा रह. (वफ़ात सन् 130 हिजरी) जिनकी क़िराअत मदीना तय्यिबा में ज़्यादा राजेह हुई।

2. याक़ूब बिन इस्हाक़ हज़रमी रह. (वफ़ात सन् 205 हिजरी) आपकी क़िराअत ज़्यादातर बसरा में मशहूर हुई।

3. ख़लफ़ बिन हिशाम रह. (वफ़ात सन् 205 हिजरी) जो इमाम हमज़ा रह. की

किराअत के भी रावी हैं, आपकी किराअत कूफ़ा में ज़्यादा मशहूर है।

इसके अ़लावा कुछ हज़रात ने चौदह क़ारियों की किराअतें भी जमा की हैं और ऊपर ज़िक्र हुए दस हज़रात पर निम्नलिखित क़ारियों की किराअतों का इज़ाफ़ा किया:

1. हसन बसरी रह. (वफ़ात सन् 110 हिजरी) जिनकी किराअत का केन्द्र बसरा था।

2. मुहम्मद बिन अ़ब्दुर्रहमान इब्ने मुहीज़ रह. (वफ़ात सन् 123 हिजरी) जिनका मर्कज़ मक्का मुकर्रमा था।

3. यहया बिन मुबारक यज़ीदी रह. (वफ़ात सन् 202 हि.) जो बसरा के रहने वाले थे।

4. अबुल-फ़रज शम्बोज़ी रह. (वफ़ात सन् 388 हिजरी) जो बग़दाद के बाशिन्दे थे।

कुछ हज़रात ने चौदह क़ारियों में से हज़रत शम्बूज़ी रह. के बजाय हज़रत सुलैमान आमश रह. का नाम शुमार किया है। इनमें से पहली दस किराअतें सही क़ौल के मुताबिक़ मुतवातिर (निरन्तर बयान होती चली आयी) हैं और उनके अ़लावा बाक़ी शाज़ हैं (यानी उनके बयान करने वाले बहुत कम हैं)।

(मनाहिलुल-इरफ़ान, मुन्जिदुल-मुक़्रिईन लेखक इब्ने जज़री के हवाले से)

क़ुरआन की हिफ़ाज़त का इतिहास

ज़माना-ए-नबवी में क़ुरआन की हिफ़ाज़त

क़ुरआने करीम चूँकि एक ही दफ़ा में पूरा का पूरा नाज़िल नहीं हुआ, बल्कि इसकी मुख़्तलिफ़ आयतें ज़रूरत और हालात की मुनासबत से नाज़िल की जाती रही हैं, इसलिये ज़माना-ए-रिसालत में यह मुम्किन नहीं था कि शुरू ही से इसे किताबी शक्ल में लिखकर महफ़ूज़ कर लिया जाये। चुनाँचे इस्लाम के शुरू ज़माने में क़ुरआने करीम की हिफ़ाज़त के लिये सबसे ज़्यादा ज़ोर हाफ़ज़े (याद करने) पर दिया गया। शुरू-शुरू में जब वही नाज़िल होती तो आप उसके अलफ़ाज़ को उसी वक़्त दोहराने लगते ताकि वो अच्छी तरह याद हो जायें, इस पर सूरः क़ियामत की आयतों में अल्लाह तआ़ला ने आपको हिदायत फ़रमाई कि क़ुरआने करीम को याद रखने के लिये आपको ऐन वही उतरने के वक़्त जल्दी-जल्दी अलफ़ाज़ दोहराने की ज़रूरत नहीं, अल्लाह तआ़ला ख़ुद आप में ऐसा हाफ़ज़ा (याद रखने की क़ुव्वत) पैदा फ़रमा देगा कि एक मर्तबा वही नाज़िल होने के बाद आप उसे भुला नहीं सकेंगे। चुनाँचे यही हुआ कि इधर आप पर क़ुरआनी आयतें नाज़िल होतीं और उधर वो आपको याद आ जातीं, इस तरह सरवरे कायनात सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का सीना-ए-मुबारक क़ुरआने करीम का सबसे ज़्यादा महफ़ूज़ ख़ज़ाना था, जिसमें किसी मामूली सी ग़लती या तरमीम व तग़य्युर (फेर-बदल) की संभावना नहीं थी। फिर आप अतिरिक्त

एहतियात के तौर पर हर साल रमज़ान के महीने में हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम को क़ुरआन सुनाया करते थे, और जिस साल आपकी वफ़ात हुई उस साल आपने दो मर्तबा हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम के साथ दौर किया। (सही बुख़ारी मय फ़तहुल-बारी जिल्द 9 पेज 36)

फिर आप सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को क़ुरआने करीम के मायनों की तालीम ही नहीं देते थे बल्कि उन्हें उसके अलफ़ाज़ भी याद कराते थे, और ख़ुद सहाबा किराम को क़ुरआने करीम सीखने और उसे याद रखने का इतना शौक़ था कि हर शख़्स इस मामले में दूसरे से आगे बढ़ने की फ़िक्र में रहता था। कई औरतों ने अपने शौहरों से सिवाय इसके कोई मेहर तलब नहीं किया कि वे उन्हें क़ुरआने करीम की तालीम देंगे। सैंकड़ों सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने अपने आपको बाक़ी के हर ग़म से आज़ाद करके अपनी ज़िन्दगी इसी काम के लिये वक़्फ़ (समर्पित) कर दी थी, वे क़ुरआने करीम को न सिर्फ़ याद करते थे बल्कि रातों को नमाज़ में इसे दोहराते रहते थे। हज़रत उबादा बिन सामित रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि जब कोई शख़्स हिजरत करके मक्का मुकर्रमा से मदीना तय्यिबा आता तो आप उसे हम अन्सारियों में से किसी के हवाले फ़रमा देते ताकि वह उसे क़ुरआन सिखाये, और मस्जिदे नबवी में क़ुरआन सीखने सिखाने वालों की आवाज़ों का इतना शोर होने लगा कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को यह ताकीद फ़रमानी पड़ी कि अपनी आवाज़ें पस्त करो ताकि कोई मुग़ालता पेश न आये। (मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 234)

चुनाँचे थोड़ी ही मुद्दत में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की एक ऐसी बड़ी जमाअ़त तैयार हो गई जिसे क़ुरआने करीम पूरी तरह ज़बानी याद था, इस जमाअ़त में ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के अ़लावा हज़रत तल्हा रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत सअ़द रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत इब्ने मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत हुज़ैफ़ा बिन यमान रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत सालिम मौला अबी हुज़ैफ़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत अ़मर बिन आ़स रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़मर रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत मुआ़विया रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन साईब रज़ियल्लाहु अ़न्हु, हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा, हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अ़न्हा, हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा वग़ैरह ख़ास तौर पर क़ाबिले ज़िक्र हैं।

ग़र्ज़ कि इस्लाम के शुरूआ़ती दौर में ज़्यादा ज़ोर क़ुरआन पाक के याद करने पर दिया गया, और उस वक़्त के हालात में यही तरीक़ा ज़्यादा महफ़ूज़ (सुरक्षित) और क़ाबिले भरोसा था, इसलिये कि उस ज़माने में लिखने-पढ़ने वालों की संख्या बहुत कम थी, किताबों को छापने के लिये प्रेस वग़ैरह के साधन मौजूद न थे, इसलिये अगर सिर्फ़ लिखने पर भरोसा किया जाता तो न क़ुरआने करीम का विस्तृत पैमाने पर फैलाव हो सकता और न

इसकी क़ाबिले भरोसा हिफ़ाज़त, इसके बजाय अल्लाह तआ़ला ने अ़रब वालों को हाफ़ज़े (याद्दाश्त) की ऐसी क़ुव्वत अ़ता फ़रमा दी थी कि एक-एक शख़्स हज़ारों अश्आ़र का हाफ़िज़ होता था और मामूली-मामूली देहातियों को अपने और अपने ख़ानदान ही के नहीं उनके घोड़ों तक के नसब नामे (नस्ल की जानकारी) याद होते थे। इसलिये क़ुरआने करीम की हिफ़ाज़त में इसी क़ुव्वते हाफ़ज़ा से काम लिया गया और इसी के ज़रिये क़ुरआने करीम की आयतें और सूरतें अ़रब के कोने-कोने में पहुँच गईं।

वही का लेखन

क़ुरआने करीम को हिफ़्ज़ कराने के अ़लावा नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़ुरआने करीम को लिखवाने का भी ख़ास एहतिमाम फ़रमाया। हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि मैं आपके लिये वही की किताबत करता था, जब आप पर वही नाज़िल होती तो आपको सख़्त गर्मी लगती और आपके पाक जिस्म पर पसीने के क़तरे मोतियों की तरह ढलकने लगते थे, फिर जब आप से यह कैफ़ियत ख़त्म हो जाती तो मैं मोंढे की कोई हड्डी या (किसी और चीज़ का) टुकड़ा लेकर ख़िदमत में हाज़िर होता, आप लिखवाते रहते और मैं लिखता जाता, यहाँ तक कि जब मैं लिखकर फ़ारिग़ होता तो क़ुरआन को नक़ल करने के बोझ से मुझे यूँ महसूस होता जैसे मेरी टाँग टूटने वाली है और मैं कभी चल नहीं सकूँगा। बहरहाल! जब मैं फ़ारिग़ होता तो आप फ़रमाते- "पढ़ो" मैं पढ़कर सुनाता, अगर उसमें कोई भूल-चूक होती तो आप उसकी इस्लाह फ़रमा देते और फिर उसे लोगों के सामने ले आते। (मज्मउज़्ज़वाईद जिल्द 1 पेज 156, तबरानी के हवाले से)

हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अ़न्हु के अ़लावा और भी बहुत से सहाबा किराम वही लिखने के फ़राईज़ (ड्यूटी) अन्जाम देते थे, जिनमें ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन (यानी हज़रत अबू बक्र, हज़रत उमर, हज़रत उस्मान और हज़रत अ़ली) रज़ियल्लाहु अ़न्हुम, हज़रत उबई बिन कअ़ब, हज़रत ज़ुबैर बिन अ़व्वाम, हज़रत मुआ़विया, हज़रत मुग़ीरा बिन शोबा, हज़रत ख़ालिद बिन वलीद, हज़रत साबित बिन क़ैस, हज़रत अबान बिन सईद रज़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुम वग़ैरह ख़ास तौर पर क़ाबिले ज़िक्र हैं।

(तफ़सील के लिये देखिये फ़तहुल-बारी जिल्द 9 पेज 18, और ज़ादुल-मआ़द जिल्द 1 पेज 30)

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मामूल यह था कि जब क़ुरआने करीम का कोई हिस्सा नाज़िल होता तो आप वही लिखने वाले को यह हिदायत भी फ़रमा देते थे कि इसे फ़ुलाँ सूरत में फ़ुलाँ-फ़ुलाँ आयत के बाद लिखा जाये। (फ़त्हुल्-बारी जिल्द 9 पेज 18) उस ज़माने में चूँकि अ़रब में काग़ज़ कम मिलता था इसलिये ये क़ुरआनी आयतें ज़्यादातर पत्थर की सिलों, चमड़ों के पारचों, खजूर की शाख़ों, बाँस के टुकड़ों, पेड़ के पत्तों और जानवरों की हड्डियों पर लिखी जाती थीं,

अलबत्ता कभी-कभी काग़ज़ के टुकड़े भी इस्तेमाल किये गये हैं। (फ़त्हुल्-बारी जिल्द 9 पेज 11)

इस तरह ज़माना-ए-रिसालत में क़ुरआने करीम का एक नुस्ख़ा (प्रति) तो वह था जो आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने अपनी निगरानी में लिखवाया था, अगरचे वह मुरत्तब किताब की शक्ल में नहीं था, बल्कि अलग-अलग पारचों की शक्ल में था, इसके साथ ही कुछ सहाबा किराम भी अपनी याददाश्त के लिये क़ुरआनी आयतें अपने पास लिख लेते थे, और यह सिलसिला इस्लाम के शुरू के ज़माने से जारी था। चुनाँचे हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु के इस्लाम लाने से पहले ही उनकी बहन और बहनोई के सहीफ़े में क़ुरआनी आयतें लिखी हुई थीं। (सीरत इब्ने हिशाम)

हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में क़ुरआन का जमा किया जाना

लेकिन नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने में क़ुरआने करीम के जितने नुस्ख़े (प्रतियाँ) लिखे गये थे, उनकी कैफ़ियत यह थी कि या तो वे अलग-अलग चीज़ों पर लिखे हुए थे, कोई आयत चमड़े पर, कोई पेड़ के पत्ते पर, कोई हड्डी पर, या वे मुकम्मल नुस्ख़े नहीं थे, किसी सहाबी के पास एक सूरत लिखी हुई थी, किसी के पास दस पाँच सूरतें और किसी के पास सिर्फ़ चन्द आयतें, और कुछ सहाबा के पास आयतों के साथ तफ़सीरी जुमले भी लिखे हुए थे।

इस बिना पर हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने अपने ज़माना-ए-ख़िलाफ़त में यह ज़रूरी समझा कि क़ुरआने करीम के इन मुन्तशिर (बिखरे हुए और अलग-अलग) हिस्सों को एक जगह करके महफ़ूज़ कर दिया जाये। उन्होंने यह कारनामा जिन कारणों के तहत और जिस तरह अन्जाम दिया उसकी तफ़सील हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु ने यह बयान फ़रमाई है कि जंगे यमामा के फ़ौरन बाद हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने एक रोज़ मुझे पैग़ाम भेजकर बुलाया, मैं उनके पास पहुँचा तो वहाँ हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु भी मौजूद थे। हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने मुझसे फ़रमाया कि "उमर ने अभी आकर मुझसे यह बात कही है कि जंगे यमामा में क़ुरआने करीम के हाफ़िज़ों की एक बड़ी जमाअत शहीद हो गई, और अगर विभिन्न मक़ामात पर क़ुरआने करीम के हाफ़िज़ इसी तरह शहीद होते रहे तो मुझे अन्देशा है कि कहीं क़ुरआने करीम का एक बड़ा हिस्सा नापैद न हो जाये, लिहाज़ा मेरी राय यह है कि आप अपने हुक्म से क़ुरआने करीम को जमा करवाने का काम शुरू कर दें" मैंने उमर से कहा कि जो काम हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने नहीं किया वह हम कैसे करें? उमर ने जवाब दिया कि "ख़ुदा की क़सम! यह काम बेहतर ही बेहतर है।" इसके बाद उमर मुझसे बार-बार यही कहते रहे यहाँ तक कि

मुझे भी इस पर इत्मीनान हो गया और अब मेरी राय भी वही है जो उमर की है। उसके बाद हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने मुझसे फ़रमाया कि "तुम नौजवान और समझदार आदमी हो, हमें तुम्हारे बारे में कोई बदगुमानी नहीं है, तुम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के सामने वही लिखने का काम भी करते रहे हो, लिहाज़ा तुम क़ुरआने करीम की आयतों को तलाश करके उन्हें जमा करो।"

हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि "ख़ुदा की क़सम! अगर ये हज़रात मुझे कोई पहाड़ तोड़ने का हुक्म देते तो मुझ पर उसका इतना बोझ न होता जितना क़ुरआने करीम जमा करने के काम का हुआ। मैंने उनसे कहा कि "आप वह काम कैसे कर रहे हैं जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने नहीं किया? हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया- "ख़ुदा की क़सम! यह काम बेहतर ही बेहतर है।" उसके बाद हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु मुझसे बार-बार यही कहते रहे यहाँ तक कि अल्लाह तआला ने मेरा सीना उसी राय के लिये खोल दिया जो हज़रत अबू बक्र व उमर रज़ियल्लाहु अन्हुमा की राय थी, चुनाँचे मैंने क़ुरआनी आयतों को तलाश करना शुरू किया और खजूर की शाख़ों, पत्थर की तख़्तियों और लोगों के सीनों से क़ुरआने करीम को जमा किया।"

(सही बुख़ारी, किताब फ़ज़ाईलुल्-क़ुरआन)

क़ुरआन पाक के इकट्ठा करने के सिलसिले में हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु का तरीक़े कार

इस मौक़े पर क़ुरआने करीम जमा करने के सिलसिले में हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु के तरीक़े कार (काम करने के तरीक़े) को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। जैसा कि पीछे ज़िक्र आ चुका है, वह ख़ुद हाफ़िज़े क़ुरआन थे, लिहाज़ा वह अपनी याद्दाश्त से पूरा क़ुरआन लिख सकते थे, उनके अलावा भी सैंकड़ों हाफ़िज़ उस वक़्त मौजूद थे, उनकी एक जमाअत बनाकर भी क़ुरआने करीम लिखा जा सकता था। तथा क़ुरआने करीम के जो नुस्ख़े (प्रतियाँ) आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने में लिखे गये थे, हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु उनसे भी क़ुरआने करीम नक़ल फ़रमा सकते थे, उन्होंने एहतियात को मद्दे नज़र रखते हुए सिर्फ़ किसी एक तरीक़े पर बस नहीं किया, बल्कि इन तमाम ज़रियों (माध्यमों) से एक वक़्त में काम लेकर उस वक़्त तक कोई आयत अपने सहीफ़ों में दर्ज नहीं की जब तक उसके निरन्तर होने की तहरीरी और ज़बानी शहादतें नहीं मिल गईं। इसके अलावा आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने क़ुरआने करीम की जो आयतें अपनी निगरानी में लिखवाई थीं वे बहुत से सहाबा के पास महफ़ूज़ थीं, हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु ने उन्हें इकट्ठा किया ताकि नया नुस्ख़ा उनसे ही नक़ल किया जाये, चुनाँचे यह उमूमी

ऐलान कर दिया गया कि जिस शख़्स के पास क़ुरआने करीम की जितनी आयतें लिखी हुई मौजूद हों वह हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु के पास ले आये, और जब कोई शख़्स उनके पास क़ुरआने करीम की कोई लिखी हुई आयत लेकर आता तो वह निम्नलिखित चार तरीक़ों से उसकी तस्दीक़ (पुष्टि) करते थेः

1. सबसे पहले अपनी याददाश्त से उसकी पुष्टि करते।

2. फिर हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु भी हाफ़िज़े क़ुरआन थे, और रिवायतों से साबित है कि हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने उनको भी इस काम में हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु के साथ लगा दिया था, और जब कोई शख़्स कोई आयत लेकर आता तो हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु और हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु दोनों संयुक्त रूप से उसे वसूल करते थे। (फ़तहुल-बारी जिल्द 9 पेज 11, इब्ने अबी दाऊद के हवाले से)

3. कोई लिखी हुई आयत उस वक़्त तक क़ुबूल नहीं की जाती थी जब तक दो क़ाबिले एतिबार गवाहों ने इस बात की गवाही न दी हो कि यह आयत आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने लिखी गई थी। (अल-इतक़ान जिल्द 1 पेज 60)

4. उसके बाद उन लिखी हुई आयतों का उन मजमूओं के साथ मुक़ाबला किया जाता जो मुख़्तलिफ़ सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम ने तैयार कर रखे थे।

(अल-बुरहान फ़ी उलूमिल-क़ुरआन, अ़ल्लामा ज़रक्शी रह. जिल्द 1 पेज 238)

हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में क़ुरआन को जमा करने का यह तरीक़े कार ज़ेहन में रहे तो हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु के इस इरशाद का मतलब अच्छी तरह समझ में आ सकता है कि "सूरः बराअत की आख़िरी आयतें:

لَقَدْ جَآءَكُمْ رَسُوْلٌ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ.......... الخ

मुझे सिर्फ़ हज़रत अबू ख़ुज़ैमा के पास मिलीं, उनके सिवा किसी और के पास नहीं मिलीं।" इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं है कि ये आयतें सिवाय हज़रत अबू ख़ुज़ैमा रज़ियल्लाहु अन्हु के किसी और को याद नहीं थीं, या किसी और के पास लिखी हुई न थीं और उनके सिवा किसी को इनका क़ुरआन का हिस्सा होना मालूम न था, बल्कि मतलब यह है कि जो लोग नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की लिखवाई हुई अलग-अलग आयतें ले-लेकर आ रहे थे उनमें से ये आयतें सिवाय हज़रत अबू ख़ुज़ैमा के किसी के पास नहीं मिलीं, वरना जहाँ तक इन आयतों के क़ुरआनी हिस्सा होने का ताल्लुक़ है, यह बात तवातुर के साथ सब को मालूम थी, क्योंकि सैंकड़ों सहाबा को याद भी थीं और जिन हज़रात के पास क़ुरआनी आयतों के मुकम्मल मजमूए थे उनके पास लिखी हुई भी थीं, लेकिन नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की निगरानी में अलग लिखी हुई सिर्फ़ हज़रत अबू ख़ुज़ैमा रज़ियल्लाहु अन्हु के पास मिलीं किसी और के पास नहीं।

(अल-बुरहान जिल्द 1 पेज 234, 235)

'उम्म' की ख़ुसूसियतें

बहरहाल! हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु ने इस ज़बरदस्त एहतियात के साथ क़ुरआनी आयतों को जमा करके उन्हें काग़ज़ के सहीफ़ों पर मुरत्तब शक्ल में तहरीर फ़रमाया। (इतक़ान जिल्द 1 पेज 60) लेकिन हर सूरत अलग सहीफ़े में लिखी गई इसलिये यह नुस्ख़ा बहुत से सहीफ़ों पर मुश्तमिल था, इस्तिलाह में इस नुस्ख़े को "उम्म" कहा जाता है और इसकी ख़ुसूसियतें (विशेषतायें) ये थीं:

1. इस नुस्ख़े में क़ुरआनी आयत तो नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बताई हुई तरतीब के मुताबिक़ मुरत्तब थीं लेकिन सूरतें मुरत्तब नहीं थीं, बल्कि हर सूरत अलग अलग लिखी हुई थी। (इतक़ान जिल्द 1 पेज 60)

2. इस नुस्ख़े में क़ुरआन के सातों हुरूफ़ (जिनकी वज़ाहत व तफ़सील पीछे आ चुकी है) जमा थे। (मनाहिलुल-इरफ़ान 1/246, व तारीख़े क़ुरआन अज़ अल्लामा कुर्दी पेज 28)

3. इसमें वे तमाम आयतें जमा की गई थीं जिनकी तिलावत मन्सूख़ नहीं हुई थी।

4. इस नुस्ख़े को लिखवाने का मक़सद यह था कि एक मुरत्तब नुस्ख़ा तमाम उम्मत की सामूहिक तस्दीक़ के साथ तैयार हो जाये, ताकि ज़रूरत पड़ने पर उसकी तरफ़ रुजू किया जा सके।

हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के लिखवाये हुए ये सहीफ़े आपकी ज़िन्दगी में आपके पास रहे, फिर हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु के पास रहे, हज़रत उमर की शहादत के बाद इन्हें उम्मुल-मोमिनीन हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा के पास मुन्तक़िल कर दिया गया, फिर हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा की वफ़ात के बाद मरवान बिन हकम रह. ने इसे इस ख़्याल से जला दिया कि उस वक़्त हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के तैयार कराये हुए मसाहिफ़ तैयार हो चुके थे और इस बात पर उम्मत का इजमा (सहमति और एक राय) हो चुका था कि रस्मुल-ख़त (लिपि) और सूरतों की तरतीब के लिहाज़ से इन मसाहिफ़ की पैरवी लाज़िम है। मरवान बिन हकम ने सोचा कि अब कोई नुस्ख़ा बाक़ी न रहना चाहिये जो इस रस्मुल-ख़त (लिपि) और तरतीब के ख़िलाफ़ हो। (फ़त्हुल-बारी जिल्द 9 पेज 16)

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में क़ुरआन को जमा किया जाना

जब हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ख़लीफ़ा बने तो इस्लाम अरब से निकलकर रूम और ईरान के दूर-दराज़ इलाक़ों तक पहुँच चुका था। हर नये इलाक़े के लोग जब मुसलमान होते तो वे उन मुजाहिदीन-ए-इस्लाम या उन व्यापारियों से क़ुरआने करीम सीखते थे जिनकी

बदौलत उन्हें इस्लाम की नेमत हासिल हुई थी, और अनेक सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने क़ुरआने करीम आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से विभिन्न क़िराअतों के मुताबिक़ सीखा था, और अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से उन सब क़िराअतों के मुताबिक़ उसे पढ़ने की इजाज़त थी, इसलिये हर सहाबी ने अपने शागिर्दों को उसी क़िराअत के मुताबिक़ क़ुरआन पढ़ाया जिसके मुताबिक़ ख़ुद उन्होंने हुज़ूरे पाक से पढ़ा था। इस तरह क़िराअतों का यह इख़्तिलाफ़ (मतभेद और भिन्नता) दूर-दराज़ मुल्कों तक पहुँच गया, जब तक लोग इस हक़ीक़त से वाक़िफ़ थे कि क़ुरआने करीम सात हर्फ़ों पर नाज़िल हुआ है उस वक़्त तक इस इख़्तिलाफ़ (मतभेद) से कोई ख़राबी पैदा नहीं हुई, जब यह इख़्तिलाफ़ दूर-दराज़ मुल्कों में पहुँचा और यह बात उनमें पूरी तरह मशहूर न हो सकी कि क़ुरआने करीम सात हुरूफ़ पर नाज़िल हुआ है तो उस वक़्त लोगों में झगड़े पेश आने लगे, कुछ लोग अपनी क़िराअत को सही और दूसरे की क़िराअत को ग़लत क़रार देने लगे। इन झगड़ों से एक तरफ़ तो यह ख़तरा था कि लोग क़ुरआने करीम की कई क़िराअतों को ग़लत क़रार देने की संगीन ग़लती में मुब्तला होंगे, दूसरे सिवाय हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु के लिखे हुए नुस्ख़े के जो मदीना तय्यिबा में मौजूद था, पूरे आ़लमे इस्लाम में कोई ऐसा मेयारी नुस्ख़ा (प्रति) मौजूद न था जो पूरी उम्मत के लिये हुज्जत बन सके, क्योंकि दूसरे नुस्ख़े व्यक्तिगत तौर पर लिखे हुए थे, और उनमें तमाम क़िराअतों को जमा करने का कोई एहतिमाम नहीं था, इसलिये इन झगड़ों के तस्फ़िये की भरोसे के क़ाबिल सूरत यही थी कि ऐसे नुस्ख़े पूरी इस्लामी दुनिया में फैला दिये जायें जिनमें तमाम मोतबर क़िराअतें जमा हों और उन्हें देखकर यह फ़ैसला किया जा सके कि कौनसी क़िराअत सही और कौनसी ग़लत है। हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने अपने ज़माना-ए-ख़िलाफ़त में यही अ़ज़ीमुश्शान कारनामा अन्जाम दिया।

इस कारनामे की तफ़सील हदीस की रिवायतों से यह मालूम होती है कि हज़रत हुज़ैफ़ा बिन यमान रज़ियल्लाहु अन्हु आरमीनिया और आज़र-बीजान के मोर्चे पर जिहाद में मश़ग़ूल थे, वहाँ उन्होंने देखा कि लोगों में क़ुरआने करीम की क़िराअतों के बारे में इख़्तिलाफ़ हो रहा है, चुनाँचे मदीना तय्यिबा वापस आते ही वे सीधे हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के पास पहुँचे और जाकर अ़र्ज़ किया कि अमीरुल-मोमिनीन! इससे पहले कि यह उम्मत अल्लाह की किताब के बारे में यहूदियों व ईसाईयों की तरह झगड़ों की शिकार हो आप इसका इलाज कीजिये। हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने पूछा बात क्या है? हज़रत हुज़ैफ़ा ने जवाब में कहा कि मैं आरमीनिया के मोर्चे पर जिहाद में शामिल था वहाँ मैंने देखा कि शाम के लोग उबई बिन कअ़ब की क़िराअत पढ़ते हैं जो इराक़ वालों ने नहीं सुनी होती और इराक़ वाले अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद की क़िराअत पढ़ते हैं जो शाम वालों ने नहीं सुनी होती, इसके नतीजे में एक दूसरे को काफ़िर क़रार दे रहे हैं।

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ख़ुद भी इस ख़तरे का एहसास पहले ही कर चुके थे, उन्हें यह इत्तिला मिली थी कि ख़ुद मदीना तय्यिबा में ऐसे वाक़िआत पेश आ रहे हैं कि क़ुरआने करीम के एक मुअल्लिम (शिक्षक) ने अपने शागिर्दों को एक क़िराअत के मुताबिक़ पढ़ाया और दूसरे मुअल्लिम ने दूसरी क़िराअत के मुताबिक़, इस तरह मुख़्तलिफ़ उस्तादों के शागिर्द जब आपस में मिलते हैं तो उनमें इख़्तिलाफ़ (झगड़ा) होता और और कई बार यह इख़्तिलाफ़ (झगड़ा) उस्तादों तक पहुँच जाता, और वे भी एक दूसरे की क़िराअत को ग़लत क़रार देते। जब हज़रत हुज़ैफ़ा बिन यमान रज़ियल्लाहु अन्हु ने भी इस ख़तरे की तरफ़ तवज्जोह दिलाई तो हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने बड़े-बड़े सहाबा को जमा करके उनसे मश्विरा किया और फ़रमाया कि "मुझे यह इत्तिला मिली है कि कुछ लोग एक दूसरे से इस क़िस्म की बातें कहते हैं कि मेरी क़िराअत तुम्हारी क़िराअत से बेहतर है, और यह बात कुफ़्र की हद तक पहुँच सकती है। लिहाज़ा आप लोगों की इस बारे में क्या राय है? सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम ने ख़ुद हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु से पूछा कि "आपने क्या सोचा है?" हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया "मेरी राय यह है कि हम तमाम लोगों को एक मुस्हफ़ पर जमा कर दें ताकि कोई इख़्तिलाफ़ और फ़र्क़ पेश न आये" सहाबा ने इस राय को पसन्द करके हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु की ताईद फ़रमाई।

चुनाँचे हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने लोगों को जमा करके एक ख़ुतबा दिया और उसमें फ़रमाया कि तुम लोग मदीना तय्यिबा में मेरे क़रीब होते हुए क़ुरआने करीम की क़िराअतों के बारे में एक दूसरे को झुठलाते और झगड़ते हो, इससे ज़ाहिर है कि जो लोग मुझसे दूर हैं वे तो और भी ज़्यादा एक दूसरे को झुठलाते और आपस में झगड़ते होंगे, लिहाज़ा तमाम लोग मिलकर क़ुरआने करीम का एक ऐसा नुस्ख़ा (प्रति और कापी) तैयार करें जो सबके लिये लाज़िमी तौर पर माननीय हो।

इस उद्देश्य के लिये हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा के पास पैग़ाम भेजा कि आपके पास (हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के तैयार कराये हुए) जो सहीफ़े मौजूद हैं वो हमारे पास भेज दीजिये, हम उनको मसाहिफ़ में नक़ल करके आपको वापस कर देंगे। हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा ने वो सहीफ़े हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के पास भेज दिये, हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने चार सहाबा की एक जमाअत बनाई जो हज़रत ज़ैद बिन साबित, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर, हज़रत सईद बिन आस और हज़रत अ़ब्दुर्रहमान बिन हारिस बिन हिशाम रज़ियल्लाहु अन्हुम पर मुश्तमिल थी। इस जमाअत को इस काम पर लगाया गया कि वे हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के सहीफ़ों से नक़ल करके कई ऐसे मसाहिफ़ तैयार करें जिनमें सूरतें भी मुरत्तब (क्रमवार) हों। इन चार सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम में से हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु अन्सारी थे और बाक़ी तीनों हज़रात क़ुरैशी, इसलिये हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने उनसे फ़रमाया कि

"जब तुम्हारा और ज़ैद का क़ुरआन के किसी हिस्से में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हो (यानी इसमें इख़्तिलाफ़ हो कि कौनसा लफ़्ज़ किस तरह लिखा जाये) तो उसे क़ुरैश की ज़बान (भाषा) के मुताबिक़ लिखना इसलिये कि क़ुरआने करीम उन्हीं की ज़बान में नाज़िल हुआ है।"

बुनियादी तौर पर तो यह काम मज़कूरा चार हज़रात ही के सुपुर्द किया गया था, लेकिन फिर दूसरे सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम को भी उनकी मदद के लिये साथ लगा दिया गया। इन हज़रात ने क़ुरआन को लिखने के सिलसिले में निम्नलिखित काम अन्जाम दियेः

1. हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में जो नुस्ख़ा (प्रति) तैयार हुआ था, उसमें सूरतें मुरत्तब नहीं थीं, बल्कि हर सूरत अलग-अलग लिखी हुई थी, इन हज़रात ने तमाम सूरतों को तरतीब के साथ एक ही मुस्हफ़ में लिखा। (मुस्तद्रक जिल्द 2 पेज 229)

2. क़ुरआने करीम की आयतें इस तरह लिखीं कि उनके रस्मुल्-ख़त (लिपि) में तमाम मुतवातिर (निरन्तर चली आ रही) क़िराअतें समा जायें, इसी लिये उन पर न नुक़्ते लगाये गये और न हरकतें (ज़ेर, ज़बर, पेश) ताकि उसे तमाम मुतवातिर क़िराअतों के मुताबिक़ पढ़ा जा सके, जैसे "ننشرها" लिखा ताकि इसे "نَنْشُرُهَا" और "نُنْشِزُهَا" दोनों तरह पढ़ा जा सके, क्योंकि ये दोनों क़िराअतें दुरुस्त हैं। (मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 253, 254)

3. अब तक क़ुरआने करीम का मुकम्मल मेयारी नुस्ख़ा जो पूरी उम्मत की सामूहिक तस्दीक़ से तैयार किया गया हो, सिर्फ़ एक था, इन हज़रात ने इस नये मुरत्तब मुस्हफ़ की एक से ज़्यादा नक़लें तैयार कीं। आम तौर से मशहूर यह है कि हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने पाँच मसाहिफ़ तैयार कराये थे, लेकिन अबू हातिम सजिस्तानी रह. का इरशाद है कि कुल सात नुस्ख़े तैयार किये गये थे जिनमें से एक मक्का मुकर्रमा, एक शाम, एक यमन, एक बहरीन, एक बसरा और एक कूफ़ा भेज दिया गया, और एक मदीना तय्यिबा में महफ़ूज़ रखा गया। (फ़त्हुल-बारी जिल्द 9 पेज 17)

4. उपरोक्त काम करने के लिये उन हज़रात ने बुनियादी तौर पर तो उन्हीं सहीफ़ों को सामने रखा जो हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में लिखे गये थे, लेकिन उसके साथ ही अतिरिक्त एहतियात के लिये काम का वही तरीक़ा इख़्तियार किया जो हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में इख़्तियार किया गया था, चुनाँचे नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने की जो अलग-अलग तहरीरें मुख़्तलिफ़ सहाबा किराम के पास महफ़ूज़ थीं उन्हें दोबारा तलब किया गया और उनके साथ नये सिरे से मुक़ाबला (मिलान) करके ये नुस्ख़े तैयार किये गये। इस मर्तबा सूरः अहज़ाब की एक आयत (यानी 33):

مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ رِجَالٌ صَدَقُوْا مَاعَاهَدُوا اللّٰهَ عَلَيْهِ

अलग लिखी हुई सिर्फ़ हज़रत ख़ुज़ैमा बिन साबित अन्सारी रज़ियल्लाहु अन्हु के पास मिली। पीछे हम लिख चुके हैं कि इसका मतलब यह नहीं कि यह आयत किसी और शख़्स को याद नहीं थी, क्योंकि हज़रत ज़ैद ख़ुद फ़रमाते हैं कि "मुस्हफ़ लिखते वक़्त सूरः

अहज़ाब की वह आयत न मिली जो मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को पढ़ते हुए सुना करता था।" इससे साफ़ वाज़ेह है कि यह आयत हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु और दूसरे सहाबा किराम को अच्छी तरह याद थी, इसी तरह इसका मतलब यह भी नहीं है कि यह आयत कहीं और लिखी हुई न थी, क्योंकि हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में जो सहीफ़े लिखे गये ज़ाहिर है कि यह आयत उनमें मौजूद थी, और दूसरे सहाबा किराम के पास क़ुरआने करीम के जो व्यक्तिगत तौर पर लिखे हुए नुस्ख़े (प्रतियाँ) मौजूद थे उनमें यह आयत शामिल थी, लेकिन चूँकि हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने की तरह इस मर्तबा भी उन तमाम बिखरी हुई और अलग तौर पर मौजूद तहरीरों को जमा किया गया था जो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के पास लिखी हुई थीं, इसलिये हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु वग़ैरह ने कोई आयत उन मसाहिफ़ में उस वक़्त तक नहीं लिखी जब तक उन तहरीरों में भी वह न मिल गई, इस तरह दूसरी आयतें तो कई सहाबा किराम के पास अलग लिखी हुई भी मिलीं, लेकिन सूरः अहज़ाब की यह आयत सिवाय हज़रत ख़ुज़ैमा रज़ियल्लाहु अन्हु के किसी और के पास अलग लिखी हुई उपलब्ध नहीं हुई।

5. क़ुरआने करीम के यह कई मेयारी नुस्ख़े तैयार फ़रमाने के बाद हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने वे तमाम व्यक्तिगत नुस्ख़े जलवा दिये जो बहुत से सहाबा के पास मौजूद थे ताकि रस्मुल-ख़त (लिपि) मानी हुई क़िराअतों के एकत्र होने और सूरतों की तरतीब के एतिबार से तमाम मसाहिफ़ समान हो जायें और उनमें कोई फ़र्क़ बाक़ी न रहे।

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के इस कारनामे को पूरी उम्मत ने प्रशंसा की नज़र से देखा और तमाम सहाबा किराम ने इस काम में उनकी ताईद और हिमायत फ़रमाई, सिर्फ़ हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु को इस मामले में कुछ रंजिश रही जिसकी तफ़सील का यह मौक़ा नहीं।

हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं:

"उस्मान के बारे में कोई बात उनकी भलाई के सिवा न कहो, क्योंकि अल्लाह की क़सम! उन्होंने मसाहिफ़ के मामले में जो काम किया वह हम सब की मौजूदगी में मश्विरे से किया।" (फ़त्हुल-बारी जिल्द 9 पेज 15)

तिलावत में आसानी पैदा करने के इक़्दामात

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के उपरोक्त कारनामे के बाद उम्मत का इस पर इजमा (एक मत और इत्तिफ़ाक़) हो गया कि क़ुरआने करीम को उस्मानी लिपि के ख़िलाफ़ किसी और तरीक़े से लिखना जायज़ नहीं। चुनाँचे उसके बाद तमाम मसाहिफ़ इसी तरीक़े के मुताबिक़ लिखे गये और सहाबा किराम व ताबिईन हज़रात ने मसाहिफ़े उस्मानी की नक़ल तैयार करके क़ुरआने करीम की विस्तृत पैमाने पर इशाअ़त की (यानी इसको फैलाया)।

लेकिन अभी तक क़ुरआने करीम के नुस्ख़े (प्रतियाँ) चूँकि नुक़्तों (बिन्दियों) और ज़ेर, ज़बर, पेश से ख़ाली थे इसलिये अ़रब से बाहर के लोगों को उनकी तिलावत (पढ़ने) में दुश्वारी होती थी, चुनाँचे जब इस्लाम अ़रब से बाहर के मुल्कों में और ज़्यादा फैला तो इस बात की ज़रूरत महसूस हुई कि इसमें नुक़्तों और हरकतों (ज़बर, ज़ेर, पेश, तश्दीद, जज़्म वग़ैरह) का इज़ाफ़ा किया जाये ताकि तमाम लोग आसानी से इसकी तिलावत कर सकें। इस मक़सद के लिये विभिन्न क़दम उठाये गये जिनकी मुख़्तसर तारीख़ इस प्रकार है:

नुक़्ते

अ़रब वालों में शुरू में हर्फ़ों पर नुक़्ते (बिन्दियाँ) लगाने का रिवाज नहीं था और पढ़ने वाले इस तर्ज़ के इतने आ़दी थे कि उन्हें बग़ैर नुक़्तों की तहरीर पढ़ने में कोई दुश्वारी नहीं होती थी, और आगे-पीछे के मज़मून की मदद से मिलते-जुलते हुरूफ़ में फ़र्क़ व पहचान करना भी आसानी से हो जाता था, ख़ास तौर से क़ुरआने करीम के मामले में किसी शक व शुब्हे में पड़ने की संभावना इसलिये नहीं थी कि उसकी हिफ़ाज़त का मदार लिखाई पर नहीं बल्कि याद्दाश्तों पर था, और हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने जो नुस्ख़े इस्लामी दुनिया के विभिन्न और अनेक हिस्सों में भेजे थे उनके साथ क़ारी भी भेजे गये थे जो उसे पढ़ना सिखा सकें।

इसमें रिवायतें भिन्न और अलग-अलग हैं कि क़ुरआने करीम के नुस्ख़े पर सबसे पहले किसने नुक़्ते डाले? कुछ रिवायतें यह कहती हैं कि यह कारनामा सबसे पहले हज़रत अबू अस्वद दुवली रह. ने अन्जाम दिया। (अल-बुरहान 1/250) कुछ का कहना यह है कि उन्होंने यह काम हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु की हिदायत के तहत किया (सुबहुल-अअ़्शी 3/155) और कुछ ने कहा है कि कूफ़ा के गवर्नर ज़ियाद बिन अबी सुफ़ियान ने उनसे यह काम कराया, और एक रिवायत यह भी है कि यह कारनामा हज्जाज बिन यूसुफ़ ने हज़रत हसन बसरी, यहया बिन यामर और नसर बिन आ़सिम लैसी रह. के ज़रिये अन्जाम दिया।

(तफ़सीरे क़ुर्तुबी 1/63)

हरकतें

लफ़्ज़ों की तरह शुरू में क़ुरआने करीम पर हरकतें (ज़ेर, ज़बर, पेश) भी नहीं थीं, और इसमें भी रिवायतों का बड़ा इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है कि सबसे पहले किसने हरकतें लगाईं? कुछ हज़रात का कहना है कि यह काम सबसे पहले अबुल-अस्वद दुवली रह. ने अन्जाम दिया, बाज़ कहते हैं कि यह काम हज्जाज बिन यूसुफ़ ने यहया बिन यामर और नसर बिन आ़सिम लैसी रह. से कराया। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी 1/63)

इस सिलसिले में तमाम रिवायतों को सामने रखकर ऐसा मालूम होता है कि हरकतें

सबसे पहले अबुल-अस्वद रह. ने मुक़र्रर और तय कीं, लेकिन वो हरकतें इस तरह की नहीं थीं जैसी आजकल प्रचलित हैं, बल्कि ज़बर के लिये हर्फ़ के ऊपर एक नुक़्ता, ज़ेर के लिये हर्फ़ के नीचे एक नुक़्ता और पेश के लिये हर्फ़ के सामने एक नुक़्ता और तनवीन (दो ज़बर, दो ज़ेर, दो पेश) के लिये दो नुक़्ते हर्फ़ के नीचे, ऊपर या सामने मुक़र्रर किये गये। बाद में ख़लील बिन अहमद रह. ने हमज़ा और तश्दीद की अलामतें (निशानी और पहचान) तय कीं। (सुबहुल-अअ्शी 3/160, 161)

इसके बाद हज्जाज बिन यूसुफ़ ने यहया बिन यामर, नसर बिन आसिम लैसी और हसन बसरी रहमतुल्लाहि अलैहिम से एक साथ क़ुरआने करीम पर हरकतें और नुक़्ते दोनों लगाने की फ़रमाईश की, उस मौक़े पर हरकतों के इज़हार के लिये नुक़्तों के बजाय ज़ेर, ज़बर, पेश की मौजूदा सूरतें मुक़र्रर की गईं, ताकि हुरूफ़ के ज़ाती (अपने असली) नुक़्तों से उनका गड्मड् होना पेश न आये। वल्लाहु सुब्हानहू आलम

अहज़ाब या मन्ज़िलें

सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम और ताबिईन रहमतुल्लाहि अलैहिम का मामूल था कि वे हर हफ़्ते एक क़ुरआने ख़त्म कर लेते थे, इस मक़सद के लिये उन्होंने रोज़ाना तिलावत की एक मिक़्दार (मात्रा) मुक़र्रर की हुई थी, जिसे "हिज़्ब" या "मन्ज़िल" कहा जाता है। इस तरह पूरे क़ुरआन को कुल सात अहज़ाब पर तक़सीम किया गया था। (अल-बुरहान जिल्द 1 पेज 250)

हिस्से या पारे

आजकल क़ुरआने करीम तीस हिस्सों पर तक़सीम शुदा है जिन्हें तीस पारे कहा जाता है। यह पारों की तक़सीम मायने के एतिबार से नहीं, बल्कि बच्चों को पढ़ाने के लिये आसानी के ख़्याल से क़ुरआने करीम तीस बराबर-बराबर हिस्सों पर बाँट दिया गया है। चुनाँचे कई बार बिल्कुल अधूरी बात पर पारा ख़त्म हो जाता है। यक़ीन के साथ यह कहना मुश्किल है कि यह तीस पारों की तक़सीम किसने की है? कुछ हज़रात का ख़्याल है कि हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने मसाहिफ़ नक़ल कराते वक़्त उन्हें तीस अलग-अलग सहीफ़ों में लिखवाया था, लिहाज़ा यह तक़सीम आप ही के ज़माने की है। लेकिन पहले ज़माने के उलेमा की किताबों में इसकी कोई दलील अहक़र को नहीं मिल सकी, अलबत्ता अल्लामा बदरुद्दीन ज़रक्शी रह. ने लिखा है कि क़ुरआन के तीस पारे मशहूर चले आते हैं और मदरसों के क़ुरआनी नुस्ख़ों में इनका रिवाज है।

(अल-बुरहान जिल्द 1 पेज 250, मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 402)

बज़ाहिर ऐसा मालूम होता है कि यह तक़सीम सहाबा के ज़माने के बाद तालीम की सहूलत के लिये की गई है। वल्लाहु आलम

अख़्मास और आशार

शुरू दौर के क़ुरआनी नुस्ख़ों में एक और अ़लामत (पहचान और निशान) का रिवाज था और वह यह कि हर पाँच आयतों के बाद (हाशिये पर) लफ़्ज़ "ख़मूस" या "ख़" और हर दस आयतों के बाद लफ़्ज़ "अ़शर" लिख देते थे। पहली क़िस्म की अ़लामतों को "अख़्मास" और दूसरी क़िस्म की अ़लामतों को "आशार" कहा जाता था। (मनाहिलुल-इरफ़ान 1/403) पहले उलेमा में यह इख़्तिलाफ़ (मतभेद) भी रहा है कि कुछ हज़रात इन अ़लामतों (निशानात) को जायज़ और कुछ मक्रूह समझते थे, यक़ीनी तौर से यह कहना भी मुश्किल है कि ये अ़लामतें सबसे पहले किसने लगाई? एक क़ौल यह है कि इसका मूजिद (शुरूआ़त करने वाला) हज्जाज बिन यूसुफ़ था और दूसरा क़ौल यह है कि सबसे पहले अ़ब्बासी ख़लीफ़ा मामून ने इसका हुक्म दिया था। (अल-बुरहान 1/251) लेकिन ये दोनों क़ौल इसलिये दुरुस्त मालूम नहीं होते कि ख़ुद सहाबा किराम के ज़माने में "आशार" का तसव्वुर मिलता है, चुनाँचे हज़रत मसरूक़ रह. फ़रमाते हैं कि हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु मुस्हफ़ में "आशार" का निशान डालने को मक्रूह समझते थे।

(मुसन्नफ़ इब्ने अबी शैबा 2/497)

रुकूअ़

अख़्मास व आशार की पहचान तो बाद में छोड़ दी गयीं लेकिन एक और अ़लामत जो आज तक राईज चली आती है, रुकूअ़ की अ़लामत (निशानी और पहचान) है, और इसका निर्धारण क़ुरआने करीम के मज़ामीन के लिहाज़ से किया गया है, यानी जहाँ कलाम का एक सिलसिला ख़त्म हुआ वहाँ रुकूअ़ की अ़लामत (हाशिये पर हर्फ़ "ع") बना दी गई। अहक़र को तलाश के बावजूद मुस्तनद तौर पर यह मालूम नहीं हो सका कि रुकूअ़ की शुरूआ़त किसने और किस दौर में की? अलबत्ता यह बात तक़रीबन यक़ीनी है कि इस अ़लामत (पहचान और निशानी) का मक़सद आयतों की ऐसी दरमियानी मिक़्दार को निर्धारित करना है जो एक रक्अ़त में पढ़ी जा सके, और इसको "रुकूअ़" इसी लिये कहते हैं कि नमाज़ में उस जगह पहुँचकर रुकूअ़ किया जाये। पूरे क़ुरआन में 540 रुकूअ़ हैं (1)

(1) फ़तावा आ़लमगीरी में बुख़ारा के मशाईख़ के हवाले से रुकूआ़त की संख्या 540 ही बयान की गयी है। लेकिन जब हमने क़ुरआन करीम के मुरव्वजा नुस्ख़ों में ख़ुद गिनती की तो रुकूआ़त की तायदाद 558 पाई, और कुछ हज़रात ने हमें ख़त में लिखा कि उनकी गिनती के मुताबिक़ रुकूआ़त की कुल संख्या 567 है। हो सकता है कि रुकूअ़ का निशान लगाने में विभिन्न नुस्ख़ों में कुछ भिन्नता रही हो। वल्लाहु आलम उर्दू प्रकाशक।

नाचीज़ हिन्दी अनुवादक ने भी क़ुरआने करीम के रुकूआ़त को गिना तो उनकी तायदाद 558 ही पाई। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

इस तरह अगर तरावीह की हर रक्अ़त में एक रुकूअ़ पढ़ा जाये तो 27वीं रात में क़ुरआन करीम ख़त्म हो सकता है। (फ़तावा आ़लमगीरी फ़स्ल अत्तरावीह जिल्द 1 पेज 94) (1)

रुमूज़-ए-औक़ाफ़

(ठहरने और साँस लेने के इशारात)

तिलावत और तजवीद की सहूलत के लिये एक और मुफ़ीद काम यह किया गया कि मुख़्तलिफ़ (बहुत से) क़ुरआनी जुमलों पर ऐसे इशारे लिख दिये गये जिनसे यह मालूम हो सके कि इस जगह वक़्फ़ करना (साँस लेना) कैसा है? इन इशारों को "रुमूज़-ए-औक़ाफ़" कहते हैं और इनका मक़सद यह है कि एक अ़रबी न जानने वाला इनसान भी जब तिलावत करे तो सही मक़ाम पर वक़्फ़ कर सके, और ग़लत जगह साँस तोड़ने से मायने में कोई तब्दीली पैदा न हो। इनमें से अक्सर रुमूज़ सब से पहले अ़ल्लामा अबू अ़ब्दुल्लाह मुहम्मद बिन तैफ़ूर सजावन्दी रह. ने निर्धारित फ़रमाये। (अन्नश्र फ़िल-क़िराआतिल्-अ़श्र जिल्द 1 पेज 225) इन रुमूज़ की तफ़सील यह है:

ط यह "वक़्फ़े मुत्लक़" का इशारा है, और इसका मतलब यह है कि यहाँ बात पूरी हो गई है, इसलिये यहाँ वक़्फ़ करना (रुकना और साँस लेना) बेहतर है।

ج यह "वक़्फ़े जायज़" की अ़लामत है, और इसका मतलब यह है कि यहाँ वक़्फ़ करना जायज़ है।

ز यह "वक़्फ़े मुजव्वज़" का इशारा है, जिसका मतलब यह है कि वक़्फ़ करना दुरुस्त तो है लेकिन बेहतर यह है कि वक़्फ़ न किया जाये।

ص यह "वक़्फ़े मुरख़्ख़स" का निशान है और इसका मतलब यह है कि इस जगह बात तो पूरी नहीं हुई, लेकिन जुमला चूँकि लम्बा हो गया है इसलिये साँस लेने के लिये दूसरे मक़ामात के बजाय यहाँ वक़्फ़ करना चाहिये। (अल्-मिन्हुल-फ़िक्रिया पेज 63)

م यह "वक़्फ़े लाज़िम" का निशान है, इसका मतलब यह है कि अगर यहाँ वक़्फ़ न किया जाये तो आयत के मायने में बड़ी और संगीन ग़लती की संभावना है, लिहाज़ा यहाँ वक़्फ़ करना ज़्यादा बेहतर है। कुछ हज़रात इसे वक़्फ़े वाजिब भी कहते हैं, लेकिन इससे मुराद फ़िक़्ही वाजिब नहीं जिसके छोड़ने से गुनाह हो, बल्कि मक़सद सिर्फ़ यह है कि तमाम औक़ाफ़ (ठहरने की जगहों) में इस जगह वक़्फ़ करना सबसे ज़्यादा बेहतर है।

(अन्नश्र जिल्द 1 पेज 231)

لا यह "ला तक़िफ़्" का मुख़फ़्फ़फ़ है, इसका मतलब यह है कि "यहाँ न ठहरो" लेकिन इसका मन्शा यह नहीं है कि यहाँ वक़्फ़ करना नाजायज़ है, बल्कि इसमें बहुत से

मक़ामात ऐसे हैं जहाँ वक़्फ़ करने में कोई हर्ज नहीं, और इसके बाद वाले लफ़्ज़ से शुरूआत करना भी जायज़ है, लिहाज़ा इसका सही मतलब यह है कि अगर यहाँ वक़्फ़ किया जाये तो बेहतर यह है कि इसे दोबारा लौटाकर पढ़ा जाये, अगले लफ़्ज़ से शुरूआत करना सही नहीं। (अन्नश्र जिल्द 1 पेज 233)

इन रुमूज़ के बारे में तो यक़ीनी तौर पर साबित है कि यह अ़ल्लामा सजावन्दी रहमतुल्लाहि अ़लैहि के तय किये हुए हैं, इनके अ़लावा भी कुछ रुमूज़ क़ुरआने करीम के नुस्ख़ों में मौजूद हैं, जैसेः

مــع यह "मुआ़नक़ा" का मुख़फ़्फ़फ़ है। यह अ़लामत उस जगह लिखी जाती है जहाँ एक ही आयत की दो तफ़सीरें मुम्किन हैं, एक तफ़सीर के मुताबिक़ वक़्फ़ एक जगह होगा और दूसरी तफ़सीर के मुताबिक़ दूसरी जगह, लिहाज़ा उनमें से किसी एक जगह वक़्फ़ किया जा सकता है। लेकिन एक जगह वक़्फ़ करने के बाद दूसरी जगह वक़्फ़ करना दुरुस्त नहीं। जैसेः

ذٰلِكَ مَثَلُهُمْ فِى التَّوْرٰةِ. وَمَثَلُهُمْ فِى الْاِنْجِيْلِ. كَزَرْعٍ اَخْرَجَ شَطْئَهٗ...... الخ

इसमें अगर "तौराति" पर वक़्फ़ कर लिया तो "इन्जीलि" पर वक़्फ़ दुरुस्त नहीं, और अगर "इन्जीलि" पर वक़्फ़ करना है तो "तौराति" पर वक़्फ़ दुरुस्त नहीं। हाँ दोनों जगह वक़्फ़ न करें तो दुरुस्त है। इसका एक नाम "मुक़ाबला" भी है और इसकी सबसे पहले निशानदेही इमाम अबुल-फ़ज़्ल राज़ी रह. ने फ़रमाई है।

(अन्नश्र जिल्द 1 पेज 237, वल्-इतक़ान जिल्द 1 पेज 88)

ســكتة यह "सक्ता" की निशानी है और इसका मक़सद यह है कि इस जगह रुकना चाहिये लेकिन साँस न टूटने पाये। यह उमूमन उस जगह लाया जाता है जहाँ मिलाकर पढ़ने से मायने में ग़लत-फ़हमी का अन्देशा हो।

وقــفة इस जगह "सक्ता" से थोड़ी ज़्यादा देर तक रुकना चाहिये, लेकिन साँस यहाँ भी न टूटे।

ق यह "क़ी-ल अ़लैहिल्-वक़्फ़" का मुख़फ़्फ़फ़ है, मतलब यह है कि कुछ हज़रात के नज़दीक यहाँ वक़्फ़ है और कुछ के नज़दीक नहीं है।

قف यह लफ़्ज़ "क़िफ़" है, जिसके मायने हैं "ठहर जाओ" और यह उस जगह लाया जाता है जहाँ पढ़ने वाले को यह ख़्याल हो सकता हो कि यहाँ वक़्फ़ दुरुस्त नहीं।

صلے यह "अल्-वस्ल औला" का मुख़फ़्फ़फ़ है जिसके मायने हैं कि "मिलाकर पढ़ना बेहतर है"।

صــل यह "क़द् यूसलु" का मुख़फ़्फ़फ़ है, यानी यहाँ कुछ लोग ठहरते हैं और कुछ मिलाकर पढ़ने को पसन्द करते हैं।

وقف النبی صلی اللہ علیہ وسلم यह उन मक़ामात पर लिखा जाता है जहाँ किसी रिवायत की रू से यह साबित है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने तिलावत करते हुए इस जगह वक़्फ़ फ़रमाया था।

नोटः- गोल दायरा (o) आयत का निशान है।

क़ुरआने करीम की छपाई

जब तक प्रेस ईजाद नहीं हुआ था क़ुरआने करीम के तमाम नुस्ख़े क़लम से लिखे जाते थे और हर दौर में ऐसे कातिबों की एक बड़ी जमाअ़त मौजूद रही है जिसका किताबते क़ुरआन (क़ुरआन लिखने) के सिवा कोई मश्ग़ला नहीं था। क़ुरआने करीम के हुरूफ़ को बेहतर से बेहतर अन्दाज़ में लिखने के लिये मुसलमानों ने जो मेहनतें कीं और जिस तरह इस अ़ज़ीमुश्शान किताब के साथ अपने आ़शिक़ाना ताल्लुक़ और लगाव का इज़हार किया उसकी एक बड़ी मुफ़स्सल और दिलचस्प तारीख़ है जिसके लिये मुस्तक़िल एक किताब चाहिये, यहाँ उसकी तफ़सील का मौक़ा नहीं।

फिर जब प्रेस ईजाद हुआ तो सबसे पहले हेमबर्ग के मक़ाम पर सन् 1113 हिजरी में क़ुरआने करीम छपा जिसका एक नुस्ख़ा अब तक दारुल-कुतुब मिस्रिया में मौजूद है। उसके बाद कई ग़ैर-मुस्लिम इस्लामिक विद्वानों ने क़ुरआने करीम के नुस्ख़े छपवाये, लेकिन इस्लामी दुनिया में उनको क़ुबूलियत हासिल न हो सकी। उसके बाद मुसलमानों में सबसे पहले मौला-ए-उस्मान ने रूस के शहर सेनिट पीटर्सबर्ग में सन् 1787 ईसवी में क़ुरआने करीम का एक नुस्ख़ा प्रकाशित कराया, इसी तरह क़ाज़ान में भी एक नुस्ख़ा छापा गया। सन् 1828 ईसवी में ईरान के शहर तहरान में क़ुरआने करीम को पत्थर पर छापा गया, फिर इसके छपे हुए नुस्ख़े (प्रतियाँ) दुनिया भर में आ़म हो गये।

(तफ़सील के लिये देखिये 'तारीख़ुल-क़ुरआन' लिल्कुर्दी रह. पेज 186, और 'उलूमुल-क़ुरआन' डॉक्टर सुबही सालेह, उर्दू तर्जुमा अज़ ग़ुलाम अहमद हरीरी पेज 142)

इल्मे तफ़सीर

अब कुछ ज़रूरी मालूमात इल्मे तफ़सीर (क़ुरआन पाक की व्याख्या) के सिलसिले में पेशे ख़िदमत हैं। अ़रबी ज़बान में "तफ़सीर" के लफ़्ज़ी मायने हैं "खोलना" और इस्तिलाह में इल्मे तफ़सीर उस इल्म को कहते हैं जिसमें क़ुरआने करीम के मायने बयान किये जायें, और उसके अहकाम और हिक्मतों को खोलकर वाज़ेह (स्पष्ट) किया जाये। (अल-बुरहान) क़ुरआने करीम में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से ख़िताब करते हुए इरशाद है:

وَاَنْزَلْنَآ اِلَیْكَ الذِّكْرَ لِتُبَیِّنَ لِلنَّاسِ مَا نُزِّلَ اِلَیْهِمْ. (١٦:٤٤)

"और हमने क़ुरआन आप पर उतारा ताकि आप लोगों के सामने वे बातें वज़ाहत के साथ बयान फ़रमा दें जो उनकी तरफ़ उतारी गई हैं।"

और क़ुरआने करीम का इरशाद है:

لَقَدْ مَنَّ اللّٰهُ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ اِذْ بَعَثَ فِيْهِمْ رَسُوْلًا مِّنْ اَنْفُسِهِمْ يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِهٖ وَيُزَكِّيْهِمْ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ. (١٦٤:٣)

"बिला-शुब्हा अल्लाह ने मुसलमानों पर बड़ा एहसान फ़रमाया जबकि उनके दरमियान उन्हीं में से एक रसूल भेजा, जो उनके सामने अल्लाह तआ़ला की आयतों की तिलावत करे और उन्हें पाक साफ़ करे और उन्हें अल्लाह की किताब और दानाई (समझ) की बातों की तालीम दे।"

चुनाँचे आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को सिर्फ़ क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ ही नहीं सिखाते थे बल्कि इसकी पूरी तफ़सीर बयान फ़रमाया करते थे, यही वजह है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को एक-एक सूरत पढ़ने में कई बार कई-कई साल लग जाते थे, जिसकी तफ़सील इन्शा-अल्लाह आगे आयेगी।

जब तक आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम दुनिया में तशरीफ़ फ़रमा थे उस वक़्त तक किसी आयत की तफ़सीर मालूम करना कुछ मुश्किल नहीं था, सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को जहाँ कोई दुश्वारी पेश आती वे आपसे रुजू करते और उन्हें तसल्ली-बख़्श जवाब मिल जाता। लेकिन आपके बाद इस बात की ज़रूरत थी कि तफ़सीरे क़ुरआन को एक मुस्तक़िल इल्म की सूरत में महफ़ूज़ किया जाता, ताकि उम्मत के लिये क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ के साथ-साथ इसके सही मायने भी महफ़ूज़ हो जायें और बेदीन व गुमराह लोगों के लिये इसकी मानवी तहरीफ़ (अर्थ में रद्दोबदल) की गुन्जाईश बाक़ी न रहे। चुनाँचे अल्लाह तआ़ला के फ़ज़्ल व करम और उसकी तौफ़ीक़ से इस उम्मत ने यह कारनामा इस उम्दगी व ख़ूबी से अन्जाम दिया कि आज हम यह बात बिना किसी खण्डन के ख़ौफ़ के कह सकते हैं कि अल्लाह की इस आख़िरी किताब के सिर्फ़ अलफ़ाज़ ही महफ़ूज़ नहीं हैं बल्कि इसकी वह सही तफ़सीर व तशरीह (व्याख्या) भी महफ़ूज़ है जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और आपके जाँनिसार सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के ज़रिये हम तक पहुँची है।

तफ़सीरे क़ुरआन के स्रोत

इल्मे तफ़सीर को इस उम्मत ने किस-किस तरह महफ़ूज़ किया? इस राह में उन्होंने कैसी-कैसी मशक़्क़तें उठाई और यह जिद्दोजहद के कितने मर्हलों से गुज़री? इसकी एक लम्बी और दिलचस्प तारीख़ है जिसका यहाँ मौक़ा नहीं लेकिन यहाँ मुख़्तसर तौर पर यह

बताना है कि तफ़सीरे क़ुरआन के स्रोत क्या-क्या हैं? और इल्मे तफ़सीर पर जो बेशुमार किताबें हर ज़बान में मिलती हैं उन्होंने क़ुरआने करीम की तश्रीह (व्याख्या और मायनों के बयान) में किन सरचश्मों से लाभ उठाया है। ये सरचश्मे (स्रोत) कुल छह हैं:

1. क़ुरआने करीम

इल्मे तफ़सीर का पहला माख़ज़ (स्रोत) ख़ुद क़ुरआने करीम है। चुनाँचे ऐसा बहुत बार होता है कि किसी आयत में कोई बात मुजमल (संक्षिप्त) और वज़ाहत-तलब होती है तो ख़ुद क़ुरआने करीम ही की कोई दूसरी आयत उसके मतलब को वाज़ेह कर देती है। जैसे सूरः फ़ातिहा की दुआ में यह जुमला मौजूद है कि:

صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ

यानी "हमें उन लोगों के रास्ते की हिदायत कीजिये जिन पर आपका इनाम हुआ।" अब यहाँ यह बात वाज़ेह नहीं है कि वे लोग कौन हैं जिन पर अल्लाह तआला ने इनाम फ़रमाया, लेकिन एक दूसरी आयत में उनको वाज़ेह तौर से मुतैयन कर दिया गया है। चुनाँचे इरशाद है:

فَاُولٰٓئِكَ مَعَ الَّذِيْنَ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ مِّنَ النَّبِيّٖنَ وَالصِّدِّيْقِيْنَ وَالشُّهَدَآءِ وَالصّٰلِحِيْنَ. (٦٩:٤)

"ये वे लोग हैं जिन पर अल्लाह ने इनाम फ़रमाया यानी अम्बिया, सिद्दीक़ीन, शहीद और सालेह (नेक) लोग।"

चुनाँचे मुफ़स्सिरीन हज़रात जब किसी आयत की तफ़सीर करते हैं तो सबसे पहले यह देखते हैं कि उस आयत की तफ़सीर ख़ुद क़ुरआने करीम ही में किसी और जगह मौजूद है या नहीं? अगर मौजूद होती है तो सबसे पहले उसको इख़्तियार फ़रमाते हैं।

2. हदीस

"हदीस" नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के अक़वाल व अफ़आ़ल (बातों व कामों) को कहते हैं, और जैसा कि पीछे बयान किया जा चुका है कि अल्लाह तआ़ला ने क़ुरआने करीम के साथ आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को भेजा ही इसलिये था कि आप लोगों के सामने क़ुरआने करीम की सही तशरीह (मतलब व व्याख्या) खोल-खोलकर बयान फ़रमा दें। चुनाँचे आपने अपने क़ौल और अ़मल दोनों से यह फ़रीज़ा बहुत अच्छी और पूरी तरह अन्जाम दिया, और दर हक़ीक़त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की पूरी मुबारक ज़िन्दगी क़ुरआन ही की अ़मली तफ़सीर है।

इसलिये मुफ़स्सिरीन हज़रात (क़ुरआन के व्याख्यापकों) ने क़ुरआने करीम को समझने के लिये दूसरे नम्बर पर सबसे ज़्यादा ज़ोर हदीस पर दिया है और हदीसों की रोशनी में किताबुल्लाह के मायने मुतैयन किये हैं। अलबत्ता चूँकि हदीस में सही, ज़ईफ़ और

नाक़ाबिले एतिबार हर तरह की रिवायतें मौजूद हैं, इसलिये मुहक़्क़िक़ मुफ़स्सिरीन उस वक़्त तक किसी रिवायत को क़ाबिले भरोसा नहीं समझते जब तक वह रिवायतों की छान-पिछोड़ के उसूलों पर पूरी न उतरती हो। लिहाज़ा जो रिवायत जहाँ नज़र आ जाये उसे देखकर क़ुरआने करीम की कोई तफ़सीर मुतैयन कर लेना दुरुस्त नहीं, क्योंकि वह रिवायत ज़ईफ़ (कमज़ोर) और दूसरी मज़बूत रिवायतों के ख़िलाफ़ भी हो सकती है। दर हक़ीक़त यह मामला बड़ा नाज़ुक है और इसमें क़दम रखना उन्हीं लोगों का काम है जिन्होंने अपनी उम्रें इन उलूम को हासिल करने में ख़र्च की हैं।

3. सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम के अक़वाल

सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने क़ुरआने करीम की तालीम डायरेक्ट नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से हासिल की थी, इसके अ़लावा वही नाज़िल होने के वक़्त वे खुद मौजूद थे, और उन्होंने क़ुरआन नाज़िल होने के पूरे माहौल और पसे-मन्ज़र को बज़ाते खुद देखा था इसलिये फ़ितरी तौर पर क़ुरआने करीम की तफ़सीर में उन हज़रात के अक़वाल (बातें और रायें) जितने मुस्तनद और क़ाबिले भरोसा हो सकते हैं बाद के लोगों को वह मक़ाम हासिल नहीं हो सकता, लिहाज़ा जिन आयतों की तफ़सीर क़ुरआने करीम या हदीस से मालूम नहीं होती उनमें सबसे ज़्यादा अहमियत सहाबा किराम के अक़वाल को हासिल है। चुनाँचे अगर किसी आयत की तफ़सीर पर सहाबा किराम का इत्तिफ़ाक़ (सहमति) हो तो मुफ़स्सिरीन हज़रात उसी को इख़्तियार करते हैं और उसके ख़िलाफ़ कोई और तफ़सीर बयान करना जायज़ नहीं। हाँ! अगर किसी आयत की तफ़सीर में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के अक़वाल मुख़्तलिफ़ (भिन्न) हों तो बाद के मुफ़स्सिरीन दूसरी दलीलों की रोशनी में यह देखते हैं कि कौनसी तफ़सीर को तरजीह (वरीयता) दी जाये? इस मामले में अहम उसूल और ज़ाब्ते 'उसूले फ़िक़्ह' 'उसूले हदीस' और 'उसूले तफ़सीर' में तयशुदा हैं उनकी तफ़सील का यहाँ मौक़ा नहीं।

4. ताबिईन हज़रात के अक़वाल

सहाबा किराम के बाद 'ताबिईन' हज़रात का नम्बर आता है। ये वे हज़रात हैं जिन्होंने क़ुरआने करीम की तफ़सीर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम से सीखी है, इसलिये इनके अक़वाल (बातें और रायें) भी इल्मे तफ़सीर में बड़ी अहमियत के हामिल हैं, अगरचे इस मामले में उलेमा का इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है कि ताबिईन के अक़वाल तफ़सीर में हुज्जत हैं या नहीं? (अल-इतक़ान 2/179) लेकिन उनकी अहमियत से इनकार नहीं किया जा सकता।

5. लुग़ते अ़रब

क़ुरआने करीम चूँकि अ़रबी भाषा में नाज़िल हुआ है इसलिये तफ़सीरे क़ुरआन के लिये इस ज़बान (भाषा) पर मुकम्मल उबूर (महारत) हासिल करना ज़रूरी है। क़ुरआने करीम की बहुत सी आयतें ऐसी हैं कि उनके पसे-मन्ज़र में चूँकि कोई शाने नुज़ूल या कोई और फ़िक़्ही या कलामी मसला नहीं होता, इसलिये उनकी तफ़सीर में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम या सहाबा किराम व ताबिईन हज़रात के अक़्वाल मन्क़ूल नहीं होते। चुनाँचे उनकी तफ़सीर का ज़रिया सिर्फ़ लुग़ते अ़रब (अ़रब की भाषा) होती है और लुग़त ही की बुनियाद पर उसकी वज़ाहत व बयान किया जाता है। इसके अ़लावा अगर किसी आयत की तफ़सीर में कोई इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हो तो विभिन्न और अनेक रायों में फ़ैसला करने के लिये भी इल्मे लुग़त से काम लिया जाता है।

6. ग़ौर व फ़िक्र और इस्तिंबात

तफ़सीर का आख़िरी माख़ज़ (स्रोत) "ग़ौर व फ़िक्र और इस्तिंबात" है। क़ुरआने करीम के नुक्ते और भेद की बातें एक ऐसा अथाह समन्दर है जिसकी कोई हद व सीमा नहीं। चुनाँचे जिस शख़्स को अल्लाह तआ़ला ने इस्लामी उलूम में बसीरत (समझ और गहराई) अ़ता फ़रमाई हो वह जितना-जितना इसमें ग़ौर व फ़िक्र करता है उतने ही नये-नये राज़ और नुक्ते सामने आते हैं। चुनाँचे मुफ़स्सिरीन हज़रात अपने-अपने सोच विचार के नतीजे भी अपनी तफ़सीरों में बयान फ़रमाते हैं लेकिन ये भेद व नुक्ते (गहरी और अनोखी बातें) उसी वक़्त क़ाबिले क़ुबूल होते हैं जबकि वह उपरोक्त पाँच माख़ज़ों (स्रोतों) से न टकरायें, लिहाज़ा अगर कोई शख़्स क़ुरआने करीम की तफ़सीर में कोई ऐसा नुक्ता या खोजी हुई बात बयान करे जो क़ुरआन व सुन्नत, इजमा, लुग़त या सहाबा किराम व ताबिईन हज़रात के अक़्वाल के ख़िलाफ़ हो या किसी दूसरे शरई उसूल से टकराता हो तो उसका कोई एतिबार नहीं। कुछ सूफ़िया हज़रात (बुज़ुर्गों) ने तफ़सीर में इस क़िस्म के भेद और नुक्ते बयान करने शुरू किये थे लेकिन उम्मत के मुहक़्क़िक़ उलेमा ने उन्हें क़ाबिले एतिबार नहीं समझा, क्योंकि क़ुरआन व सुन्नत और शरीअ़त के बुनियादी उसूलों के ख़िलाफ़ किसी की निजी राय ज़ाहिर है कि कोई हैसियत ही नहीं रखती। (अल-इतक़ान जिल्द 2 पेज 184)

इस्राईली रिवायतों का हुक्म

"इस्राईलियात" उन रिवायतों को कहते हैं जो अहले किताब यानी यहूदियों और ईसाईयों से हम तक पहुँची हैं। पहले ज़माने के मुफ़स्सिरीन हज़रात की आ़दत थी कि वे किसी आयत के बारे में हर क़िस्म की वे रिवायतें लिख देते थे जो उन्हें सनद के साथ

पहुँचती थीं। उनमें बहुत सी रिवायतें इस्राईलियत भी होती थीं। इसलिये उनकी हक़ीक़त से वाक़िफ़ होना भी ज़रूरी है। उनकी हक़ीक़त यह है कि कुछ सहाबा किराम और ताबिईन हज़रात पहले अहले-किताब (यहूदियों व ईसाईयों) के मज़हब से ताल्लुक़ रखते थे, बाद में जब वे इस्लाम से मुशर्रफ़ (सम्मानित) हुए और क़ुरआने करीम की तालीम हासिल की तो उन्हें क़ुरआने करीम में पिछली उम्मतों के बहुत से वाक़िआत नज़र आये जो उन्होंने अपने पहले मज़हब की किताबों में भी पढ़े थे। चुनाँचे वे क़ुरआनी वाक़िआत के सिलसिले में वो तफ़सीलात मुसलमानों के सामने बयान करते थे जो उन्होंने अपने पुराने मज़हब की किताबों में देखी थीं, यही तफ़सीलात 'इस्राईलियात' (इस्राईली रिवायतों) के नाम से तफ़सीर की किताबों में दाख़िल हो गई हैं। हाफ़िज़ इब्ने कसीर रह. ने जो बड़े मुहक़्क़िक़ मुफ़स्सिरीन में से हैं उन्होंने लिखा है कि इस्राईलियात की तीन क़िस्में हैं:

1. वे रिवायतें जिनकी सच्चाई क़ुरआन व सुन्नत की दूसरी दलीलों से साबित है, जैसे फ़िरऔन का डूबना और हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम का तूर पहाड़ पर तशरीफ़ ले जाना वग़ैरह।

2. वे रिवायतें जिनका झूठ होना क़ुरआन व सुन्नत की दूसरी दलीलों से साबित है, जैसे इस्राईली रिवायतों में यह ज़िक्र है कि हज़रत सुलैमान अ़लैहिस्सलाम अपनी आख़िरी उम्र में (अल्लाह की पनाह) मुर्तद (बेदीन) हो गये थे। इसकी तरदीद (खण्डन) क़ुरआने करीम से साबित है। इरशाद है कि:

وَمَا كَفَرَ سُلَيْمٰنُ وَلٰكِنَّ الشَّيٰطِيْنَ كَفَرُوْا. (۲:۱۰۲)

(और सुलैमान अ़लैहिस्सलाम काफ़िर नहीं हुए बल्कि शैतानों ने कुफ़्र किया) इसी तरह जैसे इस्राईली रिवायतों में बयान किया गया है कि (अल्लाह की पनाह) हज़रत दाऊद अ़लैहिस्सलाम ने अपने फ़ौजी अफ़सर ओरय्या की बीवी से ज़िना किया, या उसे मुख़्तलिफ़ तदबीरों से मरवाकर उसकी बीवी से निकाह कर लिया। यह भी खुला झूठ है और इस क़िस्म की रिवायतों को ग़लत समझना लाज़िम है।

3. वे रिवायतें जिनके बारे में क़ुरआन व सुन्नत और दूसरी शरई दलीलें ख़ामोश हैं, जैसे कि तौरात के अहकाम वग़ैरह, ऐसी रिवायतों के बारे में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीम यह है कि उनके बारे में ख़ामोशी इख़्तियार की जाये, न उनकी तस्दीक़ की जाये और न तक्ज़ीब (यानी न उनको सही कहें और न ग़लत)। अलबत्ता इस मसले में उलेमा का इख़्तिलाफ़ है कि आया ऐसी रिवायतों को नक़ल करना जायज़ भी है या नहीं? हाफ़िज़ इब्ने कसीर रह. ने निर्णायक क़ौल यह बयान किया है कि उन्हें नक़ल करना जायज़ तो है लेकिन इससे कोई फ़ायदा नहीं, क्योंकि शरई एतिबार से वह हुज्जत नहीं है। (मुक़द्दिमा तफ़सीर इब्ने कसीर)

क़ुरआनी तफ़सीर के बारे में एक बहुत बड़ी ग़लत-फ़हमी

ऊपर बयान हुई तफ़सील से यह बात वाज़ेह हो गई होगी कि क़ुरआने करीम की तफ़सीर एक बहुत ही नाज़ुक और मुश्किल काम है, जिसके लिये सिर्फ़ अ़रबी ज़बान (भाषा) जान लेना काफ़ी नहीं, बल्कि तमाम सम्बन्धित उलूम में महारत ज़रूरी है। चुनाँचे उलेमा ने लिखा है कि क़ुरआन के मुफ़स्सिर (व्याख्यापक) के लिये ज़रूरी है कि वह अ़रबी के नह्व व सर्फ़ (ग्रामर का ज्ञान) और बलाग़त व अदब (साहित्य और भाषाई अन्दाज़े बयान व कलाम) के अ़लावा इल्मे हदीस, उसूले फ़िक़ा व तफ़सीर और अ़क़ीदों व कलाम का विस्तृत और गहरा इल्म रखता हो, क्योंकि जब तक इन उलूम से मुनासबत न हो इनसान क़ुरआने करीम की तफ़सीर में किसी सही नतीजे तक नहीं पहुँच सकता।

अफ़सोस है कि कुछ अ़रसे से मुसलमानों में यह ख़तरनाक वबा चल पड़ी है कि बहुत से लोगों ने सिर्फ़ अ़रबी पढ़ लेने को तफ़सीरे क़ुरआन के लिये काफ़ी समझ रखा है, चुनाँचे जो शख़्स भी मामूली अ़रबी ज़बान पढ़ लेता है वह क़ुरआने करीम की तफ़सीर में अपनी राय चलाना शुरू कर देता है, बल्कि कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अ़रबी ज़बान की बहुत मामूली सी जानकारी रखने वाले लोग, जिन्हें अ़रबी पर भी मुकम्मल महारत नहीं होती, न सिर्फ़ मन-माने तरीक़े पर क़ुरआन की तफ़सीर शुरू कर देते हैं बल्कि पुराने मुफ़स्सिरीन की ग़लतियाँ निकालने के पीछे लग जाते हैं, यहाँ तक कि कुछ लोग तो यह सितम ढहाते हैं कि सिर्फ़ तर्जुमे का मुतालआ करके अपने आपको क़ुरआन का आ़लिम समझने लगते हैं और बड़े-बड़े मुफ़स्सिरीन पर तन्क़ीद (आलोचनात्मक टिप्पणियाँ) करने से नहीं चूकते।

ख़ूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि यह बहुत ही ख़तरनाक तरीक़ा है, जो दीन के मामले में निहायत घातक गुमराही की तरफ़ ले जाता है। दुनियावी उलूम व फ़ुनून के बारे में हर शख़्स इस बात को समझ सकता है कि अगर कोई शख़्स केवल अंग्रेज़ी ज़बान सीखकर मैडिकल साईंस की किताबों का मुताला कर ले तो दुनिया का कोई अ़क़्ल रखने वाला उसे डॉक्टर तस्लीम नहीं कर सकता, और न अपनी जान उसके हवाले कर सकता है जब तक कि उसने किसी मैडिकल कॉलेज में जाकर बाक़ायदा तालीम व ट्रेनिंग हासिल न की हो, इसलिये कि डॉक्टर बनने के लिये सिर्फ़ अंग्रेज़ी सीख लेना काफ़ी नहीं, बल्कि बाक़ायदा डॉक्टरी की तालीम व तरबियत हासिल करना ज़रूरी है। इसी तरह कोई अंग्रेज़ी जानने वाला इन्जीनियरिंग की किताबों का मुताला (अध्ययन) करके इन्जीनियर बनना चाहे तो दुनिया का कोई भी बाख़बर इनसान उसे इन्जीनियर तस्लीम नहीं कर सकता, इसलिये

कि यह काम सिर्फ़ अंग्रेज़ी ज़बान सीखने से नहीं आ सकता, बल्कि इसके लिये माहिर उस्तादों की निगरानी में रहकर बाक़ायदा इस फ़न को उनसे सीखना ज़रूरी है।

जब डॉक्टर और इन्जीनियर बनने के लिये यह कड़ी शर्तें ज़रूरी हैं तो आख़िर क़ुरआन व हदीस के मामले में सिर्फ़ अ़रबी ज़बान सीख लेना काफ़ी कैसे हो सकता है? ज़िन्दगी के हर शोबे में हर शख़्स इस उसूल को जानता और इस पर अ़मल करता है कि हर इल्म व फ़न के सीखने का एक ख़ास तरीक़ा और उसकी मख़्सूस शर्तें होती हैं, जिन्हें पूरा किये बग़ैर उस इल्म व फ़न में उसकी राय मोतबर नहीं समझी जाती, तो आख़िर क़ुरआन व सुन्नत इतने लावारिस कैसे हो सकते हैं कि इनकी तशरीह व तफ़सीर (व्याख्या व मतलब बयान करने) के लिये किसी इल्म व फ़न के हासिल करने की ज़रूरत न हो? और इसके मामले में जो शख़्स चाहे राय देनी शुरू कर दे?

कुछ लोग कहते हैं कि क़ुरआने करीम ने ख़ुद इरशाद फ़रमाया है:

وَلَقَدْ يَسَّرْنَا الْقُرْاٰنَ لِلذِّكْرِ. (١٧:٥٤)

"और बिला-शुब्हा हमने क़ुरआने करीम को नसीहत हासिल करने के लिये आसान कर दिया है।"

और जब क़ुरआने करीम एक आसान किताब है तो इसकी तशरीह (मतलब और व्याख्या) के लिये किसी लम्बे-चौड़े इल्म व फ़न की ज़रूरत नहीं। लेकिन यह इस्तिदलाल (तर्क देना) एक सख़्त मुग़ालता (धोखे में डालना) है, जो ख़ुद कम-समझी और कम-इल्मी पर आधारित है। हक़ीक़त यह है कि क़ुरआने करीम की आयतें दो क़िस्म की हैं- एक तो वो आयतें हैं जिनमें आ़म नसीहत की बातें, सबक़ लेने वाले वाक़िआ़त और इब्रत व सीख के मज़ामीन बयान किये गये हैं, जैसे दुनिया की नापायदारी (यानी बाक़ी न रहना), जन्नत व दोज़ख़ के हालात, ख़ौफ़े ख़ुदा और फ़िक्रे आख़िरत पैदा करने वाली बातें, और ज़िन्दगी की दूसरी सीधी-सादी हक़ीक़तें, इस क़िस्म की आयतें बिला-शुब्हा आसान हैं, और जो शख़्स अ़रबी ज़बान से वाक़िफ़ हो वह उन्हें समझकर नसीहत हासिल कर सकता है। ऊपर बयान हुई आयत में इसी क़िस्म की तालीमात के बारे में यह कहा गया है कि इनको हमने आसान कर दिया है। चुनाँचे ख़ुद इस आयत में लफ़्ज़ "लिज़्ज़िक्रि" (नसीहत के वास्ते) इस पर इशारा कर रहा है।

इसके उलट दूसरी क़िस्म की आयतें वो हैं जो अहकाम व क़वानीन, अ़क़ीदों और इल्मी मज़ामीन पर मुश्तमिल हैं। इस क़िस्म की आयतों का सही और पूरी तरह समझना और उनसे अहकाम व मसाईल निकालना हर शख़्स का काम नहीं, जब तक इस्लामी उलूम में बसीरत और पुख़्तगी (महारत और परिपक्वता) हासिल न हो, यही वजह है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की मातृभाषा अगरचे अ़रबी थी और अ़रबी समझने के लिये उन्हें कहीं तालीम हासिल करने की ज़रूरत नहीं थी, लेकिन वे आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम

से क़ुरआने करीम की तालीम हासिल करने में लम्बी मुद्दतें ख़र्च करते थे। अ़ल्लामा सुयूती रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इमाम अबू अ़ब्दुर्रहमान सुलमी रह. से नक़ल किया है कि जिन हज़राते सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने सरवरे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से क़ुरआने करीम की बाक़ायदा तालीम हासिल की है, जैसे हज़रत उस्मान बिन अ़फ़्फ़ान और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा वग़ैरह, उन्होंने हमें बताया कि जब वे आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से क़ुरआने करीम की दस आयतें सीखते तो उस वक़्त तक आगे नहीं बढ़ते थे जब तक उन आयतों के मुताल्लिक़ (सम्बन्धित) तमाम इल्मी और अ़मली बातों को न जान लें। वे फ़रमाते थे किः

فتعلّمنا القران والعلم و العمل جميعًا. (الاتقان ج:٢ ص ١٧٦)

"हमने क़ुरआन और इल्म व अ़मल साथ-साथ सीखा है।"

चुनाँचे मुवत्ता इमाम मालिक रह. में रिवायत है कि हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने सिर्फ़ सूरः ब-क़रह याद करने में पूरे आठ साल ख़र्च किये, और मुस्नद अहमद में हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि "हम में से जो शख़्स सूरः ब-क़रह और सूरः आले इमरान पढ़ लेता हमारी निगाहों में उसका मर्तबा बहुत बुलन्द हो जाता था।" (अल-इतक़ान जिल्द 2 पेज 176)

ग़ौर करने की बात यह है कि ये हज़राते सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम जिनकी मातृभाषा अ़रबी थी, जो अ़रबी के शे'र व अदब में पूरी महारत रखते थे और जिनको लम्बे-लम्बे क़सीदे मामूली तवज्जोह से ज़बानी याद हो जाया करते थे, उन्हें क़ुरआने करीम को याद करने और उसके मायने समझने के लिये इतने लम्बे वक़्त की क्या ज़रूरत थी कि आठ-आठ साल सिर्फ़ एक सूरत पढ़ने में ख़र्च हो जायें? इसकी वजह सिर्फ़ यह थी कि क़ुरआने करीम और इसके उलूम को सीखने के लिये सिर्फ़ अ़रबी ज़बान की महारत काफ़ी नहीं थी, बल्कि इसके लिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सोहबत और तालीम से फ़ायदा उठाना ज़रूरी था। अब ज़ाहिर है कि जब सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को अ़रबी ज़बान की महारत और वही उतरने का डायरेक्ट मुशाहदा (इल्म व अनुभव) करने के बावजूद "आ़लिमे क़ुरआन" बनने के लिये बाक़ायदा हुज़ूर से तालीम हासिल करने की ज़रूरत थी, तो क़ुरआन नाज़िल होने के सैंकड़ों साल बाद अ़रबी की मामूली जानकारी और क़ाबलियत पैदा करके या सिर्फ़ तर्जुमे देखकर मुफ़स्सिरे क़ुरआन बनने का दावा कितना बड़ा साहस और इल्म व दीन के साथ कैसा क़ाबिले अफ़सोस मज़ाक़ है? ऐसे लोगों को जो इसकी जुर्रत व साहस करतें हैं, सरवरे कायनात सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का यह इरशाद अच्छी तरह याद रखना चाहिये किः

من قال في القران بغير علم فليتبوأ مقعده في النار.

"और जो शख़्स क़ुरआन के मामले में इल्म के बग़ैर कोई बात कहे तो वह अपना ठिकाना जहन्नम बना ले।"

और:

من تكلم في القران برأيه فاصاب فقد اخطأ.

"जो शख़्स क़ुरआन के मामले में (महज़) अपनी राय से गुफ़्तगू करे और उसमें कोई सही बात भी कह दे तब भी उसने ग़लती की।" (अबू दाऊद व नसाई, अज़ इतक़ान 1-179)

मशहूर तफ़सीरें

ज़माना-ए-रिसालत के बाद से क़ुरआने करीम की बेशुमार तफ़सीरें लिखी गई हैं, बल्कि दुनिया की किसी किताब की भी इतनी ख़िदमत नहीं की गई जितनी क़ुरआने करीम की की गई है। उन सब तफ़सीरों का तआरुफ़ (परिचय) किसी बड़ी किताब में भी मुम्किन नहीं, कहाँ यह कि इस मुख़्तसर मुक़द्दिमे में इसका इरादा किया जाये। लेकिन यहाँ हम उन अहम तफ़सीरों का मुख़्तसर तआरुफ़ कराना चाहते हैं जो 'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' का ख़ास माख़ज़ (स्रोत) रही हैं और जिनका हवाला मआरिफ़ुल-क़ुरआन में बार-बार आया है। अगरचे मआरिफ़ुल-क़ुरआन की तरतीब के दौरान बहुत सी तफ़सीरें और सैंकड़ों किताबें सामने रही हैं लेकिन यहाँ सिर्फ़ उन तफ़सीरों का तज़किरा मक़सूद है जिनके हवाले कसरत से आयेंगे।

तफ़सीर इब्ने जरीर

इस तफ़सीर का असल नाम "जामिउल-बयान" है और यह अ़ल्लामा अबू जाफ़र मुहम्मद बिन जरीर तबरी रह. (वफ़ात सन् 310 हिजरी) की तालीफ़ है। अ़ल्लामा तबरी रह. ऊँचे दर्जे के मुफ़स्सिर, मुहद्दिस और इतिहासकार हैं। मन्क़ूल है कि वह चालीस साल तक निरन्तर लिखने में मश्ग़ूल रहे और हर दिन चालीस पन्ने लिखने का मामूल था।

(अल-बिदाया वन्निहाया पेज 145 जिल्द 11)

कुछ हज़रात ने इन पर शिया होने का इल्ज़ाम लगाया है, लेकिन मुहक़्क़िक़ीन ने इस इल्ज़ाम की तरदीद की है और हक़ीक़त भी यही है कि वह अहले सुन्नत के बहुत बड़े आ़लिम हैं, बल्कि उनका शुमार मुज्तहिद इमामों में होता है।

उनकी तफ़सीर तीस जिल्दों में है और बाद की तफ़सीरों के लिये बुनियादी माख़ज़ (स्रोत) की हैसियत रखती है। वह आयतों की तफ़सीर में उलेमा के मुख़्तलिफ़ अक़वाल नक़ल करते हैं और फिर जो क़ौल उनके नज़दीक राजेह (ज़्यादा सही) होता है उसे दलीलों के ज़रिये साबित करते हैं। अलबत्ता उनकी तफ़सीर में सही और ग़लत हर तरह की रिवायतें जमा हो गई हैं, इसलिये उनकी बयान की हुई हर रिवायत पर भरोसा नहीं किया

जा सकता। दर असल इस तफ़सीर से उनका मकसद यह था कि तफ़सीरे क़ुरआन के बारे में जिस क़द्र रिवायतें उन्हें मिल सकें उन सब को जमा कर दिया जाये ताकि उस जमा शुदा मवाद (ज़ख़ीरे) से काम लिया जा सके, अलबत्ता उन्होंने हर रिवायत के साथ उसकी सनद भी ज़िक्र की है ताकि जो शख़्स चाहे रावियों की तहक़ीक़ करके रिवायत के सही या ग़लत होने का फ़ैसला कर सके।

तफ़सीर इब्ने कसीर

यह हाफ़िज़ इमादुद्दीन अबुल-फ़िदा इस्माईल बिन कसीर दमिश्क़ी शाफ़ई रह. (वफ़ात सन् 774 हिजरी) की तस्नीफ़ है। जो आठवीं सदी के नुमायाँ और मुहक़्क़िक़ उलेमा में से हैं। उनकी तफ़सीर चार जिल्दों में प्रकाशित हो चुकी है, उसमें ज़्यादा ज़ोर तफ़सीरी रिवायतों पर दिया गया है और ख़ास बात यह है कि मुसन्निफ़ रह. रिवायतों पर मुहद्दिसाना तन्क़ीद (आलोचनात्मक टिप्पणी) भी करते हैं और इस लिहाज़ से यह किताब तफ़सीर की तमाम किताबों में एक अलग और नुमायाँ मक़ाम रखती है। (1)

तफ़सीरे क़ुर्तुबी

इसका पूरा नाम "अल-जामे लि-अहकामिल-क़ुरआन" है। उन्दुलुस के मशहूर और मुहक़्क़िक़ आ़लिम अ़ल्लामा अबू अ़ब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अहमद बिन अबी बक्र बिन फ़रह क़ुर्तुबी रह. (वफ़ात सन् 671 हिजरी) की तस्नीफ़ है। जो फ़िक़्ह में इमाम मालिक रह. के मस्लक के पैरो थे, और इबादत व पारसाई के एतिबार से पूरी दुनिया में शोहरत रखते थे। असल में इस किताब का बुनियादी मौज़ू (विषय) तो क़ुरआने करीम से फ़िक़्ही अहकाम व

(1) यह तफ़सीर उर्दू में पाँच जिल्दों में कई इदारों से प्रकाशित हुई है। अल्हम्दु लिल्लाह रमज़ान शरीफ़ सन् 1432 हिजरी में यह तफ़सीर हिन्दी भाषा में छह जिल्दों में प्रकाशित हो चुकी है। इस तफ़सीर को हिन्दी भाषा में सबसे पहली मुकम्मल तफ़सीर की शक्ल में प्रकाशित होने का सम्मान हासिल है और नाचीज़ को उसका हिन्दी अनुवादक होने का गौरव प्राप्त है। यह तफ़सीर बड़े अच्छे अन्दाज़ में इस्लामिक बुक सर्विस नई दिल्ली ने प्रकाशित की है। इसके बाद जो दूसरी तफ़सीर अहक़र के ज़रिये अनुवादित छपी है वह फ़रीद बुक डिपो, पटौदी हाउस, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है। यह तफ़सीर अगरचे मुख़्तसर है मगर मौजूदा ज़माने के हिन्द महाद्वीप के नामचीन आ़लिम शैख़ुल-इस्लाम जस्टिस हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद तक़ी उस्मानी साहिब उसके लेखक हैं, जिनकी इस वक़्त सौ से ज़्यादा किताबें हिन्द व पाक में ज़बरदस्त मक़बूलियत के साथ प्रकाशित हो रही हैं। अब उर्दू ज़बान की सबसे ज़्यादा मक़बूल तफ़सीर 'तफ़सीर मआरिफ़ुल-क़ुरआन' हिन्दी भाषा के रूप में आपके सामने आ रही है। अल्लाह का शुक्र है कि यह ख़िदमत भी उस रब्बे करीम ने मुझ नाचीज़ ही के मुक़द्दर में लिखी थी। इस पर मैं जितना भी शुक्र करूँ कम है। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

मसाईल का निकालना था लेकिन इस ज़िम्न में उन्होंने आयतों की तशरीह, मुश्किल अलफ़ाज़ की तहक़ीक़, एराब व बलाग़त और सम्बन्धित रिवायतों को भी तफ़सीर में ख़ूब जमा किया है। यह किताब बारह जिल्दों में है और बार-बार प्रकाशित हो चुकी है।

तफ़सीरे कबीर

यह इमाम फ़ख़रुद्दीन राज़ी रह. (वफ़ात सन् 606 हिजरी) की तस्नीफ़ है और इसका असली नाम "मफ़ातिहुल-ग़ैब" है लेकिन "तफ़सीरे कबीर" के नाम से मशहूर है। इमाम राज़ी रह. मुतकल्लिमीने इस्लाम के इमाम हैं इसलिये उनकी तफ़सीर में अ़क़्ली और कलामी मबाहिस और बातिल फ़िर्क़ों की तरदीद पर बहुत ज़ोर दिया गया है, लेकिन हक़ीक़त यह है कि क़ुरआने करीम को हल करने के लिहाज़ से भी यह तफ़सीर अपनी नज़ीर आप है और इसमें जिस दिलनशीं अन्दाज़ में क़ुरआने करीम के मायनों की वज़ाहत और क़ुरआनी आयतों के आपसी ताल्लुक़ की तशरीह की गई है वह बड़ा क़ाबिले क़द्र काम है। ग़ालिब गुमान यह है कि इमाम राज़ी रह. ने सूरः फ़तह तक की तफ़सीर ख़ुद लिखी है उसके बाद वह इसे पूरा न कर सके, चुनाँचे सूरः फ़तह से आख़िर तक का हिस्सा क़ाज़ी शहाबुद्दीन बिन ख़लील अल्-ख़ोली दमिश्क़ी रह. (वफ़ात सन् 639 हिजरी) या शैख़ नजमुद्दीन अहमद बिन मुहम्मद क़मूली रह. (वफ़ात सन् 777 हिजरी) ने मुकम्मल फ़रमाया।

(कश्फ़ुज़्ज़ुनून जिल्द 2 पेज 477)

इमाम राज़ी रह. ने अपने ज़माने की ज़रूरत के मुताबिक़ चूँकि कलामी बहस और बातिल फ़िर्क़ों की तरदीद पर ख़ास ज़ोर दिया है और इस ज़िमन में उनकी बहसें बहुत से मक़ामात पर बहुत लम्बी हो गई हैं, इसलिये कुछ हज़रात ने उनकी तफ़सीर पर यह टिप्पणी की है कि:

فِيهِ كُلُّ شَيْءٍ إِلَّا التَّفْسِيْر

(इस किताब में तफ़सीर के अ़लावा सब कुछ है) लेकिन यह टिप्पणी और राय तफ़सीरे कबीर पर बड़ा ज़ुल्म है, और हक़ीक़त वही है जो ऊपर बयान हुई कि क़ुरआन को हल करने के लिहाज़ से भी इस तफ़सीर का मर्तबा बहुत ही बुलन्द है। अलबत्ता कुछ जगहों पर उन्होंने उम्मत के जमहूर उलेमा की राह से हटकर क़ुरआनी आयतों की तफ़सीर की है लेकिन ऐसे मक़ामात आठ मोटी जिल्दों की इस किताब में कहीं-कहीं ही हैं।

तफ़सीर 'अल-बहरुल-मुहीत'

यह अ़ल्लामा अबू हय्यान ग़रनाती उन्दुलुसी रह. (वफ़ात सन् 754 हिजरी) की तस्नीफ़ है जो इस्लामी उलूम के अ़लावा इल्मे नह्व व बलाग़त में ख़ुसूसी महारत रखते थे, चुनाँचे उनकी तफ़सीर में नह्व व बलाग़त का रंग नुमायाँ है। वह हर आयत के अलफ़ाज़ की

तहक़ीक़, तरकीबों के इख़्तिलाफ़ और बलाग़त के नुक्ते बयान करने पर ख़ास ज़ोर देते हैं।

अहकामुल-क़ुरआन

यह इमाम अबू बक्र जस्सास राज़ी रह. (वफ़ात सन् 370 हिजरी) की तस्नीफ़ है जो हनफ़ी फ़ुक़हा में एक विशेष मक़ाम रखते हैं। उनकी इस किताब का मौज़ू (विषय) क़ुरआने करीम से फ़िक़्ही अहकाम व मसाईल का निकालना है और उन्होंने तरतीबवार आयतों की तफ़सीर के बजाय सिर्फ़ उन आयतों की फ़िक़्ही तफ़सीलात बयान फ़रमाई हैं जो फ़िक़्ही अहकाम पर मुश्तमिल (आधारित) हैं। इस मौज़ू पर और भी कई किताबें लिखी गई हैं लेकिन इस किताब को उन सब में एक नुमायाँ और ख़ास मक़ाम हासिल है।

तफ़सीर 'अद्दुर्रुल-मन्सूर'

यह अ़ल्लामा जलालुद्दीन सुयूती रह. (वफ़ात सन् 910 हिजरी) की तस्नीफ़ है और इसका पूरा नाम "अद्दुरुल-मन्सूर फ़ित्तफ़सीरि बिल्मासूर" है। इसमें अ़ल्लामा सुयूती रह. ने उन तमाम रिवायतों को एकत्र करने की कोशिश की है जो क़ुरआने करीम की तफ़सीर से मुताल्लिक़ उनको मिली हैं। उनसे पहले बहुत से मुहद्दिसीन जैसे हाफ़िज़ इब्ने जरीर, इमाम बग़वी, इब्ने मरदूया, इब्ने हब्बान और इब्ने माजा रह. वग़ैरह अपने-अपने तौर पर यह काम कर चुके थे। अ़ल्लामा सुयूती रह. ने उन सब की बयान की हुई रिवायतों को इस किताब में जमा कर दिया है, अलबत्ता उन्होंने रिवायतों के साथ उनकी पूरी सनद ज़िक्र करने के बजाय सिर्फ़ उस मुसन्निफ़ (लेखक) का नाम ज़िक्र करने पर इक्तिफ़ा (बस) किया है जिसने उस रिवायत को अपनी सनद से बयान किया है ताकि ज़रूरत के वक़्त उसकी तरफ़ रुजू करके सनद की तहक़ीक़ की जा सके। चूँकि उनका मक़सद रिवायतों के ज़ख़ीरे को एकत्र करना था इसलिये इस किताब में सही व कमज़ोर हर तरह की रिवायतें जमा हो गई हैं और सनद की तहक़ीक़ किये बग़ैर उनकी बयान की हुई हर रिवायत को क़ाबिले एतिमाद नहीं समझा जा सकता। अ़ल्लामा सुयूती रह. बाज़ मर्तबा हर रिवायत के साथ यह भी बता देते हैं कि इसकी सनद किस दर्जे की है, लेकिन चूँकि हदीस की परख के मामले में वह काफ़ी ढीले मशहूर हैं इसलिये उस पर भी पूरी तरह भरोसा करना मुश्किल है।

तफ़सीरे मज़हरी

यह अ़ल्लामा क़ाज़ी सनाउल्लाह साहिब पानीपती रह. (वफ़ात सन् 1225 हिजरी) की तस्नीफ़ है और उन्होंने अपने शैख़े तरीक़त मिर्ज़ा मज़हर जाने जानाँ देहलवी रह. के नाम पर इस तफ़सीर का नाम "तफ़सीरे मज़हरी" रखा है। उनकी यह तफ़सीर बहुत सादा और वाज़ेह है और संक्षिप्त तौर पर क़ुरआनी आयतों की तशरीह मालूम करने के लिये बहुत ही

मुफ़ीद है, उन्होंने क़ुरआनी अलफ़ाज़ की तशरीह के साथ सम्बन्धित रिवायतों को भी काफ़ी तफ़सील से ज़िक्र किया है और दूसरी तफ़सीरों के मुक़ाबले में ज़्यादा छान-फटक कर रिवायतें लेने की कोशिश की है।

तफ़सीर रूहुल-मआ़नी

इसका पूरा नाम "रूहुल-मआ़नी फ़ी तफ़सीरिल् क़ुरआनिल् अ़ज़ीमि वस्सबअ़िल-मसानी" है और यह बग़दाद के आख़िरी दौर के मशहूर आ़लिम अ़ल्लामा महमूद आलूसी रह. (वफ़ात सन् 1270 हिजरी) की तस्नीफ़ है और तीस जिल्दों पर मुश्तमिल है। उन्होंने अपनी इस तफ़सीर को बड़ी हद तक जामे बनाने की कोशिश की है। लुग़त, नह्व, अदब और बलाग़त के अ़लावा फ़िक़्हा, अ़क़ाईद, कलाम, फ़ल्सफ़ा और हैयत, तसव्वुफ़ और सम्बन्धित रिवायतों पर भी तफ़सीली बहसें की हैं, और कोशिश यह की है कि आयत से मुताल्लिक़ कोई इल्मी गोशा नामुकम्मल न रहे। हदीस की रिवायतों के मामले में भी इसके मुसन्निफ़ ने दूसरे मुफ़स्सिरों के मुक़ाबले में एहतियात से काम लिया है। इस लिहाज़ से यह बड़ी जामे तफ़सीर है और अब तफ़सीरे क़ुरआन के सिलसिले में कोई भी काम इसकी मदद से बेनियाज़ (बेपरवाह) नहीं हो सकता।

तमहीद

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ○

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ عَدَدَ خَلْقِهٖ وَزِنَةَ عَرْشِهٖ وَمِدَادَ كَلِمَاتِهٖ وَرِضٰى نَفْسِهٖ وَالصَّلٰوةُ وَالسَّلَامُ عَلٰى صَفْوَةِ رُسُلِهٖ وَخَيْرِ خَلْقِهٖ سَيِّدِنَا مُحَمَّدٍ وَّاٰلِهٖ وَصَحْبِهٖ وَجَمِيْعِ الْاَنْبِيَآءِ وَالْمُرْسَلِيْنَ○ اَمَّا بَعْدُ!

दुनिया की सबसे बड़ी नेमत क़ुरआन है

क़ुरआने करीम इस जहान में वह अनमोल नेमत है कि सारा जहान, आसमान व ज़मीन और इनमें पैदा होने वाली मख़्लूक़ात इसका बदल नहीं बन सकती।

इनसान की सबसे बड़ी नेकबख़्ती और ख़ुशनसीबी अपनी कोशिश भर क़ुरआने करीम में मश्ग़ूल रहना और इसको हासिल करना है। और सबसे बड़ी बदबख़्ती व मेहरूमी इससे मुँह मोड़ना और इसे छोड़ना है। इसलिये हर मुसलमान को इसकी फ़िक्र तो फ़र्ज़े-ऐन और ज़रूरी है कि क़ुरआने करीम को अलफ़ाज़ की सही अदायेगी के साथ पढ़ने और औलाद को पढ़ाने की कोशिश करे, और फिर जिस क़द्र मुम्किन हो इसके मायने और अहकाम को समझने और उन पर अ़मल करने की फ़िक्र में लगा रहे, और इसको अपनी पूरी उम्र का वज़ीफ़ा (मामूल व मक़सद) बनाये। और अपने हौसले और हिम्मत के मुताबिक़ इसका जो हिस्सा भी नसीब हो जाये उसको इस जहान की सबसे बड़ी नेमत समझे।

❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋

मुसन्निफ़ के मुख़्तसर हालात

(अपने ही क़लम से)

नाकारा-ए-ख़लाईक़ बन्दा मुहम्मद शफ़ी पुत्र मौलाना मुहम्मद यासीन साहिब रह. इस नेमत का शुक्र अदा नहीं कर सकता कि हक़ तआ़ला ने उसकी जन्म-भूमि और वतन इस्लामी उलूम के मर्कज़ (केन्द्र और मुख्य स्थान) देवबन्द को बनाया, और ऐसे वालिदे मोहतरम की गोद में परवरिश का मौक़ा अ़ता फ़रमाया जो हाफ़िज़े क़ुरआन और आ़लिमे दीन होने के साथ दारुल-उलूम देवबन्द के हम-उम्र थे। दारुल-उलूम के संस्थापकों अल्लाह वाले उलेमा की सोहबतों से लाभान्वित होने के मौक़े उनको हमेशा मयस्सर रहे। उनका वजूद उन बुज़ुर्गों का ज़िन्दा तज़किरा था और उनकी ज़िन्दगी बचपन से वफ़ात तक दारुल-उलूम देवबन्द ही में पूरी हुई, वहीं तालीम हासिल की, वहीं शिक्षक बनकर सारी उम्र तालीम की ख़िदमत अन्जाम दी।

अहक़र की शुरूआती क़ुरआनी तालीम वालिदे मोहतरम की तजवीज़ से दारुल-उलूम के क़ुरआन के उस्ताज़ों हाफ़िज़ अ़ब्दुल-अ़ज़ीम साहिब और हाफ़िज़ नामदार ख़ाँ साहिब रह. के पास हुई और फिर ख़ुद वालिदे मोहतरम की ख़िदमत में रहकर उर्दू, फ़ारसी, हिसाब, रियाज़ी और अ़रबी की शुरूआती तालीम हासिल की। फिर सन् 1331 हिजरी में दारुल-उलूम के दर्जा-ए-अ़रबी में बाक़ायदा दाख़िला लेकर सन् 1335 हिजरी तक 'दर्से निज़ामी' का कोर्स उन माहिरे फ़न उस्तादों की ख़िदमत में रहकर पूरा किया जिनकी नज़ीर (जोड़ और मिसाल) आज दुनिया के किसी कोने और इलाक़े में मिलना मुश्किल है। बचपन से लेकर अ़रबी के मध्य दर्जों तक की तालीम के वक़्त तक शैख़ुल-अ़रब वल-अ़जम सैयदी हज़रत मौलाना महमूदुल-हसन साहिब "शैख़ुल-हिन्द" क़ुद्दि-स सिर्रुहू की ख़िदमत में हाज़िरी दी, कभी-कभी बुख़ारी शरीफ़ के सबक़ की ग़ैर-रस्मी (अनौपचारिक) हाज़िरी नसीब रही। मालटा जेल से वापस तशरीफ़ लाने के बाद उन्हीं के हक़ परस्त हाथों पर बैअ़त नसीब हुई और अ़रबी उलूम की बाक़ायदा तालीम निम्न लिखित हज़रात से हासिल की।

हाफ़िज़े हदीस, उलूम के जामे हज़रत अ़ल्लामा मौलाना मुहम्मद अनवर शाह कशमीरी, आ़रिफ़ बिल्लाह हज़रत मौलाना मुफ़्ती अ़ज़ीज़ुर्रहमान साहिब, आ़लिमे रब्बानी हज़रत मौलाना सैयद असग़र हुसैन साहिब, शैख़ुल इस्लाम हज़रत मौलाना शब्बीर अहमद साहिब उस्मानी, शैख़ुल-अदब वल-फ़िक़्ह हज़रत मौलाना मुहम्मद एज़ाज़ अ़ली साहिब रहमतुल्लाह अ़लैहिम अजमईन। और माक़ूली व मन्क़ूली उलूम के माहिर हज़रत अ़ल्लामा मुहम्मद इब्राहीम साहिब और हज़रत मौलाना मुहम्मद रसूल ख़ान साहिब। अफ़सोस है कि इस मज़मून के

लिखे जाने के वक़्त आख़िर में ज़िक्र हुए दो बुज़ुर्गों के सिवा सब इस फ़ानी जहान से कूच फ़रमा चुके हैं, हक़ तआ़ला इन दोनों बुज़ुर्गों का साया देर तक आफ़ियत के साथ क़ायम रखें और उलेमा को इनसे फ़ैज़याब होने (फ़ायदा उठाने) का ज़्यादा से ज़्यादा मौक़ा अ़ता फ़रमायें।

नोटः- 23 शाबान सन् 1392 हिजरी को जबकि इस तफ़सीर 'मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन' पर दोबारा निगाह डालने का काम शुरू हुआ तो ये दोनों बुज़ुर्ग भी रुख़्सत हो चुके हैं। हक़ तआ़ला इनको अपनी रहमत में जगह अ़ता फ़रमायें और बुलन्द दर्जे नसीब फ़रमायें।

उस्तादों और दारुल-उलूम के बुज़ुर्गों की शफ़क़त व इनायत की नज़र पहले ही से इस नाकारा पर रहती थी। सन् 1336 हिजरी में अहक़र ने फ़ुनून की बक़िया चन्द किताबें **क़ाज़ी, मीर ज़ाहिद और उमूरे आ़म्मा** वग़ैरह पढ़ना शुरू किया था कि उसी साल में दारुल-उलूम के बड़ों ने अहक़र को कुछ सबक़ पढ़ाने के लिये दे दिये, इस तरह सन् 1336 हिजरी मेरे पढ़ने और पढ़ाने का संयुक्त साल था। सन् 1337 हिजरी से बाक़ायदा दारुल-उलूम में पढ़ाने की ख़िदमत पर लगा दिया गया। बारह साल लगातार विभिन्न उलूम व फ़ुनून की दरमियाना व आला दर्जों की किताबों के पढ़ाने की ख़िदमत अन्जाम दी। सन् 1349 हिजरी में मुझे सदर-मुफ़्ती (मुख्य मुफ़्ती) की हैसियत से दारुल-उलूम का फ़तवे का पद सुपुर्द किया गया, इसके साथ कुछ किताबें हदीस व तफ़सीर की भी पढ़ाता रहा और आख़िरकार सन् 1362 हिजरी में पाकिस्तान-आंदोलन की जिद्दोजहद और कुछ दूसरे कारणों की वजह से दारुल-उलूम से त्याग पत्र दे दिया।

दारुल-उलूम की छब्बीस वर्षीय पढ़ाने और फ़तवे लिखने की ख़िदमत के साथ ख़ास-ख़ास विषयों पर तस्नीफ़ (किताबें लिखने) का भी सिलसिला जारी रहा, इन तमाम मश्ग़लों और दारुल-उलूम के बुज़ुर्गों की सोहबत से अपने हौसले के मुताबिक़ क़ुरआन व हदीस से कुछ मुनासबत हो गई थी। मुजद्दिदे मिल्लत हकीमुल-उम्मत सैयदी **हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी** रहमतुल्लाहि अ़लैहि की ख़िदमत में हाज़िरी का गौरव तो तालिब-इल्मी के ज़माने में भी होता रहता था मगर सन् 1346 हिजरी से दोबारा बैअ़त के साथ लगातार हाज़िर होने का शर्फ़ हासिल हुआ जो तक़रीबन बीस साल हज़रते अक़्दस की वफ़ात रजब सन् 1362 हिजरी तक जारी रहा। हज़रत क़ुद्दि-स सिर्रुहू को हक़ तआ़ला ने तमाम उलूम व फ़ुनून की कामिल महारत अ़ता फ़रमाई थी और उनमें से ख़ुसूसन तफ़सीर और तसव्वुफ़ आपके मख़्सूस फ़न थे, इन दोनों उलूम में आपकी किताबें **बयानुल-क़ुरआन, अत्तकश्शुफ़** और **अत्तशर्रुफ़** और तसव्वुफ़ के दूसरे रिसाले इसका काफ़ी सुबूत हैं। हज़रत क़ुद्दि-स सिर्रुहू ने अपनी उम्र के आख़िर में यह ज़रूरत महसूस फ़रमाई कि अहकामे-क़ुरआन पर कोई ऐसी किताब लिखी जाये जिसमें मौजूदा ज़माने के मसाईल को भी जिस क़द्र क़ुरआने करीम से साबित होते हैं वाज़ेह किया जाये, इस काम को जल्द पूरा कराने के

ख़्याल से चन्द हज़रात में तक़सीम फ़रमाया, उसका एक हिस्सा अहक़र के भी सुपुर्द हुआ जिसका कुछ हिस्सा तो हज़रत क़ुद्दि-स सिर्रुहू की ज़िन्दगी ही में आपकी निगरानी में लिखा गया, बाक़ी हज़रत की वफ़ात के बाद अल्लाह के फ़ज़्ल व मदद से पूरा हो गया और दो जिल्दों में प्रकाशित भी हो चुका है। यह मजमूआ अ़रबी ज़बान में है।

इस सिलसिले ने हज़रत रह. की बरकत से अल्लाह के फ़ज़्ल से क़ुरआने करीम के साथ एक ख़ास विषेश ताल्लुक़ और तलब पैदा कर दी। उसके बाद तक़दीर का फ़ैसला कि ज़िन्दगी में एक नये इन्क़िलाब (बदलाव) का दरवाज़ा खुला, सन् 1365 हिजरी यानी 1946 ई. में पाकिस्तान की तहरीक (आंदोलन) तेज़ी पकड़कर पूरे मुल्क में फैली। हज़रत थानवी के पहले दिये गये इशारे और मौजूदा अकाबिर के इरशाद पर उस तहरीक में हिस्सा लिया और दो साल रात-दिन की मेहनत व जिद्दोजहद उसमें लगाई। मद्रास से पेशावर तक और पश्चिम में कराची तक पूरे मुल्क के दौरे किये, यही तहरीके पाकिस्तान और इसकी जिद्दोजहद आख़िरकार दारुल-उलूम देवबन्द से त्याग पत्र देने पर ख़त्म हुई और अंततः अल्लाह तआ़ला ने मुसलमानों की यह पुरानी और दिली तमन्ना पूरी फ़रमा दी कि हिन्दुस्तान तक़सीम होकर मुसलमानों के लिये ख़ालिस इस्लाम के नाम पर दुनिया की सबसे बड़ी इस्लामी सल्तनत पाकिस्तान के नाम से वजूद में आ गई।

इस्लामी सल्तनत, इस्लामी निज़ाम, इस्लामी क़ानून की पुरानी तमन्नायें अब उम्मीद की सूरत में तब्दील होने लगीं, और इसके साथ असली वतन को छोड़ने और पाकिस्तान को वतन बनाने की कश्मकश दिल में जोश मारने लगी। वतने असली देवबन्द के उलूमे इस्लामिया का मर्कज़ (केन्द्र) और चुनिन्दा उलेमा-ए-उम्मत का मरजा होने पर नज़र जाती तो सअ़दी शीराज़ी रह. का यह शे'र याद आताः

तवल्ला-ए-मर्दाने ईं पाक बूम
बर-अंगेख़्तम् ख़ातिर अज़ शाम व रूम

'इस पाक जगह की मुहब्बत में मैंने शाम व रूम (यानी दुनिया के तरक़्क़ी याफ़्ता और चमक-दमक के इलाक़ों) को भी दिल से निकाल दिया।' (मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)

लेकिन जब मुल्क के सियासी हालात और हिन्दुस्तान में मुसलमानों और उनके इदारों के मुस्तक़बिल (भविष्य) पर नज़र जाती तो कोई रोशन पहलू सामने न आता। इसके ख़िलाफ़ पाकिस्तान में हर तरह की बेहतरी व कामयाबी की उम्मीद ज़ाहिरी असबाब को देखते हुए नज़र आती थी। इधर यह कश्मकश जारी थी और दूसरी तरफ़ पूरे मुल्क में बद-अमनी (अशांति) और क़त्ल व ग़ारतगरी के क़ियामत ढाने वाले हंगामे खड़े हो गये। हिन्दुस्तान में मुसलमानों पर ज़िन्दगी को तंग कर दिया गया, लाखों इनसानों को ज़बरदस्ती पाकिस्तान की तरफ़ धकेल दिया गया और फिर जाने वालों को आ़फ़ियत के साथ जाने का मौक़ा भी न दिया गया, जगह-जगह क़त्ले आ़म, ख़ूँरेज़ी, लूटमार और अग़वा के रूह तड़पा

देने वाले नज़ारे थे। किसी का सही सालिम पाकिस्तान पहुँच जाना एक अजूबा या चमत्कार समझा जाता था। आठ माह के बाद ये हंगामे कुछ ठण्डे पड़े तो मेरे उस्तादे मोहतरम और फूफी ज़ाद भाई शैख़ुल-इस्लाम हज़रत मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी रह. और कराची के चन्द ज़िम्मेदारों ने यह इरादा किया कि पाकिस्तान के लिये इस्लामी दस्तूर का एक ख़ाका मुरत्तब करके हुकूमत के सामने रखा जाये ताकि जिस मक़सद के लिये पाकिस्तान बना है वह जल्द से जल्द पूरा हो सके। इस तजवीज़ के लिये चन्द उलेमा के साथ अहक़र को भी हिन्दुस्तान से कराची आने की दावत दी गई।

20 जमादिउस्सानी सन् 1367 हिजरी (1 मई सन् 1948 ई.) मेरी उम्र में बहुत बड़े इन्क़िलाब (बदलाव) का दिन था जिसमें अपने असली वतन, उलूम के मर्कज़ देवबन्द को ख़ैरबाद कहकर सिर्फ़ छोटे बच्चों और वालिदा को साथ लेकर पाकिस्तान का रुख़ किया। वालिदा मोहतरमा और अक्सर औलाद और सब अ़ज़ीज़ों और घरबार को छोड़ने का दिल को रुला देने वाला मन्ज़र और जिस तरफ़ जा रहा हूँ वहाँ एक पराये और मुसाफ़िर की हैसियत से वक़्त गुज़ारने की मुश्किलों के साथ एक नई इस्लामी हुकूमत का वजूद और उसमें दीनी रुझानों के अ़मल में आने की ख़ुश करने वाली उम्मीदों के मिले-जुले ख़्यालात में हिचकोले खाते हुए देहली और चन्द मक़ामात पर उतरते हुए 26 जमादिउस्सानी सन् 1367 हिजरी (6 मई सन् 1948 ई.) को अल्लाह तआ़ला ने पाकिस्तान की सीमाओं में पहुँचा दिया और कराची ग़ैर-इख़्तियारी तौर पर अपना वतन बन गया।

यहाँ आये हुए इस वक़्त पन्द्रह साल पूरे होकर तीन माह ज़्यादा हो रहे हैं। इस पन्द्रह साल में क्या किया और क्या देखा, इसकी कहानी बहुत लम्बी है, यह मक़ाम उसके लिखने का नहीं, जिन मक़ासिद के लिये पाकिस्तान महबूब व मतलूब था और इसके लिये सब कुछ क़ुरबान कर दिया था, हुकूमतों के इन्क़िलाबात (उलट-फेर) ने उनकी हैसियत एक मज़ेदार सपने से ज़्यादा बाक़ी न छोड़ी:

बुलबुल हमा-तन ख़ूँ शुद व गुल शुद हमा-तन चाक
ऐ वाये बहारे अगर ईं अस्त बहारे

'बुलबुल बुरी तरह ज़ख़्मी है और फूल मसले पड़ें हैं अगर इसी का नाम बहार है तो ऐसी बहार पर अफ़सोस व हसरत है।' **(मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)**

हुकूमत के रास्ते से किसी दीनी इन्क़िलाब और नुमायाँ सुधार की उम्मीदें ख़्वाब व ख़्याल होती जाती हैं, फिर भी आ़म मुसलमानों में दीनी जागरुकता और दीनी मामलात का एहसास अल्लाह का शुक्र है अभी तक सरमाया-ए-ज़िन्दगी बना हुआ है। उनमें नेक व परहेज़गार लोगों की बिहम्दिल्लाह अच्छी-ख़ासी तादाद मौजूद है। इसी एहसास ने यहाँ दीनी ख़िदमतों की राहें खोली हुई हैं।

हुकूमत के स्तर पर सुधारक कोशिशों के अ़लावा अ़वामी तर्ज़ से इस्लाही जिद्दोजहद

और उसके लिये कुछ इदारों का क़ियाम जो शुरू से पेशे-नज़र था उसकी शुरूआ़त सन् 1370 हिजरी (सन् 1950 ई.) में इस तरह हुई कि आराम बाग़ कराची के क़रीब मस्जिद बाबुल-इस्लाम में रोज़ाना सुबह के बाद दर्से-क़ुरआन शुरू हुआ और हर तरफ़ से आने वाले सवालात के जवाबात में जो फ़तवे लगातार लिखे जाते और बग़ैर नक़ल के रवाना कर दिये जाते थे, अब इसका इन्तिज़ाम इसी मस्जिद में एक दारुल-इफ़्ता की स्थापना की सूरत में अ़मल में आया। यह दर्से-क़ुरआन (क़ुरआनी तालीम व तफ़सीर) उम्मीद से ज़्यादा मुफ़ीद व असरदार साबित हुआ, सुनने वालों की ज़िन्दगी में इन्क़िलाब (बदलाव) के आसार देखे गये। अहक़र नाकारा को ज़िन्दगी का एक अच्छा मश्ग़ला मिल गया, फ़जर की नमाज़ के बाद रोज़ाना एक घन्टे के अ़मल से सात साल में अल्लाह के करम से यह दर्से-क़ुरआन मुकम्मल हो गया।

यहाँ तक की तमहीद माह सफ़र सन् 1383 हिजरी में उस वक़्त लिखी गई थी जबकि तफ़सीर 'मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन' को किताबी सूरत में लाने का इरादा हुआ था, फिर सन् 1388 हिजरी तक यह सिलसिला मुल्तवी (स्थगित) रहा। सन् 1388 हिजरी से इस पर काम शुरू हुआ जो सन् 1392 हिजरी तक पाँच साल में अल्लाह के करम से मुकम्मल हो गया। इस तमहीद का आगे आने वाला हिस्सा तफ़सीर के मुकम्मल होने के बाद सन् 1392 हिजरी में लिखा गया।

तफ़सीर "मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन" लिखने के क़ुदरती असबाब

अहक़र नाकारा गुनाहगार बे-इल्म व अ़मल की यह जुर्रत कभी भी न होती कि क़ुरआने करीम की तफ़सीर लिखने का इरादा करता मगर तक़दीर से इसके असबाब इस तरह शुरू हुए कि रेडियो पाकिस्तान से रोज़ाना प्रसारित होने वाले दर्से-क़ुरआन के मुताल्लिक़ मुझसे फ़रमाईश की गई, जिसको चन्द उज़्र (मजबूरियों) की बिना पर मैं क़ुबूल न कर सका। फिर उन्होंने एक दूसरा प्रस्ताव पेश किया कि रोज़ाना दर्स के सिलसिले से अलग एक साप्ताहिक दर्स 'मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन' के नाम से जारी किया जाये, जिसमें पूरे क़ुरआन की तफ़सीर पेशे-नज़र न हो बल्कि आ़म मुसलमानों की मौजूदा ज़रूरत को देखते हुए ख़ास-ख़ास आयतों का चयन करके उनकी तफ़सीर और संबन्धित अहकाम बयान हुआ करें। अहक़र ने इसको इस शर्त के साथ मन्ज़ूर कर लिया कि दर्स का कोई मुआ़वज़ा न लूँगा और किसी ऐसी पाबन्दी को भी क़ुबूल न करूँगा जो मेरे नज़दीक दर्से-क़ुरआन के मुनासिब न हो। यह शर्त मन्ज़ूर कर ली गई।

अल्लाह तआ़ला का नाम लेकर यह दर्स मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन के नाम से 3 शव्वाल

सन् 1373 हिजरी (2 जुलाई सन् 1954 ई.) से शुरू हुआ और तक़रीबन ग्यारह साल पाबन्दी से जारी रहा, यहाँ तक कि जून सन् 1964 ई. में रेडियो पाकिस्तान की अपनी नई पॉलीसी के तहत इस दर्स को ख़त्म कर दिया गया। यह दर्स मआरिफ़ुल-क़ुरआन तेहरवें पारे और सूरः इब्राहीम पर ख़त्म हो गया, जिसमें उन तेरह पारों की मुकम्मल तफ़सीर नहीं बल्कि चुनिन्दा आयतों की तफ़सीर थी। अहक़र ने ऐसी बीच की आयतों को उसमें शामिल नहीं किया था जो ख़ालिस इल्मी मज़ामीन पर मुश्तमिल थीं और रेडियाई तक़रीर के ज़रिये अवाम के ज़ेहन में बैठाना उनका मुश्किल था, या वे आयतें जो बार-बार आती हैं।

जिस वक़्त यह काम शुरू कर रहा था इसका कोई दूर-दूर ख़्याल न था कि यह किसी वक़्त किताबी सूरत में एक मुस्तक़िल तफ़सीर के अन्दाज़ पर प्रकाशित होगी। मगर हुआ यह कि जब यह दर्स प्रसारित होना शुरू हुआ तो पाकिस्तान के सब इलाक़ों और उनसे ज़्यादा ग़ैर-मुल्कों अफ़्रीक़ा, यूरोप वग़ैरह में बसने वाले मुसलमानों की तरफ़ से बेशुमार ख़त रेडियो पाकिस्तान को और ख़ुद अहक़र को वसूल हुए जिनसे मालूम हुआ कि बहुत से दीनदार और जदीद तालीम-याफ़्ता मुसलमान इस दर्स से बहुत लगाव रखते हैं। अफ़्रीक़ा में चूँकि यह दर्स (बयान) रात के आख़िरी हिस्से या बिल्कुल सुबह सादिक़ के वक़्त पहुँचता था, वहाँ के लोगों ने इसको टेपरिकॉर्डर के ज़रिये महफ़ूज़ करके बाद में सब को बार-बार सुनाने का एहतिमाम किया और जगह-जगह से इसका तक़ाज़ा हुआ कि इस दर्स को किताबी सूरत में शाया किया जाये। आम मुसलमानों के इस शौक़ व दिलचस्पी ने इस नाकारा की हिम्मत बढ़ा दी और बीमारियों व कमज़ोरी के बावजूद ग्यारह साल तक यह सिलसिला बड़ी पाबन्दी से जारी रखा। सन् 1383 हिजरी (1964 ई.) में जब दर्स का सिलसिला बन्द हुआ तो बहुत से हज़रात की तरफ़ से यह तक़ाज़ा हुआ कि जितना हो चुका है उसको किताबी सूरत में शाया (प्रकाशित) किया जाये और दरमियान में जो आयतें छोड़ी गई हैं उनकी भी तक्मील कर दी जाये। अल्लाह का नाम लेकर यह इरादा कर लिया कि मौजूदा मसौदे पर नज़रे-सानी और बीच की बाक़ी रही आयतों की तक्मील का काम शुरू किया जाये। चुनाँचे 16 सफ़र सन् 1383 हिजरी में सूरः फ़ातिहा की तफ़सीर पर नज़रे-सानी (दोबारा निगाह डालना) मुकम्मल हो गई और सूरः ब-क़रह पर काम शुरू किया। उसमें अहकाम की मुश्किल आयतें बहुत हैं जो रेडियो पर प्रसारित होने वाली तक़रीर में नहीं आई थीं, यह काम बहुत मेहनत और फ़ुर्सत को चाहता था, कामों की अधिकता और बीमारियों ने फ़ुर्सत न दी और यह काम तक़रीबन ठण्डे बस्ते में पड़ गया।

तक़दीर का करिश्मा, एक सख़्त और लम्बी बीमारी तफ़सीर को पूरा करने का सबब बन गई

सन् 1388 हिजरी के शाबान में अहक़र के बदन के निचले हिस्से में फुंसी फोड़े की

शक्ल ज़ाहिर हुई और धीरे-धीरे बढ़ती गई, आख़िर रमज़ान में उसने खड़े होने से माज़ूर कर दिया, आख़िरी आठ रोज़े भी क़ज़ा हुए। घर में बैठकर नमाज़ होने लगी, इसके साथ पाँव में निक्रस का पुराना दर्द शुरू हुआ, उसका जो इलाज पहले कारगर हो जाता था वह भी कामयाब न हुआ और दोनों पाँव से माज़ूर हो गया। तक़रीबन दस महीने इसी तरह माज़ूरी व बीमारी के साथ ज़िन्दगी और मौत की कशमकश में गुज़रे। जब चलने फिरने और हर काम से माज़ूर हो गया, ज़िन्दगी की उम्मीद भी ख़त्म हो गई तो अब इस पर अफ़सोस हुआ कि ये तफ़सीरी काम जिस क़द्र हो चुका था उस पर नज़रे-सानी और तक्मील भी न हो सकी। अब ये लिखे हुए पन्ने यूँ ही ज़ाया हो जायेंगे। हक़ तआला ने दिल में हिम्मत अ़ता फ़रमाई और शव्वाल सन् 1388 हिजरी के आख़िर में बीमारी के बिस्तर पर ही अल्लाह तआ़ला ने इस काम को शुरू करा दिया और 25 ज़ीक़ादा सन् 1388 हिजरी को सूरः ब-क़रह की तक्मील होकर लिखाई व छपाई के लिये दे दी, इसके बाद से ऐन बीमारी व माज़ूरी की हालत में यह काम धीमी रफ़्तार से चलता रहा, अल्लाह तआ़ला ने इसकी बरकत से दस महीने के बाद माज़ूरी भी दूर फ़रमा दी तो रजब सन् 1389 हिजरी से काम किसी क़द्र तेज़ हुआ मगर उसी के साथ मुल्क में नये चुनावों ने सियासी हंगामों का एक तूफ़ान खड़ा कर दिया, मैं अगरचे लम्बे समय से सियासत से किनारे हो चुका था मगर उन चुनावों ने पाकिस्तान में ख़ालिस इस्लामी हुकूमत के बजाय कम्यूनिज़्म और सोशलिज़्म फैल जाने के ख़तरे प्रबल कर दिये और सोशलिज़्म को इस्लाम के बिल्कुल मुवाफ़िक़ बताने और यक़ीन दिलाने के लिये जिद्दोजहद और जलसे व जलूस आ़म हो गये। इस मसले की नज़ाकत ने फिर इस पर तैयार किया कि कम से कम इस्लाम और सोशलिज़्म में फ़र्क़ और सोशलिज़्म के ख़तरनाक परिणामों से क़ौम को आगाह करने की हद तक इस सियासी मैदान में हिस्सा लिया जाये। इसके लिये तहरीरी मज़ामीन भी लिखने पड़े और पूर्वी व पश्चिमी पाकिस्तान के अहम मक़ामात में जलसों में शिर्कत भी करनी पड़ी। मसले की वज़ाहत तो अपनी हिम्मत भर पूरी हो गई मगर सियासत के मैदान में मसाईल और तथ्यों से ज़्यादा ताक़त और दौलत काम करते हैं, चुनावों का नतीजा उम्मीद के बिल्कुल उलट और विपरीत निकला, उसके असर से पाकिस्तान पर जो ज़वाल (तबाही और पतन) आना था वह आ गया। कहना चाहिये कि मामलात की तमाम सूरतें अल्लाह ही के हाथ में हैं, वह जिस तरह चाहता है उसी तरह होता है।

चुनावों के बाद अहक़र ने फिर सियासत से इस्तीफ़ा देकर अपना यह काम शुरू कर दिया और अल्हम्दु लिल्लाह रजब सन् 1390 हिजरी तक तेरह पारों की मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन पर नज़रे-सानी और बीच की छूटी हुई आयतों की तफ़सीर भी मुकम्मल हो गई और सूरः इब्राहीम से सूरः नहल तक दो पारों की मज़ीद तफ़सीर भी लिखी गई। अब क़ुरआन मजीद आधे के क़रीब हो गया तो अल्लाह तआ़ला ने हिम्मत अ़ता फ़रमाई और बाक़ी बचे

क़ुरआन की तफ़सीर लिखनी शुरू की। इसका उस वक़्त कोई तसव्वुर नहीं था कि पछत्तर साल की उम्र और जिस्मानी कमज़ोरी साथ ही विभिन्न क़िस्म की बीमारियों के बावजूद यह तफ़सीर पूरी हो सकेगी, मगर यह समझकर कि क़ुरआन को ख़त्म करना मक़सूद नहीं क़ुरआन में अपनी उम्र को ख़त्म करना है, अल्लाह के नाम पर यह सिलसिला शुरू कर दिया। शाबान सन् 1390 हिजरी से सूरः बनी इस्राईल की तफ़सीर शुरू हुई और 23 सफ़र सन् 1391 हिजरी को क़ुरआन की चौथी मन्ज़िल सूरः फ़ुरक़ान पारा 19 तक मुकम्मल हो गई।

आगे क़ुरआने करीम की तीन मन्ज़िलें यानी तक़रीबन एक तिहाई क़ुरआन बाक़ी था, उम्र की कमज़ोरी और मुख़्तलिफ़ क़िस्म की बीमारियों की बिना पर यह ख़्याल आया कि इस सब की तक्मील तो शायद मुझसे न हो सकेगी मगर बीच की पाँचवीं और छठी मन्ज़िल की तफ़सीर अहक़र ने अहकामुल-क़ुरआन में अ़रबी भाषा में लिख दी है जो प्रकाशित भी हो चुकी है, अगर मैं इसको न लिख सका तो मेरे बाद भी कोई अल्लाह का बन्दा उसी अहकामुल-क़ुरआन की तफ़सीर को उर्दू में मुन्तक़िल करके यह हिस्सा पूरा कर देगा और इसकी वसीयत भी चन्द हज़रात को कर दी और बीच की ये दो मन्ज़िलें छोड़कर आख़िरी सातवीं मन्ज़िल सूरः क़ॉफ़ से लिखनी शुरू कर दी। हक़ तआ़ला की मदद ने साथ दिया और 12 रबीउल-अव्वल सन् 1391 हिजरी से शुरू होकर शव्वाल सन् 1391 हिजरी तक यह आख़िरी मन्ज़िल पूरी हो गई। सिर्फ़ आख़िर की दो सूरतें (सूरः फ़लक़ और सूरः नास) छोड़ दी गईं।

अब बीच की दो मन्ज़िलें सूरः शु-अ़रा से सूरः हुजुरात तक बाक़ी थीं, अल्लाह के नाम पर उनको भी शुरू कर दिया। उनमें सूरः सॉद, सॉफ़्फ़ात, ज़ुख़रुफ़ तो बरख़ुरदार अ़ज़ीज़म मौलवी मुहम्मद तक़ी सल्ल-महू से लिखवाईं और ख़ुद उस पर नज़रे-सानी करके मुकम्मल किया। बाक़ी सूरतें ख़ुद लिखनी शुरू कीं और क़ुरआने मजीद का तक़रीबन डेढ़ पारा बाक़ी रह गया था कि 24 रबीउस्सानी सन् 1392 हिजरी (8 जून सन् 1972 ई.) को अचानक मुझे दिल का एक सख़्त मर्ज़ पेश आया कि मौत का नक़्शा आँखों में घूम गया। देखने वाले थोड़ी देर का मेहमान समझते थे, कराची में दिल की बीमारियों के अस्पताल में बेहोशी की हालत में पहुँचाया गया, तीन दिन के बाद डॉक्टरों ने कुछ इत्मीनान का इज़हार किया। जब कुछ होश व हवास दुरुस्त हुए तो बाक़ी बची तफ़सीर का ख़्याल एक हसरत बनकर रह गया। बरख़ुरदार अ़ज़ीज़ी मौलवी मुहम्मद तक़ी सल्ल-महू को वसीयत कर दी कि बाक़ी बची तफ़सीर की तक्मील वह कर दें, इस तरह दिल का कुछ बोझ हल्का हुआ, अल्लाह तआ़ला का हज़ारों हज़ार शुक्रिया कि उसने उस बीमारी से सेहत भी अ़ता फ़रमाई और तीन महीने के बाद इतनी ताक़त दी कि कुछ लिखने पढ़ने की हिम्मत होने लगी, मगर थोड़ी देर काम करने से दिमाग़, दिल और निगाह सब थक जाते थे, महज़ हक़ तआ़ला का

फ़ज़्ल व करम ही था कि उसने उसी हालत में यह बक़िया तफ़सीर 21 शाबान सन् 1392 हिजरी दिन पीर को मुकम्मल करा दी, और एक हसीन इत्तिफ़ाक़ यह कि यही दिन सन् 1314 हिजरी में मेरी पैदाईश का दिन था। उस रोज़ मेरी उम्र की 77 मन्ज़िलें पूरी होकर 78वाँ साल शुरू हुआ।

इस तफ़सीर का आग़ाज़ (शुरूआत) सन् 1388 हिजरी की सख़्त बीमारी में हुआ और ख़ात्मा (समापन) पाँच साल के बाद सन् 1392 हिजरी की सख़्त बीमारी के फ़ौरन बाद हुआ। ये पाँच साल उम्र के आख़िरी हिस्से की तबई कमज़ोरी, अनेक क़िस्म की बीमारियों के लगातार होने, फ़िक्रों के हुजूम और मुल्क में इन्क़िलाबी हंगामों के साल थे, इन्हीं में हक़ तआ़ला ने इस तफ़सीर के तक़रीबन सात हज़ार पेज इस नाकारा के क़लम से लिखवा दिये। यह भी इस हाल में कि दारुल-उलूम कराची की इन्तिज़ामी ज़िम्मेदारियों और फ़तवे की मुस्तक़िल ख़िदमात के अ़लावा दूसरे अहम विषयों पर दस छोटी-बड़ी किताबें और भी लिखी गईं जो छप चुकी हैं।

1. **अहकामुल-हज्ज** जो मुख़्तसर और आसान होने के साथ तमाम ज़रूरी अहकाम को जामे भी है।

2. **अल-यवाक़ीत फ़ी अहकामिल-मवाक़ीत** (हज के मवाक़ीत और जेद्दा से एहराम की तहक़ीक़)।

3. **मन्हजुल-ख़ैरि फ़िल्हज्जि अ़निल् ग़ैरि** (यानी हज्जे बदल के अहकाम)।

4. **मक़ामे सहाबा** (सहाबा के आपसी झगड़ों और अ़दालते सहाबा की मुकम्मल बहस और उम्मत के बुज़ुर्गों का इस बारे में तर्ज़े-अ़मल)।

5. **इस्लामी ज़बीहा** (ज़बीहा के शरई अहकाम तफ़सील के साथ, यहूदियों व ईसाईयों के ज़बीहे की बहस, ग़लत मसाईल बयान करने पर रद्द)।

6. **इनसानी अंगों की पेवन्दकारी।**

7. **ज़िन्दगी का बीमा।**

8. **प्राविडेंट फन्ड।**

9. **इस्लाम और सोशलिज़्म।**

10. **इस्लामी निज़ाम में आर्थिक सुधार** वग़ैरह वग़ैरह। और यह बात आँखों से दिखला दी कि:

انّ المقادیر اذا ساعدت الحقت العاجز بالقادر

"यानी जब तक़दीरे इलाही मदद करती है तो आ़जिज़ को क़ादिर के साथ मिला देती है (यानी कमज़ोर से भी बड़ा काम ले लेती है)।"

इल्म व अ़मल पहले ही बराय नाम था, इस कमज़ोरी व बुढ़ापे और बीमारियों व मशाग़िल और दिमाग़ी सुस्ती ने वह रहा सहा भी रुख़्सत कर दिया। इन हालात में किसी

किताब लिखने, ख़ास कर क़ुरआने करीम की तफ़सीर का इरादा करना भी एक बड़ी हिम्मत व जुर्रत थी। इत्मीनान इस पर था कि इसमें मेरी अपनी कोई चीज़ नहीं, अकाबिर उलेमा और पहले बुज़ुर्गों की तफ़सीर को आसान ज़बान में मौजूदा ज़माने की तबीयतों के क़रीब बनाना मेरी सारी मेहनत का हासिल था। मैंने आख़िर उम्र के पाँच साल की यह ज़बरदस्त मेहनत इस तमन्ना में लगाई कि मौजूदा ज़माने के मुसलमान जो उमूमन इल्मी इस्तिलाहों और इल्मी ज़बान से नावाक़िफ़ और अनजान हो चुके हैं, अकाबिर (उलेमा) की तफ़सीर को उनके लिये समझने के ज़्यादा क़रीब कर दूँ तो शायद इस ज़माने के मुसलमानों को इससे नफ़ा पहुँचे और मेरे लिये आख़िरत का सामान बन जाये। उलेमा-ए-मुहक़्क़िक़ीन अपनी इल्मी तहक़ीक़ात के कमालात दिखलाते हैं, इस नाकारा ने अपनी बेइल्मी को इस पर्दे में छुपाया है, अल्लाह तआ़ला मुझसे अपनी सत्तारी (ख़ताओं को छुपाने) का मामला फ़रमायें और इस नाचीज़ की ख़िदमत को क़ुबूल फ़रमायें जिसमें किसी इल्मी कमाल का तो कोई दख़ल नहीं अलबत्ता अपने आपको थकाया ज़रूर है, और यह थकाना भी अल्लाह की तौफ़ीक़ से था वरना एक क़दम चलने की भी क्या मजाल थी। काश! अल्लाह तआ़ला मेरे इस थकने पर नज़र फ़रमायें और मेरी ग़लती व ख़ताओं को जो उसकी किताबे करीम के हुक़ूक़ अदा करने में हुई हैं माफ़ फ़रमाकर इसको क़ुबूलियत का शर्फ़ अ़ता फ़रमा दें।

किताब लिखने (यानी इस तफ़सीर को तैयार करने) की यह लम्बी कहानी अहक़र के लिये तो एक याद्दाश्त और शुक्रगुज़ारी के लिये एक तज़किरा है मगर आ़म लोगों के ज़ौक़ की चीज़ नहीं, इसके बावजूद इसलिये लिखा कि लोगों को मेरे इस साहस व जुर्रत का उज़्र मालूम हो जाये।

जैसा कि पहले अ़र्ज़ कर चुका हूँ कि तफ़सीरे क़ुरआन पर मुस्तक़िल तस्नीफ़ के लिये जुर्रत करने का मेरे लिये दूर-दूर भी कोई एहतिमाल (ख़्याल व गुमान) नहीं था, मगर ग़ैर-इरादी तौर पर इसके असबाब बनते चले गये। अलबत्ता लम्बे ज़माने से एक तमन्ना दिल में थी कि हकीमुल-उम्मत मुजद्दिदुल-मिल्लत सैयदी हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली साहिब थानवी रह. की तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन जो एक बेनज़ीर, मुख़्तसर मगर जामे तफ़सीर और पहले उलेमा व बुज़ुर्गों की तफ़सीरों का ख़ुलासा और निचोड़ है, लेकिन वह इल्मी ज़बान और इल्मी इस्तिलाहात में लिखी गई है, आजकल के अ़वाम उससे फ़ायदा उठाने में असमर्थ हो गये हैं, उसके मज़ामीन को आसान ज़बान में पेश कर दिया जाये। मगर यह काम भी काफ़ी मेहनत और फ़ुर्सत चाहता था, पाकिस्तान में आने से पहले कुछ शुरू भी किया फिर रह गया था। मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन की इस तहरीर ने अल्लाह का शुक्र है कि वह आरज़ू भी पूरी कर दी, क्योंकि इस तफ़सीर की बुनियाद अहक़र ने बयानुल-क़ुरआन ही को बनाया है जिसकी तफ़सील आगे आती है।

'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' की विशेषतायें

उन बातों का बयान जिनकी इसमें रियायत रखी गयी है

1. क़ुरआन की तफ़सीर जो अ़रबी के अ़लावा किसी और ज़बान में हो उसमें सबसे अहम और एहतियात की चीज़ क़ुरआन का तर्जुमा है, क्योंकि वह अल्लाह के कलाम की तर्जुमानी व बयान है, उसमें मामूली सी कमी-बेशी भी अपनी तरफ़ से जायज़ नहीं, इसलिये मैंने ख़ुद कोई तर्जुमा लिखने की हिम्मत नहीं की और इसकी ज़रूरत भी नहीं थी क्योंकि अकाबिर उलेमा यह काम बड़ी एहतियात के साथ अन्जाम दे चुके हैं। उर्दू ज़बान में इस ख़िदमत को सबसे पहले हज़रत शाह वलीयुल्लाह देहलवी रह. के दो क़ाबिल बेटों हज़रत शाह रफ़ीउद्दीन और हज़रत शाह अ़ब्दुल-क़ादिर रह. ने अपने-अपने अन्दाज़ में अन्जाम दिया। पहले ज़िक्र हुए तर्जुमे में बिल्कुल तहतुल्लफ़्ज़ तर्जुमे को इख़्तियार किया गया (यानी इबारत और मुहावरे को ध्यान में न रखते हुए सिर्फ़ यह ध्यान रखा कि क़ुरआन में अलफ़ाज़ जिस तरतीब से हैं उसी तरतीब से तर्जुमा लिख दिया जाये) उर्दू मुहावरे की भी ज़्यादा रियायत नहीं रखी गई और बड़े कमाल के साथ क़ुरआन के अलफ़ाज़ को उर्दू में मुन्तक़िल फ़रमाया है, और दूसरे तर्जुमे में तहतुल्लफ़्ज़ के साथ उर्दू मुहावरे की रियायत भी है जिसको हज़रत शाह अ़ब्दुल-क़ादिर रह. ने चालीस साल मस्जिद में मोतकिफ़ (एतिकाफ़ की हालत में) रहकर पूरा किया है, यहाँ तक कि आपका जनाज़ा मस्जिद ही से निकला है। दारुल-उलूम देवबन्द के पहले सदर-मुदर्रिस हज़रत मौलाना मुहम्मद याक़ूब साहिब रह. का फ़रमाना है कि बेशक यह तर्जुमा इल्हामी (अल्लाह की तरफ़ से दिल में डाला हुआ) है, इनसान के बस की बात नहीं कि ऐसा तर्जुमा कर सके। शैख़ुल-अ़रब वल-अ़जम सैयदी हज़रत मौलाना महमूदुल् हसन साहिब रह. ने अपने वक़्त में जब यह देखा कि अब बहुत से मुहावरे बदल जाने की वजह से कुछ जगहों में तरमीम (संशोधन) की ज़रूरत है तो उन्होंने इसी तर्जुमे की यह ख़िदमत अन्जाम दी जो **तर्जुमा शैख़ुल-हिन्द** के नाम से मशहूर हुआ। अहक़र ने क़ुरआने करीम की इबारत के लिये इसी तर्जुमे को जूँ-का-तूँ लिया है।

2. सैयदी हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी क़ुद्दि-स सिर्रुहू ने असल तफ़सीर **बयानुल-क़ुरआन** को इस अन्दाज़ में लिखा है कि क़ुरआन के मतन (असल इबारत) के तर्जुमे के साथ-साथ ही उसकी तफ़सीर व वज़ाहत ब्रेकिटों के दरमियान फ़रमाई है। तर्जुमे को उसके ऊपर लाईन लगाकर और तफ़सीर को ब्रेकिट के अन्दर लिखकर अलग और नुमायाँ कर दिया है। इस तरह लाईन खिंचे हुए अलफ़ाज़ में क़ुरआन का तर्जुमा है और ब्रेकिटों के बीच उसकी तफ़सीर है। (यह उर्दू तर्जुमे की बात है) बहुत से लोगों ने इसी लाईन लगे हुए तर्जुमे को अलग करके क़ुरआन मजीद के मतन के नीचे तर्जुमा

हकीमुल-उम्मत के नाम से ख़ुद हज़रत रह. के ज़माने में प्रकाशित भी कर दिया था।

मुझे चूँकि बयानुल-क़ुरआन की तस्हील (आसान करने) का काम पहले से पेशे-नज़र था, इस वक़्त अहक़र ने हज़रत रह. की उस तफ़सीर को "ख़ुलासा-ए-तफ़सीर" के नाम से शुरू में उसी हालत में सिर्फ़ एक तसर्रुफ़ (तरमीम) के साथ नक़ल कर दिया है, वह यह कि उस तफ़सीर में जिस जगह ख़ास इस्तिलाही और मुश्किल अलफ़ाज़ आये थे वहाँ उनको आसान लफ़्ज़ों में मुन्तक़िल कर दिया और उसका नाम ख़ुलासा-ए-तफ़सीर रखना इसलिये मुनासिब हुआ कि ख़ुद हज़रत रह. ने बयानुल-क़ुरआन के ख़ुतबे (प्रस्तावना) में इसके मुताल्लिक़ फ़रमाया है कि इसको मुख़्तसर तफ़सीर या तफ़सीली तर्जुमा कहा जा सकता है।

और अगर कोई मज़मून ही ख़ालिस इल्मी और मुश्किल था तो उसको यहाँ से अलग करके मआरिफ़ व मसाईल में अपनी आसान इबारत में लिख दिया ताकि मशग़ूल आदमी अगर ज़्यादा न देख सके तो इस ख़ुलासा-ए-तफ़सीर से ही कम से कम क़ुरआनी मफ़्हूम (मतलब) को पूरा समझ ले। इन दोनों चीज़ों की पाबन्दी पहली जिल्द के पहले प्रकाशन में पारा अलिफ़-लाम-मीम के पहले पाव आयत नम्बर 44 तक नहीं हो सकी थी अब दूसरे संस्करण में उस हिस्से को भी मुकम्मल करके पूरी तफ़सीर के मुताबिक़ कर दिया गया है। अलबत्ता एक एहतिमाम जो दूसरी जिल्द से शुरू हुआ कि क़ुरआन के मतन के नीचे तर्जुमा शैख़ुल-हिन्द लिखा जाये यह पहली बार की छपाई की पूरी जिल्द अव्वल में नहीं था, दूसरी बार में छपने के वक़्त इसको भी मतन के नीचे लिखकर सब के मुताबिक़ कर दिया गया, यह दोनों काम तो अकाबिर उलेमा के थे।

3. तीसरा काम जो अहक़र की तरफ़ मन्सूब है वह "मआरिफ़ व मसाईल" का उनवान है। इसमें भी ग़ौर किया जाये तो अहक़र की सिर्फ़ उर्दू इबारत ही है, मज़ामीन सब पहले उलेमा की तफ़सीर से लिये हुए हैं जिनके हवाले हर जगह लिख दिये हैं। इसमें अहक़र ने चन्द चीज़ों का ध्यान रखा और पाबन्दी की है:

(I) उलेमा के लिये क़ुरआन की तफ़सीर में सबसे पहला और अहम काम लुग़त की तहक़ीक़, नह्वी तरकीब, फ़न्ने बलाग़त के नुक्तों और क़िराअत की भिन्नता की बहसें हैं जो बिला शुब्हा उलेमा के लिये क़ुरआन समझने में बुनियादी पत्थर की हैसियत रखते हैं। इसी के ज़रिये क़ुरआने करीम के सही मफ़्हूम (मतलब व मआनी) को पाया जा सकता है, लेकिन अ़वाम तो अ़वाम हैं आजकल के बहुत से अहले इल्म भी इन तफ़सीलात में उलझन महसूस करते हैं, ख़ास तौर से अ़वाम के लिये तो ये बहसें उनकी समझ से ऊपर और असल मक़सद में ख़लल डालने वाली बनती हैं, वे समझने लगते हैं कि क़ुरआन को समझकर पढ़ना मुश्किल काम है, हालाँकि क़ुरआने करीम का जो असल मक़सद है कि इनसान का ताल्लुक़ अपने रब के साथ मज़बूत हो और उसके नतीजे में माद्दी ताल्लुक़ात सन्तुलन पर आ जायें कि वे दीन की राह में रुकावट न बनें, दुनिया से ज़्यादा आख़िरत की

फ़िक्र पैदा हो और इनसान अपने हर क़ौल व फ़ेल पर यह सोचने का आदी हो जाये कि इसमें कोई चीज़ अल्लाह और उसके रसूल की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ तो नहीं, इस चीज़ को क़ुरआने करीम ने इतना आसान कर दिया है कि मामूली लिखा पढ़ा आदमी ख़ुद देखकर और बिल्कुल अनपढ़ जाहिल सुनकर भी फ़ायदा हासिल कर सकता है। क़ुरआने करीम ने ख़ुद इसका ऐलान फ़रमा दिया है:

وَلَقَدْ يَسَّرْنَا الْقُرْاٰنَ لِلذِّكْرِ فَهَلْ مِنْ مُّدَّكِرٍ. (١٧:٥٤)

तफ़सीर "मआरिफ़ुल-क़ुरआन" में अ़वाम की सहूलत को सामने रखते हुए इन इल्मी और इस्तिलाही बहसों की तफ़सील नहीं लिखी गई बल्कि तफ़सीर के इमामों के अक़वाल में जिसको जमहूर ने राजेह (वरीयता प्राप्त) क़रार दिया है उसके मुताबिक़ तफ़सीर ले ली गई और कहीं-कहीं ज़रूरत के हिसाब से यह बहस ले ली भी गई है तो वहाँ भी इसका लिहाज़ रखा गया है कि ख़ालिस इल्मी इस्तिलाहात, अपरिचित और मुश्किल अलफ़ाज़ न आयें और इसी लिये ऐसे इल्मी मबाहिस को भी छोड़ दिया गया है जो अ़वाम के लिये ग़ैर-ज़रूरी और उनके स्तर से ऊँचे हैं।

(2) मुस्तनद व मोतबर (विश्वसनीय) तफ़सीरों से ऐसे मज़ामीन को अहमियत के साथ नक़ल किया गया है जो इनसान के दिल में क़ुरआने करीम की अ़ज़मत (बड़ाई) और अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्ल. की अ़ज़मत व मुहब्बत को बढ़ायें और क़ुरआन पर अ़मल और अपने आमाल के सुधार की तरफ़ माईल करें।

(3) इस पर तो हर मोमिन का ईमान है कि क़ुरआने करीम क़ियामत तक आने वाली नस्लों की हिदायत के लिये नाज़िल हुआ है और क़ियामत तक पैदा होने वाले तमाम मसाईल (समस्याओं) का हल इसमें मौजूद है, बशर्तेकि क़ुरआन को रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बयान व ख़ुलासे की रोशनी में देखा और पढ़ा जाये, और इसमें पूरे ग़ौर व फ़िक्र से काम लिया जाये। इसी लिये हर ज़माने के तफ़सीर के उलेमा ने अपनी अपनी तफ़सीरों में उन नये मसाईल और मबाहिस पर ज़्यादा ज़ोर दिया है जो उनके ज़माने में पैदा हुए या बेदीन अहले बातिल की तरफ़ से शुकूक व शुब्हात की सूरत में पैदा कर दिये गये, इसी लिये बीच की सदियों की तफ़सीरें मोतज़िला, जहमिया, सफ़वानिया वग़ैरह फ़िर्क़ों की तरदीद और उनके शुब्हात को दूर करने से पुर (भरी हुई) नज़र आती हैं।

अहक़र नाकारा ने भी इसी उसूल के तहत ऐसे ही मसाईल और बहसों को अहमियत दी है जो या तो इस ज़माने के मशीनी दौर ने नये-नये पैदा कर दिये और या इस ज़माने के बेदीन, यहूदी और ईसाई उन उलेमा ने मुसलमानों के दिलों में शुकूक व शुब्हात पैदा करने के लिये खड़े कर दिये जो इस्लामियात का अध्ययन इसी उद्देश्य से करते हैं। नये मसाईल (समस्याओं) के हल के लिये जहाँ तक हो सका कोशिश की है कि क़ुरआन व सुन्नत या

फ़ुक़हा-ए-उम्मत के अक़वाल में उसका कोई सुबूत मिले या कम से कम उसकी कोई नज़ीर (मिसाल) मिले। और अल्हम्दु लिल्लाह इसमें कामयाबी हुई। ऐसे मसाईल में अपने ज़माने के दूसरे उलेमा से मश्विरा लेने का भी एहतिमाम किया गया है और मुल्हिदाना (दीन का इनकार करने वालों की तरफ़ से किये जाने वाले) शुकूक व शुब्हात को दूर करने में भी अपनी बिसात भर इसकी कोशिश रही है कि जवाब इत्मीनान-बख़्श हो। और इस जवाब देने के लिये इस्लामी मसाईल में मामूली सी तरमीम (तब्दीली और संशोधन) को गवारा नहीं किया, जैसे कि मौजूदा ज़माने के कुछ मुसन्निफ़ों (लेखकों) ने इस जवाब देने में ख़ुद इस्लामी मसाईल का मतलब बयान करने में तरमीम कर डालने का तरीक़ा इख़्तियार किया है, यह सब कुछ अपनी मालूमात और अपनी कोशिश की हद तक है जिसमें बहुत सी ख़ताओं और ग़लती व चूक की संभावना भी है। अल्लाह तआ़ला माफ़ फ़रमायें और उनकी इस्लाह (सुधार और सही करने) का रास्ता निकाल दें।

ऊपर बयान हुई चीज़ों और जिन बातों का इसमें एहतिमाम किया गया है उसके सबब तफ़सीर **मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन** निम्नलिखित चीज़ों की जामे बन गयी हैः

1. क़ुरआने करीम के दो मुस्तनद (मोतबर व विश्वसनीय) तर्जुमे- एक हज़रत शैख़ुल् हिन्द रह. का जो दर असल शाह अ़ब्दुल-क़ादिर साहिब रह. का तर्जुमा है, दूसरा हकीमुल् उम्मत हज़रत थानवी रह. का तर्जुमा।

2. ख़ुलासा-ए-तफ़सीर जो दर हक़ीक़त आसान ज़बान और अन्दाज़ में बयानुल-क़ुरआन का ख़ुलासा है, जिसको अलग से भी क़ुरआने करीम के हाशिये पर छाप लिया जाये तो थोड़ी फ़ुर्सत वालों के लिये क़ुरआन समझने का एक मोतबर और बेहतरीन ज़रिया है। उसने एक और ज़रूरत को पूरा कर दिया जिसकी तरफ़ मुझे मेरे दीनी भाई मौलाना बदरे आ़लम साहिब मुहाजिर मदीना मुनव्वरा ने अ़ल्लामा फ़रीद वजदी रह. की एक मुख़्तसर तफ़सीर क़ुरआन के हाशिये पर दिखलाकर तवज्जोह दिलाई थी कि काश उर्दू में भी कोई ऐसी तफ़सीर होती जो इसकी तरह मुख़्तसर और आसान हो। अल्लाह तआ़ला ने इससे यह आरज़ू भी पूरी फ़रमा दी। ये दोनों चीज़ें तो अकाबिर उलेमा की मुस्तनद और मारूफ़ हैं।

3. तीसरी चीज़ **मआ़रिफ़ व मसाईल** हैं जो मेरी तरफ़ मन्सूब हैं और मेरी मेहनत का मेहवर (धुरी) हैं, अल्हम्दु लिल्लाह उसमें भी मेरा अपना कुछ नहीं, सब उम्मत के उलेमा और बुज़ुर्गों ही से लिया हुआ है। आजकल के उलेमा और लिखने वाले अक्सर इस फ़िक्र में रहते हैं कि अपनी कोई तहक़ीक़ और अपनी तरफ़ से कोई नई चीज़ पेश करें, मैं इस पर अल्लाह तआ़ला का शुक्र-गुज़ार हूँ कि इस सारे काम में मेरा अपना कुछ नहींः

ई हमा गुफ़्तेम व लेक अन्दर पेच बे इनायाते ख़ुदा हेचम व हेच

واللّٰه سبحانه و تعالٰى اسأل الصواب والسداد في المبدأ والمعاد وبه استعين من زلة القدم فيما علمت و مالا اعلم واياه اسأل ان يجعلهٗ خالصا لوجه الكريم وان يتقبله مني كما تقبل من صالحي عباده وان ينفعني به يوم لا ينفع مال ولا بنون و الحمد اولاً واخرًا وظاهرًا و باطنًا وصلى الله تعالٰى على خير خلقه وصفوة رسله خاتم الانبياء وعلى آله واصحابه اجمعين. وبارك وسلم تسليمًا كثيرًا.

(ऊपर दिये गये फ़ारसी के शे'र और उसके बाद की अ़रबी इबारत में हज़रत मुफ़्ती साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी आ़जिज़ी और इस अहम काम के अन्जाम पाने में अल्लाह की तौफ़ीक़ के ही सब कुछ होने का ज़िक्र फ़रमाया है। अ़रबी इबारत में अपनी इस ख़िदमत के क़ुबूल होने और आख़िरत में इसके ज़ख़ीरा बन जाने की दुआ़ फ़रमाई है। वह जाने-अनजाने में होने वाली भूल-चूक से अल्लाह करीम से माफ़ी के तलबगार, इस ख़िदमत के अन्जाम पाने पर अल्लाह के तारीफ़ करने वाले और उसके शुक्रगुज़ार हैं। आख़िर में वह नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम, आपकी आले पाक और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम पर बेहद दुरूद व सलाम भेजने के साथ अपनी तहरीर को ख़त्म करते हैं। मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)

बन्दा-ए-ज़ईफ़ व नाकारा
मुहम्मद शफ़ी
ख़ादिम दारुल-उलूम कराची
25 शाबान सन् 1392 हिजरी

❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋

एक अहम बात

क़ुरआन मजीद के मतन को अ़रबी के अ़लावा हिन्दी या किसी दूसरी भाषा के रस्मुलख़त (लिपि) में रुपान्तर करने पर अक्सर उलेमा की राय इसके विरोध में है। कुछ उलेमा का ख़्याल है कि इस तरह करने से क़ुरआन मजीद के हर्फ़ों की अदायगी में तहरीफ़ (कमी-बेशी और रद्दोबदल) हो जाती है और उनको भय (डर) है कि जिस तरह इन्जील और तौरात तहरीफ़ का शिकार हो गईं वैसे ही ख़ुदा न करे इसका भी वही हाल हो। यह तो ख़ैर नामुम्किन है, इसकी हिफ़ाज़त का वायदा अल्लाह तआ़ला ने ख़ुद किया है और करोड़ों हाफ़िज़ों को क़ुरआन मजीद ज़बानी याद है।

इस सिलसिले में नाचीज़ **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी** (इस तफ़सीर का हिन्दी अनुवादक) अ़र्ज़ करता है कि हक़ीक़त यह है कि अ़रबी रस्मुलख़त के अ़लावा दूसरी किसी भी भाषा में क़ुरआन मजीद को क़तई तौर पर सौ फ़ीसद सही नहीं पढ़ा जा सकता। इसलिए कि हर्फ़ों की बनावट के एतिबार से भी किसी दूसरी भाषा में यह गुंजाईश नहीं कि वह अ़रबी ज़बान के तमाम हुरूफ़ का मुतबादिल (विकल्प) पेश कर सके। फिर अगर किसी तरह कोई निशानी मुक़र्रर करके इस कमी को पूरा करने की कोशिश भी की जाए तो **'मख़ारिजे हुरूफ़'** यानी हुरूफ़ के निकालने का जो तरीक़ा, मक़ाम और इल्म है वह उस वैकल्पिक तरीक़े से हासिल नहीं किया जा सकता। जबकि यह सब को मालूम है कि सिर्फ़ अलफ़ाज़ के निकालने में फ़र्क़ होने से अ़रबी ज़बान में मायने बदल जाते हैं। इसलिये अ़रबी मतन की जो हिन्दी दी गयी है उसको सिर्फ़ यह समझें कि वह आपके अन्दर अ़रबी क़ुरआन पढ़ने का शौक़ पैदा करने के लिये है। तिलावत के लिये अ़रबी ही पढ़िये और उसी को सीखिये। वरना हो सकता है कि किसी जगह ग़लत उच्चारण के सबब पढ़ने में सवाब के बजाय अ़ज़ाब के हक़दार न बन जायें।

मैंने अपनी पूरी कोशिश की है कि जितना मुझसे हो सके इस तफ़सीर को आसान बनाऊँ मगर फिर भी बहुत से मक़ामात पर ऐसे इल्मी मज़ामीन आये हैं कि उनको पूरी तरह आसान नहीं किया जा सका, मगर ऐसी जगहें बहुत कम हैं, उनके सबब इस अहम और क़ीमती सरमाये से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। अगर कोई मक़ाम समझ में न आये तो उस पर निशान लगाकर बाद में किसी आ़लिम से मालूम कर लें। तफ़सीर पढ़ने के लिये यक्सूई और इत्मीनान का एक वक़्त मुक़र्रर करना चाहिये, चाहे वह थोड़ा सा ही हो। अगर इस लगन के साथ इसका मुताला जारी रखा जायेगा तो उम्मीद है कि आप इस क़ीमती

ख़ज़ाने से इल्म व मालूमात का एक बड़ा हिस्सा हासिल कर सकेंगे। यह बात एक बार फिर अर्ज़ किये देता हूँ कि असल मतन को अरबी ही में पढ़िये तभी आप उसका किसी क़द्र हक़ अदा कर सकेंगे। यह ख़ालिके कायनात का कलाम है अगर इसको सीखने में थोड़ा वक़्त और पैसा भी ख़र्च हो जाये तो इस सौदे को सस्ता और लाभदायक समझिये। कल जब आख़िरत का आलम सामने होगा और क़ुरआन पाक पढ़ने वालों को इनामात व सम्मान से नवाज़ा जायेगा तो मालूम होगा कि अगर पूरी दुनिया की दौलत और तमाम उम्र ख़र्च करके भी इसको हासिल कर लिया जाता तो भी इसकी क़ीमत अदा न हो पाती।

हमने रुकूअ़, पाव, आधा, तीन पाव और सज्दे के निशानात मुक़र्रर किये हैं इनको ध्यान से देख लीजिये।

रुकूअ़	✿	पाव	❖
आधा	●	तीन पाव	▲
सज्दा	⨀		

ooooooooooooooooooooooooo

* सूरः फ़ातिहा *

यह सूरत मक्की है। इसमें सात आयतें और एक रुकूअ़ है।
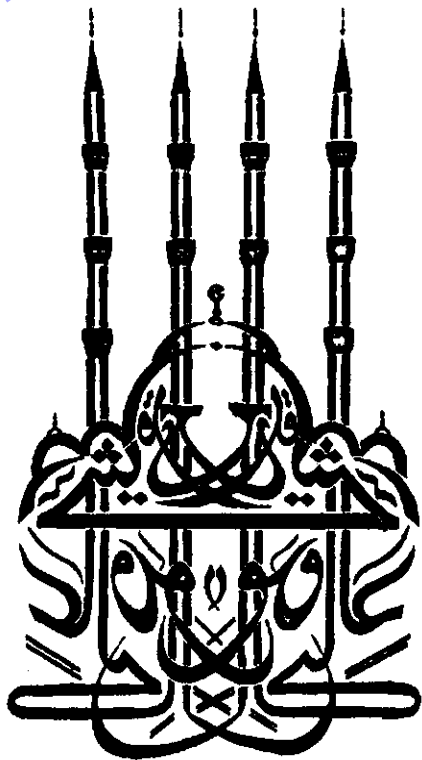
बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

सूरः फ़ातिहा

सूरः फ़ातिहा मक्की है और इसमें सात आयतें हैं।

सूरः फ़ातिहा के फ़ज़ाईल और विशेषतायें

सूरः फ़ातिहा को क़ुरआने करीम में बहुत सी ख़ुसूसियात (विशेषतायें) हासिल हैं- अव्वल यह कि क़ुरआन इसी से शुरू होता है, नमाज़ इसी से शुरू होती है और नुज़ूल (अल्लाह की तरफ़ से उतरने) के एतिबार से भी सबसे पहली सूरत जो मुकम्मल नाज़िल हुई यही सूरत है। सूरः इक़्रा॒ (यानी सूरः अ़लक़), सूरः मुज़्ज़म्मिल और सूरः मुद्दस्सिर की चन्द आयतें ज़रूर इससे पहले नाज़िल हो चुकी थीं मगर मुकम्मल सूरत सबसे पहले फ़ातिहा ही नाज़िल हुई है। जिन हज़रात सहाबा किराम से सूरः फ़ातिहा के नाज़िल होने में सबसे पहली सूरत होना मन्क़ूल है उनका मतलब ग़ालिबन यही है कि पूरी सूरत इससे पहले और कोई नाज़िल नहीं हुई। शायद इसी वजह से इस सूरत का नाम भी फ़ातिहतुल-किताब (किताब को शुरू करने वाली) रखा गया है।

दूसरी ख़ुसूसियत यह है कि यह सूरत एक हैसियत से पूरे क़ुरआन का मतन और सारा क़ुरआन इसकी शरह (व्याख्या) है। चाहे इस वजह से कि पूरे क़ुरआन के मक़ासिद ईमान और नेक अ़मल में फैले हुए हैं, और इन दोनों चीज़ों के बुनियादी उसूल इस सूरत में बयान कर दिये गये हैं। तफ़सीर रूहुल-मआ़नी और रूहुल-बयान में इसका तफ़सीली बयान है। इसी वजह से सूरः फ़ातिहा के नाम उम्मुल-क़ुरआन, उम्मुल-किताब और क़ुरआने अ़ज़ीम भी सही हदीसों में आये हैं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

या इस वजह से कि इस सूरत में उस शख़्स के लिये जो क़ुरआन की तिलावत या मुताला (अध्ययन) शुरू करे एक ख़ास हिदायत दी गई है कि वह इस किताब को अपने तमाम पिछले ख़्यालात और नज़रियात से ख़ाली ज़ेहन होकर ख़ालिस हक़ की तलब और सही रास्ते की जुस्तजू के लिये पढ़े और देखे, और अल्लाह तआ़ला से यह दुआ़ भी करे कि सिराते मुस्तक़ीम (सही रास्ते) की हिदायत अ़ता हो। और सूरत के शुरू में उस ज़ात की हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) का बयान है जिसकी बारगाह में यह हिदायत की दरख़्वास्त पेश करता है और इसी दरख़्वास्त का जवाब पूरा क़ुरआन है जो 'अलिफ़-लाम-मीम ज़ालिकल्-किताबु' से शुरू होता है। गोया इनसान ने जो अल्लाह तआ़ला से सही रास्ते की तलब की थी उसके जवाब में 'ज़ालिकल-किताबु' फ़रमाकर इशारा कर दिया गया कि जो माँगते हो वह इस किताब में मौजूद है।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि क़सम है उस ज़ात की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है कि सूरः फ़ातिहा की नज़ीर न तौरात में नाज़िल हुई न इन्जील और ज़बूर में, और न ख़ुद क़ुरआने करीम में कोई दूसरी सूरत इसके जैसी है। (तिर्मिज़ी अन अबी हुरैरह रज़ि.)

और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि सूरः फ़ातिहा हर बीमारी की शिफ़ा है। (बैहक़ी फ़ी शुअ़बिल-ईमान, सही सनद से, मज़हरी)

सूरः फ़ातिहा का एक नाम हदीस में सूरः शिफ़ा भी आया है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी) और सही बुख़ारी में हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत नक़ल की गयी है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- क़ुरआने करीम की सब सूरतों में अ़ज़ीम तरीन अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल-आ़लमीन है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ○

शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो बड़े मेहरबान निहायत रहम वाले हैं।

बिस्मिल्लाह क़ुरआन की एक आयत है

इस पर तमाम मुसलमानों का इत्तिफ़ाक़ है कि **बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम** क़ुरआन में सूरः नम्ल का पार्ट और हिस्सा है, और इस पर भी इत्तिफ़ाक़ है कि सिवाय सूरः तौबा के हर सूरत के शुरू में बिस्मिल्लाह लिखी जाती है। इसमें मुज्तहिद इमामों का इख़्तिलाफ़ है कि बिस्मिल्लाह सूरः फ़ातिहा का या तमाम सूरतों का हिस्सा है या नहीं? इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रह. का मस्लक यह है कि बिस्मिल्लाह सिवाय सूरः नम्ल के और किसी सूरत का हिस्सा नहीं, बल्कि एक मुस्तक़िल आयत है जो हर सूरत के शुरू में दो सूरतों के बीच फ़ासले और फ़र्क़ को ज़ाहिर करने के लिये नाज़िल हुई है।

क़ुरआन की तिलावत और हर अहम काम को बिस्मिल्लाह से शुरू करने का हुक्म

जाहिलीयत वालों (इस्लाम से पहले के लोगों) की आ़दत थी कि अपने कामों को बुतों के नाम से शुरू किया करते थे, इस रस्मे जाहिलीयत को मिटाने के लिये क़ुरआने करीम की सबसे पहली आयत जो हज़रत जिब्रीले अमीन लेकर आये हैं उसमें क़ुरआन को अल्लाह के नाम से शुरू करने का हुक्म दिया गया। यानीः

اِقْرَاْ بِاسْمِ رَبِّكَ

(पढ़ अपने रब के नाम से)

अ़ल्लामा सुयूती रह. ने फ़रमाया कि क़ुरआन के सिवा दूसरी तमाम आसमानी किताबें भी बिस्मिल्लाह से शुरू की गई हैं और बाज़ उलेमा ने फ़रमाया है कि 'बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम' क़ुरआन और उम्मते मुहम्मदिया की ख़ुसूसियात में से है। दोनों क़ौल में जोड़ यह है कि अल्लाह के नाम से शुरू करना तो तमाम आसमानी किताबों में मुश्तरक है मगर 'बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम' के अलफ़ाज़ क़ुरआन की ख़ुसूसियत है जैसे कि कुछ रिवायतों में है कि नबी करीम सल्ल. भी शुरू में हर काम को अल्लाह के नाम से शुरू करने के लिये 'बिस्मिकल्लाहुम्-म' कहते और लिखते थे। जब आयत 'बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम' नाज़िल हुई तो इन्हीं अलफ़ाज़ को इख़्तियार फ़रमा लिया और हमेशा के

लिये यह सुन्नत जारी हो गई। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी व रूहुल-मआनी)

क़ुरआने करीम में जगह-जगह इसकी हिदायत है कि हर काम को अल्लाह के नाम से शुरू किया जाये और रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि हर मुहिम (अहम और महत्त्वपूर्ण) काम जो बिस्मिल्लाह से शुरू न किया जाये वह बेबरकत रहता है।

एक हदीस में इरशाद फ़रमाया कि घर का दरवाज़ा बन्द करो तो बिस्मिल्लाह कहो, चिराग़ बुझाओ तो बिस्मिल्लाह कहो, बर्तन ढको तो बिस्मिल्लाह कहो, खाना खाने, पानी पीने, वुज़ू करने, सवारी पर सवार होने और उतरने के वक़्त बिस्मिल्लाह पढ़ने की हिदायतें क़ुरआन व हदीस में बार-बार आई हैं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

हर काम को बिस्मिल्लाह से शुरू करने की हिक्मत

इस्लाम ने हर काम को अल्लाह के नाम से शुरू करने की हिदायत देकर इनसान की पूरी ज़िन्दगी का रुख़ अल्लाह तआला की तरफ़ इस तरह फेर दिया है कि वह क़दम-क़दम पर वफ़ादारी के इस हलफ़ को ताज़ा करता रहे कि मेरा वजूद और मेरा कोई काम बग़ैर अल्लाह तआला की मशीयत व इरादे और उसकी इमदाद के नहीं हो सकता, जिसने उसकी हर नक़ल व हरकत (गतिविधि) और तमाम आर्थिक और दुनियावी कामों को भी एक इबादत बना दिया।

अमल कितना मुख़्तसर (छोटा) है कि न इसमें कोई ख़र्च होता है न मेहनत, और फ़ायदा कितना क़ीमती और बड़ा है कि दुनिया भी दीन बन गई। एक काफ़िर भी खाता पीता है और एक मुसलमान भी, मगर मुसलमान अपने लुक़्मे से पहले बिस्मिल्लाह कहकर यह इक़रार करता है कि यह लुक़्मा ज़मीन से पैदा होने से लेकर पक कर तैयार होने तक आसमान व ज़मीन और सितारों और हवा व फ़िज़ाई मख़्लूक़ात की ताक़तें, फिर लाखों इनसानों की मेहनत ख़र्च होकर तैयार हुआ है, इसका हासिल करना मेरे बस में नहीं था, अल्लाह ही की ज़ात है जिसने इन तमाम मराहिल से गुज़ारकर यह लुक़्मा या घूँट मुझे अता फ़रमाया है। मोमिन काफ़िर दोनों सोते जागते भी हैं, चलते फिरते भी हैं, मगर हर मोमिन सोने से पहले और जागने के वक़्त अल्लाह का नाम लेकर अल्लाह के साथ उसी तरह अपने राब्ते (ताल्लुक़ और संपर्क) को दोहराता है जिससे यह तमाम दुनियावी और आर्थिक ज़रूरतें ज़िक्रे ख़ुदा बनकर इबादत में लिखी जाती हैं।

मोमिन सवारी पर सवार होते हुए बिस्मिल्लाह कहकर गोया यह गवाही देता है कि इस सवारी का पैदा करना या मुहैया करना, फिर इसको मेरे क़ब्ज़े में दे देना इनसान की क़ुदरत से बाहर की चीज़ है, रब्बुल-इज़्ज़त ही के बनाये हुए मज़बूत निज़ाम का काम है कि कहीं की लकड़ी, कहीं का लोहा, कहीं की विभिन्न धातें, कहीं के कारीगर, कहीं के चलाने वाले सब के सब मेरी ख़िदमत में लगे हुए हैं, चन्द पैसे ख़र्च करने से अल्लाह की मख़्लूक़ की इतनी बड़ी मेहनत को हम अपने काम में ला सकते हैं और वे पैसे भी हम अपने साथ कहीं से नहीं लाये थे बल्कि उनके हासिल करने के तमाम असबाब भी उसी के पैदा किये हुए हैं। ग़ौर कीजिये कि इस्लाम की सिर्फ़ इसी एक मुख़्तसर सी तालीम ने इनसान को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। इसलिये यह कहना सही है कि बिस्मिल्लाह एक अक्सीर नुस्ख़ा

है जिससे ताँबे का नहीं बल्कि ख़ाक का सोना बनता है। पस तमाम तारीफ़ें उस अल्लाह के लिये हैं जिसने हमें इस्लाम और उसकी तालीमात से नवाज़ा।

मसला

क़ुरआन की तिलावत शुरू करने के वक़्त पहले 'अऊज़ु बिल्लाहि मिनश्शैतानिर्रजीम' और फिर 'बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम' पढ़ना सुन्नत है, और तिलावत के बीच में भी सूरः बराअत (सूरः तौबा) के अ़लावा हर सूरत के शुरू में बिस्मिल्लाह पढ़ना सुन्नत है।

इस तमहीद के बाद आयत "बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम" की तफ़सीर देखिये।

'बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम' की तफ़सीर

'बिस्मिल्लाह' यह कलिमा तीन लफ़्ज़ों से मिलकर बना है- एक हर्फ़ 'बा' दूसरे 'इस्म' तीसरे 'अल्लाह'। हर्फ़ 'बा' अ़रबी ज़बान में बहुत से मायने के लिये इस्तेमाल होता है, जिनमें से तीन मायने इस जगह के मुनासिब हैं, उनमें से हर एक मायने इस जगह लिये जा सकते हैं:

1. मुसाहबत, यानी किसी चीज़ का किसी चीज़ से मिला हुआ होना।
2. इस्तिआ़नत, यानी किसी चीज़ से मदद हासिल करना।
3. तबर्रुक, यानी किसी चीज़ से बरकत हासिल करना।

लफ़्ज़ 'इस्म' में लुग़वी और इल्मी तफ़सीलात बहुत हैं जिनका जानना अ़वाम के लिये ज़रूरी नहीं, इतना समझ लेना काफ़ी है कि उर्दू में इसका तर्जुमा 'नाम' से किया जाता है।

लफ़्ज़ 'अल्लाह' अल्लाह तआ़ला के नामों में सबसे बड़ा और सबसे ज़्यादा जामे नाम है, और बाज़ उलेमा ने इसी को 'इस्मे आज़म' कहा है। और यह नाम अल्लाह के सिवा किसी दूसरे का नहीं हो सकता, इसलिये इस लफ़्ज़ का तसनिया और जमा नहीं आते, क्योंकि अल्लाह वाहिद (एक और अकेला) है उसका कोई शरीक नहीं। ख़ुलासा यह है कि अल्लाह नाम है उस मौजूद हक़ का जो कमाल वाली तमाम सिफ़ात का जामे और रब होने की तमाम सिफ़ात का मालिक, यक्ता और बेमिसाल है। इसलिये कलिमा 'बिस्मिल्लाह' के मायने हर्फ़ 'बा' के उक्त तीन मायनों की तरतीब से यह हुए:-

'अल्लाह के नाम के साथ', 'अल्लाह के नाम की मदद से', 'अल्लाह के नाम की बरकत से'।

लेकिन तीनों सूरतों में यह ज़ाहिर है कि यह कलाम नामुकम्मल है, जब तक उस काम का ज़िक्र न किया जाये जो अल्लाह के नाम के साथ या उसके नाम की बरकत से करना मक़सूद है। इसलिये नहवी क़ायदे के मुताबिक़ यहाँ मक़ाम के मुनासिब कोई फ़ेल (काम) छुपा हुआ होता है जैसे 'शुरू करता हूँ' या 'पढ़ता हूँ' अल्लाह के नाम के साथ। और मुनासिब यह है कि यह फ़ेल (काम) भी बाद में छुपा हुआ माना जाये ताकि हक़ीक़त में शुरू अल्लाह ही के नाम से हो। वह फ़ेल भी अल्लाह के नाम से पहले न आये, सिर्फ़ हर्फ़ 'बा' इस्मुल्लाह (अल्लाह के नाम) से पहले आना अ़रबी ज़बान के लिहाज़ से ज़रूरी व मजबूरी है। इसमें भी 'मुस्हफ़े उस्मानी' (हज़रत उस्मान के ज़रिये प्रसारित क़ुरआनी प्रति) में तमाम सहाबा की सहमति से यह रियायत रखी गई है कि हर्फ़ 'बा' लिपि के

क़ायदे से अलिफ़ के साथ मिलाकर लिखना चाहिये था और लफ़्ज़ 'इस्म' अलग जिसकी सूरत होती بِاسْمِ اللّٰه लेकिन मुस्हफ़े उस्मानी के रस्मुल-ख़त (लिपि) में हर्फ़ 'हमज़ा' को गिराकर हर्फ़ 'बा' को 'सीन' के साथ मिलाकर देखने में 'इस्म' का एक हिस्सा और अंग बना दिया ताकि शुरू 'इस्मुल्लाह' से हो जाये यही वजह है कि दूसरे मौक़ों पर यह हर्फ़ ख़त्म नहीं किया जाता जैसेः

اِقْرَأْ بِاسْمِ رَبِّكَ

में 'बा' को 'अलिफ़' के साथ लिखा जाता है। यह सिर्फ़ बिस्मिल्लाह की ख़ुसूसियत है कि हर्फ़ 'बा' को 'सीन' के साथ मिला दिया गया है।

اَلرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ○

'अर्रहमान अर्रहीम' ये दोनों अल्लाह तआला की सिफ़ात हैं। 'रहमान' के मायने आम रहमत के और 'रहीम' के मायने पूरी रहमत के हैं। आम रहमत से मतलब यह है कि वह ज़ात जिसकी रहमत सारे आलम और सारी कायनात और जो कुछ अब तक पैदा हुआ है और जो कुछ होगा सब पर छायी हुई और शामिल हो, और पूरी रहमत का मतलब यह है कि उसकी रहमत कामिल व मुकम्मल हो।

यही वजह है कि लफ़्ज़ 'रहमान' अल्लाह जल्ल शानुहू की ज़ात के साथ मख़्सूस है, किसी मख़्लूक़ को रहमान कहना जायज़ नहीं। क्योंकि अल्लाह तआला के सिवा कोई भी ऐसा नहीं हो सकता जिसकी रहमत से आलम की कोई चीज़ ख़ाली न रहे। इसी लिये जिस तरह लफ़्ज़ "अल्लाह" का जमा (बहुवचन) और तसनिया (दो के लिये लफ़्ज़) नहीं आता, रहमान का भी जमा व तसनिया नहीं आता, क्योंकि वह एक ही ज़ाते पाक के साथ मख़्सूस है, दूसरे और तीसरे का वहाँ एहतिमाल (संभावना और गुंजाईश) ही नहीं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी) बख़िलाफ़ लफ़्ज़ रहीम के कि इसके मायने में कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसका पाया जाना मख़्लूक़ में नामुम्किन हो, क्योंकि यह हो सकता है कि कोई शख़्स किसी शख़्स से पूरी-पूरी रहमत (हमदर्दी व मुहब्बत) का मामला करे। इसी लिये लफ़्ज़ 'रहीम' इनसान के लिये भी बोला जा सकता है। क़ुरआने करीम में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के लिये भी यह लफ़्ज़ इस्तेमाल फ़रमाया है। चुनाँचे इरशाद हैः 'बिल्मुअ्मिनी-न रऊफ़ुर्रहीम'।

मसला

इससे यह भी मालूम हो गया कि आजकल अ़ब्दुर्रहमान, फ़ज़्लुर्रहमान वग़ैरह नामों में कमी करके 'रहमान' कहते हैं और उस शख़्स को इस लफ़्ज़ से ख़िताब करते हैं, यह नाजायज़ और गुनाह है।

हिक्मत

'बिस्मिल्लाह' में अल्लाह तआला के अस्मा-ए-हुस्ना (पाक नामों) और सिफ़ातें कमाल में से सिर्फ़ दो सिफ़तें ज़िक्र की गई हैं, और वे दोनों लफ़्ज़ रहमत से निकले हुए हैं और रहमत के वसी (फैला हुआ) और कमाल (मुकम्मल होने) पर दलालत करने वाली हैं। इसमें इशारा इस बात की तरफ़ है कि आलम, आसमान व ज़मीन और तमाम कायनात के पैदा करने और इनको पालने वग़ैरह का मंशा अल्लाह तआला की सिफ़ते रहमत है, न उसको इन चीज़ों की ख़ुद कोई ज़रूरत थी न कोई दूसरा इन चीज़ों के पैदा करने पर मजबूर करने वाला था, सिर्फ़ उसी की रहमत के तक़ाज़े से ये सारी चीज़ें और इनकी परवरिश के सारे इन्तिज़ामात वजूद में आये हैं।

अहकाम व मसाईल

'तअ़व्वुज़' का मसला

'तअ़व्वुज़' के मायने हैं 'अऊज़ु बिल्लाहि मिनश्शैतानिर्रजीम' पढ़ना। क़ुरआने करीम में इरशाद है:

فَاِذَا قَرَاْتَ الْقُرْاٰنَ فَاسْتَعِذْ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ ۝

"यानी जब तुम क़ुरआन की तिलावत करो तो अल्लाह से पनाह माँगो शैतान मरदूद के शर (बुराई) से।"

क़ुरआन के पढ़ने से पहले 'तअ़व्वुज़' पढ़ना पूरी उम्मत की सहमति से सुन्नत है, चाहे तिलावत नमाज़ के अन्दर हो या नमाज़ से बाहर। (शरह मुनिया) तअ़व्वुज़ पढ़ना तिलावते क़ुरआन के साथ मख़्सूस है, अ़लावा तिलावत के दूसरे कामों के शुरू में सिर्फ़ बिस्मिल्लाह पढ़ी जाये, तअ़व्वुज़ (अऊज़ु बिल्लाह पढ़ना) मस्नून नहीं। (फ़तावा आ़लमगीरी)

जब क़ुरआने करीम की तिलावत की जाये उस वक़्त 'अऊज़ु बिल्लाह' और 'बिस्मिल्लाह' दोनों पढ़ी जायें। तिलावत के बीच में जब एक सूरत ख़त्म होकर दूसरी शुरू हो तो सूरः बराअत के अ़लावा हर सूरत के शुरू में फिर बिस्मिल्लाह पढ़ी जाये, अऊज़ु बिल्लाह नहीं। और सूरः बराअत अगर तिलावत के दरमियान में आ जाये तो उस पर बिस्मिल्लाह न पढ़े और अगर क़ुरआन की तिलावत सूरः बराअत (सूरः तौबा) ही से शुरू कर रहा है तो उसके शुरू में अऊज़ु बिल्लाह और बिस्मिल्लाह पढ़ना चाहिये। (फ़तावा आ़लमगीरी)

बिस्मिल्लाह के अहकाम

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम क़ुरआने मजीद में सूरः नम्ल में आयत का एक टुकड़ा है और हर दो सूरतों के बीच मुस्तक़िल आयत है, इसलिये इसका अदब व एहतिराम क़ुरआने मजीद ही की तरह वाजिब है, इसको बेवुज़ू हाथ लगाना जायज़ नहीं। (इमाम करख़ी, शरह मुनिया) और जनाबत (नापाकी) या हैज़ व निफ़ास (माहवारी या प्रसव) की हालत में इसको बतौर तिलावत पढ़ना भी पाक होने से पहले जायज़ नहीं, हाँ किसी काम के शुरू में जैसे खाने पीने से पहले बतौर दुआ़ पढ़ना हर हाल में जायज़ है। (शरह मुनिया कबीर)

मसलाः पहली रक्अ़त के शुरू में अऊज़ु बिल्लाह के बाद बिस्मिल्लाह पढ़ना मस्नून है, अलबत्ता इसमें इख़्तिलाफ़ है कि आवाज़ से पढ़ा जाये या आहिस्ता। इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रह. और बहुत से दूसरे इमाम आहिस्ता पढ़ने को तरजीह देते हैं।

पहली रक्अ़त के बाद दूसरी रक्अ़तों के शुरू में भी बिस्मिल्लाह पढ़ना चाहिये इसके मस्नून होने पर सब का इत्तिफ़ाक़ है, और बाज़ रिवायतों में हर रक्अ़त के शुरू में बिस्मिल्लाह पढ़ने को वाजिब कहा गया है। (शरह मुनिया)

मसलाः नमाज़ में सूरः फ़ातिहा के बाद सूरत शुरू करने से पहले बिस्मिल्लाह नहीं पढ़ना चाहिये चाहे जहरी (आवाज़ से क़िराअत करने वाली) नमाज़ हो या सिर्री (यानी बेआवाज़ के क़िराअत वाली

नमाज़), नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अन्हुम से साबित नहीं है। शरह मुनिया में इसी को इमामे आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ रह. का क़ौल लिखा है और शरह मुनिया, दुर्रे मुख़्तार, बुरहान वग़ैरह में इसी को तरजीह दी है, मगर इमाम मुहम्मद रह. का क़ौल यह है कि सिर्री नमाज़ों में पढ़ना बेहतर है। बाज़ रिवायतों में यह क़ौल इमाम अबू हनीफ़ा रह. की तरफ़ भी मन्सूब किया गया है और अ़ल्लामा शामी ने कुछ फ़ुक़हा से इसको तरजीह देना भी नक़ल किया है। बहिश्ती ज़ेवर में भी इसी को इख़्तियार किया गया है और इस पर सब का इत्तिफ़ाक़ है कि कोई पढ़ ले तो मक्रूह नहीं। (फ़तावा शामी)

सूरः फ़ातिहा

सूरः फ़ातिहः मक्का में नाज़िल हुई। इसमें 7 आयतें और 1 रुकूअ़ है।

ركوعها (٥) سُوْرَةُ الْفَاتِحَةِ مَكِّيَّةٌ (١) اٰيَاتُهَا ٧

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۙ﴿١﴾ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ۙ﴿٢﴾ مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ ؕ﴿٣﴾ اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ ؕ﴿٤﴾ اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ ۙ﴿٥﴾ صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ۙ۬ غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ ﴿٧﴾

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम। अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आ़लमीन (1) अर्रह्मानिर्रहीम (2) मालिकि यौमिद्दीन (3) इय्या-क नअ़्बुदु व इय्या-क नस्तअ़ीन (4) इह्दिनस्-सिरातल्-मुस्तक़ीम (5) सिरातल्लज़ी-न अन्अ़म्-त अ़लैहिम (6) ग़ैरिल्-मग़ज़ूबि अ़लैहिम् व लज़्ज़ॉल्लीन। (7) ✿	शुरू अल्लाह के नाम से जो बेहद मेहरबान निहायत रहम वाला है। सब तारीफ़ें अल्लाह के लिये हैं जो पालने वाला सारे जहान का (1) बेहद मेहरबान निहायत रहम वाला (2) मालिक रोज़े जज़ा का (3) तेरी ही हम बन्दगी करते हैं और तुझ ही से मदद चाहते हैं। (4) बतला हमको राह सीधी (5) राह उन लोगों की जिन पर तूने फ़ज़्ल फ़रमाया (6) जिन पर न तेरा ग़ुस्सा हुआ और न वे गुमराह हुए। (7) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो बड़े मेहरबान, निहायत रहम वाले हैं।

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ۝

सब तारीफ़ें अल्लाह तआ़ला के लायक़ हैं जो पालने वाले हैं हर-हर आ़लम के (मख़्लूक़ात, अलग-अलग जिन्स एक-एक आ़लम कहलाता है, जैसे फ़रिश्तों का आ़लम, इनसानों का आ़लम, जिन्नात का आ़लम)।

الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ۝

जो बड़े मेहरबान, निहायत रहम वाले हैं।

مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ۝

जो मालिक हैं बदले के दिन के (मुराद क़ियामत का दिन है जिसमें हर शख़्स अपने अ़मल का बदला पायेगा)।

اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ۝

हम आप ही की इबादत करते हैं और आप ही से मदद की दरख़्वास्त करते हैं।

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ۝

बतला दीजिए हमको रास्ता सीधा (मुराद दीन का रास्ता है)।

صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ

रास्ता उन लोगों का जिन पर आपने इनाम फ़रमाया है (मुराद दीन का इनाम है)।

غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ۝

न रास्ता उन लोगों का जिन पर आपका ग़ज़ब हुआ, और न उन लोगों का जो रास्ते से गुम हो गए। (हिदायत का रास्ता छोड़ने की दो वजह हुआ करती हैं- एक तो यह कि उसकी पूरी तहक़ीक़ ही न करे, 'ज़ॉल्लीन' से ऐसे लोग मुराद हैं। दूसरी वजह यह है कि तहक़ीक़ पूरी होने के बावजूद उस पर अ़मल न करे, 'मग़ज़ूबि अ़लैहिम' से ऐसे लोग मुराद हैं, क्योंकि जान-बूझकर ख़िलाफ़ करना ज़्यादा नाराज़ी का सबब होता है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

सूरः फ़ातिहा के मज़ामीन

सूरः फ़ातिहा सात आयतों पर मुश्तमिल है जिनमें से पहली तीन आयतों में अल्लाह तआ़ला की हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) है और आख़िरी तीन आयतों में इनसान की तरफ़ से दुआ़ व दरख़्वास्त का मज़मून है। जो रब्बुल-इ़ज़्ज़त ने अपनी रहमत से ख़ुद ही इनसान को सिखाया है, और बीच की एक आयत में दोनों चीज़ें मुश्तरक (मिली-जुली) हैं, कुछ हम्द व सना (अल्लाह की तारीफ़)

का पहलू है कुछ दुआ व दरख़्वास्त का।

सही मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत से मन्क़ूल है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया- हक़ तआ़ला ने फ़रमाया है कि नमाज़ (यानी सूरः फ़ातिहा) मेरे और मेरे बन्दे के बीच दो हिस्सों में तक़सीम की गई है, आधी मेरे लिये है और आधी मेरे बन्दे के लिये, और जो कुछ मेरा बन्दा माँगता है वह उसको दे दिया जायेगा। फिर रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि बन्दा जब कहता है- 'अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आ़लमीन' तो अल्लाह तआ़ला फ़रमाता है कि "मेरे बन्दे ने मेरी तारीफ़ की है" और जब वह कहता है- 'अर्रहमानिर्रहीम' तो अल्लाह तआ़ला फ़रमाता है कि "मेरे बन्दे ने मेरी तारीफ़ व सना बयान की है" और जब बन्दा कहता है- 'मालिकि यौमिद्दीन' तो अल्लाह तआ़ला फ़रमाता है कि "मेरे बन्दे ने मेरी बड़ाई बयान की है" और जब बन्दा कहता है- 'इय्या-क नअ़्बुदु व इय्या-क नस्तअ़ीन' तो अल्लाह तआ़ला फ़रमाता है कि "यह आयत मेरे और मेरे बन्दे के बीच मुश्तरक (संयुक्त) है" क्योंकि इसमें एक पहलू हक़ तआ़ला की हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) का है और दूसरा पहलू बन्दे की दुआ़ व दरख़्वास्त का है। इसके साथ यह भी इरशाद होता है कि "मेरे बन्दे को वह चीज़ मिलेगी जो उसने माँगी" फिर जब बन्दा कहता है- 'इह्दिनस्सिरातल् मुस्तक़ीम.......' (आख़िर तक) तो हक़ तआ़ला फ़रमाता है कि "यह सब मेरे बन्दे के लिये है और इसको वह चीज़ मिलेगी जो इसने माँगी।"

(तफ़सीरे मज़हरी)

'अल्हम्दु लिल्लाहि' के मायने यह हैं कि सब तारीफ़ें अल्लाह ही के लिये हैं। यानी दुनिया में जहाँ कहीं किसी चीज़ की तारीफ़ की जाती है वह वास्तव में अल्लाह तआ़ला ही की तारीफ़ है। क्योंकि इस दुनिया में जहाँ हज़ारों हसीन मनाज़िर और लाखों दिलकश नज़ारे और करोड़ों लाभदायक चीज़ें इनसान के दिल को हर वक़्त अपनी तरफ़ खींचती रहती हैं और अपनी तारीफ़ पर मजबूर करती हैं अगर ज़रा नज़र को गहरा कर लिया जाये तो उन सब चीज़ों के पर्दे में एक ही क़ुदरती हाथ काम करता हुआ नज़र आता है, और दुनिया में जहाँ कहीं किसी चीज़ की तारीफ़ की जाती है उसकी हक़ीक़त इससे ज़्यादा नहीं जैसे किसी नक़्श व निगार (फूल-बूटे और कलाकारी) या तस्वीर की या किसी कारीगरी की तारीफ़ की जाये कि ये सब तारीफ़ें दर हक़ीक़त नक़्क़ाश (कलाकार) और चित्रकार की या कारीगर की होती हैं। इस जुमले ने अनेकताओं के भंवर में फंसे हुए इनसान के सामने एक हक़ीक़त का दरवाज़ा खोलकर यह दिखला दिया है कि ये सारी कसरतें (अनेकतायें) एक ही वह्दत (एकता) से जुड़ी हुई हैं और सारी तारीफ़ें दर हक़ीक़त उसी एक क़ादिरे मुतलक़ की हैं उनको किसी दूसरे की तारीफ़ समझना नज़र व समझ की कोताही है:

हम्द रा बा तू निस्बते अस्त दुरुस्त ☆ बर दरे हर के रफ़्त बर दरे तुस्त

यानी तारीफ़ के लायक़ तो बस तेरी ही ज़ात है। जिस दरवाज़े पर भी चले जाओ पहुँचकर मालूम होता है कि दर असल वह तेरा ही दरवाज़ा है। (मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)

और यह ज़ाहिर है कि जब सारी कायनात में तारीफ़ के लायक़ दर हक़ीक़त एक ही ज़ात है तो इबादत की मुस्तहिक़ (पात्र) भी वही ज़ात हो सकती है। इससे मालूम हुआ कि 'अल्हम्दु लिल्लाह'

अगरचे हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) के लिये लाया गया है लेकिन इसके ज़रिये एक तार्किक अन्दाज़ में मख़्लूक़ परस्ती की बुनियाद ख़त्म कर दी गई और बहुत उम्दा तरीक़े पर तौहीद (एक ख़ुदा को मानने) की तालीम दी गई है।

ग़ौर कीजिये कि क़ुरआन के इस मुख़्तसर से शुरूआती जुमले में एक तरफ़ तो हक़ तआ़ला की हम्द व सना (तारीफ़) का बयान हुआ, इसी के साथ मख़्लूक़ात की रंगीनियों में उलझे हुए दिल व दिमाग़ को एक हक़ीक़त की तरफ़ मुतवज्जह करके मख़्लूक़ परस्ती की जड़ काट दी गई और एक बेतोड़ अन्दाज़ से ईमान के सबसे पहले रुक्न अल्लाह की तौहीद का नक़्शा इस तरह जमा दिया गया कि जो दावा है उसी में ग़ौर करो तो वही अपनी दलील भी है। वाक़ई बड़ी बरकत वाली है अल्लाह की पाक ज़ात जो सबसे बेहतर बनाने और पैदा करने वाला है।

'रब्बिल-आ़लमीन' की तफ़सीर

इस मुख़्तसर शुरूआती जुमले के बाद अल्लाह तआ़ला की पहली सिफ़त 'रब्बिल-आ़लमीन' ज़िक्र की गई है। मुख़्तसर अलफ़ाज़ में इसका भी ख़ुलासा देखिये:

लफ़्ज़ 'रब' के मायने अ़रबी लुग़त के एतिबार से तरबियत व परवरिश करने वाले के हैं, और तरबियत इसको कहते हैं कि किसी चीज़ को उसकी तमाम मस्लेहतों की रियायत करते हुए दर्जा-ब-दर्जा आगे बढ़ाया जाये, यहाँ तक कि वह अपने कमाल की हद को पहुँच जाये।

यह लफ़्ज़ (यानी रब) सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला की पाक ज़ात के लिये मख़्सूस है, किसी मख़्लूक़ को बिना इज़ाफ़त के (किसी दूसरे लफ़्ज़ के साथ जोड़े) रब कहना जायज़ नहीं। क्योंकि हर मख़्लूक़ ख़ुद तरबियत की मोहताज है, वह किसी दूसरे की क्या तरबियत कर सकता है।

'अल्-आ़लमीन' आ़लम की जमा (बहुवचन) है जिसमें दुनिया की तमाम जिन्सें आसमान, चाँद, सूरज और तमाम सितारे और हवा व फ़िज़ा, बिजली व बारिश, फ़रिश्ते जिन्नात, ज़मीन और इसकी तमाम मख़्लूक़ात, हैवानात, इनसान, पेड़-पौधे, जमादात (बेजान चीज़ें) सब दाख़िल हैं। इसलिये "रब्बिल-आ़लमीन" के मायने यह हुए कि अल्लाह तआ़ला पूरी कायनात की तमाम जिन्सों की तरबियत करने वाले हैं, और यह भी कोई बईद नहीं कि जैसे यह एक आ़लम (जहान) है जिसमें हम बसते हैं और इसके चाँद सूरज के निज़ाम और बारिश व बिजली और ज़मीन की लाखों मख़्लूक़ात को हम ख़ुद देखते हैं, यह सारा एक ही आ़लम हो और इसी जैसे और हज़ारों लाखों दूसरे आ़लम (जहान) हों जो इस आ़लम के बाहर की ख़ला (स्पेस) में मौजूद हों। इमाम राज़ी रह. ने अपनी तफ़सीरे कबीर में फ़रमाया है कि इस आ़लम से बाहर एक असीमित ख़ला का वजूद अ़क्ली दलीलों से साबित है और यह भी साबित है कि अल्लाह तआ़ला को हर चीज़ पर क़ुदरत है, उसके लिये क्या मुश्किल है कि उसने इस असीमित ख़ला में हमारे सामने मौजूद आ़लम की तरह के और भी हज़ारों लाखों आ़लम बना रखे हों।

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है कि "आ़लम चालीस हज़ार हैं, यह दुनिया पूरब से पश्चिम तक एक आ़लम है, बाक़ी इसके अ़लावा हैं।" इसी तरह हज़रत मुक़ातिल रह. इमामे

तफ़सीर से मन्क़ूल है कि "आलम अस्सी हज़ार हैं" (तफ़सीरे क़ुर्तुबी) इस पर जो यह शुब्हा किया जाता था कि ख़ला में इनसानी मिज़ाज के मुनासिब हवा नहीं होती इसलिये इनसान या कोई हैवान वहाँ ज़िन्दा नहीं रह सकता, इमाम राज़ी रह. ने इसका जवाब यह दिया है कि यह क्या ज़रूरी है कि इस आलम से बाहर ख़ला में जो दूसरे आलम के बाशिन्दे हों उनका मिज़ाज भी हमारे आलम के बाशिन्दों की तरह हो जो ख़ला में ज़िन्दा न रह सकें, यह क्यों नहीं हो सकता कि उन आलमों के बाशिन्दों (रहने वालों) के मिज़ाज व तबीयतें, उनकी ग़िज़ा व हवा यहाँ के बाशिन्दों से बिल्कुल अलग और भिन्न हो।

यह मज़मून तो अब से सात सौ सतत्तर साल पहले (आज 1433 हिजरी है तो इसमें 41 साल और जोड़ लीजिये) के इस्लामी फ़लॉस्फ़र इमाम राज़ी रह. का लिखा हुआ है जबकि फ़िज़ा व ख़ला की सैर और उसकी पैमाईश के यंत्र व उपकरण और माध्यम उस वक़्त ईजाद न हुए थे, आज रॉकेटों, टंकों और मिज़ाईलों के ज़माने में ख़ला के मुसाफ़िरों ने जो कुछ आकर बतलाया वह भी इससे ज़्यादा नहीं कि इस आलम (जहान) से बाहर की ख़ला की कोई हद और सीमा नहीं है और कुछ कहा नहीं जा सकता कि उस असीमित ख़ला में क्या कुछ मौजूद है। इस दुनिया से बहुत क़रीबी सितारों, चाँद और मिर्रीख़ की आबादी के बारे में जो अन्दाज़े आज के आधुनिक विज्ञान के विशेषज्ञ पेश कर रहे हैं वो भी यही हैं कि अगर उन सय्यारों के ऊपर कुछ लोग आबाद हैं तो यह ज़रूरी नहीं कि वे उन्हीं ख़ुसूसियात और उसी मिज़ाज व तबीयत के हों जो इस आलम के इनसान और हैवानात व पेड़-पौधों के लिये ज़रूरी समझे जाते हैं, बल्कि अ़क्ल व समझ कहती है कि उनके मिज़ाज व तबीयत, उनकी ग़िज़ा व ज़रूरियात यहाँ के लोगों से बिल्कुल अलग हों, इसलिये एक को दूसरे पर क़ियास करने की कोई वजह नहीं।

इमाम राज़ी रह. की ताईद और इस सिलसिले की नयी मालूमात के लिये वह लेख काफ़ी है जो अमेरिकी ख़लाई मुसाफ़िर जॉन गेलेन ने हाल ही में ख़ला (स्पेस) के सफ़र से वापस आकर प्रकाशित कराया है, जिसमें **किरनों के साल** का नाम देकर एक लम्बी मुद्दत व दूरी का पैमाना क़ायम किया और उसके ज़रिये अपनी ज़ेहनी पहुँच की हद तक ख़ला का कुछ अन्दाज़ा लगाया और फिर यह इक़रार किया है कि कुछ नहीं बताया जा सकता कि ख़ला की वुस्अ़त (लम्बाई-चौड़ाई और फैलाव) कितनी और कहाँ तक है।

क़ुरआन पाक के इस मुख़्तसर जुमले के साथ अब तमाम आलम और उसकी कायनात पर नज़र डालिये और अ़क्ल व समझ की आँखों से देखिये कि हक़ तआ़ला ने आ़लम की परवरिश का कैसा मज़बूत व स्थिर और अ़क्लों को हैरान कर देने वाला निज़ाम बनाया है। अफ़लाक (आसमानों) से लेकर तत्वों तक, सय्यारों व सितारों से लेकर ज़र्रात तक हर चीज़ इस सिस्टम के बंधन में बंधी हुई है, और हकीमे मुतलक़ की ख़ास हिक्मत व मर्ज़ी के मातहत हर चीज़ अपने-अपने काम में लगी हुई है। एक लुक़्मा जो इनसान के मुँह तक पहुँचता है अगर उसकी पूरी हक़ीक़त पर इनसान ग़ौर करे तो मालूम होगा कि उसकी तैयारी में आसमान और ज़मीन की तमाम ताक़तें और करोड़ों इनसानों और जानवरों की मेहनतें शामिल हैं। सारे आ़लम की ताक़तें महीनों ख़िदमत में व्यस्त रहीं जब यह लुक़्मा

तैयार हुआ, और यह सब कुछ इसलिये है कि इनसान इसमें सोच व विचार से काम ले और समझे कि अल्लाह तआ़ला ने आसमान से लेकर ज़मीन तक अपनी तमाम मख़्लूक़ात को उसकी ख़िदमत में लगा रखा है तो जिस हस्ती को उसने कायनात का मख़्दूम (सेवाओं का केन्द्र) बना रखा है वह भी बेकार व बेहूदा नहीं हो सकती, उसका भी कोई काम होगा, उसके ज़िम्मे भी कोई ख़िदमत होगीः

अब्र व बाद व मह व ख़ुर्शीद व फ़लक दर कारन्द
ता तू नाने ब-कफ़ आरी व ब-ग़फ़लत न-ख़ुरी
हमा अज़ बहरे तू सरगश्ता व फ़रमाँबरदार
शर्ते इन्साफ़ न-बाशद कि तू फ़रमाँ न-बरी

(ये अश्आ़र शेख़ सअ़दी रह. के हैं। फ़रमाते हैं कि बादल, हवा, चाँद, सूरज और आसमान सब काम में लगे हुए हैं ताकि तू अपनी ग़िज़ा पा सके और उसे ग़फ़लत से न खाये। कायनात की ये तमाम चीज़ें तेरे ताबे हैं और तेरे काम में लगी हैं, यह कोई इन्साफ़ की बात न होगी कि तू अपने ख़ालिक़ व मालिक का ताबेदार व फ़रमाँबरदार न बने।)
मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

क़ुरआने हकीम ने इनसानी पैदाईश और इसकी ज़िन्दगी के मक़सद को इस आयत में स्पष्ट फ़रमाया हैः

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْاِنْسَ اِلَّا لِیَعْبُدُوْنَ٥ (٥٦:٨٢)

तर्जुमाः मैंने जिन्न और इनसान को और किसी काम के लिये नहीं बनाया सिवाय इसके कि वे मेरी इबादत करें। (सूरः 82 आयत 56)

उक्त तक़रीर से मालूम हुआ कि 'रब्बिल-आ़लमीन' एक हैसियत से पहले जुमले 'अल्हम्दु लिल्लाहि' की दलील है कि जब तमाम कायनात की तरबियत व परवरिश की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ एक ज़ात अल्लाह तआ़ला की है तो हम्द व सना (तारीफ़ व इबादत) की असली मुस्तहिक़ भी वही ज़ात हो सकती है। इसलिये पहली आयत 'अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल-अ़लमीन' में हम्द व सना (तारीफ़) के साथ ईमान के सबसे पहले रुक्न अल्लाह तआ़ला की तौहीद (एक माबूद होने) का बयान भी असरदार अन्दाज़ में आ गया।

दूसरी आयत में रहमत की सिफ़त का ज़िक्र रहमान व रहीम के लफ़्ज़ की सिफ़त से किया गया है। ये दोनों सीग़े (कलिमे) मुबालग़े (ज़्यादती) के हैं जिनमें अल्लाह की रहमत की वुस्अ़त व कसरत और कमाल का बयान है। इस सिफ़त के ज़िक्र करने में शायद इस तरफ़ इशारा है कि यह तमाम कायनात व मख़्लूक़ात की तरबियत व परवरिश की ज़िम्मेदारी जो हक़ तआ़ला ने अपने ज़िम्मे ले रखी है वह किसी अपनी ज़रूरत या दबाव और मजबूरी से नहीं बल्कि यह सब कुछ उसकी सिफ़ते रहमत का तक़ाज़ा है, अगर पूरी कायनात न हो तो उसका कुछ नुक़सान नहीं, और हो जाये तो उस पर कुछ बोझ नहीं।

"मालिकि यौमिद्दीन" लफ़्ज़ 'मालिक' मिल्क से निकला है जिसके मायने हैं किसी चीज़ पर ऐसा क़ब्ज़ा कि वह उसमें तसर्रुफ़ (इख़्तियार चलाने और उलट-फेर) करने की जायज़ क़ुदरत रखता

हो। लफ़्ज़ दीन के मायने हैं जज़ा (बदला) देना। 'मालिकि यौमिद्दीन' का लफ़्ज़ी तर्जुमा हुआ "मालिक बदले के दिन का" यानी बदले के दिन में मिल्कियत रखने वाला। वह मिल्कियत किस चीज़ पर होगी? इसका ज़िक्र नहीं किया गया। तफ़सीरे कश्शाफ़ में है कि इसमें इशारा उमूम की तरफ़ है यानी बदले के दिन में तमाम कायनात और तमाम उमूर (मामलात) की मिल्कियत सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही की होगी। (तफ़सीरे कश्शाफ़)

'रोज़े जज़ा' की हक़ीक़त और अ़क़्ली तौर पर उसकी ज़रूरत

अब यहाँ चन्द बातें क़ाबिले ग़ौर हैं:-

अव्वल यह कि 'रोज़े जज़ा' (बदले का दिन) किस दिन का नाम है और उसकी क्या हक़ीक़त है? दूसरे यह कि अल्लाह तआ़ला की मिल्कियत तमाम कायनात पर जिस तरह रोज़े जज़ा में होगी ऐसे ही आज भी है, फिर रोज़े जज़ा की क्या ख़ुसूसियत है?

पहली बात का जवाब यह है कि रोज़े जज़ा उस दिन का नाम है जिसको अल्लाह तआ़ला ने अच्छे और बुरे आमाल का बदला देने के लिये मुक़र्रर फ़रमाया है। लफ़्ज़ "रोज़े जज़ा" से एक अ़ज़ीमुश्शान फ़ायदा यह हासिल हुआ कि दुनिया नेक व बद आमाल की जज़ा व सज़ा की जगह नहीं, बल्कि एक दारुल-अ़मल (अ़मल करने की जगह) फ़र्ज़ अदा करने का दफ़्तर है, तन्ख़्वाह या सिला वसूल करने की जगह नहीं। इससे मालूम हो गया कि दुनिया में किसी को ऐश व आराम, दौलत व राहत से मालामाल देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह अल्लाह के नज़दीक मक़बूल व महबूब है या किसी को रंज व मुसीबत में मुब्तला देखकर यह नहीं क़रार दिया जा सकता कि वह अल्लाह तआ़ला के नज़दीक नापसन्दीदा और उसके गुस्से का शिकार है। जिस तरह दुनिया के दफ़्तरों और कारख़ानों में किसी को अपना फ़र्ज़ अदा करने में लगा देखा जाये तो कोई अ़क़्लमन्द उसको मुसीबत का मारा नहीं कहता, और न वह ख़ुद अपनी मशक़्क़त के बावजूद अपने आपको मुसीबत में गिरफ़्तार समझता है, बल्कि वह उस मेहनत व मशक़्क़त को अपनी सबसे बड़ी कामयाबी ख़्याल करता है और कोई मेहरबान उसको उस मशक़्क़त से मुक्त करना चाहे तो वह उसको अपना सबसे बड़ा दुश्मन ख़्याल करता है, क्योंकि वह उस तीस दिन की मेहनत के पीछे उस राहत को देख रहा है जो उसको तन्ख़्वाह की शक्ल में मिलने वाली है।

यही वजह है कि इस दुनिया में अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और उनके बाद औलिया-अल्लाह सबसे ज़्यादा मुसीबत व बला में मुब्तला होते हैं, और वे अपनी उस हालत पर निहायत मुत्मईन और कई बार ख़ुश नज़र आते हैं:

न-शवद् नसीबे दुश्मन कि शवद् हलाके तेग़त
सरे दोस्ताँ सलामत कि तू ख़ंजर आज़माई

(दुश्मन का ऐसा नसीब न हो कि वह तेरी तलवार से हलाक हो, दोस्तों के सर सलामत मौजूद हैं ताकि तू अपने ख़ंजर चलाने का शौक़ पूरा कर सके। मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)

ग़र्ज़ यह कि दुनिया का ऐश व आराम हक़ व सदाक़त की और रंज व मुसीबत बद-अ़मली की

यक़ीनी निशानी नहीं है, हाँ कभी-कभी किसी-किसी अ़मल की जज़ा या सज़ा का हल्का सा नमूना दुनिया में भी ज़ाहिर कर दिया जाता है, वह उसका पूरा बदला नहीं होता महज़ तंबीह करने (चेतावनी देने) के लिये एक नमूना होता है। इसके बारे में क़ुरआने करीम में इरशाद है:

وَلَنُذِيقَنَّهُم مِّنَ الْعَذَابِ الْأَدْنَىٰ دُونَ الْعَذَابِ الْأَكْبَرِ لَعَلَّهُمْ يَرْجِعُونَ ۝ (٣٢:٢١)

"यानी हम लोगों को (आख़िरत के) बड़े अ़ज़ाब से पहले (कई बार) दुनिया में एक क़रीबी अ़ज़ाब का मज़ा चखा देते हैं ताकि वे बाज़ आ जायें।" (सूरः 32 आयत 21)

और दूसरी जगह इरशाद है:

كَذَٰلِكَ الْعَذَابُ ۖ وَلَعَذَابُ الْآخِرَةِ أَكْبَرُ ۚ لَوْ كَانُوا يَعْلَمُونَ ۝ (٦٨:٣٣)

"ऐसा होता है अ़ज़ाब, और आख़िरत का अ़ज़ाब बहुत बड़ा है, अगर वे समझें।"

(सूरः 68 आयत 33)

ग़र्ज़ यह कि दुनिया की राहत व मुसीबत कई बार तो इम्तिहान और आज़माईश होती है और कभी अ़ज़ाब भी होती है, मगर वह अ़मल का पूरा बदला नहीं होता बल्कि एक नमूना होता है, क्योंकि यह सब कुछ चन्द दिन का और महज़ आ़रज़ी (अस्थाई) है, मदार व मेयार वह राहत व तकलीफ़ है जो हमेशा क़ायम रहने वाली है। और जो इस आ़लम से गुज़रने के बाद आख़िरत के आ़लम में आने वाली है, उसका नाम रोज़े जज़ा है। और जब यह मालूम हो गया कि नेक व बद अ़मल का बदला या पूरा बदला इस दुनिया में नहीं मिलता और अ़दल व इन्साफ़ और अ़क्ल का तक़ाज़ा यह है कि नेक व बद अच्छा और बुरा बराबर न रहे बल्कि हर अ़मल की जज़ा या सज़ा मिलनी चाहिये। इसलिये ज़रूरी है कि इस आ़लम के बाद कोई दूसरा आ़लम (जहान) हो जिसमें हर छोटे बड़े और अच्छे बुरे अ़मल का हिसाब और उसकी जज़ा या सज़ा इन्साफ़ के मुताबिक़ मिले। उसी को क़ुरआने करीम की इस्तिलाह में रोज़े जज़ा या क़ियामत या आख़िरत कहा जाता है। क़ुरआन ने ख़ुद इस मज़मून को सूरः मोमिन में वज़ाहत से बयान फ़रमाया है:

وَمَا يَسْتَوِي الْأَعْمَىٰ وَالْبَصِيرُ ۝ وَالَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ وَلَا الْمُسِيءُ ۚ قَلِيلًا مَّا تَتَذَكَّرُونَ ۝ إِنَّ السَّاعَةَ لَآتِيَةٌ لَّا رَيْبَ فِيهَا وَلَٰكِنَّ أَكْثَرَ النَّاسِ لَا يُؤْمِنُونَ ۝ (آيت ٥٨:٥٩)

"यानी बीना और नाबीना (देखने वाला और अन्धा) और (एक) वे लोग जो ईमान लाये और उन्होंने अच्छे काम किये और (दूसरे) बद-किरदार आपस में बराबर नहीं हो सकते। तुम लोग बहुत ही कम समझते हो। क़ियामत तो ज़रूर ही आकर रहेगी (ताकि हर एक अ़मल का पूरा बदला उसको मिल जाये) उसके आने में किसी तरह का शक है ही नहीं, मगर अक्सर लोग नहीं ईमान लाते।"

(सूरः 58 आयत 59)

मालिक कौन है?

"मालिकि यौमिद्दीन" में दूसरी क़ाबिले ग़ौर बात यह है कि हर अ़क्ल वाले के नज़दीक यह बात आ़म सी और बिल्कुल ज़ाहिर है कि हक़ीक़ी मालिक तमाम कायनात के ज़र्रे-ज़र्रे की वही पाक

ज़ात है जिसने उनको पैदा किया, बढ़ाया, परवरिश की और जिसकी मिल्कियत हर चीज़ पर मुकम्मल है, ज़ाहिर पर भी बातिन पर भी, ज़िन्दा पर भी मुर्दा पर भी, और जिसकी मिल्कियत की न कोई शुरूआत है न अंत। इसके विपरीत इनसान की मिल्कियत को देखिये वह शुरू व ख़त्म के दायरे में सीमित है, पहले नहीं थी और फिर न रहेगी, तथा उसकी मिल्कियत व इख़्तियार चीज़ों के ज़ाहिर पर है बातिन पर नहीं, ज़िन्दा पर है मुर्दा पर नहीं। इसलिये हर समझदार के नज़दीक सिर्फ़ रोज़े जज़ा की नहीं बल्कि दुनिया में भी तमाम कायनात की हक़ीक़ी (वास्तविक) मिल्कियत सिर्फ़ हक़ तआ़ला ही की है। फिर इस आयत में अल्लाह तआ़ला को ख़ास रोज़े जज़ा का मालिक फ़रमाने में क्या हिक्मत है?

सो क़ुरआने करीम की दूसरी आयत में ग़ौर करने से मालूम हुआ कि दुनिया में भी अगरचे हक़ीक़ी (असली) और मुकम्मल मिल्कियत तमाम कायनात पर सिर्फ़ परवर्दिगारे आ़लम ही की है लेकिन उसी ने अपने करम और हिक्मते बालिग़ा से एक प्रकार की अधूरी मिल्कियत इनसान को भी अ़ता फ़रमा रखी है और दुनिया के क़ानूनों में उसकी मिल्कियत का काफ़ी एहतिमाम भी किया गया है। आजकी दुनिया में इनसान माल व दौलत का मालिक है, ज़मीन जायदाद का मालिक है, कोठी बंगले और फ़र्नीचर का मालिक है, नौकरों और ख़ादिमों का मालिक है और यह नाक़िस सी मिल्कियत जो उसको महज़ आज़माईश के लिये दी गई थी वह इसी में घमंडी और और बद-मस्त हो गया, इस आयत में हक़ तआ़ला ने "मालिकि यौमिद्दीन" फ़रमाकर उस घमंडी व ग़ाफ़िल इनसान को आगाह फ़रमाया कि ये मिल्कियतें और सब ताल्लुक़ात व राब्ते सिर्फ़ चन्द दिन के लिये हैं, एक दिन ऐसा आने वाला है जिसमें कोई किसी चीज़ का ज़ाहिरी तौर पर भी मालिक न रहेगा, न कोई किसी का ख़ादिम रहेगा न मख़दूम, न कोई किसी का आक़ा रहेगा न ग़ुलाम, तमाम कायनात की मिल्क और मुल्क सिर्फ़ एक पाक ज़ात अल्लाह तआ़ला की ही होगी।

इस आयत की पूरी तफ़सीर और रोज़े जज़ा की वज़ाहत सूरः मोमिन की इन आयतों में है:

يَوْمَ هُمْ بٰرِزُوْنَ، لَا يَخْفٰى عَلَى اللّٰهِ مِنْهُمْ شَيْءٌ لِمَنِ الْمُلْكُ الْيَوْمَ، لِلّٰهِ الْوَاحِدِ الْقَهَّارِ ۝ اَلْيَوْمَ تُجْزٰى كُلُّ نَفْسٍ بِمَا كَسَبَتْ لَا ظُلْمَ الْيَوْمَ اِنَّ اللّٰهَ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ۝ (آیت ١٦، ١٧)

इसमें रोज़े जज़ा (बदले के दिन) का बयान करते हुए फ़रमायाः

"जिस दिन सब लोग (ख़ुदा के) सामने आ मौजूद होंगे (कि) उनकी कोई बात ख़ुदा से (ज़ाहिरी एतिबार से भी) छुपी न रहेगी। आज के दिन किसकी हुकूमत होगी? बस अल्लाह ही की होगी, जो यक्ता और ग़ालिब है। आज हर शख़्स को उसके किये का बदला दिया जायेगा, आज किसी पर ज़ुल्म न होगा, अल्लाह तआ़ला बहुत जल्द हिसाब लेने वाले हैं।"(सूरः मोमिन आयत 16,17)

सूरः फ़ातिहा (अल्हम्दु शरीफ़) के शुरू में बयान किया गया था कि इस सूरत की तीन शुरू की आयतों में अल्लाह तआ़ला की हम्द व सना (तारीफ़) का बयान है, ये तीनों आयतें आ चुकीं और इनकी तफ़सीर में आप यह भी मालूम कर लीजिये कि पहली दो आयतों में हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) के तहत में ईमान के बुनियादी उसूल, अल्लाह तआ़ला के वजूद और उसकी तौहीद (एक माबूद होने) का बयान भी एक अनोखे और लाजवाब अन्दाज़ में आ गया है। इस तीसरी आयत की तफ़सीर में आपने अब मालूम कर लिया कि इसके सिर्फ़ दो लफ़्ज़ों में हम्द व सना के साथ इस्लाम के

अज़ीमुश्शान इन्क़िलाबी अ़क़ीदे यानी क़ियामत व आख़िरत का बयान भी दलील के साथ आ गया, अब चौथी आयत का बयान आता है।

"इय्या-क नअ़्बुदु व इय्या-क नस्तअ़ीन" इस आयत में एक पहलू हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) का और दूसरा दुआ़ व दरख़्वास्त का है। **नअ़्बुदु** इबादत से निकला है, जिसके मायने हैं किसी की हद से ज़्यादा ताज़ीम व मुहब्बत की वजह से उसके सामने अपनी हद से ज़्यादा आ़जिज़ी और फ़रमाँबरदारी का इज़हार। **नस्तअ़ीन** इस्तिआ़नत से निकला है जिसके मायने हैं किसी से मदद माँगना। आयत का तर्जुमा यह है कि "हम तेरी ही इबादत करते हैं और सिर्फ़ तुझसे ही मदद माँगते हैं"। इनसान पर तीन हालात गुज़रते हैं गुज़रा वक़्त, मौजूदा वक़्त, आने वाला वक़्त। पिछली तीन आयतों में से "अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल्-आ़लमीन" और "अर्रहमानिर्रहीम" में इनसान को इस पर चेता दिया गया कि वह अपने माज़ी (गुज़रे वक़्त) और हाल (मौजूदा वक़्त) में सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला का मोहताज है, कि उसको माज़ी में नेस्ती से हस्ती में लाया (यानी वजूद बख़्शा) और उसको तमाम कायनात से ज़्यादा बेहतरीन शक्ल व सूरत और अ़क़्ल व समझ अ़ता फ़रमाई, और हाल (मौजूदा वक़्त) में उसकी परवरिश और तरबियत का सिलसिला जारी है, और "मालिकि यौमिद्दीन" में यह बता दिया कि मुस्तक़बिल (आने वाले वक़्त) में भी वह ख़ुदा ही का मोहताज है कि रोज़े जज़ा में उसके सिवा किसी का कोई मददगार नहीं हो सकता।

और जब तीनों आयतों ने यह वाज़ेह कर दिया कि इनसान अपनी ज़िन्दगी के तीनों दौर में ख़ुदा ही का मोहताज है तो इसका तबई और अ़क़्ली तक़ाज़ा यह हुआ कि इबादत भी उसी की की जाये, क्योंकि इबादत जो इन्तिहाई ताज़ीम व मुहब्बत के साथ अपनी इन्तिहाई आ़जिज़ी और पस्ती के इज़हार का नाम है वह किसी दूसरी हस्ती के लायक़ नहीं। इसका नतीजा लाज़िमी यह है कि एक आ़क़िल इनसान पुकार उठे कि हम तेरे सिवा किसी की इबादत नहीं करते। तबीयत के इसी तक़ाज़े और जज़्बे को "इय्या-क नअ़्बुदु" में ज़ाहिर फ़रमाया गया है। और जब यह मालूम हो गया कि हाजत व ज़रूरत पूरी करना सिर्फ़ एक ही ज़ात अल्लाह तआ़ला का काम है तो अ़क़्ली व तबई तक़ाज़ा यह है कि अपने कामों में मदद भी सिर्फ़ उसी से माँगनी चाहिये। इसी अ़क़्ली व तबई तक़ाज़े को "व इय्या-क नस्तअ़ीन" में ज़िक्र फ़रमाया गया है। (तफ़सीर रूहुल-बयान)

ग़र्ज़ कि इस चौथी आयत में एक हैसियत से अल्लाह तआ़ला की हम्द व सना (तारीफ़) है कि इबादत व मदद के लायक़ सिर्फ़ वही है, और दूसरी हैसियत से इनसान की दुआ़ व दरख़्वास्त है कि हमारी मदद फ़रमाये, और तीसरी हैसियत और भी है कि इसमें इनसान को इसकी तालीम दी गई है कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करे और वास्तविक तौर पर अल्लाह के सिवा किसी को ज़रूरत व हाजत पूरी करने वाला न समझे और किसी के सामने सवाल का हाथ न फैलाये। किसी नबी या वली वग़ैरह को वसीला क़रार देकर अल्लाह तआ़ला से दुआ़ माँगना इसके ख़िलाफ़ नहीं।

इस आयत में यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि इरशाद यह है कि "हम तुझसे ही मदद माँगते हैं" किस काम में मदद माँगते हैं इसका ज़िक्र नहीं। जमहूर मुफ़स्सिरीन ने लिखा है कि इसका ज़िक्र न करने में उमूम की तरफ़ इशारा है कि हम अपनी इबादत और हर दीनी व दुनियावी काम और हर मक़सद में सिर्फ़ आप ही की मदद चाहते हैं।

फिर इबादत सिर्फ़ नमाज़ रोज़े का नाम नहीं, इमाम ग़ज़ाली रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी किताब "अरबईन" में इबादत की दस क़िस्में लिखी हैं:

1. नमाज़। 2. ज़कात। 3. रोज़ा। 4. हज। 5. तिलावते क़ुरआन। 6. हर हालत में अल्लाह का ज़िक्र करना। 7. हलाल रोज़ी के लिये कोशिश करना। 8. पड़ोसी और साथी के हुक़ूक़ अदा करना। 9. लोगों को नेक कामों का हुक्म देना और बुरे कामों से मना करना। 10. रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत का इत्तिबा करना।

इसलिये इबादत में अल्लाह तआ़ला के साथ किसी को शरीक न करने के मायने यह होंगे कि न किसी की मुहब्बत अल्लाह तआ़ला के बराबर हो, न किसी का ख़ौफ़ उसके बराबर हो, न किसी से उम्मीद उसकी तरह हो, न किसी पर भरोसा अल्लाह के जैसा हो, न किसी की इताअ़त व ख़िदमत और काम को इतना ज़रूरी समझे जितना अल्लाह तआ़ला की इबादत को, न अल्लाह तआ़ला की तरह किसी की नज़्र और मन्नत माने, न अल्लाह तआ़ला की तरह किसी दूसरे के सामने अपनी मुकम्मल आ़जिज़ी और पस्ती का इज़हार करे, न वे काम किसी दूसरे के लिये करे जो इन्तिहाई पस्ती और ख़ुद को झुकाने की अ़लामात हैं जैसे रुकूअ़, सज्दा।

आख़िरी तीन आयतें जिनमें इनसान की दुआ़ व दरख़्वास्त का मज़मून है और एक ख़ास दुआ़ की तालीम है, ये हैं:

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَo صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ، غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَo

"इह्दिनस्सिरातल् मुस्तक़ीम। सिरातल्लज़ी-न अन्अ़म्-त अ़लैहिम् ग़ैरिल् मग़ज़ूबि अ़लैहिम् वलज़्ज़ॉल्लीन।"

जिसका तर्जुमा यह है कि "बतला दीजिये हमको रास्ता सीधा। रास्ता उन लोगों का जिन पर आपने इनाम फ़रमाया। न रास्ता उन लोगों का जिन पर आपका ग़ज़ब किया गया, और न उन लोगों का जो रास्ते से गुम हो गये।"

हिदायत के दर्जे

इन तीनों आयतों में चन्द बातें क़ाबिले ग़ौर हैं:

यहाँ पहली बात क़ाबिले ग़ौर यह है कि सिराते मुस्तक़ीम (सीधे रास्ते) की हिदायत के लिये दुआ़ जो इस आयत में तालीम फ़रमाई गई है उसके मुख़ातब जिस तरह तमाम इनसान और आ़म मोमिनीन हैं, इसी तरह औलिया-अल्लाह और हज़राते अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम भी उसके मामूर (पाबन्द) हैं, जो बिला शुब्हा हिदायत पाये हुए बल्कि दूसरों के लिये हिदायत का ज़रिया और स्रोत हैं, फिर इस पहले से हासिल चीज़ की बार-बार दुआ़ माँगने का क्या मतलब है?

इसका जवाब हिदायत की पूरी हक़ीक़त मालूम करने पर मौक़ूफ़ है। इसको किसी क़द्र तफ़सील के साथ बयान किया जाता है। जिससे उक्त सवाल के अ़लावा उन तमाम शुब्हात का भी जवाब मालूम हो जायेगा जो हिदायत के मफ़्हूम और मतलब के बारे में क़ुरआने करीम के बहुत से मक़ामात में उमूमन पेश आते हैं और हिदायत की हक़ीक़त से नावाक़िफ़ शख़्स क़ुरआने करीम की बहुत सी

आयतों में आपस में टकराव, विरोधाभास और इख़्तिलाफ़ महसूस करने लगता है।

लफ़्ज़ "हिदायत" की बेहतरीन तशरीह इमाम राग़िब अस्फ़हानी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी किताब "मुफ़रदातुल-क़ुरआन" में तहरीर फ़रमाई है, जिसका ख़ुलासा यह है कि हिदायत के असली मायने हैं किसी शख़्स को मन्ज़िले मक़सूद की तरफ़ मेहरबानी के साथ रहनुमाई करना और हिदायत करना, असली मायने में यह सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही का फ़ेल है जिसके विभिन्न दर्जे हैं:

एक दर्जा हिदायत का आ़म है जो कायनात और मख़्लूक़ात की तमाम क़िस्मों जमादात (बेजान चीज़ों), नबातात (पेड़-पौधों और वनस्पति), हैवानात (जानदार) वग़ैरह को शामिल है। यहाँ आप यह ख़्याल न करें कि इन बेजान बेशऊर चीज़ों को हिदायत से क्या काम? क्योंकि क़ुरआनी तालीमात से यह वाज़ेह है कि कायनात की तमाम क़िस्में और उनका ज़र्रा-ज़र्रा अपने-अपने दर्जे के मुताबिक़ ज़िन्दगी व एहसास भी रखता है और अ़क़्ल व शऊर भी। यह दूसरी बात है कि यह जौहर किसी क़िस्म और प्रजाति में कम किसी में ज़्यादा है। इसी वजह से जिन चीज़ों में यह जौहर (माद्दा और रूह) बहुत कम है उनको बेजान, बेशऊर समझा और कहा जाता है। अल्लाह के अहकाम में भी उनके शऊर की कमज़ोरी का इतना असर आया है कि उनको अहकाम का मुकल्लफ़ (पाबन्द) नहीं बनाया गया। जिन मख़्लूक़ात में ज़िन्दगी के आसार नुमायाँ (ज़ाहिर और स्पष्ट) हैं मगर अ़क़्ल व शऊर नुमायाँ नहीं उनको ज़िन्दगी वाला, जानदार मगर बेअ़क़्ल व बेशऊर कहा जाता है और जिनमें ज़िन्दगी के साथ अ़क़्ल व शऊर के आसार भी नुमायाँ नज़र आते हैं उनको अ़क़्ल वाला कहा जाता है, और इसी अलग-अलग दर्जे होने और अ़क़्ल व शऊर की कमी-ज़्यादती की वजह से तमाम कायनात में शरीअ़त के अहकाम का मुकल्लफ़ (पाबन्द) सिर्फ़ इनसान और जिन्नात को क़रार दिया गया है, कि इनमें अ़क़्ल व शऊर भी मुकम्मल है, मगर इसके मायने यह नहीं कि दूसरी क़िस्में और जातियों में ज़िन्दगी व एहसास या अ़क़्ल व शऊर बिल्कुल नहीं, क्योंकि हक़ तआ़ला का इरशाद है:

وَاِنْ مِّنْ شَیْءٍ اِلَّا یُسَبِّحُ بِحَمْدِهٖ وَلٰـكِنْ لَّا تَفْقَهُوْنَ تَسْبِیْحَهُمْ، (سورة بنی اسرآئیل: ٤٤)

"यानी कोई चीज़ ऐसी नहीं जो तारीफ़ के साथ उसकी पाकी (ज़बान या अपने हाल से) बयान न करती हो, लेकिन तुम लोग उनकी पाकी बयान करने को समझते नहीं हो।"

और सूरः नूर में इरशाद है:

اَلَمْ تَرَ اَنَّ اللّٰهَ یُسَبِّحُ لَهٗ مَنْ فِی السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَالطَّیْرُ صٰٓفّٰتٍ، كُلٌّ قَدْ عَلِمَ صَلَاتَهٗ وَتَسْبِیْحَهٗ، وَاللّٰهُ عَلِیْمٌۢ بِمَا یَفْعَلُوْنَ۝ (آیت ٤١)

"यानी क्या तुझको मालूम नहीं कि अल्लाह तआ़ला की पाकी बयान करते हैं सब जो कुछ आसमानों में और ज़मीन में (मख़्लूक़ात) हैं, और (ख़ासकर) परिन्दे जो पंख फैलाये हुए उड़ते फिरते हैं, सब को अपनी-अपनी दुआ़ और तस्बीह मालूम है, और अल्लाह तआ़ला को उन लोगों के सब कामों का पूरा इल्म है।"

ज़ाहिर है कि अल्लाह तआ़ला की हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) और उसकी पाकी बयान करना अल्लाह तआ़ला की मारिफ़त (पहचान) पर मौक़ूफ़ है, और यह भी ज़ाहिर है कि अल्लाह तआ़ला की मारिफ़त ही सबसे बड़ा इल्म है। और यह इल्म अ़क़्ल व शऊर के बिना नहीं हो सकता।

इसलिये इन आयतों से साबित हुआ कि तमाम कायनात के अन्दर रूह व ज़िन्दगी भी है, समझ व एहसास भी, अ़क्ल व शऊर भी, मगर बाज़ कायनात में यह जौहर इतना कम और छुपा हुआ है कि आ़म देखने वालों को उसका एहसास नहीं होता, इसी लिये आ़म बोल-चाल में उनको बेजान या बेअ़क्ल कहा जाता है, और इस बिना पर उनको शरीअ़त के अहकाम का मुकल्लफ़ (पाबन्द) नहीं बनाया गया। क़ुरआने करीम का यह फ़ैसला उस वक़्त का है जब दुनिया में न कहीं कोई फ़ल्सफ़ी था, न कोई फ़ल्सफ़ा किसी मुरत्तब शक्ल में था, बाद में आने वाले फ़लॉस्फ़रों ने भी अपने-अपने वक़्त में इसकी तस्दीक़ (पुष्टि) की। क़दीम (प्राचीन) फ़ल्सफ़े में भी इस ख़्याल के कुछ लोग गुज़रे हैं और नये फ़ल्सफ़े और वैज्ञानिकों ने तो पूरी वज़ाहत के साथ इसको साबित किया है।

ग़र्ज़ यह कि अल्लाह की हिदायत का यह पहला दर्जा तो तमाम मख़्लूक़ात, जमादात (बेजान चीज़ों), नबातात (वनस्पति और पेड़-पौधों वग़ैरह), हैवानात (जानदार और पशु-पक्षियों आदि) इनसान और जिन्नात को शामिल है, इसी आ़म हिदायत का ज़िक्र क़ुरआने करीम की इस आयत में फ़रमाया गया है:

اَعْطٰى كُلَّ شَیْءٍ خَلْقَهٗ ثُمَّ هَدٰىo (۲۰:۵۰)

यानी "अल्लाह तआ़ला ने हर चीज़ को उसकी ख़िल्क़त (पैदाईश और ख़ास शक्ल व सूरत) अ़ता फ़रमाई है, फिर उस बनावट और प्रजाति के मुनासिब उसको हिदायत दी।"

और यही मज़मून सूरः अअ़्ला में इन अलफ़ाज़ में इरशाद हुआ है:

سَبِّحِ اسْمَ رَبِّكَ الْاَعْلَىo الَّذِیْ خَلَقَ فَسَوّٰىo وَالَّذِیْ قَدَّرَ فَهَدٰىo

"यानी आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) अपने बुलन्द शान वाले परवर्दिगार की तस्बीह कीजिये जिसने सारी मख़्लूक़ात को बनाया, फिर ठीक बनाया। और जिसने तजवीज़ किया, फिर राह बताई।"

यानी जिसने तमाम मख़्लूक़ात के लिये ख़ास-ख़ास मिज़ाज और ख़ास-ख़ास ख़िदमतें तजवीज़ (तय) फ़रमाकर हर एक को उसके मुनासिब हिदायत (तालीम) कर दी।

इसी आ़म हिदायत का नतीजा है कि कायनाते आ़लम की तमाम जिन्सें और क़िस्में, जातियाँ और प्रजातियाँ अपना-अपना तयशुदा फ़र्ज़ (ज़िम्मेदारी और कर्तव्य) निहायत सलीक़े से अदा कर रहे हैं। जो चीज़ जिस काम के लिये बना दी है वह उसको ऐसी ख़ूबी के साथ अदा कर रही है कि अ़क्ल हैरान रह जाती है। हज़रत मौलाना रूमी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इसी मज़मून को अपने इस शे'र में बयान फ़रमाया है:

ख़ाक व बाद व आब व आतिश बन्दा अन्द
बा मन व तू मुर्दा, बा हक़ ज़िन्दा अन्द

(यानी आग, पानी, मिट्टी और हवा सब अपने काम में लगे हुए हैं, वे अगरचे तेरे नज़दीक मुर्दा और बेजान हैं लेकिन अल्लाह ने उनके अन्दर भी ज़िन्दगी व शऊर रखा है।)

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

ज़बान से निकली हुई आवाज़ के मायने का इल्म व एहसास न नाक कर सकती है न आँख,

हालाँकि ये ज़बान से ज़्यादा क़रीब हैं। इस इल्म व समझ के फ़रीज़े को अल्लाह तआ़ला ने कानों के सुपुर्द किया है, वही ज़बान की बात को लेते हैं और समझते व एहसास करते हैं। इसी तरह कानों से देखने या सूँघने का काम नहीं लिया जा सकता, नाक से देखने या सुनने का काम नहीं लिया जा सकता। सूरः मरियम में इसी मज़मून को इन अलफ़ाज़ में बयान फ़रमाया गया है:

اِنْ كُلُّ مَنْ فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ اِلَّآ اٰتِي الرَّحْمٰنِ عَبْدًا٥ (١٩:٩٣)

"यानी कोई नहीं आसमान और ज़मीन में जो न आये रहमान का बन्दा होकर।"

हिदायत का दूसरा दर्जा इसके मुक़ाबले में ख़ास है। यानी सिर्फ़ उन चीज़ों के साथ मख़्सूस है जो उर्फ़ (आ़म बोल-चाल) में अ़क़्ल व शऊर वाली कहलाती हैं, यानी इनसान और जिन्नात। यह हिदायत अम्बिया और आसमानी किताबों के ज़रिये हर इनसान को पहुँचती है। फिर कोई इसको क़ुबूल करके मोमिन व मुस्लिम हो जाता है कोई रद्द करके काफ़िर ठहरता है।

तीसरा दर्जा हिदायत का इससे भी ज़्यादा ख़ास है कि सिर्फ़ मोमिनों व मुत्तक़ियों के साथ मख़्सूस है। यह हिदायत भी अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से डायरेक्ट इनसान को अ़ता होती है। इस हिदायत का दूसरा नाम तौफ़ीक़ है, यानी ऐसे असबाब और हालात पैदा कर देना कि क़ुरआनी हिदायतों का क़ुबूल करना और उन पर अ़मल करना आसान हो जाये, और उनकी ख़िलाफ़वर्ज़ी (ख़िलाफ़ अ़मल करना और उल्लंघन) दुश्वार हो जाये। इस तीसरे दर्जे का फैलाव, असीमितता और इसके दर्जात ग़ैर-मुतनाही हैं (यानी उनकी कोई हद और सीमा नहीं), यही दर्जा इनसान की तरक़्क़ी का मैदान है। नेक आमाल के साथ-साथ हिदायत के इस दर्जे में इज़ाफ़ा होता रहता है। क़ुरआने करीम की अनेक आयतों में इस ज़्यादती और इज़ाफ़े का ज़िक्र है। जैसे:

وَالَّذِيْنَ اهْتَدَوْا زَادَهُمْ هُدًى (٤٧:١٧)

"और जिन लोगों ने हिदायत का रास्ता इख़्तियार किया है अल्लाह ने उन्हें हिदायत में और तरक़्क़ी दी है।"

وَمَنْ يُّؤْمِنْ بِاللّٰهِ يَهْدِ قَلْبَهٗ

"जो शख़्स अल्लाह पर ईमान लाये उसके दिल को हिदायत कर देते हैं।"

وَالَّذِيْنَ جَاهَدُوْا فِيْنَا لَنَهْدِيَنَّهُمْ سُبُلَنَا. (٢٩:٦٩)

"जो लोग हमारे रास्ते में मुजाहदा (मेहनत व कोशिश) करते हैं हम उनको अपने रास्तों की और ज़्यादा हिदायत कर देते हैं।"

यही वह मैदान है जहाँ हर बड़े से बड़ा नबी व रसूल और वलीयुल्लाह आख़िर उम्र तक हिदायत व तौफ़ीक़ की ज़्यादती का तालिब नज़र आता है।

हिदायत के दर्जों की इस तशरीह (वज़ाहत) से आपने समझ लिया होगा कि हिदायत एक ऐसी चीज़ है जो सब को हासिल भी है और उसके मज़ीद बुलन्द और ऊँचे दर्जे हासिल करने से किसी बड़े से बड़े इनसान को अलग नहीं रखा जा सकता। इसी लिये सूरः फ़ातिहा की अहम तरीन दुआ़ हिदायत को क़रार दिया गया जो एक मामूली मोमिन के लिये भी मुनासिबे हाल है और बड़े से बड़े रसूल और वली के लिये भी उतनी ही अहम है। यही वजह है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की

आख़िर उम्र में सूरः फ़तह के अन्दर फ़त्हे-मक्का के फ़ायदे व लाभ बतलाते हुए यह भी इरशाद हुआः

وَيَهْدِيَكَ صِرَاطًا مُّسْتَقِيْمًاO

यानी "मक्का मुकर्रमा इसलिये आपके हाथों फ़तह कराया गया ताकि आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) को सिराते मुस्तक़ीम (सीधे रास्ते) की हिदायत हो।"

ज़ाहिर है कि सैयदुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पहले से न सिर्फ़ हिदायत याफ़्ता बल्कि दूसरों के लिये भी हिदायत का पैकर थे, फिर इस मौक़े पर आपको हिदायत होने के इसके सिवा कोई मायने नहीं हो सकते कि हिदायत का कोई बहुत आला मक़ाम आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को उस वक़्त हासिल हुआ।

हिदायत की इस तशरीह (व्याख्या और वज़ाहत) से आपके लिये क़ुरआन समझने में बहुत से फ़ायदे हासिल हो गये।

पहला फ़ायदा यह कि क़ुरआन में कहीं तो हिदायत को हर मोमिन व काफ़िर के लिये बल्कि तमाम मख़्लूक़ात के लिये आ़म फ़रमाया गया है और कहीं इसको सिर्फ़ मुत्तक़ी लोगों के साथ मख़्सूस लिखा गया, जिसमें नावाक़िफ़ को एक टकराव और मज़मून में विरोधाभास का शुब्हा हो सकता है। हिदायत के आ़म व ख़ास दर्जे मालूम होने के बाद यह शुब्हा ख़ुद-ब-ख़ुद दूर हो जाता है कि एक दर्जा सब को आ़म और शामिल है और दूसरा दर्जा मख़्सूस है।

दूसरा फ़ायदा यह है कि क़ुरआन में एक तरफ़ तो जगह-जगह यह इरशाद है कि अल्लाह तआ़ला ज़ालिमों या फ़ासिक़ों को हिदायत नहीं फ़रमाते, और दूसरी तरफ़ कई-कई बार यह इरशाद है कि अल्लाह तआ़ला सब को हिदायत फ़रमाते हैं। इसका जवाब भी दर्जों की तफ़सील से वाज़ेह हो गया कि आ़म हिदायत सब को की जाती है और हिदायत का तीसरा मख़्सूस दर्जा ज़ालिमों व फ़ासिक़ों (बदकारों) को नसीब नहीं होता।

तीसरा फ़ायदा यह है कि हिदायत के तीन दर्जों में से पहला और तीसरा दर्जा बिला-वास्ता (डायरेक्ट तौर पर) हक़ तआ़ला का फ़ेल है, इसमें किसी नबी या रसूल का दख़ल नहीं, अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और रसूलों का काम सिर्फ़ हिदायत के दूसरे दर्जे से मुताल्लिक़ है।

क़ुरआने करीम में जहाँ कहीं अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को हादी क़रार दिया है वह इसी दूसरे दर्जे के एतिबार से है। और जहाँ यह इरशाद है:

اِنَّكَ لَا تَهْدِیْ مَنْ اَحْبَبْتَ. (۲۸:۵٦)

यानी "आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) हिदायत नहीं कर सकते जिसको चाहें" तो इसमें हिदायत का तीसरा दर्जा मुराद है। यानी तौफ़ीक़ देना आपका काम नहीं।

ग़र्ज़ यह कि "इह्दिनस्सिरातल् मुस्तक़ीम" एक जामे और अहम तरीन दुआ़ है जो इनसान को सिखला दी गई है। इनसान का कोई फ़र्द इससे बेनियाज़ नहीं। दीन और दुनिया दोनों में सिराते मुस्तक़ीम (सही रास्ते) के बग़ैर फ़लाह व कामयाबी नहीं। दुनिया की उलझनों में भी सिराते मुस्तक़ीम की दुआ़ अक्सीर नुस्ख़ा है मगर लोग तवज्जोह नहीं करते। तर्जुमा इस आयत का यह है कि "बतला दीजिये हमको रास्ता सीधा।"

'सिराते मुस्तक़ीम' कौनसा रास्ता है?

सीधा रास्ता वह है जिसमें मोड़ न हो, और मुराद इससे दीन का वह रास्ता है जिसमें इफ़रात व तफ़रीत न हो। 'इफ़रात' के मायने हैं हद से आगे बढ़ना और 'तफ़रीत' के मायने हैं कोताही करना। फिर इसके बाद की दो आयतों में उस 'सिराते मुस्तक़ीम' (सीधे रास्ते) का पता दिया गया है जिसकी दुआ इस आयत में तालीम की गई है। इरशाद होता है:

صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ

"यानी रास्ता उन लोगों का जिन पर आपने इनाम फ़रमाया" और वे लोग जिन पर अल्लाह तआ़ला का इनाम हुआ उनकी तफ़सील एक दूसरी आयत में इस तरह आई है:

اَلَّذِيْنَ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ مِّنَ النَّبِيّٖنَ وَالصِّدِّيْقِيْنَ وَالشُّهَدَآءِ وَالصّٰلِحِيْنَ.

"यानी वे लोग जिन पर अल्लाह तआ़ला का इनाम हुआ, अर्थात् अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और सिद्दीक़ीन और शहीद हज़रात और सालिहीन।"

अल्लाह की बारगाह में मक़बूल बन्दों के ये चार दर्जे हैं, जिनमें सबसे आला दर्जे में अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम हैं। और सिद्दीक़ीन वे लोग हैं जो अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की उम्मत में सबसे ज़्यादा और बड़े रुतबे वाले होते हैं जिनमें कमालाते बातिनी भी होते हैं, उर्फ़ में उनको औलिया कहा जाता है। शहीद वे हैं जिन्होंने दीन की मुहब्बत में अपनी जान तक दे दी। और सालिहीन (नेक लोग) वे हैं जो शरीअ़त के पूरे ताबे होते हैं वाजिबात में भी, मुस्तहब्बात में भी, जिनको उर्फ़ में नेक दीनदार कहा जाता है।

इस आयत में पहले सकारात्मक और साबित करने के अन्दाज़ से सिराते मुस्तक़ीम को मुतैयन किया गया है कि इन चार तब्क़ों के हज़रात जिस रास्ते पर चलें वह सिराते मुस्तक़ीम (सीधा रास्ता) है। उसके बाद आख़िर की आयत में नकारात्मक और रोक दिये जाने वाली सूरत से इसका निर्धारण किया गया ताकि इस रास्ते महफ़ूज़ रहा जाये। इरशाद है:

غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ۝

"यानी न रास्ता उन लोगों का जिन पर आपका ग़ज़ब किया गया, और न उन लोगों का रास्ता जो गुम हो गये।"

"ग़ज़ब किये गये" से वे लोग मुराद हैं जो दीन के अहकाम को जानने पहचानने के बावजूद शरारत या नफ़्सानी इच्छाओं की वजह से उनकी ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन और अवमानना) करते हैं, या दूसरे लफ़्ज़ों में अहकामे इलाही की तामील में कोताही (यानी तफ़रीत) करते हैं। जैसे आम तौर पर यहूद का हाल था कि दुनिया के घटिया फ़ायदों की ख़ातिर दीन को क़ुरबान करते और अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की तौहीन करते थे। और "रास्ते से गुम हो गये" से मुराद वे लोग हैं जो नावाक़िफ़ियत और जहालत (अज्ञानता) के सबब दीन के मामले में ग़लत रास्ते पर पड़ गये, और दीन की निर्धारित हद से निकल कर इफ़रात और हद से बढ़ने में मुब्तला हो गये। जैसे आम तौर पर ईसाई थे कि नबी की ताज़ीम (अदब व एहतिराम) में इतने बढ़े कि उन्हीं को ख़ुदा बना लिया। एक

तरफ़ यह ज़ुल्म कि अल्लाह के नबियों की बात न मानें, उन्हें क़त्ल तक करने से गुरेज़ न करें, और दूसरी तरफ़ यह ज़्यादती कि उनको ख़ुदा बना लें।

आयत के मतलब का हासिल यह हुआ कि हम वह रास्ता नहीं चाहते जो नफ़्सानी इच्छाओं के ताबे बुरे अ़मल करने वाले और दीन में तफ़रीत (कोताही) करने वालों का है, और न वह रास्ता चाहते हैं जो जाहिल गुमराह और दीन में हद से आगे बढ़ने (इफ़रात करने) वालों का है, बल्कि उनके दरमियान का सीधा रास्ता चाहते हैं जिसमें न इफ़रात है न तफ़रीत, और जो मनमानी और नफ़्सानी इच्छाओं की पैरवी से तथा शुब्हात और बुरे अ़क़ीदों से पाक है।

सूरः फ़ातिहा की सातों आयतों की तफ़सीर ख़त्म हो गई। इस पूरी सूरत का ख़ुलासा और हासिले मतलब यह दुआ है कि या अल्लाह! हमें सिराते मुस्तक़ीम (सीधे और सही रास्ते) की हिदायत अ़ता फ़रमा, और चूँकि दुनिया में सिराते मुस्तक़ीम का पहचानना ही सबसे बड़ा इल्म और बड़ी कामयाबी है और इसी की पहचान में ग़लती होने से दुनिया की क़ौमें तबाह होती हैं, वरना ख़ुदा तलबी और उसके लिये मेहनत व कोशिशों की तो बहुत से काफ़िरों में भी कोई कमी नहीं, इसी लिये क़ुरआने करीम ने सिराते मुस्तक़ीम को पूरी वज़ाहत के साथ पसन्दीदा और नापसन्दीदा (सकारात्मक और नकारात्मक) दोनों पहलुओं से वाज़ेह फ़रमाया है।

सिराते मुस्तक़ीम अल्लाह की किताब और अल्लाह वालों दोनों के मजमूए से मिलता है

यहाँ एक बात क़ाबिले ग़ौर है और इसमें ग़ौर करने से एक बड़े इल्म का दरवाज़ा खुलता है। वह यह कि सिराते मुस्तक़ीम (सीधे रास्ते) के मुतैयन करने के लिये बज़ाहिर साफ़ बात यह थी कि सिराते रसूल या सिराते क़ुरआन (रसूल का रास्ता या क़ुरआन का रास्ता) फ़रमा दिया जाता जो मुख़्तसर भी था और स्पष्ट भी, क्योंकि पूरा क़ुरआन दर हक़ीक़त सिराते मुस्तक़ीम की तशरीह है और पूरी तालीमाते रसूल उसी की तफ़सील। लेकिन क़ुरआने करीम की इस मुख़्तसर सूरत में इख़्तिसार और वज़ाहत के इस पहलू को छोड़कर सिराते मुस्तक़ीम के निर्धारण के लिये अल्लाह तआ़ला ने मुस्तक़िल दो आयतों में सुबूत और नफ़ी दोनों पहलुओं से सिराते मुस्तक़ीम को इस तरह मुतैयन फ़रमाया कि अगर सीधा रास्ता चाहते हो तो इन लोगों को तलाश करो और इनके तरीक़े को इख़्तियार करो। क़ुरआने करीम ने इस जगह न यह फ़रमाया कि क़ुरआन का रास्ता इख़्तियार करो, क्योंकि महज़ किताब इनसानी तरबियत के लिये काफ़ी नहीं। और न यह फ़रमाया कि रसूल का रास्ता इख़्तियार करो, क्योंकि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बक़ा इस दुनिया में हमेशा के लिये नहीं और आप सल्ल. के बाद कोई दूसरा रसूल और नबी नहीं, इसलिये सिराते मुस्तक़ीम जिन लोगों के ज़रिये हासिल हो सकता है उनमें नबियों के अ़लावा ऐसे हज़रात भी शामिल कर दिये गये जो क़ियामत तक हमेशा मौजूद रहेंगे। जैसे सिद्दीक़ीन, शहीद हज़रात और सालिहीन (नेक लोग)।

ख़ुलासा यह है कि सीधा रास्ता मालूम करने के लिये हक़ तआ़ला ने कुछ बन्दों और इनसानों का

पता दिया, किसी किताब का हवाला नहीं दिया। एक हदीस में है कि जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को ख़बर दी कि पिछली उम्मतों की तरह मेरी उम्मत भी सत्तर फ़िर्क़ों में बंट जायेगी और सिर्फ़ एक जमाअ़त उनमें हक़ पर होगी। तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने मालूम किया कि वह कौनसी जमाअ़त है? इस पर भी हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जो जवाब दिया है उसमें भी कुछ अल्लाह वालों ही का पता दिया गया है। फ़रमायाः

ما انا علیه و اصحابی

यानी हक़ पर वह जमाअ़त होगी जो मेरे और मेरे सहाबा के तर्ज़ (रास्ते और तरीक़े) पर हो।

इस ख़ास तर्ज़ (तरीक़े और रास्ते) में शायद इसकी तरफ़ इशारा हो कि इनसान की तालीम व तरबियत महज़ किताबों और रिवायतों से नहीं हो सकती, बल्कि माहिर अफ़राद की सोहबत और उनसे सीखकर हासिल होती है। यानी हक़ीक़त में इनसान का मुअ़ल्लिम और मुरब्बी (सिखाने और तरबियत करने वाला) इनसान ही हो सकता है, सिर्फ़ किताब मुअ़ल्लिम और मुरब्बी नहीं हो सकती। बक़ौल अकबर इलाहाबादी मरहूम केः

कोर्स तो लफ़्ज़ ही सिखाते हैं आदमी, आदमी बनाते हैं

और यह एक ऐसी हक़ीक़त है कि जो दुनिया के तमाम कारोबार में खुली आँखों दिखाई देती है, कि महज़ किताबी तालीम से न कोई कपड़ा सीना सीख सकता है न खाना पकाना, न डॉक्टरी की किताब पढ़कर कोई डॉक्टर बन सकता है, न इन्जीनियरी की किताबों के महज़ अध्ययन से कोई इन्जीनियर बनता है। इसी तरह क़ुरआने करीम व हदीस का सिर्फ़ मुताला इनसान की तालीम और अख़्लाक़ी तरबियत के लिये हरगिज़ काफ़ी नहीं हो सकता, जब तक उसको किसी मुहक़्क़िक़ माहिर से बाक़ायदा हासिल न किया जाये। क़ुरआन व हदीस के मामले में बहुत से लिखे पढ़े आदमी इस मुग़ालते (धोखे और ग़लती) में मुब्तला हैं कि महज़ तर्जुमा या तफ़सीर देखकर वे क़ुरआन के माहिर हो सकते हैं, यह बिल्कुल फ़ितरत के ख़िलाफ़ तसव्वुर (सोच) है। अगर महज़ किताब काफ़ी होती तो रसूलों के भेजने की ज़रूरत न थी, किताब के साथ रसूल (पैग़म्बर) को मुअ़ल्लिम (सिखाने वाला) बनाकर भेजना और सिराते मुस्तक़ीम को मुतैयन करने के लिये अपने मक़बूल बन्दों की फ़ेहरिस्त देना इसकी दलील है कि महज़ किताब का मुताला तालीम व तरबियत के लिये काफ़ी नहीं, बल्कि किसी माहिर से सीखने की ज़रूरत है।

मालूम हुआ कि इनसान की बेहतरी और कामयाबी के लिये दो चीज़ें ज़रूरी हैं- एक किताबुल्लाह जिसमें इनसानी ज़िन्दगी के हर शोबे (क्षेत्र) से मुताल्लिक़ अहकाम मौजूद हैं। दूसरे अल्लाह के ख़ास बन्दे, यानी अल्लाह वाले उनसे लाभ उठाने की सूरत यह है कि किताबुल्लाह के परिचित उसूल पर अल्लाह वालों को परखा जाये, जो इस मेयार पर न उतरें उनको अल्लाह वाले ही न समझा जाये और जब अल्लाह वाले सही मायने में हासिल हो जायें तो उनसे किताबुल्लाह का मफ़्हूम (मतलब व मायने) सीखने और अ़मल करने का काम लिया जाये।

सामुदायिक झगड़ों का बड़ा सबब

सामुदायिक और जमाअ़ती झगड़ों और मतभेदों का एक बड़ा सबब यही है कि कुछ लोगों ने सिर्फ़ किताबुल्लाह को ले लिया, अल्लाह वालों से नज़र फेर ली, उनकी तफ़सीर व तालीम को कोई हैसियत न दी, और कुछ लोगों ने सिर्फ़ अल्लाह वालों (शख़्सियतों) को मेयारे हक़ समझ लिया और किताबुल्लाह से आँखें बन्द कर लीं, और इन दोनों तरीक़ों का नतीजा गुमराही है।

सूरः फ़ातिहा के मुताल्लिक़ अहकाम व मसाईल

सूरः फ़ातिहा में पहले अल्लाह तआ़ला की हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) है, फिर सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही की इबादत का इक़रार और इसका इज़्हार है कि हम उसके सिवा किसी को अपना हाजत रवा (ज़रूरत पूरी करने वाला) नहीं समझते। यह गोया वफ़ादारी का अ़हद है जो इनसान अपने रब के साथ करता है। उसके बाद फिर एक अहम दुआ़ है जो तमाम इनसानी मक़सदों व ज़रूरतों पर हावी है और उसके अन्दर बहुत से फ़ायदे और मसाईल आये हैं। उनमें से चन्द अहम मसाईल को लिखा जाता है।

दुआ़ करने का तरीक़ा

1. कलाम करने के इस ख़ास अन्दाज़ के ज़रिये इनसान को यह तालीम दी गई है कि जब अल्लाह तआ़ला से कोई दुआ़ व दरख़्वास्त करना चाहो तो उसका तरीक़ा यह है कि पहले उसकी हम्द व सना (तारीफ़ करने) का फ़र्ज़ अदा करो, फिर इस बात की वफ़ादारी का हलफ़ (अ़हद) करो कि हम उसके सिवा न किसी को लायक़े इबादत समझते हैं और न किसी को सही मायने में मुश्किल का हल करने वाला और ज़रूरत पूरी करने वाला मानते हैं। उसके बाद अपने मतलब की दुआ़ करो। इस तरीक़े से जो दुआ़ माँगी जायेगी उसके क़ुबूल होने की प्रबल और पूरी उम्मीद है। (अहकामे जस्सास)

और दुआ़ में भी ऐसी जामे दुआ़ इख़्तियार करो जिसमें इख़्तिसार के साथ (यानी थोड़े लफ़्ज़ों में) इनसान के तमाम मक़सद दाख़िल हो जायें। जैसे सीधे रास्ते की हिदायत, कि दुनिया व दीन के हर काम में अगर इनसान का रास्ता सीधा हो जाये तो कहीं ठोकर लगने और नुक़सान पहुँचने का ख़तरा नहीं रहता। ग़र्ज़ इस जगह ख़ुद हक़ तआ़ला की तरफ़ से अपनी हम्द व सना (तारीफ़) बयान करने का असल मक़सद इनसान को तालीम देना है।

अल्लाह तआ़ला की तारीफ़ करना इनसान का फ़ितरी फ़र्ज़ है

2. इस सूरत के पहले जुमले में अल्लाह तआ़ला की हम्द (तारीफ़) बयान करने की तालीम व तरग़ीब है, मगर हम्द किसी नेमत या सिफ़त की बिना पर हुआ करती है, यहाँ किसी नेमत या सिफ़त का ज़िक्र नहीं। इसमें इशारा है कि अल्लाह तआ़ला की नेमतें बेशुमार हैं उनका कोई इनसान इहाता (पूरी जानकारी) नहीं कर सकता, जैसे कि क़ुरआने करीम का इरशाद है:

وَاِنْ تَعُدُّوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ لَا تُحْصُوْهَا (٣٤:١٤)

यानी "अगर तुम अल्लाह तआला की नेमतों को शुमार करना चाहो तो नहीं कर सकते।" इनसान अगर सारे आलम को छोड़कर अपने ही वजूद पर नज़र डाल ले तो मालूम होगा कि उसका वजूद ख़ुद एक छोटी सी दुनिया है, जिसमें इस बड़ी दुनिया के सारे नमूने मौजूद हैं। इसका बदन ज़मीन की मिसाल है, उस पर उगने वाले बाल नबातात (पेड़-पौधों और घास वग़ैरह) की मिसाल हैं, उसकी हड्डियाँ पहाड़ों की तशबीह हैं, उसके बदन की रगें जिनमें ख़ून गर्दिश कर रहा है ज़मीन के नीचे बहने वाले चश्मों और नहरों की मिसाल हैं।

इनसान दो चीज़ों से मिलकर बना है एक बदन दूसरे रूह। और यह भी ज़ाहिर है कि क़द्र व क़ीमत के एतिबार से रूह असल, आला और अफ़ज़ल है, बदन महज़ उसके ताबे और अदना दर्जा रखता है। इस अदना और मामूली पार्ट के मुताल्लिक़ इनसानी बदन की तहक़ीक़ करने वाले तबीबों शोधकर्ताओं ने बतलाया है कि इसमें अल्लाह तआला ने तक़रीबन पाँच हज़ार मस्लेहतें और फ़ायदे रखे हैं, उसके बदन में तीन सौ से ज़्यादा जोड़ हैं, हर एक जोड़ को अल्लाह तआला ही की क़ुदरते कामिला ने ऐसा मज़बूत बनाया है कि हर वक़्त की हरकत के बावजूद न घिसता है न उसकी मरम्मत की ज़रूरत होती है। आदतन् इनसान की उम्र साठ सत्तर साल होती है, पूरी उम्र उसके ये नर्म व नाज़ुक हिस्से और उनके सब जोड़ अधिकतर इस तरह हरकत में रहते हैं कि फ़ौलाद (लोहा) भी होता तो घिस जाता। मगर हक़ तआला ने फ़रमायाः

نَحْنُ خَلَقْنٰهُمْ وَشَدَدْنَآ اَسْرَهُمْ (٢٨:٧٦)

यानी "हमने ही इनसान को पैदा किया और हमने ही उसके जोड़-बन्द मज़बूत किये।"

इस क़ुदरती मज़बूती का नतीजा है कि आम आदत के मुताबिक़ ये नर्म व नाज़ुक जोड़ सत्तर बरस और इससे भी ज़्यादा अरसे तक काम देते हैं। इनसानी अंगों में से सिर्फ़ एक आँख ही को ले लीजिये, इसमें जो अल्लाह तआला की हिक्मते बालिग़ा के मज़ाहिर (प्रतीक और निशानियाँ) मौजूद हैं इनसान को उम्र भर ख़र्च करके भी उनका पूरा इल्म और जानकारी हासिल करना आसान नहीं।

फिर इस आँख के सिर्फ़ एक मर्तबा के अमल को देखकर यह हिसाब लगाईये कि इस एक मिनट के अमल में हक़ तआला की कितनी नेमतें काम कर रही हैं, तो हैरत होती है क्योंकि आँख उठी और उसने किसी चीज़ को देखा। इसमें जिस तरह आँख की अन्दरूनी ताक़तों ने अमल किया है इसी तरह अल्लाह तआला की बाहरी मख़्लूक़ात का इसमें बड़ा हिस्सा है। अगर सूरज की रोशनी न हो तो आँख के अन्दर की रोशनी काम नहीं दे सकती, फिर सूरज के लिये भी एक फ़िज़ा की ज़रूरत होती है, इनसान के देखने और आँख को काम में लाने के लिये ग़िज़ा हवा वग़ैरह की ज़रूरत होती है जिससे मालूम हुआ कि एक मर्तबा नज़र उठकर जो कुछ देखती है उसमें पूरे आलम की ताक़तें काम करती हैं। यह एक मर्तबा का अमल हुआ, फिर आँख दिन में कितनी मर्तबा देखती है और साल में कितनी मर्तबा, उम्र में कितनी मर्तबा, यह ऐसा सिलसिला है जिसके आंकड़े इनसानी ताक़त से बाहर हैं।

इसी तरह कान, ज़बान, हाथ, पाँव के जितने काम हैं उन सब में पूरे आलम (जहान) की ताक़तें शामिल होकर काम पूरा होता है। यह तो वह नेमत है जो हर ज़िन्दा इनसान को मयस्सर है, इसमें

बादशाह व फ़क़ीर, अमीर व ग़रीब का कोई फ़र्क़ और भेदभाव नहीं। और अल्लाह जल्ल शानुहू की बड़ी-बड़ी नेमतें सब ऐसी ही सब के लिये आम हैं कि हर इनसानी फ़र्द उनसे लाभ उठाता है। आसमान, ज़मीन इन दोनों में और इनके बीच पैदा होने वाली तमाम कायनात चाँद, सूरज, चलने और अपनी जगह जमे रहने वाले सितारे, हवा, फ़िज़ा का नफ़ा हर जानदार को पहुँच रहा है।

इसके बाद अल्लाह तआ़ला की ख़ास नेमतें जो इनसान के अफ़राद पर हिक्मत के तक़ाज़े के तहत कम व ज़्यादा करके अ़ता होती हैं माल और दौलत, इज़्ज़त और रुतबा, राहत और आराम सब इसी किस्म में दाख़िल हैं। और अगरचे यह बात बिल्कुल आसानी से समझ में आने वाली है कि आ़म नेमतें जो तमाम इनसानों में बराबर तौर पर संयुक्त रूप से हैं, जैसे आसमान ज़मीन और इनकी तमाम मख़्लूक़ात, ये नेमतें ख़ास नेमतों माल व दौलत वग़ैरह के एतिबार से ज़्यादा अहम और बड़ी हैं। मगर भोला-भाला इनसान तमाम इनसानी अफ़राद में आ़म होने की बिना पर कभी इन अ़ज़ीमुश्शान नेमतों की तरफ़ तवज्जोह भी नहीं करता है कि यह कोई नेमत है, सिर्फ़ आस-पास की मामूली चीज़ें खाने पीने, रहने सहने की ख़ुसूसी चीज़ों ही पर उसकी नज़र रुक जाती है।

बहरहाल यह एक सरसरी नमूना है उन नेमतों का जो हर इनसान पर हर वक़्त बरस रही हैं इसका लाज़िमी नतीजा यह होना चाहिये कि इनसान अपनी कोशिश भर इन एहसानात व इनामात करने वाले की हम्द व सना (तारीफ़) करे और करता रहे। फ़ितरत के इसी तक़ाज़े की तालीम व हिदायत के लिये क़ुरआन की सबसे पहली सूरत का सबसे पहला कलिमा 'अल्हम्दु' लाया गया है, और अल्लाह की हम्द व सना को इबादत में बड़ा दर्जा दिया गया है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जब अल्लाह तआ़ला अपने किसी बन्दे को कोई नेमत अ़ता फ़रमायें और वह उस पर अल्हम्दु लिल्लाह कहे तो ऐसा हो गया कि गोया जो कुछ उसने लिया है उससे अफ़ज़ल चीज़ दे दी। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी, अज़ इब्ने माजा हज़रत अनस रज़ि. की रिवायत से)

एक दूसरी हदीस में है कि "अगर सारी दुनिया की नेमतें किसी एक शख़्स को हासिल हो जायें और वह उस पर अल्हम्दु लिल्लाह कह ले तो यह अल्हम्दु लिल्लाह उन सारी नेमतों से अफ़ज़ल है।" इमाम क़ुर्तुबी रह. ने बाज़ उलेमा से नक़ल किया है कि इसका मतलब यह है कि अल्हम्दु लिल्लाह ज़बान से कहना भी अल्लाह ही की एक नेमत है और यह नेमत सारी दुनिया की नेमतों से अफ़ज़ल है। और सही हदीस में है कि अल्हम्दु लिल्लाह से अ़मल की तराज़ू का आधा पल्ला भर जाता है और हम्द (तारीफ़) की हक़ीक़त हज़रत शक़ीक़ बिन इब्राहीम रह. ने यह बयान फ़रमाई है कि जब अल्लाह तआ़ला तुम्हें कोई चीज़ अ़ता फ़रमाये तो पहले उसके देने वाले को पहचानो, फिर जो कुछ उसने दिया है उस पर राज़ी हो जाओ, फिर जब तक तुम्हारे जिस्म में उसकी अ़ता की हुई क़ुव्वत व ताक़त मौजूद है उसकी नाफ़रमानी के क़रीब न जाओ। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी रह.)

दूसरा कलिमा **"लिल्लाहि"** है। इसमें लफ़्ज़ अल्लाह के साथ शुरू में लाम लगा हुआ है, जिसको अ़रबी भाषा के ग्रामर से 'लामे इख़्तिसास' (ख़ास करने का लाम) कहा जाता है, जो किसी हुक्म या सिफ़त व ख़ूबी की ख़ुसूसियत पर दलालत करता है। इस जगह मायने यह हैं कि सिर्फ़ यही नहीं कि अल्लाह तआ़ला की हम्द व सना (तारीफ़) इनसान का फ़र्ज़ है, बल्कि हक़ीक़त यह है कि हम्द व सना सिर्फ़ उसी की पाक ज़ात के साथ मख़्सूस है, वास्तविक तौर पर उसके सिवा आ़लम में कोई हम्द व

सना (तारीफ़ व प्रशंसा) का हक़दार नहीं हो सकता, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, हाँ! इसके साथ यह भी इनाम है कि इनसान को तहज़ीबे अख़्लाक़ सिखाने के लिये उसको यह भी हुक्म दे दिया कि मेरी नेमत व एहसान जिन वास्तों (माध्यमों) से तुम्हारे हाथ आये उनका भी शुक्र अदा करो, क्योंकि जो शख़्स अपने मोहसिन (एहसान करने वाले) इनसान का शुक्रिया अदा करने का आदी न हो वह ख़ुदा का भी शुक्र अदा नहीं करेगा।

ख़ुद अपनी तारीफ़ किसी इनसान के लिये जायज़ नहीं

3. ख़ुद अपनी हम्द व सना (तारीफ़) का बयान करना किसी मख़्लूक़ के लिये जायज़ नहीं। क़ुरआने करीम में इरशाद है:

فَلَا تُزَكُّوْٓا اَنْفُسَكُمْ هُوَ اَعْلَمُ بِمَنِ اتَّقٰى ۝ (۳۲:۵۳)

"यानी तुम अपनी पाकी और सफ़ाई का दावा न करो, अल्लाह ही जानता है कि कौन तक़वे वाला है।"

मतलब यह है कि इनसान की तारीफ़ और प्रशंसा का मदार तक़वे (नेकी और परहेज़गारी) पर है, और इसका हाल अल्लाह तआ़ला ही जानते हैं कि किसका तक़वा किस दर्जे का है। और हक़ तआ़ला ने जो अपनी हम्द व सना (तारीफ़) ख़ुद बयान फ़रमाई इसकी वजह यह है कि बेचारा इनसान इसकी सलाहियत नहीं रखता कि अल्लाह तआ़ला की बारगाह की हम्द व सना (तारीफ़) कैसे बयान करे, और किसी की तो क्या मजाल है कि अल्लाह तआ़ला के शायाने शान हम्द व सना कर सके रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

لَآ اُحْصِىْ ثَنَآءً عَلَيْكَ

यानी मैं आपकी सना (तारीफ़) जैसा कि उसका हक़ है, नहीं कर सकता।" इसलिये अल्लाह जल्ल शानुहू ने ख़ुद ही हम्द व सना का तरीक़ा इनसान को तालीम फ़रमा दिया।

लफ़्ज़ 'रब' अल्लाह तआ़ला का ख़ास नाम है

अल्लाह के अ़लावा किसी और को 'रब' कहना जायज़ नहीं

4. लफ़्ज़ 'रब' को ऐसे शख़्स के लिये बोला जाता है जो किसी चीज़ का मालिक हो और उसकी तरबियत व बेहतरी की तदबीर और पूरी निगरानी भी करता हो, और यह ज़ाहिर है कि सारी कायनात व मख़्लूक़ात का ऐसा रब सिवाय अल्लाह तआ़ला के और कोई नहीं हो सकता। इसलिये यह लफ़्ज़ अपने आम बोले जाने के वक़्त हक़ तआ़ला के साथ ख़ास हैं, ग़ैरुल्लाह को रब कहना जायज़ नहीं। सही मुस्लिम की हदीस में इसकी मनाही आई है कि कोई ग़ुलाम या नौकर अपने आक़ा को रब कहे, अलबत्ता किसी ख़ास चीज़ की तरफ़ इज़ाफ़त (निस्बत) करके इनसान वग़ैरह के लिये भी यह लफ़्ज़ बोला जा सकता है। जैसे 'रब्बुल-माल' (माल वाला), 'रब्बुद्दार' (घर का मालिक) वग़ैरह। (क़ुर्तुबी)

इस्तिआनत के मायने की वज़ाहत और मसला-ए-तवस्सुल की तहक़ीक़

5. "इय्या-क नअ्बुदु व इय्या-क नस्तईन" के मायने मुफ़स्सिरे क़ुरआन हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने यह बयान फ़रमाये हैं कि हम तेरी ही इबादत करते हैं, तेरे सिवा किसी की इबादत नहीं करते, और तुझसे ही मदद माँगते हैं, तेरे सिवा किसी से मदद नहीं माँगते।

(इब्ने जरीर, इब्ने अबी हातिम)

बाज़ पहले उलेमा रह. ने फ़रमाया कि सूरः फ़ातिहा पूरे क़ुरआन का राज़ (ख़ुलासा) है, और आयत "इय्या-क नअ्बुदु व इय्या-क नस्तईन" पूरी सूरः फ़ातिहा का राज़ (ख़ुलासा) है। क्योंकि इसके पहले जुमले में शिर्क से बरी होने का ऐलान है, और दूसरे जुमले में अपनी ताक़त व क़ुदरत से बरी होने का इज़हार है कि आजिज़ बन्दा बग़ैर अल्लाह की मदद के कुछ नहीं कर सकता, जिसका नतीजा अपने सब कामों को अल्लाह तआ़ला के सुपुर्द करना है। जिसकी हिदायत क़ुरआने करीम में जगह-जगह आई है:

فَاعْبُدْهُ وَتَوَكَّلْ عَلَيْهِ (سورة هود: ۱۲۳) قُلْ هُوَ الرَّحْمٰنُ اٰمَنَّا بِهٖ وَعَلَيْهِ تَوَكَّلْنَا (سورة ملك: ۲۹)

رَبُّ الْمَشْرِقِ وَالْمَغْرِبِ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ فَاتَّخِذْهُ وَكِيْلًا. (سورة مزمّل: ۹)

इन तमाम आयतों का हासिल यही है कि मोमिन अपने हर अ़मल में एतिमाद और भरोसा न अपनी क़ाबलियत पर करे न किसी दूसरे की मदद पर बल्कि पूरी तरह भरोसा सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही पर होना चाहिये, वही सब का काम बनाने वाला है।

अल्लाह के अ़लावा किसी की इबादत जायज़ नहीं

इससे दो मसले उसूले अ़क़ायद के साबित हुए। पहला यह कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत जायज़ नहीं, उसकी इबादत में किसी को शरीक करना हराम और नाक़ाबिले माफ़ी जुर्म है।

इबादत के मायने ऊपर मालूम हो चुके हैं कि किसी ज़ात की इन्तिहाई बड़ाई व मुहब्बत की बिना पर उसके सामने अपनी इन्तिहाई आजिज़ी और पस्ती का इज़हार है। अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी मख़्लूक़ के साथ ऐसा मामला किया जाये तो यही शिर्क कहलाता है। इससे मालूम हुआ कि शिर्क सिर्फ़ इसी को नहीं कहते कि बुत परस्तों की तरह किसी पत्थर की मूर्ति वग़ैरह को ख़ुदाई इख़्तियारात का मालिक समझे, बल्कि किसी की बड़ाई, मुहब्बत, इताअ़त को वह दर्जा देना जो अल्लाह तआ़ला ही का हक़ है यह भी खुले शिर्क में दाख़िल है। क़ुरआन मजीद में यहूदियों व ईसाईयों के शिर्क का बयान करते हुए इरशाद फ़रमाया है:

اِتَّخَذُوْٓا اَحْبَارَهُمْ وَرُهْبَانَهُمْ اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ. (سورة الانعام: ۳۱)

"यानी उन लोगों ने अपने दीनी आ़लिमों को अपना रब बना लिया है।"

हज़रत अ़दी बिन हातिम रज़ियल्लाहु अ़न्हु जो मुसलमान होने से पहले ईसाई थे उन्होंने इस आयत के बारे में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया कि हम तो अपने उलेमा की

इबादत नहीं करते थे, फिर क़ुरआने करीम में उनको माबूद बनाने का इल्ज़ाम हम पर कैसे लगाया गया? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया क्या ऐसा नहीं है कि तुम्हारे उलेमा बहुत सी ऐसी चीज़ों को हराम क़रार देते हैं जिनको अल्लाह ने हलाल किया है, और तुम अपने उलेमा के कहने पर उनको हराम ही समझते हो? और बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं जिनको अल्लाह तआ़ला ने हराम किया है तुम्हारे उलेमा उनको हलाल कर देते हैं, तो तुम उनके कहने की पैरवी करके हलाल कर लेते हो? अ़दी बिन हातिम रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अ़र्ज़ किया कि बेशक ऐसा तो है। इस पर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि यही तो उनकी इबादत है।

इससे मालूम हुआ कि किसी चीज़ के हलाल या हराम क़रार देने का हक़ सिर्फ़ हक़ तआ़ला का है जो शख़्स इसमें किसी दूसरे को शरीक क़रार दे और अल्लाह तआ़ला के अहकाम हराम व हलाल मालूम होने के बावजूद उनके ख़िलाफ़ किसी दूसरे के क़ौल की पैरवी करे तो वह गोया उसकी इबादत करता है और शिर्क में मुब्तला है।

आ़म मुसलमान जो क़ुरआन व सुन्नत को ख़ुद समझने की और उनसे शरीअ़त के अहकाम निकालने की सलाहियत नहीं रखते इसलिये किसी इमाम, मुज्तहिद या आ़लिम व मुफ़्ती के क़ौल पर भरोसा करके अ़मल करते हैं, उसका इस आयत से कोई ताल्लुक़ नहीं, क्योंकि वह दर हक़ीक़त क़ुरआन व सुन्नत ही पर अ़मल है और अहकामे ख़ुदावन्दी की इताअ़त है। और ख़ुद क़ुरआने करीम ने इसकी हिदायत फ़रमाई है:

فَسْئَلُوْٓا اَهْلَ الذِّكْرِ اِنْ كُنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ٥ (١٦:٤٣)

"यानी अगर तुम ख़ुद अहकामे इलाही को नहीं जानते तो जानने वालों से पूछ लो।"

और जिस तरह हलाल व हराम के अहकाम में अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी को शरीक करना शिर्क है इसी तरह किसी के नाम की नज़्र (मन्नत) मानना भी शिर्क में दाख़िल है। अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी दूसरे को ज़रूरत व इच्छा पूरी करने वाला, मुश्किल हल करने वाला समझकर उससे दुआ़ माँगना भी शिर्क है, क्योंकि हदीस में दुआ़ को इबादत फ़रमाया गया है।

इसी तरह ऐसे आमाल व काम जो शिर्क की अ़लामत समझे जाते हैं उनका करना भी शिर्क के हुक्म में है, जैसे हज़रत अ़दी बिन हातिम रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि (मुसलमान होने के बाद) मैं नबी करीम सल्ल. की ख़िदमत में हाज़िर हुआ तो मेरे गले में सलीब पड़ी हुई थी, आपने मुझसे फ़रमाया कि इस बुत को अपने गले से निकाल दो।

अगरचे उस वक़्त हज़रत अ़दी बिन हातिम रज़ियल्लाहु अ़न्हु का अ़क़ीदा सलीब के मुताल्लिक़ वह न था जो ईसाईयों का होता है मगर ज़ाहिरी तौर पर भी शिर्क की पहचान से बचने को ज़रूरी समझकर यह हिदायत की गई। अफ़सोस कि आजकल हज़ारों मुसलमान रेड क्रॉस का सलीबी निशान लगाये फिरते हैं और कोई परवाह नहीं करते, कि बिना वजह एक मुश्रिकाना जुर्म के करने वाले हो रहे हैं। इसी तरह किसी को रुकूअ़, सज्दा करना या बैतुल्लाह के सिवा किसी दूसरी चीज़ के गिर्द तवाफ़ करना ये सब शिर्क की निशानियाँ हैं, जिनसे बचना "इय्या-क नअ़्बुदु" के इक़रार या वफ़ादारी के हलफ़ का एक हिस्सा है।

दूसरा मसला यह है कि इस्तिआ़नत और इस्तिग़ासा (यानी मदद तलब करना और फ़रियाद तलब करना) सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही से करना है, किसी दूसरे से जायज़ नहीं।

'इस्तिआ़नत' व 'तवस्सुल' के मसले की तहक़ीक़ और अहकाम की तफ़सील

यह दूसरा मसला किसी से मदद माँगने का ज़रा वज़ाहत चाहता है, क्योंकि एक मदद तो माद्दी असबाब (ज़ाहिरी सामान) के मातहत हर ईनसान दूसरे इनसान से लेता है, इसके बग़ैर इस दुनिया का निज़ाम चल ही नहीं सकता। उद्योगपति अपने उद्योग के ज़रिये सारी मख़्लूक़ की ख़िदमत करता है, मज़दूर, मिस्त्री, बढ़ई, लुहार सब मख़्लूक़ की मदद में लगे हुए हैं और हर शख़्स इनसे मदद लेने व माँगने पर मजबूर है। ज़ाहिर है कि यह किसी दीन व शरीअ़त में मना और वर्जित नहीं। यह उस इस्तिआ़नत (मदद तलब करने) में दाख़िल नहीं जो अल्लाह तआ़ला के साथ मख़्सूस है। इसी तरह ग़ैर-माद्दी असबाब के ज़रिये किसी नबी या वली से दुआ़ करने की मदद माँगना या उनका वसीला देकर डायरेक्ट अल्लाह तआ़ला से दुआ़ माँगना हदीस की रिवायतों और क़ुरआन के इशारात से इसका भी जवाज़ (जायज़ और सही होना) साबित है, यह भी उस इस्तिआ़नत में दाख़िल नहीं जो सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला के लिये मख़्सूस और ग़ैरुल्लाह के लिये हराम व शिर्क है।

अब वह मख़्सूस इस्तिआ़नत व इमदाद जो अल्लाह तआ़ला के साथ ख़ास है और ग़ैरुल्लाह के लिये शिर्क है, कौनसी है? इसकी दो क़िस्में हैं- एक तो यह कि अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी फ़रिश्ते या पैग़म्बर या वली या किसी और इनसान को ख़ुदा तआ़ला की तरह क़ादिरे मुतलक़ और मुख़्तारे मुतलक़ (यानी उसकी ज़ात से उसको बा-इख़्तियार) समझकर उससे अपनी हाजत माँगे, यह तो ऐसा खुला हुआ कुफ़्र है कि आ़म बुत परस्त मुश्रिक लोग भी इसको कुफ़्र समझते हैं। अपने बुतों, देवताओं को बिल्कुल ख़ुदा तआ़ला की तरह क़ादिरे मुतलक़ और मुख़्तारे मुतलक़ (हर तरह का पूरा इख़्तियार रखने वाला) ये काफ़िर लोग भी नहीं मानते।

दूसरी क़िस्म वह है जिसको काफ़िर लोग इख़्तियार करते हैं, और क़ुरआन और इस्लाम इसको बातिल व शिर्क क़रार देता है "इय्या-क नस्तईन" में यही मुराद है, कि ऐसी इस्तिआ़नत व इमदाद हम अल्लाह के सिवा किसी से नहीं चाहते, वह यह है कि अल्लाह तआ़ला की किसी मख़्लूक़ फ़रिश्ते या पैग़म्बर या वली या किसी देवता के मुताल्लिक़ यह अ़क़ीदा रखना कि अगरचे क़ादिरे मुतलक़ अल्लाह तआ़ला ही है और कामिल इख़्तियारात उसी के हैं, लेकिन उसने अपनी क़ुदरत व इख़्तियार का कुछ हिस्सा फ़ुलाँ शख़्स को सौंप दिया है और उस दायरे में वह ख़ुद मुख़्तार है, यही वह इस्तिआ़नत व इस्तिमदाद (मदद तलब करना) है जो मोमिन व काफ़िर में फ़र्क़ और इस्लाम व कुफ़्र में इम्तियाज़ (फ़र्क़) करती है। क़ुरआन इसको शिर्क व हराम क़रार देता है, बुत परस्त मुश्रिक लोग इसके क़ायल और इस पर आ़मिल (कारबन्द) हैं।

इस मामले में धोखा यहाँ से लगता है कि अल्लाह तआ़ला अपने बहुत से फ़रिश्तों के हाथों दुनियावी व्यवस्था के बहुत से काम जारी करते हैं, देखने वाला इस मुग़ालते (धोखे) में पड़ सकता है

कि उस फ़रिश्ते को अल्लाह तआ़ला ने यह इख़्तियार सुपुर्द कर दिया है, या अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के ज़रिये बहुत से ऐसे काम वजूद में आते हैं जो आ़म इनसानों की क़ुदरत से बाहर हैं, जिनको **मोजिज़े** कहा जाता है। इसी तरह औलिया-अल्लाह के ज़रिये भी ऐसे बहुत से काम वजूद में आते हैं जिनको **करामत** कहा जाता है, यहाँ सरसरी नज़र वालों को यह मुग़ालता (धोखा) लग जाता है कि अगर अल्लाह तआ़ला इन कामों की क़ुदरत व इख़्तियार इनको सुपुर्द न करता तो इनके हाथ से ये कैसे वजूद में आते? इससे वे उन अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम व औलिया-अल्लाह के एक दर्जे में मुख़्तार होने का अ़कीदा बना लेते हैं, हालाँकि हकीक़त यूँ नहीं, बल्कि मोजिज़े और करामतें डायरेक्ट हक् तआ़ला का फ़ेल होता है, सिर्फ़ उसका ज़हूर पैग़म्बर या वली के हाथों पर उनका रुतबा साबित करने के लिये किया जाता है। पैग़म्बर और वली को उसके वजूद में लाने का कोई इख़्तियार नहीं होता। क़ुरआन मजीद की बेशुमार आयतें इस पर शाहिद (गवाह और सुबूत) हैं, जैसे यह आयतः

وَمَا رَمَيْتَ إِذْ رَمَيْتَ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ رَمٰى. (١٧:٨)

इसमें रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के उस मोजिज़े का ज़िक्र है जिसमें आपने दुश्मन के लश्कर की तरफ़ एक मुट्ठी कंकरियों की फेंकी और अल्लाह तआ़ला की क़ुदरत से वो सारे लश्कर की आँखों में जा लगीं। इसके मुताल्लिक़ इरशाद है कि यह आपने नहीं फेंकी बल्कि अल्लाह तआ़ला ने फेंकी थी। जिससे मालूम हुआ कि मोजिज़ा जो नबी के वास्ते से ज़ाहिर होता और वजूद में आता है वह दर हकीक़त अल्लाह तआ़ला का फ़ेल (काम) होता है।

इसी तरह हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम को जब उनकी क़ौम ने कहा कि अगर आप सच्चे हैं तो जिस अ़ज़ाब से डरा रहे हैं वह बुला लीजिये, तो उन्होंने फ़रमायाः

إِنَّمَا يَأْتِيكُمْ بِهِ اللّٰهُ إِنْ شَآءَ. (هود:٣٣)

"यानी मोजिज़े के तौर पर आसमानी अ़ज़ाब नाज़िल करना मेरे क़ब्ज़े में नहीं, अल्लाह तआ़ला अगर चाहेगा तो यह अ़ज़ाब आ जायेगा, फिर तुम उससे भाग न सकोगे।"

सूरः इब्राहीम में अम्बिया व रसूलों (अ़लैहिमुस्सलाम) की एक जमाअ़त का यह क़ौल ज़िक्र फ़रमाया गया हैः

وَمَا كَانَ لَنَآ أَنْ نَّأْتِيَكُمْ بِسُلْطٰنٍ إِلَّا بِإِذْنِ اللّٰهِ. (١١:١٤)

यानी "किसी मोजिज़े का सादिर (वजूद में लाना और ज़ाहिर) करना हमारे हाथ में नहीं, अल्लाह तआ़ला के हुक्म व मर्ज़ी के बग़ैर कुछ नहीं हो सकता।"

इसी वजह से कोई पैग़म्बर या कोई वली जब चाहे जो चाहे मोजिज़ा या करामत दिखा दे यह क़तई किसी के बस में नहीं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और दूसरे अम्बिया से बहुत से ख़ास मोजिज़ों का मुतालबा मुश्रिकों ने किया, मगर जिसको अल्लाह तआ़ला ने चाहा ज़ाहिर कर दिया जिसको न चाहा नहीं हुआ। पूरा क़ुरआन इसकी शहादतों (मिसालों और सुबूतों) से भरा हुआ है।

एक महसूस मिसाल से इसको यूँ समझ लीजिये कि आप जिस कमरे में बैठे हैं उसमें बिजली की रोशनी बल्ब से और हवा बिजली के पंखे से आपको पहुँच रही है, मगर यह बल्ब और पंखा उस रोशनी और हवा पहुँचाने में क़तई ख़ुद मुख़्तार नहीं, बल्कि हर आन उस जोड़ (कनेक्शन) के मोहताज

हैं जो तार के ज़रिये पॉवर हाऊस के साथ उनको हासिल है, एक सैकिण्ड के लिये यह जोड़ टूट जाये तो न बल्ब आपको रोशनी दे सकता है न पंखा हवा दे सकता है, क्योंकि दर हक़ीक़त वह अ़मल बल्ब और पंखे का है ही नहीं, बल्कि बिजली की रौ का है, जो पॉवर हाऊस से यहाँ पहुँच रही है। अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम, औलिया-अल्लाह और सब फ़रिश्ते हर अ़मल में हर काम में हर आन हक़ तआ़ला के मोहताज हैं, उसी की क़ुदरत व चाहत से सब काम वजूद में आते हैं, अगरचे ज़हूर उसका बल्ब और पंखे की तरह अम्बिया व औलिया के हाथों पर होता है।

इस मिसाल से यह भी स्पष्ट हो गया कि इन चीज़ों के ज़ाहिर होने और वजूद में आने में अगरचे इख़्तियार अम्बिया व औलिया का नहीं मगर उनका पवित्र वजूद उनसे बिल्कुल बेदख़ल भी नहीं, जैसे बल्ब और पंखे के बग़ैर आपको रोशनी और हवा नहीं पहुँच सकती, ये मोजिज़े व करामतें भी अम्बिया व औलिया के बग़ैर नहीं मिलते। अगरचे यह फ़र्क़ ज़रूर है कि पूरी फ़िटिंग और कनेक्शन दुरुस्त होने के बावजूद आपको बग़ैर बल्ब के रोशनी और बग़ैर पंखे के हवा का मिलना आ़दतन नामुम्किन है और मोजिज़ों व करामतों में हक़ तआ़ला को सब कुछ क़ुदरत है, कि बग़ैर किसी पैग़म्बर व वली के वास्ते के भी उसका ज़हूर फ़रमा दें, मगर अल्लाह तआ़ला की आ़दत यही है कि उनका ज़हूर औलिया व अम्बिया के वास्ते के बग़ैर नहीं होता, क्योंकि ऐसे ख़िलाफ़े आ़दत, असाधारण और चमत्कारिक कामों के इज़हार से जो मक़सद है वह इसके बग़ैर पूरा नहीं होता।

इसलिये मालूम हुआ कि अ़क़ीदा तो यही रखना है कि सब कुछ अल्लाह तआ़ला की क़ुदरत व मर्ज़ी से हो रहा है, इसके साथ अम्बिया व औलिया की बड़ाई व ज़रूरत का भी मानना ज़रूरी है इसके बग़ैर अल्लाह की रज़ा और उसके अहकाम को पूरा करने से मेहरूम रहेगा। जिस तरह कोई शख़्स बल्ब और पंखे की क़द्र न पहचाने और उनको ज़ाया कर दे तो रोशनी और हवा से मेहरूम रहता है।

वसीला, इस्तिआ़नत और **इस्तिमदाद** के मसले में लोगों को बहुत ज़्यादा शुब्हा व इश्काल रहता है। उम्मीद है कि इस तशरीह (वज़ाहत व स्पष्टीकरण) से असल हक़ीक़त वाज़ेह हो जायेगी और यह भी मालूम हो जायेगा कि अम्बिया व औलिया को वसीला बनाना न तो पूरी तरह जायज़ है और न पूरी तरह नाजायज़, बल्कि इसमें वह तफ़सील है जो ऊपर ज़िक्र की गई है कि किसी को मुख़्तारे मुतलक़ (पूरे इख़्तियार का मालिक) समझकर वसीला बनाया जाये तो शिर्क व हराम है, और महज़ वास्ता और ज़रिया (माध्यम) समझकर किया जाये तो जायज़ है। इसमें आ़म तौर पर लोगों में कमी-ज़्यादती (यानी मसले की हद में न रहने का) का अ़मल नज़र आता है। मैं अल्लाह तआ़ला ही से सही राह और उस पर सख़्ती से जमाव का सवाल करता हूँ क्योंकि हर चीज़ का आग़ाज़ व अन्जाम उसी के हाथ में है।

'सिराते मुस्तक़ीम' की हिदायत दुनिया व दीन में कामयाबी की कुन्जी है

6. असल तफ़सीर में यह बात वज़ाहत से आ गई है कि क़ुरआने करीम ने जिस दुआ़ को हर

शख़्स के लिये हर काम के लिये हर हाल में चुना और पसन्द फ़रमाया है वह 'सिराते मुस्तक़ीम' (सीधे रास्ते) की हिदायत की दुआ है। जिस तरह आख़िरत की कामयाबी उस सिराते मुस्तक़ीम पर मौक़ूफ़ (टिकी) है जो इनसान को जन्नत की तरफ़ ले जाये, इसी तरह दुनिया के सारे कामों में ग़ौर करो तो कामयाबी का मदार सिराते मुस्तक़ीम ही है। जिस काम में वे असबाब और ज़रिये इख़्तियार किये गये जिसके नतीजे में मक़सद का हासिल होना आदतन् लाज़िमी है तो कामयाबी आदतन् लाज़िमी होती है, जहाँ कहीं इनसान अपने मक़सद में कामयाब नहीं होता तो अगर वह ग़ौर करे तो मालूम हो जायेगा कि काम के किसी मर्हले में उसने ग़लती की है, सही रास्ता हाथ से छूट गया था इसलिये नाकामयाबी हुई।

इसका हासिल यह है कि सिराते मुस्तक़ीम की हिदायत सिर्फ़ आख़िरत और दीन के कामों के साथ मख़्सूस नहीं, दुनिया के सब कामों की बेहतरी और कामयाबी भी इसी पर मौक़ूफ़ (निर्भर और टिकी हुई) है, इसलिये यह दुआ ऐसी है कि मोमिनों को हर वक़्त दिल से लगाकर रखने के क़ाबिल है, शर्त यह है कि दिल के ध्यान और नीयत के साथ की जाये, सिर्फ़ अलफ़ाज़ का पढ़ लेना न हो। और अल्लाह ही है तौफ़ीक़ देने वाला और वही है मददगार।

अल्लाह तआला के फ़ज़्ल व करम से सूरः फ़ातिहा की तफ़सीर पूरी हुई।
तमाम तारीफ़ें हर हाल में उसी की ज़ात के शायाने शान हैं।

* सूरः ब-क़रह *

यह सूरत मदनी है। इसमें 286 आयतें
और 40 रुकूअ़ है।

Derived from the works of Emin Barin [12]
" Lā Ilāhe Illā Allāh "

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

पहला पारा (अलिफ़् लाम् मीम्)

सूरः ब-क़रह

नाम और आयतों की तादाद

इस सूरत का नाम सूरः ब-क़रह है और इसी नाम से हदीस और सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम के अक़वाल में इसका ज़िक्र मौजूद है। जिस रिवायत में सूरः ब-क़रह कहने को मना किया है वह सही नहीं। (इब्ने कसीर) आयतों की संख्या दो सौ छियासी हैं और कलिमात छह हज़ार दो सौ इक्कीस और हुरूफ़ पच्चीस हज़ार पाँच सौ हैं। (इब्ने कसीर)

नाज़िल होने का ज़माना

यह सूरत मदनी है, यानी हिजरते मदीना तैयबा के बाद नाज़िल हुई। अगरचे इसकी कुछ आयतें मक्का मुकर्रमा में हज के वक़्त नाज़िल हुई हैं, मगर वे भी मुफ़स्सिरीन की इस्तिलाह में मदनी कहलाती हैं।

सूरः ब-क़रह क़ुरआने करीम की सबसे बड़ी सूरत है और मदीना तैयबा में सबसे पहले इसका नुज़ूल (उतरना) शुरू हुआ और मुख़्तलिफ़ ज़मानों में मुख़्तलिफ़ आयतें नाज़िल होती रहीं, यहाँ तक कि रिबा यानी सूद के मुताल्लिक़ जो आयतें हैं वे नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की आख़िरी उम्र में मक्का फ़तह होने के बाद नाज़िल हुईं और इसकी यह एक आयतः

وَاتَّقُوْا يَوْمًا تُرْجَعُوْنَ فِيْهِ اِلَى اللّٰهِ........ (٢٨١:٢)

तो क़ुरआन की बिल्कुल आख़िरी आयत है जो सन् 10 हिजरी में 10 ज़िलहिज्जा को मिना के मक़ाम पर नाज़िल हुई जबकि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हज्जतुल-विदा (अपने आख़िरी हज) के फ़राईज़ अदा करने में मशग़ूल थे। (क़ुर्तुबी) और इसके अस्सी नब्बे दिन के बाद आँ हज़रत सल्ल. की वफ़ात हुई और अल्लाह की तरफ़ से वही आने का सिलसिला हमेशा के लिये ख़त्म हो गया।

सूरः ब-क़रह के फ़ज़ाईल

यह क़ुरआने करीम की सबसे बड़ी सूरत और बहुत से अहकाम पर मुश्तमिल है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया है कि "सूरः ब-क़रह को पढ़ा करो, क्योंकि इसका पढ़ना बरकत है और इसका छोड़ना हसरत (अफ़सोस) और बदनसीबी है, और अहले बातिल इस पर क़ाबू

नहीं पा सकते।"

इमाम क़ुर्तुबी ने हज़रत मुआविया रज़ियल्लाहु अ़न्हु से नक़ल किया है कि इस जगह अहले बातिल से मुराद जादूगर हैं, मुराद यह है कि इस सूरत के पढ़ने वाले पर किसी का जादू नहीं चलेगा।
(क़ुर्तुबी, अज़ मुस्लिम हज़रत अबू अमामा बाहिली की रिवायत से)

और हुज़ूर सल्ल. ने फ़रमाया कि जिस घर में सूरः ब-क़रह पढ़ी जाये शैतान वहाँ से भाग जाता है। (इब्ने कसीर अज़ हाकिम)

और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया "सूरः ब-क़रह **सनामुल-क़ुरआन** और **ज़रवतुल-क़ुरआन** है।" **सनाम** और **ज़रवा** हर चीज़ के उच्च व अफ़ज़ल हिस्से को कहा जाता है। इसकी हर आयत के नुज़ूल (उतरने) के वक़्त अस्सी फ़रिश्ते उसके साथ में नाज़िल हुए हैं।
(इब्ने कसीर अज़ मुस्नद अहमद)

और हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु की एक हदीस में है कि इस सूरत में एक आयत ऐसी है जो तमाम क़ुरआनी आयतों में अशरफ़ व अफ़ज़ल है और वह आयतुल-कुर्सी है।
(इब्ने कसीर अज़ तिर्मिज़ी)

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि "सूरः ब-क़रह की दस आयतें ऐसी हैं कि अगर कोई शख़्स उनको रात में पढ़ ले तो उस रात को जिन्न शैतान घर में दाख़िल न होगा और उसको और उसके अहल व अ़याल (घर वालों और बाल-बच्चों) को उस रात में कोई आफ़त, बीमारी, रंज व ग़म वग़ैरह नागवार चीज़ पेश न आयेगी, और अगर ये आयतें किसी मजनूँ पर पढ़ी जायें तो उसको आराम होगा। वे दस आयतें ये हैं: चार आयतें शुरू सूरः ब-क़रह की, फिर तीन आयतें बीच की यानी आयतुल-कुर्सी और उसके बाद की दो आयतें, फिर आख़िर सूरः ब-क़रह की तीन आयतें।

अहकाम व मसाईल

मज़ामीन व मसाईल के एतिबार से भी सूरः ब-क़रह को एक ख़ास इम्तियाज़ (शान और अलग मक़ाम) हासिल है। इब्ने अ़रबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि मैंने अपने बुज़ुर्गों से सुना है कि सूरः ब-क़रह में एक हज़ार अम्र (अच्छे कामों के हुक्म) और एक हज़ार नही (बुरी बातों और कामों से रुकने की ताकीद) और एक हज़ार हिक्मतें, एक हज़ार ख़बर और क़िस्से हैं। (क़ुर्तुबी व इब्ने कसीर) यही वजह है कि हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने जब सूरः ब-क़रह को तफ़सीर के साथ पढ़ा तो इसकी तालीम में बारह साल ख़र्च हुए, और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने यह सूरत आठ साल में पढ़ी। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

सूरः फ़ातिहा दर हक़ीक़त पूरे क़ुरआन का ख़ुलासा है, इसके बुनियादी मज़ामीन तीन हैं- अव्वल अल्लाह तआ़ला की रबूबियत, यानी परवर्दिगारे आ़लम होने का बयान। दूसरे उसका इबादत का हक़दार होना और उसके सिवा किसी का लायक़े इबादत न होना। तीसरे हिदायत की तलब। सूरः फ़ातिहा का आख़िरी मज़मून सिराते मुस्तक़ीम (सीधे रास्ते) की हिदायत तलब करना है और दर हक़ीक़त पूरा क़ुरआन इसके जवाब में है कि जो शख़्स सिराते मुस्तक़ीम चाहता है क़ुरआन ही में

मिलेगा। इसी लिये सूरः फ़ातिहा के बाद पहली सूरत सूरः ब-क़रह रखी गई और इसको "ज़ालिकल् किताबु" से शुरू करके इस तरफ़ इशारा कर दिया गया कि जिस सिराते मुस्तक़ीम को तुम ढूँढ रहे हो वह यह किताब है।

उसके बाद इस सूरत में पहले ईमान के बुनियादी उसूल, तौहीद, रिसालत, आख़िरत संक्षिप्त तौर पर और सूरत के आख़िर में ईमाने मुफ़स्सल बयान फ़रमाया गया है और दरमियान में ज़िन्दगी के हर शोबे- इबादात, मामलात, रहन-सहन और सामाजिक ज़िन्दगी, अख़्लाक़, ज़ाहिर व बातिन के सुधार के मुताल्लिक़ हिदायतों के बुनियादी उसूल और उनके साथ बहुत सी जुज़ईयात बयान हुई हैं।

सूरः ब-क़रह

सूरः ब-क़रह मदीना में नाज़िल हुई। इसमें 286 आयतें और 40 रुकूअ़ हैं।

آیاتها ۲۸۶ (۲) سُوْرَةُ الْبَقَرَةِ مَدَنِيَّةٌ (۸۷) رکوعاتها ۴۰

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

الٓمّٓ ۞ ذٰلِكَ الْكِتٰبُ لَا رَيْبَ ۛ فِيْهِ ۛ هُدًى لِّلْمُتَّقِيْنَ ۞ الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ۞ وَالَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْكَ وَمَآ اُنْزِلَ مِنْ قَبْلِكَ ۚ وَبِالْاٰخِرَةِ هُمْ يُوْقِنُوْنَ ۞ اُولٰٓئِكَ عَلٰى هُدًى مِّنْ رَّبِّهِمْ ۗ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۞

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।

शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो बेहद मेहरबान, निहायत रहम वाला है।

अलिफ़्-लाम्-मीम् (1) ज़ालिकल्-किताबु ला रै-ब फ़ीहि हुदल्-लिल-मुत्तक़ीन (2) अल्लज़ी-न युअ्मिनू-न बिल्-ग़ैबि व युक़ीमूनस्सला-त व मिम्मा र-ज़क़्नाहुम् युन्फ़िक़ून (3)	अलिफ़्-लाम्-मीम्। (1) इस किताब में कुछ शक नहीं, राह बतलाती है डरने वालों को। (2) जो कि यक़ीन करते हैं बेदेखी चीज़ों का, और क़ायम रखते हैं नमाज़ को, और जो हमने रोज़ी दी है उनको उसमें से ख़र्च करते हैं। (3)

वल्लज़ी-न युअ्मिनू-न बिमा उन्ज़ि-ल इलै-क व मा उन्ज़ि-ल मिन् क़ब्लि-क व बिल्-आख़ि-रति हुम् यूक़िनून (4) उलाइ-क अ़ला हुदम्-मिर्रब्बिहिम् व उलाइ-क हुमुल्-मुफ़्लिहून (5)	और वे लोग जो ईमान लाये उस पर कि जो कुछ नाज़िल हुआ तेरी तरफ़ और उस पर कि जो कुछ नाज़िल हुआ तुझसे पहले, और आख़िरत को वे यक़ीनी जानते हैं। (4) वही लोग हैं हिदायत पर अपने परवर्दिगार की तरफ़ से और वही हैं मुराद को पहुँचने वाले। (5)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

अलिफ़्-लाम्-मीम्। यह किताब ऐसी है जिसमें कोई शुब्हा नहीं (यानी क़ुरआन के अल्लाह की ओर से होने में किसी शुब्हे की गुन्जाईश नहीं, अगरचे कोई नासमझ इसमें शुब्हा रखता हो, क्योंकि यक़ीनी बात किसी के शुब्हा करने से भी हक़ीक़त में यक़ीनी ही रहती है) राह बतलाने वाली है ख़ुदा तआ़ला से डरने वालों को (वे ख़ुदा से डरने वाले लोग ऐसे हैं) जो यक़ीन लाते हैं छुपी हुई चीज़ों पर (यानी जो चीज़ें उनके हवास व अ़क़्ल से पोशीदा हैं सिर्फ़ अल्लाह व रसूल के फ़रमाने से उनको सही मान लेते हैं) और क़ायम रखते हैं नमाज़ को (क़ायम रखना यह है कि उसको पाबन्दी के साथ उसके वक़्त में पूरी शर्तों व अरकान के साथ अदा करें), और जो कुछ हमने उनको दिया है उसमें से ख़र्च करते हैं (यानी नेक कामों में), और वे लोग ऐसे हैं कि यक़ीन रखते हैं इस किताब पर भी जो आपकी तरफ़ उतारी गई है और उन किताबों पर भी जो आप से पहले उतारी जा चुकी हैं (मतलब यह है कि उनका ईमान क़ुरआन पर भी है और पहली किताबों पर भी, और ईमान सच्चा समझने को कहते हैं, अ़मल करना दूसरी बात है। जितनी किताबें अल्लाह ने पहले अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम पर नाज़िल फ़रमाई हैं उनको सच्चा समझना फ़र्ज़ और ईमान की शर्त है, यानी यह समझे कि जिस तरह अल्लाह तआ़ला ने नाज़िल फ़रमाई थीं वे सही हैं, ख़ुदग़र्ज़ लोगों ने जो उसमें तब्दीली और कमी-बेशी की है वह ग़लत है। रह गया अ़मल सो वह सिर्फ़ क़ुरआन पर होगा, पहली किताबें सब मन्सूख़ यानी निरस्त हो गईं उन पर अ़मल जायज़ नहीं), और आख़िरत पर भी वे लोग यक़ीन रखते हैं। बस ये लोग हैं ठीक राह पर जो उनके परवर्दिगार की तरफ़ से मिली है, और ये लोग हैं पूरे कामयाब (यानी ऐसे लोगों को दुनिया में तो यह नेमत मिली कि हक़ का रास्ता मिला और आख़िरत में हर तरह की कामयाबी उनके लिये है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हुरूफ़े मुक़त्तआ़ जो बहुत सी सूरतों के शुरू में आते हैं उनकी तहक़ीक़

अलिफ़्-लाम्-मीम्। बहुत सी सूरतों के शुरू में चन्द हर्फ़ों से मिलकर बना एक कलिमा लाया

गया है जैसे **अलिफ़्-लाम्-मीम्, हा-मीम्, अलिफ़्-लाम्-मीम्-सॉद्** वग़ैरह, इनको इस्तिलाह में हुरूफ़े मुक़त्तआ़ कहा जाता है। इनमें से हर हर्फ़ अलग-अलग साकिन पढ़ा जाता है **अलिफ़्, लाम्, मीम्।**

हुरूफ़े मुक़त्तआ़ जो सूरतों के शुरू में आये हैं इनके बारे में कुछ मुफ़स्सिरीन ने फ़रमाया कि ये उन सूरतों के नाम हैं। कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि अस्मा-ए-इलाही (अल्लाह के पाक नामों) के भेद और इशारे हैं, मगर जमहूर सहाबा व ताबिईन और उलेमा-ए-उम्मत के नज़दीक ज़्यादा सही यह है कि ये हुरूफ़ भेद और राज़ हैं, जिसका इल्म सिवाय ख़ुदा तआ़ला के किसी को नहीं, और हो सकता है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इसका इल्म बतौर एक राज़ के दिया गया हो, जिसकी तब्लीग़ उम्मत के लिये रोक दी गई हो, इसलिये नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से इन हुरूफ़ की तफ़सीर व तशरीह (व्याख्या) में कुछ मन्क़ूल नहीं। इमामे तफ़सीर क़ुर्तुबी रह. ने अपनी तफ़सीर में इसी को इख़्तियार फ़रमाया है, उनके बयान का ख़ुलासा यह है:

> "आ़मिर शाबी, सुफ़ियान सौरी और मुहद्दिसीन की एक जमाअ़त ने फ़रमाया है कि हर आसमानी किताब में अल्लाह तआ़ला के कुछ ख़ास भेद और राज़ होते हैं, इसी तरह ये हुरूफ़े मुक़त्तआ़ क़ुरआन में हक़ तआ़ला का राज़ है, इसलिये ये उन मुतशाबिहात में से हैं जिनका इल्म सिर्फ़ हक़ तआ़ला ही को है, हमारे लिये इनमें बहस व गुफ़्तगू भी जायज़ नहीं, मगर इसके बावजूद वे हमारे फ़ायदे से ख़ाली नहीं, अव्वल तो उन पर ईमान लाना फिर उनका पढ़ना हमारे लिये बहुत बड़ा सवाब है, दूसरे उनके पढ़ने के मानवी फ़ायदे व बरकतें हैं, जो अगरचे हमें मालूम न हों मगर ग़ैब से वो हमें पहुँचते हैं।"

फिर फ़रमायाः

> "हज़रत सिद्दीक़े अकबर, हज़रत फ़ारूक़े आज़म, हज़रत उस्माने ग़नी, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद वग़ैरह जमहूर सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का इन हुरूफ़ के मुताल्लिक़ यही अ़क़ीदा था कि ये अल्लाह तआ़ला के भेद हैं, हमें इन पर ईमान लाना चाहिये कि अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से आये हैं, और जिस तरह आये हैं इनकी तिलावत करना चाहिये, मगर मायने मालूम करने की फ़िक्र में पड़ना दुरुस्त नहीं।"

अ़ल्लामा इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने भी इमाम क़ुर्तुबी रह. वग़ैरह से नक़ल करके इसी मज़मून को तरजीह दी है और कुछ अकाबिर उलेमा से जो इन हुरूफ़ के मायने मन्क़ूल हैं उससे सिर्फ़ तमसील व तंबीह और तस्हील (यानी इनको एक मिसाल के अन्दाज़ में समझाना, सचेत करना और और इनको समझाने और इन पर ईमान लाने को आसान बनाना) मक़सूद है, यह नहीं कि हक़ तआ़ला की मुराद यह है, इसलिये उसको भी ग़लत कहना उलेमा की तहक़ीक़ के ख़िलाफ़ है।

ज़ालिकल् किताबु ला रै-ब फ़ीहि, लफ़्ज़ 'ज़ालि-क' किसी दूर की चीज़ की तरफ़ इशारे के लिये आता है और 'किताबु' से मुराद क़ुरआने करीम है। 'रै-ब' के मायने शक व शुब्हे के आते हैं। मायने यह हैं कि यह किताब ऐसी है जिसमें कोई शक व शुब्हा नहीं। यह मौक़ा बज़ाहिर दूर की तरफ़ इशारा करने का नहीं था क्योंकि इसी क़ुरआन की तरफ़ इशारा करना मक़सूद है जो लोगों के सामने है, मगर दूर के इशारे से इसकी तरफ़ इशारा पाया जाता है कि सूरः फ़ातिहा में जिस सिराते मुस्तक़ीम (सीधे और सही रास्ते) की दरख़्वास्त की गई थी यह सारा क़ुरआन उस दरख़्वास्त का

जवाब दरख़्वास्त क़ुबूल करने की सूरत में और सिराते मुस्तक़ीम की वज़ाहत व तफ़सील है, जिसका हासिल यह है कि हमने यह दुआ सुन ली और क़ुरआने करीम भेज दिया जो हिदायत का चिराग़ है, जो शख़्स हिदायत चाहता है वह इसको पढ़े, समझे और इसके तक़ाज़े व पैग़ाम पर अमल करे।

और फिर इसके बारे में इरशाद है कि इसमें कोई शक व शुब्हा नहीं। क्योंकि किसी कलाम में शक व शुब्हे की दो सूरतें होती हैं- एक यह कि ख़ुद कलाम में ग़लती हो, तो वह कलाम शक व शुब्हे वाला हो जाता है। दूसरे यह कि समझने वाले की समझ में ग़लती हो, इस सूरत में कलाम शक व शुब्हे वाला नहीं होता अगरचे समझ की कमी और ज़ेहन के सही रुख़ पर न होने की वजह से किसी को शुब्हा हो जाये, जिसका ज़िक्र ख़ुद क़ुरआने करीम में चन्द आयतों के बाद (यानी इसी सूरत की आयत नम्बर 23 में) आया है।

इसलिये हज़ारों कम-समझों या समझ में टेढ़ रखने वालों के शुब्हात व एतिराज़ात के बावजूद यह कहना सही है कि इस किताब में किसी शक व शुब्हे की गुन्जाईश नहीं।

हुदल्-लिल्मुत्तक़ीन, हिदायत है ख़ुदा से डरने वालों के लिये। यानी मख़्सूस हिदायत जो आख़िरत की निजात का ज़रिया बने वह मुत्तक़ी लोगों ही का हिस्सा है, अगरचे क़ुरआन की हिदायत न सिर्फ़ इनसानी नस्ल के लिये बल्कि तमाम कायनाते आलम के लिये आम है। सूरः फ़ातिहा की तफ़सीर में बयान हो चुका है कि हिदायत के तीन दर्जे हैं- एक दर्जा तमाम इनसानी नस्ल बल्कि तमाम हैवानात वग़ैरह के लिये भी आम और शामिल है। दूसरा दर्जा मोमिनों के लिये ख़ास और तीसरा दर्जा अल्लाह के ख़ास और क़रीबी हज़रात के लिये मख़्सूस है। फिर उसके दरजात की कोई हद व इन्तिहा नहीं। क़ुरआने करीम के अनेक मौक़ों पर कहीं हिदायते आम्मा का ज़िक्र आया है कहीं हिदायते ख़ास्सा का, इस जगह हिदायते ख़ास्सा (विशेष और ख़ास हिदायत) का ज़िक्र है इसलिये मुत्तक़ी लोगों की तख़्सीस की गई है। इस पर यह शुब्हा नहीं होना चाहिये कि हिदायत की ज़्यादा ज़रूरत तो उन लोगों को है जो मुत्तक़ी नहीं, क्योंकि बयान हुई तहक़ीक़ से मालूम हो गया कि इस जगह मुत्तक़ी लोगों की ख़ुसूसियत से यह लाज़िम नहीं आता कि क़ुरआन ग़ैर-मुत्तक़ी लोगों के लिये हिदायत नहीं है।

मुत्तक़ी लोगों की ख़ास सिफ़ात

इसके बाद दो आयतों में मुत्तक़ी लोगों की मख़्सूस सिफ़ात व निशानियाँ बयान करके यह बतला दिया गया कि यह जमाअ़त हिदायत पाने वाली है, इन्हीं का रास्ता सिराते मुस्तक़ीम है, जिसको सीधा रास्ता मतलूब हो इस जमाअ़त में शामिल हो जाये, इनके साथ रहे, इनके अ़क़ीदों व नज़रियात और आमाल व अख़्लाक़ को अपना मक़सद बनाये।

शायद यही वजह है कि मुत्तक़ी लोगों की मख़्सूस सिफ़ात बयान करने के बाद इरशाद हुआ है:

أُولَٰئِكَ عَلَىٰ هُدًى مِّن رَّبِّهِمْ وَأُولَٰئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُونَ ۝

यानी यही लोग हैं ठीक राह पर जो उनके रब की तरफ़ से मिली है, और यही लोग हैं पूरे कामयाब।

मुत्तक़ी हज़रात की सिफ़ात जो इन दो आयतों में बयान हुई हैं इनमें ईमान की मुख़्तसर और संक्षिप्त परिभाषा और उसके बुनियादी उसूल भी आ गये हैं, और नेक अ़मल के बुनियादी उसूल भी,

इसलिये इन सिफ़ात को ज़रा वज़ाहत (तफ़सील) के साथ बयान किया जाता है।

اَلَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَo

"यानी ख़ुदा से डरने वाले लोग ऐसे हैं कि यक़ीन करते हैं बेदेखी चीज़ों का और क़ायम रखते हैं नमाज़ को और जो हमने उनको रोज़ी दी है उसमें से कुछ ख़र्च करते हैं।"

इस आयत में मुत्तक़ी लोगों की तीन सिफ़तें बयान की गई हैं- ग़ैब पर ईमान लाना, नमाज़ क़ायम करना, अल्लाह की राह में ख़र्च करना। इसके तहत में बहुत से अहम मसाईल आ गये हैं उनको थोड़ा तफ़सील से लिखा जाता है।

पहला मसला- ईमान की तारीफ़

ईमान की तारीफ़ (मतलब और परिभाषा) को क़ुरआन ने 'युअ्मिनू-न बिल्ग़ैबि' के सिर्फ़ दो लफ़्ज़ों में पूरा बयान कर दिया है। लफ़्ज़ 'ईमान' और 'ग़ैब' के मायने समझ लिये जायें तो ईमान की पूरी हक़ीक़त और तारीफ़ (मतलब) समझ में आ जाती है।

लुग़त में किसी की बात को किसी के एतिमाद पर यक़ीनी तौर पर मान लेने का नाम ईमान है, इसी लिये महसूस की जाने वाली और ख़ुद दिखाई देने वाली चीज़ों में किसी के क़ौल की तस्दीक़ करने को ईमान नहीं कहते। जैसे कोई शख़्स सफ़ेद कपड़े को सफ़ेद या सियाह को सियाह कह रहा है और दूसरा उसकी तस्दीक़ करता है, इसको तस्दीक़ करना तो कहेंगे, ईमान लाना नहीं कहा जायेगा, क्योंकि इस तस्दीक़ में क़ायल के एतिमाद को कोई दख़ल नहीं बल्कि यह तस्दीक़ देखे जाने की बिना पर है, और शरीअ़त की इस्तिलाह में रसूले पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़बर को बग़ैर देखे सिर्फ़ रसूले करीम सल्ल. के एतिमाद (भरोसे) पर यक़ीनी तौर से मान लेने का नाम ईमान है। लफ़्ज़ ग़ैब लुग़त में ऐसी चीज़ों के लिये बोला जाता है जो न ज़ाहिरी तौर पर इनसान को मालूम हों और न इनसान के पाँचों हवास (आँख, नाक, कान, ज़बान और छूना) उसका पता लगा सकें। यानी न वो आँख से नज़र आयें, न कान से सुनाई दें, न नाक से सूँघ कर या ज़बान से चखकर उनका इल्म हो सके, और न हाथ से छूकर उनको मालूम किया जा सके।

क़ुरआन में लफ़्ज़ ग़ैब से वे तमाम चीज़ें मुराद हैं जिनकी ख़बर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दी है और उनका इल्म आसानी के साथ और पाँचों हवास के ज़रिये नहीं हो सकता। इसमें अल्लाह तआ़ला की ज़ात व सिफ़ात भी आ जाती हैं, तक़दीरी मामलात, जन्नत व दोज़ख़ के हालात, क़ियामत और उसमें पेश आने वाले वाक़िआ़त भी, फ़रिश्ते, तमाम आसमानी किताबें और तमाम पहले के अम्बिया भी, जिसकी तफ़सील इसी सूरः ब-क़रह के ख़त्म पर आख़िर की दो आयतों में "आमनर्रसूलु........" में बयान की गई है। गोया यहाँ ईमाने मुजमल (मुख़्तसर बातों पर ईमान) का बयान हुआ है और आख़िरी आयत में ईमाने मुफ़स्सल (तफ़सीली बातों का ज़िक्र करके उन पर ईमान) का बयान हुआ है।

तो अब ईमान बिल-ग़ैब (ग़ैब पर ईमान लाने) के मायने यह हो गये कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो हिदायतें और तालीमात लेकर आये हैं उन सब को यक़ीनी तौर पर दिल से मानना, शर्त यह है कि उस तालीम का रसूलुल्लाह सल्ल. से मन्क़ूल होना क़तई (निश्चित और

यक़ीनी) तौर पर साबित हो। जमहूर अहले इस्लाम के नज़दीक ईमान की यही तारीफ़ (परिभाषा) है।

(अक़ीदा-ए-तहावी अक़ाइदे नसफ़ी वग़ैरह)

इस तारीफ़ (परिभाषा) में मानने का नाम ईमान बतलाया गया है। इससे यह भी मालूम हो गया कि महज़ जानने को ईमान नहीं कहते, क्योंकि जहाँ तक जानने का ताल्लुक़ है वह तो इब्लीस व शैतान और बहुत से काफ़िरों को भी हासिल है कि उनको नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सच्चा होने का यक़ीन था, मगर उसको माना नहीं इसलिये वे मोमिन नहीं।

दूसरा मसला- नमाज़ का क़ायम करना

इक़ामत के मायने सिर्फ़ नमाज़ पढ़ने के नहीं बल्कि नमाज़ को हर एतिबार और हर हैसियत से दुरुस्त करने का नाम इक़ामत है, जिसमें नमाज़ के तमाम फ़राईज़, वाजिबात, मुस्तहब्बात और फिर उन पर हमेशगी व पाबन्दी ये सब इक़ामत (नमाज़ क़ायम करने) के मफ़्हूम में दाख़िल हैं, और सही यह है कि इस जगह नमाज़ से कोई ख़ास नमाज़ मुराद नहीं बल्कि फ़राईज़ व वाजिबात और नफ़्ली नमाज़ों को यह लफ़्ज़ शामिल है। मज़मून का ख़ुलासा यह हुआ कि वे लोग जो नमाज़ों की पाबन्दी भी शरई नियमों और क़ानूनों के मुताबिक़ करते हैं और उनके पूरे आदाब भी बजा लाते हैं।

तीसरा मसला- अल्लाह की राह में ख़र्च करना

इसमें भी सही और तहक़ीक़ी बात जिसको जमहूर मुफ़स्सिरीन ने इख़्तियार फ़रमाया है यही है कि इसमें हर क़िस्म का वह ख़र्च दाख़िल है जो अल्लाह की राह में किया जाये, चाहे फ़र्ज़ ज़कात हो, या दूसरे सदक़ाते वाजिबा या नफ़्ली सदक़ात व ख़ैरात, क्योंकि क़ुरआने करीम में जहाँ कहीं लफ़्ज़ इन्फ़ाक़ (ख़र्च करना) इस्तेमाल हुआ है उमूमन नफ़्ली सदक़ात में या आ़म मायने में इस्तेमाल किया गया है, फ़र्ज़ ज़कात के लिये उमूमन लफ़्ज़ ज़कात ही आया है।

इस मुख़्तसर जुमले में लफ़्ज़ "मिम्मा रज़क़्नाहुम" पर ग़ौर कीजिये तो एक तरफ़ यह लफ़्ज़ अल्लाह की राह में माल ख़र्च करने का एक मज़बूत जज़्बा शरीफ़ इनसान के दिल में पैदा कर देता है कि जो कुछ माल हमारे पास है यह सब ख़ुदा ही का अ़ता किया हुआ है और उसी की अमानत है, अगर हम इस तमाम माल को भी अल्लाह की राह में उसकी रज़ा के लिये ख़र्च कर दें तो हक़ और बजा है, इसमें भी हमारा कोई एहसान नहीं:

जान दी कि दी हुई उसी की थी   हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ

इस पर और इज़ाफ़ा लफ़्ज़ **मिम्मा** ने कर दिया है जिसके मायने यह हैं कि हमारे दिये हुए माल को भी पूरा ख़र्च नहीं करना बल्कि उसका कुछ हिस्सा ख़र्च करना है।

यहाँ **मुत्तक़ीन** (तक़्वे वाले और परहेज़गार लोगों) की सिफ़ात का बयान करते हुए पहले ग़ैब पर ईमान का ज़िक्र फ़रमाया गया फिर नमाज़ को क़ायम करना और अल्लाह की राह में ख़र्च करने का। ईमान की अहमियत तो सब को मालूम है कि वही असल, बुनियाद और सारे आमाल की मक़बूलियत का दारोमदार है, लेकिन जब ईमान के साथ आमाल का बयान किया जाये तो उनकी फ़ेहरिस्त लम्बी और फ़राईज़ व वाजिबात की तादाद बहुत ज़्यादा है। यहाँ यह सवाल पैदा होता है कि आमाल में से सिर्फ़ दो अ़मल नमाज़ और माल ख़र्च करने के ज़िक्र पर बस करने में क्या राज़ है?

इसमें ग़ालिबन इसी तरफ़ इशारा है कि जितने आमाल इनसान पर फ़र्ज़ या वाजिब हैं उनका ताल्लुक़ या तो इनसान की ज़ात और बदन से है या उसके माल से। बदनी और ज़ाती इबादतों में सबसे अहम नमाज़ है, इसका ज़िक्र करने को काफ़ी समझा गया और माली इबादत सब की सब लफ़्ज़ इन्फ़ाक़ (ख़र्च करने) में दाख़िल हैं, इसलिये दर हक़ीक़त यह तन्हा दो आमाल का ज़िक्र नहीं बल्कि तमाम आमाल व इबादतें इनके तहत में आ गये और पूरी आयत के मायने यह हो गये कि मुत्तक़ी वे लोग हैं जिनका ईमान भी कामिल है और अ़मल भी, और ईमान व अ़मल के मजमूए का नाम ही इस्लाम है। गोया इस आयत में ईमान की मुकम्मल तारीफ़ (परिभाषा) के साथ इस्लाम के मफ़्हूम (मायने व मतलब) की तरफ़ भी इशारा हो गया, इसलिये मुनासिब मालूम होता है कि इस जगह इसकी भी वज़ाहत कर दी जाये कि **ईमान** और **इस्लाम** में क्या फ़र्क़ है?

ईमान और इस्लाम में फ़र्क़

लुग़त में **ईमान** किसी चीज़ की दिल से तस्दीक़ करने का नाम है और **इस्लाम** इताअ़त व फ़रमाँबरदारी का। ईमान की जगह दिल है और इस्लाम का भी दिल और सब बदनी अंग, लेकिन शरई तौर पर ईमान बग़ैर इस्लाम के और इस्लाम बग़ैर ईमान के मोतबर नहीं। यानी अल्लाह और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की महज़ दिल में तस्दीक़ कर लेना शरई तौर पर उस वक़्त तक मोतबर नहीं जब तक ज़बान से उस तस्दीक़ का इज़हार और इताअ़त व फ़रमाँबरदारी का इक़रार न कर ले। इसी तरह ज़बान से तस्दीक़ का इज़हार या फ़रमाँबरदारी का इक़रार उस वक़्त तक मोतबर नहीं जब तक दिल में अल्लाह और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तस्दीक़ न हो।

ख़ुलासा यह है कि लुग़त के एतिबार से ईमान और इस्लाम अलग-अलग मायने और मतलब रखते हैं और क़ुरआन व हदीस में इसी लुग़वी मतलब की बिना पर ईमान और इस्लाम में फ़र्क़ का ज़िक्र भी है, मगर शरई एतिबार से ईमान बग़ैर इस्लाम के और इस्लाम बग़ैर ईमान के मोतबर नहीं।

जब **इस्लाम** यानी ज़ाहिरी इक़रार व फ़रमाँबरदारी के साथ दिल में ईमान न हो तो उसको क़ुरआन की इस्तिलाह में **निफ़ाक़** का नाम दिया गया है, और इसको खुले कुफ़्र से ज़्यादा संगीन जुर्म ठहराया है। फ़रमायाः

إِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ فِى الدَّرْكِ الْاَسْفَلِ مِنَ النَّارِ. (١٤٨:٤)

"यानी मुनाफ़िक़ लोग जहन्नम में सबसे नीचे के तब्क़े में रहेंगे।"

इसी तरह **ईमान** यानी दिल की तस्दीक़ के साथ अगर इक़रार व इताअ़त न हो तो इसको भी क़ुरआनी इस्तिलाह में कुफ़्र ही क़रार दिया है। इरशाद हैः

يَعْرِفُوْنَهٗ كَمَا يَعْرِفُوْنَ اَبْنَآءَهُمْ. (١٤٦:٢)

"यानी ये काफ़िर लोग रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और आपकी हक़्क़ानियत (हक़ पर होने और सच्चा होने) को ऐसे यक़ीनी तरीक़े पर जानते हैं जैसे अपने बेटों को जानते हैं।"

और दूसरी जगह इरशाद हैः

وَجَحَدُوْا بِهَا وَاسْتَيْقَنَتْهَآ اَنْفُسُهُمْ ظُلْمًا وَّعُلُوًّا (١٤:٢٧)

"यानी ये लोग हमारी आयतों का इनकार करते हैं हालाँकि इनके दिलों में उनका पूरा यक़ीन है, और इनकी यह हरकत सिर्फ़ ज़ुल्म व तकब्बुर की वजह से है।"

मेरे उस्तादे मोहतरम हज़रत अल्लामा सैयद मुहम्मद अनवर शाह कश्मीरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि इस मज़मून को इस तरह बयान फ़रमाते थे कि ईमान और इस्लाम की राह और सफ़र एक है, फ़र्क़ सिर्फ़ इब्तिदा व इन्तिहा (शुरू व आख़िर) में है। यानी ईमान दिल से शुरू होता है और ज़ाहिरी अ़मल पर पहुँचकर मुकम्मल होता है, और इस्लाम ज़ाहिर अ़मल से शुरू होता है और दिल पर पहुँचकर मुकम्मल समझा जाता है। अगर दिल की तस्दीक़ ज़ाहिरी इक़रार व इताअ़त तक न पहुँचे तो वह ईमान की तस्दीक़ मोतबर नहीं, इसी तरह अगर ज़ाहिरी इताअ़त व इक़रार दिल की तस्दीक़ तक न पहुँचे तो वह इस्लाम मोतबर नहीं।

इमाम ग़ज़ाली रह. और इमाम सुबकी रह. की भी यही तहक़ीक़ है और इमाम इब्ने हुमाम ने मुसामरा में इस तहक़ीक़ पर तमाम अहले हक़ का इत्तिफ़ाक़ (एक मत होना) ज़िक्र किया है।

وَالَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْكَ وَمَآ اُنْزِلَ مِنْ قَبْلِكَ وَبِالْاٰخِرَةِ هُمْ يُوْقِنُوْنَ○

"वल्लज़ी-न युअ्मिनू-न बिमा उन्ज़ि-ल इलै-क व मा उन्ज़ि-ल मिन् क़ब्लि-क, व बिल-आख़िरति हुम् यूक़िनून।"

यानी "मुत्तक़ी लोग ऐसे हैं कि ईमान रखते हैं इस किताब पर भी जो आपकी तरफ़ उतारी गई और उन किताबों पर भी जो आपसे पहले उतारी जा चुकी हैं, और आख़िरत पर भी वही लोग यक़ीन रखते हैं।"

इस आयत में मुत्तक़ी हज़रात की बाक़ी सिफ़ात का बयान है जिसमें ग़ैब पर ईमान लाने की कुछ तफ़सील और आख़िरत पर ईमान लाने का ज़िक्र है। हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा ने इसकी तफ़सीर में फ़रमाया है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में मोमिनीन मुत्तक़ीन दो तरह के हज़रात थे- एक वे जो पहले मुश्रिकों में से थे फिर इस्लाम ले आये, दूसरे वे जो पहले अहले किताब यहूदी या ईसाई थे फिर मुसलमान हो गये। इससे पहली आयत में पहले तब्क़े का ज़िक्र था और इस आयत में दूसरे तब्क़े का ज़िक्र है। इसी लिये इस आयत में क़ुरआन पर ईमान लाने के साथ पिछली आसमानी किताबों पर ईमान लाने की भी वज़ाहत फ़रमाई गई, कि वे हदीस के बयान के मुताबिक़ दोहरे सवाब के हक़दार और पात्र हैं, एक पिछली किताबों के ज़माने में उन पर ईमान लाने और अ़मल करने का सवाब, दूसरे क़ुरआन के ज़माने में क़ुरआन पर ईमान लाने और अ़मल करने का सवाब। पिछली आसमानी किताबों पर ईमान लाना आज भी हर मुसलमान के लिये लाज़िम है, फ़र्क़ इतना है कि आज उन किताबों पर ईमान इस तरह होगा कि जो कुछ अल्लाह तआ़ला ने उन किताबों में नाज़िल फ़रमाया था वह सब हक़ है और उस ज़माने के लिये वही वाजिबुल-अ़मल (अ़मल के लिये ज़रूरी) था, मगर क़ुरआन नाज़िल होने के बाद चूँकि पिछली किताबें और शरीअ़तें सब मन्सूख़ (ख़त्म) हो गईं तो अब अ़मल सिर्फ़ क़ुरआन पर ही होगा।

ख़त्मे नुबुव्वत के मसले की एक स्पष्ट दलील

आयत के इस अन्दाज़े बयान से एक अहम उसूली मसला भी निकल आया कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम आख़िरी नबी हैं, और आपकी वही आख़िरी वही, क्योंकि अगर क़ुरआन के बाद कोई और किताब या वही भी नाज़िल होने वाली होती तो जिस तरह इस आयत में पिछली किताबों और वही पर ईमान लाना ज़रूरी करार दिया गया है इसी तरह आईन्दा नाज़िल होने वाली किताब और वही पर ईमान लाने का ज़िक्र भी ज़रूरी होता, बल्कि इसकी ज़रूरत ज़्यादा थी, क्योंकि तौरात व इन्जील और तमाम पिछली किताबों पर ईमान लाना तो पहले से जारी और मालूम था, अगर नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बाद भी वही (अल्लाह की तरफ़ से उसका पैग़ाम और अहकाम आने) का सिलसिला और नुबुव्वत का क्रम जारी होता तो ज़रूरत इसकी थी कि उस किताब और उस नबी का ज़िक्र ज़्यादा एहतिमाम से किया जाता जो बाद में आने वाले हों ताकि किसी को शक व शुब्हा और भ्रम न रहे। मगर क़ुरआन ने जहाँ ईमान का ज़िक्र किया तो हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से पहले नाज़िल होने वाली वही और पहले अम्बिया-ए-किराम का ज़िक्र फ़रमाया बाद में आने वाली किसी वही का कहीं क़तई ज़िक्र नहीं। फिर सिर्फ़ इसी आयत में नहीं बल्कि क़ुरआने करीम में यह मज़मून अव्वल से आख़िर तक विभिन्न मक़ामात में चालीस पचास आयतों में आया है, सब में हुज़ूर सल्ल. से पहले अम्बिया, पहली वही, पहली किताबों का ज़िक्र है, किसी एक आयत में इसका इशारा तक नहीं कि आगे भी कोई वही या नबी आने वाला है जिस पर ईमान लाना है। जैसे इरशाद है:

(١) وَمَآ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ (سورہ نحل:۴۳)

(٢) وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلًا مِّنْ قَبْلِكَ (سورہ مومن:۷۸)

(٣) وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ رُسُلًا (سورہ روم:۴۰)

(٤) وَمَآ اُنْزِلَ مِنْ قَبْلِكَ (سورہ نساء:٦٠)

(٥) وَلَقَدْ اُوْحِيَ اِلَيْكَ وَاِلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكَ (سورہ زمر:٦٥)

(٦) كَذٰلِكَ يُوْحِيْٓ اِلَيْكَ وَاِلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكَ (سورہ شوریٰ:٣)

(٧) كَمَا كُتِبَ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ (بقرہ:۱۸۳)

(٨) سُنَّةَ مَنْ قَدْ اَرْسَلْنَا قَبْلَكَ مِنْ رُّسُلِنَا (بنی اسرائیل:۷۷)

सूरः नहल आयत 43, सूरः मोमिन आयत 78, सूरः रूम आयत 40, सूरः निसा आयत 60, सूरः ज़ुमर आयत 65, सूरः शूरा आयत 3, सूरः ब-क़रह आयत 183, सूरः बनी इस्राईल आयत 77।

इन आयतों में और इनके जैसी दूसरी आयतों में जहाँ कहीं नबी या रसूल या वही व किताब भेजने का ज़िक्र है सब के साथ 'मिन क़ब्लि' और 'मिन् क़ब्लि-क' (यानी पहले या आप से पहले) की क़ैद लगी हुई है, कहीं 'मिम्-बअ़्दि' (यानी बाद में) का इशारा तक नहीं। अगर ख़त्मे नुबुव्वत और वही का सिलसिला बन्द होने का दूसरी आयतों में स्पष्टता के साथ ज़िक्र न होता तो क़ुरआन का यह

अन्दाज़ ही इस मज़मून की गवाही के लिये काफ़ी था। मसला-ए-ख़त्मे नुबुव्वत पर क़ुरआनी वज़ाहतें (खुली हिदायतें) और मुतवातिर हदीसों की शहादत (गवाही) और उम्मत का इजमा (एक मत होना) तफ़सील के साथ देखना हो तो मेरा रिसाला "ख़त्मे नुबुव्वत" देखा जाये।

मुत्तक़ी लोगों की एक सिफ़त आख़िरत पर ईमान लाना

इस आयत में मुत्तक़ी लोगों की दूसरी सिफ़त यह बयान फ़रमाई गई कि वे आख़िरत पर ईमान रखते हैं। आख़िरत से मुराद वह आख़िरत का जहान है जिसको क़ुरआन में दारुल-क़रार (ठहरने और रहने की जगह), दारुल-हैवान (हमेशा ज़िन्दा रहने का घर) और उक़्बा (बाद में आने वाली ज़िन्दगी) के नाम से भी ज़िक्र किया गया है, और पूरा क़ुरआन उसके ज़िक्र और उसके हौलनाक हालात से भरा हुआ है।

आख़िरत पर ईमान एक क्रांतिकारी अक़ीदा है

आख़िरत पर ईमान लाना अगरचे ग़ैब पर ईमान लाने के लफ़्ज़ में आ चुका है मगर इसको फिर स्पष्ट तौर पर इसलिये ज़िक्र किया गया कि यह ईमान के हिस्सों में इस हैसियत से सबसे अहम हिस्सा है कि ईमान के तक़ाज़े पर अ़मल का जज़्बा पैदा करना इसी का असर है। और इस्लामी अ़क़ीदों में यही वह इन्क़िलाबी (क्रांति पैदा करने वाला) अ़क़ीदा है जिसने दुनिया की काया पलट कर रख दी और जिसने आसमानी तालीम पर अ़मल करने वालों को पहले अख़्लाक़ व आमाल में और फिर दुनिया की सियासत में भी दुनिया की तमाम क़ौमों के मुक़ाबले में एक विशेष और अलग मक़ाम अ़ता फ़रमाया और जो अ़क़ीदा तौहीद व रिसालत की तरह तमाम अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और तमाम शरीअ़तों में मुश्तरक (संयुक्त) और सब के नज़दीक मुसल्लम चला आता है।

वजह ज़ाहिर है कि जिन लोगों के सामने सिर्फ़ दुनिया की ज़िन्दगी और इसी का ऐश व आराम उनका सबसे बड़ा उद्देश्य है, इसी की तकलीफ़ को तकलीफ़ समझते हैं, आख़िरत की ज़िन्दगी और आमाल के हिसाब किताब और जज़ा व सज़ा को वे नहीं मानते, वे जब झूठ-सच और हलाल-हराम के फ़र्क़ को अपने ऐश व आराम में ख़लल डालने वाला बनते देखें तो उनको बुराईयों और अपराधों से रोकने वाली कोई चीज़ बाक़ी नहीं रहती। हुकूमत के सज़ा के क़ानून अपराधों को रोकने और अख़्लाक़ के सुधार के लिये काफ़ी नहीं, आ़दी मुजरिम तो उन सज़ाओं के आ़दी हो ही जाते हैं कोई शरीफ़ इनसान अगर सज़ा के ख़ौफ़ से अपनी इच्छाओं को छोड़ भी दे तो इसी हद तक कि उसको हुकूमत की पकड़ का ख़तरा हो, तन्हाईयों में और राज़दाराना तरीक़ों पर जहाँ हुकूमत और उसके क़ानूनों की पहुँच नहीं वहाँ उसे कौन मजबूर कर सकता है कि अपने ऐश व आराम और इच्छाओं को छोड़कर पाबन्दियों का तौक़ अपने गले में डाल ले।

हाँ वह सिर्फ़ अ़क़ीदा-ए-आख़िरत और ख़ौफ़े ख़ुदा ही है जिसकी वजह से इनसान की ज़ाहिरी और अन्दरूनी हालत, तन्हाई और ग़ैर-तन्हाई में बराबर हो सकती है। वह यह यक़ीन रखता है कि मकान के बन्द दरवाज़ों और उन पर पहरे चौकियों में और रात की अंधेरियों में भी कोई देखने वाला मुझे देख रहा है, कोई लिखने वाला मेरे आमाल को लिख रहा है। यही वह अ़क़ीदा है जिस पर पूरा

अमल करने की वजह से इस्लाम के शुरूआती दौर में ऐसा पाकबाज़ समाज पैदा हुआ कि मुसलमानों की सूरत देखकर, चाल-चलन देखकर लोग दिल व जान से इस्लाम पर फ़िदा हो जाते थे।

यहाँ यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि इस आयत में 'बिल-आख़िरति' के साथ लफ़्ज़ 'युअ्मिनून' नहीं बल्कि 'यूक़िनून' इस्तेमाल फ़रमाया गया है, क्योंकि ईमान (मानने) का मुक़ाबिल तक्ज़ीब (झुठलाना और न मानना) है, और ईक़ान का मुक़ाबिल शक व असमंजस। इसमें इशारा है कि आख़िरत की ज़िन्दगी की महज़ तस्दीक़ करना मक़सद को पूरा नहीं करता बल्कि उसका ऐसा यक़ीन ज़रूरी है जैसे कोई चीज़ आँखों के सामने हो। 'मुत्तक़ी लोगों' की यही सिफ़त है कि आख़िरत में हक़ तआ़ला के सामने पेशी और हिसाब किताब, फिर जज़ा व सज़ा का नक़्शा हर वक़्त उनके सामने रहता है।

वह शख़्स जो दूसरों का हक़ हड़पने के लिये झूठे मुक़द्दमे लड़ता है, झूठी गवाही दे रहा है, अल्लाह तआ़ला के फ़रमान के ख़िलाफ़ हराम माल कमाने और खाने में लगा हुआ है या दुनिया के घटिया और बेफ़ायदा मक़सदों को हासिल करने के लिये ख़िलाफ़े शरीअ़त ज़रिये इख़्तियार कर रहा है, वह हज़ार बार आख़िरत पर ईमान लाने का इक़रार कर ले और शरीअ़त के ज़ाहिर में उसको मोमिन कहा भी जाये लेकिन क़ुरआन जिस यक़ीन लाने का मुतालबा करता है वह उसे हासिल नहीं, और वही इनसान की ज़िन्दगी में इन्क़िलाब लाने वाली चीज़ है, उसी के नतीजे में मुत्तक़ी लोगों को हिदायत और कामयाबी का वह इनाम दिया गया है जिसका ज़िक्र सूरः ब-क़रह की इस पाँचवीं आयत में है:

أُولَٰئِكَ عَلَىٰ هُدًى مِّن رَّبِّهِمْ وَأُولَٰئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُونَ ○

यानी "बस यही लोग हैं ठीक राह पर जो उनके परवर्दिगार की तरफ़ से मिली है, और ये लोग हैं पूरे कामयाब।"

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا سَوَاءٌ عَلَيْهِمْ أَأَنذَرْتَهُمْ أَمْ لَمْ تُنذِرْهُمْ لَا يُؤْمِنُونَ ○ خَتَمَ اللَّهُ عَلَىٰ قُلُوبِهِمْ وَعَلَىٰ سَمْعِهِمْ وَعَلَىٰ أَبْصَارِهِمْ غِشَاوَةٌ وَلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيمٌ ○ ع

इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू सवाउन् अ़लैहिम् अ-अन्ज़र्-तहुम् अम् लम् तुन्ज़िर्हुम् ला युअ्मिनून (6) ख़-तमल्लाहु अ़ला क़ुलूबिहिम् व अ़ला सम्अ़िहिम् व अ़ला अब्सारिहिम् ग़िशा-वतुंव्- व लहुम् अ़ज़ाबुन् अ़ज़ीम (7) ✿	बेशक जो लोग काफ़िर हो चुके बराबर है उनको तू डराये या न डराये, वे ईमान न लायेंगे। (6) मोहर कर दी अल्लाह ने उनके दिलों पर और उनके कानों पर और उनकी आँखों पर पर्दा है और उनके लिये बड़ा अ़ज़ाब है। (7) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक जो लोग काफ़िर हो चुके हैं बराबर है उनके हक़ में चाहे आप उनको डराएँ या न डराएँ, वे ईमान न लाएँगे (यह बात उन काफ़िरों के मुताल्लिक़ है जिनके बारे में ख़ुदा तआ़ला को मालूम है कि उनका ख़ात्मा कुफ़्र पर होगा, आ़म काफ़िर मुराद नहीं, उनमें से बहुत से लोग बाद में मुसलमान हो गये)। बन्द लगा दिया है अल्लाह तआ़ला ने उनके दिलों पर और उनके कानों पर, और उनकी आँखों पर पर्दा है, और उनके लिए सज़ा बड़ी है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

मज़मून का ख़ुलासा और इसका पिछली आयतों से ताल्लुक़

सूरः ब-क़रह की पहली पाँच आयतों में क़ुरआने करीम का हिदायत की किताब और हर शक व शुब्हे से ऊपर होना बयान करने के बाद उन ख़ुशनसीब लोगों का ज़िक्र था जिन्होंने इस किताबे हिदायत से पूरा फ़ायदा उठाया, जिनको क़ुरआन की इस्तिलाह में मोमिनीन और मुत्तक़ीन का लक़ब दिया गया है, और उन हज़रात की मख़्सूस सिफ़ात और निशानियाँ भी बयान की गईं। इसके बाद पन्द्रह आयतों में उन लोगों का ज़िक्र है जिन्होंने इस हिदायत को क़ुबूल नहीं किया बल्कि इनकार व दुश्मनी से पेश आये।

फिर उन लोगों में दो गिरोह थे एक वे जिन्होंने खुलकर कुफ़्र व मुख़ालफ़त का रास्ता इख़्तियार किया जिनको क़ुरआन की इस्तिलाह में **काफ़िर** कहा गया। दूसरे वे लोग जो अपनी अख़्लाक़ी पस्ती और दुनिया के ज़लील स्वार्थों की बिना पर यह जुर्रत न कर सके कि अपने ज़मीर की आवाज़ और दिली अ़क़ीदे को साफ़ तौर पर ज़ाहिर कर देते बल्कि धोखे और फ़रेब की राह इख़्तियार की, मुसलमानों से यह कहते कि हम मुसलमान हैं, क़ुरआन और उसकी हिदायतों को मानते हैं, तुम्हारे साथ हैं, और दिलों में उनके कुफ़्र व दुश्मनी थी, काफ़िरों की मज्लिसों में जाकर यह कहते कि हम तुम्हारे अ़क़ीदे पर और तुम्हारे साथ हैं, मुसलमानों को धोखा देने और उनके राज़ मालूम करने के लिये हम उनसे मिलते हैं। इस गिरोह का नाम क़ुरआन की इस्तिलाह में **मुनाफ़िक़** है। ये पन्द्रह आयतें जो क़ुरआन को न मानने वालों के बारे में नाज़िल हुई हैं, इनमें से उक्त दो आयतों में खुले काफ़िरों का ज़िक्र है और आगे तेरह आयतों में मुनाफ़िक़ों का ज़िक्र और उनसे संबन्धित हालात व निशानियाँ और उनका अन्जाम बयान किया गया है।

इन तमाम आयतों की तफ़सील पर एक साथ नज़र डालने से मालूम होता है कि क़ुरआने हकीम ने सूरः ब-क़रह की शुरू की बीस आयतों में एक तरफ़ तो हिदायत के स्रोत का पता दे दिया कि वह क़ुरआन है और दूसरी तरफ़ दुनिया की तमाम क़ौमों को इसी हिदायत के क़ुबूल करने या इनकार करने के मेयार से दो हिस्सों में बाँट दिया, एक हिदायत याफ़्ता जिनको मोमिनीन व मुत्तक़ीन कहा जाता है, दूसरे हिदायत से मुँह मोड़ने और इनकार करने वाले, जिनको काफ़िर या मुनाफ़िक़ कहा जाता है। पहली क़िस्म वह है जिनका रास्ता 'सिरातल्लज़ी-न अन्अ़म्-त अ़लैहिम' में तलब किया गया

है, और दूसरी किस्म वह है जिनके रास्ते से आयत के टुकड़े 'ग़ैरिल्-मग़ज़ूबि अ़लैहिम् व लज़्ज़ॉल्लीन' में पनाह माँगी गई है।

क़ुरआने करीम की इस तालीम से एक उसूली मसला यह भी निकल आया कि दुनिया की क़ौमों के हिस्सों या गिरोहों में ऐसी तक़सीम जो उसूल पर असर-अन्दाज़ हो सके वह सिर्फ़ उसूल व नज़रियात के एतिबार से ही हो सकती है, ख़ानदान व नस्ल, वतन, भाषा, रंग और भूगोलिक हालात ऐसी चीज़ें नहीं जिनके साझा या अलग होने से क़ौमों के टुकड़े किये जा सकें, क़ुरआने करीम का इस बारे में स्पष्ट फ़ैसला भी सूरः तग़ाबुन में ज़िक्र किया गया है। फ़रमायाः

خَلَقَكُمْ فَمِنْكُمْ كَافِرٌ وَّمِنْكُمْ مُّؤْمِنٌ. (٢:٦٤)

यानी "अल्लाह ने तुम सब को पैदा किया, फिर कुछ लोग तुम में से मोमिन और कुछ काफ़िर हो गये।" (सूरः तग़ाबुन आयत 2)

ऊपर बयान हुई दो आयतों में हक़ तआ़ला ने उन काफ़िरों का ज़िक्र फ़रमाया है जो अपने कुफ़्र व इनकार में ज़िद और मुख़ालफ़त तक पहुँच गये थे और उस ज़िद की वजह से वे किसी हक़ बात को सुनने और रोशन दलील को देखने के लिये भी तैयार न थे, ऐसे लोगों के बारे में अल्लाह की आ़दत और क़ानून यही है कि उनको एक सज़ा इसी जहान में नक़द यह दी जाती है कि उनके दिलों पर मुहर लगा दी जाती है। कानों, आँखों को हक़ व सच्चाई के क़ुबूल करने से बन्द कर दिया जाता है। उनका हाल हक़ व सच्चाई के बारे में ऐसा हो जाता है कि गोया न उनको समझने की अ़क़्ल न देखने के लिये आँखें, न सुनने के लिये कान। आयत के आख़िर में ऐसे लोगों का बड़े अ़ज़ाब में मुब्तला होना ज़िक्र किया गया है।

कुफ़्र की तारीफ़ (परिभाषा)

कुफ़्र के लफ़्ज़ी मायने छुपाने के हैं, नाशुक्री को भी कुफ़्र इसलिये कहते हैं कि यह मोहसिन के एहसान को छुपाना है। शरीअ़त की इस्तिलाह में जिन चीज़ों पर ईमान लाना फ़र्ज़ है उनमें से किसी चीज़ के इनकार का नाम कुफ़्र है, जैसे ईमान का ख़ुलासा यह है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो कुछ अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से लाये हैं और उसका सुबूत क़तई व यक़ीनी है उन सब चीज़ों की दिल से तस्दीक़ करना और हक़ समझना, इसलिये जो शख़्स रसूले करीम सल्ल. की उन तालीमात में से जिनका सुबूत यक़ीनी और क़तई है किसी को भी हक़ न समझे और उसकी तस्दीक़ न करे, वह काफ़िर कहलायेगा।

'इन्ज़ार' के मायने

लफ़्ज़ इन्ज़ार ऐसी ख़बर देना जिससे ख़ौफ़ पैदा हो, जैसा कि इबशार ऐसी ख़बर देने को कहते हैं जिससे सुरूर (ख़ुशी) पैदा हो। उर्दू ज़बान में इसका तर्जुमा 'डराने' से किया जाता है मगर दर हक़ीक़त उमूमी डराने को इन्ज़ार नहीं कहते बल्कि ऐसा डराना जो शफ़क़त व रहमत की बिना पर हो, जैसे औलाद को आग से, साँप बिच्छू और दरिन्दों से डराया जाता है। इसी लिये जो डाकू, चोर, ज़ालिम किसी इनसान को धमकाते डराते हैं उसको इन्ज़ार और उन लोगों को नज़ीर (डराने वाला)

नहीं कहा जाता, अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को ख़ुसूसियत से नज़ीर का लक़ब दिया जाता है कि वे शफ़क़त व मेहरबानी के तौर पर आईन्दा आने वाली मुसीबतों से डराते हैं। अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के लिये इस लफ़्ज़ को इख़्तियार करने में इसकी तालीम है कि सुधारक, मुबल्लिग़ (तब्लीग़ करने वाले) के लिये ज़रूरी है कि मुख़ातब की ऐसी ख़ैरख़्वाही के साथ हमदर्दी से गुफ़्तगू करे, केवल एक कलिमा पहुँचा देना मक़सद न हो।

इस आयत में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को तसल्ली देने के लिये यह बतलाया गया है कि ये ज़िद्दी और मुख़ालफ़त पर आमादा कुफ़्फ़ार जो हक़ीक़त को पहचानने के बावजूद कुफ़्र व इनकार पर जमे हुए हैं, या अपने तकब्बुर और ग़लत रास्ता अपनाने की बिना पर किसी हक़ बात को सुनने और रोशन दलाईल को देखने के लिये तैयार नहीं हैं, इनके सुधार और ईमान के मुताल्लिक़ जो आप कोशिश करते हैं वह इनके लिये असरदार साबित न होगी बल्कि आपका कोशिश करना और न करना इनके हक़ में बराबर है।

इसकी वजह अगली आयत में यह बतलाई गई कि अल्लाह तआ़ला ने इनके दिलों और कानों पर मुहर लगा दी है और इनकी आँखों पर पर्दा पड़ा हुआ है, सोचने समझने के जितने रास्ते थे वे सब बन्द हैं, इसलिये इनसे सुधार की उम्मीद और अपेक्षा रखना दर्द-सरी है।

किसी चीज़ पर मुहर इसलिये लगाई जाती है कि बाहर से कोई चीज़ उसमें दाख़िल न हो सके, उनके दिलों और कानों पर मुहर लगाने का यही मतलब है कि उनमें हक़ के क़ुबूल करने की कोई गुन्जाईश बाक़ी नहीं रही। उनकी इस हालत को दिलों और कानों पर तो मुहर करने से ताबीर फ़रमाया है मगर आँखों के लिये मुहर के बजाय पर्दा पड़ने का ज़िक्र किया गया, इसमें हिक्मत यह है कि दिलों में आने वाला कोई मज़मून या कोई फ़िक्र व ख़्याल किसी एक दिशा से नहीं आता हर तरफ़ से आ सकता है, इसी तरह कानों में पहुँचने वाली आवाज़ भी हर दिशा और हर जहत से आ सकती है, उनकी बन्दिश तब ही हो सकती है जब उन पर मुहर कर दी जाये, जबकि इसके विपरीत आँखों का मामला यह है कि उनका किसी चीज़ को देखना एक दिशा यानी सामने से हो सकता है, और जब सामने पर्दा पड़ जाता है तो आँखों का इदराक (किसी चीज़ को देखना और उसकी जानकारी) ख़त्म हो जाता है। (तफ़सीरे मज़हरी)

गुनाहों की दुनियावी सज़ा 'तौफ़ीक़ का छीन लिया जाना'

इन दोनों आयतों से मालूम हुआ कि कुफ़्र और गुनाह की असल सज़ा तो आख़िरत में मिलेगी मगर कई गुनाहों की कुछ सज़ा दुनिया में भी मिल जाती है। फिर यह दुनिया की सज़ा कई बार यह शक्ल इख़्तियार करती है कि हालत के सुधार की तौफ़ीक़ छीन ली जाती है, इनसान आख़िरत के हिसाब व किताब से बेफ़िक्र होकर अपनी नाफ़रमानियों और गुनाहों में बढ़ता चला जाता है और उसकी बुराई का एहसास भी उसके दिल से जाता रहता है। ऐसे हाल के बारे में बाज़ बुज़ुर्गों का इरशाद है:

إِنَّ مِنْ جَزَآءِ السَّيِّئَةِ السَّيِّئَةَ بَعْدَهَا وَإِنَّ مِنْ جَزَآءِ الْحَسَنَةِ الْحَسَنَةَ بَعْدَهَا.

"यानी गुनाह की एक सज़ा यह भी होती है कि एक गुनाह दूसरे गुनाह को खींच लाता है जिस तरह नेकी का नक़द बदला यह भी होता है कि एक नेकी दूसरी नेकी को खींच लाती है।"

और हदीस में है कि इनसान जब कोई गुनाह करता है तो उसके दिल पर एक सियाह नुक़्ता (काला धब्बा) लग जाता है और जिस तरह सफ़ेद कपड़े पर एक काला धब्बा इनसान को नागवार गुज़रता है, गुनाह के पहले धब्बे से भी इनसान परेशान होता है लेकिन अगर उसने उस गुनाह से तौबा न की और दूसरा गुनाह कर लिया तो एक दूसरा काला धब्बा लग जाता है और इसी तरह हर गुनाह पर काले धब्बे लगते चले जाते हैं, यहाँ तक कि यह सियाही सारे दिल पर फैल जाती है और अब उसका हाल यह हो जाता है कि वह न किसी अच्छी चीज़ को अच्छा समझता है न बुरी चीज़ को बुरा, ग़र्ज़ कि नेकी बदी का फ़र्क़ उसके दिल से उठ जाता है, और फिर फ़रमाया कि इसी अंधेरी व सियाही का नाम क़ुरआने करीम में **रान** या **रेन** आया है। जैसे फ़रमायाः

كَلَّا بَلْ سَكْتَة رَانَ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ مَّا كَانُوْا يَكْسِبُوْنَ ○ (مشکوٰة از مسند احمد وترمذی)

"यानी ऐसा नहीं, बल्कि उनके दिलों पर उनके आमाल का ज़ंग बैठ गया है।"

और तिर्मिज़ी ने सही सनद के साथ हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत से नक़ल किया है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया- इनसान जब कोई गुनाह करता है तो उसका दिल सियाह हो जाता है फिर अगर वह तौबा कर ले तो साफ़ हो जाता है। (क़ुर्तुबी)

नसीहत नासेह के लिये हर हाल में मुफ़ीद है मुख़ातब क़ुबूल करे या न करे

इस आयत में अज़ली काफ़िरों (यानी जिनकी तक़दीर ही में काफ़िर रहना लिख दिया गया है) के लिये रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का वअ़ज़ व नसीहत करना और न करना बराबर क़रार दिये गये हैं मगर इनके साथ 'अ़लैहिम' (उन पर) की क़ैद लगाकर बतला दिया गया कि यह बराबरी काफ़िरों के हक़ में है, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के हक़ में नहीं, बल्कि उनको तो तब्लीग़ और मख़्लूक़ की इस्लाह व सुधार की कोशिश का सवाब बहरहाल मिलेगा। इसी लिये पूरे क़ुरआने करीम की किसी आयत में रसूलुल्लाह सल्ल. को ऐसे लोगों को भी ईमान की दावत देने से रोका नहीं गया, इससे मालूम हुआ कि जो शख़्स दीन की दावत और इस्लाह व सुधार का काम करता है चाहे असरदार हो या न हो, उसको बहरहाल अपने अ़मल का सवाब मिलता है।

एक शुब्हे का जवाब

इस आयत का मज़मून वही है जो सूरः मुतफ़्फ़िफ़ीन की इस आयत का हैः

كَلَّا بَلْ سَكْتَة رَانَ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ مَّا كَانُوْا يَكْسِبُوْنَ ○ (۸۳:۱٤)

"यानी ऐसा नहीं, बल्कि उनके दिलों पर उनके आमाल का ज़ंग बैठ गया है।"

जिसमें हक़ीक़त वाज़ेह कर दी गई है कि उनके बुरे आमाल और सरकशी ही उनके दिलों का ज़ंग बन गया है, इसी ज़ंग को उक्त आयत में मुहर या पर्दे के लफ़्ज़ों से ताबीर किया गया है।

इसलिये इस पर यह शुब्हा नहीं हो सकता कि जब अल्लाह तआला ने ही उनके दिलों पर मुहर कर दी और अक़्ल व होश को बेकार कर दिया है तो ये अपने कुफ़्र में माज़ूर हो गये, फिर इनको अ़ज़ाब कैसा? वजह यह है कि इन लोगों ने शरारत व मुख़ालफ़त करके अपने इख़्तियार से अपनी सलाहियत और क्षमता को बरबाद कर लिया है, इसलिये इस सलाहियत को बरबाद करने वाले और उसका सबब ये ख़ुद हैं, अलबत्ता अल्लाह तआला ने बन्दों के तमाम कामों के ख़ालिक़ होने की हैसियत से इस जगह मुहर करने को अपनी तरफ़ मन्सूब करके यह बतला दिया कि जब उन लोगों ने हक़ के क़ुबूल करने की सलाहियत व योग्यता को अपने इख़्तियार से तबाह करना चाहा तो अल्लाह के क़ानून व तरीक़े के मुताबिक़ हमने वह बुरी सलाहियत की कैफ़ियत उनके दिलों और हवास में पैदा कर दी।

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَ بِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَمَا هُمْ بِمُؤْمِنِيْنَ ۝ يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۚ وَمَا يَخْدَعُوْنَ اِلَّآ اَنْفُسَهُمْ وَمَا يَشْعُرُوْنَ ۝ فِيْ قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ ۙ فَزَادَهُمُ اللّٰهُ مَرَضًا ۚ وَلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۢ بِمَا كَانُوْا يَكْذِبُوْنَ ۝ وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ لَا تُفْسِدُوْا فِي الْاَرْضِ ۙ قَالُوْٓا اِنَّمَا نَحْنُ مُصْلِحُوْنَ ۝ اَلَآ اِنَّهُمْ هُمُ الْمُفْسِدُوْنَ وَلٰكِنْ لَّا يَشْعُرُوْنَ ۝ وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ اٰمِنُوْا كَمَآ اٰمَنَ النَّاسُ قَالُوْٓا اَنُؤْمِنُ كَمَآ اٰمَنَ السُّفَهَآءُ ۚ اَلَآ اِنَّهُمْ هُمُ السُّفَهَآءُ وَلٰكِنْ لَّا يَعْلَمُوْنَ ۝ وَاِذَا لَقُوا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا قَالُوْٓا اٰمَنَّا ۚ وَاِذَا خَلَوْا اِلٰى شَيٰطِيْنِهِمْ ۙ قَالُوْٓا اِنَّا مَعَكُمْ ۙ اِنَّمَا نَحْنُ مُسْتَهْزِءُوْنَ ۝ اَللّٰهُ يَسْتَهْزِئُ بِهِمْ وَيَمُدُّهُمْ فِيْ طُغْيَانِهِمْ يَعْمَهُوْنَ ۝ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الضَّلٰلَةَ بِالْهُدٰى ۪ فَمَا رَبِحَتْ تِّجَارَتُهُمْ وَمَا كَانُوْا مُهْتَدِيْنَ ۝ مَثَلُهُمْ كَمَثَلِ الَّذِي اسْتَوْقَدَ نَارًا ۚ فَلَمَّآ اَضَآءَتْ مَا حَوْلَهٗ ذَهَبَ اللّٰهُ بِنُوْرِهِمْ وَتَرَكَهُمْ فِيْ ظُلُمٰتٍ لَّا يُبْصِرُوْنَ ۝ صُمٌّ ۢ بُكْمٌ عُمْيٌ فَهُمْ لَا يَرْجِعُوْنَ ۝ اَوْ كَصَيِّبٍ مِّنَ السَّمَآءِ فِيْهِ ظُلُمٰتٌ وَّرَعْدٌ وَّبَرْقٌ ۚ يَجْعَلُوْنَ اَصَابِعَهُمْ فِيْٓ اٰذَانِهِمْ مِّنَ الصَّوَاعِقِ حَذَرَ الْمَوْتِ ۚ وَاللّٰهُ مُحِيْطٌ ۢ بِالْكٰفِرِيْنَ ۝ يَكَادُ الْبَرْقُ يَخْطَفُ اَبْصَارَهُمْ ۚ كُلَّمَآ اَضَآءَ لَهُمْ مَّشَوْا فِيْهِ ۙ وَاِذَآ اَظْلَمَ عَلَيْهِمْ قَامُوْا ۚ وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ لَذَهَبَ بِسَمْعِهِمْ وَاَبْصَارِهِمْ ۚ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝

व मिनन्नासि मंय्यकूलु आमन्ना बिल्लाहि व बिल्यौमिल्-आख़िरि व मा हुम् बिमुअ्मिनीन (8)	और लोगों में कुछ ऐसे भी हैं जो कहते हैं हम ईमान लाये अल्लाह पर और दिन कियामत पर और वे हरगिज मोमिन नहीं। (8)

युख़ादिऊनल्ला-ह वल्लज़ी-न आमनू, व मा यख़्दऊ-न इल्ला अन्फ़ुसहुम् व मा यश्अुरून (9) फ़ी क़ुलूबिहिम् म-रज़ुन् फ़ज़ा-दहुमुल्लाहु म-रज़न् व लहुम् अ़ज़ाबुन् अलीमुम् बिमा कानू यक्ज़िबून (10) व इज़ा क़ी-ल लहुम् ला तुफ़्सिदू फ़िल्अर्ज़ि क़ालू इन्नमा नह्नु मुस्लिहून (11) अला इन्नहुम् हुमुल्-मुफ़्सिदू-न व ला किल्ला यश्अुरून (12) व इज़ा क़ी-ल लहुम् आमिनू कमा आ-मनन्नासु क़ालू अनुअ्मिनु कमा आ-मनस्सु-फ़हा-उ, अला इन्नहुम् हुमुस्सु-फ़हा-उ व लाकिल्ला यअ्लमून (13) व इज़ा लक़ुल्लज़ी-न आमनू क़ालू आमन्ना व इज़ा ख़लौ इला शयातीनिहिम् क़ालू इन्ना म-अ़कुम् इन्नमा नह्नु मुस्तह्ज़िऊन (14) अल्लाहु यस्तह्ज़िउ बिहिम् व यमुद्दुहुम् फ़ी तुग़्यानिहिम् यअ्महून (15) उला-इकल्लज़ीन- -श्त-रवुज़्ज़ला-ल-त बिल्हुदा फ़मा रबिहत्-तिजारतुहुम् व मा कानू मुह्तदीन (16) म-सलुहुम् क-म-सलिल्-लज़िस्तौक़-द

दग़ाबाज़ी करते हैं अल्लाह से और ईमान वालों से, और दर असल किसी को दग़ा नहीं देते मगर अपने आपको, और नहीं सोचते। (9) उनके दिलों में बीमारी है फिर बढ़ा दी अल्लाह ने उनकी बीमारी, और उनके लिये अ़ज़ाब दर्दनाक है इस बात पर कि झूठ कहते थे। (10) और जब कहा जाता है उनको फ़साद न डालो मुल्क में तो कहते हैं हम तो इस्लाह करने वाले हैं। (11) जान लो वही हैं ख़राबी करने वाले लेकिन नहीं समझते। (12) और जब कहा जाता है उनको ईमान लाओ जिस तरह ईमान लाये सब लोग तो कहते हैं- क्या हम ईमान लायें जिस तरह ईमान लाये बेवक़ूफ़, जान लो वही हैं बेवक़ूफ़ लेकिन नहीं जानते। (13) और जब मुलाक़ात करते हैं मुसलमानों से तो कहते हैं हम ईमान ले आये हैं, और जब तन्हा होते हैं अपने शैतानों के पास तो कहते हैं कि बेशक हम तुम्हारे साथ हैं हम तो हंसी करते हैं (यानी मुसलमानों से)। (14) अल्लाह हंसी करता है उनसे और तरक़्क़ी देता है उनको उनकी सरकशी में (और) हालत यह है कि वे अ़क्ल के अन्धे हैं। (15) ये वही हैं जिन्होंने मोल ली गुमराही हिदायत के बदले सो फ़ायदेमन्द न हुई उनकी सौदागरी और न हुए राह पाने वाले। (16) उनकी मिसाल उस शख़्स की सी है जिसने आग जलाई,

नारन् फ-लम्मा अज़ा-अत् मा हौलहू ज़-हबल्लाहु बिनूरिहिम् व त-र-कहुम् फ़ी ज़ुलुमातिल्-ला युब्सिरून (17) सुम्मुम्-बुक्मुन् अुम्युन् फ़हुम् ला यर्जिअून (18) औ क-सय्यिबिम्-मिनस्समा-इ फ़ीहि ज़ुलुमातुंव्-व रअ़्दुंव्-व बर्क़ुन्, यज्अलू-न असाबि-अहुम् फ़ी आज़ानिहिम् मिनस्सवाअ़िकि ह-ज़रल्मौति वल्लाहु मुहीतुम्-बिल्काफ़िरीन (19) यकादुल्-बर्क़ु यख़्तफ़ु अब्सा-रहुम्, कुल्लमा अज़ा-अ लहुम् मशौ फ़ीहि व इज़ा अज़्ल-म अलैहिम् क़ामू, व लौ शा-अल्लाहु ल-ज़-ह-ब बिसम्अ़िहिम् व अब्सारिहिम्, इन्नल्ला-ह अ़ला कुल्लि शैइन् क़दीर (20)	फिर जब रोशन कर दिया आग ने उसके आस-पास को तो दूर कर दी अल्लाह ने उनकी रोशनी और छोड़ा उनको अन्धेरों में कि कुछ नहीं देखते। (17) बहरे हैं, गूँगे हैं, अन्धे हैं, सो वे नहीं लौटेंगे। (18) या उनकी मिसाल ऐसी है जैसे ज़ोर की बारिश पड़ रही हो आसमान से, उसमें अन्धेरे हैं और गरज और बिजली, देते हैं उंगलियाँ अपने कानों में मारे कड़क के, मौत के डर से, और अल्लाह इहाता करने वाला है काफ़िरों का। (19) क़रीब है कि बिजली उचक ले उनकी आँखें, जब चमकती है उनपर तो चलने लगते हैं उसकी रोशनी में और जब अन्धेरा होता है तो खड़े रह जाते हैं, और अगर चाहे अल्लाह तो ले जाये उनके कान और आँखें, बेशक अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है। (20)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और लोगों में कुछ ऐसे भी हैं जो कहते हैं- हम ईमान लाए अल्लाह तआ़ला पर और आख़िरी दिन पर, हालाँकि वे बिल्कुल ईमान वाले नहीं (बल्कि) चालबाज़ी करते हैं अल्लाह तआ़ला से और उन लोगों से जो ईमान ला चुके हैं (यानी सिर्फ़ चालबाज़ी के तौर पर ईमान का इज़हार करते हैं) और हक़ीक़त में किसी के साथ भी चालबाज़ी नहीं करते सिवाय अपनी ज़ात के, और वे इसका शऊर नहीं रखते (यानी इस चालबाज़ी का बुरा अन्जाम ख़ुद अपने ही को भुगतना पड़ेगा)। उनके दिलों में बड़ा रोग है सो और भी बढ़ा दिया अल्लाह तआ़ला ने उनका रोग (उस रोग में उनके एतिक़ाद की ख़राबी और इस्लाम और मुसलमानों की तरक़्क़ी देखकर हसद में जलना और हर वक़्त अपना कुफ़्र ज़ाहिर हो जाने की फ़िक्र व परेशानी सब दाख़िल हैं, मुसलमानों की तरक़्क़ी से उनका हसद का रोग और बढ़ना वाज़ेह है), और उनके लिए दर्दनाक सज़ा है इस वजह से कि वे झूठ बोला करते थे (यानी ईमान का

झूठा दावा किया करते थे)।

और जब उनसे कहा जाता है कि फ़साद "यानी ख़राबी और बिगाड़" मत करो ज़मीन में, तो कहते हैं कि हम तो सुधार ही करने वाले हैं (उनके दो-रुख़े चलन से जब फ़ितने-फ़साद उत्पन्न होने लगे और किसी ख़ैरख़्वाह ने तंबीह की कि ऐसी कार्रवाई फ़साद का सबब हुआ करती है इसको छोड़ दो, तो इसके जवाब में ये अपने आपको बजाय बिगाड़ और ख़राबी का ज़िम्मेदार मानने के सुधारक और भला काम करने वाला बताते हैं, यानी अपने फ़साद ही को सुधार समझते हैं) याद रखो बेशक यही लोग मुफ़सिद "यानी बिगाड़ पैदा करने वाले" हैं, लेकिन वे इसका शऊर नहीं रखते। (यह तो उनकी जहालत और बेअक़्ली का बयान है कि अपने ऐब ही को हुनर समझते हैं, आगे दूसरी जहालत का बयान है कि दूसरों के हुनर को यानी ईमाने ख़ालिस को ऐब और हक़ीर समझते हैं) और जब उनसे कहा जाता है कि तुम भी ऐसा ही ईमान ले आओ जैसा ईमान लाए हैं और लोग, तो कहते हैं- क्या हम ईमान लाएँगे जैसा ईमान लाए हैं ये बेवक़ूफ़? याद रखो बेशक यही हैं बेवक़ूफ़, लेकिन वे इसका इल्म नहीं रखते। (ये मुनाफ़िक़ ऐसी खुली हुई बात बज़ाहिर ग़रीब मुसलमानों के सामने कर लेते होंगे जिनसे उनको कोई अन्देशा न था वरना आम तौर पर तो वे अपने कुफ़्र को छुपाते फिरते थे) और जब मिलते हैं वे मुनाफ़िक़ उन लोगों से जो ईमान लाए हैं तो कहते हैं कि हम ईमान ले आए हैं, और जब तन्हाई में पहुँचते हैं अपने बुरे सरदारों के पास तो कहते हैं कि हम बेशक तुम्हारे साथ हैं, हम तो (मुसलमानों से) सिर्फ़ मज़ाक़ किया करते हैं (यानी मुसलमानों से बतौर मज़ाक़ कह देते हैं कि हम ईमान लाये हैं वरना हम तो तुम्हारे रास्ते पर हैं। आगे उनके मज़ाक़ का जवाब है कि) अल्लाह तआला ही मज़ाक़ कर रहे हैं उनके साथ और ढील देते चले जाते हैं उनको कि वे अपनी नाफ़रमानी व सरकशी में हैरान व सरगरदाँ हो रहे हैं (वह अल्लाह तआला का मज़ाक़ यही है कि उनको मोहलत दी जा रही है, जब वे ख़ूब कुफ़्र में आख़िरी हद को पहुँच जायें और जुर्म संगीन हो जाये उस वक़्त अचानक पकड़ लिये जायेंगे, चूँकि अल्लाह तआला का यह फ़ेल उनके मज़ाक़ के मुक़ाबले में था इसलिये इसको मज़ाक़ के उनवान से ताबीर कर दिया गया)।

ये वे लोग हैं कि इन्होंने गुमराही ले ली हिदायत के बजाय, तो फ़ायदेमन्द न हुई इनकी यह तिजारत और न ये ठीक तरीक़े पर चले (यानी इनको तिजारत का सलीक़ा न आया कि हिदायत जैसी क़ीमती चीज़ के बदले में गुमराही ले ली)। इनकी हालत उस शख़्स की हालत के जैसी है जिसने कहीं आग जलाई हो, फिर जब रोशन कर दिया हो उस आग ने उस शख़्स के आस-पास की सब चीज़ों को, ऐसी हालत में छीन लिया हो अल्लाह तआला ने उनकी रोशनी को और छोड़ दिया हो उनको अन्धेरों में कि कुछ देखते भालते न हों (तो जिस तरह यह शख़्स और इसके साथी रोशनी के बाद अंधेरे में रह गये इसी तरह मुनाफ़िक़ लोग हक़ खुलकर सामने आ जाने के बाद गुमराही के अंधेरे में जा फंसे और जिस तरह आग जलाने वालों की आँख, कान, ज़बान अंधेरे में बेकार हो गये, इसी तरह गुमराही के अंधेरे में फंस कर उनकी यह हालत हो गई कि गोया वे) बहरे हैं, गूँगे हैं, अन्धे हैं, सो ये अब रुजू न होंगे (कि उनके हवास हक़ को देखने सुनने समझने के क़ाबिल न रहे। यह मिसाल तो उन मुनाफ़िक़ों की थी जो ख़ूब दिल खोलकर कुफ़्र पर जमे हुए हैं, कभी ईमान का ध्यान भी दिल में नहीं आता, आगे मुनाफ़िक़ों के उस गिरोह की मिसाल है जो वास्तव में शक व असमंजस में थे, कभी

कभी इस्लाम की हक़्क़ानियत देखकर उसकी तरफ़ माईल होने लगते, फिर जब नफ़्सानी उद्देश्यों का ग़लबा होता तो यह मैलान बदल जाता था)। या उन मुनाफ़िक़ों की ऐसी मिसाल है जैसे बारिश हो आसमान की तरफ़ से, उसमें अन्धेरा भी हो और बिजली व कड़क भी हो, जो लोग उस बारिश में चल रहे हैं वे ठूँसे लेते हैं अपनी उंगलियाँ अपने कानों में कड़क के सबब मौत के अन्देशे से, और अल्लाह तआला घेरे में लिए हुए है काफ़िरों को।

बिजली की यह हालत है कि मालूम होता है कि अभी उनकी आँखों की रोशनी उसने ली। जहाँ ज़रा उनको बिजली की चमक हुई तो उसकी रोशनी में चलना शुरू किया और जब उन पर अन्धेरा हुआ फिर खड़े के खड़े रह गए। और अगर अल्लाह तआला इरादा करते तो उनके आँख-कान सब छीन लेते, बेशक अल्लाह तआला हर चीज़ पर क़ादिर हैं (तो जिस तरह ये लोग हवा व बारिश के तूफ़ान में कभी चलने से रह जाते हैं कभी मौक़ा पाकर आगे चलने लगते हैं यही हाल उन शक व शुब्हे और असमंजस में पड़े मुनाफ़िक़ों का है)।

मआरिफ़ व मसाईल

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

जैसा कि पहले बयान हो चुका है कि सूरः ब-क़रह के शुरू में क़ुरआने करीम का शक व शुब्हे से ऊपर होना बयान करने के बाद बीस आयतों में उसके मानने वालों और न मानने वालों के हालात का ज़िक्र किया गया है। पहली पाँच आयतों में मानने वालों का तज़किरा मुत्तक़ीन के उनवान से किया गया है, फिर दो आयतों में ऐसे न मानने वालों का ज़िक्र है जो खुले तौर पर क़ुरआन का दुश्मनी से इनकार करते थे। इन तेरह आयतों में ऐसे इनकारियों व काफ़िरों का ज़िक्र है जो ज़ाहिर में अपने आपको मोमिन मुसलमान कहते थे मगर हक़ीक़त में मोमिन न थे, इन लोगों का नाम क़ुरआन में मुनाफ़िक़ीन रखा गया है।

उपरोक्त आयतों में से पहली दो आयतों में मुनाफ़िक़ों के मुताल्लिक़ फ़रमाया गया कि "लोगों में बाज़े ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि हम ईमान लाये अल्लाह पर, हालाँकि वे बिल्कुल ईमान वाले नहीं, बल्कि वे चालबाज़ी करते हैं अल्लाह से और उन लोगों से जो ईमान ला चुके हैं, और वास्तव में वे किसी के साथ भी चालबाज़ी नहीं करते सिवाय अपनी ज़ात के, और वे इसका शऊर नहीं रखते।"

इसमें उनके ईमान के दावे को ग़लत और झूठा क़रार दिया गया और यह कि उनका यह दावा महज़ फ़रेब है। यह ज़ाहिर है कि अल्लाह तआला को कोई फ़रेब नहीं दे सकता और ग़ालिबन ये लोग भी ऐसा न समझते होंगे कि हम अल्लाह तआला को धोखा दे सकते हैं, मगर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और मुसलमानों के साथ उनकी चालबाज़ी को एक तरह से अल्लाह तआला के साथ चालबाज़ी क़रार देकर फ़रमाया गया कि ये लोग अल्लाह तआला के साथ चालबाज़ी करते हैं।

(क़ुर्तुबी, हज़रत हसन से)

इसलिये इसका नतीजा यह बतलाया गया कि ये बेवक़ूफ़ अपने सिवा और किसी के साथ चालबाज़ी नहीं कर रहे हैं, क्योंकि अल्लाह जल्ल शानुहू तो हर धोखे फ़रेब से बालातर हैं, उनके रसूल

और मोमिन हज़रात भी अल्लाह तआ़ला की वही की वजह से हर धोखे फ़रेब से सुरक्षित हो जाते हैं, कोई नुक़सान उनको नहीं पहुँचता, अलबत्ता उनके धोखे, फ़रेब का वबाल दुनिया व आख़िरत में ख़ुद उन्हीं पर पड़ता है।

तीसरी आयत में फ़रमाया कि "उनके दिलों में बड़ा रोग है, सो और भी बढ़ा दिया अल्लाह ने उनके रोग को।" रोग और बीमारी उस कैफ़ियत को कहते हैं जिससे इनसान अपनी मुनासिब और एतिदाल की हालत से निकल जाये और उसके कामों में ख़लल पैदा हो जाये, जिसका आख़िरी नतीजा हलाकत और मौत होता है।

क़ुरआन व हदीस की इस्तिलाह में उन नफ़्सानी कैफ़ियतों को भी रोग कहा जाता है जो इनसानी नफ़्स के कमाल (तरक़्क़ी और बुलन्दी) में ख़लल डालने वाली हों, और जिनकी वजह से इनसान अपने इनसानी आमाल से मेहरूम होता चला जाये, जिसका आख़िरी नतीजा रूहानी मौत व तबाही है।

हज़रत जुनैद बग़दादी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि दिलों के रोग नफ़्सानी इच्छाओं की पैरवी से पैदा होते हैं, जैसे इनसानी बदन के रोग और बीमारियाँ इनसानी अख़्लात (यानी सफ़रा, सौदा, बलग़म और ख़ून यानी इनसानी बदन में मौजूद माद्दों) की बेएतिदाली (असन्तुलन) से पैदा होते हैं। इस आयत में उनके दिलों में छुपे कुफ़्र को रोग फ़रमाया गया है जो रूहानी और जिस्मानी दोनों एतिबार से बड़ा रोग है। रूहानी मर्ज़ (रोग) होना तो ज़ाहिर है कि अव्वल तो अपने पैदा करने वाले की नाशुक्री और उसके अहकाम से सरकशी जिसका नाम कुफ़्र है यह ख़ुद इनसानी रूह के लिये सबसे बड़ा रोग और शराफ़ते इनसानी के लिये बदतरीन दाग़ है। दूसरे दुनिया के ज़लील और घटिया उद्देश्यों की ख़ातिर इसको छुपाते रहना और अपने दिल की बात को ज़ाहिर करने की भी जुर्रत न होना यह दूसरी घटिया और कमीनी हरकत है जो रूह का बहुत बड़ा रोग है। और निफ़ाक़ का जिस्मानी रोग होना इस बिना पर है कि मुनाफ़िक़ के दिल में हमेशा यह धड़का रहता है कि कहीं मेरा असली हाल न खुल जाये, रात-दिन इसी फ़िक्र में रहना ख़ुद एक जिस्मानी रोग और बीमारी है। इसके अ़लावा इस रोग का लाज़िमी नतीजा हसद है कि मुसलमानों की तरक़्क़ी को देखकर मुनाफ़िक़ को जलन होगी, मगर वह ग़रीब अपने दिल की जलन का इज़्हार भी नहीं कर सकता, ये असबाब उनके जिस्मानी रोग भी बन जाते हैं।

और यह जो फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने उनका रोग और बढ़ा दिया, इसका मतलब यही है कि ये लोग इस्लाम और मुसलमानों की तरक़्क़ी से जलते हैं, और अल्लाह तआ़ला को यह तरक़्क़ी देना है और हर वक़्त यह खुली आँखों दिखाई देता है, इसलिये उनका यह रोग बढ़ता ही रहता है।

चौथी और पाँचवीं आयत में मुनाफ़िक़ों का यह मुग़ालता (धोखा और भ्रम) मज़कूर है कि फ़साद (बिगाड़ और ख़राबी) को इस्लाह (सुधार) समझते और अपने आपको सुधारक कहते थे, क़ुरआने करीम ने वाज़ेह किया कि फ़साद और इस्लाह ज़बानी दावों पर दायर नहीं होते वरना कोई चोर डाकू भी अपने आपको बिगाड़ पैदा करने वाला कहने को तैयार नहीं, बल्कि काम का मदार उस काम पर है जो किया जा रहा है, वह फ़साद (बिगाड़) है तो करने वाले को मुफ़सिद (बिगाड़ फैलाने वाला) ही कहा जायेगा चाहे उसकी नीयत फ़साद की न हो।

छठी आयत में मुनाफ़िक़ों के सामने सही ईमान का एक मेयार रखा गया किः

اٰمِنُوْا كَمَآ اٰمَنَ النَّاسُ

"यानी ईमान लाओ जैसे ईमान लाये और लोग" इसमें लफ़्ज़ 'नास' (लोग) से मुराद सब मुफ़स्सिरीन की राय में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम हैं, क्योंकि वही हज़रात हैं जो क़ुरआन के नाज़िल होने के वक़्त ईमान लाये थे कि अल्लाह तआला के नज़दीक सिर्फ़ वही ईमान मोतबर है जो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के ईमान की तरह हो। जिन चीज़ों में जिस कैफ़ियत के साथ उनका ईमान है उसी तरह का ईमान दूसरों का होगा तो ईमान कहा जायेगा, वरना नहीं। इससे मालूम हुआ कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम का ईमान एक कसौटी है जिस पर बाक़ी उम्मत के ईमान को परखा जायेगा, जो उस कसौटी पर सही न हो उसको शरई तौर पर ईमान और ऐसा करने वाले को मोमिन न कहा जायेगा, उसके ख़िलाफ़ कोई अक़ीदा और अमल चाहे ज़ाहिर में कितना ही अच्छा नज़र आये और कितनी ही नेक-नीयती से किया जाये अल्लाह के नज़दीक ईमान मोतबर नहीं। उन लोगों ने सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को बेवक़ूफ़ कहा, और यही हर ज़माने के गुमराह लोगों का तरीक़ा रहा है कि जो उनको सही राह बतलाये उसको बेवक़ूफ़ जाहिल क़रार देते हैं, मगर क़ुरआने करीम ने बतला दिया कि दर हक़ीक़त वे ख़ुद ही बेवक़ूफ़ हैं कि ऐसी खुली निशानियों पर ईमान नहीं रखते।

सातवीं आयत में मुनाफ़िक़ों के निफ़ाक़ और दोरुख़ी पॉलीसी का इस तरह ज़िक्र किया गया है कि ये लोग जब मुसलमानों से मिलते तो कहते थे कि हम मोमिन मुसलमान हो गये, और जब अपनी क़ौम के काफ़िर लोगों से मिलते तो कहते थे कि हम तो तुम्हारे ही साथ हैं, और तुम्हारी क़ौम के फ़र्द हैं और मुसलमानों के साथ तो महज़ मज़ाक़ व दिल्लगी के लिये यानी उनको बेवक़ूफ़ बनाने के लिये मिलते हैं।

आठवीं आयत में उनकी इस अहमक़ाना गुफ़्तगू का जवाब है कि ये बेशऊर समझते हैं कि हम मुसलमानों से मज़ाक़ करते हैं और उनको बेवक़ूफ़ बना रहे हैं हालाँकि दर हक़ीक़त ख़ुद बेवक़ूफ़ बन रहे हैं, और अल्लाह तआला ने अपने संयम व करम से उनको ढील देकर ख़ुद उन्हीं के मज़ाक़ का सामान कर दिया है, कि ज़ाहिर में किसी अ़ज़ाब के न आने से वे और ग़फ़लत में पड़ गये और अपनी सरकशी में बढ़ते चले गये, यहाँ तक कि उनका जुर्म और संगीन हो गया, फिर अचानक पकड़ लिये गये। अल्लाह तआला की तरफ़ से यह अ़मल चूँकि उनके मज़ाक़ के जवाब में था इसलिये इस अ़मल को भी मज़ाक़ से ताबीर किया गया।

नवीं आयत में मुनाफ़िक़ों के उस हाल का ज़िक्र है कि उन्होंने इस्लाम को भी क़रीब से देखा, इसका ज़ायक़ा भी चखा और कुफ़्र में तो पहले से मुब्तला थे ही, फिर कुफ़्र व इस्लाम दोनों को देखने समझने के बाद उन्होंने अपनी ज़लील दुनियावी ग़र्ज़ों (स्वार्थों) की ख़ातिर इस्लाम के बदले कुफ़्र को तरजीह (वरीयता) दी, उनके इस अ़मल को क़ुरआने करीम ने तिजारत (व्यापार) का नाम देकर यह बतला दिया कि उन लोगों को व्यापार का भी सलीक़ा नहीं आया, कि बेहतरीन क़ीमती चीज़ यानी ईमान देकर रद्दी और तकलीफ़ देह चीज़ यानी कुफ़्र ख़रीद लिया।

आख़िरी चार आयतों में मुनाफ़िक़ों के हाल की दो मिसालें देकर उसका क़ाबिले नफ़रत होना बयान फ़रमाया गया। दो मिसालें इस बिना पर दी गईं कि मुनाफ़िक़ों में दो तरह के आदमी थे- एक

वे जो अपने कुफ़्र में बिल्कुल पुख़्ता थे ईमान का इज़हार सिर्फ़ दुनियावी मस्लेहत की वजह से करते थे, ईमान व इस्लाम से उनको कोई वास्ता नहीं था। दूसरे कुछ लोग ऐसे भी थे जो इस्लाम की हक़्क़ानियत से मुतास्सिर होकर कभी-कभी सच्चे मुसलमान होने का इरादा भी कर लेते थे मगर फिर दुनियावी स्वार्थ और फ़ायदे सामने आकर उनको इस इरादे से रोक देते थे, इस तरह वे एक असमंजस और दुविधा के हाल में रहते।

इसी मज़मून के अन्तर्गत उन ज़ालिमों को यह तंबीह भी कर दी गई कि वे सब के सब अल्लाह तआ़ला के क़ुदरत के घेरे से बाहर नहीं, वह हर वक़्त हर हाल में हलाक भी कर सकता है और देखने-सुनने की ताक़तें भी छीन सकता है।

ये तेरह आयतें मुनाफ़िक़ों के हाल व मिसाल पर आधारित हैं, इनमें बहुत से अहकाम व मसाईल और अहम हिदायतें भी हैं।

क्या कुफ़्र व निफ़ाक़ ज़माना-ए-नबवी के साथ मख़्सूस था, या अब भी मौजूद है?

इस मामले में सही यह है कि मुनाफ़िक़ों के निफ़ाक़ को पहचानना और उसको मुनाफ़िक़ क़रार देना दो तरीक़ों से होता था- एक यह कि अल्लाह तआ़ला ने अपने रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को वही के ज़रिये बता दिया कि फ़ुलाँ शख़्स दिल से मुसलमान नहीं, मुनाफ़िक़ है। दूसरे यह कि उसके किसी क़ौल व फ़ेल से किसी इस्लामी अ़क़ीदे के ख़िलाफ़ कोई बात या इस्लाम की मुख़ालफ़त का कोई अ़मल ज़ाहिर और साबित हो जाये।

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात के बाद वही आने के सिलसिले के बन्द हो जाने के सबब उनके पहचानने की पहली सूरत तो बाक़ी न रही, मगर दूसरी अब भी मौजूद है। जिस शख़्स के किसी क़ौल व फ़ेल से इस्लाम के क़तई अ़क़ीदों की मुख़ालफ़त या उन पर मज़ाक़ या रद्दोबदल और कमी-बेशी करना साबित हो जाये मगर वह अपने ईमान व इस्लाम का दावेदार बने तो वह मुनाफ़िक़ समझा जायेगा। ऐसे मुनाफ़िक़ का नाम क़ुरआन की इस्तिलाह में मुलहिद (बेदीन) है और हदीस में उसको ज़िन्दीक़ (गुमराह) के नाम से नामित किया गया है, मगर चूँकि उसका कुफ़्र दलील से साबित और वाज़ेह हो गया इसलिये उसका हुक्म सब काफ़िरों जैसा हो गया, अलग कोई हुक्म उसका नहीं है, इसी लिये उलेमा-ए-उम्मत ने फ़रमाया कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बाद मुनाफ़िक़ों का क़ज़िया ख़त्म हो गया, अब जो मोमिन नहीं वह काफ़िर कहलायेगा।

हज़रत इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहि से 'उम्दा' शरह बुख़ारी में नक़ल किया गया है कि नुबुव्वत के ज़माने के बाद निफ़ाक़ की यही सूरत है जिसको पहचाना जा सकता है और ऐसा करने वाले को मुनाफ़िक़ कहा जा सकता है।

ईमान व कुफ़्र की हक़ीक़त

ऊपर बयान हुई आयतों में ग़ौर करने से ईमान व इस्लाम की पूरी हक़ीक़त वाज़ेह हो जाती है

और उसके मुक़ाबले में कुफ़्र की भी। क्योंकि इन आयतों में मुनाफ़िक़ों की तरफ़ से ईमान का दावा 'आमन्ना बिल्लाहि' (ईमान लाये हम अल्लाह पर) में और क़ुरआने करीम की तरफ़ से उनके इस दावे का ग़लत होना 'व मा हुम बि-मुअ्मिनीन' (और वे ईमान वाले नहीं) में ज़िक्र किया गया है। यहाँ चन्द बातें ग़ौर तलब हैं:

अव्वल यह कि जिन मुनाफ़िक़ों का हाल क़ुरआने करीम में बयान फ़रमाया गया है वे असल में यहूदी थे, और अल्लाह तआ़ला और क़ियामत के दिन पर ईमान लाना यहूद के मज़हब में भी साबित और मुसल्लम है, और जो चीज़ें उनके अ़क़ीदे में नहीं थीं यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की रिसालत व नुबुव्वत को मानना और आप पर ईमान लाना, इसको उन्होंने अपने बयान में ज़िक्र नहीं किया बल्कि सिर्फ़ दो चीज़ें ज़िक्र कीं- अल्लाह पर ईमान लाना, आख़िरत के दिन पर ईमान लाना, जिसमें उनको झूठा नहीं कहा जा सकता, फिर क़ुरआने करीम में उनको झूठा क़रार देना और उनके ईमान का इनकार करना किस वजह से है?

बात यह है कि किसी न किसी तरह अपनी मन-मानी सूरतों में ख़ुदा तआ़ला या आख़िरत का इक़रार कर लेना ईमान नहीं, यूँ तो मुश्रिक लोग भी किसी न किसी अन्दाज़ से अल्लाह तआ़ला को मानते हैं और सबसे बड़ा क़ादिरे मुतलक़ मानते हैं। हिन्दुस्तान के मुश्रिक लोग तो प्रलय का नाम देकर क़ियामत का एक नमूना भी तस्लीम करते हैं, मगर क़ुरआन की नज़र में यह ईमान नहीं, बल्कि सिर्फ़ वह ईमान मोतबर है जो उसकी बतलाई हुई तमाम सिफ़ात के साथ हो, और आख़िरत पर ईमान वह मोतबर है जो क़ुरआने करीम और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बतलाये हुए हालात व सिफ़ात के साथ हो।

ज़ाहिर है कि यहूद इस मायने के एतिबार से न अल्लाह पर ईमान रखते हैं न आख़िरत पर, क्योंकि एक तरफ़ तो वे हज़रत उज़ैर अ़लैहिस्सलाम को ख़ुदा का बेटा क़रार देते हैं, और आख़िरत के मामले में भी यह ग़लत एतिक़ाद रखते हैं कि अम्बिया की औलाद कुछ भी करती रहे वह बहरहाल अल्लाह तआ़ला की महबूब है, उनसे आख़िरत में कोई सवाल और पूछगछ न होगी, और कुछ अ़ज़ाब हुआ भी तो बहुत मामूली होगा। इसलिये क़ुरआनी इस्तिलाह के एतिबार से उनका यह कहना कि हम अल्लाह और क़ियामत के दिन पर ईमान लाये हैं, ग़लत और झूठ हुआ।

कुफ़्र व ईमान का क़ानून

क़ुरआन की इस्तिलाह में ईमान वह है जिसका ज़िक्र सूरः ब-क़रह की तेरहवीं आयत में आ चुका है। फ़रमायाः

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ اٰمِنُوْا كَمَآ اٰمَنَ النَّاسُ.

जिससे मालूम हुआ कि ईमान का दावा सही या ग़लत के जाँचने का मेयार सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का ईमान है जो उसके मुताबिक़ नहीं वह अल्लाह तआ़ला और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नज़दीक ईमान नहीं।

अगर कोई शख़्स क़ुरआनी अ़क़ीदे का मफ़्हूम क़ुरआनी वज़ाहत या रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की व्याख्या के ख़िलाफ़ क़रार देकर यह कहे कि मैं तो इस अ़क़ीदे को मानता हूँ तो यह

मानना शरई एतिबार से मोतबर नहीं, जैसा कि आजकल क़ादियानी गिरोह कहता है कि हम भी नुबुव्वत के अ़क़ीदे को मानते हैं मगर उस अ़क़ीदे में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के ईमान से बिल्कुल अलग रद्दोबदल और कमी-बेशी करते हैं, मिर्ज़ा गुलाम अहमद की नुबुव्वत के लिये जगह और गुंजाईश निकालते हैं। क़ुरआने करीम की इस वज़ाहत के मुताबिक़ वे इसी के मुस्तहिक़ हैं कि उनको यह कहा जाये कि वे हरगिज़ मोमिन नहीं।

ख़ुलासा यह है कि सहाबा के ईमान के ख़िलाफ़ कोई शख़्स किसी अ़क़ीदे का नया मफ़्हूम बनाये और उस अ़क़ीदे का पाबन्द होने की वजह से अपने आपको मोमिन मुसलमान बतलाये और मुसलमानों के नमाज़ रोज़े में शरीक भी हो मगर जब तक वह क़ुरआन के इस बतलाये हुए मेयार के मुताबिक़ ईमान नहीं लायेगा उस वक़्त तक वह क़ुरआन की इस्तिलाह में मोमिन नहीं कहलायेगा।

एक शुब्हा और उसका जवाब

हदीस व फ़िक़ा का यह मशहूर मक़ूला कि "अहले क़िब्ला को काफ़िर नहीं कहा जा सकता" इसका मतलब भी ज़िक्र हुई आयत के तहत में यह मुतैयन हो गया कि अहले क़िब्ला से मुराद सिर्फ़ वे लोग हैं जो दीन की ज़रूरी बातों में से किसी चीज़ के इनकारी नहीं, वरना ये मुनाफ़िक़ लोग भी तो क़िब्ले की तरफ़ सब मुसलमानों की तरह नमाज़ पढ़ते थे मगर यह सिर्फ़ क़िब्ले की तरफ़ रुख़ करके नमाज़ पढ़ना उनके ईमान के लिये इस बिना पर काफ़ी न हुआ कि उनका ईमान सहाबा किराम की तरह दीन की तमाम ज़रूरी चीज़ों पर नहीं था।

झूठ एक घिनौनी चीज़ है

यहाँ मुनाफ़िक़ों के क़ौल 'आमन्ना बिल्लाहि व बिल-यौमिल् आख़िरि' (ईमान लाये हम अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर) में ग़ौर कीजिये कि ये लोग परले दर्जे के काफ़िर होने के बावजूद अपने जानने में झूठ बोलने से परहेज़ करते हैं, क्योंकि ईमान के दावे के लिये सिर्फ़ अल्लाह और क़ियामत के दिन पर ईमान का ज़िक्र करते हैं, रसूल पर ईमान का ज़िक्र इसलिये नहीं करते कि झूठ न हो जाये। इससे मालूम हुआ कि झूठ ऐसी गन्दी और घिनौनी चीज़ है कि कोई शरीफ़ आदमी चाहे काफ़िर व फ़ासिक़ हो, झूठ बोलना पसन्द नहीं करता। यह दूसरी बात है कि उनका अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान लाने का दावा भी क़ुरआनी इस्तिलाह के ख़िलाफ़ होने की वजह से परिणाम स्वरूप झूठ साबित हुआ।

अम्बिया व औलिया के साथ बुरा सुलूक करना अल्लाह तआ़ला के साथ बुराई करना है

ऊपर बयान हुई आयतों में मुनाफ़िक़ों का एक हाल यह बतलाया है:

يُخَادِعُوْنَ اللّٰهَ

यानी ये लोग अल्लाह तआ़ला को धोखा देना चाहते और उसके साथ चालबाज़ी करते हैं, हालाँकि मुनाफ़िक़ों के गिरोह में शायद कोई भी ऐसा न हो जो अल्लाह तआ़ला को धोखा देने का इरादा रखता हो, या यह समझता हो कि वह अल्लाह तआ़ला को फ़रेब दे सकता है। बल्कि हक़ीक़त यह थी कि ये लोग रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और मोमिनों को धोखा देने के इरादे से बुरी हरकतें करते थे, अल्लाह तआ़ला ने उपरोक्त आयत में इसको अल्लाह को धोखा देना क़रार देकर यह बतला दिया कि जो शख़्स अल्लाह तआ़ला के किसी रसूल या वली के साथ कोई बुरा मामला करता है वह दर हक़ीक़त अल्लाह तआ़ला ही के साथ ऐसा मामला करने के हुक्म में है। दूसरी तरफ़ नबी करीम सल्ल. की बुलन्द शान की तरफ़ भी इशारा कर दिया गया कि आपकी शान में कोई गुस्ताख़ी करना ऐसा ही जुर्म है जैसा अल्लाह तआ़ला की शान में गुस्ताख़ी जुर्म है।

झूठ बोलने का वबाल

ऊपर ज़िक्र हुई आयतों में मुनाफ़िक़ों के दर्दनाक अ़ज़ाब की वजह उनके झूठ बोलने को क़रार दिया है, हालाँकि उनके कुफ़्र व निफ़ाक़ का जुर्म सबसे बड़ा था और दूसरे जुर्म और गुनाह मुसलमानों से हसद, उनके ख़िलाफ़ साज़िशें भी बड़े जुर्म थे, मगर दर्दनाक अ़ज़ाब का सबब उनके झूठ बोलने को क़रार दिया। इसमें यह इशारा पाया जाता है कि झूठ बोलने की आ़दत उनका असली जुर्म था, इसी बुरी आ़दत ने उनको कुफ़्र व निफ़ाक़ तक पहुँचा दिया था, इसलिये जुर्म की हैसियत अगरचे कुफ़्र व निफ़ाक़ की बढ़ी हुई है मगर इन सब ख़राबियों की जड़ और बुनियाद झूठ बोलना है। इसी लिये क़ुरआने करीम ने झूठ बोलने को बुत-परस्ती (मूर्ति पूजा) के साथ जोड़कर इस तरह इरशाद फ़रमायाः

فَاجْتَنِبُوا الرِّجْسَ مِنَ الْاَوْثَانِ وَاجْتَنِبُوْا قَوْلَ الزُّوْرِ۝ (۳۰:۲۲)

"यानी बचो बुत-परस्ती (बुतों की पूजा करने) की गंदगी से और बचो झूठ बोलने से।"

सुधार व बिगाड़ की परिभाषा और सुधार व बिगाड़ करने वाले की पहचान

ऊपर ज़िक्र हुई आयतों में गुज़र चुका है कि जब कोई उन मुनाफ़िक़ों से यह कहता कि अपने निफ़ाक़ के ज़रिये ज़मीन में फ़साद (बिगाड़ और ख़राबी) न फैलाओ तो वे बड़े प्रबल अन्दाज़ में कहते थे किः

اِنَّمَا نَحْنُ مُصْلِحُوْنَ۝

इसमें लफ़्ज़ 'इन्नमा' जो ख़ास और सीमित करने के लिये बोला जाता है, इसकी वजह से मायने इस जुमले के यह हैं कि हम तो सुधारक हैं, यानी हमारे किसी अ़मल का फ़साद (बिगाड़ और ख़राबी) से कोई वास्ता नहीं, मगर क़ुरआने करीम ने उनके जवाब में फ़रमायाः

اَلَآ اِنَّهُمْ هُمُ الْمُفْسِدُوْنَ وَلٰكِنْ لَّا يَشْعُرُوْنَ۝

"यानी याद रखो कि यही लोग मुफ़्सिद (बिगाड़ और ख़राबी पैदा करने और फैलाने वाले) हैं मगर इनको इसका शऊर नहीं।"

इसमें दो बातें मालूम हुईं- एक यह कि मुनाफ़िक़ों की हरकतें हक़ीक़त में ज़मीन में फ़साद व फ़ितना फैलने का सबब थीं, दूसरी बात यह कि मुनाफ़िक़ लोग फ़ितना व फ़साद फैलाने की नीयत और इरादे से यह काम न करते थे बल्कि उनको मालूम भी न था कि इसका नतीजा फ़ितना व फ़साद है, जैसा कि क़ुरआने करीम की वज़ाहत "मगर इनको इसका शऊर नहीं" से मालूम होता है।

वजह यह है कि ज़मीन में फ़ितना व फ़साद जिन चीज़ों से फैलता है उनमें कुछ तो ऐसी चीज़ें हैं जिनको हर शख़्स फ़ितना व फ़साद (ख़राबी और बिगाड़) समझता है जैसे क़त्ल, ग़ारतगरी, चोरी, धोखा, फ़रेब, अपहरण, बदकारी वग़ैरह, हर समझदार आदमी इनको बुराई व फ़साद समझता है और हर शरीफ़ आदमी इनसे बचता है। और कुछ चीज़ें ऐसी भी हैं जो अपने ज़ाहिरी स्तर के एतिबार से कोई फ़ितना व फ़साद नहीं होतीं मगर उनकी वजह से इनसानों के अख़्लाक़ बरबाद होते हैं और इनसानों की अख़्लाक़ी गिरावट सारे फ़ितनों और फ़सादों के दरवाज़े खोल देती है। उन मुनाफ़िक़ों का भी यही हाल था कि चोरी, डाका, बदकारी वग़ैरह से बचते थे, इसी लिये बड़े ज़ोरदार और प्रबल अन्दाज़ में अपने मुफ़्सिद होने का इनकार और सुधारक होने को साबित किया।

मगर निफ़ाक़ और कीना व हसद और इसके मातहत दुश्मनों से साज़िशें, ये चीज़ें इनसान के अख़्लाक़ को ऐसा तबाह कर देती हैं कि इनसान बहुत से हैवानों की सतह से भी नीचे आ जाता है और ऐसे काम पर उतर आता है जो कभी किसी भले मानस से तसव्वुर भी नहीं किये जा सकते, और जब इनसान अपने इनसानी अख़्लाक़ खो बैठे तो इनसानी ज़िन्दगी के हर शोबे (क्षेत्र) में फ़साद ही फ़साद आ जाता है। फ़साद भी ऐसा ज़बरदस्त जो न दरिन्दे जानवरों से उम्मीद होती है न डाकुओं और चोरों से, क्योंकि उनके फ़साद को क़ानून और हुकूमत की ताक़त से रोका जा सकता है मगर क़ानून तो इनसान ही जारी करते हैं, जब इनसान इनसान न रहा तो क़ानून की जो दुर्गत बनेगी उसका तमाशा आज खुली आँखों हर शख़्स हर महकमे और हर संस्था में देखता है।

आज दुनिया की तहज़ीब व सभ्यता तरक़्क़ी पर है, पढ़ने-पढ़ाने के इदारों का जाल गाँव-गाँव तक फैला हुआ है, तहज़ीब तहज़ीब के अलफ़ाज़ हर शख़्स की ज़बान पर हैं, क़ानून बनाने की मज्लिसों का बाज़ार गर्म है, क़ानून नाफ़िज़ और लागू करने के बेशुमार इदारे अरबों रुपये के ख़र्च से क़ायम हैं, दफ़्तरी इन्तिज़ामों की भूल-भुलैयाँ हैं, मगर अपराध और फ़ितने फ़साद दिन-ब-दिन बढ़ते ही जाते हैं। वजह इसके सिवा नहीं कि कोई क़ानून ख़ुद मशीनी काम नहीं होता, बल्कि उसको इनसान चलाते हैं, जब इनसान ही अपनी इनसानियत खो बैठा तो फिर इस फ़साद का इलाज न क़ानून से हो सकता है न हुकूमत और महकमों के चक्कर से, इसी लिये इनसानियत के अ़ज़ीम तरीन मोहसिन नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपनी सारी की सारी तवज्जोह इस पर केन्द्रित फ़रमाई है कि इनसान को सही मायने में इनसान बना दें तो फिर फ़साद व जुर्म ख़ुद-ब-ख़ुद ख़त्म हो जाते हैं, न पुलिस की ज़्यादा ज़रूरत रहती है न अ़दालतों के इस फैलाव की जो दुनिया में पाया जाता है। और जब तक दुनिया के जिस हिस्से में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात व हिदायात पर अ़मल होता रहा दुनिया ने वह अमन व अमान देखा जिसकी नज़ीर न पहले कभी देखी गई न इन तालीमात को

छोड़ने के बाद उम्मीद है।

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात पर अ़मल की रूह है अल्लाह तआ़ला का ख़ौफ़, और क़ियामत के हिसाब किताब की फ़िक्र, इसके बग़ैर कोई क़ानून व दस्तूर और कोई महकमा और कोई मदरसा और यूनिवर्सिटी इनसान को जुर्मों (बुराईयों और अपराधों) से रोकने पर मजबूर नहीं कर सकती।

आजकी दुनिया में जिन लोगों के हाथ में इख़्तियार की बागडोर है वे अपराध और बुराईयों के रोकने के नये से नये इन्तिज़ाम की तो सोचते हैं मगर इस इन्तिज़ामी रूह यानी ख़ौफ़े ख़ुदा से न सिर्फ़ ग़फ़लत बरतते हैं बल्कि इसको फ़ना करने के असबाब मुहैया करते हैं, जिसका लाज़िमी नतीजा हमेशा यही सामने आता रहता है किः

मर्ज़ बढ़ता गया जूँ जूँ दवा की

खुले तौर पर फ़साद मचाने वाले, चोरों, ग़ारतगरों का इलाज आसान है मगर उन इनसानियत को भूलने वाले इनसानों का फ़साद हमेशा सुधार के रूप में होता है। वे कोई दिल को लुभाने वाली सुधारक स्कीम भी सामने रख लेते हैं और ख़ालिस ज़ाती बुरी ग़र्ज़ों को सुधार का रंग देकरः

اِنَّمَا نَحْنُ مُصْلِحُوْنَ

"हम तो सुधार करने वाले हैं" के नारे लगाते रहते हैं। इसी लिये हक़ तआ़ला सुब्हानहू ने जहाँ फ़साद से रोका है उसके साथ ही यह भी फ़रमा दियाः

وَاللّٰهُ يَعْلَمُ الْمُفْسِدَ مِنَ الْمُصْلِحِ. (٢:٢٢٠)

यानी "अल्लाह तआ़ला ही जानते हैं कि मुफ़्सिद कौन है और सुधारक कौन?" जिसमें इशारा फ़रमाया कि बिगाड़ व सुधार की असल हक़ीक़त हक़ तआ़ला ही जानते हैं जो दिलों के हाल और नीयतों से भी वाक़िफ़ हैं, और हर अ़मल के ख़ासियतों व परिणामों को भी जानते हैं कि उसका परिणाम अच्छा होगा या बुरा। इसलिये इस्लाह (सुधार) के लिये सिर्फ़ सुधार की नीयत काफ़ी नहीं बल्कि अ़मल का रुख़ भी शरीअ़त के मुताबिक़ सही होना ज़रूरी है। कई बार कोई अ़मल पूरी नेक नीयती और सुधार के इरादे से किया जाता है मगर उसका असर फ़साद व फ़ितना होता है।

يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ اعْبُدُوْا رَبَّكُمُ الَّذِىْ خَلَقَكُمْ وَالَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ۝ الَّذِىْ جَعَلَ لَكُمُ الْاَرْضَ فِرَاشًا وَّالسَّمَآءَ بِنَآءً ۪ وَّاَنْزَلَ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً فَاَخْرَجَ بِهٖ مِنَ الثَّمَرٰتِ رِزْقًا لَّكُمْ ۚ فَلَا تَجْعَلُوْا لِلّٰهِ اَنْدَادًا وَّاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝

या अय्युहन्नासुअ़्बुदू रब्बकुमुल्लज़ी ख़-ल-ककुम् वल्लज़ी-न मिन् क़ब्लिकुम् लअ़ल्लकुम् तत्तक़ून (21)	ऐ लोगो! बन्दगी करो अपने रब की जिसने पैदा किया तुमको और उनको जो तुमसे पहले थे, ताकि तुम परहेज़गारबन जाओ। (21)

अल्लज़ी ज-अ-ल लकुमुल्अर्-ज़ फ़िराशंव्- वस्समा-अ बिनाअंव्-व अन्ज़-ल मिनस्समा-इ माअन् फ़-अख़्र-ज बिही मिनस्स-मराति रिज़्क़ल्लकुम् फ़ला तज्अ़लू लिल्लाहि अन्दादंव्-व अन्तुम् तअ़्लमून (22)	जिसने बनाया वास्ते तुम्हारे ज़मीन को बिछौना और आसमान को छत, और उतारा आसमान से पानी फिर निकाले उससे मेवे तुम्हारे खाने के वास्ते, सो न ठहराओ किसी को अल्लाह के मुक़ाबिल और तुम तो जानते हो। (22)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ लोगो! इबादत इख़्तियार करो अपने परवर्दिगार की जिसने तुमको पैदा किया और उन लोगों को भी जो कि तुमसे पहले गुज़र चुके हैं, अ़जब नहीं कि तुम दोज़ख़ से बच जाओ (शाही मुहावरे में अ़जब नहीं का लफ़्ज़ वायदे के मौक़े पर बोला जाता है)। वह ज़ाते पाक ऐसी है जिसने बनाया तुम्हारे लिए ज़मीन को फ़र्श और आसमान को छत, और बरसाया आसमान से पानी, फिर नापैदी के पर्दे से निकाला उस पानी के ज़रिये से फलों की ग़िज़ा को तुम लोगों के वास्ते, तो अब मत ठहराओ अल्लाह के मुक़ाबिल और तुम जानते बूझते हो (यानी यह जानते हो कि ये तमाम इख़्तियारात और हर चीज़ पर क़ब्ज़ा ख़ुदा तआ़ला के सिवा कोई करने वाला नहीं, फिर ख़ुदा के मुक़ाबले में दूसरी चीज़ों को माबूद बनाना कैसे दुरुस्त हो सकता है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों के मज़मून का पिछले मज़मून से ताल्लुक़

सूरः ब-क़रह की दूसरी आयत में उस दुआ़ व दरख़्वास्त का जवाब था जो सूरः फ़ातिहा में आई है यानी 'इह्दिनस्सिरातल् मुस्तक़ीम' (दिखा हमको सीधा रास्ता)। यानी जो सिराते मुस्तक़ीम तुम तलब करते हो वह इस किताब में है, क्योंकि क़ुरआने करीम अव्वल से आख़िर तक सिराते मुस्तक़ीम (सीधे और सही रास्ते) ही की तफ़सील व वज़ाहत है।

उसके बाद क़ुरआनी हिदायतों को क़ुबूल करने और न करने के एतिबार से इनसान के तीन गिरोहों को बयान किया गया- पहली तीन आयतों में मोमिनीन व मुत्तक़ीन का ज़िक्र हुआ जिन्होंने क़ुरआनी हिदायत को अपना असल मक़सद बना लिया। बाद की दो आयतों में उस गिरोह का ज़िक्र किया जिसने खुले तौर पर इस हिदायत की मुख़ालफ़त की। इसके बाद तेरह आयतों में उस ख़तरनाक गिरोह के हालात बयान किये गये जो हक़ीक़त में तो क़ुरआनी हिदायतों के मुख़ालिफ़ थे मगर दुनिया की ज़लील ग़र्ज़ों या मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाने के ख़्याल से अपने कुफ़्र व मुख़ालफ़त को छुपाकर मुसलमानों में शामिल रहते और अपने आपको मुसलमान ज़ाहिर करते।

इसी तरह सूरः ब-क़रह की शुरू की बीस आयतों में हिदायत के क़ुबूल करने और न करने के

मेयार पर तमाम इनसानों को तीन गिरोहों में बाँट दिया गया, जिसमें इस तरफ़ भी इशारा पाया गया कि इनसानों की गिरोही और क़ौमी तक़सीम ख़ानदान व नस्ल, क्षेत्र व भाषा और रंग की बुनियादों पर सही नहीं बल्कि उसकी सही तक़सीम मज़हब की बुनियाद पर है कि अल्लाह तआ़ला और उसकी हिदायतों को मानने वाले एक क़ौम और न मानने वाले दूसरी क़ौम, जिनको सूरः मुजादला में "हिज़्बुल्लाह" (अल्लाह का गिरोह) और "हिज़्बुश्शैतान" (शैतान का गिरोह) का नाम दिया गया।

ग़र्ज़ कि सूरः ब-क़रह की शुरू की बीस आयतों में क़ुरआनी हिदायतों को मानने या न मानने की बुनियाद पर इनसान को तीन क़ौमों में तक़सीम करके हर एक का कुछ हाल बयान फ़रमाया गया।

इसके बाद उक्त इक्कीसवीं और बाईसवीं आयतों में तीन गिरोहों को ख़िताब करके वह दावत पेश की गई है जिसके लिये क़ुरआन नाज़िल हुआ, उसमें मख़्लूक़ परस्ती से बाज़ आने और एक ख़ुदा की इबादत करने की तरफ़ दावत ऐसे अन्दाज़ से दी गई है कि उसमें दावत के साथ उसकी स्पष्ट दलीलें और तर्क भी मौजूद हैं, जिनमें मामूली समझ-बूझ वाला इनसान भी ज़रा सा ग़ौर करे तो तौहीद (अल्लाह के एक माबूद होने) के इक़रार पर मजबूर हो जाये।

पहली आयत में "या अय्युहन्नासु" (ऐ लोगो!) से ख़िताब शुरू हुआ। लफ़्ज़ 'अन्नास' अ़रबी ज़बान में मुतलक़ इनसान के मायने में आता है, इसलिये उक्त तीनों गिरोह इसमें दाख़िल हैं, जिनको मुख़ातब बनाकर इरशाद फ़रमाया 'उअ़्बुदू रब्बकुम्' (अपने रब की इबादत करो)। इबादत के मायने हैं अपनी पूरी ताक़त मुकम्मल फ़रमाँबरदारी में लगा देना, और ख़ौफ़ व बड़ाई के पेशे नज़र नाफ़रमानी से दूर रहना। (तफ़सीर रूहुल-बयान पेज 74 जिल्द 1) और लफ़्ज़ 'रब' के मायने "परवर्दिगार" के हैं जिसकी पूरी तशरीह पहले गुज़र चुकी है। तर्जुमा यह हुआ कि "इबादत करो अपने रब की"।

यहाँ पर लफ़्ज़ 'रब' की जगह लफ़्ज़ 'अल्लाह' या अल्लाह के पाक नामों में से कोई और नाम भी लाया जा सकता था मगर उनमें से इस जगह लफ़्ज़ "रब" का चयन करने में यह हिक्मत है कि इस मुख़्तसर से जुमले में दावे के साथ दलील भी आ गई, क्योंकि इबादत की हक़दार सिर्फ़ वह ज़ात हो सकती है जो इनसानों की परवरिश की कफ़ील (ज़िम्मेदार) हो, जो इसको एक क़तरे से धीरे-धीरे तरबियत के साथ एक भला-चंगा, सुनने देखने वाला, अ़क़्ल व समझ वाला माहिर इनसान बना दे, और इसकी बक़ा व तरक़्क़ी के संसाधन मुहैया करे। और यह ज़ाहिर है कि इनसान कितना ही जाहिल हो, और अपनी समझ और अ़क़्ल को बरबाद कर चुका हो, जब भी ज़रा ग़ौर करेगा तो इसका यक़ीन करने में उसे हरगिज़ देर नहीं लगेगी कि यह रब होने की शान सिवाय हक़ तआ़ला के और किसी में नहीं और इनसान पर यह मुरब्बियाना इनामात न किसी पत्थर के तराशे हुए बुत ने किये हैं और न किसी और मख़्लूक़ ने, और वो कैसे करते जबकि वो सब ख़ुद अपने वजूद और बक़ा (बाक़ी रहने) में उसी "एक ज़ात" के मोहताज हैं। एक मोहताज दूसरे मोहताज की क्या ज़रूरत पूरी कर सकता है? और अगर ज़ाहिरी तौर पर करे भी तो वह भी दर हक़ीक़त उसी ज़ात की तरबियत (पालने का इन्तिज़ाम) होगी जिसकी तरफ़ ये दोनों मोहताज हैं।

ख़ुलासा यह है कि इस जगह लफ़्ज़ "रब" लाकर यह वाज़ेह कर दिया गया कि जिस ज़ात की इबादत की तरफ़ दावत दी गई है उसके सिवा कोई दूसरी हस्ती इबादत की हक़दार और पात्र हो ही नहीं सकती। इस जुमले में इनसानों के तीनों गिरोहों को ख़िताब है, और हर मुख़ातब के लिये इस

जुमले के मायने व मतलब अलग हैं। जैसे जब कहा गया कि अपने रब की इबादत करो तो काफ़िरों के लिये इस ख़िताब के मायने यह हुए कि मख़्लूक़ की पूजा छोड़कर तौहीद (एक अल्लाह की इबादत) इख़्तियार करो, और मुनाफ़िक़ों के लिये इसके यह मायने हुए कि निफ़ाक़ (दोरुख़ी ज़िन्दगी) को छोड़कर इख़्लास पैदा करो, गुनाहगार मुसलमानों के लिये यह मायने हुए कि गुनाह से बाज़ आओ और पूरी इताअ़त इख़्तियार करो, और मुत्तक़ी मुसलमानों के लिये इस जुमले के यह मायने हुए कि अपनी ताअ़त व इबादत (नेकी) पर हमेशा क़ायम रहो और उसमें तरक़्क़ी की कोशिश करो। (रूहुल-बयान)

इसके बाद "रब" की चन्द ख़ास सिफ़ात का ज़िक्र करके इस मज़मून की और ज़्यादा वज़ाहत फ़रमा दी गई। इरशाद होता है:

اَلَّذِیْ خَلَقَکُمْ وَالَّذِیْنَ مِنْ قَبْلِکُمْ

यानी "तुम्हारा परवर्दिगार वह है जिसने तुम्हें पैदा किया और उन क़ौमों को भी जो तुम से पहले गुज़र चुकी हैं।"

इसमें "रब" की वह सिफ़त बतलाई गई है जो अल्लाह जल्ल शानुहू के सिवा किसी मख़्लूक़ में पाये जाने का किसी को वहम व गुमान भी नहीं हो सकता, कि नेस्त (नापैदी) से हस्त (वजूद) और नाबूद से बूद करना, फिर माँ के पेट की अंधेरियों और गन्दगियों में ऐसा हसीन व जमील, पाक व साफ़ इनसान बना देना कि फ़रिश्ते भी उसकी पाकी पर रश्क करें, यह सिवाय उस ज़ाते हक़ के किस का काम हो सकता है जो किसी का मोहताज नहीं और सब उसके मोहताज हैं।

इस आयत में 'ख़-ल-क़कुम्' के साथ 'अल्लज़ी-न मिन् क़ब्लिकुम' का इज़ाफ़ा करके एक तो यह बतला दिया कि तुम और तुम्हारे बाप-दादा (पुर्खे और पूर्वज) यानी पूरी इनसानी नस्ल का ख़ालिक़ (पैदा करने वाला) वही परवर्दिगार है। दूसरे सिर्फ़ 'मिन् क़ब्लिकुम्' (तुम से पहले) का ज़िक्र फ़रमाया 'मिम्-बअ़्दिकुम' यानी बाद में पैदा होने वाले लोगों का ज़िक्र नहीं किया, इसमें इसकी तरफ़ भी इशारा हो गया कि उम्मते मुहम्मदिया के बाद कोई दूसरी उम्मत या दूसरी मिल्लत नहीं होगी, क्योंकि ख़ातिमुन्नबिय्यीन हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बाद न कोई नबी आयेगा न उसकी कोई नयी उम्मत होगी।

इसके बाद इसी आयत का आख़िरी जुमला है 'लअ़ल्लकुम् तत्तक़ून' यानी दुनिया में गुमराही और आख़िरत में अ़ज़ाब से निजात पाने की उम्मीद तुम्हारे लिये सिर्फ़ इसी सूरत में हो सकती है कि तौहीद को इख़्तियार करो और शिर्क से बाज़ आओ।

ज़मीन व आसमान की कायनात में क़ुदरते हक़ की निशानियाँ

फिर दूसरी आयत में "रब" की दूसरी सिफ़ात का बयान इस तरह फ़रमाया गया है:

اَلَّذِیْ جَعَلَ لَکُمُ الْاَرْضَ فِرَاشًا وَّالسَّمَآءَ بِنَآءً وَّاَنْزَلَ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً فَاَخْرَجَ بِهٖ مِنَ الثَّمَرٰتِ رِزْقًا لَّکُمْ

यानी "रब वह ज़ात है जिसने बनाया तुम्हारे लिये ज़मीन को फ़र्श और आसमान को छत, और

बरसाया आसमान से पानी, फिर उस पानी के ज़रिये अदम के पर्दे से निकाली फलों की ग़िज़ा तुम्हारे लिये।''

पहली नेमत

इससे पहली आयत में उन इनामों का ज़िक्र था जो इनसान की ज़ात से जुड़े हैं, और इस आयत में उन इनामों का ज़िक्र है जो इनसान के आस-पास की चीज़ों से संबन्धित हैं। यानी पहली आयत में ''अन्फ़ुसी'' (एक नफ़्स और ज़ात पर) और दूसरी में ''आफ़ाक़ी'' (उमूमी और सार्वजनिक) नेमतों का ज़िक्र फ़रमाकर नेमतों की तमाम किस्मों का इहाता (घेराव) फ़रमाया गया।

उन ''आफ़ाक़ी'' नेमतों में से ज़मीन की पैदाईश का ज़िक्र है कि इसको इनसान के लिये फ़र्श बना दिया, न पानी की तरह नर्म है जिस पर ठहराव न हो सके, और न लोहे पत्थर की तरह सख़्त है कि हम उसे अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ आसानी से इस्तेमाल न कर सकें, बल्कि नर्मी और सख़्ती के दरमियान ऐसा बनाया गया जो आम इनसानी ज़रूरियाते ज़िन्दगी में काम दे सके।

'फ़िराश' (फ़र्श) के लफ़्ज़ से यह लाज़िम नहीं आता कि ज़मीन गोल न हो, क्योंकि ज़मीन का यह अज़ीमुश्शान कुर्रा गोल होने के बावजूद देखने में एक सतह नज़र आता है और क़ुरआन का आम तर्ज़ यही है कि हर चीज़ की वह कैफ़ियत बयान करता है जिसको हर देखने वाला आलिम, जाहिल, शहरी, देहाती समझ सके।

दूसरी नेमत यह है कि आसमान को एक सजा-संवरा और नज़र में बस जाने वाली छत बना दिया। तीसरी नेमत यह है कि आसमान से पानी बरसाया, पानी आसमान से बरसाने के लिये यह ज़रूरी नहीं कि बादल का वास्ता दरमियान में न हो, बल्कि मुहावरों में हर ऊपर से आने वाली चीज़ को आसमान से आना बोलते हैं। ख़ुद क़ुरआने करीम ने कई मक़ामात में बादलों से पानी बरसाने का ज़िक्र फ़रमाया है। जैसे इरशाद है:

ءَ اَنْتُمْ اَنْزَلْتُمُوْهُ مِنَ الْمُزْنِ اَمْ نَحْنُ الْمُنْزِلُوْنَ۝ (واقعه: ٦٩)

''क्या बारिश का पानी सफ़ेद बादलों से तुम ने उतारा है या हम उसके उतारने वाले हैं?''

दूसरी जगह इरशाद है:

وَاَنْزَلْنَا مِنَ الْمُعْصِرَاتِ مَآءً ثَجَّاجًا۝ (نبا: ١٤)

''हमने उतारा पानी भरे हुए बादलों से पानी का रेला।''

चौथी नेमत उस पानी के ज़रिये फल पैदा करना और फलों से इनसानों की ग़िज़ा पैदा करना है। परवर्दिगार की चार उक्त सिफ़ात में से पहली तीन बातें तो ऐसी हैं कि उनमें इनसान की कोशिश व अ़मल तो क्या ख़ुद उसके वजूद को भी दख़ल नहीं, बेचारे इनसान का नाम व निशान भी न था जब ज़मीन और आसमान पैदा हो चुके थे और बादल और बारिश अपना काम कर रहे थे। इनके मुताल्लिक़ तो किसी बेवक़ूफ़ जाहिल को भी यह शुब्हा नहीं हो सकता कि ये काम सिवाय हक़ तआ़ला के किसी इनसान या बुत या किसी और मख़्लूक़ ने किये होंगे।

हाँ ज़मीन से फल और फलों से इनसानी ग़िज़ा निकालने में किसी भोले और मामूली नज़र रखने वाले को यह शुब्हा हो सकता था कि यह इनसानी कोशिश व अ़मल और उसकी अ़क़्ल व समझ की

तदबीरों का नतीजा हैं कि वह ज़मीन को नर्म करने और कमाने में, फिर बीज डालने और जमाने में, फिर उसकी ख़बरगीरी और हिफ़ाज़त में अपनी मेहनत ख़र्च करता है। लेकिन क़ुरआने करीम ने दूसरी आयतों में इसको भी साफ़ कर दिया कि इनसान की कोशिश और मेहनत को दरख़्त उगाने या फल निकालने में क़तई कोई दख़ल नहीं बल्कि उसकी सारी तदबीरों और मेहनतों का हासिल 'रुकावटों को दूर करने से" ज़्यादा कुछ नहीं। यानी इनसान का काम सिर्फ़ इतना ही है कि पैदा होने वाले दरख़्त (पेड़-पौधे) की राह से रुकावटें दूर करे और बस।

ग़ौर कीजिये कि ज़मीन का खोदना, उसमें हल चलाना, उसमें से झाड़ झंकाड़ को दूर करना, उसमें खाद डालकर ज़मीन को नर्म करना जो काश्तकारों का प्रारंभिक काम है, इसका हासिल इसके सिवा क्या है कि बीज या गुठली के अन्दर से जो नाज़ुक कोंपल क़ुदरते ख़ुदावन्दी से निकलेगी ज़मीन की सख़्ती या कोई झाड़ झंकाड़ उसकी राह में बाधा और रुकावट न हो जाये। बीज में से कोंपल निकालने और उसमें फल पत्तियाँ पैदा करने में उस बेचारे काश्तकार की मेहनत का क्या दख़ल है।

इसी तरह काश्तकार का दूसरा काम ज़मीन में बीज डालना, फिर उसकी हिफ़ाज़त करना, फिर जो कोंपल निकले उसकी सर्दी गर्मी और जानवरों से हिफ़ाज़त करना है। इसका हासिल इसके सिवा क्या है कि क़ुदरते ख़ुदावन्दी से पैदा होने वाली कोंपलों को ज़ाया होने से बचाया जाये, इन सब कामों को किसी दरख़्त के निकलने या फलने फूलने में सिवाय रुकावटों को दूर करने के और क्या दख़ल है? हाँ पानी से जमने वाले बीज की और उससे निकलने वाले दरख़्त की ग़िज़ा तैयार होती है और उसी से वह फलता फूलता है, लेकिन पानी काश्तकार का पैदा किया हुआ नहीं, इसमें भी काश्तकार का काम सिर्फ़ इतना है कि क़ुदरत के पैदा किये हुए पानी को क़ुदरत ही के पैदा किये हुए दरख़्त तक एक मुनासिब वक़्त में और मुनासिब मात्रा में पहुँचा दे।

आपने देख लिया कि दरख़्त की पैदाईश और उसके फलने फूलने में शुरू से आख़िर तक इनसान की मेहनत और तदबीर का इसके सिवा कोई असर नहीं कि निकलने वाले दरख़्त के रास्ते से रोड़े हटा दे या उसको ज़ाया होने से बचा ले, बाक़ी रही दरख़्त की पैदाईश, उसका बढ़ना, उसमें पत्ते और शाख़ें फिर फूल और फल पैदा करना सो इसमें सिवाय ख़ुदा तआ़ला की क़ुदरत के और किसी का कोई दख़ल नहीं। इसी मज़मून को क़ुरआने करीम ने इस तरह बयान फ़रमाया है:

اَفَرَءَيْتُمْ مَّا تَحْرُثُوْنَ ۝ ءَاَنْتُمْ تَزْرَعُوْنَهٗٓ اَمْ نَحْنُ الزّٰرِعُوْنَ ۝ (واقعه:٦٣:٦٤)

"बतलाओ जो कुछ तुम बोते हो उसे तुम उगाते हो या हम उगाने वाले हैं?"

क़ुरआन के इस सवाल का जवाब इनसान के पास सिवाय इसके और क्या है कि बिला शुब्हा अल्लाह तआ़ला ही उन सब दरख़्तों को उगाने वाले हैं।

इस तफ़सील से यह स्पष्ट हो गया कि जिस तरह ज़मीन और आसमान की पैदाईश और बारिश व बिजली के व्यवस्थित सिलसिला-ए-कार में इनसानी कोशिश व मेहनत का कोई दख़ल नहीं, इसी तरह खेती और दरख़्तों के पैदा होने और उनसे फल फूल निकलने, और उनसे इनसान की ग़िज़ायें तैयार होने में भी उसका दख़ल सिर्फ़ नाम का है और हक़ीक़त में यह सब कारोबार सिर्फ़ हक़ तआ़ला की कामिल क़ुदरत और बेपनाह हिक्मत का नतीजा हैं।

ख़ुलासा यह है कि इस आयत में हक़ तआ़ला की ऐसी चार सिफ़ात का बयान है जो सिवाय

उसके और किसी मख़्लूक़ में पाई ही नहीं जा सकतीं। और जब इन दोनों आयतों से यह मालूम हो गया कि इनसान को अ़दम (नापैदी) से वजूद में लाना और फिर उसकी बक़ा व तरक़्क़ी के सामान ज़मीन और आसमान, बारिश और फल फूल के ज़रिये मुहैया करना सिवाय हक़ जल्ल शानुहू की ज़ात के और किसी का काम नहीं तो हर मामूली समझ-बूझ रखने वाले इनसान को इस पर यक़ीन करने के सिवा कोई चारा नहीं कि इबादत व इताअ़त के लायक़ और हक़दार भी सिर्फ़ वही ज़ात है। और इससे बड़ा कोई ज़ुल्म नहीं कि इनसान की हस्ती व वजूद और उसकी बक़ा व तरक़्क़ी के सारे सामान तो अल्लाह तआ़ला पैदा करे और ग़ाफ़िल इनसान दूसरों की चौखटों पर सज्दा करता फिरे, दूसरी चीज़ों की बन्दगी में मशग़ूल हो जाये। मौलाना रूमी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इसी ग़ाफ़िल इनसान की ज़बान पर फ़रमाया है:

तर्जुमाः कि तेरी नेमतें खाता हूँ और नाफ़रमानी में पड़ा हूँ। मेरी पात्रता के बग़ैर तेरी नेमतें मुझ पर बरस रही हैं।

अल्लाह तआ़ला ने इसको अपनी सारी मख़्लूक़ात का सरदार इसी लिये बनाया था कि सारी कायनात इसकी ख़िदमत करे और यह सिर्फ़ रब्बे कायनात की ख़िदमत और इबादत में मशग़ूल रहे, और किसी की तरफ़ नज़र न रखे। इसका यह रंग हो जाये कि इनसान को दुनिया की किसी चीज़ में दिलचस्पी न हो और वह ज़मीन व आसमान में हर जगह अल्लाह की याद की महफ़िल क़ायम कर दे। लेकिन ग़ाफ़िल इनसान ने अपनी हिमाक़त से अल्लाह तआ़ला ही को भुला दिया तो उसे एक ख़ुदा की ग़ुलामी के बजाय सत्तर करोड़ देवताओं की ग़ुलामी करना पड़ी:

एक दर छोड़ के हम हो गये लाखों के ग़ुलाम
हम ने आज़ादी-ए-उरफ़ी का न सोचा अन्जाम

इसी ग़ैरों की ग़ुलामी से निजात दिलाने के लिये इस आयत के आख़िर में हक़ तआ़ला ने इरशाद फ़रमायाः

فَلَا تَجْعَلُوْا لِلّٰهِ اَنْدَادًا وَّ اَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ○

"अब तो मत ठहराओ अल्लाह का मुक़ाबिल और तुम तो जानते बूझते हो।"

यानी जब तुमने यह जान लिया कि तुमको नेस्त से हस्त करने (यानी वजूद बख़्शने) वाला, तुम्हारी तरबियत और परवरिश करने के सारे सामान मुहैया करके एक क़तरे से हसीन व ख़ूबसूरत, महसूस करने और अ़क़्ल व समझ रखने वाला इनसान बनाने वाला, तुम्हारे रहन-सहन के लिये ज़मीन और दूसरी ज़रूरतों के लिये आसमान बनाने वाला, आसमान से पानी बरसाने वाला, पानी से फल और फल से ग़िज़ा मुहैया करने वाला सिवाय हक़ तआ़ला के कोई नहीं, तो इबादत व बन्दगी का हक़दार दूसरा कौन हो सकता है? कि उसको ख़ुदा का मुक़ाबिल या शरीक व साझी ठहराया जाये। अगर ज़रा भी ग़ौर किया जाये तो इस जहान में इससे बढ़कर कोई ज़ुल्म और बेवक़ूफ़ी व बेअ़क़्ली नहीं हो सकती कि ख़ुदा तआ़ला को छोड़कर मख़्लूक़ से दिल लगाया जाये और उस पर भरोसा किया जाये।

ख़ुलासा यह है कि इन दोनों आयतों में उस चीज़ की दावत दी गई है जो तमाम आसमानी किताबों के और तमाम अम्बिया के भेजने का असल मक़सद है, यानी सिर्फ़ एक ख़ुदा की इबादत व

बन्दगी, जिसका नाम तौहीद है। और यह वह इन्क़िलाबी (ज़िन्दगी को बदल देने वाला) नज़रिया है जो इनसान के तमाम आमाल व अहवाल और अख़्लाक़ व सामाजिक ज़िन्दगी पर गहरा असर रखता है। क्योंकि जो शख़्स यह यक़ीन करे कि तमाम आ़लम का ख़ालिक़ व मालिक और तमाम आ़लम के सिस्टम में असल क़ुदरत व इख़्तियार वाला और तमाम चीज़ों पर क़ादिर सिर्फ़ एक ज़ात है, बग़ैर उसकी मर्ज़ी और इरादे के न कोई ज़र्रा हरकत कर सकता है न कोई किसी को नफ़ा या नुक़सान पहुँचा सकता है, तो उसकी पूरी तवज्जोह हर मुसीबत व राहत और हर तंगी व फ़राख़ी में सिर्फ़ एक ज़ात की तरफ़ हो जायेगी, और उसको वह दिल की रोशनी हासिल हो जायेगी जिसके ज़रिये वह ज़ाहिरी असबाब की हक़ीक़त को पहचान लेगा कि यह असबाब का सिलसिला दर हक़ीक़त एक पर्दा है जिसके पीछे अल्लाह की क़ुदरत का हाथ काम कर रहा है।

बिजली और भाप के पूजने वाले यूरोप के अ़क़्लमन्द और फ़लॉस्फ़र अगर इस हक़ीक़त को समझ लें तो उन्हें मालूम हो जायेगा कि बिजली और भाप से आगे भी कोई हक़ीक़त है, और हक़ीक़ी पावर और ताक़त न बिजली में है न भाप में, बल्कि सब ताक़तों और क़ुव्वतों का स्रोत और असल मक़ाम उसी ज़ाते हक़ तआ़ला के हाथ में है जिसने यह बिजली और भाप पैदा किये। इसको समझने के लिये बसीरत (अ़क़्ल व समझ) चाहिये और जिसने इस हक़ीक़त को नहीं समझा वह दुनिया में कितना ही ज्ञानी और अ़क़्लमन्द व फ़लॉस्फ़र कहलाता हो मगर उसकी मिसाल उस देहाती बेवक़ूफ़ की सी है जो किसी रेलवे स्टेशन पर पहुँचा और देखा कि गार्ड के हाथ में दो झंडियाँ लाल और हरी हैं, हरी के दिखलाने से रेल चलने लगती है और लाल झंडी दिखलाने से रेल थम जाती है। यह देखकर वह उन झंडियों के आगे झुक जाये और समझे कि ये झंडियाँ ही ताक़त की मालिक हैं कि इतनी बड़ी तेज़ रफ़्तार पहाड़ की तरह बोझल गाड़ी को चलाना और रोकना इनका काम है। जिस तरह दुनिया उस देहाती पर हंसती है कि इस जाहिल को यह ख़बर नहीं कि झंडियाँ केवल निशानियाँ हैं और काम दर हक़ीक़त ड्राईवर का है कि वह रेल को चलाता और रोकता है, बल्कि उसका भी नहीं मशीन के कल-पुर्ज़ों का है, और जिसने ज़रा निगाह को और गहरा कर लिया तो उसे यह नज़र आ जाता है कि दर हक़ीक़त उसका चलाना न ड्राईवर का काम है न इंजन के कल-पुर्ज़ों का, बल्कि असल ताक़त उस स्टीम की है जो इंजन के अन्दर पैदा हो रही है।

इसी तरह एक तौहीद का इक़रारी (यानी मुसलमान) इनसान इन सब अ़क़्लमन्दों पर हंसता है कि हक़ीक़त को तुम ने भी नहीं पाया, फ़िक्र व नज़र की मन्ज़िल अभी और आगे है, ज़रा निगाह को तेज़ करो और ग़ौर से काम लो तो मालूम होगा कि स्टीम और आग व पानी भी कुछ नहीं, ताक़त व क़ुव्वत सिर्फ़ उसी ज़ात की है जिसने आग और पानी पैदा किये हैं, और उसी की मर्ज़ी व हुक्म के मातहत ये सब चीज़ें अपनी ड्यूटी अदा कर रही हैं:

ख़ाक व बाद व आब व आतिश बन्दा अन्द
बा मन व तू मुर्दा, बा हक़ ज़िन्दा अन्द

(यानी आग पानी मिट्टी हवा सब अपने काम में लगे हुए हैं। अगरचे ये हमें बेजान और मुर्दा नज़र आते हैं मगर अल्लाह तआ़ला ने इनके मुनासिब इन सब को ज़िन्दगी और एहसास दिया है। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**)

किसी का अ़मल उसकी निजात और जन्नत में जाने का यक़ीनी सबब नहीं

'लअ़ल्लकुम् तत्तक़ून' इस जुमले में लफ़्ज़ 'लअ़ल्-ल' इस्तेमाल फ़रमाया है जो उम्मीद के मायने में आता है और ऐसे मौक़ों पर बोला जाता है जहाँ किसी काम का होना यक़ीनी न हो। ईमान व तौहीद के हुक्म के नतीजे में निजात और जन्नत का हासिल होना अल्लाह के वायदे के मुताबिक़ यक़ीनी है, मगर उस यक़ीनी चीज़ को उम्मीद के उनवान से बयान करने में हिक्मत यह बतलाना है कि इनसान का कोई अ़मल अपनी ज़ात में निजात व जन्नत की क़ीमत नहीं बन सकता, बल्कि अल्लाह का फ़ज़्ल उसका असल सबब है। ईमान व अ़मल की तौफ़ीक़ होना उस फ़ज़्ले ख़ुदावन्दी की निशानी है, सबब और कारण नहीं।

अ़क़ीदा-ए-तौहीद ही दुनिया में अमन व अमान और सुकून व इत्मीनान की गारंटी देता है

अ़क़ीदा-ए-तौहीद (अल्लाह को एक और तन्हा माबूद मानना) जो इस्लाम का सबसे पहला बुनियादी अ़क़ीदा है यह सिर्फ़ एक नज़रिया नहीं बल्कि इनसान को सही मायने में इनसान बनाने का एकमात्र ज़रिया है। जो इनसान की तमाम मुश्किलों का हल, और हर हाल में उसके लिये पनाह की जगह, और हर ग़म व फ़िक्र में उसका साथी है। क्योंकि अ़क़ीदा-ए-तौहीद का हासिल यह है कि तत्वों और चीज़ों के बनने बिगड़ने और उनके अन्दर होने वाले उलट-फेर सिर्फ़ एक हस्ती की मशीयत के ताबे और उसकी हिक्मत के प्रतीक हैं:

हर तग़य्युर है ग़ैब की आवाज़ हर तजद्दुद में हैं हज़ारों राज़

यानी हर तब्दीली और उलट-फेर ग़ैब के पर्दे में किसी के होने की निशानी है। हर नये पन में हज़ारों राज़ छुपे हुए हैं।

और ज़ाहिर है कि जब यह अ़क़ीदा किसी के दिल व दिमाग़ पर छा जाये और उसका हाल बन जाये तो यह दुनिया ही उसके लिये जन्नत बन जायेगी, सारे झगड़े फ़साद और हर फ़साद की बुनियादें ही ढहे जायेंगी, क्योंकि उसके सामने यह सबक़ होगाः

अज़् ख़ुदा दाँ ख़िलाफ़े दुश्मन व दोस्त
कि दिले हर दो दर तसर्रुफ़े ओस्त

(कि दोस्त व दुश्मन की तरफ़ से पेश आने वाली हर हालत को अल्लाह की तरफ़ से जान, क्योंकि सब के दिल उसी के क़ब्ज़े व इख़्तियार में हैं। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**)

इस अ़क़ीदे का मालिक सारी दुनिया से बेनियाज़, हर ख़ौफ़ व ख़तरे से ऊपर होकर ज़िन्दगी गुज़ारता है। उसका यह हाल होता है कि एक अल्लाह को मानने वाला किसी चीज़ को अपनी ख़ातिर में नहीं लाता, उसकी निगाह तो सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला की तरफ़ होती है। वह न किसी से डरता है

और न किसी से कोई उम्मीद रखता है।

कलिमा 'ला इला-ह इल्लल्लाह' जो कलिमा-ए-तौहीद कहलाता है, इसका यही मफ़्हूम है, मगर यह ज़ाहिर है कि तौहीद का महज़ ज़बानी इक़रार इसके लिये काफ़ी नहीं बल्कि सच्चे दिल से इसका यक़ीन और यक़ीन के साथ हर वक़्त इसका ध्यान ज़रूरी है। क्योंकि अल्लाह की तौहीद का मतलब उसको एक जानना है, न कि सिर्फ़ ज़बान से एक कहना।

कलिमा "ला इला-ह इल्लल्लाह" पढ़ने वाले तो आज दुनिया में करोड़ों हैं, और इतने हैं कि किसी ज़माने में इतने नहीं हुए, लेकिन आम तौर पर यह सिर्फ़ ज़बानी जमा ख़र्च है, तौहीद का रंग उनमें बसा नहीं, वरना उनका भी वही हाल होता तो जो पहले बुज़ुर्गों का था कि न कोई बड़ी से बड़ी क़ुव्वत व ताक़त उनको रौब में ले सकती थी, और न किसी क़ौम की भारी संख्या उन पर असर अन्दाज़ हो सकती थी, न कोई बड़ी से बड़ी हुकूमत व सल्तनत उनके दिलों को ख़िलाफ़े हक़ अपनी तरफ़ झुका सकती थी। एक पैग़म्बर खड़े होकर सारी दुनिया को ललकार कर कह देता था कि तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, तुम जो चाहे मेरे साथ अपनी चालें चल लो और फिर उनका परिणाम देख लो। अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के बाद सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन जो थोड़ी सी मुद्दत में दुनिया पर छा गये, उनकी ताक़त व क़ुव्वत इसी हक़ीक़ी तौहीद में छुपी थी, अल्लाह तआ़ला हमें और सब मुसलमानों को यह दौलत नसीब फ़रमाये। आमीन

وَاِنْ كُنْتُمْ فِىْ رَيْبٍ مِّمَّا نَزَّلْنَا عَلٰى عَبْدِنَا فَاْتُوْا بِسُوْرَةٍ مِّنْ مِّثْلِهٖ ۪ وَادْعُوْا شُهَدَآءَكُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ۝ فَاِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا وَلَنْ تَفْعَلُوْا فَاتَّقُوا النَّارَ الَّتِىْ وَقُوْدُهَا النَّاسُ وَالْحِجَارَةُ ۚ اُعِدَّتْ لِلْكٰفِرِيْنَ ۝

व इन् कुन्तुम् फ़ी रैबिम्-मिम्मा नज़्ज़ल्ना अ़ला अ़ब्दिना फ़अ्तू बिसूरतिम् मिम्-मिस्लिही वद्अू शु-हदाअकुम् मिन् दूनिल्लाहि इन् कुन्तुम् सादिक़ीन (23) फ़-इल्लम तफ़्अ़लू व लन् तफ़्अ़लू फ़त्तक़ुन्--नारल्लती व क़ूदुहन्नासु वल्हिजारतु उअ़िद्दत् लिल्-काफ़िरीन (24)	और अगर तुम शक में हो इस कलाम से जो उतारा हमने अपने बन्दे पर तो ले आओ सूरत इस जैसी और बुलाओ उसको जो तुम्हारा मददगार हो अल्लाह के सिवा अगर तुम सच्चे हो। (23) फिर अगर ऐसा न कर सको और हरगिज़ न कर सकोगे तो फिर बचो उस आग से जिसका ईंधन आदमी और पत्थर हैं, तैयार की हुई है काफ़िरों के वास्ते। (24)

रिसालते मुहम्मदी का सुबूत क़ुरआनी चुनौती के ज़रिये

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और अगर तुम लोग कुछ शक व दुविधा में हो इस किताब के बारे में जो हमने नाज़िल फ़रमाई है अपने ख़ास बन्दे पर, तो अच्छा फिर तुम बना लाओ एक सीमित टुकड़ा जो इसके जैसा हो (क्योंकि तुम भी अरबी भाषा जानते हो और उसकी नज़्म व नसर के माहिर हो, पैग़म्बर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इसका कोई अभ्यास भी नहीं किया, और जब इसके बावजूद तुम क़ुरआन के एक टुकड़े के भी जैसा न बना सको तो इन्साफ़ का तक़ाज़ा है निसंकोच साबित हो जायेगा कि यह मोजिज़ा अल्लाह की तरफ़ से है और आप सल्ल. अल्लाह के पैग़म्बर हैं), और बुला लो अपने हिमायतियों को (जो) ख़ुदा से अलग (तजवीज़ कर रखे हैं) अगर तुम सच्चे हो। फिर अगर तुम यह काम न कर सको और क़ियामत तक भी न कर सकोगे तो फिर ज़रा बचते रहो दोज़ख़ से जिसका ईंधन आदमी और पत्थर हैं, तैयार हुई रखी है काफ़िरों के वास्ते।

मआरिफ़ व मसाईल

इन आयतों का पिछली आयतों से ताल्लुक़ और मज़मून का ख़ुलासा

ये सूरः ब-क़रह की तेईसवीं और चौबीसवीं आयतें हैं, इससे पहली दो आयतों में तौहीद (अल्लाह के एक और तन्हा माबूद होने) का सुबूत था। इन दोनों आयतों में हुज़ूरे पाक की नुबुव्वत व रिसालत को साबित किया गया है। वह हिदायत जो क़ुरआन लेकर आया है उसके दो सुतून हैं- तौहीद और रिसालत। पहली दो आयतों में अल्लाह तआ़ला के चन्द मख़्सूस काम ज़िक्र करके तौहीद साबित की गई थी, इन दोनों आयतों में अल्लाह तआ़ला का कलाम पेश करके नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की रिसालत साबित फ़रमाई गई है, और साबित करने का तरीक़ा दोनों का एक ही है कि पहली दो आयतों में चन्द ऐसे काम ज़िक्र किये गये थे जो सिवाय हक़ तआ़ला के कोई नहीं कर सकता, जैसे ज़मीन और आसमान का पैदा करना, आसमान से पानी उतारना, पानी से फल फूल पैदा करना। और दलील देने का ख़ुलासा यह था कि जब ये काम अल्लाह तआ़ला के सिवा कोई दूसरा नहीं कर सकता तो इबादत का हक़दार भी उसके सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता। और इन दोनों आयतों में एक ऐसा कलाम पेश किया गया है जो अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी दूसरे का नहीं हो सकता और न कोई इनसानी फ़र्द या जमाअ़त उसकी मिसाल व नज़ीर ला सकती है। जिस तरह ज़मीन व आसमान की बनावट, पानी बरसाने और उससे फल फूल निकालने से इनसानी ताक़त का आ़जिज़ होना इसकी दलील थी कि ये काम सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही के हैं, इसी तरह कलामे इलाही

का मिस्ल या नज़ीर पेश करने से पूरी मख़्लूक़ का आजिज़ रहना इसकी दलील है कि यह कलाम अल्लाह तआला ही का है, किसी मख़्लूक़ का नहीं।

इस आयत में क़ुरआन ने पूरी दुनिया के इनसानों को ख़िताब करके यह चेलैंज दिया है कि अगर तुम इस कलाम को अल्लाह का कलाम नहीं बल्कि किसी इनसान का कलाम समझते हो तो तुम भी इनसान हो, तुम्हें भी ऐसा कलाम पेश करने पर क़ुदरत होनी चाहिये। पूरा कलाम तो क्या तुम इस कलाम के एक छोटे से टुकड़े की नज़ीर व मिसाल बनाकर दिखला दो, और इस पर तुम्हारे लिये यह और आसानी दी जाती है कि तन्हा कोई आदमी न बना सके तो तुम्हें इख़्तियार है कि सारे जहान से अपने हिमायती और मददगार जमा कर लो और एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन करके इस क़ुरआन की छोटी सी सूरत की मिसाल बना लाओ।

फिर इसी पर बस नहीं किया, दूसरी आयत में उनको ग़ैरत दिलाई कि तुम्हारी मजाल नहीं कि इस जैसी एक सूरत बना सको। फिर अज़ाब से डराया कि जब तुम इस कलाम की मिसाल बनाने से अपना इज्ज़ (असमर्थता) महसूस करते हो और यह साफ़ इसकी दलील है कि यह इनसान का कलाम नहीं बल्कि ऐसी हस्ती का कलाम है जो तमाम मख़्लूक़ से बालातर और बुलन्द व ऊँची है, जिसकी कामिल क़ुदरत सब पर हावी है, तो फिर उस पर ईमान न लाना अपने हाथों जहन्नम में अपना ठिकाना तैयार करना है, इससे बचो।

हासिल यह है कि इन दोनों आयतों में क़ुरआने करीम को रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का आला मोजिज़ा बतलाकर आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की रिसालत और सच्चाई का सुबूत पेश किया गया है। रसूलुल्लाह सल्ल. के मोजिज़े तो हज़ारों हैं और बड़े-बड़े हैरत-अंगेज़ हैं, लेकिन उन सब में से इस जगह आपके इल्मी मोजिज़े यानी क़ुरआन के ज़िक्र पर इक्तिफ़ा (बस) करके यह बतला दिया गया कि आपका सबसे बड़ा मोजिज़ा क़ुरआन है और इस मोजिज़े को अम्बिया अलैहिमुस्सलाम के आम मोजिज़ों में भी एक ख़ास शान यह हासिल है कि आम दस्तूर यह है कि हर नबी व रसूल के साथ अल्लाह तआला अपनी कामिल क़ुदरत से कुछ मोजिज़े ज़ाहिर फ़रमाते हैं, मगर ये मोजिज़े उन रसूलों के हाथों ज़ाहिर होते हैं उन्हीं के साथ ख़त्म हो जाते हैं, मगर क़ुरआने हकीम एक ऐसा मोजिज़ा है जो क़ियामत तक बाक़ी रहने वाला है।

'व इन् कुन्तुम फ़ी रैबिन्' लफ़्ज़ 'रैब' का तर्जुमा उर्दू में शक का किया जाता है मगर इमाम राग़िब अस्फ़हानी ने फ़रमाया है कि दर हक़ीक़त रैब ऐसे तरद्दुद (दुविधा) और वहम को कहा जाता है जिसकी बुनियाद कोई न हो, ज़रा सोच विचार करने से दूर हो जाये। इसी लिये क़ुरआने करीम में अहले इल्म से रैब की नफ़ी (इनकार) की गई है अगरचे वे मुसलमान न हों। जैसे इरशाद है:

وَلَا يَرْتَابَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ وَالْمُؤْمِنُوْنَ .(٧٤:٣١)

यही वजह है कि सूरः ब-क़रह के शुरू में क़ुरआने करीम के मुताल्लिक़ फ़रमाया:

لَا رَيْبَ فِيْهِ

कि इसमें किसी रैब (शक) की गुन्जाईश नहीं। और इस आयत में फ़रमाया:

وَاِنْ كُنْتُمْ فِيْ رَيْبٍ

"यानी, अगर हो तुम किसी तरद्दुद (शक और असमंजस) में" जिसका हासिल यह है कि अगरचे क़ुरआने करीम अपने स्पष्ट और मोजिज़ाना दलाईल की बिना पर किसी शक व शुब्हे का महल नहीं है, लेकिन अपनी नावाक़फ़ियत से फिर भी तुम्हें कोई शक और दुविधा हो तो सुन लोः

فَأْتُوا بِسُورَةٍ مِّن مِّثْلِهِ

कि ले आओ इसके जैसी एक सूरत। लफ़्ज़ 'सूरत' के मायने सीमित टुकड़े के हैं और क़ुरआन की सूरत क़ुरआन के उस ख़ास हिस्से को कहा जाता है जो वही के ज़रिये मुम्ताज़ और अलग कर दिया गया है।

पूरे क़ुरआन में इस तरह एक सौ चौदह सूरतें छोटी बड़ी हैं और इस जगह लफ़्ज़ सूरत बग़ैर अलिफ़ लाम के लाने से इस तरफ़ इशारा पाया गया कि छोटी से छोटी सूरत भी इस हुक्म में शामिल है। मायने यह हैं कि अगर तुम्हें इस क़ुरआन के अल्लाह का कलाम होने में कोई शक व शुब्हा है और यह समझते हो कि यह नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम या किसी दूसरे इनसान ने ख़ुद बना लिया है तो इसका फ़ैसला बड़ी आसानी से इस तरह हो सकता है कि तुम भी इस क़ुरआन की किसी छोटी से छोटी सूरत की मिसाल (यानी उस जैसा टुकड़ा) बना लाओ, अगर तुम इसकी मिसाल बनाने में कामयाब हो गये तो बेशक तुम्हें हक़ होगा कि इसको भी किसी इनसान का कलाम क़रार दो, और अगर तुम आ़जिज़ हो गये तो समझ लो कि यह इनसान की ताक़त से बाहर और ख़ालिस अल्लाह तआ़ला का कलाम है।

यहाँ कोई कह सकता था कि हमारा आ़जिज़ हो जाना तो इसकी दलील नहीं हो सकती कि सभी इनसान आ़जिज़ हैं, हो सकता है कि कोई दूसरा आदमी या जमाअ़त यह काम कर ले, इसलिये इरशाद फ़रमायाः

وَادْعُوا شُهَدَاءَكُم مِّن دُونِ اللَّهِ

'शु-हदा' शाहिद की जमा (बहुवचन) है, जिसके मायने हाज़िर के आते हैं, गवाह को भी शाहिद इसलिये कहा जाता है कि उसका अ़दालत में हाज़िर होना ज़रूरी है। इस जगह शु-हदा से मुराद या तो आ़म हाज़िरीन हैं कि सारे जहान में जिस जिससे तुम इस काम में मदद लेना चाहो ले सकते हो, और या इससे मुराद उनके बुत हैं जिनके बारे में उनका यह ख़्याल था कि क़ियामत के दिन ये हमारे लिये गवाही देंगे।

दूसरी आयत में उनको डराया गया कि अगर तुम यह काम न कर सको तो फिर जहन्नम की ऐसी सख़्त आग से बचने का सामान करो जिसके अंगारे आदमी और पत्थर होंगे। और वह तुम जैसे इनकार करने वालों के लिये ही तैयार की गई है। और इसी जुमले के बीच में जो वाक़िआ़ होने वाला था उसकी ख़बर भी दे दी 'व लन् तफ़्अ़लू' यानी चाहे तुम कितना ही व्यक्तिगत और सामूहिक ज़ोर लगाओ तुम्हारी मजाल नहीं कि इसकी मिसाल बना सको।

इस पर ग़ौर किया जाये कि जो क़ौम इस्लाम और क़ुरआन की मुख़ालफ़त और इसको गिराने मिटाने के लिये अपनी जान, माल, आबरू, औलाद सब कुछ क़ुरबान करने के लिये तुली हुई थी, उसको यह आसान मौक़ा दिया जाता है कि क़ुरआन की छोटी से छोटी सूरत की मिसाल बना लाओ तो तुम अपने मतलब में कामयाब हो सकते हो, और यह कहकर उनकी ग़ैरत को जोश में लाया

जाता है कि तुम हरगिज़ यह काम न कर सकोगे, मगर पूरी क़ौम में कोई भी इस काम के लिये आगे न बढ़ा। इससे बढ़कर कौनसा एतिराफ़ अपने इज्ज़ का (अपने आजिज़ होने को स्वीकार करना) और क़ुरआने करीम के अल्लाह का कलाम होने का हो सकता है, जिससे मालूम हुआ कि क़ुरआने करीम नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का ऐसा खुला हुआ मोजिज़ा है जिसने तमाम सरकशों (नाफ़रमान और घमंडियों) की गर्दनें झुका दीं।

क़ुरआन एक ज़िन्दा और क़ियामत तक बाक़ी रहने वाला मोजिज़ा है

तमाम अम्बिया अलैहिमुस्सलाम के मोजिज़े सिर्फ़ उनकी दुनियावी ज़िन्दगी तक मोजिज़ा होते, लेकिन क़ुरआन का मोजिज़ा रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की वफ़ात के बाद भी उसी तरह मोजिज़े की हैसियत से बाक़ी है। आज भी एक मामूली मुसलमान सारी दुनिया के इल्म व दानिश वालों (विद्वानों) को ललकार कर दावा कर सकता है कि इसकी मिसाल न कोई पहले ला सका न आज ला सकता है, और जिसको हिम्मत हो पेश करके दिखलाये।

शैख़ जलालुद्दीन सुयूती रहमतुल्लाहि अलैहि (मुफ़स्सिरे जलालैन) ने अपनी किताब "ख़साइसे कुबरा" में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के दो मोजिज़ों के बारे में हदीस के हवाले से लिखा है कि क़ियामत तक बाक़ी हैं, एक क़ुरआन का मोजिज़ा, दूसरे यह कि रसूले करीम सल्ल. से हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अन्हु ने दरियाफ़्त किया कि या रसूलल्लाह! हज के दिनों में तीनों जमरात पर लाखों आदमी तीन रोज़ तक लगातार कंकरियाँ फेंकते हैं फिर कोई उन कंकरियों के ढेर को यहाँ से उठाता भी नज़र नहीं आता, और एक मर्तबा फेंकी हुई कंकर को दोबारा इस्तेमाल करना भी मना (वर्जित) है, इसलिये हर हाजी अपने लिये मुज़्दलिफ़ा से नई कंकरियाँ लेकर आता है, इसका परिणाम तो यह होना चाहिये था कि जमरात के गिर्द एक ही साल में टीला लग जाता जिसमें जमरात छुप जाते और चन्द साल में तो पहाड़ हो जाता। नबी करीम सल्ल. ने इरशाद फ़रमाया कि हाँ, मगर अल्लाह तआला ने अपने फ़रिश्तों को मुक़र्रर कर रखा है कि जिस-जिस शख़्स का हज क़ुबूल हो उसकी कंकरियाँ उठा ली जायें, तो अब उस जगह सिर्फ़ उन कम-नसीबों की कंकरियाँ बाक़ी रह जाती हैं जिनका हज क़ुबूल नहीं होता। इसलिये उस जगह पड़ी हुई कंकरियाँ बहुत कम नज़र आती हैं, और अगर ऐसा न होता तो यहाँ पहाड़ खड़ा हो गया होता। यह रिवायत सुनने बैहक़ी में मौजूद है।

यह एक ऐसी हदीस है जिसके ज़रिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सच्चाई की तस्दीक़ हर साल और हर ज़माने में हो सकती है। क्योंकि यह हक़ीक़त है कि हज में लाखों आदमी हर साल जमा होते हैं और हर शख़्स हर जमरे (शैतानी निशान) पर हर रोज़ सात कंकरियाँ फेंकता है, और बाज़ जाहिल तो बड़े-बड़े पत्थर फेंकते हैं, और यह भी यक़ीनी तौर पर मालूम है कि उन कंकरियों को उठाने और साफ़ करने का हुकूमत या कोई जमाअत भी रोज़ाना इन्तिज़ाम नहीं करती, न उठाई जाती हैं, और जैसा पुराने ज़माने से दस्तूर चला आता है कि उस जगह से कंकरियाँ उठाई ही नहीं जातीं, तो अगले साल उसका दोगुना और तीसरे साल तीन गुना हो जायेगा, फिर क्या शुब्हा है

कि चन्द साल में ज़मीन का यह हिस्सा मय जमरात के उन कंकरियों में छुप जायेगा और बजाय जमरात के एक पहाड़ खड़ा नज़र आये, मगर अनुभव और आँखों देखा इसके ख़िलाफ़ है, और यह मुशाहदा हर ज़माने में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तस्दीक़ और आप पर ईमान लाने के लिये काफ़ी है।

सुना है कि अब यहाँ से कंकरियाँ उठाने का कुछ इन्तिज़ाम होने लगा है मगर तेरह सौ बरस तक का अ़मल भी इस मज़मून की तस्दीक़ के लिये काफ़ी है।

इसी तरह क़ुरआन का मोजिज़ा एक ज़िन्दा और हमेशा बाक़ी रहने वाला मोजिज़ा है, जैसे नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुबारक दौर में इसकी नज़ीर या मिसाल पेश नहीं की जा सकी आज भी नहीं की जा सकती।

क़ुरआन के मोजिज़ा होने की वज़ाहत

इस इजमाली (मुख़्तसर और संक्षिप्त) बयान के बाद आपको यह मालूम करना है कि क़ुरआने करीम को किस बिना पर नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मोजिज़ा क़रार दिया गया और उसका बेमिस्ल होना किन-किन वजहों से है, और क्योंकर सारी दुनिया इसकी मिसाल पेश करने से आ़जिज़ हो गई?

दूसरे यह कि मुसलमानों का यह दावा कि चौदह सौ बरस के अ़रसे में क़ुरआन की ज़बरदस्त चुनौती के बावजूद कोई इसकी या इसके किसी टुकड़े की मिसाल पेश नहीं कर सका, यह ऐतिहासिक हैसियत से क्या वज़न रखता है। ये दोनों बातें लम्बी तफ़सील और वज़ाहत की तालिब हैं।

क़ुरआन के मोजिज़ा होने की वुजूहात

पहली बात कि क़ुरआन को मोजिज़ा क्यों कहा गया? और वे क्या कारण हैं जिनके सबब सारी दुनिया इसकी मिसाल पेश करने से आ़जिज़ है। इस पर पहले और बाद के उलेमा ने मुस्तक़िल किताबें लिखी हैं और हर मुफ़स्सिर (क़ुरआन के व्याख्यापक) ने अपने-अपने अन्दाज़ में इस मज़मून को बयान किया है। मैं मुख़्तसर तौर पर चन्द ज़रूरी चीज़ें अ़र्ज़ करता हूँ।

इस जगह सबसे पहले ग़ौर करने की चीज़ यह है कि यह अ़जीब व ग़रीब तमाम उलूम की जामे किताब, किस जगह, किस माहौल में और किस पर नाज़िल हुई? और क्या वहाँ कुछ ऐसे इल्मी सामान मौजूद थे जिनके ज़रिये असबाब और माध्यमों का सहारा लेकर ऐसी जामे बेनज़ीर किताब तैयार हो सके, जो पहले और बाद के हज़रात के उलूम को अपने अन्दर समोये हुए और इनसान की ज़ाती और सामूहिक ज़िन्दगी के हर पहलू के मुताल्लिक़ बेहतरीन हिदायत पेश कर सके, जिसमें इनसान की जिस्मानी और रूहानी तरबियत का मुकम्मल निज़ाम हो और एक घर व ख़ानदान की बेहतरी से लेकर मुल्की और अन्तर्राष्ट्रीय सियासत तक हर निज़ाम के बेहतरीन उसूल हों।

जिस सरज़मीन और जिस ज़ात पर यह पवित्र किताब नाज़िल हुई उसकी भूगोलिक कैफ़ियत और ऐतिहासिक हालत मालूम करने के लिये आपको एक रेगिस्तानी ख़ुश्क और गर्म इलाक़े से साबक़ा पड़ेगा, जिसको बतहा-ए-मक्का कहते हैं और जो न उपजाऊ मुल्क है न औद्योगिक, न उस मुल्क की

आब व हवा (यानी मौसम) ही कुछ ऐसी ख़ुशगवार है जिसके लिये बाहर के आदमी वहाँ पहुँचने की रुचि रखें, न ऐसे रास्ते ही कुछ हमवार हैं जिनसे वहाँ तक पहुँचना आसान हो। अक्सर दुनिया से कटा हुआ एक जज़ीरा नुमा (टापू जैसा) है, जहाँ ख़ुश्क पहाड़ों और गर्म रेग के सिवा कुछ नज़र नहीं आता और दूर तक न कहीं बस्ती नज़र आती है, न कोई खेत न पेड़।

इस पूरे ख़ित्ता-ए-मुल्क में कुछ बड़े शहर भी नहीं, छोटे छोटे गाँव और उनमें ऊँट बकरियाँ पालकर अपनी ज़िन्दगी गुज़ारने वाले इनसान बसते हैं। उसके छोटे देहात का तो देखना क्या जो बराये नाम चन्द शहर कहलाते हैं उनमें भी किसी क़िस्म के इल्म व तालीम का कोई चर्चा नहीं, न वहाँ कोई स्कूल और कॉलेज है, न कोई बड़ी यूनिवर्सिटी या दारुल-उलूम। वहाँ के बाशिन्दों को अल्लाह तआ़ला ने महज़ क़ुदरती और पैदाईशी तौर पर भाषाई महारत का एक फ़न ज़रूर दे दिया है जिसमें वे सारी दुनिया से बढ़े हुए और नुमायाँ हैं। वे नसर और नज़्म (यानी सादा तहरीर और शायरी) में ऐसे माहिर और कामिल हैं कि जब बोलते हैं तो बिजली की तरह कड़कते और बादल की तरह बरसते हैं, उनकी छोटी-छोटी लड़कियाँ ऐसे फ़सीह व बलीग़ शे'र कहती हैं कि दुनिया के अदीब (साहित्यकार) हैरान रह जाते हैं।

लेकिन यह सब कुछ उनका फ़ितरी फ़न है, जो किसी पाठशाला या मदरसे में हासिल नहीं किया जाता। ग़र्ज़ कि न वहाँ पढ़ने-पढ़ाने का कोई सामान है न वहाँ के रहने वालों को इन चीज़ों से कोई लगाव या रुचि है, उनमें कुछ लोग शहरी ज़िन्दगी बसर करने वाले हैं तो वे तिजारत करने वाले हैं माल की विभिन्न जिन्सों का आयात-निर्यात उनका मशग़ला है।

उस मुल्क के पुराने शहर मक्का के एक शरीफ़ घराने में वह पाक ज़ात पैदा होती है जो वही उतरने की महल है, जिस पर क़ुरआन उतरा है। अब उस पाक ज़ात का हाल सुनिये।

पैदाईश से पहले ही वालिद माजिद का साया सर से उठ गया, पैदा होने से पहले यतीम हो गये, अभी सात साल की भी उम्र न थी कि वालिदा (माँ) की भी वफ़ात हो गई, माँ की गोद का गहवारा भी नसीब न रहा। शरीफ़ बाप-दादाओं के दान-पुन और बेमिस्ल सख़ावत ने अपने घर में कोई जमा शुदा माल न छोड़ा था जिससे यतीम की परवरिश और आने वाली ज़िन्दगी का सामान हो सके। बहुत ही तंगी की ज़िन्दगी, फिर माँ-बाप का साया सर पर नहीं, इन हालात में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने परवरिश पाई और उम्र का शुरू का हिस्सा गुज़रा जो पढ़ने-पढ़ाने का असली वक़्त है, उस वक़्त अगर मक्का में कोई दारुल-उलूम या स्कूल व कॉलेज होता भी तो भी आपके लिये उससे फ़ायदा उठाना मुश्किल था, मगर मालूम हो चुका है कि वहाँ सिरे से यह इल्मी मशग़ला और उससे दिलचस्पी ही किसी को न थी, इसलिये यह पूरी क़ौमे अ़रब 'उम्मिय्यीन' (बिना पढ़े-लिखे) कहलाते थे। क़ुरआने करीम ने भी इनके बारे में यह लफ़्ज़ इस्तेमाल किया है। इसका लाज़िमी नतीजा यही होना था कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हर क़िस्म की तालीम और पढ़ने-लिखने से बेख़बर रहे। वहाँ कोई बड़ा आ़लिम भी ऐसा न था जिसकी सोहबत (संगति) में रहकर ये उलूम हासिल किये जा सकें जिनका क़ुरआन हामिल है। फिर क़ुदरत को तो एक आ़दत व माहौल से ऊपर मोजिज़ा दिखलाना था, आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये ख़ुसूसी तौर पर ऐसे सामान हुए, मामूली लिखना-पढ़ना जो हर जगह के लोग किसी न किसी तरह सीख ही लेते थे आपने वह भी न सीखा,

बिल्कुल उम्मी-ए-महज़ (बिना पढ़े-लिखे) रहे, कि अपना नाम तक भी न लिख सकते थे। अ़रब वालों का मख़्सूस फ़न शे'र व तक़रीर था जिसके लिये ख़ास-ख़ास जलसे किये जाते और मुशायरे आयोजित होते और उसमें हर शख़्स मुक़ाबले और आगे बढ़ने की कोशिश करता था, आप सल्ल. को हक़ तआ़ला ने ऐसी फ़ितरत अ़ता फ़रमाई थी कि इन चीज़ों में भी दिलचस्पी न ली, न कभी कोई शे'र या क़सीदा लिखा न किसी ऐसी मज्लिस में शरीक हुए। हाँ उम्मी-ए-महज़ (बिना पढ़े-लिखे) होने के साथ बचपन ही से आप सल्ल. की शराफ़ते नफ़्स, बुलन्द अख़्लाक़, समझ व शऊर के ग़ैर-मामूली (असाधारण) आसार, ईमानदारी व सच्चाई के आला तरीन शाहकार आपकी पाक ज़ात में हर वक़्त देखे जाते थे, जिसका नतीजा यह था कि अ़रब के बड़े-बड़े मग़रूर और घमंडी सरदार आपकी ताज़ीम (अदब व सम्मान) करते थे और सारे मक्का में आपको अमीन के लक़ब से पुकारा जाता था।

यह उम्मी-ए-महज़ (बिल्कुल बिना पढ़े-लिखे) चालीस साल तक मक्का में अपनी बिरादरी के सामने रहते हैं, किसी दूसरे मुल्क का सफ़र भी नहीं करते, जिससे यह ख़्याल पैदा हो सके कि वहाँ जाकर उलूम हासिल किये होंगे, सिर्फ़ मुल्के शाम के दो तिजारती सफ़र हुए वे भी गिने-चुने दिनों के लिये जिसमें इसकी कोई संभावना नहीं।

इस उम्मी-ए-महज़ (पूरी तरह बिना पढ़े-लिखे) शख़्स की पवित्र ज़िन्दगी के चालीस साल मक्का में अपनी बिरादरी में इस तरह गुज़रे कि न कभी किसी किताब या क़लम को हाथ लगाया, न किसी पाठशाला में गये, न किसी मज्लिस में कोई नज़्म व क़सीदा ही पढ़ा। ठीक चालीस साल के बाद उनकी ज़बाने मुबारक पर वह कलाम आने लगा जिसका नाम क़ुरआन है, जो अपनी लफ़्ज़ी भाषाई ख़ूबियों के लिहाज़ से और मानवी उलूम व फ़ुनून के लिहाज़ से अ़क़्लों को हैरान कर देने वाला कलाम है। अगर सिर्फ़ इतना ही होता तो भी इसके मोजिज़ा होने में किसी इन्साफ़ पसन्द को क्या शुब्हा रह सकता है मगर यहाँ यही नहीं बल्कि उसने सारी दुनिया को चुनौती दी, चेलैंज दिया कि किसी को इसके अल्लाह का कलाम होने में शुब्हा हो तो इसके जैसा बना लाये।

अब एक तरफ़ क़ुरआन की यह चुनौती और चेलैंज और दूसरी तरफ़ सारी दुनिया की मुख़ालिफ़ ताक़तें जो इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को शिकस्त देने के लिये अपने माल, जान, औलाद, आबरू सब गंवाने को तैयार हैं, मगर इतना काम करने के लिये कोई जुर्रत नहीं करता कि क़ुरआन की एक छोटी सी सूरत की मिसाल बना लाये। फ़र्ज़ कर लीजिये कि यह किताब बेमिसाल व बेनज़ीर भी न होती तब भी एक उम्मी-ए-महज़ (बिल्कुल बिना पढ़े-लिखे) की ज़बान से इसका ज़हूर क़ुरआन के दूसरों को आ़जिज़ कर देने वाला और इसके मोजिज़ा होने की वुजूहात की तफ़सील में जाये बग़ैर भी क़ुरआन के मोजिज़ा होने के लिये कम नहीं, जिसको हर आ़लिम व जाहिल समझ सकता है।

क़ुरआन के मोजिज़ा होने की दूसरी वजह

अब क़ुरआन के मोजिज़ा होने की दूसरी वजह देखिये- यह आपको मालूम है कि क़ुरआन और उसके अहकाम सारी दुनिया के लिये आये लेकिन इसके डायरेक्ट और पहले मुख़ातब अ़रब के लोग थे, जिनको और कोई इल्म व फ़न आता था या नहीं मगर अ़रबी भाषा में तक़रीर व तहरीर की

उम्दगी उनका फ़ितरी हुनर और पैदाईशी ख़ूबी थी, जिसमें वे दुनिया की दूसरी क़ौमों से अलग और नुमायाँ समझे जाते थे। क़ुरआने करीम उनको मुख़ातब करके चेलैंज करता है कि अगर तुम्हें मेरे कलामे इलाही होने में कोई शुब्हा है तो तुम मेरी एक सूरत की मिसाल बनाकर दिखला दो, अगर क़ुरआन की यह चुनौती सिर्फ़ अपने मानवी हुस्न यानी हकीमाना उसूल और इल्मी मआरिफ़ व भेदों ही की हद तक होती तो उम्मी लोगों की क़ौम के लिये इसकी नज़ीर पेश करने से माक़ूल उज़्र होता, लेकिन क़ुरआन ने सिर्फ़ मानवी हुस्न ही के बारे में चुनौती नहीं दी बल्कि लफ़्ज़ी और भाषाई ख़ूबी और कमाल के एतिबार से भी पूरी दुनिया को चेलैंज दिया है, इस चेलैंज को क़ुबूल करने के लिये दुनिया की क़ौमों में सबसे ज़्यादा पात्र और योग्य अ़रब ही के लोग थे, अगर वास्तव में यह कलाम इनसानी ताक़त से बाहर किसी ऊपरी और बालाई क़ुदरत का कलाम नहीं था तो अ़रब के भाषाई माहिरीन के लिये क्या मुश्किल था कि एक उम्मी (बिना पढ़े-लिखे) शख़्स के कलाम की मिसाल बल्कि उससे बेहतर कलाम फ़ौरन पेश कर देते, और एक दो आदमी यह काम न कर सकते तो क़ुरआन ने उनको यह सहूलत भी दी थी कि सारी क़ौम मिलकर बना लाये, मगर क़ुरआन के इस बुलन्द बाँग दावे और फिर तरह-तरह से ग़ैरत दिलाने पर भी अ़रब की ग़ैरत मन्द क़ौम पूरी की पूरी ख़ामोश है, चन्द सतरें भी मुक़ाबले पर पेश नहीं करती।

अ़रब के सरदारों ने क़ुरआन और इस्लाम को मिटाने और पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को मग़लूब करने में जिस तरह अपनी ऐड़ी चोटी का ज़ोर लगाया, वह किसी लिखे पढ़े आदमी से छुपा नहीं। शुरू में नबी करीम सल्ल. और आपके गिने चुने साथियों को तरह-तरह की तकलीफ़ें देकर चाहा कि वे इस्लाम के कलिमे को छोड़ दें, मगर जब देखा कि "यहाँ वह नशा नहीं जिसे तुर्शी उतार दे" तो ख़ुशामद का पहलू इख़्तियार किया, अ़रब का सरदार उतबा इब्ने अबी रबीआ़ क़ौम का दूत बनकर आप सल्ल. के पास हाज़िर हुआ और अ़रब की पूरी दौलत व हुकूमत और बेहतरीन हुस्न व ख़ूबसूरती वाली लड़कियों की पेशकश इस काम के लिये की कि आप इस्लाम की तब्लीग़ छोड़ दें। आप सल्ल. ने इसके जवाब में क़ुरआन की चन्द आयतें सुना देने पर बस किया। जब यह तदबीर भी कारगर न हुई तो जंग व मुक़ाबले के लिये तैयार होकर हिजरत से पहले और हिजरत के बाद जो अ़रब के क़ुरैश ने आप सल्ल. और मुसलमानों के मुक़ाबले में सर धड़ की बाज़ी लगाई, जान, माल, औलाद, आबरू सब कुछ उस मुक़ाबले में ख़र्च करने के लिये तैयार हुए, यह सब कुछ किया मगर यह किसी से न हो सका कि क़ुरआन के चेलैंज को क़ुबूल करता और चन्द लाईनें मुक़ाबले पर पेश कर देता। क्या इन हालात में सारे अ़रब का इसके मुक़ाबले से सुकूत (ख़ामोशी) और इज्ज़ (आ़जिज़ हो जाना) इसकी खुली हुई शहादत नहीं कि यह इनसान का कलाम नहीं बल्कि अल्लाह तआ़ला का कलाम है, जिसके काम या कलाम की नज़ीर इनसान क्या सारी मख़्लूक़ की ताक़त से बाहर है।

फिर सिर्फ़ इतना ही नहीं कि अ़रब ने इसके मुक़ाबले से ख़ामोशी अपनाई बल्कि अपनी ख़ास मज्लिसों में सब ने इसके बेमिसाल होने को माना और जो उनमें से इन्साफ़ वाले मिज़ाज के मालिक थे उन्होंने इस एतिराफ़ का इज़हार भी किया। फिर उनमें से कुछ मुसलमान हो गये और कुछ अपने बाप-दादा की रस्मों की पाबन्दी या बनू अ़ब्दे मुनाफ़ की ज़िद की वजह से इस्लाम क़ुबूल करने से बावजूद एतिराफ़ (हक़ को स्वीकार करने) के मेहरूम रहे। अ़रब के क़ुरैश की तारीख़ इन वाक़िआ़त

पर शाहिद है, मैं उसमें से कुछ वाक़िआत इस जगह बयान करता हूँ जिससे अन्दाज़ा हो सके कि अरब ने इस कलाम के बेमिसल, बेनज़ीर होने को तस्लीम किया, और इसकी मिसाल पेश करने को अपनी रुस्वाई के ख़्याल से छोड़ दिया।

जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और क़ुरआन का चर्चा मक्का से बाहर हिजाज़ के दूसरे स्थानों में होने लगा और हज का मौसम आया तो मक्का के क़ुरैश को इसकी फ़िक्र हुई कि अब अरब के आस-पास से हाजी लोग आयेंगे और रसूले करीम सल्ल. का यह कलाम सुनेंगे तो फ़रेफ़्ता हो जायेंगे और ग़ालिब ख़्याल यह है कि मुसलमान हो जायेंगे। इसके रोकने की तदबीर सोचने के लिये क़ुरैश ने एक मीटिंग बुलाई उस जलसे में अ़रब के बड़े-बड़े सरदार मौजूद थे, उनमें वलीद बिन मुग़ीरा उम्र में सबसे बड़े और अक़्ल में विशेष समझे जाते थे। सब ने वलीद बिन मुग़ीरा के सामने यह मुश्किल पेश की कि अब मुल्क के हर इलाक़े से लोग आयेंगे और हम से मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) के बारे में पूछेंगे तो हम क्या कहें? हमें आप कोई ऐसी बात बतलाईये कि हम सब वही बात कह दें, ऐसा न हो कि ख़ुद हमारे बयानों में इख़्तिलाफ़ (विरोधाभास) हो जाये। वलीद बिन मुग़ीरा ने कहा कि तुम ही कहो क्या कहना चाहिये?

लोगों ने कहा कि हमारे ख़्याल में हम सब यह कहें कि मुहम्मद (सल्ल.) अल्लाह की पनाह मजनूँ हैं, इनका कलाम मजनूँ की बड़ है। वलीद बिन मुग़ीरा ने कहा कि तुम ऐसा हरगिज़ न कहना, क्योंकि वे लोग जब उनके पास जायेंगे और उनसे मुलाक़ात व गुफ़्तगू करेंगे और उनको एक फ़सीह व बलीग़ (उम्दा और बेहतरीन भाषाई ख़ूबियों के साथ कलाम करने वाला) आ़क़िल इनसान पायेंगे तो उन्हें यक़ीन हो जायेगा कि तुमने झूठ बोला है। फिर कुछ लोगों ने कहा कि अच्छा हम उनको यह कहें कि वह एक शायर हैं। वलीद ने इससे भी मना किया और कहा कि जब लोग उनका कलाम सुनेंगे वे तो शे'र व शायरी के माहिर हैं, उन्हें यक़ीन हो जायेगा कि यह शे'र नहीं और न आप सल्ल. शायर हैं, नतीजा यह होगा कि वे सब लोग तुम्हें झूठा समझेंगे। फिर कुछ लोगों ने कहा कि तो फिर हम उनको काहिन (जिन्नात वग़ैरह के असर में आये हुए और उनसे मालूम करके ग़ैब की बातें बताने वाले) क़रार दें, जो शैतान व जिन्नात से सुनकर ग़ैब की ख़बरें दिया करते हैं। वलीद बिन मुग़ीरा ने कहा यह भी ग़लत है क्योंकि जब लोग उनका कलाम सुनेंगे तो पता चल जायेगा कि यह कलाम किसी काहिन का नहीं है, वे फिर भी तुम्हें ही झूठा समझेंगे। इसके बाद क़ुरआन के बारे में जो वलीद बिन मुग़ीरा के ख़्यालात थे उनको इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है:

"ख़ुदा की क़सम! तुम में कोई आदमी शे'र व शायरी और अ़रब के अश्आ़र से मेरे बराबर वाक़िफ़ नहीं। ख़ुदा की क़सम! इस कलाम में ख़ास मिठास है और एक ख़ास रौनक़ है, जो मैं किसी शायर या ज़बान के माहिर के कलाम में नहीं पाता।"

फिर उनकी क़ौम ने पूछा कि आप ही बतलाईये कि फिर हम क्या करें? और उनके बारे में लोगों से क्या कहें? वलीद ने कहा मैं ग़ौर करने के बाद कुछ जवाब दूँगा। फिर बहुत सोचने के बाद कहा कि अगर कुछ कहना ही है तो तुम उनको साहिर (जादूगर) कहो कि अपने जादू से बाप बेटे और मियाँ-बीवी में फूट और जुदाई डाल देते हैं।

क़ौम इस पर मुत्मईन और सहमत हो गई और सबसे यही कहना शुरू किया, मगर ख़ुदा का

चिराग़ कहीं फूँकों से बुझने वाला था? अरब के आस-पास के लोग आये, क़ुरआन सुना और बहुत से मुसलमान हो गये और अरब के आस-पास के सारे इलाक़ों में इस्लाम फैल गया। (ख़साईसे कुबरा)

इसी तरह एक क़ुरैशी सरदार नज़र बिन हारिस ने एक मर्तबा अपनी क़ौम को ख़िताब करके कहा:

"ऐ क़ुरैश की क़ौम! आज तुम एक मुसीबत में गिरफ़्तार हो कि इससे पहले कभी ऐसी मुसीबत से वास्ता नहीं पड़ा था कि मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) तुम्हारी क़ौम के एक नौजवान थे, और तुम सब उनके आदात व अख़्लाक़ के मुरीद और अपनी क़ौम में उनको सबसे ज़्यादा सच्चा और सबसे ज़्यादा अमानतदार जानते और कहते थे। अब जबकि उनके सर में सफ़ेद बाल आने लगे, और उन्होंने एक बेमिसाल कलाम अल्लाह की तरफ़ से पेश किया तो तुम उनको जादूगर कहने लगे। ख़ुदा की क़सम! वह जादूगर नहीं, हमने जादूगरों को देखा और बरता है, उनके कलाम सुने हैं और तरीक़ों को समझा है, वे बिल्कुल उससे अलग और भिन्न हैं। और कभी तुम उनको काहिन कहने लगे, ख़ुदा की क़सम! वह काहिन भी नहीं, हमने बहुत काहिनों को देखा और उनके कलाम सुने हैं, उनको इनके कलाम से कोई मुनासबत (जोड़) नहीं। और कभी तुम उनको शायर कहने लगे, ख़ुदा की क़सम! वह शायर भी नहीं। हमने ख़ुद शे'र-शायरी के तमाम फ़ुनून को सीखा समझा है और बड़े-बड़े शायरों के कलाम हमें याद हैं, उनके कलाम से इसको कोई मुनासबत नहीं। फिर कभी तुम उनको मजनूँ बताते हो, ख़ुदा की क़सम! वह मजनूँ भी नहीं, हमने बहुत से मजनुओं को देखा भाला, उनकी बकवास सुनी है, उनके विभिन्न और मिले-जुले कलाम सुने हैं, यहाँ यह कुछ नहीं। ऐ मेरी क़ौम तुम इन्साफ़ के साथ इनके मामले में ग़ौर करो यह सरसरी टला देने की चीज़ नहीं।" (ख़साईसे कुबरा पेज 114 जिल्द 1)

हज़रत अबूज़र सहाबी रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि मेरा भाई उनैस एक मर्तबा मक्का मुअज़्ज़मा गया, उसने वापस आकर मुझे बतलाया कि मक्का में एक शख़्स है जो यह कहता है कि वह अल्लाह का रसूल है। मैंने पूछा कि वहाँ के लोग उसके बारे में क्या राय रखते हैं? भाई ने कहा कि कोई उनको शायर कहता है, कोई काहिन बतलाता है, कोई जादूगर कहता है। मेरा भाई उनैस ख़ुद बड़ा शायर और कहानत वग़ैरह से वाक़िफ़ आदमी था, उसने मुझसे कहा कि जहाँ तक मैंने ग़ौर किया लोगों की ये सब बातें ग़लत हैं, उनका कलाम न शे'र है न कहानत (जिन्नात की बताई हुई बातें) है न मजनूनाना कलिमात हैं, बल्कि मुझे वह सच्चा कलाम नज़र आता है।

हज़रत अबूज़र रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि भाई से ये कलिमात सुनकर मैंने मक्का का सफ़र किया और मस्जिदे हराम में आकर पड़ गया। तीस रोज़ मैंने इस तरह गुज़ारे कि सिवाय ज़मज़म के पानी के मेरे पेट में कुछ नहीं गया, इस तमाम अरसे में न मुझे भूख की तकलीफ़ महसूस हुई न कोई कमज़ोरी महसूस हुई। (ख़साईसे कुबरा पेज 116 जिल्द 1)

वापस गये तो लोगों से कहा कि मैंने रोम और ईरान के उम्दा कलाम वाले और भाषा के माहिरों के कलाम बहुत सुने हैं और काहिनों के कलिमात और हिम्यर के मक़ालात (बातें) बहुत सुने हैं, मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के कलाम की मिसाल मैंने आज तक कहीं नहीं सुनी। तुम सब मेरी बात मानो और आपकी पैरवी करो। चुनाँचे मक्का फ़तह होने के साल में उनकी पूरी क़ौम के तक़रीबन एक हज़ार आदमी मक्का पहुँचकर मुसलमान हो गये। (ख़साईसे कुबरा पेज 116 जिल्द 1)

इस्लाम और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सबसे बड़े दुश्मन अबू जहल और अख़्नस बिन शुरैक़ वग़ैरह भी लोगों से छुपकर क़ुरआन सुना करते और उसके अ़जीब व ग़रीब, बेमिस्ल व बेनज़ीर प्रभाव से मुतास्सिर होते थे। मगर जब कौम के कुछ लोगों ने उनको कहा कि जब तुम इस कलाम को ऐसा बेनज़ीर पाते हो तो इसको क़ुबूल क्यों नहीं करते? तो अबू जहल का जवाब यह था कि तुम्हें मालूम है कि अ़ब्दे मुनाफ़ की औलाद में और हमारे क़बीले में हमेशा से मुक़ाबला और रस्साकशी चलती रहती है। वे जिस काम में आगे बढ़ना चाहते हैं हम भी उसका जवाब देते हैं, अब जबकि हम और वे दोनों बराबर हैसियत के मालिक हैं तो अब वे यह कहने लगे कि हम में एक नबी पैदा हुआ है जिस पर आसमान से वही (अल्लाह का पैग़ाम) आती है, अब हम इसमें कैसे उनका मुक़ाबला करें। मैं तो कभी इसका इक़रार न करूँगा। (ख़साईसे कुबरा)

ख़ुलासा-ए-कलाम यह है कि क़ुरआन के इस दावे और चेलैंज पर सिर्फ़ यही नहीं कि पूरे अ़रब ने हार मान ली और चुप्पी साध ली बल्कि इसके बेमिस्ल व बेनज़ीर होने और अपने आ़जिज़ व असमर्थ होने का खुले तौर पर इक़रार भी किया है। अगर यह किसी इनसान का कलाम होता तो इसकी कोई वजह न थी कि सारा अ़रब बल्कि सारी दुनिया इसके जैसा लाने से आ़जिज़ हो जाती।

क़ुरआन और पैग़म्बरे क़ुरआन के मुक़ाबले में जान व माल, औलाद व आबरू सब कुछ क़ुरबान करने के लिये तो वे तैयार हो गये मगर इसके लिये कोई आगे न बढ़ा कि क़ुरआन के चेलैंज को क़ुबूल करके दो सतरें (पंक्तियाँ) इसके मुक़ाबले में पेश कर देता। इसकी वजह यह थी कि वे लोग अपने जाहिलाना कामों और करतूतों के बावजूद इन्साफ़ वाला मिज़ाज रखते थे, झूठ के पास न जाते थे। जब उन्होंने क़ुरआन को सुनकर यह समझ लिया कि जब दर हक़ीक़त इस कलाम की मिस्ल हम नहीं ला सकते तो महज़ धाँधली और अपनी बात पर अड़ने के लिये यूँ ही कोई कलाम पेश करना अपने लिये आ़र (शर्म और रुस्वाई की बात) समझा, क्योंकि वे यह भी जानते थे कि हमने कोई चीज़ पेश भी कर दी तो पूरे अ़रब के भाषाई माहिर और अ़रबी कलाम के विद्वान इस इम्तिहानी मुक़ाबले में हमें फ़ेल कर देंगे और बिना वजह रुस्वाई होगी, इसी लिये पूरी कौम ने चुप्पी साध ली और जो इन्साफ़ वाली तबीयत रखते थे उन्होंने साफ़ तौर पर इक़रार व तस्लीम भी किया जिसके कुछ वाक़िआ़त पहले बयान हो चुके हैं।

इसी सिलसिले का एक वाक़िआ़ यह है कि अ़रब के सरदार असद बिन ज़ुरारा ने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के चचा हज़रत अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु के सामने इक़रार किया किः

> "हमने ख़्वाह-म-ख़्वाह मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) की मुख़ालफ़त करके अपने रिश्ते-नाते तोड़े और ताल्लुक़ात ख़राब किये। मैं यक़ीन के साथ कहता हूँ कि वह बिला शुब्हा अल्लाह के रसूल हैं, हरगिज़ झूठे नहीं, और जो कलाम वे लाये हैं इनसानी कलाम नहीं हो सकता।" (ख़साईसे कुबरा पेज 166 जिल्द 1)

क़बीला बनी सुलैम के एक शख़्स जिनका नाम क़ैस बिन नसीबा था रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए। आप से क़ुरआन सुना और चन्द सवालात किये जिनका जवाब आप सल्ल. ने अ़ता फ़रमाया तो यह उसी वक़्त मुसलमान हो गये, और फिर अपनी क़ौम में वापस गये तो लोगों से कहाः

"मैंने रोम व फ़ारस (प्राचीन ईरान) के कलाम के माहिर और साहित्यकारों के कलाम सुने हैं, बहुत से काहिनों के कलिमात सुनने का तजुर्बा हुआ है, हिम्यर के मक़ालात सुनता रहा हूँ, मगर मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के कलाम के जैसा मैंने आज तक कहीं नहीं सुना, तुम सब मेरी बात मानो और उनकी पैरवी करो।" इन्हीं की प्रेरणा व तलक़ीन पर इनकी क़ौम के एक हज़ार आदमी मक्का फ़तह होने के मौक़े पर नबी करीम सल्ल. की ख़िदमत में हाज़िर होकर इस्लाम से सम्मानित हो गये।" (ख़साईसे कुबरा पेज 166 जिल्द 1)

यह इक़रार व तस्लीम सिर्फ़ ऐसे लोगों से मन्क़ूल नहीं जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मामलात से एक तरफ़ और ग़ैर-जानिबदार (निष्पक्ष) थे, बल्कि वे लोग जो हर वक़्त हर तरह रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुख़ालफ़त में लगे हुए थे, क़ुरआन के बारे में उनका भी यही हाल था मगर अपनी ज़िद और जलन की वजह से इसका इज़हार लोगों पर न करते थे।

अ़ल्लामा सुयूती रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'ख़साईसे कुबरा' में बैहक़ी के हवाले से नक़ल किया है कि एक मर्तबा अबू जहल, अबू सुफ़ियान और अख़्नस बिन शुरैक़ रात को अपने-अपने घरों से इसलिये निकले कि छुपकर रसूलुल्लाह सल्ल. से क़ुरआन सुनें। इनमें से हर एक अलग-अलग निकला, एक को दूसरे की ख़बर न थी, और अलग-अलग कोनों में छुपकर क़ुरआन सुनने लगे, तो उसमें ऐसे खोये कि सारी रात गुज़र गई। जब सुबह हुई तो सब वापस हुए। इत्तिफ़ाक़न रास्ते में मिल गये और हर एक ने दूसरे का क़िस्सा सुना तो सब आपस में एक दूसरे को मलामत करने लगे कि तुमने यह बुरी हरकत की और हर किसी ने यह भी कहा कि आईन्दा कोई ऐसा न करे क्योंकि अगर अ़रब के अ़वाम को इसकी ख़बर हो गई तो वे सब मुसलमान हो जायेंगे।

यह कह-सुनकर सब अपने-अपने घर चले गये। अगली रात आई तो फिर उनमें से हर एक के दिल में यही ललक उठी कि क़ुरआन सुने और फिर उसी तरह छुप-छुपकर हर एक ने क़ुरआन सुना यहाँ तक कि रात गुज़र गई और सुबह होते ही ये लोग वापस हुए तो फिर आपस में एक दूसरे को मलामत करने लगे और इस हरकत को छोड़ देने पर सब ने इत्तिफ़ाक़ किया। मगर तीसरी रात आई तो फिर क़ुरआन की लज़्ज़त व मिठास ने उन्हें चलने और सुनने पर मजबूर कर दिया। फिर पहुँचे और रात भर क़ुरआन सुनकर लौटने लगे तो फिर रास्ते में इकट्ठे हो गये तो अब सब ने कहा कि आओ आपस में मुआ़हदा कर लें कि आईन्दा हम हरगिज़ ऐसा न करेंगे, चुनाँचे इस मुआ़हदे (समझौते) को पूरा किया गया और सब अपने-अपने घरों को चले गये। सुबह को अख़्नस बिन शुरैक़ ने अपनी लाठी उठाई और पहले अबू सुफ़ियान के पास पहुँचा कि बतलाओ उस कलाम के बारे में तुम्हारी क्या राय है? उसने दबे-दबे लफ़्ज़ों में क़ुरआन की हक़्क़ानियत (सच्चा होने) का इक़रार किया तो अख़्नस ने कहा ख़ुदा की क़सम मेरी भी यही राय है। उसके बाद वह अबू जहल के पास पहुँचा और उससे भी यही सवाल किया कि तुमने मुहम्मद (सल्ल.) के कलाम को कैसा पाया? अबू जहल ने कहा कि साफ़ बात यह है कि हमारे ख़ानदान और अ़ब्दे मुनाफ़ की औलाद के ख़ानदान में हमेशा से मुख़ालफ़त और दौड़ चली आती है, क़ौम की सरदारी व लीडरी में वे जिस मोर्चे पर आगे बढ़ना चाहते हैं हम उनका मुक़ाबला करते हैं, उन्होंने सख़ावत व बख़्शिश (दान-पुन) के ज़रिये क़ौम पर अपना असर जमाना चाहा तो हमने उनसे बढ़कर यह काम कर दिखाया, उन्होंने लोगों की ज़िम्मेदारियाँ अपने

सर ले लीं तो हम इस मैदान में भी उनसे पीछे नहीं रहे, यहाँ तक कि पूरा अ़रब जानता है कि हम दोनों ख़ानदान बराबर की हैसियत के मालिक हैं।

इन हालात में उनके ख़ानदान से यह आवाज़ उठी कि हमारे में एक नबी पैदा हुआ है जिस पर आसमान से वही उतरती है, अब ज़ाहिर है कि इसका मुक़ाबला हम कैसे करें। इसलिये हमने तो यह तय कर लिया है कि हम ज़ोर और ताक़त से उनका मुक़ाबला करेंगे और हरगिज़ उन पर ईमान न लायेंगे। (ख़साईसे कुबरा पेज 115 जिल्द 1)

यह है क़ुरआन का वह खुला मोजिज़ा जिसका दुश्मनों को भी एतिराफ़ (इक़रार) करना पड़ा है। ये तमाम वाक़िआ़त अ़ल्लामा जलालुद्दीन सुयूती रह. ने ख़साईसे कुबरा में नक़ल किये हैं।

तीसरी वजह

तीसरी वजह क़ुरआन के मोजिज़ा होने की यह है कि इसमें ग़ैब की और आईन्दा पेश आने वाले वाक़िआ़त की बहुत सी ख़बरें हैं जो क़ुरआन ने दीं और बिल्कुल उसी तरह वाक़िआ़त पेश आये जिस तरह क़ुरआन ने ख़बर दी थी। जैसे क़ुरआन ने ख़बर दी कि रोम व फ़ारस के मुक़ाबले में पहले फ़ारस वाले ग़ालिब आयेंगे और रूमी मग़लूब होंगे, लेकिन साथ ही यह ख़बर दी कि दस साल गुज़रने न पायेंगे कि फिर रूमी फ़ारस वालों पर ग़ालिब आ जायेंगे। मक्का के सरदारों ने क़ुरआन की इस ख़बर पर हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से हार-जीत की शर्त लगा ली और फिर ठीक क़ुरआन की ख़बर के मुताबिक़ रूमी ग़ालिब आ गये तो सब को अपनी हार माननी पड़ी, और हारने वाले पर जो माल देने की शर्त तय थी वह माल उनको देना पड़ा। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उस माल को क़ुबूल नहीं फ़रमाया क्योंकि वह एक क़िस्म का जुआ था। इसी तरह और बहुत से वाक़िआ़त और ख़बरें हैं जो ग़ैबी और आने वाले मामलात के बारे में क़ुरआन में दी गईं और उनकी सच्चाई बिल्कुल रोज़े रोशन की तरह वाज़ेह हो गई।

चौथी वजह

चौथी वजह क़ुरआन के मोजिज़ा होने की यह है कि इसमें पिछली उम्मतों, उनकी शरीअ़तों और एतिहासिक हालात का ऐसा साफ़ तज़किरा है कि उस ज़माने के यहूदी व ईसाई बड़े-बड़े उलेमा जो पिछली किताबों के माहिर समझे जाते थे उनको भी इतनी मालूमात न थीं, और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने तो कभी न किसी पाठशाला में क़दम रखा न किसी आ़लिम की सोहबत उठाई, न किसी किताब को हाथ लगाया, फिर यह दुनिया की शुरूआ़त से आप सल्ल. के ज़माने तक दुनिया की तमाम क़ौमों के तारीख़ी हालात और निहायत सही और सच्चे वाक़िआ़त और उनकी शरीअ़तों की तफ़सीलात का बयान ज़ाहिर है कि सिवाय इसके नहीं हो सकता कि यह कलाम अल्लाह तआ़ला ही का हो और अल्लाह तआ़ला ने ही आपको ये ख़बरें दी हों।

पाँचवीं वजह

पाँचवीं वजह इसके मोजिज़ा होने की यह है कि इसकी अनेक आयतों में लोगों के दिल की छुपी हुई बातों की इत्तिला दी गई और फिर उनके इक़रार से साबित हो गया कि वह बात सही और सच्ची

थी। यह काम भी हर छुपी व ज़ाहिर चीज़ का जानने वाला (यानी अल्लाह तआ़ला) ही कर सकता है, किसी बशर (इनसान) से यह आदतन् मुम्किन नहीं। जैसे क़ुरआन में इरशाद फ़रमाया है:

اِذْ هَمَّتْ طَّآئِفَتٰنِ مِنْكُمْ اَنْ تَفْشَلَا (۳:۱۲۲)

"जब तुम्हारी दो जमाअ़तों ने दिल में इरादा किया कि पीछे हट जायें।"

और यह इरशाद कि:

يَقُوْلُوْنَ فِيْٓ اَنْفُسِهِمْ لَوْلَا يُعَذِّبُنَا اللّٰهُ بِمَا نَقُوْلُ. (۵۸:۸)

"वे लोग अपने दिलों में कहते हैं कि हमारे इनकार की वजह से अल्लाह तआ़ला हमें अ़ज़ाब क्यों नहीं भेजता।"

ये सब बातें ऐसी हैं जिनको उन्होंने किसी से ज़ाहिर नहीं किया, क़ुरआने करीम ने ही इनको ज़ाहिर किया।

छठी वजह

छठी वजह क़ुरआन के मोजिज़ा होने की वे आयतें हैं जिनमें क़ुरआन ने किसी क़ौम या फ़र्द के मुताल्लिक़ यह पेशीनगोई (भविष्यवाणी) की कि वे फ़ुलाँ काम न कर सकेंगे और फिर वे लोग बावजूद ज़ाहिरी क़ुदरत के उस काम को न कर सके। जैसे यहूद के बारे में क़ुरआन ने ऐलान किया कि अगर वे वास्तव में अपने आपको अल्लाह के दोस्त और वली समझते हैं तो उन्हें अल्लाह के पास जाने से मुहब्बत होना चाहिये, वे ज़रा मौत की तमन्ना करके दिखलायें। और फिर इरशाद फ़रमायाः

وَلَنْ يَّتَمَنَّوْهُ اَبَدًا (۲:۹۵)

"वे हरगिज़ मौत की तमन्ना न कर सकेंगे।"

मौत की तमन्ना करना किसी के लिये मुश्किल न था, ख़ुसूसन उन लोगों के लिये जो क़ुरआन को झुठलाते थे। क़ुरआन के इरशाद की वजह से उनको मौत की तमन्ना में ख़ौफ़ व घबराहट की कोई वजह न थी, यहूद के लिये तो मुसलमानों को शिकस्त देने का यह मौक़ा बड़ा ग़नीमत था कि फ़ौरन मौत की तमन्ना का हर मज्लिस व महफ़िल में ऐलान करते। मगर यहूद हों या मुश्रिक लोग ज़बान से कितना ही क़ुरआन को झुठलायें, उनके दिल जानते थे कि क़ुरआन सच्चा है, इसकी कोई बात ग़लत नहीं हो सकती, अगर मौत की तमन्ना हम इस वक़्त करेंगे तो फ़ौरन मर जायेंगे। इसलिये क़ुरआन के इस खुले हुए चेलैंज के बावजूद किसी यहूदी की हिम्मत न हुई कि एक मर्तबा ज़बान से मौत की तमन्ना का इज़हार कर दे।

सातवीं वजह

सातवीं वजह वह ख़ास कैफ़ियत है जो क़ुरआन के सुनने से हर ख़ास व आ़म और मोमिन व काफ़िर पर तारी होती है, जैसे हज़रत जुबैर बिन मुतअ़िम रज़ियल्लाहु अ़न्हु को इस्लाम लाने से पहले पेश आया कि इत्तिफ़ाक़ से उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को मग़रिब की नमाज़ में सूरः तूर पढ़ते हुए सुना, जब आप सल्ल. आख़िरी आयतों पर पहुँचे तो हज़रत जुबैर कहते हैं कि मेरा दिल गोया उड़ने लगा और यह सब से पहला दिन था कि मेरे दिल में इस्लाम ने असर किया। वो

आयतें ये हैं:

أَمْ خُلِقُوا مِنْ غَيْرِ شَيْءٍ أَمْ هُمُ الْخَالِقُونَ ۝ أَمْ خَلَقُوا السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضَ بَلْ لَا يُوقِنُونَ ۝ أَمْ عِنْدَهُمْ خَزَآئِنُ رَبِّكَ أَمْ هُمُ الْمُصَيْطِرُونَ ۝ (٥٢: ٣٥-٣٧)

"क्या वे बन गये हैं आप ही आप, या वही हैं बनाने वाले? या उन्होंने बनाये हैं आसमान और ज़मीन? कोई नहीं, पर यक़ीन नहीं करते। क्या उनके पास हैं ख़ज़ाने तेरे रब के, या वही दारोग़ा हैं।"

आठवीं वजह

आठवीं वजह क़ुरआन के मोजिज़ा होने की यह है कि इसको बार-बार पढ़ने और सुनने से कोई उकताता नहीं, बल्कि जितना ज़्यादा पढ़ा जाता है उसका शौक़ और बढ़ता रहता है। दुनिया की कोई बेहतर से बेहतर और दिलपसन्द से दिलपसन्द किताब ले लीजिये, उसको दो-चार मर्तबा पढ़ा जाये तो इनसान की तबीयत उकता जाती है, फिर न पढ़ने को जी चाहता है न सुनने को। यह सिर्फ़ क़ुरआन की ख़ासियत है कि जितना कोई इसको पढ़ता है उतना ही उसको शौक़ और रग़बत बढ़ती जाती है। यह भी क़ुरआन के अल्लाह का कलाम होने ही का असर है।

नवीं वजह

नवीं वजह यह है कि क़ुरआन ने ऐलान किया है कि इसकी हिफ़ाज़त का ज़िम्मा ख़ुद अल्लाह तआ़ला ने लिया है, वह क़ियामत तक बग़ैर किसी मामूली से मामूली बदलाव व तरमीम के बाक़ी रहेगा। अल्लाह तआ़ला ने अपने वायदे को इस तरह पूरा फ़रमाया कि जब से क़ुरआन नाज़िल हुआ है आज चौदह सौ बरस के क़रीब होने को आये हैं, हर दौर हर ज़माने में लाखों इनसान ऐसे रहे हैं और रहेंगे जिनके सीनों में पूरा क़ुरआन इस तरह महफ़ूज़ रहा कि एक ज़ेर व ज़बर की ग़लती की संभावना नहीं। हर ज़माने में मर्द, औरत, बच्चे, बूढ़े इसके हाफ़िज़ मिलते हैं। बड़े से बड़ा आ़लिम अगर कहीं एक ज़ेर ज़बर की ग़लती कर जाये तो ज़रा-ज़रा से बच्चे वहीं ग़लती पकड़ लेंगे, दुनिया का कोई मज़हब अपनी मज़हबी किताब के बारे में इसकी मिसाल तो क्या इसका दसवाँ हिस्सा भी पेश नहीं कर सकता। बहुत से मज़हबों की किताबों में तो आज यह पता चलाना भी मुश्किल हो गया है कि उसकी असल किस ज़बान में आई थी और उसके कितने हिस्से थे।

किताब की सूरत में भी हर दौर हर ज़माने में जितनी इशाअ़त (प्रसार) क़ुरआन की हुई शायद दुनिया की किसी किताब को यह बात नसीब नहीं। हालाँकि इतिहास गवाह है कि हर ज़माने में मुसलमानों की तादाद दुनिया में काफ़िरों और इनकारियों के मुक़ाबले में बहुत कम रही, और प्रचार व प्रसार के माध्यम और साधन भी जितने ग़ैर-मुस्लिमों को हासिल रहे हैं मुसलमानों को उसका कोई क़ाबिले ज़िक्र हिस्सा नसीब नहीं था, मगर इन बातों के बावजूद किसी क़ौम किसी मज़हब की कोई किताब दुनिया में इतनी शाया (प्रकाशित) नहीं हुई जितना क़ुरआन शाया हुआ।

फिर क़ुरआन की हिफ़ाज़त को अल्लाह तआ़ला ने सिर्फ़ किताबों और सहीफ़ों पर मौक़ूफ़ नहीं रखा जिनके जल जाने और मिट जाने की संभावना हो, बल्कि अपने बन्दों के सीनों में भी महफ़ूज़ कर दिया। अगर आज सारी दुनिया के क़ुरआन (अल्लाह की पनाह) नाबूद कर दिये जायें तो अल्लाह की

किताब फिर भी इसी तरह महफ़ूज़ रहेगी। चन्द हाफ़िज़ मिलकर बैठ जायें तो चन्द घन्टों में फिर सारी की सारी लिखी जा सकती है। यह बेनज़ीर हिफ़ाज़त भी सिर्फ़ क़ुरआन ही का ख़ास्सा और इसके अल्लाह का कलाम होने का नुमायाँ (स्पष्ट) सुबूत है, कि जिस तरह अल्लाह की ज़ात हमेशा बाक़ी रहने वाली है उस पर किसी मख़्लूक़ का इख़्तियार नहीं चल सकता, इसी तरह उसका कलाम भी हमेशा तमाम मख़्लूक़ात की नकारात्मक पहुँच और इख़्तियार से बालातर होकर हमेशा-हमेशा बाक़ी रहेगा। क़ुरआन की यह पेशीनगोई (भविष्यवाणी) चौदह सौ बरस तक खुली आँखों देखी जा चुकी है और क़ियामत तक इन्शा-अल्लाह तआ़ला देखी जाती रहेगी। इस खुले मोजिज़े के बाद क़ुरआन के कलामे इलाही होने में क्या किसी को शक व शुब्हे की गुन्जाईश रह सकती है?

दसवीं वजह

क़ुरआन पाक के मोजिज़ा होने की दसवीं वजह वे उलूम व मआ़रिफ़ हैं जिनका इहाता न आज तक किसी किताब ने किया है न आईन्दा संभावना है कि इतने मुख़्तसर साईज़ और सीमित कलिमात में इतने उलूम व फ़ुनून जमा किये जा सकें, जो तमाम कायनात की हमेशा की ज़रूरतों को हावी और इनसान की ज़िन्दगी के हर शोबे और हर हाल से मुताल्लिक़ पूरा मुरत्तब और बेहतरीन निज़ाम पेश कर सके। व्यक्तिगत फिर ख़ानदानी और सामाजिक ज़िन्दगी से लेकर क़बाईली और शहरी ज़िन्दगी तक और फिर पूरी आबादी, सामूहिक और मुल्कों के इन्तिज़ाम व सियासत के हर पहलू पर हावी निज़ाम पेश कर दे।

फिर सिर्फ़ किताबी, बयान करने और इल्मी तौर पर निज़ाम पेश करना ही नहीं बल्कि अ़मली तौर पर उसको प्रचलित करना और दुनिया के तमाम सिस्टमों पर ग़ालिब आकर क़ौमों के मिज़ाज, अख़्लाक़, आमाल, रहन-सहन और तहज़ीब व सभ्यता में वह ज़बरदस्त क्रांति पैदा करना जिसकी नज़ीर न पहले किसी ज़माने में मिल सकती है न बाद के ज़मानों में। यह हैरत-अंगेज़ इन्क़िलाब क्या किसी इनसान की क़ुदरत और उसकी रणनीति का परिणाम हो सकता है? ख़ुसूसन जबकि वह इनसान भी उम्मी (बिना पढ़ा-लिखा) और उसकी क़ौम भी उम्मी हो।

यही वे अ़क़्लों को हैरान कर देने वाली तासीरें हैं कि जिनकी वजह से क़ुरआन को कलामे इलाही मानने पर हर वह शख़्स मजबूर है जिसकी अ़क़्ल व समझ को तास्सुब व मुख़ालफ़त ने बिल्कुल ही बरबाद न कर दिया हो। यहाँ तक कि माद्दा परस्ती के इस दौर में ईसाई मुसन्निफ़ीन (लेखक और विद्वान) जिन्होंने कुछ भी क़ुरआन में ग़ौर व फ़िक्र से काम लिया इस इक़रार पर मजबूर हो गये कि यह एक बेमिस्ल व बेनज़ीर किताब है।

फ़्राँस का मशहूर इस्लामी उलूम का माहिर डॉक्टर मारड्रेस जिसको फ़्राँस की हुकूमत के शिक्षा मंत्रालय (तहक़ीक़ी विभाग) ने क़ुरआने हकीम की बासठ सूरतों का तर्जुमा फ़्राँसीसी ज़बान में करने पर लगाया था उसने स्वीकार किया है, जिसका उर्दू तर्जुमा यह है:

"बेशक क़ुरआन का अन्दाज़े बयान अल्लाह तआ़ला का अन्दाज़े बयान है। बिला शुब्हा जिन तथ्यों और मआ़रिफ़ पर यह कलाम हावी है वह एक कलामे इलाही ही हो सकता है। और वास्तविकता यह है कि इसमें शक व शुब्हा करने वाले भी जब इसकी ज़बरदस्त तासीर को देखते

हैं तो मानने और स्वीकार करने पर मजबूर होते हैं। पचास करोड़ मुसलमान जो पूरी दुनिया के हर हिस्से पर फैले हुए हैं उनमें क़ुरआन की ख़ास तासीर को देखकर ईसाई मिशन में काम करने वाले एक राय होकर इसका एतिराफ़ करते हैं कि एक वाक़िआ भी ऐसा पेश नहीं किया जा सकता कि जिस मुसलमान ने इस्लाम और क़ुरआन को समझ लिया वह कभी मुर्तद हुआ (यानी दीन इस्लाम से फिर गया) या क़ुरआन का इनकारी हो गया हो।"

मुसलमानों में क़ुरआन की इस तासीर का यह एतिराफ़ (स्वीकार करना) इस्लामी उलूम के माहिर उस ईसाई आ़लिम से एक ऐसे दौर में हो रहा है जबकि ख़ुद मुसलमान इस्लाम और क़ुरआन से बेगाना, उसकी तालीमात से दूर, उसकी तिलावत से ग़ाफ़िल हो चुके हैं। काश! यह मुसन्निफ़ (लेखक) इस्लाम और क़ुरआन के उस दौर को देखता जबकि मुसलमानों की ज़िन्दगी के हर शोबे (क्षेत्र) में क़ुरआन का अ़मल था और उनकी ज़बानों पर क़ुरआन की आयतें थीं।

इसी तरह दूसरे ईसाई मुसन्निफ़ीन (लेखकों और विद्वानों) ने भी जो इन्साफ़ का मिज़ाज रखते थे इसी क़िस्म के एतिराफ़ किये हैं। मिस्टर विलियम मयूर ने अपनी किताब "हयाते मुहम्मद" में स्पष्ट तौर पर इसको स्वीकार किया है और डॉक्टर शिबली शमील ने उस पर एक मुस्तक़िल लेख लिखा है।

क़ुरआन के अल्लाह का कलाम और हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मोजिज़ा होने पर दस वुजूहात आप सुन चुके हैं, आख़िर में एक संक्षिप्त नज़र इस पर डालिये कि मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पैदाईशी यतीम होकर दुनिया में तशरीफ़ लाये हैं, उम्र भर किसी पाठशाला में क़दम नहीं रखते, क़लम और किताब को हाथ नहीं लगाते, अपना नाम भी ख़ुद नहीं लिख सकते, इसी में जवान होते हैं। आपकी तबीयत अ़लैहदगी पसन्द है, किसी खेल-तमाशे, जलसों, हंगामों में जाने के भी आ़दी नहीं, शे'र व तक़रीर से भी मुनासबत नहीं, किसी क़ौमी सम्मेलन में कभी कोई ख़ुतबा (भाषण) देने या तक़रीर करने का भी उम्र भर इत्तिफ़ाक़ नहीं होता। चालीस साल के होने के बाद जबकि अधेड़ उम्र में पहुँच जाते हैं, और आ़दतन किसी इल्म के सीखने सिखाने का वक़्त ख़त्म हो जाता है, उस वक़्त आपकी ज़बाने मुबारक पर एक ऐसा अ़क़्लों को हैरान कर देने वाला, तथ्यों से भरपूर, भाषाई अन्दाज़ से बेमिसाल, नादिर और दूसरों को आ़जिज़ कर देने वाला कलाम आने लगता है जो किसी बड़े से बड़े आ़लिम, माहिर और भाषा के उम्दा जानकार से भी मुम्किन नहीं, जिसके ज़रिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम अ़रब के बड़े-बड़े क़ाबिल और अ़रबी भाषा के माहिर लोगों को ख़िताब फ़रमाते हैं, उनके जलसों में पहुँचकर ख़ुतबे देते हैं, और पूरी दुनिया के लिये उमूमन, अ़रब के लिये ख़ुसूसन यह चेलैंज सुनाते हैं कि कोई इसके कलामे इलाही होने में शुब्हा करे तो इसके किसी छोटे से हिस्से के जैसा बनाकर दिखला दे। इस पर पूरी क़ौम मिसाल पेश करने से आ़जिज़ और लाचार हो जाती है।

पूरी क़ौम जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को पहले 'अमीन' (अमानतदार) के लक़ब से पुकारती और अदब व एहतिराम करती थी, आपकी मुख़ालिफ़ हो जाती है। इस कलाम की तब्लीग़ से रोकने के लिये दौलत, हुकूमत और इनसानी इच्छा की तमाम चीज़ें पेश करती है। आप सल्ल. उनमें से किसी चीज़ को क़ुबूल नहीं करते। पूरी क़ौम आपको और आपके साथियों को सताने, ज़ुल्म करने पर आमादा हो जाती है, आप यह सब कुछ बरदाश्त करते हैं मगर इस कलाम की तब्लीग़ नहीं

छोड़ते। क़ौम आप सल्ल. के क़त्ल की साज़िशें करती है, जंग व लड़ाई पर आमादा हो जाती है, आपको अपना वतन छोड़कर मदीना जाना पड़ता है, आपकी क़ौम आपको वहाँ भी सुकून से नहीं बैठने देती।

सारा अ़रब और अहले किताब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुख़ालफ़त पर जमा हो जाते हैं, आये दिन मदीना पर हमले होते हैं, आपके मुख़ालिफ़ ये सब कुछ करते हैं मगर क़ुरआन के चेलैंज को क़ुबूल करके एक छोटी सी सूरत क़ुरआन के जैसी बनाकर पेश नहीं करते। क़ुरआन उनको ग़ैरत दिलाता है, इस पर भी उनकी ग़ैरत नहीं जागती। सिर्फ़ यही नहीं कि पूरा अ़रब क़ुरआन की मिसाल पेश करने से आ़जिज़ रहा बल्कि ख़ुद वह पाक ज़ात जिस पर यह क़ुरआन नाज़िल हुआ वह भी इसकी मिसाल अपनी तरफ़ से पेश नहीं कर सकती, उनका सारा कलाम यानी हदीस जिस तरह का है क़ुरआन का कलाम यक़ीनन उससे नुमायाँ है। क़ुरआने करीम का इरशाद है:

قَالَ الَّذِيْنَ لَا يَرْجُوْنَ لِقَآءَ نَا ائْتِ بِقُرْاٰنٍ غَيْرِ هٰذَآ اَوْبَدِّلْهُ. قُلْ مَا يَكُوْنُ لِيْٓ اَنْ اُبَدِّلَهٗ مِنْ تِلْقَآئِ نَفْسِيْ.

(سورۃ ۱۰ آیت ۱۵)

"जो लोग आख़िरत में हमारे सामने आने के इनकारी हैं वे कहते हैं कि इसी जैसा एक और क़ुरआन बना दीजिये या इसी को बदल दीजिये, तो आप फ़रमा दीजिये कि मेरे लिये यह मुम्किन नहीं कि मैं अपनी तरफ़ से इसको बदल डालूँ।"

एक तरफ़ तो क़ुरआन के ये खुले-खुले मोजिज़े हैं जो इसके कलामे इलाही होने पर शाहिद (गवाह और सुबूत) हैं, दूसरी तरफ़ इसके मज़ामीन, गहरे मआ़नी, तथ्य और इसमें छुपी गहरी इल्मी बातों पर नज़र डालिये तो वह इससे ज़्यादा हैरत में डाल देने वाली चीज़ है।

क़ुरआन नाज़िल होने के शुरू के दौर के चन्द साल तो इस हालत में गुज़रे कि क़ुरआनी तालीमात को खुले तौर पर पेश करना भी मुम्किन न था। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम गोपनीय तौर पर लोगों को उसूले क़ुरआनी की तरफ़ दावत देते थे, फिर बेशुमार रुकावटों और मुख़ालफ़तों के घेरे और मुश्किलों में कुछ ऐलानिया दावत भी शुरू की जाती है, मगर क़ुरआने करीम के प्रस्तावित क़ानून के लागू करने की कोई संभावना न थी।

मदीना की तरफ़ हिजरत के बाद सिर्फ़ दस साल ऐसे मिले जिनको मुसलमानों के लिये आज़ादी का ज़माना कहा जा सकता है, जिसमें क़ुरआनी निज़ाम की मुकम्मल तालीम और तन्फ़ीज़ (लागू करने) की कोशिश और कोई तामीरी काम किया जा सकता था। लेकिन उन दस सालों में भी आप इस्लामी इतिहास पर नज़र डालें तो मालूम होगा कि शुरू के छह साल दुश्मनों के घेरे और मुनाफ़िक़ों और मदीना के यहूदियों की साज़िशों से किसको फ़ुर्सत थी कि कोई तामीरी काम और ऐसा निज़ाम जो सारी दुनिया के निज़ामों से अलग है अ़मली तौर पर नाफ़िज़ कर सके। मुसलमानों के ख़िलाफ़ सब बड़ी-बड़ी लड़ाईयाँ इन्हीं छह साल के अन्दर पेश आयीं- बदर की लड़ाई, उहुद, अहज़ाब वग़ैरह की लड़ाईयाँ सब इसी मुद्दत के अन्दर हुईं। हिजरत के छठे साल दस साल के लिये हुदैबिया का सुलह नामा लिखा गया और सिर्फ़ एक साल उस समझौते पर अ़रब के क़ुरैश क़ायम रहे, उसके बाद उन्होंने उसको भी तोड़ डाला और फिर जंग व जिहाद का सिलसिला शुरू हो गया।

ज़ाहिरी असबाब में सिर्फ़ ये एक दो साल हैं जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इस काम के लिये मिले कि क़ुरआन की दावत को आम कर सकें और इसके निज़ाम को नाफ़िज़ (जारी और लागू) करने की कोशिश कर सकें। इसी अ़रसे में आपने दुनिया के बड़े-बड़े बादशाहों और हाकिमों (शासकों) को पत्र लिखे, क़ुरआन की दावत उनको पहुँचाई, क़ुरआनी निज़ाम को क़ायम करने और फैलाने की कोशिश फ़रमाई और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की आख़िर उम्रे मुबारक तक इस आज़ादी के सिर्फ़ चार साल होते हैं जिनमें फ़त्हे-मक्का का जिहाद भी पेश आया और मक्का मुकर्रमा फ़तह हुआ।

अब इस चार साल की थोड़ी सी मुद्दत को देखिये और क़ुरआन के इस नुफ़ूज़ व असर पर नज़र डालिये कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात के वक़्त तक़रीबन पूरे अ़रब ख़ित्ते पर क़ुरआन की हुकूमत थी, एक तरफ़ रोम की सरहद तक और दूसरी तरफ़ इराक़ तक, तीसरी तरफ़ अ़दन तक पहुँच चुकी थी।

अगर इससे भी नज़र फेर ली जाये कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उम्मी (बिना लिखे-पढ़े) थे, इसको भी नज़र-अन्दाज़ किया जाये कि आपकी क़ौम एक ऐसी क़ौम थी कि जिसने कभी किसी बादशाह की इताअ़त क़ुबूल न की थी, इसको भी भूल जाईये कि सारी दुनिया आपके ख़िलाफ़ थी और अ़रब के मुश्रिक, यहूदी व ईसाई सब के सब मिलकर आपको और क़ुरआन को दुनिया से मिटाने पर तुले हुए थे, बिल्कुल साज़गार फ़िज़ा मान लीजिये तो भी एक नये निज़ाम, नये क़ानून और नये उसूल को पहले तो मुरत्तब करना, क़ानून बनाना फिर उसकी तालीम और समझाना, फिर उसको अ़मली तौर पर जारी और लागू करना और उसके ज़रिये एक पाकबाज़ समाज, और मुल्क भर में अमन व सुकून पैदा करने के लिये कितनी मुद्दत, कितना सरमाया, कितने आदमी दरकार हैं, और क्या वे नबी करीम सल्ल. और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को हासिल थे? आजके निज़ामों (सिस्टमों) को सामने रखकर हिसाब लगाईये तो एक अंधे की भी आँखें खुल जायेंगी कि यह नुफ़ूज़ व असर (यानी इस्लामी क़ानून का ज़िन्दगियों में जारी होना और उसका यह प्रभाव), यह रूहानी तासीर ख़ास अल्लाह की क़ुदरत के अ़लावा किसी तरह ज़ाहिर नहीं हो सकती।

क़ुरआन के मोजिज़ा होने की पूरी वुजूहात और उनकी तफ़सीलात का बयान एक बहुत लम्बी बहस है, उलेमा-ए-उम्मत ने इस पर बीसियों मुस्तक़िल किताबें हर ज़माने में विभिन्न भाषाओं में लिखी और पेश की हैं। सबसे पहले तीसरी सदी हिजरी में जाहिज़ ने 'नज़्मुल-क़ुरआन' के नाम से मुस्तक़िल किताब लिखी। फिर चौथी सदी के शुरू में अबू अ़ब्दुल्लाह वास्ती ने 'ऐजाज़े-क़ुरआन' नाम की एक किताब लिखी। फिर उसी सदी में इब्ने ईसा रब्बानी ने एक मुख़्तसर रिसाला 'ऐजाज़े-क़ुरआन' नाम का लिखा। क़ाज़ी अबू बक्र बाक़लानी ने पाँचवीं सदी के शुरू में 'ऐजाज़ुल-क़ुरआन' के नाम से एक मुफ़स्सल और विस्तृत किताब लिखी। अ़ल्लामा जलालुद्दीन सुयूती रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'इतक़ान' और 'ख़साईसे कुबरा' में, इमाम राज़ी रह. ने 'तफ़सीरे कबीर' में, क़ाज़ी अ़याज़ रह. ने 'शिफ़ा' में बड़ी तफ़सील व विस्तार के साथ इस मज़मून की तफ़सील लिखी। आख़िरी दौर में मुस्तफ़ा सादिक़ राफ़ई मरहूम ने 'ऐजाज़े क़ुरआन' के नाम से और जनाब सैयद रशीद रज़ा मिस्री ने 'अल्वह्युल-मुहम्मदी' के नाम से मुस्तक़िल जामे और

तफ़सीली किताबें लिखीं। उर्दू ज़बान में उस्तादे मोहतरम शैख़ुल-इस्लाम हज़रत मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी रह. ने एक रिसाला 'ऐजाज़ुल-क़ुरआन' के नाम से लिखा।

यह भी क़ुरआन मजीद की ख़ुसूसियात में से है कि इसके एक-एक मसले पर मुकम्मल तफ़सीरों के अलावा मुस्तकिल रिसाले व किताबें इतनी लिखी गई हैं कि इसकी नज़ीर मिलना मुश्किल है।

अर्ज़ करना यह है कि यह मज़मून अपनी पूरी तफ़सील के साथ तो इस जगह बयान नहीं हो सकता, लेकिन जितना बयान हो चुका है वह भी एक इन्साफ़ का मिज़ाज रखने वाले इनसान को इस पर मजबूर कर देने के लिये काफ़ी है कि क़ुरआन को अल्लाह तआ़ला का कलाम और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का अज़ीमुश्शान मोजिज़ा तस्लीम कर ले।

कुछ शुब्हात और उनके जवाबात

कुछ लोगों की तरफ़ से कहा जाता है कि बहुत मुम्किन है कि क़ुरआन के मुक़ाबले में किताबें और मक़ालात (मज़ामीन) लिखे गये हों मगर वे सुरक्षित न रहे हों। लेकिन अगर ज़रा भी इन्साफ़ से काम लिया जाये तो इस एहतिमाल (शुब्हे) की कोई गुन्जाईश नहीं रहती, क्योंकि दुनिया जानती है कि जब से क़ुरआन नाज़िल हुआ पूरी दुनिया में क़ुरआन के मानने वाले कम और इनकार करने (न मानने) वाले ज़्यादा रहे हैं, और यह भी मालूम है कि प्रचार व प्रसार और प्रकाशन के जितने साधन क़ुरआन के न मानने वालों को हासिल रहे हैं क़ुरआन के मानने वालों को अक्सर ज़मानों में उसका कोई क़ाबिले ज़िक्र हिस्सा हासिल नहीं रहा। क़ुरआन इतना बुलन्द-बाँग दावा अपने मुख़ालिफ़ों के सामने करता है, उनको चेलैंज देता है, ग़ैरतें दिलाता है और इस्लाम के मुख़ालिफ़ीन इसके मुक़ाबले में जान, माल और औलाद सब क़ुरबान करने के लिये तैयार होते हैं, अगर उन्होंने क़ुरआन का चेलैंज क़ुबूल करके कोई चीज़ मुक़ाबले के लिये पेश की होती तो कैसे मुम्किन था कि वह सारी दुनिया में शाया न होती, और हर ज़माने में क़ुरआन के न मानने वाले' मुसलमानों के मुक़ाबले में उसको पेश न करते और मुसलमानों की तरफ़ से उस पर जिरह व रद्द में सैंकड़ों किताबें न लिखी गई होतीं।

इस्लाम के पहले दौर में सिर्फ़ एक वाक़िआ़ मुसैलमा कज़्ज़ाब यमामी का पेश आया कि उसने कुछ चन्द बेहयाई के उल्टे-सीधे कलिमात लिखकर यह कहा था कि यह आसमानी वही क़ुरआन के जैसी है, मगर दुनिया जानती है कि उन कलिमात का क्या हश्र हुआ, ख़ुद उसकी क़ौम ने उसके मुँह पर मार दिये। वे कलिमात ऐसे शर्मनाक ग़ैर-मुहज़्ज़ब (असभ्य) थे कि किसी सभ्य समाज में उनको बयान भी नहीं किया जा सकता, और बहरहाल जैसे भी थे वे आज तक किताबों में नक़ल होते चले आये हैं, अगर किसी और शख़्स ने कोई अच्छा कलाम क़ुरआन के मुक़ाबले में पेश किया होता तो कोई वजह न थी कि दुनिया की तारीख़ उसको बिल्कुल ही भुला देती और क़ुरआन के इनकारी उसको हर कीमत पर बाक़ी रखने की कोशिश न करते।

वे लोग जो क़ुरआन के मुक़ाबले पर हर वक़्त सीना आगे किये हुए थे, क़ुरआन के इस चेलैंज के जवाब में उन्होंने तरह-तरह की बातें कहीं जिनको क़ुरआन में नक़ल करके जवाब दिया गया, मगर इसका एक वाक़िआ़ नहीं कि कोई कलाम मुक़ाबले पर पेश करके उसके क़ुरआन के जैसा होने का दावा किया गया हो। एक रूमी ग़ुलाम जो मदीना में लुहार का काम किया करता था और कुछ तौरात

व इन्जील पढ़ा हुआ था, कभी-कभी नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मिलता था। अ़रब के कुछ जाहिलों ने तास्सुब व दुश्मनी से यह मशहूर किया कि हुज़ूर सल्ल. को ये क़ुरआनी मज़ामीन उसने सिखाये हैं। क़ुरआन ने उनका यह एतिराज़ नकल करके ख़ुद जवाब दिया कि जिस शख़्स की तरफ़ सिखाने की निस्बत करते हैं वह तो ख़ुद अ़जमी (ग़ैर-अ़रबी) है, अ़रबी भाषा की बलाग़त (ख़ूबी और कमाल) को क्या जाने, और यह क़ुरआन अ़रबी की इन्तिहाई बलीग़ (उम्दा अन्दाज़ की) किताब है। सूरः नहल की आयत नम्बर 103 देखिये:

لِسَانُ الَّذِی یُلْحِدُوْنَ اِلَیْهِ اَعْجَمِیٌّ وَّھٰذَا لِسَانٌ عَرَبِیٌّ مُّبِیْنٌ٥ (١٠٣:١٦)

"(हम जानते हैं कि ये इस्लाम के मुख़ालिफ़ यह कहते हैं कि आपको यह कुरआन एक आदमी सिखाता है हालाँकि) वे जिस आदमी की तरफ़ निस्बत करते हैं वह अ़जमी है और क़ुरआन एक बलीग़ अ़रबी ज़बान में है।"

कुछ लोगों ने क़ुरआन की चुनौती के जवाब में यह कहा कि:

لَوْنَشَآءُ لَقُلْنَا مِثْلَ ھٰذَا. (٣١:٨)

"अगर हम चाहते तो हम भी क़ुरआन के जैसा कलाम कह देते।"

लेकिन कोई उनसे पूछे कि फिर चाहा क्यों नहीं? क़ुरआन के मुक़ाबले के लिये सारा ऐड़ी चोटी का ज़ोर तो ख़र्च किया, जान व माल की क़ुरबानी दी, अगर तुम्हें इसके जैसा कलाम लिखने या कहने की क़ुदरत थी तो क़ुरआन की इस चुनौती के बाद तुमने इसके जैसा कलाम बनाकर फ़तह का सेहरा अपने सर क्यों न बाँधा?

ख़ुलासा यह है कि क़ुरआन के इस दावे के बाद मुख़ालिफ़ों ने कुछ शरीफ़ाना चुप्पी नहीं साधी बल्कि जो कुछ उनके मुँह पर आया इसके मुक़ाबले में कहते रहे, लेकिन यह फिर भी किसी ने नहीं कहा कि हम में से फ़ुलाँ आदमी ने क़ुरआन जैसा फ़ुलाँ कलाम लिखा है, इसलिये क़ुरआन का यह बेमिस्ल होने का दावा (मआ़ज़ल्लाह) ग़लत है।

कुछ मुख़ालिफ़ों और दुश्मनी में जलने वालों को यह सूझी कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो नुबुव्वत से पहले चन्द रोज़ के लिये मुल्के शाम तशरीफ़ ले गये और रास्ते में बुहैरा राहिब (ईसाई आ़बिद) से मुलाक़ात हुई वह तौरात का माहिर था, उससे आपने उलूम सीखे मगर कोई उनसे पूछे कि एक दिन की एक मुलाक़ात में उससे ये सारे उलूम व मआ़रिफ़, कलाम का यह आला पैमाना और ख़ूबी, बेमिसाल अन्दाज़, अख़्लाक़ी तरबियत, घरेलू निज़ाम, मुल्की निज़ाम कैसे सीख लिये?

आजकल के कुछ एतिराज़ करने वालों ने कहा कि किसी कलाम के जैसा न बनाया जाना इसकी दलील नहीं हो सकती कि वह ख़ुदा का कलाम या मोजिज़ा है, हो सकता है कि एक आला दर्जे का भाषा का माहिर कोई मज़मून या नज़्म ऐसी लिखे कि दूसरे आदमी उसकी नज़ीर न ला सकें। शैख़ सअ़दी शीराज़ी की गुलिस्ताँ, फ़ैज़ी की बिना नुक़्तों की तफ़सीर को आ़म तौर पर बेमिस्ल व बेनज़ीर किताबें कहा जाता है, तो क्या वे भी मोजिज़ा हैं?

लेकिन अगर ज़रा ग़ौर करें तो उन्हें मालूम होगा कि सअ़दी और फ़ैज़ी के पास तालीम व तालीफ़ (इल्म हासिल करने और किताब लिखने) का सामान किस क़द्र मौजूद था, कितने अ़रसे तक

उन्होंने तालीम हासिल की, बरसों मदरसों में पड़े रहे, रातों जागे, मुद्दतों मेहनतें कीं, बड़े-बड़े उलेमा के सामने शागिर्दी की, सालों साल की मेहनतों और दिमाग़ सोज़ियों के नतीजे में अगर मान लो फ़ैज़ी या हरीरी या मुतनब्बी या कोई और अरबी ज़बान में और सअ़दी फ़ारसी में और मिल्टन अंग्रेज़ी में या हूमर यूनानी में या काली दास संस्कृत में ऐसे हुए हैं कि उनका कलाम दूसरों के कलाम से बरतर (और ऊँचा) हो गया तो कोई ताज्जुब की बात नहीं।

मोजिज़े की तारीफ़ तो यह है कि परिचित असबाब (साधनों और माध्यमों) के वास्ते के बग़ैर वजूद में आये। क्या इन लोगों का बाक़ायदा उलूम को हासिल करना, उस्तादों के साथ लम्बा समय गुज़ारना, गहरे अध्ययन, मुद्दतों का अभ्यास उनकी इल्मी महारत के खुले हुए असबाब नहीं हैं? अगर उनके कलाम दूसरों से बेहतर और अलग हों तो इसमें ताज्जुब की क्या बात है? ताज्जुब की बात तो यह है कि जिसने कभी किसी किताब व क़लम को हाथ न लगाया हो, किसी मदरसे व पाठशाला में क़दम न रखा हो, वह ऐसी किताब दुनिया के सामने पेश कर दे कि हज़ारों सअ़दी और लाखों फ़ैज़ी उस पर क़ुरबान हो जाने को अपने लिये गर्व का सामान समझें, और उनको जो कुछ इल्म व हिक्मत हासिल हुए उसको भी आप सल्ल. के फ़ैज़े तालीम का असर क़रार दें, इसके अ़लावा सअ़दी और फ़ैज़ी के कलाम का मिस्ल (नज़ीर) पेश करने की किसी को ज़रूरत भी क्या थी? क्या उन्होंने नुबुव्वत का दावा किया था, और अपने कलाम के बेमिसाल व बेनज़ीर होने को अपना मोजिज़ा कहा था? और दुनिया को इसका चेलैंज दिया था कि हमारे कलाम की कोई मिसाल पेश नहीं की जा सकती, जिसके नतीजे में लोग उसका मुक़ाबला करने और मिसाल पेश करने के लिये मजबूर हो जाते।

फिर क़ुरआन की सिर्फ़ फ़साहत व बलाग़त (भाषाई उम्दगी और ख़ूबी) और बेमिसाल अन्दाज़ व तरतीब ही अनोखी नहीं, लोगों के दिल व दिमाग़ पर इसकी अ़जीब तासीरात इससे ज़्यादा बेमिसाल और हैरत-अंगेज़ हैं, जिनकी वजह से क़ौमों के मिज़ाज बदल गये, इनसानी अख़्लाक़ में एक काया पलट हो गई, अ़रब के बदमिज़ाज, देहाती लोग अख़्लाक़ और इल्म व हिक्मत के उस्ताद माने गये। इन हैरत-अंगेज़ क्रांतिकारी प्रभावों का इक़रार सिर्फ़ मुसलमान नहीं मौजूदा ज़माने के सैंकड़ों ग़ैर-मुस्लिमों ने भी किया है। यूरोप के विद्वानों के मज़ामीन इस बारे में जमा किये जायें तो एक मुस्तकिल किताब हो जाये, और हकीमुल-उम्मत हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इस विषय पर एक मुस्तकिल किताब 'शहादतुल-अक़वाम अ़ला सिदक़िल-इस्लाम' के नाम से तहरीर फ़रमाई है। इस जगह चन्द हवाले नक़ल किये जाते हैं।

डॉक्टर गुस्तावली बान ने अपनी किताब 'तमद्दुने अ़रब' में सफ़ाई से इस हैरत-अंगेज़ी का इक़रार किया, उनके अलफ़ाज़ का तर्जुमा उर्दू में यह है:

> "उस पैग़म्बरे इस्लाम उस नबी-ए-उम्मी की भी एक हैरत-अंगेज़ दास्तान है जिसकी आवाज़ ने एक असभ्य क़ौम को जो उस वक़्त तक किसी राष्ट्रीय हुकूमत के ज़ेरे हुकूमत न आती थी राम किया, और इस दर्जे पर पहुँचा दिया कि उसने दुनिया की बड़ी-बड़ी सल्तनतों को उलट-पलट करके रख दिया, और इस वक़्त भी वही नबी-ए-उम्मी अपनी क़ब्र के अन्दर से ख़ुदा के लाखों बन्दों को इस्लाम के कलिमे पर क़ायम रखे हुए है।"

मिस्टर वडूल जिसने क़ुरआन मजीद का तर्जुमा अपनी ज़बान में किया है, लिखता है कि:

"जितना भी हम इस किताब (यानी क़ुरआन) को उलट-पलट कर देखें, उसी क़द्र पहले मुताले (अध्ययन) में इसकी नापसन्दीदगी नये-नये अन्दाज़ से अपना रंग जमाती है लेकिन फ़ौरन हमें अपने ताबे कर लेती है, हैरान कर देती है और आख़िर में हम से ताज़ीम कराकर छोड़ती है। इसका अन्दाज़े बयान इसके मज़ामीन व उद्देश्यों के एतिबार से पवित्र, आलीशान और धमकी भरा है और जगह-जगह उसके मज़ामीन कलाम की आला दर्जे की ख़ूबी और कमाल तक पहुँच जाते हैं। ग़र्ज़ कि यह किताब हर ज़माने में अपना प्रबल असर दिखाती रहेगी।"

(शहादतुल-अक़वाम पेज 13)

मिस्र के मशहूर लेखक अहमद फ़तही बक ज़ाग़लूल ने सन् 1898 ई. में मिस्टर कॉन्ट हिनरवी की किताब 'अल-इस्लाम' का तर्जुमा अ़रबी में प्रकाशित किया था। असल किताब फ़्रेंच ज़बान में थी उसमें मिस्टर कॉन्ट ने क़ुरआन के मुताल्लिक़ अपने ख़्यालात इन अलफ़ाज़ में ज़ाहिर किये हैं:

"अ़क़्ल हैरान है कि इस क़िस्म का कलाम ऐसे शख़्स की ज़बान से क्योंकर अदा हो जो बिल्कुल उम्मी (बिना पढ़ा-लिखा) था, तमाम पूरब ने इक़रार कर लिया है कि इनसानी नस्ल लफ़्ज़ी व मानवी हर लिहाज़ से इसकी नज़ीर पेश करने से आ़जिज़ है। यह वही कलाम है जिसकी बुलन्द इन्शा-परदाज़ी ने उमर बिन ख़त्ताब को मुत्मईन कर दिया, उनको ख़ुदा का इक़रारी होना पड़ा। यह वही कलाम है कि जब ईसा अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश के मुताल्लिक़ इसके जुमले जाफ़र बिन अबी तालिब ने हब्शा के बादशाह के दरबार में पढ़े तो उसकी आँखों से बेसाख़्ता आँसू जारी हो गये और बिशप चिल्ला उठा कि यह कलाम उसी जगह और स्रोत से निकला है जिससे ईसा अ़लैहिस्सलाम का कलाम निकला था।" (शहादतुल-अक़वाम पेज 14)

इन्साइकिलो पीडिया ऑफ़ बरटानिका जिल्द 16 पेज 599 में है:

"क़ुरआन के विभिन्न हिस्सों के मतालिब एक दूसरे से बिल्कुल अलग और जुदा हैं। बहुत सी आयतें दीनी अख़्लाक़ी ख़्यालात पर मुश्तमिल हैं, क़ुदरत की निशानियों, तारीख़, नबियों के इल्हामात (अल्लाह की तरफ़ से उनको मिली हिदायात) के ज़रिये इसमें ख़ुदा की बड़ाई, मेहरबानी और सदाक़त (सच्चाई) की याद दिलाई गई है। ख़ास तौर से हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) के माध्यम से ख़ुदा को एक और क़ादिरे मुतलक़ ज़ाहिर किया गया है। बुत-परस्ती और मख़्लूक़ परस्ती को बिना किसी लिहाज़ के नाजायज़ क़रार दिया गया है। क़ुरआन के बारे में यह बिल्कुल बजा कहा जाता है कि वह दुनिया भर की मौजूदा किताबों में सबसे ज़्यादा पढ़ा जाता है।"

इंग्लिस्तान के नामचीन इतिहासकार डॉक्टर गिब्बन अपनी मशहूर किताब (रोमी बादशाहत का पतन और ख़ात्मा) की जिल्द 5 बाब 50 में लिखते हैं:

"क़ुरआन के बारे में दरिया-ए-अटलांटिक से लेकर दरिया-ए-गंगा तक ने मान लिया है कि यह पार्लिमेन्ट (क़ानून साज़ इदारे) की रूह है, बुनियादी क़ानून है और सिर्फ़ उसूले मज़हब ही के लिये नहीं बल्कि सज़ा के अहकाम और क़वानीन के लिये भी है जिन पर निज़ाम का मदार है। जिनसे इनसानी दुनिया की ज़िन्दगी वाबस्ता है, जिनको इनसानी ज़िन्दगी को संगठित करने और उसकी व्यवस्था से गहरा ताल्लुक़ है। हक़ीक़त यह है कि हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व

सल्लम) की शरीअ़त सब पर हावी है। यह शरीअ़त ऐसे दानिशमन्दाना उसूल और इस क़िस्म के क़ानूनी अन्दाज़ पर मुरत्तब होती है कि सारे जहान में इसकी नज़ीर नहीं मिल सकती।"

इस जगह यूरोप इस्लामी उलूम व इतिहास के माहिरीन के अक़्वाल और उनके इक़रारी मज़ामीन को जमा करना मक़सद नहीं कि इसकी गुन्जाईश नहीं, नमूने के तौर पर चन्द अक़्वाल नक़ल किये गये हैं जिनसे वाज़ेह होता है कि फ़साहत व बलाग़त (भाषाई ख़ूबियों और साहित्य की बुलन्दियों) के एतिबार से और मक़ासिद व उद्देश्यों के लिहाज़ से और उलूम व मआ़रिफ़ के एतिबार से क़ुरआन के बेनज़ीर व बेमिसाल होने का इक़रार सिर्फ़ मुसलमानों ने नहीं, हर ज़माने के इन्साफ़ पसन्द ग़ैर-मुस्लिमों ने भी किया है।

क़ुरआन ने सारी दुनिया को अपनी मिसाल लाने का चेलैंज दिया था और कोई न ला सका। आज भी हर मुसलमान दुनिया के इल्म व सियासत के विशेषज्ञों को चेलैंज करके कह सकता है कि पूरी दुनिया के इतिहास में एक वाक़िआ़ ऐसा दिखला दो कि एक बड़े से बड़ा माहिर विद्वान खड़ा हो और सारी दुनिया के अ़क़ायद व नज़रियात और रस्मों व आ़दतों के ख़िलाफ़ एक नया निज़ाम पेश करे और उसकी क़ौम भी इतनी जाहिल गंवार हो फिर वह इतने थोड़े समय में उसकी तालीम को भी आ़म कर दे और अ़मली तौर पर उसको लागू करके इस हद पर पहुँचा दे कि उसकी नज़ीर आज के मज़बूत और स्थिर सिस्टमों में मिलना नामुम्किन है।

दुनिया की पहली तारीख़ में अगर इसकी कोई नज़ीर नहीं तो आज तो बड़ी रोशनी, रोशन ख़्याली, बड़ी तेज़ रफ़्तारी का ज़माना है, आज कोई करके दिखला दे। अकेला कोई न कर सके तो अपनी क़ौम को बल्कि दुनिया की सारी क़ौमों को जमा करके इसकी मिसाल पैदा कर दे।

فَإِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا وَلَنْ تَفْعَلُوْا فَاتَّقُوا النَّارَ الَّتِيْ وَقُوْدُهَا النَّاسُ وَالْحِجَارَةُ أُعِدَّتْ لِلْكٰفِرِيْنَ۝

"अगर तुम इसकी मिसाल न ला सके और हरगिज़ न ला सकोगे, तो फिर उस जहन्नम की आग से डरो जिसका ईंधन आदमी और पत्थर हैं, जो मुन्किरों (इनकारियों और न मानने वालों) के लिये तैयार की गई है।"

وَبَشِّرِ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ اَنَّ لَهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۚ كُلَّمَا رُزِقُوْا مِنْهَا مِنْ ثَمَرَةٍ رِّزْقًا ۙ قَالُوْا هٰذَا الَّذِيْ رُزِقْنَا مِنْ قَبْلُ وَاُتُوْا بِهٖ مُتَشَابِهًا ۚ وَلَهُمْ فِيْهَآ اَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ ۙ وَّهُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝

व बश्शिरिल्लज़ी-न आमनू व अ़मिलुस्सालिहाति अन्-न लहुम् जन्नातिन तज्री मिन् तह्तिहल्-अन्हारु, कुल्लमा रुज़िक़ू मिन्हा मिन्	और ख़ुशख़बरी दे उन लोगों को जो ईमान लाये और अच्छे काम किये कि उनके वास्ते बाग़ हैं कि बहती हैं उनके नीचे नहरें, जब मिलेगा उनको वहाँ का कोई फल खाने को

स-म-रतिर्-रिज़्क़न् क़ालू हाज़ल्लज़ी रुज़िक़्ना मिन् क़ब्लु व उतू बिही मु-तशाबिहन्, व लहुम् फ़ीहा अज़्वाजुम् मु-तह्ह-रतुंव्-व हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (25)	तो कहेंगे यह तो वही है जो मिला था हमको इससे पहले, और दिये जायेंगे उनको फल एक सूरत के, और उनके लिये वहाँ औरतें होंगी पाकीज़ा और वे वहीं हमेशा रहेंगे। (25)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और ख़ुशख़बरी सुना दीजिए आप (ऐ पैग़म्बर!) उन लोगों को जो ईमान लाए और काम किए अच्छे, इस बात की कि बेशक उनके वास्ते जन्नतें हैं कि बहती होंगी उनके नीचे से नहरें, जब कभी दिए जाएँगे वे लोग उन जन्नतों में से किसी फल की ग़िज़ा तो हर बार में यही कहेंगे कि यह तो वही है जो हमको मिला था इससे पहले और मिलेगा भी उनको दोनों बार का फल मिलता जुलता। और उनके वास्ते उन जन्नतों में बीवियाँ होंगी साफ़, पाक की हुई, और वे लोग उन जन्नतों में हमेशा को बसने वाले होंगे (हर बार में मिलता-जुलता फल मिलना लुत्फ़ के वास्ते होगा कि दोनों मर्तबा फलों की सूरत एक सी होगी जिस से वे समझेंगे कि यह पहली ही क़िस्म का फल है मगर खाने में मज़ा दूसरा होगा जिससे ख़ुशी व सुरूर बढ़ेगा)।

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

इससे पहली आयत में क़ुरआने करीम को न मानने वालों के अज़ाब का बयान था, इस आयत में मानने वालों के लिये बशारत और ख़ुशख़बरी ज़िक्र की गयी है, जिसमें जन्नत के अजीब व ग़रीब फलों का और जन्नत की हूरों का ज़िक्र है।

मआरिफ़ व मसाईल

जन्नत वालों को अनेक और विभिन्न फल एक ही शक्ल व सूरत में पेश करने से मक़सद भी एक तफ़रीह और लुत्फ़ का सामान बनाना होगा, और कुछ मुफ़स्सिरीन (क़ुरआन के व्याख्यापकों) ने फ़रमाया कि फलों के एक जैसा होने से मुराद यह है कि जन्नत के फल सूरत व शक्ल में तो दुनिया के फलों की तरह होंगे, जब जन्नत वालों को मिलेंगे तो कहेंगे कि ये तो वही फल हैं जो हमें दुनिया में मिला करते थे मगर ज़ायके और लज़्ज़त में दुनिया के फलों से उनको कोई निस्बत न होगी, सिर्फ़ नाम में एक जैसे होंगे।

जन्नत में उन लोगों को पाक-साफ़ बीवियाँ मिलने का मतलब यह है कि वे दुनिया की तमाम ज़ाहिरी और अख़्लाक़ी गन्दगियों से पाक होंगी। पेशाब-पाख़ाने, माहवारी व ज़चगी की गन्दगी और हर ऐसी चीज़ से पाक होंगी जिससे इनसान को नफ़रत होती है। इसी तरह बद-मिज़ाजी, बेवफ़ाई और अन्दर के ऐबों से भी पाक होंगी।

आख़िर में फ़रमाया कि फिर जन्नत की नेमतों को दुनिया की आरज़ी और फ़ानी नेमतों की तरह न समझो जिनके फ़ना हो जाने का या छिन जाने का हर वक़्त ख़तरा लगा रहता है, बल्कि ये लोग उन नेमतों से हमेशा-हमेशा ख़ुश व ख़ुर्रम रहेंगे।

यहाँ मोमिनों को जन्नत की ख़ुशख़बरी देने के लिये ईमान के साथ नेक अ़मल की भी क़ैद लगाई है कि ईमान बग़ैर नेक अ़मल के इनसान को इस ख़ुशख़बरी का हक़दार नहीं बनाता, अगरचे सिर्फ़ ईमान भी जहन्नम में हमेशा रहने से बचाने का सबब है और मोमिन कितना भी गुनाहगार हो किसी न किसी वक़्त में वह जहन्नम से निकाला जायेगा और जन्नत में पहुँचेगा, मगर जहन्नम के अ़ज़ाब से बिल्कुल निजात का बग़ैर नेक अ़मल के कोई मुस्तहिक़ नहीं होता। (रूहुल-बयान, क़ुर्तुबी)

إِنَّ اللّٰهَ لَا يَسْتَحْيٖٓ أَنْ يَّضْرِبَ مَثَلًا مَّا بَعُوْضَةً فَمَا فَوْقَهَا ۚ
فَأَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا فَيَعْلَمُوْنَ أَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّهِمْ ۚ وَأَمَّا الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فَيَقُوْلُوْنَ مَاذَآ أَرَادَ اللّٰهُ بِهٰذَا مَثَلًا ۘ
يُضِلُّ بِهٖ كَثِيْرًا وَّيَهْدِيْ بِهٖ كَثِيْرًا ۚ وَمَا يُضِلُّ بِهٖٓ إِلَّا الْفٰسِقِيْنَ ﴿٢٦﴾ الَّذِيْنَ يَنْقُضُوْنَ عَهْدَ اللّٰهِ مِنْۢ بَعْدِ
مِيْثَاقِهٖ ۠ وَيَقْطَعُوْنَ مَآ أَمَرَ اللّٰهُ بِهٖٓ أَنْ يُّوْصَلَ وَيُفْسِدُوْنَ فِي الْأَرْضِ ۚ أُولٰٓئِكَ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ﴿٢٧﴾

इन्नल्ला-ह ला यस्तह्यी अंय्यज़्रि-ब म-सलम्-मा बअू-ज़तन् फ़मा फ़ौ-क़हा, फ़-अम्मल्लज़ी-न आमनू फ़-यअ्लमू-न अन्नहुल्-हक़्क़ु मिर्रब्बिहिम्, व अम्मल्लज़ी-न क-फ़रू फ़-यक़ूलू-न माज़ा अरादल्लाहु बिहाज़ा म-सलन्। युज़िल्लु बिही कसीरंव्-व यह्दी बिही कसीरन्, व मा युज़िल्लु बिही इल्लल्-फ़ासिक़ीन (26) अल्लज़ी-न यन्क़ुज़ू-न अ़ह्दल्लाहि मिम्बअ्दि मीसाक़िही व यक़्तअू-न मा अ-मरल्लाहु बिही अंय्यूस-ल व युफ़्सिदू-न फ़िल्-अर्ज़ि, उलाइ-क हुमुल्-ख़ासिरून (27)

बेशक अल्लाह शर्माता नहीं इस बात से कि बयान करे कोई मिसाल मच्छर की या उस चीज़ की जो उससे बढ़कर है, सो जो लोग मोमिन हैं वे यक़ीनन जानते हैं कि ये मिसाल ठीक है जो नाज़िल हुई उनके रब की तरफ़ से, और जो काफ़िर हैं सो कहते हैं- क्या मतलब था अल्लाह का इस मिसाल से? गुमराह करता है ख़ुदा-ए-तआ़ला इस मिसाल से बहुतेरों को और हिदायत करता है इससे बहुतेरों को, और गुमराह नहीं करता इस मिसाल से मगर बदकारों को। (26) जो तोड़ते हैं ख़ुदा के मुआ़हदे को मज़बूत करने के बाद और काटते हैं उस चीज़ को जिस को अल्लाह ने फ़रमाया मिलाने को, और फ़साद करते हैं मुल्क में, वही हैं टोटे (घाटे और नुक़सान) वाले। (27)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(कुछ मुख़ालिफ़ों ने क़ुरआन के अल्लाह का कलाम होने पर यह एतिराज़ किया था कि इसमें बहुत ही मामूली, घटिया और ज़लील चीज़ों का ज़िक्र मिसालों के तौर पर किया गया है- जैसे मच्छर, मक्खी वग़ैरह। अगर यह ख़ुदा का कलाम होता तो ऐसी हक़ीर (मामूली और बेहैसियत) चीज़ों का ज़िक्र इसमें न होता। इसका जवाब दिया गया कि) हाँ वाक़ई अल्लाह तआ़ला तो नहीं शर्माते इस बात से कि बयान कर दें कोई मिसाल भी चाहे मच्छर की हो चाहे इससे भी बढ़ी हुई हो (यानी हक़ीर होने में मच्छर से भी बढ़ी हुई हो), सो जो लोग ईमान लाए हुए हैं चाहे कुछ ही हो वे तो यक़ीन करेंगे कि बेशक यह मिसाल तो बहुत ही मौक़े की है उनके रब की तरफ़ से, और रह गये वे लोग जो काफ़िर हैं सो चाहे कुछ भी हो जाए वे यूँ ही कहते रहेंगे- वह कौनसा मतलब होगा जिसका इरादा किया होगा अल्लाह ने इस हक़ीर (मामूली और बेवक़्अ़त) मिसाल से? गुमराह करते हैं अल्लाह तआ़ला उस मिसाल की वजह से बहुतों को और हिदायत करते हैं उसकी वजह से बहुतों को। और गुमराह नहीं करते अल्लाह तआ़ला उस मिसाल से किसी को मगर सिर्फ़ बेहुक्मी (नाफ़रमानी) करने वालों को। जो कि तोड़ते रहते हैं उस मुआ़हदे को जो अल्लाह तआ़ला से कर चुके थे उसकी मज़बूती के बाद (यानी अज़ल का अ़हद जिसमें सब की रूहों ने अल्लाह तआ़ला के रब होने का इक़रार किया था), और ख़त्म करते रहते हैं उन ताल्लुक़ात को कि हुक्म दिया है अल्लाह ने जिनको वाबस्ता रखने "यानी जोड़ने" का (इसमें सारे शरई ताल्लुक़ात दाख़िल हैं चाहे वे ताल्लुक़ात हों जो बन्दे और ख़ुदा के दरमियान हैं या वे जो उसके और क़रीबी लोगों व रिश्तेदारों के दरमियान हैं, और जो आ़म मुसलमानों के दरमियान हैं और जो आ़म इनसानों के दरमियान हैं) और फ़साद "यानी बिगाड़" करते रहते हैं ज़मीन में (कुफ़्र व शिर्क ख़ुद भी फ़साद है और दूसरों पर ज़ुल्म और उनका हक़ न पहचानना जो कुफ़्र की ख़ासियतों में से है, वह भी इस फ़साद में शामिल है)। पस ये लोग पूरे घाटे में पड़ने वाले हैं (कि दुनिया की राहत और आख़िरत की नेमत सब हाथ से दे बैठे, क्योंकि हासिद (दूसरों से जलने वाले) की दुनियावी ज़िन्दगी भी हमेशा बेमज़ा ही रहती है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों का पीछे से जोड़

चन्द आयत पहले क़ुरआने करीम का यह दावा ज़िक्र किया गया है कि क़ुरआने करीम में किसी शक व शुब्हे की गुंजाईश नहीं, और अगर किसी को कोई शक इसके कलामे इलाही होने में हो तो वह इसकी छोटी सी सूरत के जैसी बनाकर दिखला दे। इन आयतों में क़ुरआन के न मानने वालों का एक शुब्हा ज़िक्र करके उसका जवाब दिया गया है। शुब्हा यह था कि क़ुरआने करीम में मक्खी और मच्छर जैसे हक़ीर (मामूली और बेवक़्अ़त) जानवरों का ज़िक्र आया है, यह अल्लाह तआ़ला की और उसके कलाम की शान के ख़िलाफ़ है, अगर यह अल्लाह तआ़ला का कलाम होता तो इसमें ऐसी हक़ीर घिनौनी चीज़ों का ज़िक्र न होता, क्योंकि बड़े लोग ऐसी चीज़ों के ज़िक्र से शर्म व हया महसूस

करते हैं।

जवाब यह दिया गया कि जब किसी हक़ीर व घटिया चीज़ की मिसाल देनी हो तो किसी ऐसी ही हक़ीर चीज़ से मिसाल देना अ़क्ल और अपनी बात को असरदार बनाने का तक़ाज़ा है। इस ग़र्ज़ के लिये किसी हक़ीर घिनौनी चीज़ का ज़िक्र करना शर्म व हया के क़तई ख़िलाफ़ नहीं, इसलिये अल्लाह तआ़ला ऐसी चीज़ों के ज़िक्र से नहीं शर्माते, और यह भी बतला दिया कि ऐसे बेवक़ूफ़ी भरे शुब्हात सिर्फ़ उन लोगों को पैदा हुआ करते हैं जिनके दिलों और दिमाग़ों से उनके कुफ़्र की वजह से समझने बूझने की सलाहियत ख़त्म हो गई हो, ईमान वालों को कभी ऐसे शुब्हात पेश नहीं आते।

इसके बाद इसकी एक और हिक्मत भी बतला दी कि ऐसी मिसालों से लोगों का एक इम्तिहान भी होता है। ग़ौर व फ़िक्र करने वालों के लिये ये मिसालें हिदायत का सामान पैदा करती हैं और बेपरवाई बरतने वालों के लिये और ज़्यादा गुमराही का सबब बनती हैं। इसके बाद यह भी बतला दिया कि क़ुरआने करीम की इन मिसालों से सिर्फ़ ऐसे सरकश (नाफ़रमान और घमंडी) लोग गुमराह होते हैं जो अल्लाह तआ़ला से किये हुए अ़हद को तोड़ते हैं और जिन ताल्लुक़ात व रिश्तों को अल्लाह ने जोड़ने का हुक्म दिया है ये लोग उनको तोड़ते हैं, जिसका नतीजा ज़मीन में फ़साद (बिगाड़ और ख़राबी) फैलाना होता है।

'बऊ़ज़तन् फ़मा फ़ौक़हा' इस लफ़्ज़ के मायने यह हैं कि मच्छर हो या उससे भी ज़्यादा। इस जगह ज़्यादा से मुराद यह है कि घटिया और बेवक़्अ़त व मामूली होने में ज़्यादा हो। (तफ़सीरे मज़हरी)

يُضِلُّ بِهٖ كَثِيْرًا وَّيَهْدِىْ بِهٖ كَثِيْرًا.

क़ुरआन और उसकी मिसालों के ज़रिये बहुत सी मख़्लूक़ को हिदायत करना तो ज़ाहिर है मगर इसके ज़रिये बहुत से लोगों को गुमराह करने का मतलब यह है कि जिस तरह यह क़ुरआन अपने मानने वालों और इस पर अ़मल करने वालों के लिये हिदायत का ज़रिया है इसी तरह इसका इनकार करने वालों और मुख़ालफ़त करने वालों के लिये गुमराही का ज़रिया भी है।

وَمَا يُضِلُّ بِهٖٓ اِلَّا الْفٰسِقِيْنَ○

'फ़ासिक़ीन' फ़िस्क़ के लफ़्ज़ी मायने ख़ुरूज और बाहर निकल जाने के हैं। शरीअ़त की इस्तिलाह में अल्लाह तआ़ला की इताअ़त से निकल जाने को फ़िस्क़ कहते हैं और अल्लाह की इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) से निकल जाना कुफ़्र व इनकार के ज़रिये भी होता है और अ़मली नाफ़रमानी के ज़रिये भी, इसलिये लफ़्ज़ **फ़ासिक़** काफ़िर के लिये भी बोला जाता है। क़ुरआने करीम में ज़्यादातर लफ़्ज़ **फ़ासिक़ीन** काफ़िरों ही के लिये इस्तेमाल हुआ है और गुनाहगार मोमिन को भी फ़ासिक़ कहा जाता है। फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) की इस्तिलाह में उमूमन लफ़्ज़ फ़ासिक़ इसी मायने के लिये इस्तेमाल हुआ है। उनकी इस्तिलाह में फ़ासिक़ को काफ़िर के मुक़ाबले में उसकी एक क़िस्म क़रार दिया गया है। जो शख़्स किसी कबीरा (बड़े) गुनाह का जुर्म करे और फिर उससे तौबा भी न करे, या सग़ीरा (छोटे) गुनाह पर जमा रहे, उसकी आ़दत बना ले, वह फ़ुक़हा की इस्तिलाह में फ़ासिक़ कहलाता है। (तफ़सीरे मज़हरी) और जो शख़्स यह फ़िस्क़ (बुराई) के काम और गुनाह खुलेआम जुर्रत के साथ करता फिरे उसको **फ़ाजिर** कहा जाता है।

मायने आयत के यह हैं कि क़ुरआन की इन मिसालों से बहुत से लोगों को हिदायत होती है और बहुत से लोगों के हिस्से में गुमराही आती है, मगर इन मिसालों से गुमराही सिर्फ़ उन्हीं लोगों का हिस्सा होता है जो फ़ासिक़ यानी अल्लाह की फ़रमाँबरदारी से निकल जाने वाले हैं, और जिनमें कुछ भी ख़ुदा तआ़ला का ख़ौफ़ होता है वे तो हिदायत ही हासिल करते हैं।

اَلَّذِيْنَ يَنْقُضُوْنَ عَهْدَ اللّٰهِ مِنْۢ بَعْدِ مِيْثَاقِهٖ

'अ़हद' मामले की उस सूरत और उस समझौते को कहा जाता है जो दो शख़्सों के बीच तय हो जाये और 'मीसाक़' ऐसे मुआ़हदे और समझौते को कहते हैं जो क़सम के साथ मज़बूत व पक्का किया जाये। इस आयत में पहली आयत के मज़मून की और ज़्यादा वज़ाहत है और क़ुरआन का इनकार करने वालों के बुरे अन्जाम का ज़िक्र है, कि क़ुरआन की उन मिसालों से जिन पर मुश्रिक लोगों ने एतिराज़ किया है सिर्फ़ वही लोग गुमराह होते हैं जो हक़ तआ़ला की इताअ़त व फ़रमाँबरदारी से मुँह मोड़ते हैं, जिसकी दो वजह हैं:

अव्वल यह कि ऐसा करने वाले उस अज़ली मुआ़हदे को तोड़ डालते हैं जो तमाम इनसानों ने अपने रब से बाँधा था, जबकि तमाम इनसानों की इस जहान में पैदाईश से पहले हक़ तआ़ला ने तमाम पैदा होने वाले इनसानों की रूहों को जमा करके एक सवाल फ़रमाया था कि 'अलस्तु बि-रब्बिकुम्' "क्या मैं तुम्हारा रब और परवर्दिगार नहीं हूँ?" इस पर सब ने एक ज़बान होकर कहा था 'बला' "यानी आप रब क्यों न होते।" जिसमें बड़ी ताकीद के साथ इसका इक़रार है कि अल्लाह जल्ल शानुहू हमारे रब और परवर्दिगार हैं। और इसका लाज़िमी तक़ाज़ा यह है कि हम उसकी इताअ़त से बाल भर भी न हटें। इसलिये यह अज़ली अ़हद इनसान और अल्लाह तआ़ला के दरमियान हो चुका, अब दुनिया में पैदा होने के बाद तमाम अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और आसमानी किताबें इसी अ़हद के नवीकरण, याददेहानी और इस पर अ़मल की तफ़सीलात बतलाने के लिये आते हैं। जिसने इस मुआ़हदे (वायदे और इक़रार) को तोड़ डाला उससे क्या उम्मीद की जा सकती है कि वह किसी पैग़म्बर या आसमानी किताब से फ़ायदा उठायेगा?

दूसरी वजह यह है कि उन लोगों ने उन तमाम ताल्लुक़ात को तोड़ डाला है जिनको जोड़े रखने का अल्लाह तआ़ला ने हुक्म दिया था। उन ताल्लुक़ात में वह ताल्लुक़ भी दाख़िल है जो बन्दे और अल्लाह के बीच है और वह ताल्लुक़ भी जो इनसान का अपने माँ-बाप और दूसरे अ़ज़ीज़ों (रिश्तेदारों) से है, और वह ताल्लुक़ भी जो एक इनसान का अपने पड़ोसी और दूसरे साझियों के साथ है, और वह ताल्लुक़ भी जो आ़म मुसलमानों या आ़म इनसानों के साथ है। इन तमाम ताल्लुक़ात को पूरे हक़ों के साथ अदा करने ही का नाम इस्लाम या इस्लामी शरीअ़त है, और इन्हीं में कोताही करने से सारी ज़मीन में फ़साद (ख़राबी और बिगाड़) आता है, इसी लिये इस जुमले के बाद फ़रमाया 'व युफ़्सिदू-न फ़िल्-अर्ज़ि' "यानी ये लोग ज़मीन में फ़साद मचाते हैं।" आयत के आख़िर में उनके बुरे अन्जाम का ज़िक्र फ़रमाया कि ये लोग बड़े घाटे में हैं।

मिसाल में किसी हक़ीर व घटिया या शर्मनाक चीज़ का ज़िक्र करना कोई ऐब नहीं है

'इन्नल्ला-ह ला यस्तह्यी' से साबित हुआ कि मुफ़ीद मज़मून की वज़ाहत और व्याख्या में किसी हक़ीर, घटिया या शर्मनाक चीज़ का ज़िक्र करना न कोई ऐब व गुनाह है और न कहने वाले की शान व रुतबे के ख़िलाफ़ है। क़ुरआन व हदीस और पहले उलेमा के अक़्वाल में बहुत ज़्यादा ऐसी मिसालें भी मज़कूर हैं जो आ़म बोल-चाल में शर्मनाक समझी जाती हैं मगर क़ुरआन व हदीस ने उस उर्फ़ी शर्म व हया की परवाह किये बग़ैर असल मक़सद पर नज़र रखकर उन मिसालों से बचना और परहेज़ गवारा नहीं किया।

'यन्क़ुज़ू-न अ़ह्दल्लाहि' (तोड़ते हैं अ़हद व इक़रार को....) से साबित हुआ कि अ़हद व वायदे और समझौते की ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) सख़्त गुनाह है जिसका नतीजा यह भी हो सकता है कि वह शख़्स तमाम नेकियों से मेहरूम हो जाये।

ताल्लुक़ात के शरई हुक़ूक़ अदा करना वाजिब है उसके ख़िलाफ़ करना बड़ा गुनाह है

وَيَقْطَعُوْنَ مَآ اَمَرَ اللّٰهُ بِهٖٓ اَنْ يُّوْصَلَ

'और उस चीज़ को काटते और तोड़ते हैं जिसको अल्लाह ने हुक्म दिया है जोड़ने का' से मालूम हुआ कि जिन ताल्लुक़ात को क़ायम रखने का इस्लामी शरीअ़त ने हुक्म दिया है उनका क़ायम रखना ज़रूरी और तोड़ना हराम है। ग़ौर किया जाये तो दीन व मज़हब नाम ही उन पाबन्दियों और सीमाओं का है जो अल्लाह और बन्दों के हुक़ूक़ की अदायेगी के लिये मुक़र्रर की गई हैं, और इस आ़लम की बेहतरी व बिगाड़ उन्हीं ताल्लुक़ात को दुरुस्त रखने या तोड़ने पर मौक़ूफ़ है। इसी लिये उन ताल्लुक़ात के तोड़ने को 'युफ़्सिदू-न फ़िल-अरज़ि' के अलफ़ाज़ में दुनिया में फ़साद फैलने की वजह बतलाया है।

اُولٰٓئِكَ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ

'वही हैं घाटे और ख़सारे वाले' में ख़सारे वाला सिर्फ़ उसी शख़्स को क़रार दिया है जो उक्त अहकाम की ख़िलाफ़वर्ज़ी करे। इसमें इशारा है कि असल ख़सारा और नुक़सान आख़िरत ही का है दुनिया का ख़सारा कोई क़ाबिले तवज्जोह चीज़ नहीं।

كَيْفَ تَكْفُرُوْنَ بِاللّٰهِ وَكُنْتُمْ اَمْوَاتًا فَاَحْيَاكُمْ ۚ ثُمَّ يُمِيْتُكُمْ ثُمَّ يُحْيِيْكُمْ ثُمَّ اِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ ۝ هُوَ الَّذِيْ خَلَقَ لَكُمْ مَّا فِي الْاَرْضِ جَمِيْعًا ۚ ثُمَّ اسْتَوٰٓى اِلَى السَّمَآءِ فَسَوّٰىهُنَّ سَبْعَ سَمٰوٰتٍ ۭ وَهُوَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ۝

कै-फ़ तक्फ़ुरू-न बिल्लाहि व कुन्तुम् अम्वातन् फ़-अह्याकुम् सुम्-म युमीतुकुम् सुम्-म युह्यीकुम् सुम्-म इलैहि तुर्जअ़ून (28) हुवल्लज़ी ख़-ल-क़ लकुम् मा फ़िल्अर्ज़ि जमीअ़न्, सुम्मस्तवा इलस्समा-इ फ़-सव्वाहुन्-न सब्-अ समावातिन्, व हु-व बिकुल्लि शैइन् अ़लीम (29) ✿	किस तरह काफ़िर होते हो ख़ुदा-ए-तआ़ला से हालाँकि तुम बेजान थे फिर जिलाया तुमको, फिर मारेगा तुमको, फिर जिलायेगा तुमको फिर उसी की तरफ़ लौटाये जाओगे। (28) वही है जिसने पैदा किया तुम्हारे वास्ते जो कुछ ज़मीन में है सब, फिर क़स्द (तवज्जोह व इरादा) किया आसमान की तरफ़, सो ठीक कर दिया उनको सात आसमान, और ख़ुदा तआ़ला हर चीज़ से ख़बरदार है। (29) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

भला क्योंकर नाशुक्री करते हो अल्लाह की (कि उसके एहसानों को भुला देते हो और ग़ैरों का गुणगान करते हो) हालाँकि (इस पर स्पष्ट दलीलें क़ायम हैं कि सिर्फ़ अल्लाह ही इबादत का हक़दार है, मिसाल के तौर पर यह कि) थे तुम महज़ बेजान (यानी नुत्फ़े में जान पड़ने से पहले) सो तुमको जानदार किया, फिर तुमको मौत देंगे, फिर ज़िन्दा करेंगे (यानी क़ियामत के दिन) फिर उन्हीं के पास ले जाए जाओगे (यानी मैदाने क़ियामत में हिसाब व किताब के लिये हाज़िर किये जाओगे) वह ज़ाते पाक ऐसी है जिसने पैदा किया तुम्हारे फ़ायदे के लिए जो कुछ भी ज़मीन में मौजूद है सब का सब (यह फ़ायदा आ़म है खाने पीने का हो या पहनने और बरतने का या निकाह और रूह को ताज़गी बख़्शने का, इससे मालूम हुआ कि दुनिया की कोई चीज़ ऐसी नहीं जिससे इनसान को फ़ायदा न पहुँचता हो, और इससे यह लाज़िम नहीं आता कि हर चीज़ का इस्तेमाल हलाल हो जैसे हलाक कर देने वाले ज़हर भी इनसान के फ़ायदे से ख़ाली नहीं मगर उनका खा लेना अ़क़्ल वालों के नज़दीक वर्जित है)। फिर तवज्जोह फ़रमाई आसमान की तरफ़ (यानी उसके बनाने और मुकम्मल करने की तरफ़), सो दुरुस्त करके बनाये सात आसमान, और वह तो सब चीज़ों के जानने वाले हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों का पीछे के मज़मून से जोड़

पिछली आयतों में ख़ुदा तआ़ला के वजूद, तौहीद (एक माबूद होने) और रिसालत के स्पष्ट दलाईल और इनकार करने वालों व मुख़ालिफ़ों के बातिल ख़्यालात का रद्द ज़िक्र किया गया था। यहाँ बयान हुई दो आयतों में अल्लाह तआ़ला के एहसानात और इनामात का ज़िक्र करके इस पर ताज्जुब

का इज़हार किया गया है कि इतने एहसानों के होते हुए कैसे ये ज़ालिम कुफ़्र व इनकार में मुब्तला हैं, जिसमें इस पर तंबीह व चेतावनी है कि अगर दलाईल में ग़ौर करने की ज़हमत गवारा नहीं करते तो कम से कम मोहसिन का एहसान मानना, उसकी ताज़ीम व इताअ़त करना तो हर शरीफ़ इनसान का तबई और फ़ितरी तक़ाज़ा है, इसी रास्ते से तुम अल्लाह तआ़ला की इताअ़त (हुक्म मानने और फ़रमाँबरदारी करने) पर आ जाओ।

पहली आयत में उन मख़्सूस नेमतों का ज़िक्र है जो हर इनसान की ज़ात और नफ़्स के अन्दर मौजूद हैं, कि पहले वह बेजान ज़र्रों की सूरत में था, फिर उसमें अल्लाह तआ़ला ने ज़िन्दगी पैदा फ़रमाई। दूसरी आयत में उन आ़म नेमतों का ज़िक्र है जिनसे इनसान और तमाम मख़्लूक़ात फ़ायदा उठाती हैं और वे इनसान की ज़िन्दगी और बक़ा के लिये ज़रूरी हैं, उनमें पहले ज़मीन और उसकी पैदावार का ज़िक्र किया गया, जिससे इनसान का क़रीबी ताल्लुक़ है, फिर आसमानों का ज़िक्र किया गया जिनके साथ ज़मीन की ज़िन्दगी और पैदावार जुड़ी हुई है।

كَيْفَ تَكْفُرُوْنَ بِاللّٰهِ

(कैसे अल्लाह का इनकार करते हो) उन लोगों ने अगरचे बज़ाहिर ख़ुदा का इनकार नहीं किया मगर रसूले ख़ुदा के इनकार को ख़ुदा ही का इनकार क़रार देकर ऐसा ख़िताब किया गया है।

كُنْتُمْ اَمْوَاتًا فَاَحْيَاكُمْ

(तुम बेजान थे फिर तुमको ज़िन्दगी दी) अमवात, मय्यित की जमा (बहुवचन) है, मुर्दा और बेजान चीज़ को कहा जाता है। मुराद यह है कि इनसान अपनी असल हक़ीक़त पर ग़ौर करे तो मालूम होगा कि उसके वजूद की शुरूआ़त वे बेजान ज़र्रे हैं जो कुछ जमी हुई चीज़ों की शक्ल में, कुछ बहने वाली चीज़ों में, कुछ ग़िज़ाओं की सूरत में तमाम दुनिया में फैले हुए थे। अल्लाह तआ़ला ने उन बेजान ज़र्रों को कहाँ-कहाँ से जमा फ़रमाया, फिर उनमें जान डाली, उनको ज़िन्दा इनसान बना दिया यह इसकी पैदाईश के शुरूआ़ती दौर का ज़िक्र है।

ثُمَّ يُمِيْتُكُمْ ثُمَّ يُحْيِيْكُمْ

"यानी जिसने पहली मर्तबा तुम्हारे बेजान ज़र्रों को जमा करके उनमें जान पैदा की, वह इस आ़लम में तुम्हारी उम्र का निर्धारित वक़्त पूरा होने के बाद फिर तुम्हें मौत देगा और फिर एक मुद्दत के बाद क़ियामत में उसी तरह तुम्हारे जिस्म के बेजान और बिखरे हुए ज़र्रों को जमा करके तुम्हें ज़िन्दा करेगा।" इस तरह एक मौत यानी बेजान होना तुम्हारी शुरूआ़त में था फिर अल्लाह तआ़ला ने तुम्हें ज़िन्दा किया, दूसरी मौत दुनिया की उम्र पूरी होने के वक़्त और दूसरी ज़िन्दगी क़ियामत के रोज़ होगी।

पहली मौत और ज़िन्दगी के बीच चूँकि कोई फ़ासला न था इसलिये इसमें हर्फ़ 'फ़' का इस्तेमाल किया गया 'फ़-अह्याकुम' और चूँकि दुनिया की ज़िन्दगी और मौत के बीच और इसी तरह उस मौत और क़ियामत की ज़िन्दगी के बीच अच्छा-ख़ासा फ़ासला था इसलिये वहाँ लफ़्ज़ 'सुम्-म' इख़्तियार किया गया 'सुम्-म युमीतुकुम् सुम्-म युह्यीकुम्' क्योंकि लफ़्ज़ 'सुम्-म' मुद्दत के लम्बा होने के लिये इस्तेमाल होता है।

ثُمَّ إِلَيْهِ تُرْجَعُونَ○

"यानी फिर तुम उसी पाक ज़ात की तरफ़ लौटकर जाओगे।" इससे मुराद हश्र व नश्र (दोबारा ज़िन्दा होने, हिसाब-किताब) और क़ियामत का वक़्त है।

इस आयत में अल्लाह तआ़ला ने अपने उस इनाम व एहसान का ज़िक्र किया है जो हर इनसान की अपनी ज़ात से मुताल्लिक़ है और जो सारे इनामात व एहसानात का मदार है यानी ज़िन्दगी। दुनिया व आख़िरत और ज़मीन व आसमान की जितनी नेमतें इनसान को हासिल हैं वे सब इसी ज़िन्दगी पर मौक़ूफ़ (टिकी हुई) हैं। ज़िन्दगी न हो तो किसी नेमत से फ़ायदा नहीं उठा सकता। ज़िन्दगी का नेमत होना तो ज़ाहिर है मगर इस आयत में मौत को भी नेमतों की सूची में शुमार इसलिये किया गया है कि यह दुनिया की मौत दरवाज़ा है उस हमेशा की ज़िन्दगी का जिसके बाद मौत नहीं, इस लिहाज़ से यह मौत भी एक नेमत है।

मसलाः इस आयत से साबित हुआ कि जो शख़्स रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की रिसालत का इनकारी (न मानने वाला) हो या क़ुरआन के अल्लाह का कलाम होने का मुन्किर हो वह अगरचे बज़ाहिर ख़ुदा के वजूद व अ़ज़मत का इनकार न करे मगर अल्लाह तआ़ला के नज़दीक वह अल्लाह के इनकारियों की सूची में शुमार है।

बर्ज़ख़ की ज़िन्दगी

इस आयत में दुनिया की ज़िन्दगी और मौत के बाद सिर्फ़ एक ज़िन्दगी का ज़िक्र है जो क़ियामत के दिन होने वाली है, क़ब्र की ज़िन्दगी जिसके ज़रिये क़ब्र का सवाल व जवाब और क़ब्र में सवाब व अ़ज़ाब होना क़ुरआने करीम की अनेक आयतों और हदीस की निरन्तर रिवायतों से साबित है उसका ज़िक्र नहीं।

वजह यह है कि यह बर्ज़ख़ी (मरने के बाद और क़ियामत से पहले की) ज़िन्दगी इस तरह की ज़िन्दगी नहीं है जो इनसान को दुनिया में हासिल है, या आख़िरत में फिर होगी, बल्कि एक बीच की सूरत सपने के जैसी ज़िन्दगी की तरह है। उसको दुनिया की ज़िन्दगी का तकमिला (पूरक) भी कहा जा सकता है और आख़िरत की ज़िन्दगी का मुक़द्दिमा (शुरूआत) भी। इसलिये यह कोई मुस्तक़िल ज़िन्दगी नहीं जिसका अलग से ज़िक्र किया जाये।

هُوَ الَّذِي خَلَقَ لَكُمْ مَّا فِي الْأَرْضِ جَمِيعًا

"अल्लाह वह है जिसने पैदा किया तुम्हारे लिये जो कुछ ज़मीन में है सब का सब" यह उस आ़म नेमत का ज़िक्र है जिसमें तमाम इनसान बल्कि हैवानात वग़ैरह भी शरीक हैं, और एक लफ़्ज़ में उन तमाम नेमतों का मुख़्तसर ज़िक्र आ गया जो दुनिया में किसी इनसान को हासिल हुईं या हो सकती हैं, क्योंकि इनसान की ग़िज़ा, लिबास, मकान, दवा और राहत के सब सामान ज़मीन ही की पैदावार हैं।

ثُمَّ اسْتَوَىٰ إِلَى السَّمَاءِ فَسَوَّاهُنَّ سَبْعَ سَمَاوَاتٍ وَهُوَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمٌ○

'इस्तिवा' के लफ़्ज़ी मायने सीधा होने के हैं। मुराद यह है कि ज़मीन की पैदाईश के बाद अल्लाह तआ़ला ने आसमानों के बनाने का डायरेक्ट इरादा फ़रमाया जिसमें कोई बाधा और रुकावट न हो

सके, यहाँ तक कि सात आसमानों की तख़्लीक़ (पैदाईश) मुकम्मल फ़रमा दी और वह हर चीज़ का जानने वाला है, इसलिये कायनात का बनाना उसके लिये कोई मुश्किल काम नहीं।

दुनिया की हर चीज़ लाभदायक है कोई चीज़ बेकार नहीं

इस आयत में ज़मीन की तमाम चीज़ों को इनसान के लिये पैदा फ़रमाने का बयान हुआ है। इस से एक बात तो यह मालूम हुई कि दुनिया की कोई चीज़ ऐसी नहीं जिससे इनसान को किसी न किसी हैसियत से प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से फ़ायदा न पहुँचता हो, चाहे यह फ़ायदा दुनिया में इस्तेमाल करने का हो या आख़िरत के लिये सीख व नसीहत हासिल करने का। बहुत सी चीज़ों का फ़ायदा तो इनसान महसूस करता है, उसकी ग़िज़ा या दवा इस्तेमाल में डायरेक्ट आती हैं और बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं कि इनसान को उनसे फ़ायदा पहुँचता है मगर उसको ख़बर भी नहीं होती, यहाँ तक कि जो चीज़ें इनसान के लिये नुक़सानदेह समझी जाती हैं जैसे ज़हरीली चीज़ें, ज़हरीले जानवर वग़ैरह ग़ौर करें तो वे किसी न किसी हैसियत से इनसान के लिये नफ़ा-बख़्श (लाभदायक) भी होती हैं। जो चीज़ें इनसान के लिये एक तरह से हराम हैं दूसरी किसी तरह और हैसियत से उनका नफ़ा भी इनसान को पहुँचता है:

नहीं है चीज़ निकम्मी कोई ज़माने में   कोई बुरा नहीं क़ुदरत के कारख़ाने में

एक बुज़ुर्ग इब्ने अ़ता ने इस आयत के तहत फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने सारी कायनात को तुम्हारे वास्ते इसलिये पैदा फ़रमाया कि सारी कायनात तुम्हारी हो और तुम अल्लाह के लिये हो। इसलिये अ़क़्लमन्द का काम यह है कि जो चीज़ उसी के लिये पैदा हुई है वह तो उसको मिलेगी उसकी फ़िक्र में लगकर उस ज़ात से ग़ाफ़िल न हो जिसके लिये यह पैदा हुआ है। (बहरे मुहीत)

दुनियावी चीज़ों में असल हुक्म उनका जायज़ व हलाल होना है या हराम होना

इस आयत से कुछ उलेमा ने इस पर इस्तिदलाल किया (दलील पकड़ी) है कि दुनिया की तमाम चीज़ों में असल यह है कि वे इनसान के लिये हलाल व जायज़ हों, क्योंकि वे इसी के लिये पैदा की गई हैं सिवाय उन चीज़ों के जिनको शरीअ़त ने हराम क़रार दे दिया, इसलिये जब तक किसी चीज़ की हुर्मत (हराम होना) क़ुरआन व हदीस से साबित न हो उसको हलाल समझा जायेगा। इसके विपरीत कुछ उलेमा ने यह क़रार दिया कि इनसान के फ़ायदे के लिये किसी चीज़ के पैदा होने से उसका हलाल होना साबित नहीं होता, इसलिये असल चीज़ में हुर्मत (हराम होना) है जब तक क़ुरआन व हदीस की किसी दलील से जायज़ होना साबित न हो हर चीज़ हराम समझी जायेगी। कुछ हज़रात ने इस मामले में ख़ामोशी इख़्तियार की है।

तफ़सीर 'बहरे मुहीत' में इब्ने हय्यान रह. ने फ़रमाया कि सही यह है कि इस आयत में उक्त अक़वाल में से किसी के लिये हुज्जत (दलील) नहीं, क्योंकि 'ख़-ल-क़ लकुम्' में हर्फ़ लाम सबब होने को बतलाने के लिये आया है कि तुम्हारे सबब से ये चीज़ें पैदा की गई हैं, इससे न इनसान के लिये इन चीज़ों के हलाल होने पर कोई दलील क़ायम हो सकती है न हराम होने पर, बल्कि हलाल व हराम के अहकाम अलग से क़ुरआन व हदीस में बयान हुए हैं, उन्हीं की पैरवी लाज़िम है।

इस आयत में ज़मीन की पैदाईश पहले और आसमानों की पैदाईश बाद में होना 'सुम्-म' (फिर) के लफ़्ज़ से बयान किया गया है और यही सही है। और सूरः वन्नाज़िआत में जो यह इरशाद है:

وَالْاَرْضَ بَعْدَ ذٰلِكَ دَحٰهَا (۷۹:۳۰)

"यानी ज़मीन को आसमानों के पैदा करने के बाद बिछाया।" इससे यह लाज़िम नहीं आता कि ज़मीन की पैदाईश आसमानों के बाद हुई हो, बल्कि इसका मतलब यह है कि ज़मीन को ठीक-ठाक करने और उसमें से पैदावार निकालने वग़ैरह के तफ़सीली काम आसमानों की पैदाईश के बाद हुए, अगरचे असल ज़मीन की तख़्लीक़ (पैदाईश और बनाना) आसमानों से पहले हो चुकी थी।

(बहरे मुहीत वग़ैरह)

इस आयत से आसमानों की संख्या सात होना साबित है। इससे मालूम हुआ कि इल्मे हैयत (आसमान और सितारों वग़ैरह का इल्म रखने का दावा करने) वालों का आसमानों की तादाद नौ बतलाना ग़लत, बेदलील और सिर्फ़ ख़्यालात पर आधारित है।

وَاِذْ قَالَ رَبُّكَ لِلْمَلٰٓئِكَةِ اِنِّيْ جَاعِلٌ فِي الْاَرْضِ خَلِيْفَةً ۗ قَالُوْٓا اَتَجْعَلُ فِيْهَا مَنْ يُّفْسِدُ فِيْهَا وَيَسْفِكُ الدِّمَآءَ ۚ وَنَحْنُ نُسَبِّحُ بِحَمْدِكَ وَنُقَدِّسُ لَكَ ۗ قَالَ اِنِّيْٓ اَعْلَمُ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ۝ وَعَلَّمَ اٰدَمَ الْاَسْمَآءَ كُلَّهَا ثُمَّ عَرَضَهُمْ عَلَى الْمَلٰٓئِكَةِ فَقَالَ اَنْۢبِـُٔوْنِيْ بِاَسْمَآءِ هٰٓؤُلَآءِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ۝ قَالُوْا سُبْحٰنَكَ لَا عِلْمَ لَنَآ اِلَّا مَا عَلَّمْتَنَا ۭ اِنَّكَ اَنْتَ الْعَلِيْمُ الْحَكِيْمُ ۝ قَالَ يٰٓاٰدَمُ اَنْۢبِئْھُمْ بِاَسْمَآئِهِمْ ۚ فَلَمَّآ اَنْۢبَاَھُمْ بِاَسْمَآئِهِمْ ۙ قَالَ اَلَمْ اَقُلْ لَّكُمْ اِنِّيْٓ اَعْلَمُ غَيْبَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۙ وَاَعْلَمُ مَا تُبْدُوْنَ وَمَا كُنْتُمْ تَكْتُمُوْنَ ۝

व इज़् क़ा-ल रब्बु-क लिल्मलाइ-कति इन्नी जाअिलुन् फ़िल्अर्ज़ि ख़ली-फ़तन्, क़ालू अ-तज्अलु फ़ीहा मंय्युफ़्सिदु फ़ीहा व यस्फ़िकुद्दिमा-अ व नह्नु नुसब्बिहु बिहम्दि-क व नुक़द्दिसु ल-क, क़ा-ल इन्नी अअ्लमु	और जब कहा तेरे रब ने फ़रिश्तों को कि मैं बनाने वाला हूँ ज़मीन में एक नायब, कहा फ़रिश्तों ने क्या क़ायम करता है तू ज़मीन में उसको जो फ़साद करे उसमें और ख़ून बहाये? और हम पढ़ते रहते हैं तेरी ख़ूबियाँ और याद करते हैं तेरी पाक ज़ात को। फ़रमाया बेशक मुझको मालूम है जो

मा ला तअ्लमून (30) व अ़ल्ल-म आ-दमल्-अस्मा-अ कुल्लहा सुम्-म अ़-र-ज़हुम् अ़लल्-मलाइ-कति फ़क़ा-ल अम्बिऊनी बि-अस्मा-इ हाउला-इ इन कुन्तुम् सादिक़ीन (31) क़ालू सुब्हा-न-क ला अ़िल्-म लना इल्ला मा अ़ल्लम्तना इन्न-क अन्तल्-अ़लीमुल्-हकीम (32) क़ा-ल या आदमु अम्बिअ्हुम् बिअस्माइहिम् फ़-लम्मा अम्ब-अहुम् बिअस्माइहिम् क़ा-ल अलम् अक़ुल्लकुम् इन्नी अअ्लमु ग़ैबस्समावाति वल्अर्ज़ि व अअ्लमु मा तुब्दू-न व मा कुन्तुम् तक्तुमून (33)	तुम नहीं जानते। (30) और सिखला दिये अल्लाह ने आदम (अ़लैहिस्सलाम) को नाम सब चीज़ों के, फिर सामने किया उन सब चीज़ों को फ़रिश्तों के, फिर फ़रमाया बताओ मुझको नाम इनके अगर तुम सच्चे हो। (31) बोले पाक है तू, हमको मालूम नहीं मगर जितना तूने हमको सिखलाया, बेशक तू ही है असल जानने वाला हिक्मत वाला। (32) फ़रमाया ऐ आदम! बता दे फ़रिश्तों को इन चीज़ों के नाम, फिर जब बता दिये उसने उनके नाम, फ़रमाया क्या न कहा था मैंने तुमको कि मैं ख़ूब जानता हूँ छुपी हुई चीज़ें आसमानों की और ज़मीन की और जानता हूँ जो तुम ज़ाहिर करते हो और जो छुपाते हो। (33)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जिस वक़्त इरशाद फ़रमाया आपके रब ने फ़रिश्तों से (ताकि वे अपनी राय ज़ाहिर करें जिसमें हिक्मत व मस्लेहत थी, मश्विरे की ज़रूरत से तो हक़ तआ़ला बाला व बरतर हैं। ग़र्ज़ कि अल्लाह तआ़ला ने फ़रिश्तों से फ़रमाया) कि ज़रूर मैं बनाऊँगा ज़मीन में एक नायब (यानी वह मेरा नायब होगा कि अपने शरई अहकाम के जारी और लागू करने की ख़िदमत उसके सुपुर्द कर दूँगा)। फ़रिश्ते कहने लगे- क्या आप पैदा करेंगे ज़मीन में ऐसे लोगों को जो फ़साद करेंगे और ख़ून बहाएँगे? और हम बराबर तस्बीह करते रहते हैं बिहम्दिल्लाह, और पाकी बयान करते रहते हैं आपकी। (फ़रिश्तों की यह गुज़ारिश न एतिराज़ के तौर पर थी और न अपना हक़ जताने के लिये, बल्कि फ़रिश्तों को किसी तरह यह मालूम हो गया था कि जो नई मख़्लूक़ ज़मीन से बनाई जायेगी उनमें नेक व बद हर तरह के लोग होंगे। कुछ लोग इस नयाबत के काम को और ज़्यादा ख़राब करेंगे, इसलिये आ़जिज़ी के साथ अ़र्ज़ किया कि हम सब के सब हर ख़िदमत के लिये हाज़िर हैं और फ़रिश्तों के गिरोह में कोई गुनाह करने वाला भी नहीं, इसलिये कोई नया अ़मला बढ़ाने और नई मख़्लूक़ पैदा करने की ज़रूरत ही क्या है, ख़ुसूसन जबकि उस नई मख़्लूक़ में यह भी शंका है कि वे आपकी मर्ज़ी

के ख़िलाफ़ काम करेंगे जिससे आप नाख़ुश हों, हम हर ख़िदमत के लिये हाज़िर हैं और हमारी ख़िदमत आपकी मर्ज़ी के मुताबिक़ ही होगी)। हक़ तआ़ला ने इरशाद फ़रमाया- मैं जानता हूँ उस बात को जिसको तुम नहीं जानते (यानी जो चीज़ तुम्हारी नज़र में इनसानों की पैदाईश से रुकावट है कि उनमें कुछ फ़साद भी फैलायेंगे, वही चीज़ दर हक़ीक़त उनकी पैदाईश का असली सबब है, क्योंकि अहकाम को जारी करना और इन्तिज़ाम तो तभी वजूद में आ सकता है जब कोई सही रास्ते से हटने वाला भी हो, यह मक़सूद तुम फ़रमाँबरदारों के जमा होने से पूरा नहीं हो सकता, और एतिदाल (सही रास्ते) से हटने वाली एक मख़्लूक़ जिन्नात पहले से मौजूद थी (उससे यह काम क्यों न लिया गया इसकी वजह यह है कि इस काम के लिये मुनासिब और फ़िट वह मख़्लूक़ हो सकती है जिनमें बुराई और बिगाड़ का माद्दा मौजूद हो मगर ग़ालिब न हो, जिन्नात में यह माद्दा ग़ालिब था, इसलिये आदम को पैदा करने की तजवीज़ फ़रमाई।

आगे इसी हिक्मते इलाही की और वज़ाहत इस तरह की गई कि अल्लाह का नायब होने के लिये एक ख़ास इल्म की ज़रूरत है, वह इल्म फ़रिश्तों की इस्तेदाद (क़ाबलियत व सलाहियत) से बाहर है, इसलिये फ़रमाया कि) और इल्म दे दिया अल्लाह तआ़ला ने (हज़रत) आदम (अ़लैहिस्सलाम) को (उनको पैदा करके) तमाम चीज़ों के नामों का (यानी सब चीज़ों के नाम और उनकी विशेषताओं सब का इल्म आदम अ़लैहिस्सलाम को दे दिया गया) फिर वे चीज़ें फ़रिश्तों के सामने कर दीं, फिर फ़रमाया कि बतलाओ मुझको नाम इन चीज़ों के (इनके आसार व ख़ासियतों के साथ) अगर तुम सच्चे हो (यानी अपने इस क़ौल में सच्चे हो कि हम ज़मीनी ख़िलाफ़त का काम अच्छी तरह अन्जाम दे सकेंगे)। फ़रिश्तों ने अ़र्ज़ किया कि आप तो पाक हैं (इस इल्ज़ाम से कि आदम अ़लैहिस्सलाम पर इस इल्म को ज़ाहिर फ़रमा दिया और हम से पोशीदा रखा। क्योंकि किसी आयत या रिवायत से यह साबित नहीं है कि आदम अ़लैहिस्सलाम को नामों के इल्म की तालीम फ़रिश्तों से अलग करके दी गई, इससे ज़ाहिर यह है कि तालीम तो सब के सामने बराबर दी गई मगर आदम अ़लैहिस्सलाम की फ़ितरत में उस इल्म के हासिल कर लेने की सलाहियत थी उन्होंने हासिल कर लिया, फ़रिश्तों की तबीयत उसको बरदाश्त करने वाली न थी उनको यह इल्म हासिल न हुआ) हमको कोई इल्म नहीं, मगर वही जो कुछ आपने हमको इल्म दिया। बेशक आप बड़े इल्म वाले हैं, बड़े हिक्मत वाले हैं (कि जिस क़द्र जिसके लिए मस्लेहत जाना उसी क़द्र समझ व इल्म अ़ता फ़रमाया।

इससे फ़रिश्तों का यह एतिराफ़ (इक़रार) तो साबित हो गया कि वे उस काम से आ़जिज़ हैं जो नायब के सुपुर्द करना है। आगे हक़ तआ़ला को यह मन्ज़ूर हुआ कि आदम अ़लैहिस्सलाम में उस इल्म की मुनासबत को फ़रिश्तों के सामने ज़ाहिर फ़रमा दें इसलिये) हक़ तआ़ला ने इरशाद फ़रमाया कि ऐ आदम! इनको इन चीज़ों के नाम बतला दो (यानी मय हालात व विशेषताओं के, जब आदम अ़लैहिस्सलाम ने यह सब फ़रिश्तों के सामने बतला दिया तो फ़रिश्ते इतना समझ गये कि आदम अ़लैहिस्सलाम इस इल्म के माहिर हो गये हैं)। सो जब बतला दिए उनको आदम ने उन चीज़ों के नाम तो हक़ तआ़ला ने फ़रमाया- (देखो) मैं तुमसे कहता न था कि बेशक मैं जानता हूँ तमाम छुपी चीज़ें आसमानों और ज़मीन की, और जानता हूँ जिस बात को तुम ज़ाहिर कर देते हो और जिसको दिल में रखते हो।

मआरिफ़ व मसाईल

इन आयतों का पिछली आयतों से ताल्लुक़

पिछली आयतों में अल्लाह जल्ल शानुहू की ख़ास व आम नेमतों का ज़िक्र करके इनसान को नाशुक्री और नाफ़रमानी से बचने की हिदायत की गई। इस आयत से रुकूअ़ के आख़िर तक दस आयतों में आदम अ़लैहिस्सलाम का क़िस्सा भी इसी सिलसिले में ज़िक्र फ़रमाया है, क्योंकि नेमत दो क़िस्म की होती है- एक ज़ाहिरी तौर पर दिखाई देने वाली जैसे खाना पीना, रुपया पैसा, मकान जायदाद। दूसरी मानवी जैसे इज़्ज़त व आबरू, ख़ुशी, इल्म। पिछली आयतों में महसूस और ज़ाहिरी नेमतों का ज़िक्र था और इन ग्यारह आयतों में मानवी नेमतों का ज़िक्र है कि हमने तुम्हारे बाप आदम अ़लैहिस्सलाम को इल्म की दौलत दी और फ़रिश्तों को उनके सामने झुकाकर उनको इज़्ज़त दी और तुमको उनकी औलाद में होने का सम्मान अ़ता किया।

आयत के मज़मून का ख़ुलासा यह है कि अल्लाह जल्ल शानुहू ने जब आदम अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश और दुनिया में उनकी ख़िलाफ़त क़ायम करने का इरादा किया तो फ़रिश्तों से बज़ाहिर उनका इम्तिहान लेने के लिये इस इरादे का ज़िक्र फ़रमाया, जिसमें इशारा यह था कि वे इस मामले में अपनी राय का इज़हार करें। फ़रिश्तों ने राय यह पेश की कि इनसानों में तो ऐसे लोग भी होंगे जो फ़साद करने और ख़ून बहाने का काम करेंगे, उनको ज़मीन की ख़िलाफ़त और इन्तिज़ाम सुपुर्द करना समझ में नहीं आता, इस काम के लिये तो फ़रिश्ते ज़्यादा मुनासिब मालूम होते हैं कि नेकी उनकी फ़ितरत है, बुराई का होना उनसे मुम्किन नहीं, वे मुकम्मल इताअ़त गुज़ार हैं, दुनिया के इन्तिज़ामात भी वे सही तौर पर कर सकेंगे। अल्लाह तआ़ला ने उनकी राय के ग़लत होने का इज़हार पहले एक हाकिमाना अन्दाज़ से किया कि ज़मीनी ख़िलाफ़त की हक़ीक़त और उसकी ज़रूरतों से तुम वाक़िफ़ नहीं, उसको मैं ही मुकम्मल तौर पर जानता हूँ।

फिर दूसरा जवाब हकीमाना अन्दाज़ से आदम अ़लैहिस्सलाम की फ़रिश्तों पर वरीयता और इल्मी मक़ाम में आदम अ़लैहिस्सलाम के उनसे बरतर होने का ज़िक्र करके दिया गया और बतलाया गया कि ज़मीन की ख़िलाफ़त के लिये ज़मीनी मख़्लूक़ात के नाम और उनकी ख़ासियतों व आसार का जानना ज़रूरी है, और फ़रिश्तों की इस्तेदाद (सलाहियत व क़ाबलियत) उसको नहीं उठा सकती।

आदम अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश के बारे में गुफ़्तगू फ़रिश्तों से किस मस्लेहत पर आधारित थी?

यहाँ यह बात ग़ौर तलब है कि अल्लाह जल्ल व अ़ला शानुहू का फ़रिश्तों की मज्लिस में इस वाक़िए का इज़हार किस हैसियत से था? क्या उनसे मश्विरा लेना मक़सूद था या केवल उनको सूचना देना पेशे नज़र था? या फ़रिश्तों की ज़बान से उनकी राय का इज़हार कराना इसका मन्शा था?

सो यह बात ज़ाहिर है कि मश्विरे की ज़रूरत तो वहाँ पेश आती है जहाँ मसले के सब पहलू

किसी पर रोशन न हों, और अपने इल्म व समझ पर मुकम्मल इत्मीनान न हो, इसलिये दूसरे अ़क़्लमन्दों व समझदारों से मश्विरा किया जाता है, या ऐसी सूरत में जहाँ हुक़ूक़ दूसरों के भी बराबर के हों तो उनकी राय लेने के लिये मश्विरा होता है, जैसे दुनिया की आ़म कमेटियों में यह साफ़ तौर पर दिखाई देता है। और यह ज़ाहिर है कि यहाँ दोनों सूरतें नहीं हो सकतीं। अल्लाह सुब्हानहू व तआ़ला ख़ालिके कायनात हैं, ज़र्रे-ज़र्रे का इल्म रखते हैं और ज़ाहिर व बातिन हर चीज़ उनके इल्म व नज़र के सामने बराबर है, उनको क्या ज़रूरत कि किसी से मश्विरा लें?

इसी तरह यहाँ यह भी नहीं कि कोई संसदीय हुकूमत है जिसमें तमाम अरकान के बराबर के हुक़ूक़ हैं और सबसे मश्विरा लेना ज़रूरी है, क्योंकि अल्लाह तआ़ला ही सब के ख़ालिक़ और मालिक हैं, फ़रिश्ते हों या जिन्न व इनसान सब उनकी मख़्लूक़ और मिल्कियत में हैं, किसी को हक़ नहीं कि उनके किसी फ़ेल के मुताल्लिक़ सवाल भी कर सके कि आपने यह क्यों किया और फ़ुलाँ काम क्यों नहीं किया। क़ुरआन में फ़रमाया गयाः

لَا يُسْـَٔلُ عَمَّا يَفْعَلُ وَهُمْ يُسْـَٔلُوْنَ٥ (٢٣:٢١)

(अल्लाह तआ़ला से उसके किसी फ़ेल के बारे में सवाल नहीं किया जा सकता और सबसे उनके आमाल का सवाल किया जायेगा।)

बात यही है कि दर हक़ीक़त यहाँ मश्विरा लेना मक़सूद नहीं और न इसकी ज़रूरत है, मगर सूरत मश्विरे की बनाई गई, जिसमें मख़्लूक़ को मश्विरे की सुन्नत की तालीम का फ़ायदा हो सकता है, जैसे रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से मश्विरा लेने की हिदायत क़ुरआन में फ़रमाई गई, हालाँकि आप सल्ल. तो वही वाले हैं, तमाम मामलात और उनके तमाम पहलू आपको वही के ज़रिये बतलाये जा सकते थे, मगर आपके ज़रिये मश्विरे की सुन्नत जारी करने और उम्मत को सिखाने के लिये आपको भी मश्विरे की ताकीद फ़रमाई गई।

ग़र्ज़ कि फ़रिश्तों की मज्लिस में इस वाक़िए के इज़हार से एक फ़ायदा तो मश्विरे की तालीम का हासिल हुआ (जैसा कि तफ़सीर रूहुल-बयान में बयान किया गया है)। दूसरा फ़ायदा ख़ुद क़ुरआन के अलफ़ाज़ के इशारे से यह मालूम होता है कि इनसान की पैदाइश से पहले फ़रिश्ते यह समझते थे कि हम से ज़्यादा अफ़ज़ल और ज़्यादा जानने वाली कोई मख़्लूक़ अल्लाह तआ़ला पैदा नहीं करेंगे। और तफ़सीर इब्ने जरीर में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से एक रिवायत में इसका ख़ुलासा भी है कि आदम अ़लैहिस्सलाम की ख़िलाफ़त से पहले फ़रिश्ते आपस में कहते थे किः

لَنْ يَّخْلُقَ اللّٰهُ خَلْقًا اَكْرَمَ عَلَيْهِ مِنَّا وَلَا اَعْلَمَ.

(यानी अल्लाह तआ़ला कोई मख़्लूक़ हमसे अफ़ज़ल और बड़ी आ़लिम पैदा न फ़रमायेंगे।)

अल्लाह जल्ल शानुहू के इल्म में था कि एक ऐसी मख़्लूक़ भी पैदा करनी है जो तमाम मख़्लूक़ात से ज़्यादा अफ़ज़ल और ज़्यादा इल्म रखने वाली होगी, और जिसको अपनी ख़िलाफ़त व नयाबत का सम्मान अ़ता किया जायेगा। इसलिये फ़रिश्तों की मज्लिस में आदम अ़लैहिस्सलाम को पैदा करने और ज़मीन के नायब बनाने का ज़िक्र किया गया, कि वे अपने ख़्याल का इज़हार करें।

चुनाँचे फ़रिश्तों ने अपने इल्म व समझ के मुताबिक़ आ़जिज़ी के साथ अपनी राय का इज़हार

किया कि जिस मख़्लूक़ को आप ज़मीन की ख़लीफ़ा बना रहे हैं उसमें तो बुराई व फ़साद का माद्दा भी है, वह दूसरों का सुधार, भला और ज़मीन में अमन व अमान का इन्तिज़ाम कैसे कर सकती है जबकि वह ख़ुद ख़ूनरेज़ी (रक्तपात) भी करने वाली होगी? इसके बजाय आपके फ़रिश्तों में बुराई व फ़साद का कोई माद्दा नहीं, वे ख़ताओं से मासूम हैं और हर वक़्त आपकी तस्बीह व पाकीज़गी और इबादत व इताअ़त में लगे होते हैं, वे बज़ाहिर इस ख़िदमत को अच्छी तरह अन्जाम दे सकते हैं।

ग़र्ज़ कि इससे मआज़ल्लाह (अल्लाह की पनाह) हज़रत हक़ जल्ल शानुहू के फ़ेल पर एतिराज़ नहीं, क्योंकि फ़रिश्ते ऐसे ख़्यालात व हालात से बरी और सुरक्षित हैं, बल्कि मक़सद महज़ मालूम करना था कि एक ऐसी मासूम (गुनाहों और बुराई से ख़ाली) जमाअ़त के मौजूद होते हुए दूसरी ग़ैर-मासूम मख़्लूक़ पैदा करके यह काम उसके हवाले करना और उसको तरजीह देना किस हिक्मत पर आधारित है? चुनाँचे इसके जवाब में पहले तो हक़ तआ़ला ने संक्षिप्त रूप में यह फ़रमायाः

اِنِّیْٓ اَعْلَمُ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ

यानी तुम अल्लाह की ख़िलाफ़त की हक़ीक़त और उससे संबन्धित चीज़ों से वाक़िफ़ नहीं, इसलिये यह समझ रहे हो कि एक मासूम (गुनाहों से पाक) मख़्लूक़ ही उसको अन्जाम दे सकती है, उसकी पूरी हक़ीक़त को हम ही जानते हैं।

उसके बाद फ़रिश्तों को उसका कुछ तफ़सीली इल्म कराने के लिये एक ख़ास वाक़िए का इज़हार किया गया कि तमाम कायनाते आ़लम के नाम और उनके ख़्वास व आसार (विशेषतायें और निशानियाँ) जिनके इल्म की सलाहियत सिर्फ़ आदम अ़लैहिस्सलाम ही में रखी गई थी, फ़रिश्तों की फ़ितरत व इस्तेदाद उसके मुनासिब न थी, वे सब आदम अ़लैहिस्सलाम को सिखाये और बतलाये गये थे, जैसे दुनिया की फ़ायदेमन्द व नुक़सानदेह चीज़ें और उनकी ख़ासियतें व आसार, हर जानदार और हर क़ौम के मिज़ाज व तबीयतें और उनके आसार। इन चीज़ों के मालूम करने के लिये फ़रिश्ते की तबीयत काफ़ी नहीं, फ़रिश्ता क्या जाने कि भूख क्या होती है, प्यास की तकलीफ़ कैसी होती है, नफ़्सानी जज़्बात का क्या असर होता है, किसी चीज़ से नशा किस तरह पैदा होता है, साँप और बिच्छू का ज़हर किस बदन पर क्या असर करता है।

ग़र्ज़ कि ज़मीनी मख़्लूक़ात के नाम और ख़्वास व आसार (विशेषता व निशानियों) की खोज फ़रिश्तों के मिज़ाज और मख़्सूस तबीयत से बिल्कुल अलग चीज़ थी, यह इल्म सिर्फ़ आदम अ़लैहिस्सलाम ही को सिखलाया जा सकता था, उन्हीं को सिखलाया गया। फिर क़ुरआन की किसी वज़ाहत (ख़ुलासे) या इशारे से यह साबित नहीं होता कि आदम अ़लैहिस्सलाम को यह तालीम किसी तन्हाई में फ़रिश्तों से अलग दी गई, इसलिये हो सकता है कि तालीम सब के लिये आ़म ही हो मगर उस तालीम से फ़ायदा उठाना आदम अ़लैहिस्सलाम की तबीयत में था, वह सीख गये, फ़रिश्तों की फ़ितरत में न था वे न सीख सके। इसी लिये यहाँ तालीम को आदम अ़लैहिस्सलाम की तरफ़ मन्सूब किया गया अगरचे यह तालीम वास्तव में आ़म थी आदम अ़लैहिस्सलाम और फ़रिश्तों दोनों को शामिल थी, और यह भी हो सकता है कि ज़ाहिरी तालीम की सूरत ही अ़मल में न आई हो बल्कि आदम अ़लैहिस्सलाम की फ़ितरत में इन चीज़ों का इल्म उनकी पैदाईश के वक़्त ही से रख दिया गया

हो, जैसे बच्चा अपनी पैदाईश के वक़्त ही से माँ का दूध पीना जानता है, बत्तख़ का बच्चा तैरना जानता है, इसमें किसी ज़ाहिरी तालीम की ज़रूरत नहीं होती।

अब रहा यह सवाल कि अल्लाह तआ़ला की क़ुदरत में तो सब कुछ है, वह फ़रिश्तों का मिज़ाज और तबीयत बदलकर उनको भी ये चीज़ें सिखा सकते थे, तो उनको क्यों न सिखाया गया? मगर इसका हासिल तो यह हुआ कि फ़रिश्तों को ही इनसान क्यों न बना दिया? क्योंकि अगर फ़रिश्तों की फ़ितरत व मिज़ाज को बदला जाता तो फिर वे फ़रिश्ते न रहते बल्कि इनसान ही हो जाते।

ख़ुलासा यह है कि ज़मीनी मख़्लूक़ात के नाम और उनके ख़्वास व आसार (विशेषताओं) का आदम अ़लैहिस्सलाम को इल्म दिया गया जो फ़रिश्तों के बस का नहीं था। और फिर मख़्लूक़ात को फ़रिश्तों के सामने करके सवाल किया गया कि अगर तुम अपने इस ख़्याल में सच्चे हो कि कोई मख़्लूक़ हम से ज़्यादा इल्म वाली और अफ़ज़ल पैदा नहीं होगी या यह कि ज़मीन की ख़िलाफ़त व नयाबत के लिये फ़रिश्ते इनसान के मुक़ाबले में ज़्यादा मुनासिब हैं तो उन चीज़ों के नाम और ख़्वास (ख़ासियतें) बतलाओ जिन पर ज़मीन के ख़लीफ़ा को हुकूमत करनी है।

यहाँ से यह फ़ायदा भी हासिल हो गया कि हाकिम के लिये ज़रूरी है कि अपनी महकूम रिआ़या (पब्लिक) के मिज़ाज व तबीयत और उनकी ख़ासियतों से पूरा वाक़िफ़ हो, इसके बग़ैर वह उन पर अ़दल व इन्साफ़ के साथ हुक्मरानी (शासन) नहीं कर सकता। जो शख़्स यह नहीं जानता कि भूख से कैसी और कितनी तकलीफ़ होती है अगर उसकी अ़दालत में कोई दावा किसी को भूखा रखने के बारे में पेश हो तो वह उसका फ़ैसला क्या और किस तरह करेगा?

ग़र्ज़ कि इसी वाक़िए से हक़ तआ़ला ने फ़रिश्तों को यह बतला दिया कि ज़मीन की नयाबत (उत्तराधिकारी बनने) के लिये मासूम (गुनाहों और ख़ताओं से पाक) होने को देखना नहीं बल्कि इसको देखना है कि वह ज़मीन की चीज़ों से पूरा वाक़िफ़ हो, उनके इस्तेमाल के तरीक़ों और उनके फल व परिणाम को जानता हो। अगर तुम्हारा यह ख़्याल सही है कि फ़रिश्ते इस ख़िदमत के लिये ज़्यादा मुनासिब और योग्य हैं तो इन चीज़ों के नाम और ख़ासियतें बताओ। फ़रिश्तों का इज़हारे राय चूँकि किसी एतिराज़, फ़ख़्र व ग़ुरूर या अपना हक़ जतलाने के लिये नहीं बल्कि सिर्फ़ अपने ख़्याल का इज़हार एक फ़रमाँबरदार ख़ादिम की तरह अपनी ख़िदमात (सेवायें) पेश करने के लिये था इसलिये फ़ौरन बोल उठेः

سُبْحٰنَكَ لَا عِلْمَ لَنَآ اِلَّا مَا عَلَّمْتَنَا اِنَّكَ اَنْتَ الْعَلِيْمُ الْحَكِيْمُ٥

(पाक हैं आप, हमको इल्म नहीं मगर वही जो आपने अ़ता फ़रमाया, बेशक आप बड़े इल्म व हिक्मत वाले हैं) जिसका हासिल अपने ख़्याल से रुजू और इसका इक़रार था कि ज़्यादा इल्म वाली व अफ़ज़ल मख़्लूक़ भी मौजूद है और यह कि ज़मीन की नयाबत के लिये वही मुनासिब और योग्य हैं।

दूसरा सवाल इस जगह यह है कि फ़रिश्तों को इसकी कैसे ख़बर हुई कि इनसान ख़ूँरेज़ी (रक्तपात) करेगा? क्या उन्हें ग़ैब का इल्म था? या महज़ अटकल और अन्दाज़े से उन्होंने यह समझा था? इसका जवाब जमहूर मुहक़्क़िक़ीन के नज़दीक यह है कि अल्लाह तआ़ला ने ही उनको इनसान के हालात और उसके होने वाले मामलात बतला दिये थे, जैसा कि कुछ अक़वाल में है कि जब

अल्लाह तआला ने फ़रिश्तों से आदम अलैहिस्सलाम को ज़मीन का ख़लीफ़ा बनाने का ज़िक्र फ़रमाया तो फ़रिश्तों ने अल्लाह तआला ही से उस ख़लीफ़ा का हाल मालूम किया, अल्लाह सुब्हानहू व तआला ही ने उनको बतला दिया। (रूहुल-मआनी) इससे फ़रिश्तों को ताज्जुब हुआ कि जब इनसान का यह हाल है कि वह फ़साद व ख़ूँरेज़ी भी करेगा तो उसको ज़मीन की ख़िलाफ़त के लिये चुनना किस हिक्मत पर आधारित है? इसी का एक जवाब तो हज़रत हक़ जल्ल शानुहू की तरफ़ से आदम अलैहिस्सलाम की इल्मी बरतरी का इज़हार फ़रमाकर दे दिया गया और फ़साद व ख़ूँरेज़ी से जो शुब्हा उसकी ख़िलाफ़त की पात्रता पर किया गया था उसका जवाब 'इन्नी अअ़्लमु मा ला तअ़्लमून' (मैं जानता हूँ उस बात को जिसको तुम नहीं जानते) में मुख़्तसर तौर पर दे दिया गया, जिसमें इशारा है कि जिस चीज़ को तुम नयाबत व ख़िलाफ़त के ख़िलाफ़ समझ रहे हो दर हक़ीक़त वही उसकी अहलियत (पात्रता) का बड़ा सबब है, क्योंकि ज़मीन की नयाबत की ज़रूरत ही फ़साद और ख़राबी को दूर करने के लिये है, जहाँ फ़साद न हो वहाँ ख़लीफ़ा और नायब भेजने की ज़रूरत ही नहीं।

ग़र्ज़ कि यह बतला दिया गया कि अल्लाह का मन्शा यह है कि जिस तरह उसने एक ऐसी पवित्र और ख़ताओं से महफ़ूज़ मख़्लूक़ फ़रिश्ते पैदा कर दिये जिससे किसी गुनाह व ख़ता का सुदूर हो ही नहीं सकता, और जिस तरह उसने शैतानों को पैदा कर दिये जिनमें नेकी और भलाई की सलाहियत नहीं, इसी तरह एक ऐसी मख़्लूक़ भी पैदा करना अल्लाह की मन्शा है जिसमें अच्छाई व बुराई, नेकी और बदी का मिश्रित (मिला-जुला) मजमूआ हो, और जिसमें ख़ैर व शर के दोनों जज़्बात हों, और जो शर (बुराई) के जज़्बात को दबाकर ख़ैर के मैदान में आगे बढ़े और अल्लाह की रज़ा का ताज (सम्मान) हासिल करे।

लुग़त को बनाने वाले ख़ुद हक़ तआला हैं

आदम अलैहिस्सलाम के इस क़िस्से और नामों की तालीम के वाक़िए से यह भी साबित हो गया कि ज़बान (भाषा) और लुग़त के असल बनाने वाले ख़ुद हक़ सुब्हानहू व तआला हैं, फिर इसमें मख़्लूक़ के इस्तेमाल से विभिन्न सूरतें और अनेक भाषायें पैदा हो गईं। इमाम अश्अ़री रह. ने इसी आयत से दलील लेते हुए अल्लाह तआला ही को लुग़त का ईजाद करने वाला क़रार दिया है।

आदम अलैहिस्सलाम की बरतरी फ़रिश्तों पर

इस वाक़िए में क़ुरआने करीम के ये ऊँचे अलफ़ाज़ भी क़ाबिले ग़ौर हैं कि जब फ़रिश्तों को ख़िताब करके फ़रमाया कि इन चीज़ों के नाम बतलाओ, तो लफ़्ज़ 'अम्बिऊनी' इरशाद फ़रमाया कि मुझे बतलाओ। और जब आदम अलैहिस्सलाम को उसी चीज़ का ख़िताब हुआ तो लफ़्ज़ 'अम्बिअ्हुम' फ़रमाया गया, यानी आदम अलैहिस्सलाम को हुक्म हुआ कि फ़रिश्तों को ये नाम बतलायें।

इस अन्दाज़े बयान के फ़र्क़ से वाज़ेह हो गया कि आदम अलैहिस्सलाम को मुअ़ल्लिम (शिक्षक) का दर्जा दिया गया और फ़रिश्तों को तालिबे-इल्म (सीखने वाले) का। जिसमें आदम अलैहिस्सलाम की फ़ज़ीलत व बरतरी का एक अहम अन्दाज़ से इज़हार किया गया।

इस वाक़िए से यह भी मालूम हुआ कि फ़रिश्तों के उलूम में भी कमी और ज़्यादती हो सकती है क्योंकि जिस चीज़ का उनको इल्म नहीं था आदम अलैहिस्सलाम के ज़रिये उनको भी उन चीज़ों का संक्षिप्त तौर पर किसी न किसी दर्जे में इल्म दे दिया गया।

ज़मीनी ख़िलाफ़त का मसला

ज़मीन का इन्तिज़ाम और इसमें ख़ुदा का क़ानून नाफ़िज़ (जारी व लागू) करने के लिये उसकी तरफ़ से किसी नायब का मुक़र्रर होना जो इन आयतों से मालूम हुआ, इससे मुल्की क़ानून का अहम बाब निकल आया कि असल इख़्तियार व मिल्कियत तमाम कायनात और पूरी ज़मीन पर सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला की है जैसा कि क़ुरआन मजीद की बहुत सी आयतें इस पर शाहिद (गवाह) हैं:

اِنِ الْحُكْمُ اِلَّا لِلّٰهِ (سورة٦: آيت٥٧)

और:

لَهٗ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ (سورة٢: آيت١٠٧)

और:

اَلَا لَهُ الْخَلْقُ وَالْاَمْرُ (سورة٧: آيت٥٤)

वग़ैरह। ज़मीन के इन्तिज़ाम के लिये अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से नायब आते हैं जो अल्लाह के हुक्म से ज़मीन पर सियासत व हुकूमत और ख़ुदा तआ़ला के बन्दों की तालीम व तरबियत का काम करते और अल्लाह के अहकाम को नाफ़िज़ (लागू और जारी) करते हैं। उस ख़लीफ़ा व नायब की नियुक्ति डायरेक्ट ख़ुद हक़ तआ़ला की तरफ़ से होती है, उसमें किसी की कोशिश व मेहनत और अ़मल का कोई दख़ल नहीं, इसी लिये पूरी उम्मत का सर्वसम्मति से तयशुदा अक़ीदा है कि नुबुव्वत मेहनत से हासिल होने वाली चीज़ नहीं, जिसको कोई अपनी कोशिश व अ़मल से हासिल कर सके, बल्कि हक़ तआ़ला ही ख़ुद अपने इल्म व हिक्मत के तक़ाज़े से ख़ास-ख़ास अफ़राद को इस काम के लिये चुन लेते हैं, जिनको अपना नबी व रसूल या ख़लीफ़ा व नायब क़रार देते हैं। क़ुरआने हकीम ने जगह-जगह इसका इज़हार फ़रमाया है। इरशाद है:

اَللّٰهُ يَصْطَفِيْ مِنَ الْمَلٰٓئِكَةِ رُسُلًا وَّمِنَ النَّاسِ اِنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ بَصِيْرٌ ○ (٧٥:٢٢)

"अल्लाह तआ़ला चुन लेता है फ़रिश्तों में से अपने रसूल को और इनसानों में से, बेशक अल्लाह तआ़ला सुनने वाला देखने वाला है।"

एक और जगह इरशाद है:

اَللّٰهُ اَعْلَمُ حَيْثُ يَجْعَلُ رِسَالَتَهٗ . (١٢٤:٦)

"अल्लाह तआ़ला ही ख़ूब जानते हैं कि अपनी रिसालत किसको अ़ता फ़रमायें।"

ये अल्लाह के ख़लीफ़ा डायरेक्ट तौर पर (अप्रत्यक्ष रूप से) हक़ तआ़ला से उसके अहकाम मालूम करते और फिर उनको दुनिया में नाफ़िज़ (जारी और लागू) करते हैं। ख़िलाफ़त और अल्लाह के नायब बनने के सिलसिले का यह काम आदम अ़लैहिस्सलाम से शुरू होकर ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तक एक ही अन्दाज़ में चलता रहा, यहाँ तक कि हज़रत ख़ातिमुल-अम्बिया

सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इस ज़मीन पर अल्लाह तआ़ला के आख़िरी ख़लीफ़ा होकर बहुत ही अहम ख़ुसूसियतों (विशेषताओं) के साथ तशरीफ़ लाये।

एक ख़ुसूसियत यह थी कि आप सल्ल. से पहले अम्बिया ख़ास-ख़ास क़ौमों या मुल्कों की तरफ़ मबऊस होते (नबी बनाकर भेजे जाते) थे, उनकी हुकूमत व इख़्तियार का दायरा उन्हीं क़ौमों और मुल्कों में सीमित होता था। हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम एक क़ौम की तरफ़, हज़रत लूत अ़लैहिस्सलाम दूसरी क़ौम की तरफ़ भेजे गये। हज़रत मूसा, हज़रत ईसा अ़लैहिमुस्सलाम और उनके दरमियान आने वाले अम्बिया बनी इस्राईल की तरफ़ भेजे गये।

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ज़मीन के आख़िरी ख़लीफ़ा हैं और आपकी ख़ुसूसियात

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को पूरे आ़लम और उसकी दोनों क़ौम जिन्नात व इनसानों की तरफ़ भेजा गया। आपका इख़्तियार व हुकूमत पूरी दुनिया की दोनों क़ौमों पर हावी फ़रमाया गया। क़ुरआने करीम ने आपकी बेसत व नुबुव्वत के आ़म होने का ऐलान इस आयत में फ़रमायाः

قُلْ يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ اِنِّىْ رَسُوْلُ اللّٰهِ اِلَيْكُمْ جَمِيْعَا ۨالَّذِىْ لَهٗ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ (١٥٨:٧)

"आप कह दीजिये कि ऐ लोगो! मैं अल्लाह का रसूल हूँ तुम सब की तरफ़, अल्लाह वह ज़ात है जिसके क़ब्ज़े में है मुल्क आसमानों और ज़मीन का।" (सूरः 7 आयत 158)

और सही मुस्लिम की हदीस में है, हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मुझे तमाम अम्बिया पर छह चीज़ों में ख़ास फ़ज़ीलत बख़्शी गई है, उनमें से एक यह भी है कि आपको तमाम आ़लम (पूरे जहान) का नबी व रसूल बनाकर भेजा गया।

दूसरी ख़ुसूसियत ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की यह है कि पिछले अम्बिया की ख़िलाफ़त व नयाबत जिस तरह ख़ास-ख़ास मुल्कों और क़ौमों में सीमित होती थी उसी तरह एक ज़माने के लिये ख़ास होती थी, उसके बाद दूसरा रसूल आ जाता तो पहले रसूल की ख़िलाफ़त व नयाबत ख़त्म होकर आने वाले रसूल की ख़िलाफ़त क़ायम हो जाती थी। हमारे रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को हक़ तआ़ला ने ख़ातिमुल-अम्बिया बना दिया कि आपकी ख़िलाफ़त व नयाबत क़ियामत तक क़ायम रहेगी, उसका ज़माना भी कोई ख़ास ज़माना नहीं बल्कि जब तक ज़मीन व आसमान क़ायम और ज़माने का वजूद है वह भी क़ायम है।

तीसरी ख़ुसूसियत यह है कि पिछले अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की तालीमात व शरीअ़त एक ज़माने तक महफ़ूज़ (बाक़ी और सुरक्षित) रहती और चलती थी, धीरे-धीरे उसमें रद्दोबदल और कमी-बेशी होते हुए वो बेकार हो जातीं और अपना असली रूप खो देती थीं, उस वक़्त कोई दूसरा रसूल और दूसरी शरीअ़त भेजी जाती थी। हमारे रसूल सल्ल. की यह ख़ुसूसियत है कि आपका दीन आपकी शरीअ़त क़ियामत तक महफ़ूज़ (बाक़ी और सुरक्षित) रहेगी। क़ुरआन मजीद जो नबी करीम सल्लल्लाहु

अ़लैहि व सल्लम पर नाज़िल हुआ इसके तो अलफ़ाज़ और मायने सब चीज़ों की हिफ़ाज़त अल्लाह तआ़ला ने ख़ुद अपने ज़िम्मे ले ली और इरशाद फ़रमायाः

إِنَّا نَحْنُ نَزَّلْنَا الذِّكْرَ وَإِنَّا لَهُ لَحٰفِظُوْنَ٥ (١٥:٩)

"हमने ही क़ुरआन नाज़िल फ़रमाया और हम ही इसके मुहाफ़िज़ (रक्षक) हैं।"

इसी तरह हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात व इरशादात जिनको हदीस कहा जाता है, उनकी हिफ़ाज़त का भी अल्लाह तआ़ला ने एक ख़ास इन्तिज़ाम फ़रमा दिया कि क़ियामत तक आपकी तालीमात और इरशादात को जान से ज़्यादा अ़ज़ीज़ समझने वाली एक जमाअ़त बाक़ी रहेगी जो आपके उलूम व मआ़रिफ़ और आपके शरई अहकाम सही-सही तौर पर लोगों को पहुँचाती रहेगी, कोई उस जमाअ़त को मिटा न सकेगा, अल्लाह तआ़ला की हिमायत और ग़ैबी मदद उनके साथ रहेगी।

ख़ुलासा यह है कि पिछले अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की किताबें और सहीफ़े अपनी असल शक्ल में बाक़ी न रहते और उनमें रद्दोबदल कर दी जाती, उनके अलफ़ाज़ व मायने में तब्दीली और कमी-बेशी कर दी जाती और आख़िरकार वे दुनिया से गुम हो जाते या ग़लत-सलत बाक़ी रहते थे। नबी करीम सल्ल. की लाई हुई किताब क़ुरआन और आपकी बतलाई हुई हदीस की हिदायतें सब की सब अपने असली रूप में और असली हालत में क़ियामत तक मौजूद व सुरक्षित रहेंगी। इसी लिये इस ज़मीन पर आप सल्ल. के बाद न किसी नये नबी और रसूल की ज़रूरत है न किसी और अल्लाह के ख़लीफ़ा की गुंजाईश।

चौथी ख़ुसूसियत नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की यह है कि पिछले अम्बिया की ख़िलाफ़त व नयाबत जो सीमित ज़माने के लिये होती थी, हर नबी व रसूल के बाद दूसरा रसूल अल्लाह की तरफ़ से मुक़र्रर होता और नयाबत का काम संभालता था, ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िलाफ़त व नयाबत का ज़माना क़ियामत तक के लिये है, इसलिये क़ियामत तक आप सल्ल. ही इस ज़मीन में अल्लाह के ख़लीफ़ा हैं।

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बाद ख़िलाफ़त का निज़ाम

ख़ातिमुल-अम्बिया हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात के बाद आ़लम के निज़ाम के लिये जो नायब होगा वह रसूल का ख़लीफ़ा और आपका नायब होगा। सही बुख़ारी व मुस्लिम की हदीस है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

كَانَتْ بَنُوْ إِسْرَآئِيْلَ تَسُوْسُهُمُ الْأَنْبِيَآءُ كُلَّمَا هَلَكَ نَبِيٌّ خَلَفَهُ نَبِيٌّ وَإِنَّهُ لَا نَبِيَّ بَعْدِيْ وَسَيَكُوْنُ خُلَفَآءُ فَيَكْثُرُوْنَ.

"बनी इस्राईल की सियासत व हुकूमत उनके अम्बिया करते थे, एक नबी का इन्तिक़ाल होता तो दूसरा नबी आ जाता था, और ख़बरदार हो जाओ कि मेरे बाद कोई नबी नहीं, हाँ मेरे ख़लीफ़ा होंगे और बहुत होंगे।"

पाँचवीं ख़ुसूसियत नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की यह है कि आपके बाद आपकी उम्मत के मजमूए को अल्लाह तआ़ला ने वह मक़ाम अ़ता फ़रमाया जो अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का होता है, यानी उम्मत के मजमूए को मासूम (ख़ताओं से सुरक्षित) क़रार दे दिया कि आपकी पूरी उम्मत कभी गुमराही और ग़लती पर जमा (इकट्ठी) न रहेगी, यह पूरी उम्मत जिस मसले पर इजमा व इत्तिफ़ाक़ (एकमत होने का फ़ैसला) करे वह अल्लाह के हुक्म का प्रतीक समझा जायेगा। इसी लिये किताबुल्लाह और सुन्नते रसूलुल्लाह के बाद इस्लाम में हुज्जत इजमा-ए-उम्मत (उम्मत का किसी मसले पर एक राय होना) क़रार दी गई है। नबी करीम सल्ल. का इरशाद है:

لَنْ تَجْتَمِعَ اُمَّتِیْ عَلَی الضَّلَالَةِ.

"मेरी उम्मत कभी गुमराही पर जमा न होगी।"

इसकी अधिक तफ़सील उस हदीस से मालूम होती है जिसमें यह इरशाद है कि मेरी उम्मत में हमेशा एक जमाअ़त हक़ पर क़ायम रहेगी, दुनिया कितनी ही बदल जाये, हक़ कितना ही कमज़ोर हो जाये मगर एक जमाअ़त हक़ की हिमायत हमेशा करती रहेगी, और अन्जाम कार वही ग़ालिब रहेगी।

इससे भी वाज़ेह हो गया कि पूरी उम्मत कभी गुमराही और ग़लती पर जमा न होगी, और जबकि उम्मत का मजमूआ मासूम (ग़लती और गुमराही से सुरक्षित) क़रार दिया गया तो ख़लीफ़ा-ए-रसूल का इन्तिख़ाब (चयन) भी उसी के सुपुर्द कर दिया गया और ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बाद ज़मीन की नयाबत और हुकूमत के इन्तिज़ाम के लिये चयन का तरीक़ा मशरू (शरीअ़त की तरफ़ से तय) हो गया। यह उम्मत जिसे ख़िलाफ़त के लिये चुन ले वह ख़लीफ़ा-ए-रसूल की हैसियत से आ़लम (दुनिया) के निज़ाम का अकेला ज़िम्मेदार होगा, और ख़लीफ़ा सारे आ़लम का एक ही हो सकता है।

ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के आख़िरी दौर तक यह सिलसिला-ए-ख़िलाफ़त सही उसूल पर चलता रहा, और इसी लिये उनके फ़ैसले सिर्फ़ दीनी और आपातकालीन फ़ैसलों की हैसियत नहीं रखते बल्कि एक मज़बूत और स्थिर दस्तावेज़ और एक दर्जे में उम्मत के लिये हुज्जत माने जाते हैं, क्योंकि ख़ुद नबी करीम सल्ल. ने उनके मुताल्लिक़ फ़रमाया:

عَلَیْکُمْ بِسُنَّتِیْ وَسُنَّةِ الْخُلَفَآءِ الرَّاشِدِیْنَ.

"मेरी सुन्नत को लाज़िम पकड़ो और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन की सुन्नत (तरीक़े) को।"

ख़िलाफ़ते राशिदा के बाद

ख़िलाफ़ते राशिदा के बाद रियासत के बिखराव की कुछ शुरूआ़त हुई, विभिन्न इलाक़ों में विभिन्न अमीर (हाकिम और शासक) बनाये गये, उनमें से कोई भी ख़लीफ़ा कहलाने का हक़दार नहीं, हाँ किसी मुल्क या क़ौम का ख़ास अमीर (सरदार व हाकिम) कहा जा सकता है। और जब पूरी दुनिया के मुसलमानों का किसी एक फ़र्द पर जमा और एक राय होना (यानी सर्वसम्मति) मुश्किल हो गया और हर मुल्क, हर क़ौम का अलग-अलग अमीर बनाने की रस्म चल पड़ी तो मुसलमानों ने इसकी नियुक्ति इसी इस्लामी नज़रिये के तहत जारी रखी कि मुल्क के मुसलमानों की अक्सरियत जिसको

अमीर चुन ले वही उस मुल्क का अमीर और हाकिम कहलाये। क़ुरआन मजीद के इरशाद 'व अमरुहुम् शूरा बैनहुम' (कि उनके मामलात आपस के मश्विरों से तय पाते हैं) के उमूम (इशारा आम होने) से इस पर दलील पकड़ी जा सकती है।

पश्चिमी लोकतंत्र और इस्लामी शूराईयत में फ़र्क़

असेम्बलियाँ इसी तरीक़े का नमूना हैं, फ़र्क़ इतना है कि आम लोकतंत्र वाले मुल्कों की असेम्बलियाँ और उनके सदस्य बिल्कुल आज़ाद व ख़ुद-मुख़्तार हैं, केवल अपनी राय से जो चाहें अच्छा या बुरा क़ानून बना सकते हैं। इस्लामी असेम्बली और उसके सदस्य और चुने हुए अमीर सब उस उसूल व क़ानून के पाबन्द हैं जो अल्लाह तआला की तरफ़ से उसके रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़रिये उनको मिला है। उस असेम्बली या मज्लिसे शूरा की सदस्यता के लिये भी कुछ शर्तें हैं और जिस शख़्स को ये चुनें उसके लिये भी कुछ शर्तें और पाबन्दियाँ हैं, फिर उनका क़ानून बनाना भी क़ुरआन व सुन्नत के बयान किये हुए उसूल के दायरे में हो सकता है, उसके ख़िलाफ़ कोई क़ानून बनाने का उनको इख़्तियार नहीं।

ख़ुलासा यह है कि हक़ तआला ने अपने फ़रिश्तों को मुख़ातब करके जो इरशाद फ़रमाया कि मैं ज़मीन में अपना नायब और ख़लीफ़ा बनाने वाला हूँ इससे रियासत व मुल्क के दस्तूर की चन्द अहम धाराओं पर रोशनी पड़ती है।

उक्त आयत से हुकूमत व रियासत के क़ानून की चन्द अहम धाराओं का सुबूत

अव्वल यह कि आसमान और ज़मीन में असल इख़्तियार व हुकूमत अल्लाह जल्ल शानुहू की है। दूसरे यह कि ज़मीन में अल्लाह तआला के अहकाम को जारी और लागू करने के लिये उसका नायब व ख़लीफ़ा उसका रसूल होता है और ज़िमनी तौर पर यह भी वाज़ेह हो गया कि अल्लाह की ख़िलाफ़त का सिलसिला जब नबी करीम सल्ल. पर ख़त्म हो गया तो अब ख़िलाफ़ते रसूल का सिलसिला उसके क़ायम-मक़ाम हुआ और उस ख़लीफ़ा की नियुक्ति मिल्लत के चुनने से क़रार पाई।

وَإِذْ قُلْنَا لِلْمَلٰٓئِكَةِ اسْجُدُوْا لِاٰدَمَ فَسَجَدُوْٓا إِلَّآ إِبْلِيْسَ ۚ أَبٰى وَاسْتَكْبَرَ ۫ وَكَانَ مِنَ الْكٰفِرِيْنَ ۝

व इज़् क़ुल्ना लिल्मलाइ-कतिस्जुदू लिआद-म फ़-स-जदू इल्ला इब्लीस्, अबा वस्तक्ब-र व का-न मिनल्-काफ़िरीन (34)	और जब हमने हुक्म दिया फ़रिश्तों को कि सज्दा करो आदम को तो सब सज्दे में गिर पड़े, मगर शैतान। उसने न माना और तकब्बुर किया, और था वह काफ़िरों में का। (34)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जिस वक़्त हमने हुक्म दिया फ़रिश्तों को (और जिन्नात को भी जैसा कि कुछ रिवायतों में हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है, ग़र्ज़ कि उन सब को यह हुक्म दिया गया) कि सज्दे में गिर जाओ आदम के सामने, सो सब सज्दे में गिर पड़े सिवाय इब्लीस के, उसने कहना न माना और ग़ुरूर (घमंड) में आ गया, और हो गया काफ़िरों में से।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़ और जोड़

पिछले वाक़िए में जब आदम अ़लैहिस्सलाम की फ़ज़ीलत फ़रिश्तों पर ज़ाहिर हो चुकी और दलीलों से यह बात साबित हो गयी कि ख़िलाफ़त की सलाहियत व पात्रता के लिये जिन उलूम की ज़रूरत है वे आदम अ़लैहिस्सलाम में सब जमा हैं, और फ़रिश्तों को उनमें से कुछ उलूम हासिल हैं और जिन्नात को तो बहुत ही कम हिस्सा उन उलूम का हासिल है, जैसा कि ऊपर तफ़सील के साथ बयान कर दिया है, और इस ख़ास हैसियत से कि फ़रिश्ते व जिन्नात दोनों गिरोहों के उलूम के यह जामे हैं, इनका शर्फ़ (बड़ाई और बरतरी) दोनों गिरोहों पर ज़ाहिर हो गया। अब हक़ तआ़ला को मन्ज़ूर हुआ कि इस मुक़द्दिमे को मामले से भी ज़ाहिर फ़रमा दिया जाये और फ़रिश्तों और जिन्नात से इनकी कोई ख़ास ताज़ीम (एहतिराम व इज़्ज़त) कराई जाये जिससे यह ज़ाहिर हो कि यह दोनों से कामिल और इसके मिस्दाक़ हैं:

आँचे ख़ूबाँ हमा दारन्द तू तन्हा दारी

(जितनी ख़ूबियाँ वे सब मिलकर रखते हैं उतनी तेरे अकेले के अन्दर हैं) और आदम अ़लैहिस्सलाम उन ख़ास उलूम में फ़रिश्तों और जिन्नात दोनों जमाअ़तों से कामिल और दोनों के उलूम व क़ुव्वतों के जामे हैं, जैसा कि पीछे तफ़सील से बयान हुआ। अब हक़ तआ़ला को मन्ज़ूर हुआ कि उन ग़ैर-कामिलों से इस कामिल की कोई ऐसी ताज़ीम (इज़्ज़त व तकरीम) कराई जाये कि अ़मली तौर पर भी यह मामला ज़ाहिर हो जाये कि यह उन दोनों से कामिल और जामे हैं, तब ही तो ये दोनों इनकी ताज़ीम कर रहे हैं और गोया ज़बाने हाल से कह रहे हैं कि जो कमालात और सिफ़तें हम में अलग-अलग हैं वे इनके अन्दर एक जगह जमा हैं, इसलिये इज़्ज़त व सम्मान का जो अ़मल तजवीज़ फ़रमाया गया है उसका क़िस्सा ज़िक्र फ़रमाते हैं कि हमने फ़रिश्तों को हुक्म दिया कि आदम को सज्दा करें, सब फ़रिश्तों ने सज्दा किया मगर इब्लीस ने सज्दे से इनकार किया और ग़ुरूर में आ गया।

क्या सज्दे का हुक्म जिन्नात को भी था?

इस आयत में जो बात स्पष्ट तौर पर ज़िक्र की गयी है वह तो यह है कि आदम अ़लैहिस्सलाम को सज्दा करने का हुक्म फ़रिश्तों को दिया गया, मगर जब आगे इस अ़मल से अलग करके यह बतला दिया गया कि सब फ़रिश्तों ने सज्दा किया मगर इब्लीस ने नहीं किया तो इससे साबित हुआ

कि आदम अ़लैहिस्सलाम को सज्दे के लिये हुक्म उस वक़्त की तमाम अ़क़्ल वाली मख़्लूक़ात के लिये आ़म था, जिनमें फ़रिश्ते और जिन्नात सब दाख़िल हैं। मगर हुक्म में सिर्फ़ फ़रिश्तों के ज़िक्र पर इसलिये इक्तिफ़ा किया गया कि वे सबसे अफ़ज़ल और बेहतर थे। जब आदम अ़लैहिस्सलाम की ताज़ीम (अदब व सम्मान) का हुक्म उनको दिया गया तो जिन्नात का तो और भी ज़्यादा उस हुक्म में शामिल होना मालूम हो गया।

ताज़ीम व सम्मान का सज्दा पहली उम्मतों में जायज़ था, इस्लाम में मना है

इस आयत में फ़रिश्तों को हुक्म दिया गया है कि आदम अ़लैहिस्सलाम को सज्दा करें और सूरः यूसुफ़ में हज़रत यूसुफ़ अ़लैहिस्सलाम के माँ-बाप और भाईयों का मिस्र पहुँचने के बाद यूसुफ़ अ़लैहिस्सलाम को सज्दा करना मज़कूर है। फ़रमायाः

وَخَرُّوْا لَهٗ سُجَّدًا. (١٢:١٠٠)

कि वे उनके आगे सज्दे में गिर गये।

यह तो ज़ाहिर है कि यह सज्दा इबादत के लिये नहीं हो सकता, क्योंकि ग़ैरुल्लाह की इबादत शिर्क व कुफ़्र है, जिसमें यह गुमान व गुंजाईश ही नहीं कि किसी वक़्त किसी शरीअ़त में जायज़ हो सके। इसके सिवा कोई गुमान और गुंजाईश नहीं कि पहले अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के ज़माने में सज्दे का भी वही दर्जा होगा जो हमारे ज़माने में सलाम, मुसाफ़े, मुआ़नक़े (गले मिलने) और हाथ चूमने या इकराम के लिये खड़े हो जाने का है।

इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'अहकामुल-क़ुरआन' में यही फ़रमाया है कि पहले अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की शरीअ़त में बड़ों की ताज़ीम और सलाम के लिये सज्दा मुबाह (दुरुस्त) था, शरीअ़ते मुहम्मदिया में मन्सूख़ (ख़त्म) हो गया और बड़ों की ताज़ीम (अदब व इकराम) के लिये सिर्फ़ सलाम, मुसाफ़े की इजाज़त दी गई, रुकूअ़, सज्दे और नमाज़ जैसी शक्ल में हाथ बाँधकर खड़े होने को नाजायज़ क़रार दे दिया गया।

वज़ाहत व ख़ुलासा इसका यह है कि असल कुफ़्र व शिर्क और ग़ैरुल्लाह की इबादत तो ईमानी उसूल के ख़िलाफ़ है, वो कभी किसी शरीअ़त में जायज़ नहीं हो सकते, लेकिन कुछ काम और आमाल ऐसे हैं जो अपनी ज़ात में शिर्क व कुफ़्र नहीं मगर लोगों की जहालत और ग़फ़लत से वे काम शिर्क व कुफ़्र का ज़रिया बन सकते हैं। ऐसे कामों को पहले अम्बिया की शरीअ़तों में पूरी तरह मना नहीं किया गया, बल्कि उनको शिर्क का ज़रिया बनाने से रोका गया, जैसे जानदारों की तस्वीर बनाना और इस्तेमाल करना अपनी ज़ात में कुफ़्र व शिर्क नहीं, इसलिये पिछली शरीअ़तों में जायज़ था। हज़रत सुलैमान अ़लैहिस्सलाम के क़िस्से में मज़कूर हैः

يَعْمَلُوْنَ لَهٗ مَا يَشَآءُ مِنْ مَّحَارِيْبَ وَتَمَاثِيْلَ (٣٤:١٣)

"यानी जिन्नात उनके लिये बड़ी मेहराबें और तस्वीरें बनाया करते थे।"

इसी तरह ताज़ीमी सज्दा पिछली शरीअ़तों में जायज़ था, लेकिन आख़िरकार लोगों की जहालत से यही चीज़ें शिर्क व बुत-परस्ती का ज़रिया बन गईं और इसी रास्ते से अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के दीन व शरीअ़त में तहरीफ़ हो गयी (यानी रद्दोबदल हुई और असल शक्ल को मिटा दिया गया), और फिर दूसरे अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और दूसरी शरीअ़तों ने आकर उसको मिटाया। शरीअ़ते मुहम्मदिया चूँकि दायमी और हमेशा के लिये शरीअ़त (ख़ुदाई क़ानून) है, रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर नुबुव्वत व रिसालत ख़त्म और आपकी शरीअ़त आख़िरी शरीअ़त है, इसलिये इसको मस्ख़ व तहरीफ़ (असल शक्ल बिगड़ने या उसमें रद्दोबदल होने) से बचाने के लिये हर ऐसे सुराख़ को बन्द कर दिया गया जहाँ से शिर्क व बुत-परस्ती (मूर्ति पूजा) आ सकती थी, इसी सिलसिले में वे तमाम चीज़ें इस शरीअ़त में हराम क़रार दे दी गईं जो किसी ज़माने में शिर्क व बुत-परस्ती का ज़रिया (सबब) बनी थीं।

तस्वीर बनाने और उसके इस्तेमाल को इसी वजह से हराम किया गया, ताज़ीमी सज्दा इसी वजह से हराम हुआ, ऐसे वक़्तों में नमाज़ पढ़ने को हराम कर दिया गया जिनमें मुश्रिक और काफ़िर लोग अपने माबूदों की इबादत किया करते थे, कि उनके साथ यह ज़ाहिरी मुताबक़त (मिलती-जुलती हालत) किसी वक़्त शिर्क का ज़रिया न बन जाये।

सही मुस्लिम की हदीस में है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने आक़ाओं को यह हुक्म दिया कि अपने ग़ुलाम को 'अ़ब्द' यानी अपना बन्दा कहकर न पुकारें, और ग़ुलामों को यह हुक्म दिया कि वे आक़ाओं को अपना 'रब' न कहें, हालाँकि लफ़्ज़ी मायने के एतिबार से बन्दे के मायने ग़ुलाम के और रब के मायने पालने वाले और तरबियत करने वाले के हैं। ऐसे अलफ़ाज़ का इस्तेमाल वर्जित और मना न होना चाहिये था, मगर इसलिये कि ये अलफ़ाज़ शिर्क का वहम पैदा करते हैं, किसी वक़्त जहालत से यही अलफ़ाज़ आक़ाओं की पूजा का दरवाज़ा न खोल दें इसलिये इन अलफ़ाज़ के इस्तेमाल करने को रोक दिया गया।

ख़ुलासा यह है कि आदम अ़लैहिस्सलाम को फ़रिश्तों का सज्दा और यूसुफ़ अ़लैहिस्सलाम को उनके माँ-बाप और भाईयों का सज्दा जो क़ुरआन में मज़कूर है, यह सज्दा-ए-ताज़ीमी था, जो उनकी शरीअ़त में सलाम, मुसाफ़े और हाथ चूमने का दर्जा रखता था और जायज़ था। शरीअ़ते मुहम्मदिया को कुफ़्र व शिर्क के शुब्हे और मामूली भ्रम से भी पाक रखना था इसलिये इस शरीअ़त में अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी को ताज़ीम के इरादे से भी सज्दा या रुकूअ़ करना जायज़ नहीं रखा गया।

कुछ उलेमा ने फ़रमाया कि नमाज़ जो असल इबादत है उसमें चार तरह के काम हैं- खड़ा होना, बैठना, रुकूअ़ (झुकना), सज्दा (माथा टेकना), इनमें से पहले दो यानी खड़ा होना और बैठना तो ऐसे काम हैं जो आ़दतन् भी इनसान अपनी ज़रूरतों के लिये करता है और इबादत के तौर पर भी नमाज़ में किये जाते हैं, मगर रुकूअ़ और सज्दा ऐसे फ़ेल (काम) हैं जो इनसान आ़दतन् नहीं करता वे इबादत के साथ मख़्सूस हैं, इसलिये इन दोनों को शरीअ़ते मुहम्मदिया में इबादत ही का हुक्म देकर ग़ैरुल्लाह (अल्लाह के अ़लावा किसी और) के लिये ममनू (वर्जित) कर दिया।

अब यहाँ एक सवाल बाक़ी रह जाता है कि ताज़ीमी सज्दे का जवाज़ (जायज़ व दुरुस्त होना) तो क़ुरआन की उक्त आयतों से साबित है, शरीअ़ते मुहम्मदी में इसका मन्सूख़ होना किस दलील से

साबित है? इसका जवाब यह है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की निरन्तर (मुतवातिर) मशहूर हदीसों से ताज़ीमी सज्दे का हराम होना साबित है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अगर मैं ग़ैरुल्लाह (अल्लाह के अलावा किसी और) के लिये सज्दा-ए-ताज़ीमी को जायज़ क़रार देता तो बीवी को हुक्म देता कि शौहर को सज्दा किया करे (मगर इस शरीअत में ताज़ीमी सज्दा बिल्कुल हराम है, इसलिये किसी के लिये जायज़ नहीं)।

यह हदीस बीस सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम की रिवायत से साबित है, उसूले हदीस की परिचित और मशहूर किताब 'तदरीबुर्रावी' में है कि जिस रिवायत को दस सहाबा किराम नक़ल फ़रमा दें तो वह हदीस मुतवातिर हो जाती है, जो क़ुरआन की तरह क़तई है। यहाँ तो बीस सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम से मन्क़ूल है। ये बीस सहाबा की रिवायतें 'बयानुल-क़ुरआन' के हाशिये में हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी रह. ने जमा फ़रमा दी हैं, ज़रूरत हो तो वहाँ देखा जा सकता है।

शैतान का कुफ़्र केवल अमली नाफ़रमानी का नतीजा नहीं

मसलाः इब्लीस (शैतान) का कुफ़्र केवल अमली नाफ़रमानी का नतीजा नहीं, क्योंकि किसी फ़र्ज़ को अमली तौर पर छोड़ देना उसूले शरीअत में फ़िस्क़ व गुनाह है, कुफ़्र नहीं। इब्लीस के कुफ़्र का असल सबब अल्लाह के हुक्म का सामना और मुक़ाबला करना है कि आपने जिसको सज्दा करने का मुझे हुक्म दिया है वह इस क़ाबिल नहीं कि मैं उसको सज्दा करूँ, यह मुक़ाबला और हुक्म के मुक़ाबले में अपनी बात पेश करना बिला शुब्हा कुफ़्र है।

इब्लीस को 'ताऊसुल-मलायका' कहा जाता था

मसलाः यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि इब्लीस इल्म व मारिफ़त में यह मक़ाम रखता था कि उसको 'ताऊसुल-मलायका' (यानी फ़रिश्तों में एक नुमायाँ मक़ाम रखने वाला) कहा जाता था। फिर उससे यह हरकत कैसे सादिर हुई? बाज़ उलेमा ने फ़रमाया कि उसके तकब्बुर के सबब से अल्लाह तआ़ला ने उससे अपनी दी हुई मारिफ़त और इल्म व समझ की दौलत छीन ली, इसलिये ऐसी जहालत का काम कर बैठा। बाज़ों ने फ़रमाया कि ओहदे की चाहत और घमण्ड ने हक़ीक़त पहचानने के बावजूद इस बला में मुब्तला कर दिया। तफ़सीर 'रूहुल-मआ़नी' में इस जगह एक शे'र नक़ल किया है जिसका हासिल यह है कि बहुत सी बार किसी गुनाह के वबाल से अल्लाह की ताईद (मदद) इनसान का साथ छोड़ देती है तो उसकी हर कोशिश और अमल उसको गुमराही की तरफ़ धकेल देता है। शे'र यह है:

إِذَا لَمْ يَكُنْ عَوْنٌ مِّنَ اللّٰهِ لِلْفَتٰى
فَاَوَّلُ مَا يَجْنِىْ عَلَيْهِ اِجْتِهَادُهٗ

तफ़सीर 'रूहुल-मआ़नी' में इससे यह भी साबित किया है कि इनसान का ईमान वही मोतबर है जो आख़िर उम्र और आख़िरत की पहली मन्ज़िलों तक साथ रहे, मौजूदा ईमान व अमल और इल्म व मारिफ़त पर इतराहट (ग़ुरूर और घमण्ड) न होनी चाहिये। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

وَقُلْنَا يَآدَمُ اسْكُنْ أَنْتَ وَزَوْجُكَ الْجَنَّةَ وَكُلَا مِنْهَا رَغَدًا حَيْثُ شِئْتُمَا وَلَا تَقْرَبَا هٰذِهِ الشَّجَرَةَ فَتَكُونَا مِنَ الظّٰلِمِينَ ۝ فَأَزَلَّهُمَا الشَّيْطٰنُ عَنْهَا فَأَخْرَجَهُمَا مِمَّا كَانَا فِيهِ وَقُلْنَا اهْبِطُوا بَعْضُكُمْ لِبَعْضٍ عَدُوٌّ وَلَكُمْ فِي الْأَرْضِ مُسْتَقَرٌّ وَّمَتَاعٌ إِلٰى حِينٍ ۝

व क़ुल्ना या आ-दमुस्कुन् अन्-त व ज़ौजुकल्-जन्न-त व कुला मिन्हा र-ग़दन् हैसु शिअ्तुमा व ला तक़्रबा हाज़िहिश्श-ज-र-त फ़-तकूना मिनज़्-ज़ालिमीन (35) फ़-अज़ल्-लहुमश्-शैतानु अ़न्हा फ़-अख़्र-जहुमा मिम्मा काना फ़ीही व क़ुल्नह्बितू बअ्ज़ुकुम् लि-बअ्ज़िन् अ़दुव्वुन् व लकुम् फ़िल्अर्ज़ि मुस्तक़र्रुंव्- व मताअुन् इला हीन (36)	और हमने कहा ऐ आदम! रहा कर तू और तेरी औरत जन्नत में, और खाओ उसमें जो चाहो जहाँ कहीं से चाहो, और पास मत जाना इस दरख़्त के, फिर तुम हो जाओगे ज़ालिम। (35) फिर हिला दिया उनको शैतान ने उस जगह से, फिर निकाला उनको उस इज़्ज़त व राहत से कि जिसमें थे, और हमने कहा तुम सब उतरो, तुम एक दूसरे के दुश्मन होगे और तुम्हारे वास्ते ज़मीन में ठिकाना है और नफ़ा उठाना एक वक़्त तक। (36)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और हमने हुक्म दिया कि ऐ आदम! रहा करो तुम और तुम्हारी बीवी (जिनको अल्लाह तआ़ला ने अपनी कामिल क़ुदरत से आदम अ़लैहिस्सलाम की पसली से कोई माद्दा लेकर बना दिया था) जन्नत में। फिर खाओ दोनों इसमें से फ़रागत के साथ जिस जगह से चाहो, और नज़दीक न जाईयो उस दरख़्त के, वरना तुम भी उन्हीं में शुमार हो जाओगे जो अपना नुक़सान कर बैठते हैं। (ख़ुदा जाने वह क्या दरख़्त था मगर उसके खाने से मना फ़रमा दिया, और फिर आक़ा को इख़्तियार है कि अपने घर की चीज़ों से गुलाम को जिस चीज़ के बरतने की चाहे इजाज़त दे दे, और जिस चीज़ को चाहे मना कर दे) फिर बहका दिया आदम और हव्वा को शैतान ने उस दरख़्त की वजह से, सो निकलवाकर रहा उनको उस ऐश से जिसमें वे थे। और हमने कहा- नीचे उतरो तुममें से बाज़े बाज़ों के (यानी एक दूसरे के) दुश्मन रहेंगे, और तुमको ज़मीन पर कम ही ठहरना है, और काम चलाना एक निर्धारित मियाद तक (यानी वहाँ जाकर भी हमेशा का रहना न मिलेगा, कुछ अ़रसे के बाद वह घर भी छोड़ना पड़ेगा)।

मआरिफ़ व मसाईल

यह आदम अ़लैहिस्सलाम के क़िस्से का आख़िरी हिस्सा है जिसमें बयान किया गया है कि जब आदम अ़लैहिस्सलाम की फ़ज़ीलत और ज़मीन की ख़िलाफ़त के लिये सलाहियत फ़रिश्तों पर स्पष्ट कर दी गई, उन्होंने तस्लीम कर लिया और इब्लीस अपने तकब्बुर और हुक्म का मुक़ाबला करने की वजह से काफ़िर होकर निकाल दिया गया तो आदम अ़लैहिस्सलाम और उनकी बीवी हज़रत हव्वा को यह हुक्म मिला कि तुम दोनों जन्नत में रहो और उसकी नेमतों से फ़ायदा उठाओ, मगर एक ख़ास दरख़्त के लिये यह हिदायत की कि उसके पास न जाना, यानी उसके खाने से मुकम्मल परहेज़ करना। शैतान जो आदम अ़लैहिस्सलाम की वजह से मरदूद हुआ वह ख़ार खाये हुए था, उसने किसी तरह मौक़ा पाकर और मस्लेहतें बताकर उन दोनों को उस दरख़्त के खाने पर तैयार कर दिया। उनकी इस भूल और कोताही की वजह से उनको भी यह हुक्म मिला कि अब तुम ज़मीन पर जाकर रहो और यह भी बतला दिया कि ज़मीन की रिहाईश जन्नत की तरह बेफ़िक्री वाली न होगी, बल्कि वहाँ आपस में झगड़े और दुश्मनियाँ भी होंगी जिससे ज़िन्दगी का पूरा लुत्फ़ बाक़ी न रहेगा। फ़रमायाः

وَقُلْنَا يٰۤاٰدَمُ اسْكُنْ اَنْتَ وَزَوْجُكَ الْجَنَّةَ.

"और हमने कहा कि ऐ आदम! ठहरो तुम और तुम्हारी बीवी जन्नत में" यह वाक़िआ हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश और फ़रिश्तों के सज्दे के बाद का है। बाज़ हज़रात ने इससे यह नतीजा निकाला कि यह पैदाईश और सज्दे का वाक़िआ जन्नत से बाहर कहीं हुआ है, इसके बाद जन्नत में दाख़िल किया गया, लेकिन इन अलफ़ाज़ में यह मफ़्हूम (मतलब) यक़ीनी नहीं बल्कि यह भी हो सकता है कि पैदाईश भी जन्नत में हुई और सज्दे का वाक़िआ भी जन्नत में पेश आया हो, मगर उस वक़्त तक उनको कोई फ़ैसला इसके मुताल्लिक़ नहीं सुनाया गया था कि आपका ठिकाना और रहने की जगह कहाँ होगी। इस वाक़िए के बाद यह फ़ैसला सुनाया गयाः

وَكُلَا مِنْهَا رَغَدًا حَيْثُ شِئْتُمَا.

'र-ग़दन्' के मायने अ़रबी लुग़त में उस नेमत व रिज़्क़ के हैं जिसके हासिल करने में कोई मेहनत व मशक़्क़त भी न हो और वह इतनी ज़्यादा और विस्तृत हो कि उसके कम या ख़त्म होने का ख़तरा न हो। मायने यह हुए कि आदम व हव्वा अ़लैहिमस्सलाम को फ़रमाया कि जन्नत के फल फ़राग़त से इस्तेमाल करते रहो, न उनके हासिल करने में तुम्हें किसी मेहनत की ज़रूरत होगी और न यह फ़िक्र कि यह ग़िज़ा ख़त्म या कम हो जायेगी।

وَلَا تَقْرَبَا هٰذِهِ الشَّجَرَةَ.

"और इस दरख़्त के क़रीब भी न जाना" किसी ख़ास दरख़्त की तरफ़ इशारा करके फ़रमाया गया कि इसके क़रीब न जाओ। असल मक़सद तो यह था कि इसका फल न खाओ मगर ताकीद के तौर पर उनवान यह इख़्तियार किया गया कि इसके पास भी न जाओ और मुराद यही है कि खाने के लिये इसके पास न जाओ। यह दरख़्त कौनसा था, क़ुरआने करीम ने मुतैयन नहीं किया और किसी मुस्तनद (मोतबर) हदीस में भी इसका निर्धारण नहीं किया गया। तफ़सीर के इमामों में से किसी ने

गन्दुम (गेहूँ) का दरख़्त क़रार दिया, किसी ने अंगूर का, किसी ने इंजीर का, मगर जिसको क़ुरआन व हदीस ने ग़ैर-वाज़ेह (अस्पष्ट) छोड़ा है उसको मुतैयन करने की ज़रूरत ही क्या है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

فَتَكُونَا مِنَ الظّٰلِمِيْنَ٥

यानी अगर आपने इस मना किये गये दरख़्त को खाया तो आप ज़ालिमों में दाख़िल हो जायेंगे।

فَاَزَلَّهُمَا الشَّيْطٰنُ عَنْهَا

'ज़ल्लत' के मायने अ़रबी लुग़त में लग़ज़िश (फिसलने और बहक जाने) के हैं। 'इज़लाल' के मायने किसी को लग़ज़िश (फिसला) देना, मायने यह हैं कि शैतान ने आदम व हव्वा को लग़ज़िश दे दी (बहका दिया)। क़ुरआन के ये अलफ़ाज़ साफ़ इसका इज़हार कर रहे हैं कि हज़रत आदम व हव्वा का यह हुक्म के ख़िलाफ़ करना उस तरह का न था जो आ़म गुनाहगारों की तरफ़ से हुआ करता है, बल्कि शैतानी बहकाने और फिसलाने से किसी धोखे फ़रेब में मुब्तला होकर ऐसा क़दम उठाने की नौबत आ गई कि जिस दरख़्त को ममनू (वर्जित) क़रार दिया था उसका फल वग़ैरह खा बैठे। 'अ़न्हा' में लफ़्ज़ 'अ़न' सबब के मायने में है, यानी उस दरख़्त के सबब और ज़रिये से शैतान ने आदम व हव्वा को लग़ज़िश (फिसलने और भूल करने) में मुब्तला कर दिया।

यहाँ एक सवाल यह होता है कि जब शैतान को सज्दे से इनकार की बिना पर पहले ही मरदूद करके जन्नत से निकाल दिया गया था तो यह आदम व हव्वा को बहकाने के लिये जन्नत में कैसे पहुँचा? इसका बिल्कुल स्पष्ट जवाब यह है कि शैतान के बहकाने और वहाँ तक पहुँचने की बहुत सी सूरतें हो सकती हैं। यह भी मुम्किन है कि बग़ैर मुलाक़ात के उनके दिल में वस्वसा (ख़्याल) डाला हो और यह भी मुम्किन है कि शैतान जिन्नात में से है और अल्लाह तआ़ला ने जिन्नात को बहुत से ऐसे इख़्तियारात (ताक़तें व अधिकार) और अ़मल-दख़ल करने पर क़ुदरत दी है जो आ़म तौर पर इनसान नहीं कर सकते, उनको अनेक शक्लों में ज़ाहिर हो जाने की भी क़ुदरत दी है, हो सकता है कि अपनी जिन्नाती क़ुव्वत के ज़रिये जादूई अन्दाज़ की सूरत से आदम व हव्वा के ज़ेहन को प्रभावित किया हो, और यह भी हो सकता है कि किसी दूसरी शक्ल में जैसे साँप वग़ैरह की शक्ल में ज़ाहिर होकर जन्नत में दाख़िल हो गया हो, और शायद यही सबब हुआ कि आदम अ़लैहिस्सलाम को उसकी दुश्मनी की तरफ़ ध्यान न रहा। क़ुरआन मजीद की आयतः

وَقَاسَمَهُمَآ اِنِّىْ لَكُمَا لَمِنَ النّٰصِحِيْنَ٥ (٢١:٧)

(और उन दोनों के सामने क़समें खा-खाकर उनको यक़ीन दिलाने लगा कि मैं तुम्हारे शुभ चिंतकों में से हूँ) से बज़ाहिर यही मालूम होता है कि शैतान ने सिर्फ़ वस्वसा (ख़्याल) और ज़ेहनी असर डालने से काम नहीं लिया बल्कि आदम व हव्वा से ज़बानी गुफ़्तगू करके और क़समें खाकर उनको प्रभावित किया।

فَاَخْرَجَهُمَا مِمَّا كَانَا فِيْهِ

यानी शैतान ने इस धोखे और लग़ज़िश (बहकाने) के ज़रिये आदम व हव्वा को उन नेमतों से निकाल दिया जिनमें वे आराम से गुज़र बसर कर रहे थे। यह निकालना अगरचे अल्लाह के हुक्म से हुआ मगर सबब इसका शैतान था, इसलिये निकालने की निस्बत उसकी तरफ़ कर दी गई।

وَقُلْنَا اهْبِطُوْا بَعْضُكُمْ لِبَعْضٍ عَدُوٌّ.

यानी "हमने हुक्म दिया कि नीचे उतर जाओ, इस तरह कि तुम में बाज़े बाज़ों के (कुछ कुछ के) दुश्मन रहेंगे।" इस हुक्म के मुख़ातब हज़रत आदम व हव्वा हैं और अगर शैतान को उस वक़्त तक आसमानों से बाहर नहीं किया गया था तो वह भी इसी ख़िताब में शामिल है। इस सूरत में आपसी दुश्मनी होने का मतलब यह होगा कि शैतान के साथ तुम्हारी दुश्मनी व मुख़ालफ़त का सिलसिला दुनिया में भी जारी रहेगा, और अगर कुछ हज़रात के क़ौल को माना जाये तो इस वाक़िए के वक़्त से पहले ही शैतान निकाला जा चुका था तो फिर इस कलाम का रुख़ आदम व हव्वा और उनकी औलाद की तरफ़ होगा कि उनको बतौर नाराज़गी के यह जतलाया गया कि एक सज़ा तो यह है कि जन्नत से ज़मीन पर उतारा गया, दूसरी सज़ा इसके साथ यह भी है कि आपकी औलाद के दरमियान आपसी नफ़रतें भी होंगी, और ज़ाहिर है कि औलाद के अन्दर आपसी दुश्मनी व बैर होने से माँ-बाप की ज़िन्दगी का लुत्फ़ भी रुख़्सत हो जाता है, तो यह भी एक क़िस्म की मानवी और रूहानी सज़ा होगी। (तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

وَلَكُمْ فِي الْأَرْضِ مُسْتَقَرٌّ وَّمَتَاعٌ إِلَى حِيْنٍ ۝

यानी आदम व हव्वा अ़लैहिमस्सलाम को यह भी इरशाद हुआ कि तुमको ज़मीन पर कुछ अ़रसे तक ठहरना है और एक निर्धारित मियाद तक काम चलाना है। यानी ज़मीन पर जाकर भी हमेशा का रहना और ठिकाना न मिलेगा, कुछ मुद्दत के बाद उस घर को भी छोड़ना पड़ेगा।

बयान हुई आयतों से सम्बन्धित मसाईल और शरीअ़त के अहकाम

اُسْكُنْ اَنْتَ وَزَوْجُكَ الْجَنَّةَ.

'उस्कुन् अन्-त व ज़ौजुकल् जन्न-त' (रहो तुम और तुम्हारी बीवी जन्नत के अन्दर) में हज़रत आदम व हव्वा अ़लैहिमस्सलाम दोनों के लिये जन्नत को ठिकाना बनाने का इरशाद है जिसको मुख़्तसर लफ़्ज़ों में यूँ भी कहा जा सकता है:

اُسْكُنَا الْجَنَّةَ.

यानी "आप दोनों जन्नत में रहें" जैसा कि इसके बाद 'कुला' और 'ला तक़्रबा' में दोनों को एक ही सीग़े (कलिमे) में जमा किया गया है, मगर यहाँ इसके ख़िलाफ़ 'अन्-त व ज़ौजु-क' (तुम और तुम्हारी बीवी) के अलफ़ाज़ को इख़्तियार करने में मुख़ातब सिर्फ़ हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम को क़रार दिया और उन्हीं से फ़रमाया कि आपकी बीवी भी जन्नत में रहे। इसमें दो मसलों की तरफ़ इशारा है:

मसलाः अव्वल यह कि बीवी के लिये रिहाईश का इन्तिज़ाम शौहर के ज़िम्मे है। दूसरे यह कि रिहाईश में बीवी शौहर के ताबे है, जिस मकान में शौहर रहे उसमें उसको रहना चाहिये।

मसलाः लफ़्ज़ 'उस्कुन' में इस तरफ़ भी इशारा है कि उस वक़्त इन दोनों हज़रात के लिये जन्नत का क़ियाम सिर्फ़ आ़रज़ी (अस्थाई) था, हमेशा वाला क़ियाम जो मालिक होने की शान होती है

वह न थी, क्योंकि लफ़्ज़ 'उस्कुन' के मायने यह हैं कि इस मकान में रहा करो, यह नहीं फ़रमाया कि यह मकान तुम्हें दे दिया गया, यह तुम्हारा मकान है। वजह यह है कि अल्लाह तआ़ला के इल्म में था कि आगे चलकर ऐसे हालात पेश आयेंगे कि आदम व हव्वा को जन्नत का मकान छोड़ना पड़ेगा तथा जन्नत के मालिक होने का हक़ ईमान और नेक आमाल करके मुआ़वज़े में हासिल होता है जो क़ियामत के बाद होगा। इसी से फ़ुक़हा ने यह मसला निकाला है कि अगर कोई शख़्स किसी को कहे कि मेरे घर में रहा करो, या यह कि मेरा घर तुम्हारा ठिकाना है, तो इससे मकान की मिल्कियत और हमेशा रहने का हक़ उस शख़्स को हासिल नहीं होता। (क़ुर्तुबी)

ग़िज़ा व ख़ुराक में बीवी शौहर के ताबे नहीं

وَكُلَا مِنْهَا رَغَدًا

"यानी खाओ तुम दोनों जन्नत से फ़रागत के साथ" इसमें पहले बयान हुए अन्दाज़ के मुताबिक़ ख़िताब सिर्फ़ आदम अ़लैहिस्सलाम को नहीं किया गया बल्कि दोनों को एक ही लफ़्ज़ में शरीक करके 'कुला मिन्हा' फ़रमाया। इसमें इशारा इसकी तरफ़ हो सकता है कि ग़िज़ा और ख़ुराक में बीवी शौहर के ताबे नहीं, वह अपनी ज़रूरत व इच्छा के वक़्त अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ इस्तेमाल करे और यह अपनी इच्छा व तलब के मुताबिक़।

हर जगह चलने फिरने की आज़ादी इनसान का फ़ितरी हक़ है

رَغَدًا حَيْثُ شِئْتُمَا

लफ़्ज़ 'र-ग़दन' खाने की चीज़ों में ज़्यादती और अधिकता की तरफ़ इशारा है, कि जो चीज़ जितनी चाहें खा सकते हैं, सिवाय एक दरख़्त के और किसी चीज़ में रुकावट और मनाही नहीं। और लफ़्ज़ 'शिअ्तुमा' में जगहों के फैलाव का बयान है कि पूरी जन्नत में जहाँ चाहें जिस तरह चाहें खायें, कोई जगह और एरिया वर्जित इलाक़े में नहीं। इसमें इशारा है कि चलने फिरने और विभिन्न जगहों से अपनी ज़रूरतें हासिल करने की आज़ादी इनसान का फ़ितरी हक़ है, एक सीमित व निर्धारित मक़ाम या मकान में अगरचे ज़रूरत व इच्छा की सारी चीज़ें मुहैया कर दी जायें मगर वहाँ से बाहर जाना मना हो तो यह भी एक क़िस्म की क़ैद है, इसलिये हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम को खाने पीने की तमाम चीज़ें ख़ूब ज़्यादा और फ़रागत अ़ता कर देने पर इक्तिफ़ा (बस) नहीं किया गया बल्कि 'हैसु शिअ्तुमा' फ़रमाकर उनको चलने फिरने और हर जगह जाने की आज़ादी भी दी गई।

वास्तों और माध्यमों पर पाबन्दी लगा देने का मसला

وَلَا تَقْرَبَا هٰذِهِ الشَّجَرَةَ

"यानी उस दरख़्त के क़रीब भी न जाओ" ज़ाहिर है कि असल मक़सद तो यह था कि उस

दरख़्त या उसके फल को न खाओ मगर एहतियाती हुक्म यह दिया गया कि उसके क़रीब भी न जाओ। इससे उसूले फ़िक़ा का मसला 'सद्दे-ज़राय' साबित हुआ, यानी कुछ चीज़ें अपनी ज़ात में नाजायज़ या मना नहीं होतीं लेकिन जब यह ख़तरा हो कि उन चीज़ों के इख़्तियार करने से किसी हराम नाजायज़ काम में मुब्तला हो जायेगा तो उस जायज़ चीज़ से भी रोक दिया जाता है। जैसे दरख़्त के क़रीब जाना ज़रिया (माध्यम और वास्ता) बन सकता था उसके फल फूल खाने का, उस ज़रिये को भी मना फ़रमा दिया गया इसी का नाम उसूले फ़िक़ा की इस्तिलाह में "सद्दे-ज़राय" है (यानी उन माध्यमों और वास्तों से भी रोक देना जो वर्जित चीज़ तक जाने का सबब बन सकें)।

अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के मासूम होने का मसला

इस वाक़िए से मालूम हुआ कि हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम को किसी ख़ास दरख़्त के खाने से मना फ़रमाया गया था और इस पर सचेत कर दिया गया था कि शैतान तुम्हारा दुश्मन है, ऐसा न हो कि वह तुम्हें गुनाह में मुब्तला कर दे। इसके बावजूद आदम अ़लैहिस्सलाम ने उस दरख़्त से खा लिया जो बज़ाहिर गुनाह है, हालाँकि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम गुनाह से मासूम (सुरक्षित) होते हैं। तहक़ीक़ यह है कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की हिफ़ाज़त तमाम गुनाहों से अ़क़्लन व नक़्लन् साबित है। चारों इमामों और जमहूरे उम्मत का इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम तमाम छोटे बड़े गुनाहों से मासूम व महफ़ूज़ होते हैं, और बाज़ लोगों ने जो यह कहा है कि सग़ीरा (छोटे) गुनाह उनसे भी हो सकते हैं, जमहूरे उम्मत के नज़दीक उनकी यह बात सही नहीं। (क़ुर्तुबी)

वजह यह है कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को लोगों का मुक़्तदा (पेशवा) बनाकर भेजा जाता था, अगर उनसे भी कोई काम अल्लाह तआ़ला की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ छोटा या बड़ा गुनाह सादिर हो सके तो अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के अक़वाल व अफ़आ़ल (बातों और कामों) से अमन उठ जायेगा और वे क़ाबिले एतिमाद नहीं रहेंगे। जब अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम ही पर भरोसा व इत्मीनान न रहे तो दीन का कहाँ ठिकाना है। अलबत्ता क़ुरआने करीम की बहुत सी आयतों में कई अम्बिया के बारे में ऐसे वाक़िआ़त मज़कूर हैं जिनसे मालूम होता है कि उनसे गुनाह हो गया और अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से उन पर नाराज़गी का इज़हार भी हुआ। हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम का यह क़िस्सा भी उसी में दाख़िल है।

तमाम उम्मत का इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि ऐसे वाक़िआ़त का हासिल यह है कि किसी ग़लत-फ़हमी या भूल-चूक की वजह से ऐसे कामों का सुदूर हो जाता है, कोई पैग़म्बर जान-बूझकर अल्लाह तआ़ला के किसी हुक्म के ख़िलाफ़ अ़मल नहीं करता। ग़लती इज्तिहादी होती है, या चूक और भूल के सबब क़ाबिले माफ़ी होती है जिसको शरीअ़त की इस्तिलाह में गुनाह नहीं कहा जा सकता, और यह भूल-चूक की ग़लती उनसे ऐसे कामों में नहीं हो सकती जिनका ताल्लुक़ तब्लीग़ व तालीम और शरई क़ानून से हो, बल्कि उनसे निजी कामों और व्यक्तिगत आमाल में ऐसी भूल-चूक हो सकती है। (तफ़सीर बहरे मुहीत)

मगर चूँकि अल्लाह तआ़ला के नज़दीक अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का मक़ाम बहुत बुलन्द है और बड़ों से छोटी सी ग़लती भी हो जाये तो बहुत बड़ी ग़लती समझी जाती है। इसलिये क़ुरआने करीम में

ऐसे वाक़िआत को नाफ़रमानी और गुनाह से ताबीर किया गया है और उस पर नाराज़गी का इज़हार भी किया गया है, अगरचे हक़ीक़त के एतिबार से वो गुनाह ही नहीं।

हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम के इस वाक़िए के बारे में उलेमा-ए-तफ़सीर ने बहुत सी वुजूहात (कारण और असबाब) लिखे और स्पष्टीकरण दिये हैं उनमें से चन्द ये हैं:

अव्वल यह कि जिस वक़्त आदम अ़लैहिस्सलाम को मना किया गया था तो एक ख़ास दरख़्त की तरफ़ इशारा करके मना किया गया कि उसके क़रीब न जाओ, और मुराद ख़ास यही दरख़्त नहीं था बल्कि उसकी जिन्स (प्रजाति) के सारे दरख़्त मुराद थे। जैसे हदीस में है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक मर्तबा रेशमी कपड़ा और एक टुकड़ा सोने का हाथ में लेकर इशारा फ़रमाया कि ये दोनों चीज़ें मेरी उम्मत के मर्दों पर हराम हैं। ज़ाहिर है कि हुर्मत सिर्फ़ उस कपड़े और सोने के साथ मख़्सूस नहीं थी जो नबी करीम सल्ल. के हाथ मुबारक में थे, बल्कि तमाम रेशमी कपड़े और सोने का यही हुक्म है। लेकिन यहाँ किसी को यह वहम भी हो सकता है कि मनाही सिर्फ़ उस कपड़े और सोने के साथ जुड़ी हुई है जो उस वक़्त आप सल्ल. के हाथ मुबारक में थे। इसी तरह हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम को यह ख़्याल हो गया कि जिस दरख़्त की तरफ़ इशारा करके मना किया गया था मनाही उसी के साथ ख़ास है। शैतान ने यही वस्वसा (ख़्याल) उनके दिल में अच्छी तरह जमा दिया और क़समें खाकर यह यक़ीन दिलाया कि मैं तुम्हारा ख़ैरख़्वाह (भला चाहने वाला) हूँ तुम्हें किसी ऐसे काम का मश्विरा नहीं दे रहा जो तुम्हारे लिये मना या नुक़सानदेह हो। जिस दरख़्त की मनाही की गई है वह दूसरा है, इस दरख़्त की मनाही नहीं है।

और यह भी मुम्किन है कि शैतान ने यह वस्वसा (ख़्याल और बहकावा) दिल में डाला हो कि इस दरख़्त की मनाही सिर्फ़ आपकी पैदाईश के शुरू के वक़्त के साथ मख़्सूस थी, जैसे छोटे बच्चों को शुरू उम्र में ताक़तवर ग़िज़ा से रोका जाता है, हल्की ग़िज़ा दी जाती है और क़ुव्वत पैदा हो जाने के बाद हर ग़िज़ा की इजाज़त हो जाती है, तो अब आप ताक़तवर हो चुके हैं इसलिये वह मनाही बाक़ी नहीं रही।

और यह भी मुम्किन है कि हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम को जिस वक़्त शैतान ने उस दरख़्त के खाने के नफ़े (लाभ) बतलाये कि इसके खाने से हमेशा-हमेशा के लिये जन्नत की नेमतों में रहने का इत्मीनान हो जायेगा। उस वक़्त उनको वह मनाही याद न रही हो जो पैदाईश के शुरू के दौर के वक़्त उस दरख़्त के मुताल्लिक़ की गई थी। क़ुरआने करीम की आयत में है:

فَنَسِيَ وَلَمْ نَجِدْ لَهُ عَزْمًا ۝ (٢٠: ١١٥)

यानी "आदम भूल गये और हमने उनमें पुख़्तगी न पाई।"

यह आयत इसी शक और संभावना की ताईद करती है।

बहरहाल! इस तरह के कई एहतिमाल हो सकते हैं जिनका हासिल यह है कि जान-बूझकर नाफ़रमानी हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम से नहीं हुई, भूल हो गई या अन्दाज़ा करने और सोचने में चूक हुई जो वास्तव में गुनाह नहीं, मगर आदम अ़लैहिस्सलाम की शाने नुबुव्वत और अल्लाह की निकटता के बुलन्द मक़ाम के एतिबार से यह लग़ज़िश (ख़ता व चूक) भी बड़ी समझी गई, और क़ुरआन में इसको नाफ़रमानी के अलफ़ाज़ से ताबीर किया गया और आदम अ़लैहिस्सलाम की तौबा व इस्तिग़फ़ार

के बाद माफ़ करने का ज़िक्र फ़रमाया गया।

और यह बहस फ़ुज़ूल है कि जब शैतान को जन्नत से मरदूद करके निकाल दिया गया था तो फिर वह आदम अ़लैहिस्सलाम को बहकाने के लिये वहाँ किस तरह पहुँचा? क्योंकि शैतान के बहकाने और वस्वसा (दिल में बुरा ख़्याल) डालने के लिये यह ज़रूरी नहीं कि जन्नत में दाख़िल होकर ही वस्वसा डाले, जिन्नात व शैतानों को हक़ तआ़ला ने यह क़ुदरत दी है कि वे दूर से भी दिल में वस्वसा डाल सकते हैं, और अगर दाख़िल होकर डायरेक्ट बातचीत ही को तस्लीम किया जाये तो इसके भी अनेक एहतिमाल हो सकते हैं, जिसकी तहक़ीक़ में पड़ना बेफ़ायदा और बेमक़सद बहस है।

इसी तरह यह सवाल कि आदम व हव्वा अ़लैहिमस्सलाम को अल्लाह तआ़ला ने पहले ही तंबीह कर दी थीः

اِنَّ الشَّيْطٰنَ لَكُمَا عَدُوٌّ

कि "शैतान तुम्हारा दुश्मन है" ऐसा न हो कि यह कोई ऐसा काम करा दे जिसकी वजह से तुम्हें जन्नत से निकलना पड़े, फिर हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम उसके धोखे में किस तरह आ गये? इसका जवाब भी यही है कि अल्लाह तआ़ला ने जिन्नात व शैतानों को विभिन्न शक्लों में ज़ाहिर होने की क़ुदरत अ़ता फ़रमाई है, मुम्किन है कि वह किसी ऐसी सूरत में सामने आया हो जिसकी वजह से आदम अ़लैहिस्सलाम यह न पहचान सके कि यह शैतान है।

فَتَلَقّٰۤى اٰدَمُ مِنْ رَّبِّهٖ كَلِمٰتٍ فَتَابَ عَلَيْهِ ؕ اِنَّهٗ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ﴿۳۷﴾ قُلْنَا اهْبِطُوْا مِنْهَا جَمِيْعًا ۚ فَاِمَّا يَاْتِيَنَّكُمْ مِّنِّىْ هُدًى فَمَنْ تَبِعَ هُدَاىَ فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿۳۸﴾ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَكَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَاۤ اُولٰۤئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿۳۹﴾

फ़-तलक़्क़ा आदमु मिर्रब्बिही कलिमातिन् फ़ता-ब अ़लैहि, इन्नहू हुवत्तव्वाबुर्रहीम (37) क़ुल्नह्बितू मिन्हा जमीअ़न् फ़-इम्मा यअ्तियन्नकुम् मिन्नी हुदन् फ़-मन् तबि-अ हुदा-य फ़ला ख़ौफ़ुन् अ़लैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून (38) वल्लज़ी-न क-फ़रू व कज़्ज़बू बिआयातिना उलाइ-क अस्हाबुन्नारि हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (39) ✿	फिर सीख लीं आदम ने अपने रब से चन्द बातें फिर मुतवज्जह हो गया अल्लाह उस पर, बेशक वही है तौबा क़ुबूल करने वाला मेहरबान। (37) हमने हुक्म दिया नीचे जाओ यहाँ से तुम सब, फिर अगर तुमको पहुँचे मेरी तरफ़ से कोई हिदायत तो जो चला मेरी हिदायत पर न ख़ौफ़ होगा उन पर और न वे ग़मगीन होंगे। (38) और जो लोग मुन्किर हुए और झुठलाया हमारी निशानियों को वे हैं दोज़ख़ में जाने वाले, वे उसमें हमेशा रहेंगे। (39) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

उसके बाद हासिल कर लिए आदम ने अपने रब से चन्द अलफ़ाज़ (यानी ग़लती मानने के कलिमात कि वे भी अल्लाह तआ़ला ही से हासिल हुए थे। हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम की शर्मिन्दगी पर अल्लाह तआ़ला की रहमत मुतवज्जह हुई और ख़ुद ही माज़िरत (माफ़ी) के अलफ़ाज़ तालीम फ़रमा दिये) तो अल्लाह तआ़ला ने रहमत के साथ तवज्जोह फ़रमाई उन पर (यानी तौबा क़ुबूल कर ली) बेशक वही हैं बड़े तौबा क़ुबूल करने वाले, बड़े मेहरबान। (और हज़रत हव्वा की तौबा का बयान सूरः आराफ़ में है:

قَالَا رَبَّنَا ظَلَمْنَآ اَنْفُسَنَا

'उन दोनों ने कहा ऐ हमारे रब! ज़ुल्म कर लिया हमने अपनी जानों पर' जिससे मालूम हुआ कि वह भी तौबा करने और तौबा के क़ुबूल होने में हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम के साथ शरीक रहीं, मगर माफ़ फ़रमाने के बाद भी ज़मीन पर जाने के हुक्म को मन्सूख़ (निरस्त और ख़त्म) नहीं फ़रमाया, क्योंकि इसमें हज़ारों हिक्मतें और मस्लेहतें छुपी थीं। अलबत्ता उसका तरीक़ा बदल दिया कि पहला हुक्म ज़मीन पर उतरने का हाकिमाना अन्दाज़ में सज़ा के तौर पर था अब यह हुक्म हकीमाना अन्दाज़ से इस तरह इरशाद हुआ:

قُلْنَا اهْبِطُوْا مِنْهَا جَمِيْعًا.........الاية

यानी (हमने हुक्म फ़रमाया- नीचे जाओ इस जन्नत से सब के सब, फिर अगर आए तुम्हारे पास मेरी तरफ़ से किसी क़िस्म की हिदायत (यानी वही के ज़रिये शरीअ़त के अहकाम), सो जो शख़्स पैरवी करेगा मेरी उस हिदायत की तो न कुछ अन्देशा होगा उस पर और न ऐसे लोग ग़मगीन होंगे (यानी उन पर कोई ख़ौफ़नाक वाक़िआ़ न पड़ेगा और क़ियामत के हौलनाक वाक़िआ़त से उनका भी ख़ौफ़ज़दा होना इसके ख़िलाफ़ नहीं, जैसा कि सही हदीसों में सब पर हौल और ख़ौफ़ का आ़म होना मालूम होता है। 'हुज़्न' वह कैफ़ियत है जो किसी नुक़सान व मुसीबत के पड़ जाने के बाद दिल में पैदा होती है, और 'ख़ौफ़' हमेशा किसी नुक़सान व मुसीबत के ज़ाहिर होने से पहले हुआ करता है। यहाँ हक़ तआ़ला ने हुज़्न व ग़म दोनों की नफ़ी फ़रमा दी, क्योंकि उन पर कोई आफ़त व परेशानी वाक़े न होगी जिससे ग़म या ख़ौफ़ हो। आगे उन लोगों का हाल बयान किया है जो उस हिदायत की पैरवी न करें, फ़रमाया) और जो लोग कुफ़्र करेंगे और झुठलाएँगे हमारे अहकाम को, ये लोग होंगे दोज़ख़ वाले, वे उसमें हमेशा रहेंगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

पिछली आयतों से इन आयतों के मज़मून का ताल्लुक़

पिछली आयतों में शैतानी वस्वसे (दिल में ख़्याल डालने व बहकाने) और हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम के बहकने और उसके नतीजे में जन्नत से निकलने और ज़मीन पर उतरने का हुक्म

मज़कूर था। हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम ने ऐसे ख़िताब व नाराज़गी कहाँ सुने थे, न ऐसे पत्थर दिल थे कि इसकी सहार कर जाते। बेचैन हो गये और फ़ौरन ही माफ़ी की दरख़्वास्त करने लगे। मगर पैग़म्बराना मारिफ़त (यानी अल्लाह के मक़ाम की पहचान) और उसकी वजह से हद से ज़्यादा भय से कोई बात ज़बान से न निकलती थी, या इस ख़ौफ़ से कि माफ़ी की दरख़्वास्त कहीं ख़िलाफ़े शान होकर और ज़्यादा नाराज़गी का सबब न बन जाये, ज़बान ख़ामोश थी। अल्लाह रब्बुल-इ़ज़्ज़त दिलों की बात से वाक़िफ़ और रहीम व करीम हैं। यह हालत देखकर ख़ुद ही माफ़ी के लिये कुछ कलिमात उनको सिखा दिये। इसका बयान इन आयतों में है कि आदम अ़लैहिस्सलाम ने हासिल कर लिये अपने रब से चन्द अलफ़ाज़ तो अल्लाह तआ़ला ने उन पर रहमत के साथ तवज्जोह फ़रमाई (यानी उनकी तौबा क़ुबूल कर ली)। बेशक वही हैं बड़े तौबा क़ुबूल करने वाले, मेहरबान।

मगर चूँकि इस ज़मीन पर आने में और भी हज़ारों हिक्मतें और मस्लेहतें छुपी थीं, जैसे उनकी नस्ल से फ़रिश्तों और जिन्नात के दरमियान एक नई इनसानी नस्ल का वजूद में आना और उनको एक तरह का इख़्तियार देकर शरीअ़त के अहकाम का पाबन्द बनाना, फिर उनमें अल्लाह की ख़िलाफ़त क़ायम करना, हदें (शरई सज़ायें) और शरई अहकाम जारी व लागू करना, ताकि यह नई मख़्लूक़ तरक़्क़ी करके उस मक़ाम पर पहुँच सके जो बहुत से फ़रिश्तों को भी नसीब नहीं, और इन उद्देश्यों का ज़िक्र आदम अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश से पहले ही कर दिया गया था। जैसा कि फ़रमायाः

اِنِّیْ جَاعِلٌ فِی الْاَرْضِ خَلِیْفَةً.

(मैं बनाने वाला हूँ ज़मीन में एक नायब और ख़लीफ़ा) इसलिये ख़ता माफ़ करने के बाद भी ज़मीन पर उतरने का हुक्म मन्सूख़ (ख़त्म और निरस्त) नहीं फ़रमाया, अलबत्ता इसका अन्दाज़ बदल दिया कि पहला हुक्म हाकिमाना और ज़मीन पर उतारना बतौर सज़ा के था, अब यह इरशाद हकीमाना और ज़मीन पर आना अल्लाह की ख़िलाफ़त के सम्मान के साथ हुआ। इसलिये बाद की आयतों में उन ज़िम्मेदारियों का बयान है जो एक अल्लाह का ख़लीफ़ा होने की हैसियत से उन पर आ़यद की गयी थीं, इसी लिये ज़मीन पर उतरने के हुक्म को फिर दोबारा बयान करके फ़रमाया कि हमने हुक्म फ़रमाया कि नीचे जाओ इस जन्नत से सब के सब। फिर अगर आये तुम्हारे पास मेरी तरफ़ से किसी क़िस्म की हिदायत, यानी वही के ज़रिये शरीअ़त के अहकाम तो जो शख़्स पैरवी करेगा मेरी उस हिदायत की तो न कुछ अन्देशा होगा उन पर और न वे ग़मगीन होंगे। यानी न किसी पहली गुज़री चीज़ के अपने पास से जाते रहने का ग़म होगा, न आईन्दा किसी तकलीफ़ का ख़तरा।

'तलक़्क़ा' तलक़्क़ी के मायने हैं शौक़ और दिलचस्पी के साथ किसी का स्वागत करना और उसको क़ुबूल करना। (रूहुल-मआ़नी, तफ़सीरे कश्शाफ़) मुराद यह है कि अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से जब उनको तौबा के कलिमात की तालीम की गई तो आदम अ़लैहिस्सलाम ने एहतिमाम के साथ उनको क़ुबूल किया।

'कलिमातिन' वो कलिमात जो हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम को तौबा के उद्देश्य से बतलाये गये थे क्या थे, इसमें मुफ़स्सिरीन सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से कई रिवायतें मन्क़ूल हैं। मशहूर क़ौल हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु का है कि वो कलिमात वही हैं जो क़ुरआन मजीद में दूसरी

जगह मन्क़ूल हैं। यानीः

رَبَّنَا ظَلَمْنَآ اَنْفُسَنَا وَاِنْ لَّمْ تَغْفِرْ لَنَا وَتَرْحَمْنَا لَنَكُوْنَنَّ مِنَ الْخٰسِرِيْنَo(٧:٢٣)

रब्बना ज़लम्ना अन्फ़ुसना व इल्लम तग़्फ़िर लना व तर्हम्ना ल-नकूनन्-न मिनल् ख़ासिरीन।

(यानी हमारे परवर्दिगार! हमने अपनी जानों पर ज़ुल्म कर लिया है, अगर आप माफ़ न करें और हम पर रहम न करें तो हम सख़्त घाटे वालों में दाख़िल हो जायेंगे)

'ता-ब' तौबा के असल मायने रुजू करने के हैं और जब तौबा की निस्बत बन्दे की तरफ़ की जाती है तो इसके मायने तीन चीज़ों का मजमूआ होता है- अव्वल अपने किये हुए गुनाह को गुनाह समझना और उस पर नादिम व शर्मिन्दा होना। दूसरे उस गुनाह को बिल्कुल छोड़ देना। तीसरे आईन्दा के लिये दोबारा न करने का पुख़्ता अहद और इरादा करना। अगर इन तीन चीज़ों में से एक की भी कमी हुई तो वह तौबा नहीं। इससे मालूम हुआ कि सिर्फ़ ज़बान से "अल्लाह तौबा" के अलफ़ाज़ बोल देना निजात के लिये काफ़ी नहीं, जब तक ये तीनों चीज़ें जमा न हों यानी पहले गुज़रे पर शर्मिन्दगी और हाल में उसका छोड़ देना और भविष्य में उसके न करने का पक्का इरादा।

'ता-ब अ़लैहि' यहाँ तौबा की निस्बत अल्लाह तआ़ला की तरफ़ है इसके मायने हैं तौबा क़ुबूल करना। पहले ज़माने के कुछ हज़रात से पूछा गया कि जिस शख़्स से कोई गुनाह हो जाये वह क्या करे, तो फ़रमाया वही काम करे जो उसके पहले माँ-बाप आदम व हव्वा अ़लैहिमस्सलाम ने किया कि अपने किये पर शर्मिन्दगी और आईन्दा न करने के पक्के इरादे के साथ अल्लाह तआ़ला से माफ़ी के लिये अ़र्ज़ कियाः

رَبَّنَا ظَلَمْنَآ اَنْفُسَنَا وَاِنْ لَّمْ تَغْفِرْ لَنَا وَتَرْحَمْنَا لَنَكُوْنَنَّ مِنَ الْخٰسِرِيْنَo (٧:٢٣)

(यानी हमारे परवर्दिगार! हमने अपनी जानों पर ज़ुल्म कर लिया है, अगर आप माफ़ न करें और हम पर रहम न करें तो हम सख़्त घाटे वालों में दाख़िल हो जायेंगे) इसी तरह हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम ने अ़र्ज़ कियाः

رَبِّ اِنِّيْ ظَلَمْتُ نَفْسِيْ فَاغْفِرْلِيْ. (٢٨:١٦)

"यानी ऐ मेरे पालने वाले! मैंने अपनी जान पर ज़ुल्म कर लिया है, तो आप ही मेरी मग़फ़िरत फ़रमाईये।" और हज़रत यूनुस अ़लैहिस्सलाम से जब भूल और ख़ता हो गई तो अ़र्ज़ कियाः

لَآ اِلٰهَ اِلَّآ اَنْتَ سُبْحٰنَكَ اِنِّيْ كُنْتُ مِنَ الظّٰلِمِيْنَo (٢١:٨٧)

"यानी अल्लाह के सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं, आप हर बुराई से पाक हैं, मैं ज़ुल्म करने वालों में दाख़िल हो गया हूँ (मतलब यह है कि मुझ पर रहम फ़रमाईये)। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

फ़ायदाः हज़रत आदम व हव्वा अ़लैहिमस्सलाम से जो विचार करने और समझने की ग़लती या भूल सादिर हुई है पहली बात तो यह है क़ुरआने करीम ने दोनों ही की तरफ़ उसकी निस्बत की हैः

فَاَزَلَّهُمَا الشَّيْطٰنُ عَنْهَا فَاَخْرَجَهُمَا.

(फिर फिसला दिया उन दोनों को शैतान ने और उनको वहाँ से निकलवा दिया) और ज़मीन पर उतरने के हुक्म में भी हज़रत हव्वा अ़लैहस्सलाम को शरीक करके लफ़्ज़ 'इह्बितू' (तुम सब उतरो) फ़रमाया है। मगर बाद में तौबा और तौबा के क़ुबूल में मुफ़रद (एक वचन) लफ़्ज़ सिर्फ़ आदम

अ़लैहिस्सलाम का ज़िक्र है, हज़रत हव्वा का नहीं। इस जगह के अ़लावा भी इस ख़ता और भूल का ज़िक्र सिर्फ़ आदम अ़लैहिस्सलाम की तरफ़ करके किया गया है। जैसे एक जगह फ़रमायाः

وَعَصٰٓى اٰدَمُ

(और हुक्म के ख़िलाफ़ किया आदम ने.....) वग़ैरह।

हो सकता है कि इसकी वजह यह रियायत हो कि औ़रत को अल्लाह तआ़ला ने छुपी हुई चीज़ बनाया है, इसलिये पर्दा रखने के तौर पर गुनाह और नाराज़गी के ज़िक्र में उसका ज़िक्र स्पष्ट तौर पर नहीं फ़रमाया। और एक जगह 'रब्बना ज़लम्ना अन्फ़ुसना........' में दोनों की तौबा का ज़िक्र कर भी दिया गया ताकि किसी को यह शुब्हा न रहे कि हज़रत हव्वा अ़लैहस्सलाम का क़सूर माफ़ नहीं हुआ। इसके अ़लावा औ़रत चूँकि अक्सर हालात में मर्द के ताबे है इसलिये उसके मुस्तक़िल ज़िक्र की ज़रूरत नहीं समझी गई। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

'तव्वाब' और 'तायब' में फ़र्क़

इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि लफ़्ज़ 'तव्वाब' बन्दे के लिये भी बोला जाता है जैसे एक जगह फ़रमाया 'इन्नल्ला-ह युहिब्बुत्तव्वाबीन' और अल्लाह तआ़ला के लिये भी जैसे इस आयत में फ़रमाया 'हुवत्तव्वाबुर्रहीम'।

लफ़्ज़ 'तव्वाब' जब बन्दे के लिये इस्तेमाल होता है तो मायने होते हैं गुनाह से इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) की तरफ़ रुजू करने वाला, और जब अल्लाह तआ़ला के लिये इस्तेमाल होता है तो मायने होते हैं तौबा क़ुबूल करने वाला। यह सिर्फ़ लफ़्ज़ 'तव्वाब' का हुक्म है। इस मायने का दूसरा लफ़्ज़ 'तायब' है, इसका इस्तेमाल अल्लाह तआ़ला के लिये जायज़ नहीं, अगरचे लुग़त के मायने के एतिबार से वह भी ग़लत नहीं मगर अल्लाह तआ़ला की शान में सिर्फ़ वही सिफ़ात और अलक़ाब इस्तेमाल करना जायज़ हैं जिनका ज़िक्र क़ुरआन व हदीस में आया है, बाक़ी दूसरे अलफ़ाज़ अगरचे मायने के एतिबार से सही हों मगर अल्लाह तआ़ला के लिये उनका इस्तेमाल दुरुस्त नहीं।

गुनाह से तौबा क़ुबूल करने का इख़्तियार ख़ुदा तआ़ला के सिवा किसी को नहीं

इस आयत से यह भी मालूम हुआ कि तौबा क़ुबूल करने और गुनाह माफ़ करने का इख़्तियार सिवाय अल्लाह तआ़ला के और किसी को नहीं। यहूद व ईसाई इस क़ायदे से ग़फ़लत की बिना पर सख़्त फ़ितने में मुब्तला हो गये कि पादरियों और पीरों के पास जाते और उनको कुछ हदिया देकर अपने गुनाह माफ़ करा लेते और समझते थे कि उन्होंने माफ़ कर दिया तो अल्लाह तआ़ला के नज़दीक भी माफ़ हो गया, आज भी बहुत से नावाक़िफ़ मुसलमान इस तरह के ग़लत और कच्चे अ़क़ीदे रखते हैं जो सरासर ग़लत हैं, कोई आ़लिम या मुर्शिद किसी के गुनाह को माफ़ नहीं कर सकता, ज़्यादा से ज़्यादा दुआ़ कर सकता है।

आदम अ़लैहिस्सलाम का ज़मीन पर उतरना सज़ा के तौर पर नहीं बल्कि एक मक़सद को पूरा करने के लिये था

قُلْنَا اهْبِطُوْا مِنْهَا جَمِيْعًا.

(हमने कहा तुम सब यहाँ से उतरो) जन्नत से ज़मीन पर उतरने का हुक्म इससे पहली आयत में आ चुका है, इस जगह फिर इसको दोबारा लाने में ग़ालिबन यह हिक्मत है कि पहली आयत में ज़मीन पर उतारने का ज़िक्र सज़ा और नाराज़गी के तौर पर आया था, इसी लिये उसके साथ इनसानों की आपसी नफ़रत का भी ज़िक्र किया गया था, और यहाँ ज़मीन पर उतारने का ज़िक्र एक ख़ास मक़सद (अल्लाह की ख़िलाफ़त) के पूरा करने के लिये इज़्ज़त व सम्मान के साथ है, इसी लिये इसके साथ हिदायत भेजने का ज़िक्र है जो ख़िलाफ़ते इलाही के मन्सबी फ़राईज़ (ज़िम्मेदारियों) में से है। इससे यह भी मालूम हो गया कि अगरचे ज़मीन पर उतरने का हुक्म शुरू में नाराज़गी और सज़ा के तौर पर था, मगर बाद में जब ख़ता माफ़ कर दी गई तो दूसरी मस्लेहतों और हिक्मतों के पेशे नज़र ज़मीन पर भेजने के हुक्म को उसकी हैसियत से बदलकर बरक़रार रखा गया और अब इनका उतरना ज़मीन के हाकिमों और ख़लीफ़ा की हैसियत से हुआ, और यह वही हिक्मत है जिसका ज़िक्र आदम अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश के वक़्त ही फ़रिश्तों से किया जा चुका था, कि ज़मीन के लिये उनको ख़लीफ़ा बनाना था।

रंज व ग़म से निजात सिर्फ़ उन लोगों को नसीब होती है जो अल्लाह के फ़रमाँबरदार हैं

فَمَنْ تَبِعَ هُدَایَ فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ٥

इस आयत में आसमानी हिदायतों की पैरवी करने वालों के लिये दो इनाम ज़िक्र हुए हैं- एक यह कि उन पर कोई ख़ौफ़ न होगा, दूसरे यह कि वे ग़मगीन न होंगे।

'ख़ौफ़' आईन्दा पेश आने वाली किसी तकलीफ़ व मुसीबत के अन्देशे का नाम है और **'हुज़्न'** किसी मक़सद व मुराद के पूरा न होने और हाथ से जाते रहने से पैदा होने वाले ग़म को कहा जाता है। ग़ौर किया जाये तो ऐश व राहत की तमाम क़िस्मों का इन दो लफ़्ज़ों में ऐसा इहाता कर दिया गया है कि आराम व राहत का कोई फ़र्द और कोई क़िस्म इससे बाहर नहीं। फिर इन दोनों लफ़्ज़ों की ताबीर में एक ख़ास फ़र्क़ किया गया है कि ख़ौफ़ की नफ़ी तो आ़म अन्दाज़ में कर दी गई मगर हुज़्न के बारे में यह नहीं फ़रमाया कि 'व ला हुज़्-न अ़लैहिम्' (कि उन पर कोई ग़म नहीं) बल्कि फ़ेल के सीग़े के साथ लाया गया और फ़रमाया गया 'व ला हुम यह्ज़नून'। इसमें इशारा इस तरफ़ है कि किसी चीज़ या मुराद के जाते रहने के ग़म से आज़ाद होना सिर्फ़ उन्हीं औलिया-अल्लाह का मक़ाम है जो अल्लाह तआ़ला की दी हुई हिदायतों की मुकम्मल पैरवी करने वाले हैं। उनके सिवा कोई

इनसान इस ग़म से नहीं बच सकता, चाहे वह पूरी दुनिया का बादशाह हो या दुनिया का बड़े से बड़ा मालदार हो, क्योंकि इनमें कोई भी ऐसा नहीं होता जिसको अपनी तबीयत और इच्छा के ख़िलाफ़ कोई बात पेश न आये और उसका ग़म न हो। जैसा कि कहा गया है:

दरीं दुनिया कसे बे-ग़म न-बाशद्
व गर बाशद् बनी आदम न-बाशद्

(कि इस दुनिया में कोई ऐसा इनसान नहीं जिसको कोई परेशानी और ग़म न लगा हो, क्योंकि इनसान और रंज व परेशानी का तो चौली-दामन का साथ है। **मुहम्मद इमरान क़ासमी**)

सिवाय औलिया-अल्लाह के कि वे अपनी मर्ज़ी और इरादे को अल्लाह रब्बुल-इज़्ज़त की मर्ज़ी और इरादे में फ़ना कर देते हैं, इसलिये उनको किसी चीज़ के अपने पास से जाते रहने या हासिल न होने का ग़म नहीं होता। क़ुरआन मजीद में दूसरी जगह भी इसको ज़ाहिर किया गया है कि ख़ास जन्नत वालों ही का यह हाल होगा कि वे जन्नत में पहुँचकर अल्लाह तआ़ला का इस पर शुक्र करेंगे कि उनसे ग़म दूर कर दिया गया। फ़रमायाः

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِیْٓ اَذْهَبَ عَنَّا الْحَزَنَ. (٣٥:٣٧)

(तमाम तारीफ़ें उस अल्लाह के लिये हैं जिसने हमसे ग़म और रंज को दूर कर दिया।)

इससे मालूम हुआ कि इस दुनिया में कुछ न कुछ ग़म होना हर इनसान के लिये लाज़िमी है सिवाय उस शख़्स के जिसने अपना ताल्लुक़ हक़ तआ़ला के साथ मुकम्मल और मज़बूत कर लिया हो। ख़्वाजा अ़ज़ीज़ुल-हसन मजज़ूब रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने ख़ूब फ़रमाया हैः

जो बचना हो ग़मों से आपका दीवाना हो जाये

इस आयत में अल्लाह वालों से ख़ौफ़ व ग़म की नफ़ी करने से मुराद यह है कि दुनिया की किसी तकलीफ़ या इच्छा व मुराद पर उनको ख़ौफ़ व ग़म न होगा, आख़िरत की फ़िक्र व ग़म और अल्लाह जल्ल शानुहू की हैबत व जलाल तो उन पर और सबसे ज़्यादा होती है। इसी लिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की शान में यह आया है कि आप अक्सर ग़मगीन और चिन्तित रहते थे वजह यह है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का यह फ़िक्र व ग़म किसी दुनियावी नेमत के न मिलने या जाते रहने या किसी मुसीबत के ख़तरे से नहीं बल्कि अल्लाह जल्ल शानुहू की हैबत व जलाल से और उम्मत के हालात की वजह से था।

इसी के साथ इससे यह भी लाज़िम नहीं आता कि दुनिया में जो चीज़ें ख़ौफ़नाक (भय पैदा करने वाली) समझी जाती हैं उनसे अम्बिया व औलिया को इनसानी तौर पर तबई ख़ौफ़ न हो, क्योंकि हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम के सामने जब लाठी का साँप बन गया तो उनका डर जाना क़ुरआन मजीद में बयान हुआ है। फ़रमायाः

فَاَوْجَسَ فِیْ نَفْسِهٖ خِیْفَةً مُّوْسٰی. (٢٠:٦٧)

क्योंकि यह फ़ितरी और तबई ख़ौफ़ शुरू हालत में था, जब अल्लाह तआ़ला ने फ़रमाया 'ला तख़फ़' कि डरो मत तो यह डर बिल्कुल निकल गया। और यह भी कहा जा सकता है कि हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम का यह ख़ौफ़ (डर) आ़म इनसानों की तरह इस बुनियाद पर न था कि यह साँप

उनको कोई तकलीफ़ पहुँचायेगा, बल्कि इसलिये था कि बनी इस्राईल इससे कहीं गुमराही में न पड़ जायें, तो यह ख़ौफ़ एक किस्म का आख़िरत का ख़ौफ़ था।

आख़िरी आयत 'वल्लज़ी-न क-फ़रू.......' से यह बतला दिया गया है कि जो लोग अल्लाह तआला की भेजी हुई हिदायत की पैरवी नहीं करेंगे उनका ठिकाना हमेशा-हमेशा के लिये जहन्नम होगा। इससे मुराद वे लोग हैं जो उस हिदायत को हिदायत समझने और उसकी पैरवी करने से इनकार कर दें यानी काफ़िर लोग, और मोमिन लोग जो हिदायत को हिदायत मानने का इक़रार करते हैं वे अमल के एतिबार से कैसे भी गुनाहगार हों अपने गुनाहों की सज़ा भुगतने के बाद आख़िरकार जहन्नम से निकाल लिये जायेंगे। वल्लाहु आलम

يٰبَنِيْٓ اِسْرَاۗءِيْلَ اذْكُرُوْا نِعْمَتِيَ الَّتِيْٓ اَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَاَوْفُوْا بِعَهْدِيْٓ اُوْفِ بِعَهْدِكُمْ ۚ وَاِيَّايَ فَارْهَبُوْنِ ۝ وَاٰمِنُوْا بِمَآ اَنْزَلْتُ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَكُمْ وَلَا تَكُوْنُوْٓا اَوَّلَ كَافِرٍۢ بِهٖ ۠ وَلَا تَشْتَرُوْا بِاٰيٰتِيْ ثَمَنًا قَلِيْلًا ۡ وَّاِيَّايَ فَاتَّقُوْنِ ۝ وَلَا تَلْبِسُوا الْحَقَّ بِالْبَاطِلِ وَتَكْتُمُوا الْحَقَّ وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝

या बनी इस्राईलज़्कुरू निअ़्मतियल्लती अन्अ़म्तु अ़लैकुम् व औफ़ू बि-अ़ह्दी ऊफ़ि बि-अ़ह्दिकुम् व इय्या-य फ़र्हबून (40) व आमिनू बिमा अन्ज़ल्तु मुसद्दिकल्लिमा म-अ़कुम् व ला तकूनू अव्व-ल काफ़िरिम् बिही व ला तश्तरू बिआयाती स-मनन् क़लीलंव्-व इय्या-य फ़त्तक़ून (41) व ला तल्बिसुल्-हक़्-क़ बिल्बातिलि व तक्तुमुल्हक़्-क़ व अन्तुम् तअ़्लमून (42)	ऐ बनी इस्राईल! याद करो मेरे वो एहसान जो मैंने तुम पर किये और तुम पूरा करो मेरा इक़रार तो मैं पूरा करूँ तुम्हारा इक़रार और मुझ ही से डरो। (40) और मान लो इस किताब को जो मैंने उतारी है, सच बताने वाली है उस किताब को जो तुम्हारे पास है, और मत होओ सब में पहले इनकार करने वाले उसके, और न लो मेरी आयतों पर मोल थोड़ा और मुझ ही से बचते रहो। (41) और मत मिलाओ सही में ग़लत और मत छुपाओ सच को जान-बूझ कर। (42)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ बनी इस्राईल (यानी हज़रत याक़ूब अ़लैहिस्सलाम की औलाद)! याद करो तुम लोग मेरे उन एहसानों को जो किए हैं मैंने तुम पर (ताकि नेमत का हक़ समझकर ईमान लाना तुम्हारे लिये आसान हो जाये। आगे इस याद करने की मुराद बतलाते हैं), और पूरा करो तुम मेरे अ़हद को (यानी जो तुम

ने तौरात में मुझसे अ़हद किया था जिसका बयान क़ुरआन की इस आयत में है:

وَلَقَدْ اَخَذَ اللّٰهُ مِيْثَاقَ بَنِىْٓ اِسْرَآءِيْلَ وَبَعَثْنَا مِنْهُمُ اثْنَىْ عَشَرَ نَقِيْبًا.......الخ (١٢:٥)

पूरा करूँगा मैं तुम्हारे अ़हद को (यानी मैंने जो अ़हद तुम से किया था ईमान लाने पर। जैसा कि इस आयत में है:

لَاُكَفِّرَنَّ عَنْكُمْ سَيِّاٰتِكُمْ

(ताकि मैं तुम्हारे गुनाहों को मिटा दूँ) और सिर्फ़ मुझ ही से डरो (अपने मोतक़िद अ़वाम से न डरो कि उनका एतिक़ाद और भरोसा न रहेगा और उनसे आमदनी बन्द हो जायेगी) और ईमान ले आओ उस किताब पर जो मैंने नाज़िल की है (यानी क़ुरआन पर) ऐसी हालत में कि वह सच बतलाने वाली है उस किताब को जो तुम्हारे पास है (यानी तौरात के अल्लाह की किताब होने की पुष्टि करती है, और जो उसमें रद्दोबदल की गई हैं वे ख़ुद तौरात व इन्जील होने ही से ख़ारिज हैं उनकी पुष्टि इससे लाज़िम नहीं आती)। और मत बनो तुम सब में पहले इनकार करने वाले इस (क़ुरआन) के (यानी तुम्हें देखकर जो दूसरे लोग इनकार करेंगे उन सब में इनकार व कुफ़्र की बुनियाद डालने वाले तुम होगे, इसलिये क़ियामत तक उनके कुफ़्र व इनकार का वबाल तुम्हारे आमाल नामे में ही दर्ज होता रहेगा)। और मत लो मेरे अहकाम के मुक़ाबले में हक़ीर (मामूली और बेहक़ीक़त) मुआ़वज़े को, और ख़ास मुझ ही से पूरे तौर पर डरो (यानी मेरे अहकाम को छोड़कर या उनको बदल कर या छुपाकर आ़म लोगों से घटिया और मामूली दुनिया को वसूल मत करो जैसा कि उनकी आ़दत थी, जिसका स्पष्ट ज़िक्र आगे आता है:

(وَلَا تَلْبِسُوا الْحَقَّ بِالْبَاطِلِ)

और मख़्लूत "यानी गड्-मड्" मत करो हक़ को नाहक़ के साथ, और छुपाओ भी मत हक़ को जिस हालत में कि तुम भी जानते हो (कि हक़ को छुपाना बुरी बात है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

सूरः ब-क़रह क़ुरआन के ज़िक्र से शुरू की गई और यह बतलाया गया कि क़ुरआन की हिदायत अगरचे सारी मख़्लूक़ के लिये आ़म है मगर इससे नफ़ा सिर्फ़ मोमिन लोग उठायेंगे। इसके बाद उन लोगों के सख़्त अ़ज़ाब का ज़िक्र फ़रमाया जो इस पर ईमान नहीं लाये, उनमें एक तब्क़ा खुले काफ़िरों और इनकार करने वालों का था, दूसरा मुनाफ़िक़ों का। दोनों का मय उनके कुछ हालात और ग़लत हरकतों के ज़िक्र किया गया। इसके बाद मोमिनों, मुश्रिकों, मुनाफ़िक़ों के तीनों तब्क़ों को ख़िताब करके सब को अल्लाह तआ़ला की इबादत की ताकीद की गई। और क़ुरआन मजीद के बेमिसाल और पूरी दुनिया को अपने जैसा लाने से आ़जिज़ कर देने वाला होने का ज़िक्र करके सब को ईमान की दावत दी गई। फिर आदम अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश का ज़िक्र करके उन पर उनकी असलियत व हक़ीक़त और अल्लाह तआ़ला की कामिल क़ुदरत वाज़ेह की गई ताकि अल्लाह तआ़ला की इताअ़त व इबादत की तरग़ीब और नाफ़रमानी से बचने की फ़िक्र हो।

फिर काफ़िरों की दो जमाअ़तें जिनका ज़िक्र ऊपर आया है खुले काफ़िर और मुनाफ़िक़, इन दोनों में दो तरह के लोग थे- एक तो बुत-परस्त (मूर्ति पूजक) मुश्रिक लोग जो महज़ अपने बाप-दादों की रस्मों की पैरवी करते थे, कोई नया या पुराना इल्म उनके पास न था, आ़म तौर पर अनपढ़ उम्मी थे जैसे आ़म तौर पर मक्का के लोग, इसी लिये क़ुरआन में उन लोगों को 'उम्मिय्यीन' (बिना पढ़े-लिखे लोग) कहा गया है।

दूसरे वे लोग थे जो पिछले अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम पर ईमान लाये और पहली आसमानी किताबों तौरात व इन्जील वग़ैरह का इल्म उनके पास था, लिखे-पढ़े लोग कहलाते थे। उनमें कुछ लोग हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम पर ईमान रखते थे ईसा अ़लैहिस्सलाम पर नहीं, उनको यहूद कहा जाता था, और कुछ लोग ईसा अ़लैहिस्सलाम पर ईमान रखते थे हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम को नबी-ए-मासूम की हैसियत से नहीं मानते थे, ये ईसाई कहलाते थे। इन दोनों को क़ुरआने करीम में इस बिना पर **अह्ले किताब** कहा गया है कि ये दोनों अल्लाह तआ़ला की आसमानी किताब तौरात व इन्जील पर ईमान रखते थे। ये लोग लिखे-पढ़े इल्म वाले होने की वजह से लोगों की नज़र में सम्मानित और क़ाबिले भरोसा माने जाते थे, इनकी बात उन पर असर-अन्दाज़ होती थी। ये रास्ते पर आ जायें तो दूसरों के मुसलमान होने की बड़ी उम्मीद थी, मदीना तैयबा और उसके आस-पास के इलाक़ों में इन लोगों की अधिकता थी।

सूरः ब-क़रह चूँकि मदनी सूरत है इसलिये इसमें मुश्रिकों व मुनाफ़िक़ों के बयान के बाद अहले किताब को ख़ास तौर पर और एहतिमाम के साथ ख़िताब किया गया है। चालीसवीं आयत से शुरू होकर एक सौ तेईस आयतों (पारा अलिफ़-लाम-मीम के आख़िर) तक इन्हीं लोगों से ख़िताब है, जिसमें इनको मानूस (इस्लाम से क़रीब) करने के लिये पहले इनकी ख़ानदानी शराफ़त और उससे दुनिया में हासिल होने वाले सम्मान व इज़्ज़त का, फिर अल्लाह तआ़ला की निरंतर नेमतों का ज़िक्र किया गया है, फिर उनकी ग़लत हरकतों और रास्ते से भटक जाने पर चेताया गया और सही रास्ते की तरफ़ दावत दी गई। इनमें से पहली सात आयतों में संक्षिप्त ख़िताब है जिनमें से तीन में ईमान की दावत और चार में नेक आमाल की हिदायत है। इसके बाद बड़ी तफ़सील से उनको ख़िताब किया गया, तफ़सीली ख़िताब के शुरू में और बिल्कुल ख़त्म पर फिर उनकी विशेषता जताने के लिये 'या बनी इस्राई-ल' फ़रमाकर उन्हीं अलफ़ाज़ को फिर दोहराया गया है जिनसे शुरू किया गया था जैसा कि कलाम को असरदार, अहम वक़्अ़त वाला बनाने के लिये ऐसा करने का दस्तूर है।

'या बनी इस्राई-ल' इस्राईल इबरानी भाषा का लफ़्ज़ है, इसके मायने अ़ब्दुल्लाह (अल्लाह का बन्दा) हैं। यह हज़रत याक़ूब अ़लैहिस्सलाम का दूसरा नाम है। कुछ उलेमा ने फ़रमाया कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सिवा किसी और नबी के अनेक नाम नहीं हैं सिर्फ़ हज़रत याक़ूब अ़लैहिस्सलाम के दो नाम हैं- याक़ूब और इस्राईल। क़ुरआन में इस जगह इनको 'बनी याक़ूब' (याक़ूब की औलाद) कहकर ख़िताब नहीं किया बल्कि दूसरे नाम इस्राईल का इस्तेमाल किया। इसमें हिक्मत यह है कि ख़ुद अपने लक़ब और नाम ही से इनको मालूम हो जाये कि हम अ़ब्दुल्लाह यानी अल्लाह के इबादत-गुज़ार बन्दे की औलाद हैं, हमें भी उनके नक़्शे-क़दम पर चलना चाहिये। इस आयत में बनी इस्राईल को ख़िताब करके इरशाद फ़रमाया कि- और पूरा करो तुम मेरे अ़हद को,

यानी तुमने जो मुझसे अ़हद किया था तौरात में जिसका बयान हज़रत क़तादा व मुजाहिद रह. के क़ौल के मुताबिक़ इस आयत में है:

وَلَقَدْ اَخَذَ اللّٰهُ مِيْثَاقَ بَنِیْٓ اِسْرَآءِيْلَ وَبَعَثْنَا مِنْهُمُ اثْنَیْ عَشَرَ نَقِيْبًا .... قَرْضًا حَسَنًا.

(پارہ ۶، سورہ مائدہ، آیت ۱۲)

इसमें सबसे अहम मुआ़हदा (अ़हद व इक़रार) तमाम रसूलों पर ईमान लाने का शामिल है, जिनमें हमारे रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम विशेष तौर पर दाख़िल हैं। तथा नमाज़, ज़कात और सदक़ात भी इस अ़हद में शामिल हैं जिसका ख़ुलासा रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ईमान और आपकी मुकम्मल पैरवी है। इसी लिये हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि इस अ़हद से मुराद मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की पैरवी है। (इब्ने जरीर, सही सनद से)

"पूरा करूँगा मैं तुम्हारे अ़हद को" यानी इसी ज़िक्र हुई आयत में अल्लाह तआ़ला ने यह वादा फ़रमाया है कि जो लोग उस अ़हद को पूरा करेंगे तो उनके गुनाह माफ़ कर दिये जायेंगे और जन्नत में दाख़िल किया जायेगा। तो वादे के मुताबिक़ उन लोगों को जन्नत की नेमतों से नवाज़ा जायेगा।

ख़ुलासा यह है कि ऐ बनी इस्राईल! तुम मेरा अ़हद यानी मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की पैरवी का पूरा करो तो मैं अपना अ़हद तुम्हारी मग़फ़िरत और जन्नत का पूरा कर दूँगा। और सिर्फ़ मुझसे ही डरो और आ़म लोगों और अपने मोतक़िदों (अनुयायी लोगों) से न डरो कि उनकी मंशा के ख़िलाफ़ हक़ का कलिमा कहेंगे तो वे मोतक़िद न रहेंगे, आमदनी बन्द हो जायेगी।

उम्मते मुहम्मदिया की एक ख़ास फ़ज़ीलत

1. तफ़सीरे क़ुर्तुबी में है कि अल्लाह जल्ल शानुहू को अपनी नेमतें और एहसानात याद दिलाकर अपनी याद और इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) की तरफ़ दावत दी है और उम्मते मुहम्मदिया को जब इसी काम के लिये दावत दी तो एहसानों और इनामों के ज़िक्र के बग़ैर फ़रमायाः

فَاذْكُرُوْنِیْٓ اَذْكُرْكُمْ

यानी "तुम मुझे याद करो मैं तुम्हें याद रखूँगा।" इसमें उम्मते मुहम्मदिया की ख़ास फ़ज़ीलत की तरफ़ इशारा है कि उनका ताल्लुक़ एहसान करने और नेमत देने वाले से डायरेक्ट है, ये मोहसिन को पहचानकर एहसान को पहचानते हैं, जबकि दूसरी उम्मतें इसके उलट एहसानात के ज़रिये मोहसिन (एहसान करने वाले) को पहचानती हैं।

अ़हद व इक़रार का पूरा करना वाजिब और अ़हद का तोड़ना हराम है

2. इस आयत से मालूम हुआ कि अ़हद व मुआ़हदे (वादे, समझौते और इक़रार) को पूरा करना ज़रूरी है, और अ़हद का तोड़ना हराम है। सूरः मायदा की पहली आयत में इससे ज़्यादा वज़ाहत के

साथ यह मज़मून आया है। फ़रमायाः

اَوْفُوْا بِالْعُقُوْدِ

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अ़हद को तोड़ने वालों को जो सज़ा आख़िरत में मिलेगी उससे पहले ही एक सज़ा यह दी जायेगी कि हश्र के मैदान में जहाँ तमाम पहले और बाद के इनसान जमा होंगे अ़हद के ख़िलाफ़ करने वाले पर एक झण्डा निशानी और पहचान के तौर पर लगा दिया जायेगा, और जितने बड़े अ़हद को तोड़ा होगा उतना ही यह झण्डा ऊँचा होगा, इस तरह उनको मैदाने हश्र में रुस्वा और शर्मिन्दा किया जायेगा। (सही मुस्लिम, हज़रत सईद से)

जो शख़्स किसी गुनाह या सवाब का सबब बनता है उसपर भी करने वालों का गुनाह या सवाब लिखा जाता है

3. "अव्व-ल काफ़िरिम् बिही" काफ़िर होना चाहे सबसे पहले हो या बाद में बहरहाल बहुत बड़े दर्जे का ज़ुल्म और अपराध है, मगर इस आयत में यह फ़रमाया कि पहले काफ़िर न बनो। इसमें इशारा इस तरफ़ है कि जो शख़्स सबसे पहले कुफ़्र को इख़्तियार करेगा तो बाद में उसको देखकर जो भी कुफ़्र में मुब्तला होगा उसका वबाल जो उस शख़्स पर पड़ेगा इस पहले काफ़िर पर भी उसका वबाल आयेगा। इस तरह यह पहला काफ़िर अपने कुफ़्र के अ़लावा बाद के लोगों के कुफ़्र का सबब बनकर उन सब के कुफ़्र के वबाल का भी ज़िम्मेदार ठहरेगा, और इसका अ़ज़ाब कई गुना हो जायेगा।

फ़ायदाः इससे मालूम हुआ कि जो शख़्स दुनिया में दूसरों के लिये किसी गुनाह में मुब्तला होने का सबब बनता है तो जितने आदमी उसके सबब गुनाह में मुब्तला होंगे उन सब का गुनाह उन लोगों को भी होगा और उस शख़्स को भी। इसी तरह जो शख़्स दूसरों के लिये किसी नेकी का सबब बन जाये तो जितने आदमी उसके सबब से नेक अ़मल करेंगे उसका सवाब जैसा उन लोगों को मिलेगा ऐसा ही उस शख़्स के आमाल नामे में भी लिखा जायेगा। क़ुरआने मजीद की अनेक आयतों और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की कई हदीसों में यह मज़मून बार-बार आया है।

अल्लाह की आयतों के बदले में क़ीमत लेने की मनाही

وَلَا تَشْتَرُوْا بِاٰيٰتِىْ ثَمَنًا قَلِيْلًا

4. इस आयत में अल्लाह तआ़ला की आयतों के बदले में क़ीमत लेने की मनाही का मतलब वही है जो आयत के मज़मून और अगले-पिछले हिस्से से मालूम होता है कि लोगों की मर्ज़ी और उनकी ग़र्ज़ों की ख़ातिर अल्लाह तआ़ला की आयतों का मतलब ग़लत बतलाकर या छुपाकर लोगों से पैसे लिये जायें, यह फ़ेल पूरी उम्मत की मुत्तफ़क़ा राय (सर्वसम्मति) से हराम है।

क़ुरआन की तालीम पर उजरत लेना जायज़ है

5. रहा यह मामला कि किसी को अल्लाह तआ़ला की आयतें सही-सही बतलाकर या पढ़ाकर

उसकी उजरत लेना कैसा है? इसका ताल्लुक़ इस आयत से नहीं, ख़ुद यह मसला अपनी जगह क़ाबिले ग़ौर व बहस है कि क़ुरआन की तालीम पर उजरत व मुआवज़ा लेना जायज़ है या नहीं? उम्मत के फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) का इसमें मतभेद है। इमाम मालिक, इमाम शाफ़ई, इमाम अहमद बिन हम्बल रहमतुल्लाहि अ़लैहिम जायज़ क़रार देते हैं और इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रह. और कुछ दूसरे इमाम मना फ़रमाते हैं, क्योंकि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़ुरआन को कमाई और रोज़गार बनाने से मना फ़रमाया है। लेकिन बाद के हनफ़ी उलेमा ने भी जब इन हालात को देखा कि क़ुरआन मजीद के सिखाने वालों को इस्लामी बैतुल-माल से गुज़ारा मिला करता था अब हर जगह इस्लामी निज़ाम में फ़ुतूर के सबब उन मुअ़ल्लिमीन (पढ़ाने और सिखाने वालों) को उमूमन कुछ नहीं मिलता, ये अगर अपनी रोटी-रोज़ी कमाने के लिये किसी मेहनत मज़दूरी या तिजारत वग़ैरह में लग जायेंगे तो बच्चों को क़ुरआन सिखाने और पढ़ाने का सिलसिला बिल्कुल ही बन्द हो जायेगा, क्योंकि यह काम दिन भर की मशग़ूली चाहता है, इसलिये तालीमे क़ुरआन पर तन्ख़्वाह लेने को ज़रूरत के सबब जायज़ क़रार दिया जैसा कि 'हिदाया' के मुसन्निफ़ ने फ़रमाया है कि आजकल इसी पर फ़तवा देना चाहिये कि क़ुरआन की तालीम पर उजरत व तन्ख़्वाह लेना जायज़ है। साहिबे हिदाया के बाद आने वाले दूसरे फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने कुछ ऐसी ख़िदमात पर जिन पर क़ुरआन की तालीम की तरह दीन की बक़ा (वजूद) मौक़ूफ़ है, जैसे इमामत, अज़ान और हदीस व मसाईल की तालीम वग़ैरह को क़ुरआन की तालीम के साथ जोड़कर इनकी भी इजाज़त दी।

(दुर्रे मुख़्तार, शामी)

ईसाले सवाब के लिये ख़त्मे क़ुरआन पर उजरत लेना सब के नज़दीक जायज़ नहीं

6. अ़ल्लामा शामी ने "दुर्रे मुख़्तार" की शरह में और अपने रिसाले "शिफ़ा-उल-अ़लील" में बड़ी तफ़सील और मज़बूत दलीलों के साथ यह बात वाज़ेह कर दी है कि क़ुरआन की तालीम वग़ैरह पर उजरत लेने को जिन बाद के उलेमा ने जायज़ क़रार दिया है उसका सबब और कारण एक ऐसी दीनी ज़रूरत है जिसमें ख़लल आने से दीन का पूरा निज़ाम (सिस्टम) गड़बड़ा जाता है, इसलिये इसको ऐसी ही ज़रूरत के मौक़ों में सीमित रखना ज़रूरी है। इसलिये मुर्दों को ईसाले सवाब (सवाब पहुँचाने) के लिये क़ुरआन ख़त्म कराना या कोई दूसरा वज़ीफ़ा पढ़वाना उजरत के साथ हराम है, क्योंकि उस पर किसी आ़म दीनी ज़रूरत का मदार नहीं, और उजरत लेकर पढ़ना हराम हुआ तो इस तरह पढ़ने वाला और पढ़वाने वाला दोनों गुनाहगार हुए। और जब पढ़ने वाले ही को कोई सवाब न मिला तो मय्यित को वह क्या पहुँचायेगा। अ़ल्लामा शामी रह. ने इस बात पर फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) की बहुत सी स्पष्ट रायें 'ताजुश्शरीअ़त', 'ऐनी शरह हिदाया', 'हाशिया ख़ैरुद्दीन बर बहरुर्राईक़' वग़ैरह से नक़ल की हैं, और ख़ैरुद्दीन रमली का यह क़ौल भी नक़ल किया है कि ईसाले सवाब के लिये क़ब्र पर क़ुरआन पढ़वाना या उजरत देकर क़ुरआन ख़त्म करवाना सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रह. और उम्मत के बुज़ुर्गों से कहीं मन्क़ूल नहीं, इसलिये बिद्अ़त है। (शामी, पेज 47, जिल्द 1)

हक़ बात को छुपाना या उसमें गड्मड् करना हराम है

7. आयत 'व ला तल्बिसुल् हक़्-क़ बिल-बातिलि.........' से साबित हुआ कि हक़ बात को ग़लत बातों के साथ गड्मड् करके (मिलाकर) इस तरह पेश करना जिससे मुख़ातब मुग़ालते और धोखे में पड़ जाये, जायज़ नहीं। इसी तरह किसी डर या लालच की वजह से हक़ बात को छुपाना भी हराम है। मसला स्पष्ट है इसमें किसी तफ़सील की ज़रूरत नहीं। इमाम क़ुर्तुबी रह. ने अपनी तफ़सीर में हक़ को छुपाने से परहेज़ करने का एक वाक़िआ और मुफ़स्सल गुफ़्तगू हज़रत अबू हाज़िम रह. ताबिई और ख़लीफ़ा सुलैमान बिन अ़ब्दुल-मलिक की नक़ल की है, जो बहुत से फ़ायदों की वजह से क़ाबिले ज़िक्र है।

हज़रत अबू हाज़िम ताबिई सुलैमान इब्ने अ़ब्दुल-मलिक के दरबार में

मुस्नद दारमी में सनद के साथ ज़िक्र किया गया है कि एक मर्तबा सुलैमान बिन अ़ब्दुल-मलिक रहमतुल्लाहि अ़लैहि मदीना तैयबा पहुँचे और चन्द दिन वहीं ठहरे तो लोगों से मालूम किया कि मदीना तैयबा में अब कोई ऐसा आदमी मौजूद है जिसने किसी सहाबी (यानी हुज़ूरे पाक को ईमान की हालत में देखने वाले) की सोहबत पाई हो? लोगों ने बतलाया हाँ अबू हाज़िम ऐसे शख़्स हैं। सुलैमान ने अपना आदमी भेजकर उनको बुलवाया। जब वह तशरीफ़ लाये तो सुलैमान ने कहा कि ऐ अबू हाज़िम! यह क्या बेमुरव्वती और बेवफ़ाई है? अबू हाज़िम रह. ने कहा आपने मेरी क्या बेमुरव्वती और बेवफ़ाई देखी है? सुलैमान ने कहा कि मदीना के सबसे मशहूर लोग मुझसे मिलने आये आप नहीं आये। अबू हाज़िम रह. ने कहा अमीरुल-मोमिनीन! मैं आपको अल्लाह की पनाह में देता हूँ इससे कि आप कोई ऐसी बात कहें जो वाक़िए (हक़ीक़त) के ख़िलाफ़ है। आज से पहले न आप मुझसे वाक़िफ़ थे और न मैंने कभी आपको देखा था, ऐसे हालात में ख़ुद मुलाक़ात के लिये आने का सवाल ही पैदा नहीं होता, बेवफ़ाई कैसी?

सुलैमान रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने जवाब सुनकर इमाम शिहाब ज़ोहरी रह. और मज्लिस में हाज़िर लोगों की तरफ़ तवज्जोह की तो इमाम ज़ोहरी रह. ने फ़रमाया कि अबू हाज़िम ने सही फ़रमाया, आपने ग़लती की। उसके बाद सुलैमान रह. ने बात का रुख़ बदल कर कुछ सवालात शुरू किये और कहा ऐ अबू हाज़िम! यह क्या बात है कि हम मौत से घबराते हैं? आपने फ़रमाया वजह यह है कि आपने अपनी आख़िरत को वीरान और दुनिया को आबाद किया है, इसलिये आबादी से वीराने में जाना पसन्द नहीं।

सुलैमान रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने स्वीकार किया और पूछा कि कल अल्लाह तआ़ला के सामने हाज़िरी कैसे होगी? फ़रमाया कि नेक अ़मल करने वाला तो अल्लाह तआ़ला के सामने इस तरह जायेगा जैसे कोई मुसाफ़िर सफ़र से वापस अपने घर वालों के पास जाता है, और बुरे अ़मल करने वाला इस तरह पेश होगा जैसे कोई भागा हुआ ग़ुलाम पकड़कर आक़ा के पास हाज़िर किया जाये।

सुलैमान रह. यह सुनकर रो पड़े और कहने लगे- काश हमें मालूम होता कि अल्लाह तआ़ला ने हमारे लिये क्या सूरत तजवीज़ कर रखी है? अबू हाज़िम रह. ने फ़रमाया कि अपने आमाल को अल्लाह की किताब पर पेश करो तो पता लग जायेगा। सुलैमान रह. ने पूछा कि क़ुरआन की किस आयत से यह पता लगेगा? फ़रमाया इस आयत सेः

إِنَّ الْأَبْرَارَ لَفِي نَعِيمٍ○ وَإِنَّ الْفُجَّارَ لَفِي جَحِيمٍ○ (١٤.١٣:٨٣)

"यानी बिला शुब्हा नेक अ़मल करने वाले जन्नत की नेमतों में हैं और नाफ़रमान गुनाह के आदी दोज़ख़ में।"

सुलैमान ने कहा कि अल्लाह तआ़ला की रहमत तो बड़ी है, वह बदकारों पर भी छाई हुई है। फ़रमायाः

إِنَّ رَحْمَتَ اللّٰهِ قَرِيبٌ مِّنَ الْمُحْسِنِينَ○ (٥٦:٧)

"यानी अल्लाह तआ़ला की रहमत नेक अ़मल करने वालों से क़रीब है।"

सुलैमान रह. ने पूछा ऐ अबू हाज़िम! अल्लाह के बन्दों में सबसे ज़्यादा कौन इज़्ज़त वाला है? फ़रमाया वे लोग जो मुरव्वत और सही अ़क़्ल रखने वाले हैं। फिर पूछा कि कौनसा अ़मल अफ़ज़ल है? तो फ़रमाया कि फ़राईज़ व वाजिबात की अदायेगी हराम चीज़ों से बचने के साथ। फिर पूछा कि कौनसी दुआ़ ज़्यादा क़ाबिले क़ुबूल है? तो फ़रमाया कि जिस शख़्स पर एहसान किया गया हो उसकी दुआ़ अपने मोहसिन (एहसान करने वाले) के लिये क़ुबूलियत के ज़्यादा क़रीब है।

फिर मालूम किया कि सदक़ा कौनसा अफ़ज़ल है? फ़रमाया कि मुसीबत के मारे हुए साईल (माँगने वाले) के लिये बावजूद अपनी ग़ुर्बत और तंगदस्ती के जो कुछ हो सके, इस तरह ख़र्च करना कि न उससे पहले एहसान जतलाये और न टाल-मटोल करके तकलीफ़ पहुँचाये।

फिर पूछा कि कलाम कौनसा अफ़ज़ल है? तो फ़रमाया कि जिस शख़्स से तुमको ख़ौफ़ (डर) हो या जिससे तुम्हारी कोई ज़रूरत हो और उम्मीद लगी हुई हो उसके सामने बग़ैर किसी रियायत के हक़ बात कह देना।

फिर पूछा कि कौनसा मुसलमान सबसे ज़्यादा होशियार है? फ़रमाया वह शख़्स जिसने अल्लाह तआ़ला की इताअ़त के तहत काम किया हो और दूसरों को भी उसकी दावत दी हो।

फिर पूछा कि मुसलमानों में कौन शख़्स अहमक़ (बेवक़ूफ़) है? फ़रमाया वह आदमी जो अपने किसी भाई की उसके ज़ुल्म में इमदाद करे, जिसका हासिल यह होगा कि उसने दूसरे की दुनिया संवारने के लिये अपना दीन बेच दिया। सुलैमान रह. ने कहा कि सही फ़रमाया।

इसके बाद सुलैमान रह. ने और स्पष्ट अलफ़ाज़ में पूछा कि हमारे बारे में आपकी क्या राय है? अबू हाज़िम रह. ने फ़रमाया कि मुझे इस सवाल से माफ़ रखें तो बेहतर है। सुलैमान रह. ने कहा कि नहीं! आप ज़रूर कोई नसीहत का कलिमा कहें। अबू हाज़िम रह. ने फ़रमाया ऐ अमीरुल-मोमिनीन! तुम्हारे बाप दादा ने तलवार के ज़ोर पर लोगों पर कब्ज़ा व इख़्तियार जमाया और ज़बरदस्ती उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ उन पर हुकूमत क़ायम की, और बहुत से लोगों को क़त्ल किया, और यह सब कुछ करने के बाद वे इस दुनिया से रुख़्सत हो गये। काश! आपको मालूम होता कि अब वे मरने के बाद क्या कहते हैं और उनको क्या कहा जाता है।

क़रीबी और ख़ास लोगों में से एक शख़्स ने बादशाह के मिज़ाज के ख़िलाफ़ अबू हाज़िम रह. की इस साफ़ बात को सुनकर कहा कि ऐ अबू हाज़िम! तुमने यह बहुत बुरी बात कही है। अबू हाज़िम ने फ़रमाया कि तुम ग़लत कहते हो, बुरी बात नहीं कही बल्कि वह बात कही है जिसका हमको हुक्म है क्योंकि अल्लाह तआ़ला ने उलेमा से इसका अ़हद लिया है कि हक़ बात लोगों को बतलायेंगे, छुपायेंगे नहीं। चुनाँचे फ़रमायाः

لَتُبَيِّنُنَّهُ لِلنَّاسِ وَلَا تَكْتُمُونَهُ. (۱۸۷:۳)

यही वह बात है जिसके लिये यह लम्बी हिकायत इमाम क़ुर्तुबी ने उक्त आयत की तफ़सील में दर्ज फ़रमाई है।

सुलैमान रह. ने फिर सवाल किया कि अच्छा अब हमारे दुरुस्त होने (सुधरने और सही रहने) का क्या तरीक़ा है? फ़रमाया कि तकब्बुर छोड़ो, मुरव्वत इख़्तियार करो और हुक़ूक़ वालों को उनके हुक़ूक़ इन्साफ़ के साथ तक़सीम करो।

सुलैमान रह. ने कहा कि ऐ अबू हाज़िम! क्या यह हो सकता है कि आप हमारे साथ रहें? फ़रमाया ख़ुदा की पनाह! सुलैमान रह. ने पूछा यह क्यों? फ़रमाया इसलिये कि मुझे ख़तरा यह है कि मैं तुम्हारे माल व दौलत और इज़्ज़त व रुतबे की तरफ़ कुछ माईल हो जाऊँ जिसके नतीजे में मुझे अ़ज़ाब भुगतना पड़ेगा। फिर सुलैमान रह. ने कहा कि अच्छा आपकी कोई ज़रूरत हो तो बतलायें कि हम उसको पूरा करें? फ़रमाया हाँ एक हाजत है कि जहन्नम से निजात दिला दो और जन्नत में दाख़िल करा दो। सुलैमान रह. ने कहा कि यह तो मेरे इख़्तियार में नहीं। फ़रमाया कि फिर मुझे आप से और किसी हाजत के पूरा कराने की तमन्ना नहीं।

आख़िर में सुलैमान रह. ने कहा कि अच्छा मेरे लिये दुआ़ कीजिये, तो अबू हाज़िम रह. ने यह दुआ़ की- या अल्लाह! अगर सुलैमान आपका पसन्दीदा है तो इसके लिये दुनिया व आख़िरत की बेहतरी को आसान बना दे, और अगर वह आपका दुश्मन है तो उसके बाल पकड़कर अपनी मर्ज़ी और पसन्दीदा कामों की तरफ़ ले आ।

सुलैमान रह. ने कहा कि मुझे कुछ वसीयत फ़रमा दें। इरशाद फ़रमाया कि मुख़्तसर यह है कि अपने रब की अ़ज़मत व जलाल इस दर्जे पर रखो कि वह तुम्हें उस मक़ाम (जगह) पर न देखे जिससे मना किया है, और उस मक़ाम से ग़ैर-हाज़िर न पाये जिसकी तरफ़ आने का उसने हुक्म दिया है।

सुलैमान ने उस मज्लिस से फ़ारिग़ होने के बाद सौ गिन्नियाँ (सोने के सिक्के) तोहफ़े के तौर पर अबू हाज़िम के पास भेजीं। अबू हाज़िम ने एक ख़त के साथ उनको वापस कर दिया। ख़त में लिखा था कि अगर ये सौ दीनार मेरे कलिमात का मुआ़वज़ा हैं तो मेरे नज़दीक ख़ून और ख़िन्ज़ीर का गोश्त इससे बेहतर है, और अगर इसलिये भेजा है कि बैतुल-माल (इस्लामी सरकारी ख़ज़ाने) में मेरा हक़ है तो मुझ जैसे हज़ारों उलेमा और दीन की ख़िदमत करने वाले हैं, अगर सब को आपने इतना ही दिया है तो मैं भी ले सकता हूँ वरना मुझे इसकी ज़रूरत नहीं।

अबू हाज़िम रह. के इस इरशाद से कि अपने नसीहत के कलिमात का मुआ़वज़ा लेने को ख़ून और ख़िन्ज़ीर (सुअर) की तरह क़रार दिया है, इस मसले पर भी रोशनी पड़ती है कि किसी ताअ़त (नेकी) और इबादत का मुआ़वज़ा लेना उनके नज़दीक जायज़ नहीं।

وَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ وَارْكَعُوْا مَعَ الرّٰكِعِيْنَ ۝ اَتَاْمُرُوْنَ النَّاسَ بِالْبِرِّ وَتَنْسَوْنَ اَنْفُسَكُمْ وَاَنْتُمْ تَتْلُوْنَ الْكِتٰبَ ۭ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ۝ وَاسْتَعِيْنُوْا بِالصَّبْرِ وَالصَّلٰوةِ ۭ وَاِنَّهَا لَكَبِيْرَةٌ اِلَّا عَلَى الْخٰشِعِيْنَ ۝ الَّذِيْنَ يَظُنُّوْنَ اَنَّهُمْ مُّلٰقُوْا رَبِّهِمْ وَاَنَّهُمْ اِلَيْهِ رٰجِعُوْنَ ۝

व अक़ीमुस्सला-त व आतुज़्ज़का-त वर्कअ़ू म-अ़र्राकिअ़ीन (43) अ-तअ्मुरूनन्ना-स बिल्बिर्रि व तन्सौ-न अन्फ़ु-सकुम् व अन्तुम् तत्लूनल्-किता-ब, अ-फ़ला तअ़्क़िलून (44) वस्तअ़ीनू बिस्सब्रि वस्सलाति, व इन्नहा ल-कबीरतुन् इल्ला अ़लल्-ख़ाशिअ़ीन (45) अल्लज़ी-न यज़ुन्नू-न अन्नहुम्-मुलाक़ू रब्बिहिम् व अन्नहुम् इलैहि राजिअ़ून (46) ✿ ❖	और क़ायम रखो नमाज़ और दिया करो ज़कात और झुको नमाज़ में झुकने वालों के साथ। (43) क्या हुक्म करते हो लोगों को नेक काम का और भूलते हो अपने आप को? और तुम तो पढ़ते हो किताब फिर क्यों नहीं सोचते हो। (44) और मदद चाहो सब्र से और नमाज़ से, और अलबत्ता वह भारी है मगर उन्हीं आ़जिज़ों पर। (45) जिनको ख़्याल है कि वे रू-ब-रू होने वाले हैं अपने रब के, और यह कि उनको उसी की तरफ़ लौटकर जाना है। (46) ✿ ❖

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और क़ायम करो तुम लोग नमाज़ को (यानी मुसलमान होकर) और दो ज़कात को और आ़जिज़ी करो आ़जिज़ी करने वालों के साथ। (बनी इस्राईल के उलेमा के कुछ रिश्तेदार मुसलमान हो गये थे, जब उनसे गुफ़्तगू होती तो ख़ुफ़िया तौर पर ये उलेमा उनसे कहते थे कि बेशक मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम सच्चे रसूल हैं, हम लोग तो किसी मस्लेहत से मुसलमान नहीं होते, मगर तुम इस मज़हबे इस्लाम को न छोड़ना। इसी बिना पर हक़ तआ़ला ने फ़रमाया) क्या ग़ज़ब है कि कहते हो और लोगों को नेक काम करने को (नेक काम करने से मुराद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ईमान लाना है। यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ईमान लाने और आपकी इताअ़त करने को) और अपनी ख़बर नहीं लेते, हालाँकि तुम तिलावत करते रहते हो किताब की (यानी तौरात की, जिसमें जगह-जगह ऐसे बेअ़मल आ़लिम की निंदायें की गयी हैं), तो फिर क्या तुम इतना भी नहीं समझते और (अगर तुमको माल और रुतबे की मुहब्बत के ग़लबे से ईमान लाना दुश्वार मालूम होता हो तो मदद लो) सब्र और नमाज़ से (यानी ईमान लाकर सब्र और नमाज़ की पाबन्दी करो तो यह माल व पद की मुहब्बत दिल से निकल जायेगी, और अगर कोई कहे कि ख़ुद नमाज़ और सब्र की पाबन्दी बहुत दुश्वार है तो सुन ले कि) और बेशक वह नमाज़ दुश्वार ज़रूर है

मगर जिनके दिल में ख़ुशूअ़ "यानी बदन और दिल से आ़जिज़ी और अल्लाह के सामने झुकना" हो उन पर कुछ दुश्वार नहीं। वो ख़ुशूअ़ वाले वे लोग हैं जो ख़्याल रखते हैं इसका कि वे बेशक मिलने वाले हैं अपने रब से। और इस बात का भी ख़्याल रखते हैं कि वे बेशक अपने रब की तरफ़ वापस जाने वाले हैं (तो उस वक़्त इसका हिसाब-किताब भी देना होगा। इन दोनों ख़्यालों से शौक़ और तवज्जोह भी पैदा होगी ख़ौफ़ भी, और यही दो चीज़ें हर अ़मल की रूह हैं)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों का पिछली आयतों के मज़मून से ताल्लुक़

बनी इस्राईल को अल्लाह तआ़ला ने अपनी नेमतें और एहसानात याद दिलाकर ईमान और नेक अ़मल की तरफ़ दावत दी है। पिछली तीन आयतों में ईमान व अ़क़ीदों से बारे में हिदायतें थीं और इन चार आयतों में नेक आमाल की हिदायत व तालीम है, और उनमें जो आमाल सबसे ज़्यादा अहम हैं उनका ज़िक्र है। और आयतों के मतलब का हासिल यह है कि- और अगर तुमको माल व रुतबे की मुहब्बत के ग़लबे से ईमान लाना दुश्वार मालूम होता है तो इसका इलाज यह है कि सब्र और नमाज़ से मदद हासिल करो। सब्र से माल की मुहब्बत घट जायेगी, क्योंकि माल इसी वजह से मतलूब व महबूब है कि वह ज़रिया है लज़्ज़तों व नफ़्स की इच्छाओं के पूरा करने का। जब उन लज़्ज़तों व शहवतों की आज़ादी छोड़ने पर हिम्मत बाँध लोगे तो फिर माल की अधिकता की न ज़रूरत रहेगी न उसकी मुहब्बत ऐसी ग़ालिब आयेगी कि अपने नफ़े व नुक़सान से अन्धा कर दे। और नमाज़ से रुतबे व ओ़हदे की मुहब्बत कम हो जायेगी, क्योंकि नमाज़ में ज़ाहिरी और बातिनी हर तरह की पस्ती और आ़जिज़ी ही है, जब नमाज़ को सही-सही अदा करने की आ़दत हो जायेगी तो ओ़हदे व पद की रुचि और तकब्बुर व ग़ुरूर (यानी ख़ुद को बड़ा और दूसरों को छोटा समझने का रोग) घटेगा, असल फ़साद की जड़ जिसके सबब ईमान लाना दुश्वार था यही माल व पद की मुहब्बत थी, जब यह फ़साद का माद्दा घट गया तो ईमान लाना आसान हो जायेगा।

अब समझिये कि सब्र में तो सिर्फ़ ग़ैर-ज़रूरी इच्छाओं और नफ़्स की ख़्वाहिशों का छोड़ना है, और नमाज़ में बहुत से कामों का करना भी है और बहुत सी जायज़ इच्छाओं को भी वक़्ती तौर पर छोड़ना है, जैसे खाना-पीना, कलाम करना, चलना-फिरना और दूसरी इनसानी ज़रूरतें जो शरई तौर पर जायज़ व मुबाह हैं, उनको भी नमाज़ के वक़्त छोड़ना है, और वह भी वक़्तों की पाबन्दी के साथ दिन रात में पाँच मर्तबा, इसलिये नमाज़ नाम है कुछ मुक़र्ररा कामों का और निर्धारित वक़्तों में तमाम नाजायज़ व जायज़ चीज़ों से सब्र करने (रुक जाने) का।

ग़ैर-ज़रूरी इच्छाओं के छोड़ने पर इनसान हिम्मत बाँध ले तो चन्द रोज़ के बाद तबई तक़ाज़ा भी ख़त्म हो जाता है, कोई दुश्वारी नहीं रहती। लेकिन नमाज़ के वक़्तों की पाबन्दी और इसके तमाम उसूलों और शर्तों की पाबन्दी और ज़रूरी इच्छाओं से भी उन वक़्तों में परहेज़ करना यह इनसानी तबीयत पर बहुत भारी और दुश्वार है। इसलिये यहाँ यह शुब्हा हो सकता है कि ईमान को आसान बनाने का नुस्ख़ा तजवीज़ किया गया कि सब्र और नमाज़ से काम लो, इस नुस्ख़े का इस्तेमाल ख़ुद

एक दुश्वार चीज़ है, ख़ास कर नमाज़ की पाबन्दियों का, तो इस दुश्वारी का क्या इलाज होगा? इसके लिये इरशाद फ़रमाया- बेशक वह नमाज़ दुश्वार ज़रूर है मगर जिनके दिलों में ख़ुशूअ़ हो उन पर कुछ भी दुश्वार नहीं, इसमें नमाज़ के आसान करने की तरकीब बतला दी गई।

हासिल यह है कि नमाज़ में दुश्वारी की वजह और सबब पर ग़ौर करें तो मालूम होगा कि इनसान का दिल आदी है ख़्याल के मैदान में आज़ाद फिरने का, और इनसान के तमाम अंग दिल के ताबे हैं, इसलिये दिल का तक़ाज़ा यही होता है कि उसके सब अंग भी आज़ाद रहें और नमाज़ उस आज़ादी के पूरी तरह ख़िलाफ़ है। न हंसो, न बोलो, न खाओ, न पियो, न चलो वग़ैरह वग़ैरह। इसलिये दिल इन पाबन्दियों से तंग होता है और उसके ताबे इनसानी बदन के अंग भी इससे तकलीफ़ महसूस करते हैं।

ख़ुलासा यह है कि सबब इस दुश्वारी और बोझ का दिल की वैचारिक हरकत है, तो उसका इलाज सुकून से होना चाहिये। इसलिये ख़ुशूअ़ को नमाज़ के आसान होने का ज़रिया बताया गया क्योंकि ख़ुशूअ़ के मायने ही दिल के सुकून के हैं। अब यह सवाल पैदा होता है कि दिल का सुकून यानी ख़ुशूअ़ किस तरह हासिल हो, तो यह बात तजुर्बे से साबित है कि अगर कोई शख़्स अपने दिल से विभिन्न सोच और ख़्यालों को डायरेक्ट निकालना चाहे तो इसमें कामयाबी बहुत मुश्किल है, बल्कि इसकी तदबीर यह है कि इनसानी नफ़्स चूँकि एक वक़्त में दो तरफ़ मुतवज्जह नहीं हो सकता, इसलिये अगर उसको किसी एक ख़्याल में लगाया और बिल्कुल डुबो दिया जाये तो दूसरे ख़्यालात और अफ़कार (सोच-विचार) ख़ुद-ब-ख़ुद निकल जायेंगे। इसलिये ख़ुशूअ़ की हिदायत के बाद वह ख़्याल बतलाते हैं जिसमें डूब जाने से दूसरे ख़्यालात दूर हो जायें और उनके दूर होने से दिल की सोचने और फ़िक्र करने की हरकत कटकर सुकून हासिल हो और सुकून से नमाज़ में आसानी होकर उस पर पाबन्दी और हमेशगी नसीब हो, और उस पाबन्दी से तकब्बुर व ग़ुरूर और रुतबे व पद की चाहत व मुहब्बत कम हो, ताकि ईमान के रास्ते में जो बाधा है वह दूर होकर ईमान कामिल हो जाये। सुब्हानल्लाह! क्या मुरत्तब (तरतीब वार) इलाज और चिकित्सालय (इलाज का स्थान) है।

अब इस ज़िक्र हुए ख़्याल की तालीम व निर्धारण इस तरह फ़रमाया कि वे ख़ुशूअ़ वाले वे लोग हैं जो ख़्याल रखते हैं इसका कि वे बेशक मिलने वाले हैं अपने रब से, तो उस वक़्त इस ख़िदमत का ख़ूब इनाम मिलेगा। और इस बात का भी ख़्याल रखते हैं कि वे अपने रब की तरफ़ वापस जाने वाले हैं, तो उस वक़्त इसका हिसाब व किताब भी देना होगा। इन दोनों ख़्यालों से उम्मीद और ख़ौफ़ पैदा होंगे। अव्वल तो हर अच्छे ख़्याल में डूब जाना दिल को नेक काम पर जमा देता है, ख़ास कर उम्मीद व ख़ौफ़ का ख़्याल, इसको तो ख़ास तौर पर दख़ल है नेक काम पर उभारने और उसमें लग जाने के लिये तैयार करने में।

"अक़ीमुस्सला-त" सलात के लफ़्ज़ी मायने दुआ़ के हैं। शरीअ़त की इस्तिलाह में सलात वह ख़ास इबादत है जिसको नमाज़ कहा जाता है। क़ुरआने करीम में उमूमन नमाज़ की जितनी मर्तबा ताकीद की गई है लफ़्ज़ इक़ामत (क़ायम करने) के साथ आई है, सिर्फ़ नमाज़ पढ़ने का ज़िक्र केवल एक दो जगह आया है, इसलिये नमाज़ के क़ायम करने की हक़ीक़त को समझना चाहिये। इक़ामत (क़ायम करने) के लफ़्ज़ी मायने सीधा करने और साबित रखने के हैं, और आ़दतन् जो खम्बा या

दीवार या पेड़ वग़ैरह सीधा खड़ा होता है वह क़ायम रहता है, गिर जाने का ख़तरा कम होता है। इसलिये इक़ामत के मायने हमेशा करने और क़ायम रखने के भी आते हैं।

क़ुरआन व हदीस की इस्तिलाह में नमाज़ क़ायम करने के मायने नमाज़ को उसके वक़्त में पाबन्दी के साथ उसके पूरे आदाब व शर्तों की रियायत करके अदा करने के हैं, बस नमाज़ पढ़ लेने का नाम नमाज़ का क़ायम करना नहीं है, नमाज़ के जितने फ़ज़ाईल व आसार और बरकतें क़ुरआन व हदीस में आये हैं वे सब नमाज़ क़ायम करने की शर्त के साथ बंधे हैं। जैसे क़ुरआने करीम में है:

إِنَّ الصَّلٰوةَ تَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَآءِ وَالْمُنْكَرِ. (٤٥:٢٩)

"यानी नमाज़ इनसान को हर बेहयाई और हर बुरे काम से रोक देती है।"

नमाज़ का यह असर उसी वक़्त ज़ाहिर होगा जबकि नमाज़ का क़ायम करना (पढ़ना) उस अन्दाज़ से करे जो अभी ज़िक्र किया गया है। इसलिये बहुत से नमाज़ियों को बुराईयों और बेहयाईयों में मुब्तला देखकर इस आयत पर कोई शुब्हा न करना चाहिये, क्योंकि उन लोगों ने नमाज़ पढ़ी तो है मगर उसको क़ायम नहीं किया।

"आतुज़्ज़का-त" लफ़्ज़ ज़कात के मायने लुग़त में दो आते हैं- पाक करना और बढ़ना। शरीअ़त की इस्तिलाह में माल के उस हिस्से को ज़कात कहा जाता है जो शरीअ़त के अहकाम के मुताबिक़ किसी माल में से निकाला जाये, और उसके मुताबिक़ ख़र्च किया जाये। अगरचे यहाँ ख़िताब मौजूदा बनी इस्राईल को है जिससे यह साबित नहीं होता कि ज़कात और नमाज़ इस्लाम से पहले बनी इस्राईल पर फ़र्ज़ थीं, मगर सूरः मायदा की इस आयत से साबित है:

وَلَقَدْ اَخَذَ اللّٰهُ مِيْثَاقَ بَنِىْٓ اِسْرَآءِيْلَ وَبَعَثْنَا مِنْهُمُ اثْنَىْ عَشَرَ نَقِيْبًا، وَقَالَ اللّٰهُ اِنِّىْ مَعَكُمْ، لَئِنْ اَقَمْتُمُ الصَّلٰوةَ.

(سورة ٥:١٢)

कि नमाज़ और ज़कात बनी इस्राईल पर फ़र्ज़ थी, अगरचे उसकी कैफ़ियत और शक्ल वग़ैरह में फ़र्क़ हो।

"वर्‌कऊ मअ़र्राकिईन" रुकूअ़ के लुग़त के मायने झुकने के हैं, और इस मायने के एतिबार से यह लफ़्ज़ सज्दे पर भी बोला जा सकता है, क्योंकि वह भी झुकने का आख़िरी दर्जा है, मगर शरीअ़त की इस्तिलाह में उस ख़ास झुकने को रुकूअ़ कहते हैं जो नमाज़ में परिचित व मशहूर है।

आयत के मायने यह हैं कि "रुकूअ़ करो रुकूअ़ करने वालों के साथ"। यहाँ एक बात यह क़ाबिले ग़ौर है कि नमाज़ के तमाम अरकान में से इस जगह रुकूअ़ को क्यों विशेष तौर पर ज़िक्र किया गया? इसका जवाब यह है कि यहाँ नमाज़ का एक पार्ट बोलकर पूरी नमाज़ मुराद ली गई है जैसे क़ुरआने करीम में एक जगह 'क़ुरआनल्-फ़ज्रि' फ़रमाकर फ़जर की पूरी नमाज़ मुराद है। और हदीस की कुछ रिवायतों में सज्दे का लफ़्ज़ बोलकर पूरी रकअ़त या नमाज़ मुराद ली गई है। इसलिये मुराद आयत की यह हो गई कि नमाज़ पढ़ो नमाज़ पढ़ने वालों के साथ। लेकिन यह सवाल फिर भी बाक़ी रह जाता है कि नमाज़ के बहुत से अरकान में से रुकूअ़ ही को ख़ास करने में क्या हिक्मत है? जवाब यह है कि यहूद की नमाज़ में सज्दा वग़ैरह तो था मगर रुकूअ़ नहीं था। रुकूअ़ इस्लामी नमाज़ की विशेषता है, इसलिये 'राकिईन' (रुकूअ़ करने वालों) के लफ़्ज़ से उम्मते मुहम्मदिया के नमाज़ी

मुराद होंगे, जिनकी नमाज़ में रुकूअ़ भी है, और मायने आयत के यह हैं कि तुम भी उम्मते मुहम्मदिया के नमाज़ियों के साथ नमाज़ अदा करो, यानी पहले ईमान क़ुबूल करो फिर जमाअ़त के साथ नमाज़ अदा करो।

जमाअ़त के साथ नमाज़ पढ़ने के अहकाम

नमाज़ का हुक्म और उसका फ़र्ज़ होना तो लफ़्ज़ 'अक़ीमुस्सला-त' (नमाज़ क़ायम करो) से मालूम हो चुका था। इस जगह 'मअ़र्राकिअ़ीन' (रुकूअ़ करने वालों के साथ) के लफ़्ज़ से नमाज़ को जमाअ़त के साथ अदा करने का हुक्म दिया गया है।

यह हुक्म किस दर्जे का है? इसमें उलेमा फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) का मतभेद है। सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम, ताबिईन और फ़ुक़हा-ए-उम्मत की एक जमाअ़त जमाअ़त को वाजिब क़रार देती है और उसके छोड़ने को सख़्त गुनाह। और कुछ सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम तो उस नमाज़ ही को जायज़ क़रार नहीं देते जो बिना शरई उ़ज़्र के जमाअ़त के बग़ैर पढ़ी जाये, यह आयत ज़ाहिरी अलफ़ाज़ के एतिबार से उन हज़रात की हुज्जत (दलील) है जो जमाअ़त के वाजिब होने के क़ायल हैं। इसके अ़लावा हदीस की चन्द रिवायतों से भी जमाअ़त का वाजिब होना समझा जाता है, एक हदीस में है:

لَا صَلٰوةَ لِجَارِ الْمَسْجِدِ اِلَّا فِی الْمَسْجِدِ. (رواه ابو داؤد)

"यानी मस्जिद के क़रीब रहने वाले की नमाज़ सिर्फ़ मस्जिद ही में जायज़ है।"

और मस्जिद की नमाज़ से ज़ाहिर है कि जमाअ़त की नमाज़ मुराद है, तो हदीस के अलफ़ाज़ से यह मतलब निकला कि मस्जिद के क़रीब रहने वाले की नमाज़ बग़ैर जमाअ़त के जायज़ नहीं।

मस्जिद के अ़लावा किसी और जगह जमाअ़त

और सही मुस्लिम में हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत मन्क़ूल है कि एक नाबीना (अंधे) सहाबी रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर होकर अ़र्ज़ किया कि मेरे साथ कोई ऐसा आदमी नहीं जो मुझे मस्जिद तक पहुँचा दिया और ले जाया करे, इसलिये अगर आप इजाज़त दें तो मैं नमाज़ घर में ही पढ़ लिया करूँ। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने पहले तो उनको इजाज़त दे दी मगर जब वह जाने लगे तो सवाल किया कि क्या अज़ान की आवाज़ तुम्हारे घर तक पहुँचती है? उन्होंने अ़र्ज़ किया कि अज़ान की आवाज़ तो मैं सुनता हूँ। आपने फ़रमाया फिर तो आपको मस्जिद में आना चाहिये। और कुछ रिवायतों में है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि फिर मैं आपके लिये कोई गुंजाईश और छूट नहीं पाता। (अबू दाऊद शरीफ़)

और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने कहा है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

مَنْ سَمِعَ النِّدَآءَ فَلَمْ يُجِبْ فَلَا صَلٰوةَ لَهٗ اِلَّا مِنْ عُذْرٍ. (صححه القرطبی)

"यानी जो शख़्स अज़ान की आवाज़ सुनता है और मस्जिद की जमाअ़त में नहीं आता तो उसकी नमाज़ नहीं होती मगर यह कि उसको कोई शरई उज़्र (मजबूरी) हो।"

इन हदीसों की बिना पर हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु और हज़रत अबू मूसा अश्अ़री रज़ियल्लाहु अ़न्हु वग़ैरह हज़राते सहाबा ने यह फ़तवा दिया है कि जो शख़्स मस्जिद के इतने क़रीब रहता है कि अज़ान की आवाज़ वहाँ तक पहुँचती है तो अगर वह बिना उज़्र के जमाअ़त में हाज़िर न हुआ तो उसकी नमाज़ ही नहीं होती (आवाज़ सुनने से मुराद यह है कि दरमियानी दर्जे की आवाज़ वाले आदमी की आवाज़ वहाँ पहुँच जाये, माइक या असाधारण बुलन्द आवाज़ का इसमें एतिबार नहीं)। ये सब रिवायतें उन हज़रात की दलील हैं जो जमाअ़त को वाजिब क़रार देते हैं, मगर जमहूरे उम्मत व फ़ुक़हा सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन के नज़दीक जमाअ़त सुन्नते मुअक्कदा है, मगर मुअक्कदा सुन्नतों में फ़जर की सुन्नतों की तरह सबसे ज़्यादा मुअक्कदा (ताकीद वाली) है और वाजिब के क़रीब है। इन सब हज़रात ने क़ुरआने करीम के हुक्म 'वर्कअ़ू मअ़र्राकिअ़ीन' (रुकूअ़ करो रुकूअ़ करने वालों के साथ) को दूसरी आयतों और रिवायतों की बिना पर ताकीद के लिये क़रार दिया है। और जिन हदीसों के ज़ाहिर से मालूम होता है कि मस्जिद के क़रीब रहने वाले की नमाज़ बग़ैर जमाअ़त के होती ही नहीं, इसका यह मतलब क़रार देते हैं कि यह नमाज़ कामिल और मक़बूल नहीं। इस मामले में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन सऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु का बयान बहुत स्पष्ट और काफ़ी है जिसको इमाम मुस्लिम रह. ने रिवायत किया है, जिसका तर्जुमा यह है:

फ़क़ीहुल-उम्मत हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि जो शख़्स यह चाहता हो कि कल (मेहशर में) अल्लाह तआ़ला से मुसलमान होने की हालत में मिले तो उसको चाहिये कि इन (पाँच) नमाज़ों के अदा करने की पाबन्दी उस जगह करे जहाँ अज़ान दी जाती है (यानी मस्जिद में), क्योंकि अल्लाह तआ़ला ने तुम्हारे नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये कुछ हिदायत के तरीक़े बतलाये हैं, और इन पाँच नमाज़ों को जमाअ़त के साथ अदा करना उन्हीं सुनने हुदा (हिदायत के तरीक़ों) में है, और अगर तुमने ये नमाज़ें अपने घर में पढ़ लीं जैसे यह जमाअ़त से अलग रहने वाला अपने घर में पढ़ लेता है (किसी ख़ास शख़्स की तरफ़ इशारा करके फ़रमाया) तो तुम अपने नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत को छोड़ बैठोगे और अगर तुमने अपने नबी की सुन्नत को छोड़ दिया तो तुम गुमराह हो जाओगे (और जो शख़्स वुज़ू करे और अच्छी तरह पाकी हासिल करे) फिर किसी मस्जिद का रुख़ करे तो अल्लाह तआ़ला उसके हर क़दम पर एक नेकी उसके नामा-ए-आमाल में दर्ज फ़रमाते हैं और उसका एक दर्जा बढ़ा देते हैं और एक गुनाह माफ़ कर देते हैं, और हमने अपने मजमे को ऐसा पाया है कि खुले मुनाफ़िक़ के सिवा कोई आदमी जमाअ़त से अलग नमाज़ न पढ़ता था यहाँ तक कि कुछ हज़रात को उज़्र और बीमारी में भी दो आदमियों के कन्धों पर हाथ रखकर मस्जिद में लाया जाता और सफ़ में खड़ा कर दिया जाता था।

इस बयान में जिस तरह जमाअ़त के साथ नमाज़ की पूरी ताकीद और अहमियत व ज़रूरत का ज़िक्र है उसी के साथ इसका यह दर्जा भी बयान फ़रमा दिया कि वह 'सुनने हुदा' में से है जिसको फ़ुक़हा सुन्नते मुअक्कदा कहते हैं। चुनाँचे अगर कोई शख़्स शरई उज़्र जैसे बीमारी वग़ैरह के बग़ैर

अकेले नमाज़ पढ़ ले और जमाअत में शरीक न हो तो उसकी नमाज़ तो हो जायेगी मगर सुन्नते मुअक्कदा के छोड़ने की वजह से अल्लाह की नाराज़गी का पात्र होगा और अगर जमाअत के छोड़ने की आदत बना ले तो सख़्त गुनाहगार है, ख़ुसूसन अगर ऐसी सूरत हो जाये कि मस्जिद वीरान रहे और लोग घरों में नमाज़ पढ़ें तो ये सब शरई सज़ा के मुस्तहिक़ हैं। और क़ाज़ी अयाज़ रह. ने फ़रमाया कि ऐसे लोग अगर समझाने से बाज़ न आयें तो उनसे क़िताल (जंग) किया जाये।

(तफ़सीरे क़ुर्तुबी पेज 298 जिल्द 1)

बेअ़मल वाइज़ की निंदा

اَتَاْمُرُوْنَ النَّاسَ بِالْبِرِّ وَتَنْسَوْنَ اَنْفُسَكُمْ.

"क्या तुम लोगों को हुक्म करते हो नेक काम का और अपने नफ़्सों को भूलते हो" इस आयत में ख़िताब अगरचे यहूद के उलेमा से है, उनको मलामत की जा रही है कि वे अपने दोस्तों और रिश्तेदारों को यह तालीम व हिदायत करते थे कि तुम मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) की पैरवी करते रहो और दीने इस्लाम पर क़ायम रहो (जो निशानी है इस बात की कि यहूद के उलेमा दीने इस्लाम को यक़ीनी तौर पर हक़ समझते थे) मगर ख़ुद नफ़्सानी इच्छाओं से इतने दबे हुए थे कि इस्लाम क़ुबूल करने के लिये तैयार न थे। लेकिन मायने के एतिबार से यह हर उस शख़्स की मज़म्मत (निंदा) है जो दूसरों को तो नेकी और भलाई की तरग़ीब दे मगर ख़ुद अ़मल न करे, दूसरों को ख़ुदा से डराये मगर ख़ुद न डरे। ऐसे शख़्स के बारे में हदीसों में बड़ी हौलनाक सज़ा की धमकियाँ आई हैं। हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया- मेराज की रात मेरा गुज़र कुछ लोगों पर हुआ जिनके होंठ और ज़बानें आग की क़ैंचियों से कुतरे जा रहे थे, मैंने जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम से पूछा कि ये कौन हैं? जिब्राईल ने बताया कि ये आपकी उम्मत के दुनियादार वाईज़ (लोगों को वअ़ज़ व नसीहत करने वाले) हैं, जो लोगों को तो नेकी का हुक्म करते थे मगर अपनी ख़बर न लेते थे। (इब्ने कसीर)

इब्ने अ़साकिर रह. ने ज़िक्र किया है कि नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि कुछ जन्नती बाज़े दोज़ख़ियों को आग में देखकर पूछेंगे कि तुम आग में क्योंकर पहुँच गये? हालाँकि हम तो ख़ुदा की क़सम उन्हीं नेक आमाल की बदौलत जन्नत में दाख़िल हुए हैं जो हमने तुम से सीखे थे। दोज़ख़ वाले कहेंगे "हम ज़बान से कहते ज़रूर थे लेकिन ख़ुद अ़मल नहीं करते थे।"

(तफ़सीर इब्ने कसीर)

क्या बुरे अ़मल वाला और गुनाहगार वअ़ज़ व नसीहत नहीं कर सकता?

लेकिन ऊपर ज़िक्र हुए बयान से यह न समझ लिया जाये कि बेअ़मल या फ़ासिक़ (गुनाहगार और बुरे अ़मल वाले) के लिये दूसरों को वअ़ज़ व नसीहत करना जायज़ नहीं, और जो शख़्स किसी गुनाह में मुब्तला हो वह दूसरों को उस गुनाह से रुकने और दूर रहने की तल्क़ीन न करे, क्योंकि कोई

अच्छा अ़मल अलग नेकी है और उस अच्छे अ़मल की तब्लीग़ दूसरी मुस्तक़िल नेकी है, और ज़ाहिर है कि एक नेकी को छोड़ने से यह ज़रूरी नहीं होता कि दूसरी नेकी भी छोड़ दी जाये। जैसे एक शख़्स नमाज़ नहीं पढ़ता तो उसके लिये यह ज़रूरी नहीं कि दूसरों को नमाज़ पढ़ने के लिये भी न कहे। इसी तरह किसी नाजायज़ काम को करना अलग गुनाह है और अपने असर वाले लोगों को उस नाजायज़ काम से न रोकना दूसरा गुनाह है, और एक गुनाह करने से यह लाज़िम नहीं आता कि दूसरा गुनाह भी ज़रूर किया जाये। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

चुनाँचे इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने हज़रत सईद बिन जुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु का यह क़ौल नक़ल किया है कि अगर हर शख़्स यह सोचकर 'अमर बिल-मारूफ़' (अच्छी बातों का हुक्म करने) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकने) को छोड़ दे कि मैं ख़ुद गुनाहगार हूँ जब गुनाहों से ख़ुद पाक हो जाऊँगा तो लोगों को तब्लीग़ करूँगा, तो नतीजा यह निकलेगा कि तब्लीग़ करने वाला कोई भी बाक़ी न रहेगा। क्योंकि ऐसा कौन है जो गुनाहों से बिल्कुल पाक हो? हज़रत हसन रज़ियल्लाहु अ़न्हु का इरशाद है कि शैतान तो यही चाहता है कि लोग इसी ग़लत ख़्याल में पड़कर तब्लीग़ का फ़रीज़ा छोड़ बैठें। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी) बल्कि हज़रत सैयदी हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी रह. तो फ़रमाया करते थे कि जब मुझे अपनी किसी बुरी आ़दत का इल्म होता है तो मैं उस आ़दत की मज़म्मत (निंदा) अपने बयानात में ख़ास तौर से बयान करता हूँ ताकि वअ़ज़ (नसीहत) की बरकत से वह आ़दत जाती रहे।

ख़ुलासा यह है कि आयतः

أَتَأْمُرُونَ النَّاسَ بِالْبِرِّ وَتَنْسَوْنَ أَنْفُسَكُمْ

"क्या तुम लोगों को हुक्म करते हो नेक काम का और अपने नफ़्सों को भूलते हो"

का मतलब यह नहीं है कि बेअ़मल आदमी को वअ़ज़ कहना जायज़ नहीं, बल्कि मतलब यह है कि वाइज़ (वअ़ज़ व नसीहत करने वाले) को बेअ़मल नहीं होना चाहिये, और दोनों बातों में फ़र्क़ स्पष्ट है। मगर यहाँ यह सवाल होता है कि बेअ़मल होना न तो वाइज़ के लिये जायज़ है न ग़ैर-वाइज़ के लिये, फिर वाइज़ को ही ख़ास क्यों किया गया? जवाब यह है कि नाजायज़ तो दोनों के लिये है मगर वाइज़ का जुर्म ग़ैर-वाइज़ के जुर्म के मुक़ाबले में ज़्यादा संगीन और ज़्यादा निंदनीय है, क्योंकि वाइज़ (वअ़ज़ व नसीहत करने वाला) जुर्म को जुर्म समझते हुए जान-बूझकर करता है, उसके पास यह उज़्र (बहाना) नहीं होता कि मुझे इसका जुर्म होना मालूम न था, इसके विपरीत ग़ैर-वाइज़ और अनपढ़ जाहिल है कि उसको चाहे इल्म हासिल न करने का अलग गुनाह हो लेकिन गुनाह करने में उसके पास किसी दर्जे में उज़्र मौजूद होता है कि मुझे मालूम न था। इसके अ़लावा आ़लिम और वाइज़ अगर कोई जुर्म करता है तो यह दीन के साथ एक किस्म का मज़ाक़ है। चुनाँचे हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला क़ियामत के दिन जितना अनपढ़ लोगों को माफ़ करेगा उतना उलेमा को माफ़ नहीं करेगा।

दो नफ़्सियाती रोग और उनका इलाज

माल की मुहब्बत और इज़्ज़त व रुतबे की तमन्ना, ये दोनों दिल की ऐसी बीमारियाँ हैं जिनके

कारण इनसान की दुनिया व आख़िरत की ज़िन्दगी अजीरन (तबाह) हो जाती है, और ग़ौर किया जाये तो मालूम होगा कि इनसानी इतिहास में अब तक जितनी इनसानियत सोज़ लड़ाईयाँ लड़ी गईं और जो फ़साद बरपा हुए उनमें से ज़्यादातर को इन्हीं दो बीमारियों ने जन्म दिया था।

माल की मुहब्बत के परिणाम ये निकलते हैं:

1. कन्जूसी और बुख़्ल पैदा होता है, जिसका एक बड़ा नुक़सान तो यह होता है कि उसकी दौलत क़ौम को कोई फ़ायदा नहीं पहुँचाती। दूसरा नुक़सान ख़ुद उसकी ज़ात को पहुँचता है कि समाज में कोई ऐसे शख़्स को अच्छी नज़र से नहीं देखता।

2. ख़ुदग़र्ज़ी पैदा होती है जो माल की हवस को पूरा करने के लिये उसे चीज़ों में मिलावट, नाप तौल में कमी, रिश्वत लेने, मक्र व फ़रेब और दग़ाबाज़ी के अनोखे और नये-नये बहाने सुझाती है, वह अपनी तिजोरी पहले से ज़्यादा भरने के लिये दूसरों का ख़ून निचोड़ लेना चाहता है, आख़िरकार सरमायेदार और मज़दूर के झगड़े जन्म लेते हैं।

3. ऐसे शख़्स को कितना ही माल मिल जाये लेकिन और अधिक कमाने की धुन ऐसी सवार होती है कि तफ़रीह और आराम के वक़्त भी यही बेचैनी उसे खाये जाती है कि किसी तरह अपने सरमाये में ज़्यादा से ज़्यादा इज़ाफ़ा करूँ, आख़िरकार जो माल उसके आराम व राहत का ज़रिया बनता वह उसके लिये वबाले जान बन जाता है।

4. हक़ बात चाहे कितनी ही स्पष्ट होकर सामने आ जाये मगर वह ऐसी किसी बात को मानने की हिम्मत नहीं करता जो उसकी माल की हवस से टकराती हो। ये तमाम चीज़ें आख़िरकार पूरे समाज का अमन व चैन बरबाद कर डालती हैं।

ग़ौर किया जाये तो क़रीब-क़रीब यही हाल इज़्ज़त व रुतबे की चाहत व मुहब्बत का नज़र आयेगा कि उसके नतीजे में तकब्बुर, ख़ुदग़र्ज़ी, हुक़ूक़ की पामाली, पद और सत्ता की हवस और उसके लिये ख़ूँरेज़ लड़ाईयाँ और इसी तरह की बेशुमार इनसानियत को मिटाने वाली ख़राबियाँ जन्म लेती हैं जो आख़िरकार दुनिया को दोज़ख़ बनाकर छोड़ती हैं। इन दोनों बीमारियों का इलाज क़ुरआने करीम ने यह तजवीज़ फ़रमाया है:

وَاسْتَعِيْنُوْا بِالصَّبْرِ وَالصَّلٰوةِ.

(और मदद लो सब्र और नमाज़ से) यानी सब्र इख़्तियार करो, मतलब यह कि अपनी लज़्ज़तों व नफ़्सानी इच्छाओं पर क़ाबू हासिल करो, इससे माल की मुहब्बत घट जायेगी, क्योंकि माल की मुहब्बत इसी लिये पैदा होती है कि माल लज़्ज़तों व नफ़्सानी इच्छाओं को पूरा करने का ज़रिया है। जब उन लज़्ज़तों व इच्छाओं की अंधाधुंध पैरवी छोड़ने पर हिम्मत बाँध लोगे तो शुरू में अगरचे भारी और नागवार गुज़रेगा लेकिन धीरे-धीरे ये इच्छायें एतिदाल (सही दर्जे) पर आ जायेंगी और एतिदाल तुम्हारी आदत बन जायेगा, तो फिर माल की अधिकता की ज़रूरत न रहेगी न उसकी मुहब्बत ऐसी ग़ालिब आयेगी कि अपने नफ़े नुक़सान से अन्धा कर दे।

और नमाज़ से इज़्ज़त व रुतबे की चाह कम हो जायेगी, क्योंकि नमाज़ में ज़ाहिरी और बातिनी हर तरह की आजिज़ी और पस्ती है। जब नमाज़ को सही-सही अदा करने की आदत हो जायेगी तो हर वक़्त अल्लाह के सामने अपनी आजिज़ी और पस्ती का तसव्वुर रहने लगेगा, जिससे तकब्बुर व

गुरूर और रुतबे व बड़ाई चाहने की तलब घट जायेगी।

ख़ुशूअ़ की हक़ीक़त

'इल्ला अ़लल् ख़ाशिअ़ीन' क़ुरआन व हदीस में जहाँ ख़ुशूअ़ की तरग़ीब ज़िक्र की गयी (शौक़ और तवज्जोह दिलाई गयी) है उससे मुराद वह दिली सुकून व इन्किसारी है जो अल्लाह की अ़ज़्मत और उसके सामने अपनी बेहक़ीक़ती के इल्म से पैदा होती है। इसके नतीजे में इताअ़त (अल्लाह और उसके रसूल के हुक्मों का पालन) आसान हो जाती है। कभी उसके आसार बदन पर भी ज़ाहिर होने लगते हैं कि वह अदब वाला, तवाज़ो वाला और दिल से झुका हुआ नज़र आता है, अगर दिल में ख़ौफ़े ख़ुदा और तवाज़ो न हो तो चाहे वह ज़ाहिर में कितना ही अदब और तवाज़ो वाला नज़र आये वह ख़ुशूअ़ वाला नहीं। बल्कि ख़ुशूअ़ के आसार का जान-बूझकर इज़्हार करना भी पसन्दीदा नहीं। हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने एक नौजवान को देखा कि सर झुकाये बैठा है, फ़रमाया सर उठा, ख़ुशूअ़ (आ़जिज़ी व इन्किसारी) दिल में होता है।

हज़रत इब्राहीम नख़ई का इरशाद है कि "मोटा पहनने, मोटा खाने और सर झुकाने का नाम ख़ुशूअ़ नहीं। ख़ुशूअ़ तो यह है कि तुम हक़ के मामले में शरीफ़ व घटिया के साथ बराबर सुलूक करो और अल्लाह ने जो तुम पर फ़र्ज़ किया है उसे अदा करने में अल्लाह के लिये दिल को फ़ारिग़ कर लो।" हज़रत हसन बसरी रह. का इरशाद है कि हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु जब बात करते तो सुनाकर करते थे, जब चलते तो तेज़ चलते, जब मारते तो ज़ोर से मारते थे हालाँकि निःसंदेह वह ख़ुशूअ़ रखने वाले थे।

ख़ुलासा यह है कि अपने इरादे व इख़्तियार से 'ख़ाशिअ़ीन' (ख़ुशूअ़ करने वालों) के जैसी सूरत बनाना शैतान और नफ़्स का धोखा है और बुरी चीज़ है, हाँ अगर बेइख़्तियार यह कैफ़ियत ज़ाहिर हो जाये तो कोई बात नहीं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

फ़ायदाः 'ख़ुशूअ़' के साथ एक दूसरा लफ़्ज़ 'ख़ुज़ूअ़' भी इस्तेमाल होता है। क़ुरआने करीम में भी बार-बार आया है। ये दोनों तक़रीबन एक ही मायने वाले हैं, लेकिन ख़ुशूअ़ का लफ़्ज़ असल के एतिबार से आवाज़ और निगाह को पस्त और आ़जिज़ी इख़्तियार करने के लिये बोला जाता है जबकि वह बनावटी न हो बल्कि दिली ख़ौफ़ और तवाज़ो का नतीजा हो। क़ुरआने करीम में हैः

خَشَعَتِ الْاَصْوَاتُ

(आवाज़ें पस्त हो गई) और 'ख़ुज़ूअ़' का लफ़्ज़ बदन की तवाज़ो और इन्किसारी के लिये इस्तेमाल होता है। क़ुरआने हकीम में हैः

فَظَلَّتْ اَعْنَاقُهُمْ لَهَا خٰضِعِيْنَ○ (٢٦:٤)

"और उनकी गर्दनें उसके सामने झुक गईं।"

नमाज़ में ख़ुशूअ़ की फ़िक़्ही हैसियत

नमाज़ में ख़ुशूअ़ की ताकीद क़ुरआन व सुन्नत में बार-बार आई है। क़ुरआने हकीम फ़रमाता हैः

وَاَقِمِ الصَّلٰوةَ لِذِكْرِىْ. (٢٠:١٤)

"और नमाज़ क़ायम कर मुझे याद करने के लिये।"

और ज़ाहिर है कि 'ग़फ़लत' याद करने के उलट है, जो नमाज़ में अल्लाह जल्ल शानुहू से ग़ाफ़िल है वह अल्लाह को याद करने का फ़रीज़ा अदा नहीं कर रहा। एक और आयत में इरशाद है:

وَلَا تَكُنْ مِّنَ الْغٰفِلِيْنَ ٥ (٧:٢٠٥)

"और तू ग़ाफ़िलों में से न हो।"

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद है- "नमाज़ तो सिर्फ़ आजिज़ी व इन्किसारी ही है।" जिसका ज़ाहिरी मतलब यह है कि जब आजिज़ी व इन्किसारी दिल में न हो तो वह नमाज़ नहीं। और एक हदीस में है कि "जिसकी नमाज़ उसे बेहयाई और बुराईयों से न रोक सके वह अल्लाह से दूर ही होता जाता है, और ग़ाफ़िल की नमाज़ बेहयाई से और बुराईयों से नहीं रोकती। मालूम हुआ कि ग़फ़लत के साथ नमाज़ पढ़ने वाला अल्लाह से दूर ही होता जाता है (ये सब हदीसें इमाम ग़ज़ाली रह. की किताब 'इहयाउल-उलूम' से ली गयी हैं)।

लेकिन चारों इमामों और जमहूर फ़ुक़हा ने ख़ुशूअ़ को नमाज़ की शर्त क़रार नहीं दिया बल्कि उसे नमाज़ की रूह क़रार देने के बावजूद सिर्फ़ इतना लाज़िमी किया है कि 'तकबीरे तहरीमा' (नमाज़ की नीयत बाँधते वक़्त की तकबीर) के वक़्त दिल को हाज़िर करके अल्लाह के लिये नमाज़ की नीयत करे, बाक़ी नमाज़ में अगर ख़ुशूअ़ हासिल न हो तो अगरचे उतनी नमाज़ का सवाब उसे नहीं मिलेगा जितने हिस्से में ख़ुशूअ़ नहीं रहा, लेकिन फ़िक़्हे (मसले) की रू से वह नमाज़ का छोड़ने वाला नहीं कहलायेगा और न उस पर सज़ा वग़ैरह के वे अहकाम लागू होंगे जो नमाज़ छोड़ने वाले पर लगते हैं।

इमाम ग़ज़ाली रह. ने इसकी यह वजह बयान फ़रमाई है कि फ़ुक़हा (उलेमा) बातिनी हालात और दिल की कैफ़ियतों पर हुक्म नहीं लगाते बल्कि वे तो सिर्फ़ ज़ाहिरी हिस्सों (बदनी अंगों) के आमाल पर ज़ाहिरी अहकाम बयान करते हैं, यह बात कि फ़ुलाँ अ़मल का सवाब आख़िरत में मिलेगा या नहीं, यह फ़िक़्हे की हदों से बाहर है। तो चूँकि बातिनी कैफ़ियत पर हुक्म लगाना उनकी बहस से ख़ारिज है और ख़ुशूअ़ एक बातिनी कैफ़ियत है इसलिये उन्होंने ख़ुशूअ़ को पूरी नमाज़ में शर्त क़रार नहीं दिया बल्कि ख़ुशूअ़ के मामूली दर्जे को शर्त कहा और वह यह कि कम से कम 'तकबीरे तहरीमा' (नमाज़ की नीयत बाँधते वक़्त की पहली तकबीर) के वक़्त महज़ अल्लाह की इबादत व ताज़ीम की नीयत कर ले।

ख़ुशूअ़ को पूरी नमाज़ में शर्त क़रार न देने की दूसरी वजह यह है कि क़ुरआने करीम की दूसरी आयतों में शरीअ़त के क़ानून बनाने का यह स्पष्ट उसूल बता दिया गया है कि इनसानों पर कोई ऐसी चीज़ फ़र्ज़ नहीं की जाती जो उनकी ताक़त व इमकान से बाहर हो और पूरी नमाज़ में ख़ुशूअ़ बरक़रार रखने से सिवाय चन्द ख़ास अफ़राद के अक्सर लोग आजिज़ होते हैं, इसलिये हिम्मत से बाहर की तकलीफ़ से बचने के लिये पूरी नमाज़ के बजाय सिर्फ़ नमाज़ के शुरू में ख़ुशूअ़ को शर्त क़रार दे दिया गया।

नमाज़ ख़ुशूअ़ के बग़ैर भी बिल्कुल बेफ़ायदा नहीं

इमाम ग़ज़ाली रहमतुल्लाहि अ़लैहि आख़िर में इरशाद फ़रमाते हैं कि ख़ुशूअ़ की इस ग़ैर-मामूली

(बहुत ज़्यादा) अहमियत के बावजूद हमें अल्लाह से यही उम्मीद है कि ग़फ़लत के साथ नमाज़ पढ़ने वाला भी बिल्कुल नमाज़ के छोड़ने वाले के दर्जे में नहीं, क्योंकि बहरहाल उसने फ़र्ज़ के अदा करने का क़दम तो उठाया है, और थोड़ी सी देर के लिये दिल को अल्लाह के लिये फ़ारिग़ भी किया कि कम से कम नीयत के वक़्त तो सिर्फ़ अल्लाह ही का ध्यान था, ऐसी नमाज़ का कम से कम फ़ायदा यह ज़रूर है कि उसका नाम नाफ़रमानों और बेनमाज़ियों की फ़ेहरिस्त से निकल गया।

मगर दूसरी हैसियत से यह डर भी है कि कहीं ग़ाफ़िल की हालत नमाज़ छोड़ने वाले से भी ज़्यादा बुरी न हो, क्योंकि जो ग़ुलाम आक़ा की ख़िदमत में हाज़िर होकर आक़ा से बेतवज्जोही बरतता और अपमान जनक लहजे में कलाम करता है उसकी हालत उस ग़ुलाम से ज़्यादा सख़्त है जो ख़िदमत में हाज़िर ही नहीं होता।

ख़ुलासा-ए-कलाम यह कि मामला उम्मीद व ख़ौफ़ का है, अज़ाब का ख़ौफ़ भी है और बख़्शिश की उम्मीद भी। इसलिये ग़फ़लत व सुस्ती को छोड़ने के लिये अपनी भरपूर कोशिश करते रहना चाहिये। व मा तौफ़ीक़ी इल्ला बिल्लाह (और बहरहाल तौफ़ीक़ देने वाला तो अल्लाह ही है)।

يٰبَنِيٓ إِسْرَٰٓءِيلَ ٱذْكُرُوا۟ نِعْمَتِيَ ٱلَّتِيٓ أَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَأَنِّي فَضَّلْتُكُمْ عَلَى ٱلْعٰلَمِينَ ۝ وَٱتَّقُوا۟ يَوْمًا لَّا تَجْزِي نَفْسٌ عَن نَّفْسٍ شَيْـًٔا وَلَا يُقْبَلُ مِنْهَا شَفٰعَةٌ وَلَا يُؤْخَذُ مِنْهَا عَدْلٌ وَلَا هُمْ يُنصَرُونَ ۝

या बनी इस्राईलज़्कुरू निअ्मतियल्लती अन्अम्तु अलैकुम् व अन्नी फ़ज़्ज़ल्तुकुम् अलल्-आलमीन (47) वत्तक़ू यौमल्-ला तज्ज़ी नफ़्सुन् अन्-नफ़्सिन् शैअंव्-व ला युक़्बलु मिन्हा शफ़ा-अतुंव्-व ला युअ्ख़ज़ु मिन्हा अद्लुंव्-व ला हुम् युन्सरून (48)	ऐ बनी इस्राईल! याद करो मेरे एहसान जो मैंने तुम पर किये और इसको कि मैंने तुमको बड़ाई दी तमाम आलम (जहान) पर। (47) और डरो उस दिन से कि काम न आये कोई शख़्स किसी के कुछ भी, और क़ुबूल न हो उसकी तरफ़ से सिफ़ारिश, और न लिया जाये उसकी तरफ़ से बदला, और न उनको मदद पहुँचे। (48)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ याक़ूब की औलाद! तुम लोग मेरी उस नेमत को याद करो (ताकि शुक्र और फ़रमाँबरदारी की तहरीक हो) जो मैंने तुमको इनाम में दी थी और इस (बात) को (याद करो) कि मैंने तुमको तमाम दुनिया जहान वालों पर (ख़ास बर्ताव में) बरतरी दी थी (और एक तर्जुमा यह भी हो सकता है कि "मैंने तुमको मख़्लूक़ के एक बड़े हिस्से पर बरतरी दी थी" जैसे उस ज़माने के लोगों पर।

फ़ायदाः इस आयत में ख़िताब चूँकि हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने में यहूदियों को है और उमूमन ऐसा होता है कि बाप-दादा पर जो एहसान व इकराम किया जाये उससे उसकी औलाद

भी फ़ायदा हासिल करती है, जिसको आम तौर पर देखा जाता है, इसलिये उनको भी इस आयत में मुख़ातब समझा जा सकता है।

और डरो तुम ऐसे दिन से कि (जिसमें) न तो कोई शख़्स किसी शख़्स की तरफ़ से कुछ मुतालबा अदा कर सकता है और न किसी शख़्स की तरफ़ से कोई सिफ़ारिश क़ुबूल हो सकती है (जबकि ख़ुद उस शख़्स में ईमान न हो जिसकी सिफ़ारिश करता है), और न किसी शख़्स की तरफ़ से कोई मुआवज़ा (बदला) लिया जा सकता है, और न उन लोगों की तरफ़दारी चल सकेगी।

फ़ायदाः आयत में जिस दिन का ज़िक्र है उससे क़ियामत का दिन मुराद है। मुतालबा अदा करने का मतलब यह है कि जैसे किसी के ज़िम्मे नमाज़ रोज़े का मुतालबा हो और दूसरा कह दे कि मेरा नमाज़ रोज़ा लेकर इसका हिसाब बेबाक़ कर दिया जाये, और मुआवज़ा यह कि कुछ माल वग़ैरह दाख़िल करके बचा लाये, सो दोनों बातें न होंगी। और बिना ईमान के सिफ़ारिश क़ुबूल न होने को जो फ़रमाया है तो दूसरी आयतों से मालूम हुआ कि इसकी सूरत यह होगी कि ऐसों की ख़ुद सिफ़ारिश ही न होगी जो क़ुबूल करने की गुंजाईश हो, और तरफ़दारी की सूरत यह होती है कि कोई ताक़तवर और दबंग हिमायत करके ज़बरदस्ती निकाल लाये।

ग़र्ज़ यह कि दुनिया में मदद करने के जितने तरीक़े होते हैं बिना ईमान के कोई तरीक़ा भी न होगा कि ऐसी कोई शक्ल निकल आये।

وَاِذْ نَجَّيْنٰكُمْ مِّنْ اٰلِ فِرْعَوْنَ يَسُوْمُوْنَكُمْ سُوْٓءَ الْعَذَابِ يُذَبِّحُوْنَ اَبْنَآءَكُمْ وَيَسْتَحْيُوْنَ نِسَآءَكُمْ ۭ وَفِيْ ذٰلِكُمْ بَلَاۗءٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ عَظِيْمٌ ۝

व इज़् नज्जैनाकुम् मिन् आलि फ़िर्औ-न यसूमूनकुम् सूअल्-अज़ाबि युज़ब्बिहू-न अब्ना-अकुम् व यस्तह्यू-न निसा-अकुम् व फ़ी ज़ालिकुम् बलाउम् मिर्रब्बिकुम् अज़ीम (49)	और याद करो उस वक़्त को जबकि रिहाई दी हमने तुमको फ़िरऔन के लोगों से, जो करते थे तुमको बड़ा अज़ाब, ज़िबह करते थे तुम्हारे बेटों को और ज़िन्दा छोड़ते थे तुम्हारी औरतों को, और इसमें आज़माईश (इम्तिहान और परीक्षा) थी तुम्हारे रब की तरफ़ से बड़ी। (49)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऊपर जिन ख़ास बर्तावों का हवाला दिया है अब यहाँ उनकी तफ़सील बयान करनी शुरू की। पहला मामला तो यह है कि- और (वह ज़माना याद करो) जबकि रिहाई दी हमने तुम (लोगों के बाप दादा) को फ़िरऔन के लोगों से जो फ़िक्र में लगे रहते थे तुम्हें सख़्त तकलीफ़ पहुँचाने की, गले काटते थे तुम्हारे लड़कों के और ज़िन्दा छोड़ देते थे तुम्हारी औरतों को (लड़कियों को कि ज़िन्दा रहकर बड़ी

औरतें हो जायें)। और इस (वाक़िए) में तुम्हारे परवर्दिगार की तरफ़ से तुम्हारा एक बड़ा भारी इम्तिहान था।

फ़ायदाः किसी ने फ़िरऔन से भविष्यवाणी कर दी थी कि बनी इस्राईल में एक लड़का ऐसा पैदा होगा जिसके हाथों तेरी हुकूमत जाती रहेगी, इसलिये उसने नये पैदा होने वाले लड़कों को क़त्ल करना शुरू कर दिया, और चूँकि लड़कियों से कोई अन्देशा न था इसलिये उनसे कुछ सरोकार न रखा। दूसरे इसमें उसका अपना एक मतलब भी था कि उन औरतों से मामागिरी और ख़िदमतगारी (घरेलू काम-काज) का काम लेता था, सो यह मेहरबानी भी अपने मतलब के लिये थी।

और इस वाक़िए से या तो यह ज़िबह और उक्त क़त्ल मुराद है, और मुसीबत में सब्र का इम्तिहान होता है, और या रिहाई देना मुराद है जो कि एक नेमत है और नेमत में शुक्र का इम्तिहान होता है, और इस निजात देने की तफ़सील आगे बयान फ़रमाई।

وَإِذْ فَرَقْنَا بِكُمُ الْبَحْرَ فَأَنْجَيْنَاكُمْ وَأَغْرَقْنَا آلَ فِرْعَوْنَ وَأَنْتُمْ تَنْظُرُونَ ۝ وَإِذْ وَاعَدْنَا مُوسَىٰ أَرْبَعِينَ لَيْلَةً ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِنْ بَعْدِهِ وَأَنْتُمْ ظَالِمُونَ ۝

व इज़् फ़-रक़्ना बिकुमुल्-बह्-र फ़-अन्जैनाकुम् व अग़्रक़्ना आ-ल फ़िर्औ-न व अन्तुम् तन्ज़ुरून (50) व इज़् वाअ़द्ना मूसा अर्बअ़ी-न लै-लतन् सुम्मत्तख़ज़्तुमुल्-अ़िज्-ल मिम्बअ़्दिही व अन्तुम् ज़ालिमून (51)	और जब फाड़ दिया हमने तुम्हारी वजह से दरिया को, फिर बचा दिया हमने तुमको और डुबो दिया फ़िरऔन के लोगों को और तुम देख रहे थे। (50) और जब हमने वादा किया मूसा से चालीस रात का, फिर तुमने बना लिया बछड़ा मूसा (अ़लैहिस्सलाम) के बाद और तुम ज़ालिम थे। (51)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जबकि फाड़ दिया हमने तुम्हारे (रास्ता देने की) वजह से दरिया-ए-शोर "यानी नमकीन या काले पानी के दरिया" को, फिर हमने (डूबने से) तुमको बचा लिया और फ़िरऔन के मुताल्लिक़ीन को (मय फ़िरऔन के) डुबो दिया, और तुम (उसको) ख़ुद देख रहे थे।

फ़ायदाः यह क़िस्सा उस वक़्त हुआ कि मूसा अ़लैहिस्सलाम पैदा होकर पैग़म्बर हो गये और मुद्दतों फ़िरऔन को समझाते रहे। जब वह किसी तरह न माना तो हुक्म हुआ कि बनी इस्राईल को चुपचाप लेकर यहाँ से चले जाओ, रास्ते में दरिया रोक बना और उसी वक़्त पीछे से फ़िरऔन भी मय लश्कर आ पहुँचा। हक़ तआ़ला के हुक्म से दरिया फट गया और बनी इस्राईल को गुज़रने का रास्ता मिल गया। ये तो पार हो गये, फ़िरऔन के पहुँचने तक दरिया उसी तरह रहा वह भी पीछा करने की ग़र्ज़ से उसमें घुस गया, उस वक़्त सब तरफ़ से दरिया सिमट कर अपनी पहली हालत पर हो गया और फ़िरऔन और उसके साथी सब वहीं पर ग़र्क़ होकर ख़त्म हो गये।

और (वह ज़माना याद करो) जबकि वायदा किया था हमने मूसा (अ़लैहिस्सलाम) से (तौरात देने का एक मुद्दत गुज़रने पर जिसमें दस रात का इज़ाफ़ा होकर) चालीस रात का (ज़माना हो गया था), फिर तुम लोगों ने (परस्तिश के लिये) तजवीज़ कर लिया गौसाला (गाय के बछड़े) को मूसा (अ़लैहिस्सलाम) के (जाने के) बाद, और तुमने (इस तजवीज़ में खुले) ज़ुल्म पर कमर बाँध रखी थी (कि ऐसी बेजा बात के क़ायल हो गये थे)।

फ़ायदा: यह क़िस्सा उस वक़्त हुआ बक़ौल कुछ हज़रात के जब फ़िरऔन के ग़र्क़ होने के बाद बनी इस्राईल मिस्र में वापस आकर रहने लगे, या कुछ हज़रात के क़ौल के मुताबिक़ किसी और मक़ाम पर ठहर गये तो मूसा अ़लैहिस्सलाम से बनी इस्राईल ने अ़र्ज़ किया कि अब हम बिल्कुल मुत्मईन हो गये, अगर कोई शरीअ़त हमारे लिये मुक़र्रर हो तो उसको अपना दस्तूरुल-अ़मल (ज़िन्दगी गुज़ारने और अ़मल करने का क़ानून) बनायें। मूसा अ़लैहिस्सलाम की अ़र्ज़ पर हक़ तआ़ला ने वादा फ़रमाया कि तुम तूर पहाड़ पर आकर एक महीना हमारी इबादत में मशग़ूल रहो, एक किताब तुमको देंगे। आपने ऐसा ही किया और तौरात आपको मिल गई, मगर दस दिन और इबादत में मशग़ूल रहने का हुक्म इसलिये दिया गया कि मूसा अ़लैहिस्सलाम ने एक माह रोज़ा रखने के बाद इफ़्तार फ़रमा लिया था, अल्लाह तआ़ला को रोज़ेदार के मुँह की बू (जो मेदा ख़ाली रहने की वजह से उसमें से उठने वाली भाप और बुख़ार से पैदा हो जाती है) पसन्द है, इसलिये मूसा अ़लैहिस्सलाम को हुक्म हुआ कि दस रोज़े और रखें ताकि वह बू फिर पैदा हो जाये। इस तरह ये चालीस रोज़े पूरे हो गये। मूसा अ़लैहिस्सलाम तो यहाँ रहे और वहाँ एक शख़्स सामरी नाम का था, उसने चाँदी या सोने के एक बछड़े का ढाँचा और मुजस्समा बनाकर उसके अन्दर वह मिट्टी जो उसने जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम के घोड़े के क़दम के नीचे से उठाकर अपने पास सुरक्षित रखी हुई थी डाल दी, उस बछड़े में जान पड़ गई और बनी इस्राईल के जाहिलों ने उसकी पूजा शुरू कर दी।

ثُمَّ عَفَوْنَا عَنْكُمْ مِّنْ بَعْدِ ذٰلِكَ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝

सुम्-म अ़फ़ौना अ़न्कुम् मिम्-बअ़्दि ज़ालि-क लअ़ल्लकुम् तश्कुरून (52)	फिर माफ़ किया हमने तुमको उस पर भी ताकि तुम एहसान मानो। (52)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

फिर भी हमने (तुम्हारे तौबा करने पर) माफ़ किया तुमसे इतनी बड़ी बात होने के बाद, इस उम्मीद पर कि तुम एहसान मानोगे।

फ़ायदा: इस तौबा का बयान आगे की तीसरी आयत में बयान हुआ है। अल्लाह तआ़ला के इस उम्मीद रखने का मतलब नऊज़ु बिल्लाह यह नहीं कि ख़ुदा तआ़ला को शक था, बल्कि मतलब यह है कि यह दरगुज़र (माफ़) करना ऐसी चीज़ है कि देखने वालों को शुक्रगुज़ारी की उम्मीद का गुमान हो सकता है।

وَإِذْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ وَالْفُرْقَانَ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ۝

व इज़् आतैना मूसल्-किता-ब वल्-फ़ुरक़ा-न लअ़ल्लकुम् तह्तदून (53)	और जब दी हमने मूसा को किताब और हक़ को नाहक़ से अलग करने वाले अहकाम ताकि तुम सीधी राह पाओ। (53)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब दी हमने मूसा को किताब (यानी तौरात) और फ़ैसले की चीज़, इस उम्मीद पर कि तुम राह पर चलते रहो।

फ़ायदाः फ़ैसले की चीज़ या तो उन शरई अहकाम को कहा जो तौरात में लिखे हैं (क्योंकि) शरीअ़त (यानी ख़ुदाई क़ानून) से सारे के सारे एतिक़ादी व अ़मली विवादों और झगड़ों का फ़ैसला हो जाता है, या मोजिज़ों (अल्लाह की तरफ़ से नबियों के हाथ पर ज़ाहिर किये जाने वाले वो करिश्मे जिनसे बाक़ी सब लोग आ़जिज़ हो जायें) को कहा कि उनसे सच्चे झूठे दावे का फ़ैसला होता है, या ख़ुद तौरात ही को कह दिया कि इसमें किताब होने की सिफ़त भी है और फ़ैसल (फ़ैसला करने वाली) होने की सिफ़त भी।

وَإِذْ قَالَ مُوْسٰى لِقَوْمِهٖ يٰقَوْمِ إِنَّكُمْ ظَلَمْتُمْ أَنْفُسَكُمْ بِاتِّخَاذِكُمُ الْعِجْلَ فَتُوْبُوْا إِلٰى بَارِئِكُمْ فَاقْتُلُوْا أَنْفُسَكُمْ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ عِنْدَ بَارِئِكُمْ فَتَابَ عَلَيْكُمْ إِنَّهٗ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ۝

व इज़् क़ा-ल मूसा लिक़ौमिही या क़ौमि इन्नकुम् ज़लम्तुम् अन्फ़ु-सकुम् बित्तिख़ाज़िकुमुल्-अ़िज्-ल फ़-तूबू इला बारिइकुम् फ़क़्तुलू अन्फ़ु-सकुम्, ज़ालिकुम् ख़ैरुल्-लकुम् अ़िन्-द बारिइकुम्, फ़ता-ब अ़लैकुम् इन्नहू हुवत्तव्वाबुर्रहीम (54)	और जब कहा मूसा ने अपनी क़ौम से- ऐ क़ौम! तुमने नुक़सान किया अपना यह बछड़ा बनाकर, सो अब तौबा करो अपने पैदा करने वाले की तरफ़ और मार डालो अपनी-अपनी जान, यह बेहतर है तुम्हारे लिये तुम्हारे ख़ालिक़ के नज़दीक, फिर मुतवज्जह हुआ तुम पर, बेशक वही है माफ़ करने वाला निहायत मेहरबान। (54)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब मूसा (अ़लैहिस्सलाम) ने फ़रमाया अपनी क़ौम से कि ऐ मेरी क़ौम! बेशक तुमने अपना बड़ा नुक़सान किया अपनी इस गौसाला (यानी बछड़े को पूजने) की

तजवीज़ से, सो तुम अब अपने ख़ालिक़ की तरफ़ मुतवज्जह होओ। फिर कुछ आदमी (जिन्होंने गौसाला को नहीं पूजा) कुछ आदमियों को (जिन्होंने गौसाला को पूजा) क़त्ल करो। यह (अमल करना) तुम्हारे लिए बेहतर होगा तुम्हारे ख़ालिक़ के नज़दीक। फिर (इस अमल करने से) हक़ तआला तुम्हारे हाल पर (अपनी इनायत से) मुतवज्जह हुए, बेशक वह तो ऐसे ही हैं कि तौबा क़ुबूल कर लेते हैं और इनायत (मेहरबानी) फ़रमाते हैं।

फ़ायदाः यह उस तरीक़े का बयान है जो उनकी तौबा के क़ुबूल होने लिये तजवीज़ हुआ, यानी मुजरिम लोग क़त्ल किये जायें जैसा कि हमारी शरीअ़त में भी कई गुनाहों की सज़ा बावजूद तौबा के भी क़त्ल और जान से मारना मुक़र्रर है, जैसे जान-बूझकर किसी को क़त्ल करने के बदले क़त्ल और ज़िना का गवाहों के साथ सुबूत पर रज्म (यानी शादीशुदा ज़िनाकार के लिये पत्थरों से मार-मारकर उसको हलाक करना), कि तौबा से यह सज़ा ख़त्म नहीं होती। चुनाँचे उन लोगों ने इस पर अमल किया जिसकी वजह से आख़िरत में उन पर अल्लाह की रहमत व इनायत हुई।

وَاِذْ قُلْتُمْ يٰمُوْسٰى لَنْ نُّؤْمِنَ لَكَ حَتّٰى نَرَى اللّٰهَ جَهْرَةً فَاَخَذَتْكُمُ الصّٰعِقَةُ وَاَنْتُمْ تَنْظُرُوْنَ ۝

व इज़् क़ुल्तुम् या मूसा लन्नुअ्मि-न ल-क हत्ता नरल्ला-ह जह्-रतन् फ़-अ-ख़ज़त्कुमुस्साअि-क़तु व अन्तुम् तन्ज़ुरून (55)	और जब तुमने कहा ऐ मूसा! हम हरगिज़ यक़ीन न करेंगे तेरा जब तक कि न देख लें अल्लाह को सामने, फिर आ लिया तुमको बिजली ने और तुम देख रहे थे। (55)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब तुम लोगों ने (यूँ) कहा कि ऐ मूसा! हम हरगिज़ न मानेंगे (कि यह अल्लाह तआ़ला का कलाम है) यहाँ तक कि हम (ख़ुद) देख लें अल्लाह तआ़ला को खुले तौर पर, सो (इस गुस्ताख़ी पर) आ पड़ी तुम पर कड़क बिजली की और तुम (उस बिजली का आना) अपनी आँखों से देख रहे थे।

फ़ायदाः इसका क़िस्सा इस तरह हुआ था कि जब मूसा अ़लैहिस्सलाम ने तूर पहाड़ से तौरात लाकर पेश की कि यह अल्लाह तआ़ला की किताब है तो कुछ गुस्ताख़ लोगों ने कहा कि अल्लाह तआ़ला ख़ुद हमसे कह दे कि यह किताब हमारी है तो बेशक हमको यक़ीन आ जायेगा। मूसा अ़लैहिस्सलाम ने अल्लाह के हुक्म से फ़रमाया कि तूर पहाड़ पर चलो, यह बात भी हो जायेगी। बनी इस्राईल ने इस काम के लिये सत्तर आदमी चुन करके मूसा अ़लैहिस्सलाम के साथ तूर पहाड़ पर रवाना किये, वहाँ पहुँचने पर अल्लाह तआ़ला का कलाम उन लोगों ने ख़ुद सुना तो उस वक़्त और रंग लाये कि हमको तो कलाम सुनने पर बस नहीं होता, ख़ुदा जाने कौन बोल रहा होगा, अगर ख़ुदा को देख लें तो बेशक मान लें। चूँकि दुनिया में कोई शख़्स अल्लाह तआ़ला को देखने की ताक़त नहीं रखता इसलिये इस गुस्ताख़ी पर उन पर बिजली आ पड़ी और सब हलाक हो गये (हलाकत के

मुताल्लिक़ अगली आयत में बयान है)।

ثُمَّ بَعَثْنٰكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ مَوْتِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝

सुम्-म बअ़स्नाकुम् मिम्-बअ़्दि मौतिकुम् लअ़ल्लकुम् तश्कुरून (56)	फिर उठा खड़ा किया हमने तुमको मरने के बाद ताकि तुम एहसान मानो। (56)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

फिर हमने (मूसा अ़लैहिस्सलाम की दुआ़ से) तुमको ज़िन्दा कर उठाया तुम्हारे मर जाने के बाद, इस उम्मीद पर कि तुम एहसान मानोगे।

फ़ायदाः मौत के लफ़्ज़ से ज़ाहिर में मालूम होता है कि ये लोग उस बिजली से मर गये थे। इनके दोबारा ज़िन्दा किये जाने का क़िस्सा यह हुआ कि मूसा अ़लैहिस्सलाम ने अल्लाह तआ़ला से अ़र्ज़ किया कि बनी इस्राईल पहले ही बदगुमान रहते हैं अब वे समझेंगे कि मैंने इनको कहीं लेजाकर किसी तदबीर से इनका काम तमाम करा दिया होगा, मुझको इस तोहमत से बचाईये। अल्लाह तआ़ला ने अपनी रहमत से उनको फिर ज़िन्दा कर दिया।

وَظَلَّلْنَا عَلَيْكُمُ الْغَمَامَ وَاَنْزَلْنَا عَلَيْكُمُ الْمَنَّ وَالسَّلْوٰى ۚ كُلُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا رَزَقْنٰكُمْ ۚ وَمَا ظَلَمُوْنَا وَلٰكِنْ كَانُوْٓا اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ ۝

व ज़ल्लल्ना अ़लैकुमुल्-ग़मा-म व अन्ज़ल्ना अ़लैकुमुल्-मन्-न वस्सल्वा, कुलू मिन् तय्यिबाति मा रज़क़्नाकुम्, व मा ज़-लमूना व लाकिन् कानू अन्फ़ु-सहुम् यज़्लिमून (57)	और साया किया हमने तुम पर बादल का और उतारा तुम पर मन्न और सलवा। खाओ पाकीज़ा चीज़ें जो हमने तुमको दीं, और उन्होंने हमारा कुछ नुक़सान न किया बल्कि अपना ही नुक़सान करते रहे। (57)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और साया डालने वाला किया हमने तुम पर बादल को (तीह के मैदान में), और (ग़ैब के ख़ज़ाने से) पहुँचाया हमने तुम्हारे पास तुरन्जबीन और बटेरें (और तुमको इजाज़त दी कि) खाओ उम्दा चीज़ों से जो कि हमने तुमको दी हैं (मगर वे लोग इसमें भी ख़िलाफ़ बात कर बैठे) और (इससे) उन्होंने हमारा कोई नुक़सान नहीं किया, लेकिन अपना ही नुक़सान करते थे।

फ़ायदाः दोनों क़िस्से तीह के मैदान में पेश आये। तीह की वादी की हक़ीक़त यह है कि बनी इस्राईल का असली वतन मुल्के शाम है, हज़रत यूसुफ़ अ़लैहिस्सलाम के वक़्त में मिस्र आये थे और

यहाँ ही रह पड़े, और मुल्के शाम में अमालिक़ा नाम की क़ौम का कब्ज़ा हो गया। फ़िरऔन जब ग़र्क़ हो गया और ये लोग मुतमईन हो गये तो अल्लाह तआ़ला का हुक्म हुआ कि अमालिक़ा से जिहाद करो और अपनी असली जगह को उनके कब्ज़े से छुड़ा लो। बनी इस्राईल इस इरादे से मिस्र से चले और उनकी सीमाओं में पहुँचकर जब अमालिक़ा के ज़ोर व क़ुव्वत का हाल मालूम हुआ तो हिम्मत हार बैठे और जिहाद से साफ़ इनकार कर दिया। अल्लाह तआ़ला ने उनको इस इनकार की यह सज़ा दी कि चालीस बरस तक एक मैदान में हैरान व परेशान फिरते रहे, घर पहुँचना भी नसीब नहीं हुआ। यह मैदान कुछ बहुत बड़ा रक़बा न था बल्कि मिस्र और शाम (सीरिया) के बीच पाँच-छह सौ कोस यानी तक़रीबन दस मील का रक़बा था। रिवायत यह है कि ये लोग अपने वतन मिस्र जाने के लिये दिन भर सफ़र करते और रात को किसी मन्ज़िल पर उतरते, सुबह को देखते कि जहाँ से चले थे वहीं हैं, इसी तरह चालीस साल हैरान व परेशान उस मैदान में फिरते रहे, इसी लिये उस मैदान को **वादी-ए-तीह** कहा जाता है। तीह के मायने हैं हैरानी, परेशानी और होश खो बैठने के।

यह तीह की वादी एक खुला मैदान था, न उसमें कोई इमारत थी न दरख़्त, जिसके नीचे धूप, सर्दी और गर्मी से बचा जा सके, और न यहाँ कोई खाने पीने का सामान था न पहनने के लिये लिबास, मगर अल्लाह तआ़ला ने मोजिज़े (अपनी क़ुदरत के करिश्मे) के तौर पर हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम की दुआ़ से उसी मैदान में उनकी तमाम ज़रूरतों का इन्तिज़ाम फ़रमा दिया। बनी इस्राईल ने धूप की शिकायत की तो अल्लाह तआ़ला ने एक सफ़ेद पतले बादल का साया कर दिया और भूख का तक़ाज़ा हुआ तो **मन्न** व **सलवा** नाज़िल फ़रमा दिया, यानी पेड़ों पर तुरन्जबीन जो एक शीरीं (मीठी) चीज़ है ख़ूब अधिकता के साथ पैदा कर दी, ये लोग उसको जमा कर लेते उसी को **मन्न** कहा गया है, और बटेरें उनके पास जमा हो जातीं उनसे भागती न थीं, ये उनको पकड़ लेते और ज़िबह करके खाते, इसी को **सलवा** कहा गया है। ये लोग दोनों लतीफ़ चीज़ों से पेट भर लेते। चूँकि तुरन्जबीन की अधिकता मामूल से ज़्यादा थी और बटेरों का उनके पास से न भागना यह भी मामूल के ख़िलाफ़ है लिहाज़ा इस हैसियत से दोनों चीज़ें ग़ैब के ख़ज़ाने से क़रार दी गईं। उनको पानी की ज़रूरत पेश आई तो मूसा अ़लैहिस्सलाम को एक पत्थर पर लाठी मारने का हुक्म दिया गया उस पत्थर से चश्मे फूट पड़े जैसा कि क़ुरआन की दूसरी आयतों में इसका बयान है। उन लोगों ने रात के अन्धेरे का शिकवा किया तो अल्लाह तआ़ला ने ग़ैब से एक रोशनी खम्बे और सुतून की शक्ल में उनके मौहल्ले के बीच क़ायम फ़रमा दी, कपड़े मैले हुए और फटने लगे और लिबास की ज़रूरत हुई तो अल्लाह तआ़ला ने अपनी क़ुदरत के करिश्मे के तौर पर यह सूरत कर दी कि उनके कपड़े मैले न हों न फटें, और बच्चों के बदन पर जो कपड़े हैं वे उनके बदन के बढ़ने के साथ-साथ उसी मात्रा से बढ़ते रहें। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

और उन लोगों को यह भी हुक्म हुआ था कि ख़र्च और ज़रूरत के अनुसार ले लिया करें बाद के लिये जमा करके न रखें, मगर उन लोगों ने हिर्स (लालच) के मारे इसमें भी ख़िलाफ़ (हुक्म का उल्लंघन) किया तो रखा हुआ गोश्त सड़ना शुरू हो गया, इसी को फ़रमाया है कि अपना ही नुक़सान करते थे।

وَإِذْ قُلْنَا ادْخُلُوا هَٰذِهِ الْقَرْيَةَ فَكُلُوا مِنْهَا حَيْثُ شِئْتُمْ رَغَدًا وَادْخُلُوا الْبَابَ سُجَّدًا وَقُولُوا حِطَّةٌ نَغْفِرْ لَكُمْ خَطَايَاكُمْ ۚ وَسَنَزِيدُ الْمُحْسِنِينَ ﴿٥٨﴾

व इज़् क़ुल्नद्ख़ुलू हाज़िहिल्-क़र्य-त फ़कुलू मिन्हा हैसु शिअ्तुम् र-ग़दंव्-वद्ख़ुलुल्-बा-ब सुज्जदंव्-व क़ूलू हित्ततुन् नग़्फ़िर् लकुम ख़तायाकुम्, व स-नज़ीदुल् मुह्सिनीन (58)	और जब हमने कहा दाख़िल होओ उस शहर में और खाते फिरो उसमें जहाँ चाहो फ़रागत से, और दाख़िल होओ दरवाज़े में सज्दा करते हुए और कहते जाओ 'बख़्श दे' तो माफ़ कर देंगे हम तुम्हारे क़सूर (ख़तायें) और ज़्यादा भी देंगे नेकी वालों को। (58)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब हमने हुक्म किया कि तुम लोग उस आबादी के अन्दर दाख़िल होओ, फिर खाओ उस (की चीज़ों में) से जिस जगह तुम दिलचस्पी रखो बेतकल्लुफ़ी से, और (यह भी हुक्म दिया कि जब अन्दर जाने लगो तो) दरवाज़े में दाख़िल होना (आजिज़ी से) झुके-झुके और (ज़बान से यह) कहते जाना कि तौबा है (तौबा है)। हम माफ़ कर देंगे तुम्हारी (पिछली) ख़ताएँ (तो सब की) और इसके अलावा और ज़्यादा देंगे दिल से नेक काम करने वालों को।

फ़ायदाः शाह अ़ब्दुल-क़ादिर साहिब रह. के अनुसार यह क़िस्सा भी तीह के मैदान के दौर का है कि जब **मन्न** व **सलवा** खाते-खाते उकता गये और अपने मामूली खाने की दरख़्वास्त की (जैसा कि आगे की चौथी आयत में आ रहा है) तो उनको एक शहर में जाने का हुक्म हुआ था कि वहाँ खाने पीने की और मामूली चीज़ें मिलेंगी, सो यह हुक्म उस शहर के अन्दर जाने के बारे में है। इसमें क़ौली और फ़ेली (बोलने और अ़मल का) अदब दाख़िल होने के मुताल्लिक़ बयान किया गया और अन्दर जाकर खाने पीने में छूट दी गई। इस क़ौल पर बहुत से बहुत यह कहा जा सकेगा कि क़िस्से के बयान में बाद का क़िस्सा पहले बयान हुआ और पहले का बाद में, तो यह इश्काल उस वक़्त होता जब क़ुरआन मजीद में ख़ुद क़िस्सों का बयान करना मक़सूदे असली होता, और जब नज़र नतीजों पर है तो अगर एक क़िस्से के हिस्सों में हर हिस्से का नतीजा अलग हो और उनके नतीजों के किसी असर का लिहाज़ करके बाद के हिस्से को पहले और पहले के हिस्से को बाद में बयान कर दिया जाये तो इसमें न कोई हर्ज है और न कोई इश्काल (शुब्हा करने वाली बात)।

दूसरे मुफ़स्सिरीन (क़ुरआन के व्याख्यापक) हज़रात ने इस हुक्म को उस शहर से बारे में समझा है जिस पर जिहाद करने का हुक्म हुआ था, और तीह की मुद्दत के बाद फिर उस पर जिहाद हुआ और वह फ़तह हुआ। उस वक़्त हज़रत यूशा अ़लैहिस्सलाम नबी थे, यह हुक्म उनके द्वारा उस शहर के बारे में हुआ था।

पहले क़ौल की बिना पर पिछली ख़ताओं में वह दरख़्वास्त भी दाख़िल कर लेना मुनासिब है जो

मन्न व सलवा छोड़कर मामूली खानों के बारे में की गई थी। मतलब यह होगा कि यह दरख़्वास्त थी तो गुस्ताख़ी ही लेकिन ख़ैर! अब अगर इस अदब और हुक्म को पूरा किया तो इसको माफ़ कर देंगे और हर कौल पर यह माफ़ी तो सब कहने वालों के लिये आम होगी और जो इख़्लास (दिल की सच्चाई) से नेक आमाल करेंगे उनका इनाम इसके अलावा है।

فَبَدَّلَ الَّذِينَ ظَلَمُوا قَوْلًا غَيْرَ الَّذِي قِيلَ لَهُمْ فَأَنزَلْنَا
عَلَى الَّذِينَ ظَلَمُوا رِجْزًا مِّنَ السَّمَاءِ بِمَا كَانُوا يَفْسُقُونَ ۞

फ़-बद्-दलल्लज़ी-न ज़-लमू क़ौलन् ग़ैरल्लज़ी क़ी-ल लहुम् फ़-अन्ज़ल्ना अ़लल्लज़ी-न ज़-लमू रिज्ज़म् मिनस्-समा-इ बिमा कानू यफ़्सुक़ून (59) ✿	फिर बदल डाला ज़ालिमों ने बात को ख़िलाफ़ (उलट) उसके कि जो कह दी गयी थी उनसे, फिर उतारा हमने ज़ालिमों पर अ़ज़ाब आसमान से उनकी नाफ़रमानी और अवमानना की वजह से। (59) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

सो बदल डाला उन ज़ालिमों ने एक और कलिमा जो ख़िलाफ़ था उस कलिमे के जिस (के कहने) की उनसे फ़रमाईश की गई थी। इस पर हमने नाज़िल की उन ज़ालिमों पर एक आसमानी आफ़त, इस वजह से कि वे नाफ़रमानी करते थे।

फ़ायदाः यह आयत पहली आयत को पूरा करने वाला हिस्सा (यानी पूरक) है, वह ख़िलाफ़ कलिमा यह था कि 'हित्ततुन' जिसके मायने तौबा के थे उसकी जगह मज़ाक़ उड़ाने के तौर पर 'हब्बतुन् फ़ी शअ़ीरतिन' (यानी ग़ल्ला जौ के बीच का) कहना शुरू किया। वह आसमानी आफ़त ताऊन था, जो हदीस की रू से बेहुक्मों (नाफ़रमानों) के लिये अ़ज़ाब और हुक्म का पालन करने वालों के लिये रहमत है। इस शरारत की उनको यह सज़ा मिली कि उनमें ताऊन (प्लैग) फूट पड़ा और बहुत से आदमी फ़ना हो गये (कुछ हज़रात ने हलाक होने वालों की संख्या सत्तर हज़ार तक बताई है)। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

मआ़रिफ़ व मसाईल

कलाम में लफ़्ज़ी रद्दोबदल का शरई हुक्म

इस आयत से मालूम हुआ कि बनी इस्राईल को यह हुक्म दिया गया था कि उस शहर में 'हित्ततुन्' यानी तौबा-तौबा कहते हुए दाख़िल हों। उन्होंने शरारत से इन अलफ़ाज़ को बदलकर 'हिन्ततुन्' कहना इख़्तियार किया, इसकी वजह से उनपर आसमानी अ़ज़ाब नाज़िल हुआ। यह अलफ़ाज़ की तब्दीली ऐसी थी कि जिसमें सिर्फ़ अलफ़ाज़ ही नहीं बदले बल्कि मायने भी बिल्कुल उल्टे हो गये। 'हित्ततुन' के मायने तौबा यानी गुनाहों को नज़र-अन्दाज़ करने के थे और 'हिन्ततुन' के

मायने गन्दुम (गेहूँ) के हैं, जिसका उस कलिमे से कोई ताल्लुक़ नहीं जिसका उन्हें हुक्म किया गया था। अलफ़ाज़ की ऐसी तब्दीली चाहे क़ुरआन में हो या हदीस में या और किसी अल्लाह के हुक्म में बिला शुब्हा और उलेमा की सर्वसम्मति से हराम है, क्योंकि यह एक क़िस्म का मज़ाक़ या रद्दोबदल और कमी-बेशी करना है, इसी पर यह अ़ज़ाब नाज़िल हुआ।

अब रहा यह मसला कि मायने और उद्देश्य को महफ़ूज़ रखते हुए सिर्फ़ अलफ़ाज़ की तब्दीली का क्या हुक्म है? इमाम क़ुर्तुबी रह. ने अपनी तफ़सीर में इसके बारे में फ़रमाया है कि कुछ कलिमे और अक़वाल में मायने की तरह अलफ़ाज़ भी मक़सूद और इबारत की अदायगी के लिये ज़रूरी होते हैं, ऐसे अक़वाल में लफ़्ज़ी तब्दीली भी जायज़ नहीं, जैसे अज़ान के निर्धारित अलफ़ाज़ के बजाय इस मायने के दूसरे अलफ़ाज़ पढ़ना जायज़ नहीं। इसी तरह नमाज़ में जो दुआ़यें जैसे सुब्हानकल्लाहुम्-म, अत्तहिय्यात, दुआ़-ए-क़ुनूत या रुकूअ़ व सज्दों की तस्बीहें जिन अलफ़ाज़ से मन्क़ूल हैं उन्हीं अलफ़ाज़ में अदा करना ज़रूरी है, दूसरे अलफ़ाज़ में अगरचे मायने वही महफ़ूज़ भी रहें मगर तब्दीली जायज़ नहीं। इसी तरह पूरे क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ का यही हुक्म है कि तिलावते क़ुरआन से जो अहकाम मुताल्लिक़ हैं वे सिर्फ़ उन्हीं अलफ़ाज़ के साथ हैं जो क़ुरआने करीम के नाज़िल हुए हैं, अगर कोई उन अलफ़ाज़ का तर्जुमा दूसरे लफ़्ज़ों में करके पढ़े जिसमें मायने बिल्कुल महफ़ूज़ रहें इसको शरीअ़त की इस्तिलाह में तिलावते क़ुरआन न कहा जायेगा और न उस पर वह सवाब हासिल होगा जो क़ुरआन पढ़ने पर मुक़र्रर है, कि एक हर्फ़ पर दस नेकियाँ लिखी जाती हैं, क्योंकि क़ुरआन सिर्फ़ मायने का नाम नहीं बल्कि मायने और अल्लाह की तरफ़ से उतरे हुए अलफ़ाज़ के मजमूए को क़ुरआन कहा जाता है।

उक्त आयत में:

فَبَدَّلَ الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا قَوْلًا غَيْرَ الَّذِيْ قِيْلَ لَهُمْ

के अलफ़ाज़ से बज़ाहिर यही मालूम होता है कि उनको तौबा के लिये जो अलफ़ाज़ 'हित्ततुन' के बतलाये गये थे, ये अलफ़ाज़ भी हुक्म में दाख़िल थे, इनका बदलना ख़ुद भी गुनाह था, फिर तब्दीली ऐसी कर दी कि मायने ही उलट गये, इसलिये आसमानी अ़ज़ाब के हक़दार हो गये।

लेकिन जिन अक़वाल और कलिमात में असल मक़सूद (मायने ही हैं, अलफ़ाज़ मक़सूद नहीं उनमें अगर ऐसी लफ़्ज़ी तब्दीली की जाये कि मायने पर कोई असर न पड़े वे पूरी तरह महफ़ूज़ रहें तो जमहूर मुहद्दिसीन और फ़ुक़हा के नज़दीक यह तब्दीली जायज़ है। बाज़ हज़राते मुहद्दिसीन हदीसे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम में ऐसी लफ़्ज़ी तब्दीली को भी जायज़ नहीं कहते। इमाम क़ुर्तुबी रह. ने इमाम मालिक, इमाम शाफ़ई और इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहिम से नक़ल किया है कि हदीस में मायने के लिहाज़ से रिवायत करना भी जायज़ है मगर शर्त यह है कि रिवायत करने वाला अ़रबी भाषा का माहिर और ख़िताब के मौक़े और जिस माहौल में हदीस वारिद हुई है उससे पूरी तरह वाक़िफ़ हो, ताकि उसकी ग़लती से मायने में फ़र्क़ न आ जाये। और हदीस के इमामों की एक जमाअ़त जिस तरह हदीस के अलफ़ाज़ सुने हैं उसी तरह नक़ल करना ज़रूरी समझते हैं, कोई लफ़्ज़ी उलट-फेर व तब्दीली जायज़ नहीं रखते। इमाम मुहम्मद बिन सीरीन, इमाम क़ासिम

बिन मुहम्मद वग़ैरह हज़रात का भी यही मस्लक है, यहाँ तक कि इनमें से कुछ हज़रात का अ़मल और उसूल यह है कि अगर हदीस के बयान करने वाले ने कोई लफ़्ज़ नक़ल करने में कोई लुग़वी (भाषाई) ग़लती भी की है तो उससे सुनने वाले को उसी ग़लती के साथ रिवायत करना चाहिये, अपनी तरफ़ से तब्दीली न करे, उसके साथ यह ज़ाहिर कर दे कि मेरे ख़्याल में सही लफ़्ज़ इस तरह है मगर मुझे रिवायत इस तरह पहुँची है। इन हज़रात का इस्तिदलाल (दलील) उस हदीस से है जिसमें नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक शख़्स को यह तल्क़ीन (हिदायत व तालीम) फ़रमाई थी कि जब सोने के लिये बिस्तर पर जाये तो यह दुआ पढ़ेः

امَنْتُ بِكِتَابِكَ الَّذِیْ اَنْزَلْتَ وَبِنَبِیِّكَ الَّذِیْ اَرْسَلْتَ

"आमन्तु बिकिताबिकल्लज़ी अन्ज़ल्-त व बि-नबिय्यिकल्लज़ी अर्सल्-त"

उस शख़्स ने 'नबिय्यि-क' की जगह 'रसूलि-क' पढ़ दिया तो हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फिर यही हिदायत फ़रमाई कि लफ़्ज़ 'नबिय्यि-क' पढ़ा करे, जिससे मालूम हुआ कि लफ़्ज़ी तब्दीली भी जायज़ नहीं। इसी तरह एक हदीस में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद हैः

نَضَّرَ اللّٰهُ امْرَأً سَمِعَ مَقَالَتِیْ فَبَلَّغَهَا كَمَا سَمِعَهَا.

"यानी अल्लाह तआ़ला उस शख़्स को सरसब्ज़ व शादाब (फलता-फूलता) रखे जिसने मेरा कोई कलाम सुना और फिर उम्मत को उसी तरह पहुँचा दिया जिस तरह सुना था।"

इससे भी ज़ाहिर है कि जिन अलफ़ाज़ से सुना था उन्हीं लफ़्ज़ों से पहुँचाना मुराद है।

मगर जमहूर मुहद्दिसीन और फ़ुक़हा के नज़दीक अगरचे बेहतर और अफ़ज़ल तो यही है कि जहाँ तक हो सके हदीस की रिवायत में ठीक वही अलफ़ाज़ नक़ल करे जो सुने हैं, अपने इरादे से उनमें तब्दीली न करे, लेकिन अगर वे अलफ़ाज़ पूरी तरह याद नहीं रहे तो उनका मफ़्हूम (मतलब) अपने अलफ़ाज़ में नक़ल कर देना भी जायज़ है और हदीस 'उसको उसी तरह पहुँचा दिया जिस तरह सुना था' का यह मतलब भी हो सकता है कि जो मज़मून सुना वही बिल्कुल उसी तरह नक़ल कर दे, उसके मतलब में कोई फ़र्क़ न आये, अलफ़ाज़ की तब्दीली इसके ख़िलाफ़ नहीं। इमाम क़ुर्तुबी रह. ने इसकी ताईद में फ़रमाया कि ख़ुद यही हदीस इसकी दलील है कि अलफ़ाज़ की तब्दीली ज़रूरत के मौक़े पर जायज़ है, क्योंकि ख़ुद इस हदीस की रिवायत ही हम तक विभिन्न और अनेक अलफ़ाज़ में पहुँची है।

और पहली हदीस में जो लफ़्ज़ 'रसूलि-क' के बजाय 'नबिय्यि-क' ही पढ़ने का हुक्म फ़रमाया, उसकी एक वजह यह भी हो सकती है कि लफ़्ज़ नबी में तारीफ़ की सिफ़त रसूल के मुक़ाबले में ज़्यादा है, क्योंकि रसूल का लफ़्ज़ तो क़ासिद के मायने में दूसरों के लिये भी बोला जाता है बख़िलाफ़ लफ़्ज़ नबी के कि वह ख़ास उसी मन्सब (पद और मक़ाम) के लिये इस्तेमाल होता है जो अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से अपने मख़्सूस बन्दों को वही के ज़रिये ख़िताब करने का अ़ता किया जाता है।

और दूसरी वजह यह भी हो सकती है कि दुआ़ओं में नक़ल हुए अलफ़ाज़ की पैरवी और अनुसरण ख़ासियतों व आसार के एतिबार से एक ख़ास अहमियत रखता है, दूसरे अलफ़ाज़ में वह ख़ासियत नहीं रहती। (क़ुर्तुबी) इसी लिये आ़मिल हज़रात जो तावीज़-गण्डे करते हैं वे इसकी बड़ी

रियायत करते हैं कि जो अलफ़ाज़ मन्क़ूल हैं उनमें तब्दीली व हेर-फेर न किया जाये, इस लिहाज़ से यह कहा जा सकता है कि मासूरा दुआयें भी इसी पहली क़िस्म में दाख़िल हैं, जिनमें मायने के साथ ख़ास अलफ़ाज़ की हिफ़ाज़त भी मक़सूद है। वल्लाहु सुब्हानहू व तआ़ला आलम।

وَإِذِ اسْتَسْقَىٰ مُوسَىٰ لِقَوْمِهِ فَقُلْنَا اضْرِب بِّعَصَاكَ الْحَجَرَ ۖ فَانفَجَرَتْ مِنْهُ اثْنَتَا عَشْرَةَ عَيْنًا ۖ قَدْ عَلِمَ كُلُّ أُنَاسٍ مَّشْرَبَهُمْ ۖ كُلُوا وَاشْرَبُوا مِن رِّزْقِ اللَّهِ وَلَا تَعْثَوْا فِي الْأَرْضِ مُفْسِدِينَ ⊙

व इजिस्तस्क़ा मूसा लिक़ौमिही फ़-क़ुल्नज़्रिब् बि-असाकल् ह-ज-र, फ़न्फ़-जरत् मिन्हुस्-नता अ़श्र-त अ़ैनन्, क़द् अ़लि-म कुल्लु उनासिम् मश्र-बहुम्, कुलू वश्रबू मिर्रिज़्क़िल्लाहि व ला तअ़्सौ फ़िल्अर्ज़ि मुफ़्सिदीन (60)	और जब पानी माँगा मूसा ने अपनी क़ौम के वास्ते तो हमने कहा- मार अपने अ़सा (लाठी) को पत्थर पर, सो बह निकले उससे बारह चश्मे, पहचान लिया हर क़ौम ने अपना घाट। खाओ और पियो अल्लाह की रोज़ी और न फिरो मुल्क में फ़साद मचाते। (60)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब (हज़रत) मूसा (अ़लैहिस्सलाम) ने पानी की दुआ़ माँगी अपनी क़ौम के वास्ते, इस पर हमने (मूसा अ़लैहिस्सलाम को) हुक्म दिया कि अपनी इस लाठी को फ़ुलाँ पत्थर पर मारो (उससे पानी निकल आयेगा)। पस (लाठी मारने की देर थी) फ़ौरन उससे फूट निकले बारह चश्मे (और बारह ही ख़ानदान थे बनी इस्राईल के, चुनाँचे) मालूम कर लिया हर-हर शख़्स ने अपने पानी पीने की जगह को। (और हमने यह नसीहत की कि खाने को) खाओ और (पीने को) पियो अल्लाह के रिज़्क़ से और (दरमियाना दर्जे की) हद से मत निकलो फ़साद (व फ़ितना) करते हुए मुल्क में।

फ़ायदाः यह क़िस्सा भी तीह की वादी में हुआ, वहाँ प्यास लगी तो पानी माँगा। मूसा अ़लैहिस्सलाम ने दुआ़ की तो एक ख़ास पत्थर को सिर्फ़ अ़सा (लाठी) मारने से क़ुदरते ख़ुदावन्दी से बारह चश्मे निकल पड़े, और उनके बारह ख़ानदान इस तरह थे कि हज़रत याक़ूब अ़लैहिस्सलाम के बारह बेटे थे हर एक की औलाद का एक-एक ख़ानदान था। उनको इन्तिज़ामी मामलात में अलग अलग ही रखा जाता था, सब के अफ़सर भी अलग-अलग थे इसलिये चश्मे भी बारह ही निकले।

खाने से मुराद **मन्न** व **सलवा** और पीने से मुराद यही पानी था और नाफ़रमानी और अहकाम के छोड़ने को फ़ितना व फ़साद से ताबीर फ़रमाया।

क़ाज़ी बैज़ावी रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि ऐसी आ़दत से ऊपर की चीज़ों और घटनाओं (यानी मोजिज़ों) का इनकार बहुत बड़ी ग़लती है। जब कुछ पत्थरों में अल्लाह तआ़ला ने अन्दाज़े,

क़ियास और ख़िलाफ़े अ़क़्ल यह तासीर रखी है कि लोहे को जज़्ब करता (अपने अन्दर समा लेता) है तो उस पत्थर में अगर यह तासीर पैदा कर दी हो कि ज़मीन के हिस्सों से पानी को चूस ले और उससे पानी निकलने लगे तो क्या मुहाल (मुश्किल बात) है।

हमारे ज़माने के अ़क़्लमन्दों को इस बयान से सबक़ हासिल करना और फ़ायदा उठाना चाहिये और फिर यह नज़ीर भी केवल ऊपर और मामूली नज़र वालों के लिये है, वरना ख़ुद अगर उस पत्थर के हिस्सों में ही पानी पैदा हो जाये तो भी कौनसा मुहाल मामला लाज़िम आता है, जो हज़रात ऐसी चीज़ों को मुहाल (नामुम्किन) कहते हैं तो वल्लाह वे अब तक मुहाल की हक़ीक़त ही को नहीं समझे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

उक्त आयत में हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम ने अपनी क़ौम के लिये पानी पिलाने की दुआ़ फ़रमाई, अल्लाह तआ़ला ने पानी का सामान कर दिया कि पत्थर पर लाठी मारने से चश्मे उबल पड़े। इससे मालूम हुआ कि पानी की तलब के लिये असल दुआ़ ही है। हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम की शरीअ़त में भी सिर्फ़ दुआ़ पर ही इक्तिफ़ा (बस) किया गया, जैसा कि इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि का इरशाद है कि 'इस्तिस्क़ा' (पानी तलब करने) की असल पानी के लिये दुआ़ करना है, यह दुआ़ कभी ख़ास नमाज़े इस्तिस्क़ा की सूरत में की गई है जैसा कि सही हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का नमाज़े इस्तिस्क़ा के लिये ईदगाह के मैदान में तशरीफ़ ले जाना और नमाज़ और ख़ुतबा और दुआ़ करना मन्क़ूल है, और कभी ऐसा भी हुआ कि बग़ैर किसी ख़ास नमाज़ के सिर्फ़ दुआ़ पर बस किया गया जैसा कि बुख़ारी व मुस्लिम (हदीस की किताबों) में हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से मन्क़ूल है कि जुमा के ख़ुतबे ही में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दुआ़ फ़रमाई, अल्लाह तआ़ला ने बारिश नाज़िल फ़रमा दी।

और यह बात सब के नज़दीक मुसल्लम (मानी हुई) है कि 'इस्तिस्क़ा' (पानी तलब करने की दुआ़) चाहे नमाज़ की सूरत में किया जाये या सिर्फ़ दुआ़ की सूरत में उसके असरदार होने के लिये गुनाहों से तौबा, अपनी आ़जिज़ी व विनम्रता, अल्लाह की तरफ़ हाजत मन्द होने और बन्दगी का इज़हार ज़रूरी है, गुनाहों पर जमे रहने और अल्लाह तआ़ला की नाफ़रमानियों पर क़ायम रहते हुए दुआ़ में असर पैदा होने के इन्तिज़ार का किसी को हक़ नहीं, अल्लाह तआ़ला अपने करम से यूँ भी क़ुबूल फ़रमा लें तो उनके क़ब्ज़ा-ए-क़ुदरत में सब कुछ है।

وَإِذْ قُلْتُمْ يٰمُوسٰى لَنْ نَّصْبِرَ عَلٰى طَعَامٍ وَّاحِدٍ فَادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُخْرِجْ لَنَا مِمَّا تُنْۢبِتُ الْأَرْضُ مِنْۢ بَقْلِهَا وَقِثَّآئِهَا وَفُومِهَا وَعَدَسِهَا وَبَصَلِهَا ۖ قَالَ أَتَسْتَبْدِلُونَ الَّذِي هُوَ أَدْنٰى بِالَّذِي هُوَ خَيْرٌ ۚ اِهْبِطُوا مِصْرًا فَإِنَّ لَكُمْ مَّا سَأَلْتُمْ ۗ وَضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ وَالْمَسْكَنَةُ ۗ وَبَآءُوْ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ ۗ ذٰلِكَ بِأَنَّهُمْ كَانُوا يَكْفُرُونَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَيَقْتُلُونَ النَّبِيّٖنَ بِغَيْرِ الْحَقِّ ۗ ذٰلِكَ بِمَا عَصَوْا وَّكَانُوا يَعْتَدُونَ ﴿٦١﴾

व इज़् क़ुल्तुम् या मूसा लन्-नस्बि-र अला तआमिंव्-वाहिदिन् फ़द्अु लना रब्ब-क युख़्रिज् लना मिम्मा तुम्बितुल्-अर्ज़ु मिम्- बक़्लिहा व क़िस्साइहा व फ़ूमिहा व अ़-दसिहा व ब-सलिहा, क़ा-ल अ-तस्तब्दिलूनल्लज़ी हु-व अद्ना बिल्लज़ी हु-व ख़ैरुन्, इह्बितू मिस्रन् फ़-इन्-न लकुम् मा सअल्तुम, व ज़ुरिबत् अ़लैहिमुज़्-ज़िल्लतु वल्-मस्क-नतु व बाऊ बि-ग़-ज़बिम्-मिनल्लाहि, ज़ालि-क बिअन्नहुम् कानू यक्फ़ुरू-न बिआयातिल्लाहि व यक़्तुलूनन्नबिय्यी-न बिग़ैरिल्-हक़्क़ि, ज़ालि-क बिमा अ़सव्-व कानू यअ़्तदून (61) ✿	और जब कहा तुमने ऐ मूसा! हम हरगिज़ सब्र न करेंगे एक ही तरह के खाने पर, सो दुआ माँग हमारे वास्ते अपने परवर्दिगार से कि निकाल दे हमारे वास्ते जो उगता है ज़मीन से तरकारी और ककड़ी और गेहूँ और मसूर और प्याज़। कहा मूसा ने- क्या लेना चाहते हो वह चीज़ जो अदना है उसके बदले में जो बेहतर है? उतरो किसी शहर में तो तुमको मिले जो माँगते हो, और डाली गयी उन पर ज़िल्लत और मोहताजी, और फिरे अल्लाह का ग़ुस्सा लेकर। यह इस लिए हुआ कि नहीं मानते थे वे अल्लाह के अहकाम को और ख़ून करते थे पैग़म्बरों का नाहक़। यह इसलिए कि नाफ़रमान थे, और हद पर न रहते थे। (61) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब तुम लोगों ने (यूँ) कहा कि ऐ मूसा (रोज़ के रोज़) हम एक ही किस्म के खाने पर कभी न रहेंगे (यानी मन्न व सलवा पर), आप हमारे वास्ते अपने परवर्दिगार से दुआ करें कि वह हमारे लिए ऐसी चीज़ें पैदा करें जो ज़मीन में उगा करती हैं, साग (हुआ) ककड़ी (हुई) गेहूँ (हुआ) मसूर (हुई) और प्याज़ (हुई)। आपने फ़रमाया- क्या तुम बदले में लेना चाहते हो अदना दर्जे की चीज़ों को ऐसी चीज़ के मुक़ाबले में जो आला दर्जे की है (अच्छा अगर नहीं मानते तो) किसी शहर में (जाकर) उतरो, (वहाँ) ज़रूर तुमको वे चीज़ें मिलेंगी जिनकी तुम दरख़्वास्त करते हो, और (ऐसी-ऐसी गुस्ताख़ियों से एक ज़माने में जाकर नक़्श की तरह) जम गई उन पर ज़िल्लत (कि दूसरों की निगाह में क़द्र न रही) और पस्ती (कि दूसरों की निगाह में क़द्र और ख़ुद उनमें हिम्मत व ज़ुर्रत न रही) और मुस्तहिक़ हो गए अल्लाह के ग़ज़ब के। (और) यह (ज़िल्लत व ग़ज़ब) इस वजह से (हुआ) कि वे लोग इनकारी हो जाते थे अहकामे इलाही के और क़त्ल कर दिया करते थे पैग़म्बरों को (कि वह क़त्ल ख़ुद उनके नज़दीक भी) नाहक़ (होता था), (और दूसरे) यह (ज़िल्लत व ग़ज़ब) इस

वजह से हुआ कि उन लोगों ने इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) न की और (इताअ़त के) दायरे से निकल-निकल जाते थे।

फ़ायदाः यह किस्सा भी तीह के मैदान का है। मन्न व सलवा से उकता कर इन तरकारियों और ग़ल्लों की दरख़्वास्त की, उस मैदान की सीमाओं के अन्दर कोई शहर आबाद था वहाँ जाकर रहने का हुक्म हुआ कि बोओ जोतो खाओ कमाओ।

और दूसरी ज़िल्लत व रुस्वाई और पस्तियों (मोहताजी) में से एक ज़िल्लत यह भी है कि यहूदियों से हुकूमत क़ियामत के क़रीबी ज़माने तक के लिये छीन ली गई, अलबत्ता बिल्कुल क़ियामत के नज़दीक महज़ लुटेरों के जैसा बेज़ाब्ता थोड़ा ज़ोर व शोर दज्जाल यहूदी का कुल चालीस दिन के लिये हो जायेगा और उसको कोई अ़क्लमन्द हुकूमत व सल्तनत नहीं कह सकता और उनको यह बात मूसा अ़लैहिस्सलाम के ज़रिये जतला दी गई थी कि अगर बेहुक्मी (नाफ़रमानी) करोगे तो हमेशा दूसरी क़ौमों के महकूम (ताबे और अधीन) रहोगे, जैसा कि सूरः आराफ़ की आयत में बयान हुआ है:

وَاِذْ تَاَذَّنَ رَبُّكَ لَيَبْعَثَنَّ عَلَيْهِمْ اِلٰى يَوْمِ الْقِيٰمَةِ مَنْ يَّسُوْمُهُمْ سُوْٓءَ الْعَذَابِ. (١٦٧:٧)

(मौजूदा इस्राईली हुकूमत की हैसियत भी अमेरिका और बरतानिया के ग़ुलाम से ज़्यादा कुछ नहीं।)

और बहुत से पैग़म्बर विभिन्न वक़्तों (ज़मानों) में यहूदियों के हाथ से क़त्ल हुए जिसको वे लोग भी दिल में समझते थे कि हमारा यह फ़ेल (हरकत) नाहक़ है, लेकिन दुश्मनी और ज़िद ने अन्धा बना रखा था।

मआ़रिफ़ व मसाईल

यहूदियों पर हमेशा की ज़िल्लत का मतलब और इस्राईल की मौजूदा हुकूमत से शुब्हा और उसका जवाब

ज़िक्र हुई आयतों में यहूद की सज़ा दुनिया में हमेशा की ज़िल्लत व पस्ती (तंगी) और दुनिया व आख़िरत में अल्लाह के ग़ज़ब को बयान किया गया है।

उनकी हमेशा की ज़िल्लत व मोहताजी का मतलब जो तफ़सीर के माहिर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम से मन्क़ूल है, उसका ख़ुलासा अ़ल्लामा इब्ने कसीर रह. के अलफ़ाज़ में यह है:

لَا يَزَالُوْنَ مستذلين من وجدهم استذلهم وضرب عليهم الصغار

यानी वे कितने ही मालदार भी हो जायें, हमेशा तमाम क़ौमों में ज़लील व हक़ीर ही समझे जायेंगे, जिसके हाथ लगेंगे उनको ज़लील करेगा और उन पर ग़ुलामी की अ़लामतें लगा देगा।

इमामे तफ़सीर ज़स्हाक इब्ने मुज़ाहिम रह. ने हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ि. से उनकी ज़िल्लत व मोहताजी का यह मतलब नक़ल किया है कि:

هم اهل القبالات يعنى الجزية

मतलब यह है कि यहूदी हमेशा दूसरों की ग़ुलामी में रहेंगे, उनको टैक्स वग़ैरह अदा करते रहेंगे, ख़ुद उनको कोई ताक़त व हुकूमत हासिल न होगी।

इस मज़मून की एक आयत सूरः आले इमरान में एक इज़ाफ़े के साथ इस तरह आई है:

ضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ اَيْنَمَا ثُقِفُوْٓا اِلَّا بِحَبْلٍ مِّنَ اللّٰهِ وَحَبْلٍ مِّنَ النَّاسِ. (٣:١١٢)

"जमा दी गई उन पर बेक़द्री जहाँ कहीं जायेंगे मगर हाँ एक तो ऐसे ज़रिये से जो अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से हो और एक ऐसे ज़रिये से जो आदमियों की तरफ़ से हो।"

'अल्लाह तआ़ला के ज़रिये से' का मतलब तो यह है कि जिन लोगों को अल्लाह तआ़ला ने ही अपने क़ानून में अमन दे दिया हो जैसे नाबालिग़ बच्चे, औरतें या ऐसे इबादतगुज़ार जो मुसलमानों से लड़ते नहीं फिरते वे सुरक्षित और अमन में रहेंगे। और 'आदमियों के ज़रिये' से मुराद सुलह का समझौता है। जिसकी एक सूरत तो यह है कि मुसलमानों से सुलह का समझौता या जिज़या (टैक्स) देकर उनके मुल्क में रहने का हो जाये मगर क़ुरआनी अलफ़ाज़ में 'मिनन्नासि' फ़रमाया है "मिनल्-मुस्लिमीन' नहीं, इसलिये यह सूरत भी हो सकती है कि दूसरे ग़ैर-मुस्लिमों से सुलह का समझौता करके उनकी पुश्त-पनाही (संरक्षण) में आ जायें तो सुरक्षित रह सकते हैं।

फिर यह जो हुक्म से अलग किया 'ऐसे ज़रिये से जो अल्लाह की तरफ़ से हो' और 'ऐसे ज़रिये से जो आदमियों की तरफ़ से हो' इसको अगर बक़ौल तफ़सीरे कश्शाफ़ के 'इस्तिसना-ए-मुत्तसिल' क़रार दिया जाये तो मायने यह होंगे कि यहूद हमेशा हर जगह ज़लील व पस्त रहेंगे सिवाय इन दो सूरतों के कि या तो अल्लाह के अ़हद के ज़रिये उनके बच्चे औरतें वग़ैरह इस ज़िल्लत व रुस्वाई से निकल जायें, या सुलह के समझौते के ज़रिये ये अपने आपको ज़िल्लत व रुस्वाई से बचा लें। और जैसा कि ऊपर लिखा गया है सुलह के समझौते के ज़रिये ज़िल्लत व रुस्वाई से निकलने की सूरत मुसलमानों से सुलह का समझौता भी हो सकती है और यह भी हो सकता है कि दूसरी क़ौमों से सुलह का समझौता करके उनके सहारे ज़िल्लत व रुस्वाई से महफ़ूज़ (सुरक्षित) रहें।

यह सब तक़रीर 'इस्तिसना-ए-मुत्तसिल' मान लेने पर है, और बहुत से मुफ़स्सिरीन हज़रात ने इसको 'इस्तिसना-ए-मुन्क़ता' क़रार दिया है, तो मतलब यह होगा कि ये लोग अपनी ज़िल्लत और अपनी क़ौमी हैसियत से तो ज़लील व ख़्वार ही रहेंगे अगरचे क़ानूने इलाही की वुस्अ़त में आकर इनके कुछ अफ़राद इससे बच जायेंगे या दूसरे लोगों का सहारा लेकर ज़िल्लत व रुस्वाई पर पर्दा डाल दें।

इस तरह सूरः ब-क़रह की आयत की वज़ाहत सूरः आले इमरान की आयत से पूरी हो गई, और इसी से वे तमाम शुब्हात भी दूर हो गये जो आजकल फ़िलिस्तीन में यहूदियों की हुकूमत क़ायम होने की बिना पर बहुत से मुसलमानों को पेश आते हैं कि क़ुरआन के क़तई इरशादात से तो यह समझा जाता है कि यहूदियों की हुकूमत कभी क़ायम न होगी और वास्तव में यह पाया जाता है कि फ़िलिस्तीन में उनकी हुकूमत क़ायम हो गई। जवाब स्पष्ट है कि फ़िलिस्तीन में यहूदियों की मौजूदा हुकूमत की हक़ीक़त से जो लोग बाख़बर हैं वे ख़ूब जानते हैं कि यह हुकूमत दर हक़ीक़त इस्राईल की नहीं है बल्कि अमेरिका और बरतानिया की एक छावनी से ज़्यादा उसकी हैसियत नहीं, यह अपनी ज़ाती ताक़त से एक महीना भी ज़िन्दा नहीं रह सकते। यूरोपियन ताक़तों ने इस्लामी ब्लॉक को

कमज़ोर करने के लिये उनके बीच में इस्राईल का नाम देकर एक छावनी बनाई हुई है और इस्राईली उनकी नज़रों में भी उनके फ़रमाँबरदार गुलाम से ज़्यादा कोई हैसियत नहीं रखते, सिर्फ़ क़ुरआने करीम के इरशाद 'बि-हब्लिम् मिनन्नासि' (ऐसे ज़रिये से जो लोगों की तरफ़ से हो) के सहारे उनका अपना वजूद क़ायम है, वह भी ज़िल्लत के साथ। इसलिये मौजूदा इस्राईली हुकूमत से क़ुरआने करीम के किसी इरशाद पर मामूली सा शुब्हा भी नहीं हो सकता।

इसके अलावा यहाँ यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि यहूद, ईसाई और मुसलमानों में सबसे पहले यहूद हैं, उनकी शरीअ़त, उनकी तहज़ीब सबसे पहले है, अगर पूरी दुनिया में फ़िलिस्तीन के एक छोटे से क़सबे पर उनका क़ब्ज़ा किसी तरह हो भी गया तो पूरी दुनिया के नक़्शे में यह हिस्सा एक नुक़्ते (बिन्दू) से ज़्यादा कोई हैसियत नहीं रखता है, इसके मुक़ाबले में ईसाईयों की हुकूमतें और मुसलमानों के गिरावट और पस्ती के दौर के बावजूद उनकी हुकूमतें, बुतपरस्तों की सल्तनतें, मज़हब न मानने वालों की हुकूमतें जो जगह-जगह पूरब से पश्चिम तक फैली हुई हैं उनके मुक़ाबले में फ़िलिस्तीन और वह भी आधा और उस पर भी अमेरिका-बरतानिया की सरपरस्ती में कोई क़ब्ज़ा यहूदियों का हो जाये तो क्या इससे पूरी क़ौमे यहूद पर ख़ुदा तआ़ला की तरफ़ से लगाई हुई हमेशा की ज़िल्लत का कोई जवाब बन सकता है?

إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا وَالَّذِينَ هَادُوا وَالنَّصَارَىٰ وَالصَّابِئِينَ مَنْ آمَنَ بِاللَّهِ
وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَعَمِلَ صَالِحًا فَلَهُمْ أَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ ۝

इन्नल्लज़ी-न आमनू वल्लज़ी-न हादू वन्नसारा वस्साबिई-न मन् आम-न बिल्लाहि वल्यौमिल्-आख़िरि व अ़मि-ल सालिहन् फ़-लहुम् अज्रुहुम् अ़िन्-द रब्बिहिम्, व ला ख़ौफ़ुन् अ़लैहिम वला हुम् यह्ज़नून (62)	बेशक जो लोग मुसलमान हुए और जो लोग यहूदी हुए और नसारा (ईसाई) और साबिईन जो ईमान लाया (उनमें से) अल्लाह पर और क़ियामत के दिन पर और काम किये नेक तो उनके लिये है उनका सवाब उनके रब के पास, और नहीं उन पर कुछ ख़ौफ़ और न वे ग़मगीन होंगे। (62)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

इस मक़ाम पर यहूदियों की शरारत का हाल मालूम करके सुनने वालों को या ख़ुद यहूद को यह ख़्याल गुज़र सकता है कि इन हालात में अगर उज़्र पेश करके ईमान लाना भी चाहें तो ग़ालिबन वह अल्लाह के नज़दीक क़ुबूल न हो, इस ख़्याल को दूर करने के लिये इस आयत में एक क़ानून और ज़ाब्ते का ज़िक्र फ़रमाया कि यह तहक़ीक़ी बात है कि मुसलमान और यहूदी और नसारा "यानी ईसाई" और फ़िर्क़ा साबिईन (इन सब में से) जो शख़्स यक़ीन रखता हो अल्लाह तआ़ला (की ज़ात

और सिफ़ात) पर और क़ियामत के दिन पर, और कारगुज़ारी अच्छी करे (शरीअ़त के क़ानून के मुवाफ़िक़), ऐसों के लिए उनका अज्र भी है उनके परवर्दिगार के पास (पहुँचकर), और (वहाँ जाकर) किसी तरह का अन्देशा भी नहीं उन पर, और न वे ग़मगीन होंगे।

फ़ायदाः क़ानून का हासिल ज़ाहिर है कि हमारे दरबार में किसी की विशेषता नहीं, जो शख़्स पूरी इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) यक़ीन लाने और आमाल में इख़्तियार करेगा चाहे वह पहले से कैसा ही हो हमारे यहाँ मक़बूल और उसकी ख़िदमत क़द्र की निगाह से देखी जायेगी। और ज़ाहिर है कि क़ुरआन के नाज़िल होने के बाद पूरी इताअ़त, इताअ़ते मुहम्मदी यानी मुसलमान होने में सीमित है, मतलब यह हुआ कि जो मुसलमान हो जायेगा वह आख़िरत की निजात का हक़दार होगा। इसमें इस ख़्याल का जवाब हो गया, यानी इन शरारतों के बाद भी अगर मुसलमान हो जायें तो हम सब माफ़ कर देंगे।

और साबिईन एक फ़िर्क़ा था जिसकी मान्यतायें, अ़क़ीदे और अ़मल के तरीक़े के बारे में चूँकि किसी को पूरा पता न चला इसलिये इनके बारे में विभिन्न और अनेक अक़वाल हैं। वल्लाहु आलम

और इस क़ानून में बज़ाहिर तो मुसलमानों के ज़िक्र की ज़रूरत नहीं थी क्योंकि वे तो मुसलमान हैं ही लेकिन इससे कलामे पाक में एक ख़ास ख़ूबसूरती, कमाल और मज़मून में एक ख़ास वक़्अ़त पैदा हो गई, इसकी ऐसी मिसाल है कि कोई हाकिम या बादशाह किसी ऐसे मौक़े पर यूँ कहे कि हमारा क़ानून आ़म है, कोई मुवाफ़िक़ हो या मुख़ालिफ़, जो शख़्स भी हुक्म का पालन करेगा इनायत व मेहरबानी का हक़दार होगा। अब ज़ाहिर है कि मुवाफ़िक़ तो इताअ़त कर ही रहा है सुनाना तो असल में मुख़ालिफ़ को है, लेकिन इसमें नुक्ता यह होता है कि हमारी जो इनायत मुवाफ़िक़ लोगों पर है सो उसका सबब उनसे कोई ज़ाती ख़ुसूसियत नहीं बल्कि उनकी मुवाफ़क़त की सिफ़त पर मदार है हमारी इनायत का, सो अगर मुख़ालिफ़ भी इसको इख़्तियार कर ले तो वह भी उस मुवाफ़िक़ के बराबर हो जायेगा, इसलिये मुख़ालिफ़ के साथ मुवाफ़िक़ को भी ज़िक्र कर दिया गया।

وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّوْرَ خُذُوْا مَآ
اٰتَيْنٰكُمْ بِقُوَّةٍ وَّاذْكُرُوْا مَا فِيْهِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ۝

व इज़् अख़ज़्ना मीसाक़कुम् व र-फ़अ्ना फ़ौ-क़कुमुत्तू-र ख़ुज़ू मा आतैनाकुम् बिक़ुव्वतिंव्वज़्कुरू मा फ़ीहि लअ़ल्लकुम् तत्तक़ून (63)	और जब लिया हमने तुमसे इक़रार और बुलन्द किया (ला खड़ा किया) तुम्हारे ऊपर तूर पहाड़ को कि पकड़ो जो किताब हमने तुमको दी ज़ोर से, और याद रखो जो कुछ उसमें है ताकि तुम डरो। (63)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब हमने तुमसे क़ौल व क़रार लिया (कि तौरात पर अ़मल करेंगे) और (इस क़ौल व क़रार लेने के लिये) हमने तूर पहाड़ को उठाकर तुम्हारे ऊपर (बिल्कुल सामने

मुक़ाबिल में) लटका दिया, (और उस वक़्त कहा) कि (जल्दी) क़ुबूल करो जो किताब हमने तुमको दी है (यानी तौरात) मज़बूती के साथ, और याद रखो जो (अहकाम) उस (किताब) में हैं, जिससे उम्मीद है कि तुम मुत्तक़ी (परहेज़गार) बन जाओ।

फ़ायदाः जब हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम को तूर पहाड़ पर तौरात अ़ता हुई और आपने वापस तशरीफ़ लाकर क़ौम को वह दिखाई और सुनाई तो उसमें अहकाम ज़रा सख़्त थे, मगर उन लोगों की हालत के मुताबिक़ ऐसे ही अहकाम मुनासिब थे। तो पहले तो उन्होंने यही कहा था कि जब हमसे अल्लाह तआ़ला ख़ुद कह देंगे कि यह मेरी किताब है हम तब मानेंगे (जिसका क़िस्सा ऊपर गुज़र चुका है)। ग़र्ज़ कि वे सत्तर आदमी जो मूसा अ़लैहिस्सलाम के साथ तूर पहाड़ पर गये थे वापस आकर उन्होंने गवाही दी, मगर उस गवाही में (अपनी तरफ़ से) इतनी मिलावट भी कर दी कि "अल्लाह तआ़ला ने आख़िर में यह फ़रमा दिया था कि तुम से जिस क़द्र अ़मल हो सके करना, जो न हो सके माफ़ है।" तो कुछ तो उनकी फ़ितरी शरारत, कुछ अहकाम की मशक़्क़त और कुछ उस मिलावट का बहाना मिला, ग़र्ज़ कि साफ़ कह दिया कि हम से तो इस किताब पर अ़मल नहीं हो सकता। हक़ तआ़ला ने फ़रिश्तों को हुक्म दिया कि तूर पहाड़ का एक बड़ा टुकड़ा उठाकर उनके सरों पर लटका दो, कि या तो मानो वरना अभी गिरा। आख़िर चाहते न चाहते हुए मानना पड़ा।

एक शुब्हा और उसका जवाब

यहाँ यह शुब्हा हो सकता है कि दीन में तो ज़बरदस्ती नहीं है यहाँ क्यों ज़बरदस्ती की गयी? जवाब यह है कि ज़बरदस्ती ईमान लाने में नहीं, बल्कि पहले अपनी ख़ुशी से ईमान व इस्लाम क़ुबूल कर लेने और उसके ख़िलाफ़ बग़ावत करने की वजह से है। बाग़ियों की सज़ा तमाम हुकूमतों में भी आ़म मुख़ालिफ़ और दुश्मन क़ौमों से अलग होती है, उनके लिये हर हुकूमत में दो ही रास्ते होते हैं या तो क़ानून का पालन क़ुबूल करें या क़त्ल किये जायें। इसी वजह से इस्लाम में मुर्तद (इस्लाम से फिर जाने) की सज़ा क़त्ल है, कुफ़्र की सज़ा क़त्ल नहीं।

ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ مِّنْ بَعْدِ ذٰلِكَ فَلَوْلَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهٗ لَكُنْتُمْ مِّنَ الْخٰسِرِيْنَ ۝

सुम्-म तवल्लैतुम् मिम्-बअ़्दि ज़ालि-क फ़-लौ ला फ़ज़्लुल्लाहि अ़लैकुम् व रह़्मतुहू लकुन्तुम् मिनल्-ख़ासिरीन (64)	फिर तुम फिर गये उसके बाद, सो अगर न होता अल्लाह का फ़ज़्ल तुम पर और उसकी मेहरबानी तो ज़रूर तुम तबाह होते। (64)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

फिर तुम उस क़ौल व क़रार के बाद भी (उससे) फिर गये सो अगर तुम लोगों पर ख़ुदा तआ़ला का फ़ज़्ल और रहम न होता (तो उस अ़हद को तोड़ने का तक़ाज़ा तो यह था कि) ज़रूर तुम (फ़ौरन)

तबाह (और हलाक) हो जाते, (मगर हमारी इनायत व रहमत आम है कि इस दुनियावी ज़िन्दगी के ख़त्म होने तक मोहलत दे रखी है, लेकिन कब तक? आख़िर मौत के बाद आमाल के वबाल में मुब्तला होगे)।

फ़ायदाः हक़ तआ़ला की आम रहमत दुनिया में मोमिन व काफ़िर सब पर है, जिसका असर आ़फ़ियत (अमन व सुकून) और दुनियावी राहत है, ख़ास रहमत का ज़हूर आख़िरत में होगा जिसका असर निजात और अल्लाह तआ़ला की निकटता है।

बज़ाहिर इस आयत के आख़िरी हिस्से के मुख़ातब वे यहूदी हैं जो नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में मौजूद थे, चूँकि हुज़ूरे पाक पर ईमान न लाना भी अ़हद और क़रार तोड़ने में दाख़िल है, इसलिये उनको भी अ़हद तोड़ने वालों में शामिल करके बतौर मिसाल के फ़रमाया गया कि इस पर भी हमने तुम पर दुनिया में कोई अ़ज़ाब ऐसा नाज़िल नहीं किया जैसा पहले बेईमानों और अ़हद तोड़ने वालों पर होता रहा, यह सिर्फ़ ख़ुदा तआ़ला की रहमत है।

और चूँकि अब हदीसों के अनुसार ऐसे अ़ज़ाबों का न आना हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बरकत है इसलिये कुछ मुफ़स्सिरीन ने फ़ज़्ल व रहमत की तफ़सीर हुज़ूरे पाक सल्ल. के नबी बनकर तशरीफ़ लाने से की है। इस मज़मून की ताईद के लिये पहले गुज़रे बेईमानों (काफ़िरों) का एक वाक़िआ़ अगली आयत में बयान हो रहा है।

وَلَقَدْ عَلِمْتُمُ الَّذِينَ اعْتَدَوْا مِنْكُمْ فِي السَّبْتِ فَقُلْنَا لَهُمْ كُونُوا
قِرَدَةً خَاسِئِينَ ۝ فَجَعَلْنَاهَا نَكَالًا لِمَا بَيْنَ يَدَيْهَا وَمَا خَلْفَهَا وَمَوْعِظَةً لِلْمُتَّقِينَ ۝

व लक़द् अ़लिम्तुमुल्लज़ीनअ़्तदौ मिन्कुम् फ़िस्सब्ति फ़-क़ुल्ना लहुम् कूनू क़ि-र-दतन् ख़ासिईन (65) फ़-जअ़ल्नाहा नकालल्लिमा बै-न यदैहा व मा ख़ल्फ़हा व मौअ़ि-ज़तल् लिल्मुत्तक़ीन (66)	और तुम ख़ूब जान चुके हो जिन्होंने कि तुम में से ज़्यादती की थी हफ़्ता (शनिवार) के दिन में तो हमने कहा उनसे कि हो जाओ बन्दर ज़लील। (65) फिर किया (बनाया) हमने इस वाक़िए को इबरत (सबक़ लेने का सामान) उन लोगों के लिये जो वहाँ थे और जो बाद में आने वाले थे, और नसीहत डरने वालों के वास्ते। (66)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और तुम जानते ही हो उन लोगों का हाल जो तुम में से (शरीअ़त की) हद से निकल गए थे, (उस हुक्म के) बारे में (जो) शनिवार के दिन के (मुताल्लिक़ था कि उस दिन मछली का शिकार न करें) सो हमने उनको (अपने नाराज़गी वाले क़ुदरती हुक्म से शक्लें बिगाड़ देने के लिये) कह दिया कि तुम बन्दर ज़लील बन जाओ (चुनाँचे वे बन्दरों की शक्लों में तब्दील हो गये) फिर हमने इसको एक

सबक़ (हासिल किए जाने वाला वाक़िआ) बना दिया उन लोगों के लिए भी जो उस क़ौम के ज़माने के लोग थे और उन लोगों के लिए भी जो बाद के ज़माने में आते रहे, और (साथ ही इस वाक़िए को) नसीहत का ज़रिया बनाया (ख़ुदा तआ़ला से) डरने वालों के लिए।

फ़ायदाः यह वाक़िआ भी बनी इस्राईल का हज़रत दाऊद अलैहिस्सलाम के ज़माने में हुआ। बनी इस्राईल के लिये शनिवार का दिन सम्मानित और इबादत के लिये मुक़र्रर था और मछली का शिकार भी उस दिन ममनू (वर्जित) था। ये लोग समन्दर के किनारे आबाद थे और मछली के शौक़ीन थे, इस हुक्म को न माना और शिकार किया, इस पर अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से शक्लें बिगड़ और बदल जाने का अ़ज़ाब नाज़िल हुआ, तीन दिन के बाद वे सब मर गये।

इस वाक़िए को देखने और सुनने वाले दो क़िस्म के लोग थे- फ़रमाँबरदार और नाफ़रमान। नाफ़रमानों के लिये तो यह वाक़िआ़ नाफ़रमानी से तौबा कराने वाला था, इसलिये इसको 'नकाल' (सीख लेने वाला) फ़रमाया, और फ़रमाँबरदारों को यह वाक़िआ़ फ़रमाँबरदारी पर क़ायम रखने वाला था इसलिये इसको "मौइज़तन्" (नसीहत की चीज़) फ़रमाया।

मआ़रिफ़ व मसाईल

दीनी मामलात में कोई ऐसा बहाना जिससे शरीअ़त का असल हुक्म बातिल हो जाये, हराम है

इस आयत में यहूदियों के जिस हदों से गुज़रने का ज़िक्र करके उसको अ़ज़ाब का सबब बतलाया गया है। रिवायत से साबित है कि वह खुले तौर पर शरई हुक्म का उल्लंघन नहीं था बल्कि ऐसे हीले-बहाने थे जिनसे शरई हुक्म को बातिल करना लाज़िम आता था, जैसे हफ़्ते (शनिवार) के दिन मछली की दुम में एक डोर का फंदा लगाकर दरिया में छोड़ दिया और यह डोर ज़मीन पर किसी चीज़ से बाँध दी, फिर इतवार के दिन उसको पकड़कर खा लिया, तो यह एक ऐसा हीला है जिसमें शरई हुक्म को बातिल करना बल्कि एक क़िस्म का मज़ाक़ है, इसलिये ऐसा बहाना करने वालों को बड़ा सरकश नाफ़रमान क़रार देकर उन पर अ़ज़ाब आया।

मगर इससे उन फ़िक़्ही हीलों (अ़मली तरीक़ों और तदबीरों) की हुर्मत (हराम होना) साबित नहीं होती जिनमें से कुछ ख़ुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बतलाये हैं, जैसे एक सैर उम्दा खजूर के बदले में दो सैर ख़राब खजूर ख़रीदना सूद में दाख़िल है, मगर इससे बचने का एक बहाना (तरीक़ा और रास्ता) ख़ुद रसूलुल्लाह सल्ल. ने यह बतलाया कि जिन्स का तबादला जिन्स से न करो, क़ीमत के ज़रिये ख़रीद व बेच कर लो। जैसे दो सैर ख़राब खजूरें दो दिरहम में बेच दीं फिर उन दो दिरहमों से एक सैर उम्दा खजूर ख़रीद लीं तो यहाँ शरई हुक्म की तामील मक़सूद है उसको बातिल और बेकार करना मक़सूद नहीं है, न वास्तव में ऐसा है। इसी तरह कुछ दूसरे मसाईल में भी फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने हराम से बचने की कुछ ऐसी ही तदबीरें बतलाई हैं, उनको यहूदियों के हीलों की तरह कहना और समझना ग़लत है।

यहूदियों की सूरतों के बदलने और बिगड़ने का वाकिआ

तफ़सीरे क़ुर्तुबी में है कि यहूद ने पहले पहल तो इस तरह के बहाने करके मछलियाँ पकड़ीं फिर होते-होते आ़म तौर पर शिकार खेलने लगे, तो उनमें दो जमाअ़तें हो गईं एक जमाअ़त उलेमा व नेक लोगों की थी जिन्होंने उनको ऐसा करने से रोका, ये बाज़ न आये तो उनसे भाईचारे के ताल्लुक़ात ख़त्म करके बिल्कुल अलग हो गये और बस्ती के दो हिस्से कर लिये, एक में ये नाफ़रमान रह गये और दूसरे में उलेमा व नेक लोग रहे। एक दिन उनको यह महसूस हुआ कि जिस हिस्से में ये नाफ़रमान लोग रहते थे उधर बिल्कुल सन्नाटा है, वहाँ जाकर देखा तो सब के सब बन्दरों की सूरत में तब्दील हो गये थे। और हज़रत क़तादा रह. ने फ़रमाया कि उनके जवान बन्दर बना दिये गये थे और बूढ़े ख़िन्ज़ीर (सुअर) की शक्ल में बदल दिये गये थे, और शक्ल बदल व बिगड़ जाने वाले बन्दर अपने रिश्तेदार और ताल्लुक़ वाले इनसानों को पहचानते थे, उनके क़रीब आकर रोते थे।

शक्ल बदली हुई क़ौम की नस्ल नहीं चलती

इस मामले में सही बात वह है जो ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से सही मुस्लिम में मन्क़ूल है कि कुछ लोगों ने अपने ज़माने के बन्दरों और ख़िन्ज़ीरों (सुअरों) के बारे में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से पूछा कि क्या ये वही मस्ख़-शुदा (शक्ल बदले हुए) यहूदी हैं? आपने फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला जब किसी क़ौम में शक्ल बदलने और सूरतें बिगाड़ने का अ़ज़ाब नाज़िल करते हैं तो उनकी नस्ल नहीं चलती (बल्कि वे चन्द दिन में हलाक होकर ख़त्म हो जाते हैं)। और फिर फ़रमाया कि बन्दर और ख़िन्ज़ीर (सुअर) दुनिया में पहले से भी मौजूद थे (और आज भी हैं, मगर शक्ल बदले हुए बन्दरों और ख़िन्ज़ीरों से इनका कोई जोड़ नहीं)।

इस मौक़े पर कुछ मुफ़स्सिरीन (क़ुरआन के व्याख्यापकों) ने सही बुख़ारी के हवाले से बन्दरों में ज़िना की सज़ा में संगसार करने का एक वाक़िआ़ नक़ल किया है, मगर यह वाक़िआ़ न बुख़ारी के सही नुस्ख़ों (प्रतियों) में मौजूद है न रिवायत के एतिबार से सही है। इमाम क़ुर्तुबी रह. ने इस जगह उसकी तफ़सील बयान फ़रमाई है।

وَاِذْ قَالَ مُوْسٰى لِقَوْمِهٖٓ اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُكُمْ اَنْ تَذْبَحُوْا بَقَرَةً ط قَالُوْٓا
اَتَتَّخِذُنَا هُزُوًا ط قَالَ اَعُوْذُ بِاللّٰهِ اَنْ اَكُوْنَ مِنَ الْجٰهِلِيْنَ۝

व इज़् का-ल मूसा लिक़ौमिही इन्नल्ला-ह यअ्मुरुकुम् अन् तज़्बहू ब-क़-रतन्, क़ालू अ-तत्तख़िज़ुना हुज़ुवन्, क़ा-ल अऊ़ज़ु बिल्लाहि अन्	और जब कहा मूसा ने अपनी क़ौम से- अल्लाह फ़रमाता है तुमको, ज़िबह करो एक गाय। वे बोले क्या तू हमसे हंसी (मज़ाक़) करता है? कहा- पनाह ख़ुदा की कि हो

अक़ू-न मिनल्-जाहिलीन (67)	जाऊँ मैं जाहिलों में। (67)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब (हज़रत) मूसा (अ़लैहिस्सलाम) ने अपनी क़ौम से फ़रमाया कि हक़ तआ़ला तुमको हुक्म देते हैं कि (अगर इस लाश के क़ातिल का पता लगाना चाहते हो तो) तुम एक बैल ज़िबह करो। वे लोग कहने लगे कि क्या आप हमको मस्ख़रा (मज़ाक़ और बेवक़ूफ़) बनाते हैं (कहाँ क़ातिल की तहक़ीक़ कहाँ जानवर का ज़िबह करना)। मूसा अ़लैहिस्सलाम ने फ़रमाया- मैं अल्लाह की पनाह चाहता हूँ जो मैं ऐसी जहालत वालों जैसा काम करूँ (कि अल्लाह के अहकाम में मज़ाक़ करने लगूँ)।

फ़ायदाः यह क़िस्सा इस तरह हुआ कि बनी इस्राईल में एक ख़ून हो गया था जिसका कारण मिरक़ात शरह मिश्कात में यह लिखा है कि किसी शख़्स ने मक़्तूल (क़त्ल होने वाले) की किसी लड़की से शादी की दरख़्वास्त की थी मगर उसने इनकार कर दिया और उस शख़्स ने उसको क़त्ल कर दिया, क़ातिल लापता था उसका पता न लगता था। और तफ़सीरे 'मआ़लिम' ने कलबी रह. का यह क़ौल नक़ल किया है कि उस वक़्त तक तौरात में इसके बारे में कोई शरई क़ानून भी नाज़िल नहीं हुआ था, इससे मालूम होता है कि यह क़िस्सा तौरात के नाज़िल होने (उतरने) से पहले का है।

ग़र्ज़ कि बनी इस्राईल ने मूसा अ़लैहिस्सलाम से अ़र्ज़ किया कि हम चाहते हैं कि क़ातिल का पता चले, आपने अल्लाह के हुक्म से एक बैल ज़िबह करने का हुक्म फ़रमाया। उन्होंने अपनी आ़दत और फ़ितरत के अनुसार इसमें हुज्जतें निकालनी शुरू कीं। आने वाली आयतों में इसी की तफ़सील है।

قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا مَا هِيَ ۚ قَالَ إِنَّهُ يَقُولُ إِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا فَارِضٌ وَلَا بِكْرٌ عَوَانٌ بَيْنَ ذَٰلِكَ ۖ فَافْعَلُوا مَا تُؤْمَرُونَ ﴿٦٨﴾ قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّن لَّنَا مَا لَوْنُهَا ۚ قَالَ إِنَّهُ يَقُولُ إِنَّهَا بَقَرَةٌ صَفْرَاءُ فَاقِعٌ لَّوْنُهَا تَسُرُّ النَّاظِرِينَ ﴿٦٩﴾ قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّن لَّنَا مَا هِيَ إِنَّ الْبَقَرَ تَشَابَهَ عَلَيْنَا وَإِنَّا إِن شَاءَ اللَّهُ لَمُهْتَدُونَ ﴿٧٠﴾ قَالَ إِنَّهُ يَقُولُ إِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا ذَلُولٌ تُثِيرُ الْأَرْضَ وَلَا تَسْقِي الْحَرْثَ مُسَلَّمَةٌ لَّا شِيَةَ فِيهَا ۚ قَالُوا الْآنَ جِئْتَ بِالْحَقِّ ۚ فَذَبَحُوهَا وَمَا كَادُوا يَفْعَلُونَ ﴿٧١﴾

क़ालुद्अु लना रब्ब-क युबय्यिल्लना मा हि-य, का-ल इन्नहू यक़ूलु इन्नहा ब-क़-रतुल्- ला फ़ारिज़ुव्-व ला बिक्रुन्, अवानुम् बै-न ज़ालि-क,	बोले कि दुआ़ कर हमारे वास्ते अपने रब से कि बता दे हमको कि वह गाय कैसी है? कहा वह फ़रमाता है कि वह एक गाय है, न बूढ़ी और न बिन बियाही, दरमियान में है बुढ़ापे और जवानी के, अब कर डालो जो

फ़फ़्अ़लू मा तुअ्मरून (68) क़ालुद्अु लना रब्ब-क युबय्यिल्लना मा लौनुहा, क़ा-ल इन्नहू यक़ूलु इन्नहा ब-क़-रतुन् सफ़्रा-उ फ़ाक़िअ़ुल् लौनुहा तसुर्रुन्नाज़िरीन (69) क़ालुद्अु लना रब्ब-क युबय्यिल्लना मा हि-य इन्नल् ब-क़-र तशाब-ह अ़लैना, व इन्ना इन्शा-अल्लाहु लमुह्तदून (70) क़ा-ल इन्नहू यक़ूलु इन्नहा ब-क़-रतुल्-ला ज़लूलुन् तुसीरुल्-अर्-ज़ व ला तस्क़िल्-हर्-स मुसल्ल-मतुल्-ला शिय-त फ़ीहा, क़ालुल्आ-न जिअ्-त बिल्हक़्क़ि, फ़-ज़-बहूहा व मा कादू यफ़्अ़लून (71) ❁

हुक्म मिला है। (68) बोले कि दुआ़ कर हमारे वास्ते अपने रब से कि बता दे हमको कि कैसा है उसका रंग? कहा वह फ़रमाता है कि वह एक गाय है ज़र्द ख़ूब गहरी है उसकी ज़र्दी (यानी तेज़ पीले रंग की है)। अच्छी लगती है देखने वालों को। (69) बोले कि दुआ़ कर हमारे वास्ते अपने रब से कि बता दे हमको किस क़िस्म में है वह, क्योंकि उस गाय में शुब्हा पड़ा है हमको, और हम अगर अल्लाह ने चाहा तो ज़रूर राह पा लेंगे। (70) कहा वह फ़रमाता है कि वह एक गाय है मेहनत करने वाली नहीं कि जोतती हो ज़मीन को, या पानी देती हो खेती को, बे-ऐब है कोई दाग़ उसमें नहीं। बोले अब लाया तू ठीक बात, फिर उसको ज़िबह किया, वे लगते न थे कि ऐसा कर लेंगे। (71) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

वे लोग कहने लगे कि आप दरख़्वास्त कीजिए अपने रब से कि हमसे बयान कर दे कि उस (बैल) की सिफ़तें क्या हैं। आपने फ़रमाया कि वह (मेरी दरख़्वास्त के जवाब में) यह फ़रमाते हैं कि वह ऐसा बैल हो कि न बिल्कुल बूढ़ा हो न बहुत बच्चा हो (बल्कि) पट्ठा हो, दोनों उम्रों के बीच में, सो अब (ज़्यादा हुज्जत मत कीजियो बल्कि) कर डालो जो कुछ तुमको हुक्म मिला है। कहने लगे कि (अच्छा यह भी) दरख़्वास्त कर दीजिए हमारे लिए अपने रब से कि हमसे यह भी बयान कर दें कि उसका रंग कैसा हो? आपने फ़रमाया कि (इसके बारे में) हक़ तआ़ला यह फ़रमाते हैं कि वह एक ज़र्द (पीले) रंग का बैल हो, जिसका रंग तेज़ ज़र्द "यानी तेज़ पीला" हो कि देखने वालों को अच्छा लगता हो। कहने लगे कि (अब की बार और) हमारी ख़ातिर अपने रब से दरियाफ़्त कर दीजिए कि (पहली बार के सवाल का जवाब ज़रा और स्पष्ट) हमसे बयान कर दें कि उसकी ख़ूबियाँ और सिफ़तें क्या-क्या हों, क्योंकि हमको उस बैल में (किसी क़द्र) इश्तिबाह "यानी सिफ़तें पहचानने में शक व शुब्हा" है (कि वह मामूली बैल होगा या कोई और अ़जीब व ग़रीब जिसमें क़ातिल का पता लगाने का ख़ास असर हो), और हम ज़रूर इन्शा-अल्लाह तआ़ला (अब की बार) ठीक समझ जाएँगे। मूसा

(अ़लैहिस्सलाम) ने जवाब दिया कि हक़ तआ़ला यूँ फ़रमाते हैं कि वह (कोई अ़जीब व ग़रीब जानवर नहीं है, यही मामूली बैल है अलबत्ता उम्दा होना चाहिये कि बयान हुई सिफ़तों के साथ) न तो हल में चला हुआ हो जिससे ज़मीन जोती जाए और न (कुएँ में जोड़ा गया हो कि) उससे खेती को पानी दिया जाए। (ग़र्ज़ कि हर किस्म के ऐब से) सालिम हो और उसमें (किसी तरह का) कोई दाग़ न हो। (यह सुनकर) कहने लगे कि (हाँ) अब आपने पूरी (और साफ़) बात फ़रमाई। (किस्सा यह कि जानवर तलाश करके फिर ख़रीदा) फिर उसको ज़िबह कर दिया और (उनकी हुज्जतों को देखते हुए) करते हुए मालूम न होते थे।

फ़ायदाः हदीस शरीफ़ में है कि अगर वे ये हुज्जतें न करते तो इतनी क़ैदें (शर्तें और पाबन्दियाँ) उनके ज़िम्मे न होतीं, जो भी बैल ज़िबह कर दिया जाता काफ़ी हो जाता।

وَاِذْ قَتَلْتُمْ نَفْسًا فَادّٰرَءْتُمْ فِيْهَا ۗ وَاللّٰهُ مُخْرِجٌ مَّا كُنْتُمْ تَكْتُمُوْنَ ۚ﴿٧٢﴾
فَقُلْنَا اضْرِبُوْهُ بِبَعْضِهَا ۗ كَذٰلِكَ يُحْيِ اللّٰهُ الْمَوْتٰى ۙ وَيُرِيْكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ﴿٧٣﴾

व इज़् क़तल्तुम् नफ़्सन् फ़द्दारअ्तुम् फ़ीहा, वल्लाहु मुख़्रिजुम्-मा कुन्तुम् तक्तुमून (72) फ़-क़ुल्नज़्रिबूहु बि-बअ्ज़िहा, कज़ालि-क युह्यिल्ला-हुल्-मौता व युरीकुम् आयातिही लअ़ल्लकुम् तअ्क़िलून (73)	और जब मार डाला था तुमने एक शख़्स को फिर लगे एक दूसरे पर धरने (यानी उसके मारने का इल्ज़ाम लगाने) और अल्लाह को ज़ाहिर करना था जो तुम छुपाते थे। (72) फिर हमने कहा- मार दो इस मुर्दे पर उस गाय का एक टुकड़ा, इसी तरह ज़िन्दा करेगा अल्लाह मुर्दों को और दिखाता है तुमको अपनी क़ुदरत के नमूने ताकि तुम ग़ौर करो। (73)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब तुम लोगों (में से किसी) ने एक आदमी का ख़ून कर दिया, फिर (अपने बरी होने के लिये) एक-दूसरे पर उसको डालने लगे, और अल्लाह को उस मामले का ज़ाहिर करना मन्ज़ूर था जिसको तुम (में के मुजरिम व संदिग्ध लोग) पोशीदा रखना चाहते थे। इसलिए (बैल के ज़िबह करने के बाद) हमने हुक्म दिया कि उस (मक़्तूल की लाश) को उस (बैल) के कोई से टुकड़े से छुआ दो (चुनाँचे छुवाने से वह ज़िन्दा हो गया)। आगे हक़ तआ़ला (दोबारा ज़िन्दा होने का) इनकार करने वालों के मुक़ाबले में क़ियामत के इस क़िस्से से दलील और नज़ीर के तौर पर फ़रमाते हैं कि इसी तरह हक़ तआ़ला (क़ियामत में) मुर्दों को ज़िन्दा कर देंगे, और अल्लाह तआ़ला अपनी क़ुदरत के नज़ारे तुमको दिखलाते हैं इसी उम्मीद पर कि तुम अ़क़्ल से काम लिया करो (और एक नज़ीर से दूसरी नज़ीर के इनकार से बाज़ आओ)।

फ़ायदाः जब उस मुर्दे के साथ यह मामला किया गया तो वह ज़िन्दा हो गया, उसने क़ातिल का

नाम बताया और फिर फ़ौरन ही मर गया।

इस जगह सिर्फ़ मक़्तूल (क़त्ल होने वाले) का बयान इसलिये काफ़ी समझा गया कि हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम को वही के ज़रिये मालूम हो गया था कि यह मक़्तूल सच बोलेगा, वरना सिर्फ़ मक़्तूल के बयान से बग़ैर शरई गवाही के किसी पर क़त्ल का सुबूत काफ़ी नहीं होता।

यहाँ यह शुब्हा करना भी दुरुस्त नहीं कि हक़ तआ़ला को तो मुर्दा ज़िन्दा करने की वैसे ही क़ुदरत थी या मक़्तूल को ज़िन्दा किये बग़ैर क़ातिल का नाम बताया जा सकता था, फिर इस सामान की क्या ज़रूरत थी? तो बात यह है कि हक़ तआ़ला का कोई फ़ेल (काम) ज़रूरत और मजबूरी की वजह से तो होता नहीं, बल्कि मस्लेहत और हिक्मत के लिये होता है और हर वाक़िए की हिक्मत अल्लाह तआ़ला ही के इल्म में आ सकती है, न हम इसके पाबन्द हैं कि हर वाक़िए की मस्लेहत मालूम करें और न यह ज़रूरी है कि हर वाक़िए की हिक्मत हमारी समझ में आ जाये, इसलिये इसके पीछे पड़कर अपनी क़ीमती उम्र बरबाद करने के बजाय बेहतर तरीक़ा मानने व ख़ामोशी का है।

ثُمَّ قَسَتْ قُلُوبُكُمْ مِّنْ بَعْدِ ذَٰلِكَ فَهِيَ كَالْحِجَارَةِ أَوْ أَشَدُّ قَسْوَةً ۚ وَإِنَّ مِنَ الْحِجَارَةِ لَمَا يَتَفَجَّرُ مِنْهُ الْأَنْهَارُ ۚ وَإِنَّ مِنْهَا لَمَا يَشَّقَّقُ فَيَخْرُجُ مِنْهُ الْمَاءُ ۚ وَإِنَّ مِنْهَا لَمَا يَهْبِطُ مِنْ خَشْيَةِ اللَّهِ ۗ وَمَا اللَّهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ ۝

सुम्-म क़सत् क़ुलूबुकुम् मिम्बअ़्दि ज़ालि-क फ़हि-य कल्हिजा-रति औ अशद्दु क़स्वतन्, व इन्-न मिनल्-हिजारति लमा य-तफ़ज्जरु मिन्हुल्-अन्हारु, व इन्-न मिन्हा लमा यश्शक़्क़क़ु फ़-यख़्रुजु मिन्हुल्मा-उ, व इन्-न मिन्हा लमा यह्बितु मिन् ख़श्यतिल्लाहि, व मल्लाहु बिग़ाफ़िलिन् अ़म्मा तअ़्मलून (74)	फिर तुम्हारे दिल सख़्त हो गये उस सब के बाद, सो वे हो गये जैसे पत्थर या उनसे भी सख़्त। और पत्थरों में तो ऐसे भी हैं जिनसे जारी होती हैं नहरें, और उनमें ऐसे भी हैं जो फट जाते हैं और निकलता है उनसे पानी, और उनमें ऐसे भी हैं जो गिर पड़ते हैं अल्लाह के डर से, और अल्लाह बेख़बर नहीं तुम्हारे कामों से। (74)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(गुज़रे हुए वाक़िआ़त से प्रभावित न होने पर शिकायत के तौर पर इरशाद होता है) ऐसे-ऐसे वाक़िआ़त के बाद (चाहिये था कि तुम लोगों के दिल बिल्कुल नर्म और हक़ तआ़ला की बड़ाई से पुर हो जाते, लेकिन) तुम्हारे दिल फिर भी सख़्त ही रहे तो (यूँ कहना चाहिए कि) उनकी मिसाल पत्थर जैसी है (या यूँ कहिये कि वे) सख़्ती में (पत्थर से भी) ज़्यादा सख़्त हैं। और (ज़्यादा सख़्त इस वजह

से कहा जाता है कि) कुछ पत्थर तो ऐसे हैं जिनसे (बड़ी-बड़ी) नहरें फूटकर चलती हैं और उन्हीं पत्थरों में कुछ ऐसे हैं कि जो फट जाते हैं, फिर उनसे (अगर ज़्यादा नहीं तो थोड़ा ही) पानी निकल आता है, और उन्हीं पत्थरों में कुछ ऐसे हैं जो ख़ुदा तआ़ला के ख़ौफ़ से ऊपर से नीचे लुढ़क आते हैं (और तुम्हारे दिलों में किसी क़िस्म का असर ही नहीं होता)। और (दिल की इस सख़्ती से जो बुरे आमाल सादिर होते हैं) हक़ तआ़ला तुम्हारे (उन) आमाल से बेख़बर नहीं हैं (बहुत जल्दी तुमको सज़ा तक पहुँचा देंगे)।

फ़ायदाः इस जगह पत्थर के तीन असरात बयान किये गये हैं- अव्वल उनसे ज़्यादा पानी निकलना। दूसरे कम पानी निकलना। इन दो में तो किसी को शुब्हा नहीं पड़ता। तीसरी सूरत यानी ख़ुदा के ख़ौफ़ से पत्थर का नीचे आ गिरना, इसमें मुम्किन है कि किसी को शुब्हा हो, क्योंकि पत्थर को तो अ़क्ल और एहसास नहीं है। सो यहाँ यह समझ लेना चाहिये कि ख़ौफ़ के लिये अ़क्ल की तो ज़रूरत नहीं, क्योंकि अ़क्ल से ख़ाली हैवानों में ख़ौफ़ को रात-दिन देखा जाता है, अलबत्ता एहसास की ज़रूरत होती है, लेकिन जमादात (बेजान चीज़ों) में इतनी हिस (एहसास) भी न होने की कोई दलील नहीं, क्योंकि एहसास ज़िन्दगी पर मौक़ूफ़ है और बहुत मुम्किन है कि उनमें ऐसी लतीफ़ ज़िन्दगी हो जिसका हमको इल्म व एहसास न होता हो, जैसे जौहरे दिमाग़ के एहसास का बहुत से अ़क्ल वालों को इल्म नहीं होता, वे केवल दलीलों से इसके क़ायल होते हैं, तो तिब्बी दलीलों से क़ुरआनी दलील व बयान की दलालत और क़ुव्वत किसी तरह भी कम नहीं। फिर हमारा यह दावा भी नहीं कि हमेशा पत्थर गिरने का कारण ख़ौफ़ ही हो, क्योंकि अल्लाह तआ़ला ने यह फ़रमाया है कि कुछ पत्थर इस वजह से गिर जाते हैं, सो बहुत मुम्किन है कि गिरने के असबाब विभिन्न और अनेक हों उनमें कुछ तो तबई हों और एक सबब अल्लाह का ख़ौफ़ भी हो।

इस जगह पर तीन क़िस्म के पत्थरों के ज़िक्र में तरतीब निहायत लतीफ़ और बहुत ही उम्दा अन्दाज़ में बात को स्पष्ट किया गया है। यानी कुछ पत्थरों में असर लेने का माद्दा इतना ज़्यादा है जिससे नहरें जारी हो जाती हैं, जिनसे अल्लाह की मख़्लूक़ फ़ायदा उठाती है, और इन (यहूदियों) के दिल ऐसे भी नहीं (कि अल्लाह की मख़्लूक़ की तकलीफ़ व मुसीबत में पिघल जायें) और कुछ पत्थरों में उनसे कम असर लेने का जौहर होता है जिससे कम नफ़ा पहुँचता है, तो ये पत्थर भी पहले वालों की तुलना में कम नर्म हुए और इनके दिल उन (दूसरे दर्जे के) पत्थरों से भी सख़्त हैं। और कुछ पत्थरों में अगरचे इस दर्जे का असर नहीं मगर फिर भी एक असर तो है (कि अल्लाह के ख़ौफ़ से नीचे गिर आते हैं) अगरचे दर्जे में पहली क़िस्मों से ये कमज़ोर और निचले दर्जे के हैं मगर इनके दिलों में तो कम दर्जे और मामूली दर्जे का असर लेने (और नर्मी) का जज़्बा भी नहीं।

أَفَتَطْمَعُونَ أَنْ يُؤْمِنُوا لَكُمْ وَقَدْ كَانَ فَرِيقٌ مِّنْهُمْ يَسْمَعُونَ كَلَامَ اللَّهِ ثُمَّ يُحَرِّفُونَهُ مِنْ بَعْدِ مَا عَقَلُوهُ وَهُمْ يَعْلَمُونَ ۝

अ-फ़ततमअू-न अंय्युअ्मिनू लकुम् व क़द् का-न फ़रीक़ुम् मिन्हुम् यस्मअू-न कलामल्लाहि सुम्-म युहर्रिफ़ूनहू मिम्-बअ्दि मा अ्-क़लूहु व हुम् यअ्लमून (75)	अब क्या तुम ऐ मुसलमानो! उम्मीद (अपेक्षा) रखते हो कि वे मानें तुम्हारी बात, और उनमें एक फ़िर्क़ा (जमाअत और गिरोह) था कि सुनता था अल्लाह का कलाम फिर बदल डालते थे उसको जान-बूझकर और वे जानते थे। (75)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(मुसलमान हज़रात यहूदियों को मोमिन बनाने की जो कोशिश कर रहे थे और इसमें परेशानी और कष्ट उठाते थे तो यहूद के हालात व वाक़िआत बता और सुनाकर मुसलमानों की उम्मीद का ख़ात्मा करके उनकी परेशानी और कष्ट इस आयत के ज़रिये दूर फ़रमाते हैं।)

(ऐ मुसलमानो!) क्या (ये सारे क़िस्से सुनकर) अब भी तुम उम्मीद रखते हो कि ये (यहूदी) तुम्हारे कहने से ईमान ले आएँगे, हालाँकि (इन सब बयान हुए क़िस्सों से बढ़कर एक और बात भी उनसे हो चुकी है कि) उनमें कुछ लोग ऐसे गुज़रे हैं कि अल्लाह का कलाम सुनते थे और फिर उसको कुछ का कुछ कर डालते थे (और) उसको समझने के बाद (ऐसा करते) और (मज़े की बात यह कि यह भी) जानते थे (कि हम बुरा कर रहे हैं, सिर्फ़ नफ़्सानी ग़र्ज़ें इस कार्रवाही का सबब होतीं)।

फ़ायदाः मतलब यह कि जो लोग ऐसे निडर और नफ़्सानी इच्छाओं के ऐसे ग़ुलाम हों वे किसी के कहने सुनने से कब बाज़ आने वाले और किसी की कब सुनने वाले हैं। और कलामुल्लाह से मुराद या तो तौरात है और सुनने से मुराद अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के वास्ते से सुनना है, और रद्दोबदल से मुराद उसके कुछ कलिमात या तफ़ासीर या दोनों बदल डालना हैं, और या कलाम से मुराद वह कलाम है जो उन सत्तर आदमियों ने मूसा अ़लैहिस्सलाम की तस्दीक़ के तौर पर तूर पहाड़ पर सुना था, और सुनने से मुराद डायरेक्ट और रद्दोबदल से मुराद क़ौम से यह नक़ल कर देना कि "आख़िर में अल्लाह तआ़ला ने यह भी फ़रमा दिया था कि जो हुक्म तुम से अदा न हो सके वह माफ़ है।"

उपरोक्त बातों में से किसी बात का अ़मल और होना अगरचे इन यहूदियों से न हुआ हो जो नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में मौजूद थे लेकिन चूँकि ये लोग भी अपने पूर्वजों के इन आमाल पर इनकार व नफ़रत न रखते थे इसलिये हुक्म के एतिबार से ये भी वैसे ही हुए।

وَإِذَا لَقُوا الَّذِينَ آمَنُوا قَالُوا آمَنَّا وَإِذَا خَلَا بَعْضُهُمْ إِلَىٰ بَعْضٍ
قَالُوا أَتُحَدِّثُونَهُم بِمَا فَتَحَ اللَّهُ عَلَيْكُمْ لِيُحَاجُّوكُم بِهِ عِندَ رَبِّكُمْ ۚ أَفَلَا تَعْقِلُونَ ﴿٧٦﴾

व इज़ा लक़ुल्लज़ी-न आमनू क़ालू आमन्ना व इज़ा ख़ला बअ्ज़ुहुम्	और जब मिलते हैं मुसलमानों से, कहते हैं हम मुसलमान हुए, और जब तन्हा होते हैं

इला बअ्ज़िन् क़ालू अतुहद्दिसू-नहुम् बिमा फ़-तहल्लाहु अ़लैकुम् लियुहाज्जूकुम् बिही अिन्-द रब्बिकुम्, अ-फ़ला तअ्क़िलून (76)	एक-दूसरे के पास तो कहते हैं तुम क्यों कह देते हो उनसे जो ज़ाहिर किया अल्लाह ने तुम पर ताकि झुठलायें तुमको उससे तुम्हारे रब के आगे, क्या तुम नहीं समझते? (76)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जब मिलते हैं (मुनाफ़िक़ यहूद) मुसलमानों से तो (उनसे तो) कहते हैं कि हम (भी) ईमान ले आए हैं और जब तन्हाई में जाते हैं ये बाज़े (मुनाफ़िक़ यहूदी) दूसरे कुछ (खुले) यहूदियों के पास (तो उनसे उनके साथ होने और उनके धार्मिक रास्ते पर होने के दावेदार होते हैं उस वक़्त) वे (दूसरे यहूदी) उनसे कहते हैं कि तुम (यह) क्या (ग़ज़ब करते हो कि) मुसलमानों को (ख़ुशामद में) वो बातें बतला देते हो जो (उनके मज़हब की ताईद में) अल्लाह ने (तौरात में) तुम पर ज़ाहिर कर दी हैं (मगर हम मस्लेहत के तहत छुपाकर रखते हैं), तो नतीजा यह होगा कि वे लोग तुमको हुज्जत (अपनी बात की दलील देने) में मग़लूब कर देंगे कि (देखो) यह मज़मून अल्लाह के पास (से तुम्हारी किताब में आया) है, क्या तुम (इतनी मोटी सी बात) नहीं समझते?

फ़ायदाः मुनाफ़िक़ लोग कभी एक-आध बात ख़ुशामद में अपने ईमान की सच्चाई जतलाने के लिये मुसलमानों से कह देते थे कि तौरात में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बारे में ख़ुशख़बरी आई है, या क़ुरआन मजीद के बारे में ख़बर आई है, वग़ैरह वग़ैरह। इस पर दूसरे लोग उनको मलामत करते (बुरा-भला कहते) थे।

أَوَلَا يَعْلَمُونَ أَنَّ اللَّهَ يَعْلَمُ مَا يُسِرُّونَ وَمَا يُعْلِنُونَ ۝ وَمِنْهُمْ
أُمِّيُّونَ لَا يَعْلَمُونَ الْكِتَابَ إِلَّا أَمَانِيَّ وَإِنْ هُمْ إِلَّا يَظُنُّونَ ۝ فَوَيْلٌ لِّلَّذِينَ يَكْتُبُونَ الْكِتَابَ بِأَيْدِيهِمْ
ثُمَّ يَقُولُونَ هَٰذَا مِنْ عِندِ اللَّهِ لِيَشْتَرُوا بِهِ ثَمَنًا قَلِيلًا فَوَيْلٌ لَّهُم مِّمَّا كَتَبَتْ أَيْدِيهِمْ وَوَيْلٌ لَّهُم مِّمَّا
يَكْسِبُونَ ۝

अ-व ला यअ्लमू-न अन्नल्ला-ह यअ्लमु मा युसिर्रू-न व मा युअ्लिनून (77) व मिन्हुम उम्मिय्यू-न ला यअ्लमूनल् किता-ब इल्ला अमानिय्-य व इन् हुम् इल्ला	क्या इतना भी नहीं जानते कि अल्लाह को मालूम है जो कुछ छुपाते हैं और जो कुछ ज़ाहिर करते हैं। (77) और कुछ उनमें बेपढ़े हैं कि ख़बर नहीं रखते किताब की सिवाय झूठी आरज़ुओं के, और उनके पास

यज़ुन्नून (78) ● फ़वैलुल्-लिल्लज़ी-न यक्तुबूनल्-किता-ब बिऐदीहिम्, सुम्-म यक़ूलू-न हाज़ा मिन् अिन्दिल्लाहि लियश्तरू बिही स-मनन् क़लीलन्, फ़वैलुल्लहुम् मिम्मा क-तबत् ऐदीहिम व वैलुल्लहुम् मिम्मा यक्सिबून (79)	कुछ नहीं मगर ख़्यालात। (78) ● सो ख़राबी है उनको जो लिखते हैं किताब अपने हाथ से, फिर कह देते हैं यह ख़ुदा की तरफ़ से है ताकि लेवें उस पर थोड़ा सा माल, सो ख़राबी है उनको अपने हाथों के लिखे से और ख़राबी है उनको अपनी उस कमाई से। (79)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

क्या उनको इल्म नहीं है इसका कि हक़ तआ़ला को सब ख़बर है उन चीज़ों की भी जिनको वे छुपाकर रखते हैं और उनकी भी जिनका वे इज़हार कर देते हैं (तो अगर मुनाफ़िक़ों ने मोमिनों से अपना कुफ़्र छुपाया तो क्या! और उन मलामत करने वालों ने हुज़ूर सल्ल. की ख़ुशख़बरी वग़ैरह के मज़ामीन छुपाये तो क्या, अल्लाह तआ़ला को सब ख़बर है। चुनाँचे अल्लाह तआ़ला ने इन दोनों मज़ामीन से मुसलमानों को जगह-जगह आगाह फ़रमा दिया है)।

इस आयत में तो यहूदियों के पढ़े हुए लोगों का ज़िक्र था, आगे उनके बिना पढ़े लोगों का ज़िक्र इस तरह फ़रमाते हैं किः

और उन (यहूदियों) में बहुत से अनपढ़ (भी) हैं जो किताबी इल्म नहीं रखते, लेकिन (बग़ैर सनद के) दिल ख़ुश करने वाली बातें (बहुत याद हैं) और वे लोग और कुछ नहीं, (वैसे ही बेबुनियाद) ख़्यालात पका लेते हैं (और इसकी वजह यह है कि कुछ तो उनके उलेमा की तालीम नाक़िस और मख़्लूत (सही और ग़लत का मिश्रण) है और फिर ऊपर से उनमें समझ की कमी है, ऐसी सूरत में सिवाय बेबुनियाद ख़्यालात के असल हक़ीक़त की तहक़ीक़ कहाँ नसीब हो सकती है, जैसा कि किसी ने कहा है- "करेला और नीम चढ़ा" उसमें मिठास कहाँ।

और चूँकि उनके इस अंधविश्वास में उनके उलेमा की ख़ियानत (सही बात को छुपाना) बड़ा सबब है इसलिये जुर्म में वे भी अपने अ़वाम से ज़्यादा हुए, इसी का बयान अब यहाँ करते हैं।

(जब उक्त अ़वाम डाँट-डपट और चेतावनी के हक़दार हैं और उनकी अज्ञानता का असली सबब उनके उलेमा ही हैं) तो बड़ी ख़राबी उनकी होगी जो लिखते हैं (अदल-बदलकर) किताब (तौरात) को अपने हाथों से, (और) फिर (अ़वाम से) कह देते हैं कि यह (हुक्म) ख़ुदा की तरफ़ से (यूँ ही आया) है। (और) ग़र्ज़ (सिर्फ़) यह होती है कि इस ज़रिये से कुछ नक़द किसी क़द्र थोड़ा वसूल कर लें। सो बड़ी ख़राबी (पेश) आएगी उनको इस (किताब में रद्दोबदल) की बदौलत (भी) जिसको उनके हाथों ने लिखा था, और बड़ी ख़राबी होगी उनको उस (नक़द) की बदौलत (भी) जिसको वे वसूल कर लिया करते थे।

फ़ायदाः अ़वाम की रज़ा और ख़ुशी हासिल करने के लिये ग़लत-सलत मसले बतला देने से उनको कुछ नक़द वग़ैरह भी वसूल हो जाता था और उनकी नज़र में इज़्ज़त व सम्मान भी रहता था, इसी ग़र्ज़ से तौरात में लफ़्ज़ी और मानवी हेर-फेर भी करते रहते थे। इस आयत में इसी पर वईद (धमकी और डाँट) सुनाई गई।

وَقَالُوْا لَنْ تَمَسَّنَا النَّارُ اِلَّآ اَيَّامًا مَّعْدُوْدَةً ۚ
قُلْ اَتَّخَذْتُمْ عِنْدَ اللّٰهِ عَهْدًا فَلَنْ يُّخْلِفَ اللّٰهُ عَهْدَهٗٓ اَمْ تَقُوْلُوْنَ عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ۝

व क़ालू लन् तमस्स-नन्नारु इल्ला अय्यामम् मअ़्दू-दतन्, क़ुल् अत्तख़ज़्तुम् अिन्दल्लाहि अ़ह्दन् फ़-लंय्युख़्लिफ़ल्लाहु अ़ह्दहू अम् तक़ूलू-न अ़लल्लाहि मा ला तअ़्लमून (80)	और कहते हैं- हमको हरगिज़ आग न लगेगी मगर चन्द रोज़ गिने-चुने। कह दो क्या तुम ले चुके हो अल्लाह के यहाँ से क़रार (अ़हद) कि अब हरगिज़ ख़िलाफ़ न करेगा अल्लाह अपने क़रार के, या जोड़ते हो अल्लाह पर जो तुम नहीं जानते। (80)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और यहूदियों ने यह भी कहा कि हरगिज़ हमको (दोज़ख़ की) आग छुएगी (भी) नहीं, (हाँ) मगर (बहुत) थोड़े दिन जो (उंगलियों पर) गिन लिए जा सकें। (ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) आप (इनसे) यूँ फ़रमा दीजिए- क्या तुम लोगों ने हक़ तआ़ला से (इसके बारे में) कोई अ़हद (क़रार) ले लिया है, जिसमें अल्लाह तआ़ला अपने मुआ़हदे के ख़िलाफ़ न करेंगे, या (मुआ़हदा नहीं लिया बल्कि वैसे ही) अल्लाह तआ़ला के ज़िम्मे ऐसी बात लगाते हो जिसकी कोई इल्मी सनद अपने पास नहीं रखते।

फ़ायदाः यहूद के इस क़ौल की मुफ़स्सिरीन (क़ुरआन की व्याख्या करने वाले उलेमा) ने विभिन्न तक़रीरें की हैं उनमें से एक यह है कि यह बात साबित है कि मोमिन अगर गुनाहगार हो तो अगरचे अपने गुनाह के हिसाब से दोज़ख़ के अ़ज़ाब में दाख़िल हो, लेकिन ईमान की वजह से हमेशा के लिये जहन्नम का अ़ज़ाब नहीं होगा, आख़िरकार कुछ न कुछ समय के बाद निजात हो जायेगी।

पस यहूदियों के दावे का हासिल यह था कि चूँकि उनके ख़्याल के मुताबिक़ मूसा अ़लैहिस्सलाम का दीन मन्सूख़ (अ़मल के लिये रद्द) नहीं है लिहाज़ा वे मोमिन हैं, हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम और जनाब हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत का इनकार करने से काफ़िर नहीं हुए। पस अगर किसी गुनाह व नाफ़रमानी के सबब दोज़ख़ में चले भी गये तो फिर निकाल लिये जायेंगे और चूँकि यह दावा एक ग़लत ख़्याल की बुनियाद पर है, क्योंकि हज़रत मूसा के दीन के हमेशा रहने का

दावा ख़ुद ग़लत है, लिहाज़ा हज़रत मसीह और हज़रत मुहम्मद सल्ल. की नुबुव्वत के इनकार के सबब वे लोग काफ़िर होंगे, और काफ़िरों के लिये कुछ समय के बाद दोज़ख़ से निजात पा जाना किसी भी आसमानी किताब में नहीं, जिसको अल्लाह तआ़ला ने 'अ़हद' (मुआ़हदे और इक़रार) से ताबीर फ़रमाया। पस साबित हुआ कि उनका दावा बिना दलील बल्कि ख़िलाफ़े दलील है।

بَلٰى مَنْ كَسَبَ سَيِّئَةً وَّاَحَاطَتْ بِهٖ خَطِيْٓـئَتُهٗ فَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ
هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ الْجَنَّةِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝

बला मन् क-स-ब सय्यि-अतंव्-व अहातत् बिही ख़तीअतुहू फ़-उलाइ-क अस्हाबुन्नारि हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (81) वल्लज़ी-न आमनू व अ़मिलुस्-सालिहाति उलाइ-क अस्हाबुल्-जन्नति हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (82) ✿	क्यों नहीं! जिसने कमाया गुनाह और घेर लिया उसको उसके गुनाह ने सो वही हैं दोज़ख़ के रहने वाले, और उसी में हमेशा रहेंगे। (81) और जो ईमान लाये और अ़मल किये नेक वही हैं जन्नत के रहने वाले, वे उसी में हमेशा रहेंगे। (82) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

दोज़ख़ में हमेशा रहने का नियम

(सिवाय चन्द दिन के तुमको दोज़ख़ की आग) क्यों नहीं (लगेगी, बल्कि हमेशा-हमेशा तक उस में रहना ज़रूर है। क्योंकि हमारा नियम और क़ानून यह है कि) जो शख़्स जान-बूझकर बुरी बातें करता रहे और उसको उसकी ख़ता (और गुनाह इस तरह) घेर ले (कि कहीं नेकी का असर तक न रहे) सो ऐसे लोग दोज़ख़ वाले होते हैं (और) वे उसमें हमेशा (हमेशा) रहेंगे। और जो लोग (अल्लाह व रसूल पर) ईमान लाएँ और नेक काम करें ऐसे लोग जन्नत वाले होते हैं (और) वे उसमें हमेशा (हमेशा) रहेंगे।

फ़ायदाः ख़ताओं के इहाते (घेर लेने) के जो मायने ऊपर ज़िक्र किये गये हैं, इस क़िस्म का इहाता इस मायने के साथ काफ़िरों के साथ मख़्सूस है, क्योंकि कुफ़्र की वजह से कोई भी नेक अ़मल मक़बूल नहीं होता, बल्कि कुफ़्र से पहले अगर कुछ नेक आमाल किये भी हों तो वे भी ज़ाया और ज़ब्त हो जाते हैं। इसी वजह से काफ़िरों में सर से पैर तक बदी ही बदी होगी, जिसकी सज़ा हमेशा की जहन्नम होगी, बख़िलाफ़ ईमान वालों के कि अव्वल तो उनका ईमान ख़ुद बहुत बड़ा नेक अ़मल है, दूसरे ईमान के बाद के आमाल भी उनके नामा-ए-आमाल में दर्ज होते हैं इसलिये वे नेकी के असर से ख़ाली नहीं, पस उक्त इहाता उनकी हालत पर सादिक़ नहीं आता।

ख़ुलासा यह हुआ कि जब इस क़ानून की रू से काफ़िर का हमेशा के लिये जहन्नमी होना साबित

हो गया तो चूँकि हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम ख़ातिमुल-अम्बिया नहीं हैं, आपके बाद हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम और हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम भी नबी हैं, तो यहूद इनका इनकार करके काफ़िरों में शामिल हो गये, इसलिये इस क़ानून के हिसाब से वे भी हमेशा के लिये दोज़ख़ में रहने वाले होंगे, तो उनका यह दावा निश्चित दलील से बातिल (झूठा) ठहरा।

وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَ بَنِيٓ إِسْرَآءِيلَ لَا تَعْبُدُونَ إِلَّا ٱللَّهَ وَبِٱلْوَٰلِدَيْنِ إِحْسَانًا وَذِى ٱلْقُرْبَىٰ وَٱلْيَتَٰمَىٰ وَٱلْمَسَٰكِينِ وَقُولُوا۟ لِلنَّاسِ حُسْنًا وَأَقِيمُوا۟ ٱلصَّلَوٰةَ وَءَاتُوا۟ ٱلزَّكَوٰةَ ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ إِلَّا قَلِيلًا مِّنكُمْ وَأَنتُم مُّعْرِضُونَ ۝

व इज़् अख़ज़्ना मीसा-क़ बनी इस्राई-ल ला तअ्बुदू-न इल्लल्ला-ह, व बिल्वालिदैनि इह्सानंव्-व ज़िल्क़ुर्बा वल्यतामा वल्मसाकीनि व क़ूलू लिन्नासि हुस्नंव्-व अक़ीमुस्-सला-त व आतुज़्ज़का-त, सुम्-म तवल्लैतुम् इल्ला क़लीलम्-मिन्कुम् व अन्तुम् मुअ्रिज़ून (83)	और जब हमने लिया क़रार बनी इस्राईल से कि इबादत न करना मगर अल्लाह की, और माँ-बाप से सुलूक करना और कुनबे वालों से और यतीमों और मोहताजों से, और कहो सब लोगों से नेक बात और क़ायम रखियो नमाज़ और देते रहियो ज़कात, फिर तुम फिर गये मगर थोड़े से तुममें और तुम ही फिरने वाले। (83)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब लिया हमने (तौरात में) क़ौल व क़रार बनी इस्राईल से कि इबादत मत करना (किसी की) सिवाय अल्लाह तआ़ला के, और माँ-बाप की अच्छी तरह ख़िदमत गुज़ारी करना और रिश्तेदारों व क़रीबी लोगों की भी, और यतीम बच्चों की भी और ग़रीब मोहताजों की भी, और आ़म लोगों से (जब कोई) बात (कहना हो तो) भी अच्छी तरह (अच्छे अख़्लाक़ से) कहना, और पाबन्दी रखना नमाज़ की, और अदा करते रहना ज़कात, फिर तुम (क़ौल व क़रार करके) उससे फिर गये सिवाय कुछ के, और तुम्हारी तो आ़म आ़दत है इक़रार करके हट जाना।

फ़ायदाः यह गिने-चुने वे चन्द लोग हैं जो तौरात के पूरे पाबन्द रहे, तौरात के मन्सूख़ (अल्लाह की तरफ़ से उस पर अ़मल का हुक्म ख़त्म) होने से पहले हज़रत मूसा की शरीअ़त के पाबन्द रहे, जब तौरात मन्सूख़ कर दी गई तो शरीअ़ते मुहम्मदिया के हुक्म और फ़रमान के ताबेदार हो गये।

मसलाः इस आयत से मालूम हुआ कि ये अहकाम इस्लाम और पहली शरीअ़तों में संयुक्त रूप से शामिल हैं, जिनमें तौहीद और माँ-बाप, रिश्तेदारों, यतीमों और मिस्कीनों की ख़िदमत, और तमाम इनसानों के साथ गुफ़्तगू में नर्मी व अच्छे अख़्लाक़ का प्रदर्शन करना और नमाज़ और ज़कात सब दाख़िल हैं।

तालीम व तब्लीग़ में सख़्ती से बात करना काफ़िर के साथ भी दुरुस्त नहीं

"क़ूलू लिन्नासि हुस्नन्" से मुराद अच्छे अन्दाज़ से बात करना है। इसका हासिल यह है कि जब लोगों से ख़िताब करे तो बात नर्मी से करे, खिले चेहरे और खुले दिल से करे, चाहे मुख़ातब नेक हो या बुरा, सुन्नी हो या बिद्अ़ती, हाँ दीन के मामले में बुराई को नज़र-अन्दाज़ करना और उसकी ख़ातिर हक़ को छुपाना न करे। वजह यह है कि हक़ तआ़ला ने जब हज़रत मूसा व हज़रत हारून अ़लैहिमस्सलाम को फ़िरऔ़न की तरफ़ भेजा तो यह हिदायत नामा दिया कि:

فَقُوْلَا لَهٗ قَوْلًا لَّيِّنًا. (٢٠:٤٤)

यानी तुम दोनों जाकर उससे नर्मी से बात करना।

तो आज जो कलाम करने वाला है वह हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम से अफ़ज़ल नहीं, और मुख़ातब कितना ही बुरा हो फ़िरऔ़न से ज़्यादा बुरा ख़बीस नहीं।

हज़रत तल्हा बिन उमर रहमतुल्लाहि अ़लैहि कहते हैं कि मैंने इमामे तफ़सीर व हदीस हज़रत अ़ता रह. से कहा कि आपके पास बुरे अ़क़ीदे वाले भी जमा रहते हैं मगर मेरे मिज़ाज में तेज़ी है मेरे पास ऐसे लोग आते हैं तो मैं उनको सख़्त बातें कह देता हूँ। हज़रत अ़ता रह. ने फ़रमाया कि ऐसा न करो, क्योंकि हक़ तआ़ला का हुक्म है:

قُوْلُوْا لِلنَّاسِ حُسْنًا

कि लोगों से अच्छी और नेक बात कहो। इसमें तो यहूदी व ईसाई भी दाख़िल हैं, मुसलमान चाहे कैसा ही हो वह क्यों न दाख़िल होगा। (क़ुर्तुबी)

وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَكُمْ لَا تَسْفِكُوْنَ دِمَآءَكُمْ وَلَا تُخْرِجُوْنَ اَنْفُسَكُمْ مِّنْ دِيَارِكُمْ ثُمَّ اَقْرَرْتُمْ وَاَنْتُمْ تَشْهَدُوْنَ ۝

व इज़् अख़ज़्ना मीसा-क़कुम् ला तस्फ़िकू-न दिमा-अकुम् व ला तुख़्रिजू-न अन्फ़ु-सकुम् मिन् दियारिकुम् सुम्-म अक़्रर्तुम् व अन्तुम् तश्हदून (84)	और जब लिया हमने वादा तुम्हारा कि न करोगे ख़ून आपस में और न निकाल दोगे अपनों को अपने वतन से, फिर तुमने इक़रार कर लिया और तुम मानते हो। (84)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऊपर जो अ़हद व इक़रार लिया गया था इस आयत में उसका आख़िरी हिस्सा (पूरक) बयान किया गया है। चुनाँचे इरशाद है- और (वह ज़माना भी याद करो) जब हमने तुमसे यह क़ौल व क़रार (भी) लिया कि (गृहयुद्ध करके) आपस में ख़ून मत बहाना और एक-दूसरे को वतन से मत निकालना,

फिर (हमारे इस क़रार लेने पर) तुमने इक़रार भी कर लिया और (इक़रार भी इशारे में नहीं बल्कि ऐसा साफ़ जैसे) तुम (उस पर) गवाही (भी) देते हो।

फ़ायदाः कई बार ऐसा होता है कि किसी की तक़रीर से किसी बात और मामले का इक़रार ज़ाहिर होता और टपकता है अगरचे साफ़ इक़रार नहीं होता, मगर आ़म बोल-चाल में और अ़क़्ल से उसको इक़रार ही समझा जाता है, लेकिन यहाँ तो "सुम्-म अक़्रर्तुम" (फिर तुमने इक़रार किया) से इस शुब्हे को भी दूर कर दिया, और बता दिया कि यह इक़रार इतना खुला और स्पष्ट था जैसे शहादत (गवाही) साफ़ और स्पष्ट हुआ करती है।

वतन से निकालने की मनाही का मतलब यह है कि किसी को तकलीफ़ पहुँचाकर इतना तंग मत करना कि वह बेचारा अपना वतन छोड़ने पर मजबूर हो जाये।

ثُمَّ أَنْتُمْ هٰؤُلَاءِ تَقْتُلُونَ أَنْفُسَكُمْ وَتُخْرِجُونَ فَرِيقًا مِّنْكُمْ مِّنْ دِيَارِهِمْ ۚ تَظَاهَرُونَ عَلَيْهِمْ بِالْإِثْمِ وَالْعُدْوَانِ ۖ وَإِنْ يَأْتُوكُمْ أُسَارٰى تُفَادُوهُمْ وَهُوَ مُحَرَّمٌ عَلَيْكُمْ إِخْرَاجُهُمْ ۚ أَفَتُؤْمِنُونَ بِبَعْضِ الْكِتٰبِ وَتَكْفُرُونَ بِبَعْضٍ ۚ فَمَا جَزَاءُ مَنْ يَّفْعَلُ ذٰلِكَ مِنْكُمْ إِلَّا خِزْيٌ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۖ وَيَوْمَ الْقِيٰمَةِ يُرَدُّونَ إِلٰى أَشَدِّ الْعَذَابِ ۗ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ ۝

सुम्-म अन्तुम् हा-उला-इ तक़्तुलू-न अन्फ़ु-सकुम् व तुख़्रिजू-न फ़रीक़म् मिन्कुम् मिन् दियारिहिम तज़ाहरू-न अ़लैहिम बिल्इस्मि वल्-अ़ुद्वानि व इंय्यअ्तूकुम् उसारा तुफ़ादूहुम् व हु-व मुहर्रमुन् अ़लैकुम् इख़्राजुहुम, अ-फ़तुअ्मिनू-न बिबअ़्ज़िल्-किताबि व तक्फ़ुरू-न बिबअ़्ज़िन् फ़मा जज़ा-उ मंय्यफ़्अ़लु ज़ालि-क मिन्कुम् इल्ला ख़िज़्युन् फ़िल्हयातिद्दुन्या व यौमल्-क़ियामति युरद्दू-न इला अशद्दिल्-अ़ज़ाबि, व मल्लाहु बिग़ाफ़िलिन् अ़म्मा तअ़्मलून (85)

फिर तुम वे लोग हो कि वैसे ही ख़ून करते हो आपस में और निकाल देते हो अपने एक फ़िर्के (गिरोह) को उनके वतन से, चढ़ाई करते हो उनपर गुनाह और ज़ुल्म से, और अगर वही आयें तुम्हारे पास किसी के क़ैदी होकर तो उनका बदला देकर छुड़ाते हो, हालाँकि हराम है तुम पर उनका निकाल देना भी, तो क्या मानते हो किताब के कुछ हिस्से को और नहीं मानते कुछ हिस्से को। सो कोई सज़ा नहीं उसकी जो तुम में यह काम करता है मगर रुस्वाई दुनिया की ज़िन्दगी में, और क़ियामत के दिन पहुँचाये जायें सख़्त से सख़्त अ़ज़ाब में, और अल्लाह बेख़बर नहीं तुम्हारे कामों से। (85)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

अ़हद व इक़रार के इस पूरक में जो हुक्म उनको दिया गया है उसके बारे में अ़हद तोड़ने का बयान इस आयत में फ़रमाया है।

फिर (उस खुले इक़रार के बाद) तुम (जैसे हो) यह (आँखों के सामने) मौजूद (ही) हो कि आपस में क़त्ल व क़िताल भी करते हो और एक-दूसरे को वतन से भी निकालते हो (इस तौर पर कि) उन अपनों के मुक़ाबले में (उनकी मुख़ालिफ़ क़ौमों की) इमदाद करते हो, गुनाह और ज़ुल्म के साथ (सो इन दोनों हुक्मों को तो यूँ बरबाद किया)। और (एक तीसरा हुक्म जो आसान सा समझा उस पर अ़मल करने को ख़ूब तैयार रहते हो कि) अगर उन लोगों में से कोई गिरफ़्तार होकर तुम तक पहुँच जाता है तो ऐसों को कुछ ख़र्च कर-कराकर रिहा करा देते हो, हालाँकि यह बात (भी मालूम) है कि तुमको उनका वतन से निकाल देना भी (और क़त्ल तो और भी ज़्यादा) मना है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

फ़ायदाः इस सिलसिले में उन पर तीन हुक्म लाज़िम थे- अव्वल क़त्ल न करना, दूसरे किसी को उसके वतन से निकालना, तीसरे अपनी क़ौम में से किसी को क़ैद व बन्द में गिरफ़्तार देखें तो रुपया ख़र्च करके छुड़ा देना। तो उन लोगों ने पहले दो हुक्म तो छोड़ दिये और तीसरे हुक्म का पाबन्दी से पालन करने लगे, और सूरत इसकी यह हुई थी कि मदीने वालों में दो क़ौमें थीं- 'औस' व 'ख़ज़्रज', और उनमें आपसी दुश्मनी रहती थी, और कभी-कभी लड़ाई की नौबत भी आ जाती थी, और मदीने के आस-पास इलाक़ों में यहूदियों की दो क़ौमें 'बनू क़ुरैज़ा' और 'बनू नज़ीर' आबाद थीं। औस और बनू क़ुरैज़ा की आपस में दोस्ती थी, और ख़ज़्रज व बनू नज़ीर में आपसी दोस्ती व याराना था। जब औस व ख़ज़्रज में आपस में लड़ाई होती तो दोस्ती की बिना पर बनू क़ुरैज़ा तो औस के मददगार होते और बनू नज़ीर ख़ज़्रज की तरफ़दारी करते, तो जहाँ औस व ख़ज़्रज मारे जाते और घर से बेघर होते होते उनके दोस्तों और हामियों को भी यह मुसीबत पेश आती, और ज़ाहिर है कि बनू क़ुरैज़ा के क़त्ल और वतन से निकालने में बनू नज़ीर का भी हाथ होता, और ऐसा ही इसके विपरीत (यानी बनू नज़ीर के क़त्ल और वतन से निकालने में बनू क़ुरैज़ा का हाथ होता) अलबत्ता यहूद की दोनों जमाअ़तों में से अगर कोई जंग में क़ैद हो जाता तो हर जमाअ़त अपने दोस्तों को माल पर राज़ी करके उस क़ैदी को रिहाई दिला देते, और कोई पूछता कि ऐसा क्यों करते हो तो उसको जवाब देते कि असीर (क़ैदी) को रिहा करा देना हम पर वाजिब है, और अगर कोई क़त्ल व क़िताल (जंग व लड़ाई) में सहयोगी व मददगार बनने पर एतिराज़ करता तो कहते कि क्या करें दोस्तों का साथ न देने से आ़र (शर्म) आती है। इस आयत में अल्लाह तआ़ला ने इसकी शिकायत फ़रमाई है और उनकी बहाने बाज़ियों का पर्दा चाक फ़रमाया है।

इस आयत में जिन मुख़ालिफ़ क़ौमों की इमदाद का ज़िक्र है उससे औस व ख़ज़्रज मुराद हैं कि औस बनू क़ुरैज़ा की मुवाफ़क़त (तरफ़दारी) में बनू नज़ीर के मुख़ालिफ़ थे और ख़ज़्रज बनू नज़ीर की मुवाफ़क़त में बनी क़ुरैज़ा के मुख़ालिफ़ थे।

'इस्म' व 'उदवान' (ज़ुल्म व गुनाह) दो लफ़्ज़ लाने से इस तरफ़ इशारा हो सकता है कि इसमें दो हक़ ज़ाया होते हैं, हुक्मे इलाही की तामील न करके अल्लाह का हक़ ज़ाया किया और दूसरे को तकलीफ़ पहुँचाकर बन्दों का हक़ भी ज़ाया कर दिया। आगे अ़हद व क़रार तोड़ने पर मलामत व शिकायत के साथ-साथ सज़ा को भी स्पष्ट रूप से बयान फ़रमाया है। इरशाद है:

क्या तो (बस यूँ कहो कि) किताब (तौरात) के कुछ (अहकाम) पर तुम ईमान रखते हो और कुछ (अहकाम) पर ईमान नहीं रखते, सो और क्या सज़ा हो (-ना चाहिये) ऐसे शख़्स की जो तुम लोगों में से ऐसी हरकत करे, सिवाय रुस्वाई के दुनियावी ज़िन्दगी में और क़ियामत के दिन को बड़े सख़्त अ़ज़ाब में डाल दिए जाएँ, और अल्लाह तआ़ला (कुछ) बेख़बर नहीं है तुम्हारे (बुरे) आमाल से।

फ़ायदाः हर चन्द कि वे यहूदी जिनका क़िस्से में ज़िक्र है, नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत का इनकार करने की बिना पर काफ़िर ही थे, मगर यहाँ उनका कुफ़्र ज़िक्र नहीं किया गया बल्कि कुछ अहकाम पर अ़मल न करने को कुफ़्र से ताबीर फ़रमाया है। हालाँकि जब तक हराम को हराम समझे आदमी काफ़िर नहीं होता, सो इस शुब्हे का जवाब यह है कि जो गुनाह बहुत सख़्त होता है उस पर शरई मुहावरों में उसकी शिद्दत के पेशे नज़र कुफ़्र का हुक्म कर दिया जाता है। हम अपनी आ़म बोल-चाल के मुहावरों में इसकी मिसालें दिन-रात देखते हैं, जैसे किसी घटिया और कमीनी हरकत करने वाले को कह देते हैं कि तू तो बिल्कुल भंगी है, हालाँकि मुख़ातब निश्चित तौर पर भंगी नहीं है, इससे मक़सूद सख़्त नफ़रत और उस काम की बुराई ज़ाहिर करना होता है। और यही मायने हैं इस हदीस के:

مَنْ تَرَكَ الصَّلٰوةَ مُتَعَمِّدًا فَقَدْ كَفَرَ

कि जिसने जान-बूझकर नमाज़ को छोड़ दिया उसने कुफ़्र का काम किया।

इस मक़ाम पर जिन दो सज़ाओं का ज़िक्र है उनमें पहली सज़ा यानी दुनिया में ज़िल्लत व रुस्वाई, तो इसका ज़हूर इस तरह हुआ कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ही के ज़माने में मुसलमानों के साथ समझौते की ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) करने के सबब बनू क़ुरैज़ा क़त्ल किये गये और बनू नज़ीर मुल्क शाम (आज के सीरिया) की तरफ़ हद से ज़्यादा ज़िल्लत व रुस्वाई के साथ निकाल दिये गये।

أُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا بِالْاٰخِرَةِ فَلَا يُخَفَّفُ عَنْهُمُ الْعَذَابُ وَلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ۝ ع

उला-इकल्लज़ीनश्त-रवुल् हयातद्-दुन्या बिल्आख़िरति फ़ला युख़फ़्फ़फ़ु अ़न्हुमुल्-अ़ज़ाबु व ला हुम् युन्सरून (86) ✿	ये वही हैं जिन्होंने मोल ली दुनिया की ज़िन्दगी आख़िरत के बदले, सो न हल्का होगा उन पर अ़ज़ाब और न उनको मदद पहुँचेगी। (86) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(और सज़ा का कारण उनके लिये यह है कि) ये वे लोग हैं कि उन्होंने (अहकाम की मुख़ालफ़त करके) दुनियावी ज़िन्दगी (के लुत्फ़ और मज़ों) को ले लिया है आख़िरत (की निजात) के बदले में (जिसका ज़रिया इताअ़त है), सो न तो (सज़ा देने वाले की तरफ़ से) उनकी सज़ा में (कुछ) कमी की जाएगी और न कोई (वकील, मुख़्तार या दोस्त रिश्तेदार) उनकी तरफ़दारी (पैरवी) करने पायेगा।

وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ وَقَفَّيْنَا مِنْ بَعْدِهٖ بِالرُّسُلِ ؗ وَاٰتَيْنَا عِيْسَى ابْنَ مَرْيَمَ الْبَيِّنٰتِ وَاَيَّدْنٰهُ بِرُوْحِ الْقُدُسِ ؕ اَفَكُلَّمَا جَآءَكُمْ رَسُوْلٌۢ بِمَا لَا تَهْوٰٓى اَنْفُسُكُمُ اسْتَكْبَرْتُمْ ۚ فَفَرِيْقًا كَذَّبْتُمْ ؗ وَفَرِيْقًا تَقْتُلُوْنَ ۝

व लक़द् आतैना मूसल्-किता-ब व क़फ़्फ़ैना मिम्-बअ़्दिही बिर्रुसुलि व आतैना ईसब्-न मर्यमल्-बय्यिनाति व अय्यद्नाहु बिरूहिल्क़ुदुसि, अ-फ़कुल्लमा जाअकुम् रसूलुम् बिमा ला तह्वा अन्फ़ुसुकुमुस्तक्बर्तुम् फ़-फ़रीक़न् कज़्ज़ब्तुम् व फ़रीक़न् तक़्तुलून (87)	और बेशक दी हमने मूसा को किताब और पै-दर-पै (एक के बाद एक) भेजे उसके पीछे रसूल और दिये हमने ईसा मरियम के बेटे को खुले मोजिज़े और क़ुव्वत दी उसको रूहे पाक से, फिर भला क्या जब तुम्हारे पास लाया कोई रसूल वह हुक्म जो न भाया तुम्हारे जी को तो तुम तकब्बुर करने लगे? फिर एक जमाअ़त को झुठलाया और एक जमाअ़त को तुमने क़त्ल कर दिया। (87)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और हमने (ऐ बनी इस्राईल! तुम्हारी हिदायत के लिये हमेशा से बड़े-बड़े सामान किये, सबसे पहले) मूसा अ़लैहिस्सलाम को किताब (तौरात) दी, और (फिर) उनके बाद (बीच में) एक के बाद एक (बराबर मुख़्तलिफ़) पैग़म्बरों को भेजते रहे, और फिर (इस ख़ानदान के सिलसिले के आख़िर में) हमने (हज़रत) ईसा इब्ने मरियम को (नुबुव्वत की) स्पष्ट दलीलें (इन्जील और मोजिज़े) अ़ता फ़रमाईं और हमने रूहुल्-क़ुदुस (जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम) से (जो) ताईद दी (सो अलग, जो अपनी जगह ख़ुद एक स्पष्ट दलील थी तो), क्या (ताज्जुब की बात नहीं कि इस पर भी तुम नाफ़रमानी करते रहे और) जब कभी (भी) कोई पैग़म्बर तुम्हारे पास ऐसे अहकाम लाए जिनको तुम्हारा दिल न चाहता था, (तब ही) तुमने (उन पैग़म्बरों की इताअ़त से) तकब्बुर करना शुरू कर दिया, सो (उन पैग़म्बरों में से) बाज़ों को तो (नऊज़ु बिल्लाह) तुमने झूठा बतलाया और बाज़ों को (बे-धड़क) क़त्ल ही कर डालते थे।

फ़ायदाः क़ुरआन व हदीस में जगह-जगह हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम को रूहुल-क़ुदुस कहा गया है जैसे क़ुरआन की इस आयत में, तथाः

قُلْ نَزَّلَهُ رُوْحُ الْقُدُسِ. (۱۶:۱۰۲)

(सूरः 16 आयत 102) वाली आयत में। और हदीस में हज़रत हस्सान बिन साबित रज़ियल्लाहु अ़न्हु का यह शेरः

و جبريل رسول الله فينا   و روح القدس ليس له كفاء

और जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम के वास्ते से हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की कई तरीक़ों से ताईद हुई है- अव्वल तो पैदाईश के वक़्त शैतान के छूने से हिफ़ाज़त की गई, फिर उनके दम करने से हज़रत ईसा का गर्भ क़रार पाया, फिर यहूद चूँकि कसरत से हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के मुख़ालिफ़ थे इसलिये जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम हिफ़ाज़त के लिये साथ रहते थे, यहाँ तक कि आख़िर में उनके ज़रिये से आसमान पर उठवा लिये गये। यहूद ने बहुत से पैग़म्बरों को झुठलाया यहाँ तक कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को भी झुठलाया और हज़रत ज़करिया व हज़रत यहया अ़लैहिमुस्सलाम को क़त्ल भी किया।

وَقَالُوْا قُلُوْبُنَا غُلْفٌ ۭ بَلْ لَّعَنَهُمُ اللّٰهُ بِكُفْرِهِمْ فَقَلِيْلًا مَّا يُؤْمِنُوْنَ ۝

व क़ालू क़ुलूबुना ग़ुल्फ़ुन्, बल् ल-अ-नहुमुल्लाहु बिकुफ़्रिहिम फ़-क़लीलम्-मा युअ्मिनून (88)	और कहते हैं- हमारे दिलों पर ग़िलाफ़ (पर्दा) है, बल्कि लानत की है अल्लाह ने उनके कुफ़्र के सबब, सो बहुत कम ईमान लाते हैं। (88)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और वे (यहूदी ताना मारने के तौर पर) कहते हैं कि हमारे दिल (ऐसे) महफ़ूज़ हैं (कि उनमें मुख़ालिफ़ मज़हब यानी इस्लाम का असर ही नहीं होता, तो मज़हब पर हम ख़ूब पक्के और जमे हुए हैं। हक़ तआ़ला फ़रमाते हैं कि यह महफ़ूज़ रहना और पुख़्तगी नहीं है) बल्कि उनके कुफ़्र के सबब उन पर ख़ुदा की मार है (कि इस्लाम जो हक़ मज़हब है उससे भाग रहे और मन्सूख़ मज़हब पर अड़े हुए हैं), सो बहुत ही थोड़ा-सा ईमान रखते हैं (और थोड़ा ईमान मक़बूल नहीं, पस वे काफ़िर ही ठहरे)।

फ़ायदाः यह थोड़ा सा ईमान उन चीज़ों के बारे में है जो उनके मज़हब और इस्लाम में मुश्तरक (संयुक्त) हैं, जैसे ख़ुदा का क़ायल होना, क़ियामत का क़ायल होना कि इन बातों के वे भी क़ायल थे लेकिन ख़ुद हुज़ूरे पाक की नुबुव्वत और क़ुरआन के अल्लाह का कलाम होने के मुन्किर (इनकार करने वाले) थे, इसलिये पूरा ईमान न था। और उस थोड़े ईमान को लुग़त के एतिबार से ईमान कहा, जिसके मायने बस यक़ीन के हैं, चाहे यह बाज़ चीज़ों के साथ ही मुताल्लिक़ हो, शरई तौर पर उसको

ईमान नहीं कहते, शरई तौर पर वह ईमान मोतबर है जो शरीअ़त में आयी तमाम बातों के यक़ीन के साथ हो।

وَلَمَّا جَآءَهُمْ كِتٰبٌ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ ۙ وَكَانُوْا مِنْ قَبْلُ يَسْتَفْتِحُوْنَ عَلَى الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ۚ فَلَمَّا جَآءَهُمْ مَّا عَرَفُوْا كَفَرُوْا بِهٖ ۚ فَلَعْنَةُ اللّٰهِ عَلَى الْكٰفِرِيْنَ ﴿٨٩﴾

व लम्मा जा-अहुम् किताबुम् मिन् अ़िन्दिल्लाहि मुसद्दिक़ुल्लिमा म-अ़हुम् व कानू मिन् क़ब्लु यस्तफ़्तिहू-न अ़लल्लज़ी-न क-फ़रू, फ़-लम्मा जा-अहुम् मा अ़-रफ़ू क-फ़रू बिही फ़-लअ़्नतुल्लाहि अ़लल्-काफ़िरीन (89)	और जब पहुँची उनके पास किताब अल्लाह की तरफ़ से जो सच्चा बताती है उस किताब को जो उनके पास है और पहले से फ़तह (विजय) माँगते थे काफ़िरों पर। फिर जब पहुँचा उनको जिसको पहचान रखा था तो उससे इनकारी हो गये, सो लानत है अल्लाह की मुन्किरों (इनकार करने वालों) पर। (89)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जब उनको (एक) ऐसी किताब पहुँची (यानी क़ुरआन मजीद) जो अल्लाह की तरफ़ से है (और) उस (किताब) की (भी) तस्दीक़ करने वाली है जो (पहले से) उनके पास है, (यानी तौरात) हालाँकि इससे पहले वे (ख़ुद) बयान किया करते थे (और) काफ़िरों से (यानी अ़रब के मुश्रिकों से कि एक नबी आने वाले हैं और एक किताब लाने वाले हैं, मगर) फिर जब वह चीज़ आ पहुँची जिसको वे (ख़ूब जानते) पहचानते हैं तो उसका (साफ़) इनकार कर बैठे। सो (बस) ख़ुदा की मार हो ऐसे इनकार करने वालों पर (कि जान-बूझकर सिर्फ़ तास्सुब के सबब इनकार करें)।

फ़ायदाः क़ुरआन को जो तौरात की तस्दीक़ करने वाला फ़रमाया तो इसकी वजह यह है कि तौरात में हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के तशरीफ़ लाने और क़ुरआन मजीद के नाज़िल होने की जो भविष्यवाणियाँ थीं उनसे उनका सच्चा होना ज़ाहिर हो गया, सो तौरात का मानने वाला तो क़ुरआन और क़ुरआन वाले पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को झुठला ही नहीं सकता, वरना तौरात को झुठलाना लाज़िम आयेगा।

एक शुब्हा और उसका जवाब

और अगर किसी को यह शुब्हा हो कि जब वे हक़ को हक़ जानते थे तो फिर उनको मोमिन कहना चाहिये, काफ़िर कैसे कहा गया?

तो इसका जवाब यह है कि ईमान सिर्फ़ जानने का नाम नहीं, बल्कि मानने का नाम है। वरना यूँ तो शैतान सब से ज़्यादा हक़ को हक़ जानता है, मगर जानने के बावजूद इनकार करने की वजह से

और भी ज़्यादा कुफ़्र में बढ़ गया। इसी लिये अगली आयत में उनके कुफ़्र की वजह उनका इनाद (दुश्मनी, ज़िद और बैर) बतलाया गया है। चुनाँचे इरशाद होता है:

بِئْسَمَا اشْتَرَوْا بِهٖٓ اَنْفُسَهُمْ اَنْ يَّكْفُرُوْا بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ بَغْيًا اَنْ يُّنَزِّلَ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ عَلٰى مَنْ يَّشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖ ۚ فَبَآءُوْ بِغَضَبٍ عَلٰى غَضَبٍ ؕ وَلِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابٌ مُّهِيْنٌ ۝

बिअ्-समश्तरौ बिही अन्फ़ु-सहुम् अंय्यक्फ़ुरू बिमा अन्ज़लल्लाहु बग़्यन् अंय्युनज़्ज़िलल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही अ़ला मंय्यशा-उ मिन् अ़िबादिही फ़-बाऊ बि-ग़-ज़बिन् अ़ला ग़-ज़ब्, व लिल्-काफ़िरी-न अ़ज़ाबुम्--मुहीन (90)	बुरी चीज़ है वह जिसके बदले बेचा उन्होंने अपने आपको कि इनकारी हुए उस चीज़ के जो उतारी अल्लाह ने, इस ज़िद पर कि उतारे अल्लाह अपने फ़ज़्ल से जिस पर चाहे अपने बन्दों में से, सो कमा लाये ग़ुस्से पर ग़ुस्सा, और काफ़िरों के वास्ते अ़ज़ाब है ज़िल्लत का। (90)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

वह हालत (बहुत ही) बुरी है जिसको इख़्तियार करके (वे अपने गुमान में) अपनी जानों को (आख़िरत की सज़ा से) छुड़ाना चाहते हैं (और वह हालत) यह (है) कि कुफ़्र (इनकार) करते हैं ऐसी चीज़ का जो हक़ तआ़ला ने (एक सच्चे पैग़म्बर पर) नाज़िल फ़रमाई (यानी क़ुरआन, और वह इनकार भी) सिर्फ़ (इसी) ज़िद पर कि अल्लाह तआ़ला अपने फ़ज़्ल से जिस बन्दे पर उसको मन्ज़ूर हो (यानी मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर, क्यों) नाज़िल फ़रमाये। सो (इस कुफ़्र से ऊपर इस हसद से) वे लोग ग़ज़ब पर ग़ज़ब के हक़दार हो गये, और (आख़िरत में) इन कुफ़्र करने वालों को ऐसी सज़ा होगी जिसमें (तकलीफ़ के अ़लावा) ज़िल्लत (भी) है।

फ़ायदाः एक ग़ज़ब कुफ़्र पर दूसरा हसद (जलने) पर, यूँ ग़ज़ब पर ग़ज़ब फ़रमाया। अ़ज़ाब के साथ ज़िल्लत (रुस्वाई) की क़ैद से बताना यह मक़सूद है कि यह अ़ज़ाब काफ़िरों के साथ ख़ास है, क्योंकि गुनाहगार मोमिन को अ़ज़ाब उसको पाक करने के लिये होगा, रुस्वाई के लिये नहीं। आगे की आयत में जो उनका क़ौल नक़ल किया है उससे उनका कुफ़्र साबित होता है, और हसद (जलना) भी खुलकर सामने आता है।

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ اٰمِنُوْا بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ قَالُوْا نُؤْمِنُ بِمَآ اُنْزِلَ عَلَيْنَا وَيَكْفُرُوْنَ بِمَا وَرَآءَهٗ ۚ وَهُوَ الْحَقُّ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَهُمْ ؕ قُلْ فَلِمَ تَقْتُلُوْنَ اَنْۢبِيَآءَ اللّٰهِ مِنْ قَبْلُ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ۝

व इज़ा क़ी-ल लहुम् आमिनू बिमा अन्ज़लल्लाहु क़ालू नुअ्मिनु बिमा उन्ज़ि-ल अ़लैना व यक्फ़ुरू-न बिमा वरा-अहू, व हुवल्-हक़्क़ु मुसद्दिक़ल्-लिमा म-अ़हुम, क़ुल् फ़लि-म तक़्तुलू-न अम्बिया-अल्लाहि मिन् क़ब्लु इन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन (91)	और जब कहा जाता है उनसे मानो उसको जो अल्लाह ने भेजा है तो कहते हैं हम मानते हैं जो उतरा है हम पर, और नहीं मानते उसको जो उसके अ़लावा है, हालाँकि वह किताब सच्ची है जो तस्दीक़ करती है उस किताब की जो उनके पास है। कह दो फिर क्यों क़त्ल करते रहे हो अल्लाह के पैग़म्बरों को पहले से अगर तुम ईमान रखते थे। (91)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जब उन (यहूदियों) से कहा जाता है कि तुम ईमान लाओ उन (तमाम) किताबों पर जो अल्लाह तआ़ला ने (अनेक पैग़म्बरों पर) नाज़िल फ़रमाई हैं (और उन तमाम किताबों में क़ुरआन भी है), तो (जवाब में) कहते हैं कि हम (तो सिर्फ़) उस (ही) किताब पर ईमान लाएँगे जो हम (लोगों) पर (हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम के ज़रिये) नाज़िल की गई है (यानी तौरात), और (बाक़ी) जितनी (किताबें) उसके अ़लावा हैं (जैसे इन्जील और क़ुरआन) उन (सब) का इनकार वे करते हैं, हालाँकि वे (तौरात के सिवा और किताबें) भी (अपने आप में) हक़ (और सच्ची) हैं, और (ख़ुद हक़ होने के अ़लावा) तस्दीक़ करने वाली भी हैं उस (किताब) की जो उनके पास है (यानी तौरात की)। आप (यह भी) कहिए कि (अच्छा तो) फिर क्यों क़त्ल किया करते थे अल्लाह के पैग़म्बरों को इससे पहले के ज़माने में, अगर तुम (तौरात पर) ईमान रखने वाले थे।

फ़ायदाः यहूद ने जो यह कहा कि "हम सिर्फ़ तौरात पर ईमान लायेंगे दूसरी किताबों पर ईमान न लायेंगे।" तो उनका यह क़ौल खुला कुफ़्र है और इसके साथ जो यह कहा कि (तौरात) "जो हम पर नाज़िल की गई है" इससे हसद (जलन) टपकता है, इसका मतलब साफ़ यह है कि और किताबें चूँकि हम पर नाज़िल नहीं की गईं इसलिये हम उन पर ईमान नहीं लायेंगे। अल्लाह तआ़ला ने उनके इस क़ौल को तीन तरह रद्द फ़रमाया है:

अव्वल यह कि जब और किताबों का हक़ और सच्चा होना भी दलीले क़तई से साबित है तो फिर इस इनकार की क्या वजह है? हाँ अगर उस दलील में कोई कलाम था तो उसको पेश करके अपनी तसल्ली कर लेते, सिर्फ़ इनकार की आख़िर क्या वजह?

दूसरे और किताबें जैसे क़ुरआन मजीद जो तौरात का तस्दीक़ करने वाला है तो इस इनकार से तो ख़ुद तौरात को झुठलाना और उसका इनकार लाज़िम आता है।

तीसरे यह कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को क़त्ल करना तमाम आसमानी किताबों की रू से कुफ़्र है, फिर तुम्हारे गिरोह के लोगों ने जो कई नबियों को क़त्ल किया, जिनकी तालीम भी तौरात ही के अहकाम के साथ ख़ास थी, और तुम उन क़ातिलों को अपना पेशवा और पैरवी के लायक़ समझते हो,

तो डायरेक्ट तौर पर तौरात के साथ कुफ़्र करते हो, इससे तो तुम्हारा तौरात पर ईमान रखने का दावा भी ग़लत ठहरता है। ग़र्ज़ कि किसी भी पहलू से तुम्हारा क़ौल व फ़ेल सही और दुरुस्त नहीं।

आगे कुछ और वुजूहात और दलीलों से उन यहूदियों का रद्द फ़रमाया गया है। चुनाँचे इरशाद होता है:

وَلَقَدْ جَآءَكُمْ مُّوسٰى بِالْبَيِّنٰتِ ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِنْۢ بَعْدِهٖ وَاَنْتُمْ ظٰلِمُوْنَ ۝

व लक़द् जाअकुम् मूसा बिल्-बय्यिनाति सुम्मत्तख़ज़्तुमुल्-अिज्-ल मिम्-बअ्दिही व अन्तुम् ज़ालिमून (92)	**और आ चुका तुम्हारे पास मूसा स्पष्ट और खुले मोजिज़े लेकर, फिर बना लिया तुमने बछड़ा उसके जाने के बाद, और तुम ज़ालिम हो। (92)**

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (हज़रत) मूसा (अ़लैहिस्सलाम) तुम लोगों के पास (तौहीद व रिसालत की) साफ़-साफ़ दलीलें लाये (मगर) इस पर भी तुम लोगों ने गौसाला (गाय के बछड़े) को (माबूद) बना लिया, मूसा (अ़लैहिस्सलाम) के (तूर पर जाने के) बाद, और तुम (इस तजवीज़ में) सितम ढहा रहे थे।

फ़ायदाः 'बय्यिनात' से वो दलीलें मुराद हैं जो इस क़िस्से से पहले जबकि तौरात न मिली थी मूसा अ़लैहिस्सलाम के सच्चा नबी होने पर क़ायम हो चुकी थीं, जैसे अ़सा (लाठी) और यदे-बैज़ा (चमकता हुआ हाथ), दरिया का फटना वग़ैरह।

रद्द करने की तक़रीर का हासिल ज़ाहिर है कि तुम दावा तो ईमान का करते हो और खुले शिर्क में मुब्तला हो, जिससे मूसा अ़लैहिस्सलाम बल्कि ख़ुदा तआ़ला की खुली तक्ज़ीब (झुठलाना) भी लाज़िम आती है। गौसाला (गाय के बछड़े) को माबूद बनाने का मामला अगरचे इन यहूदियों के साथ पेश नहीं आया था जो हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में क़ुरआन के नाज़िल होने के वक़्त मौजूद थे, मगर चूँकि ये लोग अपने बाप-दादा (पूर्वजों) के हामी और तरफ़दार रहते थे, इसलिये उनके साथ ये भी रद्द में शामिल हैं। और इसी से यह बात भी निकलती है कि जिनके बड़ों ने मूसा अ़लैहिस्सलाम को झुठलाकर कुफ़्र किया वे अगर मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इनकार के मुजरिम हों तो कोई ताज्जुब की बात नहीं।

وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّوْرَ ؕ خُذُوْا مَآ اٰتَيْنٰكُمْ بِقُوَّةٍ وَّاسْمَعُوْا ؕ قَالُوْا سَمِعْنَا وَعَصَيْنَا ۗ وَاُشْرِبُوْا فِىْ قُلُوْبِهِمُ الْعِجْلَ بِكُفْرِهِمْ ؕ قُلْ بِئْسَمَا يَاْمُرُكُمْ بِهٖٓ اِيْمَانُكُمْ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ۝

व इज़् अख़ज़्ना मीसाक़कुम् व र-फ़अ्ना फ़ौ-क़कुमुत्-तू-र, ख़ुज़ू मा	**और जब हमने लिया क़रार तुम्हारा और ऊँचा किया तुम्हारे ऊपर तूर पहाड़ को,**

आतैनाकुम् बिक़ुव्वतिंव्-वस्मअ़ू, क़ालू समिअ़्ना व अ़सैना व उश्रिबू फ़ी क़ुलूबिहिमुल्-अिज्-ल बिकुफ़्रिहिम, क़ुल् बिअ्समा यअ्मुरुकुम् बिही ईमानुकुम् इन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन (93)	पकड़ो जो हमने तुमको दिया ज़ोर से और सुनो, बोले सुना हमने और न माना, और पिलाई गई उनके दिलों में मुहब्बत उसी बछड़े की उनके कुफ़्र के सबब, कह दे कि बुरी बातें सिखाता है तुमको तुम्हारा ईमान अगर तुम ईमान वाले हो। (93)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह ज़माना याद करो) जब हमने तुम्हारा क़ौल व क़रार लिया था और (उस क़ौल व क़रार लेने के लिये) तूर को तुम्हारे (सरों के) ऊपर ला खड़ा किया था (और उस वक़्त यह हुक्म दिया था कि) लो जो कुछ (अहकाम) हम तुमको देते हैं हिम्मत (और पुख़्तगी) के साथ ले लो और (उन अहकाम को दिल से) सुनो। (उस वक़्त) उन्होंने (डर के मारे ज़बान से तो) कह दिया कि हमने (क़ुबूल कर लिया और) सुन लिया और (चूँकि वास्तव में यह बात दिल से न थी, इसलिये गोया ज़बाने हाल से यूँ भी कह रहे थे कि) हमसे अ़मल न होगा, और (वजह उनकी इस (बद्‌दिली की यह थी कि) उनके दिलों (की रग-रग) में वही गौसाला (गाय का बछड़ा) जम गया था, उनके (पहले) कुफ़्र की वजह से (जबकि दरिया-ए-शोर से उतर कर उन्होंने एक बुत परस्त क़ौम को देखकर दरख़्वास्त की थी कि हमारे लिये कोई ऐसा मुजस्सम यानी जिस्म वाला माबूद तजवीज़ कर दिया जाये)। आप फ़रमा दीजिए कि (देख लिया तुमने अपने गुमान वाले ईमान के कामों को, सो) ये आमाल बहुत बुरे हैं जिनकी तालीम तुम्हारा ईमान तुमको कर रहा है, अगर तुम (अपने गुमान के मुताबिक़ अब भी) ईमान वाले हो (यानी यह ईमान नहीं है)।

फ़ायदाः इस आयत में जो असबाब (कारण) और उन कारणों को पैदा करने वाली चीज़ें ज़िक्र की गयी हैं उनकी तरतीब का हासिल यह है कि दरिया-ए-शोर (नील दरिया, जिसमें फ़िरऔन और उसकी क़ौम ग़र्क़ हुई) से पार होकर उनसे एक कुफ़्र की बात निकली, अगरचे मूसा अ़लैहिस्सलाम की डाँट-डपट से तौबा कर ली लेकिन तौबा के दर्जे भी अलग-अलग होते हैं, आला दर्जे की तौबा न होने के सबब उसकी अंधेरी और सियाही दिल में कुछ बाक़ी रह गई थी वह परवान चढ़कर गौसाला परस्ती (बछड़े को पूजने) का सबब बन गई। फिर उसकी तौबा में बाज़ों को क़त्ल होना पड़ा और बाज़ों को ग़ालिबन बिना क़त्ल के माफ़ी हो गई हो, जैसा कि कुछ मुफ़स्सिरीन ने ज़िक्र भी किया है, उनकी तौबा भी कुछ कमज़ोर हुई होगी, और जो गौसाला परस्ती से महफ़ूज़ रहे थे उनको भी गौसाला पूजने वालों से जिस क़द्र नफ़रत वाजिब थी उसमें कोताही होने से एक तरह का असर उस शिर्क की नाफ़रमानी का उनके दिल में बाक़ी था। बहरहाल तौबा की कमज़ोरी या कुफ़्र से नफ़रत होने के आसार बाक़ी रहने ने दिलों में दीन से सुस्ती पैदा कर दी जिससे क़ौल व क़रार और अ़हद लेने में तूर पहाड़ को उन पर लटकाने की नौबत आई।

قُلْ إِنْ كَانَتْ لَكُمُ الدَّارُ الْآخِرَةُ عِنْدَ اللَّهِ خَالِصَةً مِنْ دُونِ النَّاسِ فَتَمَنَّوُا الْمَوْتَ إِنْ كُنْتُمْ صَادِقِينَ ۝ وَلَنْ يَتَمَنَّوْهُ أَبَدًا بِمَا قَدَّمَتْ أَيْدِيهِمْ ۗ وَاللَّهُ عَلِيمٌ بِالظَّالِمِينَ ۝

क़ुल् इन् कानत् लकुमुद्-दारुल्-आख़िरतु अिन्दल्लाहि ख़ालि-सतम् मिन् दूनिन्नासि फ़-तमन्नवुल्मौ-त इन् कुन्तुम् सादिक़ीन (94) व लंय्य-तमन्नौहु अ-बदम् बिमा क़द्द-मत् ऐदीहिम, वल्लाहु अ़लीमुम् बिज़्ज़ालिमीन (95)	कह दे कि अगर है तुम्हारे वास्ते आख़िरत का घर अल्लाह के यहाँ तन्हा सिवा और लोगों के (यानी सिर्फ़ तुम्हें ही जन्नत मिलेगी किसी और को नहीं) तो तुम मरने की आरज़ू करो अगर तुम सच कहते हो। (94) और हरगिज़ आरज़ू न करेंगे मौत की कभी भी उन गुनाहों के सबब जो कि भेज चुके हैं उनके हाथ, और अल्लाह ख़ूब जानता है गुनाहगारों को। (95)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(कुछ यहूदी यह दावा करते थे कि आख़िरत की नेमतें ख़ालिस हमारा ही हक़ हैं, अल्लाह तआ़ला ने इस दावे को झूठा साबित करने के लिये फ़रमाया कि ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) आप (उन लोगों से) कह दीजिए कि अगर (तुम्हारे कहने के मुताबिक़) आ़लमे आख़िरत सिर्फ़ तुम्हारे लिए ही नफ़ा देने वाला है अल्लाह के पास किसी दूसरे की शिर्कत के बग़ैर, तो तुम (इसकी तस्दीक़ के लिए ज़रा) मौत की तमन्ना कर (के दिखला) दो, अगर तुम (इस दावे में) सच्चे हो। और (हम साथ ही यह भी कह देते हैं कि) ये लोग हरगिज़ कभी उस (मौत) की तमन्ना न करेंगे उन (कुफ़्रिया) आमाल (की सज़ा के डर) की वजह से जो अपने हाथों समेटते हैं, और हक़ तआ़ला को ख़ूब इत्तिला है इन ज़ालिमों (के हाल) की (जब मुक़द्दमे की तारीख़ आयेगी जुर्म की क़रारदाद सुनाकर सज़ा का हुक्म कर दिया जायेगा)।

फ़ायदाः क़ुरआन की कुछ और आयतों से भी उनके इस दावे का मफ़्हूम निकलता है जैसा किः

قَالُوا لَنْ تَمَسَّنَا النَّارُ إِلَّا أَيَّامًا مَّعْدُودَةً. (سورة ٢: آيت ٨٠) وَقَالُوا لَنْ يَدْخُلَ الْجَنَّةَ إِلَّا مَنْ كَانَ هُودًا أَوْ نَصٰرٰى. (سورة ٢: آيت ١١١) وَقَالَتِ الْيَهُودُ وَالنَّصٰرٰى نَحْنُ أَبْنٰٓؤُا اللّٰهِ وَأَحِبّٰٓؤُهُ. (سورة ٥: آيت ١٨)

यानी सूरः नम्बर 2 की आयत 80, सूरः नम्बर 2 की आयत 111, सूरः नम्बर 5 की आयत 18 वग़ैरह से।

इन सब दावों का हासिल यह मालूम होता है कि हम हक़ दीन पर हैं लिहाज़ा आख़िरत में हम को तो ज़रूर निजात मिलेगी, हम में जो तौबा करने वाले या रहमत के हक़दार हैं उनको तो शुरू ही से जन्नत में दाख़िला मिल जायेगा और जो गुनाहगार हैं वे चन्द दिन अ़ज़ाब भुगत कर निजात पा जायेंगे, और जो फ़रमाँबरदार हैं वे बेटों, प्यारों, दोस्तों और ख़ास बन्दों के जैसे हैं।

कुछ शीर्षकों के बुरा होने को अगर नज़र-अन्दाज़ कर दें तो ये दावे दीने हक़ पर क़ायम होने की सूरत में अपने आप में तो दुरुस्त व सच्चे हैं लेकिन चूँकि वे लोग अपने दीन के मन्सूख़ (निरस्त और रद्द) हो जाने की वजह से हक़ पर न रहे थे, इसलिये अल्लाह तआला ने जगह-जगह विभिन्न उनवानों और तरीक़ों से उनके झूठा होने को बयान फ़रमाया। यहाँ एक ख़ास तरीक़ा ज़िक्र किया गया कि अगर आम आदत के मुताबिक़ बहस और दलीलों से फ़ैसला नहीं करते तो आओ आदत से ऊपर एक तरीक़े यानी मोजिज़े के ज़रिये, इसमें न ज़्यादा इल्म व समझ की ज़रूरत है न बहुत गहरी नज़र दरकार है, सिर्फ़ ज़बान हिलाने की ज़रूरत है, मगर हम पेशीनगोई करते (यानी पहले ही बता देते) हैं कि तुम ज़बान से हरगिज़ यह नहीं कह सकते कि "हम मौत की तमन्ना करते हैं।"

इस पेशीनगोई (भविष्यवाणी) के बाद हम कहते हैं कि अगर तुम अपने दावों में सच्चे हो तो यह कलिमा कह दो, न कहा तो फिर तुम्हारा झूठा होना साबित हो जायेगा।

चूँकि अपना बातिल (ग़ैर-हक़, झूठ) और कुफ़्र पर होना और जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और मोमिनों का हक़ पर होना उन पर ख़ूब स्पष्ट व रोशन था इसलिये या तो ऐसी हैबत (रौब और घबराहट) छाई कि ज़बान ही न उठी, या वे डर गये कि तुमने यह कलिमा मुँह से निकाला और मौत ने आ दबोचा, और फिर सीधे जहन्नम रसीद हुए। वरना उनको हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से जो अदावत व दुश्मनी थी उसको देखते हुए तो उनको यह सुनकर जोश में आ जाना चाहिये था, और ये कलिमात ज़रूर कह देने चाहियें थे।

असल में इस्लाम की हक़्क़ानियत (सच्चा और हक़ होने) के सुबूत के लिये यह वाक़िआ बहुत काफ़ी है। यहाँ दो बातें और क़ाबिले ज़िक्र हैं:

अव्वल तो यह कि यह इस्तिदलाल (दलील पकड़ना) उन यहूदियों के साथ था जो नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने में मौजूद थे और जिन्होंने आपको नबी पहचानने के बाद दुश्मनी व अदावत की बिना पर आपका इनकार किया। हर ज़माने के यहूद से यह ख़िताब नहीं।

दूसरे यह शुब्हा भी नहीं होना चाहिये कि तमन्ना करना दिल और ज़बान दोनों से होता है, मुम्किन है उन्होंने दिल से तमन्ना की हो, अव्वल तो यह इसलिये सही नहीं कि अल्लाह तआला का फ़रमान 'व लंय्य-तमन्नौहु' (कि वे हरगिज़ तमन्ना न करेंगे) इसकी साफ़ तरदीद कर रहा है। दूसरे अगर वे दिल से तमन्ना करते तो ज़बान से ज़रूर उसका इज़हार करते, क्योंकि इसमें तो उनकी जीत थी और नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को झुठलाने का अच्छा मौक़ा था।

और यह शुब्हा भी नहीं करना चाहिये कि उन्होंने तमन्ना की हो मगर उसकी शोहरत न हुई हो, यह इसलिये सही नहीं कि इस्लाम के हमदर्द व मददगारों की तादाद के मुक़ाबले में दुश्मनों, बुरा चाहने वालों और मुख़ालिफ़ों की तादाद हमेशा ज़्यादा रही, अगर ऐसी बात हुई होती तो वे ख़ुद इसको ख़ूब-ख़ूब उछालते कि लो देखो तुमने जो हक़ व सदाक़त का मेयार (मानक) मुक़र्रर किया था उस पर भी हम पूरे उतरे।

وَلَتَجِدَنَّهُمْ أَحْرَصَ النَّاسِ عَلَىٰ حَيَاةٍ وَمِنَ الَّذِينَ أَشْرَكُوا يَوَدُّ أَحَدُهُمْ لَوْ يُعَمَّرُ
أَلْفَ سَنَةٍ وَمَا هُوَ بِمُزَحْزِحِهِ مِنَ الْعَذَابِ أَنْ يُعَمَّرَ وَاللَّهُ بَصِيرٌ بِمَا يَعْمَلُونَ ﴿٩٦﴾

व ल-तजिदन्नहुम् अह्रसन्नासि अ़ला हयातिन्, व मिनल्लज़ी-न अश्रकू यवद्दु अ-हदुहुम् लौ युअ़म्मरु अल्-फ़ स-नतिन्, व मा हु-व बिमुज़ह्ज़िहिही मिनल्-अ़ज़ाबि अंय्युअ़म्म-र, वल्लाहु बसीरुम् बिमा यअ़्मलून (96) ✿	और तू देखेगा उनको सब लोगों से ज़्यादा ज़िन्दगी का लालची और ज़्यादा लालची (इच्छुक) मुश्रिकों से भी, चाहता है एक एक उनमें का कि उम्र पाये हज़ार बरस, और नहीं उसको बचाने वाला अ़ज़ाब से इस क़द्र जीना, और अल्लाह देखता है जो कुछ वे करते हैं। (96) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वे लोग मौत की तमन्ना क्या ख़ाक करते) आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तो) उनको (दुनियावी) ज़िन्दगी के (आ़म) लालची आदमियों से भी बढ़कर पाएँगे, और (औरों का तो क्या ज़िक्र हैरत तो यह है कि कुछ) मुश्रिकों से भी (बढ़कर आप उनको ज़िन्दगी का लालची देखेंगे, और उनकी यह कैफ़ियत है कि) उनका एक-एक (शख़्स) इस हवस में है कि उसकी उम्र हज़ार साल की हो जाए और (भला फ़र्ज़ करो कि अगर इतनी उम्र हो भी गई तो क्या), यह चीज़ अ़ज़ाब से तो नहीं बचा सकती कि (किसी की बड़ी) उम्र हो जाए और हक़ तआ़ला के सब सामने हैं उनके (बुरे) आमाल (जिस पर उनको अ़ज़ाब होने वाला है)।

फ़ायदाः इसमें हैरत व ताज्जुब की वजह यह है कि अ़रब के मुश्रिक लोग तो आख़िरत के इनकारी थे, उनकी बहार और ऐश तो जो कुछ है दुनिया ही है, इसलिये वे अगर लम्बी उम्र की तमन्ना करें तो कुछ अ़जीब नहीं, मगर यहूद तो आख़िरत के क़ायल और अपने गुमान के मुताबिक़ आख़िरत की नेमतों का अपने आप ही को हक़दार व पात्र कहते थे, फिर भी वे दुनिया में रहने की तमन्ना करें? यह है हैरत व ताज्जुब की बात।

पस आख़िरत का यक़ीन होने के बावजूद लम्बी उम्र की तमन्ना करना इस बात की दलील है कि आख़िरत की नेमतों का अपने आपको हक़दार समझने का दावा सिर्फ़ दावा ही है, हक़ीक़त जो है उसको ये भी ख़ूब जानते हैं कि वहाँ पहुँचकर जहन्नम ही ठिकाना बनेगा, इसलिये जब तक बचे रहें तब तक ही सही।

قُلْ مَنْ كَانَ عَدُوًّا لِّجِبْرِيْلَ فَاِنَّهٗ نَزَّلَهٗ عَلٰى قَلْبِكَ بِاِذْنِ اللّٰهِ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ وَهُدًى وَّبُشْرٰى لِلْمُؤْمِنِيْنَ ۝ مَنْ كَانَ عَدُوًّا لِّلّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَرُسُلِهٖ وَجِبْرِيْلَ وَمِيْكٰلَ فَاِنَّ اللّٰهَ عَدُوٌّ لِّلْكٰفِرِيْنَ ۝

क़ुल् मन् का-न अ़दुव्वल्-लिजिब्री-ल फ़-इन्नहू नज़्ज़-लहू अ़ला क़ल्बि-क बि-इज़्निल्लाहि मुसद्दिक़ल्लिमा बै-न यदैहि व हुदंव्-व बुश्रा लिल्-मुअ्मिनीन (97) मन् का-न अ़दुव्वल्-लिल्लाहि व मलाइ-कतिही व रुसुलिही व जिब्री-ल व मीका-ल फ़-इन्नल्ला-ह अ़दुव्वुल्-लिल्काफ़िरीन (98)	तू कह दे जो कोई होवे दुश्मन जिब्रील का, सो उसने तो उतारा है यह कलाम तेरे दिल पर अल्लाह के हुक्म से कि सच्चा बताने वाला है उस कलाम को जो इसके पहले है, और राह दिखता है और ख़ुशख़बरी सुनाता है ईमान वालों को। (97) कोई होवे दुश्मन अल्लाह का और उसके फ़रिश्तों का और उसके पैग़म्बरों का और जिब्रील और मीकाईल का तो अल्लाह दुश्मन है उन काफ़िरों का। (98)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(कुछ यहूदियों ने हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से यह सुनकर कि जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम वही लाते हैं कहा कि उनसे तो हमारी दुश्मनी है, हमारी क़ौम पर हौलनाक वाक़िआ़त और मुश्किल अहकाम उन्हीं के ज़रिये आते रहे हैं। मीकाईल अ़लैहिस्सलाम अच्छे हैं कि बारिश और रहमत उनके संबन्धित है, अगर वह वही लाया करते तो हम मान लेते। इस पर हक़ तआ़ला रद्द फ़रमाते हैं कि ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) आप (इनसे) यह कहिए कि जो शख़्स जिब्राईल से दुश्मनी रखे (वह जाने, लेकिन इस बात को क़ुरआन के न मानने में क्या दख़ल है? क्योंकि इसमें तो वह सिर्फ़ एक पैग़ाम के पहुँचाने वाले हैं), सो (एक दूत और नुमाईन्दे के तौर पर) उन्होंने यह क़ुरआन आपके दिल तक पहुँचा दिया है अल्लाह के हुक्म से (तो लाने वाले की ख़ुसूसियत क्यों देखी जाती है? अलबत्ता ख़ुद क़ुरआन को देखो कि कैसा है सो), उसकी (ख़ुद) यह हालत है कि तस्दीक़ कर रहा है अपने से पहले वाली (आसमानी) किताबों की, और रहनुमाई कर रहा है (ज़रूरी मस्लेहतों की) और ख़ुशख़बरी सुना रहा है ईमान वालों को (और आसमानी किताबों की यही शान होती है। पस क़ुरआन हर हाल में आसमानी किताब और पैरवी के क़ाबिल होना ठहरा, फिर जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम की दुश्मनी से इसको न मानना कोरी बेवक़ूफ़ी है।

अब रहा ख़ुद मसला हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम से दुश्मनी का सो इसका फ़ैसला यह है कि हक़ तआ़ला के नज़दीक ख़ुद अल्लाह तआ़ला से दुश्मनी रखना या उसके दूसरे फ़रिश्तों से या उसके रसूलों से या ख़ुद मीकाईल अ़लैहिस्सलाम से जिनकी दोस्ती का दम भरते हैं, इन सबसे दुश्मनी रखना और जिब्राईल से दुश्मनी रखना यह सब बराबर शुमार किये जाते हैं, और इन सब दुश्मनियों का क़ानून यह है कि) जो (कोई) शख़्स हक़ तआ़ला का दुश्मन हो (तो) और फ़रिश्तों का हो (तो) और पैग़म्बरों का हो (तो) और जिब्राईल का (हो तो) और मीकाईल का (हो) तो, (इन सब का वबाल यह है कि) अल्लाह तआ़ला दुश्मन है ऐसे काफ़िरों का।

وَلَقَدْ اَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ اٰيٰتٍۭ بَيِّنٰتٍ ۚ وَمَا يَكْفُرُ بِهَآ اِلَّا الْفٰسِقُوْنَ ۝

व लक़द् अन्ज़ल्ना इलै-क आयातिम् -बय्यिनातिन् व मा यक्फ़ुरु बिहा इल्लल्-फ़ासिक़ून (99)	और हमने उतारीं तेरी तरफ़ आयतें रोशन, और इनकार न करेंगे उनका मगर वही जो नाफ़रमान हैं। (99)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (कुछ यहूदियों ने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से कहा था कि आप पर कोई ऐसी स्पष्ट दलील नाज़िल न हुई जिसको हम भी जानते पहचानते। इसके जवाब में कहा जाता है कि वह तो एक ही स्पष्ट दलील को लिये फिरते हैं) हमने तो आपके पास बहुत-सी दलीलें खुली नाज़िल की हैं (जिनको वे भी ख़ूब जानते पहचानते हैं, सो उनका इनकार न जानने की बिना पर नहीं बल्कि यह इनकार नाफ़रमानी और सरकशी की आ़दत की वजह से है) और (क़ायदा कुल्लिया है कि) कोई इनकार नहीं किया करता (ऐसी दलीलों का) मगर सिर्फ़ वही लोग जो नाफ़रमानी के आ़दी हैं।

اَوَكُلَّمَا عٰهَدُوْا عَهْدًا نَّبَذَهٗ فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ ۭ بَلْ اَكْثَرُهُمْ لَا يُؤْمِنُوْنَ ۝

अ-व कुल्लमा आ़-हदू अ़ह्दन् न-ब-ज़हू फ़रीक़ुम् मिन्हुम, बल् अक्सरुहुम् ला युअ्मिनून (100)	क्या जब कभी बाँधेंगे कोई क़रार तो फेंक देगी उसको एक जमाअ़त उनमें से, बल्कि उनमें अक्सर यक़ीन नहीं करते। (100)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(कुछ यहूदियों को जब वह अ़हद याद दिलाया गया जो उनसे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ईमान लाने के बारे में तौरात में लिया गया था तो उन्होंने ख़ुद अ़हद लेने ही से साफ़ इनकार कर दिया। इससे मुताल्लिक इरशाद होता है कि) क्या (इस अ़हद लेने से उनको इनकार है) और (उनकी तो यह हालत है कि उन्होंने अपने माने हुए अ़हदों को भी कभी पूरा नहीं किया, बल्कि) जब कभी भी उन लोगों ने (दीन के मुताल्लिक) कोई अ़हद किया होगा (ज़रूर) उसको उनमें से किसी न किसी फ़रीक़ ने नज़र-अन्दाज़ कर दिया होगा, बल्कि उन (अ़हद की तामील न करने वालों) में ज़्यादा तो ऐसे ही निकलेंगे जो (मेरे उस अ़हद का) यक़ीन ही नहीं रखते (सो तामील न करना तो बद-अ़मली और गुनाह था ही, यह यक़ीन न करना उससे बढ़कर कुफ़्र है)।

फ़ायदाः और एक जमाअ़त को ख़ास करने की वजह यह है कि बाज़े उनमें के उन अ़हदों (क़ौल व क़रार) को पूरा भी करते थे, यहाँ तक कि आख़िर में जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम

पर भी ईमान ले आये।

وَلَمَّا جَآءَهُمْ رَسُولٌ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ نَبَذَ
فَرِيْقٌ مِّنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ ۙ كِتٰبَ اللّٰهِ وَرَآءَ ظُهُوْرِهِمْ كَاَنَّهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ۝

व लम्मा जाअहुम् रसूलुम् मिन् अिन्दिल्लाहि मुसद्दिकुल्-लिमा म-अहुम् न-ब-ज फ़रीकुम् मिनल्लज़ी-न ऊतुल्-किता-ब किताबल्लाहि वरा-अ ज़ुहूरिहिम् क-अन्नहुम् ला यअ्लमून-(101)	और जब पहुँचा उनके पास रसूल अल्लाह की तरफ़ से, तस्दीक़ करने वाला उस किताब की जो उनके पास है, तो फेंक दिया एक जमाअ़त ने अहले किताब में से अल्लाह की किताब को अपनी पीठ के पीछे, गोया कि वे जानते ही नहीं। (101)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(इस आयत में एक ख़ास अ़हद तोड़ने का ज़िक्र फ़रमाते हैं जिसमें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ईमान न लाने का कलाम था, इरशाद होता है) और जब उनके पास एक (अ़ज़ीमुश्शान) पैग़म्बर आए अल्लाह की तरफ़ से, जो (रसूल होने के साथ) तस्दीक़ भी कर रहे हैं उस किताब की जो उन लोगों के पास है (यानी तौरात की, क्योंकि उसमें आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत की ख़बर है, तो इस हालत में आप पर ईमान लाना तौरात पर अ़मल था, जिसको वे भी अल्लाह की किताब जानते हैं, मगर बावजूद इसके भी) इन अहले किताब में के एक फ़रीक़ ने ख़ुद उस अल्लाह की किताब ही को पीठ पीछे डाल दिया है, जैसे उनको (उसके मज़मून का या अल्लाह की किताब होने का) गोया बिल्कुल इल्म ही नहीं।

وَاتَّبَعُوْا مَا تَتْلُوا الشَّيٰطِيْنُ عَلٰى مُلْكِ سُلَيْمٰنَ ۚ وَمَا كَفَرَ سُلَيْمٰنُ
وَلٰكِنَّ الشَّيٰطِيْنَ كَفَرُوْا يُعَلِّمُوْنَ النَّاسَ السِّحْرَ ۗ وَمَآ اُنْزِلَ عَلَى الْمَلَكَيْنِ بِبَابِلَ هَارُوْتَ وَمَارُوْتَ ۗ
وَمَا يُعَلِّمٰنِ مِنْ اَحَدٍ حَتّٰى يَقُوْلَآ اِنَّمَا نَحْنُ فِتْنَةٌ فَلَا تَكْفُرْ ۗ فَيَتَعَلَّمُوْنَ مِنْهُمَا مَا يُفَرِّقُوْنَ بِهٖ بَيْنَ
الْمَرْءِ وَزَوْجِهٖ ۗ وَمَا هُمْ بِضَآرِّيْنَ بِهٖ مِنْ اَحَدٍ اِلَّا بِاِذْنِ اللّٰهِ ۗ وَيَتَعَلَّمُوْنَ مَا يَضُرُّهُمْ وَلَا يَنْفَعُهُمْ ۗ
وَلَقَدْ عَلِمُوْا لَمَنِ اشْتَرٰىهُ مَا لَهٗ فِى الْاٰخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ ۗ وَلَبِئْسَ مَا شَرَوْا بِهٖٓ اَنْفُسَهُمْ ۗ لَوْ كَانُوْا
يَعْلَمُوْنَ ۝ وَلَوْ اَنَّهُمْ اٰمَنُوْا وَاتَّقَوْا لَمَثُوْبَةٌ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ خَيْرٌ ۗ لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ۝

ع 12 12

वत्त-बअ़ू मा तत्लुश्-शयातीनु अ़ला मुल्कि सुलैमा-न व मा क-फ़-र सुलैमानु व लाकिन्नश्शयाती-न क-फ़रू युअ़ल्लिमूनन्नासस्सिह्-र, व मा उन्ज़ि-ल अ़लल् म-लकैनि बिबाबि-ल हारू-त व मारूत, व मा युअ़ल्लिमानि मिन् अ-हदिन् हत्ता यक़ूला इन्नमा नह्नु फ़ित्नतुन् फ़ला तक्फ़ुर्, फ़-य-तअ़ल्लमू-न मिन्हुमा मा युफ़र्रिक़ू-न बिही बैनल्-मरइ व ज़ौजिही, व मा हुम् बिज़ॉर्री-न बिही मिन् अ-हदिन् इल्ला बि-इज़्निल्लाहि, व य-तअ़ल्लमू-न मा यज़ुर्रुहुम् व ला यन्फ़अ़ुहुम, व लक़द् अ़लिमू ल-मनिश्तराहु मा लहू फ़िल्-आख़िरति मिन् ख़लाक़िन्, व लबिअ्-स मा शरौ बिही अन्फ़ु-सहुम, लौ कानू यअ़्लमून (102) व लौ अन्नहुम् आमनू वत्तक़ौ ल-मसू-बतुम् मिन् अ़िन्दिल्लाहि ख़ैरुन्, लौ कानू यअ़्लमून (103) ❁

और पीछे हो लिये उस इल्म के जो पढ़ते थे शैतान सुलैमान की बादशाहत के वक़्त, और कुफ़्र नहीं किया सुलैमान ने लेकिन शैतानों ने कुफ़्र किया कि सिखलाते थे लोगों को जादू, और उस इल्म के पीछे हो लिये जो उतारा दो फ़रिश्तों पर शहर बाबिल में, जिनका नाम हारूत और मारूत है और नहीं सिखाते थे वे दोनों फ़रिश्ते किसी को जब तक यह न कह देते कि हम तो आज़माईश (इम्तिहान और परीक्षा) के लिये हैं सो तू काफ़िर मत हो। फिर उनसे सीखते वह जादू जिससे जुदाई डालते हैं मर्द में और उसकी औरत में, और वे इससे नुक़सान नहीं कर सकते किसी का बग़ैर अल्लाह के हुक्म के, और सीखते हैं वह चीज़ जो नुक़सान करे उनका और फ़ायदा न करे, और ख़ूब जान चुके हैं कि जिसने इख़्तियार किया जादू को नहीं उसके लिये आख़िरत में कुछ हिस्सा, और बहुत ही बुरी चीज़ है जिसके बदले बेचा उन्होंने अपने आपको अगर उनको समझ होती। (102) और अगर वे ईमान लाते और तक़वा करते (यानी परहेज़गारी इख़्तियार करते) तो बदला पाते अल्लाह के यहाँ से बेहतर, अगर उनको समझ होती। (103) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (यहूदी ऐसे बेअक़्ल हैं कि) उन्होंने (अल्लाह की किताब की तो पैरवी न की और) ऐसी चीज़ की (यानी जादू की) पैरवी (इख़्तियार) की जिसका चर्चा किया करते थे शयातीन (यानी ख़बीस

जिन्न) (हज़रत) सुलैमान (अलैहिस्सलाम) की हुकूमत (के ज़माने) में। और (बाज़े बेवक़ूफ़ जो हज़रत सुलैमान अलैहिस्सलाम पर जादू का गुमान रखते हैं बिल्कुल ही बेहूदा और बेकार बात है, क्योंकि जादू तो एतिक़ादी या अमली तौर पर कुफ़्र है और) (हज़रत) सुलैमान (अलैहिस्सलाम) ने (नऊज़ु बिल्लाह कभी) कुफ़्र नहीं किया, मगर (हाँ) शयातीन (ख़बीस जिन्न बेशक) कुफ़्र (की बातें और काम यानी जादू) किया करते थे। और हालत यह थी कि (ख़ुद तो करते ही थे और) आदमियों को भी (उस) जादू की तालीम किया करते थे, (सो वही जादू निरन्तर चला आ रहा है उसकी पैरवी ये यहूदी करते हैं) और (इसी तरह) उस (जादू) की भी (ये लोग पैरवी करते हैं) जो कि उन दोनों फ़रिश्तों पर (एक ख़ास हिक्मत के वास्ते) नाज़िल किया गया था (जो शहर) बाबिल में (रहते थे) जिनका नाम हारूत व मारूत था। और वे दोनों (वह जादू) किसी को न बतलाते जब तक (एहतियात के तौर पर पहले ही) यह (न) कह देते कि हमारा वजूद भी (लोगों के लिये अल्लाह की तरफ़ से) एक आज़माईश है (कि हमारी ज़बान से जादू पर अवगत होकर कौन फंसता है और कौन बचता है) सो तू (इस पर बाख़बर और जानकार होकर) कहीं काफ़िर मत बन जाईयो (कि इसमें फंस जाए)।

सो (कुछ) लोग उन दोनों (फ़रिश्तों) से इस क़िस्म का जादू सीख लेते थे जिसके ज़रिये से (अमल करके) किसी मर्द और उसकी बीवी में जुदाई पैदा कर देते थे। और (इससे कोई वहम और ख़ौफ़ में न फंस जाये कि जादूगर जो चाहे कर सकता है, क्योंकि यह यक़ीनी बात है कि) ये (जादूगर) लोग उस (जादू) के ज़रिये से किसी को (ज़र्रा बराबर) भी नुक़सान नहीं पहुँचा सकते थे मगर ख़ुदा ही के (तक़दीरी) हुक्म से। और (ऐसा जादू हासिल करके बस) ऐसी चीज़ें सीख लेते हैं जो (ख़ुद) उनको (गुनाह की वजह से) नुक़सान पहुँचाने वाली हैं और (किसी ख़ास दर्जे में) उनको नफ़ा देने वाली नहीं हैं (तो यहूदी भी जादू की पैरवी से बड़े नुक़सान में होंगे) और (यह बात कुछ हमारे कहने की नहीं बल्कि) ज़रूर ये (यहूदी) भी इतना जानते हैं कि जो शख़्स उस (जादू) को (अल्लाह की किताब के बदले) इख़्तियार करे ऐसे शख़्स का आख़िरत में कोई हिस्सा (बाक़ी) नहीं। और बेशक बुरी है वह चीज़ (यानी जादू व कुफ़्र) जिसमें वे लोग अपनी जान दे रहे हैं। काश उनको (इतनी) अक़्ल होती! और अगर वे लोग (बजाय इस कुफ़्र व बुरे आमाल के) ईमान और तक़वा (यानी परहेज़गारी इख़्तियार) करते तो ख़ुदा तआ़ला के यहाँ का मुआ़वज़ा (इस कुफ़्र व बुरे आमाल से हज़ार दर्जे) बेहतर था। काश उनको (इतनी) अक़्ल होती!

मआ़रिफ़ व मसाईल

मज़कूरा आयतों की तफ़सीर और शाने नुज़ूल (उतरने के मौक़े और सबब) में नक़ल की हुई इस्राईली रिवायतों से बहुत से लोगों को मुख़्तलिफ़ क़िस्म के शुब्हात पेश आते हैं, उन शुब्हात का हल सैयदी हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी क़ुद्दि-स सिर्रुहू ने निहायत वाज़ेह और आसान अन्दाज़ में फ़रमाया है, इस जगह उसको जूँ-का-तूँ नक़ल कर देना काफ़ी है। वह यह है:

1. ये बेवक़ूफ़ लोग जो हज़रत सुलैमान अ़लैहिस्सलाम की तरफ़ जादू की निस्बत करते थे, यहूदी थे। इसलिये अल्लाह तआ़ला ने आयत के बीच में हज़रत सुलैमान अ़लैहिस्सलाम की बराअत (जादू से बरी होना) भी ज़ाहिर फ़रमा दी।

2. इन आयतों से यहूदियों की बुराई करना मक़सूद है, क्योंकि उनमें जादू का चर्चा था। इन आयतों के बारे में 'ज़ोहरा' का एक लम्बा-चौड़ा किस्सा भी मशहूर है जो किसी मोतबर रिवायत से साबित नहीं। जिन उलेमा ने उस किस्से को शरई क़ायदों के ख़िलाफ़ समझा है उसका रद्द कर दिया है, और जिन्होंने उसमें तावील को ख़िलाफ़े शरीअ़त नहीं समझा है रद्द नहीं किया। हमें यहाँ इस वक़्त उसके सही या ग़लत होने से बहस नहीं, अलबत्ता इतना ज़रूर है कि इन आयतों की तफ़सीर उस किस्से पर मौक़ूफ़ (निर्भर) नहीं जैसा कि पढ़ने वालों को 'मआरिफ़ व मसाईल' के तहत आने वाले इस उनवान के मज़मून से अन्दाज़ा हो जायेगा।

3. और यहूदी सब बातों के जानने के बावजूद चूँकि अ़मल अपने इल्म के ख़िलाफ़ करते थे और तदब्बुर (समझ और ग़ौर व फ़िक्र) से काम न लेते थे, इसलिये पहले तो उनके जानने की ख़बर दी और फिर आख़िर में यह कहकर इसकी नफ़ी भी कर दी कि "काश उनको इल्म व अ़क़्ल होती।" क्योंकि जिस इल्म पर अ़मल और विचार न हो वह जहालत की तरह है।

4. एक ज़माने में जिसको स्पष्ट और निश्चित तौर पर मुतैयन करने के लिये कोई तहक़ीक़ी राय इस वक़्त सामने नहीं, दुनिया में और ख़ास तौर पर 'बाबिल' में जादू का बहुत चर्चा था, और इसके अ़जीब असरात को देखकर जाहिलों को इसकी हक़ीक़त और अम्बिया-ए-किराम अ़लैहिमुस्सलाम के मोजिज़ों की हक़ीक़त को पहचानने में दुविधा और शुब्हा होने लगा और कुछ लोग जादूगरों को मुक़द्दस (पाकबाज़) और क़ाबिले पैरवी समझने लगे, और कुछ लोग जादू को नेक काम समझकर उसको सीखने और उस पर अ़मल करने लगे। जैसा कि मौजूदा दौर में मिस्मरेज़म (ख़्याली क़ुव्वत को प्रभावित करने) के साथ लोगों का मामला हो रहा है। अल्लाह तआ़ला ने इस शुब्हे, एक दूसरे को पहचानने में दुविधा और ग़लती को दूर करने के लिये 'बाबिल' में दो फ़रिश्ते हारूत व मारूत नाम के इस काम के लिये भेजे कि लोगों को जादू की हक़ीक़त और उसकी शाखाओं से बाख़बर कर दें, ताकि शुब्हे में पड़ना जाता रहे, और जादू पर अ़मल करने तथा जादूगरों की पैरवी करने से बच सकें। और जिस तरह अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की नुबुव्वत को मोजिज़ों व दलीलों से साबित कर दिया जाता है इसी तरह हारूत व मारूत के फ़रिश्ता होने पर दलीलें क़ायम कर दी गयीं ताकि उनके अहकामात व इरशादात की तामील व इताअ़त (फ़रमाँबरदारी व पालन) मुम्किन हो।

और यह काम अम्बिया-ए-किराम अ़लैहिमुस्सलाम से इसलिये नहीं लिया गया कि अव्वल तो अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और जादूगरों में फ़र्क़ व फ़ासला करना मक़सूद था, एक हैसियत से गोया अम्बिया-ए-किराम अ़लैहिमुस्सलाम एक फ़रीक़ का दर्जा रखते थे इसलिये फ़ैसला करने वाला दोनों फ़रीक़ों (जादूगर और अम्बिया हज़रात) के अ़लावा कोई और तीसरा होना मुनासिब था। दूसरे इस काम को पूरा करना बग़ैर जादू के अलफ़ाज़ के नक़ल किये और उनको ज़बान से पढ़े बिना आ़दतन् हो ही नहीं सकता था, अगरचे "कुफ़्र का नक़ल करना कुफ़्र नहीं होता" के अ़क़्ली व नक़ली मुसल्लमा (माने हुए) क़ायदे के मुताबिक़ ऐसा हो सकता था मगर चूँकि हज़राते अम्बिया-ए-किराम अ़लैहिमुस्सलाम हिदायत के प्रतीक होते थे इसलिये उनसे यह काम लेना मुनासिब न समझा गया। लिहाज़ा फ़रिश्तों को इस काम के लिये तजवीज़ किया गया, क्योंकि तकवीन (असबाब से ऊपर) के कारख़ाने में जो ख़ैर व शर (अच्छाई व बुराई) सब को शामिल है उन फ़रिश्तों से ऐसे काम भी लिये

जाते हैं जो आलम के मजमूए के एतिबार से तो आम मस्लेहतों के सबब ख़ैर (भले) हों लेकिन बाज़ ख़राबियों के उनके साथ जुड़े होने के सबब अपनी ज़ात के एतिबार से शर (बुरे) हों। जैसे किसी ज़ालिम व जाबिर या तकलीफ़ देने वाले जानवर वग़ैरह का पालन-पोषण और देख-रेख, कि तकवीनी (वजूद) एतिबार से तो दुरुस्त व पसन्दीदा है और क़ानूने शरीअ़त के लिहाज़ से नादुरुस्त व बुरा। बख़िलाफ़ अम्बिया-ए-किराम के, कि उनसे ख़ास तशरीई (शरीअ़त) का काम लिया जाता है जो ख़ुसूसन व उमूमन ख़ैर ही ख़ैर होता है, और अगरचे यह मज़कूरा वाक़िए में अलफ़ाज़ का नक़ल और उनका बयान करना ग़र्ज़ (मक़सद) के लिहाज़ से एक क़ानूने शरीअ़त की वज़ाहत ही का काम था लेकिन फिर भी इसकी मामूली शंका को देखते हुए कि कहीं अम्बिया का यह नक़ल करना और उसको बयान करना भी जादू पर अ़मल का सबब न बन जाये जैसा कि वास्तव में हुआ, तो हज़राते अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को इसका सबब नक़ल के वास्ते से बनाना भी पसन्द नहीं किया गया।

अलबत्ता शरीअ़त के कुल्ली क़ानून और क़ायदों से अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के ज़रिये भी इस मक़सूद (उद्देश्य) को पूरा कर दिया गया। उन कुल्ली चीज़ों की बारीकियाँ और उनकी तफ़सीलात फ़ितना पैदा होने की संभावना को सामने रखते हुए अम्बिया-ए-किराम अ़लैहिमुस्सलाम के ज़रिये बयान नहीं की गईं। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे अम्बिया-ए-किराम अ़लैहिमुस्सलाम ने यह बताया है कि रिश्वत लेना हराम है और उसकी हक़ीक़त भी बतला दी, लेकिन यह तफ़सील नहीं बतलाई कि एक तरीक़ा रिश्वत का यह है कि मामले वाले से यूँ चाल करके फ़ुलाँ बात कहे वग़ैरह वग़ैरह, क्योंकि इस तरह की तफ़सीलात बयान करने से तो लोग और तरकीबें सीख लेते हैं। या जैसे जादू की किस्मों ही में मिसाल फ़र्ज़ कीजिये कि कुल्ली क़ानूनों और क़ायदों से यह बतला दिया गया है कि 'दस्ते ग़ैब' का अ़मल जिसमें तकिये के नीचे या जेब में रखे हुए रुपये मिल जायें, नाजायज़ है, लेकिन यह नहीं बतलाया कि फ़ुलाँ अ़मल पढ़ने से इस तरह रुपये मिलने लगते हैं।

हासिले कलाम यह है कि फ़रिश्तों ने बाबिल में आकर अपना काम शुरू कर दिया कि जादू के उसूल (बुनियादी बातें) व फ़ुरूअ़ (अहकाम और उससे निकलने वाली चीज़ें) ज़ाहिर करके लोगों को उसके बुरे अ़मल से बचने की और जादूगरों से नफ़रत व दूरी रखने की तंबीह और ताकीद की। जैसे कोई आ़लिम देखे कि जाहिल लोग अक्सर नादानी से कुफ़्रिया कलिमात बक जाते हैं इसलिये वह तक़रीर या तहरीर के ज़रिये उन कलिमात को जो उस वक़्त लोगों में फैले हुए हैं जमा करके अ़वाम को बाख़बर कर दे कि देखो ये कलिमात बचने के लायक़ हैं, इनसे एहतियात रखना।

जब फ़रिश्तों ने काम शुरू किया तो धीरे-धीरे विभिन्न लोगों का आना-जाना उनके पास शुरू हुआ और वे दरख़्वास्त करने लगे कि हमको भी उन बुनियादी, उसूली और तफ़सीली बातों से अवगत करा दीजिये ताकि कहीं हम अज्ञानता की वजह से किसी एतिक़ादी या अ़मली ख़राबी में मुब्तला न हो जायें। उस वक़्त फ़रिश्तों ने एहतियात व तब्लीग़ के तौर पर और उनके सुधार के लिये यह पाबन्दी की कि उसूल व फ़ुरूअ़ (बुनियादी और तफ़सीली बातें) बताने से पहले यह कह दिया करते थे कि देखो हमारे यह बताने के ज़रिये अल्लाह तआ़ला को अपने बन्दों की आज़माईश (परीक्षा लेना) भी मक़सूद है कि देखें इन चीज़ों पर बाख़बर होकर कौन शख़्स अपने दीन की हिफ़ाज़त व सुधार करता है कि शर (बुराई) से आगाह होकर उससे बचे, और कौन अपना दीन ख़राब करता है कि उस शर पर

बाख़बर होकर वही शर (बुरा काम) ख़ुद इख़्तियार कर ले, जिसका अन्जाम कुफ़्र है, चाहे कुफ़्र अमली हो या एतिक़ादी। देखो हम तुमको नसीहत किये देते हैं कि अच्छी नीयत से इत्तिला हासिल करना और फिर उसी नीयत पर जमे रहना, ऐसा न हो कि हम से तो यह कहकर सीख लो कि मैं बचने के लिये पूछ रहा हूँ और फिर उसकी ख़राबी में ख़ुद ही मुब्तला हो जाओ और ईमान बरबाद कर लो।

अब ज़ाहिर है कि वे इससे ज़्यादा ख़ैरख़्वाही (भला चाहना) और क्या कर सकते थे। ग़र्ज़ कि जो कोई उनसे इस तरह अ़हद व पैमान (पक्का वायदा और इक़रार) कर लेता वे उसके सामने जादू के सब उसूल व फ़ुरूअ़ (बुनियादी और तफ़सीली चीज़ें और बातें) बयान कर देते थे, क्योंकि उनका काम ही यह था। अब अगर कोई वायदे और इक़रार को तोड़ करके अपने इरादे व इख़्तियार से काफ़िर व फ़ाजिर (बदकार) बने वह जाने। चुनाँचे कुछ लोग उस अ़हद पर क़ायम न रहे और उस जादू को मख़्लूक़ को परेशान करने और उन्हें सताने का ज़रिया बना लिया जो फ़िस्क़ (गुनाह) तो यक़ीनन है और कुछ तरीक़े उसके इस्तेमाल के कुफ़्र भी हैं, इस तरह से फ़ाजिर काफ़िर बन गये।

इस्लाह व सुधार इस इरशाद और फिर मुख़ातब (जिससे ख़िताब किया उस) के ख़िलाफ़ करने की मिसाल इस तरह हो सकती है कि कोई शख़्स माक़ूल व मन्क़ूल उलूम के जामे आ़लिमे बा-अ़मल के पास जाये कि मुझको पुराना और नया फ़ल्सफ़ा पढ़ा दीजिये ताकि मैं ख़ुद भी उन शुब्हात से महफ़ूज़ रहूँ जो फ़ल्सफ़े में इस्लाम के ख़िलाफ़ बयान किये जाते हैं और मुख़ालिफ़ों को भी जवाब दे सकूँ। और उस आ़लिम को यह शंका और डर हो कि कहीं ऐसा न हो कि यह मुझको धोखा देकर पढ़ ले और फिर ख़ुद ही शरीअ़त के ख़िलाफ़ बातिल (झूठे) अ़क़ीदों को मज़बूत करने में उसको इस्तेमाल करने लगे। इस शंका और डर की वजह से उसको नसीहत करे कि ऐसा मत करना और वह वायदा कर ले और इसलिये उसको पढ़ा दिया जाये, लेकिन वह शख़्स फ़ल्सफ़े के ख़िलाफ़े इस्लाम नज़रियात व अ़क़ीदों ही को सही समझने लगे तो ज़ाहिर है कि उसकी इस हरकत से उस मुअ़ल्लिम (सिखाने और पढ़ाने वाले) पर कोई मलामत या बुराई आयद नहीं हो सकती। इसी तरह इस जादू की इत्तिला से उन फ़रिश्तों पर भी न किसी शुब्हे की गुंजाईश है न उनके बारे में किसी बुरे ख़्याल की। और इस फ़र्ज़ के पूरा करने के बाद ग़ालिबन वे फ़रिश्ते आसमान पर बुला लिये गये होंगे। असल स्थिति का पूरा इल्म तो अल्लाह तआ़ला ही को है। (बयानुल-क़ुरआन)

जादू की हक़ीक़त

"सेहर" लुग़त में हर ऐसे असर को कहते हैं जिसका सबब ज़ाहिर न हो। (क़ामूस) चाहे वह सबब मानवी हो जैसे ख़ास-ख़ास कलिमों (शब्दों) का असर, या ग़ैर-महसूस चीज़ों का हो जैसे जिन्नात व शैतानों का असर, या ख़्याली क़ुव्वत को प्रभावित करने का असर, या महसूस चीज़ों का हो मगर वह महसूस चीज़ें छुपी हुई हों जैसे मक़नातीस की कशिश लोहे के लिये, जबकि मक़नातीस नज़रों से छुपा हुआ हो, या दवाओं का असर जबकि वे दवायें छुपी हुई हों, या सितारों व सय्यारों (चलने वाले सितारों) का असर। इसी लिये जादू की बहुत सी क़िस्में हैं मगर आ़म बोल-चाल में उमूमन जादू उन चीज़ों को कहा जाता है जिनमें जिन्नात व शयातीन के अ़मल का दख़्ल हो, या प्रभावित करने की ख़्याली क़ुव्वत का, या कुछ अलफ़ाज़ व कलिमात का। क्योंकि यह बात अ़क़्ली तौर पर भी साबित है

और तजुर्बे व अनुभव से भी और नये व पुराने फ़ल्सफ़ी भी इसको तस्लीम करते हैं कि हुरूफ़ व कलिमात (शब्दों) में भी कुछ ख़ास तासीरात (असर डालने और करने की ताक़तें) होती हैं, किसी ख़ास हर्फ़ या कलिमे (शब्द) को किसी ख़ास संख्या में पढ़ने या लिखने वग़ैरह से ख़ास-ख़ास तासीरों का मुशाहदा होता (यानी देखा जाता) है, या ऐसी तासीरें जो किसी इनसानी बालों या नाख़ुनों वग़ैरह बदनी अंगों या उसके इस्तेमाल किये जाने वाले कपड़ों के साथ कुछ दूसरी चीज़ें शामिल करके पैदा की जाती हैं जिनको आम बोल-चाल में टोना-टोटका कहा जाता है और जादू में शामिल समझा जाता है।

और क़ुरआन व हदीस की इस्तिलाह (परिभाषा) में "सेहर" (जादू) हर ऐसे अजीब काम को कहा जाता है जिसमें शैतानों को ख़ुश करके उनकी मदद हासिल की गई हो, फिर शैतानों को राज़ी करने की विभिन्न और अनेक सूरतें हैं, कभी ऐसे मंत्र अपनाये जाते हैं जिनमें कुफ़्र व शिर्क के कलिमात (शब्द) हों और शैतानों की तारीफ़ की गई हो, या सितारों वग़ैरह की इबादत (पूजा और उपासना) इख़्तियार की गई हो, जिससे शैतान ख़ुश होता है। कभी ऐसे आमाल (काम) इख़्तियार किये जाते हैं जो शैतान को पसन्द हैं जैसे किसी को नाहक़ क़त्ल करके उसका ख़ून इस्तेमाल करना, या नापाकी व गन्दगी की हालत में रहना, तहारत (पाकी हासिल करने) से बचना वग़ैरह।

जिस तरह अल्लाह तआ़ला के पाक फ़रिश्तों की मदद उन अक़वाल (शब्दों) व अफ़आ़ल (कामों) से हासिल की जाती है जिनको फ़रिश्ते पसन्द करते हैं जैसे नेकी व परहेज़गारी, तहारत व पाकीज़गी, बदबू और गन्दगी से बचना, अल्लाह का ज़िक्र और अच्छे आमाल। इसी तरह शैतानों की इमदाद ऐसे अक़वाल (अलफ़ाज़) व अफ़आ़ल (कामों) से हासिल होती है जो शैतान को पसन्द हैं। इसी लिये सेहर (जादू) सिर्फ़ ऐसे ही लोगों का कामयाब होता है जो गन्दे और नापाक रहें, पाकी और अल्लाह तआ़ला के नाम से दूर रहें, ख़बीस (बुरे) कामों के आ़दी हों, औरतें भी माहवारी के दिनों में यह काम करती हैं तो असरदार होता है, बाक़ी करतब, टोटके या हाथ की चालाकी के काम या मिस्मरेज़म वग़ैरह इनको जादू जैसी अ़जीब बातें समझते हुए यूँ ही 'सेहर' (जादू) कह दिया जाता है। (तफ़सीरे रूहुल-मआ़नी)

जादू की क़िस्में

इमाम राग़िब अस्फ़हानी रहमतुल्लाहि अ़लैहि 'मुफ़रदातुल-क़ुरआन' में लिखते हैं कि जादू की विभिन्न और अनेक क़िस्में हैं। एक क़िस्म तो केवल नज़रबन्दी और ख़्याली असर डालना होती है जिसकी कोई वास्तविक हक़ीक़त नहीं, जैसे कुछ शोबदे बाज़ (करतब दिखाने वाले) अपने हाथ की चालाकी से ऐसे काम कर लेते हैं कि आ़म लोगों की नज़रें उसको देखने में असमर्थ रहती हैं, या ख़्याली क़ुव्वत मिस्मरेज़म (यानी किसी के ज़ेहन पर असर डालने) वग़ैरह के ज़रिये किसी के दिमाग़ पर ऐसा असर डाला जाये कि वह एक चीज़ को आँखों से देखता और महसूस करता है मगर उसकी कोई असली हक़ीक़त नहीं होती। कभी यह काम शैतानों के असर से भी हो सकता है कि जादू से पीड़ित की आँखों और दिमाग़ पर ऐसा असर डाला जाये जिससे वह एक ग़ैर-मौजूद और अवास्तविक चीज़ को हक़ीक़त समझने लगे। क़ुरआन मजीद में फ़िरऔ़नी जादूगरों के जिस जादू का ज़िक्र है वह पहली क़िस्म का जादू था, जैसा कि इरशाद है:

سَحَرُوْٓا اَعْيُنَ النَّاسِ. (١١٦:٧)

"उन्होंने लोगों की आँखों पर जादू कर दिया।"

और इरशाद है:

يُخَيَّلُ اِلَيْهِ مِنْ سِحْرِهِمْ اَنَّهَا تَسْعٰىo (٦٦:٢٠)

"उनके जादू से हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम के ख़्याल में यह आने लगा कि ये रस्सियों के साँप दौड़ रहे हैं।"

इसमें 'युख़य्यलु' के लफ़्ज़ से यह बतला दिया गया कि ये रस्सियाँ और लाठियाँ जो जादूगरों ने डाली थीं, न दर हक़ीक़त साँप बनीं और न उन्होंने कोई हरकत की, बल्कि हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम की ख़्याली क़ुव्वत प्रभावित होकर उनको दौड़ने वाले साँप समझने लगी।

दूसरी क़िस्म इस तरह की नज़रबन्दी और ख़्याली क़ुव्वत पर असर डालना है जो कई बार शैतानों के असर से होता है। जो क़ुरआने करीम के इस इरशाद से मालूम हुआ:

هَلْ اُنَبِّئُكُمْ عَلٰى مَنْ تَنَزَّلُ الشَّيٰطِيْنُo تَنَزَّلُ عَلٰى كُلِّ اَفَّاكٍ اَثِيْمٍo (٢٢١:٢٦-٢٢٢)

"मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि किन लोगों पर शैतान उतरते हैं, हर बोहतान बाँधने वाले गुनाहगार पर उतरते हैं।"

और दूसरी जगह इरशाद है:

وَلٰكِنَّ الشَّيٰطِيْنَ كَفَرُوْا يُعَلِّمُوْنَ النَّاسَ السِّحْرَ. (١٠٢:٢)

"यानी शैतानों ने कुफ़्र इख़्तियार किया, लोगों को जादू सिखाने लगे।"

तीसरी क़िस्म यह है कि जादू के ज़रिये एक चीज़ की हक़ीक़त ही बदल जाये, जैसे किसी इनसान या जानदार को पत्थर या कोई जानवर बना दें। इमाम राग़िब अस्फ़हानी रहमतुल्लाहि अ़लैहि, अबू बक्र जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि वग़ैरह हज़रात ने इससे इनकार किया है कि जादू के ज़रिये किसी चीज़ की हक़ीक़त बदल जाये, बल्कि जादू का असर सिर्फ़ ख़्याली क़ुव्वत को प्रभावित करना और नज़रबन्दी तक ही हो सकता है। 'मोतज़िला' का भी यही क़ौल है, मगर जमहूर उलेमा की तहक़ीक़ यह है कि एक चीज़ की हक़ीक़त बदल जाने में न कोई अ़क़्ली बाधक है न शरई तौर पर रुकावट। जैसे कोई जिस्म पत्थर बन जाये या एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति की तरफ़ पलट जाये। और फ़ल्सफ़ी हज़रात का जो यह क़ौल मशहूर है कि हक़ीक़तों का बदलना मुम्किन नहीं, उनकी हक़ीक़तों से मुराद 'मुहाल', 'मुम्किन' और 'वाजिब' की हक़ीक़तें हैं, कि इनमें इन्क़िलाब (उलट-फेर) अ़क़्ली तौर पर संभव नहीं कि कोई 'मुहाल' 'मुम्किन' बन जाये या कोई 'मुम्किन' 'मुहाल' बन जाये। और क़ुरआने पाक में फ़िरऔ़नी जादूगरों के जादू को जो ख़्याली असर क़रार दिया है उससे यह लाज़िम नहीं आता कि हर जादू ख़्याली क़ुव्वत ही को प्रभावित करने वाला हो, इससे ज़्यादा और कुछ न हो। और कुछ हज़रात ने जादू के ज़रिये हक़ीक़त के बदल जाने के जवाज़ (सही और जायज़ होने) पर हज़रत कअ़बे अहबार रज़ियल्लाहु अ़न्हु की उस हदीस से भी दलील पकड़ी है जो मुवत्ता इमाम मालिक में हज़रत कअ़क़ा बिन हकीम की रिवायत से मन्क़ूल है:

لولا کلمات اقولهن لجعلتی الیهود حمارًا

"अगर ये चन्द कलिमात (शब्द) न होते जिनको मैं पाबन्दी से पढ़ता हूँ तो यहूदी लोग मुझे गधा बना देते।"

गधा बना देने का लफ़्ज़ अपने असली मायनों में नहीं बल्कि बेवक़ूफ़ बनाने के मायने में भी हो सकता है, मगर बिला ज़रूरत हकीकत को छोड़कर दूसरे मायने मुराद लेना सही नहीं, इसलिये असली और ज़ाहिरी मफ़्हूम इसका यही है कि अगर मैं ये कलिमात रोज़ाना पाबन्दी से न पढ़ता तो यहूदी जादूगर मुझे गधा बना देते।

इससे दो बातें साबित हुईं- पहली यह कि जादू के ज़रिये इनसान को गधा बना देने की संभावना है, दूसरे यह कि जो कलिमात (दुआ के शब्द) वह पढ़ा करते थे उनकी तासीर यह है कि कोई जादू असर नहीं करता। हज़रत कअ़्बे अहबार रज़ियल्लाहु अ़न्हु से जब लोगों ने पूछा कि वे कलिमात क्या थे तो आपने ये कलिमात बतलायेः

اَعُوْذُ بِوَجْهِ اللّٰهِ الْعَظِيْمِ الَّذِىْ لَيْسَ شَىْءٌ اَعْظَمَ مِنْهُ وَبِكَلِمَاتِ اللّٰهِ التَّآمَّاتِ الَّتِىْ لَا يُجَاوِزُهُنَّ بَرٌّ وَّلَا فَاجِرٌ وَّبِاَسْمَآءِ اللّٰهِ الْحُسْنٰى كُلِّهَا مَا عَلِمْتُ مِنْهَا وَمَا لَمْ اَعْلَمْ مِنْ شَرِّ مَا خَلَقَ وَبَرَاَ وَذَرَاَ (الموطاء باب التعوذ عند النوم)

अऊज़ु बिवज्हिल्लाहिल् अज़ीमिल्लज़ी लै-स शैउन् अअ़्ज़-म मिन्हु व बि-कलिमातिल्-लाहित्ताम्मातिल्लती ला युजाविज़ुहुन्-न बर्रुन् व ला फ़ाजिरुन् व बि-अस्माइल्लाहिल् हुस्ना कुल्लहा मा अ़लिम्-तु मिन्हा व मा ला अअ़्लम् मिन् शर्रि मा ख़-ल-क़ व ब-र-अ व ज़-र-अ।

तर्जुमाः- "मैं अल्लाह अ़ज़ीम की पनाह पकड़ता हूँ जिससे बड़ा कोई नहीं और पनाह पकड़ता हूँ अल्लाह के कलिमाते ताम्मात की जिनसे कोई नेक व बद इनसान आगे नहीं निकल सकता, और पनाह पकड़ता हूँ अल्लाह के तमाम अस्मा-ए-हुस्ना (अच्छे नामों) की जिनको मैं जानता हूँ और जिनको नहीं जानता, हर उस चीज़ के शर (बुराई) से जिसको अल्लाह तआ़ला ने पैदा किया और वजूद दिया और फैलाया है।" (मुवत्ता इमाम मालिक)

ख़ुलासा यह है कि जादू की ये तीनों क़िस्में पाई जा सकती हैं।

जादू और मोजिज़े में फ़र्क़

जिस तरह अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के मोजिज़ों (अल्लाह की तरफ़ से नबियों के ज़रिये ज़ाहिर होने वाले करिश्मे और ऐसी बातें जिनको करने पर दूसरे लोग आ़जिज़ हों) या औलिया की करामतों से ऐसे वाक़िआ़त देखने में आते हैं जो आ़दतन् दूसरों से नहीं हो सकते, इसी लिये उनको 'आ़दत से ऊपर' या 'ख़िलाफ़े आ़दत' कहा जाता है। बज़ाहिर जादू से भी ऐसे ही आसार देखने में आते हैं, इसलिये बाज़े जाहिलों को इन दोनों में धोखा भी हो जाता है और इसकी वजह से वे जादूगरों की ताज़ीम व तकरीम (सम्मान) करने लगते हैं, इसलिये दोनों का फ़र्क़ बयान करना ज़रूरी है।

सो यह फ़र्क़ एक तो असल हक़ीक़त के एतिबार से है और एक ज़ाहिरी आसार (निशानियों) के एतिबार से। हक़ीक़त का फ़र्क़ तो यह है कि सेहर और जादू से जो चीज़ें देखने में आती हैं ये असबाब के दायरे से अलग कोई चीज़ नहीं, फ़र्क़ सिर्फ़ असबाब के ज़ाहिर और छुपे होने का है, जहाँ

असबाब ज़ाहिर होते हैं वे आसार उन असबाब की तरफ़ मन्सूब किये जाते हैं और कोई ताज्जुब की चीज़ नहीं समझी जाती, लेकिन जहाँ असबाब छुपे हुए हों तो वह ताज्जुब की चीज़ होती है और अवाम असबाब के न जानने की वजह से उसको ख़िलाफ़े आदत और अनोखी बात समझने लगते हैं, हालाँकि वास्तव में वह दूसरे तमाम आदी मामलात की तरह किसी जिन्न शैतान के असर से होती है।

एक पत्र बहुत लम्बी दूरी का आजका लिखा हुआ अचानक सामने आकर गिर गया तो देखने वाले इसको अनोखी बात ख़िलाफ़े आदत कहेंगे, हालाँकि जिन्नात व शयातीन को ऐसे काम और ऐसे आमाल करने की ताक़त दी गई है। उनका ज़रिया (सबब और माध्यम बनना) मालूम हो तो फिर कोई ख़िलाफ़े आदत और अनोखी बात नहीं रहती। ख़ुलासा यह है कि जादू से ज़ाहिर होने वाले तमाम आसार तबई असबाब (साधनों, कारणों और माध्यमों) के मातहत होते हैं, मगर असबाब के आँखों से ओझल और छुपा होने के सबब लोगों को उसके अनोखा, करिश्माती और ख़िलाफ़े आदत होने का धोखा हो जाता है। जबकि इसके उलट मोजिज़ा दर असल डायरेक्ट तौर पर अल्लाह तआला का फ़ेल (काम) होता है, उसमें तबई असबाब का कोई दख़ल नहीं होता। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के लिये नमरूद की आग को हक़ तआला ने फ़रमा दिया कि इब्राहीम के लिये ठंडी हो जाये, मगर ठंडी भी इतनी न हो जिससे तकलीफ़ पहुँचे बल्कि जिससे सलामती हासिल हो, इस हुक्मे इलाही से आग ठंडी हो गई।

आज भी कुछ लोग बदन पर कुछ दवायें इस्तेमाल करके आग के अन्दर चले जाते हैं, वह मोजिज़ा नहीं बल्कि दवाओं का असर है, दवायें आँखों से छुपी होने से लोगों को धोखा हो जाता है और वे उसको ख़िलाफ़े आदत और करिश्मा व चमत्कार समझने लगते हैं।

यह बात कि मोजिज़ा डायरेक्ट हक़ तआला का फ़ेल होता है ख़ुद क़ुरआने करीम की वज़ाहत से साबित है। इरशाद फ़रमायाः

وَمَا رَمَيْتَ إِذْ رَمَيْتَ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ رَمٰى. (۱۷:۷)

"कंकरियों की मुट्ठी जो आपने फेंकी, वास्तव में आपने नहीं फेंकी बल्कि अल्लाह ने फेंकी है।"

मुराद यह है कि कंकर और ख़ाक की एक मुट्ठी सारे मजमे की आँखों तक पहुँच जाना, इसमें आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के अमल को कोई दख़ल नहीं, यह ख़ालिस हक़ तआला का काम है। यह मोजिज़ा बदर की लड़ाई में पेश आया था कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने एक मुट्ठी ख़ाक और कंकरियों की काफ़िरों के लश्कर पर फेंकी (जो सब की आँखों में पड़ गई)।

मोजिज़े और जादू की हक़ीक़तों का यह फ़र्क़ कि मोजिज़ा तबई असबाब के बग़ैर अप्रत्यक्ष रूप से डायरेक्ट हक़ तआला का फ़ेल होता है और जादू तबई असबाब के छुपे होने का असर होता है, हक़ीक़त समझने के लिये तो पूरी तरह काफ़ी है, मगर यहाँ एक सवाल यह रह जाता है कि आम लोग इस फ़र्क़ को कैसे पहचानें, क्योंकि ज़ाहिरी सूरत दोनों की एक सी है। इसका जवाब यह है कि अवाम के पहचानने के लिये भी हक़ तआला ने कई फ़र्क़ ज़ाहिर कर दिये हैं।

अव्वल यह कि मोजिज़ा या करामत ऐसे हज़रात से ज़ाहिर होती है जिनका तक़वा, पवित्रता व पाकीज़गी, अख़्लाक़ व आमाल को सब देखते हैं। इसके उलट जादू का असर सिर्फ़ ऐसे लोगों के

ज़रिये ज़ाहिर होता है जो गन्दे, नापाक, अल्लाह के नाम और उसकी इबादत से दूर रहते हैं, यह चीज़ हर इनसान आँखों से देखकर मोजिज़े और जादू में फ़र्क़ पहचान सकता है।

दूसरे यह कि अल्लाह की आदत और क़ानून यह भी जारी है कि जो शख़्स मोजिज़े और नुबुव्वत का दावा करके कोई जादू करना चाहे उसका जादू नहीं चलता, हाँ नुबुव्वत के दावे के बग़ैर कोई करे तो चल जाता है।

क्या नबियों पर भी जादू का असर हो सकता है?

जवाब यह है कि हो सकता है। वजह वही है जो ऊपर बतलाई गई कि जादू दर हक़ीक़त तबई असबाब ही का असर होता है और अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम तबई असबाब के असरात से प्रभावित होते हैं। उनका यह असर लेना उनकी नुबुव्वत की शान के ख़िलाफ़ नहीं। जैसे उनका भूख प्यास से प्रभावित होना, बीमारी में मुब्तला होना और शिफ़ा पाना ज़ाहिरी असबाब से सब जानते हैं, इसी तरह जादू के अन्दरूनी असबाब से भी अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम प्रभावित और पीड़ित हो सकते हैं और यह प्रभावित होना उनकी शाने नुबुव्वत के ख़िलाफ़ नहीं।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर यहूदियों का जादू करना और उसकी वजह से आप पर कुछ आसार (निशानियों) का ज़ाहिर होना और वही के माध्यम से उस जादू का पता लगना और उसको दूर करना सही हदीसों में साबित है। और हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम का जादू से मुतास्सिर (प्रभावित) होना ख़ुद क़ुरआने करीम में बयान हुआ है। देखिये ये आयतें:

يُخَيَّلُ إِلَيْهِ مِنْ سِحْرِهِمْ أَنَّهَا تَسْعٰى ٥

(सूरः 20 आयत 66) और

فَأَوْجَسَ فِي نَفْسِهٖ خِيفَةً مُّوسٰى ٥ (٢٠: ٦٦، ٦٧)

(सूरः 20 आयत 67) मूसा अ़लैहिस्सलाम पर ख़ौफ़ तारी होना उस जादू ही का तो असर था।

जादू के शरई अहकाम

जैसा कि ऊपर बयान हो चुका है क़ुरआन व हदीस की इस्तिलाह में जादू सिर्फ़ ऐसे अ़मल को कहा गया है जिसमें कुफ़्र व शिर्क और गुनाह व बदकारी इख़्तियार करके जिन्नात व शयातीन को राज़ी किया गया हो, और उनसे मदद ली गई हो। उनके सहयोग से कुछ अ़जीब वाक़िआत ज़ाहिर हो गये हों, 'बाबिल' का जादू जिसका क़ुरआन में ज़िक्र है वह यही था। (इमाम अबू बक्र जस्सास) और इसी जादू को क़ुरआन में कुफ़्र क़रार दिया है। अबू मन्सूर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि यही सही है कि जादू की तमाम क़िस्में मुतलक़ तौर पर कुफ़्र नहीं, बल्कि सिर्फ़ वह जादू कुफ़्र है जिसमें ईमान के ख़िलाफ़ बातें, कलिमात और आमाल इख़्तियार किये गये हों। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

और यह ज़ाहिर है कि शयातीन पर लानत करने और उनसे दुश्मनी व मुख़ालफ़त करने के अहकाम क़ुरआन व हदीस में बार-बार आये हैं, इसके ख़िलाफ़ उनसे दोस्ती और उनको राज़ी करने की फ़िक्र ख़ुद ही एक गुनाह है, फिर वे राज़ी तब ही होते हैं जब इनसान कुफ़्र व शिर्क में मुब्तला हो जिससे ईमान ही चला जाये, या कम से कम गुनाह व बदकारी में मुब्तला हो और अल्लाह तआ़ला

और फ़रिश्तों की पसन्दीदा चीज़ों के ख़िलाफ़ गन्दा और नापाक रहे, यह अलग गुनाह है, और अगर जादू के ज़रिये किसी को नाहक़ नुक़सान पहुँचाया तो यह और गुनाह है।

ग़र्ज़ कि क़ुरआन व हदीस के एतिबार से जिसको जादू कहा गया है वह एतिक़ादी कुफ़्र या कम से कम अ़मली कुफ़्र से ख़ाली नहीं होता। अगर शैतानों के राज़ी करने के लिये कुछ अक़वाल या आमाल (बातें और काम) कुफ़्र व शिर्क के इख़्तियार किये तो यह असली एतिक़ादी कुफ़्र होगा, और अगर कुफ़्र व शिर्क के अक़वाल व अफ़आ़ल (कलिमात और कामों) से बच भी गया मगर दूसरे गुनाहों को किया तो अ़मली कुफ़्र से ख़ाली न रहा। क़ुरआन मजीद की बयान हुई आयतों में जो जादू को कुफ़्र कहा गया है वह इसी एतिबार से है कि यह जादू असली एतिक़ादी कुफ़्र या अ़मली कुफ़्र से ख़ाली नहीं होता।

ख़ुलासा यह है कि जिस जादू में कोई कुफ़्र का अ़मल इख़्तियार किया गया हो जैसे शैतानों से मदद व फ़रियाद या सितारों की तासीर को मुस्तक़िल (उनकी ज़ाती) मानना या जादू को मोजिज़ा क़रार देकर अपनी नुबुव्वत का दावा करना वग़ैरह, तो यह जादू सर्वसम्मति से कुफ़्र है, और जिसमें ये कुफ़्र के काम न हों मगर नाफ़रमानी और गुनाह का करना हो तो वह बड़ा गुनाह है।

मसलाः जब यह मालूम हो गया कि यह जादू एतिक़ादी या अ़मली कुफ़्र से ख़ाली नहीं तो इसका सीखना और सिखाना भी हराम हुआ, इस पर अ़मल करना भी हराम हुआ, अलबत्ता अगर मुसलमानों से नुक़सान व परेशानी को दूर करने के लिये ज़रूरत के मुताबिक़ सीखा जाये तो कुछ फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने इजाज़त दी है। (फ़तावा शामी व आलमगीरी)

मसलाः तावीज़ गण्डे वग़ैरह जो आ़मिल करते हैं उनमें भी अगर जिन्नात व शैतानों से मदद तलब की जाये तो जादू के हुक्म में हैं और हराम हैं। और अगर अलफ़ाज़ 'मुश्तबा' (संदिग्ध) हों मायने मालूम न हों और शैतानों और बुतों से मदद व फ़रियाद चाहने का शुब्हा हो तो भी हराम है।

मसलाः क़ुरआन व हदीस के बाबिल के इस्तिलाही जादू के अ़लावा जादू की बाक़ी किस्में, उनमें भी अगर कुफ़्र व शिर्क का अ़मल या कलिमात कहे जायें तो वे भी हराम हैं।

मसलाः और ख़ाली मुबाह और जायज़ उमूर (बातों) से काम लिया जाता हो तो इस शर्त के साथ जायज़ है कि उसको किसी नाजायज़ मक़सद के लिये इस्तेमाल न किया जाये।

मसलाः अगर क़ुरआन व हदीस के कलिमात ही से काम लिया जाये मगर नाजायज़ मक़सद के लिये इस्तेमाल करें तो वह भी जायज़ नहीं, जैसे किसी को नाहक़ नुक़सान पहुँचाने के लिये कोई तावीज़ किया जाये या वज़ीफ़ा पढ़ा जाये, अगरचे वज़ीफ़ा अल्लाह के पाक नामों या क़ुरआनी आयतों ही का हो, वह भी हराम है। (फ़तावा क़ाज़ी ख़ाँ व फ़तावा शामी)

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقُوْلُوْا رَاعِنَا وَقُوْلُوا انْظُرْنَا وَاسْمَعُوْا ۗ وَلِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ला तक़ूलू राअ़िना व क़ूलुन्ज़ुर्ना वस्मअ़ू, व लिल्काफ़िरी-न अ़ज़ाबुन् अलीम (104)	ऐ ईमान वालो! तुम न कहो 'राअ़िना' और कहो 'उन्ज़ुरना' और सुनते रहो, और काफ़िरों को अ़ज़ाब है दर्दनाक। (104)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(कुछ यहूदियों ने शरारत का एक नया तरीक़ा यह निकाला कि जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास आकर लफ़्ज़ 'राअ़िना' से आपको ख़िताब करते, जिसके मायने उनकी इबरानी भाषा में एक बद्दुआ़ के हैं और वे इसी नीयत से कहते थे, मगर अ़रबी भाषा में इसके मायने "हमारी मस्लेहत की रियायत फ़रमाईये" के हैं। इसलिये अ़रबी जानने वाले इस शरारत को समझ न सकते थे, और इस अच्छे मायने के इरादे से कुछ मुसलमान भी हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इस कलिमे से ख़िताब करने लगे, इससे उन शरीरों को और गुंजाईश मिली, आपस में बैठकर हंसते थे कि अब तक तो हम उनको छुपे तौर पर ही बुरा कहते थे अब खुलेआ़म कहने की तदबीर ऐसी हाथ आ गई कि मुसलमान भी उसमें शरीक हो गये। हक़ तआ़ला ने इस गुंजाईश के काट देने का मुसलमानों को हुक्म दिया कि) ऐ ईमान वालो! तुम (लफ़्ज़) 'राअ़िना' मत कहा करो (इसकी जगह लफ़्ज़) 'उन्ज़ुरना' कह दिया करो (क्योंकि इस लफ़्ज़ के मायने और राअ़िना के मायने अ़रबी भाषा में एक ही हैं। राअ़िना कहने से यहूदियों की शरारत चलती है इसलिये इसको छोड़ करके दूसरा लफ़्ज़ इस्तेमाल करो) और (इसको अच्छी तरह) सुन लीजियो (और याद रखियो) और (इन) काफ़िरों को (तो) दर्दनाक सज़ा होगी (ही, जो पैग़म्बर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की शान में ऐसी गुस्ताख़ी और वह भी चालाकी के साथ करते हैं)।

मसलाः इस आयत से यह बात मालूम हुई कि अगर अपने किसी जायज़ फ़ेल से दूसरों को नाजायज़ कामों की गुंजाईश मिलती मालूम हो तो वह जायज़ काम भी उसके लिये जायज़ नहीं रहता। जैसे अगर किसी आ़लिम के जायज़ फ़ेल (काम) से जाहिलों को मुग़ालते (ग़लती और धोखे) में पड़ने और नाजायज़ कामों में मुब्तला होने का ख़तरा हो तो उस आ़लिम के लिये वह जायज़ काम भी मना हो जायेगा, बशर्तेकि वह फ़ेल शरई तौर पर ज़रूरी और शरीअ़त के मक़ासिद में से न हो। इसकी मिसालें क़ुरआन व हदीस में बहुत हैं। इसकी एक दलील वह हदीस है जिसमें इरशाद है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- "बैतुल्लाह की तामीर जो क़ुरैश ने इस्लाम से पहले के ज़माने में की थी उसमें कई चीज़ें हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की बिना के ख़िलाफ़ कर दी हैं, मेरा दिल चाहता है कि इसको गिराकर नये सिरे से इब्राहीमी बुनियादों के मुताबिक़ बना दूँ, लेकिन इससे नावाक़िफ़ अ़वाम के फ़ितने में मुब्तला हो जाने का ख़तरा है इसलिये फ़िलहाल ऐसा नहीं करता।" ऐसे अहकाम को उसूले फ़िक़्हा की इस्तिलाह में 'सद्दे ज़राय' से ताबीर किया जाता है जो सभी फ़ुक़हा के नज़दीक मोतबर है, ख़ुसूसन इमाम अहमद बिन हंबल के मानने और उनकी पैरवी करने वाले हज़रात इसका ज़्यादा एहतिमाम करते हैं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

مَا يَوَدُّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ وَلَا الْمُشْرِكِيْنَ اَنْ يُّنَزَّلَ عَلَيْكُمْ مِّنْ خَيْرٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ ؕ وَاللّٰهُ يَخْتَصُّ بِرَحْمَتِهٖ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيْمِ ۝

मा यवद्दुल्लज़ी-न क-फ़रू मिन् अह्लिल्-किताबि व लल्मुश्रिकी-न अंय्युनज़्ज़-ल अ़लैकुम् मिन् ख़ैरिम्-मिर्रब्बिकुम, वल्लाहु यख़्तस्सु बिरह्मतिही मंय्यशा-उ, वल्लाहु ज़ुल्-फ़ज़्लिल्-अ़ज़ीम (105)	दिल नहीं चाहता उन लोगों का जो काफ़िर हैं अहले किताब में और न मुश्रिकों में, इस बात को कि उतरे तुम पर कोई नेक बात तुम्हारे रब की तरफ़ से, और अल्लाह ख़ास कर लेता है अपनी रहमत के साथ जिसको चाहे, और अल्लाह बड़े फ़ज़्ल वाला है। (105)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ यहूदियों का जो बर्ताव था वह ऊपर की आयत में बयान किया गया, अब इस आयत में यहूद का बर्ताव मुसलमानों के साथ बयान किया जा रहा है कि (कुछ यहूदी बाज़े मुसलमानों से कहने लगे कि ख़ुदा की क़सम हम दिल से तुम्हारा भला चाहने वाले हैं, और हज़ार जान से पसन्द करते हैं कि तुमको दीनी अहकाम हमारे दीनी अहकाम से बेहतर इनायत हों तो हम भी उनको क़ुबूल करें, मगर क्या किया जाये कि तुम्हारा दीन हमारे दीन से अच्छा साबित नहीं हुआ। हक़ तआ़ला इस भला चाहने के दावे को झुठलाते हैं कि) ज़रा भी पसन्द नहीं करते काफ़िर लोग, (चाहे) उन अहले किताब में से (हों) और (चाहे) मुश्रिकों में से, इस बात को कि तुमको किसी तरह की बेहतरी (भी) नसीब हो तुम्हारे परवर्दिगार की तरफ़ से, और (उनके जलने से कुछ भी नहीं होता, क्योंकि) अल्लाह तआ़ला अपनी रहमत (व इनायत) के साथ जिसको मन्ज़ूर होता है ख़ास फ़रमा लेते हैं, और अल्लाह तआ़ला बड़े फ़ज़्ल (करने) वाले हैं।

फ़ायदाः इन यहूदियों के दो दावे थे- अव्वल यहूदियत का बेहतर होना इस्लाम से, दूसरे उनका ख़ैरख़्वाह (हमदर्द और भला चाहने वाला) होना। तो पहले दावे को तो ये साबित नहीं कर सके, ख़ाली दावे से क्या होता है। और फिर यह दावा है भी फ़ुज़ूल सी बात, क्योंकि जब नासिख़ (किसी हुक्म को निरस्त करने वाला) आता है तो मन्सूख़ (निरस्त होने वाले) को छोड़ दिया जाता है, अफ़ज़ल ग़ैर-अफ़ज़ल के फ़र्क़ पर मौक़ूफ़ नहीं, लिहाज़ा ज़ाहिर और खुली हुई बात होने की वजह से इसका जवाब यहाँ ज़िक्र नहीं किया गया, सिर्फ़ दूसरे ख़ैरख़्वाही (भला चाहने) के दावे ही पर कलाम किया गया है। और अहले किताब के साथ मुश्रिकों का ज़िक्र मज़मून को प्रबल और ताकीदी करने के लिये किया गया, कि जिस तरह मुश्रिक लोग यक़ीनन तुम्हारे ख़ैरख़्वाह नहीं इसी तरह इनको भी समझो।

مَا نَنْسَخْ مِنْ اٰيَةٍ اَوْ نُنْسِهَا نَاْتِ بِخَيْرٍ مِّنْهَآ اَوْ مِثْلِهَا ۗ اَلَمْ تَعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿۱۰۶﴾ اَلَمْ تَعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ لَهٗ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۗ وَمَا لَكُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ مِنْ وَّلِيٍّ وَّلَا نَصِيْرٍ ﴿۱۰۷﴾

मा नन्सख़् मिन् आयतिन् औ नुन्सिहा नअ्ति बिख़ैरिम् मिन्हा औ मिस्लिहा, अलम् तअ्लम् अन्नल्ला-ह अ़ला कुल्लि शैइन् क़दीर (106) अलम् तअ्लम् अन्नल्ला-ह लहू मुल्कुस्समावाति वल्अर्ज़ि, व मा लकुम् मिन् दूनिल्लाहि मिंव्वलिय्यिंव्-व ला नसीर (107)	जो मन्सूख़ (बदलते या निरस्त) करते हैं हम कोई आयत या भुला देते हैं तो भेज देते हैं उससे बेहतर या उसके बराबर। क्या तुझको मालूम नहीं कि अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है। (106) क्या तुझको मालूम नहीं कि अल्लाह ही के लिये है सल्तनत आसमान और ज़मीन की, और नहीं तुम्हारे वास्ते अल्लाह के सिवा कोई हिमायती और न मददगार। (107)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(क़िब्ले के बदलने का वाकिआ जब हुआ तो यहूदियों ने इस पर ताना मारा और मुश्रिक लोग भी कुछ अहकाम के मन्सूख़ (ख़त्म और निरस्त होने) पर उल्टी-सीधी बातें करते थे। हक़ तआ़ला उनके तानों और एतिराज़ का जवाब देते हैं कि) हम किसी आयत का हुक्म जो मौक़ूफ़ "यानी रोक देते और मुल्तवी" कर देते हैं (अगरचे आयत क़ुरआन में या ज़ेहनों में बाक़ी रहे), या उस आयत (ही) को (ज़ेहनों से) भुला देते हैं, तो (यह कोई एतिराज़ की बात नहीं, क्योंकि इसमें भी मस्लेहत होती है, चुनाँचे) हम उस आयत से बेहतर या उस आयत ही के जैसी (बजाय उसके दूसरी चीज़) ले आते हैं। (ऐ एतिराज़ करने वाले!) क्या तुझको यह मालूम नहीं कि हक़ तआ़ला हर चीज़ पर क़ुदरत रखते हैं (पस ऐसे क़ादिर को मस्लेहतों की रियायत क्या मुश्किल है? और) क्या तुझको यह मालूम नहीं कि हक़ तआ़ला ऐसे हैं कि ख़ास उन्हीं की है हुकूमत आसमानों की और ज़मीन की (जब उनकी इस क़ुदरत व हुकूमत में कोई शरीक व साझी नहीं है तो उन मस्लेहतों की रियायत करके दूसरा हुक्म दे देने में कौन आड़े आ सकता है?

ग़र्ज़ कि दूसरे हुक्म की तजवीज़ से भी कोई रोक नहीं और उस हुक्म के जारी कर देने में भी कोई रोक नहीं), और (यह भी समझ लो कि) तुम्हारा हक़ तआ़ला के सिवा कोई यार व मददगार भी नहीं (पस जब वह यार हैं तो अहकाम में मस्लेहत की ज़रूर रियायत करेंगे और जब मददगार हैं तो उन अहकाम पर अ़मल करने के वक़्त तुम्हारे मुख़ालिफ़ों के विरोध और रुकावटों से भी ज़रूर महफ़ूज़ रखेंगे, अलबत्ता अगर उस तकलीफ़ से बढ़कर कोई नफ़ा हमेशा का मिलने वाला हो तो ज़ाहिर में मुख़ालिफ़ का मुसल्लत हो जाना और बात है)।

मआरिफ़ व मसाईल

مَا نَنْسَخْ مِنْ اٰيَةٍ اَوْ نُنْسِهَا

"मा नन्सख़् मिन् आयतिन् औ नुन्सिहा" इस आयत में क़ुरआन की किसी आयत के मन्सूख़ होने (निरस्त और रद्द होने या बदलने) की जितनी सूरतें हो सकती हैं सब को जमा कर दिया है। नस्ख़ के मायने लुग़त में ज़ाईल (हटाने और दूर) करने और लिखने के आते हैं। इस पर उम्मत के तमाम मुफ़स्सिरीन का इत्तिफ़ाक़ (सहमति) है कि इस आयत में नस्ख़ से मुराद किसी हुक्म का ज़ाईल करना यानी मन्सूख़ (निरस्त करना, बदलना या रद्द) करना है और इसी लिये क़ुरआन व हदीस की इस्तिलाह में नस्ख़ एक हुक्म के बजाय कोई दूसरा हुक्म जारी करने को कहा जाता है, चाहे वह दूसरा हुक्म यही हो कि पहला हुक्म बिल्कुल ख़त्म कर दिया जाये या यह हो कि उसकी जगह दूसरा अ़मल बतलाया जाये।

अल्लाह के हुक्मों में नस्ख़ की हक़ीक़त

दुनिया की हुकूमतों और इदारों (संस्थाओं) में किसी हुक्म को मन्सूख़ (निरस्त) करके दूसरा हुक्म जारी कर देना जानी-पहचानी और प्रचलित प्रक्रिया है, लेकिन इनसानों के अहकाम में नस्ख़ कभी इसलिये होता है कि पहले किसी ग़लत-फ़हमी से एक हुक्म जारी कर दिया, बाद में हक़ीक़त मालूम हुई तो हुक्म बदल दिया। कभी इसलिये होता है कि जिस वक़्त यह हुक्म जारी किया गया उस वक़्त के हालात के मुनासिब था और आगे होने वाले वाक़िआ़त व हालात का अन्दाज़ा न था, जब हालात बदले तो हुक्म भी बदलना पड़ा। ये दोनों सूरतें अल्लाह के अहकाम में नहीं हो सकतीं।

एक तीसरी सूरत यह भी होती है कि हुक्म देने वाले को शुरू ही से यह भी मालूम था कि हालात बदलेंगे और उस वक़्त यह हुक्म मुनासिब न रहेगा, दूसरा हुक्म देना होगा, यह जानते हुए आज एक हुक्म दे दिया और जब अपने इल्म के मुताबिक़ हालात बदले तो अपनी पहली क़रारदाद (पहले से तयशुदा योजना) के मुताबिक़ हुक्म भी बदल दिया। इसकी मिसाल ऐसी है कि मरीज़ के मौजूदा हालात को देखकर हकीम या डॉक्टर एक दवा तजवीज़ करता है और वह जानता है कि दो रोज़ इस दवा के इस्तेमाल करने के बाद मरीज़ का हाल बदलेगा उस वक़्त मुझे दूसरी दवा तजवीज़ करनी होगी। यह सब जानते हुए वह पहले दिन एक दवा तजवीज़ करता है जो उस दिन के मुताबिक़ है, दो दिन के बाद हालात बदलने पर दूसरी दवा तजवीज़ करता है।

माहिर हकीम डॉक्टर यह भी कर सकता है कि पहले ही दिन पूरे इलाज का निज़ाम लिखकर दे दे कि दो रोज़ तक यह दवा इस्तेमाल करो, फिर तीन रोज़ फ़ुलाँ दवा, फिर एक हफ़्ते फ़ुलाँ दवा। लेकिन यह मरीज़ की तबीयत पर बेवजह का एक बोझ भी डालना है, इसमें ग़लत-फ़हमी की वजह से अ़मली ख़लल का भी ख़तरा है, इसलिये वह पहले ही से सब तफ़सीलात नहीं बतलाता।

अल्लाह जल्ल शानुहू के अहकाम में और उसकी नाज़िल की हुई किताबों में सिर्फ़ यही आख़िरी सूरत नस्ख़ (निरस्त होने और बदलने) की हो सकती है और होती रही है, हर आने वाली नुबुव्वत और हर नाज़िल होने वाली किताब ने पिछली नुबुव्वत और किताब के बहुत से अहकाम को मन्सूख़ करके

नये अहकाम जारी किये और इसी तरह एक ही नुबुव्वत व शरीअ़त में ऐसा होता रहा कि कुछ अ़रसे तक एक हुक्म जारी रहा फिर अल्लाह की हिक्मत के तक़ाज़े के सबब उसको बदलकर दूसरा हुक्म नाफ़िज़ (लागू और जारी) कर दिया गया। सही मुस्लिम की हदीस में है:

لم تكن نبوّة قط الّا تناسخت. (مسلم)

"यानी कभी कोई नुबुव्वत नहीं आई जिसने अहकाम में नस्ख़ और रद्दोबदल न किया हो।"

(तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

जहालत भरे शुब्हात

अलबत्ता कुछ जाहिल यहूदियों ने अपनी जहालत से अहकामे इलाही के नस्ख़ को दुनियावी अहकाम के नस्ख़ की पहली दोनों सूरतों पर क़ियास (गुमान और अन्दाज़ा) करके नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ताने मारे, उसी के जवाब में ये आयतें नाज़िल हुईं।

(इब्ने जरीर, इब्ने कसीर वग़ैरह)

मुसलमानों में से 'मोतज़िला' फ़िर्क़े के कुछ लोगों ने शायद उन मुख़ालिफ़ों के ताने से बचने की यह राह निकाली कि अल्लाह के अहकाम में नस्ख़ (रद्दोबदल) होने की संभावना तो है, कोई चीज़ इस संभावना के लिये रोक और बाधा नहीं, लेकिन पूरे क़ुरआन में नस्ख़ कहीं नहीं हुआ, न कोई आयत नासिख़ (किसी हुक्म को बदलने और निरस्त करने वाली) है न मन्सूख़ (रद्द या निरस्त होने वाली या बदले जाने वाली)। यह क़ौल अबू मुस्लिम अस्फ़हानी की तरफ़ मन्सूब किया जाता है, जिस पर उम्मत के उलेमा ने हमेशा इनकार व रद्द फ़रमाया है। तफ़सीर 'रूहुल-मआ़नी' में है:

واتفقت اهل الشرائع على جواز النسخ و وقوعه وخالفت اليهود غير العيسوية فى جوازه وقالوا يمتنع عقلاً وابو مسلم الاصفهانى فى وقوعه فقال انه و ان جاز عقلا لكنه لم يقع. (روح المعانى ص ۳۵۲، ج۱)

तर्जुमाः "तमाम शरीअ़त रखने वालों का नस्ख़ के जायज़ होने और पाये जाने दोनों पर इत्तिफ़ाक़ है, सिर्फ़ यहूदियों ने सिवाय ईसवी शरीअ़त के नस्ख़ की संभावना का इनकार किया है, और अबू मुस्लिम अस्फ़हानी ने नस्ख़ के वाक़े होने का इनकार किया है, वह कहता है कि नस्ख़ अल्लाह के अहकाम में सम्भव तो है मगर कहीं वाक़े हुआ नहीं।"

और इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी तफ़सीर में फ़रमायाः

معرفة هذا الباب اكيدة و فائدته عظيمة لا تستغنى عن معرفته العلمآء ولا ينكره الا الجهلة الاغبيآء.

(قرطبى ص ۵۵، ج۱)

तर्जुमाः "नस्ख़ के बारे में जानना और उसकी पहचान बहुत ज़रूरी है और फ़ायदा इसका बहुत बड़ा है। इसकी मारिफ़त (पहचान) से उलेमा बेपरवाह नहीं हो सकते और जाहिलों बेवक़ूफ़ों के सिवाय कोई इसका इनकार नहीं कर सकता।"

इमाम क़ुर्तुबी ने इस जगह एक वाक़िआ़ हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु का भी नक़ल किया है कि एक मर्तबा वह मस्जिद में तशरीफ़ लाये तो कोई आदमी वअ़ज़ (दीनी बयान) कह रहा था।

आपने लोगों से पूछा यह क्या करता है? लोगों ने कहा कि वअ़ज़ व नसीहत कर रहा है। आपने फ़रमाया- नहीं यह कोई वअ़ज़ व नसीहत नहीं करता बल्कि यह कहना चाहता है कि मैं फ़ुलाँ पुत्र फ़ुलाँ हूँ सो पहचानो। फिर उस शख़्स को बुलवाकर पूछा कि क्या तुम क़ुरआन व हदीस के नासिख़ मन्सूख़ अहकाम को जानते हो? उसने कहा कि नहीं, मैं नहीं जानता। हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि हमारी मस्जिद से निकल जाओ आईन्दा कभी यहाँ वअ़ज़ (बयान) न कहो।

क़ुरआन व हदीस में नस्ख़ (अहकाम के बदले जाने, निरस्त होने वग़ैरह) के वजूद व वाक़े होने के बारे में सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम के इतने अक़वाल व रिवायतें मौजूद हैं जिनको नक़ल करना मुश्किल है। तफ़सीर इब्ने जरीर, इब्ने कसीर, दुर्रे मन्सूर वग़ैरह में मज़बूत और सही सनदों के साथ भी बहुत सी रिवायतें ज़िक्र हुई हैं और ज़ईफ़ रिवायतों का तो शुमार और गिनती ही नहीं। इसी लिये उम्मत में यह मसला हमेशा मुत्तफ़क़ा रहा है सिर्फ़ अबू मुस्लिम अस्फ़हानी और चन्द मोतज़िली हज़रात ने नस्ख़ के वाक़े होने का इनकार किया है, जिन पर इमाम राज़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने तफ़सीरे कबीर में बहुत तफ़सील के साथ रद्द किया है।

नस्ख़ के मफ़्हूम में पहले और बाद के उलेमा की इस्तिलाहों में फ़र्क़

चूँकि नस्ख़ के इस्तिलाही मायने 'हुक्म की तब्दीली' के हैं, और यह तब्दीली जिस तरह एक हुक्म को बिल्कुल मन्सूख़ (ख़त्म और निरस्त) करके उसकी जगह दूसरा हुक्म लाने में है जैसे बैतुल-मुक़द्दस के बजाय बैतुल्लाह को क़िब्ला बना देना, इसी तरह किसी आ़म हुक्म में किसी क़ैद और शर्त को बढ़ा देना भी एक क़िस्म की तब्दीली है। उम्मत के पहले उलेमा ने नस्ख़ को इसी आ़म मायने में इस्तेमाल फ़रमाया है, जिसमें किसी हुक्म की पूरी तब्दीली भी दाख़िल है और आंशिक तब्दीली, क़ैद व शर्त लगा देना या किसी हिस्से को निकाल देना वग़ैरह की भी उसमें शामिल है। इसलिये पहले ज़माने के उलेमा हज़रात के नज़दीक क़ुरआन में मन्सूख़ आयतें पाँच सौ तक शुमार की गई हैं।

बाद के ज़माने के उलेमा हज़रात ने सिर्फ़ उस तब्दीली का नाम नस्ख़ रखा है जिसकी पहले हुक्म के साथ किसी तरह ततबीक़ (जोड़ और मुवाफ़क़त) न हो सके। ज़ाहिर है कि इस इस्तिलाह के मुताबिक़ मन्सूख़ आयतों की संख्या बहुत घट जायेगी। इसी का लाज़िमी असर यह था कि पहले ज़माने के उलेमा ने तक़रीबन पाँच सौ क़ुरआनी आयतों में नस्ख़ साबित किया था जिसमें मामूली सी तब्दीली, क़ैद व शर्त या किसी हिस्से को अलग और बाहर रखना वग़ैरह को भी शामिल किया था और बाद के उलेमा हज़रात में अ़ल्लामा सुयूती रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने सिर्फ़ बीस आयतों को मन्सूख़ क़रार दिया। उनके बाद हज़रत शाह वलीयुल्लाह रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने उनमें भी ततबीक़ (जोड़ और मुवाफ़क़त) की सूरत पैदा करके सिर्फ़ पाँच आयतों को मन्सूख़ फ़रमाया है जिनमें कोई ततबीक़ बग़ैर दूर के मायने लिये नहीं हो सकती। यह चीज़ इस लिहाज़ से अच्छी और पसन्दीदा है कि अहकाम में असल हुक्म का बाक़ी रहना है, नस्ख़ असल के ख़िलाफ़ है, इसलिये जहाँ आयत के यह मायने हो सकते हैं कि किसी न किसी दर्जे में उस पर अ़मल हो रहा है या हो सकता है वहाँ उसमें बिना ज़रूरत

नस्ख़ (हुक्म में रद्दोबदल या निरस्त होना) मानना दुरुस्त नहीं।

लेकिन नस्ख़ के इस क़द्र कम मानने का यह मंशा हरगिज़ नहीं हो सकता कि नस्ख़ का मसला इस्लाम या क़ुरआन पर कोई ऐब था, जिसको दूर करने की कोशिश चौदह सौ बरस तक चलती रही, आख़िरी इन्किशाफ़ (हक़ीक़त से पर्दा उठाना) हज़रत शाह वलीयुल्लाह रहमतुल्लाहि अ़लैहि को हुआ, जिसमें घटते-घटते पाँच रह गईं और अब इसका इन्तिज़ार है कि कोई नया मुहक़्क़िक़ इन पाँच का भी ख़ात्मा करके बिल्कुल शून्य तक पहुँचा दे।

नस्ख़ के मसले की तहक़ीक़ में ऐसा रुख़ इख़्तियार करना न इस्लाम और क़ुरआन की कोई सही ख़िदमत है और न ऐसा करने से सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम और फिर चौदह सौ बरस के पहले व बाद के उलेमा के लिखे मज़ामीन व तहक़ीक़ात को धोया जा सकता है और न मुख़ालिफ़ों का एतिराज़ करना इससे बन्द हो सकता है, बल्कि इस ज़माने के बेदीन लोगों के हाथ में यह एक हथियार देना है कि यह भी हो सकता है कि चौदह सौ बरस तक तमाम उलेमा-ए-उम्मत कुछ कहते रहे हों और आख़िर में उसका ग़लत होना साबित हो जाये। अल्लाह की पनाह! अगर यह दरवाज़ा खुलेगा तो क़ुरआन और शरीअ़त से अमन (भरोसा) उठ जायेगा, इसकी क्या ज़मानत है कि आज जो किसी ने तहक़ीक़ की वह कल को ग़लत साबित नहीं हो जायेगी।

मौजूदा ज़माने में कुछ उलेमा की ऐसी तहरीरें (लेख) नज़र से गुज़री हैं जिन्होंने मज़कूरा आयत 'मा नन्सख़् मिन् आयतिन्......' को एक शर्त के साथ जुड़ा होने की वजह से एक क़ज़िया-ए-फ़र्ज़िया (यानी हक़ीक़त से दूर सिर्फ़ संभावित बात) क़रार देकर नस्ख़ की संभावना की दलील बनाया है और इसके वाक़े होने से इनकार किया है। जैसे इन आयतों में है 'लौ का-न फ़ीहिमा आलि-हतुन् इल्लल्ला-ह' (कि अगर ज़मीन व आसमान में अल्लाह के अ़लावा कोई और माबूद होता) और 'व इन् का-न लिर्रहमानि व-लदुन्' (कि अगर रहमान की कोई औलाद होती) कि दूसरे माबूद या रहमान की औलाद होने को सिर्फ़ फ़र्ज़ किया है वास्तव में इसका वजूद नहीं। हालाँकि किसी हुक्म को शर्त के साथ बाँधने और क़ज़िया-ए-शर्तिया जो "लौ" के हर्फ़ के साथ आये उसमें बड़ा फ़र्क़ है, और यह वही इस्तिदलाल (दलील पकड़ना) है जो अबू मुस्लिम अस्फ़हानी और मोतज़िली लोग पेश करते हैं।

लेकिन सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम की तफ़सीरें और पूरी उम्मत के तर्जुमे देखने के बाद इसको क़ुरआन का मतलब और उसकी तरफ़ से बताया गया कहना किसी तरह क़ाबिले क़ुबूल नहीं हो सकता। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इसी आयत से नस्ख़ के वाक़े होने पर इस्तिदलाल किया है और अनेक वाक़िआ़त शुमार कराये हैं।

(तफ़सीर इब्ने कसीर, इब्ने जरीर वग़ैरह)

यही वजह है कि उम्मत के पहले और बाद के उलेमा व मुहक़्क़िक़ीन में किसी ने भी नस्ख़ के वाक़े होने का पूरी तरह इनकार नहीं किया, ख़ुद हज़रत शाह वलीयुल्लाह रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने ततबीक़ (मुवाफ़क़त और जोड़) करके तायदाद तो कम बतलाई मगर बिल्कुल नस्ख़ के वाक़े होने का इनकार नहीं फ़रमाया। उनके बाद भी उलेमा-ए-देवबन्द के अकाबिर (बड़े उलेमा) किसी को अलग किये बग़ैर सभी नस्ख़ के वाक़े होने के क़ायल चले आये हैं, जिनमें से कई हज़रात की मुस्तक़िल या आंशिक तफ़सीरें भी मौजूद हैं, किसी ने भी नस्ख़ के वाक़े होने का पूरी तरह इनकार नहीं किया।

वल्लाहु सुब्हानहू व तआ़ला आलम।

"औ नुन्सिहा" यह मशहूर किराअत के मुताबिक़ 'इनसाउन्' और 'निस्यानुन्' से लिया गया है, मायने यह हैं कि कभी आयत के नस्ख़ की यह सूरत भी होती है कि वह आयत रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और तमाम सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के ज़ेहनों से बिल्कुल भुला दी जाये, जैसा कि इस तफ़सीर में कई वाक़िए इस तरह के मुफ़स्सिरीन हज़रात ने ज़िक्र किये हैं। इस भुला देने का मक़सद यही होता है कि आईन्दा उस पर अ़मल कराना मक़सूद नहीं।

नस्ख़ के बारे में बक़िया अहकाम की तफ़सीलात की यहाँ गुंजाईश नहीं, इसका असल मौक़ा और मक़ाम 'उसूले फ़िक़ा' की किताबें हैं।

اَمْ تُرِيْدُوْنَ اَنْ تَسْئَلُوْا رَسُوْلَكُمْ كَمَا سُئِلَ مُوْسٰى مِنْ قَبْلُ ، وَمَنْ يَّتَبَدَّلِ الْكُفْرَ بِالْاِيْمَانِ فَقَدْ ضَلَّ سَوَآءَ السَّبِيْلِ ۝

अम् तुरीदू-न अन् तस्अलू रसूलकुम् कमा सुइ-ल मूसा मिन् क़ब्लु, व मंय्य-तबद्दलिल्-कुफ़्-र बिल्ईमानि फ़-क़द् ज़ल्-ल सवाअस्सबील (108)	**क्या तुम मुसलमान भी चाहते हो कि सवाल करो अपने रसूल से जैसे सवाल हो चुके हैं मूसा से इससे पहले? और जो कोई कुफ़्र लेवे बदले ईमान के तो वह बहका सीधी राह से। (108)**

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(कुछ यहूदियों ने हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में मुख़ालफ़त व् एतिराज़ के तौर पर अ़र्ज़ किया कि जिस तरह मूसा अ़लैहिस्सलाम पर एक ही बार में तौरात नाज़िल हुई इसी तरह आप क़ुरआन एक ही बार में लाईये। इस पर इरशाद होता है कि) हाँ क्या तुम यह चाहते हो कि अपने (मौजूदा वक़्त के) रसूल से (बेजा-बेजा) दरख़्वास्तें करो? जैसा कि इससे पहले (तुम्हारे बड़ों की तरफ़ से हज़रत) मूसा (अ़लैहिस्सलाम) से भी (ऐसी-ऐसी) दरख़्वास्तें की जा चुकी हैं (जैसे ख़ुदा तआ़ला को खुले तौर पर देखने की दरख़्वास्त की थी और ऐसी दरख़्वास्तें जिनसे सिर्फ़ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर एतिराज़ करना और अल्लाह की मस्लेहतों में रोड़े अटकाना और रुकावटें डालना ही मक़सूद हो और ईमान लाने का फिर भी इरादा न हो, ख़ालिस कुफ़्र की बातें हैं और) जो शख़्स बजाय ईमान लाने के कुफ़्र (की बातें) करे बेशक वह शख़्स सही और सीधे रास्ते से दूर जा पड़ा।

फ़ायदा: इस दरख़्वास्त को बेजा इसलिये फ़रमाया कि हर फ़ेल (काम) में अल्लाह तआ़ला की हिक्मतें और मस्लेहतें अलग-अलग होती हैं। बन्दे को उसमें किसी एक तरीक़े के मुतैयन करने का क्या हक़ है कि वह कहे कि यह बात इस तरह हो, यह इस तरह हो, उसका काम तो बस यह होना चाहिये कि जो कुछ हुक्म हो गया बस उसके आगे गर्दन झुका दी, न कि उसमें सबब और कारण

ढूँढने लगे।

हज़रत शैख़ुल-हिन्द मौलाना महमूदुल-हसन रहमतुल्लाहि अ़लैहि के तर्जुमे में यह ख़िताब मुसलमानों से क़रार दिया है, इसका हासिल मुसलमानों को इस पर तंबीह करना होगा कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से बेजा सवाल न किया करें।

وَدَّ كَثِيرٌ مِّنْ أَهْلِ الْكِتَٰبِ لَوْ يَرُدُّونَكُم مِّنۢ بَعْدِ إِيمَٰنِكُمْ كُفَّارًا حَسَدًا مِّنْ عِندِ أَنفُسِهِم مِّنۢ بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُمُ الْحَقُّ ۖ فَاعْفُوا وَاصْفَحُوا حَتَّىٰ يَأْتِيَ اللَّهُ بِأَمْرِهِ ۗ إِنَّ اللَّهَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ ۝ وَأَقِيمُوا الصَّلَوٰةَ وَآتُوا الزَّكَوٰةَ ۚ وَمَا تُقَدِّمُوا لِأَنفُسِكُم مِّنْ خَيْرٍ تَجِدُوهُ عِندَ اللَّهِ ۗ إِنَّ اللَّهَ بِمَا تَعْمَلُونَ بَصِيرٌ ۝

वद्-द कसीरुम् मिन् अह्लिल्-किताबि लौ यरुद्दूनकुम् मिम्-बअ्दि ईमानिकुम् कुफ्फ़ारन् ह-सदम्-मिन् अि़न्दि अन्फ़ुसिहिम् मिम्-बअ्दि मा तबय्य-न लहुमुल्-हक़्क़ु फ़अ्फ़ू वस्फ़हू हत्ता यअ्तियल्लाहु बिअम्रिही, इन्नल्ला-ह अ़ला कुल्लि शैइन् क़दीर (109) ▲ व अक़ीमुस्सला-त व आतुज़्ज़का-त, व मा तुक़द्दिमू लिअन्फ़ुसिकुम् मिन् ख़ैरिन् तजिदूहु अि़न्दल्लाहि, इन्नल्ला-ह बिमा तअ्मलू-न बसीर (110)	दिल चाहता है बहुत से अहले किताब का कि किसी तरह तुमको फेरकर मुसलमान होने के बाद काफ़िर बना दें अपने दिली हसद के सबब, बाद इसके कि ज़ाहिर हो चुका उन पर हक़। सो तुम दरगुज़र करो और ख़्याल में न लाओ जब तक भेजे अल्लाह अपना हुक्म, बेशक अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है। (109) ▲ और क़ायम रखो नमाज़ और देते रहो ज़कात और जो कुछ आगे भेज दोगे अपने वास्ते भलाई पाओगे उसको अल्लाह के पास, बेशक अल्लाह जो कुछ तुम करते हो सब देखता है। (110)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(कुछ यहूदी रात-दिन विभिन्न तदबीरों से दोस्ती और ख़ैरख़्वाही के अन्दाज़ में मुसलमानों को इस्लाम से फेरने की कोशिश किया करते थे, और बावजूद नाकामी के अपनी धुन से बाज़ न आते थे। हक़ तआ़ला ने मुसलमानों को इससे आगाह फ़रमा दिया कि) इन अहले किताब (यानी यहूदियों) में से बहुत-से दिल से यह चाहते हैं कि तुमको तुम्हारे ईमान लाने के बाद फिर काफ़िर कर डालें (और यह चाहना कुछ ख़ैरख़्वाही से नहीं, जैसा कि वे इज़हार करते हैं, बल्कि) सिर्फ़ हसद और जलन की वजह से है जो कि (तुम्हारी तरफ़ से किसी मामले के सबब पैदा नहीं हुआ, बल्कि) ख़ुद उनके दिलों ही से (जोश मारता) है। (और यह भी नहीं कि उन पर हक़ स्पष्ट न हुआ हो बल्कि) हक़ वाज़ेह और

स्पष्ट होने के बाद (यह हालत है, अब इस पर मुसलमानों को उन पर गुस्सा आना ही था इसलिये इरशाद होता है कि) ख़ैर (अब तो) माफ़ करो और दरगुज़र करो, जब तक हक़ तआ़ला (इस मामले के बारे में) अपना हुक्म (नया क़ानून) भेजें। (इशारे से बतला दिया कि उनकी शरारतों का इलाज आ़म अमन की व्यवस्था के क़ानून यानी क़िताल व जिज़्ये से हम जल्द करने वाले हैं।

इस पर मुसलमानों को अपनी कमज़ोरी और उनकी क़ुव्वत देखकर उस क़ानून के लागू और जारी करने के मुताल्लिक़ ताज्जुब हो सकता था इसलिये इरशाद होता है कि तुम ताज्जुब क्यों करते हो) अल्लाह तआ़ला हर चीज़ पर (चाहे वह मामूली हो चाहे अ़जीब हो) क़ादिर हैं। और (फ़िलहाल सिर्फ़) नमाज़ें पाबन्दी से पढ़े जाओ और (जिन पर ज़कात फ़र्ज़ है) ज़कात दिए जाओ (और जब वह क़ानून आ जायेगा इन नेक आमाल के साथ उसका भी इज़ाफ़ा कर लेना) और (यह न समझो कि जब तक जिहाद का हुक्म न आये सिर्फ़ नमाज़ रोज़े से सवाब में कुछ कमी रहेगी, नहीं! बल्कि) जो नेक काम भी अपनी भलाई के वास्ते जमा करते रहोगे हक़ तआ़ला के पास (पहुँचकर) उसको (पूरा-पूरा सिले के साथ) पा लोगे, क्योंकि अल्लाह तआ़ला तुम्हारे सब किए हुए कामों की देखभाल कर रहे हैं (उनमें का एक ज़र्रा भी ज़ाया न होने पायेगा)।

फ़ायदाः उस वक़्त की हालत का यही तक़ाज़ा था फिर हक़ तआ़ला ने इस वायदे को पूरा फ़रमाया और जिहाद की आयतें नाज़िल हुईं, जिसके बाद यहूद के साथ भी वह क़ानून बरता गया और बुरे व नामाक़ूल लोगों के साथ उनकी हरकत व गतिविधि के अनुसार उनके फ़साद के बदले क़त्ल या जला-वतनी (देश निकाला) या जिज़्ये पर अ़मल दरामद किया गया।

وَقَالُوا لَنْ يَدْخُلَ الْجَنَّةَ إِلَّا مَنْ كَانَ هُودًا أَوْ نَصٰرٰى ۗ

تِلْكَ أَمَانِيُّهُمْ ۗ قُلْ هَاتُوا بُرْهَانَكُمْ إِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِينَ ﴿١١١﴾ بَلٰى ۚ مَنْ أَسْلَمَ وَجْهَهُ لِلّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ فَلَهُ أَجْرُهُ عِنْدَ رَبِّهِ ۖ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ ﴿١١٢﴾ وَقَالَتِ الْيَهُودُ لَيْسَتِ النَّصٰرٰى عَلٰى شَيْءٍ ۖ وَقَالَتِ النَّصٰرٰى لَيْسَتِ الْيَهُودُ عَلٰى شَيْءٍ ۙ وَهُمْ يَتْلُونَ الْكِتٰبَ ۗ كَذٰلِكَ قَالَ الَّذِينَ لَا يَعْلَمُونَ مِثْلَ قَوْلِهِمْ ۚ فَاللّٰهُ يَحْكُمُ بَيْنَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ فِيمَا كَانُوا فِيهِ يَخْتَلِفُونَ ﴿١١٣﴾

व क़ालू लंय्यद्ख़ुलल् जन्न-त इल्ला	और कहते हैं कि हरगिज़ न जायेंगे जन्नत
मन् का-न हूदन् औ नसारा, तिल्-क	में मगर जो होंगे यहूदी या ईसाई। ये
अमानिय्युहुम, क़ुल् हातू बुर्हानकुम्	आरज़ूएँ (तमन्नायें) बाँध ली हैं उन्होंने, कह
इन् कुन्तुम् सादिक़ीन (111) बला,	दे ले आओ सनद अपनी अगर तुम सच्चे
मन् अस्ल-म वज्हहू लिल्लाहि व हु-व	हो। (111) क्यों नहीं! जिसने ताबे कर दिया
मुह्सिनुन् फ-लहू अज्रुहू अ़िन्-द	मुँह अपना अल्लाह के और वह नेक काम

रब्बिही व ला ख़ौफ़ुन् अ़लैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून (112) ❁ व क़ालतिल्-यहूदु लैसतिन्नसारा अ़ला शैइंव्-व क़ालतिन्नसारा लैसतिल् यहूदु अ़ला शैइंव्-व हुम् यत्लूनल्-किता-ब, कज़ालि-क क़ालल्लज़ी-न ला यअ़्लमू-न मिस्-ल क़ौलिहिम् फ़ल्लाहु यह्कुमु बैनहुम् यौमल्-क़ियामति फ़ीमा कानू फ़ीहि यख़्तलिफ़ून (113)	करने वाला है तो उसी के लिये है सवाब उसका अपने रब के पास, और न डर है उनपर और न वे ग़मगीन होंगे। (112) ❁ और यहूद तो कहते हैं कि ईसाई नहीं किसी राह पर और ईसाई कहते हैं कि यहूद नहीं किसी राह पर, इसके बावजूद कि सब पढ़ते हैं किताब, इसी तरह कहा उन लोगों ने जो जाहिल हैं उन्हीं की सी बात, अब अल्लाह हुक्म (फ़ैसला) करेगा उनमें क़ियामत के दिन जिस बात में झगड़ते थे। (113)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और यहूदी व ईसाई (यूँ) कहते हैं कि जन्नत में हरगिज़ कोई न जाने पायेगा सिवाय उन लोगों के जो यहूदी हों (यह तो यहूद का क़ौल है) या उन लोगों के जो ईसाई हों (यह ईसाईयों का क़ौल है, हक़ तआ़ला उनकी तरदीद फ़रमाते हुए इरशाद फ़रमाते हैं कि) ये (ख़ाली) दिल बहलाने की बातें हैं (और हक़ीक़त कुछ भी नहीं) आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उनसे यह तो) कहिये कि (अच्छा) अपनी दलील लाओ अगर तुम (इस दावे में) सच्चे हो। (सो वे तो क्या दलील लायेंगे क्योंकि कोई दलील है ही नहीं, अब हम इसके ख़िलाफ़ पहले तो यह दावा करते हैं कि) ज़रूर दूसरे लोग (भी जन्नत में) जाएँगे (फिर इस पर दलील लाते हैं कि हमारा क़ानून जो आसमानी मज़हबों के मानने वालों की सर्वसम्मति से सुबूत के दर्जे को पहुँच चुका है, यह है कि) जो कोई शख़्स भी अपना रुख़ अल्लाह तआ़ला की तरफ़ झुका दे (यानी आमाल व अ़क़ायद में फ़रमाँबरदारी इख़्तियार करे) और (इसके साथ) वह मुख़्लिस भी हो (कि फ़रमाँबरदारी दिली तौर पर इख़्तियार की हो, केवल मस्लेहत से दिखाने के लिये न हो) तो ऐसे शख़्स को उस (की फ़रमाँबरदारी) का अज्र मिलता है उसके परवर्दिगार के पास पहुँचकर, और न ऐसे लोगों पर (क़ियामत में) कोई अन्देशा (यानी परेशानी वाला वाक़िआ़ पड़ने वाला) है और न ऐसे लोग (उस दिन) ग़मगीन होने वाले हैं (क्योंकि फ़रिश्ते उनको ख़ुशख़बरियाँ सुनाकर बेफ़िक्र कर देंगे)।

तर्क देने का हासिल यह हुआ कि जब यह क़ानून मुसल्लम (माना हुआ) है तो अब सिर्फ़ यह देख लो कि यह बात किस पर सादिक़ आती (फ़िट बैठती) है? सो ज़ाहिर है कि किसी पहले हुक्म के मन्सूख़ (तब्दील या निरस्त) हो जाने के बाद उस पर अ़मल करने वाला किसी भी तौर पर

फ़रमाँबरदार नहीं कहला सकता, लिहाज़ा यहूदी व ईसाई फ़रमाँबरदार न हुए, बल्कि दूसरे और बाद के हुक्म पर अमल करना फ़रमाँबरदारी समझी जायेगी और यह शान मुसलमानों की है कि नुबुव्वत व शरीअ़ते मुहम्मदिया को क़ुबूल कर लिया, चुनाँचे यही जन्नत में दाख़िल होने वाले शुमार हुए।

और 'मुख़्लिसीन' की क़ैद (शर्त और बन्दिश लगाने) से मुनाफ़िक़ लोग निकल गये (क्योंकि वे भी शरई तौर पर काफ़िरों ही में दाख़िल और जहन्नम के हक़दार हैं। और (एक बार कुछ यहूदी और कुछ ईसाई जमा होकर मज़हबी मुबाहसा (गुफ़्तगू और बहस) करने लगे, तो यहूद तो अपने अ़क़ीदे के मुवाफ़िक़ ईसाईयों के दीन को बातिल (ग़लत और ग़ैर-हक़) बतलाते और हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की नुबुव्वत और इन्जील के अल्लाह की किताब होने का इनकार करते थे, मगर ईसाई भी ज़िद व तास्सुब (बेजा तरफ़दारी) में आकर यहूदियों के दीन को बेअसल व बातिल कहने लगे और हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम के रसूल होने और तौरात के अल्लाह की किताब होने का इनकार करने लगे। अल्लाह तआ़ला इस क़िस्से को नक़ल फ़रमाकर बतौर तरदीद फ़रमाते हैं कि) और यहूद कहने लगे कि ईसाई (लोगों का मज़हब) किसी बुनियाद पर (क़ायम) नहीं (यानी सिरे से ग़लत है) और इसी तरह ईसाई कहने लगे कि यहूद (का मज़हब) किसी बुनियाद पर क़ायम नहीं (यानी सिरे से ग़लत है), हालाँकि ये सब (लोग आसमानी) किताबें (भी) पढ़ते (पढ़ाते) हैं (यानी यहूदी तौरात को और ईसाई इन्जील को पढ़ते और देखते हैं और दोनों किताबों में दोनों रसूलों और दोनों किताबों की तस्दीक़ मौजूद है कि दोनों मज़हबों की असल बुनियाद है, अगरचे मन्सूख़ हो जाने की बिना पर क़ाबिले अ़मल न हो यह और बात है)।

और अहले किताब तो ऐसे दावे करते ही थे उनकी देखा-देखी मुश्रिकों को भी जोश आया और) इसी तरह से ये लोग (भी) जो कि (कोरे) बेइल्म हैं, उन (ही अहले किताब) के जैसी बात कहने लगे (कि इन यहूदियों व ईसाईयों सब का दीन बेबुनियाद है, हक़ पर बस हम ही हैं)। सो (यहाँ सब अपनी अपनी हाँक लें) अल्लाह इन सब के बीच (अ़मली) फ़ैसला कर देंगे क़ियामत के दिन, उन तमाम मुक़द्दमों में जिनमें वे आपस में इख़्तिलाफ़ (विवाद और झगड़ा) कर रहे थे (और वह अ़मली फ़ैसला यह होगा कि हक़ वालों को जन्नत में और बातिल वालों को जहन्नम में फेंक दिया जायेगा। अ़मली फ़ैसले की क़ैद इसलिये लगाई कि क़ौली और तार्किक फ़ैसला तो अ़क़्ली और नक़ली दलीलों के ज़रिये दुनिया में भी हो चुका है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों में अल्लाह तआ़ला ने यहूदियों व ईसाईयों के आपसी झगड़ों और एक दूसरे पर रद्द का ज़िक्र फ़रमाकर उनकी नादानी और उस झगड़े के नुक़सानदेह प्रभावों का बयान, फिर असल हक़ीक़त का इज़्हार फ़रमाया है। इन तमाम वाक़िआ़त में मुसलमानों के लिये बड़ी अहम हिदायतें हैं जिनका बयान आगे आता है।

यहूदी व ईसाई दोनों ने दीन की असल हक़ीक़त को भुलाकर मज़हब के नाम पर एक क़ौमियत बना ली थी और उनमें से हर एक अपनी ही क़ौम के जन्नती और मक़बूल होने और अपने सिवा दुनिया की तमाम क़ौमों के दोज़ख़ी और गुमराह होने का एतिक़ाद रखने वाला था।

इस नामाक़ूल झगड़े और विवाद का नतीजा यह निकला कि मुश्रिक लोगों को यह कहने का मौक़ा मिल गया कि ईसाईयत भी बेबुनियाद और यहूदियत भी बेअसल, हक़ व सही बस हमारी बुत परस्ती (बुतों को पूजना) है।

हक़ तआ़ला ने इन दोनों क़ौमों की जहालत व गुमराही के मुताल्लिक़ फ़रमाया कि ये दोनों क़ौमें जन्नत में जाने के असल सबब से ग़ाफ़िल हैं, महज़ मज़हब के नाम की क़ौमियत के पीछे पड़े हुए हैं। हक़ीक़त यह है कि यहूदी मज़हब हो या ईसाई मज़हब या इस्लाम, इन सब की असल रूह दो चीज़ें हैं- एक यह कि बन्दा दिल व जान से अपने आपको ख़ुदा के सुपुर्द कर दे, उसकी इताअ़त व फ़रमाँबरदारी को अपना अ़क़ीदा व मज़हब समझे, चाहे यह किसी मज़हब में हासिल हो। दीन व मज़हब की हक़ीक़त को भुलाकर या पीठ पीछे डालकर यहूदी या ईसाई क़ौमियत को अपना मक़सद बना लेना दीन व मज़हब से नावाक़फ़ियत (अज्ञानता व जहालत) और गुमराही (रास्ते से भटकना) है।

दूसरी बात यह है कि जन्नत में जाने के लिये सिर्फ़ यह भी काफ़ी नहीं कि कोई आदमी अपने दिल से ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी का इरादा तो दुरुस्त कर ले मगर इताअ़त व फ़रमाँबरदारी (अल्लाह के हुक्मों के पालन) और इबादत के तरीक़े अपने ज़ेहन व ख़्याल के मुताबिक़ ख़ुद गढ़ ले, बल्कि यह ज़रूरी है कि इबादत व इताअ़त और हुक्मों के पालन के तरीक़े भी वही इख़्तियार करे जो ख़ुदा तआ़ला ने अपने रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़रिये बताये और निर्धारित किये हों।

पहली बात 'बला मन् अस्ल-म......' के ज़रिये और दूसरी बात 'व हु-व मुहसिनुन्........' के ज़रिये स्पष्ट की गई है, जिससे मालूम हुआ कि आख़िरत की निजात और जन्नत में दाख़िले के लिये सिर्फ़ इताअ़त का इरादा काफ़ी नहीं बल्कि नेक अ़मल भी ज़रूरी है, और नेक अ़मल वही तालीम व तरीक़ा माना जायेगा जो क़ुरआन और सुन्नते रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) के मुताबिक़ हो।

नस्ली मुसलमान हो या यहूदी व ईसाई, अल्लाह के यहाँ उसकी कोई क़ीमत नहीं, असल चीज़ ईमान और नेक अ़मल है

जो शख़्स इन बुनियादी उसूलों में से किसी भी उसूल को छोड़ दे चाहे वह यहूदी हो या ईसाई या मुसलमान, और फिर सिर्फ़ नाम की क़ौमियत के गुमान और घमण्ड में अपने आपको जन्नत का ठेकेदार समझ ले तो यह सिर्फ़ उसकी ख़ुद-फ़रेबी (अपने आपको धोखा देना) है, जिसका हक़ीक़त से दूर का भी वास्ता नहीं। अल्लाह तआ़ला के नज़दीक कोई भी इन नामों का सहारा लेकर क़रीब नहीं हो सकता, न मक़बूल बन सकता है, जब तक उसमें ईमान व नेक अ़मल की रूह मौजूद न हो।

फिर ईमान के उसूल तो हर रसूल और हर शरीअ़त के ज़माने में मुश्तरक और एक जैसे रहे हैं, अलबत्ता नेक और मक़बूल अ़मल की शक्लें कुछ अदलती-बदलती रही हैं, तौरात के ज़माने में नेक अ़मल वह समझा गया जो हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम और तौरात की तालीम के मुताबिक़ था, इन्जील के दौर में नेक अ़मल यक़ीनन वही अ़मल था जो हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम और इन्जील की तालीम के मुताबिक़ था, और अब क़ुरआन के ज़माने में वही अ़मल नेक अ़मल कहे जाने का मुस्तहिक़ होगा जो नबी-ए-आख़िरुज़्ज़माँ सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के फ़रमान और उनकी लाई हुई अल्लाह की

किताब "क़ुरआन मजीद" की हिदायत के मुताबिक़ होगा।

ख़ुलासा-ए-कलाम यह कि यहूद व ईसाईयों के इस इख़्तिलाफ़ (झगड़े) के बारे में अल्लाह तआ़ला ने यह फ़ैसला फ़रमाया कि दोनों क़ौमें जहालत की बातें कर रही हैं, दोनों में से कोई भी जन्नत का ठेकेदार नहीं और न ही दोनों के मज़हब बेबुनियाद और बेअसल हैं, बल्कि दोनों मज़हबों की सही बुनियाद मौजूद है। ग़लत-फ़हमी का असल सबब यह है कि उन्होंने मज़हब व मिल्लत की असल रूह यानी अ़क़ीदे व आमाल और नज़रियात को छोड़कर नस्ली या वतनी बुनियाद पर किसी क़ौम को यहूद ठहरा लिया और किसी को ईसाई समझ लिया।

जो यहूद की नस्ल से हो या यहूद के शहर में बसता हो या मर्दुम-शुमारी (जनगणना) में अपने आपको यहूदी बताता हो उसको यहूद समझ लिया गया। इसी तरह ईसाईयों की पहचान और निर्धारण किया गया हालाँकि ईमान के उसूल को तोड़कर और नेक आमाल से मुँह मोड़कर न कोई यहूदी यहूदी रहता है, न ईसाई ईसाई।

क़ुरआने करीम में इस इख़्तिलाफ़ (झगड़े) और इस फ़ैसले का ज़िक्र मुसलमानों को सुनाने और सचेत करने के लिये है कि कहीं वे भी इस क़िस्म की ग़लत-फ़हमी में मुब्तला न हो जायें कि हम तो पुश्तैनी और नस्ली मुसलमान हैं, हर दफ़्तर व रजिस्टर में हमारा नाम मुसलमान के ख़ाने में दर्ज है और हम ज़बान से भी अपने आपको मुसलमान ही कहते हैं, इसलिये जन्नत के तथा उन तमाम इनामी वायदों के हम ही हक़दार व पात्र हैं जो नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़रिये मुसलमानों से किये गये।

इस फ़ैसले से उन पर स्पष्ट हो जाना चाहिये कि कोई शख़्स सिर्फ़ दावे से न असली मुसलमान बनता है न कहीं मुसलमान नाम दर्ज कराने या मुसलमान की पीठ से या उनके शहर में पैदाईश होने की वजह से, बल्कि मुसलमान होने के लिये सबसे पहले इस्लाम ज़रूरी है, और इस्लाम के मायने ही अपने आपको सुपुर्द करने और सौंप देने के हैं। दूसरे 'एहसाने अ़मल' यानी सुन्नत के मुताबिक़ अ़मल को दुरुस्त करना।

लेकिन क़ुरआने करीम की इस तंबीह (चेतावनी) के बावजूद बहुत से मुसलमान इसी यहूदी व ईसाई ग़लती का शिकार हो गये कि ख़ुदा, रसूल और आख़िरत व क़ियामत से बिल्कुल ग़ाफ़िल रहकर अपना नस्ली मुसलमान होना मुसलमान होने के लिये काफ़ी समझने लगे और क़ुरआन व हदीस में जो वायदे दुनिया व आख़िरत की कामयाबी के मुसलमानों से किये गये हैं अपने आपको उनका हक़दार व पात्र समझकर उनके पूरे होने का इन्तिज़ार करने लगे, और जब वे पूरे होते नज़र नहीं आते तो क़ुरआन व हदीस के वायदों पर शक करने लगे। इसको नहीं देखते कि क़ुरआन ने केवल नस्ली मुसलमानों से कोई वायदा नहीं किया जब तक वे अपने तमाम इरादों को अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ताबे न कर दें और उनके बतलाये हुए तरीक़ों पर नेक अ़मल के पाबन्द न हों। यही ख़ुलासा है उक्त इस आयत काः

بَلٰى مَنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ فَلَهٗ اَجْرُهٗ عِنْدَ رَبِّهٖ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ○

(यानी ऊपर बयान हुई आयत 112 का)

आजकल पूरी दुनिया के मुसलमान तरह-तरह की मुसीबतों व आफ़तों का शिकार हैं, इसको देखकर बहुत से नावाकिफ़ लोगों को यह ख़्याल पैदा होता है कि शायद इन तमाम आफ़तों व मुसीबतों का सबब हमारा इस्लाम ही है, लेकिन मज़कूरा तहरीर से वाज़ेह हो गया कि इसका असली सबब हमारा इस्लाम नहीं बल्कि इस्लाम को छोड़ देना है कि हमने इस्लाम का सिर्फ़ नाम बाक़ी रखा है, न उसके अक़ीदे हमारे अन्दर हैं न अख़्लाक़ न आमाल, कहना चाहियेः

वज़ा में हम हैं नसारा तो तमद्दुन में हुनूद

(यानी शक्ल व सूरत हमारी ईसाईयों जैसी है और तौर-तरीक़े व तहज़ीब हिन्दुओं जैसी।)

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

फिर हमें क्या हक़ है कि इस्लाम और मुस्लिम के लिये किये हुए वायदों और इनामों का हम इन्तिज़ार करें।

अलबत्ता यहाँ यह सवाल पैदा हो सकता है कि हम कुछ भी सही नाम तो इस्लाम का लेते हैं, अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नाम लेवा तो हैं, और जो काफ़िर खुले तौर पर अल्लाह व रसूल की मुख़ालफ़त करते हैं इस्लाम का नाम लेना भी पसन्द नहीं, वे तो आज दुनिया में हर तरह की तरक़्क़ी कर रहे हैं, बड़ी-बड़ी हुकूमतों के मालिक बने हुए हैं, दुनिया के उद्योग और तिजारतों के ठेकेदार बने हुए हैं। अगर हमारे बुरे आमाल की वजह से हमें यह सज़ा मिल रही है कि हम हर जगह रौंदे जा रहे और परेशान हैं तो काफ़िरों व बदकारों को इससे ज़्यादा सज़ा मिलनी चाहिये। लेकिन अगर ज़रा ग़ौर से काम लिया जाये तो यह शुब्हा अपने आप दूर हो जायेगा।

अव्वल तो इसलिये कि दोस्त और दुश्मन के साथ मामला एक जैसा नहीं हुआ करता, दोस्त को क़दम-क़दम और बात-बात पर टोका जाता है, औलाद और शागिर्द को ज़रा-ज़रा सी बात पर सज़ा दी जाती है, लेकिन दुश्मन के साथ यह सुलूक नहीं होता, उसको ढील दी जाती है और वक़्त आने पर एक दम से पकड़ लिया जाता है।

मुसलमान जब तक ईमान व इस्लाम का नाम लेता है और अल्लाह की बड़ाई व मुहब्बत का दम भरता है वह दोस्तों की सूची में शामिल है, उसके बुरे आमाल की सज़ा उमूमन दुनिया ही में दे दी जाती है, ताकि आख़िरत का बोझ हल्का हो जाये। काफ़िर के ख़िलाफ़ कि उस पर बाग़ियों और दुश्मनों का क़ानून जारी है, दुनिया की हल्की-हल्की सज़ाओं से उनके अ़ज़ाब का बोझ हल्का नहीं किया जाता, उनको एक बार में अ़ज़ाब में पकड़ लिया जायेगा। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इस पाक इरशाद का यही मतलब है कि "दुनिया मोमिन के लिये क़ैदख़ाना और काफ़िर के लिये जन्नत है।"

दूसरी अहम बात मुसलमानों की पस्ती व परेशानी और काफ़िरों की तरक़्क़ी व आराम की यह है कि अल्लाह तआ़ला ने हर अ़मल का अलग ख़ास्सा (विशेषता) रखा है। एक अ़मल करने से दूसरे अ़मल के ख़्वास (ख़ासियतें) हासिल नहीं हो सकते। जैसे तिजारत का ख़ास्सा है माल में ज़्यादती, दवा की ख़ासियत है बदन की सेहत, अब अगर कोई शख़्स तिजारत में तो दिन रात लगा रहे बीमारी और उसके इलाज की तरफ़ तवज्जोह न दे तो सिर्फ़ तिजारत के सबब वह बीमारी से निजात नहीं पा सकता, इसी तरह दवा-दारू का इस्तेमाल करके तिजारत का ख़ास्सा यानी माल की ज़्यादती हासिल

नहीं कर सकता। काफ़िरों की दुनियावी तरक़्क़ी और माल व दौलत की अधिकता उनके कुफ़्र का नतीजा नहीं, जैसे मुसलमान की ग़ुर्बत व परेशानी इस्लाम की वजह से नहीं, बल्कि काफ़िरों ने जब आख़िरत की फ़िक्र छोड़ दी और पूरी तरह दुनिया के माल व दौलत और ऐश व आराम की फ़िक्र में लग गये, कारोबार, उद्योग, खेती-बाड़ी और हुकूमत व सियासत के लाभदायक रास्तों को इख़्तियार किया, नुक़सानदेह तरीक़ों से बचे तो दुनिया में तरक़्क़ी हासिल कर ली, अगर वे भी हमारी तरह सिर्फ़ अपने-अपने मज़हब का नाम लेकर बैठ जाते और दुनियावी तरक़्क़ी के लिये उसके उसूल के मुताबिक़ जिद्दोजहद न करते तो उनका कुफ़्र उनको माल व दौलत या हुकूमत का मालिक न बनाता। फिर हम यह कैसे समझ लें कि हमारा इस्लाम और वह भी सिर्फ़ नाम का हमारी सारी कामयाबियों और आसानियों के दरवाज़े खोल देगा? इस्लाम व ईमान अगर बिल्कुल सही उसूल पर भी हो तो उसका असली ख़ास्सा (सिफ़त) और नतीजा आख़िरत की निजात और जन्नत की हमेशा बाक़ी रहने वाली राहत है, दुनिया में माल व दौलत की अधिकता, या ऐश व आराम का ख़ूब हासिल होना उसके नतीजे में हासिल होना ज़रूरी नहीं, जब तक कि इसके लिये उसके मुताबिक़ जिद्दोजहद न की जाये। और यह बात तजुर्बे से साबित है कि जहाँ कहीं और जब कोई मुसलमान व्यापार व उद्योग, हुकूमत व सियासत के सही उसूलों को सीखकर उन पर अ़मल करने वाला हो जाता है तो वह भी उन दुनियावी फ़ायदों व परिणामों से मेहरूम नहीं रहता जो किसी काफ़िर को हासिल हो रहे हैं।

इससे वाज़ेह हुआ कि दुनिया में हमारी तंगदस्ती व ग़ुर्बत, मोहताजी व मुसीबतें और आफ़तें हमारे इस्लाम का नतीजा (परिणाम) नहीं बल्कि एक तरफ़ इस्लामी अख़्लाक़ व आमाल को छोड़ने का और दूसरी तरफ़ उन तमाम कामों से मुँह मोड़ने का नतीजा है जिनके अ़मल में लाने से माल व दौलत में ज़्यादती (अधिकता) हुआ करती है।

अफ़सोस है कि हमें जब यूरोप वालों के मेल-जोल और उनके साथ घुलने-मिलने का इत्तिफ़ाक़ पेश आया तो हमने उनसे सिर्फ़ उनका कुफ़्र, आख़िरत से ग़फ़लत, बेहयाई और बद-अख़्लाक़ी तो सब सीख ली लेकिन उनके वे आमाल न सीखे जिनकी वजह से वे दुनिया में कामयाब नज़र आते हैं, जिस मक़सद के लिये खड़े हों उसके पीछे ज़बरदस्त कोशिश, मामले की सच्चाई, बात की सच्चाई और दुनिया में असर व रसूख़ हासिल करने के नये-नये तरीक़े जो वास्तव में इस्लाम ही की असली तालीमात हैं, हमने उनको देखकर भी उसकी नक़ल उतारने की कोशिश न की तो यह क़सूर हमारे इस्लाम का है या हमारा अपना क़सूर है?

ग़र्ज़ कि क़ुरआन की इन आयतों ने स्पष्ट कर दिया कि सिर्फ़ नस्ली तौर पर इस्लाम का नाम रख लेना किसी नतीजे पर नहीं पहुँचा सकता, जब तक ईमान और नेक अ़मल को मुकम्मल तौर पर इख़्तियार न किया जाये।

وَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰهِ أَنْ يُّذْكَرَ فِيْهَا اسْمُهٗ وَسَعٰى فِيْ خَرَابِهَا ۚ أُولٰٓئِكَ
مَا كَانَ لَهُمْ أَنْ يَّدْخُلُوْهَآ إِلَّا خَآئِفِيْنَ ۚ لَهُمْ فِي الدُّنْيَا خِزْيٌ وَّلَهُمْ فِي الْاٰخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ۝
وَلِلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ ۚ فَأَيْنَمَا تُوَلُّوْا فَثَمَّ وَجْهُ اللّٰهِ ۚ إِنَّ اللّٰهَ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ۝

व मन् अज़्लमु मिम्मम् म-न-अ मसाजिदल्लाहि अंय्युज़्क-र फ़ीहस्मुहू व सआ फ़ी ख़राबिहा, उलाइ-क मा का-न लहुम् अंय्यद्ख़ुलूहा इल्ला ख़ा-इफ़ी-न, लहुम् फ़िद्दुन्या ख़िज़्युंव्-व लहुम् फ़िल्-आख़िरति अज़ाबुन् अज़ीम (114) व लिल्लाहिल् मश्रिक़ु वल्-मग़्रिबु फ़-ऐनमा तुवल्लू फ़-सम्-म वज्हुल्लाहि, इन्नल्ला-ह वासिअुन् अलीम (115)	और उससे बड़ा ज़ालिम कौन जिसने मना अल्लाह की मस्जिदों में कि लिया जाये वहाँ नाम उसका, और कोशिश की उनके उजाड़ने में, ऐसों को लायक़ नहीं कि दाख़िल हों उनमें मगर डरते हुए, उनके लिये दुनिया में ज़िल्लत है और उनके लिये आख़िरत में बड़ा अज़ाब है। (114) और अल्लाह ही का है मश्रिक़ (पूरब) और मग़रिब (पश्चिम) सो जिस तरफ़ तुम मुँह करो वहाँ ही मुतवज्जह है अल्लाह, बेशक अल्लाह बेइन्तिहा बख़्शिश करने वाला सब कुछ जानने वाला है। (115)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(यहूद तो क़िब्ले का हुक्म बदलने के वक़्त तरह-तरह के एतिराज़ करके कम-समझ लोगों के दिलों में शुब्हे पैदा करते थे, अगर वे शुब्हे आम तौर पर दिलों में असर करते तो उनका लाज़िमी नतीजा रिसालत का इनकार और नमाज़ का छोड़ देना निकलता, और नमाज़ के छोड़ देने से मस्जिदों का वीरान होना लाज़िम है, तो गोया ये यहूदी इस तरीक़े से नमाज़ छोड़ने और मस्जिदों के वीरान करने, ख़ास कर मस्जिदे नबवी में भी प्रयास में लगे हुए थे, और रोम के कुछ बादशाह जो ईसाईयों के पूर्वज थे, और ईसाई उनके कामों का इनकार भी न करते थे, चाहे वे ईसाई न हों। किसी ज़माने में यहूदी शाम (सीरिया) पर चढ़ आये थे, क़त्ल व क़िताल भी हुआ और उस वक़्त कुछ जाहिलों के हाथ से मस्जिदे बैतुल-मुक़द्दस की बेक़द्री (अपमान) भी हुई और बद-अमनी (अशांति) की वजह से उसमें नमाज़ वग़ैरह का एहतिमाम भी न हुआ, इस तौर पर ईसाईयों के बड़े (पूर्वज) नमाज़ के छोड़ने और मस्जिद की वीरानी व बरबादी के बानी (शुरूआत करने वाले) हुए और ईसाईयों पर इनकार न करने की वजह से इसका इल्ज़ाम दिया गया। उस बादशाह का नाम 'तैतूस' था और ईसाईयों को यह क़िस्सा इसलिये नागवार न था कि इसमें यहूदियों की बेइज़्ज़ती हुई थी और ये यहूदियों से दुश्मनी रखते थे, और जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने मक्का फ़तह होने से पहले जब मक्का मुअ़ज़्ज़मा में दाख़िल होकर मस्जिदे-हराम (काबे की मस्जिद) का तवाफ़ और नमाज़ अदा फ़रमानी चाही तो मक्का के मुश्रिकों ने आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को न जाने दिया, यहाँ तक कि आप उस साल वापस तशरीफ़ ले आये तो इस तरह ये मुश्रिक लोग भी मस्जिदे हराम की वीरानी (यानी उसमें नमाज़ से रोकने और उसकी रौनक़ ख़त्म करने) में कोशिश करने वाले हुए। इसी लिये हक़

तआ़ला ने आ़म लफ़्ज़ इस्तेमाल करके इसकी बुराई ज़ाहिर फ़रमाई यानी) और उस शख़्स से ज़्यादा और कौन ज़ालिम होगा जो ख़ुदा तआ़ला की मस्जिदों में (जिसमें मक्का की मस्जिदे हराम, मदीना की मस्जिद, बैतुल-मुक़द्दस की मस्जिद और सब मस्जिदें आ गई) उनका ज़िक्र (और इबादत) किए जाने से बन्दिश करे, और उन (मस्जिदों) के वीरान (व बेकार) होने (के बारे) में कोशिश करे। उन लोगों को तो कभी निडर (और बेख़ौफ़) होकर उन (मस्जिदों) में क़दम भी न रखना चाहिए था (बल्कि जब जाते डर और अदब से जाते, जब बेख़ौफ़ होकर अन्दर जाने तक का हक़ नहीं तो उसकी बेक़द्री और अपमान करने का हक़ कब हासिल है? इसी को ज़ुल्म फ़रमाया गया) उन लोगों को दुनिया में भी रुस्वाई (नसीब) होगी और उनको आख़िरत में भी बड़ी सज़ा होगी।

(यहूदियों ने क़िब्ले के तब्दील होने के हुक्म पर एतिराज़ किया था कि मुसलमान इस दिशा से दूसरी दिशा की तरफ़ क्यों फिर गये। इसका जवाब देते हुए हक़ तआ़ला फ़रमाते हैं, यानी) और अल्लाह ही की ममलूक हैं (सब दिशायें) पूरब भी और पश्चिम भी (और वह उसका मकान नहीं)।

(पस जब वह मालिक हैं जिस दिशा और रुख़ को चाहें क़िब्ला मुक़र्रर कर दें, क्योंकि क़िब्ले के निर्धारण में हिक्मत- जैसे इबादत करने वालों की हालत व मुद्रा में समानता और दिल का सुकून व तसल्ली है, और यह हिक्मत हर दिशा से हासिल हो सकती है, जिसका हुक्म दे दें वही मुतैयन हो जायेगी। हाँ अलबत्ता अगर माबूद की ज़ात नऊज़ु बिल्लाह किसी ख़ास दिशा के साथ जुड़ी होती तो ज़रूरत की वजह से उसी दिशा में इबादत का क़िब्ला बनने को ख़ास करना मुनासिब था, लेकिन वह पाक ज़ात किसी दिशा के साथ ख़ास, घिरी हुई और जुड़ी हुई नहीं, जब यह बात है) तो तुम लोग जिस तरफ़ भी मुँह करो उधर (ही) अल्लाह तआ़ला (की पाक ज़ात) का रुख़ है, क्योंकि अल्लाह तआ़ला (ख़ुद तमाम दिशाओं और चीज़ों को) घेरे हुए हैं (जिस तरह का घेराव उनकी शान के लायक़ है, लेकिन बावजूद हर चीज़ को घेरने और असीमित होने के फिर भी इबादत की दिशा को मुतैयन इसलिये फ़रमाया कि वह) कामिल इल्म वाले हैं (कि हर चीज़ की मस्लेहतों को ख़ूब जानते हैं, चूँकि उनके इल्म में यह मुतैयन करना कुछ हिक्मतों और मस्लेहतों की वजह से था इसलिये इसका हुक्म दे दिया)।

तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन से कुछ फ़ायदे की बातें

1. मस्जिदों की वीरानी (रौनक़ ख़त्म करने और उन्हें बरबाद करने) में कोशिश करने वाले गिरोह की दुनिया में तो यह रुस्वाई हुई कि ये सारी क़ौमें इस्लामी हुकूमत की रियाया (मातहत) और टैक्स देने वाली हुई, और आख़िरत का अ़ज़ाब तो काफ़िर होने की वजह से ज़ाहिर है ही, और मस्जिदों की वीरानी में कोशिश के सबब यह अ़ज़ाब और भी सख़्त और शदीद हो जायेगा। और ऊपर की आयत में जो इन तीनों फ़िर्क़ों के हक़ पर होने का दावा ज़िक्र हुआ था इस क़िस्से से उसकी तरदीद (खण्डन) का एक तरह से मफ़्हूम भी निकल आया कि ऐसे-ऐसे काम करके हक़ पर होने का दावा बड़ी शर्म की बात है।

2. क़िब्ला मुतैयन करने की जो एक हिक्मत बतौर मिसाल ऊपर बयान की गई उससे इस्लाम के कुछ मुख़ालिफ़ों का यह एतिराज़ कि ''मुसलमान काबे को पूजते हैं'' बिल्कुल ख़त्म हो गया।

जवाब का ख़ुलासा यह हुआ कि इबादत व पूजा तो ख़ुदा तआ़ला की है लेकिन इबादत के वक़्त दिल को एक जगह जमने और सुकून की ज़रूरत है, तथा इबादत करने वालों की मजमूई हालत व सूरत को भी इस यक्सूई में दख़ल है, चुनाँचे ये दोनों बातें तजुर्बे व देखने से साबित हैं, इसलिये इस यक्सूई (दिल के एक तरफ़ होने) और सामूहिक शक्ल व मुद्रा हासिल करने के लिये रुख़ और दिशा को मुतैयन किया गया, लिहाज़ा इस एतिराज़ व शुब्हे की कोई गुंजाईश नहीं। और अगर इस पर कोई अपने बरी होने के लिये यह दावा करे कि हम भी बुतों को इसी इरादे व ग़र्ज़ से सामने रखते हैं तो अव्वल तो अपने बरी होने के दावे से मुसलमानों पर उक्त एतिराज़ नहीं लौटता, वह बदस्तूर उनसे दूर और अलग रहा, जो इस मक़ाम पर असली मक़सूद है। दूसरे आ़म मुसलमानों और आ़म काफ़िरों की हालत की छानबीन करने से पूजा न करने वाला होने के दावे में मुसलमानों का सच्चा होना और दूसरों का झूठा होना हर वक़्त हर शख़्स मालूम कर सकता है। तीसरे अगर असलियत से हटकर कुछ देर के लिये इस दावे की सच्चाई मान भी ली जाये फिर भी इस मुतैयन और ख़ास करने के लिये किसी ग़ैर-मन्सूख़ शरीअ़त का हुक्म पेश करना लाज़िम है, और यह सिवाय मुसलमानों के दूसरों के पास मौजूद नहीं है।

और तर्जुमा व तफ़सीर के अन्दर हिक्मत को बयान करने के लिये जो लफ़्ज़ 'मसलन्' (मिसाल के तौर पर) का इज़ाफ़ा किया गया है तो उसकी वजह यह है कि अल्लाह के अहकाम की हिक्मतें और मस्लेहतें पूरी तरह और तमाम की तमाम किसी के इल्म व समझ में नहीं आ सकतीं, सो इस हुक्म में भी हज़ारों हिक्मतें होंगी, एक दो के समझ जाने से यह समझना कि बस यही हैं यह ग़लत है और इससे दूसरों की नफ़ी नहीं हो सकती।

3. और यह जो फ़रमाया है कि "उधर ही अल्लाह का रुख़ है" और इसी तरह यह जो फ़रमाया है कि "वह घेरे हुए है" और ऐसे ही जो मज़ामीन हों, उन सब में ज़्यादा खोद-कुरेद न करनी चाहिये, क्योंकि जिस तरह अल्लाह तआ़ला की ज़ात का पूरा इदराक (इल्म व ज्ञान) किसी बन्दे से मुम्किन नहीं इसी तरह उसकी सिफ़ात की हक़ीक़त भी समझ से बाहर और ऊपर हैं, बस संक्षिप्त रूप से उन सब पर ईमान ले आये, इससे ज़्यादा का इनसान मुकल्लफ़ (ज़िम्मेदार और पाबन्द) नहीं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन दो आयतों में दो अहम मसलों का बयान है- पहली आयत एक ख़ास वाक़िए के मुताल्लिक़ नाज़िल हुई है। वाक़िआ़ यह है कि ज़माना-ए-इस्लाम से पहले जब यहूदियों ने हज़रत यहया अ़लैहिस्सलाम को क़त्ल कर डाला तो रोम के ईसाईयों ने उनसे बदला लेने की ख़ातिर इराक़ के एक मजूसी बादशाह (1) के साथ मिलकर अपने बादशाह तैतूस की अगुवाई में शाम के बनी इस्राईल पर हमला करके उनको क़त्ल व ग़ारत किया और तौरात के नुस्ख़े (प्रतियाँ) जला डाले, बैतुल-मुक़द्दस में गन्दगी और ख़िन्ज़ीर डाल दिये, उसकी इमारत को ख़राब व बरबाद कर दिया। बनी इस्राईल की

(1) कुछ मुफ़स्सिरीन ने उस मजूसी बादशाह का नाम बुख़्ते-नस्सर बतलाया है। इससे नामचीन बुख़्ते-नस्सर इसलिये मुराद नहीं हो सकता कि उसका ज़माना हज़रत यहया अ़लैहिस्सलाम से बहुत पहले है, यह मुम्किन है कि बाद में किसी दूसरे बादशाह को बुख़्ते-नस्सर द्वितीय कहने लगे हों। (मुहम्मद शफ़ी)

क़ुव्वत व शौकत को बिल्कुल पामाल और ख़त्म कर दिया। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुबारक ज़माने तक बैतुल-मुक़द्दस उसी तरह वीरान व गिरा पड़ा था।

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु के दौर में जब शाम व इराक़ फ़तह हुए तो आपके हुक्म से बैतुल-मुक़द्दस की दोबारा तामीर कराई गई। लम्बे ज़माने तक पूरा मुल्क और बैतुल-मुक़द्दस मुसलमानों के क़ब्ज़े में रहा, फिर एक अ़रसे के बाद बैतुल-मुक़द्दस मुसलमानों के क़ब्ज़े से निकल गया और तक़रीबन सौ साल यूरोप के ईसाईयों का उस पर क़ब्ज़ा रहा, यहाँ तक कि छठी सदी हिजरी में सुल्तान सलाहुद्दीन अय्यूबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फिर उसको फ़तह किया।

रोम के ईसाईयों की इस गुस्ताख़ी भरी हरकत पर कि तौरात को जलाया और बैतुल-मुक़द्दस को ख़राब व वीरान करके उसकी बेक़द्री की, यह आयत नाज़िल हुई।

यह क़ौल मुफ़स्सिरे क़ुरआन हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु का है, और हज़रत इब्ने ज़ैद रज़ियल्लाहु अ़न्हु वग़ैरह दूसरे मुफ़स्सिरीन ने इस आयत का शाने नुज़ूल (उतरने का मौक़ा और सबब) यह बतलाया है कि जब मक्का के मुश्रिकों ने रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को हुदैबिया के वाक़िए के वक़्त मस्जिदे हराम (काबे) में दाख़िल होने और तवाफ़ करने से रोक दिया तो यह आयत नाज़िल हुई। इब्ने जरीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने पहली रिवायत को और इब्ने कसीर ने दूसरी को तरजीह दी है।

बहरहाल आयत का शाने नुज़ूल तो मुफ़स्सिरीन के नज़दीक इन दोनों वाक़िओं में से कोई ख़ास वाक़िआ है, मगर इसका बयान आ़म लफ़्ज़ों में एक मुस्तक़िल नियम और क़ानून के अलफ़ाज़ में फ़रमाया गया है, ताकि यह हुक्म उन्हीं ईसाईयों या मुश्रिकों वग़ैरह के लिये मख़्सूस न समझा जाये बल्कि दुनिया की तमाम क़ौमों के लिये आ़म रहे। यही वजह है कि इस आयत में ख़ास बैतुल-मुक़द्दस का नाम लेने के बजाय "मसाजिदुल्लाह" (अल्लाह की मस्जिदें) फ़रमाकर तमाम मस्जिदों पर इस हुक्म को आ़म कर दिया गया और आयत का मज़मून यह हो गया कि जो शख़्स अल्लाह तआ़ला की किसी मस्जिद में लोगों को अल्लाह का ज़िक्र करने से रोके या कोई ऐसा काम करे जिससे मस्जिद वीरान हो जाये (उजड़ जाये) तो वह बहुत बड़ा ज़ालिम है।

अल्लाह की मस्जिदों की अ़ज़मत (बड़ाई व आदर) का तक़ाज़ा यह है कि उनमें जो शख़्स दाख़िल हो ख़ौफ़, अल्लाह की बड़ाई, तवाज़ो और दिल के सुकून के साथ दाख़िल हो, जैसे किसी शाही दरबार में दाख़िल होते हैं।

इस आयत से जो चन्द ज़रूरी मसाईल व अहकाम निकले उनकी तफ़सील यह है:

अव्वल यह कि दुनिया की तमाम मस्जिदें मसाजिद के आदाब के लिहाज़ से बराबर हैं, जैसे बैतुल-मुक़द्दस, मस्जिदे हराम या मस्जिदे नबवी की बेहुर्मती (नाक़द्री व अपमान) बहुत बड़ा ज़ुल्म है इसी तरह दूसरी तमाम मस्जिदों के मुताल्लिक़ भी यही हुक्म है, अगरचे इन तीनों मस्जिदों की ख़ास बड़ाई और दर्जा अपनी जगह मुसल्लम है कि मस्जिदे हराम (काबे वाली मस्जिद) में एक नमाज़ का सवाब एक लाख नमाज़ों के बराबर और मस्जिदे नबवी और बैतुल-मुक़द्दस में पचास हज़ार नमाज़ों के बराबर मिलता है, इन तीनों मस्जिदों में नमाज़ पढ़ने की ख़ातिर दूर-दराज़ मुल्कों से सफ़र करके पहुँचना बड़े सवाब का ज़रिया और बरकतों का सबब है, बख़िलाफ़ दूसरी मस्जिदों के कि इन तीनों के

अलावा किसी दूसरी मस्जिद में नमाज़ पढ़ने को अफ़ज़ल जानकर उसके लिये दूर से सफ़र करके आने को नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मना फ़रमाया है।

दूसरा मसला यह मालूम हुआ कि मस्जिद में ज़िक्र व फ़िक्र से रोकने की जितनी भी सूरतें हैं वे सब नाजायज़ व हराम हैं। उनमें से एक सूरत तो यह खुली हुई है ही कि किसी को मस्जिद में जाने से या वहाँ नमाज़ व तिलावत करने से खुले तौर पर रोका जाये। दूसरी सूरत यह है कि मस्जिद में शोर व हंगामा करके या उसके आस-पास बाजे-गाजे बजाकर लोगों की नमाज़ वग़ैरह में ख़लल डाले, यह भी अल्लाह के ज़िक्र से रोकने में दाख़िल है। इसी तरह नमाज़ के वक़्तों में जबकि लोग अपनी नवाफ़िल या तस्बीहात व तिलावत वग़ैरह में मशग़ूल हों मस्जिद में कोई बुलन्द आवाज़ से तिलावत करे या ज़ोर की आवाज़ से ज़िक्र करने लगे, तो यह भी नमाज़ियों की नमाज़ व तस्बीह में ख़लल डालने और एक हैसियत से अल्लाह के ज़िक्र को रोकने की सूरत है, इसलिये हज़राते फ़ुक़हा ने इसको भी नाजायज़ क़रार दिया है, हाँ जब मस्जिद आ़म नमाज़ियों से ख़ाली हो उस वक़्त ज़िक्र या ऊँची आवाज़ से तिलावत (क़ुरआन पढ़ने) में हर्ज नहीं। इसी से यह भी मालूम हो गया कि जिस वक़्त लोग नमाज़ व तस्बीह वग़ैरह में मशग़ूल हों उस वक़्त मस्जिद में अपने लिये सवाल करना या किसी दीनी काम के लिये चन्दा करना भी ऐसे वक़्त मना है।

तीसरा मसला यह मालूम हुआ कि मस्जिद की वीरानी (यानी उसको उजाड़ने और बेरौनक़ करने) की जितनी भी सूरतें हैं सब हराम हैं। इसमें जिस तरह खुले तौर पर मस्जिद को गिराना और वीरान करना दाख़िल है इसी तरह ऐसे असबाब पैदा करना भी इसमें दाख़िल है जिनकी वजह से मस्जिद वीरान हो जाये और मस्जिद की वीरानी यह है कि वहाँ नमाज़ के लिये लोग न आयें, या कम हो जायें, क्योंकि मस्जिद की तामीर व आबादी दर असल उसकी इमारत या उसकी सजावट से नहीं बल्कि उसमें अल्लाह का ज़िक्र करने वालों से है, इसी लिये क़ुरआने करीम में एक जगह इरशाद है:

اِنَّمَا يَعْمُرُ مَسٰجِدَ اللّٰهِ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَاَقَامَ الصَّلٰوةَ وَاٰتَى الزَّكٰوةَ وَلَمْ يَخْشَ اِلَّا اللّٰهَ. (۹:۱۸)

"यानी असल में मस्जिद की आबादी उन लोगों से है जो अल्लाह तआ़ला पर ईमान लायें और क़ियामत के दिन पर, और नमाज़ क़ायम करें, ज़कात अदा करें और अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी से न डरें।"

इसी लिये हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि क़ियामत के निकट मुसलमानों की मस्जिदें बज़ाहिर आबाद और सजी हुई व ख़ूबसूरत होंगी, मगर हक़ीक़त में वीरान होंगी कि उनमें हाज़िर होने वाले नमाज़ी कम हो जायेंगे।

हज़रत अ़ली मुर्तज़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हु का इरशाद है कि शराफ़त व इनसानियत के छह काम हैं- तीन हज़र (वतन में रहने) के और तीन सफ़र के। हज़र के ये हैं:-

1. क़ुरआन की तिलावत करना।
2. मस्जिदों को आबाद करना।
3. ऐसे दोस्तों की जमाअ़त और टीम बनाना जो अल्लाह तआ़ला और दीन के कामों में इमदाद करें।

और सफ़र के तीन काम ये हैं:-

1. अपने तोशे (जो खाना या सफ़र का सामान साथ हो) से ग़रीब साथियों पर ख़र्च करना।

2. अच्छे अख़्लाक़ से पेश आना।

3. सफ़र के साथियों के साथ हंसी-ख़ुशी, तफ़रीह व मज़ाक़ का रवैया रखना, बशर्तेकि यह मज़ाक़ व दिल्लगी गुनाहों की हद में दाख़िल न हो जाये।

हज़रत अली रज़ियल्लाहु अ़न्हु के इस इरशाद में मस्जिदों के आबाद करने का मतलब यही है कि वहाँ आ़जिज़ी और दिल के सुकून के साथ हाज़िर भी हों, और वहाँ हाज़िर होकर ज़िक्र व तिलावत में मशग़ूल रहें। अब इसके विपरीत मस्जिद की वीरानी यह होगी कि वहाँ नमाज़ी न रहें या कम हो जायें, या ऐसे असबाब जमा हों जिनसे दिल के सुकून में ख़लल आये। और अगर आयत का शाने नुज़ूल हुदैबिया का वाक़िआ़ और मक्का के मुश्रिकों का मुसलमानों को मस्जिदे हराम से रोकना है तो इसी आयत से यह भी वाज़ेह हो जायेगा कि मस्जिदों की वीरानी सिर्फ़ यही नहीं कि उन्हें गिरा दिया जाये बल्कि मस्जिदें जिस मक़सद के लिये बनाई गई हैं यानी नमाज़ और अल्लाह का ज़िक्र, जब वह न रहे या कम हो जाये तो मस्जिदें वीरान कहलायेंगी।

क़िब्ले के बदल जाने की बहस

दूसरी आयत में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को तसल्ली दी गई है कि मक्का के मुश्रिकों ने अगरचे आपको मक्का और बैतुल्लाह से हिजरत करने पर मजबूर कर दिया और मदीना पहुँचकर शुरू के ज़माने में सोलह-सत्रह महीने तक आपको बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ने का हुक्म दिया गया लेकिन इसमें आपका कोई नुक़सान नहीं न आपके लिये ग़मगीन होने की कोई वजह है, क्योंकि अल्लाह तआ़ला की पाक ज़ात किसी ख़ास दिशा और रुख़ में नहीं, वह हर जगह है, उसके लिये पूरब व पश्चिम बराबर हैं। काबे को नमाज़ का क़िब्ला बनायें या बैतुल-मुक़द्दस को, दोनों में कोई ज़ाती ख़ुसूसियत नहीं बल्कि अल्लाह के हुक्म की तामील ही दोनों जगह असल फ़ज़ीलत का सबब है:

दादे हक़ रा क़ाबलियत शर्त नेस्त बल्कि शर्ते क़ाबलियत दाद हस्त

"यानी अल्लाह के देने के लिये क़ाबलियत शर्त नहीं, बल्कि जिस पर वह अपनी इनायत की नज़र फ़रमा दें उसी के अन्दर क़ाबलियत पैदा हो जाती है।" **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

इसलिये जब काबे की तरफ़ रुख़ करने का हुक्म था उसमें फ़ज़ीलत थी और जब बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ रुख़ करने का हुक्म हो गया तो उसमें फ़ज़ीलत है। आप ग़मगीन न हों अल्लाह तआ़ला की तवज्जोह दोनों हालतों में बराबर है जबकि बन्दा उसके हुक्म की तामील कर रहा हो।

चन्द महीनों के लिये बैतुल-मुक़द्दस को क़िब्ला क़रार देने का हुक्म देकर अ़मली तौर पर और आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने क़ौल से इस बात को स्पष्ट कर दिया कि किसी ख़ास जगह या दिशा को क़िब्ला क़रार देना इस वजह से नहीं (अल्लाह की पनाह) ख़ुदा तआ़ला उस जगह या उस दिशा में है, दूसरी जगह में नहीं, बल्कि अल्लाह तआ़ला हर जगह हर दिशा में बराबर तवज्जोह के साथ मौजूद है, किसी ख़ास दिशा को दुनिया का क़िब्ला क़रार देना दूसरी हिक्मतों और मस्लेहतों पर मब्नी (आधारित) है। क्योंकि जब अल्लाह तआ़ला की तवज्जोह किसी ख़ास दिशा या

जगह के साथ पाबन्द नहीं तो अब अ़मल की दो सूरतें हो सकती हैं- एक यह कि हर शख़्स को इख़्तियार दे दिया जाये कि जिस तरफ़ चाहे रुख़ करके नमाज़ पढ़े, दूसरे यह कि सब के लिये ख़ास दिशा और रुख़ मुतैयन कर दिया जाये। ज़ाहिर है कि पहली सूरत में एक बिखराव और इन्तिशार का मन्ज़र सामने आयेगा कि दस आदमी नमाज़ पढ़ रहे हैं और हर एक का रुख़ अलग-अलग और हर एक का क़िब्ला अलग-अलग है और दूसरी सूरत में संगठन और एकता का अ़मली सबक़ मिलता है, इन हिक्मतों की बिना पर सारे आ़लम का क़िब्ला एक ही चीज़ को बनाना ज़्यादा मुनासिब है, अब वह बैतुल-मुक़द्दस हो या काबा दोनों मुक़द्दस (पवित्र) और बरकत वाले स्थान हैं। हर क़ौम और हर ज़माने के मुनासिब अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से अहकाम आते हैं, एक ज़माने तक बैतुल-मुक़द्दस को क़िब्ला बनाया फिर नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की दिली इच्छा के मुताबिक़ इस हुक्म को मन्सूख़ (ख़त्म करके, बदल कर या निरस्त) करके काबे को दुनिया जहान का क़िब्ला बना दिया गया। इरशाद हुआः

قَدْ نَرٰى تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِى السَّمَآءِ فَلَنُوَلِّيَنَّكَ قِبْلَةً تَرْضٰهَا، فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ، وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ شَطْرَهٗ. (٢:١٤٤)

तर्जुमाः "(यानी काबे को क़िब्ला बना देने की दिली चाहत की वजह से) बार-बार आसमान की तरफ़ मुँह उठाकर देखते हैं (कि शायद फ़रिश्ता हुक्म ले आये) हम यह सब देख रहे हैं, इसलिये हम आपको उसी क़िब्ले की तरफ़ मुतवज्जह कर देंगे जिसको आप चाहते हैं। इसलिये अब से आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) अपना चेहरा नमाज़ में मस्जिदे हराम (यानी काबे) की तरफ़ किया करें, और (यह हुक्म कुछ आप ही के लिये मख़्सूस नहीं, बल्कि तमाम उम्मत के लिये यही हुक्म दे दिया गया कि) तुम जहाँ कहीं भी मौजूद हो (यहाँ तक कि ख़ुद बैतुल-मुक़द्दस के अन्दर भी हो) तो नमाज़ में अपना रुख़ मस्जिदे हराम की तरफ़ किया करो।"

ग़र्ज़ यह कि आयते मज़कूराः

وَلِلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ

(अल्लाह ही के लिये है पूरब और पश्चिम.......) ने क़िब्ले की तरफ़ रुख़ करने की पूरी हक़ीक़त को स्पष्ट कर दिया कि इसका मंशा (अल्लाह की पनाह) बैतुल-मुक़द्दस या बैतुल्लाह की पूजा व इबादत नहीं, और न इन दोनों जगहों के साथ अल्लाह तआ़ला की पाक ज़ात मख़्सूस है, बल्कि उसकी ज़ात सारे आ़लम (जहान) पर मुहीत (छाई हुई) और हर दिशा में उसकी तवज्जोह बराबर है, फिर जो किसी ख़ास जगह या दिशा को मख़्सूस किया जाता है इसमें दूसरी हिक्मतें हैं।

ऊपर बयान हुई आयत के इस मज़मून को स्पष्ट करने और दिल में बैठाने ही के लिये शायद हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को हिजरत के शुरू के दौर में से सोलह-सत्रह महीने तक बैतुल-मुक़द्दस की तरह मुँह करके नमाज़ अदा करने का हुक्म देकर अ़मली तौर पर बतला दिया गया कि हमारी तवज्जोह हर तरफ़ है, और नवाफ़िल में इस हुक्म को हमेशा के लिये जारी रखा कि सफ़र में कोई शख़्स किसी सवारी जैसे ऊँट घोड़े वग़ैरह पर सवार हो तो उसको इजाज़त है कि सवारी पर बैठे हुए इशारे से नमाज़ पढ़ ले, और उसके लिये क़िब्ले की तरफ़

रुख़ करना भी ज़रूरी नहीं, जिस तरफ़ उसकी सवारी चल रही है उसी तरफ़ रुख़ कर लेना काफ़ी है।

कुछ मुफ़स्सिरीन (क़ुरआन पाक के व्याख्यापकों) ने आयतः

فَأَيْنَمَا تُوَلُّوا فَثَمَّ وَجْهُ اللَّهِ

(तो तुम लोग जिस तरफ़ भी मुँह करो उधर ही अल्लाह तआ़ला की पाक ज़ात का रुख़ है) को इसी नफ़्ली नमाज़ का हुक्म क़रार दिया है, मगर याद रहे कि यह हुक्म सिर्फ़ उन सवारियों का है जिन पर सवार होकर चलते हुए क़िब्ले की तरफ़ रुख़ करना दुश्वार है, और जिन सवारियों में सवार को क़िब्ले की तरफ़ रुख़ कर लेना दुश्वार नहीं जैसे रेल, पानी का जहाज़, हवाई जहाज़ उनका वही हुक्म है जो हज़र की हालत में क़िब्ले की तरफ़ रुख़ करने का है, कि अगर नफ़िल नमाज़ भी इनमें पढ़ी जाये तो क़िब्ला रुख़ होकर पढ़ी जाये (अलबत्ता नमाज़ की हालत में रेल का या जहाज़ का रुख़ मुड़ जाये और नमाज़ी के लिये गुंजाईश न हो कि वह भी क़िब्ला रुख़ फिर जाये तो उसी हालत में नमाज़ पूरी कर ले)।

इसी तरह जहाँ नमाज़ी को क़िब्ले का रुख़ मालूम न हो और रात की अंधेरी वग़ैरह की वजह से दिशायें मुतैयन करना भी दुश्वार हो और कोई बतलाने वाला भी न हो तो वहाँ भी यही हुक्म है कि वह अपना अन्दाज़ा और गुमान लगाकर जिस दिशा को भी मुतैयन कर लेगा वही दिशा उसका क़िब्ला क़रार दी जायेगी। नमाज़ अदा करने के बाद अगर यह भी साबित हो जाये कि उसने ग़लत दिशा में नमाज़ अदा की है तब भी नमाज़ सही है लौटाने की ज़रूरत नहीं।

आयत के इस बयान और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के अ़मल और बयान हुई तफ़सीलात से क़िब्ले तरफ़ रुख़ करने के शरई हुक्म की पूरी हक़ीक़त स्पष्ट हो गई।

وَقَالُوا اتَّخَذَ اللَّهُ وَلَدًا ۙ سُبْحَانَهُ ۖ بَلْ لَهُ مَا فِي السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ ۖ كُلٌّ لَهُ قَانِتُونَ ۝
بَدِيعُ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ ۖ وَإِذَا قَضَىٰ أَمْرًا فَإِنَّمَا يَقُولُ لَهُ كُنْ فَيَكُونُ ۝

व क़ालुत्त-ख़ज़ल्लाहु व-लदन् सुब्हानहू, बल्-लहू मा फ़िस्समावाति वल्अर्ज़ि, कुल्लुल्लहू क़ानितून (116) बदीअुस्समावाति वल्अर्ज़ि, व इज़ा क़ज़ा अम्रन् फ़-इन्नमा यक़ूलु लहू कुन् फ़-यकून (117)	**और कहते हैं कि अल्लाह रखता है औलाद वह तो सब बातों से पाक है, बल्कि उसी का है जो कुछ है आसमान और ज़मीन में, सब उसी के ताबेदार हैं। (116) नया (यानी पहली बार में) पैदा करने वाला है आसमान और ज़मीन का, और जब हुक्म करता है किसी काम को तो यही फ़रमाता है उसको कि हो जा, पस वह हो जाता है। (117)**

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(कुछ यहूदी हज़रत उज़ैर अ़लैहिस्सलाम को ख़ुदा का बेटा कहते थे और ईसाई हज़रत ईसा

अलैहिस्सलाम को, और अरब के मुश्रिक लोग फ़रिश्तों को ख़ुदा की बेटियाँ, जैसा कि अनेक आयतों में इन अक़्वाल की ख़बर दी गई है। हक़ तआला इस क़ौल की बुराई और ग़लत होने का बयान फ़रमाते हैं, यानी) और ये लोग (विभिन्न उनवान से) कहते हैं कि ख़ुदा तआला औलाद रखता है। सुब्हानल्लाह! (क्या बेकार बात है) बल्कि (उनके तो औलाद होना अक़्लन संभव ही नहीं, क्योंकि दो हाल से ख़ाली नहीं- या तो औलाद ग़ैर-जिन्स की होगी और या हम-जिन्स होगी, अगर ग़ैर-जिन्स की हो तब तो ग़ैर-जिन्स की औलाद होना ऐब है और हक़ तआला ऐब से पाक हैं, अक़्ल के मुताबिक़ भी जैसा कि मुसल्लम है और नक़ल के एतिबार से भी जैसा कि हक़ तआला का फ़रमान भी इस पर दलालत कर रहा है, और अगर हम-जिन्स हो तो इसलिये बातिल (ग़लत) है कि हक़ तआला का कोई हम-जिन्स (उसके जैसा) नहीं क्यों कमाल की जो सिफ़ात वाजिबे ज़ात से हैं वे अल्लाह के साथ मख़्सूस और ग़ैरुल्लाह में नापैद हैं, और लाज़िम की नफ़ी मलज़ूम की नफ़ी की दलील है, इसलिये ग़ैरुल्लाह ज़ाते वाजिब न होगा, और वजूब ख़ुद असल हक़ीक़त या लाज़िमे हक़ीक़त है, पस कोई ग़ैरुल्लाह, अल्लाह के साथ हक़ीक़त में शरीक न हुआ। लिहाज़ा हम-जिन्स होना भी बातिल हो गया। अब कमाल की सिफ़ात सिर्फ़ हक़ तआला ही के साथ ख़ास होने की दलीलें ज़िक्र की जाती हैं- अव्वल यह कि) ख़ास अल्लाह तआला की मिल्क में हैं जो कुछ भी आसमानों और ज़मीन में (मौजूद चीज़ें) हैं, (और दूसरे यह कि मिल्क में होने के साथ) सब उनके महकूम (हुक्म के ताबे भी) हैं (इस मायने में कि उनकी क़ुदरत के इख़्तियारात जैसे मारना, जिलाना वग़ैरह को कोई नहीं हटा सकता चाहे शरई अहकाम को कोई टाल दे, और तीसरे यह कि हक़ तआला) बनाने वाले (ईजाद करने वाले भी) हैं आसमानों और ज़मीन के। और (चौथे यह कि ईजाद की भी क़ुदरत ऐसी अज़ीम व अजीब है कि) जब किसी काम को (जैसे पैदा ही करना है) पूरा करना चाहते हैं तो बस (इतनी बात है कि) उस काम के बारे में (इतना) फ़रमा देते हैं कि हो जा, पस वह (उसी तरह) हो जाता है (उनको उपकरणों, यंत्रों, साधनों, कारीगरों और मददगारों की ज़रूरत नहीं पड़ती, और ये चारों चीज़ें सिवाय अल्लाह तआला के किसी में नहीं पाई जातीं, और इन चीज़ों को अल्लाह के लिये औलाद के ये दावेदार भी मानते थे, पस दलील से यह भी साबित हो गया कि ये सिफ़ाते कमाल अल्लाह तआला ही के लिये ख़ास हैं और इससे हुज्जत पूरी हो गई)।

वज़ाहतः- ऊपर की इबारत में मज़मून ज़रा इल्मी अन्दाज़ से आया है उसको समझने के लिये मैं चन्द बातें अर्ज़ करता हूँ उसके बाद उम्मीद है कि पढ़ने वाले को इसका मतलब समझ में आ जायेगा। दर असल फ़रमाया यह गया है कि अल्लाह तआला की औलाद नहीं है, और दलील यह दी है कि अगर औलाद मानें तो उसकी दो सूरतें होंगी, एक यह कि औलाद अल्लाह तआला की ग़ैर-जिन्स की हो, और यह ऐब है कि किसी भी प्रजाति के लिये उसकी प्रजाति के ख़िलाफ़ कोई औलाद हो, जैसे किसी इनसान के यहाँ अगर बन्दर या साँप पैदा हो जाये तो उसकी ग़ैर-जिन्स की औलाद होगी और यह कोई ख़ूबी और कमाल नहीं बल्कि ऐब की बात मानी जायेगी। और दूसरी शक्ल यह कि वह औलाद जिन्स ही की हो, इस सूरत में अल्लाह की ज़ात जो बेमिसाल और सबसे अलग है यह चीज़ बाक़ी नहीं रहती, फिर अल्लाह की विशेषता क्या रहेगी जब उसकी जिन्स की और भी मख़्लूक़ पाई जायेगी, तो जो उसकी ज़ात के साथ कमाल की सिफ़ात ख़ास हैं जैसे उसका वाजिबुल-वजूद होना, हर

चीज़ का मालिक व ख़ालिक़ होना, हर तरह का इख़्तियार उसको हासिल होना, ज़मीन व आसमान और उनकी हर चीज़ उसकी मिल्क में होना, मौत ज़िन्दगी वग़ैरह हर चीज़ उसके हुक्म के ताबे और इख़्तियार में होना। फिर वह अपने किसी काम में किसी संसाधन, असबाब और सहयोग का मोहताज भी नहीं, बल्कि ख़ुद भी किसी चीज़ के पैदा करने के लिये उसके किसी ख़ास एहतिमाम, योजना, मेहनत, तैयारी या सोचने की ज़रूरत नहीं, बस जब वह किसी चीज़ को वजूद देना चाहता है तो सिर्फ़ यह फ़रमा देता है कि 'हो जा' बस हुक्म होते ही वह चीज़ वजूद में आ जाती है। उसकी ज़ात वाजिब है अपने वजूद के लिये किसी की भी किसी भी दर्जे में मोहताज नहीं, जबकि बाक़ी तमाम मख़्लूक़ वाजिबुल-वजूद नहीं, सब उसके मोहताज हैं। ग़र्ज़ कि वह अपनी हर सिफ़त में यक्ता और बेमिसाल है इसलिये उसकी जिन्स की औलाद भी उसके लिये साबित नहीं की जा सकती। मालूम यह हुआ कि उसकी ज़ात अ़क़्ली और नक़्ली तौर पर औलाद के होने से पाक है। वल्लाहु आलम

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

फ़ायदे: 1. ख़ास-ख़ास कामों पर ख़ास-ख़ास फ़रिश्तों को मुक़र्रर करना- जैसे बारिश, रिज़्क़ वग़ैरह और इसी तरह असबाब और मवाद और क़ुव्वतों से काम लेना, ये सब अल्लाह की किसी हिक्मत पर आधारित होता है, इसलिये नहीं कि लोग उन्हीं असबाब व ताक़त को अपनी ज़रूरत पूरी करने वाला मान कर उनसे मदद के तलबगार हों।

2. क़ाज़ी बैज़ावी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने कहा है कि पहली शरीअ़तों में अल्लाह तआ़ला को प्रथम सबब होने की वजह से बाप कहा करते थे, जाहिलों ने इससे आ़म बाप और औलाद वाले रिश्ते के मायने समझ लिये, इसलिये यह अ़क़ीदा रखना या ऐसा कहना कुफ़्र क़रार दिया गया। ख़राबी को दूर करने की मस्लेहत से अब ऐसे लफ़्ज़ के इस्तेमाल की बिल्कुल इजाज़त नहीं।

وَقَالَ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ لَوْلَا يُكَلِّمُنَا اللّٰهُ اَوْ تَاْتِيْنَآ اٰيَةٌ ۚ كَذٰلِكَ قَالَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ مِّثْلَ قَوْلِهِمْ ۚ تَشَابَهَتْ قُلُوْبُهُمْ ۚ قَدْ بَيَّنَّا الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ يُّوْقِنُوْنَ ۝

व क़ालल्लज़ी-न ला यअ़्लमू-न लौ ला युकल्लिमुनल्लाहु औ तअ्तीना आयतुन्, कज़ालि-क क़ालल्लज़ी-न मिन् क़ब्लिहिम् मिस्-ल क़ौलिहिम्, तशाब-हत् क़ुलूबुहुम, क़द् बय्यन्नल्-आयाति लिक़ौमिंय्-यूक़िनून (118)	और कहते हैं वे लोग जो कुछ नहीं जानते क्यों नहीं बात करता हमसे अल्लाह? या क्यों नहीं आती हमारे पास कोई आयत? इसी तरह कह चुके हैं वे लोग जो इनसे पहले थे इन्हीं की सी बात, एक से हैं दिल उनके बेशक, हमने बयान कर दीं निशानियाँ उन लोगों के वास्ते जो यक़ीन लाते हैं। (118)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (कुछ) जाहिल (यहूदी व ईसाई और मुश्रिक लोग, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुक़ाबले में) यूँ कहते हैं कि (ख़ुद) हमसे क्यों नहीं कलाम फ़रमाते अल्लाह तआ़ला (चाहे फ़रिश्तों के बग़ैर, जैसे ख़ुद फ़रिश्तों से क़लाम फ़रमाते हैं या फ़रिश्तों के माध्यम से जैसे पैग़म्बरों से वही के अन्दाज़ में बात करते हैं। और उस कलाम में या तो ख़ुद हमको अहकाम बता दें कि दूसरे रसूल की हमको ज़रूरत ही न रहे, या कम से कम इतना ही कह दें कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हमारे रसूल हैं, तो हम उनकी ही रिसालत के क़ायल होकर उनकी इताअ़त करने लगें) या (कलाम नहीं करते तो) हमारे पास कोई और ही दलील (रसूल होने के सुबूत की) आ जाए। (हक़ तआ़ला अव्वल तो इस बात का जाहिलाना रस्म होना बतलाते हैं कि) इसी तरह वे (जाहिल) लोग भी कहते चले आए हैं जो इनसे पहले हो गुज़रे हैं, इन्हीं के जैसा (जाहिलाना) क़ौल। (सो मालूम हुआ कि यह क़ौल कोई समझदारी और अ़क्ल व दानाई पर आधारित नहीं, यूँ ही हाँक दिया जाता है, फिर दूसरे इस क़ौल का मंशा और सबब बयान फ़रमाते हैं कि) इन सब (अगले पिछले जाहिलों) के दिल (टेढ़ी समझ रखने में) आपस में एक दूसरे के जैसे हैं (इसलिये सबसे बात भी एक ही जैसी पैदा हुई, फिर तीसरे इस क़ौल का जवाब देते हैं और चूँकि इस क़ौल का पहला हिस्सा ख़ालिस बेवक़ूफ़ी था कि अपने को इतना क़ाबिल समझते थे कि ख़ुद को फ़रिश्तों और अम्बिया के दर्जे का बनाना चाहते थे जिसका ग़लत होना बिल्कुल आसानी से समझ में आने वाली बात है, इसलिये इस अहमक़ाना बात को नज़र-अन्दाज़ करके सिर्फ़ दूसरे हिस्से का जवाब इरशाद होता है कि तुम तो एक दलील को लिये फिरते हो) हमने तो बहुत-सी दलीलें (हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की रिसालत के सुबूत में) साफ़-साफ़ बयान कर दी हैं, (मगर वे) उन लोगों के लिए (फ़ायदेमन्द और काफ़ी हो सकती हैं) जो यक़ीन (और इत्मीनान हासिल करना) चाहते हैं (और चूँकि एतिराज़ करने वालों को तो केवल ज़िद और कमी निकालना ही मक़सूद है इसलिये हक़ तलाश करने की नज़र से उनको तहक़ीक़ और छान-बीन करना ही मन्ज़ूर नहीं, सो ऐसों की तसल्ली व इत्मीनान का कौन ज़िम्मेदार बने)।

फ़ायदाः यहूदी व ईसाई तो अहले किताब (यानी आसमानी किताब और मज़हब के मानने वाले) थे, उनमें इल्म वाले भी थे, इसके बावजूद जो उनको अल्लाह तआ़ला ने जाहिल फ़रमाया तो इसलिये कि इसके बावजूद कि यक़ीनी, क़तई और मज़बूत दलीलें कसरत से उनके सामने पेश कर दी गयी थीं फिर भी जो इनकार किये जा रहे थे अगर यह जहालत नहीं तो और क्या था, और यह जाहिलों जैसे ही बात कहलायेगी, लिहाज़ा अल्लाह तआ़ला ने भी उनको जाहिल फ़रमाया।

إِنَّآ أَرْسَلْنَٰكَ بِٱلْحَقِّ بَشِيرًا وَنَذِيرًا ۖ وَلَا تُسْـَٔلُ عَنْ أَصْحَٰبِ ٱلْجَحِيمِ ﴿١١٩﴾

इन्ना अर्सल्ना-क बिल्हक़्क़ि बशीरंव्-व नज़ीरंव्-व ला तुस्अलु अ़न् अस्हाबिल् जहीम (119)	बेशक हमने तुझको भेजा है सच्चा दीन देकर ख़ुशख़बरी देने वाला और डराने वाला, और तुझसे पूछ नहीं दोज़ख़ में रहने वालों की। (119)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(चूँकि रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की शान रह्मतुल-लिल्आ़लमीन यानी तमाम जहान वालों के लिये रहमत होने का तकाज़ा यह हो सकता था कि आपको इस जहालत, दुश्मनी और मुख़ालफ़त की बदौलत तकलीफ़ और कुढ़न पेश आती और उनके ईमान न लाने की कोई सूरत समझ में न आने के सबब आप ग़ममीन व रंजीदा हो जाते, इसलिये अल्लाह तआ़ला आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तसल्ली के लिये इरशाद फ़रमाते हैं कि ऐ रसूल!) हमने आपको एक सच्चा दीन देकर (मख़्लूक़ की तरफ़) भेजा है कि (मानने वालों को) ख़ुशख़बरी सुनाते रहिये और (न मानने वालों को सज़ा से) डराते रहिये, और आप से दोज़ख़ में जाने वालों की पूछ-ताछ न होगी (कि उन लोगों ने क्यों नहीं क़ुबूल किया और क्यों दोज़ख़ में गये। आप अपना काम करते रहिये आपको किसी के मानने या न मानने की कोई फ़िक्र नहीं करनी चाहिये)।

وَلَنْ تَرْضٰى عَنْكَ الْيَهُوْدُ وَلَا النَّصٰرٰى حَتّٰى تَتَّبِعَ مِلَّتَهُمْ ۭ قُلْ اِنَّ ھُدَى اللّٰهِ ھُوَ الْهُدٰى ۭ
وَلَىِٕنِ اتَّبَعْتَ اَھْوَاۗءَھُمْ بَعْدَ الَّذِيْ جَاۗءَكَ مِنَ الْعِلْمِ ۙ مَا لَكَ مِنَ اللّٰهِ مِنْ وَّلِيٍّ وَّلَا نَصِيْرٍ ۝

व लन् तर्ज़ा अ़न्कल्-यहूदु व लन्-नसारा हत्ता तत्तबि-अ़ मिल्ल-तहुम, क़ुल् इन्-न हुदल्लाहि हुवल्-हुदा, व ल-इनित्त-बअ़्-त अह्वा-अहुम् बअ़्दल्लज़ी जाअ-क मिनल्-अ़िल्मि मा ल-क मिनल्लाहि मिंव्वलिय्यिंव्-व ला नसीर (120)	और हरगिज़ राज़ी न होंगे तुझसे यहूद और न ईसाई जब तक तू ताबे न हो उनके दीन का। तू कह दे- जो राह अल्लाह बता दे वही राह सीधी है, और अगर फ़र्ज़ करो तू ताबेदारी करे उनकी इच्छाओं की उस इल्म के बाद जो तुझको पहुँचा, तो तेरा कोई नहीं अल्लाह के हाथ से हिमायत करने वाला और न मददगार। (120)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और कभी ख़ुश न होंगे आप से ये यहूद और न ये ईसाई, जब तक कि आप (ख़ुदा न करे) उनके मज़हब के (बिल्कुल) पैरवी करने वाले न हो जाएँ (और यह असंभव है, पस उनका राज़ी होना असंभव है और अगर कभी इस क़िस्म की बात उनकी ज़बान या हाल से ज़ाहिर हो तो) आप (साफ़) कह दीजिए कि (भाई) हक़ीक़त में तो हिदायत का वही रास्ता है जिसको ख़ुदा तआ़ला ने (हिदायत का रास्ता) बतलाया है (और दलीलों से ऐसा रास्ता सिर्फ़ इस्लाम होना साबित हो चुका है, पस हिदायत का रास्ता वही रहा) और (यह बात कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम नऊज़ु बिल्लाह उनके महज़ब की पैरवी करने वाले हो जायें, मुहाल और असंभव इसलिये है कि इससे एक मुहाल यानी असंभव बात लाज़िम आती है, क्योंकि) अगर आप पैरवी करने लगें उनके ग़लत ख़्यालात की

(जिसको वे अपना मज़हब समझते हैं मगर कुछ रद्दोबदल से और मन्सूख़ हो जाने से अब वह सिर्फ़ चन्द ग़लत ख़्यालात का मजमूआ रह गया है और फिर इत्तिबा भी कैसी हालत में कि) इल्म (अल्लाह की वही से यक़ीनी तौर पर साबित) आ चुकने के बाद तो (ऐसी हालत में तो) आपका कोई ख़ुदा से बचाने वाला न यार निकले न मददगार (बल्कि तौबा-तौबा अल्लाह के क़हर के पंजे में गिरफ़्तार हो जाना लाज़िम आये, और यह एक असंभव बात को लाज़िम है, क्योंकि यक़ीनी और निश्चित दलीलों से अल्लाह तआ़ला का आप से हमेशा राज़ी रहना साबित है, पस इससे मालूम हुआ कि अल्लाह का ग़ज़ब होना आपके ऊपर मुहाल है, और यह लाज़िम आया था आपके उनकी पैरवी करने से, इसलिये मालूम हुआ कि आपका उनकी पैरवी करना भी मुहाल (असंभव) है, और बग़ैर पैरवी के वे राज़ी और ख़ुश नहीं होंगे तो पता चला कि ऐसी बात की उम्मीद करने की गुंजाईश ही नहीं, इसलिये इससे दिल को ख़ाली कर लेना चाहिये)।

اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَتْلُوْنَهٗ حَقَّ تِلَاوَتِهٖ ؕ اُولٰٓئِكَ يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ ؕ وَمَنْ يَّكْفُرْ بِهٖ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ۟

अल्लज़ी-न आतैनाहुमुल्-किता-ब यत्लूनहू हक़्-क़ तिलावतिही, उलाइ-क युअ्मिनू-न बिही, व मंय्यक्फ़ुर् बिही फ़-उलाइ-क हुमुल्-ख़ासिरून (121) ✿	वे लोग जिनको दी हमने किताब वे उसको पढ़ते हैं जो हक़ है उसके पढ़ने का, वही उस पर यक़ीन लाते हैं। और जो कोई मुन्किर (इनकार करने और न मानने वाला) होगा उससे तो वही लोग नुक़सान पाने वाले हैं। (121) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(इस आयत से पहले की आयत में अहले किताब में के दुश्मनों और मुख़ालिफ़ों का ज़िक्र और मुख़ालिफ़ों के ईमान लाने से पूरी तरह मायूसी का बयान था, इसके बाद क़ुरआन की आ़दत के अनुसार इन्साफ़-पसन्द अहले किताब का बयान है, जिन्होंने हक़ वाज़ेह और स्पष्ट हो जाने के बाद जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तस्दीक़ की, और आपकी पैरवी इख़्तियार कर ली। पस इरशाद है) जिन लोगों को हमने किताब (तौरात व इन्जील) दी, शर्त यह है कि वे उसकी तिलावत (उस तरह) करते रहे जिस तरह कि तिलावत का हक़ है (कि अपनी इल्मी क़ुव्वत को मज़ामीन के समझने में ख़र्च किया, और क़ुव्वते इरादी को हक़ की पैरवी के इरादे में इस्तेमाल किया) ऐसे लोग (ज़रूर आपके) इस (दीने हक़ पर और वही के इल्म) पर ईमान ले आते हैं, और जो शख़्स न मानेगा (किसका नुक़सान करेगा) ख़ुद ही ऐसे लोग घाटे में रहेंगे (कि ईमान पर जो लाभ और इनाम अ़ता होते हैं उनसे मेहरूम रहेंगे)।

يٰبَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ اذْكُرُوْا نِعْمَتِيَ الَّتِيْٓ اَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَاَنِّيْ فَضَّلْتُكُمْ عَلَى الْعٰلَمِيْنَ ۝ وَاتَّقُوْا يَوْمًا لَّا تَجْزِيْ نَفْسٌ عَنْ نَّفْسٍ شَيْـًٔا وَّلَا يُقْبَلُ مِنْهَا عَدْلٌ وَّلَا تَنْفَعُهَا شَفَاعَةٌ وَّلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ۝

या बनी इस्राईलज़्कुरू निअ्मति-यल्लती अन्अ़म्तु अ़लैकुम् व अन्नी फ़ज़्ज़ल्तुकुम् अ़लल्-आ़लमीन (122) वत्तक़ू यौमल्ला-तज्ज़ी नफ़्सुन् अ़न्-नफ़्सिन् शैअंव्-व ला युक़्बलु मिन्हा अ़दलुंव्-व ला तन्फ़अ़ुहा शफ़ाअ़तुंव्-व ला हुम् युन्सरून (123)	ऐ! बनी इस्राईल! याद करो एहसान हमारे जो हमने तुम पर किये और इसको कि हम ने तुमको बड़ाई दी दुनिया जहान वालों पर। (122) और डरो उस दिन से कि न काम आये कोई शख़्स किसी की तरफ़ से ज़रा भी और न क़ुबूल किया जायेगा उसकी तरफ़ से बदला, और न काम आये उसको सिफ़ारिश और न उनको मदद पहुँचे। (123)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऊपर की आयत तक बनी इस्राईल के बारे में जिन ख़ास मज़ामीन का बयान करना मक़सूद था वो तो ख़त्म हुए, अब उन मज़ामीन की शुरूआ़ती तमहीद जिसके संक्षिप्त बयान की ये सारे मज़ामीन तफ़सील थे, उसको दोबारा फिर बयान करते हैं। जिसका मक़सद यह है कि तमहीद का ख़ास मज़मून यानी रग़बत व दिलचस्पी दिलाने के लिये आ़म व ख़ास इनाम का याद दिलाना, और डराने के लिये क़ियामत के बयान को सामने पेश कर देना बार-बार बयान कर देने के सबब ख़ूब ज़ेहन में बैठ जाये, क्योंकि असल और बड़ा मक़सद बुनियादी चीज़ें होती हैं जिनका ध्यान रखना अपने आप में उनके मुख़्तसर होने की वजह से आसान होता है, और उनके असल, जामे और तमाम तफ़सीलात व हिस्सों पर फ़िट होने की वजह से उनके ज़रिये से उनकी जुज़ईयात का महफ़ूज़ रखना आसान होता है, और मुहावरे में यह अपनी बात कहने का बेहतरीन अन्दाज़ समझा जाता है कि विस्तृत और तफ़सीली बात करने से पहले एक मुख़्तसर से उनवान से उसकी तक़रीर कर दी जाये जिसका वह मुख़्तसर हिस्सा तमाम तफ़सीलात के समझने में सहयोगी व मददगार हो और आख़िर में ख़ुलासे के तौर पर और तफ़सील के नतीजे में उसी संक्षिप्त उनवान को फिर दोहरा दिया जाये। जैसे यह कहा जाये कि तकब्बुर (घमण्ड) बड़ी नुक़सानदेह आ़दत है, इसमें एक नुक़सान यह है, दूसरा यह है, तीसरा यह है, दस बीस नुक़सानात गिनवा कर फिर आख़िर में कह दिया जाये कि ग़र्ज़ यह कि तकब्बुर बड़ी ख़तरनाक और नुक़सान देने वाली ख़स्लत है, इसी अन्दाज़ से इस आयतः

يٰبَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ

(यानी ऊपर गुज़री आयत नम्बर 122) को दोहरा दिया गया है। फ़रमायाः

ऐ याक़ूब की औलाद! मेरी उन नेमतों को याद करो जिनका मैंने तुम पर (वक़्त-वक़्त पर) इनाम

किया, और इसको (भी याद करो) कि मैंने तुमको बहुत-से लोगों पर (बहुत सी बातों में) फ़ौक़ियत "यानी बरतरी और बड़ाई" दी। और तुम डरो ऐसे दिन से (यानी क़ियामत के दिन से) जिसमें कोई शख़्स किसी शख़्स की तरफ़ से न कोई मुतालबा (और वाजिब हक़) अदा करने पायेगा और न किसी की तरफ़ से कोई मुआवज़ा (वाजिब हक़ के बजाय) क़ुबूल किया जाएगा, और न किसी को कोई सिफ़ारिश (जबकि ईमान न हो) मुफ़ीद होगी, और न उन लोगों को कोई (ताक़त व ज़ोर से) बचा सकेगा।

وَاِذِ ابْتَلٰٓى اِبْرٰهٖمَ رَبُّهٗ بِكَلِمٰتٍ فَاَتَمَّهُنَّ ؕ قَالَ اِنِّىْ جَاعِلُكَ لِلنَّاسِ اِمَامًا ؕ قَالَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِىْ ؕ قَالَ لَا يَنَالُ عَهْدِى الظّٰلِمِيْنَ ﴿۱۲۴﴾

व इज़िब्तला इब्राही-म रब्बुहू बि-कलिमातिन् फ़-अतम्महुन्-न, क़ा-ल इन्नी जाअ़िलु-क लिन्नासि इमामन्, क़ा-ल व मिन् ज़ुर्रिय्यती, क़ा-ल ला यनालु अ़ह्दिज़्-ज़ालिमीन (124)	और जब आज़माया इब्राहीम को उसके रब ने कई बातों में, फिर उसने वे पूरी कीं तब फ़रमाया मैं तुझको करूँगा सब लोगों का पेशवा। बोला और मेरी औलाद में से भी, फ़रमाया- नहीं पहुँचेगा मेरा क़रार ज़ालिमों को (यानी जो ज़ालिम होंगे उनके लिये हमारा कोई वादा नहीं)। (124)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जिस वक़्त इम्तिहान किया (हज़रत) इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) का उनके परवर्दिगार ने चन्द बातों में (अपने अहकाम में से) और वह उनको पूरे तौर से बजा लाये, (उस वक़्त) हक़ तआ़ला ने (उनसे) फ़रमाया कि मैं तुमको (इसके सिले में नुबुव्वत देकर या उम्मत बढ़ाकर) लोगों का मुक़्तदा "यानी रहनुमा और ऐसा शख़्स जिसकी पैरवी की जाए" बनाऊँगा। उन्होंने अ़र्ज़ किया- और मेरी औलाद में से भी किसी-किसी को (नुबुव्वत दीजिए) इरशाद हुआ कि (आपकी दरख़्वास्त मन्ज़ूर है मगर उसका नियम सुन लीजिये कि) मेरा (यह) ओ़हदा (नुबुव्वत, क़ानून की) ख़िलाफ़वर्ज़ी करने वालों को न मिलेगा (सो ऐसे लोगों को तो साफ़ जवाब है, अलबत्ता इताअ़त करने वालों में से कुछ को नुबुव्वत दी जायेगी)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत में हक़ तआ़ला के ख़ास पैग़म्बर हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के विभिन्न इम्तिहानात (परीक्षाओं) और उनमें उनकी कामयाबी फिर उसके इनाम व सिले का बयान है। और फिर जब हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम ने शफ़क़त व मेहरबानी के तौर पर अपनी औलाद के लिये भी उसी इनाम की दरख़्वास्त की तो इनाम पाने का एक ज़ाब्ता (नियम और क़ानून) इरशाद

फ़रमा दिया गया जिसमें हज़रत ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम की दरख़्वास्त की मन्ज़ूरी सशर्त तौर पर की गई कि यह इनाम आपकी नस्ल को भी मिलेगा, मगर जो लोग नस्ल में से नाफ़रमान और ज़ालिम होंगे वे यह इनाम न पा सकेंगे।

हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह की ज़बरदस्त परीक्षायें और परीक्षाओं के मज़ामीन

यहाँ चन्द बातें ग़ौर-तलब हैं:-

अव्वल यह कि इम्तिहान (परीक्षा) किसी शख़्स की क़ाबलियत मालूम करने के लिये लिया जाता है और अल्लाह तआ़ला अ़लीम व ख़बीर (सब कुछ जानने वाले और हर चीज़ की ख़बर रखने वाले) हैं, किसी भी शख़्स का कोई हाल या कमाल उनसे छुपा नहीं, फिर इस इम्तिहान का क्या मक़सद था?

दूसरे यह कि इम्तिहान किस-किस उनवान से लिया गया।

तीसरे यह कि कामयाबी किस सूरत और किस अन्दाज़ की रही।

चौथे यह कि इनाम क्या दिया गया और उसकी हैसियत क्या है।

पाँचवे यह कि उस इनाम के लिये जो उसूल और नियम मुक़र्रर किया गया है उसकी कुछ तफ़सील व तशरीह।

इन पाँच सवालों के जवाबात तफ़सील से मुलाहिज़ा फ़रमाईयेः

पहली बात कि इम्तिहान का मक़सद क्या था? क़ुरआन के एक लफ़्ज़ 'रब्बुहू' ने इसको हल कर दिया, जिसमें यह बतलाया गया है कि उस इम्तिहान के मुम्तहिन (परीक्षक) ख़ुद अल्लाह तआ़ला हैं, और उनके अच्छे नामों में से इस जगह लफ़्ज़ 'रब' लाकर अल्लाह के रब होने की शान की तरफ़ इशारा कर दिया गया है। जिसके मायने हैं किसी चीज़ को धीरे-धीरे दर्जा-ए-कमाल (तरक़्क़ी और शिखर) तक पहुँचाना।

मतलब यह हुआ कि इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम का यह इम्तिहान व परीक्षा किसी जुर्म की सज़ा में या नामालूम क़ाबलियत का इल्म हासिल करने के लिये नहीं, बल्कि रबूबियत और तरबियत की शान उसका मन्शा है। इन आज़माईशों के ज़रिये अपने ख़लील अ़लैहिस्सलाम की तरबियत करके उनके दर्जों व मक़ामात तक पहुँचाना मक़सूद है। फिर इस जुमले में ग्रामर के हिसाब से जो तरतीब इस्तेमाल की गयी उससे हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के बुलन्द रुतबे को और नुमायाँ किया गया है। इसमें आज़माईश करने वाले से पहले आज़माईश में फंसने वाले का ज़िक्र किया गया यानी हज़रत इब्राहीम का। चुनाँचे इरशाद हुआः

وَاِذِ ابْتَلٰٓى اِبْرٰهٖمَ رَبُّهٗ

दूसरा सवाल कि इम्तिहान किस उनवान (नाम और शीर्षक) से लिया गया? इसके मुताल्लिक़ क़ुरआन शरीफ़ में तो सिर्फ़ 'कलिमात' का लफ़्ज़ आया है, और इस लफ़्ज़ की तफ़सीर व व्याख्या में हज़राते सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम के विभिन्न और अनेक अक़वाल हैं। किसी ने अल्लाह के अहकाम में से दस चीज़ें शुमार कीं, किसी ने तीस बताई हैं और किसी ने

और कुछ कम-ज़्यादा दूसरी चीज़ें बताईं। लेकिन हक़ीक़त यह है कि इनमें कुछ मतभेद नहीं, वे चीज़ें सब की सब ही हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम के इम्तिहान के मज़ामीन थे, तफ़सीर के इमामों इब्ने जरीर और इब्ने कसीर रह. की यही राय है।

अल्लाह तआ़ला के नज़दीक इल्मी नुक्तों से ज़्यादा क़ाबिले क़द्र अख़्लाक़ व किरदार के साथ अ़मल पर जमे रहना है

ये इम्तिहान के मज़ामीन जिनकी तफ़सील आगे बयान होगी मदरसों के इम्तिहानों की तरह फ़न्नी मसाईल और उनकी तहक़ीक़ात नहीं बल्कि अख़्लाक़ी मूल्यों और अ़मली तौर पर जमे रहने की जाँच है। इससे मालूम हुआ कि अल्लाह तआ़ला की बारगाह में जिस चीज़ की क़ीमत है वह इल्मी बारीकियाँ और नुक्ते पैदा करना नहीं बल्कि अ़मली और अख़्लाक़ी बरतरी है।

अब उन इम्तिहानी मज़ामीन में से चन्द अहम चीज़ें सुनियेः

हक़ तआ़ला को मन्ज़ूर था कि हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम को अपनी दोस्ती के ख़ास सम्मान से नवाज़ा जाये इसलिये उनको कड़ी परीक्षाओं से गुज़ारा गया। पूरी क़ौम की क़ौम यहाँ तक कि अपना ख़ानदान सब के सब बुत-परस्ती में मुब्तला थे, सब के अ़क़ीदों व रस्मों से हटकर एक दीने हनीफ़ (सही रास्ता) उनको अ़ता किया गया और उसकी तब्लीग़ और क़ौम को उसकी तरफ़ दावत देने का भारी बोझ आप पर डाला गया। आपने पैग़म्बरों वाली जुर्रत व हिम्मत के साथ बेख़ौफ़ होकर क़ौम को एक ख़ुदा की तरफ़ बुलाया जिसका कोई शरीक नहीं। बुतपरस्ती (मूर्ति पूजा) की शर्मनाक रस्म की ख़राबियाँ विभिन्न उनवानों (अन्दाज़ और शीर्षकों) के ज़रिये बयान कीं, अ़मली तौर पर बुतों के ख़िलाफ़ जिहाद किया, पूरी क़ौम की क़ौम मरने-मारने पर आमादा हो गई, वक़्त के बादशाह नमरूद और उसकी क़ौम ने आपको आग में डालकर ज़िन्दा जला देने का फ़ैसला कर लिया, अल्लाह के ख़लील अ़लैहिस्सलाम ने अपने मौला की रज़ामन्दी के लिये इन सब बलाओं (परेशानियों और परीक्षाओं) पर राज़ी होकर अपने आपको आग में डाल देने के लिये पेश कर दिया। अल्लाह तआ़ला ने अपने ख़लील अ़लैहिस्सलाम को इम्तिहान में कामयाब पाया तो आग को हुक्म दियाः

قُلْنَا يٰنَارُ كُونِىْ بَرْدًا وَّسَلٰمًا عَلٰىٓ اِبْرٰهِيْمَ ○ (٢١: ٦٩)

"हमने हुक्म दे दिया कि ऐ आग! तू इब्राहीम पर ठंडी और सलामती का ज़रिया बन जा।"

जिस वक़्त नमरूद की आग के बारे में अल्लाह तआ़ला का यह हुक्म आया तो हुक्म के अलफ़ाज़ आ़म थे, किसी ख़ास आग को मुतैयन करके हुक्म नहीं दिया गया था, इसलिये पूरी दुनिया में जहाँ कहीं आग मौजूद थी अल्लाह के इस हुक्म के आते ही अपनी-अपनी जगह हर आग ठंडी हो गई, और नमरूद की आग भी दूसरी सब आगों के साथ ठंडी पड़ गई।

क़ुरआन में लफ़्ज़ 'बर्दन्' के साथ 'सलामन्' का इज़ाफ़ा इसलिये फ़रमाया गया कि किसी चीज़ की ठंडक एतिदाल और नॉर्मल दर्जे से बढ़ जाये तो वह भी बर्फ़ की तरह तकलीफ़देह बल्कि घातक हो जाती है। अगर लफ़्ज़ 'सलामन्' इरशाद न होता तो मुम्किन था कि आग बर्फ़ की तरह ऐसी ठंडी हो जाती जो अपनी जगह ख़ुद एक अ़ज़ाब बन जाती, जैसे जहन्नम में एक अ़ज़ाब ज़म्हरीर (सख़्त

ठण्डक) का भी है।

इस इम्तिहान (परीक्षा) से फ़ारिग़ होकर दूसरा इम्तिहान यह लिया गया कि अपने असली वतन को छोड़कर शाम (प्राचीन सीरिया) की तरफ़ हिजरत कर जायें। हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने अल्लाह की रज़ा की तड़प में क़ौम व वतन को भी छोड़ दिया और मय अपने बाल-बच्चों के हिजरत करके शाम में चले आये।

अब क़ौम व वतन को छोड़कर मुल्के शाम में क़ियाम किया ही था कि यह हुक्म मिला कि बीबी हाजरा रज़ियल्लाहु अ़न्हा और उनके दूध पीते बच्चे हज़रत इस्माईल अ़लैहिस्सलाम को साथ लेकर यहाँ से भी कूच करें। (इब्ने कसीर)

हज़रत जिब्राईल अमीन आये और दोनों को साथ ले चले। रास्ते में जहाँ कोई सरसब्ज़ (हरी-भरी) जगह आती तो हज़रत ख़लील अ़लैहिस्सलाम फ़रमाते कि यहाँ ठहरा दिया जाये, हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम फ़रमाते कि यहाँ का हुक्म नहीं, मन्ज़िल आगे है। जब वह ख़ुश्क पहाड़ और गर्म रेगिस्तान आ जाता है जहाँ आगे किसी वक़्त बैतुल्लाह की तामीर और मक्का शहर की बस्ती बसाना मुक़द्दर था, उस रेगिस्तान में आपको उतार दिया जाता है। अल्लाह तआ़ला के ख़लील अ़लैहिस्सलाम अपने परवर्दिगार की मुहब्बत में ख़ुश और मगन उसी चटियल मैदान और सूखे जंगल में अपनी बीवी को लेकर ठहर जाते हैं। लेकिन यह इम्तिहान इसी पर ख़त्म नहीं हो जाता बल्कि अब हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम को हुक्म मिलता है कि बीवी और बच्चे को यहीं छोड़ दें और ख़ुद मुल्के शाम को वापस हो जायें। अल्लाह का ख़लील हुक्म पाते ही उसकी तामील में उठ खड़ा होता है और शाम की तरफ़ रवाना हो जाता है। हुक्म के पालन में इतनी ताख़ीर (देरी) भी गवारा नहीं की कि बीवी को यह इत्तिला ही दे दे कि मुझे चूँकि ख़ुदा का यह हुक्म मिला है इसलिये मैं जा रहा हूँ। हज़रत हाजरा अ़लैहस्सलाम जब आपको जाते हुए देखती हैं तो पुकारती हैं, मगर आप जवाब नहीं देते, फिर पुकारती हैं और कहती हैं कि इस चटियल मैदान और बयाबान इलाक़े में हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हो? इसका भी जवाब नहीं देते मगर वह बीबी भी ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम की बीवी थीं समझ गईं कि माजरा क्या है, और कहने लगीं कि क्या आपको अल्लाह तआ़ला का कोई हुक्म मिला है? आपने फ़रमाया कि हाँ। हज़रत हाजरा अ़लैहस्सलाम को भी जब हुक्मे ख़ुदावन्दी का इल्म हो गया तो बहुत ही इत्मीनान के साथ फ़रमाया कि जाईये जिस मालिक ने आपको चले जाने का हुक्म फ़रमाया है वह हमें भी ज़ाया नहीं करेगा।

अब हज़रत हाजरा अपने दूध पीते बच्चे के साथ उस बयाबान जंगल में वक़्त गुज़ारने लगती हैं। प्यास की शिद्दत पानी की तलाश पर मजबूर करती है, बच्चे को खुले मैदान में छोड़कर सफ़ा व मरवा की पहाड़ियों पर बार-बार चढ़ती उतरती हैं कि कहीं पानी के आसार नज़र आयें या कोई इनसान नज़र आ जाये जिससे कुछ मालूमात हासिल करें। सात मर्तबा की दौड़-धूप के बाद मायूस होकर बच्चे के पास लौट आती हैं। सफ़ा व मरवा के बीच सात मर्तबा दौड़ना इसी की यादगार के तौर पर क़ियामत तक आने वाली नस्लों के लिये हज के अहकाम में ज़रूरी क़रार दिया गया है। हज़रत हाजरा अ़लैहस्सलाम अपनी दौड़-धूप ख़त्म करने और मायूस होने के बाद जब बच्चे के पास आती हैं तो अल्लाह की रहमत नाज़िल होती है, जिब्राईल अमीन आते हैं और उस सूखे रेगिस्तान की ज़मीन से

पानी का एक चश्मा निकाल देते हैं जिसका नाम आज 'ज़मज़म' है। पानी को देखकर पहले जानवर आ जाते हैं फिर जानवरों को देखकर इनसान पहुँचते हैं और मक्का की आबादी का सामान हो जाता है, ज़िन्दगी की आवश्यकताओं की कुछ आसानियाँ मुहैया हो जाती हैं।

नवजात बच्चा जिनको आज हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम कहा जाता है बड़े होते और काम काज के क़ाबिल हो जाते हैं। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम अल्लाह के इशारे से कभी-कभी तशरीफ़ लाते हैं और बीवी व बच्चे को देख जाते हैं। उस वक़्त फिर अपने ख़लील अलैहिस्सलाम का तीसरा इम्तिहान लेते हैं। यह बच्चा उस बिना सहारे के और तंगी के हालात में परवान चढ़ा और ज़ाहिरी असबाब में बाप की तरबियत और शफ़क़त से भी मेहरूम रहा, अब वालिद माजिद को बज़ाहिर यह हुक्म मिलता है इस बच्चे को अपने हाथ से ज़िबह कर दो। क़ुरआन में अल्लाह का इरशाद है:

فَلَمَّا بَلَغَ مَعَهُ السَّعْيَ قَالَ يٰبُنَيَّ اِنِّيْٓ اَرٰى فِي الْمَنَامِ اَنِّيْٓ اَذْبَحُكَ فَانْظُرْ مَاذَا تَرٰى، قَالَ يٰٓاَبَتِ افْعَلْ مَا تُؤْمَرُ سَتَجِدُنِيْٓ اِنْ شَآءَ اللّٰهُ مِنَ الصّٰبِرِيْنَ٥ (١٠٢:٣٧)

"जब बच्चा इस क़ाबिल हो गया कि बाप के साथ काम-काज में कुछ मदद दे सके तो इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने उससे कहा कि ऐ बेटे मैं सपने में यह देखता हूँ कि तुझको ज़िबह कर रहा हूँ, तू बतला कि तेरा क्या ख़्याल है? नेकबख़्त बेटे ने अर्ज़ किया कि अब्बा जान! आपको जो हुक्म मिला है उसका पालन कीजिये, आप मुझे भी उसकी तामील में इन्शा-अल्लाह साबित-क़दम पायेंगे।"

इसके बाद का वाक़िआ हर मुसलमान जानता है कि हज़रत ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम बेटे को ज़िबह करने के लिये **मिना** के जंगल में ले गये और अपनी तरफ़ से अल्लाह तआला के हुक्म की पूरी तामील कर दी, मगर वहाँ मक़सूद बच्चे को ज़िबह कराना नहीं बल्कि शफ़ीक़ बाप का इम्तिहान करना था। सपने के वाक़िए के अलफ़ाज़ में ग़ौर किया जाये, उसमें यह नहीं देखा था कि ज़िबह कर दिया, बल्कि ज़िबह का अमल करते देखा जो हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने कर दिखाया और उस अमल को सोते में **वही** के ज़रिये दिखलाने में भी शायद यही मस्लेहत हो कि कलाम के द्वारा ज़िबह का हुक्म देना मन्ज़ूर न था, इसी वजह से यह इरशाद हुआ कि:

صَدَّقْتَ الرُّؤْيَا

कि सपने में जो कुछ देखा था आपने उसको पूरा कर दिया।

जब इसमें वह पूरे उतरे तो अल्लाह तआला ने जन्नत से उसका फ़िदया नाज़िल फ़रमाकर उसकी क़ुरबानी का हुक्म दे दिया और यह सुन्नते इब्राहीमी आने वाली दुनिया के लिये हमेशा के लिये सुन्नत बन गई।

ये कड़े और सख़्त इम्तिहानात (परीक्षायें) थे जिनमें हज़रत ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम को गुज़ारा गया। इसके साथ ही दूसरे बहुत से आमाल व अहकाम की पाबन्दियाँ आप पर आयद की गईं जिनमें से दस 'फ़ितरी आदतों' के नाम से नामित हैं, जिनका ताल्लुक़ बदन की सफ़ाई-सुथराई और पाकी से है और ये 'फ़ितरी आदतें' आने वाली तमाम उम्मतों के लिये भी मुस्तक़िल अहकाम बन गये। हज़रत ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने अपनी उम्मत को इन तमाम बातों के लिये ताकीदी हुक्म दिये। और इमाम इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अलैहि ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु

अन्हु से एक रिवायत में यह भी नक़ल किया है कि पूरा इस्लाम तीस हिस्सों में फैला हुआ है, जिसमें से दस सूरः बराअत में बयान हुए हैं और दस सूरः अहज़ाब में और दस सूरः मोमिनून में। हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने इन तमाम चीज़ों का पूरा हक़ अदा किया और इन सब इम्तिहानों में पूरे उतरे और कामयाब रहे।

सूरः बराअत (सूरः तौबा) में मोमिनों की सिफ़ात बयान करते हुए मुसलमान की दस विशेष निशानियाँ और सिफ़तों का इस तरह बयान किया गया है।

اَلتَّآئِبُوْنَ الْعٰبِدُوْنَ الْحٰمِدُوْنَ السَّآئِحُوْنَ الرّٰكِعُوْنَ السّٰجِدُوْنَ الْاٰمِرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَالنَّاهُوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَالْحٰفِظُوْنَ لِحُدُوْدِ اللّٰهِ، وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ○ (٩:١١٢)

"वे ऐसे हैं जो तौबा करने वाले, इबादत करने वाले, हम्द करने वाले, रोज़ा रखने वाले, रुकूअ़ व सज्दे करने वाले, नेक बातों की तालीम करने वाले और बुरी बातों से रोकने वाले और अल्लाह की हदों (सीमाओं) का ख़्याल रखने वाले, और ऐसे मोमिनों को आप ख़ुशख़बरी सुना दीजिये।"

और सूरः मोमिनून की दस सिफ़ात ये हैं:

قَدْ اَفْلَحَ الْمُؤْمِنُوْنَ○ الَّذِيْنَ هُمْ فِيْ صَلَاتِهِمْ خٰشِعُوْنَ○ وَالَّذِيْنَ هُمْ عَنِ اللَّغْوِ مُعْرِضُوْنَ○ وَالَّذِيْنَ هُمْ لِلزَّكٰوةِ فٰعِلُوْنَ○ وَالَّذِيْنَ هُمْ لِفُرُوْجِهِمْ حٰفِظُوْنَ○ اِلَّا عَلٰٓى اَزْوَاجِهِمْ اَوْمَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُمْ فَاِنَّهُمْ غَيْرُمَلُوْمِيْنَ○ فَمَنِ ابْتَغٰى وَرَآءَ ذٰلِكَ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْعٰدُوْنَ○ وَالَّذِيْنَ هُمْ لِاَمٰنٰتِهِمْ وَعَهْدِهِمْ رٰعُوْنَ○ وَالَّذِيْنَ هُمْ عَلٰى صَلَوٰتِهِمْ يُحَافِظُوْنَ○ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْوٰرِثُوْنَ○ الَّذِيْنَ يَرِثُوْنَ الْفِرْدَوْسَ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ○ (٢٣:١-١١)

"यक़ीनन उन मुसलमानों ने फ़लाह (कामयाबी) पाई जो अपनी नमाज़ में ख़ुशू व ख़ुज़ू करने वाले (दिल और बदन को झुकाने वाले) हैं और जो बेहूदा बातों से एक तरफ़ रहने वाले हैं, और जो अपने आपको पाक करने वाले हैं, और जो अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करने वाले हैं लेकिन अपनी बीवियों से या अपनी बाँदियों से, क्योंकि उन पर कोई इल्ज़ाम नहीं, हाँ जो इसके अ़लावा तलबगार हों ऐसे लोग हद से निकल जाने वाले हैं और जो अपनी अमानतों और अपने अ़हद का ख़्याल रखने वाले हैं और जो अपनी नमाज़ों की पाबन्दी करते हैं, ऐसे ही लोग वारिस होने वाले हैं जो फ़िरदौस (जन्नत के आला मक़ाम) के वारिस होंगे, वे उसमें हमेशा रहेंगे।"

और सूरः अहज़ाब में ज़िक्र हुई दस सिफ़तें ये हैं:

اِنَّ الْمُسْلِمِيْنَ وَالْمُسْلِمٰتِ وَالْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ وَالْقٰنِتِيْنَ وَالْقٰنِتٰتِ وَالصّٰدِقِيْنَ وَالصّٰدِقٰتِ وَالصّٰبِرِيْنَ وَالصّٰبِرٰتِ وَالْخٰشِعِيْنَ وَالْخٰشِعٰتِ وَالْمُتَصَدِّقِيْنَ وَالْمُتَصَدِّقٰتِ وَالصَّآئِمِيْنَ وَالصّٰٓئِمٰتِ وَالْحٰفِظِيْنَ فُرُوْجَهُمْ وَالْحٰفِظٰتِ وَالذّٰكِرِيْنَ اللّٰهَ كَثِيْرًا وَّالذّٰكِرٰتِ، اَعَدَّ اللّٰهُ لَهُمْ مَّغْفِرَةً وَّاَجْرًا عَظِيْمًا○ (٣٣:٣٥)

"बेशक इस्लाम के काम करने वाले मर्द और इस्लाम के काम करने वाली औरतें, और ईमान लाने वाले मर्द और ईमान लाने वाली औरतें, और फ़रमाँबरदारी करने वाले मर्द और फ़रमाँबरदारी करने वाली औरतें और सच्चे मर्द और सच्ची औरतें और सब्र करने वाले मर्द और सब्र करने वाली औरतें, और ख़ुशू करने वाले मर्द और ख़ुशू करने वाली औरतें, और ख़ैरात करने

वाले मर्द और ख़ैरात करने वाली औरतें, और रोज़ा रखने वाले मर्द और रोज़ा रखने वाली औरतें, और अपनी शर्मगाह की हिफ़ाज़त करने वाले मर्द और अपनी शर्मगाह की हिफ़ाज़त करने वाली औरतें और ख़ूब अधिक अल्लाह तआ़ला को याद करने वाले मर्द और ख़ूब अधिक अल्लाह को याद करने वाली औरतें, इन सब के लिये अल्लाह तआ़ला ने मग़फ़िरत और बड़ा अज्र तैयार कर रखा है।"

क़ुरआन के मुफ़स्सिर (व्याख्यापक) हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु के इस इरशाद से मालूम हुआ कि मुसलमान के लिये जितनी इल्मी, अ़मली, अख़्लाक़ी सिफ़तें मतलूब (चाही गयी) हैं वे इन तीनों सूरतों की चन्द आयतों में जमा कर दी गई हैं और यही सिफ़तें वो कलिमात हैं जिनमें हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम का इम्तिहान लिया गया और आयतः

وَاِذِ ابْتَلٰٓى اِبْرٰهٖمَ رَبُّهٗ بِكَلِمٰتٍ

(यानी यही आयत नम्बर 124 जिसकी तफ़सीर बयान हो रही है) में इन्हीं सिफ़तों की तरफ़ इशारा है।

इन आयतों से संबन्धित क़ाबिले ग़ौर सवालों में से दो सवालों का जवाब यहाँ तक हो गया। तीसरा सवाल यह था कि इस इम्तिहान में हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की कामयाबी का दर्जा और स्थान क्या रहा? तो वह ख़ुद क़ुरआने करीम ने अपने मख़्सूस अन्दाज़ में उनको कामयाबी की सनद अ़ता फ़रमाई। इरशाद हुआः

وَاِبْرٰهِيْمَ الَّذِىْ وَفّٰٓى (٣٧:٥٣)

(वह इब्राहीम जिसने पूरा कर दिखाया।)

इसका हासिल यह है कि हर इम्तिहान की मुकम्मल और सौ फ़ीसदी कामयाबी का ऐलान फ़रमा दिया।

चौथा सवाल कि इस इम्तिहान पर इनाम क्या मिला? इसका ज़िक्र ख़ुद इसी आयत में आ चुका है, यानीः

قَالَ اِنِّىْ جَاعِلُكَ لِلنَّاسِ اِمَامًا. (٢:١٢٤)

"(इम्तिहान के बाद) अल्लाह तआ़ला ने फ़रमाया कि मैं आपको लोगों का इमाम और पेशवा बनाने वाला हूँ।"

इससे एक तरफ़ तो यह मालूम हुआ कि हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम को उस कामयाबी के सिले में मख़्लूक़ की इमामत और पेशवाई (यानी उनका मुक़्तदा होने) का इनाम दिया गया। दूसरी तरफ़ यह भी मालूम हुआ कि अल्लाह की मख़्लूक़ के इमाम व मुक़्तदा और पेशवा बनने के लिये जो इम्तिहान दरकार है वह दुनिया के मदरसों और यूनिवर्सिटियों जैसा इम्तिहान नहीं, जिसमें चन्द बातों की फ़न्नी और इल्मी बारीकियों को कामयाबी का आला दर्जा समझा जाता है, इस ओहदे को हासिल करने के लिये उन तीस अख़्लाक़ी और अ़मली सिफ़तों में कामिल और मुकम्मल होना शर्त है जिनका ज़िक्र अभी आयतों के हवालों से आ चुका है। क़ुरआने करीम ने एक दूसरी जगह भी यही मज़मून इस तरह बयान फ़रमाया हैः

وَجَعَلْنَا مِنْهُمْ اَئِمَّةً يَّهْدُوْنَ بِاَمْرِنَا لَمَّا صَبَرُوْا وَكَانُوْا بِاٰيٰتِنَا يُوْقِنُوْنَ٥ (٣٢:٢٤)

"यानी हमने उनमें से इमाम और पेशवा बनाये कि वे हमारे हुक्म से लोगों को हिदायत करें, जब उन्होंने अपने नफ़्स को (ख़िलाफ़े शरीअ़त कामों से) रोका और हमारी आयतों पर यक़ीन किया।"

इस आयत में इमामत व पेशवाई के लिये इन तीस सिफ़तों का ख़ुलासा दो लफ़्ज़ों में कर दिया गया है यानी सब्र व यक़ीन। यक़ीन इल्मी और एतिक़ादी कमाल और सब्र अ़मली और अख़्लाक़ी कमाल है, और वे तीस सिफ़तें जिनका ज़िक्र अभी ऊपर गुज़र चुका है सब की सब इन्हीं दो वस्फ़ों (ख़ूबियों और कमालात) के अन्दर मौजूद हैं।

पाँचवा सवाल यह था कि आईन्दा आने वाली नस्लों को इमामत व पेशवा होने का पद देने के लिये जो यह ज़ाब्ता (क़ानून और नियम) इरशाद हुआ है कि फ़ासिक़ (बदकार) और ज़ालिम लोगों को यह मन्सब (ओहदा व सम्मान) न मिलेगा, इसका क्या मतलब है?

इसका ख़ुलासा यह है कि इमाम व पेशवा होना एक हैसियत से अल्लाह जल्ल शानुहू की ख़िलाफ़त है, यह किसी ऐसे शख़्स को नहीं दी जा सकती कि जो उसका बाग़ी और नाफ़रमान हो, इसलिये मुसलमानों पर लाज़िम है कि अपने इख़्तियार से अपना नुमाईन्दा या अमीर (प्रतिनिधि और हाकिम) किसी ऐसे शख़्स को मुक़र्रर न करें जो अल्लाह तआ़ला का बाग़ी या नाफ़रमान हो।

وَاِذْ جَعَلْنَا الْبَيْتَ مَثَابَةً لِّلنَّاسِ وَاَمْنًا ۭ وَاتَّخِذُوْا مِنْ مَّقَامِ اِبْرٰهٖمَ مُصَلًّى ۭ وَعَهِدْنَآ اِلٰٓى اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ اَنْ طَهِّرَا بَيْتِىَ لِلطَّاۗىِٕفِيْنَ وَالْعٰكِفِيْنَ وَالرُّكَّعِ السُّجُوْدِ ۝

व इज़् जअ़ल्नल्बै-त मसा-बतल्-लिन्नासि व अम्नन्, वत्तख़िज़ू मिम्-मक़ामि इब्राही-म मुसल्लन्। व अ़हिद्ना इला इब्राही-म व इस्माअ़ी-ल अन् तह्हिरा बैति-य लित्ता-इफ़ी-न वल्-आ़किफ़ी-न वर्रुक्कअ़िस्सुजूद (125)	और जब मुक़र्रर किया हमने ख़ाना काबा को इज्तिमा (इकट्ठा होने) की जगह लोगों के वास्ते और जगह अमन की, और बनाओ इब्राहीम के खड़े होने की जगह को नमाज़ की जगह। और हुक्म किया हमने इब्राहीम और इस्माईल को कि पाक रखो मेरे घर को वास्ते तवाफ़ करने वालों के और एतिकाफ़ करने वालों के, और रुकूअ़ और सज्दा करने वालों के। (125)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह वक़्त भी ज़िक्र करने के क़ाबिल है) जिस वक़्त हमने काबा शरीफ़ को लोगों के लिये इबादत की जगह और अमन (का स्थान हमेशा से) मुक़र्रर रखा। और (आख़िर में उम्मते मुहम्मदिया को हुक्म दिया कि बरकत हासिल करने के लिये) मक़ामे इब्राहीम को (कभी-कभी) नमाज़ पढ़ने की

जगह बना लिया करो। और हमने (काबा की तामीर के वक़्त हज़रत) इब्राहीम और (हज़रत) इस्माईल (अ़लैहिमस्सलाम) की तरफ़ हुक्म भेजा कि मेरे (इस) घर को ख़ूब पाक-साफ़ रखा करो, बाहर से आने वालों और स्थानीय लोगों (की इबादत) के वास्ते, और रुकूअ़ और सज्दे करने वालों के वास्ते।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम की मक्का को हिजरत और बैतुल्लाह की तामीर का तफ़सीली वाकिआ़

इस आयत में बैतुल्लाह काबे शरीफ़ की तारीख़ (इतिहास) की तरफ़ इशारा है और हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह और इस्माईल अ़लैहिमस्सलाम के हाथों उसकी नयी तामीर तथा बैतुल्लाह और मक्का मुकर्रमा की चन्द ख़ुसूसियात (विशेषताओं) का ज़िक्र और बैतुल्लाह के एहतिराम (अदब व सम्मान) से संबन्धित अहकाम बयान हुए हैं। यह मज़मून क़ुरआन की बहुत सी आयतों में अनेक सूरतों के अन्दर फैला हुआ है। इस जगह मुख़्तसर तौर पर इसको बयान किया जाता है जिससे उक्त आयतों का पूरा मज़मून स्पष्ट हो जायेगा। यह मज़मून सूरः हज की आयत नम्बर 26 में इस तरह बयान हुआ है:

وَاِذْ بَوَّاْنَا لِاِبْرٰهِيْمَ مَكَانَ الْبَيْتِ اَنْ لَّا تُشْرِكْ بِيْ شَيْئًا وَّطَهِّرْ بَيْتِيَ لِلطَّآئِفِيْنَ وَ الْقَآئِمِيْنَ وَالرُّكَّعِ السُّجُوْدِ ○ وَ اَذِّنْ فِي النَّاسِ بِالْحَجِّ يَاْتُوْكَ رِجَالًا وَّعَلٰى كُلِّ ضَامِرٍ يَّاْتِيْنَ مِنْ كُلِّ فَجٍّ عَمِيْقٍ ○

"यानी वह वक़्त याद करने के क़ाबिल है जबकि हमने इब्राहीम को ख़ाना काबा की जगह बतला दी कि मेरे साथ किसी चीज़ को शरीक मत करना, और मेरे घर को तवाफ़ करने वालों के और क़ियाम व रुकूअ़ करने वालों के वास्ते पाक रखना। और लोगों में हज का ऐलान कर दो लोग तुम्हारे पास चले आयेंगे पैदल भी और दुबली ऊँटनियों पर भी, जो दूर-दराज़ के रास्तों से पहुँची होंगी।"

तफ़सीर इब्ने कसीर में तफ़सीर के इमामों हज़रत मुजाहिद रहमतुल्लाहि अ़लैहि वग़ैरह से नक़ल किया है कि हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम मुल्के शाम में मुक़ीम थे और हज़रत इस्माईल अ़लैहिस्सलाम दूध पीते बच्चे थे जिस वक़्त हक़ तआ़ला का उनको यह हुक्म मिला कि हम ख़ाना काबा की जगह आपको बतलाते हैं, आप उसको पाक-साफ़ करके तवाफ़ व नमाज़ से आबाद रखें। इस हुक्म के पालन के लिये जिब्रीले अमीन बुराक़ लेकर हाज़िर हुए और हज़रत इब्राहीम और इस्माईल अ़लैहिमस्सलाम को मय उनकी वालिदा हज़रत हाजरा रज़ियल्लाहु अ़न्हा के साथ लेकर सफ़र किया, रास्ते में जब किसी बस्ती पर नज़र पड़ती और हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम जिब्रीले अमीन से मालूम करते कि क्या हमें यहाँ उतरने का हुक्म मिला है, तो हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम फ़रमाते कि नहीं! आपकी मन्ज़िल आगे है, यहाँ तक कि मक्का मुकर्रमा की जगह सामने आई जिसमें काँटेदार झाड़ियाँ और बबूल (कीकर) के दरख़्तों के सिवा कुछ नहीं था। इस ख़ित्ता-ए-ज़मीन के आस-पास

कुछ लोग बसते थे जिनको 'अ़मालीन' कहा जाता था। बैतुल्लाह उस वक़्त एक टीले की शक्ल में था हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम ने इस जगह पहुँचकर जिब्रीले अमीन से पूछा कि क्या हमारी मन्ज़िल यह है? तो उन्होंने फ़रमाया- हाँ।

हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम मय अपने बेटे और हज़रत हाजरा के यहाँ उतर गये और बैतुल्लाह के पास एक मामूली छप्पर डालकर हज़रत इस्माईल और हज़रत हाजरा को यहाँ ठहरा दिया, उनके पास एक तोशेदान में कुछ खजूरें और एक मश्कीज़े में पानी रख दिया और इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम को उस वक़्त यहाँ ठहरने का हुक्म न था, वह उस दूध पीते बच्चे और उनकी वालिदा को ख़ुदा के हवाले करके वापस होने लगे; जाने की तैयारी देखकर हज़रत हाजरा ने अ़र्ज़ किया कि हमें इस बयाबान और सूखे मैदान में छोड़कर आप कहाँ जाते हैं, जिसमें न कोई साथी व मददगार है न ज़िन्दगी की ज़रूरतें।

हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम ने कोई जवाब न दिया और चलने लगे। हज़रत हाजरा अ़लैहस्सलाम साथ उठीं फिर बार-बार यही सवाल दोहराया। हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम की तरफ़ से कोई जवाब न था यहाँ तक कि ख़ुद उनके दिल में बात पड़ी और अ़र्ज़ किया कि क्या अल्लाह तआ़ला ने आपको यहाँ छोड़कर चले जाने का हुक्म दिया है? तब हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने फ़रमाया कि मुझे अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से यह हुक्म मिला है। इसको सुनकर हज़रत हाजरा ने फ़रमाया कि फिर आप शौक़ से जायें, जिसने आपको यह हुक्म दिया है वह हमें भी ज़ाया नहीं करेगा। इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम अल्लाह के हुक्म की तामील में यहाँ से चल खड़े हुए मगर दूध पीते बच्चे और उसकी माँ का ख़्याल लगा हुआ था, जब रास्ते के मोड़ पर पहुँचे जहाँ से हज़रत हाजरा अ़लैहस्सलाम न देख सकें तो ठहर गये और अल्लाह तआ़ला से यह दुआ़ फ़रमाई जो सूरः इब्राहीम की आयत नम्बर 35 व 37 में इस तरह ज़िक्र हुई है:

رَبِّ اجْعَلْ هٰذَا الْبَلَدَ اٰمِنًا وَّاجْنُبْنِیْ وَبَنِیَّ اَنْ نَّعْبُدَ الْاَصْنَامَ○ (سورة ابراهيم ١٤: ٣٥)

"ऐ मेरे परवर्दिगार! इस शहर को अमन वाला बना दीजिये और मुझको और मेरे ख़ास फ़रज़न्दों को बुतों की इबादत से बचाये रखिये।"

फिर दुआ में अ़र्ज़ किया:

رَبَّنَآ اِنِّیْٓ اَسْکَنْتُ مِنْ ذُرِّیَّتِیْ بِوَادٍ غَیْرِ ذِیْ زَرْعٍ عِنْدَ بَیْتِكَ الْمُحَرَّمِ رَبَّنَا لِیُقِیْمُوا الصَّلٰوةَ فَاجْعَلْ اَفْئِدَةً مِّنَ النَّاسِ تَهْوِیْٓ اِلَیْهِمْ وَارْزُقْهُمْ مِّنَ الثَّمَرٰتِ لَعَلَّهُمْ یَشْكُرُوْنَ○ (١٤: ٣٧)

"यानी ऐ हमारे रब! मैं अपनी औलाद को आपके मोहतरम घर के क़रीब एक मैदान में जो ज़राअ़त (खेती-बाड़ी) के क़ाबिल नहीं आबाद करता हूँ। ऐ हमारे रब! ताकि वे नमाज़ का एहतिमाम करें, तो आप कुछ लोगों के दिल उनकी तरफ़ झुका दीजिये और उनको फल खाने को दीजिये ताकि ये लोग शुक्र करें।"

पहला हुक्म जिसकी बिना पर शाम से हिजरत कराकर हज़रत इस्माईल और उनकी वालिदा (माँ) को यहाँ लाया गया था उसमें यह इरशाद हुआ था कि मेरे घर को पाक रखना। हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम जानते थे कि पाक रखने से मुराद यह है कि ज़ाहिरी नजासात और गन्दगी से भी पाक रखा जाये और बातिनी (न दिखने वाली) गन्दगी कुफ़्र व शिर्क से पाकी भी अल्लाह के फ़रमान में

मक़सूद है, इसलिये यहाँ ठहरकर जो दुआयें फ़रमाई उनमें अव्वल तो इस बस्ती के महफ़ूज़ व मामून (अमन व शांति वाली और सुरक्षित) रहने और अमन का स्थान होने की दुआ फ़रमाई, फिर यह दुआ की कि मुझे और मेरी औलाद को शिर्क व बुत-परस्ती से बचाईये, क्योंकि हज़रत ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम को अल्लाह की मारिफ़त (पहचान) का वह मक़ाम हासिल था जिसमें इनसान को अपना वजूद ही नाबूद (बेहक़ीक़त और ग़ैर-मौजूद) नज़र आता है। अपने तमाम आमाल, कामों और इरादों को यह महसूस करता है कि सब कुछ हक़ तआ़ला ही के क़ब्ज़ा-ए-क़ुदरत में हैं, उसी की मर्ज़ी व इरादे से सब काम होते हैं। इसलिये कुफ़्र व शिर्क से बैतुल्लाह को पाक रखने का जो हुक्म मिला था उसमें हक़ तआ़ला ही से इमदाद तलब की। इस दुआ के अन्दर कुफ़्र व शिर्क से महफ़ूज़ रहने की दरख़्वास्त में एक ख़ास राज़ यह भी हो सकता है कि जब बैतुल्लाह की ताज़ीम व तकरीम (आदर व सम्मान) का हुक्म हुआ तो यह गुमान भी था कि आगे चलकर कोई नावाक़िफ़ इस बैतुल्लाह ही को माबूद (पूज्य) न बना ले और इस तरह शिर्क में मुब्तला हो जाये, इसलिये यह दुआ फ़रमाई कि मुझको और मेरी औलाद को शिर्क से महफ़ूज़ (सुरक्षित) रखा जाये।

इसके बाद दूध पीते बच्चे और उसकी वालिदा पर शफ़क़त के पेशे नज़र यह दुआ फ़रमाई कि मैंने इनको आपके हुक्म के मुताबिक़ आपके मोहतरम (सम्मानित) घर के पास ठहरा तो दिया है लेकिन यह जगह ज़राअ़त (खेती-बाड़ी) के क़ाबिल भी नहीं जहाँ कोई अपनी मेहनत से ज़िन्दगी की ज़रूरतें हासिल कर सके, इसलिये आप ही अपने फ़ज़्ल से इनको फलों का रिज़्क़ अ़ता फ़रमा दें।

यह दुआ करके हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम तो अपने वतन शाम की तरफ़ रवाना हो गये। उधर हज़रत हाजरा का कुछ वक़्त तो उस खजूर के तोशे और पानी के साथ कट गया जो हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम छोड़ गये थे, पानी ख़त्म होने के बाद ख़ुद भी प्यास से बेचैन और दूध पीता बच्चा भी। उस वक़्त पानी की तलाश में उनका निकलना और कभी सफ़ा पहाड़ी पर कभी मरवा पहाड़ी पर चढ़ना और इन दोनों के बीच दौड़-दौड़कर रास्ता तय करना ताकि हज़रत इस्माईल अ़लैहिस्सलाम आँखों के सामने आ जायें, आ़म मुसलमानों में जानी-पहचानी बात है और हज में सफ़ा व मरवा के बीच सई करना (झपट कर चलना) आज तक उसी की यादगार है।

इस क़िस्से के आख़िर में हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम का अल्लाह के हुक्म से वहाँ पहुँचना और ज़मज़म चश्मे का जारी करना और फिर क़बीला जुर्हुम के कुछ लोगों का यहाँ आकर बस जाना और हज़रत इस्माईल अ़लैहिस्सलाम के जवान होने के बाद क़बीला जुर्हुम की एक बीबी से शादी हो जाना, यह सब सही बुख़ारी की रिवायत में तफ़सील के साथ मज़कूर है। हदीस की रिवायत के मजमूए से मालूम होता है कि सूरः हज के शुरू की आयत में जो बैतुल्लाह को आबाद करने और पाक साफ़ रखने का हुक्म हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम को मिला था उस वक़्त इतना ही अ़मल मक़सूद था कि उस जगह को हज़रत इस्माईल और हज़रत हाजरा अ़लैहिमस्सलाम के ज़रिये आबाद कर दिया जाये, इसके मुख़ातब सिर्फ़ हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम थे क्योंकि इस्माईल अ़लैहिस्सलाम अभी दूध पीने के ज़माने में थे, उस वक़्त बैतुल्लाह की नयी तामीर का हुक्म न मिला था। सूरः ब-क़रह की यह आयत जिसकी इस वक़्त तफ़सीर बयान हो रही है:

وَعَهِدْنَآ اِلٰٓى اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ اَنْ طَهِّرَا بَيْتِىَ..........

इसमें हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के साथ हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम को भी शरीक कर लिया गया है, यह हुक्म उस वक़्त का है जबकि हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम जवान और बाल-बच्चोंदार हो चुके थे उस वक़्त दोनों को बैतुल्लाह की तामीर का हुक्म दिया गया।

सही बुख़ारी की रिवायत में है कि एक दिन हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम आदत के अनुसार हज़रत हाजरा अलैहस्सलाम और इस्माईल अलैहिस्सलाम की मुलाक़ात के लिये मक्का मुकर्रमा पहुँचे तो देखा कि इस्माईल अलैहिस्सलाम एक दरख़्त के नीचे बैठे हुए तीर बना रहे हैं। वालिद माजिद को देखकर खड़े हो गये, मुलाक़ात के बाद हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने फ़रमाया कि मुझे अल्लाह तआला ने एक काम का हुक्म दिया है, क्या तुम उसमें मेरी मदद करोगे? फ़रमाँबरदार बेटे ने अर्ज़ किया कि दिल व जान से करूँगा। इस पर हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने उस टीले की तरफ़ इशारा किया जहाँ बैतुल्लाह था कि मुझे उसकी तामीर (निर्माण) का हुक्म हुआ है। बैतुल्लाह की चारों तरफ़ की सीमायें हक़ तआला ने हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम को बतला दी थीं, दोनों हज़रात इस काम में लगे तो बैतुल्लाह की क़दीम (पुरानी) बुनियादें निकल आईं उन्हीं पर दोनों ने तामीर शुरू कर दी। अगली आयत में इसी का बयान है:

وَاِذْ يَرْفَعُ اِبْرٰهٖمُ الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ وَاِسْمٰعِيْلُ.

जिसमें इस तरफ़ इशारा है कि बैतुल्लाह को बनाने वाले असल में हज़रत ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम हैं और इस्माईल अलैहिस्सलाम मददगार की हैसियत से शरीक हैं।

इन तमाम आयतों पर ग़ौर करने से वह हक़ीक़त स्पष्ट हो जाती है जो हदीस की कुछ रिवायतों और तारीख़ में ज़िक्र हुई है कि बैतुल्लाह पहले से दुनिया में मौजूद था, क्योंकि तमाम आयतों में कहीं बैतुल्लाह की जगह बतलाने का ज़िक्र है, कहीं उसको पाक साफ़ रखने का ज़िक्र है, यह कहीं मज़कूर नहीं कि आज कोई नया घर तामीर कराना है, उसकी तामीर करें। इससे मालूम हुआ कि बैतुल्लाह का वजूद इस वाक़िए से पहले मौजूद था फिर हज़रत नूह अलैहिस्सलाम के दौर में तूफ़ान आने के वक़्त ढह गया या उठा लिया गया था, सिर्फ़ बुनियादें मौजूद थीं। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम और इस्माईल अलैहिस्सलाम काबे के पहले बानी (संस्थापक) नहीं बल्कि पहली तामीर की बुनियादों पर नयी तामीर उनके हाथों हुई है।

अब रहा यह मामला कि पहली तामीर किसने और किस वक़्त की? इसमें कोई सही और मज़बूत रिवायत हदीस की मन्क़ूल नहीं। अहले किताब की रिवायतें हैं जिनसे मालूम होता है कि सबसे पहले इसकी तामीर आदम अलैहिस्सलाम के इस दुनिया में आने से पहले ही फ़रिश्तों ने की थी, फिर आदम अलैहिस्सलाम ने इसका नवनिर्माण किया। यह तामीर तूफ़ाने नूह तक बाक़ी रही, तूफ़ाने नूह में ढह जाने के बाद इब्राहीम अलैहिस्सलाम के ज़माने तक यह एक टीले की सूरत में बाक़ी रही, हज़रत इब्राहीम व इस्माईल अलैहिमस्सलाम ने नये सिरे से तामीर फ़रमाई। इसके बाद उस तामीर में टूट-फूट तो हमेशा होती रही मगर गिराई नहीं गई। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को नुबुव्वत मिलने से पहले मक्का के क़ुरैश ने उसको गिराकर नये सिरे से तामीर किया जिसकी तामीर

में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने भी ख़ास शिर्कत फ़रमाई।

हरम शरीफ़ से संबन्धित अहकाम व मसाईल

1. लफ़्ज़ 'मसाबा' से मालूम हुआ कि अल्लाह तआ़ला ने बैतुल्लाह को यह ख़ास फ़ज़ीलत बख़्शी है कि वह हमेशा मख़्लूक़ के वहाँ आने और जमा होने का केन्द्र रहेगा और लोग बार-बार उसकी तरफ़ जाने और लौटने की आरज़ू करेंगे। तफ़सीर के इमाम हज़रत मुजाहिद रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमायाः

لا يقضى احد منها وطرًا. (قرطبى)

यानी कोई आदमी उसकी ज़ियारत से कभी सैर नहीं होता, बल्कि हर मर्तबा पहले से ज़्यादा ज़ियारत व तवाफ़ का शौक़ लेकर लौटता है।

और कुछ उलेमा ने फ़रमाया कि हज के क़ुबूल होने की निशानियों में से है कि वहाँ से लौटने के बाद फिर वहाँ जाने का शौक़ दिल में पाये। चुनाँचे आ़म तौर पर यह देखा जाता है कि पहली मर्तबा बैतुल्लाह की ज़ियारत (देखने का) जितना शौक़ होता है दूसरी मर्तबा के लिये उस शौक़ में इज़ाफ़ा हो जाता है और जूँ-जूँ बार-बार ज़ियारत करता रहता है यह शौक़ और बढ़ता जाता है।

यह मोजिज़ा बैतुल्लाह ही की ख़ुसूसियत हो सकती है, वरना दुनिया के बेहतर से बेहतर मनाज़िर (दृश्यों) को इनसान एक दो मर्तबा देख लेने के बाद सैर हो जाता (यानी तबीयत भर जाती) है और पाँच सात मर्तबा देखने के बाद तो देखने का ध्यान भी नहीं आता, और यहाँ तो न कोई बहुत अच्छी दिखने वाली सीनरी, न वहाँ पहुँचना कुछ आसान है, न वहाँ दुनिया के कारोबार ही की कोई अहमियत है, इसके बावजूद लोगों के दिल में उसकी तड़प हमेशा मौजें मारती रहती है। हज़ारों रुपये ख़र्च करके सैंकड़ों मशक़्क़तें झेलकर वहाँ पहुँचने के मुश्ताक़ (इच्छुक) रहते हैं।

2. लफ़्ज़ 'अम्ना' इस जगह 'मअ्मन्' यानी अमन की जगह के मायने में है, और लफ़्ज़ 'बैत' से मुराद सिर्फ़ बैतुल्लाह यानी ख़ाना काबा नहीं बल्कि पूरा हरम मुराद है। क़ुरआने करीम में बैतुल्लाह और काबे का लफ़्ज़ बोलकर पूरा हरम मुराद लेने के और भी सुबूत मौजूद हैं, जैसे इरशाद हैः

هَدْيًا ۢ بٰلِغَ الْكَعْبَةِ. (٩٥:٥)

इसमें लफ़्ज़ काबे को बोलकर पूरा हरम मुराद लिया गया है, क्योंकि इसमें ज़िक्र क़ुरबानी का है और काबा के बैत के अन्दर तो क़ुरबानी नहीं होती और न वहाँ क़ुरबानी करना जायज़ है, इसलिये मायने आयत के यह हुए कि हमने मक्का के हरम को अमन की जगह बना दिया है और अमन की जगह बना देने से मुराद लोगों को यह हुक्म देना है कि हरमे मोहतरम को आ़म क़त्ल व क़िताल और इन्तिक़ाम से अलग रखें। (इब्ने अ़रबी)

चुनाँचे इस्लाम से पहले ज़माने में भी अ़रब के लोगों के हाथ में मिल्लते इब्राहीमी के जो कुछ आसार बाक़ी रह गये थे उनमें यह भी था कि हरम में अपने बाप और भाई का क़ातिल भी किसी को मिलता तो इन्तिक़ाम (बदला) नहीं लेते थे और आ़म जंग व क़िताल को भी हरम में हराम समझते थे। इस्लामी शरीअ़त में भी यह हुक्म इसी तरह बाक़ी रखा गया, फ़त्हे मक्का के वक़्त सिर्फ़ चन्द

घन्टों के लिये रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के वास्ते हरम की ज़मीन में क़िताल को जायज़ किया गया था मगर उसी वक़्त फिर हमेशा के लिये हराम कर दिया गया और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़तहे मक्का के ख़ुतबे में इसका ऐलान फ़रमा दिया। (सही बुख़ारी)

अब रहा यह मसला कि कोई शख़्स हरम के अन्दर ही कोई ऐसा जुर्म करे जिस पर हद व क़िसास (सज़ा और बदला) इस्लामी शरीअ़त की रू से आयद होता है तो हरम उसको अमन नहीं देगा बल्कि तमाम उम्मत की राय के मुताबिक़ उस पर हदें व क़िसास जारी किये जायेंगे। (अहकामुल क़ुरआन जस्सास व क़ुर्तुबी) क्योंकि क़ुरआने करीम का इरशाद है:

فَإِنْ قٰتَلُوْكُمْ فَاقْتُلُوْهُمْ. (٢:١٩١)

"यानी अगर तुम से लोग हरम में क़िताल करने लगें तो तुम भी वहीं उनको क़त्ल कर दो।"

अलबत्ता यहाँ एक मसले के अन्दर इमामों में मतभेद है, वह यह कि कोई शख़्स बाहर से जुर्म करके हरम में पनाह ले ले तो उसके साथ क्या मामला किया जायेगा? इसमें कुछ इमाम हज़रात इस पर भी हरम में हद व क़िसास की सज़ायें जारी करने का हुक्म देते हैं और इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक उसको सज़ा से छोड़ना तो नहीं क्योंकि अगर ऐसा किया गया तो जुर्मों को करके सज़ा से बचने का रास्ता खुल जायेगा और दुनिया में फ़साद (ख़राबी और बिगाड़) बरपा हो जायेगा और हरम मुजरिमों का ठिकाना बन जायेगा, लेकिन हरम के सम्मान के सबब हरम के अन्दर सज़ा न दी जायेगी बल्कि उसको मजबूर किया जायेगा कि वह हरम से बाहर निकले, वहाँ से निकलने के बाद सज़ा जारी की जायेगी।

وَاتَّخِذُوْا مِنْ مَّقَامِ إِبْرٰهٖمَ مُصَلًّى.

3. 'और बनाओ इब्राहीम के खड़े होने की जगह को नमाज़ की जगह' इसमें मक़ामे इब्राहीम से मुराद वह पत्थर है जिस पर हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम के क़दम मुबारक का बतौर मोजिज़े के निशान पड़ गया था और जिसको बैतुल्लाह की तामीर के वक़्त आपने इस्तेमाल किया था। (सही बुख़ारी शरीफ़)

हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि मैंने उस पत्थर में हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के क़दमे मुबारक का नक़्श देखा है मगर लोगों के बहुत ज़्यादा छूने और हाथ लगाने से अब वह निशान हल्का पड़ गया है। (क़ुर्तुबी) और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मक़ामे इब्राहीम की तफ़सीर में यह भी मन्क़ूल है कि पूरा हरम मक़ामे इब्राहीम है, मुम्किन है कि इससे मुराद यह हो कि तवाफ़ के बाद की दो रक्अ़तें जिनको मक़ामे इब्राहीम पर पढ़ने का हुक्म इस आयत में है इस हुक्म की तामील पूरे हरम में किसी जगह भी ये रक्अ़तें पढ़ने से हो जायेगी, इस पर उम्मत के फ़ुक़हा मुत्तफ़िक़ (सहमत) हैं।

4. उक्त आयत में मक़ामे इब्राहीम को 'मुसल्ला' (नमाज़ की जगह) बनाने का हुक्म है। इसका ख़ुलासा ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज्जतुल-विदा में अपने क़ौल व अ़मल से इस तरह फ़रमा दिया कि आप तवाफ़ के बाद मक़ामे इब्राहीम के पास पहुँचे जो बैतुल्लाह के सामने थोड़े फ़ासले से रखा हुआ है, वहाँ पहुँचकर यह आयत तिलावत फ़रमाई:

وَاتَّخِذُوْا مِنْ مَّقَامِ اِبْرٰهٖمَ مُصَلًّى

और फिर मक़ामे इब्राहीम के पीछे इस तरह दो रक्अ़त नमाज़ पढ़ी कि मक़ामे इब्राहीम को बीच में रखते हुए बैतुल्लाह सामने हो जाये। (सही मुस्लिम) इसी लिये उम्मत के फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने फ़रमाया है कि जिस शख़्स को मक़ामे इब्राहीम के पीछे उससे मिली हुई जगह न मिले वह कितने ही फ़ासले पर भी जब इस तरह खड़ा हो कि मक़ामे इब्राहीम भी उसके सामने रहे और बैतुल्लाह भी तो इस हुक्म की पूरी तामील हो जायेगी।

5. इस आयत से साबित हुआ कि तवाफ़ के बाद की दो रक्अ़तें वाजिब हैं।

(जस्सास व मनासिक मुल्ला अ़ली क़ारी)

अलबत्ता इन दो रक्अ़तों का ख़ास मक़ामे इब्राहीम के पीछे अदा करना सुन्नत है और हरम में किसी दूसरी जगह भी अदा करे तो काफ़ी होगा, क्योंकि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से इन रक्अ़तों का बैतुल्लाह के दरवाज़े से क़रीब पढ़ना भी साबित है और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से भी इस जगह पढ़ना मन्क़ूल है। (जस्सास) और मुल्ला अ़ली क़ारी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने किताब **मनासिक** में फ़रमाया है कि ये दो रक्अ़ते तवाफ़ तो वाजिब हैं और सुन्नत यह है कि मक़ामे इब्राहीम के पीछे अदा की जायें, लेकिन अगर किसी वजह से वहाँ अदा न कर सका तो फिर हरम में या हरम से बाहर जहाँ कहीं मुम्किन हो अदा करने से वाजिब अदा हो जायेगा। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ हज्जतुल-विदा (आख़िरी हज) में हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा को ऐसा ही इत्तिफ़ाक़ हुआ कि उनको वाजिब तवाफ़ की नमाज़ को पढ़ने का वहाँ मौक़ा न मिला तो मस्जिदे हराम बल्कि मक्का मुकर्रमा से निकलने के बाद अदा की, और ज़रूरत के सबब हरम से बाहर अदा करने पर जमहूर उलेमा के नज़दीक कोई दम भी वाजिब नहीं होता, सिर्फ़ इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहि दम के वाजिब होने के क़ायल हैं।

(मनासिक मुल्ला अ़ली क़ारी)

6. **'तह्हिर् बैति-य'** (मेरे घर को पाक रखो) इसमें बैतुल्लाह को पाक करने का हुक्म है, जिसमें ज़ाहिरी नापाकी और गन्दगी से तहारत (पाकी) भी दाख़िल है और बातिनी नजासात कुफ़्र शिर्क और बुरे व गन्दे अख़्लाक़ बुग़्ज़ व हसद हिर्स व इच्छा परस्ती, तकब्बुर व ग़ुरूर, दिखावा व नाम-नमूद से पाकी भी शामिल है, और इस तहारत (पाक करने) के हुक्म के लिये लफ़्ज़ 'बैती' में इस तरफ़ भी इशारा है कि यह हुक्म तमाम मस्जिदों के लिये आ़म है, क्योंकि सारी मस्जिदें अल्लाह का घर हैं जैसा कि इरशाद है:

فِيْ بُيُوْتٍ اَذِنَ اللّٰهُ اَنْ تُرْفَعَ. (سورة ٢٤:٣٦)

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने मस्जिद में एक शख़्स की आवाज़ सुनी तो फ़रमाया तुम्हें ख़बर नहीं कि तुम कहाँ खड़े हो। (क़ुर्तुबी) यानी मस्जिद का अदब व एहतिराम करना चाहिये, इसमें शरीअ़त की तरफ़ से ममनू आवाज़ बुलन्द नहीं करनी चाहिये। हासिल यह है कि इस आयत से जिस तरह बैतुल्लाह का तमाम ज़ाहिरी और बातिनी गन्दगियों से पाक रखना ज़रूरी है इसी तरह तमाम मस्जिदों को भी पाक रखना वाजिब है, यानी मस्जिदों में दाख़िल होने वालों पर लाज़िम है कि

वे अपने बदन और कपड़ों को भी तमाम नापाकियों, गन्दगियों और बदबू की चीज़ों से पाक-साफ़ रखें और अपने दिलों को शिर्क व निफ़ाक़ और तमाम बुरे अख़्लाक़, तकब्बुर, हसद, बुग़्ज़, हिर्स व दिखावे वग़ैरह की गन्दगियों से पाक करके दाख़िल हों। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया है कि कोई शख़्स प्याज़, लहसुन वग़ैरह बदबूदार चीज़ खाकर मस्जिद में न जाये और छोटे बच्चों और दीवानों (बेअ़क़्लों) को मस्जिदों में दाख़िल होने से मना फ़रमाया है कि उनसे नजासत (नापाकी और गन्दगी) का ख़तरा रहता है।

لِلطَّآئِفِينَ وَالْعٰكِفِينَ وَالرُّكَّعِ السُّجُوْدِ○

7. (तवाफ़ करने वालों के लिये, एतिकाफ़ करने वालों के लिये, रुकूअ़ और सज्दे करने वालों के लिये) आयत के इन कलिमात से चन्द अहकाम व फ़ायदे हासिल हुए- अव्वल यह कि बैतुल्लाह के बनाने और तामीर करने का मक़सद तवाफ़, एतिकाफ़ और नमाज़ है। दूसरे यह कि तवाफ़ नमाज़ से मुक़द्दम (पहले) है (जैसा कि हज़रत इब्ने अ़ब्बास से नक़ल किया गया है)। तीसरे यह कि पूरी दुनिया से जाने वाले हाजियों के लिये नमाज़ की तुलना में तवाफ़ अफ़ज़ल है। चौथे यह कि बैतुल्लाह के अन्दर नमाज़ पूरी तरह जायज़ है, फ़र्ज़ हो या नफ़िल। (इमाम जस्सास रह.)

وَاِذْ قَالَ اِبْرٰهٖمُ رَبِّ اجْعَلْ

هٰذَا بَلَدًا اٰمِنًا وَّارْزُقْ اَهْلَهٗ مِنَ الثَّمَرٰتِ مَنْ اٰمَنَ مِنْهُمْ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۚ قَالَ وَمَنْ كَفَرَ فَاُمَتِّعُهٗ قَلِيْلًا ثُمَّ اَضْطَرُّهٗٓ اِلٰى عَذَابِ النَّارِ ۚ وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ ○ وَاِذْ يَرْفَعُ اِبْرٰهٖمُ الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ وَاِسْمٰعِيْلُ ۚ رَبَّنَا تَقَبَّلْ مِنَّا ۚ اِنَّكَ اَنْتَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ○ رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَآ اُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ ۖ وَاَرِنَا مَنَاسِكَنَا وَتُبْ عَلَيْنَا ۚ اِنَّكَ اَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ○

व इज़् क़ा-ल इब्राहीमु रब्बिज्अ़ल् हाज़ा ब-लदन् आमिनंव्-वर्ज़ुक् अह्लहू मिनस्स-मराति मन् आम-न मिन्हुम् बिल्लाहि वल्यौमिल्-आख़िरि, क़ा-ल व मन् क-फ़-र फ़-उमत्तिअ़ुहू क़लीलन् सुम्-म अज़्तर्रुहू इला अ़ज़ाबिन्नारि, व बिअ्सल्-मसीर (126) व इज़् यर्फ़अ़ु इब्राहीमुल् क़वाअ़ि-द मिनल्-बैति व इस्माअ़ीलु,	और जब कहा इब्राहीम ने ऐ मेरे रब! बना इसको शहर अमन का, और रोज़ी दे इसके रहने वालों को मेवे जो कोई उनमें से ईमान लाये अल्लाह पर और क़ियामत के दिन पर। फ़रमाया और जो कुफ़्र करे उसको भी नफ़ा (फ़ायदा) पहुँचाऊँगा थोड़े दिनों, फिर उसको जबरन बुलाऊँगा दोज़ख़ के अ़ज़ाब में, और वह बुरी जगह है रहने की। (126) और याद करो जब उठाते थे इब्राहीम बुनियादें ख़ाना काबा (बैतुल्लाह शरीफ़) की और इस्माईल दुआ़ करते थे- ऐ परवर्दिगार!

रब्बना त-क़ब्बल् मिन्ना, इन्न-क अन्तस्समीअुल्-अ़लीम (127) रब्बना वज्अ़ल्ना मुस्लिमैनि ल-क व मिन् ज़ुर्रिय्यतिना उम्मतम् मुस्लि-मतल् ल-क व अरिना मनासि-कना व तुब् अ़लैना इन्न-क अन्तत्तव्वाबुर्-रहीम (128)	क़ुबूल कर हम से, बेशक तू ही है सुनने वाला जानने वाला। (127) ऐ परवर्दिगार हमारे! और कर हमको हुक्म मानने वाला अपना और हमारी औलाद में भी कर एक जमाअ़त फ़रमाँबरदार अपनी, और बतला हमको क़ायदे (क़ानून और तरीक़े) हज करने के, और हमको माफ़ कर, बेशक तू ही है तौबा क़ुबूल करने वाला मेहरबान। (128)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह वक़्त भी याद करने के क़ाबिल है) जिस वक़्त इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) ने (दुआ़ में) अ़र्ज़ किया कि ऐ मेरे परवर्दिगार! इस (मौक़े) को एक (आबाद) शहर बना दीजिए (और शहर भी कैसा) अमन (व अमान) वाला, और इसके बसने वालों को फलों (की क़िस्म) से भी इनायत कीजिए (और मैं सब बसने वालों को नहीं कहता बल्कि ख़ास) उनको (कहता हूँ) जो कि उनमें से अल्लाह तआ़ला पर और क़ियामत के दिन पर ईमान रखते हों (बाक़ियों को आप जानें)। हक़ तआ़ला ने इरशाद फ़रमाया (कि चूँकि रिज़्क़ हमारा ख़ास नहीं है, इसलिये फल सब को दूँगा मोमिन को भी) और उस शख़्स को भी जो कि काफ़िर रहे (अलबत्ता आख़िरत की निजात चूँकि ईमान वालों के साथ ख़ास है), सो (इसलिये) ऐसे शख़्स को (जो कि काफ़िर है) थोड़े दिन (यानी दुनिया में) तो ख़ूब आराम बर्ताऊँगा (लेकिन) फिर (मरने के बाद) उसे खींचते हुए दोज़ख़ के अ़ज़ाब में पहुँचाऊँगा, और वह पहुँचने की जगह तो बहुत बुरी है (अल्लाह बचाये)।

और (वह वक़्त भी याद करने के क़ाबिल है) जबकि उठा रहे थे इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) ख़ाना-काबा की दीवारें और (उनके साथ) इस्माईल भी, (और यह भी कहते जाते थे कि) ऐ हमारे परवर्दिगार! (यह ख़िदमत) हमसे क़ुबूल फ़रमाईये, बिला शुब्हा आप ख़ूब सुनने वाले जानने वाले हैं (हमारी दुआ़ को सुनते हैं हमारी नीयतों को जानते हैं)। ऐ हमारे परवर्दिगार! और (हम दोनों यह भी दुआ़ करते हैं कि) हमको अपना और ज़्यादा फ़रमाँबरदार बना लीजिए और हमारी औलाद में से भी एक ऐसी जमाअ़त पैदा कीजिए जो आपकी इताअ़त करने वाली हो, और (साथ ही) हमको हमारे हज (वग़ैरह) के अहकाम भी बतला दीजिए और हमारे हाल पर (मेहरबानी के साथ) तवज्जोह रखिये, (और) हक़ीक़त में आप ही हैं तवज्जोह फ़रमाने वाले, मेहरबानी करने वाले।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम ने अल्लाह की राह में क़ुरबानियाँ दीं, माल व दौलत, अहल व अ़याल (बाल-बच्चे) और ख़ुद अपने नफ़्स की इच्छाओं को नज़र-अन्दाज़ करके अल्लाह के अहकाम

के पालन में अपनी तरफ़ से कोशिश के जो कारनामे पेश किये वो ज़माने के अजायबात में से हैं।

इसके साथ अहल व अयाल (घर वालों और बाल-बच्चों) पर शफ़्क़त व मुहब्बत एक तबई और फ़ितरी चीज़ होने के साथ अल्लाह का हुक्म भी है, ऊपर बयान हुई आयतें इसका प्रतीक हैं कि उन्होंने अपने अहल व अयाल के लिये दीन व दुनिया के आराम व राहत के लिये दुआयें माँगी हैं।

हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की दुआयें

दुआ को शुरू लफ़्ज़ 'रब्बि' से किया है, जिसके मायने हैं "ऐ मेरे पालने वाले!" इन अलफ़ाज़ में दुआ माँगने का सलीक़ा सिखाया है कि ख़ुद ये अलफ़ाज़ हक़ तआ़ला की रहमत और लुत्फ़ व करम को मुतवज्जह करने के लिये असर रखते हैं। फिर सबसे पहली दुआ यह फ़रमाई कि इस चटियल मैदान को जिसमें आपके हुक्म के मुताबिक़ मैंने अपने अहल व अयाल (बीवी बच्चे) को ला डाला है आप एक शहर बना दें ताकि यहाँ रहने में इनको घबराहट न हो और ज़िन्दगी की ज़रूरतें आसानी से मयस्सर आ जायें। यही दुआ सूरः इब्राहीम में इन अलफ़ाज़ में आई है:

هٰذَا الْبَلَدَ اٰمِنًا

'हाज़ल्-ब-ल-द आमिनन्' जिसमें 'अल्-बलद' को अलिफ़ लाम के साथ ज़िक्र किया है जो अरबी ज़बान की इस्तिलाह में 'मारिफ़ा' कहलाता है। फ़र्क़ की वजह ग़ालिबन यह है कि पहली दुआ जो सूरः ब-क़रह की आयत में 'ब-लदन्' के लफ़्ज़ से आती है यह उस वक़्त की गई है जब यह जगह जंगल थी, शहर बना नहीं था, उस वक़्त 'बलद' को बग़ैर अलिफ़ लाम के नकिरा इस्तेमाल किया और दूसरी दुआ बज़ाहिर उस वक़्त की है जब मक्का की बस्ती बस गई और वह परिचित शहर बन गया, इसका इशारा यह है कि सूरः इब्राहीम की आख़िरी आयतों में है:

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِیْ وَهَبَ لِیْ عَلَی الْكِبَرِ اِسْمٰعِیْلَ وَاِسْحٰقَ. (١٤:٣٩)

कि तमाम तारीफ़ उस अल्लाह के लिये है जिसने बुढ़ापे में मुझे इब्राहीम और इस्माईल इनायत फ़रमाये।

जिससे अन्दाज़ा यह होता है कि यह दुआ हज़रत इस्हाक़ अलैहिस्सलाम की पैदाईश के बाद की है, और हज़रत इस्हाक़ अलैहिस्सलाम हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम से तेरह साल बाद में पैदा हुए।

(तफ़सीर इब्ने कसीर)

दूसरी दुआ इसमें यह है कि इस शहर को अमन वाला शहर बना दीजिये। यानी जो क़त्ल व ग़ारतगरी से, काफ़िरों के क़ब्ज़े और इख़्तियार से और आफ़तों से सुरक्षित व महफ़ूज़ रहे।

हज़रत ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम की यह दुआ क़ुबूल हुई और मक्का मुकर्रमा एक ऐसा आबाद शहर हो गया कि उसकी अपनी आबादी के अलावा सारी दुनिया के आने का मक़ाम बन गया। दुनिया भर से मुसलमान वहाँ पहुँचने को अपनी सबसे बड़ी नेकबख़्ती (सौभाग्य) समझते हैं और सुरक्षित व महफ़ूज़ भी हो गया कि बैतुल्लाह के मुख़ालिफ़ किसी क़ौम और किसी बादशाह का उस पर क़ब्ज़ा नहीं हो सका और 'अस्हाबे फ़ील' (हाथी वालों) का वाक़िआ ख़ुद क़ुरआन में मज़कूर है कि उन्होंने बैतुल्लाह पर हमले का इरादा किया तो पूरे लश्कर को तबाह व बरबाद कर दिया गया।

यह शहर क़त्ल व ग़ारतगरी से भी बराबर सुरक्षित चला आया है। इस्लाम से पहले भी जाहिलीयत के ज़माने वाले कितनी ही ख़राबियों और कुफ़्र व शिर्क की रस्मों में मुब्तला होने के बावजूद बैतुल्लाह और उसके आस-पास के हरम की ताज़ीम व तकरीम (सम्मान) को ऐसा मज़हबी फ़रीज़ा समझते थे कि कैसा ही दुश्मन वहाँ किसी को मिल जाये हरम में उससे किसास (ख़ून का बदला) या इन्तिक़ाम न लेते थे, बल्कि हरम के रहने वालों की ताज़ीम व तकरीम भी पूरे अरब में आम थी। इसी लिये मक्का वाले मुल्के शाम और यमन से व्यापारिक आयात व निर्यात का सिलसिला रखते थे और कोई उनकी राह में रुकावट व बाधा न बनता था।

हरम की हदों (सीमाओं) में जैसा कि अल्लाह तआ़ला ने जानवरों को भी अमन दिया है, उसमें शिकार जायज़ नहीं, ऐसे ही जानवरों में भी यह क़ुदरती एहसास पैदा फ़रमा दिया है कि हरम की हदों में आकर जानवर अपने आपको सुरक्षित समझता है, किसी शिकारी आदमी से नहीं घबराता।

हरम शरीफ़ के सुरक्षित होने के ये अहकाम जो हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की दुआ़ का नतीजा हैं, जाहिलीयत (इस्लाम से पहले) के ज़माने से क़ायम चले आते थे, इस्लाम और क़ुरआन ने इनको और ज़्यादा निखारा और मज़बूती पहुँचाई। हज्जाज इब्ने यूसुफ़ और फिर क़रामिता के ज़ुल्म व सितम और बदकारियों से जो क़त्ल व क़िताल हरम में हुआ अव्वल तो वह ख़ुद इस्लाम का नाम लेने वालों के हाथों हुआ, कोई काफ़िर क़ौम हमलावर न थी, और कोई शख़्स ख़ुद अपने घर को आग लगाये तो वह अमन के ख़िलाफ़ नहीं। इसके अ़लावा ये वाक़िआ़त शाज़ (इतने कम हैं कि न होने के बराबर) हैं जो हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम से लेकर आज तक हज़ारों साल की मुद्दत में गिने-चुने हैं और क़त्ल व क़िताल के बाद ऐसा करने वालों का बुरा अन्जाम भी सबके सामने आ गया।

ख़ुलासा यह है कि दुआ़-ए-इब्राहीमी के मुताबिक़ अल्लाह तआ़ला ने इस शहर को एक अमन वाला शहर और तमाम दुनिया के लिये अमन की जगह क़ुदरती तौर पर बना दी है, यहाँ तक कि दज्जाल को भी हरम में दाख़िल होने की क़ुदरत न होगी और शरई तौर पर भी ये अहकाम जारी फ़रमा दिये कि हरम में आपसी क़त्ल व क़िताल (मरना-मारना) तो क्या जानवरों का शिकार भी हराम कर दिया गया।

तीसरी दुआ़ यह फ़रमाई कि इस शहर के रहने वालों को फलों का रिज़्क़ अ़ता फ़रमाईये। मक्का मुकर्रमा और उसके आस-पास की ज़मीन न किसी बाग़ व चमन बनने के लिये साज़गार थी, न वहाँ दूर-दूर तक पानी का नाम व निशान था, मगर हक़ तआ़ला ने इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की दुआ़ को क़ुबूल फ़रमाया और मक्का के क़रीब ही तायफ़ का एक ऐसा ख़ित्ता बना दिया जिसमें हर तरह के बेहतरीन फल ख़ूब ज़्यादा पैदा होते और मक्का मुकर्रमा आकर फ़रोख़्त होते हैं। कुछ इस्राईली रिवायतों में है कि तायफ़ दर असल मुल्के शाम का ख़ित्ता है, जिसको अल्लाह के हुक्म से हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम ने यहाँ मुन्तक़िल कर दिया।

हज़रत इब्राहीम की दानिशमन्दी

हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने अपनी दुआ़ में यह नहीं फ़रमाया कि मक्का और उसके आस-पास को गुलज़ार (हरा-भरा) और फलों की ज़मीन या उपजाऊ बना दीजिये, बल्कि दुआ़ यह

फ़रमाई कि ये चीज़ें पैदा कहीं और हों मगर मक्का में पहुँचा करें। इसमें शायद यह राज़ हो कि हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम यह नहीं चाहते थे कि उनकी औलाद काश्तकारी या बाग़बानी के कामों में मश्ग़ूल हो जाये, क्योंकि उनको इस जगह आबाद करने का मन्शा तो हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने ख़ुद यह फ़रमा दिया 'रब्बना लियुक़ीमुस्सला-त' जिससे ज़ाहिर होता है कि हज़रत ख़लील अ़लैहिस्सलाम अपनी औलाद का असल मश्ग़ला बैतुल्लाह की हिफ़ाज़त और नमाज़ को रखना चाहते थे, वरना क्या मुश्किल था कि ख़ुद मक्का मुकर्रमा को ऐसा गुलज़ार बना दिया जाता कि दमिश्क़ व बैरूत उस पर रश्क (ईर्ष्या) करते।

फलों का रिज़्क़ ज़िन्दगी की तमाम ज़रूरतों को शामिल है

लफ़्ज़ 'समरात' जो 'समरा' की जमा (बहुवचन) है, इसके मायने 'फल' के हैं और बज़ाहिर इससे मुराद दरख़्तों के फल हैं लेकिन सूरः क़सस आयत नम्बर 57 में इस दुआ़ की क़ुबूलियत का इज़हार इन अलफ़ाज़ में फ़रमा दिया है:

يُجْبٰٓى اِلَيْهِ ثَمَرٰتُ كُلِّ شَىْءٍ

इन अलफ़ाज़ में एक तो इसका ख़ुलासा है कि ख़ुद मक्का में ये फल पैदा करने का वायदा नहीं बल्कि दूसरे स्थानों से यहाँ लाये जाया करेंगे। क्योंकि लफ़्ज़ 'युजबा' का यही मफ़्हूम है। दूसरे 'समरातु कुल्लि श-जरिन्' नहीं फ़रमाया बल्कि 'समरातु कुल्लि शैइन्' फ़रमाया। इस लफ़्ज़ी तब्दीली से ज़ेहन इस तरफ़ जाता है कि यहाँ समरात (फलों) को आ़म करना मक़सूद है, क्योंकि समरा (फल) आ़म बोल-चाल में हर चीज़ से हासिल होने वाली पैदावार को कहा जाता है। दरख़्तों से पैदा होने वाले फल जिस तरह इसमें दाख़िल हैं इसी तरह मशीनों से हासिल होने वाला कुल सामान भी मशीनों के समरात (फल) हैं। इसी तरह विभिन्न दस्तकारियों से बनने वाला सामान उन दस्तकारियों के समरात (फल) हैं। इस तरह 'समरातु कुल्लि शैइन्' में ज़िन्दगी की तमाम ज़रूरतें दाख़िल हो जाती हैं, और हालात व वाकिआ़त का मुशाहदा (देखना और अनुभव) भी यह साबित करता है कि हक़ तआ़ला ने अगरचे हरम की ज़मीन को न काश्त की ज़मीन बनाया है न उद्योग की, लेकिन दुनिया भर में पैदा होने वाली और बनने वाली चीज़ें यहाँ आ़म तौर पर मिल जाती हैं। और यह बात शायद आज भी किसी बड़े से बड़े व्यापारिक या औद्योगिक शहर को हासिल न हो कि दुनिया भर में बनने वाली चीज़ें अधिकता के साथ आसानी से वहाँ मिल जाती हैं।

हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम की एहतियात

इस आयत में जबकि मक्का वालों के लिये अमन और ख़ूब ऐश व आराम की दुआ़ की गई तो उनमें मोमिन व काफ़िर सब दाख़िल थे और इससे पहले हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम ने जब एक दुआ़ में अपनी पूरी औलाद व नस्ल को मोमिन व काफ़िर का फ़र्क़ किये बग़ैर जमा किया था तो हक़ तआ़ला की तरफ़ से यह इरशाद आया था कि यह दुआ़ मोमिनों के हक़ में क़ुबूल है, ज़ालिम मुश्रिकों के हक़ में क़ाबिले क़ुबूल नहीं। वह दुआ़ थी इमामत व इक़्तिदा की (कि उनकी औलाद में से पेशवा और मुक़्तदा बनें) हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम को जो अल्लाह की निकटता और

दोस्ती के मक़ाम पर फ़ाईज़ थे और अल्लाह के ख़ौफ़ से लबरेज़ थे, इस जगह भी वह बात याद आई तो अपनी दुआ़ में यह क़ैद (शर्त) लगा दी कि यह आर्थिक ख़ुशहाली और अमन व अमान की दुआ़ सिर्फ़ मोमिनों के लिये करता हूँ, हक़ तआ़ला की तरफ़ से अल्लाह के इस डर और एहतियात की क़द्र की गई और फ़रमाया 'मन् क-फ़-र' यानी यह दुनियावी ख़ुशहाली और आर्थिक आसानी हम सभी मक्का वालों को अ़ता करेंगे अगरचे वे ज़ालिम, मुश्रिक और काफ़िर ही हों, अलबत्ता मोमिनों को यह ख़ुशहाली जिस तरह दुनिया में दी जायेगी इसी तरह आख़िरत में भी अ़ता होगी, और काफ़िरों को आख़िरत में अ़ज़ाब के सिवा कुछ नहीं।

अपने नेक अ़मल पर भरोसा और क़नाअ़त न करने की तालीम

'रब्बना तक़ब्बल् मिन्ना' हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम ने अल्लाह के हुक्म की तामील में मुल्के शाम के हरे-भरे, बेहतरीन दृश्यों वाले ख़ित्ते को छोड़कर मक्का मुकर्रमा के सूखे पहाड़ों के बीच अपने अहल व अ़याल (बीवी बच्चों) को ला डाला और बैतुल्लाह की तामीर में अपनी पूरी ऊर्जा ख़र्च की। यह मौक़ा ऐसा था कि ऐसे मुजाहदे करने वाले के दिल में उजुब (अभिमान और बड़ाई का गुमान) पैदा होता तो वह अपने अ़मल को बहुत क़ाबिले क़द्र समझता, लेकिन यहाँ हज़रत ख़लील अ़लैहिस्सलाम हैं, रब्बुल-इ़ज़्ज़त की बारगाह को पहचानने वाले हैं कि किसी इनसान से अल्लाह तआ़ला के शायाने शान इबादत व इताअ़त मुम्किन नहीं, हर शख़्स अपनी क़ुव्वत व हिम्मत के हिसाब से काम करता है, इसलिये ज़रूरत है कि कोई भी बड़े से बड़ा अ़मल करे तो उस पर नाज़ न करे (इतराये नहीं) बल्कि आ़जिज़ी व फ़रियाद के साथ दुआ़ करे कि मेरा यह अ़मल क़ुबूल हो जाये, जैसा कि हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने बैतुल्लाह की तामीर के अ़मल के मुताल्लिक़ यह दुआ़ फ़रमाई कि "ऐ हमारे परवर्दिगार! आप हमारे इस अ़मल को क़ुबूल फ़रमा लें, क्योंकि आप तो सुनने वाले और जानने वाले हैं, हमारी दुआ़ को सुनते हैं और हमारी नीयतों को जानते हैं।"

رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ

'रब्बना वज्अ़ल्ना मुस्लिमैनि ल-क.....' यह दुआ़ भी अल्लाह के उसी मक़ाम को पहचानने और उससे डरने का नतीजा है जो हज़रत ख़लील अ़लैहिस्सलाम को हासिल था, कि इताअ़त व फ़रमाँबरदारी के बेमिसाल कारनामे बजा लाने के बाद भी यह दुआ़ करते हैं- "हम दोनों को अपना फ़रमाँबरदार बना लीजिये।" वजह यह है कि जितनी किसी को हक़ तआ़ला की मारिफ़त (पहचान) बढ़ती जाती है उतना ही उसका यह एहसास बढ़ता जाता है कि हम वफ़ादारी और फ़रमाँबरदारी का पूरा हक़ अदा नहीं कर रहे।

'व मिन् ज़ुर्रिय्यतिना' इस दुआ़ में भी अपनी औलाद को शरीक फ़रमाया। इससे मालूम होता है कि अल्लाह वाले जो अल्लाह की राह में अपनी जान और औलाद की क़ुरबानी पेश करने से भी पीछे नहीं रहते उनको अपनी औलाद से किस क़द्र मुहब्बत होती है, मगर उस मुहब्बत के सही तक़ाज़ों को पूरा करते हैं, जहाँ तक अ़वाम की पहुँच नहीं। अ़वाम तो औलाद की सिर्फ़ जिस्मानी सेहत व राहत को जानते हैं, उनकी सारी शफ़क़त व राहत उसी के गिर्द घूमती है, मगर अल्लाह के मक़बूल बन्दे जिस्मानी से ज़्यादा रूहानी और दुनियावी से ज़्यादा आख़िरत की राहत की फ़िक्र करते हैं,

इसलिये दुआ फ़रमाई कि मेरी औलाद में से एक जमाअ़त को पूरा फ़रमाँबरदार बना दीजिये। अपनी औलाद व नस्ल के लिये दुआ में एक हिक्मत और भी है कि तजुर्बा गवाह है कि जो लोग क़ौम में बड़े माने जाते हैं उनकी औलाद अगर उनके रास्ते पर क़ायम रहे तो अ़वाम में उनकी मक़बूलियत फ़ितरी होती है, उनकी सलाहियत अ़वाम की बेहतरी का ज़रिया बनती है। (बहरे मुहीत)

हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम की यह दुआ भी क़ुबूल हुई कि आपकी औलाद व नस्ल में हमेशा ऐसे लोग मौजूद रहे हैं जो दीने हक़ पर क़ायम और अल्लाह के फ़रमाँबरदार बन्दे थे। अ़रब के जाहिली (इस्लाम से पहले के) दौर में जबकि पूरी दुनिया को ख़ुसूसन अ़रब को शिर्क व बुत-परस्ती ने घेर लिया था, उस वक़्त औलादे इब्राहीम में हमेशा कुछ लोग अ़क़ीदा-ए-तौहीद व आख़िरत (अल्लाह को एक मानने और आख़िरत के यक़ीन) के सच्चे एतिक़ाद रखने वाले और इताअ़त करने वाले रहे हैं जैसे जाहिलीयत के दौर वालों में ज़ैद बिन अ़मर बिन नुफ़ैल और क़ुस्स बिन साअ़िदा थे। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहिस्सलाम के दादा साहिब अ़ब्दुल-मुत्तलिब बिन हाशिम के मुताल्लिक़ भी यही रिवायत है कि वह शिर्क व बुत-परस्ती से बेज़ार (नफ़रत करने वाले और दूर) थे। (बहरे मुहीत)

'अरिना मनासि-कना' मनासिक मिन्सक की जमा (बहुवचन) है, हज के आमाल व अरकान को भी मनासिक कहा जाता है, और हज के स्थान- अरफ़ात, मिना, मुज़्दलिफ़ा को भी। यहाँ दोनों मुराद हो सकते हैं। दुआ का हासिल यह है कि हमें हज के आमाल और हज के मक़ामात (स्थान) पूरी तरह समझा दीजिये, इसी लिये लफ़्ज़ 'अरिना' इस्तेमाल फ़रमाया जिसके मायने हैं "हमें दिखला दीजिये" वह देखना आँखों से भी हो सकता है और दिल से भी। चुनाँचे हज के मक़ामात (स्थानों) को हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम के ज़रिये दिखलाकर मुतैयन कर दिया गया और हज के अहकाम की स्पष्ट तालीम व हिदायत फ़रमा दी गई।

رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيهِمْ رَسُولًا مِّنْهُمْ يَتْلُوا عَلَيْهِمْ آيٰتِكَ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَيُزَكِّيهِمْ ۚ إِنَّكَ أَنْتَ الْعَزِيزُ الْحَكِيمُ ﴿١٢٩﴾

रब्बना वब्अ़स् फ़ीहिम् रसूलम्-मिन्हुम् यत्लू अ़लैहिम् आयाति-क व युअ़ल्लिमुहुमुल्-किता-ब वल्-हिक्म-त व युज़क्कीहिम, इन्न-क अन्तल् अ़ज़ीज़ुल्-हकीम (129) ✿	ऐ परवर्दिगार हमारे! और भेज उनमें एक रसूल उन्हीं में का कि पढ़े उन पर तेरी आयतें और सिखलाये उनको किताब और गहराई की बातें और पाक करे उनको, बेशक तू ही है बहुत ज़बरदस्त बड़ी हिक्मत वाला। (129) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ हमारे परवर्दिगार! और (यह भी दुआ है कि) उस जमाअ़त के अन्दर (जिसके पैदा होने की दुआ अपनी औलाद में से कर रहे हैं). उन्हीं में से एक ऐसे पैग़म्बर भी मुक़र्रर कीजिए जो उन लोगों

को आपकी आयतें पढ़-पढ़कर सुनाया करें, और उनको (आसमानी) किताब (के मज़ामीन) की और (उसमें) अक़्ल व समझ (का सलीक़ा हासिल करने) की तालीम दिया करें और उनको (उस तालीम व तिलावत के ज़रिये जहालत के ख़्यालात और आमाल से) पाक कर दें। बेशक आप ही हैं ग़ालिब क़ुदरत वाले, कामिल इन्तिज़ाम वाले।

लुग़ात की तशरीह

'यतलू अ़लैहिम आयाति-क'। तिलावत के असली मायने इत्तिबा और पैरवी के हैं, क़ुरआन व हदीस की इस्तिलाह में यह लफ़्ज़ क़ुरआने करीम, दूसरी आसमानी किताबों और अल्लाह के कलाम के पढ़ने के लिये इस्तेमाल किया जाता है, क्योंकि इस कलाम के पढ़ने वाले को इसका पूरा इत्तिबा करना लाज़िम है, जिस तरह अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से नाज़िल हुआ ठीक उसी तरह पढ़ना ज़रूरी है, अपनी तरफ़ से किसी लफ़्ज़ या उसकी हरकतों (ज़बर ज़ेर पेश) में कमी-ज़्यादती या तब्दीली की इजाज़त नहीं। इमाम राग़िब अस्फ़हानी ने "मुफ़रदाते क़ुरआन" में फ़रमाया है कि अल्लाह के कलाम के सिवा किसी दूसरी किताब या कलाम के पढ़ने को उर्फ़ में तिलावत नहीं कहा जा सकता।

'व युअ़ल्लिमुहुमुल् किता-ब वल्-हिक्म-त' इसमें किताब से मुराद किताबुल्लाह है और हिक्मत का लफ़्ज़ अ़रबी लुग़त में कई मायनों के लिये आता है- हक़ बात पर पहुँचना, अ़दल व इन्साफ़, इल्म व सयंम वग़ैरह। (क़ामूस) इमाम राग़िब अस्फ़हानी रहमतुल्लाहि अ़लैहि लिखते हैं कि यह लफ़्ज़ जब अल्लाह तआ़ला के लिये बोला जाता है तो इसके मायने तमाम चीज़ों की पूरी मारिफ़त (इल्म व पहचान) और स्थिर ईजाद के होते हैं, और जब ग़ैरुल्लाह के लिये बोला जाये तो मौजूदात की सही मारिफ़त (इल्म व पहचान) और नेक आमाल के लिये जाते हैं। तर्जुमा शैख़ुल-हिन्द में इसका तर्जुमा "तह की बातें" इसी मफ़्हूम (मायने और मतलब) को अदा करता है और लफ़्ज़ हिक्मत अ़रबी ज़बान में कई मायने के लिये बोला जाता है- सही इल्म, नेक अ़मल, अ़दल व इन्साफ़, सच्चा क़ौल वग़ैरह।

(क़ामूस व राग़िब)

इसलिये देखना है कि इस आयत में लफ़्ज़ हिक्मत से क्या मुराद है? सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम में के मुफ़स्सिरीन जो क़ुरआन की व्याख्या नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सीख कर करते हैं, इस जगह लफ़्ज़ हिक्मत के मायने बयान करने में अगरचे उनके अलफ़ाज़ भिन्न हैं लेकिन ख़ुलासा सब का एक ही है, यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत। इमामे तफ़सीर इब्ने कसीर व इब्ने जरीर रहमतुल्लाहि अ़लैहिमा ने हज़रत क़तादा रहमतुल्लाहि अ़लैहि से यही तफ़सीर नक़ल की है। किसी ने क़ुरआन की तफ़सीर और किसी ने दीन की समझ फ़रमाया है, और किसी ने शरीअ़त के अहकाम का इल्म कहा, और किसी ने कहा कि अल्लाह के ऐसे अहकाम का इल्म जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ही बयान से मालूम हो सकते हैं। ज़ाहिर है कि इन सब का हासिल वही रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत व हदीस है।

लफ़्ज़ 'युज़क्कीहिम' ज़कात से निकला है जिसके मायने हैं तहारत और पाकी, और यह लफ़्ज़ ज़ाहिरी और बातिनी (अन्दर और बाहर की) हर तरह की पाकी के लिये बोला जाता है।

मआरिफ़ व मसाईल

ऊपर बयान हुई तफ़सील से आयत का मफ़्हूम (मतलब) स्पष्ट हो गया कि हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने अपनी आने वाली नस्ल की दुनिया व आख़िरत (की कामयाबी) के वास्ते हक़ तआ़ला से यह दुआ़ की कि मेरी औलाद में एक रसूल भेज दीजिये जो उनको आपकी आयतें तिलावत करके सुनाये और क़ुरआन व सुन्नत की तालीम दे, और उनको ज़ाहिरी व बातिनी गन्दगियों से पाक करे। इसमें हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम ने उस रसूल के लिये अपनी औलाद में होने की इसलिये दुआ़ फ़रमाई कि अव्वल तो यह अपनी औलाद के लिये सम्मान व नेकबख़्ती की बात है, दूसरे उन लोगों के लिये एक फ़ायदा यह भी है कि यह रसूल जब उन्हीं की क़ौम और बिरादरी के अन्दर होगा तो उसके चाल चलन, सीरत व हालात से ये लोग बख़ूबी वाक़िफ़ होंगे, किसी धोखे फ़रेब में मुब्तला न होंगे। हदीस में है कि हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम को इस दुआ़ का जवाब हक़ तआ़ला की तरफ़ से यह मिला कि आपकी दुआ़ क़ुबूल कर ली गई और यह रसूल आख़िरी ज़माने में भेजे जायेंगे। (तफ़सीर इब्ने जरीर व इब्ने कसीर)

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के भेजे जाने की ख़ुसूसियत

मुस्नद अहमद की एक हदीस में है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मैं अल्लाह के नज़दीक ख़ातिमुन्नबिय्यीन (नबियों के सिलसिले को पूरा और ख़त्म करने वाला) उस वक़्त था जबकि आदम अ़लैहिस्सलाम पैदा भी नहीं हुए थे, बल्कि उनका ख़मीर ही तैयार हो रहा था, और मैं आप लोगों को अपने मामले की शुरूआ़त बतलाता हूँ कि मैं अपने बाप हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की दुआ़ और हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की बशारत (ख़ुशख़बरी) और अपनी वालिदा माजिदा के ख़्वाब का प्रतीक हूँ। ईसा अ़लैहिस्सलाम की बशारत से मुराद उनका यह क़ौल है:

مُبَشِّرًا م بِرَسُوْلٍ يَّاْتِىْ مِنْ م بَعْدِى اسْمُهٗۤ اَحْمَدُ. (سورة ٦١ : آيت ٦)

और वालिदा माजिदा ने गर्भ की हालत में यह सपना देखा था कि मेरे पेट से एक नूर निकला जिससे मुल्के शाम के महल जगमगा उठे। फिर क़ुरआने करीम में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नबी बनकर तशरीफ़ लाने का तज़किरा करते हुए दो जगह सूरः आले इमरान (आयत नम्बर 164) और सूरः जुमा (आयत नम्बर 2) में इन्हीं अलफ़ाज़ को दोहराया गया है जो हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की दुआ़ में यहाँ मज़कूर हैं। जिसमें इस बात की तरफ़ इशारा है कि हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने जिस रसूल के भेजने की दुआ़ फ़रमाई थी वह आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ही हैं, आयत के अलफ़ाज़ की वज़ाहत और इसका मफ़्हूम स्पष्ट हो जाने के बाद इस पर ग़ौर कीजिये।

रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को भेजने के तीन उद्देश्य

सूरः ब-क़रह की इस आयत में और सूरः आले इमरान और सूरः जुमा की आयतों में नबी करीम

सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बारे में एक ही मज़मून एक ही तरह के अलफ़ाज़ में आया है, जिनमें आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इस दुनिया में तशरीफ़ लाने के मक़ासिद (उद्देश्य) या आपके नुबुव्वत व रिसालत के ओहदे के फ़राईज़ तीन बयान किये गये हैं- एक आयतों की तिलावत (यानी अल्लाह के कलाम का पढ़ना), दूसरे किताब व हिक्मत की तालीम, तीसरे लोगों के अख़्लाक़ वग़ैरह को पाकीज़ा बनाना।

पहला मक़सद 'आयतों की तिलावत'

यहाँ पहली बात क़ाबिले ग़ौर है कि तिलावत का ताल्लुक़ अलफ़ाज़ से है और तालीम का मायने से। यहाँ तिलावत व तालीम को अलग-अलग बयान करने से यह हासिल हुआ कि क़ुरआने करीम में जिस तरह मायने मक़सूद हैं इसके अलफ़ाज़ भी मुस्तक़िल मक़सूद हैं, इनकी तिलावत व हिफ़ाज़त फ़र्ज़ और अहम इबादत है। यहाँ यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के अप्रत्यक्ष रूप से शागिर्द और ख़ास मुख़ातब वे हज़रात थे जो अ़रबी भाषा के न सिर्फ़ जानने वाले बल्कि उसके आला माहिर, ख़तीब और शायर भी थे। उनके सामने अ़रबी का पढ़ देना भी बज़ाहिर उनकी तालीम के लिये काफ़ी था, उनको अलग से तर्जुमा व तफ़सीर की ज़रूरत न थी, तो फिर आयतों की तिलावत को एक अलग मक़सद और किताब की तालीम (सिखाने) को अलग दूसरा मक़सदे रिसालत क़रार देने की क्या ज़रूरत थी, जबकि अ़मल के एतिबार से ये दोनों मक़सद एक ही हो जाते हैं। इसमें ग़ौर किया जाये तो दो अहम नतीजे आपके सामने आयेंगे- पहला यह कि क़ुरआने करीम दूसरी किताबों की तरह एक किताब नहीं जिसमें सिर्फ़ मायने मक़सूद होते हैं, अलफ़ाज़ एक दूसरे दर्जे की हैसियत रखते हैं, उनमें ग़ैर-मामूली (बहुत बड़ी) तब्दीली भी हो जाये तो कोई हर्ज नहीं समझा जाता, उनके अलफ़ाज़ बग़ैर मायने समझे हुए पढ़ते रहना बिल्कुल बेकार व फ़ुज़ूल है। बल्कि क़ुरआने करीम के जिस तरह मायने मक़सूद हैं इसी तरह अलफ़ाज़ भी मक़सूद हैं और क़ुरआन के अलफ़ाज़ के साथ शरीअ़त के ख़ास-ख़ास अहकाम भी मुताल्लिक़ हैं, यही वजह है कि उसूले फ़िक़्ह में क़ुरआने करीम की यह तारीफ़ की गई है:

هو النظم والمعنى جميعا

यानी क़ुरआन नाम है अलफ़ाज़ और मायने दोनों का। जिससे मालूम हुआ कि अगर क़ुरआन के मायने को क़ुरआन के अलफ़ाज़ के अ़लावा दूसरे अलफ़ाज़ या दूसरी भाषा में लिखा जाये तो वह क़ुरआन कहलाने का मुस्तहिक़ नहीं, अगरचे मज़ामीन बिल्कुल सही दुरुस्त ही हों। उन क़ुरआनी मज़ामीन को बदले हुए अलफ़ाज़ में अगर कोई शख़्स नमाज़ में पढ़ ले तो नमाज़ अदा न होगी। इसी तरह वे तमाम अहकाम जो क़ुरआन से मुताल्लिक़ हैं उस पर आयद (लागू) नहीं होंगे। क़ुरआने करीम की तिलावत का जो सवाब सही हदीसों में बयान हुआ है वह बदली हुई भाषा या बदले हुए अलफ़ाज़ पर मुरत्तब नहीं होगा, और इसी लिये उम्मत के फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने क़ुरआने करीम का सिर्फ़ तर्जुमा क़ुरआने करीम के मतन के बग़ैर लिखने और छापने को वर्जित फ़रमाया है, जिसको उर्फ़ में उर्दू का क़ुरआन या अंग्रेज़ी का क़ुरआन कह दिया जाता है, क्योंकि दर हक़ीक़त जो क़ुरआन उर्दू या अंग्रेज़ी में नक़ल किया गया वह क़ुरआन कहलाने का मुस्तहिक़ नहीं।

ख़ुलासा यह है कि इस आयत में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मन्सबी (नुबुव्वत के ओ़हदे के) फ़राईज़ (ज़िम्मेदारियों) में किताब की तालीम से अलग आयतों की तिलावत को अलग से फ़र्ज़ क़रार देकर इसकी तरफ़ इशारा कर दिया कि क़ुरआने करीम में जिस तरह इसके मायने मक़सूद हैं इसी तरह इसके अलफ़ाज़ भी मक़सूद हैं, क्योंकि तिलावत अलफ़ाज़ की होती है मायने की नहीं। इसलिये जिस तरह रसूल के फ़राईज़ (ज़िम्मेदारियों) में मायने की तालीम दाख़िल है इसी तरह अलफ़ाज़ की तिलावत और हिफ़ाज़त भी एक मुस्तक़िल फ़र्ज़ है।

क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ अगर बेसमझे भी पढ़े जायें तो बेकार नहीं, बल्कि बड़े सवाब का ज़रिया है

इसमें शुब्हा नहीं कि क़ुरआने करीम के नुज़ूल (उतरने) का असल मक़सद उसके बताये हुए ज़िन्दगी के निज़ाम पर अ़मल करना और इसकी तालीमात को समझना और समझाना है, केवल इसके अलफ़ाज़ रट लेने पर बस करके बैठ जाना क़ुरआने करीम की हक़ीक़त से बेख़बरी और इसकी बेक़द्री है। लेकिन इसके साथ यह कहना किसी तरह सही नहीं कि जब तक क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ के मायने न समझे, तोते की तरह उसके अलफ़ाज़ पढ़ना फ़ुज़ूल है। यह मैं इसलिये वाज़ेह कर रहा हूँ कि आजकल बहुत से हज़रात क़ुरआने करीम को दूसरी किताबों पर क़ियास करके यह समझते हैं कि जब तक किसी किताब के मायने न समझें तो उसके अलफ़ाज़ का पढ़ना पढ़ाना वक़्त ज़ाया करना है, मगर क़ुरआने करीम में उनका यह ख़्याल सही नहीं है क्योंकि क़ुरआने करीम अलफ़ाज़ और मायने दोनों का नाम है, जिस तरह उसके मायने का समझना और उसके दिये हुए अहकाम पर अ़मल करना फ़र्ज़ और आला इबादत है इसी तरह उसके अलफ़ाज़ की तिलावत (पढ़ना) भी एक मुस्तक़िल इबादत और बड़े सवाब का काम है।

यही वजह है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम जो क़ुरआने करीम के मायनों को सबसे ज़्यादा जानने वाले और समझने वाले थे, उन्होंने सिर्फ़ मायने समझ लेने और अ़मल कर लेने को काफ़ी न समझा, समझने और अ़मल करने के लिये तो एक मर्तबा पढ़ लेना काफ़ी होता, उन्होंने सारी उम्र क़ुरआन की तिलावत (पढ़ने) को जान से प्यारा बनाये रखा। बाज़े सहाबा रोज़ाना एक क़ुरआन मजीद ख़त्म करते थे, बाज़े दो दिन में और अक्सर हज़रात तीन दिन में ख़त्मे क़ुरआन के आ़दी थे, और हर हफ़्ते में तो क़ुरआन ख़त्म करने का पूरी उम्मत का मामूल रहा है। क़ुरआने करीम की सात मन्ज़िलें इसी हफ़्तेवारी मामूल की निशानी हैं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का यह अ़मल बतला रहा है कि जिस तरह क़ुरआन के मायने समझना और अ़मल करना असली इबादत है उसी तरह इसके अलफ़ाज़ की तिलावत भी अपनी जगह एक आला इबादत, अनवार व बरकात का सबब और सरमाया-ए-सआ़दत व निजात है। इसलिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के फ़राईज़े मन्सबी (नुबुव्वती ज़िम्मेदारियों) में आयतों की तिलावत को एक मुस्तक़िल हैसियत दी गई। मक़सद यह है कि जो मुसलमान फ़िलहाल क़ुरआन के मायनों को नहीं समझते वे इस बदनसीबी में मुब्तला न हो जायें कि

अलफ़ाज़ को फ़ुज़ूल समझकर इससे भी महरूम हो जायें, कोशिश करते रहना ज़रूरी है कि क़ुरआन के मायने को समझें ताकि क़ुरआने करीम के असली अनवार व बरकात को महसूस करें और क़ुरआन के नाज़िल होने का असली मक़सद पूरा हो। क़ुरआन को अल्लाह की पनाह! जन्तर-मन्तर की तरह सिर्फ़ झाड़ फूँक में इस्तेमाल की चीज़ न बनायें और बक़ौल इक़बाल मरहूम- सूरः यासीन को सिर्फ़ इस काम के लिये न समझें कि इसके पढ़ने से मरने वाले की जान आसानी से निकल जाती है।

ख़ुलासा-ए-कलाम यह है कि इस आयत में रसूले पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़िम्मेदारियों और फ़राईज़ का बयान करते हुए आयतों की तिलावत (पढ़ने) को मुस्तक़िल फ़र्ज़ की हैसियत देकर इस पर तंबीह कर दी गई है कि क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ की तिलावत, उनकी हिफ़ाज़त और उनको ठीक उसी लब व लहजे (अन्दाज़) में पढ़ना जिस पर वे नाज़िल हुए हैं, एक मुस्तक़िल फ़र्ज़ है।

दूसरा मक़सद 'किताब की तालीम'

इसी तरह आयतों की तिलावत के फ़र्ज़ के साथ किताब की तालीम को अलग एक फ़र्ज़ क़रार देने से एक दूसरा अहम नतीजा यह निकला कि क़ुरआन समझने के लिये सिर्फ़ अ़रबी भाषा का जान लेना काफ़ी नहीं, बल्कि अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीम की ज़रूरत है, जैसे कि तमाम उलूम व फ़ुनून में यह बात मालूम और सब के सामने है कि किसी फ़न की किताब के मफ़्हूम (मलतब) को समझने के लिये सिर्फ़ उस किताब की ज़बान जानना बल्कि ज़बान का माहिर होना भी काफ़ी नहीं जब तक कि उस फ़न को किसी माहिर उस्ताद से हासिल न किया जाये। जैसे आजकल डॉक्टरी, होम्योपैथिक और ऐलोपैथिक की किताबें उमूमन अंग्रेज़ी ज़बान में हैं लेकिन हर शख़्स जानता है कि सिर्फ़ अंग्रेज़ी ज़बान में महारत पैदा कर लेने और डॉक्टरी की किताबों का मुताला (अध्ययन) कर लेने से कोई शख़्स डॉक्टर नहीं बन सकता। इन्जीनियरिंग की किताबें पढ़ने से कोई इन्जीनियर नहीं बन सकता, बड़े फ़न तो अपनी जगह पर हैं मामूली रोज़मर्रा के काम सिर्फ़ किताब के मुताले से बग़ैर उस्ताद से सीखे हुए हासिल नहीं हो सकते। आज तो हर उद्योग और कारीगरी पर सैंकड़ों किताबें लिखी हुई हैं, फ़ोटो देकर काम सिखाने के तरीक़े बताये हैं लेकिन उन किताबों को देखकर न कोई दर्ज़ी बनता है न बावर्ची या लुहार, अगर सिर्फ़ ज़बान जान लेना किसी फ़न के हासिल करने और उसकी किताब समझने के लिये काफ़ी होता तो दुनिया के सब फ़ुनून उस शख़्स को हासिल हो जाते जो उन किताबों की ज़बान जानता है।

अब हर शख़्स ग़ौर कर सकता है कि मामूली फ़नों को और उनके समझने के लिये जब केवल ज़बान जान लेना काफ़ी नहीं, उस्ताद की तालीम और उससे सीखने की ज़रूरत है तो क़ुरआनी मज़ामीन जो अल्लाह के उलूम से लेकर तबीयात व फ़ल्सफ़े तक तमाम गहरे और दक़ीक़ उलूम पर मुश्तमिल है वह केवल अ़रबी भाषा जान लेने से कैसे हासिल हो सकते हैं। और अगर यही होता कि जो शख़्स अ़रबी ज़बान सीख ले वह क़ुरआन के उलूम का माहिर समझा जाये तो आज भी हज़ारों यहूदी और ईसाई अ़रब मुल्कों में अ़रबी ज़बान के बड़े माहिर अदीब हैं, वे क़ुरआन के सबसे बड़े मुफ़स्सिर (व्याख्यापक) माने जाते, और हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में अबू जहल,

अबू लहब क़ुरआन के माहिर समझे जाते।

ग़र्ज़ यह है कि क़ुरआने करीम ने एक तरफ़ तो रसूल के फ़राईज़ (ड्यूटी) में आयतों की तिलावत को एक मुस्तक़िल फ़र्ज़ क़रार दिया, दूसरी तरफ़ किताब की तालीम को एक अलग फ़र्ज़ क़रार देकर बतला दिया कि सिर्फ़ आयतों की तिलावत का सुन लेना क़ुरआन के समझने के लिये अरबी ज़बान जानने वालों के वास्ते भी काफ़ी नहीं, बल्कि रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीम ही के ज़रिये क़ुरआनी तालीम का सही इल्म हासिल हो सकता है। क़ुरआन को रसूल की तालीमात से अलग करके ख़ुद अपने आप समझने की फ़िक्र ख़ुद-फ़रेबी (अपने आपको धोखा देने) के सिवा कुछ नहीं। अगर क़ुरआनी मज़ामीन को बतलाने सिखाने की ज़रूरत न होती तो रसूल को भेजने ही की कोई ज़रूरत न थी, अल्लाह की किताब किसी दूसरी तरह भी इनसानों तक पहुँचाई जा सकती थी, मगर अल्लाह तआ़ला अ़लीम व हकीम हैं, वह जानते हैं कि क़ुरआनी मज़ामीन की तालीम और उनके समझने के लिये दुनिया के दूसरे उलूम व फ़ुनून से ज़्यादा उस्ताद की तालीम की ज़रूरत है, और यहाँ पर आ़म उस्ताद भी काफ़ी नहीं बल्कि उन मज़ामीन का उस्ताद सिर्फ़ वह शख़्स हो सकता है जिसको हक़ तआ़ला से वही के द्वारा बात करने का सम्मान हासिल हो, जिसको इस्लाम की इस्तिलाह में **नबी** व **रसूल** कहा जाता है। इसलिये क़ुरआने करीम में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को दुनिया में भेजने का मक़सद यह क़रार दिया कि वह क़ुरआने करीम के मायने व अहकाम की शरह (ख़ुलासा) करके बयान फ़रमायें। इरशाद है:

لِتُبَيِّنَ لِلنَّاسِ مَا نُزِّلَ اِلَيْهِمْ. (١٦:٤٤)

"यानी हमने आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इसलिये भेजा है कि आप लोगों के सामने अल्लाह की नाज़िल की हुई आयतों के मतलब बयान फ़रमायें।"

किताब की तालीम के साथ आपके फ़राईज़ (ज़िम्मेदारियों) में दूसरी चीज़ हिक्मत (समझ व दानाई की बातों) की तालीम भी रखी गयी है। और मैंने ऊपर बतलाया है कि हिक्मत के अ़रबी ज़बान के एतिबार से अगरचे कई मायने हो सकते हैं लेकिन इस आयत में और इसके जैसी दूसरी आयतों में सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात ने हिक्मत की तफ़सीर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत से की है, जिससे वाज़ेह हुआ कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़िम्मे जिस तरह क़ुरआन के मायनों का समझाना व बतलाना फ़र्ज़ है उसी तरह पैग़म्बराना तरबियत के उसूल व आदाब जिनका नाम सुन्नत है, उनकी तालीम भी आपके मन्सबी फ़राईज़ में दाख़िल है, और इसी लिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

اِنَّمَا بُعِثْتُ مُعَلِّمًا.

कि "मैं तो मुअ़ल्लिम (सिखाने वाला) बनाकर भेजा गया हूँ।"

और यह ज़ाहिर है कि जब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के वजूद का मक़सद मुअ़ल्लिम (सिखाने वाला और उस्ताद) होना है तो आपकी उम्मत के वजूद का मक़सद मुतअ़ल्लिम और तालिबे इल्म (सीखने वाला और इल्म हासिल करने वाला) होना लाज़िम हो गया। इसलिये हर मुसलमान मर्द व औ़रत मुसलमान होने की हैसियत से एक तालिब-इल्म होना चाहिये जिसको रसूले करीम सल्लल्लाहु

अ़लैहि व सल्लम की तालीमात की लगन हो, अगर क़ुरआन व सुन्नत के उलूम को मुकम्मल तौर पर हासिल करने और उसमें महारत के लिये हिम्मत व फ़ुर्सत नहीं है तो कम से कम ज़रूरत के मुताबिक़ इल्म हासिल करने की फ़िक्र तो चाहिये।

तीसरा मक़सद 'सफ़ाई और पाक करना'

तीसरा फ़र्ज़ आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मन्सबी फ़राईज़ (यानी नबी होने की हैसियत से ज़िम्मेदारियों) में 'तज़किया' है, जिसके मायने हैं ज़ाहिरी व बातिनी गन्दगियों से पाक करना। ज़ाहिरी गन्दगी से तो आ़म मुसलमान वाक़िफ़ हैं, बातिनी (अन्दर की) गन्दगी कुफ़्र व शिर्क, ग़ैरुल्लाह पर पूरा भरोसा और बुरा एतिक़ाद तथा तकब्बुर व हसद, बुग़्ज़ और दुनिया की मुहब्बत वग़ैरह हैं। अगरचे इल्मी तौर पर क़ुरआन व सुन्नत की तालीम में इन सब चीज़ों का बयान आ गया है लेकिन तज़किये को आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का अलग फ़र्ज़ क़रार देकर इसकी तरफ़ इशारा कर दिया गया कि जिस तरह सिर्फ़ अलफ़ाज़ के समझने से कोई फ़न हासिल नहीं होता इसी तरह नज़री व इल्मी (पढ़ने-पढ़ाने के) तौर पर फ़न हासिल हो जाने से उसका इस्तेमाल और कमाल हासिल नहीं होता, जब तक किसी मुरब्बी (तरबियत करने वाले यानी उस्ताद) के मातहत उसकी मश्क़ करके आ़दत न डाले। सुलूक व तसव्वुफ़ (सूफ़ी इज़्म) में किसी शैख़े कामिल की तरबियत का यही मक़ाम है कि क़ुरआन व सुन्नत में जिन अहकाम को इल्मी तौर पर बतलाया गया है उनकी अ़मली तौर पर आ़दत डाली जाये।

हिदायत व इस्लाह के दो सिलसिले 'किताबुल्लाह' और 'रिजालुल्लाह'

अब इस सिलसिले की दो बातें और क़ाबिले ग़ौर हैं:

अव्वल यह कि अल्लाह जल्ल शानुहू ने इनसानों की पैदाईश ही के वक़्त से इनसानों की हिदायत व इस्लाह (सुधार) के लिये हमेशा हर ज़माने में ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तक दो सिलसिले जारी रखे हैं- एक आसमानी किताबों का, दूसरे उसकी तालीम देने वाले रसूलों का। जिस तरह केवल किताब नाज़िल फ़रमा देने को काफ़ी नहीं समझा इसी तरह सिर्फ़ रसूलों के भेजने पर इक्तिफ़ा (बस) नहीं फ़रमाया, बल्कि दोनों सिलसिले बराबर जारी रखे। अल्लाह जल्ल शानुहू की इस आ़दत (नियम व क़ानून) और क़ुरआने करीम की गवाही ने क़ौमों की सलाह व फ़लाह (बेहतरी व कामयाबी) के लिये इन दोनों सिलसिलों को बराबर तौर पर जारी फ़रमाकर एक बड़े इल्म का दरवाज़ा खोल दिया, कि इनसान की सही तालीम व तरबियत के लिये न सिर्फ़ किताब काफ़ी है न कोई मुरब्बी इनसान, बल्कि एक तरफ़ आसमानी हिदायतें और अल्लाह के क़ानून की ज़रूरत है जिसका नाम किताब या क़ुरआन है, दूसरी तरफ़ एक मुअ़ल्लिम और मुरब्बी (सिखाने वाले और तरबियत करने वाले) इनसान की ज़रूरत है जो अपनी तालीम व तरबियत से आ़म इनसान को आसमानी हिदायतों से आगाह करके उनका आ़दी बनाये, क्योंकि इनसान का असली मुअ़ल्लिम इनसान ही हो सकता है किताब मुअ़ल्लिम या मुरब्बी नहीं हो सकती, हाँ तालीम व तरबियत में मददगार ज़रूर है।

यही वजह है कि जिस तरह इस्लाम की शुरूआत एक किताब और एक रसूल से हुई और इन दोनों के संगम ने एक सही और आला मिसाली समाज पैदा कर दिया उसी तरह आगे आने वाली नस्लों के लिये भी एक तरफ़ शरीअते पाक और दूसरी तरफ़ रिजालुल्लाह (रसूलों और अल्लाह वालों) का सिलसिला जारी रहा, क़ुरआने करीम ने जगह-जगह इसकी हिदायतें दी हैं। एक जगह इरशाद है:

يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَكُوْنُوْا مَعَ الصّٰدِقِيْنَ. (۹:۱۱۹)

"ऐ ईमान वालो! अल्लाह से डरो और सादिक़ीन (सच्चों) के साथ रहो।"

दूसरी जगह सादिक़ीन की परिभाषा और उनकी सिफ़तों को बयान करके फ़रमाया:

اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ صَدَقُوْا وَ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُتَّقُوْنَ. (۲:۱۷۷)

"और यही लोग सच्चे हैं, और यही हैं परहेज़गार।"

पूरे क़ुरआन का ख़ुलासा सूरः फ़ातिहा है और सूरः फ़ातिहा का ख़ुलासा 'सिराते मुस्तक़ीम' (सीधे रास्ते) की हिदायत है, यहाँ भी सिराते मुस्तक़ीम का पता देने के लिये बजाय इसके कि सिराते क़ुरआन या सिराते रसूल या सिराते सुन्नत (क़ुरआन का रास्ता, रसूल का रास्ता या सुन्नत का रास्ता) फ़रमाया जाता, कुछ अल्लाह वाले लोगों का पता दिया गया कि उनसे सिराते मुस्तक़ीम (सीधा और सही रास्ता) हासिल किया जाये। इरशाद हुआ:

صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَ لَا الضَّآلِّيْنَ۝

"यानी सिराते मुस्तक़ीम उन लोगों का रास्ता है जिन पर अल्लाह तआला का इनाम हुआ है, न कि उन लोगों का जो गुमराह हो गये।"

दूसरी जगह उनकी और ज़्यादा स्पष्ट निशानदेही और तफ़सील क़ुरआन में बयान की गयी जिन पर अल्लाह तआला का इनाम है। फ़रमाया:

فَاُولٰٓئِكَ مَعَ الَّذِيْنَ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ مِّنَ النَّبِيّٖنَ وَالصِّدِّيْقِيْنَ وَالشُّهَدَآءِ وَالصّٰلِحِيْنَ. (۴:۶۹)

यानी वे जिन पर अल्लाह तआला ने इनाम फ़रमाया वे अम्बिया हैं, सिद्दीक़ीन हैं, शहीद हैं और सालिहीन (नेक लोग) हैं।

इसी तरह रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने बाद के लिये कुछ हज़रात के नाम मुतैयन करके दीनी मामलात में उनकी पैरवी करने की हिदायत फ़रमाई। तिर्मिज़ी की सही हदीस में इरशाद है:

يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اِنِّيْ تَرَكْتُ فِيْكُمْ اَمْرَيْنِ مَا اِنْ اَخَذْتُمْ بِهٖ لَنْ تَضِلُّوْا كِتَابَ اللّٰهِ وَعِتْرَتِيْ اَهْلَ بَيْتِيْ. (ترمذی)

"ऐ लोगो! मैं तुम्हारे लिये अपने बाद में दो चीज़ें छोड़ता हूँ उन दोनों को मज़बूती से थामे रहना तो तुम गुमराह न होगे- एक किताबुल्लाह दूसरी मेरी औलाद और अहले बैत।"

और सही बुख़ारी की हदीस में है:

اِقْتَدُوْا بِالَّذِيْنَ مِنْۢ بَعْدِيْ اَبِيْ بَكْرٍ وَّعُمَرَ.

"यानी मेरे बाद अबू बक्र और उमर की पैरवी करो।"

और एक हदीस में इरशाद फ़रमाया:

عَلَيْكُمْ بِسُنَّتِىْ وَسُنَّةِ الْخُلَفَاءِ الرَّاشِدِيْنَ.

"मेरे तरीक़े को इख़्तियार करो और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन के तरीक़े को।"

ख़ुलासा-ए-कलाम यह है कि क़ुरआने करीम की इन हिदायतों और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात से यह बात रोशन दिन की तरह वाज़ेह हो गई कि क़ौमों की इस्लाह व तरबियत के लिये हर दौर हर ज़माने में दो चीज़ें ज़रूरी हैं- क़ुरआनी हिदायतें और उनके समझने और उन पर अ़मल करने का सलीक़ा हासिल करने के लिये शरीअ़त के माहिर उलेमा और अल्लाह वालों की तालीम व तरबियत। और अगर विभिन्न उलूम व फ़ुनून और उनके सीखने सिखाने के तरीक़ों पर आलोचनात्मक नज़र डाली जाये तो मालूम होगा कि यह उसूले तालीम व तरबियत सिर्फ़ दीन और दीनियात ही के साथ मख़्सूस नहीं बल्कि तमाम उलूम व फ़ुनून को सही तौर पर हासिल करना इसी पर निर्भर है कि एक तरफ़ हर फ़न की बेहतरीन किताब हों तो दूसरी तरफ़ माहिर लोगों की तालीम व तरबियत। हर इल्म व फ़न की तरक़्क़ी व तकमील के यही दो बाज़ू हैं, लेकिन दीन और दीनियात में इन दोनों बाज़ुओं से फ़ायदा उठाने में बहुत से लोग ख़िलाफ़े उसूल ग़लत रविश में पड़ जाते हैं जिसका नतीजा बजाय फ़ायदा उठाने के नुक़सान और बजाय इस्लाह (सुधार) के फ़साद होता है।

कुछ लोग किताबुल्लाह को नज़र-अन्दाज़ करके सिर्फ़ उलेमा व मशाईख़ (बुज़ुर्गों) ही को अपनी तवज्जोह का क़िब्ला (केन्द्र) बना लेते हैं और उनके शरीअ़त के पैरो होने की तहक़ीक़ नहीं करते, और यह असली रोग यहूदियों व ईसाईयों का है कि:

اِتَّخَذُوْٓا اَحْبَارَهُمْ وَرُهْبَانَهُمْ اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ. (٩:٣١)

"यानी उन लोगों ने अपने उलेमा व मशाईख़ (बुज़ुर्गों) को अल्लाह के सिवा अपना माबूद और क़िब्ला-ए-मक़सूद बना लिया।"

ज़ाहिर है कि यह रास्ता शिर्क व कुफ़्र का है और लाखों इनसान इस रास्ते में बरबाद हुए और हो रहे हैं। इसके मुक़ाबले में कुछ वे लोग भी हैं जो क़ुरआन व हदीस के उलूम हासिल करने में किसी मुअ़ल्लिम व मुरब्बी (उस्ताद और सिखाने वाले) की ज़रूरत ही नहीं समझते, वे कहते हैं कि हमें सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला की किताब काफ़ी है, न माहिर उलेमा की ज़रूरत न तरबियत याफ़्ता बुज़ुर्गों की हाजत। यह दूसरी गुमराही है जिसका नतीजा दीन व मिल्लत से निकल कर नफ़्सानी इच्छाओं और स्वार्थों का शिकार होना है, क्योंकि माहिरीन (विशेषज्ञों) के सहयोग के बग़ैर किसी फ़न का सही हासिल हो जाना इनसानी फ़ितरत के ख़िलाफ़ है, ऐसा करने वाला यक़ीनन ग़लत-फ़हमियों का शिकार होता है, और यह ग़लत-फ़हमी कई बार उसको दीन व मिल्लत से बिल्कुल निकाल देती है।

इसलिये ज़रूरत इसकी है कि इन दो चीज़ों को अपने-अपने स्थानों और हदों में रखकर इनसे फ़ायदा उठाया जाये। यह समझा जाये कि असली हुक्म सिर्फ़ एक अल्लाह का है और इताअ़त असल में उसी की है, रसूल भी उस पर अ़मल करने और कराने का एक वास्ता और माध्यम है, रसूल की इताअ़त (पैरवी और फ़रमाँबरदारी) भी सिर्फ़ इसी नज़र से की जाती है कि वह दर असल अल्लाह तआ़ला की इताअ़त है, हाँ इसके साथ क़ुरआन व हदीस के समझने में और उनके अहकाम पर अ़मल करने में जो इल्मी या अ़मली मुश्किलें सामने आयें उसके लिये माहिरीन के क़ौल व फ़ेल से इमदाद

लेने को नेकबख़्ती और निजात का सरमाया समझना ज़रूरी है।

उक्त आयत में रसूले मक़बूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मन्सबी फ़राईज़ (ड्यूटी) में किताब की तालीम को दाख़िल फ़रमाने से एक दूसरा फ़ायदा यह भी हासिल होता है कि जब क़ुरआन समझने के लिये रसूल की तालीम ज़रूरी है और उसके बग़ैर क़ुरआन पर सही अ़मल नामुम्किन है तो जिस तरह क़ुरआन क़ियामत तक महफ़ूज़ (सुरक्षित) है, इसका एक-एक ज़ेर व ज़बर (मात्रा तक) महफ़ूज़ है, ज़रूरी है कि रसूले पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात भी मजमूई हैसियत से क़ियामत तक बाक़ी और महफ़ूज़ रहें, वरना सिर्फ़ क़ुरआनी अलफ़ाज़ के महफ़ूज़ रहने से क़ुरआन के नाज़िल होने (अल्लाह के पास से उतरने) का असली मक़सद पूरा न होगा। और यह भी ज़ाहिर है कि रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात वही हैं जिनको सुन्नत या हदीसे रसूल कहा जाता है, उसकी हिफ़ाज़त का वायदा अल्लाह जल्ल शानुहू की तरफ़ से अगरचे उस दर्जे में नहीं है जिस दर्जे की क़ुरआन की हिफ़ाज़त के लिये वायदा है। फ़रमायाः

إِنَّا نَحْنُ نَزَّلْنَا الذِّكْرَ وَإِنَّا لَهُ لَحٰفِظُوْنَ ○

"हमने क़ुरआन को नाज़िल किया है और हम ही इसकी हिफ़ाज़त करने वाले हैं।"

जिसका यह नतीजा है कि इसके अलफ़ाज़ और ज़ेर व ज़बर तक बिल्कुल महफ़ूज़ चले आये हैं, और क़ियामत तक इसी तरह महफ़ूज़ रहेंगे। सुन्नते रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के अलफ़ाज़ अगरचे इस तरह महफ़ूज़ नहीं लेकिन मजमूई हैसियत से आपकी तालीमात का महफ़ूज़ रहना उक्त आयत की रू से लाज़िमी है, और अल्लाह का शुक्र है कि आज तक वो महफ़ूज़ चली आती हैं। जब किसी तरफ़ से उसमें रख़ना (ख़लल) डालने या ग़लत रिवायतों की मिलावट की गई तो हदीस के माहिर उलेमा ने दूध का दूध और पानी का पानी अलग निखार कर रख दिया और क़ियामत तक यह सिलसिला भी इसी तरह जारी रहेगा। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मेरी उम्मत में क़ियामत तक अहले हक़ और अहले इल्म की जमाअ़त क़ायम रहेगी जो क़ुरआन व हदीस को सही तौर पर महफ़ूज़ रखेगी, और उनमें डाले गये हर रख़ने (ख़लल) की इस्लाह करती रहेगी।

ख़ुलासा यह है कि जब क़ुरआन पर अ़मल करने के लिये रसूल की तालीम ज़रूरी है और यह भी ज़ाहिर है कि क़ुरआन पर अ़मल क़ियामत तक फ़र्ज़ है तो लाज़िम है कि क़ियामत तक रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात भी बाक़ी और महफ़ूज़ रहें, इसलिये आयत में रसूल की तालीमात के क़ियामत तक बाक़ी और महफ़ूज़ रहने की भी पेशीनगोई (भविष्यवाणी) मौजूद है, जिसको अल्लाह तआ़ला ने सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से लेकर आज तक इल्मे हदीस के माहिर उलेमा और विश्वसनीय किताबों के ज़रिये महफ़ूज़ रखा है, इससे उस फ़रेब व बेदीनी की हक़ीक़त खुल जाती है जो आजकल कुछ लोगों ने इस्लामी अहकाम से जान बचाने के लिये यह बहाना तराशा है कि हदीस का मौजूदा ज़ख़ीरा महफ़ूज़ और क़ाबिले इत्मीनान नहीं है। उनको मालूम होना चाहिये कि हदीस के ज़ख़ीरे से एतिमाद (भरोसा) उठ जाये तो क़ुरआन पर भी एतिमाद का कोई रास्ता नहीं रहता।

ज़िक्र हुई आयत में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का तीसरा मन्सबी फ़र्ज़ (पैग़म्बराना

ड्यूटी) 'तज़किया' क़रार दिया है। तज़किया के मायने अन्दरूनी और ज़ाहिरी गन्दगियों से पाक करना है। यानी शिर्क व कुफ़्र और बुरे अक़ीदों से तथा बुरे अख़्लाक़ तकब्बुर, हिर्स व लालच, बुग़ज़ व जलन, माल व ओहदे की मुहब्बत वग़ैरह से पाक करना।

इनसान की इस्लाह के लिये सिर्फ़ सही तालीम भी काफ़ी नहीं, अख़्लाक़ी तरबियत भी ज़रूरी है

तज़किये (अन्दरूनी व बाहरी सफ़ाई) को तालीम से अलग करके रिसालत का मुस्तक़िल मक़सद और रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मन्सबी फ़र्ज़ (ज़िम्मेदारी) क़रार देने में इस तरफ़ इशारा है कि तालीम कितनी ही सही हो, सिर्फ़ तालीम से आदतन् अख़्लाक़ की इस्लाह (सुधार) नहीं होती, जब तक किसी तरबियत याफ़्ता मुरब्बी (माहिर शख़्सियत) की निगरानी में अ़मली तरबियत हासिल न करे। क्योंकि तालीम का काम दर हक़ीक़त सीधा और सही रास्ता दिखला देना है, मगर ज़ाहिर है कि मन्ज़िले मक़सूद तक पहुँचने के लिये सिर्फ़ रास्ता जान लेना तो काफ़ी नहीं, जब तक हिम्मत करके क़दम न उठाये और रास्ते पर न चले, और हिम्मत का नुस्ख़ा सिवाय हिम्मत वालों की सोहबत और इताअ़त के और कुछ नहीं, वरना सब कुछ जानने समझने के बाद भी हालत यह होती है किः

जानता हूँ सवाबे ताअ़त व ज़ोहद पर तबीयत इधर नहीं आती

अ़मल की हिम्मत व तौफ़ीक़ किसी किताब के पढ़ने या समझने से पैदा नहीं होती, इसकी सिर्फ़ एक ही तदबीर है कि अल्लाह वालों की सोहबत और उनसे हिम्मत की तरबियत हासिल करना इसी का नाम तज़किया है। क़ुरआने करीम ने तज़किये को रिसालत के मक़ासिद में एक मुस्तक़िल मक़सद क़रार देकर इस्लामी तालीमात की नुमायाँ ख़ुसूसियत को बतलाया है, क्योंकि सिर्फ़ तालीम और ज़ाहिरी तहज़ीब तो हर क़ौम और हर मिल्लत में किसी न किसी सूरत से कामिल या नाक़िस तरीक़े पर ज़रूरी समझी जाती है, हर मज़हब व मिल्लत और हर समाज में इसको इनसानी ज़रूरतों में दाख़िल समझा जाता है, इसमें इस्लाम की एक नुमायाँ ख़ुसूसियत यह है कि उसने सही और मुकम्मल तालीम पेश की जो इनसान की व्यक्तिगत ज़िन्दगी से लेकर घरेलू, ख़ानदानी फिर क़बाईली ज़िन्दगी और इससे आगे बढ़कर सियासी व मुल्की ज़िन्दगी पर हावी और बेहतरीन व्यवस्था की हामिल है जिसकी नज़ीर दूसरी क़ौमों व मिल्लतों में नहीं पाई जाती। इसके साथ तज़किया-ए-अख़्लाक़ और बातिनी तहारत (अन्दरूनी पाकी) एक ऐसा काम है जिसको आ़म क़ौमों और समाजों ने सिरे से नज़र अन्दाज़ कर रखा है, इनसानी क़ाबलियत व इस्तेदाद का मेयार उसकी तालीमी डिग्रियाँ समझी जाती हैं, उन्हीं डिग्रियों के वज़न के साथ इनसानों का वज़न घटता बढ़ता है, इस्लाम ने तालीम के साथ तज़किये का जोड़ लगाकर तालीम के असल मक़सद को पूरा कर दिखाया।

जिन ख़ुश-नसीब हज़रात ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने तालीम हासिल की, तालीम के साथ-साथ उनका बातिनी तज़किया (अन्दरूनी सफ़ाई) भी होता गया और जो सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की जमाअ़त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरबियत के मातहत तैयार हुई। एक तरफ़ उनकी अ़क्ल व समझ और इल्म व हिक्मत की गहराई का यह आ़लम था कि सारी दुनिया

के फ़ल्सफ़े उसके सामने गर्द (बेहक़ीक़त) हो गये तो दूसरी तरफ़ उनके बातिनी तज़किये, अल्लाह के साथ ताल्लुक़ और अल्लाह पर एतिमाद का यह दर्जा था जो ख़ुद क़ुरआने करीम ने इन अलफ़ाज़ में बयान फ़रमाया है:

وَالَّذِيْنَ مَعَهٗٓ اَشِدَّآءُ عَلَى الْكُفَّارِ رُحَمَآءُ بَيْنَهُمْ تَرٰهُمْ رُكَّعًا سُجَّدًا يَّبْتَغُوْنَ فَضْلًا مِّنَ اللّٰهِ وَرِضْوَانًا. (٤٨:٢٩)

"और जो लोग आपके साथ हैं वे काफ़िरों पर सख़्त और आपस में रहम-दिल हैं। तुम उन्हें रुकूअ सज्दा करते हुए देखोगे, वे अल्लाह का फ़ज़्ल और उसकी रज़ामन्दी तलाश करते हैं।"

यही वजह थी कि वे जिस तरफ़ चलते थे कामयाबी और मदद उनके क़दम चूम लेती थी। अल्लाह की ताईद उनके साथ होती थी, उनके अक़्लों को हैरान कर देने वाले कारनामे जो आज भी हर क़ौम व मिल्लत के ज़ेहनों को मरऊब किये हुए हैं, वे इसी तालीमत व तज़किये का आला नतीजा हैं। आज दुनिया में तालीम को बेहतर बनाने के लिये निसाबों (कोर्सों) की तब्दीली व तरमीम पर तो सब लोग ग़ौर करते हैं, लेकिन तालीम की रूह को दुरुस्त करने की तरफ़ आम तौर पर तवज्जोह नहीं दी जाती कि मुदर्रिस और मुअ़ल्लिम (सिखाने वाले) की अख़्लाक़ी हालत और सुधारक तरबियत को देखा जाये, इस पर ज़ोर दिया जाये। इसका नतीजा है कि हज़ार कोशिशों के बाद भी ऐसे मुकम्मल इनसान पैदा नहीं होते जिनके उम्दा अख़्लाक़ दूसरों पर असर डालने वाले हों, और जो दूसरों की तरबियत कर सकें।

यह एक खुली हुई हक़ीक़त है कि उस्ताद जिस इल्म व अ़मल और अख़्लाक़ व किरदार के मालिक होंगे उनसे पढ़ने वाले तलबा (सीखने वाले) ज़्यादा से ज़्यादा उन्हीं जैसे पैदा हो सकेंगे, इसलिये तालीम को मुफ़ीद और बेहतर बनाने के लिये निसाबों की तरतीब व तरमीम से ज़्यादा उस निसाब (कोर्स) के पढ़ाने वालों की इल्मी व अ़मली और अख़्लाक़ी हालत पर नज़र डालना ज़रूरी है।

यहाँ तक रिसालत व नुबुव्वत के तीन मक़ासिद का बयान था, आख़िर में मुख़्तसर तौर पर यह भी सुन लीजिये कि सरदारे दो आ़लम रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को जो तीन मन्सबी फ़राईज़ (नुबुव्वती ज़िम्मेदारियाँ) सुपुर्द किये गये थे, उनको आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने किस हद तक पूरा फ़रमाया, आपको उनके पूरा करने में कहाँ तक कामयाबी मिली। इसके लिये इतना जान लेना काफ़ी है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इस दुनिया से तशरीफ़ ले जाने से पहले-पहले आयतों की तिलावत का यह दर्जा हो गया था कि तक़रीबन पूरे अ़रब इलाक़े में क़ुरआन पढ़ा जा रहा था, हज़ारों इसके हाफ़िज़ थे, सैंकड़ों ऐसे हज़रात थे जो रोज़ाना या तीसरे दिन पूरा क़ुरआन ख़त्म करते थे।

तालीमे किताब व हिक्मत का यह मक़ाम था कि दुनिया के सारे फ़ल्सफ़े क़ुरआन के सामने फीके पड़ चुके थे। तौरात व इन्जील के तब्दील शुदा धर्म ग्रंथ अफ़साना बन चुके थे, क़ुरआनी उसूल को इज़्ज़त व शर्फ़ का मेयार माना जाता था। तज़किये का आ़लम यह था कि सारी बद-अख़्लाक़ियों के करने वाले अफ़राद तहज़ीबे अख़्लाक़ के मुअ़ल्लिम बन गये। बद-अख़्लाक़ियों के मरीज़ न सिर्फ़ सेहतयाब बल्कि कामयाब मुआ़लिज और मसीहा बन गये। जो रहज़न (रास्तों को लूटने वाले) थे, रहबर बन गये। ग़र्ज़ कि बुत-परस्त लोग ईसार व हमदर्दी के मुजस्समे बन गये, बद-अख़्लाक़ी और

जंग व लड़ाई के मिज़ाज की जगह नर्मी और सुलह करने वाले नज़र आने लगे, चोर और डाकू लोगों के मालों के मुहाफ़िज़ बन गये।

ग़र्ज़ यह कि हज़रत ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम ने जिन मक़ासिद (उद्देश्यों) के लिये दुआ़ फ़रमाई और रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को उनकी तकमील के लिये भेजा गया था, वे तीनों मक़सद आपके मुबारक ज़माने ही में नुमायाँ तौर पर कामयाब हुए। फिर आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के बाद आपके सहाबा ने तो उनको पूरब से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर तक सारी दुनिया में आ़म कर दिया। बेहिसाब व बेशुमार दुरूद व सलाम हो नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर और आपकी आल व अस्हाब पर।

وَمَنْ يَّرْغَبُ عَنْ مِّلَّةِ اِبْرٰهٖمَ اِلَّا مَنْ سَفِهَ نَفْسَهٗ ؕ وَلَقَدِ اصْطَفَيْنٰهُ فِي الدُّنْيَا ۚ وَاِنَّهٗ فِي الْاٰخِرَةِ لَمِنَ الصّٰلِحِيْنَ ۝ اِذْ قَالَ لَهٗ رَبُّهٗٓ اَسْلِمْ ۙ قَالَ اَسْلَمْتُ لِرَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝ وَوَصّٰى بِهَآ اِبْرٰهٖمُ بَنِيْهِ وَيَعْقُوْبُ ؕ يٰبَنِيَّ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰى لَكُمُ الدِّيْنَ فَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ۝ؕ

व मंय्यर्ग़बु अ़म्-मिल्लति इब्राही-म इल्ला मन् सफ़ि-ह नफ़्सहू, व ल-क़दिस्तफ़ैनाहु फ़िद्दुन्या व इन्नहू फ़िल्-आख़िरति लमिनस्सालिहीन (130) इज़् क़ा-ल लहू रब्बुहू अस्लिम् क़ा-ल अस्लम्तु लि-रब्बिल्-आ़लमीन (131) व वस्सा बिहा इब्राहीमु बनीहि व यअ़्क़ूबु, या बनिय्-य इन्नल्लाहस्तफ़ा लकुमुद्दी-न फ़ला तमूतुन्-न इल्ला व अन्तुम्-मुस्लिमून (132)	और कौन है जो फिरे इब्राहीम के मज़हब से मगर वही जिसने अहमक़ बनाया अपने आपको, और बेशक हमने उनको मुन्तख़ब किया (चुन लिया) दुनिया में, और वे आख़िरत में नेकों में हैं। (130) याद करो जब उसको कहा उसके रब ने कि हुक्म का पालन कर तो वह बोला कि मैं हुक्म की तामील करने वाला हूँ तमाम आ़लम के परवर्दिगार का। (131) और यही वसीयत कर गया इब्राहीम अपने बेटों को और याक़ूब भी कि ऐ बेटो! बेशक अल्लाह ने चुनकर दिया है तुमको दीन, सो तुम हरगिज़ न मरना मगर मुसलमान। (132)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और मिल्लते इब्राहीमी (हज़रत इब्राहीम के रास्ते यानी इस्लाम) से तो वही मुँह फेरेगा जो अपनी ज़ात ही से अहमक़ हो, और (ऐसी मिल्लत के छोड़ने वाले को क्योंकर अहमक़ न कहा जाये जिसकी यह शान हो कि उसी की बदौलत) हमने उन (इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम) को (रिसालत के पद के लिये)

दुनिया में चुना और (इसी की बदौलत) वह आख़िरत में बड़े लायक़ लोगों में शुमार किये जाते हैं (जिनके लिये सब ही कुछ है, और यह चयन रिसालत के ओहदे के लिये उस वक़्त हुआ था) जबकि उनसे उनके परवर्दिगार ने (इल्हाम के तौर पर) फ़रमाया कि तुम (हक़ तआ़ला की) इताअ़त इख़्तियार करो, उन्होंने अ़र्ज़ किया कि मैंने इताअ़त इख़्तियार की रब्बुल-आलमीन की (पस उसी इताअ़त के इख़्तियार करने पर हमने उनको नुबुव्वत का सम्मान दे दिया, चाहे उसी वक़्त हो या चन्द दिन बाद)। और इसी (मिल्लते इब्राहीमी पर क़ायम रहने) का हुक्म कर गये हैं इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) अपने बेटों को और (इसी तरह) याक़ूब (अ़लैहिस्सलाम) भी (अपने बेटों को, जिसका यह मज़मून था कि) मेरे बेटो! अल्लाह ने इस दीन (इस्लाम और हक़ की इताअ़त) को तुम्हारे लिये पसन्द फ़रमाया है, सो तुम (मरते दम तक इसको मत छोड़ना और) सिवाय इस्लाम के और किसी हालत पर जान मत देना।

मआ़रिफ़ व मसाईल

पहले गुज़री आयतों में मिल्लते इब्राहीमी के बुनियादी उसूल और उनके इत्तिबा (पैरवी) की ताकीद और उनसे मुँह फेरने (यानी उन्हें न मानने) की ख़राबी का बयान है, जिसमें यहूदियों व ईसाईयों के मिल्लते इब्राहीमी की पैरवी के मुताल्लिक़ दावों की तरदीद और सिर्फ़ इस्लामी मिल्लत का मिल्लते इब्राहीमी के मुताबिक़ होना और दीने इस्लाम की हक़ीक़त और यह कि वह तमाम अम्बिया का संयुक्त दीन है, ज़िक्र किया गया है।

उक्त आयतों में अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का अपनी औलाद की दीनी और रूहानी तरबियत की तरफ़ ख़ास तवज्जोह और एहतिमाम करना मज़कूर है। पहली आयत में मिल्लते इब्राहीमी की फ़ज़ीलत और उसी की वजह से हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम का दुनिया व आख़िरत में शर्फ़ (सम्मान) और बुज़ुर्गी बतला कर उनकी मिल्लत से मुँह फेरने को अहमक़ाना काम बतलाया गया है। इरशाद है:

وَمَنْ يَّرْغَبُ عَنْ مِّلَّةِ اِبْرٰهٖمَ اِلَّا مَنْ سَفِهَ نَفْسَهٗ.

यानी "मिल्लते इब्राहीमी से मुँह मोड़ने का काम सिर्फ़ वही शख़्स कर सकता है जिसमें ज़रा भी अ़क़्ल न हो।" क्योंकि यह मिल्लत ऐन दीने फ़ितरत है, कोई सही फ़ितरत वाला इनसान इससे इनकार नहीं कर सकता। आगे इसकी वजह बयान फ़रमाई कि इस मिल्लत का शर्फ़ और फ़ज़ीलत इससे ज़ाहिर है कि अल्लाह जल्ल शानुहू ने इसी मिल्लत की वजह से हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम को दुनिया में इज़्ज़त व बुज़ुर्गी (बड़ाई) अ़ता फ़रमाई, और आख़िरत में भी। दुनिया की इज़्ज़त व बुज़ुर्गी तो सारी दुनिया ने देख ली कि नमरूद जैसा ज़बरदस्त ताक़त रखने वाला बादशाह और उसकी क़ौम इस अकेले बुज़ुर्ग के ख़िलाफ़ खड़ी हुई और अपनी ताक़त व सत्ता के सारे साधन उनके ख़िलाफ़ इस्तेमाल कर लिये, आख़िर में आग के एक बड़े अलाव में उनको डाल दिया गया मगर दुनिया के सारे तत्व और उनकी ताक़तें जिस क़ुदरत के फ़रमान के ताबे हैं उसने सारे नमरूदी मन्सूबों को ख़ाक में मिला दिया। आग ही को अपने ख़लील हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के लिये गुलज़ार बना दिया और दुनिया की सारी क़ौमें उनका लोहा मानने पर मजबूर हो गईं। दुनिया के सारे मोमिन और काफ़िर यहाँ तक कि बुत-परस्त (मूर्ति पूजक) भी उस बुत-शिकन (बुतों को तोड़ने वाले) की इज़्ज़त करते चले

आये। अ़रब के मुश्रिक लोग बहरहाल हज़रत इब्राहीम की औलाद थे, बुत-परस्ती के बावजूद हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की इज़्ज़त व आदर पर जान देते थे, और उन्हीं की मिल्लत की पैरवी का दावा करते थे और मिल्लते इब्राहीमी (हज़रत इब्राहीम के तरीक़े) के मिटे-सिटे कुछ आसार उनके अ़मल में भी मौजूद थे। हज व उमरा, क़ुरबानी और मेहमान-नवाज़ी उन्हीं के नेक तरीक़ों में से बाक़ी चीज़ थी। अगरचे जहालत ने उनको भी मस्ख़ कर दिया (यानी उनकी असली हालत से बदल दिया) था और यह नतीजा उस ख़ुदावन्दी इनाम का है जिसकी रू से ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम को इमामुन्नास (लोगों के इमाम व पेशवा) का ख़िताब दिया गया था। फ़रमाया गया 'इन्नी जाअ़िलु-क लिन्नासि इमामा'।

इब्राहीम और मिल्लते इब्राहीम के इस ज़बरदस्त ग़लबे के अ़लावा उसकी मक़बूलियत और इनसानी फ़ितरत के ऐन मुताबिक़ होना भी दुनिया के सामने आ चुका था और जिसमें कुछ भी अ़क्ल व समझ थी वह इस मिल्लत के सामने झुक गया था।

यह तो इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के दुनियावी सम्मान व बड़ाई का ज़िक्र था, आख़िरत का मामला जो अभी सामने नहीं उसमें हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम का मक़ाम क़ुरआन की इस आयत ने वाज़ेह कर दिया कि जिस तरह अल्लाह तआ़ला ने उनको दुनिया में इज़्ज़त व फ़ज़ीलत अ़ता फ़रमाई उसी तरह आख़िरत में भी उनके बुलन्द दर्जे मुक़र्रर हैं।

मिल्लते इब्राहीमी का बुनियादी उसूल इस्लाम यानी इताअ़ते हक़ है, वह सिर्फ़ इस्लाम में सीमित है

इसके बाद दूसरी आयत में मिल्लते इब्राहीमी के बुनियादी उसूल बतलाये गये। इरशाद हुआः

إِذْ قَالَ لَهُ رَبُّهُ أَسْلِمْ قَالَ أَسْلَمْتُ لِرَبِّ الْعٰلَمِينَ۝

"यानी जब फ़रमाया इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम से उनके रब ने कि इताअ़त इख़्तियार करो तो उन्होंने अ़र्ज़ किया कि मैंने इताअ़त इख़्तियार की रब्बुल-आ़लमीन की।"

इस अन्दाज़े बयान में यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि अल्लाह जल्ल शानुहू के ख़िताब 'अस्लिम्' (अपने रब की फ़रमाँबरदारी इख़्तियार कर) का जवाब ज़ाहिरी नज़र में ख़िताब ही के अन्दाज़ में यह होना चाहिये कि 'अस्लम्तु ल-क' यानी मैंने आपकी इताअ़त इख़्तियार कर ली, मगर हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम ने ख़िताब के इस अन्दाज़ को छोड़कर यूँ अ़र्ज़ किया किः

أَسْلَمْتُ لِرَبِّ الْعٰلَمِينَ

'अस्लम्तु लि-रब्बिल् आ़लमीन' यानी मैंने परवर्दिगारे आ़लम की इताअ़त इख़्तियार कर ली। एक तो इसमें अदब की रियायत के साथ हक़ तआ़ला शानुहू की तारीफ़ व प्रशंसा शामिल हो गई जिसका यह मक़ाम था। दूसरे इसका इज़्हार हो गया कि मैंने जो इताअ़त इख़्तियार की वह किसी पर एहसान नहीं किया बल्कि मेरे लिये उसका करना ही ज़रूरी और लाज़िमी था क्योंकि वह रब्बुल-आ़लमीन यानी सारे जहान का परवर्दिगार है, सारे जहान और जहान वालों को उसकी इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) के

सिवा कोई चारा नहीं, जिसने इताअ़त इख़्तियार की उसने अपना फ़र्ज़ अदा करके अपना नफ़ा हासिल किया। इसमें यह भी मालूम हो गया कि मिल्लते इब्राहीमी का बुनियादी उसूल और पूरी हक़ीक़त एक लफ़्ज़ 'इस्लाम' में छुपी है जिसके मायने हैं हक़ की इताअ़त। और यही ख़ुलासा है इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के मज़हब व मस्लक का, और यही हासिल है उन इम्तिहानों (परीक्षाओं) का जिनसे गुज़रकर अल्लाह तआ़ला का यह ख़लील (यानी हज़रत इब्राहीम) अपने बुलन्द मक़ाम तक पहुँचा है और इस्लाम यानी इताअ़ते हक़ ही वह चीज़ है जिसके लिये यह सारा जहान बनाया गया और जिसके लिये अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम भेजे गये, आसमानी किताबें नाज़िल की गईं।

इससे यह भी मालूम हो गया कि इस्लाम ही तमाम अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का संयुक्त दीन और एक ऐसा बिन्दू है जिस पर वे सब एक हैं। हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम से लेकर ख़ातिमुल अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तक हर आने वाले रसूल और नबी ने इसी की तरफ़ दावत दी, इसी पर अपनी-अपनी उम्मत को चलाया। क़ुरआने करीम ने स्पष्ट अलफ़ाज़ में फ़रमायाः

إِنَّ الدِّيْنَ عِنْدَ اللّٰهِ الْإِسْلَامُ. (١٩:٣)

"दीन तो अल्लाह के नज़दीक इस्लाम ही है।"

وَمَنْ يَّبْتَغِ غَيْرَ الْإِسْلَامِ دِيْنًا فَلَنْ يُّقْبَلَ مِنْهُ. (٨٥:٣)

"और जो शख़्स इस्लाम के सिवा कोई दूसरा दीन व मज़हब इख़्तियार करे वह मक़बूल नहीं।"

और ज़ाहिर है कि जितने दीन व मज़हब अनेक अम्बिया लाये हैं वे सब अपने-अपने वक़्त में अल्लाह तआ़ला के नज़दीक मक़बूल थे, इसलिये ज़रूरी है कि वे सब दीन दीने इस्लाम ही हों अगरचे नाम उनका कुछ भी रख दिया जाये। हज़रत मूसा व हज़रत ईसा अ़लैहिमस्सलाम का दीन कहा जाये या यहूदियत व ईसाईयत वग़ैरह, मगर हक़ीक़त सब की इस्लाम है, जिसका हासिल हक़ की इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) है। अलबत्ता इसमें एक ख़ुसूसियत मिल्लते इब्राहीमी को हासिल है कि हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने अपनी मिल्लत का नाम भी 'इस्लाम' तजवीज़ किया और अपनी उम्मत को भी 'उम्मते मुस्लिमा' का नाम दिया। दुआ़ में अ़र्ज़ कियाः

رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَا اُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ. (١٢٨:٢)

"ऐ हमारे परवर्दिगार! बना दीजिये हम दोनों (इब्राहीम व इस्माईल) को मुस्लिम (यानी अपना फ़रमाँबरदार) और हमारी औलाद में से भी एक जमाअ़त को अपना फ़रमाँबरदार बना।"

औलाद को वसीयत करते हुए फ़रमायाः

فَلَا تَمُوْتُنَّ إِلَّا وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ. (١٣٢:٢)

"तुम सिवाय मुस्लिम होने के किसी मज़हब पर जान न देना।"

हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के बाद यह विशेषता हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ही की तजवीज़ के मुताबिक़ उम्मते मुहम्मदिया को हासिल हुई कि उसका नाम उम्मते मुस्लिमा रखा गया और उसकी मिल्लत भी मिल्लते इस्लामिया के नाम से परिचित हुई। क़ुरआने करीम का इरशाद हैः

مِلَّةَ اَبِيْكُمْ اِبْرٰهِيْمَ هُوَ سَمّٰكُمُ الْمُسْلِمِيْنَ، مِنْ قَبْلُ وَفِيْ هٰذَا. (٧٨:٢٢)

"तुम अपने बाप इब्राहीम के दीन पर क़ायम रहो, उसने तुम्हारा लक़ब मुसलमान रखा है पहले भी और इसमें भी (यानी क़ुरआन में)।"

कहने को तो यहूद भी यही कहते हैं कि हम मिल्लते इब्राहीमी (हज़रत इब्राहीम के तरीक़े) पर हैं, ईसाई भी और अरब के मुश्रिक लोग भी, लेकिन यह सब ग़लत-फ़हमी या झूठे दावे थे, हक़ीक़त में मिल्लते मुहम्मदिया ही आख़िरी दौर में मिल्लते इब्राहीमी और फ़ितरी दीन के मुताबिक़ थी।

ख़ुलासा-ए-कलाम यह है कि अल्लाह तआ़ला शानुहू की तरफ़ से जितने अम्बिया तशरीफ़ लाये और जितनी किताबें और शरीअ़तें नाज़िल हुईं उन सब की रूह इस्लाम यानी इताअ़ते हक़ है, जिसका हासिल यह है कि नफ़्सानी इच्छाओं के मुक़ाबले में अल्लाह के फ़रमान की इताअ़त और नफ़्स की पैरवी को छोड़कर हिदायत और सही रास्ते की पाबन्दी।

अफ़सोस है कि आज इस्लाम का नाम लेने वाले लाखों मुसलमान भी इस हक़ीक़त से बेगाना (नावाक़िफ़) हो गये और दीन व मज़हब के नाम पर भी अपनी इच्छाओं की पैरवी करना चाहते हैं। उन्हें क़ुरआन व हदीस की सिर्फ़ वह तफ़सीर व ताबीर भली मालूम होती है जो उनकी इच्छा के मुताबिक़ हो, वरना यह कोशिश होती है कि शरीअ़त के लिबास को खींच-तानकर बल्कि चीर-फाड़कर अपनी ग़र्ज़ों और नफ़्सानी इच्छाओं के बुतों का लिबास बना दें कि देखने में दीन व मज़हब का इत्तिबा (पैरवी) नज़र आये अगरचे वह हक़ीक़त में ख़ालिस अपने नफ़्स और इच्छाओं की पैरवी है:

सौदा शुद अज़ सज्दा-ए-राहे बुताँ पेशानेम
हर चन्द बर ख़ुद तोहमते दीने मुसलमानी नहम

कि बुतों को सज्दा करते-करते पेशानी को हमने काला कर लिया, चाहे हम लाख अपने ऊपर मुसलमान होने का लेबल लगाते रहें। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

ग़ाफ़िल इनसान यह नहीं जानता कि ये हीले (बहाने) और तावीलें (उल्टा-सीधा मतलब बयान करना) मख़्लूक़ के सामने तो चल सकती हैं मगर ख़ालिक़ के सामने जिसका इल्म ज़र्रे-ज़र्रे को शामिल है, जो दिलों के छुपे हुए इरादों भेदों को देखता और जानता है उसके आगे सिवाय ख़ालिस इताअ़त के कोई चीज़ कारगर नहीं:

कारहा बा-ख़ल्क़ आरी जुमला रास्त
बा-ख़ुदा तज़वीर व हीला के रवास्त

यानी जब मख़्लूक़ के साथ तू अपने मामलात को ऐसा बना-संवार कर रखता है तो ख़ालिक़ यानी अल्लाह तआ़ला के साथ तेरी बहाने बाज़ी कैसे सही हो सकती है। **मुहम्मद इमरान क़ासमी**

असली और वास्तविक इस्लाम यह है कि अपनी ग़र्ज़ों और इच्छाओं से बिल्कुल ख़ाली ज़ेहन होकर इनसान को इसकी तलाश हो कि अल्लाह जल्ल शानुहू की रज़ा किस काम में है और उसका फ़रमान मेरे लिये क्या है। वह एक फ़रमाँबरदार ग़ुलाम की तरह आवाज़ पर कान लगाये रहे कि किस तरफ़ जाने का और किस काम का हुक्म होता है, और उस काम को किस अन्दाज़ से किया जाये जिससे वह मक़बूल हो और मेरा मालिक राज़ी हो, इसी का नाम इबादत व बन्दगी है।

इसी इताअ़त व मुहब्बत के जज़्बे का कमाल (तरक़्क़ी पर पहुँचना) इनसान की तरक़्क़ी का आख़िरी मक़ाम है जिसको 'मक़ामे अ़ब्दियत' (बन्दगी का मक़ाम) कहा जाता है। यही वह मक़ाम है

जहाँ पहुँचकर हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ख़लीलुल्लाह (अल्लाह के दोस्त) का ख़िताब पाते हैं और तमाम रसूलों के सरदार ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को 'अ़ब्दना' (हमारे बन्दे) का ख़िताब मिलता है, इसी अ़ब्दियत (बन्दा होने) और इताअ़त के नीचे के दरजात पर उम्मत के औलिया, क़ुतुब व अब्दाल के दर्जे होते हैं और यही हक़ीक़ी तौहीद है जिसके हासिल होने पर इनसान के ख़ौफ़ व उम्मीद सिर्फ़ एक अल्लाह के साथ जुड़ जाते हैं:

उम्मीद व हरासस न बाशद ज़-कस हमीं अस्त बुनियादे तौहीद व बस

किसी से कोई उम्मीद न रखे न किसी का ख़ौफ़ दिल में हो, यही तौहीद की असल और बुनियाद है। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

ग़र्ज़ यह कि इस्लाम के मायने और हक़ीक़त हक़ की इताअ़त है और उसका रास्ता सिर्फ़ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत की पैरवी में मुन्हसिर (सीमित) है, जिसको क़ुरआने करीम ने स्पष्ट अलफ़ाज़ में इस तरह इरशाद फ़रमाया है:

فَلَا وَرَبِّكَ لَا يُؤْمِنُوْنَ حَتّٰى يُحَكِّمُوْكَ فِيْمَا شَجَرَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ لَا يَجِدُوْا فِيْۤ اَنْفُسِهِمْ حَرَجًا مِّمَّا قَضَيْتَ وَيُسَلِّمُوْا تَسْلِيْمًا. (٤:٦٥)

"तेरे रब की क़सम वे कभी मोमिन न होंगे जब तक कि वे आपको अपने तमाम इख़्तिलाफ़ी (विवादित) मामलों में हकम (जज) तस्लीम न कर लें और फिर आपके फ़ैसले से दिल में कोई तंगी महसूस न करें और फ़ैसले को ठंडे दिल से तस्लीम न करें।"

मसलाः उक्त आयत में हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने अपनी औलाद को जो वसीयत फ़रमाई और उनसे अ़हद लिया वह यह था कि इस्लाम के सिवा और किसी हालत और किसी मिल्लत पर न मरना। मुराद इससे यह है कि अपनी ज़िन्दगी में इस्लाम और इस्लामी तालीमात पर पुख़्तगी से अ़मल करते रहो ताकि अल्लाह तआ़ला तुम्हारा ख़ात्मा भी इस्लाम ही पर फ़रमा दे, जैसा कि कुछ रिवायतों में है कि तुम अपनी ज़िन्दगी में जिस हालत के पाबन्द रहोगे उसी हालत पर तुम्हारी मौत भी होगी और उसी हालत में क़ियामत में खड़े होगे। अल्लाह जल्ल शानुहू की आ़दत (क़ानून व नियम) यही है कि जो बन्दा नेकी का इरादा करता है और उसके लिये अपनी हिम्मत के मुताबिक़ कोशिश करता है तो अल्लाह तआ़ला उसको नेकी की तौफ़ीक़ दे देते हैं और यह काम उसके लिये आसान कर देते हैं।

इस मामले में उस हदीस से शुब्हा न किया जाये जिसमें यह इरशाद है कि बाज़ा आदमी जन्नत के काम और जन्नत वालों के अ़मल हमेशा करता रहता है यहाँ तक कि उस शख़्स और जन्नत के बीच सिर्फ़ एक हाथ का फ़ासला रह जाता है, मगर फिर उसकी तक़दीर ग़ालिब आ जाती है और वह दोज़ख़ वालों जैसे काम करने लगता है और आख़िरकार दोज़ख़ में जाता है। इसी तरह बाज़ा आदमी दोज़ख़ के कामों में मशग़ूल रहता है यहाँ तक कि उसके और दोज़ख़ के बीच सिर्फ़ एक हाथ का फ़ासला रह जाता है फिर तक़दीर ग़ालिब आ जाती है और आख़िर उम्र में जन्नत वालों के काम करने लगता है और जन्नत में दाख़िल हो जाता है।

वजह यह है कि इस हदीस के बाज़ अलफ़ाज़ में यह क़ैद भी लगी हुई है कि:

فيما يبد وللناس

यानी जिसने उम्र भर जन्नत के काम किये और आख़िर में दोज़ख़ के काम में लगा, दर हक़ीक़त उसके पहले काम भी दोज़ख़ ही के अ़मल थे मगर लोगों को देखने में वो जन्नत वालों के अ़मल मालूम होते थे। इसी तरह जो दोज़ख़ के आमाल में मश्गूल रहा आख़िर में जन्नत के काम करने लगा दर हक़ीक़त वह शुरू ही से जन्नत के काम में था, मगर ज़ाहिर नज़र में लोग उसको गुनाहगार समझते थे। (इब्ने कसीर)

ख़ुलासा यह है कि जो आदमी नेक काम में मश्गूल रहे उसको अल्लाह तआ़ला के वायदे और आदत की बिना पर यही उम्मीद रखनी चाहिये कि उसका ख़ात्मा भी नेकी पर होगा।

أَمْ كُنتُمْ شُهَدَاءَ إِذْ حَضَرَ يَعْقُوبَ الْمَوْتُ إِذْ قَالَ لِبَنِيهِ مَا تَعْبُدُونَ مِن بَعْدِي قَالُوا نَعْبُدُ إِلَٰهَكَ وَإِلَٰهَ آبَائِكَ إِبْرَاهِيمَ وَإِسْمَاعِيلَ وَإِسْحَاقَ إِلَٰهًا وَاحِدًا وَنَحْنُ لَهُ مُسْلِمُونَ ﴿١٣٣﴾ تِلْكَ أُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَلَكُم مَّا كَسَبْتُمْ وَلَا تُسْأَلُونَ عَمَّا كَانُوا يَعْمَلُونَ ﴿١٣٤﴾

अम् कुन्तुम् शु-हदा-अ इज़् ह-ज़-र यअ़्क़ूबल्मौतु इज़् क़ा-ल लि-बनीहि मा तअ़्बुदू-न मिम्बअ़्दी, क़ालू नअ़्बुदु इलाह-क व इला-ह आबाइ-क इब्राही-म व इस्माअ़ी-ल व इस्हा-क़ इलाहंव्-वाहिदंव्-व नह्नु लहू मुस्लिमून (133) तिल्-क उम्मतुन् क़द् ख़लत् लहा मा क-सबत् व लकुम् मा क-सब्तुम् व ला तुस्अलू-न अ़म्मा कानू यअ़्मलून (134)	क्या तुम मौजूद थे जिस वक़्त क़रीब आई याक़ूब के मौत, जब कहा अपने बेटों को- तुम किसकी इबादत करोगे मेरे बाद? बोले हम बन्दगी करेंगे तेरे रब की और तेरे बाप-दादों के रब की, जो कि इब्राहीम और इस्माईल और इस्हाक़ हैं, वही एक माबूद है और हम सब उसी के फ़रमाँबरदार हैं। (133) वह एक जमाअ़त थी जो गुज़र चुकी, उनके वास्ते है जो उन्होंने किया और तुम्हारे वास्ते है जो तुमने किया, और तुम से पूछ नहीं उनके कामों की। (134)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

क्या (तुम लोग किसी मोतबर सही नक़ल से उक्त दावा करते हो या) तुम ख़ुद (उस वक़्त) मौजूद थे जिस वक़्त याक़ूब (अ़लैहिस्सलाम) का आख़िरी वक़्त आया (और) जिस वक़्त उन्होंने अपने बेटों से (मुआ़हदे के नवीकरण और उसको ताज़ा करने के लिये) पूछा कि तुम लोग मेरे (मरने के) बाद किस चीज़ की परस्तिश "यानी पूजा और इबादत" करोगे। उन्होंने (एक ज़बान होकर) जवाब दिया कि हम उस (पाक ज़ात) की इबादत करेंगे जिसकी आप और आपके बुज़ुर्ग (हज़रात) इब्राहीम

व इस्माईल व इस्हाक़ (अ़लैहिमुस्सलाम) इबादत करते आए हैं, यानी वही माबूद जो अकेला है जिसका कोई शरीक नहीं है, और हम (अहकाम में) उसी की इताअ़त पर (क़ायम) रहेंगे। यह (उन बुज़ुर्गों की) एक जमाअ़त थी जो (अपने ज़माने में) गुज़र चुकी, उनके काम उनका किया हुआ आयेगा और तुम्हारे काम तुम्हारा किया हुआ आयेगा, और तुमसे उनके किए हुए की पूछ भी तो न होगी (और ख़ाली तज़किरा भी तो न होगा, रहा उससे तुमको लाभ पहुँचना यह तो बहुत दूर है)।

मआरिफ़ व मसाईल

पहले बयान हुई आयतों में मिल्लते इब्राहीम (हज़रत इब्राहीम के दीन) और इस्लाम की हक़ीक़त का बयान था, अब इन मज़कूरा आयतों में एक और उसूली बात क़ाबिले तवज्जोह है कि 'मिल्लते इब्राहीम' कहिये या 'इस्लाम' यह पूरी क़ौम बल्कि सारी दुनिया के लिये हिदायत नामा है। फिर इसमें हज़रत इब्राहीम और हज़रत याक़ूब अ़लैहिमस्सलाम की औलाद की क्या ख़ुसूसियत है, कि उक्त आयतों में उनको ख़ास ख़िताब फ़रमाया गया, और अल्लाह तआ़ला के इन दोनों चुनिन्दा पैग़म्बरों ने अपनी औलाद को बतौर वसीयत ख़ास इसकी हिदायत फ़रमाई।

इससे एक तो यह मालूम हुआ कि औलाद की मुहब्बत और उनकी भलाई की फ़िक्र रिसालत व नुबुव्वत के मक़ाम बल्कि ख़ुल्लत (अल्लाह की दोस्ती) के मक़ाम के भी मनाफ़ी (ख़िलाफ़) नहीं, अल्लाह तआ़ला का वह ख़लील (दोस्त) जो एक वक़्त अपने रब का इशारा पाकर अपने चहीते बेटे को ज़िबह करने के लिये कमर बाँधे हुए नज़र आता है वही दूसरे वक़्त अपनी औलाद की दीनी और दुनियावी राहत और भलाई के लिये अपने रब से दुआयें भी करता है। दुनिया से रुख़्सत होने के वक़्त अपनी औलाद को वह चीज़ देकर जाना चाहता है जो उसकी नज़र में सबसे बड़ी नेमत है यानी 'इस्लाम'। बयान हुई आयतः

وَوَصّٰى بِهَآ اِبْرٰهٖمُ بَنِيْهِ وَيَعْقُوْبُ

(आयत 132) का यही मतलब है, और आयतः

اِذْ حَضَرَ يَعْقُوْبَ الْمَوْتُ اِذْ قَالَ لِبَنِيْهِ مَا تَعْبُدُوْنَ مِنْ ۢ بَعْدِيْ

(आयत 133) का यही हासिल है। फ़र्क़ इतना है कि आ़म इनसानों की नज़रों में नेमत व दौलत दुनिया की फ़ानी और ज़लील चीज़ें हैं, उनकी नज़र और हौसला बुलन्द है उनके नज़दीक असली दौलत ईमान और नेक अ़मल या इस्लाम है।

जिस तरह आ़म इनसान अपनी मौत के वक़्त यह चाहते हैं कि जो बड़ी से बड़ी दौलत उनके पास है वह औलाद को दे जायें। एक सरमायेदार ताजिर की आजकल यह इच्छा होती है कि मेरी औलाद मिलों और फ़ैक्ट्रियों की मालिक हो, उनको इम्पोर्ट और एक्सपोर्ट (आयात व निर्यात) के बड़े-बड़े लाइसेंस मिलें, लाखों और करोड़ों का बैंक बेलैंस हो। या एक सर्विस वाला इनसान यह चाहता है कि मेरी औलाद को ऊँचे ओ़हदे और बड़ी तन्ख़्वाहें मिलें। या एक उद्योगपति आदमी की यह इच्छा होती है कि उसकी औलाद उसके उद्योग में कमाल हासिल करे, उसको उसके अपनी उम्र भर के गुर बतला दे। इसी तरह अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और उनके पैरोकार औलिया-अल्लाह की

सबसे बड़ी इच्छा यह होती है कि जिस चीज़ को वे असली और हमेशा रहने वाली दौलत समझते हैं वह उनकी औलाद को पूरी-पूरी मिल जाये। उसके लिये दुआयें करते हैं और कोशिश भी, आख़िर वक़्त में वसीयत उसी की करते हैं जैसा कि उक्त आयतों से पूरी तरह स्पष्ट है।

औलाद के लिये कोई दौलत दीन व अख़्लाक़ सिखाने के बराबर नहीं

अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के इस ख़ास अन्दाज़ और तरीक़े में आ़म इनसानों के लिये भी यह हिदायत है कि वे जिस तरह उनकी दुनियावी परवरिश और उनके दुनियावी आराम व राहत का इन्तिज़ाम करते हैं उसी तरह बल्कि उससे ज़्यादा उन पर लाज़िम है कि औलाद की वैचारिक, अ़मली और अख़्लाक़ी तरबियत करें, बुरे रास्तों और बुरे आमाल व अख़्लाक़ से उनको बचाने में भरपूर कोशिश करें, इसलिये कि औलाद की सच्ची मुहब्बत और असली ख़ैरख़्वाही यही है। यह कोई अ़क़्ल की बात नहीं कि एक इनसान अपने बच्चे को धूप की गर्मी से बचाने के लिये तो सारी ताक़त ख़र्च करे और हमेशा की आग और अ़ज़ाब से बचाने के लिये कोई ध्यान न दे। उसके बदन से फाँस निकालने में तो सारे साधन और असबाब इस्तेमाल करे और बन्दूक़ की गोली का निशाना बनने से उसको न बचाये।

अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के इस तर्ज़े अ़मल से एक उसूली बात यह भी मालूम हुई कि वालिदैन (माँ-बाप) का फ़र्ज़ और औलाद का हक़ है कि सबसे पहले उनकी सलाह व फ़लाह (बेहतरी व कामयाबी) की फ़िक्र की जाये, उनके बाद दूसरों की तरफ़ तवज्जोह दी जाये। जिसमें दो हिक्मतें हैं:

अव्वल यह कि तबई और जिस्मानी ताल्लुक़ की बिना पर वे नसीहत का असर ज़्यादा जल्द और आसानी से क़ुबूल कर सकेंगे, और फिर वे उनके उभारने व प्रेरणा और इस्लाही कोशिश में उनके सहयोगी बनकर हक़ के प्रचार व प्रसार में उनके मददगार होंगे।

दूसरे हक़ के प्रसार का इससे ज़्यादा आसान और मुफ़ीद रास्ता कोई नहीं कि हर घर का ज़िम्मेदार आदमी अपने अहल व अ़याल (घर वालों और बाल-बच्चों) को हक़ बात सिखाने और उस पर अ़मल कराने की कोशिश में दिल व जान से लग जाये कि इस तरह तब्लीग़ व तालीम और इस्लाह व तरबियत का दायरा-ए-अ़मल सिमट कर सिर्फ़ घरों के ज़िम्मेदारों तक आ जाता है, उनको सिखलाना पूरी क़ौम को सिखाने के बराबर हो जाता है, क़ुरआने करीम ने इसी व्यवस्था पूर्ण उसूल को सामने रखते हुए इरशाद फ़रमाया है:

يَآيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا قُوْٓا اَنْفُسَكُمْ وَاَهْلِيْكُمْ نَارًا. (٦:٦٦)

"ऐ ईमान वालो! बचाओ अपने आपको और अपने अहल व अ़याल को बड़ी आग से।"

और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो सारी दुनिया के रसूल हैं, और जिनकी हिदायत क़ियामत तक आने वाली नस्लों के लिये आ़म है, आपको भी सबसे पहले इसका हुक्म दिया गयाः

وَاَنْذِرْ عَشِيْرَتَكَ الْاَقْرَبِيْنَ ٥ (٢٦:٢١٤)

कि "अपने क़रीबी रिश्तेदारों को अल्लाह के अ़ज़ाब से डराईये।"

और इरशाद हुआः

وَأْمُرْ أَهْلَكَ بِالصَّلٰوةِ وَاصْطَبِرْ عَلَيْهَا. (۱۳۲:۲۰)

"यानी अपने अहल व अ़याल को नमाज़ का हुक्म कीजिये और ख़ुद भी उसके पाबन्द रहिये।"

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हमेशा इस पर अ़मल फ़रमाया।

एक तीसरी हिक्मत यह भी है कि जब तक किसी शख़्स के अहल व अ़याल (घर वाले और बाल-बच्चे) और क़रीबी ख़ानदान वाले उसके नज़रियात और अ़मली प्रोग्राम में उसके साथी और हम-रंग नहीं होते तो उसकी तालीम व तब्लीग़ दूसरों पर उतनी असरदार नहीं होती। यही वजह है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तब्लीग़ के जवाब में शुरू इस्लाम के वक़्त आम लोगों का यह जवाब होता था कि पहले अपने ख़ानदान क़ुरैश को तो आप दुरुस्त (ठीक) कर लें, फिर हमारी ख़बर लें। और जब ख़ानदान में इस्लाम फैल गया और फ़त्हे-मक्का के वक़्त उसकी तकमील हुई तो इसका नतीजा क़ुरआन के अलफ़ाज़ में यह ज़ाहिर हुआ किः

يَدْخُلُوْنَ فِيْ دِيْنِ اللّٰهِ أَفْوَاجًا ○ (۱۱۰:۲)

"यानी लोग अल्लाह के दीन में फ़ौज दर फ़ौज होकर (बड़ी संख्या में) दाख़िल होंगे।"

आजकल मुसलमानों में बेइल्मी और बेदीनी फैलने की बहुत बड़ी वजह यह है कि माँ-बाप अगर ख़ुद दीन से वाक़िफ़ और दीनदार भी हैं तो इसकी फ़िक्र नहीं करते कि हमारी औलाद भी दीनदार होकर हमेशा की राहत की मुस्तहिक़ हो। आ़म तौर पर हमारी नज़रें सिर्फ़ औलाद की दुनियावी और चन्द दिन की राहत पर रहती हैं, इसी के लिये इन्तिज़ामात करते रहते हैं, हमेशा बाक़ी रहने वाली दौलत की तरफ़ तवज्जोह नहीं देते। अल्लाह तआ़ला हम सब को तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमायें कि आख़िरत की फ़िक्र में लग जायें और अपने लिये और अपनी औलाद के लिये सबसे बड़ा सरमाया ईमान और नेक अ़मल को समझकर उसकी कोशिश करें।

दादा की मीरास के बारे में मसला

इस आयत में हज़रत याक़ूब अ़लैहिस्सलाम की औलाद की तरफ़ से जो जवाब नक़ल किया गया है उसमेंः

إِلٰهَ اٰبَآءِكَ إِبْرٰهٖمَ وَإِسْمٰعِيْلَ وَإِسْحٰقَ

फ़रमाकर इस तरफ़ इशारा कर दिया गया है कि दादा भी बाप ही कहलाता है और बाप ही के हुक्म में है। इसलिये हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इस आयत से दलील पकड़ते हुए फ़रमाया कि मीरास में दादा का भी वही हुक्म है जो बाप का है।

बाप-दादा के आमाल की जज़ा व सज़ा औलाद पर नहीं होगी

'लहा मा क-सबत्...' इस आयत से मालूम हुआ कि बाप-दादा के नेक आमाल औलाद के लिये काफ़ी नहीं होंगे, जब तक वे ख़ुद अपने आमाल को दुरुस्त न करें। इसी तरह बाप-दादा के बुरे

आमाल का अ़ज़ाब भी औलाद पर न पड़ेगा जब तक कि ये नेक आमाल के पाबन्द हों। इससे यह भी साबित हुआ कि मुश्रिकों की औलाद जो बालिग़ होने से पहले मर जाये उनको अपने माँ बाप के कुफ़्र व शिर्क की वजह से अ़ज़ाब नहीं होगा, और इससे यहूदियों के इस अ़क़ीदे की भी तरदीद हो गई कि हम जो चाहें अ़मल करते रहें हमारी मग़फ़िरत तो हमारे बाप-दादा (पुर्खों) के आमाल से हो जायेगी। इसी तरह आजकल के कुछ सैयद ख़ानदान के लोग इस ख़्याल में रहते हैं कि हम रसूले पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की औलाद हैं हम जो चाहें गुनाह करते रहें हमारी मग़फ़िरत ही होगी। क़ुरआने करीम ने इस मज़मून को बार-बार विभिन्न उनवानात से बयान फ़रमाया है:

وَلَا تَكْسِبُ كُلُّ نَفْسٍ اِلَّا عَلَيْهَا

"हर एक नफ़्स जो अ़मल करता है उसकी ज़िम्मेदारी उसी पर है।"

और:

وَلَا تَزِرُ وَازِرَةٌ وِّزْرَ اُخْرٰى (٦:١٦٤)

"किसी का बोझ क़ियामत के रोज़ कोई दूसरा नहीं उठा सकेगा।"

वग़ैरह। और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया:

"ऐ हाशिम की औलाद! ऐसा न हो कि क़ियामत के दिन और लोग तो अपने-अपने नेक आमाल लेकर आयें और तुम नेक आमाल से ग़फ़लत बरतो और सिर्फ़ मेरे नसब का भरोसा लेकर आओ और मैं उस दिन तुम से यह कहूँ कि मैं तुम्हें अल्लाह के अ़ज़ाब से नहीं बचा सकता।"

और एक दूसरी हदीस में इरशाद है:

مَنْ بَطَّأَ بِهٖ عَمَلُهٗ لَمْ يُسْرِعْ بِهٖ نَسَبُهٗ.

"यानी जिस शख़्स को उसके अ़मल ने पीछे डाला उसको उसका नसब आगे नहीं बढ़ा सकता।"

وَقَالُوْا كُوْنُوْا هُوْدًا اَوْ نَصٰرٰى تَهْتَدُوْا ۗ قُلْ بَلْ مِلَّةَ اِبْرٰهٖمَ حَنِيْفًا ۗ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۝ قُوْلُوْٓا اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَمَآ اُنْزِلَ اِلَيْنَا وَمَآ اُنْزِلَ اِلٰٓى اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ وَاِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ وَالْاَسْبَاطِ وَمَآ اُوْتِيَ مُوْسٰى وَعِيْسٰى وَمَآ اُوْتِيَ النَّبِيُّوْنَ مِنْ رَّبِّهِمْ ۚ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ ۖ وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ۝

व क़ालू कूनू हूदन् औ नसारा तह्तदू, क़ुल् बल् मिल्ल-त इब्राही-म हनीफ़न्, व मा का-न मिनल्-मुश्रिकीन (135) क़ूलू आमन्ना बिल्लाहि व मा उन्ज़ि-ल इलैना व	और कहते हैं कि हो जाओ यहूदी या ईसाई तो तुम पा लोगे सही रास्ता। कह दे कि हरगिज़ नहीं, बल्कि हमने इख़्तियार की राह इब्राहीम की जो एक ही तरफ़ का था, और न था शिर्क करने वालों में। (135) तुम कह दो कि हम ईमान लाये अल्लाह पर और जो

मा उन्ज़ि-ल इला इब्राही-म व इस्माअी-ल व इस्हा-क़ व यअ़क़ू-ब वल्-अस्बाति व मा ऊति-य मूसा व अ़ीसा व मा ऊतियन्नबिय्यू-न मिर्रब्बिहिम् ला नुफ़र्रिक़ु बै-न अ-हदिम्-मिन्हुम् व नह्नु लहू मुस्लिमून (136)	उतरा हम पर और जो उतरा इब्राहीम पर और इस्माईल पर और इस्हाक़ पर और याक़ूब पर और उसकी औलाद पर, और जो मिला मूसा को और ईसा को और जो मिला दूसरे पैग़म्बरों को उनके रब की तरफ़ से, हम फ़र्क़ नहीं करते उन सब में से एक में भी, और हम उसी परवर्दिगार के फ़रमाँबरदार हैं। (136)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और ये (यहूदी व ईसाई) लोग (मुसलमानों से) कहते हैं कि तुम लोग यहूदी हो जाओ (यह तो यहूद ने कहा था) या ईसाई हो जाओ (यह ईसाईयों ने कहा था), तुम भी (हक़) रास्ते पर पड़ जाओगे। (ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) आप (जवाब में) कह दीजिए कि हम तो (यहूदी या ईसाई कभी न होंगे, बल्कि) मिल्लते इब्राहीम (यानी इस्लाम) पर रहेंगे, जिसमें टेढ़ का नाम नहीं (बख़िलाफ़ यहूदियत व ईसाईयत के, जिसमें रद्दोबदल होने के साथ-साथ उसके मन्सूख़ हो चुकने के सबब अब उसमें टेढ़ापन आ गया), और इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम मुश्रिक भी न थे (मुसलमानो! यहूदियों व ईसाईयों के जवाब में जो तुमने संक्षेप में कहा है कि हम मिल्लते इब्राहीमी पर रहेंगे इस मिल्लत की तफ़सील बयान करने के लिये) मुसलमानो! कह दो कि (इस मिल्लत पर रहने का हासिल यह है कि) हम ईमान रखते हैं अल्लाह पर और उस (हुक्म) पर भी जो हमारे पास (रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़रिये) भेजा गया और उस (हुक्म) पर भी जो हज़रत इब्राहीम और (हज़रत) इस्माईल और (हज़रत) इस्हाक़ और (हज़रत) याक़ूब (अ़लैहिमुस्सलाम) और याक़ूब की औलाद (में जो नबी गुज़रे हैं उन) की तरफ़ (वही के ज़रिये) भेजा गया, और उस (हुक्म व मोजिज़े) पर भी जो (हज़रत) मूसा (अ़लैहिस्सलाम) और हज़रत ईसा (अ़लैहिस्सलाम) को दिया गया, और उस पर भी जो कुछ और नबियों (अ़लैहिमुस्सलाम) को दिया गया उनके परवर्दिगार की तरफ़ से, (सो हम उन सब पर ईमान रखते हैं और ईमान भी) इस कैफ़ियत से कि हम उन (हज़रात) में से किसी एक में भी (दूसरे से ईमान लाने में) तफ़रीक़ (फ़र्क़ और भेदभाव) नहीं करते (कि किसी पर ईमान रखें किसी पर न रखें), और हम तो अल्लाह तआ़ला के फ़रमाँबरदार हैं (उन्होंने हमको यह दीन बतलाया) हमने इख़्तियार कर लिया (पस यह हासिल है उस मिल्लत का जिस पर हम क़ायम हैं, जिसमें बुनियादी तौर पर किसी को इनकार व नाफ़रमानी की गुन्जाईश नहीं)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हज़रत याक़ूब अ़लैहिस्सलाम की औलाद को क़ुरआने करीम ने लफ़्ज़ 'अस्बात' से ताबीर

फ़रमाया है। यह जमा (बहुवचन) है 'सब्त' की, जिसके मायने क़बीले और जमाअ़त के हैं। उनको 'सब्त' कहने की वजह यह बताई गई है कि याक़ूब अ़लैहिस्सलाम के सुल्बी (अपने सगे) लड़के बारह थे, फिर हर लड़के की औलाद एक मुस्तकिल क़बीला बन गई और अल्लाह तआ़ला ने उनकी नस्ल में यह बरकत दी कि जब हज़रत यूसुफ़ अ़लैहिस्सलाम के पास मिस्र गये तो बारह भाई थे और जब फ़िरऔन के मुक़ाबले के बाद मूसा अ़लैहिस्सलाम के साथ उनकी औलाद बनी इस्राईल निकले तो हर भाई की औलाद हज़ारों अफ़राद पर मुश्तमिल क़बीले थे। और दूसरी बरकत याक़ूब अ़लैहिस्सलाम की औलाद में अल्लाह तआ़ला ने यह अ़ता फ़रमाई कि थोड़े से अम्बिया के अ़लावा बाक़ी सब अम्बिया व रसूल उनकी औलाद में पैदा हुए। बनी इस्राईल के अ़लावा बाक़ी अम्बिया हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम के बाद नूह, शीश, इदरीस, हूद, सालेह, लूत, इब्राहीम, इस्हाक़, याक़ूब, इस्माईल अ़लैहिमुस्सलाम और हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हैं।

فَإِنْ آمَنُوا بِمِثْلِ مَا آمَنتُم بِهِ فَقَدِ اهْتَدَوا ۖ وَّإِن تَوَلَّوْا فَإِنَّمَا هُمْ فِي شِقَاقٍ ۖ فَسَيَكْفِيكَهُمُ اللَّهُ ۚ
وَهُوَ السَّمِيعُ الْعَلِيمُ ۝ صِبْغَةَ اللَّهِ ۖ وَمَنْ أَحْسَنُ مِنَ اللَّهِ صِبْغَةً ۖ وَنَحْنُ لَهُ عَابِدُونَ ۝

फ़-इन् आमनू बिमिस्लि मा आमन्तुम् बिही फ़-क़दिह्तदौ व इन् तवल्लौ फ़-इन्नमा हुम् फ़ी शिक़ाक़िन् फ़-सयक्फ़ी-कहुमुल्लाहु व हुवस्समीअुल् अ़लीम (137) सिब्ग़तल्लाहि व मन् अह्सनु मिनल्लाहि सिब्ग़-तंव्-व नह्नु लहू आ़बिदून (138)	सो अगर वे भी ईमान लायें जिस तरह पर तुम ईमान लाये तो हिदायत पाई उन्होंने भी, और अगर फिर जायें तो फिर वही हैं ज़िद पर, सो अब काफ़ी है तेरी तरफ़ से उनको अल्लाह, और वही है सुनने वाला जानने वाला। (137) हमने क़ुबूल कर लिया रंग अल्लाह का, और किसका रंग बेहतर है अल्लाह के रंग से, और हम उसी की बन्दगी करते हैं। (138)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(यानी जब ऊपर इस्लाम के तरीक़े में दीने हक़ का सीमित होना साबित हो चुका) सो अगर वे (यहूदी व ईसाई) भी इसी तरीक़े से ईमान ले आएँ जिस तरीक़े से तुम (मुसलमान) ईमान लाए हो, तब तो वे भी (हक़) रास्ते पर लग जाएँगे, और अगर वे (इससे) मुँह मोड़ें तो (तुम उनके मुँह मोड़ने से कुछ ताज्जुब न करो क्योंकि) वे लोग तो (हमेशा से) मुख़ालफ़त पर कमर बाँधे हुए हैं ही (और अगर उनकी मुख़ालफ़त से कुछ अन्देशा हो) तो (समझ लीजिये कि) आप (सल्ल.) की तरफ़ से उनसे जल्द ही निपट लेंगे अल्लाह तआ़ला, और अल्लाह तआ़ला (तुम्हारी और उनकी बातें) सुनते हैं, (और

तुम्हारे और उनके बर्ताव) जानते हैं (तुम्हारे फ़िक्र व ग़म की कोई ज़रूरत नहीं)।

(ऐ मुसलमानो! कह दो कि हमने जो ऊपर तुम लोगों के जवाब में कहा है कि हम मिल्लते इब्राहीम पर रहेंगे, इस कलाम की हक़ीक़त यह है कि) हम (दीन की) उस हालत पर हैं जिसमें (हमको) अल्लाह तआ़ला ने रंग दिया है (और रंग की तरह हमारी रग-रग में भर दिया है), और (दूसरा) कौन है जिसके रंग देने की हालत अल्लाह तआ़ला (के रंग देने की हालत) से ज़्यादा अच्छी हो (जब और कोई दूसरा ऐसा नहीं तो हमने और किसी का दीन भी इख़्तियार नहीं किया), और (इसी लिए) हम उसी की गुलामी इख़्तियार किए हुए हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

ईमान की मुख़्तसर और जामे तफ़सीर

فَاِنْ اٰمَنُوْا بِمِثْلِ مَآ اٰمَنْتُمْ بِهٖ

'फ़इन् आमनू बिमिस्लि मा आमन्तुम बिही...' सूरः ब-क़रह के शुरू से यहाँ तक ईमान की हक़ीक़त कहीं संक्षिप्त रूप से और कही विस्तार से बयान की गई है। इस आयत में एक ऐसे मुख़्तसर अन्दाज़ से बात बयान हुई है जो बड़ी तफ़सील और व्याख्याओं पर भारी है। क्योंकि 'आमन्तुम' के मुख़ातब रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम हैं। इस आयत में उनके ईमान को एक मिसाली नमूना क़रार दिया गया है कि अल्लाह तआ़ला के नज़दीक मक़बूल व मोतबर सिर्फ़ उस तरह का ईमान है जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इख़्तियार फ़रमाया, जो एतिक़ाद उससे बाल बराबर भी अलग और हटा हुआ हो वह अल्लाह के नज़दीक मक़बूल नहीं।

ख़ुलासा और व्याख्या इसकी यह है कि जितनी चीज़ों पर ये हज़रात ईमान लाये उनमें कोई कमी ज़्यादती न हो, और जिस तरह इख़्लास के साथ ईमान लाये उसमें कोई फ़र्क़ न आये कि वह निफ़ाक़ में दाख़िल है। अल्लाह की ज़ात व सिफ़ात, फ़रिश्ते और अम्बिया व रसूल, आसमानी किताबें और उनकी तालीमात के मुताल्लिक़ जो ईमान व एतिक़ाद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इख़्तियार किया वही अल्लाह के नज़दीक मक़बूल है, उसके ख़िलाफ़ इसमें कोई तावील (मतलब बयान) करना या कोई दूसरे मायने मुराद लेना अल्लाह के नज़दीक मरदूद है। फ़रिश्तों और अम्बिया व रसूलों के लिये जो मक़ाम आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के क़ौल व अ़मल से वाज़ेह हुआ उससे उनको घटाना या बढ़ाना ईमान के मनाफ़ी (ख़िलाफ़) है।

इस ख़ुलासे से उन तमाम बातिल फ़िर्क़ों के ईमान का ख़लल (सही न होना) वाज़ेह हो गया जो ईमान के दावेदार हैं मगर ईमान की हक़ीक़त से नावाक़िफ़ और ख़ाली हैं। क्योंकि ज़बानी दावा ईमान का तो बुत-परस्त मुश्रिक लोग भी करते थे और यहूदी व ईसाई भी और हर ज़माने में गुमराह व बेदीन भी, मगर चूँकि उनका ईमान अल्लाह पर, रसूलों पर, फ़रिश्तों पर और क़ियामत के दिन वग़ैरह पर इस तरह का नहीं था जैसा रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का है इसलिये वह अल्लाह के नज़दीक मरदूद व ना-मक़बूल (अस्वीकारीय) हुआ।

फ़रिश्ते और रसूल की अज़मत व मुहब्बत में एतिदाल मतलूब है, हद से बढ़ना गुमराही है

मुश्रिकों में से कुछ ने तो फ़रिश्तों के वजूद ही का इनकार किया, कुछ ने उनको ख़ुदा की बेटियाँ बना दिया, दोनों की तरदीद 'बिमिस्लि मा आमन्तुम' से हो गई। यहूदियों व ईसाईयों के कुछ गिरोहों ने अपने पैग़म्बरों की मुख़ालफ़त और नाफ़रमानी यहाँ तक की कि कुछ को क़त्ल भी कर दिया, और कुछ गिरोहों ने उनकी अ़ज़मत व इ़ज़्ज़त को इतना बढ़ाया कि ख़ुदा या ख़ुदा का बेटा या ख़ुदा के जैसा बना दिया, ये दोनों क़िस्म की कमी-ज़्यादती गुमराही क़रार दी गई।

इस्लामी शरीअ़त में रसूल की अ़ज़मत (सम्मान) व मुहब्बत फ़र्ज़ है, इसके बग़ैर ईमान ही नहीं होता, मगर रसूल को किसी सिफ़त जैसे इल्म या क़ुदरत वग़ैरह में अल्लाह तआ़ला के बराबर कर देना गुमराही और शिर्क है। क़ुरआने करीम ने शिर्क की हक़ीक़त यही बयान फ़रमाई है कि ग़ैरुल्लाह को किसी सिफ़त में अल्लाह के बराबर करें:

اِذْ نُسَوِّيْكُمْ بِرَبِّ الْعٰلَمِيْنَ○ (٢٦:٩٨)

(ऐ झूठे माबूदों जब हम तुमको रब्बुल-आ़लमीन के बराबर करते थे। यानी यह हमारी बहुत बड़ी ग़लती थी।) का यही मफ़्हूम है।

आज भी जो लोग रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को आ़लिमुल-ग़ैब और ख़ुदा की तरह हर जगह मौजूद और हाज़िर व नाज़िर कहते हैं वे यह समझते हैं कि हम आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की अ़ज़मत व इ़ज़्ज़त का हक़ अदा कर रहे हैं, हालाँकि वे ख़ुद आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म की और उम्र भर की कोशिशों की खुली मुख़ालफ़त कर रहे हैं। इस आयत में उनके लिये भी सबक़ है कि आपकी अ़ज़मत व मुहब्बत अल्लाह के नज़दीक ऐसी ही मतलूब है जैसी सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के दिल में आपकी थी, उससे कमी भी जुर्म है और उसमें ज़्यादती भी हद से बढ़ना और गुमराही है।

नबी व रसूल की ख़ुद गढ़ी हुई क़िस्में ज़िल्ली, बरूज़ी, लुग़वी सब गुमराही है

इसी तरह जिन फ़िर्क़ों ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ख़त्मे नुबुव्वत (पैग़म्बरी के सिलसिले के ख़त्म और पूरा होने) का इनकार करके नये नबी के लिये दरवाज़ा खोलना चाहा और क़ुरआने करीम की स्पष्ट वज़ाहत 'ख़ातिमुल-अम्बिया' को अपने मक़सद में बाधा पाया तो उन्होंने रसूल व नबी की बहुत सी क़िस्में अपनी तरफ़ से गढ़ लीं जिनका नाम नबी ज़िल्ली, नबी बरूज़ी वग़ैरह रख दिया, और उनके लिये गुंजाईश निकालने की कोशिश की। ऊपर बयान हुई आयत ने उनके फ़रेब व गुमराही को भी स्पष्ट कर दिया, क्योंकि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम के रसूलों पर ईमान लाने में किसी ज़िल्ली व बरूज़ी का कहीं नाम व निशान नहीं, यह

खुली हुई गुमराही और बेदीनी है।

'आख़िरत पर ईमान' के बारे में अपनी तरफ़ से गढ़े हुए ग़लत मायने मरदूद हैं

इसी तरह वे लोग जिनके दिल व दिमाग़ सिर्फ़ माद्दे और माद्दियात (ज़ाहिरी चीज़ों और भौतिकवाद) में खोये हुए हैं, आलमे ग़ैब और आलमे-आख़िरत की चीज़ें जब उन्हें मुहाल व दूर की बातें नज़र आती हैं तो तरह-तरह की तावीलों (बेबुनियाद मतलब व मायने बयान करने) में पड़ जाते हैं और अपने नज़दीक इसको दीन की ख़िदमत समझते हैं कि हमने इसको समझ से क़रीब कर दिया, मगर चूँकि वे तावीलें (मतलब व मायने) 'बिमिस्लि मा आमन्तुम.....' के ख़िलाफ़ हैं इसलिये सब मरदूद व बातिल (अस्वीकारीय और ग़लत) हैं। आख़िरत के तमाम हालात व वाक़िआत जिस तरह क़ुरआन व सुन्नत में बयान हुए हैं उन पर बग़ैर किसी झिझक और तावील के ईमान लाना ही दर हक़ीक़त ईमान है। जिस्मों के दोबारा खड़ा किये जाने के बजाय रूहानी तौर पर हश्र होना और जिस्मानी अ़ज़ाब व सवाब के बजाय रूहानी तौर पर अ़ज़ाब व सवाब होना, इसी तरह आमाल तौले जाने के बारे में तरह-तरह के मतलब बयान करना, यह सब अल्लाह के नज़दीक मरदूद व बातिल और गुमराही है।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी हक़ तआ़ला ने ले ली

'फ़-सयक्फ़ीकहुमुल्लाहु......' में स्पष्ट फ़रमा दिया कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम अपने मुख़ालिफ़ों और विरोधियों की ज़्यादा फ़िक्र न फ़रमायें, हम ख़ुद उनसे निपट लेंगे। और यह ऐसा ही है जैसा कि एक दूसरी आयत में इससे ज़्यादा स्पष्टता के साथ फ़रमा दिया:

وَاللّٰهُ يَعْصِمُكَ مِنَ النَّاسِ. (٥:٦٧)

कि आप मुख़ालिफ़ों की फ़िक्र न करें अल्लाह तआ़ला उनसे आपकी हिफ़ाज़त ख़ुद करेंगे।

दीन व ईमान एक गहरा रंग है जो इनसान के चेहरे और हालत से नज़र आना चाहिये

'सिब्ग़तल्लाहि' (अल्लाह का रंग) इससे पहली आयत में दीने इस्लाम को हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की तरफ़ मन्सूब किया गया था 'मिल्ल-त इब्राही-म हनीफ़ा' इस जगह इसको डायरेक्ट अल्लाह तआ़ला की तरफ़ मन्सूब करके बतला दिया कि दीन वास्तव में अल्लाह तआ़ला का है, किसी पैग़म्बर की तरफ़ उसकी निस्बत मजाज़ी तौर पर (दूसरे मायनों में) कर दी जाती है। और इस जगह मिल्लत को "सिब्ग़त" के लफ़्ज़ से ताबीर करके दो बातों की तरफ़ इशारा हो गया- पहली तो

ईसाईयों की एक रस्म की तरदीद हो गई, उनकी आदत यह थी कि जो बच्चा पैदा हो उसको सातवें रोज़ एक रंगीन पानी में नहलाते थे और बजाय ख़तना के उसी नहलाने को बच्चे की तहारत (पाकी) और ईसाई दीन का पुख़्ता रंग समझते थे। इस आयत ने बतलाया कि यह पानी का रंग तो धुलकर ख़त्म हो जाता है उसका बाद में कोई असर नहीं रहता, तथा ख़तना न करने की वजह से जो गन्दगी और नापाकी जिस्म में रहती है उससे भी यह रंग निजात नहीं देता, असल रंग दीन व ईमान का रंग है जो ज़ाहिरी और बातिनी पाकी की ज़मानत (गारंटी) भी है और बाक़ी रहने वाला भी।

दूसरे 'दीन व ईमान' को 'रंग' फ़रमाकर इसकी तरफ़ भी इशारा हो गया कि जिस तरह रंग आँखों से दिखाई देता है इसी तरह मोमिन के ईमान की निशानियाँ उसके चेहरे, ज़ाहिरी हालत और तमाम आमाल व अख़्लाक़, गतिविधियों, मामलात और आदतों में ज़ाहिर होनी चाहियें। वल्लाहु आलम

قُلْ أَتُحَاجُّونَنَا فِي اللَّهِ وَهُوَ رَبُّنَا وَرَبُّكُمْ وَلَنَا أَعْمَالُنَا وَلَكُمْ أَعْمَالُكُمْ وَنَحْنُ لَهُ مُخْلِصُونَ ۝ أَمْ تَقُولُونَ إِنَّ إِبْرَاهِيمَ وَإِسْمَاعِيلَ وَإِسْحَاقَ وَيَعْقُوبَ وَالْأَسْبَاطَ كَانُوا هُودًا أَوْ نَصَارَىٰ ۗ قُلْ أَأَنْتُمْ أَعْلَمُ أَمِ اللَّهُ ۗ وَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّنْ كَتَمَ شَهَادَةً عِنْدَهُ مِنَ اللَّهِ ۗ وَمَا اللَّهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ ۝ تِلْكَ أُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ ۖ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَلَكُمْ مَا كَسَبْتُمْ ۖ وَلَا تُسْأَلُونَ عَمَّا كَانُوا يَعْمَلُونَ ۝

क़ुल् अतुहाज्जू-नना फ़िल्लाहि व हु-व रब्बुना व रब्बुकुम् व लना अअ्मालुना व लकुम् अअ्मालुकुम् व नह्नु लहू मुख़्लिसून (139) अम् तक़ूलू-न इन्-न इब्राही-म व इस्माओ़-ल व इस्हा-क़ व यअ्क़ू-ब वल्-अस्बा-त कानू हूदन् औ नसारा, क़ुल् अ-अन्तुम् अअ्लमु अमिल्लाहु, व मन् अज़्लमु मिम्मन् क-त-म शहा-दतन् अिन्दहू मिनल्लाहि, व मल्लाहु बिग़ाफ़िलिन् अ़म्मा तअ्मलून (140) तिल्-क उम्मतुन् क़द् ख़लत् लहा मा क-सबत् व लकुम् मा

कह दे क्या तुम झगड़ा करते हो हमसे अल्लाह के बारे में हालाँकि वही है रब हमारा और रब तुम्हारा, और हमारे लिए हैं अमल हमारे और तुम्हारे लिये हैं अमल तुम्हारे, और हम तो ख़ालिस उसी के हैं। (139) क्या तुम कहते हो कि इब्राहीम और इस्माईल और इस्हाक़ और याक़ूब और उसकी औलाद तो यहूदी थे या ईसाई? कह दे कि तुमको ज़्यादा ख़बर है या अल्लाह को? और उससे बड़ा ज़ालिम कौन जिसने छुपाई वो गवाही जो साबित हो चुकी उस को अल्लाह की तरफ़ से, और अल्लाह बेख़बर नहीं तुम्हारे कामों से। (140) वह एक जमाअ़त थी जो गुज़र चुकी, उनके

क-सब्तुम् व ला तुस्अलू-न अ़म्मा कानू यअ़्मलून (141) ❁	वास्ते है जो उन्होंने किया और तुम्हारे वास्ते है जो तुमने किया, और तुमसे कुछ पूछ नहीं उनके कामों की। (141) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

आप (इन यहूदियों व ईसाईयों से) फ़रमा दीजिए कि क्या तुम लोग (अब भी) हमसे हुज्जत किए जाते हो अल्लाह तआ़ला के बारे में (कि वह हमको क़ियामत में न बख़्शेंगे), हालाँकि वह हमारा और तुम्हारा (सब का) रब (और मालिक) है, (सो रब होने में तो तुम्हारे साथ कोई ख़ुसूसियत नहीं जैसा कि तुम्हारे कुछ दावों से तुम्हारे साथ उसके ख़ास होने का मतलब निकलता है, जैसे तुम कहते हो कि हम अल्लाह की औलाद हैं) और हमको हमारा किया हुआ मिलेगा और तुमको तुम्हारा किया हुआ मिलेगा (यहाँ तक तो तुम्हारे नज़दीक भी मुसल्लम है), और (अल्लाह तआ़ला का शुक्र है कि) हमने सिर्फ़ हक़ तआ़ला (की रज़ा) के लिए अपने (दीन) को (शिर्क वग़ैरह से) ख़ालिस (बचा) कर रखा है (बख़िलाफ़ तुम्हारे मौजूदा तरीक़े के कि अलावा मन्सूख़ होने के ख़ुद शिर्क से भी मिश्रित है जैसा कि उनके क़ौल और बातों से ज़ाहिर है कि हज़रत उज़ैर और हज़रत ईसा को अल्लाह का बेटा कहते हैं, और इसमें हमको हक़ तआ़ला ने तरजीह दी है फिर हमारी निजात न होने के क्या मायने) या (अब भी अपने हक़ पर होने के साबित करने को यही) कहे जाते हो कि इब्राहीम और इस्माईल और इस्हाक़ और याक़ूब और याक़ूब की औलाद (में जो नबी गुज़रे हैं, ये सब हज़रात) यहूदी या ईसाई थे (और इससे अपना हक़ पर होना साबित करते हो कि हम भी उनके रास्ते पर हैं, सो इसके जवाब में ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम! एक इतनी मुख़्तसर सी बात उनसे) कह दीजिए कि (अच्छा यह बतलाओ कि) तुम ज़्यादा वाक़िफ़ हो या हक़ तआ़ला? (और ज़ाहिर है कि ख़ुदा ही ज़्यादा वाक़िफ़ है, और वह इन अम्बिया का मिल्लते इस्लाम (दीन इस्लाम) पर होना साबित कर चुका है जैसा कि अभी ऊपर गुज़रा), और (जानते हैं ये काफ़िर भी मगर छुपाते हैं सो) ऐसे शख़्स से ज़्यादा ज़ालिम कौन होगा जो ऐसी गवाही को छुपाए जो उसके पास अल्लाह की जानिब से पहुँची हो, और (ऐ अहले किताब!) अल्लाह तुम्हारे किए हुए से बेख़बर नहीं हैं (पस जब ये हज़रात यहूदी व ईसाई न थे सो तुम दीन के तरीक़े में उनके मुवाफ़िक़ कब हुए। फिर तुम्हारा हक़ पर होना साबित न हुआ)

यह (उन बुज़ुर्गों की) एक जमाअ़त थी जो (अपने ज़माने में) गुज़र गई, उनके काम उनका किया हुआ आएगा और तुम्हारे काम तुम्हारा किया हुआ आएगा, और तुमसे उनके किए हुए की पूछ भी तो न होगी (और जब ज़िक्र-तज़किरा तक भी न होगा तो उससे तुमको नफ़ा पहुँचने का तो सवाल ही नहीं)।

मआरिफ़ व मसाईल

इख़्लास की हक़ीक़त

"व नह्नु लहू मुख़्लिसून" इसमें उम्मते मुस्लिमा की एक ख़ुसूसियत (विशेषता) यह बतलाई है कि वह अल्लाह के लिये मुख़्लिस है। **इख़्लास** के मायने हज़रत सईद बिन जुबैर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने यह बतलाये हैं कि इनसान अपने दीन में मुख़्लिस हो कि अल्लाह के सिवा किसी को शरीक न ठहराये और अपने अ़मल को ख़ालिस अल्लाह के लिये करे, लोगों को दिखलाने या उनकी तारीफ़ व प्रशंसा की तरफ़ नज़र न हो।

कुछ बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि **इख़्लास** एक ऐसा अ़मल है जिसको न तो फ़रिश्ते पहचान सकते हैं और न शैतान, वह सिर्फ़ बन्दे और अल्लाह के बीच एक राज़ है।

दूसरा पारा स-यक़ूलु

سَيَقُولُ السُّفَهَآءُ مِنَ النَّاسِ مَا وَلّٰهُمْ عَنْ قِبْلَتِهِمُ الَّتِىْ كَانُوْا عَلَيْهَا ۚ قُلْ لِّلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَ الْمَغْرِبُ ۚ يَهْدِىْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ۞

स-यक़ूलुस्सु-फ़हा-उ मिनन्नासि मा वल्लाहुम् अ़न् क़िब्लतिहिमुल्लती कानू अ़लैहा, क़ुल् लिल्लाहिल्-मश्रिक़ु वल्मग़्रिबु, यह्दी मंय्यशा-उ इला सिरातिम्-मुस्तक़ीम (142)	अब कहेंगे बेवक़ूफ़ लोग कि किस चीज़ ने फेर दिया मुसलमानों को उनके क़िब्ले से जिस पर वे थे, तू कह- अल्लाह ही का है मश्रिक़ और मग़रिब (पूरब और पश्चिम), चलाये जिसको चाहे सीधी राह। (142)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(जब काबा शरीफ़ नमाज़ के लिये क़िब्ला मुक़र्रर होकर यहूद का क़िब्ला नमाज़ के लिये क़िब्ला न रहा तो नागवारी की वजह से) अब तो (ये) बेवक़ूफ़ लोग ज़रूर कहेंगे ही कि इन (मुसलमानों) को इनके (पहली दिशा वाले) क़िब्ले से (जो कि बैतुल-मुक़द्दस था) जिस तरफ़ पहले मुतवज्जह हुआ करते थे, किस बात ने (दूसरी दिशा की तरफ़) बदल दिया? आप (जवाब में) फ़रमा दीजिये कि सब (दिशायें चाहे) पूरब (हो) और (चाहे) पश्चिम (हो) अल्लाह ही की मिल्क हैं (ख़ुदा तआ़ला को मालिकाना इख़्तियार है जिस दिशा को चाहें मुक़र्रर फ़रमा दें, किसी को वजह और कारण पूछने का हक़ व इख़्तियार नहीं है। और शरई अहकाम के बारे में सीधा रास्ता यही एतिक़ाद है, लेकिन बाज़ों को इस राह के इख़्तियार करने की तौफ़ीक़ नहीं होती ख़्वाह-म-ख़्वाह इल्लतें (सबब और कारण) ढूँढते फिरा करते हैं अलबत्ता) जिसको ख़ुदा ही (अपने फ़ज़्ल से) चाहें (यह) सीधा रास्ता बतला देते हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत में क़िब्ले के बदल जाने के बारे में मुख़ालिफ़ों का एतिराज़ नक़ल करके उसका जवाब दिया गया है। इस एतिराज़ और जवाब से पहले क़िब्ले की हक़ीक़त और उसकी मुख़्तसर तारीख़ (इतिहास) सुन लीजिये, जिससे सवाल व जवाब का समझना आसान हो जाये।

क़िब्ले के लफ़्ज़ी मायने हैं तवज्जोह की दिशा, यानी जिस तरफ़ रुख़ किया जाये। यह ज़ाहिर है कि मोमिन का रुख़ हर इबादत में सिर्फ़ एक अल्लाह वह्दहू ला शरी-क लहू की तरफ़ होता है, और उसकी पाक ज़ात पूरब व पश्चिम और उत्तर व दक्षिण की क़ैदों और दिशाओं से ऊपर है, वह किसी ख़ास दिशा में नहीं। इसका असर तबई तौर पर यह होना था कि कोई इबादत करने वाला किसी

ख़ास रुख़ का पाबन्द न होता, जिसका जिस तरफ़ जी चाहता नमाज़ में अपना रुख़ उस तरफ़ कर लेता और एक ही आदमी किसी वक़्त एक तरफ़ और किसी वक़्त कई तरफ़ रुख़ करता तो वह भी ग़लत न होता। लेकिन एक दूसरी हिक्मते इलाही इसका सबब हुई कि तमाम इबादत गुज़ारों का रुख़ एक ही तरफ़ होना चाहिये और वह यह है कि इबादत की विभिन्न क़िस्में हैं, कुछ व्यक्तिगत हैं कुछ सामूहिक हैं। अल्लाह का ज़िक्र और रोज़ा वग़ैरह व्यक्तिगत इबादत हैं, जिनको तन्हाई में और छुपाकर अदा किया जा सकता है, और नमाज़ और हज सामूहिक इबादतें हैं जिनको जमाअ़त के साथ इकट्ठे होकर ऐलान के साथ अदा किया जाता है। उनमें इबादत के साथ मुसलमानों को सामूहिक ज़िन्दगी के आदाब का बतलाना और सिखाना वग़ैरह भी मक़सद है, और यह भी बिल्कुल ज़ाहिर है कि सामूहिक व्यवस्था का सबसे बड़ा बुनियादी उसूल बहुत सारे अफ़राद की एकता और एक बिन्दू पर जमा होना है, यह वह्दत (एकता) जितनी ज़्यादा मज़बूत व ताक़तवर होगी उतनी ही सामूहिक व्यवस्था मज़बूत व स्थिर होगी। बिखराव और अलग-थलग होना सामूहिक व्यवस्था के लिये मार डालने वाला ज़हर है। फिर एकता का बिन्दू निर्धारित करने में हर दौर और हर ज़माने के लोगों की अलग-अलग राहें और रायें रही हैं, किसी क़ौम ने नस्ल और नसब को एकता का बिन्दू क़रार दिया किसी ने वतन और भूगोलिक विशेषता को, किसी ने रंग और भाषा को।

लेकिन अल्लाह के दीन और अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की शरीअ़त ने इन ग़ैर-इख़्तियारी चीज़ों को एकता का बिन्दू बनाने के क़ाबिल नहीं समझा और न वास्तव में ये चीज़ें ऐसी हैं जो तमाम इनसानी अफ़राद को किसी एक केन्द्र पर जमा कर सकें, बल्कि जितना ग़ौर किया जाये ये एकतायें दर हक़ीक़त इनसानी अफ़राद को बहुत सी कसरतों (अनेकताओं) में तक़सीम कर डालने और आपस में टकराव और विवादों व मतभेदों के असबाब हैं।

दीने इस्लाम ने जो वास्तव में तमाम अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का दीन है, एकता का असली नुक़्ता (बिन्दू और केन्द्र) फ़िक्र व ख़्याल और अ़क़ीदे की एकता को क़रार दिया, और करोड़ों ख़ुदाओं की पूजा में बंटी हुई दुनिया को एक ज़ाते हक़ जिसका कोई शरीक नहीं, की इबादत और इताअ़त की दावत दी, जिस पर पूरब व पश्चिम और गुज़रे हुए व आने वाले ज़माने के तमाम इनसानी अफ़राद जमा (इकट्ठे) हो सकते हैं। फिर इस वास्तविक, वैचारिक और नज़रियाती एकता को अ़मली सूरत और ताक़त देने के लिये कुछ ज़ाहिरी एकतायें भी साथ लगाई गईं, मगर इन ज़ाहिरी एकताओं में भी उसूल यह रखा गया कि वे अ़मली और इख़्तियारी हों ताकि तमाम इनसानी अफ़राद उनको इख़्तियार करके एक भाई-बन्दी के रिश्ते में जुड़ सकें। नसब, वतन, भाषा, रंग वग़ैरह इख़्तियारी चीज़ें नहीं, जो शख़्स एक ख़ानदान के अन्दर पैदा हो चुका है वह किसी तरह दूसरे ख़ानदान में पैदा नहीं हो सकता, जो पाकिस्तान में पैदा हो चुका वह बरतानिया या अफ़्रीक़ा में पैदा नहीं हो सकता, जो काला है वह अपने इख़्तियार से गोरा, और जो गोरा है वह अपने इख़्तियार से काला नहीं हो सकता।

अब अगर इन चीज़ों को एकता (एक बिन्दू पर जमा होने) का केन्द्र बनाया जाये तो इनसानियत का सैंकड़ों बल्कि हज़ारों टुकड़ों और गिरोहों में तक़सीम हो जाना लाज़िमी होगा, इसी लिये दीने इस्लाम ने इन चीज़ों से जिनसे सांस्कृतिक हित जुड़े हुए हैं उनका पूरा सम्मान रखते हुए उनको इनसानी एकता का केन्द्र नहीं बनने दिया कि यह एकतायें इनसानी अफ़राद को मुख़्तलिफ़ कसरतों

(विभिन्न अनेकताओं) में बाँटने वाली हैं, हाँ इख़्तियारी चीज़ों में इसकी पूरी रियायत रखी कि वैचारिक एकता के साथ अमली और ज़ाहिरी (दिखाई देने वाली) एकता भी क़ायम हो जाये। मगर इसमें भी इसका पूरा लिहाज़ रखा गया कि एकता का केन्द्र ऐसी चीज़ें बनाई जायें जिनका इख़्तियार करना हर मर्द व औरत, लिखे पढ़े और अनपढ़, शहरी और देहाती, अमीर व ग़रीब को बराबर तौर पर आसान हो। यही वजह है कि इस्लामी शरीअ़त ने तमाम दुनिया के लोगों को लिबास और रिहाईश, खाने और पीने के किसी एक तरीक़े का पाबन्द नहीं किया, कि हर जगह के मौसम और विभिन्न तबीयतें और उनकी ज़रूरतें अलग-अलग हैं, सब को एक ही तरह के लिबास या शिआ़र (यूनिफ़ॉर्म) का पाबन्द कर दिया जाये तो बहुत सी मुश्किलें पेश आयेंगी। फिर अगर यह यूनिफ़ॉर्म कम से कम तजवीज़ कर दिया जाये तो यह इनसानी एतिदाल पर ज़ुल्म होगा और अल्लाह तआ़ला के दिये हुए उम्दा लिबास और उम्दा कपड़ों की बेक़द्री होगी, और अगर इससे ज़्यादा किसी लिबास का पाबन्द किया जाये तो ग़रीब मुफ़्लिस लोगों को मुश्किलें पेश आयेंगी।

इसलिये इस्लामी शरीअ़त ने मुसलमानों का कोई शिआ़र (यूनिफ़ॉर्म) मुक़र्रर नहीं किया बल्कि मुख़्तलिफ़ क़ौमों में जो तरीक़े और लिबास की शक्लें प्रचलित थीं उन सब पर नज़र करके उनमें से जो सूरतें फ़ालतू ख़र्च, बड़ाई वग़ैरह या किसी ग़ैर-मुस्लिम क़ौम की क़ौमी नक़ल करने पर आधारित थीं सिर्फ़ उनको वर्जित (मना) क़रार देकर बाक़ी चीज़ों पर हर फ़र्द और हर क़ौम को आज़ाद और ख़ुद-मुख़्तार रखा। एकता का केन्द्र ऐसी चीज़ों को बनाया गया जो इख़्तियारी भी हों और आसान और सस्ती भी। इन चीज़ों में जैसे नमाज़ की जमाअ़त की सफ़-बन्दी, एक इमाम की नक़्ल व हरकत की मुकम्मल पाबन्दी, हज में लिबास और ठहरने में शरीक होना वग़ैरह हैं।

इसी तरह एक अहम चीज़ क़िब्ले की दिशा की एकता भी है कि अगरचे अल्लाह जल्ल शानुहू की पाक ज़ात हर दिशा और रुख़ से बालातर है, उसके लिये छह की छह दिशायें बराबर हैं, लेकिन नमाज़ में सामूहिक सूरत और एकता पैदा करने के लिये तमाम दुनिया के इनसानों का रुख़ किसी एक ही दिशा और क़िब्ले की तरफ़ होना एक बेहतरीन, आसान और बेक़ीमत एकता का ज़रिया है, जिस पर सारे पूरब व पश्चिम और उत्तर व दक्षिण के इनसान आसानी से जमा हो सकते हैं। अब वह एक दिशा कौनसी हो जिसकी तरफ़ सारी दुनिया का रुख़ फेरा जाये, इसका फ़ैसला अगर इनसानों पर छोड़ा जाये तो यही विवाद व झगड़े का एक सबसे बड़ा आधार बन जाता। इसलिये ज़रूरी था कि इसका निर्धारण ख़ुद हक़ तआ़ला शानुहू की तरफ़ से होता। हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम को दुनिया में उतारा गया तो फ़रिश्तों के ज़रिये बैतुल्लाह काबे की बुनियाद पहले ही रख दी गई थी, हज़रत आदम और आदम अ़लैहिस्सलाम की औलाद का सबसे पहला क़िब्ला यही बैतुल्लाह और ख़ाना-ए-काबा बनाया गया। जैसा कि क़ुरआन पाक में इरशाद है:

اِنَّ اَوَّلَ بَيْتٍ وُّضِعَ لِلنَّاسِ لَلَّذِىْ بِبَكَّةَ مُبٰرَكًا وَّهُدًى لِّلْعٰلَمِيْنَ ٥ (٣:٩٦)

"सबसे पहला घर जो लोगों के लिये बनाया गया वह घर है जो मक्का में है बरकत वाला, हिदायत वाला जहान वालों के लिये।"

हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम तक सब का क़िब्ला यही बैतुल्लाह था, तूफ़ाने नूह के वक़्त पूरी दुनिया

ग़र्क़ होकर तबाह हो गई, बैतुल्लाह की इमारत भी गिर गई और उनके बाद हज़रत ख़लीलुल्लाह और इस्माईल अ़लैहिमस्सलाम ने दोबारा अल्लाह के हुक्म से बैतुल्लाह की तामीर की और यही उनका और उनकी उम्मत का क़िब्ला रहा। उसके बाद बनी इस्राईल के अम्बिया के लिये बैतुल-मुक़द्दस को क़िब्ला क़रार दिया गया और बक़ौल अबुल-आ़लिया- पहले अम्बिया जो बैतुल-मुक़द्दस में नमाज़ पढ़ते थे वे भी अ़मल ऐसा करते थे कि बैतुल-मुक़द्दस का सख़रा भी सामने रहे और **बैतुल्लाह** भी। (क़ुर्तुबी)

हज़रत ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर जब नमाज़ फ़र्ज़ की गई तो कुछ उलेमा के क़ौल के अनुसार शुरू में आपका क़िब्ला आपके पूर्वज हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम का क़िब्ला यानी ख़ाना काबा ही क़रार दिया गया, मक्का मुकर्रमा से हिजरत करने और मदीना तय्यिबा में क़ियाम करने के बाद और कुछ रिवायतों के एतिबार से मदीना की हिजरत से कुछ पहले आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से यह हुक्म हुआ कि आप बैतुल-मुक़द्दस को अपना क़िब्ला बनाईये। सही बुख़ारी की रिवायत के मुताबिक़ आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सोलह सत्रह महीने बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ नमाज़ अदा फ़रमाई। मस्जिदे नबवी में आज तक इसकी निशानियाँ मौजूद हैं, जहाँ खड़े होकर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ नमाज़ें अदा फ़रमाई थीं। (क़ुर्तुबी)

अल्लाह के हुक्म के पालन के लिये तो तमाम अम्बिया के सरदार पूर्ण रूप से इताअ़त-गुज़ार (फ़रमाँबरदार) थे, और अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ नमाज़ें बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ अदा फ़रमा रहे थे, लेकिन आपकी तबई रुचि और दिली इच्छा यही थी कि आपका क़िब्ला फिर वही आदम अ़लैहिस्सलाम और इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम का क़िब्ला क़रार दे दिया जाये, और चूँकि अल्लाह की आ़दत यही है कि वह अपने मक़बूल बन्दों की मुराद और इच्छा व रग़बत को पूरा फ़रमाते हैं:

तू चुनाँ ख़्वाही ख़ुदा ख़्वाहद चुनीं मी दहद् यज़दाँ मुरादे मुत्तक़ीं

"तुम जैसा चाहते हो अल्लाह तआ़ला भी वही चाहता है, रब्बे करीम नेक लोगों को उनकी दिली मुराद इनायत फ़रमाता है।" **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को भी यह उम्मीद थी कि आपकी तमन्ना पूरी की जायेगी और इसलिये **वही** के इन्तिज़ार में आप बार-बार आसमान की तरफ़ नज़रें उठाकर देखते थे, इसी का बयान क़ुरआन की इस आयत में है:

قَدْ نَرٰى تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِى السَّمَآءِ فَلَنُوَلِّيَنَّكَ قِبْلَةً تَرْضٰهَا فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ. (۲:۱۴۴)

"हम देख रहे हैं आपका बार-बार आसमान की तरफ़ नज़र उठाना, सो हम आपका क़िब्ला वही बदल देंगे जो आपको पसन्द है, इसलिये आईन्दा आप नमाज़ में अपना रुख़ मस्जिदे हराम (काबा शरीफ़) की तरफ़ किया करें।"

इस आयत में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तमन्ना का इज़हार फ़रमाकर उसको पूरा करने का हुक्म दे दिया गया है, कि आईन्दा आप मस्जिदे हराम की तरफ़ रुख़ किया करें।

नमाज़ में ख़ास बैतुल्लाह का सामने रखना ज़रूरी नहीं, उसकी दिशा का सामने होना भी बाहरी दुनिया के लिये काफ़ी है

यहाँ एक फ़िक़्ही नुक्ता यह भी क़ाबिले ज़िक्र है कि इस आयत में काबा या बैतुल्लाह के बजाय लफ़्ज़ मस्जिदे हराम का इस्तेमाल फ़रमाया गया है, जिसमें इशारा है कि दूर के शहरों में रहने वालों के लिये यह ज़रूरी नहीं कि ऐन बैतुल्लाह का सामना और रुख़ पाया जाये बल्कि बैतुल्लाह की दिशा की तरफ़ रुख़ कर लेना काफ़ी है। हाँ जो शख़्स मस्जिदे हराम में मौजूद है या किसी क़रीबी पहाड़ पर बैतुल्लाह को सामने देख रहा है, उसके लिये ख़ास बैतुल्लाह ही की तरफ़ रुख़ करना ज़रूरी है, अगर बैतुल्लाह की कोई चीज़ भी उसके चेहरे के मुक़ाबिल में न आई तो उसकी नमाज़ नहीं होती, बख़िलाफ़ उन लोगों के जिनके सामने बैतुल्लाह नहीं, कि उनके वास्ते बैतुल्लाह की दिशा या मस्जिदे हराम की दिशा की तरफ़ रुख़ कर लेना काफ़ी है।

बहरहाल! मदीना की हिजरत से सोलह-सत्रह महीने बाद फिर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और मुसलमानों का क़िब्ला बैतुल्लाह को बनाया गया, इस पर यहूद और कुछ मुश्रिक व मुनाफ़िक़ लोग आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम पर यह एतिराज़ करने लगे कि इनके दीन का भी कोई ठिकाना नहीं, इनका क़िब्ला भी रोज़-रोज़ बदलता रहता है।

क़ुरआने करीम ने उनका यह एतिराज़ उक्त आयत में नक़ल फ़रमाया मगर साथ ही उनवान यह रहा कि बेवक़ूफ़ लोग यह एतिराज़ करते हैं और उनकी बेवक़ूफ़ी इस जवाब से वाज़ेह हो गई जो इसके बाद ज़िक्र फ़रमाया गया है। इरशाद हैः

قُلْ لِّلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ يَهْدِىْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ۝

"यानी आप फ़रमा दीजिये कि अल्लाह ही के हैं पूरब व पश्चिम, वह जिसको चाहता है सीधी राह बतलाता है।"

इसमें क़िब्ला बनाने की हक़ीक़त को वाज़ेह फ़रमा दिया कि काबा और बैतुल-मुक़द्दस की कोई ख़ुसूसियत सिवाय इसके नहीं कि अल्लाह के हुक्म ने उनको कोई इम्तियाज़ (विशेषता) देकर क़िब्ला बना दिया। वह अगर चाहें तो इन दोनों के अ़लावा किसी तीसरी चौथी चीज़ को भी क़िब्ला बना सकते हैं। फिर जिसको क़िब्ला बना दिया गया उसकी तरफ़ रुख़ करने में जो कुछ फ़ज़ीलत और सवाब है उसकी रूह अल्लाह तआ़ला के हुक्म की इताअ़त के सिवा कुछ नहीं, जो काबे के निर्माण करने वाले हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की मिल्लत का बुनियादी उसूल है, और इसी लिये दूसरी आयत में और ज़्यादा स्पष्ट फ़रमाया किः

لَيْسَ الْبِرَّ اَنْ تُوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ قِبَلَ الْمَشْرِقِ وَالْمَغْرِبِ وَلٰكِنَّ الْبِرَّ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ. (بقرة:١٧٧)

"इसमें ज़ाती कोई नेकी और सवाब नहीं कि तुम पूरब की तरफ़ रुख़ करो या पश्चिम की तरफ़, लेकिन नेकी अल्लाह पर ईमान लाने और उसकी इताअ़त करने में है।"

और एक आयत में फ़रमायाः

فَاَيْنَمَا تُوَلُّوْا فَثَمَّ وَجْهُ اللّٰهِ. (۲:۱۱۵)

"यानी तुम अल्लाह के फ़रमान के मुताबिक़ जिस तरफ़ भी रुख़ करो अल्लाह तआ़ला की तवज्जोह उसी तरफ़ पाओगे।"

इन आयतों ने क़िब्ले और क़िब्ले की तरफ़ रुख़ करने की हक़ीक़त को भी स्पष्ट फ़रमा दिया कि इसमें उन मक़ामात की कोई ज़ाती ख़ुसूसियत नहीं बल्कि उनमें फ़ज़ीलत पैदा होने का सबब ही यह है कि उनको हक़ तआ़ला ने क़िब्ला बनाने के लिये इख़्तियार फ़रमा लिया, और उसकी तरफ़ रुख़ करने में सवाब की वजह भी सिर्फ़ यही है कि अल्लाह के हुक्म की इताअ़त है और शायद आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये क़िब्ले में तब्दीली फ़रमाने की यह भी हिक्मत हो कि अ़मली तौर से लोगों पर यह वाज़ेह हो जाये कि क़िब्ला कोई बुत नहीं जिसकी पूजा की जाये, बल्कि असल चीज़ अल्लाह का हुक्म है, वह बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ रुख़ करने का आ गया तो उसकी तामील की, फिर जब काबा की तरफ़ रुख़ करने का हुक्म मिल गया तो उसी की तरफ़ रुख़ करना इबादत हो गया। इसके बाद वाली आयत में ख़ुद क़ुरआने करीम ने भी इस हिक्मत की तरफ़ इशारा किया है। फ़रमायाः

وَمَا جَعَلْنَا الْقِبْلَةَ الَّتِىْ كُنْتَ عَلَيْهَآ اِلَّا لِنَعْلَمَ مَنْ يَّتَّبِعُ الرَّسُوْلَ مِمَّنْ يَّنْقَلِبُ عَلٰى عَقِبَيْهِ. (۲:۱۴۳)

"यानी जिस क़िब्ले पर आप पहले रह चुके हैं उसको क़िब्ला बनाना तो महज़ इस बात को ज़ाहिर करने के लिये था कि कौन रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इत्तिबा (पैरवी) करता है और कौन पीछे हट जाता है।"

क़िब्ले की इस हक़ीक़त के बयान से उन बेवक़ूफ़ मुख़ालिफ़ों का भी पूरा जवाब हो गया जो क़िब्ले के बारे में बदलाव को उसूले इस्लाम के मनाफ़ी (ख़िलाफ़) समझते और मुसलमानों को ताने देते थे। आख़िर में इरशाद फ़रमायाः

يَهْدِىْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍo

इसमें बतला दिया कि सीधी राह यही है कि इनसान अल्लाह के हुक्म के लिये कमर बाँधे इन्तिज़ार करता रहे, जो हुक्म मिल जाये उस पर बिना चूँ व चरा के अ़मल करे और यह सीधी राह अल्लाह तआ़ला के फ़ज़्ल से मुसलमानों को हासिल हुई।

मुस्नद अहमद की एक हदीस में हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से मन्क़ूल है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- अहले किताब को मुसलमानों के साथ सबसे बड़ा हसद (जलन) तीन चीज़ों पर है- एक यह कि हफ़्ते में एक दिन इबादत के लिये ख़ास करने का हुक्म सारी उम्मतों को मिला था, यहूद ने शनिवार का दिन मुक़र्रर कर लिया और ईसाईयों ने इतवार का और हक़ीक़त में अल्लाह के नज़दीक वह जुमे का दिन था जो मुसलमानों के हिस्से में आया। दूसरे वह क़िब्ला जो तब्दीली के बाद मुसलमानों के लिये मुक़र्रर किया गया और किसी उम्मत को उसकी तौफ़ीक़ नहीं हुई। तीसरे इमाम के पीछे आमीन कहना। ये तीनों ख़स्लतें सिर्फ़ मुसलमानों को मयस्सर हुईं, अहले किताब इनसे मेहरूम हैं।

وَكَذٰلِكَ جَعَلْنٰكُمْ اُمَّةً وَّسَطًا لِّتَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ عَلَى النَّاسِ وَيَكُوْنَ الرَّسُوْلُ عَلَيْكُمْ شَهِيْدًا ؕ

व कज़ालि-क जअ़ल्नाकुम् उम्मतंव्-व-स-तल्-लितकूनू शु-हदा-अ अ़लन्-नासि व यकूनर्रसूलु अ़लैकुम् शहीदन्,	और इसी तरह किया हमने तुमको एतिदाल वाली उम्मत ताकि हो तुम गवाह लोगों पर, और हो रसूल तुम पर गवाही देने वाला।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पैरोकारो!) इसी तरह हमने तुमको ऐसी ही एक जमाअ़त बना दी है जो (हर पहलू से) दरमियानी राह पर है, ताकि (दुनिया में गौरव और ख़ास पहचान हासिल होने के अ़लावा आख़िरत में भी तुम्हारा बड़ा सम्मान ज़ाहिर हो कि) तुम (एक बड़े मुक़द्दमे में जिसमें एक फ़रीक़ हज़राते अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम होंगे और दूसरा फ़रीक़ उनकी विरोधी क़ौमें होंगी, उन मुख़ालिफ़) लोगों के मुक़ाबले में गवाह (तजवीज़) होओ, और (सम्मान पर सम्मान यह हुआ कि) तुम्हारे (गवाही के क़ाबिल और मोतबर होने के) लिए (अल्लाह के) रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) गवाह हों (और इस गवाही से तुम्हारी गवाही मोतबर होने की तस्दीक़ हो, फिर तुम्हारी गवाही से उस मुक़द्दमे का हज़राते अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के हक़ में फ़ैसला हो और उनके मुख़ालिफ़ लोग मुजरिम क़रार पाकर सज़ा पाने वाले हों, और इस चीज़ का आला दर्जे की इज़्ज़त होना ज़ाहिर है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

उम्मते मुहम्मदिया का ख़ास एतिदाल

लफ़्ज़ 'वसत्' औसत के मायने में है, और बेहतरीन चीज़ और मामले की बेहतरीन सूरत को 'वसत्' कहा जाता है। तिर्मिज़ी में हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से लफ़्ज़ 'वसत्' की तफ़सीर अ़दल से की गई है, जो बेहतरीन के मायने में आया है। (क़ुर्तुबी) इस आयत में उम्मते मुहम्मदिया की एक इम्तियाज़ी फ़ज़ीलत व ख़ुसूसियत (ख़ास बड़ाई और विशेषता) का ज़िक्र है कि वह एक मोतदिल (बेहतरीन राह वाली) उम्मत बनाई गई। इसमें यह बतलाया गया है कि जिस तरह हमने मुसलमानों को वह क़िब्ला अ़ता किया जो सबसे अशरफ़ व अफ़ज़ल (बेहतरीन व बड़ाई वाला) है इसी तरह हमने उम्मते मुस्लिमा को एक ख़ास इम्तियाज़ी फ़ज़ीलत (विशेष रुतबा) यह अ़ता की है कि उसको एक मोतदिल उम्मत बनाया है जिसके नतीजे में उनको मैदाने हश्र में यह इम्तियाज़ (विशेषता) हासिल होगा कि सारे अम्बिया की उम्मतें जब अपने अम्बिया की हिदायत व तब्लीग़ से मुकर जायेंगी और उनको झुठलाकर यह कहेंगी कि हमारे पास न कोई किताब आई, न किसी नबी ने हमें कोई हिदायत की, उस वक़्त उम्मते मुहम्मदिया

अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की तरफ़ से गवाही में पेश होगी और यह गवाही देगी कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम ने हर ज़माने में अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से लाई हुई हिदायत उनको पहुँचाई और उनको सही रास्ते पर लाने की अपनी हिम्मत भर कोशिश की। विरोधी पक्ष (यानी वे उम्मतें जिनके ख़िलाफ़ गवाही दी गयी होगी) उम्मते मुहम्मदिया की गवाही पर यह जिरह करेंगी कि इस उम्मत का तो हमारे ज़माने में वजूद भी न था, इसको हमारे मामलात की क्या ख़बर, इसकी गवाही हमारे मुक़ाबले में कैसे क़ुबूल की जा सकती है?

उम्मते मुहम्मदिया इस जिरह का यह जवाब देगी कि बेशक हम उस वक़्त मौजूद न थे, मगर इनके वाक़िआत व हालात की ख़बर हमें एक सच्चे रसूल ने और अल्लाह की किताब ने दी है, जिस पर हम ईमान लाये और उनकी ख़बर को अपनी आँखों देखे से ज़्यादा सच्चा और क़ाबिले क़द्र जानते हैं। इसलिये हम अपनी गवाही में सही और सच्चे हैं। उस वक़्त रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पेश होंगे और इन गवाहों की पुष्टि और ताईद करेंगे कि बेशक इन्होंने जो कुछ कहा है वह सही है, अल्लाह तआ़ला की किताब और मेरी तालीम के ज़रिये इनको ये सही हालात मालूम हुए। मेहशर के इस वाक़िए की तफ़सील सही बुख़ारी, तिर्मिज़ी, नसाई और मुस्नद अहमद की अनेक हदीसों में मुख़्तसर तौर पर और विस्तार से मज़कूर है।

ग़र्ज़ यह कि उक्त आयत में उम्मते मुहम्मदिया की आला फ़ज़ीलत व शर्फ़ का राज़ यह बतलाया गया है कि यह उम्मत मोतदिल उम्मत (बेहतरीन उम्मत) बनाई गई है, इसलिये यहाँ चन्द बातें क़ाबिले ग़ौर हैं।

उम्मत के एतिदाल की हक़ीक़त, अहमियत और उसकी कुछ तफ़सील

1. **एतिदाल** के मायने और हक़ीक़त क्या हैं? 2. एतिदाल की सिफ़त की यह अहमियत क्यों है कि इस पर फ़ज़ीलत व बड़ाई का मदार रखा गया। 3. इस उम्मते मुहम्मदिया के मोतदिल होने का वाक़िआ़त के एतिबार से क्या सुबूत है? तरतीब वार इन तीनों सवालों का जवाब यह है:

1. **एतिदाल** के लफ़्ज़ी मायने हैं बराबर होना। यह लफ़्ज़ अ़दल से निकला है, इसके मायने भी **बराबर करने** के हैं।

2. एतिदाल की सिफ़त की यह अहमियत है कि इसको इनसानी शर्फ़ व फ़ज़ीलत का मेयार करार दिया गया, ज़रा तफ़सील तलब है। इसको पहले एक महसूस मिसाल से देखिये- दुनिया के जितने नये और पुराने तरीक़े जिस्मानी सेहत व इलाज के लिये जारी हैं, तिब्बे यूनानी, वैदिक, एलोपैथिक, होम्योपैथिक वग़ैरह सबके सब इस पर सहमत हैं कि इनसानी बदन की सेहत मिज़ाज के एतिदाल से है, और जहाँ यह एतिदाल (सन्तुलन) किसी जानिब से ख़लल में पड़े वही इनसानी बदन का रोग है। ख़ास तौर पर तिब्बे यूनानी का तो बुनियादी उसूल ही मिज़ाज की पहचान पर मौक़ूफ़ है। इनसान का बदन चार ख़िल्त- ख़ून, बलग़म, सौदा, सफ़रा से मुरक्कब है और इन्हीं चारों अख़्लात से पैदा होने वाली चार कैफ़ियतें इनसान के बदन में ज़रूरी हैं- गर्मी, ठंडक, ख़ुश्की और तरी। जिस वक़्त

तक ये चारों कैफ़ियतें इनसानी मिज़ाज की मुनासिब हदों के अन्दर मोतदिल (सन्तुलित) रहती हैं वह इनसानी बदन की सेहत व तन्दुरुस्ती कहलाती है, और जहाँ इनमें से कोई कैफ़ियत इनसानी मिज़ाज की हद से ज़्यादा हो जाये या घट जाये वही मर्ज़ (रोग) है। और अगर उसकी इस्लाह (सुधार) व इलाज न किया जाये तो एक हद में पहुँचकर वही मौत का प्याम हो जाता है।

इस महसूस मिसाल के बाद रूहानियत और अख़्लाक़ी चीज़ों की तरफ़ आईये तो आपको मालूम होगा कि उनमें भी एतिदाल और बेएतिदाली का यही तरीक़ा जारी है। इसके एतिदाल का नाम रूहानी सेहत और बेएतिदाली का नाम रूहानी और अख़्लाक़ी बीमारी है, और इस रोग का अगर इलाज करके एतिदाल (सही हालत) पर न लाया जाये तो इसका नतीजा रूहानी मौत है। और यह भी किसी समझदार इनसान पर छुपा नहीं कि इनसानियत का जौहर जिसकी वजह से इनसान सारी मख़्लूक़ात का हाकिम और मख़्दूम (सेवा पाने का पात्र) क़रार दिया गया है वह इसका बदन या बदन के हिस्से व अख़्लात या उनकी गर्मी-सर्दी की कैफ़ियतें नहीं, क्योंकि इन हिस्सों (अंगों) व कैफ़ियतों में तो दुनिया के सारे जानवर भी इनसानियत के साथ शरीक बल्कि इनसानियत से ज़्यादा हिस्सा रखने वाले हैं।

जौहरे इनसानियत जिसकी वजह से इनसान तमाम मख़्लूक़ात में बेहतर और कायनात का सरदार माना गया है वह उसके गोश्त पोस्त और सर्दी व गर्मी वग़ैरह से ऊपर की कोई चीज़ है, जो इनसान में कामिल और भरपूर तौर पर मौजूद है। दूसरी मख़्लूक़ात को उसका वह दर्जा हासिल नहीं और उसका मुक़र्रर व निर्धारित कर लेना भी कोई बारीक और मुश्किल काम नहीं कि वह इनसान का रूहानी और अख़्लाक़ी कमाल है जिसने इसको कायनात का मख़्दूम बनाया है। मौलाना रूमी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने ख़ूब फ़रमाया हैः

आदमियत लह्म व शह्म व पोस्त नेस्त
आदमियत जुज़ रज़ा-ए-दोस्त नेस्त

"कि इनसानियत गोश्त, पोस्त हड्डियों और चर्बी (यानी इस ज़ाहिरी बदन) का नाम नहीं, आदमियत तो अल्लाह की रज़ा हासिल करने का नाम है।" **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

और इसी वजह से वह इनसान जो अपने शराफ़त व फ़ज़ीलत के जौहर की बेक़द्री करके उसको ज़ाया करते हैं उनके बारे में फ़रमायाः

ईं कि मी बीनी ख़िलाफ़े आदम अन्द
नेस्तन्द आदम गिलाफ़े आदम अन्द

"यानी जिसको तुम इनसानियत के ख़िलाफ़ कामों में मशग़ूल देखो तो वह आदमी नहीं हाँ उसने आदमियत का लिबास पहन रखा है।" **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

और जब यह मालूम हो गया कि इनसान का जौहर शराफ़त और फ़ज़ीलत व बड़ाई का मदार उसके रूहानी और अख़्लाक़ी कमालात हैं, और यह पहले मालूम हो चुका है कि इनसानी बदन की तरह इनसानी रूह भी एतिदाल व बेएतिदाली का शिकार होती है और जिस तरह इनसानी बदन की सेहत उसके मिज़ाज और अख़्लात का एतिदाल (सही हालत पर होना) है, इसी तरह रूह की सेहत रूह और उसके अख़्लाक़ का एतिदाल है। इसलिये कामिल और पूरा इनसान कहलाने का हक़दार सिर्फ़ वही शख़्स हो सकता है जो जिस्मानी एतिदाल के साथ रूहानी और अख़्लाक़ी एतिदाल भी रखता हो।

यह कमाल तमाम अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को विशेष तौर पर अ़ता होता है, और हमारे रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम में भी सबसे ज़्यादा यह कमाल हासिल था। इसलिये इनसाने कामिल के सबसे पहले मिस्दाक़ आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ही हैं। और जिस तरह जिस्मानी इलाज-मुआ़लजे के लिये हर ज़माने, हर जगह और हर बस्ती में तबीबों, डॉक्टरों, दवाओं और उपकरणों के द्वारा एक स्थिर निज़ाम हक़ तआ़ला ने क़ायम फ़रमाया है, इसी तरह रूहानी इलाज और क़ौमों में अख़्लाक़ी एतिदाल पैदा करने के लिये अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम भेजे गये, उनके साथ आसमानी हिदायतें (तालीमात) भेजी गईं और बक़द्रे ज़रूरत माद्दी ताक़तें भी अ़ता की गईं जिनके ज़रिये वे यह एतिदाल का क़ानून दुनिया में नाफ़िज़ (लागू और जारी) कर सकें, इसी मज़मून को क़ुरआने करीम ने सूरः हदीद में इस तरह बयान फ़रमाया है:

لَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلَنَا بِالْبَيِّنٰتِ وَاَنْزَلْنَا مَعَهُمُ الْكِتٰبَ وَالْمِيْزَانَ لِيَقُوْمَ النَّاسُ بِالْقِسْطِ، وَاَنْزَلْنَا الْحَدِيْدَ فِيْهِ بَاْسٌ شَدِيْدٌ وَّمَنَافِعُ لِلنَّاسِ. (۲۵:۵۷)

"यानी हमने भेजे हैं अपने रसूल निशानियाँ देकर और उतारी उनके साथ किताब और तराज़ू ताकि लोग अ़दल व इन्साफ़ पर क़ायम हो जायें, और हमने उतारा लोहा उसमें सख़्त लड़ाई है और लोगों के काम चलते हैं।"

इसमें अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के भेजने और उन पर किताबें नाज़िल करने की हिक्मत यही बतलाई है कि वे उनके ज़रिये लोगों में अख़्लाक़ी और अ़मली एतिदाल पैदा करें, किताब अख़्लाक़ और रूहानी एतिदाल पैदा करने के लिये नाज़िल की गई और तराज़ू लेन-देन के मामलात में अ़मली एतिदाल पैदा करने के लिये, और यह भी मुम्किन है कि तराज़ू से मुराद हर पैग़म्बर की शरीअ़त हो जिसके ज़रिये वास्तविक एतिदाल मालूम होता है और अ़दल व इन्साफ़ क़ायम किया जा सकता है।

इस तफ़सील से आपने यह समझ लिया होगा कि तमाम अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के भेजने और उन पर किताबें नाज़िल करने की असली ग़र्ज़ व हिक्मत यही है कि क़ौमों को अख़्लाक़ी और अ़मली एतिदाल (सही हालत) पर क़ायम किया जाये, और यही क़ौमों की सेहत-मन्दी और तन्दुरुस्ती है।

उम्मते मुहम्मदिया में हर क़िस्म का एतिदाल

इस बयान से आपने यह भी मालूम कर लिया होगा कि उम्मते मुहम्मदिया की जो फ़ज़ीलत उक्त आयत में बतलाई गई:

وَكَذٰلِكَ جَعَلْنٰكُمْ اُمَّةً وَّسَطًا

"यानी हमने तुम्हें एक मोतदिल (बेहतरीन) उम्मत बनाया है।" यह बोलने और लिखने में तो एक लफ़्ज़ है लेकिन हक़ीक़त के एतिबार से किसी क़ौम या शख़्स में जितने कमालात इस दुनिया में हो सकते हैं उन सब के लिये हावी और जामे है (यानी वे सब इसके अन्दर आ जाते हैं)।

इसमें उम्मते मुहम्मदिया को 'उम्मते वसत्' यानी मोतदिल (सही राह वाली) उम्मत फ़रमाकर यह बतला दिया कि इनसान का शराफ़त व फ़ज़ीलत का जौहर (कमाल) इनमें आला दर्जे का मौजूद है और जिस ग़र्ज़ के लिये यह आसमान व ज़मीन का सारा सिस्टम है और जिसके लिये अम्बिया

अ़लैहिमुस्सलाम और आसमानी किताबें भेजी गई हैं यह उम्मत उसमें सारी उम्मतों से नुमायाँ और अफ़ज़ल (बेहतर) है।

क़ुरआने करीम ने इस उम्मत के मुताल्लिक़ फ़ज़ीलत व बड़ाई की इस ख़ास सिफ़त का बयान विभिन्न आयतों में विभिन्न उनवानों से किया है। सूरः आराफ़ के आख़िर में उम्मते मुहम्मदिया के लिये इरशाद हुआ:

وَمِمَّنْ خَلَقْنَآ اُمَّةٌ يَّهْدُوْنَ بِالْحَقِّ وَبِهٖ يَعْدِلُوْنَ۝ (١٨١:٧)

"यानी उन लोगों में जिनको हमने पैदा किया है एक ऐसी उम्मत है जो सच्ची राह बतलाते हैं और उसके मुवाफ़िक़ इन्साफ़ करते हैं।"

इसमें उम्मते मुहम्मदिया के रूहानी व अख़्लाक़ी एतिदाल (सही और बेहतरीन रास्ते पर होने) को वाज़ेह फ़रमाया है कि वे अपने ज़ाती फ़ायदों और इच्छाओं को छोड़कर आसमानी हिदायत के मुताबिक़ ख़ुद भी चलते हैं और दूसरों को भी चलाने की कोशिश करते हैं, और किसी मामले में झगड़ा व विवाद और मतभेद हो जाये तो उसका फ़ैसला भी उसी बेलाग आसमानी क़ानून के ज़रिये करते हैं जिसमें किसी क़ौम या शख़्स के नाजायज़ स्वार्थों और हितों का कोई ख़तरा नहीं। और सूरः आले इमरान में उम्मते मुहम्मदिया के इसी रूहानी और मिज़ाजी एतिदाल के आसार (पहचान व निशानियों) को इन अलफ़ाज़ में बयान फ़रमाया गया है:

كُنْتُمْ خَيْرَ اُمَّةٍ اُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَتُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ. (١١٠:٣)

"यानी तुम सब उम्मतों में बेहतर हो जो दुनिया में भेजी गई हो, हुक्म करते हो अच्छे कामों का और मना करते हो बुरे कामों से, और अल्लाह पर ईमान लाते हो।"

यानी जिस तरह उनको रसूल सब रसूलों में अफ़ज़ल नसीब हुए, किताब सब किताबों में जामे और कामिल नसीब हुई, इसी तरह उनको क़ौमों का सेहत वाला मिज़ाज और एतिदाल भी इस आला पैमाने पर नसीब हुआ कि वह सब उम्मतों में बेहतर उम्मत क़रार पाई। इस पर उलूम व मआ़रिफ़ के दरवाज़े खोल दिये गये हैं, ईमान व अ़मल और तक़वा की तमाम शाख़ें उनकी क़ुरबानियों से सरसब्ज़ व शादाब (तरोताज़ा) होंगी, वह किसी ख़ास मुल्क व इलाक़े में सीमित न होगी बल्कि उसके काम का दायरा सारे आ़लम और इनसानी ज़िन्दगी के सारे शोबों (क्षेत्रों) को घेरे हुए होगा, गोया उसका वजूद ही इसलिये होगा कि दूसरों की ख़ैरख़्वाही (हमदर्दी) करे और जिस तरह मुम्किन हो उन्हें जन्नत के दरवाज़ों पर ला खड़ा कर दे।

'उख़्रिजत् लिन्नासि' में इसकी तरफ़ इशारा है कि यह उम्मत दूसरों की ख़ैरख़्वाही और फ़ायदे के लिये बनाई गई है, इसका मन्सबी फ़र्ज़ (दायित्व) और क़ौमी निशान यह है कि लोगों को नेक कामों की हिदायत करे, बुरे कामों से रोके। एक हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशाद 'अद्दीनुन्नसी-हतु' का यही मतलब है कि दीन इसका नाम है कि सब मुसलमानों की ख़ैरख़्वाही करे। फिर बुरे कामों में कुफ़्र, शिर्क, बिदअ़तें, बुरी रस्में, बुराई व बदकारी और हर क़िस्म की अख़्लाक़ी और नामाक़ूल बातें शामिल हैं, उनसे रोकना भी कई तरह से होगा, कभी ज़बान से, कभी हाथ से, कभी क़लम से, कभी तलवार से, ग़र्ज़ कि हर क़िस्म का जिहाद इसमें दाख़िल हो गया।

यह सिफ़त जिस क़द्र सार्वजनिक और पाबन्दी के साथ उम्मते मुहम्मदिया में पाई गई पहली उम्मतों में इसकी नज़ीर (मिसाल) नहीं मिलती।

3. अब तीसरी बात ग़ौर-तलब (विचारनीय) यह रह गई कि इस उम्मत के 'तवस्सुत व एतिदाल' (दरमियानी और सही रास्ते पर होने) का वाकिआत से सुबूत क्या है? इसकी तफ़सील विस्तृत और तमाम उम्मतों के एतिक़ादों, आमाल व अख़्लाक़ और कारनामों की तुलना करके बतलाने पर मौक़ूफ़ (निर्भर) है, उसमें से चन्द चीज़ें उदाहरण के तौर पर ज़िक्र की जाती हैं।

एतिक़ादी एतिदाल

सबसे पहले एतिक़ादी और वैचारिक एतिदाल को ले लीजिये तो पिछली उम्मतों में एक तरफ़ तो यह नज़र आयेगा कि अल्लाह के रसूलों को उसका बेटा बना लिया और उनकी इबादत और पूजा करने लगे। क़ुरआन पाक में है:

وَقَالَتِ الْيَهُوْدُ عُزَيْرُ ۨابْنُ اللّٰهِ وَقَالَتِ النَّصٰرَى الْمَسِيْحُ ابْنُ اللّٰهِ. (٩:٣٠)

(यहूदियों ने कहा कि उज़ैर अल्लाह के बेटे हैं और ईसाईयों ने कहा मसीह अल्लाह के बेटे हैं) और दूसरी तरफ़ उन्हीं क़ौमों के दूसरे अफ़राद का यह आलम भी देखने में आयेगा कि रसूल के निरंतर मोजिज़े देखने और बरतने के बावजूद जब उनका रसूल उनको किसी जंग व जिहाद की दावत देता है तो वे कह देते हैं:

فَاذْهَبْ اَنْتَ وَرَبُّكَ فَقَاتِلَآ اِنَّا هٰهُنَا قٰعِدُوْنَ○ (٥:٢٤)

(यानी जाईये आप और आपका परवर्दिगार वही मुख़ालिफ़ों से क़िताल करें हम तो यहाँ बैठे हैं) कहीं यह भी नज़र आता है कि अपने अम्बिया को ख़ुद उनके मानने वाले तरह-तरह की तकलीफ़ें पहुँचाते हैं। बख़िलाफ़ उम्मते मुहम्मदिया के कि वे हर दौर और हर ज़माने में एक तरफ़ तो अपने रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से वह इश्क़ व मुहब्बत रखते हैं कि उसके आगे अपनी जान व माल और औलाद व आबरू सब को क़ुरबान कर देते हैं:

सलाम उस पर कि जिसके नाम लेवा हर ज़माने में
बढ़ा देते हैं टुकड़ा सरफ़रोशी के फ़साने में

और दूसरी तरफ़ यह एतिदाल कि रसूल को रसूल और ख़ुदा को ख़ुदा समझते हैं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को इन तमाम कमालात के बावजूद 'अब्दुहू व रसूलुहू' (वह अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं) मानते हैं और कहते हैं। वे आपकी तारीफ़ व प्रशंसा में भी यह पैमाना रखते हैं जो क़सीदा बुर्दा में फ़रमाया है:

دَعْ مَا ادَّعَتْهُ النَّصَارٰی فِیْ نَبِیِّهِمْ   وَاحْکُمْ بِمَا شِئْتَ مَدْحًا فِیْهِ وَاحْتَکِمِ

"यानी उस कलिमा-ए-कुफ़्र को तो छोड़ दो जो ईसाईयों ने अपने नबी के बारे में कह दिया (कि वह अल्लाह की पनाह ख़ुद ख़ुदा या ख़ुदा के बेटे हैं) इसके सिवा आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तारीफ़ व प्रशंसा में जो कुछ कहो वह सब हक़ और सही है।"

जिसका ख़ुलासा किसी ने एक पंक्ति में इस तरह बयान कर दिया:

बाद अज़ ख़ुदा बुज़ुर्ग तूई क़िस्सा मुख़्तसर

यानी बात मुख़्तसर यह है कि अल्लाह तआ़ला के बाद सबसे बड़ा रुतबा आपका है।

अ़मल और इबादत में एतिदाल

एतिक़ाद के बाद अ़मल और इबादत का नम्बर है। इसमें मुलाहिज़ा फ़रमाईये। पिछली उम्मतों में एक तरफ़ तो यह नज़र आयेगा कि अपनी शरीअ़त के अहकाम को चन्द टकों के बदले फ़रोख़्त किया जाता है, रिश्वतें लेकर आसमानी किताब में तरमीम (रद्दोबदल) की जाती है, या ग़लत फ़तवे दिये जाते हैं, और तरह-तरह के हीले-बहाने करके शरई अहकाम को बदला जाता है, इबादत से पीछा छुड़ाया जाता है, और दूसरी तरफ़ इबादत ख़ानों में आपको ऐसे लोग भी नज़र आयेंगे जिन्होंने दुनिया को छोड़ करके **रहबानियत** इख़्तियार कर ली, वे ख़ुदा की दी हुई हलाल नेमतों से भी अपने आपको मेहरूम रखते और सख़्तियाँ झेलने ही को इबादत व सवाब समझते हैं।

उम्मते मुहम्मदिया ने इसके ख़िलाफ़ एक तरफ़ रहबानियत को इनसानियत पर ज़ुल्म क़रार दिया और दूसरी तरफ़ अल्लाह व रसूल के अहकाम पर मर-मिटने का जज़्बा पैदा किया, और क़ैसर व किसरा के तख़्त व ताज के मालिक बनकर दुनिया को यह दिखला दिया कि दियानत व सियासत में या दीन व दुनिया में बैर नहीं, मज़हब सिर्फ़ मस्जिदों या ख़ानक़ाहों के गोशों के लिये नहीं आया बल्कि उसकी हुक्मरानी बाज़ारों और दफ़्तरों पर भी है, और वज़ारतों और इमारतों पर भी, इसने बादशाही में फ़क़ीरी और फ़क़ीरी में बादशाही सिखलाई।

सामाजिक और तहज़ीबी एतिदाल

इसके बाद मुआ़शरत (समाज के रहन-सहन), तहज़ीब व सभ्यता और संस्कृति को देखिये तो पिछली उम्मतों में आप एक तरफ़ यह बेएतिदाली (अनियमितता) देखेंगे कि इनसानी हुक़ूक़ की कोई परवाह नहीं, हक़ नाहक़ की कोई बहस नहीं, अपने हितों और उद्देश्यों के ख़िलाफ़ जिसको देखा उसको कुचल डालना, क़त्ल कर देना, लूट लेना सबसे बड़ा कमाल है। एक सरदार की चरागाह में किसी दूसरे का ऊँट घुस गया और वहाँ कुछ नुक़सान कर दिया तो अ़रब की मशहूर जंग 'हर्बे-बसूस' निरंतर सौ बरस जारी रही, हज़ारों इनसानों का ख़ून हुआ। औ़रतों को इनसानी हुक़ूक़ देना तो कहाँ ज़िन्दा रहने की इजाज़त नहीं दी जाती, कहीं बचपन ही में उनको ज़िन्दा दफ़न कर देने की रस्म थी कहीं मुर्दा शौहरों के साथ सती करके जला डालने का रिवाज था। इसके मुक़ाबले में दूसरी तरफ़ यह बेवक़ूफ़ी भरी रहम-दिली कि कीड़े मकोड़ों की हत्या को हराम समझें, जानवरों के ज़बीहे को हराम क़रार दें, ख़ुदा के हलाल किये हुए जानवरों के गोश्त-पोस्त से फ़ायदा उठाने को ज़ुल्म समझें, उम्मते मुहम्मदिया और उसकी शरीअ़त ने इन सब बेएतिदालियों का ख़ात्मा किया। एक तरफ़ इनसान को इनसान के हुक़ूक़ बतलाये और न सिर्फ़ सुलह व दोस्ती के वक़्त बल्कि ऐन मैदाने जंग में मुख़ालिफ़ों के हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त सिखलाई, औ़रतों को मर्दों की तरह हुक़ूक़ अ़ता फ़रमाये और दूसरी तरफ़ हर चीज़ की हद मुक़र्रर फ़रमाई जिसमें हद से बढ़ने और कमी करने को जुर्म क़रार दिया और अपने हुक़ूक़ के मामले में दरगुज़र और माफ़ी व नज़र-अन्दाज़ करने का सबक़ सिखलाया, दूसरों के हुक़ूक़ का पूरा एहतिमाम (पाबन्दी) करने के आदाब सिखलाये।

आर्थिक और माली एतिदाल

इसके बाद दुनिया की हर क़ौम व मिल्लत में सबसे अहम मसला अर्थशास्त्र और माली मामलात का है। इसमें भी दूसरी क़ौमों और उम्मतों में तरह-तरह की बेएतिदालियाँ (अनियमितता) नज़र आयेंगी। एक तरफ़ सरमायेदारी का सिस्टम है जिसमें हलाल व हराम की बन्दिशों से और दूसरे लोगों की ख़ुशहाली या बदहाली से आँखें बन्द करके ज़्यादा से ज़्यादा दौलत जमा कर लेना सबसे बड़ा इनसानी कमाल समझा जाता है तो दूसरी तरफ़ शख़्सी और व्यक्तिगत मिल्कियत ही को सिरे से जुर्म क़रार दिया जाता है और ग़ौर करने से दोनों आर्थित व्यवस्थाओं का हासिल माल व दौलत की पूजा और उसको ज़िन्दगी का मक़सद समझना और उसके लिये दौड़-धूप है।

उम्मते मुहम्मदिया और उसकी शरीअ़त ने इसमें भी एतिदाल (सही रास्ते और सन्तुलन) की अ़जीब व ग़रीब सूरत पैदा की कि एक तरफ़ तो दौलत को ज़िन्दगी का मक़सद बनाने से मना फ़रमाया और इनसानी इ़ज़्ज़त व शराफ़त या किसी पद व ओ़हदे का मदार इस पर नहीं रखा, और दूसरी तरफ़ दौलत की तक़सीम के ऐसे पाकीज़ा उसूल मुक़र्रर किये जिनसे कोई इनसान ज़िन्दगी की ज़रूरतों से मेहरूम न रहे, और कोई फ़र्द सारी दौलत को न समेट ले, साझे के क़ाबिल चीज़ों को मुश्तरक और आ़म वक़्फ़ रखा, मख़्सूस चीज़ों में निजी मिल्कियत का मुकम्मल सम्मान किया। हलाल माल की फ़ज़ीलत, उसके रखने और इस्तेमाल करने के सही तरीक़े बतलाये। इसकी तफ़सील इस क़द्र तवील (ज़्यादा और विस्तृत) है कि एक मुस्तक़िल बयान को चाहती है। इस वक़्त बतौर मिसाल चन्द नमूने एतिदाल और बेएतिदाली के पेश करने थे इसके लिये इतना ही काफ़ी है, जिससे मज़कूरा आयत का मज़मून वाज़ेह हो गया कि उम्मते मुहम्मदिया को एक मोतदिल (दरमियानी राह वाली) और बेहतरीन उम्मत बनाया गया है।

गवाही के लिये मोतबर और भरोसे वाला होना शर्त है

لِّتَكُونُوا شُهَدَآءَ عَلَى النَّاسِ

यानी उम्मते मुहम्मदिया को 'वसत्' और अ़दल व सिक़ा (बेहतरीन, मोतबर और क़ाबिल भरोसा) इसलिये बनाया गया कि ये गवाही देने के क़ाबिल हो जायें। इससे मालूम हुआ कि जो शख़्स अ़दल (एतिबार व इन्साफ़) वाला नहीं वह गवाही के क़ाबिल नहीं। अ़दल का तर्जुमा सिक़ा यानी भरोसे के क़ाबिल किया जाता है, इसकी पूरी शर्तें फ़िक़ा (मसाईल) की किताबों में मज़कूर हैं।

'इजमा' का हुज्जत होना

इमाम क़ुर्तुबी रह. ने फ़रमाया कि यह आयत इजमा-ए-उम्मत के हुज्जत होने पर एक दलील है क्योंकि जब इस उम्मत को अल्लाह तआ़ला ने गवाही देने वाले क़रार देकर दूसरी उम्मतों के मुक़ाबले में इनकी बात को हुज्जत (दलील) बना दिया तो साबित हुआ कि इस उम्मत का इजमा (किसी बात और हुक्म पर सहमत होना) हुज्जत है और अ़मल उस पर वाजिब है, इस तरह कि सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का इजमा ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम पर और ताबिईन का इजमा तबए-ताबिईन

रहमतुल्लाहि अ़लैहिम पर हुज्जत है।

'तफ़सीरे मज़हरी' में है कि इस आयत से साबित हुआ कि इस उम्मत के जो अफ़आ़ल व आमाल मुत्तफ़क़ अ़लैहि हैं (यानी जिन पर सब की सहमति बन गयी हो) वे सब पसन्दीदा व मक़बूल हैं, क्योंकि अगर सब का इत्तिफ़ाक़ किसी ख़ता (ग़लती) पर तस्लीम किया जाये तो फिर यह कहने के कोई मायने नहीं रहते कि यह उम्मत बेहतरीन और भरोसे के क़ाबिल है।

और इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि इस आयत में इसकी दलील है कि हर ज़माने के मुसलमानों का इजमा मोतबर है। इजमा का हुज्जत होना सिर्फ़ पहले दौर (यानी सहाबा के दौर) या किसी ख़ास ज़माने के साथ मख़्सूस नहीं, क्योंकि आयत में पूरी उम्मत को ख़िताब है और उम्मत रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सिर्फ़ वे न थे जो उस ज़माने में मौजूद थे बल्कि क़ियामत तक आने वाली नस्लें जो मुसलमान हैं वे सब आपकी उम्मत हैं, तो हर ज़माने के मुसलमान अल्लाह के गवाह हो गये जिनका क़ौल हुज्जत है, वे सब किसी ख़ता और ग़लत बात पर मुत्तफ़िक़ (एक राय) नहीं हो सकते।

وَمَا جَعَلْنَا الْقِبْلَةَ الَّتِي كُنتَ عَلَيْهَا إِلَّا لِنَعْلَمَ مَن يَتَّبِعُ الرَّسُولَ مِمَّن يَنقَلِبُ عَلَىٰ عَقِبَيْهِ ۚ وَإِن كَانَتْ لَكَبِيرَةً إِلَّا عَلَى الَّذِينَ هَدَى اللَّهُ ۗ وَمَا كَانَ اللَّهُ لِيُضِيعَ إِيمَانَكُمْ ۚ إِنَّ اللَّهَ بِالنَّاسِ لَرَءُوفٌ رَّحِيمٌ ﴿١٤٣﴾

व मा जअ़ल्नल्-क़िब्लतल्लती कुन्-त अ़लैहा इल्ला लिनअ़्ल-म मंय्यत्तबिअ़ुर्रसू-ल मिम्-मंय्यन्क़लिबु अ़ला अ़क़िबैहि, व इन् कानत् ल-कबी-रतन् इल्ला अ़लल्लज़ी-न हदल्लाहु, व मा कानल्लाहु लियुज़ी-अ ईमानकुम, इन्नल्ला-ह बिन्नासि ल-रऊफ़ुर्रहीम (143)	और नहीं मुक़र्रर किया था हमने वह क़िब्ला कि जिस पर तू पहले था मगर इस वास्ते कि मालूम करें कि कौन ताबे (हुक्म मानने वाला) रहेगा रसूल का और कौन फिर जायेगा उल्टे पाँव। और बेशक यह बात भारी हुई मगर उन पर जिनको राह दिखाई अल्लाह ने, और अल्लाह ऐसा नहीं कि ज़ाया करे तुम्हारा ईमान, बेशक अल्लाह लोगों पर बहुत शफ़ीक़ निहायत रहम वाला है। (143)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(और असल में तो शरीअ़ते मुहम्मदिया के लिये हमने काबा ही क़िब्ला तजवीज़ कर रखा था) और जिस क़िब्ले की दिशा पर आप (चन्द दिन क़ायम) रह चुके हैं (यानी बैतुल-मुक़द्दस) वह तो सिर्फ़ इस (मस्लेहत के) लिए था कि हमको (ज़ाहिरी तौर पर भी) मालूम हो जाए कि (उसके मुक़र्रर होने से

या बदलने से यहूद और ग़ैर-यहूद में से) कौन तो (अल्लाह के) रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की पैरवी इख़्तियार करता है और कौन पीछे को हटता जाता है (और नफ़रत और मुख़ालफ़त करता है। इस इम्तिहान के लिये उस आरज़ी व अस्थाई क़िब्ले को मुक़र्रर किया था, फिर असली क़िब्ले से उसको मन्सूख़ कर दिया), और यह क़िब्ले का बदलना (बेराह और नाफ़रमान लोगों पर) बड़ा भारी है, (हाँ) मगर जिन लोगों को अल्लाह तआ़ला ने (सीधे तरीक़े की) हिदायत फ़रमाई है (जिसका बयान ऊपर आ चुका है कि अहकामे इलाही को बिना चूँ व चरा क़ुबूल कर लेना उनको कुछ भी भारी नहीं हुआ, जैसे पहले उसको ख़ुदा का हुक्म समझते थे अब इसको समझने लगे) और (हमने जो कहा है कि बैतुल-मुक़द्दस आरज़ी और अस्थाई क़िब्ला था, इससे कोई शख़्स यह गुमान न लाये बस तो जितनी नमाज़ें उधर पढ़ी हैं उनमें सवाब भी कम मिला होगा क्योंकि वे असली क़िब्ले की तरफ़ न थीं, सो इस गुमान व ख़्याल को दिल में न लाना, क्योंकि) अल्लाह तआ़ला ऐसे नहीं हैं कि तुम्हारे ईमान (के मुताल्लिक़ आमाल, जैसे नमाज़ के सवाब) को ज़ाया (और नाक़िस) कर दें, (और) वाक़ई अल्लाह तआ़ला तो (ऐसे) लोगों पर बहुत ही शफ़ीक़ (और) मेहरबान हैं (तो ऐसे शफ़ीक़ मेहरबान पर यह गुमान कब हो सकता है, क्योंकि किसी क़िब्ले का असली या ग़ैर-असली होना तो हम ही जानते हैं, तुमने तो दोनों को हमारा हुक्म समझकर क़ुबूल किया, इसलिये सवाब भी किसी का कम न होगा)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

काबा शरीफ़ के नमाज़ का क़िब्ला बनने की शुरूआ़त कब हुई?

इसमें सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम का इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है कि हिजरत से पहले मक्का मुकर्रमा में जब नमाज़ फ़र्ज़ हुई उस वक़्त क़िब्ला बैतुल्लाह था या बैतुल-मुक़द्दस? हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु का क़ौल यह है कि पहले ही से क़िब्ला बैतुल-मुक़द्दस था जो हिजरत के बाद भी सोलह-सत्रह महीने तक बाक़ी रहा, उसके बाद बैतुल्लाह को क़िब्ला बनाने के अहकाम नाज़िल हो गये, अलबत्ता रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का अ़मल मक्का मुकर्रमा में यह रहा कि आप हजरे-अस्वद और रुक्ने यमानी के बीच नमाज़ पढ़ते थे ताकि बैतुल्लाह भी सामने रहे और बैतुल-मुक़द्दस का भी सामना हो जाये। मदीना मुनव्वरा पहुँचने के बाद यह मुम्किन न रहा, इसलिये क़िब्ले के बदल जाने की तमन्ना व चाहत पैदा हुई। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

और दूसरे हज़रात ने फ़रमाया कि जब मक्का मुकर्रमा में नमाज़ फ़र्ज़ हुई तो मुसलमानों का पहला क़िब्ला बैतुल्लाह ही था क्योंकि हज़रत इब्राहीम व इस्माईल अ़लैहिमस्सलाम का क़िब्ला भी बैतुल्लाह ही रहा था, और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जब तक मक्का मुकर्रमा में मुक़ीम रहे बैतुल्लाह ही की तरफ़ नमाज़ पढ़ते रहे, फिर हिजरत के बाद आपका क़िब्ला बैतुल-मुक़द्दस क़रार दे दिया गया, और मदीना मुनव्वरा में सोलह-सत्रह महीने आपने बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ नमाज़ पढ़ी, इसके बाद फिर आपका जो पहला क़िब्ला था यानी बैतुल्लाह उसी की तरफ़ नमाज़ में तवज्जोह करने का हुक्म आ गया। तफ़सीरे क़ुर्तुबी में अबू अ़मर के हवाले से इसी को ज़्यादा सही क़ौल क़रार दिया है, और हिक्मत इसकी यह बयान की जाती है कि मदीना मुनव्वरा में तशरीफ़ लाने के बाद चूँकि

यहूदी कबीलों से साबका पड़ा तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको मानूस (क़रीब) करने के लिये अल्लाह के हुक्म से उन्हीं का क़िब्ला इख़्तियार कर लिया, मगर फिर तजुर्बे से साबित हुआ कि ये लोग अपनी हठधर्मी से बाज़ आने वाले नहीं तो फिर आपको अपने असली क़िब्ले यानी बैतुल्लाह की तरफ़ रुख़ करने का हुक्म मिल गया जो आपको अपने पूर्वजों हज़रत इब्राहीम व हज़रत इस्माईल अ़लैहिमस्सलाम का क़िब्ला होने की वजह से तबई तौर पर महबूब (प्यारा) था।

और इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अबुल-आ़लिया रयाही से नक़ल किया है कि हज़रत सालेह अ़लैहिस्सलाम की मस्जिद का क़िब्ला भी बैतुल्लाह की तरफ़ था और फिर अबुल-आ़लिया ने नक़ल किया है कि उनका एक यहूदी से मुनाज़रा हो गया, यहूदी ने कहा कि मूसा अ़लैहिस्सलाम का क़िब्ला बैतुल-मुक़द्दस का सख़रा था। अबुल-आ़लिया रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने कहा कि नहीं! मूसा अ़लैहिस्सलाम बैतुल-मुक़द्दस के सख़रा के पास नमाज़ पढ़ते थे मगर आपका रुख़ बैतुल्लाह ही की तरफ़ होता था। यहूदी ने इनकार किया तो अबुल-आ़लिया ने कहा कि अच्छा मेरे तुम्हारे झगड़े का फ़ैसला हज़रत सालेह अ़लैहिस्सलाम की मस्जिद कर देगी, जो बैतुल-मुक़द्दस के नीचे एक पहाड़ पर है, देखा गया तो उसका क़िब्ला बैतुल्लाह की तरफ़ था।

और जिन हज़रात ने पहला क़ौल इख़्तियार किया है उनके नज़दीक हिक्मत यह थी कि मक्का मुकर्रमा में तो मुश्रिकों से फ़र्क़ और उनसे विरोध का इज़हार करना था, इसलिये उनका क़िब्ला छोड़कर बैतुल-मुक़द्दस को क़िब्ला बना दिया गया, फिर हिजरत के बाद मदीना तय्यिबा में यहूदियों व ईसाईयों से फ़र्क़ करने और उनके विरोध का इज़हार मक़सूद हुआ तो उनका क़िब्ला बदलकर बैतुल्लाह को क़िब्ला बना दिया गया। इसी क़ौलों के भिन्न होने की बिना पर इस आयत की तफ़सीर में भी इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हो गया कि 'अल-क़िब्लतल्लती कुन्-त अ़लैहा' से क्या मुराद है। पहले क़ौल की बिना पर इससे मुराद बैतुल-मुक़द्दस है जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का पहला क़िब्ला था और दूसरे क़ौल की बिना पर इससे मुराद काबा भी हो सकता है क्योंकि वही आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का पहला क़िब्ला था।

और मफ़हूम आयत का दोनों सूरतों में यह है कि हमने क़िब्ले के बदलने को आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की पैरवी करने वाले मुसलमानों के लिये एक इम्तिहान क़रार दिया है ताकि ज़ाहिरी तौर पर भी पता चल जाये कि कौन आपका सही फ़रमाँबरदार है और कौन अपनी राय के पीछे चलता है। चुनाँचे क़िब्ला बदल जाने का हुक्म नाज़िल होने के बाद कुछ कमज़ोर ईमान वाले या वे जिनके दिलों में कुछ निफ़ाक़ (खोट और कुफ़्र छुपा) था इस्लाम से फिर गये और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर यह इल्ज़ाम लगाया कि यह तो अपनी क़ौम के दीन की तरफ़ फिर गये।

कुछ संबन्धित अहकाम

कभी सुन्नत को क़ुरआन के ज़रिये भी मन्सूख़ किया जाता है

इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'अहकामुल-क़ुरआन' में फ़रमाया कि क़ुरआने करीम में कहीं यह स्पष्ट नहीं है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को हिजरत से पहले या हिजरत के

बाद बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ रुख़ करने का हुक्म दिया गया था, बल्कि इसका सुबूत सिर्फ़ आपकी हदीसों और सुन्नत ही से है, तो जो चीज़ सुन्नत के ज़रिये साबित हुई थी क़ुरआन की इस आयत ने उसको मन्सूख़ करके आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का क़िब्ला बैतुल्लाह को बना दिया।

इससे यह भी साबित हो गया कि हदीसे रसूल भी एक हैसियत से क़ुरआन ही है और यह कि कुछ अहकाम वे भी हैं जो क़ुरआन में ज़िक्र नहीं किये गये सिर्फ़ हदीस से साबित हैं, और क़ुरआन उनकी शरई हैसियत को तस्लीम करता है, क्योंकि इसी आयत के आख़िर में यह भी मज़कूर है कि जो नमाज़ें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म से बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ पढ़ी गई वे भी अल्लाह के नज़दीक मोतबर और मक़बूल हैं।

'ख़बरे वाहिद' जबकि मज़बूत क़राईन उसके सुबूत पर मौजूद हों, उससे क़ुरआनी हुक्म मन्सूख़ समझा जा सकता है

बुख़ारी व मुस्लिम और हदीस की तमाम मोतबर किताबों में कई सहाबा किराम की रिवायत से मन्क़ूल है कि जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर क़िब्ले के बदल जाने का हुक्म नाज़िल हुआ और आपने अ़सर की नमाज़ बैतुल्लाह की ओर पढ़ी (और कुछ रिवायतों में इस जगह अ़सर के बजाय ज़ोहर मज़कूर है जैसा कि इब्ने कसीर में है), तो बाज़ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम यहाँ से नमाज़ पढ़कर बाहर गये और देखा कि क़बीला बनू सलमा के लोग अपनी मस्जिद में पहले की तरह बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ नमाज़ पढ़ रहे हैं, तो इन्होंने आवाज़ देकर कहा कि अब क़िब्ला बैतुल्लाह की तरफ़ हो गया है हम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ बैतुल्लाह की तरफ़ नमाज़ पढ़कर आये हैं। उन लोगों ने नमाज़ के बीच ही अपना रुख़ बैतुल-मुक़द्दस से बैतुल्लाह की तरफ़ फेर लिया। नुवैला बिन्ते मुस्लिम की रिवायत में है कि उस वक़्त औ़रतें जो पिछली सफ़ों में थीं आगे आ गईं और मर्द जो अगली सफ़ों में थे पीछे आ गये, और जब रुख़ बैतुल्लाह की तरफ़ बदला गया तो मर्दों की सफ़ें आगे और औ़रतों की पीछे हो गईं। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

बनू सलमा के लोगों ने तो ज़ोहर या अ़सर ही से क़िब्ला बदलने के हुक्म पर अ़मल कर लिया मगर क़ुबा में यह ख़बर अगले दिन सुबह की नमाज़ में पहुँची, जैसा कि बुख़ारी व मुस्लिम में हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से मज़कूर है। क़ुबा वालों ने भी नमाज़ ही के अन्दर अपना रुख़ बैतुल-मुक़द्दस से बैतुल्लाह की तरफ़ फेर लिया। (तफ़सीर इब्ने कसीर व जस्सास)

इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने हदीस की ये अनेक रिवायतें नक़ल करके फ़रमायाः

هذا خبر صحيح مستفيض في ايدى اهل العلم قد تلقوه بالقبول فصار في حيزا التواتر الموجب للعلم.

"यानी यह हदीस अगरचे असल से ख़बरे वाहिद है मगर मज़बूत क़राईन की वजह से इसने तवातुर का दर्जा हासिल कर लिया है जो यक़ीनी इल्म का फ़ायदा देता है।"

मगर हनफ़ी हज़रात और उनके माने हुए फ़ुक़हा जिनका उसूल यह है कि ख़बरे वाहिद (हदीस की एक किस्म) से कोई क़तई हुक्म मन्सूख़ नहीं हो सकता, उन पर यह सवाल अब भी बाक़ी रहता है कि इस हदीस की शोहरत और इसको क़ुबूलियत का दर्जा तो बाद में मिला बनू सलमा और क़ुबा

वालों को तो अचानक एक ही आदमी ने ख़बर दी थी, उस वक़्त इस हदीस को शोहरत और तवातुर का दर्जा हासिल नहीं था, उन्होंने इस पर कैसे अ़मल कर लिया? इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि असल बात यह है कि उन हज़रात और सब सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को पहले से यह मालूम था कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तमन्ना यह है कि आपका क़िब्ला बैतुल्लाह कर दिया जाये और आप इसके लिये दुआ भी कर रहे हैं। इसी चाहत व तमन्ना और दुआ की वजह से उन हज़रात की नज़र में बैतुल-मुक़द्दस को क़िब्ले के तौर पर बाक़ी रहने का हुक्म आईन्दा बाक़ी न रहने का ख़्याल और संभावना ज़रूर पैदा हो गयी थी। इस गुमान व अन्दाज़े की वजह से बैतुल-मुक़द्दस का क़िब्ला बाक़ी रहना गुमान के दर्जे में हो गया था (क़तई और लाज़िमी न रहा था), उसके मन्सूख़ करने के लिये यह ख़बरे वाहिद काफ़ी हो गई, वरना सिर्फ़ ख़बरे वाहिद से क़ुरआन का कोई क़तई फ़ैसला मन्सूख़ हो जाना माक़ूल (दुरुस्त) नहीं।

माइक की आवाज़ पर नमाज़ के अरकान अदा करने पर नमाज़ के फ़ासिद न होने पर इस्तिदलाल

सही बुख़ारी 'बाबु मा जा-अ फ़िल-क़िब्लति' में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की हदीस में जो क़ुबा में क़िब्ले के बदल जाने का हुक्म पहुँचने और उन लोगों के नमाज़ की हालत में बैतुल्लाह की तरफ़ घूम जाने का वाक़िआ ज़िक्र किया, इस पर अ़ल्लामा ऐनी हनफ़ी ने तहरीर फ़रमाया है:

فیه جواز تعلیم من لیس فی الصلوٰة من هو فیها. (عمدة القاری،ص ١٤٨ ج٤)

"यानी इस हदीस से साबित हुआ कि जो शख़्स नमाज़ में शरीक नहीं वह किसी नमाज़ पढ़ने वाले को तालीम व तल्क़ीन कर सकता है।"

और अ़ल्लामा ऐनी ने दूसरी जगह इस हदीस के तहत ये अलफ़ाज़ लिखे हैं:

وفیه استماع المصلی لکلام من لیس فی الصلوٰة فلا یضر صلوٰته (الی) هکذا استنبطه الطحاوی

(عمدة القاری،ص ٢٤٢ ج١)

और हनफ़ी फ़िक़्हा के आ़म फ़ुक़हा ने जो नमाज़ से बाहर वाले किसी शख़्स की इक़्तिदा और इत्तिबा को नमाज़ का फ़ासिद करने वाला कहा है जैसा कि हनफ़िया की आ़म किताबों में मन्क़ूल है, उसका मंशा यह है कि नमाज़ में ग़ैरुल्लाह के हुक्म का इत्तिबा नमाज़ को फ़ासिद करने वाला है, लेकिन अगर कोई शख़्स इत्तिबा अल्लाह के हुक्म का करेगा मगर उस इत्तिबा में कोई दूसरा शख़्स वास्ता (माध्यम) बन जाये वह नमाज़ को फ़ासिद करने वाला नहीं।

फ़ुक़हा (इस्लामी शरीअ़त के मसाईल के माहिर उलेमा) ने जहाँ यह मसला लिखा है कि कोई शख़्स जमाअ़त में शरीक होने के लिये ऐसे वक़्त पहुँचे कि अगली सफ़ पूरी हो चुकी है अब पिछली सफ़ में अकेला रह जाता है तो उसको चाहिये कि अगली सफ़ में से किसी आदमी को पीछे खींचकर अपने साथ मिला ले, इसमें भी यही सवाल आता है कि उसके कहने से जो पीछे आ जायेगा वह

नमाज़ में ग़ैरुल्लाह के हुक्म की पैरवी करेगा, इसलिये उसकी नमाज़ फ़ासिद हो जानी चाहिये, लेकिन किताब 'दुर्रे मुख़्तार' बाबुल-इमामत में इस मसले के मुताल्लिक़ लिखा हैः

ثم نقل تصحیح عدم الفساد فی مسئلة من جذب من الصف فتأخر فهل ثم فرق فلیحرر.

इस पर अ़ल्लामा तहतावी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने तहरीर फ़रमायाः

لِاَنَّهٗ اِمْتَثَلَ اَمْرَ اللّٰهِ

यानी इस सूरत (किसी नमाज़ी को आगे की सफ़ में से पीछे खींच लेने) में नमाज़ फ़ासिद न होने की वजह यह है कि दर हक़ीक़त उस शख़्स ने आने वाले के हुक्म का इत्तिबा नहीं किया बल्कि अल्लाह के हुक्म का इत्तिबा किया है जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़रिये उसको पहुँचा है, कि जब ऐसी सूरत पेश आये तो अगली सफ़ वाले को पीछे आ जाना चाहिये।

इसी तरह अ़ल्लामा शरंबुलाली रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने शरह 'वहबानिया' में इस मसले का ज़िक्र करके पहले नमाज़ के फ़ासिद होने का क़ौल नक़ल किया फिर इसकी तरदीद की। उस किताब के अलफ़ाज़ ये हैं:

اِذَا قِیْلَ لِمُصَلٍّ تقدم فتقدم (الی) فسدت صلٰوته لانه امتثل امرغیر اللّٰه فی الصلٰوة لان امتثاله انما هو لامر رسول اللّٰه صلی اللّٰه علیه وسلم فلا یضراه.

इन तमाम रिवायतों से साबित हुआ कि अगर कोई नमाज़ी ऐसे शख़्स की आवाज़ पर अ़मल करे जो उसके साथ नमाज़ में शरीक नहीं तो उसकी दो सूरतें हैं- एक यह कि ख़ुद उस शख़्स का दिल रखना और इत्तिबा मक़सूद हो, यह तो नमाज़ को फ़ासिद कर देने वाला है, लेकिन अगर उसने कोई शरई हुक्म बतलाया और उसका इत्तिबा नमाज़ी ने कर लिया तो वह दर हक़ीक़त अल्लाह के हुक्म की पैरवी करना है, इसलिये नमाज़ को फ़ासिद (ख़राब) करने वाला नहीं होगा, इसी लिये इमाम तहतावी रह. ने यही फ़ैसला किया है किः

اقول لوقیل بالتفصیل بین کونه امتثل امر الشارع فلا تفسد و بین کونه امتثل امر الداخل مراعاة لخاطره من غیر نظر لا مر الشارع فتفسد لکان حسناً. (طحطاوی علی الدر، ص ۲۴۶ ج ۱)

अब ज़ेर बहस मसले यानी माइक का फ़ैसला कर लेना आसान हो गया, क्योंकि वहाँ उस उपकरण की पैरवी का दूर-दूर भी वहम नहीं हो सकता, ज़ाहिर है कि पैरवी रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इस हुक्म की होती है कि जब इमाम रुकूअ़ करे तो रुकूअ़ करो, जब सज्दा करे तो तुम भी सज्दा करो। उस उपकरण से सिर्फ़ यह मालूम हो जाता है कि अब इमाम रुकूअ़ में गया या सज्दे में जा रहा है, इस इल्म के बाद पैरवी इमाम की करता है न कि उस उपकरण (माइक) के हुक्म की, इमाम की पैरवी एक हुक्मे इलाही है और यह कलाम इस बुनियाद पर है कि माइक की आवाज़ को ऐन इमाम की आवाज़ न मानी जाये बल्कि उसकी नक़ल व हिकायत (आमाल की तर्जुमानी) क़रार दिया जाये, और अहले फ़न उसकी आवाज़ को इमाम की ऐन आवाज़ कहते हैं, उनकी तहक़ीक़ पर तो कोई इश्काल नमाज़ के जायज़ होने में नहीं है। इस मसले की तहक़ीक़ पर नाचीज़ का एक मुस्तक़िल तफ़सीली रिसाला भी प्रकाशित हो चुका है उसको देख लिया जाये। वल्लाहु

सुब्हानहू व तआ़ला आलम।

وَمَاكَانَ اللّٰهُ لِيُضِيْعَ اِيْمَانَكُمْ

"अल्लाह तआ़ला ऐसे नहीं हैं कि तुम्हारे ईमान (से संबन्धित आमाल- जैसे नमाज़ के सवाब) को ज़ाया (और नाक़िस) कर दें"।

यहाँ अगर ईमान से मुराद इसके मशहूर व परिचित मायने लिये जायें तो आयत का मतलब यह है कि क़िब्ला बदल जाने और बैतुल्लाह की तरफ़ घूम जाने पर जो कुछ बेवक़ूफ़ लोगों को यह ख़्याल पैदा हुआ कि ये दीन से फिर गये और इनका ईमान ही ज़ाया हो गया, इसका जवाब दिया कि अल्लाह तआ़ला तुम्हारे ईमान को ज़ाया करने वाले नहीं, बेवक़ूफ़ लोगों के कहने पर कान न धरें। और हदीस की कुछ रिवायतों और उलेमा व पहले बुज़ुर्गों के अक़वाल में इस जगह ईमान की तफ़सीर नमाज़ से की गई है और मायने यह हैं कि जो नमाज़ें पहले क़िब्ले यानी बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ पढ़ी गई हैं अल्लाह तआ़ला उनको ज़ाया करने वाला नहीं, वे तो सही और मक़बूल हो चुकीं, क़िब्ला बदल जाने के हुक्म का पिछली नमाज़ों पर कोई असर नहीं होगा।

सही बुख़ारी में हज़रत इब्ने आ़ज़िब रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से, और तिर्मिज़ी में हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से मन्क़ूल है कि जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का क़िब्ला बैतुल्लाह को बना दिया गया तो लोगों ने सवाल किया कि जो मुसलमान उस ज़माने में इन्तिक़ाल कर गये जबकि नमाज़ बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ हुआ करती थी और बैतुल्लाह की तरफ़ नमाज़ पढ़ना उनको नसीब नहीं हुआ, उनका क्या हाल होगा? इस पर यह आयत नाज़िल हुई जिसमें नमाज़ को ईमान के लफ़्ज़ से ताबीर करके वाज़ेह कर दिया कि उनकी सब नमाज़ें सही व मक़बूल हो चुकी हैं, उनके मामले में क़िब्ले के बदल जाने का कोई असर नहीं पड़ेगा।

قَدْ نَرٰى تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِي السَّمَآءِ ۚ فَلَنُوَلِّيَنَّكَ قِبْلَةً تَرْضٰهَا ۪ فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ؕ وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ شَطْرَهٗ ؕ وَاِنَّ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ لَيَعْلَمُوْنَ اَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّهِمْ ؕ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا يَعْمَلُوْنَ ۝

क़द् नरा तक़ल्लु-ब वज्हि-क फ़िस्समा-इ फ़-लनुवल्लियन्न-क क़िब्लतन् तर्ज़ाहा फ़-वल्लि वज्ह-क शत्रल्-मस्जिदिल्-हरामि, व हैसु मा कुन्तुम् फ़-वल्लू वुजू-हकुम् शत्रहू, व इन्नल्लज़ी-न ऊतुल्-किता-ब	बेशक हम देखते हैं बार-बार उठना तेरे मुँह का आसमान की तरफ़, सो अलबत्ता फेरेंगे हम तुझको जिस क़िब्ले की तरफ़ तू राज़ी है। अब फेर मुँह अपना मस्जिदे हराम की तरफ़, और जिस जगह तुम हुआ करो फेरो मुँह उसी की तरफ़। और जिनको मिली है

ल-यअ्लमू-न अन्नहुल्-हक़्क़ु मिर्रब्बिहिम, व मल्लाहु बिग़ाफ़िलिन् अम्मा यअ्मलून (144)	किताब अलबत्ता जानते हैं कि यही ठीक है उनके रब की तरफ़ से, और अल्लाह बेख़बर नहीं उन कामों से जो वे करते हैं। (144)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो दिल से काबा के क़िब्ला होने की इच्छा रखते हैं और वही की उम्मीद में बार-बार आसमान की तरफ़ नज़र उठाकर भी देखते हैं कि शायद फ़रिश्ता हुक्म ले आये सो) हम आपके मुँह का (यह) बार-बार आसमान की तरफ़ उठना देख रहे हैं (और चूँकि हमें आपकी ख़ुशी पूरी करनी मन्ज़ूर है) इसलिए (हम वायदा करते हैं कि) आपको उसी क़िब्ले की तरफ़ मुतवज्जह कर देंगे जिसके लिए आपकी मर्ज़ी है। (लो फिर हम हुक्म ही दिये देते हैं कि) अब से अपना चेहरा नमाज़ में मस्जिदे हराम (यानी काबा शरीफ़) की तरफ़ किया कीजिए, और (यह हुक्म सिर्फ़ आपके लिये मख़्सूस नहीं बल्कि सब लोग पैग़म्बर भी और उम्मती भी) तुम सब लोग जहाँ कहीं भी मौजूद हो (चाहे मदीना मुनव्वरा में या और जगह, यहाँ तक कि ख़ुद बैतुल-मुक़द्दस में भी) अपने चेहरों को उसी (मस्जिदे हराम) की तरफ़ किया करो। (और इस क़िब्ले के मुक़र्रर होने के मुताल्लिक़) ये अहले किताब भी (आ़म तौर पर अपनी किताबों की भविष्यवाणी की वजह से कि आख़िरी नबी का क़िब्ला इस तरह होगा) यक़ीनन जानते हैं कि यह हुक्म बिल्कुल ठीक है, (और) उनके परवर्दिगार ही की तरफ़ से है (मगर दुश्मनी और मुख़ालफ़त की वजह से मानते नहीं) और अल्लाह तआ़ला उनकी कार्रवाईयों से बेख़बर नहीं है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत के पहले जुमले में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के काबे के लिये तमन्ना व शौक़ का ज़िक्र है, इस शौक़ व चाहत के अनेक कारण और वुजूहात बयान की गई हैं और सब में कोई टकराव और विरोधाभास नहीं, वे सब कारण और वुजूहात हो सकती हैं। जैसे यह कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम वही नाज़िल होने और नुबुव्वत के अ़ता होने से पहले अपनी तबीयत व फ़ितरत से मिल्लते इब्राहीमी के ताबे काम करते थे और वही नाज़िल होने के बाद क़ुरआन ने भी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की शरीअ़त को मिल्लते इब्राहीमी के मुताबिक़ क़रार दिया और हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम व हज़रत इस्माईल अ़लैहिस्सलाम का क़िब्ला बैतुल्लाह था, इसलिये आपकी दिली इच्छा यही थी कि आपका और मुसलमानों का क़िब्ला भी वही काबा-ए-बैतुल्लाह क़रार दे दिया जाये।

यह वजह भी थी कि अ़रब के क़बीले भी चूँकि मिल्लते इब्राहीमी को कम से कम ज़बान से मानते थे और उसकी पैरवी के दावेदार थे। मुसलमानों का क़िब्ला काबा हो जाने से उनके इस्लाम की तरफ़ माईल हो जाने की उम्मीद और अपेक्षा थी और पहले क़िब्ले बैतुल-मुक़द्दस में जो अहले किताब

(यहूदी व ईसाई लोगों) की मुवाफ़क़त की उम्मीद की जा सकती थी वह सोलह-सत्रह महीने के अ़मल के बाद ख़त्म हो चुकी थी, क्योंकि मदीना मुनव्वरा के यहूद को इसकी वजह से इस्लाम से कोई क़ुर्ब (नज़दीकी) होने के बजाय दूरी ही बढ़ी थी।

बहरहाल रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इच्छा यह थी कि मुसलमानों का क़िब्ला बैतुल्लाह यानी काबे को क़रार दे दिया जाये, और चूँकि अल्लाह की बारगाह के ख़ास और क़रीबी बन्दे अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम अपनी कोई इच्छा और दरख़्वास्त हक़ तआ़ला की बारगाह में उस वक़्त तक पेश नहीं करते जब तक उनको वह दरख़्वास्त पेश करने की इजाज़त का इल्म न हो जाये। इससे समझा जाता है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को यह दुआ़ करने की इजाज़त पहले मिल चुकी थी और आप इसकी दुआ़ कर रहे थे और इसकी क़ुबूलियत के उम्मीदवार थे, इसलिये बार-बार आसमान की तरफ़ नज़र उठाते थे कि शायद कोई फ़रिश्ता हुक्म लेकर आ जाये। उक्त आयत में इस कैफ़ियत को बयान फ़रमाकर पहले तो दुआ़ की क़ुबूलियत का वायदा फ़रमाया- 'फ़-लनुवल्लियन्न-क' यानी हम आपका रुख़ उसी की तरफ़ फेर देंगे जो दिशा आपको पसन्द है। इसके फ़ौरन बाद ही यह रुख़ फेरने का हुक्म भी नाज़िल फ़रमा दिया। 'फ़-वल्लि वज्ह-क' फ़रमाकर।

इस अन्दाज़ और व्यवहार में एक ख़ास लुत्फ़ था कि पहले वायदे की ख़ुशी हासिल हो, फिर वायदे के पूरा होने की ख़ुशी, गोया इससे डबल ख़ुशी हासिल हो जाये (यह सब मज़मून तफ़सीरे क़ुर्तुबी, तफ़सीरे जस्सास और तफ़सीरे मज़हरी से लिया गया है)।

क़िब्ले की तरफ़ रुख़ करने का मसला

यह तहक़ीक़ पहले आ चुकी है कि अल्लाह तआ़ला के एतिबार से तो सारी दिशायें और सारी जेहतें बराबर हैं। जैसा कि फ़रमायाः

قُلْ لِلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ

(आप कह दीजिये कि पूरब व पश्चिम अल्लाह ही के लिये हैं) लेकिन उम्मत की मस्लेहतों के लिये हिक्मत का तक़ाज़ा यही था कि किसी एक दिशा को तमाम दुनिया में फैले हुए मुसलमानों के लिये क़िब्ला बनाकर सब में एक दीनी एकता का अ़मली प्रदर्शन किया जाये, वह दिशा बैतुल-मुक़द्दस भी हो सकती थी मगर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तमन्ना के अनुसार काबे को क़िब्ला बनाना तजवीज़ कर लिया गया और इसी का हुक्म इस आयत में दिया गया। इसका तक़ाज़ा यह था कि इस जगह 'फ़-वल्लि वज्ह-क इलल् कअ़्बति औ इला बैतिल्लाहि' (कि अपने चेहरे को काबा या बैतुल्लाह की तरफ़ फेर लीजिये) फ़रमाया जाता, मगर क़ुरआने हकीम ने यह उनवान बदलकर 'शत्रल् मस्जिदिल् हरामि' के अलफ़ाज़ इख़्तियार फ़रमाये, इससे काबे की तरफ़ रुख़ करने के बारे में कई अहम मसाईल वाज़ेह हो गये।

अव्वल यह कि अगरचे असल क़िब्ला बैतुल्लाह है जिसको काबा कहा जाता है लेकिन यह ज़ाहिर है कि असल बैतुल्लाह का क़िब्ला बनाना (यानी उसकी तरफ़ रुख़ करना) उसी जगह तक हो सकता है जहाँ तक बैतुल्लाह नज़र आता है, जो लोग वहाँ से दूर हैं और बैतुल्लाह उनकी नज़रों से ग़ायब है अगर उन पर यह पाबन्दी लगाई जाये कि ऐन बैतुल्लाह की तरफ़ रुख़ करो तो इसकी तामील बहुत

दुश्वार हो जाये। अन्दाज़ा लगाने के ख़ास उपकरणों और हिसाबात के ज़रिये भी सही दिशा का निर्धारण दूर के शहरों में मुश्किल और ग़ैर-यक़ीनी हो जाये, और शरीअ़ते मुहम्मदिया का मदार सहूलत व आसानी पर रखा गया है, इसलिये बजाय बैतुल्लाह या काबे के, मस्जिदे हराम का लफ़्ज़ रखा गया जो बैतुल्लाह की तुलना में बहुत ज़्यादा बड़े और फैले हुए रक़बे पर मुश्तमिल है, उसकी तरफ़ रुख़ फेर लेना दूर-दूर तक लोगों के लिये आसान है।

फिर एक दूसरी सहूलत लफ़्ज़ 'शत्र' इख़्तियार करके दे दी गई, वरना इससे मुख़्तसर लफ़्ज़ 'इलल् मस्जिदिल् हरामि' था, इसको छोड़कर 'शत्रल् मस्जिदिल् हरामि' फ़रमाया गया। 'शत्र' दो मायने के लिये इस्तेमाल होता है- एक आधी चीज़, दूसरे चीज़ की दिशा और रुख़। मुफ़स्सिरीन हज़रात का इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि इस जगह शत्र से मुराद दिशा और रुख़ है। तो इस लफ़्ज़ ने यह बता दिया कि दूर के मुल्कों में यह भी ज़रूरी नहीं कि ख़ास मस्जिदे हराम ही की तरफ़ हर एक का रुख़ हो जाये तो नमाज़ दुरुस्त हो, बल्कि मस्जिदे हराम की दिशा काफ़ी है। (बहरे मुहीत)

मिसाल के तौर पर पूर्वी मुल्कों हिन्दुस्तान व पाकिस्तान वग़ैरह के लिये पश्चिम की ओर मस्जिदे हराम की दिशा है तो पश्चिम की तरफ़ रुख़ कर लेने से क़िब्ले की तरफ़ रुख़ करने का फ़र्ज़ अदा हो जायेगा। और चूँकि गर्मी, सर्दी के मौसमों में पश्चिम की दिशा में भी इख़्तिलाफ़ होता रहता है इसलिये फ़ुक़हा हज़रात ने उस दिशा को पश्चिम की दिशा और क़िब्ला क़रार दिया है जो गर्मी व सर्दी के मौसम की दोनों पश्चिमों के दरमियान है, और रियाज़ी के क़ायदों के हिसाब से यह सूरत होगी कि गर्मी की पश्चिम और सर्दी की पश्चिम के बीच 48 डिग्री तक भी अगर दायें या बायें माईल हो जाये तो क़िब्ले की दिशा और रुख़ का छूटना नहीं माना जायेगा, नमाज़ दुरुस्त हो जायेगी। रियाज़ी (हिसाब) की पुरानी और मशहूर किताब 'शरह चुग़मनी बाब 4 पेज 66 में दोनों पश्चिमों का फ़ासला यही 48 डिग्री क़रार दिया है।

नोटः- हज़रत वालिद साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी किताब 'जवाहिरुल-फ़िक़्ह' में फ़ुक़हा का दूसरा क़ौल ज़िक्र किया है कि 45 दर्जे दायें या बायें माईल होने (झुकने) से क़िब्ले की दिशा व रुख़ से हटना नहीं माना जायेगा। **मुहम्मद तक़ी उस्मानी**

क़िब्ले का रुख़ मालूम करने के लिये शरई तौर पर उपकरणों और रियाज़ी के हिसाबात पर मदार नहीं

इससे उन लोगों की जहालत भी वाज़ेह हो गई जिन्होंने हिन्दुस्तान व पाकिस्तान की बहुत सी मस्जिदों के क़िब्ले के रुख़ में मामूली सा फ़र्क़ दो चार डिग्री का देखकर यह फ़ैसला कर दिया कि इनमें नमाज़ नहीं होती, यह सरासर जहालत है और बिना वजह मुसलमानों में फूट व बिखराव पैदा करना है।

इस्लामी शरीअ़त चूँकि क़ियामत तक आने वाली नस्लों के लिये और पूरी दुनिया के मुल्कों के लिये है इसलिये शरीअ़त के अहकाम को हर शोबे में इतना आसान रखा गया है कि हर गाँव, जंगल, पहाड़, द्वीप में बसने वाले मुसलमान इस पर अपने मुशाहदे (आँखों से देखकर और अनुभव) से अ़मल

कर सकें। किसी मर्हले में हिसाबात, रियाज़ी या दूसरे अन्दाज़ा करने के उपकरणों वग़ैरह की ज़रूरत न पड़े। 48 डिग्री तक की विस्तृत पश्चिम की दिशा पूर्वी इलाक़े वालों का क़िब्ला है, इसमें पाँच दस डिग्री का फ़र्क़ हो भी जाये तो उससे नमाज़ों पर कोई असर नहीं पड़ता और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की एक हदीस से इसकी और वज़ाहत हो जाती है, जिसके अलफ़ाज़ ये हैं:

ما بین المشرق والمغرب قبلة (رواہ الترمذی عن ابی ہریرةؓ)

यानी पूरब व पश्चिम के बीच क़िब्ला है। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का यह इरशाद मदीना तय्यिबा वालों के लिये था क्योंकि उनका क़िब्ला पूरब व पश्चिम के बीच दक्षिण की तरफ़ स्थित था। इस हदीस ने गोया 'शत्रल-मस्जिदिल् हरामि' के लफ़्ज़ की तशरीह (व्याख्या) कर दी, कि मस्जिदे हराम की दिशा काफ़ी है, अलबत्ता मस्जिद की बुनियाद रखते वक़्त इसकी कोशिश बेहतर है कि ठीक बैतुल्लाह के रुख़ से जितना क़रीब हो सके वह कर लिया जाये। सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम और पहले बुज़ुर्गों का तरीक़ा तो इस खोज के लिये सीधा-सादा यह था कि जिस जगह सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की बनाई हुई कोई मस्जिद हुई उससे उसके आस-पास की मस्जिदों का रुख़ सीधा कर लिया, फिर उनके आस-पास का उनके ज़रिये, इस तरह तमाम आ़लम (दुनिया) में मस्जिदों का रुख़ मुक़र्रर किया गया है। इसलिये दूर के शहरों और मुल्कों में क़िब्ले का रुख़ मालूम करने का सही तरीक़ा जो पहले बुज़ुर्गों से चला आता है यह है कि जिन शहरों में पुरानी मस्जिदें मौजूद हैं उनकी पैरवी की जाये, क्योंकि अक्सर मुल्कों और शहरों में हज़राते सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात ने मस्जिदों की बुनियादें डाली और क़िब्ले का रुख़ मुतैयन फ़रमाया है, और फिर उन्हें देखकर दूसरी बस्तियों में मुसलमानों ने अपनी-अपनी मस्जिदें बनाई हैं।

इसलिये मुसलमानों की ये सब मसाजिदें क़िब्ले का रुख़ मालूम करने के लिये काफ़ी वाफ़ी हैं। उनमें बिना वजह फ़ल्सफ़ी शुब्हात निकालना शरई तौर पर पसन्दीदा नहीं, बल्कि नापसन्दीदा और चिंता का सबब है, बल्कि कई बार इन तशवीश और चिंताओं में पड़ने का यह नतीजा होता है कि हज़राते सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम, ताबिईन हज़रात और आ़म मुसलमानों पर बदगुमानी हो जाती है कि उनकी नमाज़ें और क़िब्ला दुरुस्त नहीं, हालाँकि यह बिल्कुल बातिल और सख़्त जसारत (दुस्साहस) है। आठवीं सदी हिजरी के मशहूर व नामचीन आ़लिम इब्ने रजब हंबली रहमतुल्लाहि अ़लैहि इसी बिना पर क़िब्ले के रुख़ को मालूम करने में संबन्धित उपकरणों और हिसाबी खोज-बीन में पड़ने को मना फ़रमाते हैं। उनके अलफ़ाज़ ये हैं:

واما علم التسییر فاذا تعلم منه ما یحتاج الیه للاستهداء و معرفة القبلة والطرق کان جائزا عند الجمهور وما زاد علیه فلا حاجة الیه وهو یشغل عما هو اهم منه وربما أدّی التدقیق فیه الی اساءة الظن بمحاریب المسلمین فی امصارهم کما وقع فی ذلك کثیر من اهل هذا العلم قدیمًا وحدیثًا وذلك یفضی الی اعتقاد خطاء الصحابة والتابعین فی صلواتهم فی کثیر من الامصار وهو باطل وقد انکر الامام احمد الاستدلال بالجدی وقال انما وردما بین المشرق والمغرب قبلة.

तर्जुमाः- लेकिन इल्मे तसयीर सो इसको इस क़द्र हासिल करना जमहूर के नज़दीक जायज़

है जिससे राह पाने, क़िब्ले और रास्तों की पहचान हो सके, इससे ज़्यादा की ज़रूरत नहीं कि वह (यानी जिसको सीखना) ज़रूरी चीज़ों से ग़ाफ़िल कर देगा और बाज़ मर्तबा आकाशीय चीज़ों की ज़्यादा खोज-बीन और तहक़ीक़ में पड़ना आम मुस्लिम मुल्कों और इलाक़ों में जो मुसलमानों की मस्जिदें हैं उनके बारे में बदगुमानी पैदा कर देता है। इस फ़न में मशग़ूल होने वालों को हमेशा इस किस्म के शुब्हात पेश आते हैं। इससे यह भी एतिक़ाद पैदा होगा कि बहुत से शहरों में सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अलैहिम की नमाज़ें ग़लत तरीक़े पर थीं और यह बिल्कुल बेहूदा व बातिल है। इमाम अहमद रहमतुल्लाहि अलैहि ने जदी (सतारे) से (जिसको हमारे मुल्क व इलाक़े में क़ुतब कहते हैं) क़िब्ले की दिशा व रुख़ के बारे में दलील पकड़ने को मना किया और फ़रमाया कि हदीस शरीफ़ में (सिर्फ़) पूरब व पश्चिम के बीच क़िब्ला आया है, यानी पूरब व पश्चिम के बीच क़िब्ले की पूरी दिशा और रुख़ है।

और जिन जंगलों या नई आबादियों वग़ैरह में पुरानी मस्जिदें मौजूद न हों वहाँ शरई तरीक़ा जो सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम व ताबिईन हज़रात के तरीक़े से साबित है, यह है कि सूरज व चाँद और क़ुतब वग़ैरह के मशहूर व परिचित माध्यमों से अन्दाज़े क़ायम करके क़िब्ले का रुख़ मुतैयन कर लिया जाये, अगर इसमें मामूली फ़र्क़ भी रहे (यानी बिल्कुल सौ फ़ीसद सही न हो) तो उसको नज़र-अन्दाज़ किया जाये, क्योंकि 'बदाये' के मुसन्निफ़ की वज़ाहत के मुताबिक़ इन दूर-दराज़ के इलाक़ों में सोच-विचार और अन्दाज़े से क़ायम किया हुआ रुख़ ही काबे के क़ायम-मक़ाम है, और उसी पर अहकाम जारी हैं। जैसे शरीअ़त ने नींद को हवा ख़ारिज होने के क़ायम-मक़ाम क़रार देकर उसी पर वुज़ू के टूटने का हुक्म कर दिया, या सफ़र को परेशानियों का क़ायम-मक़ाम क़रार देकर बिना किसी क़ैद के सफ़र पर छूट और रियायतें मुरत्तब कर दीं, चाहे वास्तव में मशक़्क़त और परेशानी हो या न हो, इसी तरह दूर-दराज़ के शहरों और मुल्कों में मशहूर व परिचित निशानात व अलामात के ज़रिये क़िब्ले का जो रुख़ अन्दाज़े और ग़ौर-फ़िक्र से क़ायम किया जायेगा वही शरई तौर पर काबे के क़ायम-मक़ाम होगा। अल्लामा बहरूल-उलूम ने 'रसाईलुल-अरकान' में इसी मज़मून को निम्नलिखित अलफ़ाज़ में बयान किया है:

والشرط وقوع المسامتة على حسب ما يرى المصلى ونحن غير مامورين بالمسامتة على ما يحكم به الالات الرصدية ولهذا افتوا أن الانحراف المفسدان يتجاوز المشارق و المغارب. (رسائل الاركان، ص ٥٣)

तर्जुमाः और क़िब्ले की तरफ़ रुख़ करने में शर्त व ज़रूरी सिर्फ़ यह है कि नमाज़ी की राय और अन्दाज़े के मुवाफ़िक़ काबे की तरफ़ रुख़ हो जाये और हम इसके मुकल्लफ़ (पाबन्द) नहीं कि रुख़ और काबे के सामने होने का वह दर्जा पैदा करें जो दिशाओं को पहचानने के संबन्धित उपकरणों के ज़रिये हासिल किया जा सकता है, इसलिये आम उलेमा का फ़तवा यह है कि रुख़ से फिरना जिससे नमाज़ फ़ासिद हो जाये वह माना जायेगा जिसमें पूरब व पश्चिम का तफ़ावुत (फ़र्क़) हो जाये।

इस मसले की मुकम्मल तशरीह (वज़ाहत) और हिसाबात के ज़रिये क़िब्ले के रुख़ का पता लगाने के बारे में विभिन्न तरीक़े और उनकी शरई हैसियत पर मुफ़स्सल कलाम मेरे रिसाले "सिम्ते क़िब्ला"

में देखा जा सकता है।

وَلَئِنْ اَتَيْتَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ بِكُلِّ اٰيَةٍ مَّا تَبِعُوْا قِبْلَتَكَ ۚ وَمَا اَنْتَ بِتَابِعٍ قِبْلَتَهُمْ ۚ وَمَا بَعْضُهُمْ بِتَابِعٍ قِبْلَةَ بَعْضٍ ۚ وَلَئِنِ اتَّبَعْتَ اَهْوَآءَهُمْ مِّنْ بَعْدِ مَا جَآءَكَ مِنَ الْعِلْمِ ۙ اِنَّكَ اِذًا لَّمِنَ الظّٰلِمِيْنَ ۝

व लइन् अतैतल्लज़ी-न ऊतुल्-किता-ब बिकुल्लि आयतिम्-मा तबिअू क़िब्ल-त-क व मा अन्-त बिताबिअिन् क़िब्ल-तहुम् व मा बअ्ज़ुहुम् बिताबिअिन् क़िब्ल-त बअ्ज़िन्, व ल-इनित्तबअ्-त अह्वा-अहुम् मिम्-बअ्दि मा जाअ-क मिनल्-अिल्मि इन्न-क इज़ल्-लमिनज़्ज़ालिमीन (145)	और अगर तू लाये अहले किताब के पास सारी निशानियाँ तो भी न मानेंगे तेरे क़िब्ले को, और न तू माने उनका क़िब्ला, और न उनमें एक मानता है दूसरे का क़िब्ला, और अगर तू चला उनकी इच्छाओं पर उस इल्म के बाद जो तुझको पहुँचा तो बेशक तू भी हुआ उन बेइन्साफ़ों में। (145)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (बावजूद उन लोगों के सब कुछ समझने के उनकी ज़िद की हालत यह थी कि) अगर आप (इन) अहले किताब के सामने तमाम (दुनिया भर की) दलीलें (जमा करके) पेश कर दें तब भी ये (कभी) आपके क़िब्ले को क़ुबूल न करें। और (उनकी मुवाफ़क़त की उम्मीद इसलिये न रखनी चाहिये कि आपका क़िब्ला भी मन्सूख़ होने वाला नहीं, इसलिये) आप भी उनके क़िब्ले को क़ुबूल नहीं कर सकते (फिर कोई सूरत मुवाफ़क़त की बाक़ी नहीं रही) और (जैसा कि उन अहले किताब को आप से ज़िद है उनमें आपस में भी मुवाफ़क़त नहीं, क्योंकि) उनका कोई (फ़रीक़) भी दूसरे (फ़रीक़) के क़िब्ले को क़ुबूल नहीं करता (जैसे यहूद ने बैतुल-मुक़द्दस ले रखा था और ईसाईयों ने पूरब की दिशा को क़िब्ला बना रखा था) और (ख़ुदा न करे आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तो किसी तरह उनके मन्सूख़ हुए क़िब्ले और ग़ैर-मशरू को ले ही नहीं सकते, क्योंकि) अगर आप उनके (उन) नफ़्सानी ख़्यालात को (चाहे वह वे असल में आसमानी हुक्म रहे हों लेकिन अब मन्सूख़ होने की वजह से उन पर अ़मल करना ख़ालिस नफ़्सानी तास्सुब है, सो अगर आप ऐसे ख़्यालात को) अपना लें (और वह भी) आपके पास (यक़ीनी) इल्म (यानी वही) आने के बाद तो यक़ीनन आप (अल्लाह अपनी पनाह में रखे) ज़ालिमों में शुमार होने लगें (जो कि हुक्म को छोड़ने वाले हैं और आपका ज़ालिम होना मासूम यानी गुनाहों और ग़लतियों से सुरक्षित होने की वजह से असंभव है, इसलिये यह भी मुहाल (नामुम्किन) है कि आप उनके ख़्यालात को जिनमें से उनका क़िब्ला भी है, क़ुबूल कर लें)।

मआरिफ़ व मसाईल

وَمَآ اَنْتَ بِتَابِعٍ قِبْلَتَهُمْ

"और आप भी उनके क़िब्ले को क़ुबूल नहीं कर सकते" में यह ऐलान कर दिया गया कि अब क़ियामत तक के लिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का क़िब्ला बैतुल्लाह ही रहेगा। इससे यहूद व ईसाईयों के इन ख़्यालात को ख़त्म करना मक़सूद था कि मुसलमानों के क़िब्ले को तो कोई क़रार (ठहराव) नहीं, पहले बैतुल्लाह था, फिर बैतुल-मुक़द्दस हो गया, फिर बैतुल्लाह हो गया, अब भी मुम्किन है कि फिर दोबारा बैतुल-मुक़द्दस ही को क़िब्ला बना लें। (बहरे मुहीत)

وَلَئِنِ اتَّبَعْتَ اَهْوَآءَهُمْ

"और अगर आप उनके नफ़्सानी ख़्यालात को क़ुबूल कर लें" यह ख़िताब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को एक मुहाल (असंभव) बात को फ़र्ज़ करने के तौर पर है, जिसके वाक़े होने का कोई गुमान व गुंजाईश नहीं, और दर असल सुनाना उम्मते मुहम्मदिया को है कि इसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) ऐसी चीज़ है कि फ़र्ज़ करो (जबकि ऐसा हो ही नहीं सकता) अगर ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी ऐसा करें तो वह भी ज़ालिम क़रार पायें।

اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَعْرِفُوْنَهٗ كَمَا يَعْرِفُوْنَ اَبْنَآءَهُمْ ۭ وَاِنَّ فَرِيْقًا مِّنْهُمْ لَيَكْتُمُوْنَ الْحَقَّ وَھُمْ يَعْلَمُوْنَ ۝ اَلْحَقُّ مِنْ رَّبِّكَ فَلَا تَكُوْنَنَّ مِنَ الْمُمْتَرِيْنَ ۝

अल्लज़ी-न आतैनाहुमुल्-किता-ब यअ़्रिफ़ूनहू कमा यअ़्रिफ़ू-न अब्ना-अहुम, व इन्-न फ़रीक़म्-मिन्हुम् ल-यक्तुमूनल्-हक़्-क़ व हुम् यअ़्लमून (146) अल्-हक़्क़ु मिर्रब्बि-क फ़ला तकूनन्-न मिनल्-मुम्तरीन (147) ✿	जिनको हमने दी है किताब पहचानते हैं उसको जैसे पहचानते हैं अपने बेटों को, और बेशक एक फ़िर्क़ा उनमें से छुपाते हैं हक़ को जानकर। (146) हक़ वही है जो तेरा रब कहे, फिर तू न हो शक लाने वाला। (147) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(इससे पहली आयत में अहले किताब का मुसलमानों के क़िब्ले को दिल में हक़ जानने और ज़बान से न मानने का ज़िक्र था, इस आयत में उन्हीं अहले किताब यानी यहूदी व ईसाईयों का क़िब्ले वाले यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इसी तरह दिल में हक़ जानने और ज़बान से न

मानने का बयान है।) जिन लोगों को हमने किताब (तौरात व इन्जील) दी है वे लोग इन (यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) को (तौरात व इन्जील में आई हुई निशानियों के सबब रसूल होने की हैसियत से) ऐसा (बिना शक व शुब्हे के) पहचानते हैं जैसा कि अपने बेटों को (उनकी सूरत से) पहचानते हैं, (कि बेटे की सूरत देखकर कभी शुब्हा नहीं होता कि यह कौन शख़्स है, मगर पहचान कर भी सब मुसलमान नहीं होते, बल्कि कुछ तो ईमान ले आये) और कुछ उनमें से (ऐसे हैं कि इस) हक़ को इसके बावजूद कि ख़ूब जानते हैं (मगर) छुपाते हैं (हालाँकि) यह हक़ बात अल्लाह की जानिब से (साबित हो चुकी) है, सो (ऐसे सही मामले के बारे में जो अल्लाह की तरफ़ से साबित हो चुका है, हर-हर फ़र्द को कहा जा सकता है कि) हरगिज़ शक व शुब्हा लाने वालों में शुमार न होना।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को रसूल की हैसियत से पहचानने की तश्बीह अपने बेटों को पहचानने के साथ दी गई है। कि ये लोग जिस तरह अपने बेटों को पूरी तरह पहचानते हैं उनमें कभी संदेह व धोखा नहीं होता इसी तरह तौरात व इन्जील में जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़ुशख़बरी और आपकी स्पष्ट अ़लामतों व निशानियों का ज़िक्र आया है उनके ज़रिये ये लोग रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को भी यक़ीनी तौर से जानते पहचानते हैं, उनका इनकार सिर्फ़ दुश्मनी और हठधर्मी की वजह से है।

यहाँ यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि पूरी तरह पहचानने के लिये बेटों की मिसाल दी गई है, माँ बाप की मिसाल नहीं दी, हालाँकि आदमी अपने माँ-बाप को भी आ़म तौर पर ख़ूब पहचानता है। वजह यह है कि बेटों की पहचान माँ-बाप की पहचान की तुलना में बहुत ज़्यादा है, क्योंकि इनसान अपने बेटों को पैदाईश से लेकर अपने हाथों में पालता है, उनके बदन का कोई हिस्सा ऐसा नहीं होता जो माँ-बाप की नज़र से ओझल रहा हो, बख़िलाफ़ माँ-बाप के कि उनके छुपे हुए अंगों पर औलाद की कभी नज़र नहीं होती।

इस बयान से यह भी स्पष्ट हो गया कि यहाँ बेटों को बेटा होने की हैसियत से पहचानना मुराद नहीं, क्योंकि उसकी निस्बत (रिश्ता व ताल्लुक़) तो इनसान पर संदिग्ध हो सकती है कि मुम्किन है बीवी ने ख़ियानत (बददियानती) की हो और यह बेटा अपना न हो। बल्कि मुराद उनकी शक्ल व सूरत वग़ैरह का पहचानना है, कि बेटा वास्तव में अपना हो या न हो मगर जिसको बेटा होने की हैसियत से पालता है उसकी शक्ल व सूरत के पहचानने में कभी शुब्हा और धोखा नहीं होता।

وَلِكُلٍّ وِّجْهَةٌ هُوَ مُوَلِّيهَا فَاسْتَبِقُوا الْخَيْرٰتِ ۚ اَيْنَ مَا تَكُوْنُوْا يَاْتِ بِكُمُ اللّٰهُ جَمِيْعًا ۚ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝ وَمِنْ حَيْثُ خَرَجْتَ فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۚ وَاِنَّهٗ لَلْحَقُّ مِنْ رَّبِّكَ ۚ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ۝ وَمِنْ حَيْثُ خَرَجْتَ فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۚ وَحَيْثُ مَا

كُنْتُمْ فَوَلُّوا وُجُوهَكُمْ شَطْرَهُ لِئَلَّا يَكُونَ لِلنَّاسِ عَلَيْكُمْ حُجَّةٌ إِلَّا الَّذِينَ ظَلَمُوا مِنْهُمْ فَلَا تَخْشَوْهُمْ وَاخْشَوْنِي وَلِأُتِمَّ نِعْمَتِي عَلَيْكُمْ وَلَعَلَّكُمْ تَهْتَدُونَ

व लिकुल्लिव्-विज्हतुन् हु-व मुवल्लीहा फ़स्तबिक़ुल-ख़ैराति, ऐ-न मा तकूनू यअ्ति बिकुमुल्लाहु जमीअ़न्, इन्नल्ला-ह अ़ला कुल्लि शैइन् क़दीर (148) व मिन् हैसु ख़रज्-त फ़-वल्लि वज्ह-क शतरल्-मस्जिदिल्-हरामि, व इन्नहू लल्हक़्क़ु मिर्रब्बि-क, व मल्लाहु बिग़ाफ़िलिन् अ़म्मा तअ्मलून (149) व मिन् हैसु ख़रज्-त फ़-वल्लि वज्ह-क शतरल्-मस्जिदिल्-हरामि, व हैसु मा कुन्तुम् फ़-वल्लू वुजूहकुम् शतरहू लिअल्ला यकू-न लिन्नासि अ़लैकुम् हुज्जतुन्, इल्लल्लज़ी-न ज़-लमू मिन्हुम् फ़ला तख़्शौहुम् वख़्शौनी, व लि-उतिम्-म निअ्मती अ़लैकुम् व लअ़ल्लकुम् तह्तदून (150)

और हर किसी के वास्ते एक जानिब (दिशा) है यानी क़िब्ला, कि वह मुँह करता है उस तरफ़, सो तुम सब्क़त करो (आगे बढ़ो) नेकियों में, जहाँ कहीं तुम होगे कर लायेगा तुमको इकट्ठा, बेशक अल्लाह हर चीज़ कर सकता है। (148) और जिस जगह से तू निकले सो मुँह कर अपना मस्जिदे हराम (यानी काबे शरीफ़) की तरफ़, और बेशक यही हक है तेरे रब की तरफ़ से, और अल्लाह बेख़बर नहीं तुम्हारे कामों से। (149) और जहाँ से तू निकले मुँह कर अपना मस्जिदे हराम की तरफ़, और जिस जगह तुम हुआ करो मुँह करो उसी की तरफ़ ताकि न रहे लोगों को तुमसे झगड़ने का मौक़ा, मगर जो उनमें बेइन्साफ़ हैं, सो उनसे (यानी उनके एतिराज़ों से) न डरो और मुझसे डरो, और इस वास्ते कि (मैं) कामिल (पूरा) करूँ तुम पर फ़ज़्ल अपना और ताकि तुम पाओ राह सीधी। (150)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (दूसरी हिक्मत क़िब्ले के बदलने में यह है कि अल्लाह की आ़दत जारी है कि) हर (मज़हब वाले) शख़्स के वास्ते एक-एक क़िब्ला रहा है जिसकी तरफ़ वह (इबादत में) मुँह करता रहा है (चूँकि शरीअ़ते मुहम्मदिया भी एक मुस्तक़िल दीन है, इसका क़िब्ला भी एक ख़ास हो गया, जब हिक्मत सब पर ज़ाहिर हो चुकी) सो (मुसलमानो!) तुम (अब इस बहस को छोड़कर अपने दीन के) नेक कामों में आगे बढ़ने की कोशिश करो (क्योंकि एक दिन अपने मालिक से साबक़ा पड़ना है, चुनाँचे) चाहे तुम

कहीं होगे (लेकिन) अल्लाह तआ़ला तुम सब को (अपनी बारगाह में) हाज़िर कर देंगे (उस वक़्त नेकियों पर अज्र और बुरे आमाल पर सज़ा होगी और) यक़ीनन अल्लाह तआ़ला हर मामले पर पूरी क़ुदरत रखते हैं। और (इस हिक्मत का तक़ाज़ा भी यही है कि जिस तरह हज़र में काबे की तरफ़ रुख़ होता है इसी तरह अगर मदीने से या और कहीं से) जिस जगह से भी (कहीं सफ़र में) आप बाहर जाएँ तो (भी) अपना चेहरा (नमाज़ में) मस्जिदे हराम (यानी काबा) की तरफ़ रखा कीजिए (ग़र्ज़ कि हज़र व सफ़र सब हालतों का यही क़िब्ला है)। और यह (हुक्म आ़म क़िब्ले का) बिल्कुल हक़ (और सही) है (और) अल्लाह की तरफ़ से (है) और अल्लाह तआ़ला तुम्हारे किए हुए कामों से हरगिज़ बेख़बर नहीं।

क़िब्ला बदलने की तीसरी हिक्मत

और (फिर कहा जाता है कि) आप जिस जगह से भी (सफ़र में) बाहर जाएँ (और हज़र में तो और भी ज़्यादा) अपना चेहरा (नमाज़ में) मस्जिदे हराम की तरफ़ रखिये और (इसी तरह सब मुसलमान भी सुन लें कि) तुम लोग जहाँ कहीं (मौजूद) हो अपना चेहरा (नमाज़ में) उसी (मस्जिदे हराम) की तरफ़ रखा करो (और यह हुक्म इसलिये मुक़र्रर किया जाता है) ताकि (इन मुख़ालिफ़) लोगों को तुम्हारे मुक़ाबले में (इस) गुफ़्तगू (की मजाल) न रहे (कि अगर मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम वही आख़िरी ज़माने के नबी होते जिनकी ख़बर दी गयी है तो उनकी निशानियों में तो यह भी है कि उनका असली क़िब्ला काबा होगा, और यह तो बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ नमाज़ पढ़ते हैं। यह तीसरी हिक्मत है क़िब्ले के बदलने की, हाँ) मगर उनमें जो (बिल्कुल ही) बेइन्साफ़ हैं (वे अब भी कट-हुज्जती (बेकार की बहसें) निकालेंगे कि यह कैसे नबी हैं, जो इतने नबियों के ख़िलाफ़ काबे की तरफ़ नमाज़ पढ़ते हैं, लेकिन जब ऐसे बेहूदा और बेकार एतिराज़ों से दीने हक़ को कोई नुक़सान नहीं पहुँच सकता) तो ऐसे लोगों से (हरगिज़) अन्देशा न करो (और उनके एतिराज़ों के जवाब की फ़िक्र में मत पड़ो) और मुझसे डरते रहो (मेरे अहकाम की मुख़ालफ़त न होने पाये कि यही मुख़ालफ़त अलबत्ता तुमको नुक़सानदेह है) और (हमने इन सब ज़िक्र हुए अहकाम पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ भी दी) ताकि तुम पर जो (कुछ) मेरा इनाम (इकराम मुतवज्जह) है (तुमको आख़िरत में जन्नत में दाख़िल करके) मैं उसको पूरा कर दूँ, और ताकि (दुनिया में) तुम हक़ रास्ते पर (यानी इस्लाम पर क़ायम रहने वालों में) रहो (जिस पर वह नेमत का पूरा होना मुरत्तब होता है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

क़िब्ले के बदलने की हिक्मतें

उक्त आयतों में क़िब्ले के बदलने के लिये अलफ़ाज़ **'फ़-वल्लि वज्ह-क शत्रल् मस्जिदिल् हरामि'** तीन मर्तबा आये हैं और **'हैसु मा कुन्तुम फ़वल्लू वुजूहकुम शत्रहू'** दो मर्तबा। इस बार-बार लाने की एक आ़म वजह तो यह है कि क़िब्ले के बदलने का हुक्म मुख़ालिफ़ों के लिये तो शोर व हंगामे का ज़रिया था ही, ख़ुद मुसलमानों के लिये भी इबादतों का एक अ़ज़ीम इन्क़िलाब (बड़ा बदलाव) था। अगर यह हुक्म ताकीदों के साथ बार-बार न लाया जाता तो दिलों का इत्मीनान व

सुकून आसान न होता, इसलिये इस हुक्म को बार-बार दोहराया गया जिसमें इसकी तरफ़ भी इशारा किया गया कि यह बदलाव और रुख़ का फेरना आख़िरी और निश्चित है, अब इसकी तब्दीली की कोई संभावना नहीं।

'बयानुल-क़ुरआन' के ख़ुलासा-ए-तफ़सीर में जो मुवाफ़क़त की सूरत लिखी गई है इमाम क़ुर्तुबी ने उसकी एक ऐसी तक़रीर नक़ल की है जिससे यह बार-बार लाना यूँ ही बेमक़सद न रहे। जैसे फ़रमाया कि पहली मर्तबा जो हुक्म आयाः

فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوا وُجُوهَكُمْ شَطْرَهُ.

यह हुक्म हज़र (वतन में क़ियाम) की हालत का है कि जब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम अपनी जगह मुक़ीम हैं तो आप मस्जिदे हराम की तरफ़ रुख़ किया करें, और फिर पूरी उम्मत को इसी का हुक्म दिया गया और 'हैसु मा कुन्तुम' का मफ़्हूम इस तक़रीर के आधार पर यह होगा कि अपने वतन और शहर में जिस जगह भी हों रुख़ बैतुल्लाह ही की तरफ़ करना है। यह हुक्म सिर्फ़ मस्जिदे नबवी के साथ मख़्सूस नहीं।

फिर दूसरी मर्तबा जो इन्हीं अलफ़ाज़ के साथ हुक्म आया उससे पहले 'मिन् हैसु ख़रज्-त' के अलफ़ाज़ ने यह स्पष्ट कर दिया कि यह हुक्म वतन से निकलने और सफ़र की हालत के लिये है। और चूँकि सफ़र के हालात भी अलग-अलग होते हैं, कभी चन्द दिन के लिये किसी बस्ती में ठहरा जाता है कभी सफ़र को रोक देने का सिलसिला होता है, इन दोनों हालतों को आ़म करने के लिये तीसरी मर्तबा फिर इन अलफ़ाज़ के साथ 'व हैसु मा कुन्तुम' का इज़ाफ़ा करके बतला दिया कि सफ़र की कोई भी हालत हो हर हाल में मस्जिदे हराम ही की तरफ़ रुख़ करना है। इस तीसरी मर्तबा के दोहराने के साथ क़िब्ले के बदलने की एक हिक्मत का भी जोड़ लगा दिया गया कि मुख़ालिफ़ों को यह कहने का मौक़ा न मिले कि नबी-ए-आख़िरुज़्ज़माँ का क़िब्ला तो तौरात व इन्जील के ख़ुलासों के मुताबिक़ काबा होना चाहिये और यह रसूल (यानी हुज़ूरे पाक) काबे के बजाय बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ नमाज़ों में रुख़ करते हैं।

وَلِكُلٍّ وِّجْهَةٌ هُوَ مُوَلِّيهَا

"और हर मज़हब वाले शख़्स के लिये एक क़िब्ला रहा है" 'विज्हतुन' के मायने हैं जिस चीज़ की तरफ़ रुख़ किया जाये। हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि इससे मुराद क़िब्ला है और हज़रत उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हु की क़िराअत में इस जगह 'विज्हतुन' के बजाय 'क़िब्लतुन' भी नक़ल किया गया है, मुराद आयत की जमहूर मुफ़स्सिरीन के नज़दीक यह है कि हर क़ौम का क़िब्ला जिसकी तरफ़ वे इबादत में रुख़ करते हैं अलग-अलग है, चाहे अल्लाह की तरफ़ से उनको ऐसा ही हुक्म मिला है या उन्होंने ख़ुद कोई दिशा मुक़र्रर कर ली है। बहरहाल यह एक वास्तविक बात है कि विभिन्न क़ौमों के क़िब्ले विभिन्न और अलग-अलग होते चले आये हैं, तो ऐसी हालत में अगर नबी-ए-उम्मी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये कोई ख़ास क़िब्ला मुक़र्रर कर दिया गया तो इसमें इनकार (विरोध) व ताज्जुब की क्या बात है।

मज़हबी मसाईल में फ़ुज़ूल बहसों से बचने की हिदायत

"फ़स्तबिक़ुल-ख़ैरात" (नेक कामों में आगे बढ़ने की कोशिश करो) इससे पहले जुमले में यह फ़रमाया था कि विभिन्न क़ौमों के अलग-अलग क़िब्ले थे, कोई एक दूसरे के क़िब्ले को तस्लीम नहीं करता, इसलिये अपने क़िब्ले के हक़ होने पर उन लोगों से बहस फ़ुज़ूल है। इस जुमले का हासिल यह है कि जब यह मालूम है कि इस बहस से उन लोगों को कोई फ़ायदा नहीं पहुँचेगा तो फिर इस फ़ुज़ूल बहस को छोड़कर अपने असली काम में लग जाना चाहिये, और वह काम है नेक कामों में दौड़-धूप और आगे बढ़ने की कोशिश। और चूँकि फ़ुज़ूल बहसों में वक़्त बरबाद करना और नेक कामों में दौड़-धूप में सुस्ती करना उमूमन आख़िरत से ग़फ़लत के सबब होते हैं, जिसको अपनी आख़िरत और अन्जाम की फ़िक्र लगी हुई हो वह कभी फ़ुज़ूल बहसों में नहीं उलझता, अपनी मन्ज़िल तय करने की फ़िक्र में रहता है। इसलिये अगले जुमले में आख़िरत की याद दिलाने के लिये इरशाद फ़रमायाः

اَيْنَمَا تَكُوْنُوْا يَاْتِ بِكُمُ اللّٰهُ جَمِيْعًا

जिसका मतलब यह है कि बहसों में हार-जीत और लोगों के एतिराज़ों से बचने की फ़िक्र सब चन्द दिन की दुनिया के लिये है, और जल्द ही वह दिन आने वाला है जिसमें अल्लाह तआ़ला दुनिया की तमाम क़ौमों को एक जगह जमा करके हिसाब लेंगे। अ़क़्लमन्द का काम यह है कि अपने वक़्त और समय को उसकी फ़िक्र में ख़र्च करे।

इबादतों और नेक आमाल में बिना वजह देर करना मुनासिब नहीं, जल्दी करनी चाहिये

लफ़्ज़ 'फ़स्तबिक़ू' से यह भी मालूम हुआ कि इनसान को चाहिये कि किसी नेक अ़मल का जब मौक़ा मिल जाये तो उसके करने में देर न करे, क्योंकि कई बार उसके टलाने और देर करने से उसको करने की तौफ़ीक़ छीन ली जाती है, फिर आदमी काम कर ही नहीं सकता, चाहे वह नमाज़ रोज़ा हो या हज व सदक़ा वग़ैरह। क़ुरआने करीम में यही मज़मून सूरः अनफ़ाल की आयत में अधिक स्पष्टता से आया है। फ़रमायाः

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اسْتَجِيْبُوْا لِلّٰهِ وَلِلرَّسُوْلِ اِذَا دَعَاكُمْ لِمَا يُحْيِيْكُمْ وَاعْلَمُوْۤا اَنَّ اللّٰهَ يَحُوْلُ بَيْنَ الْمَرْءِ وَقَلْبِهٖ

(سورۃانفال: ٢٤)

"यानी ऐ ईमान वालो! तुम अल्लाह व रसूल के कहने को बजा लाया करो जबकि रसूल तुमको तुम्हारी ज़िन्दगी-बख़्श (ज़िन्दगी देने वाली) चीज़ की तरफ़ बुलाते हों, और जान रखो कि अल्लाह तआ़ला आड़ बन जाया करता है आदमी के और उसके दिल के बीच में।"

क्या हर नमाज़ का अव्वल वक़्त में पढ़ना अफ़ज़ल है?

इस नेक कामों में आगे बढ़ने की कोशिश से कुछ फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने इस पर दलील पकड़ी है कि हर नमाज़ को अव्वल वक़्त (यानी वक़्त के पहले हिस्से) में पढ़ना अफ़ज़ल

(बेहतर) है और हदीस की वो रिवायतें इसकी ताईद में पेश की हैं जिनमें अव्वल वक़्त नमाज़ अदा करने की फ़ज़ीलत आई है। इमाम शाफ़ई रहमतुल्लाहि अ़लैहि का यही मज़हब है, मगर इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने हदीस की दूसरी रिवायतों की बुनियाद पर इस मामले में तफ़सील की है कि जिन नमाज़ों में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ताख़ीर (देर) करके पढ़ने की तालीम अपने क़ौल व अ़मल से दी है उनका अव्वल और अफ़ज़ल वक़्त वही है जो उन हदीसों में बयान हुआ है, बाक़ी अपनी असल पर अव्वल वक़्त में पढ़ी जायें। जैसे सही बुख़ारी में हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से इशा की नमाज़ को लेट करके पढ़ने की फ़ज़ीलत मज़कूर है और हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इशा की नमाज़ में देर करना पसन्द था। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

इसी तरह सही बुख़ारी व तिर्मिज़ी में हज़रत अबूज़र रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से मन्क़ूल है कि एक सफ़र में हज़रत बिलाल रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने ज़ोहर की अज़ान अव्वल वक़्त में देनी चाही तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इससे रोका और फ़रमाया कि जब वक़्त ज़रा ठंडा हो जाये उस वक़्त अज़ान कही जाये, क्योंकि गर्मी की शिद्दत जहन्नम की आग से है। मतलब यह है कि गर्मी के ज़माने में ज़ोहर की नमाज़ को देर करके पढ़ना पसन्द फ़रमाया।

इन रिवायतों की बिना पर इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम मालिक रह. ने फ़रमाया कि इन नमाज़ों में अव्वल वक़्त पर अ़मल करने की सूरत यही है कि जब मुस्तहब वक़्त हो जाये तो फिर ताख़ीर (देर) न करें, और जहाँ कोई ताख़ीर का हुक्म नहीं आया वहाँ बिल्कुल अव्वल वक़्त ही में नमाज़ पढ़ना अफ़ज़ल है, जैसे मग़रिब की नमाज़।

बहरहाल उक्त आयत से यह बात सहमति के साथ साबित हो गई कि जब नमाज़ का वक़्त आ जाये तो बग़ैर शरई या तबई ज़रूरत के देर करना अच्छा नहीं। शरई ज़रूरत तो वही है जो ऊपर लिखी गई कि कुछ नमाज़ों की ताख़ीर (देर करने) का नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हुक्म दिया है, और तबई ज़रूरत है अपने ज़ाती कारणों बीमारी या किसी उज़्र के सबब देर करना। वल्लाहु तआ़ला आलम

كَمَآ اَرْسَلْنَا فِيْكُمْ رَسُوْلًا مِّنْكُمْ يَتْلُوْا عَلَيْكُمْ اٰيٰتِنَا وَيُزَكِّيْكُمْ وَيُعَلِّمُكُمُ الْكِتٰبَ وَ الْحِكْمَةَ وَيُعَلِّمُكُمْ مَّا لَمْ تَكُوْنُوْا تَعْلَمُوْنَ ﴿١٥١﴾ فَاذْكُرُوْنِيْٓ اَذْكُرْكُمْ وَاشْكُرُوْا لِيْ وَلَا تَكْفُرُوْنِ ﴿١٥٢﴾

ع ١٨ / ٢

कमा अर्सल्ना फ़ीकुम् रसूलम्-मिन्कुम् यत्लू अ़लैकुम् आयातिना व युज़क्कीकुम् व युअ़ल्लिमुकुमुल्-किता-ब वल्हिक्म-त व युअ़ल्लिमुकुम् मा लम् तकूनू तअ़्लमून (151)	जैसा कि भेजा हमने तुम में रसूल तुम ही में का, पढ़ता है तुम्हारे आगे आयतें हमारी, और पाक करता है तुमको और सिखलाता है तुमको किताब और उसके भेद, और सिखलाता है तुमको जो तुम न जानते थे। (151) सो तुम याद रखो मुझको मैं याद

फ़ज़्कुरूनी अज़्कुर्कुम् वश्कुरू ली व ला तक्फ़ुरून (152) ❁	रखूँ तुमको, और एहसान मानो मेरा और नाशुक्री मत करो। (152) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(यानी हमने काबे को क़िब्ला मुक़र्रर करके हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की एक दुआ़ जो काबे की तामीर व इमारत को क़ुबूल करने के बारे में थी इस तरह क़ुबूल की) जिस तरह (उनकी दूसरी दुआ़ जो हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को नबी बनाकर भेजने के बारे में थी क़ुबूल की कि) तुम लोगों में हमने एक (अ़ज़ीमुश्शान) रसूल भेजा (जो कि) तुम ही में से (हैं और वह) जो हमारी आयतें (और अहकाम) पढ़-पढ़कर तुमको सुनाते हैं और (जहालत के ख़्यालात व रस्मों से) तुम्हारी सफ़ाई करते रहते हैं, और तुमको (अल्लाह की) किताब और समझ की बातें बतलाते रहते हैं। और तुमको ऐसी (मुफ़ीद) बातें तालीम करते रहते हैं जिनकी तुमको ख़बर भी न थी (और न पहली किताबें या अ़क़्ल उनके लिये काफ़ी थी। और इस शान के रसूल के भेजे जाने की दुआ़ इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की थी, सो उसका ज़हूर हो गया) तो इन (ज़िक्र हुई) नेमतों पर मुझको (नेमतें देने वाला होने की हैसियत से) याद करो मैं तुमको (इनायत से) याद रखूँगा, और मेरी (नेमत की) शुक्रगुज़ारी करो, और (नेमत के इनकार या फ़रमाँबरदारी को छोड़कर) मेरी नाशुक्री मत करो।

मआ़रिफ़ व मसाईल

यहाँ तक क़िब्ले की बहस चली आ रही थी, अब इस बहस को ऐसे मज़मून पर ख़त्म फ़रमाया गया है जो इस बहस की तम्हीद में हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम बानी-ए-काबा (काबे का निर्माण करने वाले) की दुआ़ में ज़िमनी तौर पर आया था, यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की औलाद में एक ख़ास शान के साथ भेजा जाना। इसमें इस तरफ़ भी इशारा हो गया कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बेसत (नबी बनकर तशरीफ़ लाने) में काबे के संस्थापक और तामीर करने वाले की दुआ़ को भी दख़ल है, इसलिये अगर उनका क़िब्ला काबे को बना दिया गया तो इसमें कोई ताज्जुब या इनकार की बात नहीं है।

'कमा अर्सलना' में हर्फ़ 'काफ़' जो किसी चीज़ के साथ मिसाल देने के लिये आता है इसका एक मतलब तो वह है जो हमने ख़ुलासा-ए-तफ़सीर में बयान किया है, और एक दूसरा मतलब भी हो सकता है जिसको इमाम क़ुर्तुबी रह. ने इख़्तियार किया है कि इस हर्फ़ 'काफ़' का ताल्लुक़ बाद वाली आयत 'फ़ज़्कुरूनी......' से है और मायने यह हैं कि- जैसे हमने तुम पर एक नेमत क़िब्ले की फिर दूसरी नेमत रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को नबी बनाकर भेजने की फ़रमाई है ऐसी ही नेमत अल्लाह का ज़िक्र भी है। इन सब नेमतों का शुक्र अदा करो, ताकि ये नेमतें और ज़्यादा हो जायें। इमाम क़ुर्तुबी ने फ़रमाया कि 'कमा अर्सलना' का 'काफ़' यहाँ ऐसा ही है जैसे सूरः अनफ़ाल में 'कमा अख़्र-ज-क' और सूरः हिज्र के आख़िर में 'कमा अन्ज़ल्ना अ़लल्-मुक़्तसिमीन' में आया है।

"फ़ज़्कुरूनी अज़्कुरकुम" ज़िक्र के असली मायने याद करने के हैं, जिसका ताल्लुक़ दिल से है, ज़बान से ज़िक्र करने को भी ज़िक्र इसलिये कहा जाता है कि ज़बान दिल की तर्जुमान है। इससे मालूम हुआ कि ज़बान का ज़िक्र वही मोतबर है जिसके साथ दिल में भी अल्लाह की याद हो। मौलाना रूमी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इसी के मुताल्लिक़ फ़रमाया है:

बर ज़ुबाँ तस्बीह दर दिल गाव-ख़र
ईं चुनीं तस्बीह के दारद असर

यानी ज़बान पर तो तस्बीह यानी अल्लाह-अल्लाह या कोई ज़िक्र और दिल में दुनिया के सामानों में लगा हुआ, ऐसी तस्बीह भला क्या असर रखेगी। मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

लेकिन इसके साथ यह भी याद रखना चाहिये कि अगर कोई शख़्स ज़बान से ज़िक्र व तस्बीह में मशग़ूल हो मगर उसका दिल हाज़िर न हो और ज़िक्र में न लगे तो वह भी फ़ायदे से ख़ाली नहीं। हज़रत अबू उस्मान रहमतुल्लाहि अ़लैहि से किसी ने ऐसी ही हालत की शिकायत की कि हम ज़बान से ज़िक्र करते हैं मगर दिलों में उसकी कोई हलावत (मिठास और असर) महसूस नहीं करते। आपने फ़रमाया इस पर भी अल्लाह तआ़ला का शुक्र करो कि उसने तुम्हारे एक अंग यानी ज़बान को तो अपनी ताअ़त में लगा लिया। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

अल्लाह के ज़िक्र के फ़ज़ाईल

अल्लाह के ज़िक्र (याद) के फ़ज़ाईल बेशुमार हैं, और यही एक फ़ज़ीलत कुछ कम नहीं है कि जो बन्दा अल्लाह तआ़ला को याद करता है तो अल्लाह तआ़ला भी उसे याद फ़रमाते हैं। अबू उस्मान रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने कहा कि मैं उस वक़्त को जानता हूँ जिस वक़्त अल्लाह तआ़ला हमें याद फ़रमाते हैं, लोगों ने कहा कि आपको यह कैसे मालूम हो सकता है? फ़रमाया इसलिये कि क़ुरआने करीम के वायदे के मुताबिक़ जब कोई मोमिन बन्दा अल्लाह तआ़ला को याद करता है तो अल्लाह तआ़ला भी उसे याद करते हैं, इसलिये सब को यह समझ लेना आसान है कि जिस वक़्त हम अल्लाह की याद में मशग़ूल होंगे तो अल्लाह तआ़ला भी हमें याद फ़रमायेंगे।

और मायने आयत के यह हैं कि तुम मुझे अहकाम की इताअ़त के साथ याद करो तो मैं तुम्हें सवाब और मग़फ़िरत के साथ याद करूँगा। हज़रत सईद बिन जुबैर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अल्लाह के ज़िक्र की तफ़सीर ही ताअ़त व फ़रमाँबरदारी से की है। वह फ़रमाते हैं:

فمن لم يُطِعْهُ لم يذكرهُ وان كثر صلوته وتسبيحه.

"यानी जिसने अल्लाह तआ़ला के अहकाम की पैरवी न की उसने अल्लाह को याद नहीं किया, अगरचे ज़ाहिर में उसकी नमाज़ और तस्बीह कितनी भी हो।"

अल्लाह के ज़िक्र की असल हक़ीक़त

इमाम क़ुर्तुबी रह. ने 'अहकामुल-क़ुरआन' के हवाले से इब्ने ख़ुवेज़ मुन्ज़ाज़ की एक हदीस भी इस मज़मून की नक़ल की है, जिसका तर्जुमा यह है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने

फ़रमाया कि जिस शख़्स ने अल्लाह तआ़ला की इताअ़त की, यानी उसके अहकाम हलाल व हराम का इत्तिबा किया उसने अल्लाह को याद किया अगरचे उसकी (नफ़िल) नमाज़ रोज़ा वग़ैरह कम हों और जिसने अल्लाह के अहकाम की ख़िलाफ़वर्ज़ी की उसने अल्लाह को भुला दिया अगरचे (बज़ाहिर) उसकी नमाज़, रोज़ा, तस्बीहात वग़ैरह ज़्यादा हों।

हज़रत ज़ुन्नून मिस्री रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि जो शख़्स वास्तविक तौर पर अल्लाह को याद करता है वह उसके मुक़ाबले में सारी चीज़ों को भूल जाता है और उसके बदले में अल्लाह तआ़ला ख़ुद उसके लिये सारी चीज़ों की हिफ़ाज़त करते हैं और तमाम चीज़ों का बदला उसको अ़ता कर देते हैं। हज़रत मुआ़ज़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि इनसान का कोई अ़मल उसको ख़ुदा तआ़ला के अ़ज़ाब से निजात दिलाने में अल्लाह के ज़िक्र के बराबर नहीं। और एक हदीसे क़ुदसी जो हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है, उसमें है कि हक़ तआ़ला फ़रमाते हैं- मैं अपने बन्दे के साथ होता हूँ जब तक वह मुझे याद करता रहे और मेरे ज़िक्र में उसके होंठ हिलते रहें। अल्लाह के ज़िक्र के फ़ज़ाईल बेशुमार हैं उनका मुख़्तसर ख़ुलासा अहक़र ने अपने रिसाले 'ज़िक्रुल्लाह' में जमा कर दिया है।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اسْتَعِيْنُوْا بِالصَّبْرِ وَالصَّلٰوةِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनुस्तअ़ीनू बिस्सब्रि वस्सलाति, इन्नल्ला-ह मअ़स्साबिरीन (153)	ऐ मुसलमानो! मदद लो सब्र और नमाज़ से, बेशक अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है। (153)

इन आयतों का पिछली आयतों से ताल्लुक़

क़िब्ले के बदल जाने पर जो मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से एतिराज़ था उसके दो असर थे- एक मज़हबे इस्लाम पर, कि एतिराज़ से मज़हब की हक़्क़ानियत (सच्चा होने) में शुब्हा पैदा किया जाया करता है, ऊपर की आयतों में इस एतिराज़ का जवाब देकर उसके असर को दफ़ा (दूर) करना मक़सूद था। दूसरा असर मुसलमानों की तबीयतों पर कि एतिराज़ से ख़ास कर जवाब देने के बाद भी उस पर बेजा इसरार करने से दिल में रंज और सदमा पैदा होता है। आने वाली आयत में रंज व ग़म को कम करने का तरीक़ा जो कि सब्र व नमाज़ है बतलाकर इस दूसरे असर को दूर फ़रमाते हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! (तबीयतों में ग़म हल्का करने के बारे में) सब्र और नमाज़ से सहारा (और मदद) हासिल करो, बेशक अल्लाह तआ़ला (हर तरह से) सब्र करने वालों के साथ रहते हैं। (और नमाज़ पढ़ने वालों के साथ तो और भी ज़्यादा, वजह यह है कि नमाज़ सबसे बड़ी इबादत है। जब सब्र में यह वायदा है तो नमाज़ जो उससे बढ़कर है, उसमें तो और भी ज़्यादा यह ख़ुशख़बरी होगी)।

मआरिफ़ व मसाईल

सब्र और नमाज़ हर मुश्किल का हल और हर तकलीफ़ का इलाज हैं

اِسْتَعِيْنُوْا بِالصَّبْرِ وَالصَّلٰوةِ

(मदद लो सब्र और नमाज़ से....) इस आयत में यह हिदायत है कि इनसान की तमाम ज़रूरतों और आवश्यकताओं के पूरा करने और तमाम मुसीबतों, आफ़तों और तकलीफ़ों को दूर करने का अक्सीर नुस्ख़ा दो चीज़ों से मुरक्कब (मिलकर बना) है- एक सब्र, दूसरे नमाज़। और इस नुस्ख़े के तमाम ज़रूरतों और तमाम मुसीबतों के लिये आ़म होने की तरफ़ क़ुरआने करीम ने इस तरह इशारा कर दिया है कि 'इस्तओ़ीनू' (मदद हासिल करो) को आ़म छोड़ा है, कोई ख़ास चीज़ ज़िक्र नहीं फ़रमाई कि फ़ुलाँ काम में इन दोनों चीज़ों से मदद हासिल करो।

इससे मालूम हुआ कि ये दो चीज़ें ऐसी हैं कि इनसे इनसान की हर ज़रूरत में मदद हासिल की जा सकती है। तफ़सीरे मज़हरी में इस उमूम को वाज़ेह कर दिया है, अब दो चीज़ों से मुरक्कब इस नुस्ख़े के दोनों अंशों को समझ लीजिये।

सब्र की असल हक़ीक़त

सब्र के असली मायने अपने नफ़्स को रोकने और उस पर क़ाबू पाने के हैं। क़ुरआन व सुन्नत की इस्तिलाह में सब्र के तीन शोबे (दर्जे/विभाग) हैं- एक अपने नफ़्स को हराम व नाजायज़ चीज़ों से रोकना, दूसरे नेकियों व इबादात की पाबन्दी पर मजबूर करना, तीसरे मुसीबतों व आफ़तों पर सब्र करना। यानी जो मुसीबत आ गई उसको अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से समझना और उसके सवाब का उम्मीदवार हो जाना। इसके साथ अगर तकलीफ़ व परेशानी के इज़हार का कोई कलिमा भी मुँह से निकल जाये तो वह सब्र के ख़िलाफ़ नहीं। (इब्ने कसीर, सईद बिन जुबैर रज़ि. की रिवायत से)

ये तीनों शोबे (क्षेत्र) सब्र के फ़राईज़ में दाख़िल हैं, हर मुसलमान पर यह पाबन्दी लागू है कि तीनों तरह के सब्र का पाबन्द हो। अ़वाम के नज़दीक सिर्फ़ तीसरे शोबे को तो सब्र कहा जाता है दो शोबे जो सब्र की असल और बुनियाद हैं आ़म तौर पर उनको सब्र में दाख़िल ही नहीं समझा जाता।

क़ुरआन व हदीस की इस्तिलाह में 'साबिरीन' (सब्र करने वाले) उन्हीं लोगों का लक़ब है जो तीनों तरह के सब्र में साबित-क़दम हों। कुछ रिवायतों में है कि मेहशर में आवाज़ लगायी जायेगी कि साबिरीन (सब्र करने वाले) कहाँ हैं? तो वे लोग जो तीनों तरह के सब्र पर क़ायम रहकर ज़िन्दगी से गुज़रे हैं वे खड़े हो जायेंगे और उनको बिना हिसाब जन्नत में दाख़िले की इजाज़त दे दी जायेगी। अ़ल्लामा इब्ने कसीर ने इस रिवायत को नक़ल करके फ़रमाया कि क़ुरआन की आयतः

اِنَّمَا يُوَفَّى الصّٰبِرُوْنَ اَجْرَهُمْ بِغَيْرِ حِسَابٍ○ (١٠:٣٩)

(सूरः 39 आयत 10) से भी इस तरफ़ इशारा होता है।

नमाज़ः- इस नुस्ख़े का दूसरा जुज़ (अंश और हिस्सा) जो तमाम इनसानी ज़रूरतों को पूरा करने और तमाम परेशानियों और आफ़तों से निजात दिलाने में अक्सीर है वह नमाज़ है। सब्र की जो तफ़सीर अभी लिखी गई है उससे मालूम हो गया कि दर हक़ीक़त नमाज़ और तमाम इबादतें सब्र ही के हिस्से हैं, मगर नमाज़ को अलग से बयान इसलिये कर दिया कि तमाम इबादतों में से नमाज़ एक ऐसी इबादत है जो सब्र का मुकम्मल नमूना है, क्योंकि नमाज़ की हालत में नफ़्स को इबादत व ताअ़त (नेकी) पर मजबूर भी किया जाता है, और तमाम गुनाहों व बुरी चीज़ों से बल्कि बहुत से जायज़ कामों से भी नफ़्स को नमाज़ की हालत में रोका जाता है, इसलिये सब्र जिसके मायने नफ़्स को अपने क़ाबू में रखकर तमाम ताअ़तों (नेक कामों) का पैरो और तमाम गुनाहों व बुराईयों से बचने वाला और बेज़ार बनाना है, नमाज़ उसकी एक अ़मली शक्ल है।

इसके अ़लावा नमाज़ को इनसान की तमाम हाजतों (आवश्यकताओं) के पूरा करने और तमाम आफ़तों व मुसीबतों से निजात दिलाने में एक ख़ास तासीर (प्रभाव) भी है, अगरचे उसकी वजह और सबब मालूम न हो। जैसे दवाओं में बहुत सी दवाओं को किसी ख़ासियत में असरदार तस्लीम किया जाता है, यानी सर्दी व गर्मी की कैफ़ियतों के हिसाब से, जैसे किसी ख़ास रोग के दूर करने के लिये कुछ दवायें ख़ास तौर पर असर रखने वाली होती हैं, जैसे गुर्दे के दर्द के लिये फ़िरंगी दाने को हाथ या मुँह में रखना और बहुत से रोगों के लिये 'ऊदे सलीब' वग़ैरह को गले में डालना ख़ास तौर पर असरदार है, सबब नामालूम है। लोहे को खींचने में मक़नातीस अपनी ख़ासियत के सबब असरदार है, वजह मालूम नहीं। इसी तरह नमाज़ तमाम इनसानी ज़रूरतों के पूरा करने और तमाम मुसीबतों से निजात दिलाने में असरदार है, बशर्तेकि नमाज़ को नमाज़ की तरह उसके आदाब, दिल की आ़जिज़ी व सुकून के साथ पढ़ा जाये। हमारी नमाज़ें जो ग़ैर-असरदार नज़र आती हैं इसका सबब हमारा क़ुसूर है कि नमाज़ के आदाब और दिल व बदन की आ़जिज़ी व झुकाव में कोताही होती है, वरना रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की आ़दते शरीफ़ा यह थी कि जब कोई मुहिम पेश आती तो नमाज़ की तरफ़ रुजू फ़रमाते थे, और उसकी बरकत से अल्लाह तआ़ला उस मुहिम को पूरा फ़रमा देते थे। हदीस में हैः

اذا حزبه امر فزع الى الصلوٰة

"यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को जब कोई ज़रूरत पेश आती तो नमाज़ की तरफ़ रुजू फ़रमाया करते थे।"

सब्र और नमाज़ तमाम मुश्किलों व मुसीबतों से निजात का सबब क्यों है?

اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ

(बेशक अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है) इस कलिमे में इसका राज़ बतला दिया गया है कि सब्र मुश्किलों के हल करने और मुसीबतों के दूर करने का सबब कैसे बनता है। इरशाद का हासिल

यह है कि सब्र के नतीजे में इनसान को हक़ तआ़ला का साथ नसीब होता है, और यह ज़ाहिर है कि जिस शख़्स के साथ अल्लाह रब्बुल-इज़्ज़त की ताक़त हो उसका कौनसा काम रुक सकता है, और कौनसी मुसीबत उसको आ़जिज़ (लाचार) कर सकती है।

وَلَا تَقُولُوا لِمَنْ يُقْتَلُ فِي سَبِيلِ اللَّهِ أَمْوَاتٌ ۚ بَلْ أَحْيَاءٌ وَلَٰكِن لَّا تَشْعُرُونَ ۝ وَلَنَبْلُوَنَّكُم بِشَيْءٍ مِّنَ الْخَوْفِ وَالْجُوعِ وَنَقْصٍ مِّنَ الْأَمْوَالِ وَالْأَنفُسِ وَالثَّمَرَاتِ ۗ وَبَشِّرِ الصَّابِرِينَ ۝ الَّذِينَ إِذَا أَصَابَتْهُم مُّصِيبَةٌ قَالُوا إِنَّا لِلَّهِ وَإِنَّا إِلَيْهِ رَاجِعُونَ ۝ أُولَٰئِكَ عَلَيْهِمْ صَلَوَاتٌ مِّن رَّبِّهِمْ وَرَحْمَةٌ ۖ وَأُولَٰئِكَ هُمُ الْمُهْتَدُونَ ۝

व ला तक़ूलू लिमंय्युक़्तलु फ़ी सबीलिल्लाहि अम्वातुन्, बल् अह़्याउंव्-व लाकिल्ला तश्अुरून (154) व ल-नब्लुवन्नकुम् बिशैइम्-मिनल्ख़ौफ़ि वल्जूअ़ि व नक़्सिम् मिनल्-अम्वालि वल्-अन्फ़ुसि वस्स-मराति, व बश्शिरिस्साबिरीन (155) अल्लज़ी-न इज़ा असाबत्हुम् मुसीबतुन् क़ालू इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिअ़ून (156) उलाइ-क अ़लैहिम स-लवातुम्-मिर्रब्बिहिम् व रह़्मतुन्, व उलाइ-क हुमुल्-मुह्तदून (157)	और न कहो उनको जो मारे गये ख़ुदा की राह में कि मुर्दे हैं, बल्कि वे ज़िन्दे हैं लेकिन तुमको ख़बर नहीं। (154) अलबत्ता हम आज़मायेंगे तुमको थोड़े से डर से और भूख से और नुक़सानों से मालों के और जानों के और मेवों के, और ख़ुशख़बरी दे सब्र करने वालों को। (155) कि जब पहुँचे उनको मुसीबत तो कहें- हम तो अल्लाह ही का माल हैं और हम उसी की तरफ़ लौटकर जाने वाले हैं। (156) ऐसे ही लोगों पर इनायतें हैं अपने रब की और मेहरबानी, और वही हैं सीधी राह पर। (157)

इन आयतों का पिछली आयतों से ताल्लुक़

ऊपर एक ख़ास नागवार (नापसन्दीदा) वाक़िए में सब्र की तालीम और सब्र करने वालों की फ़ज़ीलत बयान फ़रमाई थी। आने वाली आयतों में और भी कुछ ख़िलाफ़े तबीयत वाक़िआ़त की तफ़सील और उनमें सब्र की तरग़ीब और फ़ज़ीलत बयान फ़रमाते हैं। जिनमें काफ़िरों के साथ क़त्ल व क़िताल (लड़ाई और जंग) का मज़मून पहले बयान फ़रमाते हैं। दो वजह से- अव्वल इस वजह से कि

वह अहम और बड़ा है और बड़ी बात पर सब्र करने वाला छोटी चीज़ पर सब्र करने वाले से कहीं ज़्यादा सब्र करेगा, दूसरे ख़ास तौर पर इस मक़ाम के मुनासिब होने की वजह से, क्योंकि उक्त एतिराज़ करने वालों के साथ यह मामला पेश आता था।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जो लोग अल्लाह की राह में (यानी दीन के वास्ते) क़त्ल किए जाते हैं उन (की ऐसी फ़ज़ीलत है कि उन) के बारे में (यूँ भी) मत कहो कि वे (मामूली मुर्दों की तरह) मुर्दे हैं, बल्कि वे लोग तो (एक ख़ास ज़िन्दगी के साथ) ज़िन्दा हैं, लेकिन तुम (अपने मौजूदा) इन हवास से (उस ज़िन्दगी का) एहसास नहीं कर सकते। और (देखो) हम (रज़ा व तस्लीम की सिफ़त में जो कि ईमान का तक़ाज़ा है) तुम्हारा इम्तिहान करेंगे किसी क़द्र ख़ौफ़ से (जो कि मुख़ालिफ़ों या हादसों व सख़्तियों के सबब पेश आये), और (किसी क़द्र फ़क्र व) फ़ाक़े से, और (किसी क़द्र) माल व जान और फलों की कमी से (जैसे पशु मर गये या कोई आदमी मर गया या बीमार हो गया या फल और खेती की पैदावार बरबाद हो गई, पस तुम सब्र करना) और (जो लोग इम्तिहानों में पूरे उतर आयें और जमे रहें तो) आप ऐसे सब्र करने वालों को ख़ुशख़बरी सुना दीजिए। (जिनकी यह आदत है) कि उन पर जब कोई मुसीबत पड़ती है तो वे (दिल से समझकर यूँ) कहते हैं कि हम तो (मय माल व औलाद के हक़ीक़त में) अल्लाह तआ़ला ही की मिल्क हैं (और मालिके हक़ीक़ी को अपनी मिल्क में हर तरह के उलट-फेर का इख़्तियार हासिल है, इससे मम्लूक का तंग होना क्या मायने) और हम सब (दुनिया से) अल्लाह तआ़ला के पास जाने वाले हैं (सो यहाँ के नुक़सानों का बदला वहाँ जाकर मिल जायेगा और जो मज़मून ख़ुशख़बरी का उनको सुनाया जायेगा वह यह है कि) उन लोगों पर (अलग-अलग) ख़ास-ख़ास रहमतें भी उनके रब की तरफ़ से (नाज़िल) होंगी, और (सब पर संयुक्त रूप से) आ़म रहमत भी होगी, और यही लोग हैं जिनकी (असल हक़ीक़त तक) पहुँच हो गई (कि हक़ तआ़ला को हर चीज़ का मालिक और नुक़सान की भरपाई करने वाला समझ गये)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

शहीदों और अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की बर्ज़ख़ी ज़िन्दगी और उसके दर्जों में फ़र्क़

यह तो सब को मालूम है कि इस्लामी रिवायतों की रू से हर मरने वाले को बर्ज़ख़ (इस दुनिया और क़ियामत के बीच की मुद्दत) में एक ख़ास क़िस्म की ज़िन्दगी मिलती है जिससे वह क़ब्र के अ़ज़ाब या सवाब को महसूस करता है। इसमें मोमिन व काफ़िर या नेक व बदकार में कोई फ़र्क़ नहीं, लेकिन उस बर्ज़ख़ी (क़ब्र वाली ज़िन्दगी) के अलग-अलग दर्जे हैं- एक दर्जा तो सब को आ़म और शामिल है, कुछ विशेष दर्जे अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और नेक लोगों के लिये ख़ास हैं और उनमें भी आपस में एक दूसरे से बढ़े हुए हैं। इस मसले की तहक़ीक़ पर उलेमा के लेख और तहक़ीक़ात

बेशुमार हैं, लेकिन उनमें से जो बात क़ुरआन व हदीस के ज़्यादा क़रीब और शुब्हात से पाक है उसको सैयदी हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी तफ़सीर 'बयानुल-क़ुरआन' में वाज़ेह फ़रमाया है। इस जगह उसी को नक़ल करना काफ़ी मालूम हुआ।

फ़ायदा:- ऐसे मक़्तूल (क़त्ल होने वाले) को जो अल्लाह की राह में क़त्ल किया जाये शहीद कहते हैं और उसके बारे में अगरचे यह कहना कि वह मर गया सही और जायज़ है, लेकिन उसकी मौत को दूसरे मुर्दों के जैसी मौत समझने की मनाही की गई है। वजह इसकी यह है कि बाद मरने के अगरचे बर्ज़ख़ी (क़ब्र की) ज़िन्दगी हर शख़्स की रूह को हासिल है और उसी से जज़ा व सज़ा का एहसास होता है लेकिन शहीद को उस ज़िन्दगी में दूसरे मुर्दों से एक प्रकार का इम्तियाज़ (विशेषता और अलग शान) हासिल है, और वह इम्तियाज़ यह है कि उसकी यह ज़िन्दगी आसार में औरों से ताक़तवर है, जैसे उंगलियों के अगले पोरे और एड़ी, अगरचे दोनों में ज़िन्दगी है और ज़िन्दगी के आसार (निशानी और प्रभाव) भी दोनों में मौजूद हैं, लेकिन उंगलियों के पोरों में ज़िन्दगी के आसार एहसास वग़ैरह एड़ी के मुक़ाबले में ज़्यादा हैं। इसी तरह शहीदों में ज़िन्दगी के आसार आ़म मुर्दों से बहुत ज़्यादा हैं यहाँ तक कि शहीदों की इस ज़िन्दगी की ताक़त का एक असर दूसरे आ़म मुर्दों के ख़िलाफ़ उसके ज़ाहिरी जिस्म तक भी पहुँचा है कि उसका जिस्म गोश्त-पोस्त का मजमूआ़ होने के बावजूद मिट्टी से मुतास्सिर नहीं होता, और ज़िन्दा जिस्म की तरह सही सालिम रहता है जैसा कि हदीसें और आँखों से देखे हुए वाक़िआ़त इस पर शाहिद (गवाह और दलील) हैं। पस इस इम्तियाज (विशेषता) की वजह से शहीदों को 'अहया' (ज़िन्दे) कहा गया है और उनको दूसरे मुर्दों के बराबर मुर्दे कहने की मनाही की गई। मगर ज़ाहिरी अहकाम में वे आ़म मुर्दों की तरह हैं, उनकी मीरास तक़सीम होती है और उनकी बीवियाँ दूसरों से निकाह कर सकती हैं। और यही ज़िन्दगी है जिसमें हज़राते अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम शहीदों से भी ज़्यादा इम्तियाज़ (विशेषता) व ताक़त रखते हैं, यहाँ तक कि जिस्म के सही-सालिम रहने के अ़लावा उस बर्ज़ख़ी ज़िन्दगी के कुछ आसार (प्रभाव) ज़ाहिरी अहकाम पर भी पड़ते हैं जैसे उनकी मीरास तक़सीम नहीं होती, उनकी बीवियाँ दूसरों के निकाह में नहीं आ सकतीं।

पस उस ज़िन्दगी में सबसे ज़्यादा ताक़तवर अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम हैं, फिर शहीद हज़रात, फिर और मामूली मुर्दे। अलबत्ता कुछ हदीसों से मालूम होता है कि कुछ औलिया-अल्लाह और नेक लोग भी इस फ़ज़ीलत में शहीदों के शरीक हैं, सो नफ़्स के मुजाहदे में मरने को भी मानवी एतिबार से शहादत में दाख़िल समझेंगे और इस तौर पर वे भी शहीद हो गये, या यूँ कहा जाये कि आयत में शहीदों को ख़ास करना आ़म मुर्दों के एतिबार से है, शहीदों के हम-मर्तबा दूसरे लोग नेक और सिद्दीक़ीन के एतिबार से नहीं।

और अगर किसी शख़्स ने किसी शहीद की लाश को मिट्टी के द्वारा खाया हुआ पाया हो तो समझ ले कि मुम्किन है उसकी नीयत ख़ालिस न हो जिस पर मदार है क़त्ल के शहादत होने का, और सिर्फ़ क़त्ल होना शहादत नहीं है, और अगर फ़र्ज़ करो ऐसा शहीद मिट्टी के द्वारा खाया हुआ पाया जाये जिसका क़त्ल अल्लाह के रास्ते में होना और उसका शहादत की शर्तों में जामे होना निश्चित और यक़ीनी दलील वग़ैरह से साबित हो (जिसका शुब्हा 'रूहुल-मआ़नी' के लेखक को हो गया है) तो

उसकी वजह में कहा जायेगा कि हदीस में जिस चीज़ की वज़ाहत है वह यह कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और शहीद हज़रात के जिस्म को ज़मीन नहीं खाती, यानी मिट्टी उनके जिस्म को ख़राब नहीं कर सकती, मिट्टी के ज़र्रात के अ़लावा किसी दूसरी चीज़ से उनके जिस्म का मुतास्सिर होकर फ़ना हो जाना फिर भी मुम्किन है, क्योंकि ज़मीन में और भी बहुत सी प्रकार की धातुएँ और उनके अंश व हिस्से अल्लाह तआ़ला ने रख दिये हैं, अगर उनकी वजह से किसी शहीद का जिस्म मुतास्सिर (प्रभावित) हो तो वह इस आयत के मनाफ़ी (ख़िलाफ़) नहीं।

चुनाँचे दूसरे मुरक्कब जिस्म जैसे अस्लहा, दवाईयाँ, ग़िज़ायें, अख़्लात और सादा (ग़ैर-मुरक्कब) जिस्म जैसे पानी, आग और हवा की तासीर अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के जिस्मों में भी साबित है और शहीदों की मरने के बाद की ज़िन्दगी अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की मौत से पहले की ज़िन्दगी से ज़्यादा क़वी व ताक़तवर नहीं, और ज़मीन के बाज़े हिस्सों में ज़मीन के अ़लावा दूसरी चीज़ें भी शामिल हो जाती हैं जिस तरह दूसरे अ़नासिर (तत्वों) में भी मुख़्तलिफ़ अ़नासिर शामिल हो जाते हैं, सो अगर उन ग़ैर-ज़मीनी अंश और चीज़ों से उनके जिस्म और शरीर मुतास्सिर हो जायें तो इससे उन हदीसों पर इश्काल (एतिराज़ व शुब्हा) नहीं होता जिनमें इनके जिस्मों को ज़मीन पर हराम होने को बयान किया गया है।

और एक जवाब यह है कि शहीदों के जिस्मों के सम्मान व विशेषता के लिये यह काफ़ी है कि दूसरे मुर्दों से ज़्यादा मुद्दत तक उनके जिस्म (शरीर) ख़ाक से मुतास्सिर न हों, अगरचे किसी वक़्त में हो जायें, और हदीसों से यही असल बताना समझा जाये कि उनके जिस्मों का करिश्माती और ख़िलाफ़े आ़दत (असाधारण) तौर पर सुरक्षित रहना है और ख़िलाफ़े आ़दत (असाधारण) की दोनों सूरतें हैं- हमेशा के लिये सुरक्षित रहना या लम्बे समय तक सुरक्षित रहना। और चूँकि बर्ज़ख़ का आ़लम हवास यानी आँख, कान, नाक, हाथ वग़ैरह से महसूस व मालूम नहीं होता इसलिये 'ला तशअ़ुरून' (तुम उस ज़िन्दगी को महसूस नहीं कर सकते) फ़रमाया गया, कि तुम उनकी ज़िन्दगी की हक़ीक़त को नहीं समझ सकते।

मुसीबतों पर सब्र को आसान करने की ख़ास तदबीर

फ़ायदाः- अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से जो बन्दों का इम्तिहान होता है उसकी हक़ीक़त आयतः

وَاِذِ ابْتَلٰٓى اِبْرٰهٖمَ رَبُّهٗ

(यानी सूरः ब-क़रह की आयत 124) की तफ़सीर में गुज़र चुकी है और हादसों व घटनाओं के ज़ाहिर होने से पहले उनकी ख़बर दे देने में यह फ़ायदा हुआ कि सब्र आसान हो जाता है, वरना अचानक कोई सदमा पड़ने से ज़्यादा परेशानी होती है। और यह ख़िताब सारी उम्मत को है, तो सब को समझ लेना चाहिये कि दुनिया 'दारुल-मिहन' (यानी मेहनतों और तकलीफ़ों की जगह) है, इसलिये यहाँ के हादसों को अ़जीब और दूर की चीज़ न समझा जाये तो बेसब्री न होगी, और चूँकि ये लोग अ़मल के एतिबार से सब्र में सब शामिल हैं, इसलिये इसका मुश्तरका (सब को शामिल) सिला (बदला और अज्र) तो आ़म रहमत है जिसका सब्र पर वायदा मौजूद है और चूँकि मिक़्दार (मात्रा), शान और ख़ुसूसियत हर साबिर के सब्र की अलग है इसलिये उन ख़ुसूसियतों का सिला अलग-अलग ख़ास

इनायतों से होगा जो उन ख़ास ख़ुसूसियतों पर वायदा शुदा हैं, जैसे दुनिया में इनाम के मौक़ों पर खाने की दावत तो आ़म होती है फिर रुपये और जोड़े हर एक को उसके रुतबे व हैसियत और ख़िदमत के हिसाब से दिये जाते हैं।

मुसीबत में 'इन्ना लिल्लाहि....' को समझकर पढ़ा जाये तो दिल के सुकून का बेहतरीन इलाज है

साबिरीन (सब्र करने वालों) की तरफ़ निस्बत करके जो यह फ़रमाया है कि वे मुसीबत के वक़्त 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊ़न' कहा करते हैं, वास्तव में इसकी तालीम से मक़सद यह है कि मुसीबत वालों को ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि ऐसा कहने में सवाब भी बड़ा है और अगर दिल से समझ कर ये अलफ़ाज़ कहे जायें तो ग़म व रंज दूर करने और दिल को तसल्ली देने के मामले में भी अक्सीर का हुक्म रखते हैं।

إِنَّ الصَّفَا وَالْمَرْوَةَ مِنْ شَعَآئِرِ اللّٰهِ ۚ فَمَنْ حَجَّ الْبَيْتَ أَوِ اعْتَمَرَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ أَنْ يَّطَّوَّفَ بِهِمَا ۚ وَمَنْ تَطَوَّعَ خَيْرًا ۙ فَإِنَّ اللّٰهَ شَاكِرٌ عَلِيْمٌ ﴿١٥٨﴾

इन्नस्सफ़ा वल्-मर्-व-त मिन् शआ़-इरिल्लाहि फ़मन् हज्जल्बै-त अविअ़्त-म-र फ़ला जुना-ह अ़लैहि अंय्यत्तव्व-फ़ बिहिमा, व मन् त-तव्व-अ ख़ैरन् फ़-इन्नल्ला-ह शाकिरुन् अ़लीम (158)	बेशक सफ़ा और मरवा निशानियों में से हैं अल्लाह की, सो जो कोई हज करे बैतुल्लाह का या उमरा तो कुछ गुनाह नहीं उसको कि तवाफ़ करे उन दोनों में, और जो कोई अपनी ख़ुशी से करे कुछ नेकी तो अल्लाह क़द्रदान है, सब कुछ जानने वाला। (158)

पहले गुज़री आयतों से इन आयतों का ताल्लुक़

पहले गुज़री आयतों में आयत 124 से दूर तक ख़ाना-ए-काबा का तफ़सीली ज़िक्र हुआ है जिसके शुरू में ख़ाना-ए-काबा के इबादत का मक़ाम होने का बयान था और उसके आगे हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की दुआ़ को नक़ल किया गया था कि उन्होंने यह दरख़्वास्त की थी कि हमें मनासिक के अहकाम सिखला दिये जायें और मनासिक में हज व उमरा भी दाख़िल है। पस बैतुल्लाह का 'इबादत का मक़ाम' होना जैसे उसके नमाज़ का क़िब्ला बनाने से ज़ाहिर किया गया इसी तरह हज व उमरे में बैतुल्लाह को मक़सद बनाकर उसकी अहमियत को वाज़ेह किया गया।

अब आगे आने वाली आयत में उसके हज व उमरे का मक़सद बनने के मुताल्लिक़ एक मज़मून का बयान है, वह यह कि सफ़ा व मरवा दो पहाड़ियाँ मक्का में हैं, हज व उमरे में काबे का तवाफ़

करके उनके बीच में दौड़ते चलते हैं, जिसको सई कहते हैं। चूँकि इस्लाम से पहले (यानी जाहिलीयत के ज़माने) में भी यह सई होती थी और उस वक्त सफ़ा व मरवा पर कुछ मूर्तियाँ रखी थीं इसलिये कुछ मुसलमानों को शुब्हा पड़ गया कि शायद यह जाहिलीयत की रस्मों में से हो और गुनाह का सबब हो, और कुछ लोग जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने) में भी इसको गुनाह समझते थे, उनको यह शुब्हा हुआ कि शायद इस्लाम में भी गुनाह हो। अल्लाह तआ़ला को यह शुब्हा दूर फ़रमाना मक़सूद था, पस पहले मज़मून में काबे के नमाज़ का किब्ला होने पर काफ़िरों के एतिराज़ को दूर करना मक़सूद था और उसके बाद वाले मज़मून में काबे के हज व उमरे का मक़सद होने के मुताल्लिक़ एक हुक्म यानी सफ़ा व मरवा की सई पर ख़ुद मुसलमानों के शुब्हे को दूर फ़रमाना मक़सूद था, यह वजह दोनों मज़मूनों में जोड़ और ताल्लुक़ की है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(सफ़ा व मरवा की सई में कोई शुब्हा न करो, क्योंकि) यह बात तहक़ीक़ी है कि सफ़ा और मरवा (और उनके बीच में सई करना) अल्लाह (के दीन) की यादगारों में से हैं। इसलिए जो शख़्स हज करे बैतुल्लाह (अल्लाह के घर) का, या (उसका) उमरा करे, उस पर ज़रा भी गुनाह नहीं (जैसा कि तुमको शुब्हा हो गया) उन दोनों के बीच (सई के परिचित तरीक़े के मुताबिक़) आना-जाना करने में (जिसका नाम "सई" है, और गुनाह क्या बल्कि सवाब होता है, क्योंकि यह सई तो शरई तौर पर ख़ैर की चीज़ है) और (हमारे यहाँ का नियम है कि) जो शख़्स ख़ुशी से कोई ख़ैर की बात करे तो हक़ तआ़ला (उसकी बड़ी) क़द्रदानी करते हैं, (और उस ख़ैर करने वाले की नीयत व ख़ुलूस को) ख़ूब जानते हैं (पस इस नियम व क़ायदे की रू से सई करने वाले को उसके इख़्लास के हिसाब से सवाब इनायत होगा)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

चन्द अलफ़ाज़ के मायनों की तहक़ीक़

'शआ़इरिल्लाहि' शआ़इर बहुवचन है शअ़ीरा का, जिसके मायने अ़लामत (निशानी और पहचान) के हैं। 'शआ़इरुल्लाह' से मुराद वे आमाल हैं जिनको अल्लाह तआ़ला ने दीन की अ़लामतें (निशानियाँ और यादगार) क़रार दिया है। हज के लफ़्ज़ी मायने इरादा करने के हैं और क़ुरआन व सुन्नत की इस्तिलाह में ख़ास ख़ाना-ए-काबा का इरादा करने और वहाँ कुछ ख़ास आमाल और कामों को अदा करने को हज कहा जाता है। उमरा के लफ़्ज़ी मायने ज़ियारत के हैं और शरीअ़त की इस्तिलाह में मस्जिदे हराम (काबा वाली मस्जिद) की हाज़िरी और तवाफ़ व सई को कहा जाता है।

सफ़ा व मरवा के बीच 'सई' वाजिब है

हज, उमरा और सई का तरीक़ा फ़िक़ा (मसाईल) की किताबों में मज़कूर है, और यह सई इमाम अहमद रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक मुस्तहब सुन्नत है और इमाम मालिक व इमाम शाफ़ई रहमतुल्लाहि अ़लैहिमा के नज़दीक फ़र्ज़ है, और इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक

वाजिब है, कि इसके छोड़ देने से एक बकरी ज़िबह करनी पड़ती है।

उक्त आयत के अलफ़ाज़ से यह शुब्हा न करना चाहिये कि इस आयत में तो सफ़ा व मरवा के बीच सई करने (दौड़कर या झपट कर चलने) के मुताल्लिक़ सिर्फ़ इतना फ़रमाया गया है कि वह गुनाह नहीं, इससे तो ज़्यादा से ज़्यादा यह साबित हुआ कि सई मुबाह (जायज़) चीज़ों में से एक मुबाह है। वजह यह है कि इस जगह उनवान 'ला जुना-ह' (कोई गुनाह नहीं) का सवाल की मुनासबत से रखा गया है। सवाल इसी का था कि सफ़ा व मरवा पर बुतों की मूर्तियाँ रखी थीं और जाहिलीयत के ज़माने के लोग उन्हीं की पूजा-पाट के लिये सफ़ा व मरवा के बीच सई करते थे, इसलिये यह अ़मल हराम होना चाहिये। इसके जवाब में फ़रमाया कि इसमें कोई गुनाह नहीं, चूँकि यह दर असल इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की सुन्नत (तरीक़ा) है, किसी के जाहिलाना अ़मल से कोई काम गुनाह नहीं हो जाता। यह फ़रमाना उसके वाजिब होने के मनाफ़ी (ख़िलाफ़) नहीं।

إِنَّ الَّذِينَ يَكْتُمُونَ مَا أَنزَلْنَا مِنَ الْبَيِّنَاتِ وَالْهُدَىٰ مِن بَعْدِ مَا بَيَّنَّاهُ لِلنَّاسِ فِي الْكِتَابِ ۙ أُولَٰئِكَ يَلْعَنُهُمُ اللَّهُ وَيَلْعَنُهُمُ اللَّاعِنُونَ ۝ إِلَّا الَّذِينَ تَابُوا وَأَصْلَحُوا وَبَيَّنُوا فَأُولَٰئِكَ أَتُوبُ عَلَيْهِمْ ۚ وَأَنَا التَّوَّابُ الرَّحِيمُ ۝ إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا وَمَاتُوا وَهُمْ كُفَّارٌ أُولَٰئِكَ عَلَيْهِمْ لَعْنَةُ اللَّهِ وَالْمَلَائِكَةِ وَالنَّاسِ أَجْمَعِينَ ۝ خَالِدِينَ فِيهَا ۖ لَا يُخَفَّفُ عَنْهُمُ الْعَذَابُ وَلَا هُمْ يُنظَرُونَ ۝

इन्नल्लज़ी-न यक्तुमू-न मा अन्ज़ल्ना मिनल्-बय्यिनाति वल्हुदा मिम्-बअ्दि मा बय्यन्नाहु लिन्नासि फ़िल्-किताबि उलाइ-क यल्अनुहुमुल्लाहु व यल्अनुहुमुल्-लाअिनून (159) इल्लल्लज़ी-न ताबू व अस्लहू व बय्यनू फ़-उलाइ-क अतूबु अ़लैहिम् व अ-नत्तव्वाबुर्रहीम (160) इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू व मातू व हुम् कुफ़्फ़ारुन् उलाइ-क अ़लैहिम् लअ्नतुल्लाहि वल्मलाइ-कति वन्नासि अज्मअ़ीन (161) ख़ालिदी-न फ़ीहा	बेशक जो लोग छुपाते हैं जो कुछ हमने उतारे साफ़ हुक्म और हिदायत की बातें, उसके बाद कि हम उनको खोल चुके लोगों के वास्ते किताब में, उन पर लानत करता है अल्लाह और लानत करते हैं उन पर लानत करने वाले। (159) मगर जिन्होंने तौबा की और दुरुस्त (सही) किया अपने कलाम को और बयान कर दिया हक़ को तो उनको माफ़ करता हूँ और मैं हूँ बड़ा माफ़ करने वाला निहायत मेहरबान। (160) बेशक जो लोग काफ़िर हुए और मर गये काफ़िर ही उन्हीं पर लानत है अल्लाह की और फ़रिश्तों और लोगों की सब की। (161)

ला युख़फ़्फ़फ़ु अन्हुमुल्-अ़ज़ाबु व ला हुम् युन्ज़रून (162)	हमेशा रहेंगे उसी लानत में, न हल्का होगा उन पर से अ़ज़ाब और न उनको मोहलत मिलेगी। (162)

ऊपर की आयतों से इन आयतों का ताल्लुक़ और जोड़

ऊपर क़िब्ले की बहस के तहत में क़िब्ले वाले यानी हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत के बारे में अहले किताब के हक़ छुपाने का मज़मून ज़िक्र हुआ था। इस आयत मेंः

اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَعْرِفُوْنَهٗ.....................الخ

(यानी इसी सूरत की आयत 146 में) अब आगे इस मज़मून की तक्मील के वास्ते हक़ को छुपाने वालों की और हक़ को छुपाने पर अड़े रहने वालों को वईद (सज़ा की धमकी) और तौबा करने पर माफ़ी का वायदा इरशाद फ़रमाते हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

जो लोग छुपाते हैं उन मज़ामीन को जिनको हमने नाज़िल किया है, जो कि (अपनी ज़ात में) स्पष्ट हैं और (दूसरों के लिये) हिदायत देने वाले हैं, बाद इस (हालत) के कि हम उन (मज़ामीन) को (अल्लाह की) किताब (तौरात व इन्जील) में (नाज़िल फ़रमाकर) आम लोगों पर ज़ाहिर कर चुके हैं, ऐसे लोगों पर अल्लाह तआ़ला भी लानत फ़रमाते हैं (कि अपनी ख़ास रहमत से उनको दूर कर देते हैं) और (दूसरे बहुत-से) लानत करने वाले भी (जिनको इस काम से नफ़रत है) उन पर लानत भेजते हैं (यानी उन पर बद्दुआ़ करते हैं, हाँ) मगर जो लोग (उन छुपाने वालों में से अपनी इस हरकत से) तौबा (यानी हक़ तआ़ला के रू-ब-रू गुज़री हुई हरकतों से माज़िरत) कर लें और (जो कुछ उनके उस फ़ेल से ख़राबी हो गई थी आईन्दा के लिये उसका) सुधार कर लें (और उस सुधार का तरीक़ा यह है कि उन छुपाये हुए मज़ामीन को सार्वजनिक रूप से) ज़ाहिर कर दें (ताकि सब को इत्तिला हो जाये और उन पर लोगों को गुमराह करने का बोझ न रहे और शरीअ़त के नज़दीक मोतबर इज़हार यह है कि इस्लाम को क़ुबूल कर लें, क्योंकि इस्लाम न लाने में नुबुव्वते मुहम्मदिया के मुताल्लिक़ अ़वाम पर भी हक़ छुपा रहेगा वे यही समझेंगे कि अगर नुबुव्वत हक़ होती तो ये आसमानी किताब जानने वाले लोग क्यों न ईमान लाते। ख़ुलासा यह है कि ये लोग मुसलमान हो जायें) तो ऐसे लोगों (के हाल) पर मैं (इनायत से) मुतवज्जह हो जाता हूँ (और उनकी ख़ता माफ़ कर देता हूँ), और मेरी तो अधिकतर आ़दत ही है तौबा क़ुबूल कर लेना और मेहरबानी फ़रमाना (कोई तौबा करने वाला होना चाहिये) अलबत्ता जो लोग (उनमें से) इस्लाम न लाएँ और इसी ग़ैर-इस्लामी हालत पर मर जाएँ, ऐसे लोगों पर (वह) लानत (जिसका ज़िक्र हुआ) अल्लाह की और फ़रिश्तों की और आदमियों की भी सब की (ऐसे तौर पर बरसा करेगी कि) वे हमेशा-हमेशा उसी (लानत) में रहेंगे।

(हासिल यह है कि वे जहन्नम में हमेशा के लिये दाख़िल होंगे, और हमेशा का जहन्नम में रहने वाला हमेशा ही ख़ुदा की ख़ास रहमत से दूर भी रहेगा, और हमेशा मलऊन रहना यही है। और हमेशा

की लानत के साथ यह भी है कि दाख़िल होने के बाद किसी वक़्त) उन (पर) से (जहन्नम का) अ़ज़ाब हल्का (भी) न होने पायेगा और न (दाख़िल होने से पहले) उनको (किसी मियाद तक) मोहलत दी जाएगी (क्योंकि मियाद उस वक़्त दी जाती है जबकि मुक़द्दमे में गुन्जाईश हो और गुन्जाईश न होने पर पहली ही पेशी में सज़ा का हुक्म हो जाता है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इल्मे दीन का ज़ाहिर करना और फैलाना वाजिब है और उसका छुपाना सख़्त हराम है

मज़कूरा आयत में इरशाद फ़रमाया गया है कि अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से जो स्पष्ट हिदायतें नाज़िल की गई हैं उनका लोगों से छुपाना इतना बड़ा ज़बरदस्त जुर्म है कि उस पर अल्लाह तआ़ला भी लानत करते हैं और तमाम मख़्लूक़ लानत भेजती है। इससे चन्द अहकाम हासिल हुएः

अव्वल यह कि जिस इल्म के इज़हार और फैलाने की ज़रूरत है उसका छुपाना हराम है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

مَنْ سُئِلَ عَنْ عِلْمٍ يَعْلَمُهُ فَكَتَمَهُ اَلْجَمَهُ اللّٰهُ يَوْمَ الْقِيَامَةِ بِلَجَامٍ مِّنَ النَّارِ.

(رواه ابو هريرةؓ وعمرو بن العاصؓ اخرجه ابن ماجة. از قرطبی)

"यानी जो शख़्स दीन के किसी हुक्म का इल्म रखता है और उससे वह हुक्म मालूम किया जाये अगर वह उसको छुपायेगा तो क़ियामत के दिन उसके मुँह में अल्लाह तआ़ला आग की लगाम डालेंगे।"

हज़राते फ़ुक़हा (मसाईल व अहकाम के माहिर उलेमा) ने फ़रमाया कि यह वईद (धमकी) उस सूरत में है जबकि उसके सिवा कोई दूसरा आदमी मसले का बयान करने वाला वहाँ मौजूद न हो, और अगर दूसरे उलेमा भी मौजूद हैं तो गुंजाईश है कि यह कह दे कि दूसरे उलेमा से मालूम कर लो। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी व तफ़सीरे जस्सास)

दूसरी बात इससे यह मालूम हुई कि जिसको ख़ुद सही इल्म हासिल नहीं उसको मसाईल व अहकाम बताने की जुर्रत नहीं करनी चाहिये।

तीसरा मसला यह मालूम हुआ कि इल्म को छुपाने की यह सख़्त वईद उन्हीं उलूम व मसाईल के मुतािल्लक़ है जो क़ुरआन व सुन्नत में वाज़ेह बयान किये गये हैं, और जिनके ज़ाहिर करने और फैलाने की ज़रूरत है। वो बारीक और गहरे मसाईल जो अ़वाम न समझ सकें बल्कि ख़तरा हो कि वे किसी ग़लत-फ़हमी में मुब्तला हो जायेंगे तो ऐसे मसाईल व अहकाम का अ़वाम के सामने बयान न करना ही बेहतर है और वह इल्म को छुपाने के हुक्म में नहीं है। आयते मज़कूरा में 'स्पष्ट और वाज़ेह हिदायतों' से इसी की तरफ़ इशारा पाया जाता है। ऐसे ही मसाईल के मुतािल्लक़ हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि तुम अगर अ़वाम को ऐसी हदीसें सुनाओगे जिनको वे पूरी तरह न समझ सकें तो उनको फ़ितने में मुब्तला कर दोगे। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

इसी तरह सही बुख़ारी में हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है, उन्होंने फ़रमाया कि आम लोगों के सामने सिर्फ़ उतने ही इल्म का इज़हार करो जिसको उनकी अ़क़्ल व समझ बरदाश्त कर सके। क्या तुम यह चाहते हो कि लोग अल्लाह और उसके रसूल को झुठलायें, क्योंकि जो बात उनकी समझ से बाहर होगी उनके दिलों में उस से शुब्हात व शंकायें पैदा होंगी और मुम्किन है कि उससे इनकार कर बैठें।

इससे मालूम हुआ कि आ़लिम की यह भी ज़िम्मेदारी है कि मुख़ातब के हालात का अन्दाज़ा लगाकर कलाम करे, जिस शख़्स के ग़लत-फ़हमी में मुब्तला होने का ख़तरा हो उसके सामने ऐसे मसाईल बयान ही न करे इसी लिये हज़राते फ़ुक़हा बहुत से मसाईल के बयान के बाद लिख देते हैं:

هٰذَا مِمَّا يُعْرَفُ وَلَا يُعَرَّفُ

यानी यह मसला ऐसा है कि इल्म रखने वालों को ख़ुद तो समझ लेना चाहिये मगर अ़वाम में फैलाना नहीं चाहिये।

एक हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

لَا تَمْنَعُوا الْحِكْمَةَ اَهْلَهَا فَتَظْلِمُوْهُمْ وَلَا تَضَعُوْهَا فِيْ غَيْرِ اَهْلِهَا فَتَظْلِمُوْهَا.

"यानी हिक्मत (अ़क़्ल व समझ) की बात को ऐसे लोगों से न रोको जो उस बात के अहल हों, अगर तुमने ऐसा किया तो तो उन लोगों पर ज़ुल्म होगा, और जो अहल नहीं हैं उनके सामने हिक्मत की बातें न रखो, क्योंकि इस सूरत में उस हिक्मत पर ज़ुल्म होगा।"

इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि इस तफ़सील से यह भी मालूम हो गया कि किसी काफ़िर को जो मुसलमानों के मुक़ाबले में मुनाज़रे करता हो या कोई गुमराह बिद्अ़ती जो लोगों को अपने ग़लत ख़्यालात की तरफ़ दावत देता हो, उसको इल्मे दीन सिखाना उस वक़्त तक जायज़ नहीं जब तक यह गुमान ग़ालिब न हो जाये कि इल्म सिखाने से उसके ख़्यालात दुरुस्त हो जायेंगे।

इसी तरह किसी बादशाह या हाकिमे वक़्त को ऐसे मसाईल बतलाना जिनके ज़रिये वह पब्लिक पर ज़ुल्म करने का रास्ता निकाल ले, जायज़ नहीं। इसी तरह अ़वाम के सामने दीनी अहकाम में रुख़्सतें (छूट) और हीलों की सूरतें बिना ज़रूरत बयान न करना चाहिये जिसकी वजह से वे दीनी अहकाम पर अ़मल करने में बहाने बनाने के आ़दी बन जायें। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

हदीसे रसूल भी क़ुरआन के हुक्म में है

सही बुख़ारी में हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है कि उन्होंने फ़रमाया- अगर क़ुरआन की यह आयत न होती तो मैं तुम से कोई हदीस बयान न करता। आयत से मुराद यही आयत है जिसमें इल्म के छुपाने पर लानत की सख़्त वईद (धमकी) बयान हुई है। ऐसे ही कुछ दूसरे सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने भी हदीस की कुछ रिवायतों के ज़िक्र करने के साथ ऐसे ही अलफ़ाज़ फ़रमाये कि अगर क़ुरआने करीम की यह आयत इल्म छुपाने के बारे में न होती तो मैं यह हदीस बयान न करता।

इन रिवायतों से मालूम हुआ कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के नज़दीक रसूले पाक

सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हदीस क़ुरआन ही के हुक्म में है, क्योंकि आयत में तो इल्म के छुपाने की वईद (सज़ा की धमकी) उन लोगों के लिये आई है जो क़ुरआन में नाज़िल होने वाली हिदायतों व दलीलों को छुपायें। इसमें हदीस का स्पष्ट तौर पर ज़िक्र नहीं, लेकिन सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हदीस को भी क़ुरआन ही के हुक्म में समझकर उसके छुपाने को इस वईद (धमकी) का सबब समझा।

कुछ गुनाहों का वबाल ऐसा होता है कि उस पर सारी मख़्लूक़ लानत करती है

"व यल्अ़नुहुमुल्लाअ़िनून" में क़ुरआने करीम ने लानत करने वालों को मुतैयन नहीं किया कि कौन लोग लानत करते हैं। तफ़सीर के आ़लिम इमाम मुजाहिद रहमतुल्लाहि अ़लैहि और हज़रत इक्रिमा रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि इस मुतैयन और निर्धारित न करने से इशारा इस बात की तरफ़ है कि दुनिया की हर चीज़ और हर मख़्लूक़ उन पर लानत करती है, यहाँ तक कि तमाम जानवर और ज़मीन के कीड़े-मकोड़े भी उन पर लानत करते हैं। क्योंकि उनके बुरे आमाल से इन सब मख़्लूक़ात को नुक़सान पहुँचता है। हज़रत बरा बिन आ़ज़िब रज़ियल्लाहु अ़न्हु की हदीस से इसकी ताईद होती है, जिसमें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि 'लानत करने वालों' से मुराद तमाम ज़मीन पर चलने वाले जानवर हैं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी, इब्ने माजा के हवाले से)

किसी ख़ास शख़्स पर लानत उस वक़्त तक जायज़ नहीं जब तक उसके कुफ़्र पर मरने का यक़ीन न हो जाये

"व मातू व हुम कुफ़्फ़ारुन्" (यानी जो कुफ़्र ही की हालत में मर गये) के लफ़्ज़ से इमाम जस्सास और इमाम क़ुर्तुबी वग़ैरह ने यह मसला निकाला है कि जिस काफ़िर के कुफ़्र की हालत में मरने का यक़ीन न हो उस पर लानत करना जायज़ नहीं, और चूँकि हमारे पास किसी शख़्स के ख़ात्मे का यक़ीनी इल्म होने का अब कोई ज़रिया (माध्यम) नहीं इसलिये किसी काफ़िर का नाम लेकर उस पर लानत करना जायज़ नहीं, और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जिन काफ़िरों पर नाम लेकर लानत की है आपको उनके कुफ़्र पर मरने का अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से इल्म हो गया था। अलबत्ता आ़म काफ़िरों, ज़ालिमों पर बग़ैर किसी को मुतैयन किये लानत करना दुरुस्त है।

इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि जब लानत का मामला इतना सख़्त है कि किसी काफ़िर पर भी उस वक़्त तक जायज़ नहीं जब तक इसका यक़ीन न हो जाये कि उसकी मौत कुफ़्र ही पर होगी, तो किसी मुसलमान पर या किसी जानवर पर लानत कैसे जायज़ हो सकती है, और अ़वाम इससे बिल्कुल ग़फ़लत में हैं, ख़ुसूसन औरतें, कि बात-बात पर लानत के अलफ़ाज़ अपने मुताल्लिक़ीन के बारे में इस्तेमाल करती रहती हैं। और लानत सिर्फ़ लफ़्ज़ लानत ही के कहने से नहीं होती, बल्कि इसके जैसे दूसरे अलफ़ाज़ जिनमें लानत के मायने हों वे भी लानत ही के हुक्म में हैं। लानत के असली मायने

ख़ुदा तआ़ला की रहमत से दूर करने के हैं, इसलिये किसी को मरदूद, रान्दा-ए-दरगाह, अल्लाह का मारा वग़ैरह के अलफ़ाज़ कहना भी लानत ही के हुक्म में है।

وَاِلٰهُكُمْ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الرَّحْمٰنُ الرَّحِيْمُ ۝ اِنَّ فِيْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَاخْتِلَافِ الَّيْلِ وَالنَّهَارِ وَالْفُلْكِ الَّتِيْ تَجْرِيْ فِي الْبَحْرِ بِمَا يَنْفَعُ النَّاسَ وَمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ مِنَ السَّمَآءِ مِنْ مَّآءٍ فَاَحْيَا بِهِ الْاَرْضَ بَعْدَ مَوْتِهَا وَبَثَّ فِيْهَا مِنْ كُلِّ دَآبَّةٍ ۪ وَّتَصْرِيْفِ الرِّيٰحِ وَالسَّحَابِ الْمُسَخَّرِ بَيْنَ السَّمَآءِ وَالْاَرْضِ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يَّعْقِلُوْنَ ۝

व इलाहुकुम् इलाहुंव्वाहिदुन् ला इला-ह इल्ला हुवर्रह्मानुर्रहीम (163) ✿

और माबूद तुम सब का एक ही माबूद है, कोई माबूद नहीं उसके सिवा, बड़ा मेहरबान है निहायत रहम वाला। (163) ✿

इन्-न फ़ी ख़ल्क़िस्समावाति वल्अर्ज़ि वख़्तिलाफ़िल्लैलि वन्नहारि वल्-फ़ुल्किल्लती तज्री फ़िल्बह्रि बिमा यन्फ़अुन्ना-स व मा अन्ज़लल्लाहु मिनस्समा-इ मिम्मा-इन् फ़-अह्या बिहिल्-अर्-ज़ बअ्-द मौतिहा व बस्-स फ़ीहा मिन् कुल्लि दाब्बतिन् व तस्रीफ़िर्रियाहि वस्सहाबिल्-मुसख़्ख़ारि बैनस्समा-इ वल्अर्ज़ि लआयातिल् लिक़ौमिंय्-यअ्क़िलून (164)

बेशक आसमान और ज़मीन के पैदा करने में और रात और दिन के बदलते रहने में और कश्तियों में जो कि लेकर चलती हैं दरिया में लोगों के काम की चीज़ें, और पानी में जिसको कि उतारा अल्लाह ने आसमान से, फिर जिलाया (यानी तरोताज़ा किया) उससे ज़मीन को उसके मर जाने के बाद, और फैलाये उसमें सब किस्म के जानवर, और हवाओं के बदलने में और बादल में जो कि ताबेदार है उसके हुक्म का आसमान व ज़मीन के बीच, बेशक इन सब चीज़ों में निशानियाँ हैं अ़क़्लमन्दों के लिये। (164)

इन आयतों का पिछली आयतों से ताल्लुक़

अ़रब के मुश्रिकों ने जो आयत 'व इलाहुकुम इलाहुंव्-वाहिदुन' (और तुम्हारा माबूद बस एक ही माबूद है) अपने अ़क़ीदे के ख़िलाफ़ सुनी तो ताज्जुब से कहने लगे कि कहीं सारे जहान का एक माबूद भी हो सकता है? और अगर यह दावा सही है तो कोई दलील पेश करनी चाहिये। हक़ तआ़ला आगे दलील बयान फ़रमाते हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (ऐसा माबूद) जो तुम सब के माबूद बनने का मुस्तहिक़ "यानी हक़दार" है, वह तो एक ही (वास्तविक) माबूद है, उसके सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं। (वही) रहमान है और रहीम है (और कोई इन सिफ़ात में कामिल नहीं, और सिफ़ात में कामिल हुए बग़ैर माबूद होने का हक़दार होना बातिल है। पस सिवाय माबूदे हक़ीक़ी के कोई और इबादत का हक़दार न हुआ)। बेशक आसमानों और ज़मीन के बनाने में और एक के बाद एक रात और दिन के आने में और जहाज़ों (के चलने) में जो कि समुद्रों में चलते हैं, आदमियों के नफ़े की चीज़ें (और असबाब) लेकर और (बारिश के) पानी में जिसको अल्लाह ने आसमान से बरसाया, फिर उस (पानी) से ज़मीन को तरोताज़ा किया उसके सूख जाने के बाद (यानी उसमें पेड़-पौधे और सब्ज़ा पैदा किये) और (उन पेड़-पौधों और सब्ज़े से) हर क़िस्म के जानदार इस (ज़मीन) में फैला दिए (क्योंकि हैवानात की ज़िन्दगी, पैदाईश और उनकी नस्ल का आगे बढ़ना इसी पेड़-पौधों और घास वग़ैरह की बदौलत है), और हवाओं की (दिशायें और कैफ़ियतें) बदलने में (कि कभी पुरवा है कभी पछवा, कभी गर्म है कभी ठंडी) और बादल (के वजूद) में जो ज़मीन व आसमान के बीच मुक़ैयद (और लटका हुआ) रहता है, (इन तमाम चीज़ों में अल्लाह के एक होने की) दलीलें (मौजूद हैं) उन लोगों के (दलील हासिल करने के) लिए जो (सही सलामत) अक़्ल रखते हैं।

मआरिफ़ व मसाईल

तौहीद का तफ़सीली मफ़्हूम

"व इलाहुकुम् इलाहुंव्-वाहिदुन" (और तुम सब का माबूद एक ही माबूद है)। अल्लाह तआ़ला की तौहीद (एक माबूद होना) अनेक और विभिन्न हैसियतों से साबित है। जैसे वह एक है, यानी कायनात में कोई उसकी नज़ीर या उसके जैसा नहीं। न कोई उसका हमसर व बराबर है, इसलिये वह इसका हक़दार है कि उसको वाहिद (एक और तन्हा) कहा जाये।

दूसरे यह कि वह एक है इबादत का हक़दार होने में, यानी उसके सिवा कोई इबादत का मुस्तहिक़ (हक़दार) नहीं।

तीसरे यह कि वह एक है यानी वह हिस्से और भाग व अंशों वाला नहीं, वह हिस्सों व अंगों से पाक है, न उसके हिस्से टुकड़े किये जा सकते हैं न ही उसकी तक़सीम हो सकती है।

चौथे यह कि वह एक है यानी अपने अज़ली व अबदी वजूद में एक है। वह उस वक़्त भी मौजूद था जब कोई चीज़ मौजूद न थी, और उस वक़्त भी मौजूद रहेगा जब कोई चीज़ मौजूद न रहेगी। इसलिये वह इसका मुस्तहिक़ (हक़दार) है कि उसको वाहिद (अकेला) कहा जाये। लफ़्ज़ वाहिद में तौहीद की ये तमाम हैसियतें मलहूज़ हैं। (तफ़सीरे जस्सास)

इसके बाद हक़ तआ़ला के वास्तविक एक होने पर तकवीनी (क़ुदरती) निशानियाँ व दलाईल बतलाये गये हैं, जिनको हर आ़लिम व जाहिल समझ सकता है, कि आसमान व ज़मीन की पैदाईश

और रात दिन के हमेशा और निरंतर होने वाले इन्क़िलाब (बदलाव) उसकी कामिल क़ुदरत और अकेला व तन्हा माबूद होने के स्पष्ट दलाईल हैं कि इन चीज़ों की पैदाईश (बनाने) और बाक़ी रखने में किसी दूसरी हस्ती का कोई दख़ल नहीं।

इसी तरह पानी पर कश्तियों का चलना उसकी क़ुदरत की एक बड़ी निशानी है, कि पानी को हक़ तआ़ला ने ऐसा बहने वाला जौहर बना दिया कि पतला और बहने वाला होने के बावजूद उसकी पीठ पर लाखों मन वज़न के जहाज़ बड़े-बड़े वज़न लेकर पूरब से पश्चिम तक मुन्तक़िल कर देते हैं, और उनको हरकत में लाने के लिये हवाओं का चलाना और फिर अपनी हिक्मत के साथ उनके रुख़ बदलते रहना यह सब इसका पता देते हैं कि इन चीज़ों का पैदा करने और चलाने वाला कोई बड़ा अ़लीम व ख़बीर और हकीम है। अगर पानी का माद्दा सय्याल (बहने वाला) न हो तो यह काम नहीं हो सकता, और माद्दा सय्याल भी हो तो जब तक हवायें न चलें जो इन जहाज़ों को हरकत में लाती हैं, जहाज़ों का लम्बी-लम्बी दूरी तय करना मुम्किन नहीं। क़ुरआने करीम ने इसी मज़मून को बयान फ़रमाया है:

اِنْ يَّشَاْ يُسْكِنِ الرِّيْحَ فَيَظْلَلْنَ رَوَاكِدَ عَلٰى ظَهْرِهٖ (۴۲:۳۳)

"अगर अल्लाह तआ़ला चाहें तो हवाओं को साकिन कर दें (यानी रोक दें) और ये जहाज़ समुद्र की पीठ पर खड़े के खड़े रह जायें।"

"बिमा यन्फ़उन्ना-स" (लोगों के नफ़े और फ़ायदे की चीज़ें) के लफ़्ज़ में इशारा कर दिया गया कि समुद्री जहाज़ों के ज़रिये एक मुल्क का सामान दूसरे मुल्क में आयात-निर्यात (यानी भेजने मंगाने) के ज़रिये आम इनसानों के बेशुमार फ़ायदे हैं जिनको शुमार भी नहीं किया जा सकता। और ये फ़ायदे हर ज़माने हर मुल्क में नई-नई सूरतें पैदा कर देते हैं।

इसी तरह आसमान से पानी को क़तरा-क़तरा करके इस तरह उतारना कि उससे किसी चीज़ को नुक़सान न पहुँचे, अगर सैलाब की तरह आता तो कोई आदमी, जानवर, सामान कुछ न रहता। फिर पानी बरसने के बाद उसका ज़मीन पर सुरक्षित रखना इनसान के बस का नहीं, अगर कह दिया जाता कि कुछ महीने के पानी का कोटा अपना-अपना हर शख़्स रख ले तो हर शख़्स उसके रखने का क्या इन्तिज़ाम करता, और किसी तरह रख भी लेता तो उसको सड़ने और ख़राब हो जाने से कैसे बचाता। क़ुदरत ने ये सब इन्तिज़ामात ख़ुद फ़रमा दिये। इरशाद फ़रमायाः

فَاَسْكَنّٰهُ فِى الْاَرْضِ وَاِنَّا عَلٰى ذَهَابٍ بِهٖ لَقٰدِرُوْنَ ٥ (۲۳:۱۸)

"यानी हमने ही पानी को ज़मीन के अन्दर ठहरा दिया अगरचे हमें इसकी भी क़ुदरत थी कि बारिश का पानी बरसने के बाद बहकर ख़त्म हो जाता।"

मगर क़ुदरत ने पानी को ज़मीन वाले इनसान और जानवरों के लिये कहीं खुले तौर पर तालाबों और हौज़ों में जमा कर दिया, कहीं पहाड़ों की ज़मीन में फैली हुई रगों के ज़रिये ज़मीन के अन्दर उतार दिया और फिर एक ग़ैर-महसूस पाईप लाईन सारी ज़मीन में बिछा दी। हर शख़्स जहाँ चाहे खोद कर पानी निकाल लेता है, और उसी पानी का एक बहुत बड़ा ज़ख़ीरा (भण्डार) जमा हुआ समुद्र बनाकर बर्फ़ की शक्ल में पहाड़ों के ऊपर लाद दिया, जो सड़ने और ख़राब होने से भी महफ़ूज़ है

और आहिस्ता-आहिस्ता पिघल कर ज़मीन के अन्दर क़ुदरती पाईप लाईन के ज़रिये पूरे आलम (दुनिया जहान) में पहुँचता है। ग़र्ज़ कि उक्त आयत में अल्लाह की कामिल क़ुदरत के चन्द मज़ाहिर (प्रतीक और निशानियों) का बयान करके तौहीद (एक ख़ुदा के होने) को साबित किया गया। क़ुरआनी उलूम के उलेमा ने इन तमाम चीज़ों पर तफ़सीली बहस की है। देखिये तफ़सीरे जस्सास, क़ुर्तुबी वग़ैरह।

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّتَّخِذُ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ اَنْدَادًا يُّحِبُّوْنَهُمْ كَحُبِّ اللّٰهِ ۭ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَشَدُّ حُبًّا لِّلّٰهِ ۭ وَلَوْ يَرَى الَّذِيْنَ ظَلَمُوْٓا اِذْ يَرَوْنَ الْعَذَابَ ۙ اَنَّ الْقُوَّةَ لِلّٰهِ جَمِيْعًا ۙ وَّاَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعَذَابِ ۝

व मिनन्नासि मंय्यत्तख़िज़ु मिन् दूनिल्लाहि अन्दादंय्-युहिब्बू-नहुम् कहुब्बिल्लाहि, वल्लज़ी-न आमनू अशद्दु हुब्बल्-लिल्लाहि, व लौ यरल्लज़ी-न ज़-लमू इज़् यरौनल्-अज़ा-ब अन्नल्-क़ुव्व-त लिल्लाहि जमीअंव्-व अन्नल्ला-ह शदीदुल् अज़ाब (165)	और बाज़े लोग वे हैं जो बनाते हैं अल्लाह के बराबर औरों को, उनकी मुहब्बत ऐसे रखते हैं जैसे मुहब्बत अल्लाह की, और ईमान वालों को उनसे ज़्यादातर है मुहब्बत अल्लाह की, और अगर देख लें ये ज़ालिम उस वक़्त को जबकि देखेंगे अज़ाब कि क़ुव्वत सारी अल्लाह ही के लिये है और यह कि अल्लाह का अज़ाब सख़्त है। (165)

पिछली आयतों से इस मज़मून का ताल्लुक़

ऊपर की आयतों में तौहीद (अल्लाह के एक होने) को साबित किया गया था। आगे मुश्रिक लोगों की ग़लती और वईद (सज़ा की धमकी) का बयान फ़रमाते हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और एक आदमी वह (भी) हैं जो ख़ुदा तआ़ला के अ़लावा औरों को भी (ख़ुदाई में) शरीक क़रार देते हैं (और उनको अपना कारसाज़ समझते हैं और) उनसे ऐसी मुहब्बत रखते हैं जैसी मुहब्बत अल्लाह से (रखना) ज़रूरी है। (यह हालत तो मुश्रिकों की है) और जो मोमिन हैं उनको (सिर्फ़) अल्लाह तआ़ला के साथ निहायत क़वी मुहब्बत है (क्योंकि अगर किसी मुश्रिक को यह साबित हो जाये कि मेरे माबूद से मुझ पर कोई नुक़सान पड़ेगा तो फ़ौरन मुहब्बत ख़त्म हो जाये और मोमिन बावजूद इसके कि नफ़ा व नुक़सान देने वाला हक़ तआ़ला ही को समझता है लेकिन फिर भी मुहब्बत व रज़ा उसकी बाक़ी रहती है, और अक्सर मुश्रिक लोग सख़्त मुसीबत के वक़्त अपने शरीकों को छोड़ देते हैं और मोमिनीन ईमान की हैसियत से मुसीबत में भी ख़ुदा को न छोड़ते थे और मुहावरों में

ग़ालिब हालत के एतिबार से भी ऐसे जुमले सादिक़ होते हैं) और क्या ख़ूब होता अगर ये ज़ालिम (मुश्रिक लोग) जब (दुनिया में) किसी मुसीबत को देखते तो (उसके पेश आने में ग़ौर करके) समझ लिया करते कि सब क़ुव्वत हक़ तआ़ला ही को है (और दूसरे सब उसके सामने आ़जिज़ हैं। चुनाँचे उस मुसीबत को न कोई रोक सका न टाल सका और न ऐसे वक़्त में और कोई याद रहा), और (उस मुसीबत की शिद्दत में ग़ौर करके) यह (समझ लिया करते) कि अल्लाह तआ़ला का अ़ज़ाब (आख़िरत में जो कि बदले की जगह है, और भी) सख़्त होगा (तो इस तरह ग़ौर करने से ख़ुद गढ़े हुए माबूदों की बेबसी और हक़ तआ़ला की क़ुदरत व बड़ाई ज़ाहिर होकर तौहीद व ईमान इख़्तियार कर लेते)।

إِذْ تَبَرَّأَ الَّذِينَ اتُّبِعُوا مِنَ الَّذِينَ اتَّبَعُوا وَرَأَوُا الْعَذَابَ وَتَقَطَّعَتْ بِهِمُ الْأَسْبَابُ ۝ وَقَالَ الَّذِينَ اتَّبَعُوا لَوْ أَنَّ لَنَا كَرَّةً فَنَتَبَرَّأَ مِنْهُمْ كَمَا تَبَرَّءُوا مِنَّا ۗ كَذَٰلِكَ يُرِيهِمُ اللَّهُ أَعْمَالَهُمْ حَسَرَاتٍ عَلَيْهِمْ ۖ وَمَا هُمْ بِخَارِجِينَ مِنَ النَّارِ ۝

ع

इज़् त-बर्रअल्लज़ीनत्तुबिअ़ू मिनल्-लज़ीनत्त-बअ़ू व र-अवुलअ़ज़ा-ब व त-क़त्तअ़त् बिहिमुल् अस्बाब (166) व क़ालल्लज़ीनत्त-बअ़ू लौ अन्-न लना कर्रतन् फ़-न-तबर्र-अ मिन्हुम् कमा तबर्रअ़ू मिन्ना, कज़ालि-क युरीहिमुल्लाहु अअ़्मालहुम् ह-सरातिन् अ़लैहिम्, व मा हुम् बिख़ारिजी-न मिनन्नार (167) ✿

जबकि बेज़ार (अलग और बेताल्लुक़) हो जायेंगे वे कि जिनकी पैरवी की थी, उनसे जो कि उनके पैरो (पैरवी और ताबेदारी करने वाले) हुए थे, और देखेंगे अ़ज़ाब और कट जायेंगे उनके सब अ़लाक़े (ताल्लुक़ात और रिश्ते)। (166) और कहेंगे पैरो क्या अच्छा होता जो हमको दुनिया की तरफ़ लौट जाना मिल जाता तो फिर हम भी बेज़ार हो जाते इनसे जैसे ये हमसे बेज़ार हो गये। इसी तरह पर दिखलायेगा अल्लाह उनको उनके काम हसरत दिलाने को, और वे हरगिज़ निकलने वाले नहीं नार (यानी दोज़ख़) से। (167) ✿

ऊपर के मज़मून से इन आयतों का ताल्लुक़

ऊपर आख़िरत के अ़ज़ाब को सख़्त फ़रमाया है, अब आगे उस सख़्ती की कैफ़ियत का बयान फ़रमाते हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(वह सख़्ती अ़ज़ाब के वक़्त मालूम होगी) जबकि (इन मुश्रिकों में से) वे (असर व रसूख़ वाले) लोग जिनके कहने पर दूसरे (अ़वाम) चलते थे उन (आ़म) लोगों से साफ़ अलग हो जाएँगे जो उनके

कहने पर चलते थे, और सब (ख़्वास व अवाम) अ़ज़ाब को देख लेंगे और आपस में उनमें जो ताल्लुक़ात थे (कि एक ताबेदारी करने वाला था और दूसरे की ताबेदारी की जाती थी वग़ैरह वग़ैरह) उस वक़्त सब टूट जाएँगे (जैसे दुनिया में भी देखा जाता है कि जुर्म में सब शरीक व मुत्तफ़िक़ होते हैं और मुक़द्दमे में फंसने के वक़्त सब अलग-अलग बचना चाहते हैं यहाँ तक कि आपस में एक दूसरे को पहचानने तक से इनकार कर देते हैं) और (जब) ये पैरोकार लोग (जिनकी ये पैरवी करते थे उनकी यह बेरुख़ी और तोता-चश्मी देखेंगे तो बड़े झुंझलायेंगे, और तो कुछ न हो सकेगा मगर झल्ला कर) यूँ कहने लगेंगे कि किसी तरह हम सब को ज़रा एक दफ़ा (दुनिया में) जाना मिल जाए तो हम भी इनसे (इतना बदला तो ले लें कि अगर ये फिर हमको अपने ताबे होने की तरग़ीब दें तो हम भी टका सा जवाब देकर इनसे) साफ़ अलग हो जाएँ, जैसा कि ये हमसे (इस वक़्त) साफ़ अलग हो बैठे (और कह दें कि जनाब आप वही हैं कि ऐन मौक़े पर बेरुख़ी की थी अब हम से क्या ग़र्ज़। हक़ तआ़ला फ़रमाते हैं कि इन तजवीज़ों और सोच-विचारों से क्या हाथ आयेगा, सिर्फ़) अल्लाह तआ़ला यूँ ही उनके बुरे आमाल को ख़ाली अरमान (के पैराये में) करके उनको दिखला देंगे, और उन (पैरोकारों और मुक़्तदाओं सब) को दोज़ख़ से निकलना भी नसीब न होगा (क्योंकि शिर्क की सज़ा हमेशा जहन्नम में रहना है)।

يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ كُلُوْا مِمَّا فِى الْاَرْضِ حَلٰلًا طَيِّبًا ۖ وَّلَا تَتَّبِعُوْا خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ۚ اِنَّهٗ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ۝ اِنَّمَا يَاْمُرُكُمْ بِالسُّوْٓءِ وَالْفَحْشَآءِ وَاَنْ تَقُوْلُوْا عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ۝

या अय्युहन्नासु कुलू मिम्मा फ़िल्-अर्ज़ि हलालन् तय्यिबंव्-व ला तत्तबिअ़ू ख़ुतुवातिश्शैतानि, इन्नहू लकुम् अ़दुव्वुम्-मुबीन (168) इन्नमा यअ्मुरुकुम् बिस्सू-इ वल्-फ़ह्शा-इ व अन् तक़ूलू अ़लल्लाहि मा ला तअ़्लमून (169)	ऐ लोगो! खाओ ज़मीन की चीज़ों में से हलाल पाकीज़ा और पैरवी न करो शैतान की, बेशक वह तुम्हारा खुला दुश्मन है। (168) वह तो यही हुक्म करेगा तुमको कि बुरे काम और बेहयाई करो और झूठ लगाओ अल्लाह पर वे बातें जिनको तुम नहीं जानते। (169)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(कुछ मुश्रिक लोग बुतों के नाम पर जानवर छोड़ते थे और उनसे नफ़ा हासिल करने को उनके सम्मान के एतिक़ाद के सबब हराम समझते थे और अपने इस फ़ेल को अल्लाह का हुक्म, उसकी रज़ा और उन बुतों की शफ़ाअ़त के वास्ते से उसकी निकटता का ज़रिया समझते थे। हक़ तआ़ला इस बारे

में ख़िताब फ़रमाते हैं कि) ऐ लोगो! जो चीज़ें ज़मीन में मौजूद हैं उनमें से (शरई) हलाल पाक चीज़ों (के बारे में इजाज़त है कि उन) को खाओ (बरतो) और (उनमें से किसी हलाल चीज़ से यह समझकर परहेज़ करना कि इससे अल्लाह राज़ी होगा ये सब शैतानी ख़्यालात हैं, तुम) शैतान के क़दम से क़दम मिलाकर मत चलो, हक़ीक़त में वह (शैतान) तुम्हारा खुला दुश्मन है (कि ऐसे-ऐसे ख़्यालात व जहालत से तुमको हमेशा के ख़सारे में गिरफ़्तार कर रखा है, और दुश्मन होने की वजह से) वह तो तुमको उन्हीं बातों की तालीम करेगा जो कि (शरई तौर पर) बुरी और गन्दी हैं, और यह (भी तालीम करेगा) कि अल्लाह तआ़ला के ज़िम्मे वे बातें लगाओ जिनकी तुम सनद भी नहीं रखते (जैसे यही कि हमको ख़ुदा तआ़ला का इस तरह हुक्म है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

कुछ अलफ़ाज़ के मायने

"हलालन् तय्यिबन्" लफ़्ज़ 'हल्-ल' के असली मायने गिरह खोलने के हैं। जो चीज़ इनसान के लिये हलाल कर दी गई गोया एक गिरह खोल दी गई और पाबन्दी हटा दी गई। हज़रत सहल बिन अ़ब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि निजात तीन चीज़ों में मुन्हसिर है- हलाल खाना, फ़राईज़ अदा करना और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत की पैरवी करना। और लफ़्ज़ **तय्यिब** के मायने हैं पाकीज़ा, जिसमें शरई हलाल होना भी दाख़िल है और तबई पसन्दीदा होना भी।

'ख़ुतुवातिन' ख़ुत्वतुन् का बहुवचन है, इतनी मात्रा को ख़ुत्वतुन् कहते हैं जो दोनों क़दमों के बीच का फ़ासला है। 'ख़ुतुवाते शैतान' से मुराद शैतानी आमाल व हरकतें हैं।

"अस्सू-इ वल-फ़ह्शा-इ" सूउन् वह चीज़ जिसको देखकर अ़क़्लमन्द शरीफ़ आदमी को दुख हो। 'फ़हशा' बेहयाई का काम। कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि इस जगह 'सूउन्' से मुराद मुतलक़ नाफ़रमानी और फ़हशा से मुराद बड़ा गुनाह है।

"इन्नमा यअ्मुरुकुम्" शैतान के अम्र और हुक्म करने से मुराद दिल में वस्वसा डालना है जैसा कि हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु की हदीस में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- इनसान के दिल में एक शैतानी इल्हाम (डाली हुई बात) व असर होता है और दूसरा फ़रिश्ते की तरफ़ से, शैतानी वस्वसे का असर यह होता है कि बुरे काम करने के फ़ायदे और मस्लेहतें सामने आती हैं, और हक़ को झुठलाने की राहें खुलती हैं। और फ़रिश्ते के इल्हाम (दिल में बात डालने) का असर ख़ैर और नेकी पर इनाम व कामयाबी का वायदा और हक़ की तस्दीक़ पर दिल का संतुष्ट होना होता है।

मसलाः सांड वग़ैरह जो बुतों के नाम पर छोड़ दिये जाते हैं, या और कोई जानवर मुर्ग़ा, बकरा वग़ैरह किसी बुज़ुर्ग या और किसी ग़ैरुल्लाह के लिये नामज़द कर दिया जाता है, इसका हराम होना अभी चार आयतों के बाद 'व मा उहिल्-ल बिही लिग़ैरिल्लाहि' के तहत आने वाला है। इस आयत (यानी आयत 128) में ऐसे जानवर के हराम होने की नफ़ी करना मन्ज़ूर नहीं जैसा कि कुछ लोगों को शुब्हा हो गया, बल्कि मक़सद इस फ़ेल की मनाही व हराम होना है कि ग़ैरुल्लाह के तक़र्रुब

(निकटता) के लिये जानवरों को छोड़ देना और इस अ़मल को बरकत व निकटता का सबब समझना और उन जानवरों को अपने ऊपर हराम कर लेने का मुआ़हदा कर लेना, इसको हमेशा के लिये समझना ये सब काम नाजायज़ और इनका करना गुनाह है।

तो आयत का हासिले मतलब यह है कि जिन जानवरों को अल्लाह तआ़ला ने हलाल बनाया है उनको बुतों के नाम करके हराम न बनाओ, बल्कि अपनी हालत पर छोड़कर खाओ पियो और अगर ऐसी हरकत जहालत (नादानी) से हो जाये तो नीयत को सही करने के साथ-साथ ईमान की तजदीद (नवीकरण) और तौबा करके उस हुर्मत (सम्मानित होने) को ख़त्म करो। इस तरह जानवरों को सम्मानित समझते हुए हराम क़रार देना तो गुनाह हुआ मगर ग़ैरुल्लाह के नाम पर कर देने से यह नापाक और मुर्दार के हुक्म में आ गया, नजासत (नापाकी और गंदगी) की वजह से हुर्मत साबित हो गई।

मसलाः इससे यह भी मालूम हुआ कि अगर किसी शख़्स ने जहालत या ग़फ़लत से किसी जानवर को किसी ग़ैरुल्लाह के साथ नामज़द करके छोड़ दिया तो उसकी तौबा यही है कि अपने उस ताज़ीम के ख़्याल से रुजू करे और उस फ़ेल से तौबा करे तो फिर उसका गोश्त हलाल हो जायेगा। वल्लाहु आलम

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمُ اتَّبِعُوْا مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ قَالُوْا بَلْ نَتَّبِعُ مَآ اَلْفَيْنَا عَلَيْهِ
اٰبَآءَنَا ۭ اَوَلَوْ كَانَ اٰبَاۗؤُھُمْ لَا يَعْقِلُوْنَ شَـيْـــًٔـا وَّلَا يَهْتَدُوْنَ ۝ وَمَثَلُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا كَمَثَلِ
الَّذِيْ يَنْعِقُ بِمَا لَا يَسْمَعُ اِلَّا دُعَاۗءً وَّنِدَاۗءً ۭ صُمٌّۢ بُكْمٌ عُمْيٌ فَهُمْ لَا يَعْقِلُوْنَ ۝

व इज़ा क़ी-ल लहुमुत्तबिअ़ू मा अन्ज़लल्लाहु क़ालू बल् नत्तबिअ़ु मा अल्फ़ैना अ़लैहि आबा-अना, अ-व लौ का-न आबाउहुम् ला यअ़्क़िलू-न शैअंव्-व ला यह्तदून (170) व म-सलुल्लज़ी-न क-फ़रू क-म-सलिल्लज़ी यन्अ़िक़ु बिमा ला यस्मअ़ु इल्ला दुआ़अंव्-व निदाअन्, सुम्मुम् बुक्मुन् अुम्युन् फ़हुम् ला यअ़्क़िलून (171)

और जब कोई उनसे कहे कि ताबेदारी करो उस हुक्म की जो कि नाज़िल फ़रमाया अल्लाह ने तो कहते हैं- हरगिज़ नहीं! हम तो ताबेदारी करेंगे उसकी जिस पर देखा हमने अपने बाप-दादों को, भला अगरचे उनके बाप-दादे न समझते हों कुछ भी, और न जानते हों सीधी राह? (170) और मिसाल उन काफ़िरों की ऐसी है जैसे पुकारे कोई शख़्स ऐसी चीज़ को जो कुछ न सुने सिवाय पुकारने और चिल्लाने के, बहरे गूँगे अन्धे हैं, सो वे कुछ नहीं समझते। (171)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जब कोई उन (मुश्रिक) लोगों से कहता है कि अल्लाह तआ़ला ने जो हुक्म (अपने पैग़म्बर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास) भेजा है उस पर चलो, तो (जवाब में) कहते हैं (कि नहीं) बल्कि हम तो उसी (तरीक़े) पर चलेंगे जिस पर हमने अपने बाप-दादा को पाया है (क्योंकि वे लोग इस तरीक़े के इख़्तियार करने में अल्लाह की तरफ़ से पाबन्द थे, हक़ तआ़ला उन पर रद्द फ़रमाते हैं) क्या (हर हालत में ये लोग अपने बाप-दादा ही के तरीक़े पर चलेंगे) अगरचे इनके बाप-दादा (दीन की) न कुछ समझ रखते हों और न (किसी आसमानी किताब की) हिदायत रखते हों?

وَمَثَلُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا كَمَثَلِ الَّذِىْ (الى قوله) فَهُمْ لَا يَعْقِلُوْنَ۝

(आगे आयत 171 में फ़रमाते हैं) और इन काफ़िरों की कैफ़ियत (ना-समझी में) उस (जानवर की) कैफ़ियत के जैसी है (जिसका ज़िक्र इस मिसाल में किया जाता है) कि एक शख़्स है, वह ऐसे (जानवर) के पीछे चिल्ला रहा है जो सिवाय बुलाने और पुकारने के कोई (मज़मून की) बात नहीं सुनता, (इसी तरह) ये कुफ़्फ़ार (भी ज़ाहिरी बातचीत तो सुनते हैं लेकिन काम की बात से बिल्कुल) बहरे हैं (गोया सुना ही नहीं), गूँगे हैं (कि कभी ऐसी बात ज़बान ही पर नहीं आती), अन्धे हैं (क्योंकि नफ़ा व नुक़सान नज़र ही नहीं आता), इसलिए (जब सारे ही हवास में ख़लल और ख़राबी है तो) समझते (समझाते) कुछ नहीं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत से जिस तरह बाप-दादों की अन्धी पैरवी व इत्तिबा की मज़म्मत (निंदा और बुराई) साबित हुई इसी तरह जायज़ पैरवी व इत्तिबा की शर्तें और एक ज़ाब्ता (नियम) भी मालूम हो गया जिसकी तरफ़ दो लफ़्ज़ों में इशारा फ़रमाया है:

'ला यअ़्किलून' (वे अ़क़्ल नहीं रखते) और **'व ला यह्तदून'** (वे हिदायत नहीं रखते), क्योंकि इससे मालूम हुआ कि उन बाप-दादों (पुर्खों) की पैरवी (अनुसरण) व इत्तिबा को इसलिये मना किया गया है कि उन्हें न अ़क़्ल थी न हिदायत। हिदायत से मुराद वे अहकाम हैं जो अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से स्पष्ट तौर पर नाज़िल किये गये, और अ़क़्ल से मुराद वे जो शरई दलीलों और स्रोतों से ग़ौर व फ़िक्र के ज़रिये निकाले गये हों।

तो उनकी पैरवी और अनुसरण के जायज़ न होने की वजह यह है कि न उनके पास अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से नाज़िल हुए अहकाम हैं और न इसकी सलाहियत कि अल्लाह तआ़ला के फ़रमान से अहकाम निकाल सकें। इसमें इशारा पाया गया कि जिस आ़लिम के बारे में यह इत्मीनान हो जाये कि उसके पास क़ुरआन व हदीस का इल्म है और उसको इज्तिहाद (क़ुरआन व हदीस में ग़ौर करके अहकाम निकालने) की सलाहियत भी हासिल है कि जो अहकाम स्पष्ट तौर पर क़ुरआन व सुन्नत में न हों उनको क़ुरआन व सुन्नत से क़ियास के ज़रिये निकाल सकता है, तो ऐसे मुज्तहिद आ़लिम की पैरवी (तक़लीद) व इत्तिबा जायज़ है, न इसलिये कि उसका हुक्म मानना और उसका इत्तिबा (पैरवी) करना है, बल्कि इसलिये कि हुक्म अल्लाह का मानना और उसी का इत्तिबा करना है मगर चूँकि हम

डायरेक्ट अल्लाह के हुक्म से वाक़िफ़ नहीं हो सकते इसलिये किसी मुज्तहिद आ़लिम का इत्तिबा करते हैं, ताकि अल्लाह तआ़ला के अहकाम पर अ़मल हो सके।

जाहिलाना तक़लीद और मुज्तहिद इमामों की तक़लीद में फ़र्क़

इससे मालूम हुआ कि जो लोग मुज्तहिद इमामों की तक़लीद की कुल्ली तौर पर मुख़ालफ़त में इस तरह की आयतें पढ़ देते हैं वे ख़ुद इन आयतों के सही मतलब व मायने से वाक़िफ़ नहीं।

इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इसी आयत की तफ़सीर में फ़रमाया है कि इस आयत में बाप-दादा (यानी अपने पूर्वजों) की तक़लीद (पैरवी) के मना होने का जो ज़िक्र है उससे मुराद बातिल अ़क़ीदों व बुरे आमाल में बाप-दादा की तक़लीद करना है, सही अ़क़ीदों व नेक आमाल में तक़लीद (पैरवी) इसमें दाख़िल नहीं, जैसा कि हज़रत यूसुफ़ अ़लैहिस्सलाम के कलाम में इन दोनों चीज़ों की वज़ाहत सूरः यूसुफ़ में इस तरह आई है:

اِنِّیْ تَرَکْتُ مِلَّةَ قَوْمٍ لَّا یُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَهُمْ بِالْاٰخِرَةِ هُمْ کٰفِرُوْنَ ○ وَاتَّبَعْتُ مِلَّةَ اٰبَآءِیْۤ اِبْرٰهِیْمَ وَ اِسْحٰقَ وَیَعْقُوْبَ.

(سورة یوسف آیت ۳۷، ۳۸)

तर्जुमाः- मैंने उन लोगों के तरीक़े व मज़हब को छोड़ दिया जो अल्लाह पर ईमान नहीं रखते और जो आख़िरत के मुन्किर (इनकार करने वाले) हैं। और मैंने इत्तिबा किया अपने पुर्खों इब्राहीम, इस्हाक़ और याक़ूब (अ़लैहिमुस्सलाम) का।

इसमें पूरी वज़ाहत से साबित हो गया कि बाप-दादा (पुर्खों) की तक़लीद बातिल (ग़लत और ग़ैर-हक़) में हराम है, हक़ में जायज़ बल्कि अच्छी है।

इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इसी आयत के तहत में मुज्तहिद इमामों की तक़लीद के मुताल्लिक़ भी मसाईल व अहकाम बयान किये हैं। आप फ़रमाते हैं:

تعلق قوم بهذه الاية فی ذم التقلید (الی) وهذا فی الباطل صحیح اما التقلید فی الحق فاصل من اصول الدین و عصمة من عصم المسلمین یلجا الیها الجاهل المقصّر عن درك النظر. (قرطبی، ص ۱۹٤ ج ۲)

तर्जुमाः- कुछ लोगों ने इस आयत को तक़लीद (मसाईल व अहकाम वग़ैरह में किसी दूसरे की पैरवी) की निंदा में पेश किया है, और यह बातिल के मामले में तो सही है लेकिन हक़ के मामले में तक़लीद से इसका कोई ताल्लुक़ नहीं। हक़ में तक़लीद करना तो दीन के उसूल में से एक मुस्तक़िल बुनियाद है और मुसलमानों के दीन की हिफ़ाज़त का बहुत बड़ा ज़रिया है, कि जो शख़्स इज्तिहाद (क़ुरआन व हदीस से मसाईल व अहकाम निकालने) की सलाहियत नहीं रखता वह दीन के मामले में तक़लीद ही पर भरोसा करता है।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُلُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا رَزَقْنٰكُمْ وَ اشْكُرُوْا لِلّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ اِيَّاهُ تَعْبُدُوْنَ ○ اِنَّمَا حَرَّمَ عَلَيْكُمُ الْمَيْتَةَ وَالدَّمَ وَلَحْمَ الْخِنْزِيْرِ وَمَاۤ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ ۚ فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ بَاغٍ وَّلَا عَادٍ فَلَاۤ اِثْمَ عَلَيْهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ○

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू कुलू मिन् तय्यिबाति मा रज़क़्नाकुम् वश्कुरू लिल्लाहि इन् कुन्तुम् इय्याहु तअ्बुदून (172) इन्नमा हर्र-म अलैकुमुल्-मै-त-त वद्द-म व लह्मल् ख़िन्ज़ीरि व मा उहिल्-ल बिही लिग़ैरिल्लाहि फ़-मनिज़्तुर्-र ग़ै-र बाग़िंव्-व ला आदिन् फ़ला इस्-म अलैहि, इन्नल्ला-ह ग़फ़ूरुर्रहीम (173)	ऐ ईमान वालो! खाओ पाकीज़ा चीज़ें जो रोज़ी दी हमने तुमको और शुक्र करो अल्लाह का अगर तुम उसके बन्दे हो। (172) उसने तुम पर यही हराम किया है मुर्दा जानवर और लहू और गोश्त सुअर का, और जिस जानवर पर नाम पुकारा जाये अल्लाह के सिवा किसी और का। जो कोई बेइख़्तियार (मजबूर व बेक़रार) हो जाये, न तो नाफ़रमानी करे और न ज़्यादती तो उस पर कुछ गुनाह नहीं, बेशक अल्लाह है बड़ा बख़्शने वाला निहायत मेहरबान। (173)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऊपर पाकीज़ा चीज़ों के खाने के मामले में मुश्रिकों की ग़लती बतलाकर उनकी इस्लाह (सुधार) मक़सूद थीं। आगे ईमान वालों को इस बात से तंबीह की गई है कि वे इस ग़लती में मुश्रिकों की मुवाफ़क़त न करने लगें। इसी के तहत में ईमान वालों को अपने इनामों का ज़िक्र और उस पर शुक्र अदा करने की तालीम भी दी है।

ऐ ईमान वालो! (हमारी तरफ़ से तुमको इजाज़त है कि) जो (शरीअत की रू से) पाक चीज़ें हमने तुमको इनायत फ़रमाई हैं, उनमें से (जो चाहो) खाओ (बरतो), और (इस इजाज़त के साथ यह हुक्म है कि) हक़ तआ़ला की शुक्रगुज़ारी करो (ज़बान से भी, हाथ-पाँव से ख़िदमत व ताअ़त बजा लाकर भी और दिल से उन नेमतों को अल्लाह की जानिब से समझकर भी), अगर तुम ख़ास उनके साथ ग़ुलामी का ताल्लुक़ रखते हो (और यह ताल्लुक़ होना माना हुआ और ज़ाहिर है, पस शुक्र का वाजिब और लाज़िमी होना भी साबित है)।

इन आयतों का पीछे के मज़मून से ताल्लुक़

ऊपर तो इसका बयान था कि हलाल को हराम मत करो, आगे यह बयान होता है कि हराम को हलाल मत समझो, जैसा कि मुश्रिक लोग इसमें मुब्तला थे, जैसे मुर्दार जानवर और ऐसे जानवर जिनको ग़ैरुल्लाह के नाम पर ज़िबह किया गया हो मुश्रिक लोग उनको खाया करते थे, इससे मना किया गया। इसी के साथ-साथ यह भी बतला दिया कि अल्लाह के नज़दीक फ़ुलाँ-फ़ुलाँ जानवर हराम हैं उनके सिवा दूसरे जानवरों को अपनी तरफ़ से हराम क़रार देना ग़लती है। इससे पिछले मज़मून की ताईद हो गई।

अल्लाह तआला ने तो तुम पर सिर्फ़ (इन चीज़ों को) हराम किया है (और उन चीज़ों को हराम नहीं किया जिनको तुम अपनी तरफ़ से हराम कर रहे हो जैसे कि गुज़रा यानी) मुर्दार (जानवर) को (जिसका ज़िबह करना वाजिब है इसके बावजूद शरई तरीक़े पर ज़िबह किये बग़ैर मर जाये) और ख़ून को (जो बहता हो) और सुअर के गोश्त को (इसी तरह उसके सब अंगों और हिस्सों को भी) और ऐसे जानवर को जो (निकटता हासिल करने के इरादे से) अल्लाह के ग़ैर के लिए नामज़द कर दिया गया हो (इन सब को बेशक हराम किया है), फिर भी (इसमें इतनी आसानी रखी है कि) जो शख़्स (भूख से बहुत ही) बेताब हो जाए, शर्त यह है कि न तो (खाने में) मज़े का तालिब हो और न (ज़रूरत की मात्रा से) आगे बढ़ने वाला हो, तो (उस हालत में इन चीज़ों के खाने में भी) उस शख़्स पर कोई गुनाह नहीं होता, वाक़ई अल्लाह तआला हैं बड़े बख़्शने वाले, रहम करने वाले (कि ऐसे वक़्त में यह रहमत फ़रमाई कि गुनाह की चीज़ में भी गुनाह उठा दिया)।

मआरिफ़ व मसाईल

हलाल खाने की बरकत और हराम खाने की नहूसत

ऊपर बयान हुई आयतों में जैसे हराम खाने की मनाही की गई है, इसी तरह हलाल पाक चीज़ों के खाने और इस पर शुक्रगुज़ार होने की तरग़ीब भी है। क्योंकि जिस तरह हराम खाने से बुरे और घटिया अख़्लाक़ पैदा होते हैं, इबादत का ज़ौक़ जाता रहता है, दुआ क़ुबूल नहीं होती, इसी तरह हलाल खाने से एक नूर पैदा होता है, बुरे अख़्लाक़ से नफ़रत, अच्छे अख़्लाक़ की रग़बत (रुचि) पैदा होती है, इबादत में दिल लगता है, गुनाह से दिल घबराता है, दुआ क़ुबूल होती है। इसी लिये अल्लाह तआला ने अपने सब रसूलों को यह हिदायत फ़रमाई है:

يٰٓاَيُّهَا الرُّسُلُ كُلُوْا مِنَ الطَّيِّبٰتِ وَاعْمَلُوْا صَالِحًا. (سورة٢٣:آيت٥١)

ऐ (हमारे) रसूलो! तुम पाकीज़ा चीज़ें खाओ और नेक अ़मल करो।

इसमें इशारा है कि नेक अ़मल करने में हलाल रिज़्क़ को बड़ा दख़ल है। इसी तरह दुआ के क़ुबूल होने में हलाल खाना मददगार और हराम खाना दुआ के क़ुबूल होने में रुकावट और बाधा है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि बहुत से लोग बहुत लम्बे-लम्बे सफ़र करने वाले, परेशान हाल अल्लाह के सामने दुआ के लिये हाथ फैलाते हैं और या रब! या रब! पुकारते हैं मगर खाना उनका हराम, पीना उनका हराम, लिबास उनका हराम, ग़िज़ा उनकी हराम, इन हालात में उनकी दुआ कहाँ क़ुबूल हो सकती है? (सही मुस्लिम, तिर्मिज़ी, इब्ने कसीर से)

"इन्नमा हर्र-म" कलिमा 'इन्नमा' ख़ास और सीमित करने के लिये आता है, इसलिये आयत का मफ़्हूम यह होता है कि अल्लाह तआला ने सिर्फ़ वो चीज़ें हराम की हैं जिनका आगे ज़िक्र किया जाता है, इसके अ़लावा कुछ हराम नहीं। इस आयत में तो लफ़्ज़ 'इन्नमा' से इसकी तरफ़ इशारा हुआ और दूसरी आयत में इससे ज़्यादा स्पष्टता के साथ यह भी आया है:

قُلْ لَّآ اَجِدُ فِيْمَآ اُوْحِيَ اِلَيَّ مُحَرَّمًا عَلٰى طَاعِمٍ ....الآية (٦:١٤٥)

इसमें नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ख़िताब करके यह हुक्म दिया गया है कि आप ऐलान कर दें कि मेरी वही में सिवाय उन चीज़ों के जिनका ज़िक्र किया गया है और कोई चीज़ हराम नहीं।

मगर इस पर इश्काल (शुब्हा) यह है कि क़ुरआन की दूसरी आयतों और नबी पाक की हदीसों से इन चन्द चीज़ों के अ़लावा और भी बहुत सी चीज़ों की हुर्मत (हराम होना) साबित है, तो यह सीमित करना और इनके सिवा किसी और चीज़ के हराम न होने की नफ़ी कैसे दुरुस्त होगी?

जवाब यह है कि यहाँ मुतलक़ तौर पर हलाल व हराम का बयान नहीं, बल्कि उन मख़्सूस जानवरों के हलाल व हराम होने का बयान है जिनके बारे में मक्का के मुश्रिक लोग अपने मुश्रिकाना अ़क़ीदों की ग़लतियाँ किया करते थे। पिछली आयत में इसकी वज़ाहत आ चुकी है कि बहुत से हलाल जानवरों को मुश्रिक लोग हराम समझ लेते थे या अपने ऊपर हराम कर लेते थे, इसकी मुख़ालफ़त की गई थी, इसके मुक़ाबले में यहाँ यह बतलाया गया कि अल्लाह के नज़दीक फ़ुलाँ-फ़ुलाँ जानवर हराम हैं जिनसे तुम बचते नहीं हो और जो अल्लाह के नज़दीक हलाल हैं उनसे परहेज़ करते हो। इसलिये इस जगह उमूमी सीमितता नहीं, बल्कि इज़ाफ़ी है मुश्रिकाना अ़क़ीदों के मुक़ाबिले में। आगे इस आयत में जिन चीज़ों को हराम क़रार दिया गया है वो चार चीज़ें ये हैं:

1. मैता (मुर्दार)। 2. ख़ून। 3. ख़िन्ज़ीर का गोश्त। 4. वह जानवर जिस पर ग़ैरुल्लाह का नाम लिया गया हो। फिर चारों चीज़ों की अधिक तफ़सील व वज़ाहत ख़ुद क़ुरआने करीम की दूसरी आयतों और सही हदीसों में आई हैं, जिनको मिलाने के बाद इन चारों चीज़ों के अहकाम इस प्रकार हैं, इनको किसी क़द्र तफ़सील से लिखा जाता है।

मैता (मुर्दार)

मैता को उर्दू में मुर्दार कहते हैं। इससे मुराद वह जानवर है जिसके हलाल होने के लिये शरीअ़त की रू से ज़िबह करना ज़रूरी है मगर वह बग़ैर ज़िबह के ख़ुद-ब-ख़ुद मर जाये या गला घोंटकर या किसी दूसरी तरह चोट मारकर मार दिया जाये, तो वह मुर्दार और हराम है। लेकिन ख़ुद क़ुरआने करीम की दूसरी आयतः

أُحِلَّ لَكُمْ صَيْدُ الْبَحْرِ (٥:٩٦)

(हलाल किया गया तुम्हारे लिये पानी का शिकार) से मालूम हुआ कि दरियाई जानवर के लिये ज़िबह करना शर्त नहीं, वह बिना ज़िबह भी जायज़ है। इस बिना पर सही हदीसों में मछली और टिड्डी को मैता से अलग क़रार देकर हलाल किया गया है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया हमारे लिये दो मुर्दार हलाल कर दिये गये- एक मछली दूसरे टिड्डी, और दो ख़ून हलाल कर दिये गये जिगर और तिल्ली। (इब्ने कसीर, अज़ अहमद, इब्ने माजा, दारे क़ुतनी)

मालूम हुआ कि जानवरों में से मछली और टिड्डी बग़ैर ज़िबह के हलाल हैं चाहे वो ख़ुद मर जायें या किसी के मारने से मर जायें, अलबत्ता जो मछली सड़ जाने की वजह से ख़ुद पानी के ऊपर आ जाये वह हराम है। (तफ़सीरे जस्सास)

इसी तरह वह शिकारी जानवर जो क़ाबू में नहीं कि ज़िबह कर लिया जाये और उसको भी

बिस्मिल्लाह पढ़कर तीर वग़ैरह धारदार चीज़ से ज़ख़्म लगा दें तो बग़ैर ज़िबह के हलाल हो जाता है, सिर्फ़ आम ज़ख़्मी हो जाना काफ़ी नहीं, किसी ज़ख़्मी करने वाले तेज़ धारदार औज़ार से ज़ख़्मी होना शर्त है।

बन्दूक़ की गोली से शिकार

मसलाः बन्दूक़ की गोली से कोई जानवर ज़ख़्मी होकर ज़िबह करने से पहले मर जाये तो वह ऐसा है जैसे पत्थर या लाठी मारने से मर जाये, जिसको क़ुरआने करीम की दूसरी आयत में 'मौक़ूज़तुन' कहा गया है और हराम क़रार दिया गया है, हाँ मरने से पहले उसको ज़िबह कर लिया जाये तो हलाल हो जायेगा।

मसलाः आजकल बन्दूक़ की एक गोली नोकदार बनाई गई है उसके मुताल्लिक़ कुछ उलेमा का ख़्याल है कि वह तीर के हुक्म में है, मगर जमहूर उलेमा के नज़दीक यह भी तीर की तरह ज़ख़्मी करने वाला आला (यंत्र) नहीं, बल्कि फाड़ने वाला है जिससे बारूद की ताक़त के ज़रिये गोश्त फट जाता है वरना ख़ुद उसमें कोई धार नहीं जिससे जानवर ज़ख़्मी हो जाये, इसलिये ऐसी गोली का शिकार भी बग़ैर ज़िबह के जायज़ नहीं।

मसलाः बयान हुई आयत में मुतलक़न् मैता (मुर्दार) को हराम क़रार दिया है। इसलिये जिस तरह उसका गोश्त खाना हराम है इसी तरह उसकी ख़रीद व फ़रोख़्त भी हराम है। यही हुक्म तमाम गंदगियों और नापाकियों का है कि जैसे उनका इस्तेमाल हराम है इसी तरह उनकी ख़रीद व फ़रोख़्त और उनसे नफ़ा उठाना भी हराम है, यहाँ तक कि मुर्दार जानवर या नापाक कोई चीज़ अपने इख़्तियार से जानवर को खिलाना भी जायज़ नहीं, हाँ ऐसी जगह रख दे जहाँ से कोई कुत्ता बिल्ली ख़ुद खा ले यह जायज़ है, मगर ख़ुद उठाकर उनको खिलाना जायज़ नहीं। (तफ़सीरे जस्सास, क़ुर्तुबी वग़ैरह)

मसलाः इस आयत में मैता के हराम होने का हुक्म आम मालूम होता है जिसमें मैता के तमाम हिस्से और अंग शामिल हैं, लेकिन दूसरी आयत में इसकी तशरीह व व्याख्या 'अ़ला ताअ़िमिंय्-यत्अ़मुहू' के अलफ़ाज़ से कर दी गई है, जिससे मालूम हुआ कि मुर्दार जानवर के वो अंग और हिस्से हराम हैं जो खाने के क़ाबिल हैं, इसलिये मुर्दार जानवर की हड्डी, बाल, जो खाने की चीज़ नहीं वो पाक हैं, और उनका इस्तेमाल जायज़ है। क़ुरआने करीम की इस आयत में उन जानवरों के बालों से मुतलक़ तौर पर फ़ायदा उठाने को जायज़ क़रार दिया हैः

وَمِنْ اَصْوَافِهَا وَاَوْبَارِهَا وَاَشْعَارِهَآ اَثَاثًا وَّمَتَاعًا اِلٰى حِيْنٍ۝ (۱۶ : ۸۰)

(सूरः 16 आयत 80) ज़िबह करने की शर्त नहीं। (तफ़सीरे जस्सास)

खाल पर चूँकि ख़ून वग़ैरह की गंदगी व नापाकी लगी होती है इसलिये वह दबाग़त (नमक वग़ैरह लगाकर तैयार और साफ़ करने) से पहले हराम है मगर दबाग़त देने के बाद हलाल और जायज़ है। सही हदीसों में इसकी अधिक वज़ाहत मौजूद है। (तफ़सीरे जस्सास)

मसलाः मुर्दार जानवर की चर्बी और उससे बनाई हुई चीज़ें भी हराम हैं, उनका इस्तेमाल किसी तरह से जायज़ नहीं और ख़रीद व फ़रोख़्त भी हराम है।

मसलाः यूरोप वग़ैरह से आई हुई चीज़ें साबुन वग़ैरह जिनमें चर्बी इस्तेमाल होती है उनसे परहेज़ करना एहतियात है मगर मुर्दार की चर्बी होने का इल्म यक़ीनी न होने की वजह से गुंजाईश है, तथा इस वजह से भी कि बाज़ सहाबा किराम जैसे हज़रत इब्ने उमर, हज़रत अबू सईद ख़ुदरी, हज़रत अबू मूसा अश्अ़री रज़ियल्लाहु अन्हुम ने मुर्दार की चर्बी का सिर्फ़ खाने में इस्तेमाल हराम क़रार दिया है ख़ारजी (बाहरी तौर पर) इस्तेमाल की इजाज़त दी है, इसलिये उसकी ख़रीद व फ़रोख़्त को भी जायज़ रखा है। (तफ़सीरे जस्सास)

मसलाः दूध का पनीर बनाने में एक चीज़ इस्तेमाल की जाती है जिसको अ़रबी ज़बान में 'इन्फ़हा' कहा जाता है, यह जानवर के पेट से निकाली जाती है इसको दूध में शामिल करने से दूध जम जाता है। अब अगर यह जानवर अल्लाह के नाम पर ज़िबह किया हुआ हो तो इसके इस्तेमाल में कोई नुक़सान नहीं, ज़िबह किये हुए जानवर का गोश्त चर्बी वग़ैरह सब हलाल हैं, लेकिन बिना ज़िबह किये हुए जानवर के पेट से लिया जाये तो इसमें फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) का मतभेद है। इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि और इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहि इसको पाक क़रार देते हैं, लेकिन साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) और इमाम सुफ़ियान सौरी रहमतुल्लाहि अ़लैहिम वग़ैरह इसको नापाक कहते हैं। (तफ़सीरे जस्सास)

यूरोप और दूसरे ग़ैर-इस्लामी मुल्कों से जो पनीर बना हुआ आता है उसमें बिना ज़िबह किये हुए जानवरों का 'इन्फ़हा' इस्तेमाल होने का गुमान और अन्दाज़ा ग़ालिब है इसलिये जमहूर फ़ुक़हा के क़ौल पर उससे परहेज़ करना चाहिये। इमामे आज़म और इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहिमा के क़ौल पर गुंजाईश है, हाँ यूरोप से आये हुए कुछ पनीर ऐसे भी हैं जिनमें ख़िन्ज़ीर (सुअर) की चर्बी इस्तेमाल होती है और डिब्बे पर लिखा हुआ होता है वो क़तई तौर पर हराम और नजिस (नापाक) हैं।

ख़ून के मसाईल

दूसरी चीज़ जो उक्त आयत में हराम क़रार दी गयी है वह ख़ून है। लफ़्ज़ 'दम' ख़ून के मायनों में अगरचे इस आयत में आ़म है मगर सूरः अन्आ़म की आयत में इसके साथ 'मस्फ़ूह' यानी बहने वाला होने की शर्त है। इसलिये दीनी मसाईल के माहिर उलेमा (फ़ुक़हा) के नज़दीक सर्वसम्मति से जमा हुआ ख़ून जैसे गुर्दा, तिल्ली वग़ैरह हलाल और पाक हैं।

मसलाः जबकि हराम सिर्फ़ बहने वाला ख़ून है तो जो ख़ून ज़िबह के बाद गोश्त में लगा रह जाता है वह पाक है। फ़ुक़हा, सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम, ताबिईन और उम्मत का इस पर इत्तिफ़ाक़ (सहमति) है। इसी तरह मच्छर, मक्खी, खटमल वग़ैरह का ख़ून भी नापाक नहीं, लेकिन ज़्यादा हो जाये तो उसको भी धोना चाहिये। (तफ़सीरे जस्सास)

मसलाः जिस तरह ख़ून का खाना पीना हराम है इसी तरह उसका ख़ारजी (बाहरी) इस्तेमाल भी हराम है, और जिस तरह तमाम नापाक और गंदी चीज़ों की ख़रीद व फ़रोख़्त भी और उनसे नफ़ा उठाना हराम है इसी तरह ख़ून की ख़रीद व फ़रोख़्त भी हराम है, उससे हासिल की हुई आमदनी भी हराम है, क्योंकि क़ुरआनी अलफ़ाज़ में उमूमी और कुल्ली तौर पर 'दम' (ख़ून) को हराम फ़रमाया है जिसमें उसके इस्तेमाल की तमाम सूरतें शामिल हैं।

मरीज़ को दूसरे का ख़ून देने का मसला

तहक़ीक़ इस मसले की यह है कि इनसानी ख़ून इनसान का हिस्सा और अंग है और जब बदन से निकाल लिया जाये तो वह नजिस (नापाक) भी है। इसका असल तक़ाज़ा तो यही है कि एक इनसान का ख़ून दूसरे इनसान के बदन में दाख़िल करना दो वजह से हराम हो- अव्वल इसलिये कि इनसानी हिस्सों और अंगों का एहतिराम वाजिब है और यह उस एहतिराम के ख़िलाफ़ है। दूसरे इसलिये कि ख़ून गाढ़ी गंदगी और नापाकी है और नापाक चीज़ों का इस्तेमाल नाजायज़ है। लेकिन मजबूरी व बेक़रारी की हालत और आम इलाज व उपचार में इस्लामी शरीअ़त की दी हुई सहूलतों में ग़ौर करने से निम्न बातें साबित होती हैं:

अव्वल यह कि ख़ून अगरचे इनसान का अंग और हिस्सा है मगर उसको किसी दूसरे इनसान के बदन में मुन्तक़िल करने के लिये इनसानी अंगों में काट-छाँट और ऑप्रेशन की ज़रूरत पेश नहीं आती, इन्जेक्शन के ज़रिये ख़ून निकाला और दूसरे के बदन में डाला जाता है, इसलिये इसकी मिसाल दूध की सी हो गई जो इनसानी बदन से बग़ैर किसी काट-छाँट के निकलता और दूसरे इनसान का हिस्सा बनता है, और इस्लामी शरीअ़त ने बच्चे की ज़रूरत के पेशे नज़र इनसानी दूध ही को उसकी ग़िज़ा क़रार दिया है, और माँ पर अपने बच्चों को दूध पिलाना वाजिब किया, जब तक वह बच्चों के बाप के निकाह में रहे, तलाक़ के बाद माँ को दूध पिलाने पर मजबूर नहीं किया जा सकता, बच्चों का रिज़्क़ मुहैया करना बाप की ज़िम्मेदारी है, वह किसी दूसरी औरत से दूध पिलवाये या उनकी माँ ही को मुआवज़ा (उजरत) देकर उससे दूध पिलवाये। क़ुरआने करीम में इसकी स्पष्ट वज़ाहत मौजूद है:

فَاِنْ اَرْضَعْنَ لَكُمْ فَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ. (٦:٦٥)

"अगर तुम्हारी तलाक़-याफ़्ता बीवी तुम्हारे बच्चों को दूध पिलाये तो उसकी उजरत व मुआवज़ा दे दो।"

ख़ुलासा यह है कि दूध इनसानी बदन का हिस्सा होने के बावजूद ज़रूरत की वजह से उसके इस्तेमाल की इजाज़त बच्चों के लिये दी गई है और इलाज के तौर पर बड़ों के लिये भी, जैसा कि फ़तावा आ़लमगीरी में है:

وَلَابَأْسَ بِاَنْ يُّسْعِطَ الرَّجُلَ بِلَبَنِ الْمَرْاَةِ وَيُشْرِبَهُ لِلدَّوَاۤءِ. (فتاوی عالمگیری، ص ٤)

"इसमें हर्ज नहीं कि दवा के लिये किसी शख़्स की नाक में औरत का दूध डाला जाये या पीने में इस्तेमाल किया जाये।"

और मुग़नी इब्ने क़ुदामा में इस मसले की अधिक तफ़सील मज़कूर है

(मुग़नी किताबुस्सैद पेज 602 जिल्द 8)

अगर ख़ून को दूध पर क़ियास किया जाये तो क़ियास से कुछ दूर की बात नहीं, क्योंकि दूध भी ख़ून की बदली हुई शक्ल है और इनसान के बदन का हिस्सा होने में मुश्तरक है। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि दूध पाक है और ख़ून नापाक, तो हुर्मत (हराम होने) की पहली वजह यानी इनसानी बदन का हिस्सा होना तो यहाँ मनाही की वजह न रही, सिर्फ़ नापाक होने का मामला रह गया। इलाज व दवा

के मामले में कुछ फ़ुक़हा ने ख़ून के इस्तेमाल की भी इजाज़त दी है, इसलिये इनसान का ख़ून दूसरे के बदन में मुन्तक़िल करने का शरई हुक्म यह मालूम होता है कि आम हालात में तो जायज़ नहीं, मगर इलाज व दवा के तौर पर इसका इस्तेमाल मजबूरी व बेक़रारी की हालत में निःसंदेह जायज़ है। मजबूरी व बेक़रारी की हालत से मुराद यह है कि मरीज़ की जान का ख़तरा हो और कोई दूसरी कारगर दवा उसकी जान बचाने के लिये मौजूद न हो, और ख़ून देने से उसकी जान बचने का ग़ालिब गुमान हो। इन शर्तों के साथ ख़ून देना तो उस क़ुरआनी दलील की रू से जायज़ है जिसमें बेक़रार व मजबूर के लिये मुर्दार जानवर खाकर जान बचाने की इजाज़त स्पष्ट तौर पर मज़कूर है, और अगर बेचैनी व बेक़रारी की हालत न हो या दूसरी दवायें भी काम कर सकती हों तो ऐसी हालत में मसले में उलेमा के बीच मतभेद है, कुछ फ़ुक़हा के नज़दीक जायज़ है, कुछ नाजायज़ कहते हैं, जिसकी तफ़सील मसाईल की किताबों में 'हराम चीज़ों से इलाज करने' के बाब में मज़कूर है। वल्लाहु सुब्हानहू व तआला आलम। अहक़र का एक मुस्तक़िल रिसाला भी इस मौज़ू (विषय) पर प्रकाशित हो गया है जिसका नाम है "आज़ा-ए-इनसानी की पेवन्दकारी" उसका मुताला फ़रमाया जाये।

सुअर का हराम होना

तीसरी चीज़ जो इस आयत में हराम की गई है वह ख़िन्ज़ीर (सुअर) का गोश्त है। आयत में ख़िन्ज़ीर के हराम होने के साथ गोश्त की क़ैद मज़कूर है। इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि इससे मक़सूद गोश्त की तख़्सीस नहीं, बल्कि उसके तमाम हिस्से, अंग, हड्डी, खाल, बाल, पट्ठे सब ही हराम हैं, इस पर पूरी उम्मत का इजमा (सहमति) है। लेकिन लफ़्ज़ गोश्त बढ़ाकर इशारा इस तरफ़ है कि ख़िन्ज़ीर (सुअर) दूसरे हराम जानवरों की तरह नहीं है कि वे ज़िबह करने से पाक हो सकते हैं, अगरचे खाना हराम ही रहे, क्योंकि ख़िन्ज़ीर का गोश्त ज़िबह करने से भी पाक नहीं होता कि वह अपनी ज़ात से ही पूरी तरह नापाक भी है हराम भी, सिर्फ़ चमड़ा सीने के लिये उसके बाल का इस्तेमाल हदीस में जायज़ क़रार दिया है। (तफ़सीरे जस्सास, तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

ग़ैरुल्लाह के नाम किये हुए जानवर की तीन सूरतें

चौथी चीज़ जिसको आयत में हराम क़रार दिया गया है यह वह जानवर है जो ग़ैरुल्लाह (अल्लाह के अ़लावा किसी और) के नामज़द कर दिया गया हो, जिसकी तीन सूरतें जानी-पहचानी हैं- अव्वल यह कि किसी जानवर को ग़ैरुल्लाह की ख़ुशी व निकटता हासिल करने के लिये ज़िबह किया जाये और ज़िबह के वक़्त उसी ग़ैरुल्लाह का नाम लिया जाये, यह सूरत उम्मत के इत्तिफ़ाक़ व सर्वसम्मति से हराम है, और यह जानवर मैता (मुर्दार) है, उसके किसी अंग और बदनी हिस्से से फ़ायदा उठाना जायज़ नहीं, क्योंकि यह सूरत इस आयत के मुताबिक़ बिल्कुल स्पष्ट है जिसमें किसी का मतभेद नहीं।

दूसरी सूरत यह है कि किसी जानवर को किसी ग़ैरुल्लाह की रज़ा और उसकी निकटता हासिल करने के लिये ज़िबह किया जाये, यानी उसका ख़ून बहाने से ग़ैरुल्लाह को ख़ुश करना मक़सूद हो, लेकिन ज़िबह के वक़्त उस पर नाम अल्लाह ही का लिया जाये, जैसे बहुत से नावाक़िफ़ मुसलमान बुज़ुर्गों, पीरों के नाम पर उनकी ख़ुशनूदी (रज़ा) हासिल करने के लिये बकरे, मुर्ग़े वग़ैरह ज़िबह करते

हैं लेकिन ज़िबह के वक़्त उस पर नाम अल्लाह ही का पुकारते हैं, यह सूरत भी फ़ुक़हा-ए-किराम के नज़दीक सर्वसम्मति से हराम है, और ज़िबह किया हुआ जानवर मुर्दार है। मगर दलील निकालने में कुछ मतभेद है, कुछ हज़राते मुफ़स्सिरीन व फ़ुक़हा ने इसको भी इसी आयतः

مَآ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ

(जो अल्लाह के अ़लावा किसी और के नामज़द किया जाये) का स्पष्ट मदलूल क़रार दिया है, जैसा कि 'बैज़ावी शरीफ़' के हाशिये में है:

فَكُلُّ مَانُوْدِىَ عَلَيْهِ بِغَيْرِ اسْمِ اللّٰهِ فَهُوَ حَرَامٌ وَاِنْ ذُبِحَ بِاسْمِ اللّٰهِ تَعَالٰى حَيْثُ اَجْمَعَ الْعُلَمَآءُ لَوْ اَنَّ مُسْلِمًا ذَبَحَ ذَبِيْحَةً وَقَصَدَ بِذَبْحِهٖ التَّقَرُّبَ اِلٰى غَيْرِ اللّٰهِ صَارَ مُرْتَدًّا وَذَبِيْحَتُهٗ ذَبِيْحَةُ مُرْتَدٍّ.

तर्जुमाः हर वह जानवर जिसको ग़ैरुल्लाह के नाम कर दिया गया वह हराम है, अगरचे ज़िबह के वक़्त अल्लाह ही का नाम लिया हो, इसलिये कि उलेमा फ़ुक़हा का इत्तिफ़ाक़ (एकमत) है कि किसी जानवर को ग़ैरुल्लाह की रज़ा और निकटता हासिल करने के लिये अगर कोई मुसलमान ज़िबह करे तो वह मुर्तद हो जायेगा और उसका ज़बीहा मुर्तद (इस्लाम से बाहर) का ज़बीहा कहलायेगा।

और 'दुर्रे मुख़्तार' किताबुज़्ज़बाइह में है:

ذُبِحَ لِقُدُوْمِ الْاَمِيْرِ وَنَحْوِهٖ كَوَاحِدٍ مِّنَ الْعُظَمَآءِ يَحْرُمُ لِاَنَّهٗ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ وَلَوْ ذُكِرَ اسْمُ اللّٰهِ وَاَقَرَّهُ الشَّامِىْ.

(ص ٢١٤ ج ٥)

तर्जुमाः किसी अमीर या बड़े के आने पर जानवर ज़िबह किया तो वह हराम होगा, क्योंकि वह 'मा उहिल्-ल बही लिग़ैरिल्लाहि' में दाख़िल है, अगरचे ज़िबह के वक़्त अल्लाह ही का नाम लिया हो, और शामी ने इसकी ताईद की है। (1)

और कुछ हज़रात ने इस सूरत को:

مَآ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ

(1) इसका मतलब यह है कि अगर महज़ ज़िबह के अ़मल से किसी बड़े की ताज़ीम (आदर व सम्मान) मक़सूद हो तो यह हराम है, लेकिन अगर मक़सद मेहमानी करना हो और उस मेहमानी के लिये जानवर को ज़िबह किया जाये यानी उसका गोश्त मेहमान को खिलाना मक़सूद हो, केवल ज़िबह के अ़मल से ताज़ीम (सम्मान करना) मक़सूद न हो तो यह मेहमान-नवाज़ी की सुन्नत है और जायज़ है। और दोनों सूरतों में फ़र्क़ यह है कि दूसरी सूरत में मेज़बानी के लिये गोश्त का हासिल करना मक़सद होता है और पहली सूरत में सम्मान करने की निशानी के तौर पर जानवर को ज़िबह करना मक़सूद होता है, इस बात की परवाह किये बग़ैर कि उसका गोश्त खाया जायेगा या नहीं। चुनाँचे दुर्रे मुख़्तार में आगे यही वज़ाहत की गई है:

ولو ذبح للضيف لا يحرم لانه سنة الخليل واكرام الضيف اكرام الله تعالىٰ، والفارق انه ان قدمها ليأكل منها كان الذبح لله والمنفعة للضيف او للوليمة او للربح وان لم يقدمها ليأكل منها بل يد فعها لغيره كان لتعظيم غير الله فتحرم.

अ़ल्लामा शामी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इसकी शरह में और ज़्यादा खुलासा फ़रमा दिया है। (दुर्रे मुख़्तार पेज 309 व 310 जिल्द 6) मुहम्मद तक़ी उस्मानी 27 ज़ीक़ादा 1412 हिजरी

का स्पष्ट मदलूल तो नहीं बनाया क्योंकि वह अ़रबी भाषा के ग्रामर के लिहाज़ से तकल्लुफ़ से ख़ाली नहीं, मगर सबब और इल्लत एक होने की वजह से (यानी ग़ैरुल्लाह की ख़ुशी व निकटता हासिल करने की नीयत होना) इसको भीः

مَآ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ

(यानी वह जानवर जो अल्लाह के अ़लावा किसी और के लिये नामज़द कर दिया गया हो) के साथ जोड़कर हराम क़रार दिया है। अहक़र के नज़दीक भी ज़्यादा बेहतर और एहतियात का रास्ता यही है। तथा इस सूरत की हुर्मत (हराम होने) के लिये एक मुस्तक़िल आयत भी दलील है, यानीः

وَمَا ذُبِحَ عَلَى النُّصُبِ

'नुसुब' उन तमाम चीज़ों को कहा जाता है जिनकी बातिल तौर पर पूजा की जाती है। मायने यह हैं कि वह जानवर जिसको बातिल और झूठे माबूदों के लिये ज़िबह किया गया है, इससे पहले 'व मा उहिल्-ल बिही लिग़ैरिल्लाहि' का ज़िक्र है। इससे मालूम होता है कि 'मा उहिल्-ल बिही लिग़ैरिल्लाहि' का स्पष्ट मदलूल तो वही जानवर है जिस पर ज़िबह के वक़्त ग़ैरुल्लाह (अल्लाह के अ़लावा किसी और) का नाम लिया गया और 'ज़ुबि-ह अ़लन्नुसुबि' इसके मुक़ाबले में आया है, जिसमें ग़ैरुल्लाह के नाम लेने का ज़िक्र नहीं, सिर्फ़ बुतों वग़ैरह की ख़ुशनूदी और रज़ा हासिल करने की नीयत से ज़िबह करना मुराद है। इसमें वो जानवर भी दाख़िल हैं जिनको ज़िबह तो किया गया है ग़ैरुल्लाह की ख़ुशी हासिल करने के लिये मगर ज़िबह के वक़्त उन पर अल्लाह का नाम लिया गया है (मेरे शैख़ हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि की राय भी यही है)।

इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी तफ़सीर में इसी को इख़्तियार किया है। उनकी इबारत यह हैः

وَجَرَتْ عَادَةُ الْعَرَبِ بِالصِّيَاحِ بِاسْمِ الْمَقْصُوْدِ بِالذَّبِيْحَةِ وَغَلَبَ ذٰلِكَ فِيْ اِسْتِعْمَالِهِمْ حَتّٰى عُبِّرَ بِهٖ عَنِ النِّيَّةِ الَّتِيْ هِيَ عِلَّةُ التَّحْرِيْمِ. (تفسير قرطبی ص ۲۰۷ ج ۲)

तर्जुमाः अ़रब की आ़दत थी कि जिसके लिये ज़िबह करना मक़सूद होता ज़िबह करने के वक़्त उसका नाम बुलन्द आवाज़ से पुकारते और यह रिवाज उनमें आ़म था यहाँ तक कि इस आयत में ग़ैरुल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल करने को जो कि हराम होने की असल वजह है, 'एहलाल' (नामज़द करने) के लफ़्ज़ से ताबीर कर दिया।

इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी इस तहक़ीक़ की बुनियाद सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम में से दो हज़रात हज़रत अ़ली मुर्तज़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हु और हज़रत सिद्दीक़ा आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा के फ़तवों पर रखी है।

हज़रत अ़ली कर्रमल्लाहु वज्हहू के ज़माने में फ़र्ज़दक़ शायर के बाप ग़ालिब ने एक ऊँट ज़िबह किया था जिस पर किसी ग़ैरुल्लाह का नाम लेने का कोई ज़िक्र नहीं, मगर हज़रत अ़ली कर्रमल्लाहु वज्हहू ने उसको भीः

مَآ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ

(जो अल्लाह के अ़लावा किसी और के लिये नामज़द कर दिया गया हो) में दाख़िल क़रार देकर हराम फ़रमाया और सब सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इसको क़ुबूल किया। इसी तरह इमाम मुस्लिम रहमतुल्लाहि अ़लैहि के शैख़ यहया बिन यहया की सनद से सिद्दीक़ा आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा की एक लम्बी हदीस नक़ल की जिसके आख़िर में है कि एक औ़रत ने हज़रत सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से सवाल किया कि उम्मुल-मोमिनीन! हमारे कुछ दूध-शरीक रिश्तेदार अ़जमी (अ़रब से बाहर के) लोगों में से हैं, और उनके यहाँ तो रोज़-रोज़ कोई न कोई त्यौहार होता रहता है, ये अपने त्यौहारों के दिन कुछ हदिया तोहफ़ा हमारे पास भी भेज देते हैं, हम उसको खायें या नहीं? इस पर सिद्दीक़ा आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने फ़रमायाः

اَمَّا مَاذُبِحَ لِذٰلِكَ الْيَوْمِ فَلَا تَاْكُلُوْ وَلٰكِنْ كُلُوْا مِنْ اَشْجَارِهِمْ. (تفسیر قرطبی ص ۲۰۷ ج ۲)

तर्जुमाः जो जानवर उस ईद (त्यौहार) के दिन के लिये ज़िबह किया गया हो वह न खाओ, लेकिन उनके दरख़्तों के फल वग़ैरह खा सकते हो।

ग़र्ज़ यह कि दूसरी सूरत जिसमें नीयत तो ग़ैरुल्लाह की रज़ा और ख़ुशनूदी की हो मगर ज़िबह के वक़्त अल्लाह का नाम लिया जाये, अव्वल तो सबब के मुश्तरक होने यानी ग़ैरुल्लाह की ख़ुशी और निकटता हासिल करने की नीयत की वजह सेः

مَآ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ

के हुक्म में है। दूसरे आयतः

وَمَا ذُبِحَ عَلَى النُّصُبِ

का भी मदलूल है, इसलिये यह भी हराम है।

तीसरी सूरत यह है कि किसी जानवर को कान काटकर या कोई दूसरी निशानी लगाकर ग़ैरुल्लाह की रज़ा व निकटता हासिल करने और ग़ैरुल्लाह की ताज़ीम के लिये छोड़ दिया जाये, न उससे काम लें और न उसके ज़िबह करने का इरादा हो बल्कि उसके ज़िबह करने को हराम जानें, यह जानवर 'मा उहिल्-ल बिही लिग़ैरिल्लाहि' और 'मा ज़ुबि-ह अ़लन्नुसुबि' दोनों में दाख़िल नहीं बल्कि इस क़िस्म के जानवर को **बहीरा** या **सायबा** वग़ैरह कहा जाता है, और हुक्म उनका यह है कि यह फ़ेल तो क़ुरआन की दलील से हराम है जैसा कि आयतः

مَاجَعَلَ اللّٰهُ مِنْ بَحِيْرَةٍ وَّلَا سَآئِبَةٍ. (سورة ۵: آیت ۱۰۳)

(सूरः मायदा आयत 103) में इन्शा-अल्लाह तआ़ला आयेगा।

मगर उनके इस हराम अ़मल से और उस जानवर को हराम समझने के अ़क़ीदे से यह जानवर हराम नहीं हो जाता बल्कि इसको हराम समझने में तो उनके बातिल अ़क़ीदे की ताईद व मज़बूती होती है, इसलिये यह जानवर आ़म जानवरों की तरह हलाल है। मगर शरई उसूल के मुताबिक़ यह जानवर अपने मालिक की मिल्क से ख़ारिज (बाहर) नहीं हुआ, उसी का मम्लूक है, अगरचे वह अपने ग़लत अ़क़ीदे से यह समझता है कि मेरी मिल्क से निकल कर ग़ैरुल्लाह के लिये वक़्फ़ हो गया, मगर शरई तौर पर उसका यह अ़क़ीदा बातिल है, वह जानवर बदस्तूर उसकी मिल्क में है।

अब अगर वह शख़्स ख़ुद उस जानवर को किसी के हाथ फ़रोख़्त कर दे या हिबा कर दे तो उसके लिये यह जानवर हलाल है। जैसा कि अधिकतर हिन्दू अपने देवताओं के नाम पर बकरे या गाय वग़ैरह को अपने नज़दीक वक़्फ़ करके छोड़ देते हैं और मन्दिरों के पुजारियों जोगियों को इख़्तियार दे देते हैं कि वे जो चाहें करें, ये मन्दिरों के पुजारी उनको मुसलमानों के हाथ भी फ़रोख़्त कर देते हैं।

या इसी तरह कुछ जाहिल मुसलमान भी बाज़ मज़ारों पर ऐसा ही अ़मल करते हैं कि बकरा या मुर्ग़ा छोड़ देते हैं और मज़ारों के मुजाविर लोगों को इख़्तियार देते हैं कि वे उनको फ़रोख़्त कर देते हैं, तो जो लोग इन जानवरों को उन लोगों से ख़रीद लें जिनको असल मालिक ने इख़्तियार दिया है उनके लिये इनका ख़रीदना और ज़िबह करके खाना और फ़रोख़्त करना सब हलाल है।

अल्लाह के अ़लावा किसी और की मन्नत मानने का मसला

यहाँ एक चौथी सूरत और है जिसका ताल्लुक़ हैवानों (जानवरों) के अ़लावा दूसरी चीज़ों से है जैसे मिठाई, खाना वग़ैरह, जिनको ग़ैरुल्लाह के नाम पर नज़्र (मन्नत) के तौर से, हिन्दू लोग बुतों पर और जाहिल मुसलमान बुज़ुर्गों के मज़ारों पर चढ़ाते हैं। फ़ुक़हा हज़रात ने इसको भी इल्लत और सबब संयुक्त होने यानी ग़ैरुल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल करने की नीयत की वजह से:

مَآ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ

के हुक्म में क़रार देकर हराम कहा है, और इसके खाने पीने व दूसरों को खिलाने और बेचने ख़रीदने सब को हराम कहा है। मसाईल की किताबों 'बहरुर्राइक़' वग़ैरह में इसकी तफ़सीलात मज़कूर हैं। यह मसला क़ियासी है जिसको जानवरों से संबन्धित क़ुरआनी नस (हुक्म) पर क़ियास (अन्दाज़ा) किया गया है। वल्लाहु सुब्हानहू व तआ़ला आलम

बेक़रारी व मजबूरी के अहकाम

ज़िक्र हुई आयत में चार चीज़ों को हराम क़रार देने के बाद एक हुक्म को अलग रखा गया है:

فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ بَاغٍ وَّلَا عَادٍ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ○

कि जो शख़्स भूख से बहुत ही बेक़रार हो जाये बशर्तेकि न तो मज़े लेने का तालिब हो और न हद से गुज़रने वाला हो तो उस पर कुछ गुनाह नहीं, बेशक अल्लाह तआ़ला बड़े माफ़ फ़रमाने वाले रहम करने वाले हैं।

इस हुक्म में इतनी आसानी कर दी गई है कि जो शख़्स भूख से बहुत ही बेताब हो जाये बशर्तेकि न तो खाने में लज़्ज़त का इच्छुक हो और न ज़रूरत की मात्रा से गुज़रने वाला हो तो उस हालत में इन हराम चीज़ों को खा लेने से भी उस शख़्स को कोई गुनाह नहीं होता, बेशक अल्लाह तआ़ला हैं बड़े ग़फ़ूर व रहीम।

इसमें 'मुज़्तर' (बेक़रार व बेताब) के लिये जान बचाने के वास्ते दो शर्तों के साथ इन हराम चीज़ों के खा लेने से भी गुनाह उठा दिया गया है।

मुज़्तर शरई इस्तिलाह में उस शख़्स को कहा जाता है जिसकी जान ख़तरे में हो, मामूली

तकलीफ़ या ज़रूरत से मुज़्तर नहीं कहा जा सकता। तो जो शख़्स भूख से ऐसी हालत पर पहुँच गया कि अगर कुछ न खाये तो जान जाती रहेगी, उसके लिये दो शर्तों के साथ ये हराम चीज़ें खा लेने की गुंजाईश दी गई है- एक शर्त यह है कि मक़सूद जान बचाना हो, खाने की लज़्ज़त हासिल करना मक़सूद न हो। दूसरी शर्त यह है कि सिर्फ़ इतनी मात्रा में खाये जो जान बचाने के लिये काफ़ी हो, पेट भरकर खाना या ज़रूरत की मात्रा से ज़्यादा खाना उस वक़्त भी हराम है।

अहम फ़ायदा

यहाँ क़ुरआने पाक ने 'इज़्तिरार' (बेताबी व बेक़रारी) की हालत में भी हराम चीज़ों के खाने को हलाल नहीं फ़रमाया बल्कि 'ला इस्-म अ़लैहि' फ़रमाया, जिसका मतलब यह है कि ये चीज़ें तो अब भी अपनी जगह हराम ही हैं मगर उस खाने वाले से इज़्तिरार व बेताबी के सबब हराम को इस्तेमाल करने का गुनाह माफ़ कर दिया गया। हलाल हो जाने और गुनाह माफ़ कर देने में बड़ा फ़र्क़ है। अगर इज़्तिरारी (बेक़रारी की) हालत में इन चीज़ों को हलाल कर देना मक़सूद होता तो हुर्मत (हराम होने) से सिर्फ़ अलग कर देना काफ़ी होता, मगर यहाँ सिर्फ़ हुक्म से अलग कर देने पर बस कर देने के बजाय 'ला इस्-म अ़लैहि' (उस पर कुछ गुनाह नहीं) का इज़ाफ़ा फ़रमाकर इस नुक्ते की तरफ़ इशारा कर दिया कि हराम तो अपनी जगह हराम है और उसका इस्तेमाल गुनाह ही है, मगर मुज़्तर (बेक़रार शख़्स) से यह गुनाह माफ़ कर दिया गया।

मजबूरी व बेक़रारी की हालत में दवा के तौर पर हराम चीज़ों का इस्तेमाल

उक्त आयत से यह भी साबित हो गया कि जिस शख़्स की जान ख़तरे में हो वह जान बचाने के लिये बतौर दवा के हराम चीज़ को इस्तेमाल कर सकता है, मगर उक्त आयत ही के इशारे से इसमें चन्द शर्तें मालूम होती हैं:

अव्वल यह कि हालत 'इज़्तिरार' (बेताबी व बेक़रारी) की हो, ख़तरा जान जाने का हो, मामूली तकलीफ़ व बीमारी का यह हुक्म नहीं है।

दूसरे यह कि सिवाय हराम चीज़ के और कोई चीज़ इलाज व दवा के लिये कारगर न हो या मौजूद न हो, जैसे सख़्त भूख की हालत में यह गुंजाईश उसी वक़्त है जबकि कोई दूसरी हलाल ग़िज़ा मौजूद और पहुँच में न हो।

तीसरे यह कि उस हराम के इस्तेमाल करने से जान बच जाना यक़ीनी हो, जैसे भूख से बेताब शख़्स के लिये एक दो लुक़्मा हराम गोश्त खा लेना आ़दतन् उसकी जान बचाने का यक़ीनी सामान है। अगर कोई दवा ऐसी है कि उसका इस्तेमाल मुफ़ीद तो मालूम होता है मगर उससे शिफ़ा यक़ीनी नहीं तो उस हराम दवा का इस्तेमाल मज़कूरा आयत के गुंजाईश वाले और अलग किये हुए हुक्म में दाख़िल होकर जायज़ नहीं होगा। इसके साथ दो और शर्तें क़ुरआनी आयत में बयान की गयी हैं कि उसके इस्तेमाल से लज़्ज़त हासिल करना (मज़ा लेना) मक़सूद न हो और ज़रूरत की मात्रा से ज़्यादा

इस्तेमाल न करे।

उक्त आयत की वज़ाहत और इशारे से जो क़ैद व शर्तें हासिल हुईं उन शर्तों के साथ हर हराम व नापाक दवा का इस्तेमाल चाहे खाने पीने में हो या बाहरी इस्तेमाल में उम्मत के उलेमा के नज़दीक सर्वसम्मति से जायज़ है। इन शर्तों का ख़ुलासा पाँच चीज़ें हैं:

1. हालत बेक़रारी की हो यानी जान का ख़तरा हो।
2. दूसरी कोई हलाल दवा कारगर न हो या मौजूद न हो।
3. उस दवा से बीमारी का दूर होना आ़दतन् यक़ीनी हो।
4. उसके इस्तेमाल से लज़्ज़त हासिल करना मक़सूद न हो।
5. ज़रूरत से ज़्यादा उसको इस्तेमाल न किया जाये।

बेक़रारी की हालत के बग़ैर आ़म इलाज व दवा के लिये हराम चीज़ का इस्तेमाल

'इज़्तिरारी' (बेक़रारी व बेताबी की) हालत का मसला तो उक्त शर्तों के साथ क़ुरआनी नस (दलील) से साबित और सर्वसम्मति वाला हुक्म है, लेकिन आ़म बीमारियों में भी किसी नापाक या हराम दवा का इस्तेमाल जायज़ है या नहीं? इस मसले में फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) का मतभेद है। अक्सर फ़ुक़हा ने फ़रमाया कि बग़ैर इज़्तिरार (बिना बेताबी की हालत के) और बिना उन तमाम शर्तों के जो ऊपर बयान हुईं हराम दवा का इस्तेमाल जायज़ नहीं, क्योंकि हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि "अल्लाह तआ़ला ने ईमान वालों के लिये हराम में शिफ़ा नहीं रखी।" (बुख़ारी शरीफ़)

कुछ दूसरे उलेमा ने हदीस के एक ख़ास वाक़िए से दलील लेते हुए जायज़ क़रार दिया है। वह वाक़िआ़ 'उ-रनिय्यीन' का है जो हदीस की तमाम किताबों में मज़कूर है कि कुछ गाँव वाले लोग नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए वे विभिन्न बीमारियों में मुब्तला थे, आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको ऊँट का दूध और पेशाब इस्तेमाल करने की इजाज़त दी जिससे उनको शिफ़ा (बीमारी से फ़ायदा) हो गई। मगर इस वाक़िए में क़ई एहतिमाल (गुंजाईश व शक) हैं जिनसे हराम चीज़ का इस्तेमाल संदिग्ध हो जाता है, इसलिये असल हुक्म तो यही है कि आ़म बीमारियों में जब तक बेक़रारी की मज़कूरा शर्त मौजूद न हो हराम दवा का इस्तेमाल जायज़ नहीं। लेकिन बाद के फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने मौजूदा ज़माने में हराम व नापाक दवाओं की अधिकता, उनके आ़म तौर पर इस्तेमाल और अ़वाम की कमज़ोरी पर नज़र करके इस शर्त के साथ इजाज़त दी है कि कोई दूसरी हलाल और पाक दवा उस बीमारी के लिये कारगर न हो या मौजूद न हो। लिखा है:

كـمـا فى الدر المختار قبيل فصل البير اختلف فى التداوى بالمحرم و ظاهر المذهب المنع كما فى رضاع البحر ولكن نقل المصنف ثَمَّ وههنا عن الحاوى قيل يرخص اذا علم فيه الشفاء ولم يُعْلَمْ دواء آخر كما رخص فى الخمر للعطشان وعليه الفتوى و مثله فى العالمگيرية. ص ٣٥٥ ج ٥.

तर्जुमाः 'दुर्रे मुख़्तार' में फ़स्ल बीर से पहले मज़कूर है कि हराम चीज़ों को दवा के तौर पर इस्तेमाल करने में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है और ज़ाहिर मज़हब में इसकी मनाही आई है जैसा कि 'बहरुर्राइक़' की किताबुर्रज़ाअ में बयान हुआ है, लेकिन 'तनवीर' के लेखक ने इस जगह 'रज़ाअ' में भी और यहाँ भी 'हावी क़ुदसी' से नक़ल किया है कि कुछ उलेमा ने फ़रमाया- दवा व इलाज के लिये हराम चीज़ों का इस्तेमाल इस शर्त से जायज़ है कि उस दवा के इस्तेमाल से शिफ़ा (फ़ायदा) हो जाना आदतन् यक़ीनी हो और कोई हलाल दवा उसका बदल न हो सके, जैसा कि प्यासे के लिये शराब का घूँट पीने की इजाज़त दी गई है।

मसलाः बयान हुई तफ़सील से उन तमाम अंग्रेज़ी दवाओं का हुक्म मालूम हो गया जो यूरोप वग़ैरह से आती हैं, जिनमें शराब वग़ैरह नापाक चीज़ों का होना मालूम व यक़ीनी है, और जिन दवाओं में हराम व नापाक चीज़ों का वजूद संदिग्ध है उनके इस्तेमाल में और ज़्यादा गुंजाईश है, और एहतियात बहरहाल एहतियात है, ख़ासकर जबकि कोई सख़्त ज़रूरत भी न हो। वल्लाहु सुब्हानहू व तआला आलम

إِنَّ الَّذِينَ يَكْتُمُونَ مَا أَنزَلَ اللَّهُ مِنَ الْكِتَابِ وَيَشْتَرُونَ بِهِ ثَمَنًا قَلِيلًا ۙ أُولَٰئِكَ مَا يَأْكُلُونَ فِي بُطُونِهِمْ إِلَّا النَّارَ وَلَا يُكَلِّمُهُمُ اللَّهُ يَوْمَ الْقِيَامَةِ وَلَا يُزَكِّيهِمْ وَلَهُمْ عَذَابٌ أَلِيمٌ ۝ أُولَٰئِكَ الَّذِينَ اشْتَرَوُا الضَّلَالَةَ بِالْهُدَىٰ وَالْعَذَابَ بِالْمَغْفِرَةِ ۚ فَمَا أَصْبَرَهُمْ عَلَى النَّارِ ۝ ذَٰلِكَ بِأَنَّ اللَّهَ نَزَّلَ الْكِتَابَ بِالْحَقِّ ۗ وَإِنَّ الَّذِينَ اخْتَلَفُوا فِي الْكِتَابِ لَفِي شِقَاقٍ بَعِيدٍ ۝

ربع ٢١ ع ٥

इन्नल्लज़ी-न यक्तुमू-न मा अन्ज़लल्लाहु मिनल्-किताबि व यश्तरू-न बिही स-मनन् क़लीलन् उलाइ-क मा यअ्कुलू-न फ़ी बुतूनिहिम् इल्लन्ना-र व ला युकल्लिमुहुमुल्लाहु यौमल्-क़ियामति व ला युज़क्कीहिम व लहुम् अ़ज़ाबुन् अलीम (174) उला-इकल्लज़ीनश्त-रवुज़्ज़लाल-त बिल्हुदा वल्-अ़ज़ा-ब बिल्-मग़्फ़ि-रति फ़मा अस्ब-रहुम् अलन्नार (175) ज़ालि-क	बेशक जो लोग छुपाते हैं जो कुछ नाज़िल की अल्लाह ने किताब और लेते हैं उस पर थोड़ा सा मोल, वे नहीं भरते अपने पेट में मगर आग। और न बात करेगा उनसे अल्लाह क़ियामत के दिन और न पाक करेगा उनको, और उनके लिये है अज़ाब दर्दनाक। (174) यही हैं जिन्होंने ख़रीदा गुमराही को बदले हिदायत के और अ़ज़ाब बदले बख़्शिश के। सो किस क़द्र सब्र करने वाले हैं दोज़ख़ पर। (175) यह इस वास्ते कि अल्लाह ने

बि-अन्नल्ला-ह नज़्ज़लल्-किता-ब बिल्हक़्कि, व इन्नल्लज़ीनख़्त-लफ़ू फ़िल्-किताबि लफ़ी शिक़ाक़िम्-बज़ीद (176) ❁ ❖	नाज़िल फ़रमाई किताब सच्ची, और जिन्होंने इख़्तिलाफ़ डाला किताब में वे बेशक ज़िद में दूर जा पड़े। (176) ❁ ❖

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

इससे पहली आयतों में उन हराम चीज़ों का ज़िक्र था जो महसूसात में से हैं, अगली आयतों में ऐसे हराम कामों का ज़िक्र है जो महसूस नहीं बल्कि वो बातिनी और ज़ाहिरी बुरे आमाल हैं, जैसे यहूदी उलेमा में यह मर्ज़ था कि अ़वाम से रिश्वत लेकर उनके मतलब के मुवाफ़िक़ ग़लत फ़तवे दे देते थे और तौरात की आयतों में रद्दोबदल करके उनके मतलब के मुवाफ़िक़ बना देते थे। इसमें उम्मते मुहम्मदिया के उलेमा को भी तंबीह (चेतावनी) है कि वे ऐसे कामों से दूर रहें, किसी नफ़्सानी ग़र्ज़ (स्वार्थ और मक़सद) से अहकामे हक़ के इज़हार में कोताही न करें।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

दीन बेचने की सज़ा

इसमें कोई शुब्हा नहीं कि जो लोग अल्लाह की भेजी हुई किताब (के मज़ामीन) को छुपाते हैं और इस (ख़ियानत) के मुआवज़े में (दुनिया की) मामूली क़ीमत और फ़ायदा वसूल करते हैं, ऐसे लोग और कुछ नहीं अपने पेट में आग (के अंगारे) भर रहे हैं, और अल्लाह तआ़ला उनसे न तो क़ियामत में (नर्मी और मेहरबानी के साथ) कलाम करेंगे और न (गुनाह माफ़ करके) उनकी सफ़ाई करेंगे, और उनको दर्दनाक सज़ा होगी। ये ऐसे लोग हैं जिन्होंने (दुनिया में तो) हिदायत छोड़कर गुमराही इख़्तियार की और (आख़िरत में) मग़फ़िरत छोड़कर अ़ज़ाब (सर पर लिया), सो (शाबाश है उनकी हिम्मत को) दोज़ख़ (में जाने) के लिए कैसे हिम्मत वाले हैं। (और) ये (सारी ज़िक्र की गई) सज़ाएँ (उनको) इस वजह से हैं कि अल्लाह ने (उस) किताब को ठीक-ठीक भेजा था। और जो लोग (ऐसी ठीक-ठीक भेजी हुई) किताब में बेराही (इख़्तियार) करें वे बड़ी दूर (व दराज़) की ख़िलाफ़ (वर्ज़ी यानी उल्लंघन) में (मुब्तला) होंगे (और इस तरह हुक्म के ख़िलाफ़ करने पर ज़रूर ऐसी ही सख़्त सज़ाओं के हक़दार होंगे)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

मसलाः मज़कूरा आयतों से मालूम हुआ कि जो शख़्स माल के लालच से शरीअ़त के हुक्म को बदल दे वह जो यह हराम माल खाता है गोया अपने पेट में जहन्नम के अंगारे भर रहा है, क्योंकि इस अ़मल का अन्जाम यही है। और कुछ मुहक़्क़िक़ उलेमा ने फ़रमाया कि हराम माल दर हक़ीक़त जहन्नम की आग ही है अगरचे उसका आग होना दुनिया में महसूस नहीं होता, मगर मरने के बाद

उसका यह अ़मल आग की शक्ल में सामने आ जायेगा।

لَيْسَ الْبِرَّ أَنْ تُوَلُّوا وُجُوهَكُمْ قِبَلَ الْمَشْرِقِ وَالْمَغْرِبِ وَلَٰكِنَّ الْبِرَّ مَنْ آمَنَ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَالْمَلَائِكَةِ وَالْكِتَابِ وَالنَّبِيِّينَ وَآتَى الْمَالَ عَلَىٰ حُبِّهِ ذَوِي الْقُرْبَىٰ وَالْيَتَامَىٰ وَالْمَسَاكِينَ وَابْنَ السَّبِيلِ وَالسَّائِلِينَ وَفِي الرِّقَابِ وَأَقَامَ الصَّلَاةَ وَآتَى الزَّكَاةَ وَالْمُوفُونَ بِعَهْدِهِمْ إِذَا عَاهَدُوا وَالصَّابِرِينَ فِي الْبَأْسَاءِ وَالضَّرَّاءِ وَحِينَ الْبَأْسِ أُولَٰئِكَ الَّذِينَ صَدَقُوا وَأُولَٰئِكَ هُمُ الْمُتَّقُونَ ﴿١٧٧﴾

लैसल्-बिर्-र अन् तुवल्लू वुजू-हकुम् कि़-बलल्-मश्रिकि वल्-मग़्रिबि व लाकिन्नल्-बिर्-र मन् आम-न बिल्लाहि वल्यौमिल्-आख़िरि वल्-मलाइ-कति वल्-किताबि वन्नबिय्यी-न व आतल्-मा-ल अ़ला हुब्बिही ज़विल्-क़ुर्बा वल्यतामा वल्मसाकी-न वब्नस्-स्सबीलि वस्साइली-न व फ़िर्रिक़ाबि, व अक़ामस्सला-त व आतज़्ज़का-त वल्मूफ़ू-न बि-अ़हदिहिम इज़ा आ-हदू वस्साबिरी-न फ़िल्-बअ्सा-इ वज़्ज़र्रा-इ व हीनल्-बअ्सि, उलाइ-कल्लज़ी-न स-दक़ू, व उलाइ-क हुमुल्-मुत्तक़ून (177)	नेकी कुछ यही नहीं कि मुँह करो अपना मश्रिक़ (पूरब) की तरफ़ या मग़रिब (पश्चिम) की, लेकिन बड़ी नेकी तौबा है कि जो कोई ईमान लाये अल्लाह पर और क़ियामत के दिन पर और फ़रिश्तों पर और सब किताबों पर और पैग़म्बरों पर, और दे माल उसकी मुहब्बत पर रिश्तेदारों को और यतीमों को और मोहताजों को और मुसाफ़िरों को और माँगने वालों को और गर्दनें छुड़ाने में, और क़ायम रखे नमाज़ और दिया करे ज़कात, और पूरा करने वाले अपने इक़रार को जब अ़हद करें, और सब्र करने वाले सख़्ती में और तकलीफ़ में और लड़ाई के वक़्त, यही लोग हैं सच्चे और यही हैं परहेज़गार। (177)

इन आयतों का पहले मज़मून से जोड़

सूरत के शुरू से यहाँ तक तक़रीबन आधी सूरः ब-क़रह है। अब तक मज़ामीन का ज़्यादा रुख़ इनकार करने वालों की तरफ़ था, क्योंकि सबसे पहले क़ुरआन की हक़्क़ानियत (हक़ और सच्चा होने) को साबित किया, इसी के तहत इसके मानने वाले और न मानने वाले फ़िर्क़ों का ज़िक्र किया, फिर तौहीद व रिसालत को साबित किया, फिर हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की औलाद पर इनामों व एहसानों को आयत नम्बर 124 तक बयान फ़रमाया। वहाँ से क़िब्ले की बहस चली और उसको बयान

करके सफ़ा व मरवा की बहस पर ख़त्म किया।

फिर तौहीद (अल्लाह के एक होने) के साबित करने के बाद शिर्क के उसूल और उससे निकलने वाली चीज़ों का रद्द किया और उनको बातिल क़रार दिया और यहाँ तक यही बयान हुआ। इन सब मज़ामीन में ज़ाहिर है कि मुन्किर (इनकार करने वाले) लोगों को ज़्यादा तंबीह है, और इस ज़िम्न में कोई ख़िताब मुसलमानों को हो जाना और बात है।

अब आगे की आयतों में जो कि बाक़ी बची तक़रीबन सूरः ब-क़रह का आधा हिस्सा है, ज़्यादातर मक़सूद मुसलमानों को कुछ बुनियादी बातों और अहकाम की तालीम करना है, यह अलग बात है उसी के तहत में ग़ैर-मुस्लिमों को भी कोई ख़िताब हो जाये, और यह मज़मून सूरत के ख़त्म तक चला गया है, जिसको शुरू किया गया है एक मुख़्तसर उनवान 'बिर्र' से। लफ़्ज़ **बिर्र** अ़रबी ज़बान में आ़म भलाई के मायने में है जो तमाम ज़ाहिरी और बातिनी नेकियों व ख़ैरात (भलाईयों) को अपने अन्दर समेटे हुए है, और शुरू की आयतों में जामे अलफ़ाज़ से कुल्ली और उसूली तालीम दी गई है, जैसे किताब पर ईमान लाना और माल देना और अ़हद व वायदे का पूरा करना और सख़्तियों व मुश्किलों के वक़्त सब्र करना वग़ैरह, जिसमें तमाम क़ुरआनी अहकाम के बुनियादी उसूल आ गये, क्योंकि शरीअ़त के तमाम अहकाम का हासिल तीन चीज़ों में है- अ़क़ीदे, आमाल, अख़्लाक़। बाक़ी तमाम जुज़ई चीज़ें इन्हीं कुल्ली उमूर के तहत में दाख़िल हैं, और इस आयत में इन तीनों क़िस्मों के बड़े-बड़े शोबे आ गये।

आगे इस **बिर्र** की तफ़सील चली है जिसमें से बहुत से अहकाम वक़्त और मक़ाम के तक़ाज़े व ज़रूरत के मुताबिक़ जैसे **क़िसास** व **वसीयत** व **रोज़ा** व **जिहाद** व **हज** व **ख़र्च करना** व **हैज़** (माहवारी) व **ईला** व **यमीन** व **तलाक़** व **निकाह** व **इद्दत** व **मेहर** व **जिहाद के बार-बार ज़िक्र**, व **अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने** व **ख़रीद व बेच के कुछ मामलात** व **शहादत** ज़रूरत के अनुसार बयान फ़रमाकर अल्लाह के रहमत व मग़फ़िरत के वायदे पर ख़त्म फ़रमा दिया। सुब्हानल्लाह! क्या उम्दा और दिल को छू लेने वाली तरतीब है। पस चूँकि इन मज़ामीन का हासिल **बिर्र** (नेकी और ख़ैर) का बयान है संक्षिप्त रूप से भी और विस्तार से भी, इसलिये अगर इस मजमूए का लक़ब 'अबवाबुल् बिर्र' (नेकी और ख़ैर के उनवानात) रखा जाये तो ज़्यादा मुनासिब है। और तौफ़ीक़ देने वाला अल्लाह ही है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

'अब्वाबुल-बिर्र' (ख़ूबी और कमाल की बातें)

(कुछ सारा) कमाल इसी में नहीं (आ गया) कि तुम अपना मुँह पूरब को कर लो या पश्चिम को (कर लो), लेकिन (असली) कमाल तो यह है कि कोई शख़्स अल्लाह तआ़ला (की ज़ात व सिफ़ात पर) यक़ीन रखे, और (इसी तरह) क़ियामत के दिन (आने) पर (भी), और फ़रिश्तों पर (भी कि वे अल्लाह के फ़रमाँबरदार बन्दे हैं, नूर से बने हैं, गुनाह से सुरक्षित हैं, खाने पीने और इनसानी शहवतों से पाक हैं), और (सब आसमानी) किताबों पर (भी), और (सब) पैग़म्बरों पर (भी), और (वह शख़्स)

माल देता हो अल्लाह की मुहब्बत में (अपने ज़रूरत मन्द) रिश्तेदारों को और (ग़रीब) यतीमों को (यानी जिन बच्चों को उनका बाप नाबालिग़ छोड़कर मर गया हो) और (दूसरे ग़रीब) मोहताजों को (भी) और (ख़र्च से परेशान) मुसाफ़िरों को और (लाचारी में) सवाल करने वालों को और (क़ैदी और ग़ुलामों की) गर्दन छुड़ाने में (भी माल ख़र्च करता हो), और (वह शख़्स) नमाज़ की पाबन्दी (भी) रखता हो और (निर्धारित) ज़कात भी अदा करता हो, और जो लोग (कि इन अक़ीदों और आमाल के साथ ये अख़्लाक़ भी रखते हों कि) अपने अहदों को पूरा करने वाले हों जब (किसी जायज़ मामले का) अहद कर लें, और (इस सिफ़त को ख़ुसूसियत के साथ कहूँगा कि) वे लोग (इन मौक़ों में) मुस्तक़िल (मिज़ाज) रहने वाले हों (एक तो) तंगदस्ती में और (दूसरे) बीमारी में और (तीसरे काफ़िरों से) क़िताल (के मौक़े) में, (यानी परेशान और कम-हिम्मत न हों, बस) ये लोग हैं जो सच्चे (कमाल वाले) हैं, और यही लोग हैं जो (सच्चे) मुत्तक़ी (कहे जा सकते) हैं। (ग़र्ज़ कि असली मक़ासिद और कमालात दीन के ये हैं, नमाज़ में किसी दिशा को मुँह करना इन्हीं ज़िक्र हुए कमालात में से एक ख़ास कमाल यानी नमाज़ को क़ायम करने के अन्तर्गत आने वाली चीज़ों और शर्तों में से है, और इसके हुस्न (अच्छा और ख़ूबी वाला होने) से इसमें भी हुस्न आ गया, वरना अगर नमाज़ न होती तो किसी ख़ास दिशा और रुख़ की तरफ़ मुँह करना भी इबादत न होता)।

मआरिफ़ व मसाईल

जब मुसलमानों का क़िब्ला बैतुल-मुक़द्दस के बजाय बैतुल्लाह कर दिया गया तो यहूदी व ईसाई और मुश्रिक लोग जो इस्लाम और मुसलमानों में ऐब तलाश करने की फ़िक्र में रहते थे उनमें बड़ा शोर व हंगामा हुआ और तरह-तरह से रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और इस्लाम पर एतिराज़ों का सिलसिला जारी कर दिया जिसके जवाबात पिछली आयतों में बड़ी स्पष्टता व तफ़सील के साथ ज़िक्र किये गये हैं।

इन आयतों में एक ख़ास अन्दाज़ से इस बहस को ख़त्म कर दिया गया है जिसका हासिल यह है कि कि तुमने सारा दीन सिर्फ़ इस बात पर मुन्हसिर (सीमित) कर दिया है कि नमाज़ में इनसान का रुख़ पश्चिम की तरफ़ हो या पूरब की, मुराद इससे मुतलक़ दिशायें और रुख़ हैं, यानी तुमने सिर्फ़ दिशा और रुख़ को दीन का मक़सद बना लिया और सारी बहसें इसी में दायर हो गईं, गोया शरीअ़त का कोई और हुक्म ही नहीं है।

और यह भी हो सकता है कि इस आयत का ख़िताब यहूदियों, ईसाईयों और मुसलमानों सब के लिये हो, और मुराद यह हो कि असल बिर्र (भलाई व नेकी) और सवाब अल्लाह तआ़ला की इताअ़त में है, वह जिस तरफ़ रुख़ करने का हुक्म दें वही सवाब और सही हो जाता है, अपनी ज़ात के एतिबार से पूरब व पश्चिम या कोई दिशा व रुख़ न कोई अहमियत रखता है न सवाब, बल्कि सवाब दर असल हुक्म का पालन करना है, जिस जानिब का भी हुक्म हो जाये। जब तक बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ रुख़ करने का हुक्म था वह सवाब था, और जब बैतुल्लाह की तरफ़ रुख़ करने का इरशाद हुआ तो वही सवाब है।

जैसा कि इन आयतों के पीछे की आयतों से ताल्लुक़ के उनवान में बयान हो चुका है कि इस

आयत से सूरः ब-क़रह का एक नया बाब (अध्याय) शुरू हो रहा है, जिसमें मुसलमानों के लिये तालीमात व हिदायात असल हैं, मुख़ालिफ़ों के जवाबात ज़िमनी तौर पर, इसी लिये इस आयत को इस्लामी अहकाम की एक बहुत ही जामे (पूर्ण) आयत कहा गया है।

इसके बाद सूरः ब-क़रह के ख़त्म तक तक़रीबन इस आयत की और ज़्यादा वज़ाहतें और ख़ुलासे हैं। इस आयत में उसूली तौर से तमाम शरई अहकाम, अ़क़ीदे, इबादतें, मामले और अख़्लाक़ का संक्षिप्त रूप से ज़िक्र आ गया है।

पहली चीज़ एतिक़ादात (अ़क़ीदे व आस्था) हैं, इसका ज़िक्र 'मन् आम-न बिल्लाहि.....' में विस्तार से आ गया। दूसरी चीज़ आमाल यानी इबादतें और मामलात हैं, इनमें से इबादतों का ज़िक्र 'व आतज़्ज़का-त.....' तक आ गया। फिर मामलात का ज़िक्र 'वल्मूफ़ू-न बि-अ़ह्दिहिम्.....' से किया गया। फिर अख़्लाक़ का ज़िक्र 'वस्साबिरी-न......' से किया गया। आख़िर में बतला दिया कि सच्चे मोमिन वही लोग हैं जो इन तमाम अहकाम की पैरवी मुकम्मल तौर पर करें और उन्हीं को तक़वे पर चलने वाले कहा जा सकता है। (यह सब अभी पीछे गुज़री आयत 177 के बारे में बात हो रही है।)

इन अहकाम के बयान करने में बहुत से स्पष्ट और अहम इशारे हैं, जैसे माल को ख़र्च करने में 'अ़ला हुब्बिही' की क़ैद लगा दी, जिसमें तीन मायनों की गुंजाईश हैं- एक यह कि 'हुब्बिही' (उसकी मुहब्बत) में 'उस' से मुराद अल्लाह तआ़ला हो, तो मायने यह होंगे कि माल ख़र्च करने में कोई नफ़्सानी ग़र्ज़, नाम व नमूद (दिखावा) शामिल न हो, बल्कि पूरे इख़्लास के साथ सिर्फ़ अल्लाह जल्ल शानुहू के साथ मुहब्बत उस ख़र्च करने का जज़्बा व तक़ाज़ा हो।

दूसरा एहतिमाल यह है कि 'उस' से मुराद माल हो, तो मुराद यह होगी कि अल्लाह की राह में वह माल ख़र्च करना सवाब का सबब है जो इनसान को महबूब हो, बेकार चीज़ें जो फेंकने की थीं उनको देकर सदक़े का नाम करना कोई सदक़ा नहीं, अगरचे फेंकने की तुलना में अच्छा यही है कि किसी के काम आ सके, तो उसको दे दे।

तीसरा एहतिमाल यह है कि लफ़्ज़ 'उस' से मुराद माल का देना हो, इस सूरत में मायने यह होंगे कि वह अपने ख़र्च करने पर दिल से राज़ी हो, यह न हो कि ख़र्च तो कर रहा है मगर अन्दर से दिल दुख रहा है।

इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया- मुम्किन है कि तीनों ही चीज़ें मुराद में दाख़िल हों। फिर इस जगह माल के ख़र्च करने की दो सूरतें पहले बयान कर दीं जो ज़कात के अ़लावा हैं, ज़कात का ज़िक्र उसके बाद किया। पहले लाने की शायद वजह यह हो कि आ़म तौर से इन हुक़ूक़ में ग़फ़लत और कोताही बरती जाती है, सिर्फ़ ज़कात अदा कर देने को काफ़ी समझ लिया जाता है।

मसलाः इसी से यह बात साबित हो गई कि माली फ़र्ज़ सिर्फ़ ज़कात से पूरा नहीं होता है, ज़कात के अ़लावा भी बहुत जगह पर माल ख़र्च करना फ़र्ज़ व वाजिब होता है। (तफ़सीरे जस्सास, क़ुर्तुबी) जैसे रिश्तेदारों पर ख़र्च करना कि जब वे कमाने से माज़ूर हों तो ज़रूरी ख़र्च (खाना, कपड़ा और दवाई वग़ैरह) अदा करना वाजिब होता है, कोई मिस्कीन ग़रीब मर रहा है और आप अपनी ज़कात अदा कर चुके हैं, मगर उस वक़्त माल ख़र्च करके उसकी जान बचाना फ़र्ज़ है।

इसी तरह ज़रूरत की जगह मस्जिद बनाना या दीनी तालीम के लिये मदरसे व मक्तब बनाना यह

सब माल के फ़राईज़ में दाख़िल हैं, फ़र्क़ इतना है कि ज़कात का एक ख़ास क़ानून है उसके मुताबिक़ हर हाल में ज़कात का अदा करना ज़रूरी है, और यह दूसरे मसारिफ़ (ख़र्च के मौक़े) ज़रूरत व हाजत पर मौक़ूफ़ हैं, जहाँ ज़रूरत हो ख़र्च करना फ़र्ज़ हो जायेगा, जहाँ न हो फ़र्ज़ नहीं होगा।

फ़ायदाः जिन लोगों पर माल ख़र्च करना है जैसे रिश्तेदार, मिस्कीन लोग, मुसाफ़िर, सवाल करने वाले फ़क़ीर, इन सब को तो एक अन्दाज़ से बयान फ़रमाया, फिर 'व फ़िर्रिक़ाबि' में हर्फ़ 'फ़ी' बढ़ाकर इशारा कर दिया कि मम्लूक ग़ुलामों को माल का मालिक बनाना मक़सूद नहीं, बल्कि उनके मालिक से ख़रीद कर उनके आज़ाद करने पर ख़र्च किया जाये। उसके बाद 'अक़ामस्सला-त व आतज़्ज़का-त' (यानी नमाज़ को क़ायम करने और ज़कात अदा करने) का ज़िक्र भी इसी तरीक़े पर आया, जैसे दूसरी चीज़ों का ज़िक्र है। आगे मामलात के बारे में बयान करना था, उसमें अन्दाज़ और तरीक़ा बदलकर बजाय माज़ी (भूतकाल) का सीग़ा इस्तेमाल करने के 'वल्मूफ़ू-न ....' इस्म फ़ाज़िल (क्रिया करने वाले) का सीग़ा (कलिमा) इस्तेमाल किया, इसमें इशारा इस बात की तरफ़ है कि इसमें अ़हद व वायदे के पूरा करने की आ़दत हमेशा होनी चाहिये, इत्तिफ़ाक़ी तौर पर कोई समझौता व मुआ़हदा पूरा कर दे तो यह हर काफ़िर व बदकार कभी न कभी करता है, इसका एतिबार नहीं।

इसी तरह मामलात के बारे में सिर्फ़ अ़हद व वायदा पूरा करने का ज़िक्र किया गया, क्योंकि अगर ग़ौर किया जाये तो तमाम मामलात ख़रीद व बेच, उजरत व मज़दूरी और साझेदारी सब ही की रूह मुआ़हदे और वायदे का पूरा करना है।

इसी तरह आगे अख़्लाक़ यानी अन्दरूनी आमाल का ज़िक्र करना था, उनमें से सिर्फ़ सब्र को बयान किया गया, क्योंकि सब्र के मायने हैं नफ़्स को क़ाबू में रखने और बुराईयों से बचाने के। अगर ग़ौर किया जाये तो तमाम अन्दरूनी आमाल की असल रूह सब्र ही है, इसी के ज़रिये उम्दा और ऊँचे अख़्लाक़ हासिल किये जा सकते हैं, और इसी के ज़रिये बुरे और गन्दे अख़्लाक़ से निजात हासिल की जा सकती है।

बयान के अन्दाज़ और तरीक़े में एक और तब्दीली यहाँ यह की गयी कि पहले वायदा पूरा करने वालों का ज़िक्र किया था यहाँ 'वस्साबिरू-न' नहीं बल्कि 'वस्साबिरी-न' फ़रमाया। हज़राते मुफ़स्सिरीन (क़ुरआन के व्याख्यापकों) ने फ़रमाया कि यह यहाँ तारीफ़ का पहलू एक ख़ास अन्दाज़ से बयान किया गया है, यानी इन सब नेकोकार लोगों में विशेष रूप से क़ाबिले तारीफ़ सब्र करने वाले लोग हैं, क्योंकि सब्र ही एक ऐसा जौहर, माद्दा और ऐसी क़ुव्वत है जिससे उक्त तमाम आमाल में मदद ली जा सकती है। इस तरह ज़िक्र हुई आयत में दीन के तमाम शोबों (हिस्सों) के अहम उसूल भी आ गये हैं और स्पष्ट इशारात से हर एक की अहमियत का दर्जा भी मालूम हो गया।

يَٰٓأَيُّهَا ٱلَّذِينَ ءَامَنُواْ كُتِبَ عَلَيْكُمُ ٱلْقِصَاصُ فِى ٱلْقَتْلَى ۖ ٱلْحُرُّ بِٱلْحُرِّ وَٱلْعَبْدُ بِٱلْعَبْدِ وَٱلْأُنثَىٰ بِٱلْأُنثَىٰ ۚ فَمَنْ عُفِىَ لَهُۥ مِنْ أَخِيهِ شَىْءٌ فَٱتِّبَاعٌۢ بِٱلْمَعْرُوفِ وَأَدَآءٌ إِلَيْهِ بِإِحْسَٰنٍ ۗ ذَٰلِكَ تَخْفِيفٌ مِّن رَّبِّكُمْ وَرَحْمَةٌ ۗ فَمَنِ ٱعْتَدَىٰ بَعْدَ ذَٰلِكَ فَلَهُۥ عَذَابٌ أَلِيمٌ ۝ وَلَكُمْ فِى ٱلْقِصَاصِ حَيَوٰةٌ يَٰٓأُوْلِى ٱلْأَلْبَٰبِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُونَ ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू कुति-ब अ़लैकुमुल्-क़िसासु फ़िल्क़त्ला, अल्हुर्रु बिल्हुर्रि वल्अ़ब्दु बिल्अ़ब्दि वल्-उन्सा बिल्-उन्सा, फ़मन् अुफ़ि-य लहू मिन् अख़ीहि शैउन् फ़त्तिबाअुम् बिल्मअ़्रूफ़ि व अदाउन् इलैहि बि-इह्सानिन्, ज़ालि-क तख़्फ़ीफ़ुम्-मिर्रब्बिकुम् व रह्मतुन्, फ़-मनिअ़्तदा बअ़्-द ज़ालि-क फ़-लहू अ़ज़ाबुन् अलीम (178) व लकुम् फ़िल्क़िसासि हयातुंय्-या उलिल्-अल्बाबि लअ़ल्लकुम् तत्तक़ून (179)	ऐ ईमान वालो! फ़र्ज़ हुआ तुम पर बराबरी करना (यानी क़िसास) मक़्तूलों में, आज़ाद के बदले आज़ाद और ग़ुलाम के बदले ग़ुलाम, और औरत के बदले औरत, फिर जबकि माफ़ किया जाये उसके भाई की तरफ़ से कुछ भी तो ताबेदारी करनी चाहिए दस्तूर (और नियम) के मुवाफ़िक़ और अदा करना चाहिए उसको ख़ूबी के साथ, यह आसानी हुई तुम्हारे रब की तरफ़ से और मेहरबानी, फिर जो ज़्यादती करे इस फ़ैसले के बाद तो उसके लिये है अ़ज़ाब दर्दनाक। (178) और तुम्हारे वास्ते क़िसास में बड़ी ज़िन्दगी है ऐ अ़क़्लमन्दो! ताकि तुम बचते रहो। (179)

इन आयतों का पिछली आयतों से ताल्लुक़

इससे पहली आयतों की तफ़सीर में आप मालूम कर चुके हैं कि उन आयतों में संक्षिप्त रूप से नेकी और ख़ूबी (भलाई और कमाल) के उसूल बतला दिये गये हैं, आगे उनकी जुज़ई तफ़सीलात आयेंगी जिनको 'अब्वाबुल-बिर्र' (नेकी के अध्याय) कहा जा सकता है। आगे इन्हीं 'नेकियों के अध्यायों' के कुछ जुज़ई अहकाम का बयान होता है, जो ज़रूरत, हालात और वाक़िआ़त के ताबे बयान हुए हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

पहला हुक्म 'क़िसास'

ऐ ईमान वालो! तुम पर क़िसास "यानी बदले" (का क़ानून) फ़र्ज़ किया जाता है (जान-बूझकर क़त्ल करने से) क़त्ल किए गये लोगों के बारे में। (यानी हर) आज़ाद आदमी (क़त्ल किया जाये हर दूसरे) आज़ाद अदमी के बदले में और (इसी तरह हर) ग़ुलाम (दूसरे हर) ग़ुलाम के बदले में, और (इसी तरह हर) औरत (दूसरी हर) औरत के बदले में (चाहे ये क़त्ल करने वाले बड़े दर्जे के और क़त्ल होने वाले छोटे दर्जे के हों, तब भी सबसे बराबर क़िसास लिया जायेगा, यानी क़ातिल को सज़ा में क़त्ल किया जायेगा) हाँ जिस (क़ातिल) को उसके (मुक़द्दमे) के फ़रीक़ की तरफ़ से कुछ माफ़ी हो जाए (मगर पूरी माफ़ी न हो) तो (इससे क़त्ल की सज़ा से तो बरी हो गया लेकिन दियत यानी

ख़ूनबहा के तौर पर एक निर्धारित मिक़्दार से माल क़ातिल के ज़िम्मे वाजिब हो जायेगा, तो उस वक़्त दोनों फ़रीक़ों के ज़िम्मे इन दो बातों की रियायत ज़रूरी है- दावा करने वाले यानी मक़्तूल के वारिस के ज़िम्मे तो) उचित और सही तौर पर (ख़ून की क़ीमत का) मुतालबा करना (कि उसको ज़्यादा तंग न करे) और (क़ातिल के ज़िम्मे) ख़ूबी के साथ (उस माल का) उस (दावेदार) के पास पहुँचा देना है (कि मिक़्दार में कमी न करे और ख़्वाह-म-ख़्वाह टाले नहीं), यह (माफ़ करने और ख़ून की क़ीमत लेने का क़ानून) तुम्हारे परवर्दिगार की तरफ़ से (सज़ा में) कमी है और (शाही) रहम करना है (वरना सिवाय सज़ा-ए-मौत के कोई गुंजाईश ही न होती)। फिर जो शख़्स इस (क़ानून) के (मुक़र्रर होने के) बाद ज़्यादती करेगा (जैसे किसी पर झूठा या शुब्हे में क़त्ल का दावा कर दे या माफ़ करके फिर क़त्ल की पैरवी करे) तो उस शख़्स को (आख़िरत में) बड़ा दर्दनाक अ़ज़ाब होगा। और ऐ समझदार लोगो! बदले (के इस क़ानून) में तुम्हारी जानों का बड़ा बचाव है (क्योंकि इस क़ानून के ख़ौफ़ से क़त्ल का जुर्म करने से डरेंगे तो कई जानें बचेंगी), हम उम्मीद करते हैं कि तुम लोग (ऐसे अमन वाले क़ानून की ख़िलाफ़-वर्ज़ी करने से) परहेज़ रखोगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

क़िसास के लफ़्ज़ी मायने उसी जैसे और बराबरी के हैं। मुराद यह है कि जितना ज़ुल्म किसी ने किसी पर किया उतना ही बदला लेना दूसरे के लिये जायज़ है, उससे ज़्यादती करना जायज़ नहीं। क़ुरआन मजीद की इसी सूरत की आयत 194 में इसकी अधिक तफ़सील इस तरह आई है:

فَاعْتَدُوْا عَلَيْهِ بِمِثْلِ مَا اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ. (٢:١٩٤)

और सूरः नहल की आख़िरी आयतों में:

وَاِنْ عَاقَبْتُمْ فَعَاقِبُوْا بِمِثْلِ مَا عُوْقِبْتُمْ بِهٖ. (٦:١٢٦)

इसी मज़मून के लिये आया है।

इसी लिये शरीअ़त की इस्तिलाह में क़िसास कहा जाता है क़त्ल करने और ज़ख़्म लगाने की उस सज़ा को जिसमें बराबरी और उसी जैसी हालत की रियायत की गई हो।

मसलाः जान-बूझकर क़त्ल यानी इरादा करके किसी को लोहे के हथियार या ऐसी चीज़ से जिससे गोश्त पोस्त कटकर ख़ून बह सके, क़त्ल किया जाये, क़िसास यानी जान के बदले जान लेना ऐसे ही क़त्ल के जुर्म के साथ मख़्सूस है।

मसलाः ऐसे क़त्ल में जिस तरह आज़ाद आदमी आज़ाद के बदले में क़त्ल किया जाता है ऐसे ही ग़ुलाम के बदले में ग़ुलाम, और जिस तरह औ़रत के बदले में औ़रत मारी जाती है इसी तरह मर्द भी औ़रत के मुक़ाबले में क़त्ल किया जाता है।

आयत में आज़ाद के मुक़ाबले में आज़ाद और औ़रत के मुक़ाबले में औ़रत का जो ज़िक्र आया है यह उस ख़ास वाक़िए की बिना पर है जिसमें यह आयत नाज़िल हुई है। इमाम इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इब्ने अबी हातिम रहमतुल्लाहि अ़लैहि की सनद से नक़ल किया है कि इस्लाम के ज़माने से कुछ पहले अ़रब के दो क़बीलों में जंग हो गई, दोनों तरफ़ के बहुत से आदमी आज़ाद

और गुलाम मर्द और औरतें क़त्ल हो गये। अभी उनके मामले का तसफ़िया होने नहीं पाया था कि इस्लाम का ज़माना शुरू हो गया और ये दोनों क़बीले इस्लाम में दाख़िल हो गये। इस्लाम लाने के बाद अपने-अपने मक़्तूलों (क़त्ल होने वाले लोगों) का क़िसास लेने की बातचीत शुरू हुई तो एक क़बीला जो क़ुव्वत व शौकत वाला था उसने कहा कि हम उस वक़्त तक राज़ी न होंगे जब तक हमारे गुलाम के बदले में तुम्हारा आज़ाद आदमी और औरत के बदले में मर्द क़त्ल न किया जाये।

क़िसास के बारे में इस्लाम का न्यायपूर्ण क़ानून और क़िसास के मसाईल

उनके जाहिलाना और ज़ालिमाना मुतालबे की तरदीद करने के लिये यह आयत नाज़िल हुईः

اَلْحُرُّ بِالْحُرِّ وَالْعَبْدُ بِالْعَبْدِ وَالْاُنْثٰى بِالْاُنْثٰى.

जिसका हासिल उनके मुतालबे को रद्द करना था कि गुलाम के बदले आज़ाद को और औरत के बदले मर्द को क़त्ल किया जाये अगरचे वह क़ातिल न हो। इस्लाम ने अपना इन्साफ़ वाला क़ानून यह नाफ़िज़ कर दिया कि जिसने क़त्ल किया है वही क़िसास में क़त्ल किया जाये, अगर औरत क़ातिल है तो किसी बेगुनाह मर्द को उसके बदले में क़त्ल करना, इसी तरह क़ातिल अगर गुलाम है तो उसके बदले में किसी बेगुनाह आज़ाद को क़त्ल करना बड़ा भारी ज़ुल्म है जो इस्लाम में क़तई बरदाश्त नहीं किया जा सकता।

इससे मालूम हुआ कि आयत का हासिल इसके सिवा नहीं कि जिसने क़त्ल किया है वही क़िसास (ख़ून के बदले ख़ून) में क़त्ल किया जायेगा, औरत हो या गुलाम, क़ातिल औरत और गुलाम के बजाय बेगुनाह मर्द या आज़ाद को क़त्ल करना जायज़ नहीं। आयत का यह मतलब हरगिज़ नहीं कि औरत को कोई मर्द क़त्ल कर दे या गुलाम को कोई आज़ाद क़त्ल कर दे तो उससे क़िसास नहीं लिया जायेगा। क़ुरआन मजीद की इसी आयत के शुरू में 'अल्-क़िसासु फ़िल्क़त्ला' हुक्म के इस आम होने की स्पष्ट दलील है और दूसरी आयतों में इससे भी ज़्यादा वज़ाहत है, जैसे 'अन्नफ़्सु बिन्नफ़्सि....' (जान के बदले जान) वग़ैरह।

मसलाः अगर जान-बूझकर किये गये क़त्ल में क़ातिल को पूरी माफ़ी दे दी जाये, मिसाल के तौर पर मक़्तूल के वारिस सिर्फ़ उसके दो बेटे थे और उन दोनों ने अपना हक़ माफ़ कर दिया तो क़ातिल पर कोई मुतालबा नहीं रहा, और अगर पूरी माफ़ी न हो जैसे उक्त सूरत में दो बेटों में से एक ने माफ़ किया दूसरे ने माफ़ नहीं किया, तो क़िसास की सज़ा से तो क़ातिल बरी हो गया लेकिन माफ़ न करने वाले को आधी दियत (ख़ूनबहा) दिलाया जायेगा और दियत यानी ख़ूनबहा शरीअ़त में सौ ऊँट या हज़ार दीनार या दस हज़ार दिरहम होते हैं, और दिरहम आजकल के प्रचलित वज़न के एतिबार से तक़रीबन साढ़े तीन माशे चाँदी का होता है, तो पूरी दियत 2916 तौले 8 माशे चाँदी हो गई, यानी 36 सैर 36 तौले 8 माशे।

मसलाः जिस तरह नामुकम्मल माफ़ी से माल वाजिब हो जाता है इसी तरह अगर आपस में

किसी क़द्र माल पर समझौता हो जाये तब भी क़िसास ख़त्म होकर माल वाजिब हो जाता है, लेकिन इसमें कुछ शर्तें हैं जो मसाईल की किताबों में बयान की गयी हैं।

मसलाः मक़्तूल (क़त्ल होने वाले) के जितने शरई वारिस हैं वही क़िसास और दियत के मालिक अपने मीरास के हिस्से के बक़द्र होंगे, अगर दियत यानी ख़ूनबहा लिया गया तो माल उन वारिसों में विरासत के हिस्से के मुताबिक़ तक़सीम होगा और क़िसास का फ़ैसला हुआ तो क़िसास का हक़ भी सब में मुश्तरक होगा, मगर चूँकि क़िसास नाक़ाबिले तक़सीम है इसलिये कोई अदना (कम) दर्जे का हक़ रखने वाला भी अपना क़िसास का हक़ माफ़ कर देगा तो दूसरे वारिसों का क़िसास का हक़ भी माफ़ हो जायेगा, हाँ उनको दियत (ख़ूनबहा) की रक़म हिस्से के हिसाब से मिलेगी।

मसलाः क़िसास लेने का हक़ अगरचे मक़्तूल के वलियों और वारिसों का है मगर उम्मत की सर्वसम्मति से उनको अपना यह हक़ ख़ुद वसूल करने का इख़्तियार नहीं, कि ख़ुद ही क़ातिल को मार डालें, बल्कि इस हक़ के हासिल करने के लिये मुसलमान हाकिम के फ़ैसला करने या उसके किसी नायब का होना ज़रूरी है, क्योंकि क़िसास किस सूरत में वाजिब होता है किस में नहीं, इसके मसाईल भी गहरे हैं जिनको हर शख़्स मालूम नहीं कर सकता, इसके अलावा मक़्तूल के वारिस अपने ग़ुस्से में मग़लूब होकर कोई ज़्यादती भी कर सकते हैं, इसलिये उलेमा-ए-उम्मत इस पर एकमत हैं कि क़िसास का हक़ हासिल करने के लिये इस्लामी हुकूमत की तरफ़ रुजू करना ज़रूरी है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

كُتِبَ عَلَيْكُمْ إِذَا حَضَرَ أَحَدَكُمُ الْمَوْتُ إِنْ تَرَكَ خَيْرًا ۖ الْوَصِيَّةُ لِلْوَالِدَيْنِ وَالْأَقْرَبِينَ بِالْمَعْرُوفِ ۖ حَقًّا عَلَى الْمُتَّقِينَ ﴿١٨٠﴾ فَمَنْ بَدَّلَهُ بَعْدَمَا سَمِعَهُ فَإِنَّمَا إِثْمُهُ عَلَى الَّذِينَ يُبَدِّلُونَهُ ۚ إِنَّ اللَّهَ سَمِيعٌ عَلِيمٌ ﴿١٨١﴾ فَمَنْ خَافَ مِنْ مُوصٍ جَنَفًا أَوْ إِثْمًا فَأَصْلَحَ بَيْنَهُمْ فَلَا إِثْمَ عَلَيْهِ ۚ إِنَّ اللَّهَ غَفُورٌ رَحِيمٌ ﴿١٨٢﴾

कुति-ब अ़लैकुम् इज़ा ह-ज़-र अ-ह-दकुमुल्मौतु इन् त-र-क ख़ैरनिल्-वसिय्यतु लिल्वालिदैनि वल्-अक़्रबी-न बिल्मअ़्रूफ़ि हक़्क़न् अ़लल्-मुत्तक़ीन (180) फ़-मम् बद्-द लहू बअ़्-द मा समि-अ़हू फ़-इन्नमा इस्मुहू अ़लल्लज़ी-न युबद्दिलूनहू, इन्नल्ला-ह समीअ़ुन् अ़लीम (181)	फ़र्ज़ किया गया तुम पर जब हाज़िर हो किसी को तुम में मौत बशर्ते कि छोड़े कुछ माल, वसीयत करना माँ-बाप के वास्ते और रिश्तेदारों के लिये इन्साफ़ के साथ, यह हुक्म लाज़िम है परहेज़गारों पर। (180) फिर कोई बदल डाले वसीयत को बाद उसके कि जो सुन चुका तो उसका गुनाह उन्हीं पर है जिन्होंने उसको बदला, बेशक अल्लाह सुनने वाला जानने वाला है। (181)

फ़-मन् ख़ा-फ़ मिम्-मूसिन् ज-नफ़न् औ इस्मन् फ़-अस्ल-ह बैनहुम् फ़ला इस्-म अलैहि, इन्नल्ला-ह ग़फ़ूरुर्रहीम (182) ✿	फिर जो कोई ख़ौफ़ करे वसीयत करने वाले से तरफ़दारी का या गुनाह का, फिर उनमें आपस में सुलह करा दे तो उस पर कुछ गुनाह नहीं, बेशक अल्लाह बड़ा बख़्शने वाला निहायत मेहरबान है। (182) ✿

इन आयतों का पिछली आयतों से जोड़

'अबवाबुल-बिर्र' का दूसरा हुक्म "वसीयत"

वसीयत हर उस चीज़ को कहा जाता है जिसके करने का हुक्म दिया जाये चाहे ज़िन्दगी में या मौत के बाद, लेकिन आम बोल-चाल में उस काम को कहा जाता है जिसके करने का हुक्म मौत के बाद हो। **'ख़ैर'** लफ़्ज़ ख़ैर के बहुत से मायनों में से एक मायने माल के भी आते हैं, जैसे क़ुरआन में है 'व इन्नहू लिहुब्बिल् ख़ैरि ल-शदीद' (सूरः आदियात आयत 8) इस जगह तमाम मुफ़स्सिरीन की राय में ख़ैर से मुराद माल है।

इस्लाम के शुरू ज़माने में जब तक मीरास के हिस्से शरई तौर पर मुक़र्रर न हुए थे, यह हुक्म था कि तर्के (मरने वाले के छोड़े हुए माल) के एक तिहाई में मरने वाला अपने माँ-बाप और दूसरे रिश्तेदारों के लिये जितना-जितना मुनासिब समझे वसीयत कर दे। इतना तो उन लोगों का हक़ था बाक़ी जो कुछ रहता है वह सब औलाद का हक़ होता था। इस आयत में यह हुक्म ज़िक्र है यानीः

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

तुम पर फ़र्ज़ किया जाता है कि जब किसी को (आसार से) मौत नज़दीक मालूम होने लगे, शर्त यह है कि कुछ माल भी अपने पीछे छोड़ा हो, तो (अपने) माँ-बाप और (दूसरे) रिश्तेदारों व क़रीबी लोगों के लिए माक़ूल तौर पर (जो कि कुल मिलाकर एक तिहाई से ज़्यादा न हो) कुछ-कुछ बतला जाए (इसका नाम वसीयत है)। जिनको ख़ुदा का ख़ौफ़ है उनके ज़िम्मे यह ज़रूरी (किया जाता) है। फिर (जिन लोगों ने उस वसीयत को सुना है उनमें से) जो शख़्स (भी) उस (वसीयत) के सुन लेने के बाद उस (के मज़मून) को तब्दील करेगा (और आपसी बंटवारे व फ़ैसले के वक़्त ग़लत इज़हार देगा और उसके मुवाफ़िक़ फ़ैसला होने से किसी के हक़ का नुक़सान हो जायेगा) तो उस (हक़-तल्फ़ी) का गुनाह उन्हीं लोगों को होगा जो उस (मज़मून) को तब्दील करेंगे (अदालत के हाकिम या तीसरे शख़्स को या मरने वाले को गुनाह न होगा, क्योंकि) अल्लाह तआला तो यक़ीनन सुनते, जानते हैं (तो तब्दील करने वाले के इज़हार भी सुनते हैं और हाकिम का बेख़बर और माज़ूर होना भी जानते हैं)।

हाँ (एक तरह की तब्दीली की इजाज़त भी है वह यह कि) जिस शख़्स को वसीयत करने वाले की जानिब से (वसीयत के बारे में) किसी ग़लती की या (जान-बूझकर वसीयत के क़ानून की किसी

दफ़ा की ख़िलाफ़वर्ज़ी के) किसी जुर्म के करने की तहक़ीक़ हुई हो (और इस अनियमित वसीयत की वजह से उस मय्यित के पीछे तर्के के हक़दारों और वसीयत के माल के हक़दारों में झगड़े और विवाद का ख़तरा हो या उत्पन्न हो जाना मालूम हो), फिर यह शख़्स उनमें आपस में सुलह-सफ़ाई करा दे (अगरचे वह सुलह-सफ़ाई वसीयत के उस मज़मून के ख़िलाफ़ हो जो देखने में वसीयत में तब्दीली है) तो इस शख़्स पर कोई गुनाह (का बोझ) नहीं है, (और) वाक़ई अल्लाह तआ़ला (तो ख़ुद गुनाहों के) माफ़ करने वाले हैं और (गुनाहगारों पर) रहम करने वाले हैं (और इस शख़्स ने तो कोई गुनाह नहीं किया क्योंकि वसीयत में तब्दीली सुधार और बेहतरी के लिये की है तो इस पर क्यों रहमत न होगी)।

मआरिफ़ व मसाईल

इस आयत में जो वसीयत करना उस मरने वाले पर फ़र्ज़ किया है जो माल छोड़कर मर रहा हो, इस हुक्म के तीन हिस्से हैं- एक यह कि मरने वाले के तर्के (छोड़े हुए माल) में औलाद के सिवा किसी दूसरे वारिस के हिस्से मुक़र्रर नहीं हैं, उनके हिस्सों को मरने वाले की वसीयत की बुनियाद पर तय किया जायेगा। दूसरे यह कि ऐसे रिश्तेदारों के लिये वसीयत करना मरने वाले पर फ़र्ज़ है। तीसरे यह कि एक तिहाई माल से ज़्यादा की वसीयत जायज़ नहीं।

इन तीन अहकाम में पहला हुक्म तो अक्सर सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात के नज़दीक मीरास वाली आयत से मन्सूख़ (रद्द) हो गया। अ़ल्लामा इब्ने कसीर ने इमाम हाकिम वग़ैरह के हवाले से हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से नक़ल किया है कि इस हुक्म को मीरास की आयत ने मन्सूख़ (ख़त्म और रद्द) कर दिया, यानी इस आयत नेः

لِلرِّجَالِ نَصِيبٌ مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدٰنِ وَالْاَقْرَبُوْنَ وَلِلنِّسَآءِ نَصِيبٌ مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدٰنِ وَالْاَقْرَبُوْنَ مِمَّا قَلَّ مِنْهُ اَوْكَثُرَ نَصِيبًا مَّفْرُوْضًاo (سورة ٤: آيت ٧)

और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की एक दूसरी रिवायत में इसकी यह तफ़सील है कि मीरास की आयत ने उन लोगों की वसीयत को मन्सूख़ कर दिया जिनका मीरास में हिस्सा मुक़र्रर है। दूसरे रिश्तेदार जिनका मीरास में हिस्सा नहीं, उनके लिये वसीयत का हुक्म अब भी बाक़ी है। (तफ़सीरे जस्सास, क़ुर्तुबी)

लेकिन उम्मत के इजमा (सर्वसम्मति) से यह ज़ाहिर है कि जिन रिश्तेदारों का मीरास में कोई हिस्सा मुक़र्रर नहीं उनके लिये मय्यित (मरने वाले) पर वसीयत करना कोई फ़र्ज़ व लाज़िम नहीं, इसलिये वसीयत का फ़र्ज़ होना उनके हक़ में भी मन्सूख़ (रद्द) ही होगा। (तफ़सीरे जस्सास, क़ुर्तुबी) यानी ज़रूरत की शर्त के साथ सिर्फ़ मुस्तहब रह जायेगी।

दूसरा हुक्म वसीयत का फ़र्ज़ होना

यह भी उम्मत के इजमा (एकमत होने) से मन्सूख़ है, और इसकी नासिख़ (रद्द और निरस्त करने वाली) वह मुतवातिर हदीस है जिसका ऐलान रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज्जतुल-विदा के ख़ुतबे में तक़रीबन डेढ़ लाख सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के सामने फ़रमायाः

اِنَّ اللّٰهَ اَعْطٰى لِكُلِّ ذِىْ حَقٍّ حَقَّهٗ فَلَا وَصِيَّةَ لِوَارِثٍ. (اخرجه الترمذی وقال هذا حديث حسن صحيح)

"अल्लाह तआ़ला ने हर एक हक़ वाले को उसका हक़ ख़ुद दे दिया है इसलिये अब किसी वारिस के लिये वसीयत जायज़ नहीं।"

इसी हदीस में हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से ये अलफ़ाज़ भी मन्क़ूल हैं:

لَا وَصِيَّةَ لِوَارِثٍ اِلَّا اَنْ تُجِيْزَهُ الْوَرَثَةُ. (جصاص)

"किसी वारिस के लिये वसीयत उस वक़्त तक जायज़ नहीं जब तक बाक़ी सब वारिस इजाज़त न दे दें।"

इसलिये हासिल इस हदीस का यह है कि अल्लाह तआ़ला ने वारिसों के हिस्से ख़ुद मुक़र्रर फ़रमा दिये हैं, इसलिये उसे वसीयत करने की ज़रूरत नहीं, बल्कि वारिस के हक़ में वसीयत करने की इजाज़त भी नहीं, हाँ अगर दूसरे वारिस उस वसीयत की इजाज़त दे दें तो जायज़ है।

इमाम जस्सास ने फ़रमाया कि यह हदीस एक सहाबा किराम की एक जमाअ़त से मन्क़ूल है और फ़ुक़हा-ए-उम्मत ने सर्वसम्मति से इसको क़ुबूल किया है, इसलिये यह मुतवातिर के हुक्म में है, जिससे क़ुरआन की आयत का नस्ख़ (यानी किसी हुक्म में तरमीम व रद्द करना) जायज़ है।

और इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि यह बात उलेमा-ए-उम्मत में मुत्तफ़क़ अ़लैहि है (यानी सब इस पर सहमत हैं) कि जब कोई हुक्म रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़बानी यक़ीनी तौर पर मालूम हो जाये जैसे ख़बरे मुतवातिर मशहूर (हदीस की एक किस्म) वग़ैरह में होता है तो वह बिल्कुल क़ुरआन के हुक्म में है और यह भी दर हक़ीक़त अल्लाह तआ़ला ही का फ़रमान है। इसलिये ऐसी हदीस से किसी क़ुरआनी आयत का मन्सूख़ हो जाना कोई शुब्हे का मक़ाम नहीं। फिर फ़रमाया कि अगरचे यह हदीस हम तक ख़बरे वाहिद (हदीस की एक किस्म) ही के तरीक़े पर पहुँची हो मगर इसके साथ हज्जतुल-विदा के सबसे बड़े इज्तिमा में एक लाख से ज़्यादा सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के सामने इसका ऐलान फ़रमाना और इस पर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम और उम्मत के इजमा (सहमति) ने यह वाज़ेह कर दिया कि यह हदीस उन हज़रात के नज़दीक सुबूत के लिये क़तई है, वरना शक व शुब्हे की गुंजाईश होते हुए इसकी वजह से क़ुरआन की आयत के हुक्म को छोड़कर इस पर इजमा न करते (यानी सब सहमत न होते)।

तीसरा हुक्म- वसीयत एक तिहाई माल से ज़्यादा की जायज़ नहीं

यह पूरी उम्मत के इत्तिफ़ाक़ से अब भी बाक़ी है, हाँ वारिसों की इजाज़त से एक तिहाई से अधिक की बल्कि पूरे माल की भी वसीयत जायज़ और क़ाबिले क़ुबूल है।

मसलाः बयान हुई तफ़सील से यह वाज़ेह हो चुका कि अब जिन रिश्तेदारों के हिस्से क़ुरआने करीम ने ख़ुद मुक़र्रर कर दिये हैं उनके लिये अब वसीयत वाजिब नहीं, बल्कि दूसरे वारिसों की इजाज़त के बग़ैर जायज़ भी नहीं, अलबत्ता जो रिश्तेदार शरई वारिस नहीं उनके लिये वसीयत करने की इजाज़त एक तिहाई माल तक है।

मसलाः इस आयत में ज़िक्र एक ख़ास वसीयत का था, जो मरने वाला अपने छोड़े हुए माल के

मुताल्लिक़ करता था जो मन्सूख़ (ख़त्म और रद्द) हो गया, लेकिन जिस शख़्स के ज़िम्मे दूसरे लोगों के हुक़ूक़ वाजिब हों या उसके पास किसी की अमानत रखी हो उस पर इन तमाम चीज़ों की अदायेगी के लिये वसीयत वाजिब है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक हदीस में फ़रमाया कि जिस शख़्स के ज़िम्मे कुछ लोगों के हुक़ूक़ हों उस पर तीन रातें ऐसी न गुज़रनी चाहियें कि उसकी वसीयत लिखी हुई उसके पास मौजूद न हो।

मसलाः आदमी को जो एक तिहाई माल में वसीयत करने का हक़ दिया गया है, अपनी ज़िन्दगी में उसको यह भी हक़ रहता है कि उस वसीयत में कुछ तब्दीली कर दे या बिल्कुल ख़त्म कर दे।

(तफ़सीरे जस्सास)

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ كَمَا كُتِبَ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ﴿۱۸۳﴾ اَيَّامًا مَّعْدُوْدٰتٍ ؕ فَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ مَّرِيْضًا اَوْ عَلٰى سَفَرٍ فَعِدَّةٌ مِّنْ اَيَّامٍ اُخَرَ ؕ وَعَلَى الَّذِيْنَ يُطِيْقُوْنَهٗ فِدْيَةٌ طَعَامُ مِسْكِيْنٍ ؕ فَمَنْ تَطَوَّعَ خَيْرًا فَهُوَ خَيْرٌ لَّهٗ ؕ وَاَنْ تَصُوْمُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ﴿۱۸۴﴾

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू कुति-ब अ़लैकुमुस्सियामु कमा कुति-ब अ़लल्लज़ी-न मिन् क़ब्लिकुम् लअ़ल्लकुम् तत्तक़ून (183) अय्यामम्-मअ़्दूदातिन्, फ़-मन् का-न मिन्कुम् मरीज़न् औ अ़ला स-फ़रिन् फ़-अ़िद्दतुम् मिन् अय्यामिन् उ-ख़-र, व अ़लल्लज़ी-न युतीक़ूनहू फ़िद्यतुन् तआ़मु मिस्कीनिन्, फ़-मन् त-तव्व-अ़ ख़ैरन् फ़हु-व ख़ैरुल्लहू, व अन् तसूमू ख़ैरुल्लकुम् इन् कुन्तुम् तअ़्लमून (184)	ऐ ईमान वालो! फ़र्ज़ किया गया तुम पर रोज़ा जैसे फ़र्ज़ किया गया था तुम से अगलों (पहली उम्मतों के लोगों) पर ताकि तुम परहेज़गार हो जाओ। (183) चन्द रोज़ हैं गिनती के, फिर जो कोई तुम में से बीमार हो या मुसाफ़िर तो उन पर उनकी गिनती है और दिनों से, और जिनको ताक़त है रोज़े की उनके ज़िम्मे बदला है एक फ़क़ीर का खाना, फिर जो कोई ख़ुशी से करे नेकी तो अच्छा है उसके वास्ते, और रोज़ा रखो तो बेहतर है तुम्हारे लिये अगर तुम समझ रखते हो। (184)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 3- रोज़ा

ऐ ईमान वालो! तुम पर रोज़ा फ़र्ज़ किया गया, जिस तरह तुमसे पहले (उम्मतों के) लोगों पर फ़र्ज़ किया गया था, इस उम्मीद पर कि तुम (रोज़े की बदौलत धीरे-धीरे) परहेज़गार बन जाओ (क्योंकि रोज़ा रखने से आदत पड़ेगी नफ़्स को उसके कई तक़ाज़ों से रोकने की और इसी आदत की पुख़्तगी बुनियाद है तक़्वे की, सो) थोड़े दिनों रोज़ा रख लिया करो (उन थोड़े दिनों से मुराद रमज़ान है, जैसा कि अगली आयत में आता है) फिर (इसमें भी इतनी आसानी है कि) जो शख़्स तुम में (ऐसा) बीमार हो (जिसमें रोज़ा रखना मुश्किल या नुक़सानदेह हो) या (शरई) सफ़र में हो तो (उसको रमज़ान में रोज़ा न रखने की इजाज़त है, और बजाय रमज़ान के) दूसरे दिनों का (इतना ही) शुमार (करके उनमें रोज़े) रखना (उस पर वाजिब) है। और (दूसरी आसानी जो बाद में ख़त्म हो गई यह है कि) जो लोग रोज़े की ताक़त रखते हों (और फिर रोज़ा रखने को दिल न चाहे तो) उनके ज़िम्मे (सिर्फ़ रोज़े का) फ़िदया (यानी बदला) है कि वह एक ग़रीब का खाना (खिला देना या दे देना है), और जो शख़्स ख़ुशी से (ज़्यादा) ख़ैर (ख़ैरात) करे (कि ज़्यादा फ़िदया दे) तो उस शख़्स के लिए और भी बेहतर है। और (अगरचे हमने आसानी के इन हालतों में रोज़ा न रखने की इजाज़त दे दी है लेकिन) तुम्हारा रोज़ा रखना (इस हाल में भी) ज़्यादा बेहतर है अगर तुम (रोज़े की फ़ज़ीलत की) ख़बर रखते हो।

मआरिफ़ व मसाईल

'सौम' (रोज़े) के लफ़्ज़ी मायने रुकने और बचने के हैं और शरीअ़त की इस्तिलाह में खाने पीने और औरत से हमबिस्तरी करने से रुकने और बाज़ रहने का नाम सौम है, बशर्तेकि वह सुबह सादिक़ निकलने से लेकर सूरज के डूबने तक निरंतर रुका रहे, और नीयत रोज़े की भी हो। इसलिये अगर सूरज डूबने से एक मिनट पहले भी कुछ खा-पी लिया तो रोज़ा नहीं हुआ। इसी तरह अगर इन तमाम चीज़ों से परहेज़ तो पूरे दिन पूरी एहतियात से किया मगर नीयत रोज़े की नहीं की तो भी रोज़ा नहीं हुआ।

'सौम' यानी रोज़ा उन इबादतों में से है जिनको इस्लाम के सुतून और निशानियाँ क़रार दिया गया है, इसके फ़ज़ाईल बेशुमार हैं जिनके तफ़सीली बयान का यह मौक़ा नहीं।

पिछली उम्मतों में रोज़े का हुक्म

रोज़े के फ़र्ज़ होने का हुक्म मुसलमानों को एक ख़ास मिसाल से दिया गया है, हुक्म के साथ यह भी ज़िक्र फ़रमाया कि यह रोज़े का फ़र्ज़ होना कुछ तुम्हारे साथ ख़ास नहीं, पिछली उम्मतों पर भी रोज़े फ़र्ज़ किये गये थे। इससे रोज़े की ख़ास अहमियत भी मालूम हुई और मुसलमानों की दिलजोई का भी इन्तिज़ाम किया गया कि रोज़ा अगरचे मशक़्क़त की चीज़ है मगर यह मशक़्क़त तुम से पहले भी सब लोग उठाते आये हैं। तबई बात है कि मशक़्क़त में बहुत से लोग मुब्तला हों तो वह हल्की मालूम

होने लगती है। (तफ़सीर रूहुल-मआनी)

क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ 'अल्लज़ी-न मिन् क़ब्लिकुम' (जो लोग तुम से पहले थे) आम हैं, हज़रत आदम अलैहिस्सलाम से लेकर हज़रत ख़ातिमुल-अम्बिया मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम तक की तमाम शरीअतों और उम्मतों को शामिल हैं। इससे मालूम हुआ कि जिस तरह नमाज़ की इबादत से कोई शरीअत और कोई उम्मत ख़ाली नहीं रही इसी तरह रोज़ा भी हर शरीअत में फ़र्ज़ रहा है।

जिन हज़रात ने फ़रमाया है कि 'मिन् क़ब्लिकुम' (तुम से पहले लोगों) से इस जगह ईसाई मुराद हैं वह बतौर एक मिसाल के है, इससे दूसरी उम्मतों की नफ़ी नहीं होती। (रूहुल-मआनी)

आयत में सिर्फ़ इतना बतलाया गया कि रोज़े जिस तरह मुसलमानों पर फ़र्ज़ किये गये, पिछली उम्मतों में भी फ़र्ज़ किये गये। इससे यह लाज़िम नहीं आता कि पिछली उम्मतों के रोज़े तमाम हालात व सिफ़ात में मुसलमानों ही के रोज़ों के बराबर हों। जैसे रोज़ों की संख्या, रोज़ों के वक़्त की हद बन्दी, और यह कि किन दिनों में रखे जायें, इन बातों में इख़्तिलाफ़ (भिन्नता) हो सकता है, चुनाँचे वाक़िआ भी ऐसा ही हुआ कि संख्या में भी कमी-बेशी होती रही और रोज़े के दिनों और वक़्तों में फ़र्क़ होता रहा है। (रूहुल-मआनी)

'लअ़ल्लकुम् तत्तक़ून' में इशारा है कि तक़वे की क़ुव्वत हासिल करने में रोज़े को बड़ा दख़ल है क्योंकि रोज़े से अपनी इच्छाओं को क़ाबू में रखने का एक मलका (ख़ूबी और कमाल) पैदा होता है वही तक़वे की बुनियाद है।

बीमार का रोज़ा

فَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ مَّرِيْضًا

'फ़-मन् का-न मिन्कुम् मरीज़न्' मरीज़ (बीमार) से मुराद वह मरीज़ है जिसको रोज़ा रखने से नाक़ाबिले बरदाश्त तकलीफ़ पहुँचे, या मर्ज़ (बीमारी) बढ़ जाने का प्रबल अन्देशा हो। बाद की आयत 'व ला युरीदु बिकुमुल-उस्-र' (यानी अल्लाह तआ़ला तुम पर तंगी नहीं करना चाहता) में इस तरफ़ इशारा मौजूद है। उम्मत के जमहूर फ़ुक़हा का यही मस्लक है।

मुसाफ़िर का रोज़ा

'औ अ़ला स-फ़रिन्' (या सफ़र में हो) यहाँ लफ़्ज़ मुसाफ़िर के बजाय 'अ़ला स-फ़रिन' का लफ़्ज़ इख़्तियार फ़रमाकर कई अहम मसाईल की तरफ़ इशारा फ़रमा दिया:

अव्वल यह कि हर एक सफ़र यानी अपने घर और वतन से बाहर निकल जाना रोज़े में सफ़र की छूट के लिये काफ़ी नहीं, बल्कि सफ़र कुछ लम्बा होना चाहिये। क्योंकि लफ़्ज़ 'अ़ला स-फ़रिन' का मफ़्हूम (मतलब) यह है कि वह सफ़र पर सवार हो, जिससे यह समझा जाता है कि घर से दस-पाँच मील चले जाना मुराद नहीं, मगर यह हद मुक़र्रर करना कि सफ़र कितना लम्बा हो क़ुरआन के अलफ़ाज़ में मज़कूर नहीं, रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बयान और सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के अ़मल से इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि और बहुत से फ़ुक़हा ने इसकी

मिक़्दार तीन मन्ज़िल यानी वह दूरी जिसको पैदल सफ़र करने वाला आसानी से तीन रोज़ में तय कर सके, क़रार दी है। और बाद के फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने मीलों के हिसाब से अड़तालीस मील लिखे हैं।

दूसरा मसला इसी लफ़्ज़ 'अ़ला स-फ़रिन' से यह निकला कि वतन से निकल जाने वाला मुसाफ़िर उसी वक़्त तक सफ़र की छूट का हक़दार है जब तक उसके सफ़र का सिलसिला जारी रहे, और यह ज़ाहिर है कि आराम करने या कुछ काम करने के लिये किसी जगह ठहर जाना मुतलक़ तौर पर उसके सफ़र के सिलसिले को ख़त्म नहीं कर देता, जब तक ठहरने की कोई अच्छी-ख़ासी मुद्दत न हो, और उस ठहरने की काफ़ी मुद्दत नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बयान से साबित हुई कि पन्द्रह दिन हैं, जो शख़्स किसी एक मकाम (स्थान) पर पन्द्रह दिन ठहरने की नीयत करे तो वह 'अ़ला स-फ़रिन' (सफ़र पर सवार) नहीं कहलाता, इसलिये वह सफ़र की छूट का हक़दार नहीं।

मसलाः इसी से यह भी निकल आया कि कोई शख़्स पन्द्रह दिन के क़ियाम (ठहरने) की नीयत से एक जगह नहीं बल्कि अलग-अलग जगहों, शहरों और बस्तियों में करे तो वह बदस्तूर मुसाफ़िर के हुक्म में रहकर सफ़र की छूट का हक़दार रहेगा, क्योंकि वह 'अ़ला स-फ़रिन' की हालत में है।

रोज़े की क़ज़ा

'फ़-इद्दतुम्-मिन अय्यामिन् उख़र्' यानी बीमार व मुसाफ़िर को अपने छूटे हुए रोज़ों की गिनती के मुताबिक़ दूसरे दिनों में रोज़े रखना वाजिब है। इसमें बतलाना तो यह मन्ज़ूर था कि बीमारी या सफ़र की मजबूरी से जो रोज़े छोड़े गये हैं उनकी क़ज़ा उन लोगों पर वाजिब है जिसके लिये 'फ़-अ़लैहिल् कज़ा' (तो उस पर क़ज़ा है) का मुख़्तसर जुमला भी काफ़ी था, मगर इसके बजाय 'फ़-इद्दतुम् मिन् अय्यामिन् उख़र्' फ़रमाकर इशारा कर दिया गया कि मरीज़ व मुसाफ़िर पर छूटे हुए रोज़ों की क़ज़ा सिर्फ़ उस सूरत में वाजिब होगी जबकि वह बीमार सेहत के बाद और मुसाफ़िर मुक़ीम होने के बाद इतने दिनों की मोहलत पाये जिनमें क़ज़ा कर सके। तो अगर कोई शख़्स इतने दिन से पहले ही मर गया तो उस पर क़ज़ा या फ़िदये की वसीयत लाज़िम नहीं होगी।

मसला

'इद्दतुम् मिन् अय्यामिन् उख़र्' (दूसरे दिनों में छूटे हुए रोज़ों की गिनती पूरी करने) में चूँकि इसकी कोई क़ैद नहीं कि तरतीब से रखे या बिना तरतीब के रखे, बल्कि आ़म इख़्तियार है, इसलिये अगर कोई शख़्स जिसके रमज़ान के शुरू के दस रोज़े क़ज़ा हो गये हों वह दसवें या नवें रोज़े की क़ज़ा पहले करे और शुरू के रोज़ों की क़ज़ा बाद में तो इसमें भी हर्ज नहीं। इसी तरह अलग-अलग करके क़ज़ा रोज़े रखे तो यह भी जायज़ है, क्योंकि 'इद्दतुम् मिन् अय्यामिन् उख़र्' (दूसरे दिनों में छूटे हुए रोज़ों की गिनती पूरी करने) में इसकी गुंजाईश है।

रोज़े का फ़िदया

'व अ़लल्लज़ी-न युतीक़ूनहू' (और जो लोग रोज़े की ताक़त रखते हों....) इस आयत के बेतकल्लुफ़ मायने वही हैं जो ख़ुलासा-ए-तफ़सीर में बतलाये गये हैं कि जो लोग बीमार या मुसाफ़िर

की तरह रोज़ा रखने से मजबूर नहीं बल्कि रोज़े की ताक़त तो रखते हैं मगर किसी वजह से दिल नहीं चाहता तो उनके लिये भी यह गुंजाईश है कि वे रोज़े के बजाय रोज़े का फ़िदया सदक़े की सूरत में अदा कर दें। इसके साथ इतना फ़रमा दिया 'व अन् तसूमू ख़ैरुल् लकुम्' यानी तुम्हारे लिये बेहतर यही है कि रोज़ा ही रखो।

यह हुक्म इस्लाम के शुरू दौर में था, जब लोगों को रोज़े का आदी बनाना मक़सूद था। इसके बाद जो आयत आने वाली है यानीः

مَنْ شَهِدَ مِنْكُمُ الشَّهْرَ فَلْيَصُمْهُ

(कि जो कोई तुम में से इस महीने को पाये तो ज़रूर इसके रोज़े रखे) इससे यह हुक्म आम लोगों के हक़ में मन्सूख़ कर दिया गया, सिर्फ़ ऐसे लोगों के हक़ में अब भी उम्मत के इजमा (एक राय होने) से बाक़ी रह गया जो बहुत बूढ़े हों। (तफ़सीरे जस्सास) या ऐसे बीमार हों कि अब सेहत की उम्मीद ही नहीं रही। जमहूर सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात का यही क़ौल है।

(तफ़सीरे जस्सास, तफ़सीरे मज़हरी)

सही बुख़ारी, सही मुस्लिम, अबू दाऊद, नसाई, तिर्मिज़ी, तबरानी वग़ैरह हदीस के तमाम इमामों ने हज़रत सलमा बिन अक्वा रज़ियल्लाहु अ़न्हु से नक़ल किया है कि जब यह आयतः

وَعَلَى الَّذِيْنَ يُطِيْقُوْنَهٗ

नाज़िल हुई तो हमें इख़्तियार दिया गया था कि जिसका जी चाहे रोज़े रखे जिसका जी चाहे हर रोज़े का फ़िदया दे दे। फिर जब दूसरी आयतः

مَنْ شَهِدَ مِنْكُمُ الشَّهْرَ فَلْيَصُمْهُ

नाज़िल हुई तो यह इख़्तियार ख़त्म होकर ताक़त वालों पर सिर्फ़ रोज़ा ही रखना लाज़िम हो गया।

मुस्नद अहमद में हज़रत मुआ़ज़ बिन जबल रज़ियल्लाहु अ़न्हु की एक लम्बी हदीस में है कि नमाज़ के मामलात में भी शुरू इस्लाम में तीन बदलाव हुए और रोज़े के मामले में भी तीन तब्दीलियाँ हुईं। रोज़े की तीन तब्दीलियाँ ये हैं किः

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जब मदीना तैयबा में तशरीफ़ लाये तो हर महीने में तीन रोज़े और एक रोज़ा यौमे आ़शूरा (यानी दसवीं मुहर्रम) का रखते थे, फिर रमज़ान की फ़र्ज़ियत (रोज़ों का फ़र्ज़ होना) नाज़िल हो गई- 'कुति-ब अ़लैकुमुस्सियामु' (तुम पर रोज़ा फ़र्ज़ किया गया) तो हुक्म यह था कि हर शख़्स को इख़्तियार है कि रोज़ा रख ले या फ़िदया दे दे, और रोज़ा रखना बेहतर और अफ़ज़ल है। फिर अल्लाह तआ़ला ने दूसरी आयत 'मन शहि-द मिन्कुमुश्शह्-र फ़ल्यसुम्हु' (तुम में से जो रमज़ान को पाये तो उसके रोज़े रखे) नाज़िल फ़रमा दी। इस आयत ने तन्दुरुस्त ताक़तवर के लिये यह इख़्तियार ख़त्म करके सिर्फ़ रोज़ा रखना लाज़िम कर दिया, मगर बहुत बूढ़े आदमी के लिये यह हुक्म बाक़ी रहा कि वह चाहे तो फ़िदया अदा कर दे।

ये तो दो बदलाव हुए, तीसरी तब्दीली यह हुई कि शुरू में इफ़्तार के बाद खाने पीने और अपनी इच्छा पूरा करने की इजाज़त सिर्फ़ उस वक़्त तक थी जब तक आदमी सोये नहीं, जब सो गया तो

दूसरा रोज़ा शुरू हो गया, खाना पीना वग़ैरह मम्नू (वर्जित) हो गया। फिर अल्लाह तआ़ला ने आयतः

أُحِلَّ لَكُمْ لَيْلَةَ الصِّيَامِ الرَّفَثُ...... الاية

(यानी आयत 187) नाज़िल फ़रमाकर यह आसानी फ़रमा दी कि अगले दिन की सुबह सादिक़ तक खाना पीना वग़ैरह सब जायज़ हैं, सोकर उठने के बाद सेहरी खाने को सुन्नत क़रार दे दिया गया। सही बुख़ारी, मुस्लिम, अबू दाऊद में भी इस मज़मून की हदीसें आई हैं। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

फ़िदये की मात्रा और सम्बन्धित मसाईल

एक रोज़े का फ़िदया आधा 'साअ़' गेहूँ या उसकी क़ीमत है। आधा साअ़ हमारे रिवाज के अनुसार क़रीब पौने दो सैर होते हैं, इसकी बाज़ारी क़ीमत मालूम करके किसी ग़रीब मिस्कीन को मालिक बनाकर दे देना एक रोज़े का फ़िदया है, बशर्तेकि किसी मस्जिद, मदरसे की ख़िदमत के मुआ़वज़े में न हो।

मसलाः एक रोज़े के फ़िदये को दो आदमियों में तक़सीम करना या चन्द रोज़ों के फ़िदये को एक ही शख़्स को एक तारीख़ में देना दुरुस्त नहीं, जैसा कि शामी ने बहरुर्राइक़ के हवाले से नक़ल किया है, और 'बयानुल-क़ुरआन' में इसी को नक़ल किया गया है, मगर हज़रत थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'इमदादुल-फ़तावा' में फ़तवा इस पर नक़ल किया है कि ये दोनों सूरतें जायज़ हैं। अ़ल्लामा शामी ने भी फ़तवा इसी पर नक़ल किया है, अलबत्ता इमदादुल-फ़तावा में है कि एहतियात इसमें है कि कई रोज़ों का फ़िदया एक तारीख़ में एक को न दे, लेकिन दे देने में गुंजाईश भी है। यह फ़तवा दिनाँक 16 जमादियुल-आख़िर सन् 1353 हिजरी इमदादुल-फ़तावा जिल्द दो पेज 150 में मन्क़ूल है।

मसलाः अगर किसी को फ़िदया अदा करने की भी वुस्अ़त (गुंजाईश) न हो तो वह केवल इस्तिग़फ़ार करे और दिल में नीयत रखे कि जब हो सकेगा अदा कर दूँगा। (बयानुल-क़ुरआन)

شَهْرُ رَمَضَانَ الَّذِيْٓ اُنْزِلَ فِيْهِ الْقُرْاٰنُ هُدًى لِّلنَّاسِ وَبَيِّنٰتٍ مِّنَ الْهُدٰى وَالْفُرْقَانِ ۚ فَمَنْ شَهِدَ مِنْكُمُ الشَّهْرَ فَلْيَصُمْهُ ۖ وَمَنْ كَانَ مَرِيْضًا اَوْ عَلٰى سَفَرٍ فَعِدَّةٌ مِّنْ اَيَّامٍ اُخَرَ ۗ يُرِيْدُ اللّٰهُ بِكُمُ الْيُسْرَ وَلَا يُرِيْدُ بِكُمُ الْعُسْرَ ۖ وَلِتُكْمِلُوا الْعِدَّةَ وَلِتُكَبِّرُوا اللّٰهَ عَلٰى مَا هَدٰىكُمْ وَلَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝

शह्रु र-मज़ानल्लज़ी उन्ज़ि-ल फ़ीहिल्-क़ुरआनु हुदल्-लिन्नासि व बय्यिनातिम्-मिनल्हुदा वल्फ़ुर्क़ानि फ़-मन् शहि-द मिन्कुमुश्शह्-र फ़ल्यसुम्हु, व मन् का-न मरीज़न् औ अ़ला स-फ़रिन् फ़अ़िद्दतुम् मिन्	महीना रमज़ान का है जिसमें नाज़िल हुआ क़ुरआन, हिदायत है वास्ते लोगों के और रोशन दलीलें राह पाने की और हक़ को बातिल से जुदा करने की। सो जो कोई पाये तुम में से इस महीने को तो ज़रूर रोज़े रखे इसके और जो कोई हो बीमार या मुसाफ़िर तो उसकी गिनती पूरी करनी

अय्यामिन् उ-ख़-र, युरीदुल्लाहु बिकुमुल्-युस्-र व ला युरीदु बिकुमुल्-अुस्-र व लितुक्मिलुल्-अिद्द-त व लितुकब्बिरुल्ला-ह अ़ला मा हदाकुम् व लअ़ल्लकुम् तश्कुरून (185)	चाहिए और दिनों से, अल्लाह चाहता है तुम पर आसानी और नहीं चाहता तुम पर दुश्वारी, और इस वास्ते कि तुम पूरी करो गिनती और ताकि बड़ाई करो अल्लाह की इस बात पर कि तुमको हिदायत की और ताकि तुम एहसान मानो। (185)

मज़मून का ऊपर से ताल्लुक़

ऊपर इरशाद हुआ था कि थोड़े रोज़े रख लिया करो, आगे उन थोड़े दिनों का बयान है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

रोज़े के दिनों का निर्धारण

(वो थोड़े दिन जिनमें रोज़े का हुक्म हुआ है) रमज़ान का महीना है जिसमें (ऐसी बरकत है कि इसके एक ख़ास हिस्से यानी शबे क़द्र में) क़ुरआन मजीद (लौहे-महफ़ूज़ से दुनिया वाले आसमान पर) भेजा गया है, जिसका (एक) वस्फ़ 'यानी ख़ूबी' यह है कि लोगों के लिए हिदायत (का ज़रिया) है, और (दूसरा वस्फ़ यह है कि हिदायत के तरीक़े बतलाने में उसका हर हिस्सा) वाज़ेह दलालत करने वाला है (और इन दोनों गुणों में) उन सब किताबों में जो कि (इन्हीं दो गुणों वाली हैं यानी) हिदायत (का ज़रिया भी) हैं और (स्पष्ट दलालत करने की वजह से हक़ व बातिल में) फ़ैसला करने वाली (भी) हैं। सो जो शख़्स इस महीने में मौजूद हो उसको ज़रूर इस (महीने) में रोज़ा रखना चाहिए (और वह फ़िदये की इजाज़त जो ऊपर ज़िक्र हुई थी रद्द व मौक़ूफ़ हुई), और (बीमार और मुसाफ़िर के लिये ऊपर जो क़ानून था वह अलबत्ता अब भी उसी तरह बाक़ी है कि) जो शख़्स (ऐसा) बीमार हो (जिसमें रोज़ा रखना या सफ़र करना नुक़सानदेह हो) या (शरई) सफ़र में हो तो (उसको रमज़ान में रोज़ा न रखने की इजाज़त है और बजाय रमज़ान के दिनों के) दूसरे दिनों का (उतना ही) शुमार (करके उनमें रोज़ा) रखना (उस पर वाजिब) है। अल्लाह को तुम्हारे साथ (अहकाम में) आसानी (की रियायत) करना मन्ज़ूर है (इसलिये ऐसे अहकाम मुक़र्रर किये जिन पर तुम आसानी से अ़मल कर सको। चुनाँचे सफ़र और बीमारी में कैसा आसान क़ानून मुक़र्रर कर दिया), और तुम्हारे साथ (अहकाम व क़वानीन मुक़र्रर करने में) दुश्वारी मन्ज़ूर नहीं (कि सख़्त अहकाम तजवीज़ कर देते), और (यह उक्त अहकाम हमने ख़ास-ख़ास मस्लेहतों से मुक़र्रर किये, चुनाँचे पहले तो रोज़ा अदा रखने का और किसी शरई उ़ज़्र से रह जाये तो दूसरे दिनों में क़ज़ा करने का हुक्म तो इसी लिये किया) ताकि तुम लोग (अदा या क़ज़ा के दिनों के) गिनती को पूरा कर लिया करो, (ताकि सवाब में कमी न रहे)

और (ख़ुद क़ज़ा रखने का हुक्म इसलिये किया) ताकि तुम लोग अल्लाह की बड़ाई (व तारीफ़) बयान किया करो, इस पर कि तुमको (एक ऐसा) तरीक़ा बतला दिया (जिससे तुम रमज़ान की बरकतों और फ़ायदों से मेहरूम न रहोगे, वरना अगर क़ज़ा वाजिब न होती तो कौन इतने रोज़े रखकर सवाब हासिल करता) और (उज़्र की वजह से ख़ास रमज़ान में रोज़े न रखने की इजाज़त इसलिए दे दी) ताकि तुम लोग (इस आसानी की नेमत पर अल्लाह का) शुक्र अदा किया करो (वरना अगर यह इजाज़त न होती तो सख़्त मशक़्क़त हो जाती)।

मआरिफ़ व मसाईल

इस आयत में पिछली मुख़्तसर आयत का बयान भी है और रमज़ान के महीने की आला फ़ज़ीलत का ज़िक्र भी। बयान इसलिये कि पिछली आयतों में:

اَيَّامًا مَّعْدُوْدٰتٍ

(चन्द दिन हैं गिनती के) का लफ़्ज़ ग़ैर-वाज़ेह है जिसकी शरह इस आयत ने कर दी कि वे पूरे रमज़ान के महीने के दिन हैं, और फ़ज़ीलत यह बयान की गई कि अल्लाह तआ़ला ने इस महीने को अपनी वही और आसमानी किताबें नाज़िल करने के लिये चुन कर रखा है, चुनाँचे क़ुरआन भी इसी महीने में नाज़िल हुआ। मुस्नद अहमद में हज़रत वासिला बिन अस्क़ा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के सहीफ़े (आसमान से उतरने वाली छोटी-छोटी किताबें) रमज़ान की पहली तारीख़ में नाज़िल हुए और तौरात छह रमज़ान में, इन्जील तेरह रमज़ान में और क़ुरआन चौबीस रमज़ान में नाज़िल हुआ। और हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत में यह भी है कि ज़बूर बारह रमज़ान में, इन्जील अट्ठारह रमज़ान में नाज़िल हुई। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

बयान हुई हदीस में पिछली किताबों का उतरना जिस तारीख़ में ज़िक्र किया गया है उसी तारीख़ में वे किताबें पूरी की पूरी नबियों पर नाज़िल कर दी गई हैं। क़ुरआने करीम की यह ख़ुसूसियत है कि यह रमज़ान की एक रात में पूरा का पूरा लौहे-महफ़ूज़ से दुनिया के आसमान पर नाज़िल किया गया मगर नबी पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर इसका नुज़ूल (उतरना) तेईस साल में धीरे-धीरे हुआ।

रमज़ान की वह रात जिसमें क़ुरआन नाज़िल हुआ क़ुरआन ही के ख़ुलासे के मुताबिक़ शबे क़द्र (हज़ार महीनों से अफ़ज़ल रात) थी। क़ुरआन फ़रमाता है:

اِنَّآ اَنْزَلْنٰهُ فِیْ لَیْلَةِ الْقَدْرِ

(हमने इसको शबे-क़दर में उतारा) ऊपर बयान हुई हदीस में इसको 24 रमज़ान की रात बतलाया है और हज़रत हसन रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक चौबीसवीं रात शबे-क़द्र होती है। इस तरह यह हदीस क़ुरआन की आयत के मुताबिक़ हो जाती है, और अगर यह मुताबक़त न तस्लीम की जाये तो बहरहाल क़ुरआने करीम की वज़ाहत व ख़ुलासा सब पर मुक़द्दम है जो रात भी शबे-क़द्र हो वही इसकी मुराद होगी।

مَنْ شَهِدَ مِنْكُمُ الشَّهْرَ فَلْيَصُمْهُ.

(तुम में से जो भी इस महीने यानी रमज़ान को पाये तो इसके रोज़े रखे) इस एक जुमले में रोज़े के मुताल्लिक़ बहुत से अहकाम व मसाईल की तरफ़ इशारे हैं। लफ़्ज़ 'शहि-द' शुहूद से बना है, जिसके मायने हाज़िर व मौजूद होने के हैं, और 'अश्शहर' अ़रबी लुग़त में महीने के मायने में आता है, मुराद इससे रमज़ान का महीना है, जिसका ज़िक्र ऊपर आया है। इसलिये मायने इस जुमले के यह हो गये कि तुम में से जो शख़्स रमज़ान के महीने में हाज़िर यानी मौजूद हो उस पर यह लाज़िम है कि पूरे महीने के रोज़े रखे, रोज़े के बजाय फ़िदया देने का आ़म इख़्तियार जो इससे पहली आयत में मज़कूर है इस जुमले ने उसे मन्सूख़ (ख़त्म और रद्द) करके रोज़ा ही रखना लाज़िम कर दिया है।

रमज़ान के महीने में हाज़िर व मौजूद होने का मफ़्हूम यही है कि वह रमज़ान के महीने को ऐसी हालत में पाये कि उसमें रोज़े रखने की सलाहियत मौजूद हो, यानी मुसलमान, आ़क़िल, बालिग़, मुक़ीम, हैज़ व निफ़ास (माहवारी और बच्चे की पैदाईश के बाद आने वाले ख़ून) से पाक हो।

इसी लिये जिस शख़्स का पूरा रमज़ान ऐसी हालत में गुज़र गया कि उसमें रोज़ा रखने की बिल्कुल सलाहियत (योग्यता) ही नहीं जैसे काफ़िर, नाबालिग़, मजनूँ तो ये लोग इस हुक्म के मुख़ातब नहीं इसलिये इन पर पहले गुज़रे रमज़ान के रोज़े फ़र्ज़ ही नहीं हुए, और जिनमें सलाहियत ज़ाती तौर पर मौजूद है मगर किसी वक़्ती उज़्र (अस्थायी मजबूरी) की वजह से मजबूर हो गये जैसे हैज़ व निफ़ास वाली (माहवारी और बच्चे की पैदाईश के बाद आने वाले ख़ून वाली) औ़रत या मरीज़ और मुसाफ़िर, तो उन्होंने एक हैसियत से रमज़ान का महीना सलाहियत की हालत में पा लिया, इसलिये हुक्म आयत का उनके हक़ में साबित हो गया, मगर वक़्ती उज़्र के सबब उस वक़्त रोज़ा माफ़ है, अलबत्ता बाद में क़ज़ा लाज़िम है, जैसा कि इसके बाद तफ़सील आयेगी।

मसलाः इस आयत से मालूम हुआ कि रमज़ान के रोज़े फ़र्ज़ होने के लिये रमज़ान के महीने का सलाहियत की हालत में पा लेना शर्त है, इसलिये जिसने पूरा रमज़ान पा लिया उस पर पूरे रमज़ान के रोज़े फ़र्ज़ हो गये, जिसने कुछ कम पाया उस पर उतने ही दिन के रोज़े फ़र्ज़ हुए जितने दिन रमज़ान के पाये, इसलिये रमज़ान के बीच में जो काफ़िर मुसलमान हुआ या नाबालिग़ बालिग़ हुआ उस पर सिर्फ़ आगे के रोज़े लाज़िम होंगे रमज़ान के पहले गुज़रे दिनों की क़ज़ा लाज़िम न होगी। अलबत्ता मजनूँ मुसलमान और बालिग़ होने के एतिबार से ज़ाती सलाहियत रखता है वह अगर रमज़ान के किसी हिस्से में होश में आ जाये तो रमज़ान के पहले गुज़रे दिनों की क़ज़ा भी उस पर लाज़िम हो जायेगी, इसी तरह हैज़ व निफ़ास वाली औ़रत रमज़ान के बीच में पाक हो जाये या मरीज़ तन्दुरुस्त हो जाये या मुसाफ़िर मुक़ीम हो जाये तो गुज़रे दिनों की क़ज़ा लाज़िम होगी।

मसलाः रमज़ान के महीने का पा लेना शरई एतिबार से तीन तरीक़ों से साबित होता है- एक यह कि ख़ुद रमज़ान का चाँद देख ले, दूसरे यह कि किसी मोतबर गवाही से चाँद देखना साबित हो जाये, और जब ये दोनों सूरतें न पाई जायें तो शाबान के तीस दिन पूरे करने के बाद रमज़ान का महीना शुरू हो जायेगा।

मसलाः शाबान (इस्लामी कैलेंडर के आठवें महीने) की उन्तीसवीं तारीख़ की शाम को अगर बादल वग़ैरह के सबब चाँद नज़र न आये और कोई शरई शहादत भी चाँद देखने की न पहुँचे तो अगला दिन 'यौमे-शक' (शक का दिन) कहलाता है, क्योंकि उसमें यह भी शुब्हा है कि वास्तव में

चाँद हो गया हो मगर मौसम साफ़ न होने की वजह से नज़र न आया हो, और यह भी मुम्किन है कि आज चाँद ही अपनी दिखाई देने की जगह पर न आया हो। उस दिन में चूँकि रमज़ान का पा लेना सादिक़ नहीं आता इसलिये उस दिन का रोज़ा रखना वाजिब नहीं बल्कि मक्रूह है, हदीस में इसकी मनाही आई है ताकि फ़र्ज़ और नफ़्ल में धोखा और गड्-मड् होना न पैदा हो जाये। (जस्सास)

मसलाः जिन देशों में रात दिन कई-कई महीनों के लम्बे होते हैं वहाँ रमज़ान का पा लेना बज़ाहिर सादिक़ नहीं होता, इसका तक़ाज़ा यह है कि उन पर रोज़े फ़र्ज़ ही न हों। हनफ़ी फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) में से 'हलवानी' और 'क़बाली' वग़ैरह ने नमाज़ के मुताल्लिक़ तो इसी पर फ़तवा दिया है कि उन लोगों पर अपने ही दिन रात के एतिबार से नमाज़ का हुक्म लागू होगा, जैसे जिस मुल्क में मग़रिब के फ़ौरन बाद सुबह सादिक़ हो जाती है वहाँ इशा की नमाज़ फ़र्ज़ ही नहीं। (फ़तावा शामी) इसका तक़ाज़ा यह है कि जहाँ छह महीने का दिन है वहाँ छह महीने में सिर्फ़ पाँच नमाज़ें होंगी और रमज़ान वहाँ आयेगा ही नहीं, इसलिये रोज़े भी फ़र्ज़ न होंगे। हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना अशरफ़ अली थानवी रहमतुल्लाहि अलैहि ने इमदादुल-फ़तावा में रोज़े के बारे में इसी क़ौल को इख़्तियार फ़रमाया है।

مَنْ كَانَ مِنْكُمْ مَّرِيْضًا اَوْ عَلٰى سَفَرٍ فَعِدَّةٌ مِّنْ اَيَّامٍ اُخَرَ

इसमें बीमार और मुसाफ़िर को छूट दी गई है कि वे उस वक़्त रोज़ा न रखें, तन्दुरुस्त होने पर और सफ़र के ख़त्म होने पर उतने दिनों की क़ज़ा कर लें। यह हुक्म अगरचे पिछली आयत में भी आ चुका था मगर जब इस आयत में रोज़े के बजाय फ़िदया देने का इख़्तियार मन्सूख़ (निरस्त और ख़त्म) किया गया है तो यह शुब्हा हो सकता था कि शायद मरीज़ और मुसाफ़िर की छूट भी रद्द हो गई हो, इसलिये दोबारा इसको दोहरा दिया गया।

وَاِذَا سَاَلَكَ عِبَادِیْ عَنِّیْ فَاِنِّیْ قَرِیْبٌ ؕ اُجِیْبُ دَعْوَةَ الدَّاعِ اِذَا دَعَانِ ۙ فَلْیَسْتَجِیْبُوْا لِیْ وَلْیُؤْمِنُوْا بِیْ لَعَلَّهُمْ یَرْشُدُوْنَ ۝

व इज़ा स-अ-ल-क अिबादी अ़न्नी फ़-इन्नी क़रीबुन्, उजीबु दअ़्-वतद्-दाअ़ि इज़ा दआ़नि फ़ल्यस्तजीबू ली वल्युअ्मिनू बी लअ़ल्लहुम् यर्शुदून (186)	और जब तुझसे पूछें मेरे बन्दे मुझको सो मैं तो क़रीब हूँ। क़ुबूल करता हूँ दुआ़ माँगने वाले की दुआ़ को, जब मुझसे दुआ़ माँगे तो चाहिए कि वे हुक्म मानें मेरा और यक़ीन लायें मुझ पर ताकि नेक राह पर आयें। (186)

इन आयतों का पिछली आयतों के मज़मून से ताल्लुक़

पिछली तीन आयतों में रोज़े और रमज़ान के अहकाम और फ़ज़ाईल का ज़िक्र था, और इसके

बाद भी एक लम्बी आयत में रोज़े और एतिकाफ़ के अहकाम की तफ़सील है, बीच की इस मुख़्तसर आयत में बन्दों के हाल पर हक़ तआ़ला की ख़ास इनायत, उनकी दुआ़यें सुनने और क़ुबूल करने का ज़िक्र फ़रमाकर अहकाम के पालन की तरग़ीब दी गई है। क्योंकि रोज़े की इबादत में आसानियों और सहूलतों के बावजूद किसी क़द्र मशक़्क़त है, उसको आसान करने के लिये अपनी मख़्सूस इनायत का ज़िक्र फ़रमाया कि मैं अपने बन्दों से क़रीब ही हूँ, जब भी वे दुआ़ माँगते हैं मैं उनकी दुआ़यें क़ुबूल करता हूँ और उनकी हर हाजत (ज़रूरत व आवश्यकता) को पूरा कर देता हूँ।

इन हालात में बन्दों को भी चाहिये कि मेरे अहकाम की तामील (पालन) में कुछ मशक़्क़त भी हो तो बरदाश्त करें। और इमाम इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इस दुआ़ की तरफ़ तवज्जोह दिलाने वाले बीच के जुमले की यह हिक्मत बतलाई है कि इस आयत ने इशारा कर दिया कि रोज़े के बाद दुआ़ क़ुबूल होती है, इसलिये दुआ़ का ख़ास एहतिमाम (पाबन्दी) करना चाहिये। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

لِلصَّآئِمِ عِنْدَ فِطْرِهٖ دَعْوَةٌ مُّسْتَجَابَةٌ. (ابوداؤد طیالسی بروایة عبد الله بن عمرؓ)

"यानी रोज़ा इफ़्तार करने के वक़्त रोज़ेदार की दुआ़ मक़बूल है।"

इसी लिये हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु इफ़्तार के वक़्त सब घर वालों को जमा करके दुआ़ किया करते थे। तफ़सीर आयत की यह है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) जब आप से मेरे बन्दे मेरे बारे में मालूम करें (कि मैं उनसे क़रीब हूँ या दूर) तो (आप मेरी तरफ़ से उनको फ़रमा दीजिए कि) मैं क़रीब ही हूँ, (और नामुनासिब दरख़्वास्त को छोड़कर) मन्ज़ूर कर लेता हूँ (हर) अ़र्ज़ी दरख़्वास्त करने वाले की, जबकि वह मेरे दरबार में दरख़्वास्त दे। सो (जिस तरह मैं उनकी दरख़्वास्त और माँगने को मन्ज़ूर कर लेता हूँ) उनको चाहिए कि मेरे अहकाम को (उन पर अ़मल करने के साथ) क़ुबूल किया करें (और चूँकि उन अहकाम में कोई हुक्म नामुनासिब नहीं इसलिये उसमें से कुछ अलग निकालना मुम्किन नहीं) और मुझ पर यक़ीन रखें (यानी मेरी हस्ती पर भी, मेरे हाकिम होने पर भी, मेरे हकीम होने पर और रियायत व मस्लेहतों पर भी, इस तरह) उम्मीद है कि वे लोग हिदायत (व कामयाबी) हासिल कर सकेंगे।

मसलाः इस आयत में 'इन्नी क़रीब' (मैं क़रीब ही हूँ) फ़रमाकर इस तरफ़ इशारा कर दिया कि दुआ़ आहिस्ता और ख़ुफ़िया करनी चाहिये, दुआ़ में आवाज़ बुलन्द करना पसन्द नहीं। इमाम इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने आयत का शाने नुज़ूल (उतरने का मौक़ा) यही ज़िक्र किया है कि किसी गाँव वाले ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सवाल किया कि हमारा रब अगर हमसे क़रीब है तो हम दुआ़ आहिस्ता आवाज़ से माँगा करें और दूर हो तो बुलन्द आवाज़ से पुकारा करें, इस पर यह आयत नाज़िल हुई।

أُحِلَّ لَكُمْ لَيْلَةَ الصِّيَامِ الرَّفَثُ إِلَىٰ نِسَائِكُمْ ۚ هُنَّ لِبَاسٌ لَّكُمْ وَأَنتُمْ لِبَاسٌ لَّهُنَّ ۗ عَلِمَ اللَّهُ أَنَّكُمْ كُنتُمْ تَخْتَانُونَ أَنفُسَكُمْ فَتَابَ عَلَيْكُمْ وَعَفَا عَنكُمْ ۖ فَالْآنَ بَاشِرُوهُنَّ وَابْتَغُوا مَا كَتَبَ اللَّهُ لَكُمْ ۚ وَكُلُوا وَاشْرَبُوا حَتَّىٰ يَتَبَيَّنَ لَكُمُ الْخَيْطُ الْأَبْيَضُ مِنَ الْخَيْطِ الْأَسْوَدِ مِنَ الْفَجْرِ ۖ ثُمَّ أَتِمُّوا الصِّيَامَ إِلَى اللَّيْلِ ۚ وَلَا تُبَاشِرُوهُنَّ وَأَنتُمْ عَاكِفُونَ فِي الْمَسَاجِدِ ۗ تِلْكَ حُدُودُ اللَّهِ فَلَا تَقْرَبُوهَا ۗ كَذَٰلِكَ يُبَيِّنُ اللَّهُ آيَاتِهِ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَّقُونَ ۝

उहिल्-ल लकुम् लै-लतस्सियामिर्--र-फ़सु इला निसा-इकुम, हुन्-न लिबासुल्लकुम् व अन्तुम् लिबासुल्-लहुन्-न, अ़लिमल्लाहु अन्नकुम् कुन्तुम् तख़्तानू-न अन्फ़ु-सकुम् फ़ता-ब अ़लैकुम् व अ़फ़ा अ़न्कुम् फ़ल्आ-न बाशिरूहुन्-न वब्तग़ू मा क-तबल्लाहु लकुम् व कुलू वश्रबू हत्ता य-तबय्य-न लकुमुल्-ख़ैतुल्-अब्यज़ु मिनल्-ख़ैतिल्-अस्वदि मिनल्-फ़ज्रि सुम्-म अतिम्मुस्सिया-म इलल्लैलि व ला तुबाशिरूहुन्-न व अन्तुम् आ़किफ़ू-न फ़िल्-मसाजिदि, तिल्-क हुदूदुल्लाहि फ़ला तक़्रबूहा, कज़ालि-क युबय्यिनुल्लाहु आयातिही लिन्नासि लअ़ल्लहुम् यत्तक़ून (187)

हलाल हुआ तुमको रोज़े की रात में बेपर्दा होना अपनी औरतों से, वे पोशाक हैं तुम्हारी और तुम पोशाक हो उनकी, अल्लाह को मालूम है कि तुम ख़ियानत करते थे अपनी जानों से, सो माफ़ किया तुमको और दरगुज़र की तुम से, फिर मिलो अपनी औरतों से और तलब करो उसको जो लिख दिया है अल्लाह ने तुम्हारे लिये, और खाओ और पियो जब तक कि साफ़ नज़र आये तुमको धारी सुबह की अलग काली धारी से, फिर पूरा करो रोज़े को रात तक, और न मिलो औरतों से जब तक कि तुम एतिकाफ़ करो मस्जिदों में, ये हदें (सीमायें) बाँधी हुई हैं अल्लाह की, सो इनके नज़दीक न जाओ। इसी तरह बयान फ़रमाता है अल्लाह अपनी आयतें लोगों के वास्ते ताकि वे बचते रहें। (187)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 4- रमज़ान की रातों में सोहबत

इस आयत में रोज़े के बाक़ी अहकाम की कुछ तफ़सीर बयान हुई है। तुम लोगों के लिए रोज़े की रात में अपनी बीवियों से मशग़ूल होना (यानी हमबिस्तरी करना) हलाल कर दिया गया (और पहले जो इससे मनाही थी वह ख़त्म कर दी गई) क्योंकि (पास रहने और निकटता की वजह से) वे तुम्हारा ओढ़ना-बिछौना (बनी हुई) हैं, और तुम उनका ओढ़ना-बिछौना (बने हुए) हो। ख़ुदा तआ़ला का इसकी ख़बर थी कि तुम (अल्लाह के इस हुक्म में) ख़ियानत (कर) के गुनाह में अपने को मुब्तला कर रहे थे (मगर) ख़ैर (जब तुम माज़िरत से पेश आये तो) अल्लाह तआ़ला ने तुम पर इनायत फ़रमाई और तुमसे गुनाह को धो दिया। सो (जब इजाज़त हो गई तो) अब उनसे मिलो-मिलाओ, और जो (इजाज़त का क़ानून) अल्लाह तआ़ला ने तुम्हारे लिए तय कर दिया है (बिना तकल्लुफ़ के) उसका सामान करो, और (जिस तरह रमज़ान की रात में बीवी से हमबिस्तरी की इजाज़त है इसी तरह यह भी इजाज़त है कि तमाम रात में जब चाहो) खाओ (भी) और पियो (भी) उस वक़्त तक कि तुमको सफ़ेद ख़त (यानी सुबह सादिक़ का नूर) अलग मालूम हो जाए काले ख़त (यानी रात की अंधेरी) से, फिर (सुबह सादिक़ से) रात (आने) तक रोज़ा पूरा किया करो।

सुबह की सफ़ेदी का सफ़ेद ख़त रात की अंधेरी के काले ख़त से फ़र्क़ हो जाने से मुराद यह है कि सुबह सादिक़ यक़ीनी तौर पर साबित हो जाये।

हुक्म 5- एतिकाफ़

और उन बीवियों (के बदन) से अपना बदन भी (जिन्सी इच्छा के साथ) मत मिलने दो जिस ज़माने में कि तुम लोग एतिकाफ़ वाले हो (जो कि) मस्जिदों में (हुआ करता है), ये (सब उक्त अहकाम) ख़ुदाई क़ानून हैं, सो इन (क़ानूनों और नियमों) से (निकलना तो कैसा) निकलने के नज़दीक भी मत होना (और जिस तरह अल्लाह तआ़ला ने ये अहकाम बयान किये हैं) इसी तरह अल्लाह तआ़ला अपने (और) अहकाम (भी) लोगों (की भलाई और सुधार) के वास्ते बयान फ़रमाते हैं, इस उम्मीद पर कि वे लोग (अहकाम से बाख़बर होकर उन अहकाम के ख़िलाफ़ करने से) परहेज़ रखें।

मआ़रिफ़ व मसाईल

'उहिल्-ल लकुम' (हलाल कर दिया गया) के लफ़्ज़ से मालूम हुआ कि जो चीज़ इस आयत के ज़रिये हलाल की गई है वह इससे पहले हराम थी। सही बुख़ारी वग़ैरह में हज़रत बरा बिन आ़ज़िब रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत मज़कूर है कि शुरू में जब रमज़ान के रोज़े फ़र्ज़ किये गये तो इफ़्तार के बाद खाने-पीने और बीवियों के साथ मिलने-जुलने की सिर्फ़ उस वक़्त तक इजाज़त थी जब तक सो न जाये, सो जाने के बाद ये सब चीज़ें हराम हो जाती थीं। कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को इसमें मुश्किलें पेश आईं। क़ैस बिन सरमा अन्सारी सहाबी दिन भर मज़दूरी करके इफ़्तार के वक़्त घर

पहुँचे तो घर में खाने के लिये कुछ न था, बीवी ने कहा कि मैं कहीं से कुछ इन्तिज़ाम करके लाती हूँ। जब वह वापस आई तो दिन भर की थकान की वजह से इनकी आँख लग गई, अब नींद से जागे तो खाना हराम हो चुका था, अगले दिन इसी तरह रोज़ा रखा, दोपहर को कमज़ोरी की वजह से बेहोश हो गये। (इब्ने कसीर)

इसी तरह कुछ और सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम सोने के बाद अपनी बीवियों के साथ मिलने (यानी सोहबत करने) में मुब्तला होकर परेशान हुए। इन वाक़िआत के बाद यह आयत नाज़िल हुई जिसमें पहला हुक्म मन्सूख़ (रद्द) करके सूरज डूबने के बाद से सुबह सादिक़ होने तक पूरी रात में खाने-पीने और सोहबत करने की इजाज़त दे दी गई चाहे सोकर उठने के बाद हो, बल्कि सोकर उठने के बाद रात के आख़िरी हिस्से में सेहरी खाना सुन्नत क़रार दिया गया, जिसका ज़िक्र हदीस की रिवायतों में स्पष्ट है। इस आयत में इसी हुक्म का बयान किया गया है।

'र-फ़सुन' के लफ़्ज़ी मायने अगरचे आ़म हैं, एक मर्द अपनी बीवी से अपनी इच्छा पूरी करने के लिये जो कुछ करता या कहता है वह सब इसमें शामिल है, लेकिन उम्मत के इत्तिफ़ाक़ (सहमति) से इस जगह इससे मुराद हमबिस्तरी (संभोग करना) है।

शरई अहकाम के साबित होने के लिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का क़ौल भी क़ुरआन के हुक्म में है

इस आयत ने जिस हुक्म को मन्सूख़ किया है यानी सो जाने के बाद खाने-पीने वग़ैरह के हराम होने को, यह हुक्म क़ुरआन में कहीं मज़कूर नहीं, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीम से सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम इस हुक्म पर अ़मल करते थे (जैसा कि इमाम अहमद ने अपनी मुस्नद में इसको ज़िक्र किया है)। इसी को इस आयत ने अल्लाह का हुक्म क़रार देकर मन्सूख़ (रद्द) किया है।

इस आयत में पहले हुक्म को अल्लाह का हुक्म क़रार दिया गया और फिर आसानी के लिये उसको मन्सूख़ किया (ख़त्म किया या बदला) गया, इससे यह भी मालूम हो गया कि सुन्नत (हदीस) से साबित शुदा कुछ अहकाम को क़ुरआन के ज़रिये भी मन्सूख़ किया जा सकता है। (जस्सास वग़ैरह)

सेहरी खाने का आख़िरी वक़्त

حَتّٰى يَتَبَيَّنَ لَكُمُ الْخَيْطُ الْاَبْيَضُ مِنَ الْخَيْطِ الْاَسْوَدِ.

(यहाँ तक कि सफ़ेद ख़त काले ख़त से अलग वाज़ेह होने लगे) इस आयत में रात की अंधेरी को काला ख़त और सुबह की रोशनी को सफ़ेद ख़त की मिसाल से बतलाकर रोज़ा शुरू होने और खाना पीना हराम हो जाने का सही वक़्त मुतैयन फ़रमा दिया, और इसमें कमी-ज़्यादती (हद से बढ़ने या असल हुक्म को पूरा न करने) के एहतिमाल (शुब्हात) को ख़त्म करने के लिये 'हत्ता य-तबय्य-न' (स्पष्ट तौर पर ज़ाहिर हो जाये) का लफ़्ज़ बढ़ा दिया, जिसमें यह बतलाया गया है कि न तो वहमी मिज़ाज के लोगों की तरह सुबह सादिक़ से कुछ पहले ही खाने पीने वग़ैरह को हराम समझो और न

ऐसी बेफ़िक्री इख़्तियार करो कि सुबह की रोशनी का यक़ीन हो जाने के बावजूद खाते पीते रहो, बल्कि खाने पीने और रोज़े के बीच फ़ासला करने वाली हद सुबह सादिक़ का यक़ीनी इल्म हो जाना है, उस यक़ीन और इल्म से पहले खाने पीने को हराम समझना दुरुस्त नहीं, और यक़ीन हो जाने के बाद खाने पीने में मश़गूल रहना भी हराम और रोज़े को ख़राब करने वाला है, अगरचे एक ही मिनट के लिये हो। सेहरी खाने में वुस्अ़त और गुंजाईश सिर्फ़ उसी वक़्त तक है जब तक सुबह सादिक़ का यक़ीन न हो। कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के ऐसे वाक़िआ़त को कुछ कहने वालों ने इस तरह बयान किया कि सेहरी खाते हुए सुबह हो गई और वे बेपरवाई से खाते रहे, यह इस पर मब्नी (आधारित) था कि सुबह का यक़ीन नहीं हुआ था, इसलिये कहने वालों की जल्द बाज़ी से मुतास्सिर नहीं हुए।

एक हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि हज़रत बिलाल रज़ियल्लाहु अ़न्हु की अज़ान तुम्हें सेहरी खाने से रोक देने वाली न होनी चाहिये क्योंकि वह रात से अज़ान दे देते हैं, इसलिये तुम बिलाल की अज़ान सुनकर भी उस वक़्त तक खाते पीते रहो जब तक इब्ने उम्मे मक्तूम की अज़ान न सुनो, क्योंकि वह ठीक सुबह सादिक़ होने पर अज़ान देते हैं।

(बुख़ारी व मुस्लिम)

इस हदीस के नामुकम्मल नक़ल करने से मौजूदा दौर के कुछ हज़रात को यह ग़लत-फ़हमी पैदा हो गई कि फ़ज्र की अज़ान के बाद भी कुछ देर खाया पिया जाये तो हर्ज नहीं, और जिस शख़्स की आँख देर में खुली कि सुबह की अज़ान हो रही थी उसके लिये जायज़ कर दिया कि वह जल्दी-जल्दी कुछ खा ले, हालाँकि इसी हदीस में स्पष्ट तौर पर बतला दिया गया है कि हज़रत इब्ने उम्मे मक्तूम रज़ियल्लाहु अ़न्हु की अज़ान जो ठीक सुबह सादिक़ तुलू होने के साथ होती थी उस पर खाने से रुक जाना ज़रूरी था, इसके अ़लावा क़ुरआने करीम ने ख़ुद जो हद-बन्दी फ़रमा दी है वह सुबह सादिक़ के निकलने का यक़ीन हो जाना है, उसके बाद एक मिनट के लिये भी खाने पीने की इजाज़त देना क़ुरआनी नस (हुक्म) की ख़िलाफ़वर्ज़ी है। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम और उम्मत के बुज़ुर्गों से जो इफ़्तार व सेहरी में आसानी की रिवायतें मन्क़ूल हैं उन सब का मतलब क़ुरआनी नस के मुताबिक़ यही हो सकता है कि सुबह सादिक़ के निकलने का यक़ीन होने से पहले-पहले ज़्यादा एहतियाती तंगी इख़्तियार न की जाये। इमाम इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने भी उन रिवायतों को इसी बात पर महमूल फ़रमाया है, वरना क़ुरआनी नस (हुक्म और दलील) की खुली मुख़ालफ़त को कौन मुसलमान बरदाश्त कर सकता है, और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से तो इसका तसव्वुर भी नहीं किया जा सकता, ख़ुसूसन जबकि क़ुरआने करीम ने इसी आयत के आख़िर में 'ये अल्लाह की हदें हैं' के साथ 'तो इनके क़रीब भी न जाओ' फ़रमाकर ख़ास एहतियात की ताकीद भी फ़रमा दी है।

मसलाः यह सब कलाम उन लोगों के बारे में है जो ऐसे मक़ाम पर हैं जहाँ से सुबह सादिक़ को ख़ुद अपनी आँख से देखकर यक़ीन हासिल कर सकते हैं, और आसमान भी साफ़ है और वे सुबह सादिक़ की प्रारंभिक रोशनी की पहचान भी रखते हैं तो उनको लाज़िम है कि डायरेक्ट उफ़ुक़ (आसमानी किनारे) को देखकर अ़मल करें, और जहाँ यह सूरत न हो जैसे खुला हुआ उफ़ुक़ सामने नहीं या मौसम साफ़ नहीं या उसको सुबह सादिक़ की पहचान नहीं इसलिये वे दूसरी निशानियों और

पहचानों या रियाज़ी व हिसाबात के ज़रिये वक़्त का निर्धारण करते हैं, ज़ाहिर है कि उनके लिये कुछ वक़्त ऐसा आयेगा कि सुबह सादिक़ का हो जाना संदिग्ध हो, यक़ीनी न हो। ऐसे लोगों को शक की हालत में क्या करना चाहिये, इसके बारे में इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'अहकामुल-क़ुरआन' में फ़रमाया कि इस हालत में असल तो यही है कि खाने पीने पर क़दम न बढ़ाये लेकिन शक की हालत में सुबह सादिक़ का यक़ीन होने से पहले-पहले किसी ने कुछ खा-पी लिया तो गुनाहगार नहीं होगा, लेकिन अगर बाद में तहक़ीक़ से यह साबित हो गया कि उस वक़्त सुबह हो चुकी थी तो क़ज़ा उसके ज़िम्मे लाज़िम है। जैसे शुरू रमज़ान में चाँद नज़र न आया और लोगों ने रोज़ा नहीं रखा, मगर बाद में शहादत (गवाही) से 29 का चाँद हो गया तो जिन लोगों ने उस दिन को शाबान की तीसवीं तारीख़ समझकर रोज़ा नहीं रखा था, वे गुनाहगार तो नहीं हुए मगर उस रोज़े की क़ज़ा उन पर सब के नज़दीक लाज़िम है। इसी तरह बादल के दिन में सूरज डूब जाने के गुमान पर रोज़ा इफ़्तार कर लिया, बाद में सूरज निकल आया तो यह शख़्स गुनाहगार तो नहीं मगर क़ज़ा इस पर वाजिब है।

इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि के इस बयान से यह बात वाज़ेह हो गई कि जिस शख़्स की आँख देर में खुली और आ़म तौर पर सुबह की अज़ान हुई थी जिससे सुबह होने का यक़ीन लाज़िमी है, वह जान-बूझकर उस वक़्त कुछ खायेगा तो वह गुनाहगार भी होगा और क़ज़ा भी उस पर लाज़िम होगी, और शक की (संदिग्ध) हालत में खायेगा तो गुनाह तो न होगा मगर क़ज़ा ख़त्म न होगी, और किसी न किसी दर्जे में कराहत भी होगी।

एतिकाफ़ और उसके मसाईल

एतिकाफ़ के लुग़वी मायने किसी जगह ठहरने के हैं और क़ुरआन व सुन्नत की इस्तिलाह में ख़ास शर्तों के साथ मस्जिद में ठहरने और क़ियाम करने का नाम एतिकाफ़ है। लफ़्ज़ 'फ़िल्मसाजिदि' के आ़म होने से साबित हुआ कि एतिकाफ़ हर मस्जिद में हो सकता है। हज़राते फ़ुक़हा ने जो यह शर्त बयान की है कि एतिकाफ़ सिर्फ़ उस मस्जिद में हो सकता है जिसमें जमाअ़त होती हो, ग़ैर-आबाद (मस्जिद जहाँ जमाअ़त न होती हो उसमें एतिकाफ़ दुरुस्त नहीं, यह शर्त दर हक़ीक़त मस्जिद के मफ़्हूम ही से ली गयी है, क्योंकि मसाजिद के बनाने का असल मक़सद जमाअ़त की नमाज़ है, वरना तन्हा नमाज़ तो हर जगह दुकान व मकान वग़ैरह में हो सकती है।

मसलाः रोज़े की रात में खाना-पीना, बीवी से सोहबत करना सब का हलाल होना ऊपर बयान हुआ है। एतिकाफ़ की हालत में खाने-पीने का तो वही हुक्म है जो सब के लिये है मगर औ़रतों के साथ सोहबत के मामले में अलग है, कि वह रात में भी जायज़ नहीं, इसलिये इस आयत में इसी का हुक्म बताया गया है।

मसलाः एतिकाफ़ के दूसरे मसाईल कि उसके साथ रोज़ा शर्त है और यह कि एतिकाफ़ में मस्जिद से निकलना बग़ैर तबई या शरई हाजत के जायज़ नहीं, कुछ इसी लफ़्ज़ 'एतिकाफ़' से समझे गये हैं कुछ रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के क़ौल व फ़ेल से।

रोज़े के मामले में एहतियात का हुक्म

आयत के आख़िर में 'तिल्-क हुदूदुल्लाहि फ़-ला तक़्रबूहा' (ये अल्लाह की हदें हैं सो तुम इनके क़रीब भी न जाओ) फ़रमाकर इशारा कर दिया कि रोज़े में खाने पीने और हमबिस्तरी की जो मनाही है ये अल्लाह की हदें (क़ानूनी सीमायें) हैं इनके क़रीब भी मत जाओ, क्योंकि क़रीब जाने से हद (क़ानून) के तोड़ने का डर है, इसी लिये रोज़े ही हालत में कुल्ली करने में मुबालग़ा करना (यानी एक हद से आगे बढ़ना) मक्रूह है, जिससे पानी अन्दर जाने का ख़तरा हो। मुँह के अन्दर कोई दवा इस्तेमाल करना मक्रूह है, बीवी को चूमना या गले लगाना मक्रूह है, इसी तरह सेहरी खाने में एहतियात के तौर पर वक़्त ख़त्म होने से दो-चार मिनट पहले ख़त्म करना और इफ़्तार में दो-तीन मिनट देरी करना बेहतर है, इसमें बेपरवाही और आसानी ढूँढना अल्लाह तआ़ला के इस इरशाद के ख़िलाफ़ है।

وَلَا تَأْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ وَتُدْلُوْا بِهَآ اِلَى
الْحُكَّامِ لِتَأْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ النَّاسِ بِالْاِثْمِ وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝

व ला तअ्कुलू अम्वा-लकुम् बैनकुम् बिल्-बातिलि व तुद्लू बिहा इलल्-हुक्कामि लितअ्कुलू फ़रीक़म् मिन् अमवालिन्नासि बिल्इस्मि व अन्तुम् तअ़्लमून (188) ✿	और न खाओ माल एक दूसरे का आपस में नाहक़, और न पहुँचाओ उनको हाकिमों तक कि खा जाओ कोई हिस्सा लोगों के माल में से ज़ुल्म करके (नाहक़) और तुमको मालूम है। (188) ✿

इन आयतों के मज़मून का पिछली आयतों से ताल्लुक़

पिछली आयतों में रोज़े के अहकाम बयान हुए थे, जिसमें हलाल चीज़ों के इस्तेमाल को एक निर्धारित ज़माने में और निर्धारित समय में हराम कर दिया गया है। इसके बाद हराम माल हासिल करने और उसके इस्तेमाल करने की मनाही इसी मुनासबत से ज़िक्र की गई कि रोज़े की इबादत का असल मंशा यही है कि इनसान कुछ समय तक हलाल चीज़ों से भी सब्र (रुकने) का आ़दी हो जायेगा तो हराम चीज़ों से बचना आसान हो जायेगा, तथा यह मुनासबत भी है कि जब रोज़ा ख़त्म हो इफ़्तार के लिये हलाल माल मुहैया करना चाहिये, जिसने दिन भर रोज़ा रखा और शाम को हराम माल से इफ़्तार किया उसका रोज़ा अल्लाह तआ़ला के नज़दीक क़ुबूल नहीं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 6- हराम माल से बचना

और आपस में एक-दूसरे के माल नाहक़ (तौर पर) मत खाओ, और उन (के झूठे मुक़द्दमे) को हाकिमों के यहाँ इस ग़र्ज़ से रुजू मत करो कि (उसके ज़रिये से) लोगों के मालों का एक हिस्सा गुनाह के तरीक़े पर (यानी ज़ुल्म से) खा जाओ, जबकि तुमको (अपने झूठ और ज़ुल्म का) इल्म भी हो।

मआरिफ़ व मसाईल

इस आयत में हराम तरीक़ों से माल हासिल करने और इस्तेमाल करने की मनाही है, जिस तरह इससे पहले इसी सूरः ब-क़रह की आयत नम्बर 168 में हलाल तरीक़े पर हासिल करने और इस्तेमाल करने की इजाज़त का बयान गुज़र चुका है, जिसमें इरशाद है:

يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ كُلُوْا مِمَّا فِی الْاَرْضِ حَلٰلًا طَيِّبًا وَّلَا تَتَّبِعُوْا خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ۔ اِنَّهٗ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ۝

"यानी ऐ लोगो! खाओ ज़मीन की चीज़ों में से जो चीज़ें हलाल और सुथरी हैं और शैतान के क़दम पर न चलो क्योंकि वह तुम्हारा खुला दुश्मन है।"

और सूरः नहल की आयत 114 में इरशाद फ़रमायाः

فَكُلُوْا مِمَّا رَزَقَكُمُ اللّٰهُ حَلٰلًا طَيِّبًا وَّاشْكُرُوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ اِيَّاهُ تَعْبُدُوْنَ۝

"यानी खाओ जो रोज़ी दी तुमको अल्लाह तआला ने हलाल और पाक और शुक्र करो अल्लाह के एहसान का अगर तुम उसी की इबादत करते हो।"

माल कमाने के अच्छे-बुरे साधन और अच्छाई-बुराई का मेयार

जिस तरह माल की ज़रूरत और उस पर ज़िन्दगी का मदार होने पर सारी दुनिया और हर क़ौम व मिल्लत का इत्तिफ़ाक़ है इसी तरह इस पर भी इत्तिफ़ाक़ (सहमति) है कि उसके हासिल करने के कुछ साधन और तरीक़े पसन्दीदा और जायज़ हैं, कुछ ना-पसन्द और वर्जित हैं। जैसे चोरी, डाके, धोखे, फ़रेब को सारी ही दुनिया बुरा समझती है, लेकिन उन साधनों के जायज़ या नाजायज़ होने का कोई सही मेयार (मानक) आ़म तौर पर लोगों के हाथ में नहीं, और हो भी नहीं सकता क्योंकि इसका ताल्लुक़ पूरी दुनिया के इनसानों की बेहतरी और कामयाबी से है, और पूरी इनसानी दुनिया इससे प्रभावित होती है। इसका सही और माक़ूल मेयार सिर्फ़ वही हो सकता है जो रब्बुल-आ़लमीन की तरफ़ से वही के द्वारा भेजा गया हो, वरना अगर ख़ुद इनसान इसका मेयार बनाने का मुख़्तार हो तो जो लोग इसका क़ानून बनायेंगे वे अपनी क़ौम या अपने वतन या अपनी मिल्लत (सम्प्रदाय) के बारे में जो कुछ सोचेंगे वह आ़म आ़दत के मुताबिक़ उससे मुख़्तलिफ़ होगा जो दूसरी क़ौमें और वतनों के मुताल्लिक़ सोचा जायेगा, और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की सूरत में पूरी दुनिया का प्रतिनिधित्व किया जाये तो तजुर्बा गवाह है कि वह भी सारी मख़्लूक़ को सन्तुष्ट करने का ज़रिया नहीं बन सकता जिसका नतीजा यह है कि यह क़ानूनी अन्याय परिणाम स्वरूप लड़ाई-झगड़े और फ़साद की सूरत

इख़्तियार करेगा।

इस्लामी आर्थिक सिस्टम ही दुनिया में आम अमन क़ायम कर सकता है

इस्लामी शरीअ़त ने हलाल व हराम और जायज़ व नाजायज़ का जो क़ानून बनाया है वह स्पष्ट तौर पर अल्लाह की वही से है या उससे लाभ उठाया गया है, और वही एक ऐसा माक़ूल फ़ितरी और जामे क़ानून है जो हर क़ौम व मिल्लत और हर मुल्क व वतन में चल सकता है, और आ़म अमन की गारंटी दे सकता है, क्योंकि इस क़ानूने इलाही में सब की ज़रूरतों और साझा चीज़ों को संयुक्त और वक़्फ़े आ़म रखा गया है, जिसमें तमाम इनसान बराबर का हक़ रखते हैं। जैसे हवा पानी ख़ुद उगने वाली घास, आग की गर्मी, ग़ैर-मम्लूक जंगलात और ग़ैर-आबाद पहाड़ी जंगल की पैदावार वग़ैरह, कि इनमें सब इनसानों का बराबर हक़ है, किसी को उन पर मालिकाना क़ब्ज़ा जायज़ नहीं। और जिन चीज़ों में सब के साझी होने में इनसानी रहन-सहन (सामाजिक ज़िन्दगी) में ख़लल पैदा होता है या झगड़े और विवाद की सूरतें पैदा होती हैं उनमें व्यक्तिगत मिल्कियत का क़ानून जारी फ़रमाया गया। किसी ज़मीन या उसकी पैदावार पर प्रारंभिक मिल्कियत का क़ानून अलग है और फिर मिल्कियत के दूसरे की तरफ़ मुन्तक़िल होने का अलग। उस क़ानून की हर दफ़ा (धारा) में इसका लिहाज़ रखा गया है कि कोई इनसान ज़िन्दगी की ज़रूरतों से मेहरूम न रहे, बशर्तेकि वह अपनी जिद्दोजहद उनके हासिल करने में ख़र्च करे। और कोई इनसान दूसरों के हुक़ूक़ दबाकर या छीनकर या दूसरों को नुक़सान पहुँचाकर सरमाये को सीमित अफ़राद में क़ैद और जमा न कर दे। मिल्कियत का दूसरे की तरफ़ ट्रांसफ़र होना चाहे मौत के बाद विरासत के ख़ुदाई क़ानून के मुताबिक़ हो या फिर ख़रीद व बेच वग़ैरह के ज़रिये दोनों फ़रीक़ों की रज़ामन्दी से हो, मज़दूरी हो या किसी माल का मुआ़वज़ा दोनों में इसको ज़रूरी क़रार दिया कि मामले में कोई धोखा, फ़रेब या लाग-लपेट न हो, और कोई ऐसी ग़ैर-स्पष्टता और नामुकम्मल बात न रहे जिसकी वजह से आपसी विवाद की नौबत आये।

साथ ही इसकी भी रियायत रखी गई है कि दोनों फ़रीक़ जो रज़ामन्दी दे रहे हैं वह वास्तविक रज़ामन्दी हो, किसी इनसान पर दबाव डालकर कोई रज़ामन्दी न ली गई हो। इस्लामी शरीअ़त में जितने मामलात बातिल या फ़ासिद और गुनाह कहलाते हैं उन सब की वजह यही होती है कि उनमें उक्त वुजूहात में से किसी वजह से ख़लल होता है। कहीं धोखा फ़रेब होता है, कहीं नामालूम चीज़ या नामालूम काम का मुआ़वज़ा होता है, कहीं किसी का हक़ दबाना और छीनना होता है, कहीं किसी को नुक़सान पहुँचाकर अपना फ़ायदा किया जाता है, कहीं आ़म हुक़ूक़ में नाजायज़ अ़मल-दख़ल होता है। सूद, जुए वग़ैरह को हराम क़रार देने की अहम वजह यह है कि वे सार्वजनिक हुक़ूक़ के लिये नुक़सानदेह हैं, उनके नतीजे में चन्द अफ़राद पलते बढ़ते हैं और पूरी मिल्लत मुफ़लिस (ग़रीब) होती है। ऐसे मामलात दोनों फ़रीक़ों की रज़ामन्दी से भी इसलिये हलाल नहीं कि वह पूरी मिल्लत के ख़िलाफ़ एक जुर्म है। ज़िक्र हुई आयत इन तमाम नाजायज़ सूरतों पर हावी है। इरशाद है:

وَلَا تَأْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ

"यानी न खाओ एक दूसरे का माल नाजायज़ तरीक़े पर।"

इसमें एक बात तो यह क़ाबिले ग़ौर है कि क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ में 'अमवालकुम्' आया है जिसके असली मायने हैं अपने माल, जिसमें इसकी तरफ़ इशारा किया गया कि तुम जो किसी दूसरे के माल में नाजायज़ अ़मल-दख़ल करते हो तो यह ग़ौर करो कि दूसरे शख़्स को भी अपने माल से ऐसी ही मुहब्बत और ताल्लुक़ होगा जैसा तुम्हें अपने माल से है, अगर वह तुम्हारे माल में ऐसा नाजायज़ अ़मल-दख़ल करता तो तुम्हें जो दुख पहुँचता उसका इस वक़्त भी ऐसा ही एहसास करो कि गोया वह तुम्हारा माल है।

इसके अ़लावा इशारा इस तरफ़ भी हो सकता है कि जब एक शख़्स दूसरे के माल में कोई नाजायज़ उलट-फेर करता और उस पर क़ब्ज़ा जमाता है तो इसका फ़ितरी नतीजा यह है कि अगर यह रस्म चल पड़ी तो दूसरे उसके माल में ऐसा ही अ़मल-दख़ल करेंगे, इस हैसियत से किसी शख़्स के माल में नाजायज़ तसर्रुफ़ (दख़ल अन्दाज़ी) दर हक़ीक़त अपने माल में नाजायज़ तसर्रुफ़ के लिये रास्ता हमवार करना है। ग़ौर कीजिये ज़रूरत की चीज़ों में मिलावट की रस्म चल जाये, कोई घी में तेल या चर्बी मिलाकर ज़्यादा पैसे हासिल करे, तो उसको जब दूध ख़रीदने की ज़रूरत पड़ेगी तो दूध वाला उसमें पानी मिलाकर देगा, मसाले की ज़रूरत होगी तो उसमें मिलावट होगी, दवा की ज़रूरत होगी तो उसमें भी यही मन्ज़र सामने आयेगा, तो जितने पैसे एक शख़्स ने मिलावट करके ज़्यादा हासिल कर लिये दूसरा आदमी वो पैसे उसकी जेब से निकाल लेता है, इसी तरह दूसरे के पैसे तीसरा निकाल लेता है। यह बेवक़ूफ़ अपनी जगह पैसों की अधिकता शुमार करके ख़ुश होता है मगर अन्जाम नहीं देखता कि इसके पास क्या रहा। तो जो कोई दूसरे के माल को ग़लत तरीक़े से हासिल करता है दर हक़ीक़त वह अपने माल के लिये नाजायज़ तसर्रुफ़ (क़ब्ज़े और दख़ल-अन्दाज़ी) का दरवाज़ा खोलता है।

दूसरी बात क़ाबिले ग़ौर यह है कि अल्लाह के इस इरशाद के अलफ़ाज़ आ़म हैं कि बातिल और नाजायज़ तरीक़े से किसी का माल न खाओ, इसमें किसी का माल ग़सब कर लेना भी दाख़िल है, चोरी और डाका भी, जिनमें दूसरे पर ज़ुल्म करके जबरन माल छीन लिया जाता है और सूद, जुआ, रिश्वत और तमाम फ़ासिद सौदे और फ़ासिद मामलात भी जो शरीअ़त के एतिबार से जायज़ नहीं, अगरचे दोनों फ़रीक़ों की रज़ामन्दी भी शामिल हो। झूठ बोलकर या झूठी क़सम खाकर कोई माल हासिल कर लेना या ऐसी कमाई जिसको इस्लामी शरीअ़त ने वर्जित (मना) क़रार दिया है अगरचे अपनी जान की मेहनत ही से हासिल की गई हो वो सब हराम और बातिल हैं। और क़ुरआन के अलफ़ाज़ में अगरचे स्पष्ट तौर पर 'खाने' की मनाही मज़कूर है, लेकिन मुराद इस जगह सिर्फ़ खाना ही नहीं बल्कि मुतलक़ तौर पर इस्तेमाल करना है चाहे खा-पीकर या पहनकर या दूसरे तरीक़े के इस्तेमाल से, मगर मुहावरों में इन सब क़िस्म के इस्तेमालों को खा लेना ही बोला जाता है कि फ़ुलाँ आदमी फ़ुलाँ का माल खा गया, अगरचे वह माल खाने पीने के लायक़ न हो।

इस आयत का शाने नुज़ूल (उतरने का मौक़ा और सबब)

यह आयत एक ख़ास वाक़िए में नाज़िल हुई है। वाक़िआ़ यह है कि हज़राते सहाबा किराम

रज़ियल्लाहु अन्हुम में से दो साहिबों का आपस में झगड़ा हो गया, मुक़द्दमा रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की अ़दालत में पेश हुआ। मुद्दई (दावा करने वाले) के पास गवाह न थे। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने शरई क़ानून के मुताबिक़ मुद्दआ़ अ़लैहि (जिस पर दावा किया गया था) को हलफ़ करने (क़सम खाने) का हुक्म दिया, वह हलफ़ पर आमादा हो गया, उस वक़्त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बतौर नसीहत उनको यह आयत सुनाईः

اِنَّ الَّذِيْنَ يَشْتَرُوْنَ بِعَهْدِ اللّٰهِ وَاَيْمَانِهِمْ ثَمَنًا قَلِيْلًا. (۷۷:۳)

जिसमें क़सम खाकर कोई माल हासिल करने पर सज़ा की धमकी मज़कूर है। उन सहाबी ने जब यह आयत सुनी तो क़सम खाने को रहने दिया और ज़मीन मुद्दई के हवाले कर दी। (रूहुल-मआ़नी)

इस वाक़िए में यह आयत नाज़िल हुई जिसमें नाजायज़ तरीक़े पर किसी का माल खाने या हासिल करने को हराम क़रार दिया है, और इसके आख़िर में ख़ास तौर पर झूठा मुक़द्दमा बनाने और झूठी क़सम खाने और झूठी गवाही देने और दिलवाने की सख़्त मनाही और उस पर वईद (सज़ा की धमकी) आई है। इरशाद हैः

وَتُدْلُوْا بِهَآ اِلَى الْحُكَّامِ لِتَاْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ النَّاسِ بِالْاِثْمِ وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ○

"यानी न ले जाओ मालों के मुक़द्दमे हाकिमों तक ताकि उनके ज़रिये तुम लोगों के माल का कोई हिस्सा खा जाओ गुनाह के तरीक़े पर जबकि तुम जानते हो कि उसमें तुम्हारा कोई हक़ नहीं, तुम झूठा मुक़द्दमा बना रहे हो।

وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ

(और तुम जानते हो) से मालूम हुआ कि अगर कोई शख़्स किसी मुग़ालते (धोखे) की बिना पर उस चीज़ को अपना हक़ समझता है वह अगर अ़दालत में दावा दायर करके उसको हासिल करने की कोशिश करे तो वह इस वईद (धमकी) में दाख़िल नहीं। इसी जैसे एक वाक़िए में हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमायाः

اِنَّمَآ اَنَا بَشَرٌ وَّاَنْتُمْ تَخْتَصِمُوْنَ اِلَيَّ وَلَعَلَّ بَعْضَكُمْ اَنْ يَّكُوْنَ اَلْحَنَ بِحُجَّتِهٖ مِنْ بَعْضٍ فَاَقْضِيَ لَهٗ عَلٰى نَحْوِمَا اَسْمَعُ مِنْهُ فَمَنْ قَضَيْتُ لَهٗ بِشَيْءٍ مِّنْ حَقِّ اَخِيْهِ فَلَا يَاْخُذَنَّهٗ فَاِنَّمَآ اَقْطَعُ لَهٗ قِطْعَةً مِّنَ النَّارِ.

(رواه البخاری و مسلم عن ام سلمةؓ)

"यानी मैं एक इनसान हूँ और तुम मेरे पास अपने मुक़द्दमे लाते हो। इसमें यह हो सकता है कि कोई शख़्स अपने मामले को ज़्यादा अच्छे ढंग से पेश करे और मैं उसी से मुत्मईन होकर उसके हक़ में फ़ैसला कर दूँ तो (याद रखो कि असल हक़ीक़त तो मामले वाले को ख़ुद मालूम होती है) अगर वास्तव में वह उसका हक़ नहीं है तो उसको लेना नहीं चाहिये, क्योंकि इस सूरत में जो कुछ मैं उसको दूँगा वह जहन्नम का एक टुकड़ा होगा।"

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस इरशाद में वाज़ेह फ़रमा दिया कि अगर इमाम या क़ाज़ी मुसलमानों का हाकिम किसी मुग़ालते (धोखा खाने) की वजह से कोई फ़ैसला कर दे जिसमें एक का हक़ दूसरे को नाजायज़ तौर पर मिल रहा हो तो उस अ़दालती फ़ैसले की वजह से वह उसके

लिये हलाल नहीं हो जाता, और जिसके लिये हलाल है उसके लिये हराम नहीं हो जाता। ग़र्ज़ यह कि अदालत का फ़ैसला किसी हलाल को हराम या हराम को हलाल नहीं बनाता, अगर कोई शख़्स धोखा फ़रेब या झूठी गवाही या झूठी क़सम के ज़रिये किसी का माल अदालत के द्वारा ले ले, तो उसका वबाल उसकी गर्दन पर रहेगा, उसको चाहिये कि आख़िरत के हिसाब किताब और सब कुछ जानने वाले रब की अदालत में पेशी का ख़्याल करके उसको छोड़ दे।

इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक जिन मामलात में कोई अ़क्द या फ़स्ख़ होता हो (यानी कोई मामला बंधता या ख़त्म होता हो) और जिनमें क़ाज़ी या जज को भी शरई अधिकार हासिल होते हैं, ऐसे मामलों में अगर झूठी क़सम या झूठी गवाही की बिना पर भी कोई फ़ैसला क़ाज़ी ने सादिर कर दिया तो शरई तौर पर वह अ़क्द या फ़स्ख़ सही हो जायेगा और हलाल व हराम के अहकाम उस पर लागू हो जायेंगे, अगरचे झूठ बोलने और झूठी गवाही दिलवाने का वबाल उसकी गर्दन पर रहेगा।

हलाल माल की बरकतें और हराम माल की नहूसत

हराम से बचने और हलाल के हासिल करने के लिये क़ुरआने करीम ने अनेक जगहों में विभिन्न उन्वानों से ताकीदें फ़रमाई हैं। एक आयत में इसकी तरफ़ भी इशारा किया है कि इनसान के आमाल व अख़्लाक़ में बहुत बड़ा दख़ल हलाल खाने को है, अगर उसका खाना पीना हलाल नहीं तो उससे अच्छे अख़्लाक़ और नेक आमाल का निकलना और ज़ाहिर होना मुश्किल है। इरशाद है:

يٰۤاَيُّهَا الرُّسُلُ كُلُوْا مِنَ الطَّيِّبٰتِ وَاعْمَلُوْا صَالِحًا اِنِّيْ بِمَا تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌO (٢٣: ٥١)

"यानी ऐ अम्बिया की जमाअ़त! हलाल और पाक चीज़ें खाओ और नेक अ़मल करो, मैं तुम्हारे आमाल की हक़ीक़त से वाक़िफ़ हूँ।"

इस आयत में हलाल खाने के साथ नेक अ़मल का हुक्म फ़रमाकर इशारा कर दिया है कि नेक आमाल का निकलना जब ही हो सकता है जबकि इनसान का खाना पीना हलाल हो, और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक हदीस में यह भी वाज़ेह फ़रमा दिया कि इस आयत में अगरचे ख़िताब अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को है मगर यह हुक्म कुछ उन्हीं के साथ मख़्सूस नहीं, बल्कि सब मुसलमान इसके पाबन्द हैं। इस हदीस के आख़िर में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह भी फ़रमाया कि हराम माल खाने वाले की दुआ़ क़ुबूल नहीं होती, बहुत से आदमी इबादत वग़ैरह में मशक़्क़त उठाते हैं फिर अल्लाह तआ़ला के सामने हाथ दुआ़ के लिये फैलाते हैं और या रब या रब! पुकारते हैं, मगर खाना उनका हराम, पीना उनका हराम, लिबास उनका हराम है तो उनकी यह दुआ़ कहाँ क़ुबूल हो सकती है।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात का एक बहुत बड़ा हिस्सा इसी काम के लिये वक़्फ़ (समर्पित) रहा है कि उम्मत को हराम से बचाने और हलाल के इस्तेमाल करने की हिदायतें दें।

एक हदीस में इरशाद फ़रमाया कि जिस शख़्स ने हलाल खाया और सुन्नत के मुताबिक़ अ़मल किया और लोग उसकी तकलीफ़ों से महफ़ूज़ रहे वह जन्नत में जायेगा। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु

अन्हुम ने अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! आजकल तो यह हालात आपकी उम्मत में आ़म हैं, ज़्यादातर मुसलमान इनके पाबन्द हैं। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया हाँ! आईन्दा भी हर ज़माने में ऐसे लोग रहेंगे जो इन अहकाम के पाबन्द होंगे (यह हदीस तिर्मिज़ी ने रिवायत की है, और इसको सही फ़रमाया है)।

एक दूसरी हदीस में इरशाद है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से फ़रमाया कि चार ख़स्लतें ऐसी हैं जब वे तुम्हारे अन्दर मौजूद हों तो फिर दुनिया में कुछ भी हासिल न हो तो तुम्हारे लिये काफ़ी हैं। वे चार ख़स्लतें (आ़दत और गुण) ये हैं- एक अमानत की हिफ़ाज़त, दूसरे सच बोलना, तीसरे अच्छा अख़्लाक़ व व्यवहार, चौथे खाने में हलाल का एहतिमाम।

हज़रत सअ़द बिन अबी वक़्क़ास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से दरख़्वास्त की कि मेरे लिये यह दुआ़ फ़रमा दीजिये कि मैं जो दुआ़ किया करूँ वह क़ुबूल हो जाया करे। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया ऐ सअ़द! अपना खाना हलाल और पाक बना लो तुम मुस्तजाबुद्दअ़वात हो जाओगे (यानी उन लोगों में हो जाओगे जिनकी दुआ़यें क़ुबूल होती हैं), और क़सम है उस ज़ात की जिसके क़ब्ज़े में मुहम्मद की जान है, बन्दा जब अपने पेट में हराम का लुक़्मा डालता है तो चालीस रोज़ तक उसका कोई अ़मल क़ुबूल नहीं होता, और जिस शख़्स का गोश्त हराम माल से बना हो उस गोश्त के लिये तो जहन्नम की आग ही लायक़ है।

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- क़सम है उस ज़ात की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है कि कोई बन्दा उस वक़्त तक मुसलमान नहीं होता जब तक उसका दिल और ज़बान मुस्लिम न हो जाये, और जब तक उसके पड़ोसी उसकी तकलीफ़ों से महफ़ूज़ न हो जायें। और जब कोई बन्दा हराम माल कमाता है फिर उसको सदक़ा करता है तो वह क़ुबूल नहीं होता और अगर उसमें से ख़र्च करता है तो बरकत नहीं होती और अगर उसको अपने वारिसों के लिये छोड़ जाता है तो वह जहन्नम की तरफ़ जाने के लिये उसका तोशा (सफ़र का सामान) होता है, बेशक अल्लाह तआ़ला बुरी चीज़ से बुरे अ़मल को नहीं धोते, हाँ अच्छे अ़मल से बुरे अ़मल को धो देते हैं।

क़ियामत के दिन हर इनसान से होने वाले पाँच अहम सवाल

हज़रत मुआ़ज़ बिन जबल रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

مَا تَزَالُ قَدَمَا عَبْدٍ يَوْمَ الْقِيَامَةِ حَتّٰى يُسْاَلَ عَنْ اَرْبَعٍ عَنْ عُمْرِهٖ فِيْمَا اَفْنَاهُ وَعَنْ شَبَابِهٖ فِيْمَا اَبْلَاهُ وَعَنْ مَّالِهٖ مِنْ اَيْنَ اكْتَسَبَهٗ وَفِيْمَا اَنْفَقَهٗ وَعَنْ عِلْمِهٖ مَاذَا عَمِلَ فِيْهِ. (البیهقی،ترغیب)

"क़ियामत के दिन मेहशर में कोई बन्दा अपनी जगह से सरक न सकेगा, जब तक उससे चार सवालों का जवाब न लिया जाये। एक यह कि उसने अपनी उम्र किस काम में फ़ना की, दूसरे यह कि अपनी जवानी किस शग़्ल में बरबाद की, तीसरे यह कि अपना माल कहाँ से

कमाया और कहाँ ख़र्च किया, और चौथे यह कि अपने इल्म पर कहाँ तक अमल किया।''

नोटः- कुछ रिवायतों में पाँच की संख्या है उसमें माल के दो सवालों को अलग-अलग शुमार किया गया है (यानी कहाँ से कमाया और फिर उसको कहाँ ख़र्च किया)।

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक मर्तबा ख़ुतबा दिया जिसमें फ़रमाया कि ऐ मुहाजिरीन की जमाअ़त! पाँच ख़स्लतें हैं जिनके मुताल्लिक़ मैं अल्लाह तआ़ला से पनाह माँगता हूँ कि वे तुम्हारे अन्दर पैदा हो जायें। एक यह है कि जब किसी क़ौम में बेहयाई फैलती है तो उन पर ताऊन, वबायें और ऐसे नये-नये रोग मुसल्लत कर दिये जाते हैं जो उनके बाप-दादा ने सुने भी न थे, और दूसरे यह कि जब किसी क़ौम में नाप-तौल के अन्दर कमी करने का मर्ज़ पैदा हो जाये तो उन पर क़हत (सूखा), महंगाई, मशक़्क़त व मेहनत और हाकिमों के ज़ुल्म व अत्याचार मुसल्लत कर दिये जाते हैं। और तीसरे यह कि जब कोई ज़कात अदा न करे तो बारिश बन्द कर दी जाती है। और चौथे यह कि जब कोई क़ौम अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल के अ़हद को तोड़ डाले तो अल्लाह तआ़ला उन पर अजनबी दुश्मन मुसल्लत फ़रमा देते हैं, जो उनके माल बग़ैर किसी हक़ के छीन लेता है। और पाँचवे यह कि जब किसी क़ौम के हुकूमत व ताक़त वाले लोग अल्लाह की किताब के क़ानून पर फ़ैसला न करें और अल्लाह तआ़ला के नाज़िल किये हुए अहकाम उनके दिल को न लगें तो अल्लाह तआ़ला उनमें आपस में नफ़रत व दुश्मनी और लड़ाई-झगड़े डाल देते हैं। (यह रिवायत इब्ने माजा और बैहक़ी वग़ैरह ने नक़ल की है और हाकिम ने इसको इमाम मुस्लिम की शर्तों पर सही फ़रमाया है)

अल्लाह तआ़ला हमको और सब मुसलमानों को इन आफ़तों से महफ़ूज़ रहने की पूरी तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमायें। आमीन

يَسْـَٔلُونَكَ عَنِ الْأَهِلَّةِ ۖ قُلْ هِيَ مَوَاقِيتُ لِلنَّاسِ وَالْحَجِّ ۗ وَلَيْسَ الْبِرُّ بِأَنْ تَأْتُوا الْبُيُوتَ مِنْ ظُهُورِهَا وَلَٰكِنَّ الْبِرَّ مَنِ اتَّقَىٰ ۗ وَأْتُوا الْبُيُوتَ مِنْ أَبْوَابِهَا ۚ وَاتَّقُوا اللَّهَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُونَ ۝ وَقَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ يُقَاتِلُونَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوا ۚ إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِينَ ۝ وَاقْتُلُوهُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوهُمْ وَأَخْرِجُوهُمْ مِنْ حَيْثُ أَخْرَجُوكُمْ ۚ وَالْفِتْنَةُ أَشَدُّ مِنَ الْقَتْلِ ۚ وَلَا تُقَاتِلُوهُمْ عِنْدَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ حَتَّىٰ يُقَاتِلُوكُمْ فِيهِ ۖ فَإِنْ قَاتَلُوكُمْ فَاقْتُلُوهُمْ ۗ كَذَٰلِكَ جَزَاءُ الْكَافِرِينَ ۝

यस्अलून-क अ़निल्-अहिल्लति, क़ुल् हि-य मवाक़ीतु लिन्नासि वल्-हज्जि, व लैसल्-बिर्रु बि-अन् तअ्तुल्-बुयू-त मिन् ज़ुहूरिहा व ला किन्नल्-	तुझसे पूछते हैं हाल नये चाँद का, कह दे कि ये मुक़र्ररा औक़ात (समय) हैं लोगों के वास्ते और हज के वास्ते, और नेकी यह नहीं कि घरों में आओ उनकी पुश्त की तरफ़ (यानी पीछे के दरवाज़े) से, और

बिर्-र मनित्तक़ा वअ्तुल्बुयू-त मिन् अबवाबिहा वत्तक़ुल्ला-ह लअ़ल्लकुम् तुफ़्लिहून (189) व क़ातिलू फ़ी सबीलिल्लाहिल्लज़ी-न युक़ातिलू-नकुम् व ला तअ्तदू, इन्नल्ला-ह ला युहिब्बुल्-मुअ्तदीन (190) वक़्तुलूहुम् हैसु सक़िफ़्तुमूहुम् व अख़्रिजूहुम् मिन् हैसु अख़्रजूकुम् वल्फ़ित्नतु अशद्दु मिनल्-क़त्लि व ला तुक़ातिलूहुम् अ़िन्दल्-मस्जिदिल्-हरामि हत्ता युक़ातिलूकुम् फ़ीहि, फ़-इन् क़ा-तलूकुम् फ़क़्तुलूहुम्, कज़ालि-क जज़ाउल्-काफ़िरीन (191)	लेकिन नेकी यह है कि जो कोई डरे अल्लाह से, और घरों में आओ दरवाज़ों से और अल्लाह से डरते रहो ताकि तुम अपनी मुराद को पहुँचो। (189) और लड़ो अल्लाह की राह में उन लोगों से जो लड़ते हैं तुमसे, और किसी पर ज़्यादती मत करो, बेशक अल्लाह तआ़ला नापसन्द करता है ज़्यादती करने वालों को। (190) और मार डालो उनको जिस जगह पाओ और निकाल दो उनको जहाँ से उन्होंने तुमको निकाला, और दीन से बिचलना मार डालने से भी ज़्यादा सख़्त है, और न लड़ो उनसे मस्जिदे-हराम के पास जब तक कि वे न लड़ें तुम से उस जगह, फिर अगर वे ख़ुद ही लड़ें तुम से तो उनको मारो, यही है सज़ा काफ़िरों की। (191)

मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

आयत 'लैसल्-बिर्-र' (यानी आयत 177) के तहत बयान हो चुका है कि इसके बाद सूरः ब-क़रह के आख़िर तक 'अबवाबुल-बिर्र' का बयान होगा जो शरीअ़त के अहम अहकाम पर मुश्तमिल हैं। उनमें पहला हुक्म 'क़िसास' का दूसरा 'वसीयत' का तीसरा और चौथा 'रोज़े' और उससे मुताल्लिक़ मसाईल का, पाँचवाँ एतिकाफ़ का, छठा हराम माल से बचने का था। ऊपर बयान हुई दो आयतों में हज और जिहाद के अहकाम व मसाईल का बयान है, और हज के हुक्म से पहले यह बतलाया गया कि रोज़ा और हज वग़ैरह में चाँद के महीनों और दिनों का एतिबार होगा।

नोटः- चाँद के महीने की शुरू की चन्द रातों के चाँद को 'हिलाल' कहा जाता है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 7- हज वग़ैरह में चाँद के हिसाब का एतिबार

(बाज़े आदमी) आप से (इन) चाँदों के (हर महीने घटने-बढ़ने की) हालत (और इसमें जो फ़ायदा है उस फ़ायदे) की तहक़ीक़ात करते हैं। आप फ़रमा दीजिए कि (फ़ायदा इसका यह है कि) वह चाँद (अपने इस घटने और बढ़ने के एतिबार से लाज़िमी तौर पर या सहूलत के एतिबार से) वक़्तों के

पहचानने का आला "यानी ज़रिया" है। लोगों के (इख़्तियारी मामलों जैसे इद्दत और हुक़ूक़ के मुतालबे) के लिए और (ग़ैर-इख़्तियारी इबादतों जैसे) हज (रोज़ा, ज़कात वग़ैरह) के लिए।

हुक्म 8- जाहिलीयत की रस्मों की इस्लाह

(कुछ लोग इस्लाम से पहले अगर हज का एहराम बाँधने के बाद किसी ज़रूरत से घर जाना चाहते थे तो दरवाज़े से जाना वर्जित (मना) जानते थे, इसलिये पुश्त की दीवार में नक़ब देकर (यानी तोड़कर) उसमें से अन्दर जाते थे, और इस अमल को अच्छा समझते थे। हक़ तआ़ला इसके मुताल्लिक़ हज के ज़िक्र के बाद इरशाद फ़रमाते हैं) और इसमें कोई फ़ज़ीलत नहीं कि घरों में उनकी पुश्त की तरफ़ से आया करो, हाँ लेकिन फ़ज़ीलत यह है कि कोई शख़्स हराम (चीज़ों) से बचे, और (चूँकि घरों में दरवाज़े की तरफ़ से आना हराम नहीं है इसलिये इससे बचना भी ज़रूरी नहीं, सो अगर आना चाहो तो) घरों में उनके दरवाज़ों से आओ, और (असल उसूल तो यह है कि) ख़ुदा तआ़ला से डरते रहो (इससे अलबत्ता) उम्मीद है कि तुम (दोनों जहान में) कामयाब होओ।

हुक्म 9- काफ़िरों को क़त्ल करना

(ज़ीक़दा सन् 6 हिजरी में हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उमरा अदा करने के इरादे से मक्का मुअ़ज़्ज़मा तशरीफ़ ले चले, उस वक़्त तक मक्का मुअ़ज़्ज़मा मुश्रिकों के क़ब्ज़े और हुकूमत में था। उन लोगों ने हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और आपके साथ वालों को मक्का के अन्दर न जाने दिया और उमरा रह गया। आख़िर बड़ी बातचीत के बाद यह मुआ़हदा (समझौता) क़रार पाया कि अगले साल तशरीफ़ लाकर उमरा अदा फ़रमायें। चुनाँचे ज़ीक़दा सन् 7 हिजरी में फिर आप इसी इरादे से तशरीफ़ ले चले, लेकिन आपके साथी मुसलमानों को यह अन्देशा हुआ कि शायद मुश्रिक लोग अपना समझौता पूरा न करें और मुक़ाबले व लड़ाई पर तैयार हो जायें, तो ऐसी हालत में न चुप रहने में मस्लेहत है और अगर मुक़ाबला किया जाये तो ज़ीक़ादा (सम्मानित हज के महीने) में क़िताल (लड़ाई और जंग करना) लाज़िम आता है, और यह महीना उन चार महीनों में से है जिनको 'अश्हुरे हुरुम' कहा जाता है। इन चार महीनों में उस वक़्त तक क़त्ल व क़िताल हराम व वर्जित था। ये चार महीने **ज़ीक़ादा, ज़िलहिज्जा, मुहर्रम** और **रजब** थे। ग़र्ज़ कि मुसलमान इस पसोपेश से परेशान थे हक़ तआ़ला ने ये आयतें नाज़िल फ़रमाईं कि उन ख़ास मुआ़हदा (समझौता) करने वालों के साथ आपसी समझौते की वजह से तुमको अपनी तरफ़ से क़िताल (लड़ाई और जंग) की शुरूआत करने की इजाज़त नहीं, लेकिन अगर वे लोग ख़ुद समझौता तोड़ें और तुमसे लड़ने को तैयार हो जायें तो उस वक़्त तुम किसी तरह का अन्देशा दिल में मत लाओ) और (बेतकल्लुफ़) तुम (भी) लड़ो अल्लाह की राह में (यानी इस नीयत से कि ये लोग दीन का विरोध करते हैं), उन लोगों के साथ जो (अ़हद को तोड़कर) तुम्हारे साथ लड़ने लगें, और (अपनी तरफ़ से समझौते की) हद से न निकलो (कि अ़हद तोड़ करके लड़ने लगो)। वाक़ई अल्लाह तआ़ला (शरई क़ानून की) हद से निकलने वालों को पसन्द नहीं करते।

और (जिस हालत में वे ख़ुद अ़हद तोड़ें उस वक़्त दिल खोलकर चाहे) उनको क़त्ल करो जहाँ

उनको पाओ और (चाहे) उनको (मक्का से) निकाल बाहर करो जहाँ से उन्होंने तुमको (तंग करके और तकलीफ़ें पहुँचाकर) निकलने (और हिजरत करने) पर मजबूर किया है, और (तुम्हारे इस क़त्ल करने व निकालने के बाद भी असलन इल्ज़ाम उन्हीं पर रहेगा क्योंकि अ़हद तोड़ना जो उनकी तरफ़ से होगा बड़ी शरारत की बात है, और ऐसी) शरारत (नुक़सान पहुँचाने में) क़त्ल (और वतन से निकाल देने) से भी ज़्यादा सख़्त है (क्योंकि इस क़त्ल और निकालने की नौबत उस शरारत की बदौलत ही पहुँचती है), और (मुआ़हदे के अ़लावा उनके साथ क़िताल की शुरूआ़त करने में एक और चीज़ भी रुकावट है, वह यह कि हरम शरीफ़ यानी मक्का और उसके आस-पास एक ऐसी जगह है जिसका एहतिराम व सम्मान करना वाजिब है, और उसमें क़िताल करना उसके एहतिराम व सम्मान के ख़िलाफ़ है, इसलिये भी हुक्म दिया जाता है कि) उनके साथ मस्जिदे हराम के (आस) पास में (जो कि हरम कहलाता है) क़िताल मत करो जब तक कि वे लोग वहाँ तुमसे ख़ुद न लड़ें। हाँ अगर वे (काफ़िर लोग) ख़ुद ही लड़ने का सामान करने लगें तो (उस वक़्त फिर तुमको भी इजाज़त है कि) तुम (भी) उनको मारो (धाड़ो), ऐसे काफ़िरों की (जो हरम में लड़ने लगें) ऐसी ही सज़ा है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

पहली आयत में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का एक सवाल और अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से उसका जवाब नक़ल किया गया है। मुफ़स्सिरीन के इमाम हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सहाबा की एक ख़ास शान है कि उन्होंने अ़ज़मत व रौब की वजह से अपने रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सवालात बहुत कम किये हैं, पिछली उम्मतों के विपरीत कि जिन्होंने बहुत ज़्यादा सवालात किये और इस अदब को ध्यान में नहीं रखा। हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के सवालात जिनका ज़िक्र क़ुरआन में आया है कुल चौदह हैं, जिनमें से एक सवाल अभी ऊपर गुज़रा है (यानी आयत 186 में)। और दूसरा सवाल यह है और उनके बाद सूरः ब-क़रह ही में छह सवाल और मज़कूर हैं और बाक़ी छह सवालात विभिन्न सूरतों में आये हैं।

मज़कूरा आयत में ज़िक्र यह है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से 'अहिल्लत्' यानी शुरू महीने के चाँद के बारे में सवाल किया कि उसकी सूरत सूरज से अलग है कि वह कभी बारीक हिलाली शक्ल में होता है फिर आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ता है, फिर पूरा दायरा हो जाता है, फिर इसी तरह उसमें धीरे-धीरे कमी आती है, इसकी हक़ीक़त मालूम की या हिक्मत व मस्लेहत का सवाल किया, दोनों ही बातें हो सकती हैं। मगर जो जवाब दिया गया उसमें हिक्मत व मस्लेहत का बयान है, अगर सवाल ही यह था कि चाँद के घटने-बढ़ने में हिक्मत व मस्लेहत क्या है तब तो जवाब उसके मुताबिक़ ही हो गया और अगर सवाल से इस घटने-बढ़ने की हक़ीक़त मालूम करना मक़सूद था जो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की शान से बईद (दूर की बात) है तो फिर जवाब बजाय हक़ीक़त के हिक्मत व मस्लेहत बयान करने से इस बात की तरफ़ इशारा है कि आसमानी अजराम की हक़ीक़तें मालूम करना इनसान के बस में भी नहीं, और उनका कोई दीनी या दुनियावी काम इस हक़ीक़त के जानने पर टिका भी नहीं, इसलिये हक़ीक़त का सवाल

फ़ुज़ूल है, पूछने और बतलाने की बात यह है कि चाँद के इस तरह घटने-बढ़ने, छुपने और उदय होने से हमारी कौनसी मस्लेहतें जुड़ी हैं, इसलिये जवाब में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को यह इरशाद फ़रमाया कि आप उनसे कह दें कि तुम्हारी मस्लेहतें जो चाँद से वाबस्ता (जुड़ी हुई) हैं ये हैं कि इसके ज़रिये तुम्हें अपने मामलात और समझौतों की मियाद मुक़र्रर करना और हज के दिन मालूम करना आसान हो जायेगा।

चाँद और सूरज के हिसाब की शरई हैसियत

इस आयत से इतना तो मालूम हुआ कि चाँद के ज़रिये तुम्हें तारीख़ों और महीनों का हिसाब मालूम हो जायेगा, जिस पर तुम्हारे मामलात और इबादतों हज वग़ैरह की बुनियाद है। इसी मज़मून को सूरः यूनुस की आयत 5 में इस उनवान से बयान फ़रमाया है:

وَقَدَّرَهٗ مَنَازِلَ لِتَعْلَمُوْا عَدَدَ السِّنِيْنَ وَالْحِسَابَ. (سورة يونس)

जिससे मालूम हुआ कि चाँद को मुख़्तलिफ़ मन्ज़िलों और विभिन्न हालात से गुज़ारने का फ़ायदा यह है कि इसके ज़रिये साल, महीनों और तारीख़ों का हिसाब मालूम हो सके, मगर सूरः बनी इस्राईल की आयत 12 में इस हिसाब का ताल्लुक़ सूरज से भी बताया गया है। वह यह है:

فَمَحَوْنَا اٰيَةَ الَّيْلِ وَجَعَلْنَا اٰيَةَ النَّهَارِ مُبْصِرَةً لِّتَبْتَغُوْا فَضْلًا مِّنْ رَّبِّكُمْ وَلِتَعْلَمُوْا عَدَدَ السِّنِيْنَ وَالْحِسَابَ.

(سورة بنی اسرآئیل: ۱۲)

"फिर मिटाया रात का नमूना और बना दिया दिन का नमूना देखने को, ताकि तलाश करो फ़ज़्ल अपने रब का, और ताकि मालूम करो गिनती बरसों की और हिसाब।"

इस तीसरी आयत से अगरचे यह साबित हुआ कि साल और महीनों वग़ैरह का हिसाब सूरज से भी लगाया जा सकता है (जैसा कि तफ़सीर रूहुल-मआनी में बयान किया गया है) लेकिन चाँद के मामले में जो अलफ़ाज़ क़ुरआने करीम ने इस्तेमाल किये उनसे वाज़ेह इशारा इस तरफ़ निकलता है कि इस्लामी शरीअ़त में हिसाब चाँद ही का मुतैयन है, ख़ुसूसन उन इबादतों में जिनका ताल्लुक़ किसी ख़ास महीने और उसकी तारीख़ों से है, जैसे रोज़ा-ए-रमज़ान, हज के महीने, हज के दिन, मुहर्रम, शबे बराअत वग़ैरह से जो अहकाम संबन्धित हैं वे सब चाँद दिखाई देने से मुताल्लिक़ किये गये हैं, क्योंकि इस आयत में 'हि-य मवाक़ीतु लिन्नासि वल्हज्जि' फ़रमाकर बतला दिया कि अल्लाह तआ़ला के नज़दीक हिसाब चाँद ही का मोतबर है, अगरचे यह हिसाब सूरज से भी मालूम हो सकता है।

इस्लामी शरीअ़त ने चाँद के हिसाब को इसलिये इख़्तियार फ़रमाया कि उसको हर आँखों से देखने वाला उफ़ुक़ (आसमान) पर देखकर मालूम कर सकता है। आ़लिम, जाहिल, देहाती, टापुओं, पहाड़ों के रहने वाले जंगली सब को इसका इल्म आसान है, जबकि सूरज का हिसाब इसके विपरीत है कि वह आलाते रसदिया और हिसाबी क़ायदों पर मौक़ूफ़ है, जिसको हर शख़्स आसानी से मालूम नहीं कर सकता। फिर इबादात के मामले में तो चाँद के हिसाब को फ़र्ज़ के तौर पर मुतैयन कर दिया और लेन-देन के आ़म मामलात वग़ैरह में भी इसी को पसन्द किया जो इस्लामी इबादत का ज़रिया है और एक तरह का इस्लामी शिआ़र (पहचान और निशानी) है, अगरचे सूरज के (अंग्रेज़ी) हिसाब को भी

नाजायज़ क़रार नहीं दिया, शर्त यह है कि उसका रिवाज इतना आ़म न हो जाये कि लोग चाँद के हिसाब को बिल्कुल भुला दें, क्योंकि ऐसा करने में इबादतों रोज़ा व हज वग़ैरह में ख़लल लाज़िम आता है, जैसा कि इस ज़माने में आ़म दफ़्तरों और कारोबारी संस्थाओं बल्कि निजी और व्यक्तिगत पत्राचार में भी सूरज के (अंग्रेज़ी) हिसाब का ऐसा रिवाज हो गया है कि बहुत से लोगों को इस्लामी महीने भी पूरे याद नहीं रहे, यह शरई हैसियत के अ़लावा क़ौमी व मिल्ली ग़ैरत का भी दिवालियापन है। अगर दफ़्तरी मामलात में जिनका ताल्लुक़ ग़ैर-मुस्लिमों से भी है उनमें सिर्फ़ सूरज का हिसाब रखें बाक़ी निजी ख़त व किताबत (पत्राचार) और रोज़मर्रा की ज़रूरतों में चाँद की इस्लामी तारीख़ों का इस्तेमाल करें तो इसमें फ़र्ज़े किफ़ाया की अदायेगी का सवाब भी होगा और अपना क़ौमी शिआ़र भी महफ़ूज़ रहेगा।

मसला

لَيْسَ الْبِرُّ بِاَنْ تَاْتُوا الْبُيُوْتَ مِنْ ظُهُوْرِهَا

(यह नेकी नहीं कि घरों में उनकी पुश्त की तरफ़ से आओ) इस आयत से यह मसला भी निकल आया कि जिस चीज़ को इस्लामी शरीअ़त ने ज़रूरी या इबादत न समझा हो उसको अपनी तरफ़ से ज़रूरी और इबादत समझ लेना जायज़ नहीं। इसी तरह जो चीज़ शरई तौर पर जायज़ हो उसको गुनाह समझना भी गुनाह है। उन लोगों ने ऐसा ही कर रखा था कि घर के दरवाज़ों से दाख़िल होना जो शरई तौर पर जायज़ था उसको गुनाह क़रार दिया और मकान की पुश्त से दीवार तोड़कर जो शरई तौर पर ज़रूरी नहीं था उसको ज़रूरी समझा, इसी पर उन लोगों को तंबीह की गई। बिद्अ़तों के नाजायज़ होने की बड़ी वजह यही है कि ग़ैर-ज़रूरी चीज़ों को फ़र्ज़ व वाजिब की तरह ज़रूरी समझ लिया जाता है, या कुछ जायज़ चीज़ों को हराम व नाजायज़ क़रार दे दिया जाता है। इस आयत से ऐसा करने की मनाही स्पष्ट तौर पर साबित हो गई जिससे हज़ारों, आमाल का हुक्म मालूम हो गया।

जिहाद व क़िताल

इस पर सारी उम्मत का इत्तिफ़ाक़ है कि मदीना की हिजरत से पहले काफ़िरों के साथ जिहाद व क़िताल ममनू (वर्जित) था। उस वक़्त की तमाम क़ुरआनी आयतों में मुसलमानों को काफ़िरों की तकलीफ़ों पर सब्र और माफ़ व दरगुज़र करने की ही हिदायत व तालीम थी। मदीना की हिजरत के बाद सबसे पहले इस आयत में काफ़िरों के साथ क़िताल (लड़ाई और उनको मारने) का हुक्म आया (हज़रत रबीअ़ बिन अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु वग़ैरह ने यही फ़रमाया है)। और सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से एक रिवायत यह भी है कि काफ़िरों के साथ क़िताल के बारे में पहली आयत यह उतरी है:

اُذِنَ لِلَّذِيْنَ يُقٰتَلُوْنَ بِاَنَّهُمْ ظُلِمُوْا. (سورة ٢٢: ٣٩)

मगर अक्सर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम और ताबिईन हज़रात के नज़दीक क़िताल की इजाज़त की पहली आयत सूरः ब-क़रह की उक्त आयत ही है और सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने जिसको पहली फ़रमाया है वह भी शुरू की आयतों में होने के सबब पहली कही जा सकती है।

इस आयत में हुक्म यह है कि मुसलमान सिर्फ़ उन काफ़िरों से क़िताल करें जो उनके मुक़ाबले पर क़िताल के लिये आयें। इससे मुराद यह है कि औरतें, बच्चे, बहुत बूढ़े और अपने मज़हबी शग़ल में दुनिया से एक तरफ़ होकर लगे हुए इबादत-गुज़ार राहिब पादरी वग़ैरह और ऐसे ही अपाहिज व माज़ूर लोग, या वे लोग जो काफ़िरों के यहाँ मेहनत मज़दूरी का काम करते हैं, उनके साथ जंग में शरीक नहीं होते, ऐसे लोगों को जिहाद में क़त्ल करना जायज़ नहीं, क्योंकि हुक्म आयत का सिर्फ़ उन लोगों से क़िताल करने का है जो मुसलमानों के मुक़ाबले में क़िताल करें और मज़कूरा क़िस्म के सब अफ़राद क़िताल करने वाले नहीं, इसी लिये फ़ुक़हा हज़रात ने यह भी फ़रमाया है कि अगर कोई औरत या बूढ़ा या मज़हबी आदमी वग़ैरह काफ़िरों की तरफ़ से क़िताल में शरीक हों, या मुसलमानों के मुक़ाबले में जंग में उनकी मदद किसी तरह से कर रहे हों, उनका क़त्ल करना जायज़ है, क्योंकि वे उन लोगों में दाख़िल हैं जिनसे क़िताल और जंग की जा सकती है। (तफ़सीरे मज़हरी, क़ुर्तुबी, जस्सास)

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हिदायतें जो इस्लामी मुजाहिदों को जिहाद के वक़्त दी जाती थीं उनमें इस हुक्म की स्पष्ट हिदायतें मज़कूर हैं। सही बुख़ारी व मुस्लिम में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से एक हदीस में है:

نَهٰی رَسُوْلُ اللّٰہِ صَلَّی اللّٰہُ عَلَیْہِ وَسَلَّمَ عَنْ قَتْلِ النِّسَآءِ وَالصِّبْیَانِ.

"यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने औरतों और बच्चों के क़त्ल करने से मना फ़रमाया है।"

और अबू दाऊद में हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से जिहाद पर जाने वाले सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ये हिदायतें मन्क़ूल हैं- तुम अल्लाह के नाम पर और रसूलुल्लाह की मिल्लत (तरीक़े) पर जिहाद के लिये जाओ, किसी बूढ़े ज़ईफ़ को और छोटे बच्चे को या किसी औरत को क़त्ल न करो। (तफ़सीरे मज़हरी)

हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने जब यज़ीद बिन अबी सुफ़ियान रज़ियल्लाहु अ़न्हु को मुल्के शाम भेजा तो उनको यही हिदायत दी। उसमें यह भी मज़कूर है कि इबादत-गुज़ार और राहिबों (दुनिया से अलग-थलग रहने वाले इबादत करने वालों) को और काफ़िरों की मज़दूरी करने वालों को भी क़त्ल न करें, जबकि वे क़िताल (जंग और लड़ाई) में हिस्सा न लें। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

आयत के आख़िर में 'व ला तअ़्तदू' का भी जमहूर मुफ़स्सिरीन के नज़दीक यही मतलब है कि क़िताल में हद से न निकलो कि औरतों बच्चों वग़ैरह को क़त्ल करने लगो।

وَاقْتُلُوْھُمْ حَیْثُ ثَقِفْتُمُوْھُمْ وَاَخْرِجُوْھُمْ مِّنْ حَیْثُ اَخْرَجُوْکُمْ.

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर में बयान हो चुका है कि यह आयत हुदैबिया के वाक़िए के बाद उस वक़्त नाज़िल हुई है जब सुलह हुदैबिया की शर्त के मुताबिक़ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के साथ उस उमरे की क़ज़ा के लिये सफ़र का इरादा किया जिससे उससे पहले साल में मक्का के काफ़िरों ने रोक दिया था। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को उस सफ़र के वक़्त यह ख़्याल हो रहा था कि काफ़िरों की सुलह और मुआ़हदे का कुछ भरोसा नहीं, अगर वे लोग इस साल भी लड़ने और मुक़ाबला करने पर आमादा हो गये तो हमें क्या करना चाहिये। इस

पर उक्त आयत के अलफ़ाज़ ने उनको इजाज़त दे दी कि अगर वे क़िताल (जंग और लड़ाई) करने लगें तो तुम्हें भी इजाज़त है कि जहाँ पाओ उनको क़त्ल करो, और अगर क़ुदरत में हो तो जिस तरह उन्होंने मुसलमानों को मक्का मुकर्रमा से निकाल दिया था तुम भी उनको मक्का से निकाल दो।

पूरी मक्की ज़िन्दगी में जो मुसलमानों को काफ़िरों के साथ जंग व क़िताल (लड़ाई और क़त्ल करने) से रोका हुआ था और हमेशा माफ़ी व दरगुज़र की तल्क़ीन होती रही थी इसलिये सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को इस आयत के नाज़िल होने से यही ख़्याल था कि किसी काफ़िर को क़त्ल करना बुरा और ममनू (वर्जित) है, इस ख़्याल को दूर करने के लिये फ़रमायाः

وَالْفِتْنَةُ اَشَدُّ مِنَ الْقَتْلِ

(यानी शरारत और फ़ितना क़त्ल से भी ज़्यादा सख़्त चीज़ है) यह बात अपनी जगह सही है कि किसी को क़त्ल करना सख़्त बुरा काम है मगर मक्का के काफ़िरों का अपने कुफ़्र व शिर्क पर जमा रहना और मुसलमानों को इबादत अदा करने हज व उमरे से रोकना इससे ज़्यादा सख़्त व शदीद है, इससे बचने के लिये उनको क़त्ल करने की इजाज़त दे दी गई है। आयत में लफ़्ज़ **फ़ितना** से कुफ़्र व शिर्क और मुसलमानों को इबादत अदा करने से रोकना ही मुराद है। (तफ़सीरे जस्सास, क़ुर्तुबी वग़ैरह)

अलबत्ता इस आयत के उमूम (अलफ़ाज़ के आम होने) से जो यह समझा जा सकता था कि काफ़िर जहाँ कहीं हों उनका क़त्ल करना जायज़ है, इस उमूम की एक तख़्सीस (ख़ास और सीमित करना) आयत के अगले जुमले में इस तरह कर दी गई। फ़रमायाः

وَلَا تُقٰتِلُوْهُمْ عِنْدَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ حَتّٰى يُقٰتِلُوْكُمْ فِيْهِ.

यानी मस्जिदे हराम के आस-पास जिससे मुराद पूरा हरमे-मक्का है उसमें तुम उन लोगों से उस वक़्त तक क़िताल (जंग) न करो जब तक वे ख़ुद क़िताल की शुरूआत न करें।

मसलाः हरमे मक्का में इनसान क्या किसी शिकारी जानवर को भी क़त्ल करना जायज़ नहीं, लेकिन इसी आयत से मालूम हुआ कि अगर सम्मानित हरम में कोई आदमी दूसरे को क़त्ल करने लगे तो उसको भी अपनी रक्षा में क़िताल जायज़ है, इस पर जमहूर फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) का इत्तिफ़ाक़ (सहमति) है।

मसलाः इसी आयत से यह भी मालूम हुआ कि जिहाद व क़िताल (जंग व जिहाद करने) की मनाही सिर्फ़ मस्जिदे हराम के आस-पास हरमे मक्का के साथ मख़्सूस है, दूसरे स्थानों में जैसे रक्षात्मक जिहाद ज़रूरी है इसी तरह प्रारंभिक जिहाद व क़िताल भी दुरुस्त है।

فَاِنِ انْتَهَوْا

فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝ وَقٰتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ لِلّٰهِ ۚ فَاِنِ انْتَهَوْا فَلَا عُدْوَانَ اِلَّا عَلَى الظّٰلِمِيْنَ ۝ اَلشَّهْرُ الْحَرَامُ بِالشَّهْرِ الْحَرَامِ وَالْحُرُمٰتُ قِصَاصٌ ۚ فَمَنِ اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ فَاعْتَدُوْا عَلَيْهِ بِمِثْلِ مَا اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ ۪ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ مَعَ الْمُتَّقِيْنَ ۝ وَاَنْفِقُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَلَا تُلْقُوْا بِاَيْدِيْكُمْ اِلَى التَّهْلُكَةِ ۛ وَاَحْسِنُوْا ۛ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ۝

फ़-इनिन्तहौ फ़-इन्नल्ला-ह ग़फ़ूरुर्-रहीम (192) व क़ातिलूहुम् हत्ता ला तकू-न फ़ित्नतुंव्-व यकूनद्दीनु लिल्लाहि, फ़-इनिन्तहौ फ़ला अुद्वा-न इल्ला अ़लज़्ज़ालिमीन (193) अश्शह्रुल्-हरामु बिश्शह्रिल्-हरामि वल्हुरुमातु क़िसासुन्, फ़-मनिअ़्तदा अ़लैकुम् फ़अ़्तदू अ़लैहि बिमिस्लि मअ़्तदा अ़लैकुम् वत्तक़ुल्ला-ह वअ़्लमू अन्नल्ला-ह मअ़ल्-मुत्तक़ीन (194) व अन्फ़िक़ू फ़ी सबीलिल्लाहि व ला तुल्क़ू बिऐदीकुम् इलत्तह्लु-कति, व अह्सिनू इन्नल्ला-ह युहिब्बुल्-मुह्सिनीन (195)	फिर अगर वे बाज़ आयें तो बेशक अल्लाह बहुत बख़्शने वाला निहायत मेहरबान है। (192) और लड़ो उनसे यहाँ तक कि न बाक़ी रहे फ़साद और हुक्म रहे ख़ुदा तआ़ला ही का, फिर अगर वे बाज़ आयें तो किसी पर ज़्यादती नहीं मगर ज़ालिमों पर। (193) हुर्मत वाला (सम्मानित) महीना बदला (मुक़ाबिल) है हुर्मत वाले महीने के और अदब रखने में बदला है, फिर जिसने तुम पर ज़्यादती की तुम उस पर ज़्यादती करो जैसी उसने ज़्यादती की तुम पर, और डरते रहो अल्लाह से। और जान लो कि अल्लाह साथ है परहेज़गारों के। (194) और ख़र्च करो अल्लाह की राह में और न डालो अपनी जान को हलाकत में, और नेकी करो, बेशक अल्लाह दोस्त रखता है नेकी करने वालों को। (195)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

फिर अगर (क़िताल शुरू होने के बाद भी) वे लोग (यानी मक्का के मुश्रिक अपने कुफ़्र से) बाज़ आ जाएँ (और इस्लाम क़ुबूल कर लें) तो (उनका इस्लाम बेक़द्र न समझा जायेगा बल्कि) अल्लाह तआ़ला (उनके पिछले कुफ़्र को) बख़्श देंगे और (मग़फ़िरत के अ़लावा बेशुमार नेमतें देकर उनपर) मेहरबानी (भी) फ़रमा देंगे। और (अगर वे लोग इस्लाम न लायें तो अगरचे दूसरे काफ़िरों के लिये इस्लामी क़ानून यह है कि वे अपने मज़हब पर रहते हुए भी अगर इस्लामी हुकूमत की इताअ़त यानी क़ानूनों का पालन करने और जिज़्या देने का इक़रार कर लें तो उनका क़त्ल जायज़ नहीं रहता, बल्कि उनके हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त इस्लामी हुकूमत पर लाज़िम हो जाती है मगर ये ख़ास काफ़िर चूँकि अ़रब के रहने वाले हैं इनके लिये जिज़्ये का क़ानून नहीं बल्कि इनके लिये सिर्फ़ दो रास्ते हैं- इस्लाम या क़त्ल, इस वास्ते) उनके साथ इस हद तक लड़ो कि (उनमें) अ़क़ीदे का बिगाड़ (यानी शिर्क) न रहे और (उनका) दीन (ख़ालिस) अल्लाह ही का हो जाए (और किसी का दीन व मज़हब का ख़ालिस तौर

पर अल्लाह के लिये हो जाना मौकूफ़ है इस्लाम क़ुबूल करने पर, तो हासिल यह हुआ कि शिर्क छोड़कर इस्लाम इख़्तियार कर लें) और अगर वे लोग (कुफ़्र से) बाज़ आ जाएँ (जिसका ज़िक्र अभी हुआ भी है) तो (आख़िरत में मग़फ़िरत व रहमत के हक़दार होने के साथ दुनिया में उनके लिये तुमको यह क़ानून बतलाया जाता है कि सज़ा की) सख़्ती किसी पर नहीं हुआ करती, सिवाय बेइन्साफ़ी करने वालों के (जो बेइन्साफ़ी करते हुए ख़ुदाई एहसानों को भूलकर कुफ़्र व शिर्क करने लगें और जब ये लोग इस्लाम ले आयें तो बेइन्साफ़ न रहे, लिहाज़ा इन पर क़त्ल की सज़ा की सख़्ती न रही।

और मुसलमानो! तुमको जो यह ख़्याल है कि मक्का के काफ़िर अगर अपने अ़हद पर क़ायम न रहे तो सम्मानित महीने यानी ज़ीक़ादा में उनसे लड़ना पड़ेगा सो इससे भी बेफ़िक्र रहो, क्योंकि) इज़्ज़त वाला महीना (तुमको काफ़िरों के क़िताल से बाधा हो सकता) है (इस वजह से कि इस) इज़्ज़त वाले महीने के (सबब वे भी तुम से क़िताल न करें), और (वजह यह है कि) ये हुर्मतें (सम्मान करना) तो बदले मुआवज़े की चीज़ें हैं (सो जो तुम्हारे साथ इन हुर्मतों की रियायत करे तो तुम भी रियायत रखो और) जो तुम पर (ऐसी हुर्मतों और सम्मान की रियायत न करके) ज़्यादती करे तो तुम भी उस पर ज़्यादती करो जैसी उसने तुम पर ज़्यादती की है। और (इन सब ज़िक्र हुए अहकाम के बरतने में) अल्लाह तआ़ला से डरते रहो (कि किसी मामले में क़ानूनी हद से निकलने न पाओ) और यक़ीन कर लो कि अल्लाह तआ़ला (अपनी इनायत व रहमत से) उन डरने वालों के साथ होते हैं।

हुक्म 10- जिहाद में ख़र्च करना

और तुम लोग (जान के साथ माल भी) ख़र्च किया करो अल्लाह की राह (यानी जिहाद) में, और अपने आपको अपने हाथों तबाही में मत डालो (कि ऐसे मौक़ों पर जान व माल ख़र्च करने से बुज़दिली या कन्जूसी करने लगो, जिसका नतीजा तुम्हारा कमज़ोर और मुख़ालिफ़ का ताक़तवर हो जाना है, जो कि बस तबाही है) और (जो) काम (करो) अच्छी तरह किया करो, (जैसे इस मौक़े पर ख़र्च करना है दिल खोलकर ख़ुशी से अच्छी नीयत के साथ ख़र्च करो) बिला शुब्हा अल्लाह तआ़ला पसन्द करते हैं अच्छी तरह काम करने वालों को।

मआ़रिफ़ व मसाईल

सन् 7 हिजरी में जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सुलह हुदैबिया के क़ानून के मुताबिक़ छूटा हुआ उमरा अदा करने के लिये सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के साथ मक्का के सफ़र का इरादा किया तो सहाबा किराम जानते थे कि उन काफ़िरों के मुआ़हदे (समझौते) और सुलह का कुछ एतिबार नहीं, मुम्किन है कि वे जंग करने लगें तो उस जंग में सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के लिये एक इश्काल (शुब्हा) तो यह था कि मक्का के हरम में जंग की नौबत आयेगी, जो इस्लाम में नाजायज़ है। इसका जवाब पिछली आयत में दे दिया गया कि मक्का के हरम की हुर्मत (इज़्ज़त व सम्मान) मुसलमानों पर ज़रूर लाज़िम है लेकिन अगर काफ़िर हरम की हदों में ही मुसलमानों से जंग करने लगें तो इनको भी अपनी रक्षा में जंग करना जायज़ है।

दूसरा इश्काल यह था कि यह महीना ज़ीक़ादा का है जो उन चार महीनों में से है जिनको 'अश्हुरे

हुरुम' (सम्मानित महीने) कहा जाता है और उनमें किसी से किसी जगह जंग करना जायज़ नहीं, तो अगर मक्का के मुश्रिक लोगों ने हमारे ख़िलाफ़ जंग शुरू कर दी तो हम इस महीने में रक्षात्मक जंग कैसे कर सकते हैं। इसके जवाब में यह आयत नाज़िल हुई कि जैसे मक्का के हरम की हुर्मत से रक्षा और बचाव की हालत अलग और बाहर है, इसी तरह अगर सम्मानित महीनों में काफ़िर हम से क़िताल (जंग) करने लगें तो हमको भी उनसे रक्षात्मक जंग लड़ना जायज़ है।

मसलाः 'अश्हुरे हुरुम' (सम्मानित महीने) चार महीने हैं- **ज़ीक़ादा, ज़िलहिज्जा, मुहर्रम** ये तीन महीने तो लगातार हैं, चौथा महीना रजब का है। इस्लाम से पहले भी इन चार महीनों में जंग को हराम समझा जाता था, और मक्का के मुश्रिक भी इसके पाबन्द थे। इस्लाम के शुरू ज़माने में भी सन् 7 हिजरी तक यही क़ानून नाफ़िज़ (लागू और जारी) था इसी लिये सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को इश्काल (शुब्हा और असमंजस) पेश आया, इसके बाद जंग के हराम होने को मन्सूख़ (रद्द) करके आम क़िताल (जंग और लड़ाई) की इजाज़त तमाम उम्मत के इजमा (मुत्तफ़क़ा राय) से दे दी गई है मगर अफ़ज़ल अब भी यही है कि इन चार महीनों में जंग की शुरूआत न की जाये, सिर्फ़ रक्षा और बचाव की ज़रूरत से क़िताल किया जाये। इस लिहाज़ से कुल मिलाकर यह कहना भी दुरुस्त है कि 'अश्हुरे हुरुम' की हुर्मत (अदब व सम्मान) मन्सूख़ नहीं, बाक़ी है, जैसे मक्का के हरम में क़िताल (जंग व लड़ाई) की इजाज़त रक्षा की ज़रूरत से देने से हरमे मक्का की हुर्मत मन्सूख़ नहीं हुई, बल्कि हुक्म में मौजूद एक गुंजाईशी सूरत पर अमल हुआ।

जिहाद के लिये माल ख़र्च करना

وَاَنْفِقُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ.

(और ख़र्च करो अल्लाह की राह में) इसमें मुसलमानों पर लाज़िम किया गया है कि जिहाद के लिये ज़रूरत के हिसाब से अपने माल भी अल्लाह की राह में ख़र्च करें। इससे फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) ने यह हुक्म भी निकाला है कि मुसलमानों पर फ़र्ज़ ज़कात के अलावा भी दूसरे हुक़ूक़ फ़र्ज़ हैं, मगर वे न दायमी (हमेशा के लिये) हैं और न उनके लिये कोई निसाब और मिक़्दार मुतैयन (कोई हद) है, बल्कि जब और जितनी ज़रूरत हो उसका इन्तिज़ाम करना सब मुसलमानों पर फ़र्ज़ है और ज़रूरत न हो तो कुछ फ़र्ज़ नहीं। जिहाद का ख़र्च भी इसी में दाख़िल है।

وَلَا تُلْقُوْا بِاَيْدِيْكُمْ اِلَى التَّهْلُكَةِ.

आयत के इस टुकड़े के लफ़्ज़ी मायने तो ज़ाहिर हैं कि अपने आपको हलाकत में डालने की मनाही बयान फ़रमाई है। अब यह बात कि हलाकत में डालने से इस जगह क्या मुराद है? इसमें हज़राते मुफ़स्सिरीन के अक़वाल अलग-अलग हैं और इमाम जस्सास राज़ी रहमतुल्लाहि अलैहि ने फ़रमाया कि इन सब अक़वाल में कोई तज़ाद (टकराव और विरोधाभास) नहीं, सब ही मुराद हो सकते हैं। हज़रत अबू अय्यूब अन्सारी रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया कि यह आयत हमारे ही बारे में नाज़िल हुई है, हम इसकी तफ़सीर अच्छी तरह जानते हैं। बात यह है कि जब अल्लाह तआला ने इस्लाम को ग़लबा और क़ुव्वत अता फ़रमा दिया तो हम में यह गुफ़्तगू हुई कि अब जिहाद की क्या ज़रूरत है,

हम अपने वतन में ठहरकर अपने माल व जायदाद की देखभाल करें। इस पर यह आयत नाज़िल हुई जिसने यह बतला दिया कि हलाकत से मुराद इस जगह जिहाद का छोड़ देना है, और इससे साबित हुआ कि जिहाद का छोड़ देना मुसलमानों की हलाकत व बरबादी का सबब है। इसी लिये हज़रत अबू अय्यूब अन्सारी रज़ियल्लाहु अन्हु ने अपनी तमाम उम्र जिहाद में लगा दी यहाँ तक कि आख़िर में क़ुस्तुनतुनिया में वफ़ात पाकर वहीं दफ़न हुए।

हज़रत इब्ने अ़ब्बास, हज़रत हुज़ैफ़ा, हज़रत क़तादा रज़ियल्लाहु अन्हुम, इमाम मुजाहिद, इमाम ज़ह्हाक रहमतुल्लाहि अ़लैहिम तफ़सीर के इमामों से भी यही मज़मून मन्क़ूल है।

हज़रत बरा बिन आ़ज़िब रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि गुनाहों की वजह से अल्लाह तआ़ला की रहमत और मग़फ़िरत से मायूस हो जाना अपने आपको अपने हाथों हलाकत में डालना है, इसलिये मग़फ़िरत से मायूस होना हराम है।

कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि अल्लाह की राह में माल ख़र्च करने में हद से निकल जाना कि बीवी बच्चों के हक़ ज़ाया हो जायें, यह अपने आपको हलाकत में डालना है। ऐसा ख़र्च करना जायज़ नहीं।

बाज़ हज़रात ने फ़रमाया कि ऐसी सूरत में क़िताल (जंग व जिहाद) के लिये पहल करना अपने आपको हलाकत में डालना है जबकि यह अन्दाज़ा स्पष्ट हो कि दुश्मन का कुछ न बिगाड़ सकेंगे, ख़ुद हलाक हो जायेंगे। ऐसी सूरत में जंग व क़िताल में पहल करना इस आयत की बिना पर नाजायज़ है।

और इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि के फ़रमाने के मुताबिक़ ये सब ही अहकाम इस आयत से निकलते और समझे जा सकते हैं।

وَاَحْسِنُوْا اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ٥

(और जो काम करो अच्छी तरह किया करो, बेशक अल्लाह तआ़ला पसन्द करते हैं अच्छी तरह काम करने वालों को) इस जुमले में हर काम को अच्छी तरह करने की तरग़ीब है और काम को अच्छी तरह करना जिसको क़ुरआन में 'एहसान' के लफ़्ज़ से ताबीर किया है दो तरह का है- एक इबादत में, दूसरे आपस के मामलात और रहन-सहन (सामाजिक ज़िन्दगी) में। इबादत में एहसान की तफ़सीर हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम वाली हदीस में ख़ुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह फ़रमाई है कि इस तरह इबादत करो जैसे तुम ख़ुदा को देख रहे हो, और अगर यह दर्जा हासिल न हो तो कम से कम यह तो एतिक़ाद लाज़िम है कि ख़ुदा तआ़ला तुम्हें देख रहे हैं।

और मामलात व सामाजिक ज़िन्दगी में एहसान की तफ़सीर मुस्नद अहमद में हज़रत मुआ़ज़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत में हज़रत रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह फ़रमाई है कि तुम सब लोगों के लिये वही पसन्द करो जो अपने लिये पसन्द करते हो, और जिस चीज़ को तुम अपने लिये बुरा समझते हो वह दूसरों के लिये भी बुरी समझो। (तफ़सीरे मज़हरी)

وَاَتِمُّوا الْحَجَّ وَالْعُمْرَةَ لِلّٰهِ ۚ فَاِنْ اُحْصِرْتُمْ فَمَا اسْتَيْسَرَ مِنَ الْهَدْيِ ۚ وَلَا تَحْلِقُوْا رُءُوْسَكُمْ حَتّٰى يَبْلُغَ الْهَدْيُ مَحِلَّهٗ ۚ فَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ مَّرِيْضًا اَوْ بِهٖٓ اَذًى مِّنْ رَّاْسِهٖ فَفِدْيَةٌ مِّنْ صِيَامٍ اَوْ

صَدَقَةٍ اَوْ نُسُكٍ ۚ فَاِذَآ اَمِنْتُمْ ۟ فَمَنْ تَمَتَّعَ بِالْعُمْرَةِ اِلَى الْحَجِّ فَمَا اسْتَيْسَرَ مِنَ الْهَدْيِ ۚ فَمَنْ لَّمْ
يَجِدْ فَصِيَامُ ثَلٰثَةِ اَيَّامٍ فِى الْحَجِّ وَسَبْعَةٍ اِذَا رَجَعْتُمْ ؕ تِلْكَ عَشَرَةٌ كَامِلَةٌ ؕ ذٰلِكَ لِمَنْ لَّمْ يَكُنْ
اَهْلُهٗ حَاضِرِى الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ۝ اَلْحَجُّ اَشْهُرٌ
مَّعْلُوْمٰتٌ ۚ فَمَنْ فَرَضَ فِيْهِنَّ الْحَجَّ فَلَا رَفَثَ وَلَا فُسُوْقَ ۙ وَلَا جِدَالَ فِى الْحَجِّ ؕ وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ
خَيْرٍ يَّعْلَمْهُ اللّٰهُ ؕ وَتَزَوَّدُوْا فَاِنَّ خَيْرَ الزَّادِ التَّقْوٰى ۫ وَاتَّقُوْنِ يٰٓاُولِى الْاَلْبَابِ ۝ لَيْسَ عَلَيْكُمْ
جُنَاحٌ اَنْ تَبْتَغُوْا فَضْلًا مِّنْ رَّبِّكُمْ ؕ فَاِذَآ اَفَضْتُمْ مِّنْ عَرَفٰتٍ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ عِنْدَ الْمَشْعَرِ الْحَرَامِ ۪
وَاذْكُرُوْهُ كَمَا هَدٰىكُمْ ۚ وَاِنْ كُنْتُمْ مِّنْ قَبْلِهٖ لَمِنَ الضَّآلِّيْنَ ۝ ثُمَّ اَفِيْضُوْا مِنْ حَيْثُ اَفَاضَ
النَّاسُ وَاسْتَغْفِرُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝ فَاِذَا قَضَيْتُمْ مَّنَاسِكَكُمْ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَذِكْرِكُمْ
اٰبَآءَكُمْ اَوْ اَشَدَّ ذِكْرًا ؕ فَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِى الدُّنْيَا وَمَا لَهٗ فِى الْاٰخِرَةِ مِنْ
خَلَاقٍ ۝ وَمِنْهُمْ مَّنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِى الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّفِى الْاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّقِنَا عَذَابَ
النَّارِ ۝ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ نَصِيْبٌ مِّمَّا كَسَبُوْا ؕ وَاللّٰهُ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ۝ وَاذْكُرُوا اللّٰهَ فِىْٓ اَيَّامٍ
مَّعْدُوْدٰتٍ ؕ فَمَنْ تَعَجَّلَ فِىْ يَوْمَيْنِ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ ۚ وَمَنْ تَاَخَّرَ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ ۙ لِمَنِ اتَّقٰى ؕ
وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ اِلَيْهِ تُحْشَرُوْنَ ۝

व अतिम्मुल्-हज्-ज वल्-अुम्र-त लिल्लाहि, फ़-इन् उह्सिर्तुम् फ़-मस्तै-स-र मिनल्-हद्यि व ला तह्लिक़ू रुऊ-सकुम् हत्ता यब्लुग़ल्-हद्यु महिल्लहू, फ़-मन् का-न मिन्कुम् मरीज़न् औ बिही अज़म्-मिर्रअ्सिही फ़-फ़िद्यतुम्-मिन् सियामिन् औ स-द-क़तिन् औ नुसुकिन् फ़-इज़ा अमिन्तुम फ़-मन् तमत्त-अ बिल्-अुम्रति इलल्-हज्जि फ़-मस्तै-स-र	और पूरा करो हज और उमरा अल्लाह के वास्ते, फिर अगर तुम रोक दिये जाओ तो तुम पर है जो कुछ कि मयस्सर हो क़ुरबानी से, और हजामत न करो (यानी बाल न कटवाओ) अपने सरों की जब तक न पहुँच चुके क़ुरबानी अपने ठिकाने पर। फिर जो कोई तुम में से बीमार हो या उसको तकलीफ़ हो सर की, तो बदला दे रोज़े या ख़ैरात या क़ुरबानी, फिर जब तुम्हारी ख़ातिर जमा हो (यानी अमन व इत्मीनान हासिल हो जाये) तो जो कोई फ़ायदा उठाये

मिनल्-हद्यि फ़-मल्लम् यजिद् फ़सियामु सलासति अय्यामिन् फ़िल्-हज्जि व सब्-अतिन् इज़ा रजअ़्तुम, तिल्-क अ़-श-रतुन् कामि-लतुन्, ज़ालि-क लिमल्-लम् यकुन् अह्लुहू हाज़िरिल् मस्जिदिल्-हरामि, वत्तक़ुल्ला-ह वअ़्लमू अन्नल्ला-ह शदीदुल्-अ़िक़ाब (196) ✿

अल्हज्जु अश्हुरुम्-मअ़्लूमातुन् फ़-मन् फ़-र-ज़ फ़ीहिन्नल्-हज्-ज फ़ला र-फ़-स व ला फ़ुसू-क़ व ला जिदा-ल फ़िल्-हज्जि, व मा तफ़्अ़लू मिन् ख़ैरिंय्-यअ़्लम्हुल्लाहु, व तज़व्वदू फ़-इन्-न ख़ैरज़्ज़ादित्तक़्वा वत्तक़ूनि या उलिल्-अल्बाब (197)

लै-स अ़लैकुम् जुनाहुन् अन् तब्तग़ू फ़ज़्लम्-मिर्रब्बिकुम, फ़-इज़ा अफ़ज़्तुम् मिन् अ़-रफ़ातिन् फ़ज़्कुरुल्ला-ह अ़िन्दल्-मश्अ़रिल्-हरामि वज़्कुरूहु कमा हदाकुम् व इन् कुन्तुम् मिन् क़ब्लिही ल-मिनज़्ज़ाल्लीन (198)

सुम्-म अफ़ीज़ू मिन् हैसु अफ़ाज़न्नासु वस्तग़्फ़िरुल्ला-ह, इन्नल्ला-ह ग़फ़ूरुर्रहीम (199) फ़-इज़ा क़ज़ैतुम्

उमरा मिलाकर हज के साथ तो उस पर है जो कुछ मयस्सर हो क़ुरबानी से, फिर जिसको क़ुरबानी न मिले तो रोज़े रखे तीन हज के दिनों में और सात रोज़े जब लौटो, ये दस रोज़े हुए पूरे। यह हुक्म उसके लिये है जिसके घर वाले न रहते हों मस्जिदे हराम के पास, और डरते रहो अल्लाह से, और जान लो कि बेशक अल्लाह का अ़ज़ाब सख़्त है। (196) ✿

हज के चन्द महीने हैं मालूम (निर्धारित), फिर जिस शख़्स ने लाज़िम कर लिया उनमें हज तो बेपर्दा होना जायज़ नहीं औरत से, और न गुनाह करना और न झगड़ा करना हज के ज़माने में, और जो कुछ तुम करते हो नेकी अल्लाह उसको जानता है, और ज़ादे राह (रास्ते का खाना और सामान) ले लिया करो, बेशक बेहतर फ़ायदा ज़ादे राह का बचना है सवाल से, और मुझसे डरते रहो ऐ अ़क़्लमन्दो। (197) कुछ गुनाह नहीं तुम पर कि तलाश करो फ़ज़्ल अपने रब का, फिर जब तवाफ़ के लिये लौटो अ़रफ़ात से तो याद करो अल्लाह को मश्अ़रे-हराम के नज़दीक, और उसको याद करो जिस तरह तुमको सिखलाया और बेशक तुम थे उससे पहले नावाक़िफ़। (198) फिर तवाफ़ के लिये फिरो जहाँ से सब लोग फिरें, और मग़फ़िरत (गुनाहों की माफ़ी) चाहो अल्लाह से, बेशक अल्लाह तआ़ला बख़्शने वाला है

मनासि-ककुम् फ़ज़्कुरुल्ला-ह क-ज़िक्रिकुम् आबा-अकुम् औ अशद्-द ज़िक्रन्, फ़-मिनन्नासि मंय्यक़ूलु रब्बना आतिना फ़िद्दुन्या व मा लहू फ़िल्-आख़ि-रति मिन् ख़लाक़ (200) व मिन्हुम् मंय्यक़ूलु रब्बना आतिना फ़िद्दुन्या ह-स-नतंव् -व फ़िल्-आख़ि-रति ह-स-नतंव्-व क़िना अ़ज़ाबन्नार (201) उलाइ-क लहुम् नसीबुम् मिम्मा क-सबू, वल्लाहु सरीअुल् हिसाब (202) ● वज़्कुरुल्ला-ह फ़ी अय्यामिम्-मअ्दूदातिन् फ़-मन् त-अ़ज्ज-ल फ़ी यौमैनि फ़ला इस्-म अ़लैहि व मन् त-अख़्ख़-र फ़ला इस्-म अ़लैहि लि-मनित्तक़ा, वत्तक़ुल्ला-ह वअ़्लमू अन्नकुम् इलैहि तुह्शरून (203)

मेहरबान। (199) फिर जब पूरे कर चुको अपने हज के काम को तो याद करो अल्लाह को जैसे तुम याद करते थे अपने बाप-दादों को, बल्कि उससे भी ज़्यादा याद करो, फिर कोई आदमी तो कहता है ऐ रब हमारे! दे हमको दुनिया में और उसके लिये आख़िरत में कुछ हिस्सा नहीं। (200) और कोई उनमें कहता है ऐ रब हमारे! दे हमको दुनिया में ख़ूबी और आख़िरत में ख़ूबी, और बचा हम को दोज़ख़ के अ़ज़ाब से। (201) उन्हीं लोगों के वास्ते हिस्सा है अपनी कमाई से, और अल्लाह जल्द हिसाब लेने वाला है। (202) ● और याद करो अल्लाह को गिनती के चन्द दिनों में, फिर जब कोई जल्दी चला गया दो ही दिन में तो उस पर गुनाह नहीं, और जो कोई रह गया तो उस पर भी कुछ गुनाह नहीं जो कि डरता है, और डरते रहो अल्लाह से और जान लो बेशक तुम सब उसी के पास जमा होगे। (203)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 11- हज व उमरे से सम्बन्धित

और (जब हज व उमरा करना हो तो उस) हज और उमरे को अल्लाह तआ़ला के (राज़ी करने के) वास्ते पूरा-पूरा अदा किया करो (कि आमाल व आदाब भी सब बजा लाओ और नीयत भी ख़ालिस सवाब ही की हो)। फिर अगर (किसी दुश्मन की तरफ़ से या बीमारी की वजह से हज व उमरे के पूरा करने से) रोक दिये जाओ तो (उस हालत में यह हुक्म है कि) क़ुरबानी का जानवर जो कुछ मयस्सर हो (ज़िबह करे और हज व उमरे की जो हालत इख़्तियार कर रखी थी रोक दे, इसको एहराम खोलना कहते हैं जिसका तरीक़ा शरीअ़त में सर मुंडाना है, और बाल कटा देने का भी यही

असर है) और (यह नहीं कि फ़ौरन रोक-टोक के साथ ही तुमको एहराम खोलना दुरुस्त हो जाये बल्कि) अपने सरों को (एहराम खोलने की ग़र्ज़ से) उस वक़्त तक न मुंडवाओ जब तक कि (वह) क़ुरबानी (का जानवर जिसके ज़िबह का इस हालत में हुक्म था) अपनी जगह पर न पहुँच जाए, (और वह जगह हरम है कि उस क़ुरबानी का जानवर हरम की हदों में ही ज़िबह किया जा सकता है, वहाँ अगर ख़ुद न जा सके तो किसी के हाथ वहाँ जानवर भेजकर ज़िबह कराया जाये। जब जानवर ज़िबह हो जाये उस वक़्त एहराम खोलना जायज़ होगा), अलबत्ता अगर तुम में से कोई (कुछ) बीमार हो या उसके सर में कुछ (ज़ख़्म या दर्द या जुओं वग़ैरह की) तकलीफ़ हो, (और उस बीमारी या तकलीफ़ की वजह से पहले ही सर मुंडाने की ज़रूरत पड़ जाए) तो (उसको इजाज़त है कि वह सर मुँडवाकर) फ़िदया (यानी उसका शरई बदला) दे दे, (यानी चाहे तीन) रोज़े से या (छह मिस्कीनों को हर एक मिस्कीन को सदक़ा-ए-फ़ित्र के बराबर यानी आधा साअ़ गेहूँ) ख़ैरात (के तौर पर) दे देने या (एक बकरी) ज़िबह कर देने से।

फिर जब अमन की हालत में हो (चाहे तो पहले ही से कोई ख़ौफ़ व रुकावट पेश न आयी हो, या आकर दूर हो गयी हो) तो (इस सूरत में हज व उमरे के मुताल्लिक़ क़ुरबानी करना हर एक के ज़िम्मे नहीं है बल्कि ख़ास) जो शख़्स उमरे से उसको हज के साथ मिलाकर लाभान्वित हुआ हो (यानी हज के दिनों में उमरा भी किया हो) तो (केवल उस पर वाजिब है कि) जो कुछ क़ुरबानी मयस्सर हो (ज़िबह करे, और जिसने सिर्फ़ उमरा किया हो या सिर्फ़ हज किया हो उस पर हज या उमरे के मुताल्लिक़ कोई क़ुरबानी नहीं)। फिर (हज के दिनों में हज व उमरा को जमा करने वालों में से) जिस शख़्स को क़ुरबानी का जानवर मयस्सर न हो (जैसे ग़रीब है) तो (उसके ज़िम्मे बजाय क़ुरबानी के) तीन दिन के रोज़े हैं हज (के दिनों) में (कि उन दिनों का आख़िरी दिन नवीं तारीख़ ज़िलहिज्जा की है), और सात (दिन के रोज़े) हैं जबकि हज से तुम्हारे लौटने का वक़्त आ जाए (यानी हज कर चुको, चाहे लौटना हो या कि वहीं रहना हो), ये पूरे दस (दिन के रोज़े) हुए (और यह भी याद रखो कि अभी जो हज व उमरा के मिलाने का हुक्म हुआ है) यह (मिलाना हर एक को दुरुस्त नहीं, बल्कि ख़ास) उस शख़्स के लिए (दुरुस्त) है जिसके अहल (व अ़याल) "यानी बाल-बच्चे और घर वाले" मस्जिदे हराम (यानी काबा) के क़रीब (आस-पास के इलाक़े) में न रहते हों (यानी मक्का के क़रीब हरम की हदों में वतन रखने वाला न हो) और (इन सब अहकाम के पूरा करने में) अल्लाह तआ़ला से डरते रहो (कि किसी बात में हुक्म के ख़िलाफ़ न हो जाए) और (ख़ूब) जान लो कि बेशक अल्लाह तआ़ला (निडरता दिखाने और मुख़ालफ़त करने वालों को) सख़्त सज़ा देते हैं।

हज (का ज़माना) चन्द महीने हैं जो (मशहूर व) मालूम हैं। (एक शव्वाल, दूसरा ज़ीक़ादा और तीसरा ज़िलहिज्जा की दस तारीख़ें) सो जो शख़्स इन (दिनों) में (अपने ज़िम्मे) हज मुक़र्रर कर ले (कि हज का एहराम बाँध ले) तो फिर (उस शख़्स को) न कोई गन्दी बात (जायज़) है और न कोई नाफ़रमानी (दुरुस्त) है, और न किसी क़िस्म का झगड़ा (व तकरार) मुनासिब है (बल्कि उसको चाहिये कि हर वक़्त नेक ही कामों में लगा रहे) और जो नेक काम करोगे ख़ुदा तआ़ला को उसकी इत्तिला होती है (सो उसका फल तुमको दिया जायेगा)। और (जब हज को जाने लगो) ख़र्च ज़रूर (साथ) ले लिया करो, क्योंकि सबसे बड़ी बात (और ख़ूबी) ख़र्च में (भीख माँगने से) बचा रहना है, और ऐ

अ़क़्ल वालो! (इन हुक्मों के पूरा करने में) मुझसे डरते रहो (और किसी हुक्म के ख़िलाफ़ मत करो)।

(और अगर हज में कुछ तिजारत (ख़रीद-बेच) का सामान साथ ले जाना मस्लेहत समझो तो) तुमको इसमें ज़रा भी गुनाह नहीं कि (हज में) रोज़ी की तलाश करो, जो (तुम्हारी क़िस्मत में) तुम्हारे परवर्दिगार की तरफ़ से (लिखी) है। फिर जब तुम लोग अ़रफ़ात (में ठहर कर वहाँ) से वापस आने लगो तो 'मश्अ़रे हराम' के पास (यानी मुज़्दलिफ़ा में रात को ठहर करके) ख़ुदा तआ़ला की याद करो, और (याद करने के तरीक़े में अपनी राय को दख़ल मत दो, बल्कि) उस तरह याद करो जिस तरह तुमको (अल्लाह तआ़ला ने) बतला रखा है, (न यह कि अपनी राय को दख़ल दो) और हक़ीक़त में इस (बतलाने) से पहले तुम बिल्कुल अन्जान ही थे। फिर (इसमें और भी बात याद रखो कि जैसा क़ुरैश ने दस्तूर निकाल रखा था कि तमाम हाजी लोग तो अ़रफ़ात में होकर फिर वहाँ से मुज़्दलिफ़ा को आते थे और ये मुज़्दलिफ़ा ही में रह जाते थे, अ़रफ़ात न जाते थे, यह जायज़ नहीं, बल्कि) तुम सब को (चाहे क़ुरैश हों या ग़ैर-क़ुरैश) ज़रूरी है कि उसी जगह होकर वापस आओ जहाँ और लोग जाकर वहाँ से वापस आते हैं। और (हज के अहकाम में पुरानी रस्मों पर अ़मल करने से) अल्लाह तआ़ला के सामने तौबा करो, यक़ीनन अल्लाह तआ़ला माफ़ कर देंगे और मेहरबानी फ़रमा देंगे।

(जाहिलीयत यानी इस्लाम से पहले ज़माने में बाज़ों की तो यह आ़दत थी कि हज से फ़ारिग़ होकर मिना में जमा होकर अपने बाप-दादों यानी पुर्खों की बड़ाईयाँ व फ़ज़ाईल बयान किया करते थे, हक़ तआ़ला बजाय इस बेहूदा शग़ल के अपने ज़िक्र की तालीम के लिये फ़रमाते हैं कि) फिर जब तुम अपने हज के आमाल पूरे कर चुको तो हक़ तआ़ला का (शुक्र व अ़ज़मत के साथ) ज़िक्र किया करो जिस तरह तुम अपने बापों (और दादाओं) का ज़िक्र किया करते हो, बल्कि यह ज़िक्र उससे (कई दर्जे) बढ़कर हो (-ना चाहिये, और बाज़ों की आ़दत थी कि हज में ज़िक्र तो अल्लाह तआ़ला ही का करते थे लेकिन चूँकि आख़िरत के क़ायल न थे लिहाज़ा उनका सारा का सारा ज़िक्र सिर्फ़ दुनिया के लिये माँगना होता था। हक़ तआ़ला सिर्फ़ दुनिया चाहने की बुराई बयान फ़रमाकर बजाय इसके दोनों जहान की ख़ैर तलब करने की तरग़ीब देने के लिये फ़रमाते हैं) सो बाज़े आदमी (जो कि काफ़िर हैं) ऐसे हैं जो (दुआ़ में यूँ) कहते हैं कि ऐ हमारे परवर्दिगार! हमको (जो कुछ देना हो) दुनिया में दे दीजिए (और बस, सो उनको जो कुछ मिलना होगा दुनिया में ही मिल जायेगा) और ऐसे शख़्स को आख़िरत में (आख़िरत का इनकार करने की वजह से) कोई हिस्सा न मिलेगा। और बाज़े आदमी (जो कि मोमिन हैं) ऐसे हैं जो (दुआ़ में यूँ) कहते हैं कि ऐ हमारे परवर्दिगार! हमको दुनिया में भी बेहतरी इनायत कीजिए और आख़िरत में भी बेहतरी दीजिए और हमको दोज़ख़ के अ़ज़ाब से बचाईये।

(सो ये लोग ऊपर के लोगों की तरह मेहरूम नहीं बल्कि) ऐसे लोगों को (दोनों जहान में) बड़ा हिस्सा मिलेगा, उनके इस अ़मल की बदौलत (यानी दोनों जहान की ख़ैर माँगने की वजह से), और अल्लाह तआ़ला जल्द ही हिसाब लेने वाले हैं (क्योंकि क़ियामत में हिसाब होगा और क़ियामत नज़्दीक आती जाती है, जब हिसाब जल्दी होने वाला है तो वहाँ की बेहतरी को मत भूलो) और (मिना में ख़ास तरीक़े से भी) अल्लाह तआ़ला का ज़िक्र करो, कई दिन तक (वह ख़ास तरीक़ा कंकरियों का ख़ास तीन पत्थरों पर मारना है, और वो कई दिन दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं तारीख़ें ज़िलहिज्जा की हैं या तेरहवीं भी कि इनमें कंकरियाँ मारी जाती हैं), फिर जो शख़्स (कंकरियाँ मारकर

दसवीं तारीख़ के बाद) दो दिन में (मक्का वापस आने में) जल्दी करे उस पर भी कुछ गुनाह नहीं, और जो शख़्स (इन) दो दिन में (मक्का वापस आने में) ताख़ीर "यानी देरी" करे (कि बारहवीं को न आये बल्कि तेरहवीं को आये) उस पर भी कुछ गुनाह नहीं (और ये सब बातें) उस शख़्स के लिए (हैं) जो (ख़ुदा से) डरे, (और न डरने वाले को गुनाह सवाब ही से ग़र्ज़ नहीं) और अल्लाह तआ़ला से डरते रहो और ख़ूब यक़ीन रखो कि तुम सब को ख़ुदा के ही पास जमा (इकट्ठे) होना है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हज व उमरे के अहकाम

'अबवाबुल-बिर्र' जिनके बयान का सिलसिला सूरः ब-क़रह के आधे हिस्से से चल रहा है, उनमें ग्यारहवाँ हुक्म हज का है। हज का ताल्लुक़ चूँकि मक्का मुकर्रमा और बैतुल्लाह यानी काबा से है इसलिये इससे संबन्धित कुछ मसाईल तो क़िब्ले के बयान में ज़िमनी तौर पर सूरः ब-क़रह की आयत 125 से 128 तक 'व इज़् ज़अ़ल्नल् बै-त मसाबतन्.....' से शुरू होकर 'व अरिना मनासि-कना....' तक ज़िक्र में आ गये हैं फिर क़िब्ले की बहस के ख़त्म पर एक आयत नम्बर 158 'इन्नस्सफ़ा वल्मर्-व-त....' में सफ़ा व मरवा के बीच सई करने का हुक्म भी ज़िमनी तौर पर बयान हो चुका है, अब आयत नम्बर 196 से आयत नम्बर 203 तक 'अतिम्मुल् हज्-ज वल्अुम्-र-त लिल्लाहि.......' से शुरू होकर 'फ़मन् तअ़ज्ज-ल फ़ी यौमैनि.......' तक आठ आयतें लगातार हज व उमरे के अहकाम व मसाईल से संबन्धित हैं।

पूरी उम्मते मुस्लिमा की एक राय है कि हज इस्लाम के अरकान में से एक रुक्न और इस्लामी फ़रीज़ों में से एक अहम फ़र्ज़ है जिसकी ताकीद व अहमियत क़ुरआने करीम की बहुत सी आयतों और बेशुमार सही हदीसों में बयान हुई है।

जमहूर के क़ौल के मुताबिक़ हज की फ़र्ज़ियत हिजरत के तीसरे (यानी ग़ज़वा-ए-उहुद के) साल में सूरः आले इमरान की इस आयत (नम्बर 97) से होती है:

وَلِلّٰهِ عَلَى النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ ..... الاٰية. (ابن كثير)

इसी आयत में हज के फ़र्ज़ होने की शर्तों का बयान और बावजूद क़ुदरत होने के हज न करने पर सख़्त वईद (धमकी) मज़कूर है।

ऊपर ज़िक्र हुई आठ आयतों (यानी इसी सूरत की आयत 196 से 203 तक) में से पहली आयत 'अतिम्मुल् हज्-ज वल्अुम्-र-त लिल्लाहि......' तमाम मुफ़स्सिरीन के नज़दीक हुदैबिया के क़िस्से में नाज़िल हुई, जो सन् 6 हिजरी में पेश आया है। इसी से यह मालूम हो गया कि इस आयत का मक़सद हज का फ़र्ज़ होना बतलाना नहीं, वह तो पहले बतलाया जा चुका है, बल्कि इस जगह हज व उमरे के कुछ ख़ास अहकाम बतलाना मक़सूद है।

उमरे का हुक्म

और चूँकि सूरः आले इमरान जिसमें हज का फ़र्ज़ होना मज़कूर है उसमें सिर्फ़ हज ही का ज़िक्र

है उमरे का नहीं, और यह आयत जिसमें उमरे का ज़िक्र है इसमें असल वाजिब व फ़र्ज़ होने का बयान नहीं बल्कि ज़िक्र इसका है कि जब कोई शख़्स हज या उमरे को एहराम के द्वारा शुरू कर दे तो उसका पूरा करना वाजिब हो जाता है जैसा कि आम नफ़्ली नमाज़ और रोज़े का भी हुक्म यही है कि शुरू करने से वाजिब हो जाते हैं। इसलिये इस आयत से यह मसला मालूम नहीं होता कि उमरा वाजिब है या नहीं, सिर्फ़ यह मालूम होता है कि कोई शुरू कर दे तो उसका पूरा करना वाजिब हो जाता है।

इमाम इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने तिर्मिज़ी, मुस्नद अहमद, बैहक़ी के हवाले से हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से नक़ल किया है कि उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सवाल किया कि क्या उमरा वाजिब है? आपने फ़रमाया वाजिब तो नहीं लेकिन कर लो तो बेहतर व अफ़ज़ल है। (इमाम तिर्मिज़ी ने इस हदीस को हसन सही कहा है) इस वजह से इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि, इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहि वग़ैरह के नज़दीक उमरा वाजिब नहीं सुन्नत है। उक्त आयत में जब यह बयान हुआ कि हज या उमरे का एहराम बाँध लें तो उनका पूरा करना वाजिब हो जाता है तो अब यह सवाल पैदा हुआ कि अगर एहराम बाँधने के बाद कोई मजबूरी पेश आ जाये, हज व उमरा अदा न कर सकें तो क्या करें? इसका बयान बाद के जुमले में 'फ़-इन् उह्सिर्तुम........' (अगर तुम रो दिये जाओ..........) से फ़रमा दिया।

एहराम के बाद कोई मजबूरी पेश आ जाये हज व उमरा अदा न कर सकें तो क्या करें?

यह आयत चूँकि हुदैबिया के वाक़िए में नाज़िल हुई है जिसमें नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने उमरे का एहराम बाँधा हुआ था, मक्का के काफ़िरों ने मक्का में दाख़िल होने और उमरा करने से रोक दिया, इस पर यह हुक्म नाज़िल हुआ कि एहराम का फ़िदया एक क़ुरबानी देना है बकरी, गाय, ऊँट वग़ैरह की जो आसान हो क़ुरबानी देकर एहराम खोल दें, मगर साथ ही अगले जुमले 'व ला तह्लिक़ू रुऊसकुम्....' में यह भी बतला दिया कि एहराम खोलना जिसकी शरई सूरत सर के बाल मुंडवाना या कटवाना है उस वक़्त तक जायज़ नहीं जब तक एहराम वाले की क़ुरबानी अपने मौक़े (क़ुरबानी की जगह) पर पहुँचकर ज़िबह न हो जाये।

मौक़े पर पहुँचने से मुराद इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक यह है कि हरम की हदों में पहुँचकर ज़िबह की जगह जाये, ख़ुद न कर सकें तो किसी दूसरे से करा दें। इस आयत में मजबूरी की यह सूरत कि कोई दुश्मन रुकावट हो जाये स्पष्ट तौर पर मज़कूर है। इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि और कुछ दूसरे इमामों ने बीमारी वग़ैरह की मजबूरी को भी इसमें सबब व कारण के एक होने की वजह से दाख़िल क़रार दिया है और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के अ़मली बयान से यह बात भी साबित हो गयी कि मजबूरी की हालत में क़ुरबानी देकर एहराम खोल देना जायज़ है मगर बाद में क़ज़ा करना वाजिब है जैसा कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने अगले साल उमरे की क़ज़ा की है।

इस आयत में सर मुंडाने को एहराम खोलने की निशानी क़रार दिया गया, जिससे साबित हुआ कि एहराम की हालत में सर मुंडवाना या बाल कटवाना मना है। इसकी मुनासबत से अगला हुक्म यह बतलाया गया कि जो शख़्स हज व उमरे के अरकान (काम) अदा करने से तो मजबूर नहीं मगर एहराम की हालत में कोई मजबूरी सर के बाल मुंडवाने या कटवाने की पेश आ जाये तो वह क्या करे।

एहराम की हालत में बाल मुंडाने पर कोई मजबूर हो जाये तो वह क्या करे?

فَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ مَّرِيْضًا اَوْ بِهٖۤ اَذًى مِّنْ رَّاْسِهٖ

में इरशाद फ़रमाया कि अगर किसी बीमारी के सबब सर या बदन के किसी दूसरे हिस्से के बाल मुंडवाने की मजबूरी हो या सर में जुएँ पैदा होकर तकलीफ़ दे रही हों तो ऐसी सूरत में ज़रूरत के मुताबिक़ बाल मुंडवाना मुजायज़ है, मगर उसका फ़िदया और बदला यह है कि रोज़े रखे, या सदक़ा दे या क़ुरबानी करे। क़ुरबानी के लिये तो हरम की हदों की जगह मुतैयन है, रोज़े और सदक़े के लिये कोई जगह मुतैयन नहीं, हर जगह अदा कर सकता है। क़ुरआन के अलफ़ाज़ में रोज़े का कोई अ़दद और सदक़े की कोई मिक़्दार (मात्रा) मज़कूर नहीं है, मगर हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत कअ़ब बिन उजरा रज़ियल्लाहु अ़न्हु सहाबी की ऐसी ही हालत में यह फ़रमाया कि तीन रोज़े रखें या छह मिस्कीनों को गेहूँ का आधा-आधा साअ़ बतौर सदक़ा दे दें। (सही बुख़ारी) आधा साअ़ हमारे अस्सी तौले के सैर के हिसाब से तक़रीबन पौने दो सैर गेहूँ होते हैं, उनकी क़ीमत सदक़ा कर देना भी काफ़ी है।

हज के महीने में हज व उमरे को जमा करने के अहकाम

इस्लाम से पहले जाहिलीयत के ज़माने के अ़रब वालों का ख़्याल था कि जब हज के महीने शुरू हो जायें यानी **शव्वाल** का महीना शुरू हो जाये तो उन दिनों में हज व उमरे का जमा (एक साथ) करना सख़्त गुनाह है। इस आयत के आख़िरी हिस्से में उनके इस ख़्याल की इस्लाह इस तरह कर दी गई कि **मीक़ात** की हदों के अन्दर रहने वालों के लिये तो हज व उमरा दोनों को हज के महीनों में जमा करना मना (वर्जित) रखा गया, क्योंकि उनको हज के महीनों के बाद दोबारा उमरे के लिये सफ़र करना मुश्किल नहीं, लेकिन **मीक़ात** की हदों के बाहर से आने वालों के लिये जमा करने को जायज़ क़रार दिया कि दूर-दराज़ से उमरे के लिये मुस्तक़िल सफ़र करना उनके लिये आसान नहीं। **मीक़ात** वो निर्धारित मक़ामात (जगहें) हैं जो दुनिया के चारों तरफ़ से मक्का में आने वालों के हर रास्ते पर अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से मुतैयन हैं कि जब मक्का के इरादे से आने वाला मुसाफ़िर यहाँ पहुँचे तो यहाँ से हज या उमरे की नीयत से एहराम बाँधना लाज़िम है, बग़ैर एहराम के यहाँ से आगे बढ़ना जुर्म व गुनाह है:

لِمَنْ لَّمْ يَكُنْ اَهْلُهٗ حَاضِرِى الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ

का यही मफ़्हूम (मतलब) है, कि जिस शख़्स के अहल व अ़याल (बाल-बच्चे, घर वाले) मस्जिदे हराम के आस-पास यानी मीक़ात की हदों के अन्दर नहीं रहते, मक़सद यह है कि उसका वतन मीक़ात की हदों के अन्दर नहीं है, उसके लिये हज व उमरे को हज के महीनों में जमा करना जायज़ है, अलबत्ता जो लोग हज व उमरे को हज के महीनों में जमा करें उन पर वाजिब है कि दोनों इबादतों को जमा करने का शुक्राना अदा करें, वह यह है कि जिसको क़ुरबानी देने की क़ुदरत हो वह एक क़ुरबानी दे दे, बकरी, गाय, ऊँट जो उसके लिये आसान हो, लेकिन जिस शख़्स की माली हैसियत क़ुरबानी अदा करने के क़ाबिल नहीं उस पर दस रोज़े इस तरह वाजिब हैं कि तीन रोज़े तो हज के दिनों के अन्दर ही रखे, यानी नवीं ज़िलहिज्जा तक पूरे कर दे, बाक़ी सात रोज़े हज से फ़ारिग़ होकर जहाँ चाहे और जब चाहे रखे, वहीं मक्का मुकर्रमा में रहकर पूरे करे या घर वापस आकर, इख़्तियार है। अगर कोई शख़्स तीन रोज़े हज के दिनों में न रख सका तो फ़िर इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि और बड़े सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के नज़दीक उसके लिये क़ुरबानी करना ही मुतैयन है, जब क़ुदरत (हिम्मत व गुंजाईश) हो किसी के ज़रिये हरम में क़ुरबानी करा दे। (जस्सास)

तमत्तो व क़िरान

हज के महीनों में हज के साथ उमरे को जमा करने की दो सूरतें हैं- एक यह कि मीक़ात से ही हज और उमरा दोनों का एहराम एक साथ बाँध ले, इसको हदीस की इस्तिलाह में **क़िरान** कहा गया है, इसका एहराम हज के एहराम के साथ खुलता है। हज के आख़िरी दिनों तक उसको एहराम ही की हालत में रहना पड़ता है। दूसरे यह कि मीक़ात से सिर्फ़ उमरे का एहराम बाँधे और मक्का मुकर्रमा पहुँचकर उमरे के अरकान अदा करके एहराम खोल दे, फिर आठवीं तारीख़ ज़िलहिज्जा को मिना जाने के वक़्त हज का एहराम हरम शरीफ़ के अन्दर ही बाँध ले, इसको इस्तिलाह में **तमत्तो** कहा जाता है, और लफ़्ज़ी मायने के एतिबार से लफ़्ज़ तमत्तो दोनों सूरतों पर हावी है, क्योंकि इसके मायने हैं हज व उमरे को जमा करके फ़ायदा उठाना और वह दोनों सूरतों में बराबर है। क़ुरआन की उक्त आयत में 'फ़मन् तमत्त-अ़' इसी आ़म मायने में है।

हज व उमरे के अहकाम में ख़िलाफ़वर्ज़ी और कोताही अ़ज़ाब का सबब है

आयत के आख़िर में पहले तक़वा इख़्तियार करने का हुक्म दिया जिसके मायने हैं अल्लाह तआ़ला के अहकाम की ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) से डरने और बचने के। इसके बाद फ़रमायाः

وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ۝

यानी जो शख़्स जान-बूझकर अल्लाह तआ़ला के अहकाम की ख़िलाफ़वर्ज़ी करता है उसके लिये अल्लाह तआ़ला का सख़्त अ़ज़ाब है। आजकल हज व उमरा को जाने वाले अधिकतर लोग इससे ग़ाफ़िल हैं, अव्वल तो हज व उमरे के अहकाम मालूम करने ही की पूरी कोशिश नहीं करते, फिर मालूम भी हो तो ज़्यादातर लोग उनके मुताबिक़ अ़मल नहीं करते। लापरवाह और जाहिल साथियों

और मुअ़ल्लिमों की बेपरवाई से बहुत से वाजिबात तक छूट जाते हैं और सुन्नतों व आदाब का तो कहना क्या। अल्लाह तआ़ला सब को अमल की इस्लाह की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमायें।

हज के अहकाम की आठ आयतों में से दूसरी आयत और उसके मसाईल

اَلْحَجُّ اَشْهُرٌ مَّعْلُوْمٰتٌ

अश्हुर, शह्रुन् की जमा (बहुवचन) है, जिसके मायने हैं **महीना**। पिछली आयत में यह बतलाया गया था कि जो कोई हज या उमरे का एहराम बाँध ले तो उस पर लाज़िम आता है कि उसके अहकाम पूरे अदा करे। इन दोनों में उमरे के लिये तो कोई तारीख़ और महीना मुक़र्रर नहीं, साल भर में जब चाहें कर सकते हैं, लेकिन हज के लिये महीने और उसके काम व आमाल के लिये ख़ास तारीख़ें और वक़्त मुक़र्रर हैं, इसलिये इस आयत के शुरू में यह बतला दिया कि हज का मामला उमरे की तरह नहीं है, इसके लिये कुछ महीने मुक़र्रर हैं जो परिचित व मशहूर हैं। अ़रब के जाहिलीयत के ज़माने से लेकर इस्लाम के ज़माने तक यही महीने हज के मुक़र्रर रहे हैं। वे महीने **शव्वाल, ज़ीक़ादा** और दस रोज़ **ज़िलहिज्जा** के हैं जैसा कि हदीस में हज़रत अबू अमामा व हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा की रिवायत से मन्क़ूल है। (तफ़सीरे मज़हरी)

शव्वाल से हज के महीने शुरू होने का हासिल यह है कि इससे पहले हज का एहराम बाँधना जायज़ नहीं। कुछ इमामों के नज़दीक तो शव्वाल से पहले के एहराम से हज की अदायेगी ही नहीं हो सकती। इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक उस एहराम से हज तो अदा हो जायेगा मगर मक्रूह होगा। (तफ़सीरे मज़हरी)

فَمَنْ فَرَضَ فِيْهِنَّ الْحَجَّ فَلَا رَفَثَ وَلَا فُسُوْقَ وَلَا جِدَالَ فِى الْحَجِّ

इसमें हज का एहराम बाँधने वाले के लिये कुछ मनफ़ी (वर्जित, यानी बचने की चीज़ों के) आदाब व अहकाम का बयान है जिनसे एहराम की हालत में परहेज़ करना लाज़िम व वाजिब है, वे तीन चीज़ें हैं- रफ़स, फ़ुसूक़ और जिदाल।

रफ़स एक जामे लफ़्ज़ है, जिसमें औरत से सोहबत और उससे संबन्धित और उसकी तरफ़ ले जाने वाली चीज़ें यहाँ तक कि ज़बान से औरत के साथ उसकी खुली गुफ़्तगू भी दाख़िल है। एहराम वाले को एहराम की हालत में ये सब चीज़ें हराम हैं, इशारे किनाये में तो कोई बात नहीं।

फ़ुसूक़ के लफ़्ज़ी मायने निकलने के हैं। क़ुरआन की इस्तिलाह में हुक्म के ख़िलाफ़ करने और नाफ़रमानी को फ़ुसूक़ कहा जाता है, जो अपने आ़म मायने के एतिबार से सब गुनाहों को शामिल है। इसी लिये कुछ हज़रात ने इस जगह आ़म मायने ही मुराद लिये हैं, मगर हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इस जगह फ़ुसूक़ की तफ़सीर उन कामों से फ़रमाई है जो एहराम की हालत में मना और नाजायज़ हैं, और यह ज़ाहिर है कि इस मक़ाम के मुनासिब यही तफ़सीर है, क्योंकि आ़म गुनाहों की मनाही एहराम के साथ ख़ास नहीं, वह तो हर हाल में हराम हैं।

वो चीज़ें जो अपनी असल से गुनाह नहीं मगर एहराम की वजह से नाजायज़ हो जाती हैं, छह चीज़ें हैं- अव्वल औरत के साथ सोहबत और उससे संबन्धित तमाम बातें यहाँ तक कि खुली गुफ़्तगू भी। दूसरे ख़ुश्की के जानवरों का शिकार ख़ुद करना या शिकारी को बतलाना। तीसरे बाल या नाख़ुन कटवाना। चौथे ख़ुशबू का इस्तेमाल। ये चार चीज़ें तो मर्द व औरत दोनों के लिये एहराम की हालत में नाजायज़ हैं, बाक़ी दो चीज़ें मर्दों के साथ ख़ास हैं, यानी सिले हुए कपड़े पहनना और सर और चेहरे को ढाँपना। इमामे आज़म अबू हनीफ़ा और इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहिमा के नज़दीक चेहरे को ढाँपना एहराम की हालत में औरत के लिये भी नाजायज़ है इसलिये यह भी उन बातों में मुश्तरक है जिनसे एहराम की हालत में बचना ज़रूरी है।

इन छह चीज़ों में पहली यानी औरत से सोहबत वग़ैरह अगरचे फ़ुसूक़ में दाख़िल है लेकिन इसको फ़ुसूक़ से पहले अलग करके लफ़्ज़ **रफ़स** से इसलिये बतला दिया कि एहराम में इससे बचना सबसे ज़्यादा अहम है, क्योंकि एहराम की हालत में मना की गयी दूसरी चीज़ों के करने का तो कोई बदल और कफ़्फ़ारा भी हो जाता है और मुबाशरत (औरत के साथ खुली हरकत करने) की कुछ सूरतें ऐसी भी हैं कि अगर उनमें कोई मुब्तला हो जाये तो हज ही फ़ासिद हो जाता है, इसका कोई कफ़्फ़ारा नहीं हो सकता। जैसे अ़रफ़ात में ठहरने से पहले बीवी से सोहबत कर ली तो हज फ़ासिद हो गया, और इसका जुर्माना भी गाय या ऊँट की क़ुरबानी से देना पड़ेगा और अगले साल फिर हज करना पड़ेगा, इस विशेष अहमियत की बिना पर इसको 'फ़ला र-फ़-स' के लफ़्ज़ से मुस्तक़िल और अलग तौर पर बयान फ़रमा दिया।

जिदाल के मायने तो एक दूसरे को पछाड़ने की कोशिश के हैं, इसलिये सख़्त क़िस्म के झगड़े को जिदाल कहा जाता है। यह लफ़्ज़ भी बहुत आ़म है और कुछ मुफ़स्सिरीन हज़रात ने आ़म ही मायने मुराद लिये हैं और कुछ हज़रात ने हज व एहराम के मक़ाम की मुनासबत से इस जगह जिदाल के मायने यह लिये हैं कि अ़रब की जाहिलीयत के ज़माने के लोग वक़ूफ़ (ठहरने) के मक़ाम के बारे में मतभेद रखते थे, कुछ लोग **अ़रफ़ात** में वक़ूफ़ करना ज़रूरी समझते थे जैसा कि हक़ीक़त है, और कुछ **मुज़्दलिफ़ा** में वक़ूफ़ ज़रूरी कहते थे, अ़रफ़ात में जाने को ज़रूरी नहीं समझते थे और इसी को मौक़फ़े इब्राहीम (हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के ठहरने की जगह) क़रार देते थे। इसी तरह हज के वक़्तों के मामले में भी इख़्तिलाफ़ (मतभेद) था, कुछ लोग ज़िलहिज्जा में हज करते थे और कुछ ज़ीक़ादा ही में कर लेते थे, और फिर इन मामलों में आपसी विवाद और झगड़े होते थे, एक दूसरे को गुमराह कहता था। क़ुरआने करीम ने 'ला जिदा-ल' फ़रमाकर इन झगड़ों का ख़ात्मा फ़रमाया और जो बात हक़ थी कि वक़ूफ़-ए-फ़र्ज़ अ़रफ़ात में और फिर वक़ूफ़-ए-वाजिब मुज़्दलिफ़ा में किया जाये और हज सिर्फ़ ज़िलहिज्जा के दिनों में किया जाये इसका ऐलान करके इसके ख़िलाफ़ झगड़ा करने को ममनू (वर्जित और निषेध) कर दिया।

इस तफ़सीर व तक़रीर के लिहाज़ से इस आयत में सिर्फ़ एहराम में मना की गयी बातों का बयान हुआ जो अगरचे अपने आप में जायज़ हैं मगर एहराम की वजह से ममनू कर दी गई हैं जैसे नमाज़, रोज़े की हालत में खाना पीना कलाम करना वग़ैरह जायज़ चीज़ों को मना कर दिया गया है।

और कुछ हज़रात ने इस जगह फ़ुसूक़ व जिदाल को आ़म मायने में लेकर मक़सद यह क़रार दिया कि अगरचे फ़िस्क़ व गुनाह, इसी तरह आपस में जिदाल व झगड़ा हर जगह हर हाल में बुरा और गुनाह है, लेकिन एहराम की हालत में उसका गुनाह और ज़्यादा सख़्त हो जाता है, मुबारक दिनों और पवित्र सरज़मीन में जहाँ सिर्फ़ अल्लाह के लिये इबादत के वास्ते आते हैं और लब्बैक-लब्बैक पुकार रहे हैं, एहराम का लिबास उनको हर वक़्त इसकी याददेहानी करा रहा है कि तुम इस वक़्त इबादत में हो, ऐसी हालत में फ़िस्क़ व फ़ुजूर (बुराई व गुनाह) और लड़ना-झगड़ना इन्तिहाई बेबाकी और सख़्त तरीन गुनाह हो जाता है।

इस आ़म मायने के एतिबार से इस जगह रफ़स, फ़ुसूक़, जिदाल से रोकने और उनकी हुर्मत (हराम होने) को बयान करने में एक हिक्मत यह भी हो सकती है कि हज के मक़ाम और हज के ज़माने के हालात ऐसे हैं कि इनमें इनसान को इन तीनों चीज़ों में मुलव्वस (लिप्त) होने के मौक़े बहुत पेश आते हैं। एहराम की हालत में अक्सर अपने अहल व अ़याल (बीवी बच्चों) से एक लम्बी मुद्दत तक अलग रहना पड़ता है और फिर तवाफ़, सई, अ़रफ़ात, मुज़्दलिफ़ा और मिना के इकट्ठा होने में कितनी भी एहतियात बरती जाये औरतों मर्दों का साथ रहना और मेल-मिलाप हो ही जाता है, ऐसी हालत में नफ़्स पर क़ाबू पाना आसान नहीं। इसलिये सबसे पहले **रफ़स** की हुर्मत (हराम होने) का बयान फ़रमाया। इसी तरह इस अ़ज़ीमुश्शान इज्तिमा में चोरी वग़ैरह दूसरे गुनाहों के मौक़े भी बेशुमार पेश आते हैं, इसलिये 'ला फ़ुसू-क़' की हिदायत फ़रमा दी। इसी तरह हज के सफ़र में शुरू से आख़िर तक बेशुमार मौक़े इसके भी पेश आते हैं कि सफ़र के साथी और दूसरे लोगों से जगह की तंगी और दूसरे कारणों की बिना पर लड़ाई-झगड़ा हो जाये, इसलिये 'ला जिदा-ल' का हुक्म दिया गया।

क़ुरआन का उम्दा अन्दाज़े बयान

इस आयत 'फ़ला र-फ़-स व ला फ़ुसू-क़ व ला जिदा-ल' के अलफ़ाज़ नफ़ी के अलफ़ाज़ हैं (यानी इनमें इन कामों की मानाही की गयी है) ये सब चीज़ें हज में नहीं हैं, हालाँकि मक़सद इन चीज़ों से रोकना और मना करना है, जिसका तक़ाज़ा यह था कि यूँ कहा जाता कि औ़रत से अलग रहो, गुनाह से बचो और झगड़ा न करो। मगर यहाँ मना करने की जगह नफ़ी के अलफ़ाज़ रखकर इस तरफ़ इशारा फ़रमा दिया कि इन कामों की हज में कोई गुन्जाईश और तसव्वुर ही नहीं।

وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ يَّعْلَمْهُ اللّٰهُ

एहराम की हालत में जिन चीज़ों से बचना लाज़िमी है और इस हालत में जो बातें मना हैं उनका बयान फ़रमाने के बाद आख़िर में इस जुमले में यह हिदायत दी गई कि हज के मुबारक दिनों और पवित्र मक़ामात में तो सिर्फ़ यही नहीं कि बचने की चीज़ों और गुनाहों से बचो बल्कि मौक़े को ग़नीमत जानकर इबादत व ज़िक्रुल्लाह और नेक कामों में लगे रहो, तुम जो भी नेक काम करोगे वह अल्लाह के इल्म में है और तुम्हें उस पर बड़े इनामात मिलेंगे।

وَتَزَوَّدُوْا فَاِنَّ خَيْرَ الزَّادِ التَّقْوٰى

इसमें उन लोगों की इस्लाह है जो हज व उमरे के लिये बिना सामान निकल खड़े होते हैं और

दावा यह करते हैं कि हम अल्लाह पर तवक्कुल (भरोसा) करते हैं, फिर रास्ते में भीख माँगनी पड़ती है या ख़ुद भी तकलीफ़ उठाते हैं और दूसरों को भी परेशान करते हैं। उनकी हिदायत के लिये हुक्म हुआ कि हज के सफ़र के लिये सफ़र की ज़रूरी चीज़ें साथ लेना चाहिये यह तवक्कुल के मनाफ़ी (ख़िलाफ़) नहीं, बल्कि तवक्कुल की हक़ीक़त यही है कि अल्लाह तआ़ला के दिये हुए असबाब व साधनों को अपनी हिम्मत व ताक़त के मुताबिक़ हासिल और जमा करे, फिर अल्लाह तआ़ला पर तवक्कुल करे। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से तवक्कुल की यही तफ़सीर मन्क़ूल है, असबाब को बिल्कुल छोड़ देने का नाम तवक्कुल रखना जहालत है।

हज के सफ़र में तिजारत या मज़दूरी करना कैसा है?

لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَبْتَغُوْا فَضْلًا مِّنْ رَّبِّكُمْ.

"यानी तुम पर इसमें कोई गुनाह नहीं कि तुम हज के सफ़र में तिजारत या मज़दूरी के ज़रिये कुछ रोज़ी कमा लो और अल्लाह तआ़ला का दिया हुआ रिज़्क़ हासिल करो।"

इस आयत के नाज़िल होने का वाक़िआ़ यह है कि जाहिलीयत (इस्लाम से पहले) के ज़माने में अ़रब वालों ने जिस तरह तमाम इबादतों और मामलात की असल शक्ल बिगाड़ करके तरह-तरह की बेहूदा रस्में उनमें शामिल कर दी थीं और इबादतों को भी खेल-तमाशा बना दिया था, इसी तरह हज के कामों में भी तरह-तरह की बेहूदगियाँ करते थे। मिना के विशाल इज्तिमा में उनके ख़ास-ख़ास बाज़ार लगते थे, नुमाईश होती थी, तिजारतों को बढ़ावा देने के साधन और तरीक़े अपनाये जाते थे। इस्लाम आया और हज मुसलमानों पर फ़र्ज़ किया गया तो इन तमाम बेहूदा रस्मों का ख़ात्मा किया गया, सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम जो अल्लाह की रज़ा और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात पर मिट जाने वाले थे, अब उनको यह ख़्याल हुआ कि हज के दिनों में तिजारत करना या मज़दूरी करके कुछ कमा लेना यह भी जाहिलीयत की पैदावार है, शायद इस्लाम में इसकी पूरी तरह मनाही और हुर्मत (हराम होना) हो जाये, यहाँ तक कि एक साहिब हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के पास आये और यह सवाल किया कि हमारा पेशा पहले से यह है कि हम ऊँट किराये पर चलाते हैं, कुछ लोग हमारे ऊँट हज के लिये किराये पर ले जाते हैं, हम उनके साथ जाते हैं और हज करते हैं, क्या हमारा हज नहीं होगा? हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि एक शख़्स रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुआ था और आप से यही सवाल किया था जो तुम मुझसे कर रहे हो, आपने उसको उस वक़्त कोई जवाब न दिया, यहाँ तक कि यह आयत नाज़िल हुई:

لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَبْتَغُوْا فَضْلًا مِّنْ رَّبِّكُمْ

उस वक़्त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उस शख़्स को बुलवाया और फ़रमाया कि हाँ तुम्हारा हज सही है।

ग़र्ज़ कि इस आयत ने यह वाज़ेह (स्पष्ट) कर दिया कि अगर कोई शख़्स हज के दौरान में कोई ख़रीद व बेच या मज़दूरी करे जिससे कुछ नफ़ा हो जाये तो इसमें कोई गुनाह नहीं, हाँ अ़रब के

काफ़िरों ने जो हज को तिजारत की मंडी और नुमाईश स्थल बना लिया था इसकी इस्लाह क़ुरआन के दो लफ़्ज़ों से कर दी गई- एक तो यह कि जो कुछ कमायें उसको अल्लाह तआ़ला का फ़ज़्ल और अ़ता समझकर हासिल करें, शुक्रगुज़ार हों, सिर्फ़ सरमाया समेटना मक़सद न हो 'फ़ज़्लम् मिर्रब्बिकुम' में इसी की तरफ़ इशारा है। दूसरे 'लै-स अ़लैकुम् जुनाहुन्' के लफ़्ज़ ने यह बतला दिया कि इस कमाई में तुम पर कोई गुनाह नहीं। जिसमें एक इशारा इस तरफ़ है कि अगर इससे भी परहेज़ किया जाये तो बेहतर है, क्योंकि इससे कामिल इख़्लास में फ़र्क़ आता है और हक़ीक़त मसले की यह है कि इसका असल मदार नीयत पर है, अगर किसी शख़्स की नीयत असल में दुनियावी नफ़ा, तिजारत या मज़दूरी है और ज़िमनी तौर पर हज का भी इरादा कर लिया या नफ़ा, तिजारत और हज का इरादा दोनों बराबर सूरत में हैं, तब तो यह इख़्लास के ख़िलाफ़ है, हज का सवाब इससे कम हो जायेगा और हज की बरकतें जैसी हासिल होनी चाहियें वैसी हासिल न होंगी। और अगर असल नीयत हज की है इसी के शौक़ में निकला है लेकिन हज के ख़र्च में या घर की ज़रूरतों में तंगी है उसको पूरा करने के लिये कोई मामूली तिजारत या मज़दूरी कर ली, यह इख़्लास के बिल्कुल मनाफ़ी नहीं, हाँ इसमें भी बेहतर यह है कि ख़ास उन पाँच दिनों में जिनमें हज के काम अदा होते हैं उनमें कोई मश्ग़ला तिजारत व मज़दूरी का न रखे बल्कि उन दिनों को ख़ालिस इबादत व ज़िक्र में गुज़ारे, इसी वजह से बाज़ उलेमा ने ख़ास उन दिनों में तिजारत व मज़दूरी को ममनू (वर्जित) भी फ़रमाया है।

अ़रफ़ात में वक़ूफ़ और उसके बाद मुज़्दलिफ़ा का वक़ूफ़

इसके बाद इसी आयत में इरशाद है:

فَإِذَآ أَفَضْتُم مِّنْ عَرَفَٰتٍ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ عِندَ الْمَشْعَرِ الْحَرَامِ وَاذْكُرُوهُ كَمَا هَدَٰكُمْ وَإِن كُنتُم مِّن قَبْلِهِ لَمِنَ الضَّآلِّينَ۝

"यानी फिर जब तुम अ़रफ़ात से वापस आने लगो तो मश्अ़रे-हराम के पास ख़ुदा तआ़ला की याद करो, और उस तरह याद करो जिस तरह तुमको बतला रखा है, और हक़ीक़त में अल्लाह तआ़ला के बतलाने से पहले तुम बिल्कुल नावाक़िफ़ थे।"

इसमें बतलाया गया है कि अ़रफ़ात से वापसी में रात को मुज़्दलिफ़ा में क़ियाम और उसका ख़ास ज़िक्र वाजिब हैं।

अ़रफ़ात लफ़्ज़ के एतिबार से जमा (बहुवचन) है और एक ख़ास मैदान का नाम है जिसकी चौकोर हदें परिचित व मशहूर हैं। यह मैदान हरम से बाहर स्थित है, हाजियों को इसमें पहुँचना और सूरज ढलने से मग़रिब तक यहाँ क़ियाम करना (ठहरना) हज में हज का अहम तरीन फ़र्ज़ है जिसके छूट जाने का कोई कफ़्फ़ारा और फ़िदया (बदला और पूरक) नहीं हो सकता।

अ़रफ़ात को अ़रफ़ात कहने की बहुत सी वुजूहात (कारण) बतलाई जाती हैं उनमें वाज़ेह यह है कि इस मैदान में इनसान अपने रब की मारिफ़त (पहचान) और इबादत व ज़िक्रुल्लाह के ज़रिये उसकी निकटता हासिल करता है तथा पूरब व पश्चिम (यानी पूरी दुनिया) के मुसलमानों को आपस में परिचित होने का एक मौक़ा मिलता है। क़ुरआन पाक में इसकी ताकीद फ़रमाई है कि अ़रफ़ा के दिन

मग़रिब के बाद अ़रफ़ात से वापस आते हुए मश्अ़रे-हराम के पास ठहरना चाहिये। मश्अ़रे-हराम एक पहाड़ का नाम है जो मुज़्दलिफ़ा में स्थित है। मश्अ़र के मायने शिआ़र और निशानी के हैं और हराम सम्मानित और मुक़द्दस के मायने में है। मायने यह हैं कि यह पहाड़ शिआ़रे इस्लाम (इस्लाम की निशानियों) के इज़्हार के लिये एक मुक़द्दस मक़ाम (पवित्र स्थान) है, इसके आस-पास के मैदान को मुज़्दलिफ़ा कहते हैं। इस मैदान में रात गुज़ारना और मग़रिब व इशा दोनों नमाज़ों को एक वक़्त में मुज़्दलिफ़ा में पढ़ना वाजिब है। मश्अ़रे-हराम के पास अल्लाह तआ़ला को याद करना अगरचे हर तरह के ज़िक्रुल्लाह को शामिल है मगर विशेष तौर पर दोनों नमाज़ों को एक वक़्त यानी मग़रिब को इशा के साथ अदा करना इस जगह मख़्सूस इबादत है। आयत के जुमले 'वज़्कुरूहु कमा हदाकुम्' में शायद इसी की तरफ़ इशारा है कि अल्लाह तआ़ला ने अपनी याद और ज़िक्र के लिये जो तरीक़ा बतलाया है उसी तरह उसको याद करो, अपनी राय और क़ियास को उसमें दख़ल न दो, क्योंकि राय और क़ियास का तक़ाज़ा तो यह था कि मग़रिब की नमाज़ मग़रिब के वक़्त में पढ़ी जाती, इशा की इशा के वक़्त में, लेकिन उस दिन उस मक़ाम पर हक़ तआ़ला को यही पसन्द है कि मग़रिब की नमाज़ देर करके अदा की जाये, उसको इशा के साथ पढ़ा जाये।

क़ुरआन का इरशाद 'वज़्कुरूहु कमा हदाकुम' से एक और भी उसूली मसला निकल आया कि ज़िक्रुल्लाह और इबादत में आदमी ख़ुद-मुख़्तार नहीं कि अल्लाह तआ़ला को जिस तरह चाहे याद करे और जिस तरह चाहे उसकी इबादत करे, बल्कि ज़िक्रुल्लाह और हर इबादत के ख़ास आदाब हैं, उनके मुवाफ़िक़ अदा करना ही इबादत है, उसके ख़िलाफ़ करना जायज़ नहीं और उसमें कमी-बेशी या आगे-पीछे करना चाहे उसमें ज़िक्रुल्लाह की कुछ ज़्यादती भी हो वह अल्लाह तआ़ला को पसन्द नहीं, नफ़्ली इबादतें और सदक़ा व ख़ैरात वग़ैरह में जो लोग बिना शरई दलील अपनी तरफ़ से कुछ ख़ुसूसियात और इज़ाफ़े कर लेते हैं, और उनकी पाबन्दी को ज़रूरी समझ लेते हैं, हालाँकि अल्लाह और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इसको ज़रूरी क़रार नहीं दिया और उन कामों के न करने वालों को ख़तावार समझते हैं, इस आयत ने उनकी ग़लती को वाज़ेह कर दिया कि वह जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने के लोगों) की इबादत है कि अपनी राय व क़ियास से इबादत की सूरतें गढ़ रखी थीं और चन्द रस्मों का नाम इबादत रख लिया था। इसके बाद तीसरी आयत में इरशाद है:

ثُمَّ اَفِيْضُوْا مِنْ حَيْثُ اَفَاضَ النَّاسُ وَاسْتَغْفِرُوا اللّٰهَ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ○

"यानी फिर तुम सब को ज़रूरी है कि उसी जगह होकर वापस आओ जहाँ और लोग जाकर वापस आते हैं, और अल्लाह तआ़ला के सामने तौबा करो, यक़ीनन अल्लाह तआ़ला माफ़ कर देंगे और मेहरबानी फ़रमा देंगे।"

इस जुमले का शाने नुज़ूल (उतरने का मौक़ा और सबब) यह है कि अ़रब के क़ुरैश जो बैतुल्लाह के मुहाफ़िज़ व मुजाविर थे और सारे अ़रब में उनका इक़्तिदार (ताक़त व हुकूमत) माना हुआ था और उनकी एक विशेष हैसियत थी, जाहिलीयत के ज़माने में वह अपनी विशेष और अलग शान बनाने के लिये यह हरकत करते थे, और सब लोग तो अ़रफ़ात को जाते और वहाँ वक़ूफ़ करके वापस आते थे,

ये लोग रास्ते में मुज़्दलिफ़ा के अन्दर ही ठहर जाते और कहते थे कि हम चूँकि बैतुल्लाह और हरम के मुजाविर हैं इसलिये हरम की हदों से बाहर जाना हमारे लिये मुनासिब नहीं, मुज़्दलिफ़ा हरम की हदों के अन्दर है और अरफ़ात उससे बाहर है, यह बहाना करके मुज़्दलिफ़ा ही में क़ियाम कर लेते और वहीं से वापस आ जाया करते थे, और दर हक़ीक़त वजह इस हीले-बहाने की अपना फ़ख़्र व ग़ुरूर (बड़ाई व अभिमान) और आम लोगों से मुमताज़ (नुमायाँ) होकर रहना था, हक़ तआ़ला के इस फ़रमान ने उनके ग़लत काम करने को वाज़ेह फ़रमा दिया और उनको हुक्म दिया कि तुम भी वहीं जाओ जहाँ सब लोग जाते हैं यानी अ़रफ़ात में, और फिर वहीं से सब के साथ वापस आओ।

अव्वल तो आ़म इनसानों से अपने आपको मुमताज़ (नुमायाँ और ख़ास) करके रखना ख़ुद एक घमंड वाला काम है जिससे हमेशा ही परहेज़ लाज़िम है, ख़ास कर हज के दिनों में जहाँ लिबास एहराम और फिर क़ियाम व मक़ाम की समानता के ज़रिये इसी का सबक़ देना है कि इनसान सब बराबर हैं, अमीर व ग़रीब या आ़लिम व जाहिल या बड़े छोटे का यहाँ कोई फ़र्क़ और भेदभाव नहीं, एहराम की हालत में यह इम्तियाज़ी शान बनाना और भी ज़्यादा जुर्म है।

इनसानी बराबरी का सुनहरा सबक़ और इसकी बेहतरीन अ़मली सूरत

क़ुरआन पाक के इस इरशाद से रहन-सहन और सामाजिक ज़िन्दगी के उसूल की एक अहम बात यह मालूम हुई कि रहन-सहन क़ियाम व मक़ाम में बड़ों को चाहिये कि छोटों से अलग नुमायाँ होकर न रहें बल्कि मिल-जुलकर रहें कि इसमें आपसी भाईचारे, हमदर्दी और मुहब्बत व ताल्लुक़ पैदा होता है, और अमीर व ग़रीब का भेदभाव मिटता है, मज़दूर व सरमायेदार की जंग ख़त्म होती है।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने आख़िरी हज के ख़ुतबे में इसको ख़ूब वाज़ेह (स्पष्ट) करके इरशाद फ़रमाया कि किसी अ़रबी को अ़जमी (ग़ैर-अ़रबी) पर या गोरे को काले पर कोई फ़ज़ीलत (बड़ाई) नहीं, फ़ज़ीलत का मदार तक़्वे और अल्लाह की इताअ़त पर है, इसी लिये जो लोग इनके ख़िलाफ़ मुज़्दलिफ़ा में क़ियाम करके अपनी विशेष और नुमायाँ हैसियत बनाना चाहते थे उनके इस फ़ेल (काम) को गुनाह क़रार देकर उन पर लाज़िम किया कि अपने इस गुनाह से तौबा व इस्तिग़फ़ार करें ताकि अल्लाह तआ़ला उनकी ख़तायें माफ़ फ़रमा दें और अपनी रहमत फ़रमायें।

जाहिलीयत की रस्मों की इस्लाह

मिना में फ़ुज़ूल जलसों और प्रोग्रामों की मनाही

चौथी, पाँचवीं और छठी आयतों में इस्लाम से पहले ज़माने की चन्द रस्मों इस्लाह की गई है, एक तो यह कि अ़रब वाले ज़माना-ए-जाहिलीयत में अ़रफ़ात व मुज़्दलिफ़ा और तवाफ़ व क़ुरबानी से फ़ारिग़ होकर जब मिना में क़ियाम करते (ठहरते) थे तो उनकी मज्लिस सिर्फ़ इस काम के लिये होती थीं कि मुशायरे आयोजित करें और उनमें अपनी बड़ाईयाँ और अपने बाप-दादा के कारनामों और

फ़ख़्र वाले कामों को बयान करें। उनकी मज्लिसें अल्लाह के ज़िक्र से बिल्कुल ख़ाली होती थीं। इन मुबारक दिनों को ऐसी बेकार और फ़ुज़ूल चीज़ों में ज़ाया करते थे, इसलिये इरशाद हुआ कि जब तुम अपने एहराम के कामों को पूरा कर चुको और मिना में कियाम करो तो वहाँ रहकर अल्लाह तआ़ला को याद करो, अपने बाप-दादा को याद करना और ख़ुसूसन उनकी झूठी-सच्ची तारीफ़ों और कारनामों को बयान करना छोड़ दो, जितना तुम उनको याद करते हो उसकी जगह बल्कि उससे ज़्यादा ख़ुदा तआ़ला को याद करो और ज़िक्रुल्लाह में मशग़ूल रहो। क़ुरआन की इस आयत ने अ़रब की एक जाहिलाना रस्म को मिटाकर मुसलमानों को यह हिदायत की कि ये दिन और यह मकाम इबादत और ज़िक्रुल्लाह के लिये मख़्सूस हैं, इनमें ज़िक्रुल्लाह व इबादत के जो फ़ज़ाईल व बरकतें हैं वे फिर हाथ न आयेंगे उनको ग़नीमत जानना चाहिये।

इसके अ़लावा हज एक ऐसी इबादत है जो उमूमन लम्बे सफ़र की मशक़्क़त, बाल-बच्चों और घर वालों की जुदाई, कारोबार को छोड़ने और हज़ारों रुपये और बहुत सारा वक़्त ख़र्च करने के बाद हासिल होती है, इसमें हादसों (घटनाओं) का पेश आ जाना कुछ दूर नहीं कि आदमी बावजूद कोशिश के अपने हज के मकसद में कामयाब न हो सके, जब अल्लाह तआ़ला ने अपने फ़ज़्ल से तमाम रुकावटों को हटाकर आपके मकसद में कामयाब फ़रमाया और हज के अरकान पूरे हो गये, तो यह शुक्र का मकाम है, जिसका तकाज़ा यह है कि और ज़्यादा अल्लाह तआ़ला के ज़िक्र में मशग़ूल रहो, इन वक़्तों को फ़ुज़ूल जलसों, इज्तिमों और फ़ुज़ूल काम या कलाम में ज़ाया न करो। जाहिलीयत के ज़माने के लोग इन वक़्तों में अपने बाप-दादा के तज़किरे करते थे जिनका कोई नफ़ा दीन व दुनिया में न था, तुम उसकी जगह अल्लाह तआ़ला का ज़िक्र करो जो नूर ही नूर और नफ़ा ही नफ़ा है, दुनिया के लिये भी आख़िरत के लिये भी। आजकल अगरचे मुसलमानों में वह जाहिलीयत की रस्म तो नहीं रही कि मुशायरे आयोजित करें और बाप-दादा के तज़किरे करें लेकिन आज भी हज़ारों मुसलमान हैं जो इन दिनों को फ़ुज़ूल मीटिंगों में फ़ुज़ूल दावतों और तफ़रीहों में ख़र्च करते हैं, यह आयत उनको चेताने के लिये काफ़ी है।

कुछ मुफ़स्सिरीन हज़रात ने इस आयत की तफ़सीर में फ़रमाया कि तुम अल्लाह तआ़ला को ऐसा याद करो जैसे बचपन में अपने बाप को याद करते हैं कि उनका सबसे पहला और सबसे ज़्यादा कलाम 'या अब् या अब्' (ऐ बाप! ऐ बाप!) होता है। तुम अब बालिग़ हो, जवान हो, समझदार हो, 'या अब् या अब्' की जगह 'या रब! या रब!' को इख़्तियार करो और इस पर नज़र डालो कि बच्चा अपने बाप को इसलिये पुकारता है कि वह अपने तमाम कामों में अपने आपको बाप का मोहताज समझता है, इनसान अगर ज़रा ग़ौर करे तो वह हर वक़्त हर हाल में अल्लाह तआ़ला का मोहताज उससे ज़्यादा है जैसा बच्चा अपने बाप का मोहताज है, तथा कई बार कुछ लोग अपने बाप का ज़िक्र फ़ख़्र के तौर पर भी किया करते हैं जैसे जाहिलीयत (इस्लाम से पहले) के लोग करते थे, तो इस आयत ने यह भी हिदायत कर दी कि फ़ख़्र व इज़्ज़त के लिये भी अल्लाह के ज़िक्र से ज़्यादा कोई चीज़ असरदार नहीं। (तफ़सीर रूहुल-बयान)

एक और जाहिली रस्म की इस्लाह

दीन व दुनिया की तलब में इस्लामी एतिदाल

जिस तरह जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने) की यह बेहूदा रस्म थी कि इन मुबारक दिनों को अपने बाप-दादों के तज़किरों और मुशायरों में गुज़ारें, इसी तरह कुछ लोगों की यह आदत थी कि अगरचे हज के दिनों में शग़ल तो ज़िक्रुल्लाह और दुआओं ही का रखते थे मगर उनकी सारी की सारी दुआयें सिर्फ़ दुनियावी हाजतों और दुनिया की राहत व इज़्ज़त या दौलत के लिये होती थीं, आख़िरत की तरफ़ कोई ध्यान न होता था। उनकी इस्लाह के लिये इस आयत के आख़िर में फ़रमाया कि कुछ लोग वे हैं जो हज में दुआ भी माँगते हैं तो सिर्फ़ दुनिया की भलाई माँगते हैं, आख़िरत की फ़िक्र नहीं करते, ऐसे लोगों का आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं, क्योंकि उनके इस तर्ज़े-अ़मल से मालूम हुआ कि हज का फ़रीज़ा भी उन्होंने केवल रस्म के तौर पर अदा किया है या दुनिया में फ़ख़्र व नाम हासिल करने के लिये किया है, अल्लाह तआ़ला को राज़ी करना और आख़िरत में निजात हासिल करना उनका मक़सद है ही नहीं।

इस जगह यह बात भी ग़ौर करने के क़ाबिल है कि सिर्फ़ दुनियावी दुआ माँगने वालों का ज़िक्र इस आयत में इस तरह किया गया है कि वे कहते 'रब्बना आतिना फ़िद्दुन्या' इसके साथ 'ह-स-नतन्' का लफ़्ज़ मज़कूर नहीं, जिसमें इशारा इसकी तरफ़ है कि वे दुनिया के लिये भी भलाई और नेकी के तलबगार नहीं बल्कि दुनियावी ग़र्ज़ों में ऐसे मस्त व डूबे हुए हैं कि उनकी तलब यह रह गई है कि अपनी इच्छा किसी तरह पूरी हो चाहे वह अच्छी हो या बुरी, और अच्छे तरीक़े से हासिल हो या बुरे रास्ते से, लोग उनको अच्छा कहें या बुरा।

इस आयत में उन मुसलमानों के लिये भी तंबीह है जो हज के मौसम और मुक़द्दस मक़ामात में भी दुआओं में अपनी दुनियावी ग़र्ज़ों (मक़सदों) ही को तरजीह देते हैं और ज़्यादातर वक़्त उन्हीं के लिये ख़र्च करते हैं, और अगर हमारे हालात का जायज़ा लिया जाये तो साबित होगा कि बहुत से दौलतमन्द लोग यहाँ भी जो वज़ीफ़े और दुआयें करते हैं या बुज़ुर्गों से कराते हैं उनमें अधिकतर लोग ऐसे हैं कि उनकी ग़र्ज़ उन तमाम वज़ीफ़ों व दुआओं से भी सिर्फ़ दौलत की तरक़्क़ी, तिजारत में बरकत और दुनियावी ग़र्ज़ों में कामयाबी होती है। वे बहुत से वज़ीफ़े और नवाफ़िल पढ़कर यह भी समझने लगते हैं कि हम बहुत इबादत-गुज़ार हैं, लेकिन वह हक़ीक़त में एक तरह की दुनिया परस्ती होती है। बहुत से हज़रात ज़िन्दा बुज़ुर्गों से और वफ़ात पा जाने वाले औलिया-अल्लाह से बड़ा ताल्लुक़ रखते हैं, लेकिन उस ताल्लुक़ का भी बड़ा मक़सद यह होता है कि उनकी दुआ या तावीज़ से हमारे काम निकलेंगे, दुनिया की आफ़तें दूर होंगी, माल में बरकत होगी। ऐसे लोगों के लिये भी इस आयत में ख़ास हिदायत है, मामला अल्लाह तआ़ला के साथ है जो अ़लीम व ख़बीर (सब कुछ जानने वाला) है। हर शख़्स को अपने आमाल का जायज़ लेना चाहिये कि वज़ीफ़े व नवाफ़िल, दुआ व दुरूद से और हज व ज़ियारत से उसकी नीयत क्या है। इस आयत के आख़िरी हिस्से में कम-नसीब क़िस्मत के मेहरूम लोगों का तज़किरा करने के बाद हक़ तआ़ला ने नेक और मक़बूल बन्दों का ज़िक्र इस तरह

फ़रमाया है:

وَمِنْهُمْ مَّنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِى الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّفِى الْاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّقِنَا عَذَابَ النَّارِ○

"यानी उनमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपनी दुआओं में अल्लाह तआ़ला से दुनिया की भलाई और बेहतरी भी माँगते हैं और आख़िरत की बेहतरी भी, और जहन्नम के अ़ज़ाब से पनाह माँगते हैं।"

इसमें लफ़्ज़ 'ह-स-नतन्' तमाम ज़ाहिरी और बातिनी ख़ूबियों और भलाईयों को शामिल है, जैसे दुनिया की भलाई में बदन की सेहत, बाल-बच्चों और घर वालों की सेहत, हलाल रिज़्क़ में ज़्यादती व बरकत, दुनियावी सब ज़रूरतों का पूरा होना, नेक आमाल, अच्छे अख़्लाक़, नफ़ा देने वाला इल्म, इज़्ज़त व रुतबा, अ़क़ीदों का सही होना, सीधे और सही रास्ते की हिदायत, इबादतों में पूरा इख़्लास सब दाख़िल हैं। और आख़िरत की भलाई में जन्नत और उसकी बेशुमार, कभी ख़त्म न होने वाली नेमतें और हक़ तआ़ला की रज़ा और उसका दीदार, ये सब चीज़ें शामिल हैं।

ग़र्ज़ कि यह दुआ एक ऐसी जामे है कि इसमें इनसान के तमाम दुनियावी और दीनी मक़ासिद आ जाते हैं। दुनिया व आख़िरत दोनों जहान में राहत व सुकून मयस्सर आ जाता है। आख़िर में ख़ास तौर पर जहन्नम की आग से पनाह का भी ज़िक्र है, यही वजह है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम बहुत ज़्यादा यह दुआ माँगा करते थे:

رَبَّنَآ اٰتِنَا فِى الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّفِى الْاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّقِنَا عَذَابَ النَّارِ○

रब्बना आतिना फ़िद्दुन्या ह-स-नतंव्-व फ़िल्आख़ि-रति ह-स-नतंव्-व क़िना अ़ज़ाबन्नार।

और तवाफ़ की हालत में ख़ास तौर पर यह दुआ मस्नून है। इस आयत में उन जाहिल दुर्वेशों (झूठे पीरों-फ़क़ीरों) की भी इस्लाह की गई है जो सिर्फ़ आख़िरत ही की दुआ माँगने को इबादत जानते हैं और कहते हैं कि हमें दुनिया की कोई परवाह नहीं है, क्योंकि दर हक़ीक़त यह उनका दावा ग़लत और ग़लत ख़्याल है, इनसान अपने वजूद, बाक़ी रहने और इबादत व ताअ़त सब में दुनियावी ज़रूरतों का मोहताज है, वो न हों तो दीन का भी कोई काम करना मुश्किल है, इसी लिये अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की सुन्नत यह है कि जिस तरह वे आख़िरत की भलाई और बेहतरी अल्लाह तआ़ला से माँगते हैं इसी तरह दुनिया की भलाई और सुकून व आसानी भी तलब करते हैं। जो शख़्स दुनियावी हाजतों के लिये दुआ माँगने को नेकी व बुज़ुर्गी के ख़िलाफ़ समझे वह नबियों के मक़ाम से बेख़बर और जाहिल है, हाँ सिर्फ़ दुनियावी हाजतों ही को ज़िन्दगी का मक़सद न बनाये, इससे ज़्यादा आख़िरत की फ़िक्र करे और उसके लिये दुआ माँगे।

आयत के आख़िर में इसी दूसरे तब्क़े (वर्ग) का जो कि अपनी दुआओं में दुनिया व आख़िरत दोनों की भलाई माँगता है अन्जाम ज़िक्र किया गया है कि उनके इस सही, नेक अ़मल और दुआओं का नतीजा उनको दुनिया व आख़िरत में मिलेगा। इसके बाद इरशाद है:

وَاللّٰهُ سَرِيْعُ الْحِسَابِ

"यानी अल्लाह जल्द हिसाब लेने वाला है।"

क्योंकि उसका इल्म सब को घेरे हुए और उसकी क़ुदरत कामिल है इसलिये उसके लिये सारी मख़्लूक़ात के एक-एक फ़र्द और फिर उसके उम्र भर के आमाल का हिसाब लेने में उन साधनों, माध्यमों और उपकरणों की ज़रूरत नहीं जिनका इनसान मोहताज है, इसलिये वह बहुत जल्द सारी मख़्लूक़ात का हिसाब लेंगे और उन पर जज़ा व सज़ा (अच्छे बुरे आमाल के बदले) मुरत्तब फ़रमायेंगे।

मिना में दो या तीन दिन का ठहरना और अल्लाह के ज़िक्र की ताकीद

आठवीं आयत जो इस जगह हज के अहकाम की आख़िरी आयत है, इसमें हाजियों को अल्लाह के ज़िक्र की तरफ़ मुतवज्जह करके उनके हज के मक़सद की तकमील और आगे की ज़िन्दगी को दुरुस्त रखने की हिदायत इस तरह फ़रमाई गई है:

وَاذْكُرُوا اللّٰهَ فِيْٓ اَيَّامٍ مَّعْدُوْدٰتٍ

"यानी अल्लाह को याद करो गिनती के चन्द दिनों में।"

इन चन्द दिनों से मुराद 'अय्यामे तशरीक़' हैं (ज़िलहिज्जा की नवीं तारीख़ से लेकर तेरहवीं तारीख़ तक के दिनों को 'अय्यामे तशरीक़' कहते हैं) जिनमें हर नमाज़ के बाद तकबीर कहना वाजिब है। आगे एक मसले की वज़ाहत की गई कि मिना में क़ियाम (ठहरने) और जमरात (शैतानों) पर कंकरियाँ मारना कब जक ज़रूरी है। इसमें जाहिलीयत के ज़माने के लोगों का मतभेद रहा करता था, कुछ लोग ज़िलहिज्जा की तेरहवीं तारीख़ तक मिना में क़ियाम और जमरात पर रमी करने को ज़रूरी समझते थे, इससे पहले बारहवीं को वापस आ जाने को नाजायज़ और ऐसा करने वालों को गुनाहगार कहा करते थे। इसी तरह दूसरे लोग बारहवीं तारीख़ को चले आना ज़रूरी समझते और तेरहवीं तक ठहरने को गुनाह जानते थे। इस आयत में इन दोनों की इस्लाह इस तरह की गई कि:

فَمَنْ تَعَجَّلَ فِيْ يَوْمَيْنِ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ وَمَنْ تَاَخَّرَ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ

"यानी जो शख़्स ईद के बाद सिर्फ़ दो दिन मिना में ठहर करके वापस आ जाये उस पर भी कोई गुनाह नहीं और जो तीसरे दिन तक ठहरा रहे उस पर भी कोई गुनाह नहीं।"

ये दोनों फ़रीक़ जो एक दूसरे को गुनाहगार कहते हैं हद से बढ़ने और ग़लती में मुब्तला हैं। सही यह है कि हाजियों को दोनों सूरतों में इख़्तियार है जिस पर चाहें अ़मल करें, हाँ अफ़ज़ल व बेहतर यही है कि तीसरे दिन तक ठहरें। फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) ने फ़रमाया है कि जो शख़्स दूसरे दिन सूरज छुपने से पहले मिना से चला आया उस पर तीसरे दिन की रमी (कंकरी मारना) वाजिब नहीं, लेकिन अगर सूरज मिना में ग़ुरूब हो गया तो फिर तीसरे दिन की रमी करने से पहले वहाँ से वापस आ जाना जायज़ नहीं रहता, अलबत्ता तीसरे दिन की रमी में यह रियायत रखी गई है कि वह सूरज ढलने से पहले सुबह के बाद भी हो सकती है।

मिना से वापसी का और उसमें हाजियों को इख़्तियार देने का ज़िक्र फ़रमाने के बाद जो कुछ कहा गया कि दूसरे दिन वापस आ जाये तो कुछ गुनाह नहीं, और तीसरे दिन वापस आ जाये तो कुछ

गुनाह नहीं, यह सब उस शख़्स के लिये है जो अल्लाह तआ़ला से डरने और उसके अहकाम की पाबन्दी करने वाला है, क्योंकि हक़ीक़त में हज उसी का है जैसा कि क़ुरआने करीम में दूसरी जगह इरशाद है:

اِنَّمَا يَتَقَبَّلُ اللّٰهُ مِنَ الْمُتَّقِيْنَ۝ (سورة٥:٢٧)

"यानी अल्लाह तआ़ला इबादत उन्हीं की क़ुबूल करता है जो अल्लाह तआ़ला से डरने वाले और इताअ़त करने वाले बन्दे हैं।"

और जो शख़्स हज से पहले भी गुनाहों में मुलव्वस था और हज के अन्दर भी बेपरवाई से काम लेता रहा, हज के बाद भी गुनाहों से परहेज़ न किया तो उसको उसका हज कोई फ़ायदा न देगा अगरचे उसका फ़र्ज़ हज अदा हो गया, हज छोड़ने का मुजरिम नहीं रहा।

आख़िर में इरशाद फ़रमायाः

وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْآ اَنَّكُمْ اِلَيْهِ تُحْشَرُوْنَ۝

"यानी डरते रहो अल्लाह तआ़ला से और यक़ीन करो कि तुम सब अल्लाह के पास जमा होने वाले हो।" वह तुम्हारे खुले और छुपे आमाल का हिसाब लेंगे, और उन पर जज़ा व सज़ा देंगे। हज के अहकाम जो ऊपर की आयतों में बयान किये गये हैं यह जुमला दर हक़ीक़त उन सब की जान है। इसके मायने यह हैं कि ख़ास हज के दिनों में जबकि हज के आमाल में मशग़ूल हो उस वक़्त भी अल्लाह तआ़ला से डरो, हज के अहकाम में कोई कोताही न करो, और बाद में अपने हज पर मग़रूर न हो (इतराओ नहीं) बल्कि अल्लाह तआ़ला से डरते रहो और गुनाहों से बचो क्योंकि आमाल के तौले जाने के वक़्त इनसान के गुनाह उसके नेक आमाल को खा जायेंगे, नेक आमाल का असर और वज़न ज़ाहिर न होने देंगे। हज की इबादत के मुताल्लिक़ हदीस में है कि जब इनसान हज से फ़ारिग़ होकर आता है तो अपने पिछले गुनाहों से ऐसा पाक-साफ़ हो जाता है जैसे माँ के पेट से आज पैदा हुआ है, इसलिये ख़ास तौर से हाजियों को आईन्दा के लिये तक़वे की हिदायत की गई कि पिछले गुनाहों से पाक हो चुके हो, आगे एहतियात रखो तो दुनिया व आख़िरत की भलाई तुम्हारे लिये है। वरना जो शख़्स हज के बाद फिर गुनाहों में मुब्तला हो गया तो पिछले गुनाहों की माफ़ी उसको कोई ख़ास काम न आयेगी बल्कि उलेमा ने फ़रमाया है कि मक़बूल हज की निशानी और पहचान यह है कि अपने हज से इस तरह वापस आये कि उसका दिल दुनिया की मुहब्बत से फ़ारिग़ और आख़िरत की तरफ़ राग़िब हो, ऐसे शख़्स का हज मक़बूल और गुनाह माफ़ होते हैं और दुआ़ उसकी मक़बूल है। हज के दौरान में जगह-जगह इनसान अल्लाह तआ़ला से इताअ़त व फ़रमाँबरदारी का मुआ़हदा (वायदा व अ़हद) उसके घर के सामने करता है, अगर हज करने वाले इसका ध्यान रखें तो उस मुआ़हदे के पूरा करने का आईन्दा एहतिमाम (पाबन्दी और ध्यान) मयस्सर आ सकता है।

एक बुज़ुर्ग फ़रमाते हैं कि मैं हज से वापस आया तो इत्तिफ़ाक़न मेरे दिल में एक गुनाह का वस्वसा (ख़्याल) पैदा हुआ, मुझे ग़ैब से आवाज़ आई कि क्या तूने हज नहीं किया? क्या तूने हज नहीं किया? यह आवाज़ मेरे और उस गुनाह के बीच एक दीवार बन गई, अल्लाह तआ़ला ने मुझे महफ़ूज़ फ़रमा दिया।

एक तुर्की बुज़ुर्ग जो मौलाना जामी रहमतुल्लाहि अ़लैहि के मुरीद थे, उनका हाल यह था कि हमेशा अपने सर पर एक नूर को महसूस करते थे। वह हज को गये और फ़ारिग़ होकर वापस आये तो यह कैफ़ियत बजाय बढ़ने के बिल्कुल ख़त्म हो गई। अपने मुर्शिद मौलाना जामी रहमतुल्लाहि अ़लैहि से इसका तज़किरा किया तो उन्होंने फ़रमाया कि हज से पहले तुम्हारे अन्दर तवाज़ो व इन्किसारी (विनम्रता और अपने को कमतर समझना) था, अपने आपको गुनाहगार समझकर अल्लाह तआ़ला के सामने रोते और फ़रियाद करते थे, हज के बाद तुम अपने आपको नेक और बुज़ुर्ग समझने लगे इसलिये यह हज तुम्हारे लिये ग़ुरूर का सबब बन गया, इसी वजह से यह कैफ़ियत ख़त्म हो गई।

हज के अहकाम के ख़त्म पर तक़वे (नेकी व परहेज़गारी) की ताकीद में एक राज़ यह भी है कि हज एक बड़ी इबादत है, उसके अदा करने के बाद शैतान उमूमन इनसान के दिल में अपनी बड़ाई और बुज़ुर्गी का ख़्याल डालता है जो उसके तमाम अ़मल को बेकार कर देने वाला है, इसलिये कलाम के ख़ात्मे में फ़रमाया कि जिस तरह हज से पहले और हज के अन्दर अल्लाह से डरना और उसकी इताअ़त लाज़िम है इसी तरह हज के बाद उससे ज़्यादा अल्लाह तआ़ला से डरने और गुनाहों से परहेज़ का एहतिमाम करते रहो कि कहीं यह की-कराई इबादत ज़ाया न हो जाये। या अल्लाह! तू हमें भी अपने आमाल, कामों, क़ौल और नीयत में उन चीज़ों की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमा जो तुझको पसन्द हैं।

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يُّعْجِبُكَ قَوْلُهٗ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَيُشْهِدُ اللّٰهَ عَلٰى مَا فِيْ قَلْبِهٖ ۙ وَهُوَ اَلَدُّ الْخِصَامِ ۝ وَاِذَا تَوَلّٰى سَعٰى فِي الْاَرْضِ لِيُفْسِدَ فِيْهَا وَيُهْلِكَ الْحَرْثَ وَالنَّسْلَ ۭ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ الْفَسَادَ ۝ وَاِذَا قِيْلَ لَهُ اتَّقِ اللّٰهَ اَخَذَتْهُ الْعِزَّةُ بِالْاِثْمِ فَحَسْبُهٗ جَهَنَّمُ ۭ وَلَبِئْسَ الْمِهَادُ ۝ وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّشْرِيْ نَفْسَهُ ابْتِغَاۗءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ رَءُوْفٌۢ بِالْعِبَادِ ۝

व मिनन्नासि मंय्युअ्जिबु-क क़ौलुहू फ़िल्हयातिद्दुन्या व युश्हिदुल्ला-ह अ़ला मा फ़ी क़ल्बिही व हु-व अलद्दुल्-ख़िसाम (204) व इज़ा तवल्ला सआ़ फ़िल्अर्ज़ि लियुफ़्सि-द फ़ीहा व युह्लिकल्-हर्-स वन्नस्-ल, वल्लाहु ला युहिब्बुल् फ़साद (205) व इज़ा क़ी-ल लहुत्तक़िल्ला-ह अ-ख़ज़त्हुल्-अ़िज़्ज़तु बिल्-इस्मि	और बाज़ा आदमी वह है कि पसन्द आती है तुझको उसकी बात दुनिया की ज़िन्दगानी के कामों में, और गवाह करता है अल्लाह को अपने दिल की बात पर और वह सख़्त झगड़ालू है। (204) और जब फिरे (वापस जाये) तेरे पास से तो दौड़ता फिरे मुल्क में ताकि उसमें ख़राबी डाले और तबाह करे खेतियाँ और जानें, और अल्लाह नापसन्द करता है फ़साद को। (205) और जब उससे कहा जाये कि अल्लाह से डर तो आमादा (तैयार) करे उसको ग़ुरूर गुनाह

फ़-हस्बुहू जहन्नमु, व लबिअ्सल्-मिहाद (206) व मिनन्नासि मंय्यश्री नफ़्सहुब्तिग़ा-अ मर्ज़ातिल्लाहि, वल्लाहु रऊफ़ुम् बिल्-अिबाद (207)	पर, सो काफ़ी है उसको दोज़ख़ और वह बेशक बुरा ठिकाना है। (206) और लोगों में एक शख़्स वह है कि बेचता है अपनी जान को अल्लाह की रज़ा ढूँढने में, और अल्लाह निहायत मेहरबान है अपने बन्दों पर। (207)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर की आयतों में दुआ माँगने वाले आदमियों की दो किस्में बतायी गयी थीं एक काफ़िर जो कि आख़िरत का इनकारी है, इसी लिये सिर्फ़ दुनिया माँगता है। दूसरा मोमिन जो कि आख़िरत का एतिक़ाद व यक़ीन रखता है, दुनिया की भलाई के साथ आख़िरत की भलाई भी माँगता है। अब अगली आयत में इसी तरह की तक़सीम निफ़ाक़ व इख़्लास के एतिबार से फ़रमाते हैं कि कुछ मुनाफ़िक़ (दो-रुख़े, दिल में कुछ और बाहर कुछ) होते हैं और कुछ मुख़्लिस (साफ़ नीयत वाले)।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(कोई शख़्स था अख़्नस बिन शुरैक़, बड़ा ही फ़सीह व बलीग़, वह हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में आकर क़समें खा-खाकर इस्लाम का दावा किया करता और मज्लिस से उठकर जाता तो फ़साद व शरारत और मख़्लूक़ को तकलीफ़ पहुँचाने में लग जाता। उस मुनाफ़िक़ के बारे में फ़रमाते हैं) और बाज़ा आदमी ऐसा भी है कि आपको उसकी गुफ़्तगू जो सिर्फ़ दुनियावी ग़र्ज़ से होती है (कि इस्लाम के इज़्हार से मुसलमानों की तरह निकटता व ख़ुसूसियत के साथ रहूँगा, उसकी उम्दा और लच्छेदार बातें करने की वजह से) मज़ेदार मालूम होती है और वह (अपना एतिबार बढ़ाने को) अल्लाह तआ़ला को हाज़िर व नाज़िर बताता है अपने दिल की बात पर, हालाँकि (बिल्कुल झूठा है क्योंकि वास्तव में) वह (आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की) मुख़ालफ़त में (बहुत ही) सख़्त है। और (जिस तरह आपका मुख़ालिफ़ है उसी तरह और मुसलमानों को भी तकलीफ़ पहुँचाता है, चुनाँचे) जब (आपकी मज्लिस से) पीठ फेरता है तो इस दौड़-धूप में फिरता रहता है कि शहर में (कोई) फ़साद करे और (किसी के) खेत या मवेशी को बरबाद कर दे, (चुनाँचे एक मुसलमान का इस तरह नुक़सान कर दिया) और अल्लाह तआ़ला फ़साद (की बातों) को पसन्द नहीं फ़रमाते। और (इस मुख़ालफ़त और तकलीफ़ देने के साथ घमंडी इस दर्जे का है कि) जब उससे कोई कहता है कि ख़ुदा का ख़ौफ़ कर, तो (और ज़्यादा) घमंड उसको उस गुनाह पर (दुगना) आमादा कर देता है। सो ऐसे शख़्स की काफ़ी सज़ा जहन्नम है, और वह बुरा ठिकाना है। और बाज़ा आदमी ऐसा भी है कि अल्लाह की रज़ा हासिल करने में अपनी जान तक ख़र्च कर डालता है, और अल्लाह (ऐसे) बन्दों (के हाल) पर बहुत ही मेहरबान हैं।

मआरिफ़ व मसाईल

आयत का आख़िरी हिस्सा जिसमें मोमिन व मुख़्लिस का हाल यह बयान किया है कि वह अल्लाह तआ़ला की रज़ा हासिल करने के लिये अपनी जान की भी बाज़ी लगा देता है। यह उन मुख़्लिस सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की शान में नाज़िल हुई है जिन्होंने बेमिसाल क़ुरबानियाँ अल्लाह की राह में पेश की हैं। मुस्तद्रक हाकिम, इब्ने जरीर, मुस्नद इब्ने अबी हातिम वग़ैरह (हदीस की किताबों) में सही सनद से मन्क़ूल है कि यह आयत हज़रत सुहैब रूमी रज़ियल्लाहु अ़न्हु के उस वाक़िए में नाज़िल हुई है कि जब वह मक्का से हिजरत करके मदीना के लिये रवाना हुए तो रास्ते में क़ुरैश के काफ़िरों की एक जमाअ़त ने रास्ता रोक लिया, यह देखकर हज़रत सुहैब रूमी रज़ियल्लाहु अ़न्हु अपनी सवारी से उतर कर खड़े हो गये और उनके तरकश में जितने तीर थे सब निकाल लिये और क़ुरैश की उस जमाअ़त से ख़िताब किया कि ऐ क़बीला-ए-क़ुरैश! तुम सब जानते हो कि मैं तीर चलाने में सबसे ज़्यादा माहिर हूँ, मेरा तीर कभी चूक नहीं करता, और अब मैं अल्लाह की क़सम खाता हूँ कि तुम मेरे पास उस वक़्त तक न पहुँच सकोगे जब तक मेरे तरकश में एक तीर भी बाक़ी है, और तीरों के बाद में तलवार से काम लूँगा जब तक मुझ में दम रहेगा, फिर जो तुम चाहो कर लेना। और अगर तुम नफ़े का सौदा चाहते हो तो मैं तुम्हें अपने माल का पता देता हूँ जो मक्का मुकर्रमा में रखा है, तुम वह माल ले लो और मेरा रास्ता छोड़ दो। इस पर क़ुरैश की जमाअ़त राज़ी हो गई और हज़रत सुहैब रूमी रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में सही-सालिम पहुँचकर वाक़िआ़ सुनाया तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दो मर्तबा फ़रमायाः

رَبِحَ الْبَيْعُ اَبَا يَحْيٰى رَبِحَ الْبَيْعُ اَبَا يَحْيٰى.

"तुम्हारा व्यापार लाभदायक रहा, तुम्हारी बै नफ़ा देने वाली रही।"

इसी वाक़िए में उक्त आयत के नाज़िल होने ने उस कलाम की तस्दीक़ कर दी जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुबारक ज़बान से निकला था।

और कुछ मुफ़स्सिरीन हज़रात ने कुछ दूसरे सहाबा किराम के ऐसे ही वाक़िआ़त को आयत का शाने नुज़ूल (नाज़िल होने का सबब और मौक़ा) बतलाया है। (तफ़सीरे मज़हरी)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا ادْخُلُوْا فِي السِّلْمِ كَآفَّةً ۪ وَّلَا تَتَّبِعُوْا خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ؕ اِنَّهٗ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ۝ فَاِنْ زَلَلْتُمْ مِّنْۢ بَعْدِ مَا جَآءَتْكُمُ الْبَيِّنٰتُ فَاعْلَمُوْۤا اَنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝ هَلْ يَنْظُرُوْنَ اِلَّاۤ اَنْ يَّاْتِيَهُمُ اللّٰهُ فِيْ ظُلَلٍ مِّنَ الْغَمَامِ وَالْمَلٰٓئِكَةُ وَقُضِيَ الْاَمْرُ ؕ وَاِلَى اللّٰهِ تُرْجَعُ الْاُمُوْرُ ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनुद्ख़ुलू फ़िस्सिल्मि काफ़्फ़तंव्-व ला तत्तबिअ़ू ख़ुतुवातिश्शैतानि, इन्नहू	**ऐ ईमान वालो! दाख़िल हो जाओ इस्लाम में पूरे और मत चलो क़दमों पर शैतान के, बेशक वह तुम्हारा ख़ुला दुश्मन है। (208)**

लकुम् अ़दुव्वुम्-मुबीन (208) फ़-इन् ज़लल्तुम् मिम्-बअ़्दि मा जाअत्कुमुल्-बय्यिनातु फ़अ़्लमू अन्नल्ला-ह अ़ज़ीज़ुन् हकीम (209) हल् यन्ज़ुरू-न इल्ला अंय्यअ्ति-यहुमुल्लाहु फ़ी ज़ु-ललिम् मिनल्-ग़मामि वल्-मलाइ-कतु व क़ुज़ियल्-अम्रु, व इलल्लाहि तुर्जअ़ुल्-उमूर (210) ✿	फिर अगर तुम बिचलने लगो उसके बाद कि पहुँच चुके तुमको साफ़ हुक्म तो जान रखो कि बेशक अल्लाह ज़बरदस्त है हिक्मत वाला। (209) क्या वे इसी की राह देखते (यानी इन्तिज़ार कर रहे) हैं कि आये उन पर अल्लाह बादल के सायबानों में और फ़रिश्ते, और तय हो जाये क़िस्सा, और अल्लाह ही की तरफ़ लौटेंगे सब काम। (210) ✿

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर मुख़्लिस (नेक लोगों) की तारीफ़ थी। कई बार इस इख़्लास में ग़लती से हद से ज़्यादती हो जाती है, यानी इरादा तो होता है ज़्यादा इताअ़त का मगर वह इताअ़त वास्तव में शरीअ़त व सुन्नत की हद से बाहर होती है, उसको बिदअ़त कहते हैं। चुनाँचे हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन सलाम रज़ियल्लाहु अ़न्हु वग़ैरह जो पहले यहूदी उलेमा में से थे और उस मज़हब का हफ़्ते (शनिवार) का दिन सम्मानित और अदब वाला था, और ऊँट का गोश्त हराम था। इन हज़रात को इस्लाम के बाद यह एहसास हुआ कि मूसा अ़लैहिस्सलाम की शरीअ़त में हफ़्ते (शनिवार के दिन) की ताज़ीम वाजिब थी और शरीअ़ते मुहम्मदिया में उसका अनादर वाजिब नहीं, इसी तरह हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम की शरीअ़त में ऊँट का गोश्त खाना हराम था और शरीअ़ते मुहम्मदिया में उसका खाना फ़र्ज़ नहीं, सो अगर हम बदस्तूर हफ़्ते (शनिवार) की ताज़ीम करते रहें और ऊँट का गोश्त बावजूद हलाल जानने के सिर्फ़ अ़मली तौर पर छोड़ दें तो शरीअ़ते मूसवी की भी रियायत हो जाये और शरीअ़ते मुहम्मदिया के भी ख़िलाफ़ न होगा, और इसमें ख़ुदा तआ़ला की ज़्यादा इताअ़त और दीन की ज़्यादा रियायत मालूम होती है। अल्लाह तआ़ला इस ख़्याल की इस्लाह आगे की आयत में किसी क़द्र एहतिमाम से फ़रमाते हैं, जिसका हासिल यह है कि इस्लाम कामिल फ़र्ज़ है और इसका कामिल (पूरा) होना जब है कि जो बात इस्लाम में क़ाबिले रियायत न हो उसकी रियायत दीन होने की हैसियत से न की जाये, और ऐसे मामले को दीन समझना एक शैतानी धोखा और ख़ता है और ज़ाहिरी गुनाह और नाफ़रमानी की तुलना में इसका अ़ज़ाब ज़्यादा सख़्त होने का डर है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! इस्लाम में पूरे-पूरे दाख़िल हो (यह नहीं कि कुछ यहूदियत की भी रियायत करो), और (ऐसे ग़लत और बुरे ख़्यालात में पड़कर) शैतान के क़दम से क़दम मिलाकर मत चलो, वाक़ई वह तुम्हारा खुला दुश्मन है (कि ऐसी पट्टी पढ़ा देता है कि ज़ाहिर में तो सरासर दीन मालूम हो और

हक़ीक़त में बिल्कुल दीन के ख़िलाफ़ हो) फिर अगर तुम इसके बाद कि तुमको स्पष्ट दलीलें (इस्लामी अहकाम व शरीअ़त की) पहुँच चुकी हैं (फिर भी सीधे रास्ते से) बहकने लगो तो यक़ीन रखो कि हक़ तआ़ला (बड़े) ज़बरदस्त हैं (सख़्त सज़ा देंगे, और कुछ दिनों तक सज़ा न दें तो इससे धोखा मत खाना क्योंकि वह) हिक्मत वाले (भी) हैं, (किसी हिक्मत व मस्लेहत से कभी सज़ा में देर भी कर देते हैं, मालूम होता है) ये लोग (जो कि हक़ की दलीलों के वाज़ेह और स्पष्ट होने के बाद टेढ़ी राह इख़्तियार करते हैं, ये टेढ़ी राह चलने वाले) सिर्फ़ इस बात के मुन्तज़िर हैं कि हक़ तआ़ला और फ़रिश्ते बादल के सायबानों में उनके पास (सज़ा देने के लिए) आएँ और सारा क़िस्सा ही ख़त्म हो जाए (यानी क्या उस वक़्त हक़ बात क़ुबूल करेंगे जिस वक़्त का क़ुबूल करना मक़बूल भी न होगा), और ये सारे (जज़ा व सज़ा के) मुक़द्दमे अल्लाह तआ़ला ही की तरफ़ लौटाए जाएँगे (कोई दूसरा इख़्तियार का मालिक न होगा, सो ऐसे ज़बरदस्त के साथ मुख़ालफ़त करने का अन्जाम ख़राबी के सिवाय क्या हो सकता है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

اُدْخُلُوْا فِى السِّلْمِ كَآفَّةً

'उदख़ुलू फ़िस्सिल्मि काफ़्फ़तन्' लफ़्ज़ **सिल्म** अगरचे दो मायनों के लिये इस्तेमाल होता है एक **सुलह** दूसरे **इस्लाम**। इस जगह जमहूर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन रहमतुल्लाहि अ़लैहिम के नज़दीक **इस्लाम** मुराद है। (तफ़सीर इब्ने कसीर) लफ़्ज़ **काफ़्फ़तन्** पूरे-पूरे और उमूमी तौर पर के मायने में आता है। यहाँ इस लफ़्ज़ का तर्जुमा दो तरह से हो सकता है एक यह कि तुम पूरे-पूरे इस्लाम में दाख़िल हो जाओ। यानी तुम्हारे हाथ-पाँव, आँख, कान, दिल और दिमाग़ सब का सब इस्लाम के दायरे और अल्लाह की फ़रमाँबरदारी के अन्दर दाख़िल हो जाना चाहिये, ऐसा न हो कि हाथ-पाँव से तो इस्लामी अहकाम अदा कर रहे हो मगर दिल व दिमाग़ उस पर मुत्मईन (संतुष्ट) नहीं, या दिल दिमाग़ से तो उस पर मुत्मईन हो मगर हाथ-पाँव और बदनी अंगों का अ़मल उससे बाहर है।

और एक तर्जुमा यह हो सकता है कि तुम दाख़िल हो जाओ मुकम्मल और पूरे इस्लाम में, यानी ऐसा न हो कि इस्लाम के कुछ अहकाम को तो क़ुबूल करो कुछ में पसोपेश (दुविधा) रहे। और चूँकि इस्लाम नाम है ज़िन्दगी के उस मुकम्मल निज़ाम का जो क़ुरआन व सुन्नत में बयान हुआ है, चाहे उसका ताल्लुक़ अ़क़ीदे व इबादत से हो या मामलात व सामाजिक ज़िन्दगी से, हुकूमत व सियासत से उसका ताल्लुक़ हो या तिजारत व उद्योग वग़ैरह से, इस्लाम का जो ज़िन्दगी का मुकम्मल निज़ाम है तुम सब उस पूरे निज़ाम (सिस्टम) में दाख़िल हो जाओ।

ख़ुलासा दोनों सूरतों का क़रीब-क़रीब यही है कि इस्लामी अहकाम चाहे वे ज़िन्दगी के किसी भी मैदान और विभाग से संबन्धित हों, और ज़ाहिरी अंगों से मुताल्लिक़ हों या दिल और बातिन से उनका ताल्लुक़ हो, जब तक उन तमाम अहकाम को सच्चे दिल से क़ुबूल न करोगे मुसलमान कहलाने के हक़दार नहीं होगे।

इस आयत का शाने नुज़ूल (उतरने का मौक़ा) जो ऊपर बयान हुआ है उसका भी हासिल यही है

कि सिर्फ़ इस्लाम ही की तालीमात तुम्हारी नज़र के सामने होनी चाहियें, उसको पूरा-पूरा इख़्तियार कर लो तो वह तुम्हें सारे धर्मों और मिल्लतों से बेपरवाह कर देगा (यानी इस्लाम पर अ़मल करोगे तो किसी और धर्म या विचारधारा की ज़रूरत ही न होगी)।

चेतावनी

इसमें उन लोगों के लिये बड़ी तंबीह (चेतावनी) है जिन्होंने इस्लाम को सिर्फ़ मस्जिद और इबादतों के साथ मख़्सूस कर रखा है, मामलात और रहन-सहन के अहकाम को गोया दीन का हिस्सा ही नहीं समझते। इस्तिलाही दीनदारों में यह ग़फ़लत आ़म है, हुक़ूक़ व मामलात और ख़ुसूसन सामाजिक ज़िन्दगी के हुक़ूक़ से बिल्कुल बेगाना हैं, ऐसा मालूम होता है कि उन अहकाम को वे इस्लाम के अहकाम ही यक़ीन नहीं करते, न उनके मालूम करने या सीखने का एहतिमाम करते हैं, न उन पर अ़मल करने का। नऊज़ु बिल्लाह। कम से कम मुख़्तसर रिसाला 'आदाब-ए-मुआ़शरत' (लिखित हज़रत सैयदी हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि) को हर मुसलमान मर्द व औ़रत को ज़रूर पढ़ना चाहिये।

और यह वाक़िआ़ कि अल्लाह तआ़ला और फ़रिश्ते बादल के सायबानों में उनके पास आ जायें क़ियामत में पेश आयेगा, और अल्लाह तआ़ला का इस तरह आना मुतशाबिहात में से है जिसके बारे में जमहूर सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम, ताबिईन हज़रात और उम्मत के बुज़ुर्गों का तरीक़ा यह है कि इसके मज़मून के हक़ और सही होने का एतिक़ाद व यक़ीन रखे और कैफ़ियत कि किस तरह यह काम होगा इसकी दरियाफ़्त (खोज करने) की फ़िक्र में न पड़े, कि जिस तरह अल्लाह तआ़ला की ज़ात और तमाम सिफ़ात की हक़ीक़त और कैफ़ियत का मालूम करना इनसान की अ़क़्ल से बाहर है, यह भी उसी में दाख़िल है।

سَلْ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ كَمْ اٰتَيْنٰهُمْ مِّنْ اٰيَةٍۭ بَيِّنَةٍ ۭ وَمَنْ يُّبَدِّلْ نِعْمَةَ اللّٰهِ مِنْۢ بَعْدِ مَا جَاۗءَتْهُ فَاِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ۝ زُيِّنَ لِلَّذِيْنَ كَفَرُوا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا وَيَسْخَرُوْنَ مِنَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۘ وَالَّذِيْنَ اتَّقَوْا فَوْقَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۭ وَاللّٰهُ يَرْزُقُ مَنْ يَّشَاۗءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ۝

सल् बनी इस्राई-ल कम् आतैनाहुम् मिन् आयतिम् बय्यि-नतिन्, व मंय्युबद्दिल् निअ़्मतल्लाहि मिम्-बअ़्दि मा जाअत्हु फ्-इन्नल्ला-ह शदीदुल्-अिक़ाब (211) ज़ुय्यि-न लिल्लज़ी-न क-फ़रुल्-हयातुद्दुन्या व	पूछ बनी इस्राईल से किस क़द्र इनायत कीं हमने उनको निशानियाँ खुली हुईं। और जो कोई बदल डाले अल्लाह की नेमत उसके बाद कि पहुँच चुकी हो वह नेमत उसको तो अल्लाह का अज़ाब सख़्त है। (211) फ़रेफ़्ता किया (रिझाया और लट्टू किया) है काफ़िरों को दुनिया की ज़िन्दगी पर और

यस्ख़रू-न मिनल्लज़ी-न आमनू। वल्लज़ीनत्तक़ौ फ़ौ-क़हुम् यौमल्-क़ियामति, वल्लाहु यरज़ुक़ु मंय्यशा-उ बिग़ैरि हिसाब (212)	हंसते हैं ईमान वालों से। और जो परहेज़गार हैं वे इन काफ़िरों से बालातर (ऊँचे और बुलन्द) होंगे क़ियामत के दिन, और अल्लाह रोज़ी देता है जिसको चाहे बेशुमार। (212)

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर फ़रमाया था कि स्पष्ट दलीलें आ जाने के बाद भी हक़ की मुख़ालफ़त करना सज़ा को वाजिब करने वाला है। पहली आयत में इसकी दलील बयान फ़रमाते हैं कि जैसे कुछ बनी इस्राईल को ऐसी ही मुख़ालफ़त पर सज़ा दी गई।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

आप बनी इस्राईल (के उलेमा) से (ज़रा) पूछिये (तो सही) कि हमने उनको (यानी उनके बड़ों को) कितनी खुली दलीलें दी थीं (मगर उन लोगों ने बजाय इसके कि उससे हिदायत हासिल करते और उल्टी गुमराही पर कमर बाँधी, फिर देखो सज़ायें भी भुगतीं। जैसे तौरात मिली, चाहिये तो यह था कि उसको क़ुबूल करते मगर इनकार किया, आख़िर तूर पहाड़ गिराने की धमकी उनको दी गई, और जैसे हक़ तआ़ला का कलाम सुना, चाहिये था कि सर आँखों पर रखते मगर शुब्हात निकाले आख़िर बिजली से हलाक हुए, और जैसे दरिया को फाड़ करके फ़िरऔन से निजात दी गई, एहसान मानते मगर बछड़े की पूजा शुरू की, जिस पर क़त्ल की सज़ा दी गई, और जैसे मन्न व सलवा नाज़िल हुआ, शुक्र करना चाहिये था मगर नाफ़रमानी की, वह सड़ने लगा, और उससे नफ़रत ज़ाहिर की तो वह बन्द हो गया और खेती की मुसीबत सर पर पड़ी, और जैसे अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का सिलसिला उनमें जारी रहा, ग़नीमत समझते, उनको क़त्ल करना शुरू कर दिया, जिस पर यह सज़ा दी गई कि उनसे हुकूमत व सल्तनत छीन ली गई। और इसी तरह के और बहुत से मामलात इसी सूरः ब-क़रह के शुरू में भी बयान हो चुके हैं) और (हमारा क़ानून ही यह है कि) जो शख़्स अल्लाह तआ़ला की (ऐसी बड़ी) नेमत (खुली और स्पष्ट दलीलों) को बदलता है उसके पास पहुँचने के बाद (यानी बजाय इसके कि उससे हिदायत हासिल करे और उल्टा गुमराह बनता है) तो हक़ तआ़ला (ऐसे शख़्स को) यक़ीनन सख़्त सज़ा देते हैं।

(दूसरी आयत में हक़ की मुख़ालफ़त की असली इल्लत अक्सर यह बयान फ़रमाते हैं कि वह दुनिया की मुहब्बत है, जिसकी निशानियों में से दीनदारों को हक़ीर समझना भी है, क्योंकि जब दुनिया का ग़लबा होता है तो दीन की तलब नहीं रहती, बल्कि दीन को अपने दुनियावी मक़सदों के ख़िलाफ़ देखकर छोड़ बैठता है, और दूसरे दीन के तालिबों पर हंसता है। चुनाँचे बनी इस्राईल में के कुछ सरदार और जाहिल मुश्रिक लोग ग़रीब मुसलमानों के साथ मज़ाक़ उड़ाने वाले अन्दाज़ में पेश आते थे, उन लोगों का बयान फ़रमाते हैं कि) दुनियावी ज़िन्दगी काफ़िरों को अच्छी और लुभावनी मालूम

होती है, और (इसी वजह से) इन मुसलमानों से ठट्ठा-मज़ाक़ करते हैं, हालाँकि ये (मुसलमान) जो कुफ़्र व शिर्क से बचते हैं, उन काफ़िरों से आला दर्जे (की हालत) में होंगे क़ियामत के दिन (क्योंकि काफ़िर जहन्नम में होंगे और मुसलमान जन्नत में), और (आदमी को सिर्फ़ आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर घमण्डी न होना चाहिये, क्योंकि) रोज़ी तो अल्लाह तआ़ला जिसको चाहते हैं बेहिसाब (यानी बहुत ज़्यादा) दे देते हैं (पस इसका मदार क़िस्मत पर है न कि कमाल और मक़बूलियत पर, सो यह ज़रूरी नहीं कि जो रोज़ी में बड़ा हो वह अल्लाह के नज़दीक भी इज़्ज़त वाला हो, और बड़ी इज़्ज़त वही है जो अल्लाह के नज़दीक मोतबर हो, फिर सिर्फ़ उसके ऊपर अपने को इज़्ज़त वाला और दूसरे को ज़लील समझना बेवक़ूफ़ी है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

दुनिया के माल व दौलत और इज़्ज़त व मर्तबे पर घमण्ड करने और ग़रीब लोगों का मज़ाक़ बनाने की हक़ीक़त क़ियामत के दिन आँखों के सामने आ जायेगी।

हज़रत अ़ली मुर्तज़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि जो शख़्स किसी मोमिन मर्द या औ़रत को उसके फ़क्र व फ़ाक़े की वजह से ज़लील व हक़ीर समझता है अल्लाह तआ़ला क़ियामत के दिन उसको तमाम अगले-पिछलों के मजमे में रुस्वा और ज़लील करेंगे। और जो शख़्स किसी मुसलमान मर्द या औ़रत पर बोहतान बाँधता है और कोई ऐसा ऐब उसकी तरफ़ मन्सूब करता है जो उसमें नहीं है, अल्लाह तआ़ला क़ियामत के दिन उसको आग के एक ऊँचे टीले पर खड़ा करेंगे जब तक कि वह ख़ुद अपने झूठे होने का ऐलान न करे। (ज़िक्रुल-हदीस क़ुर्तुबी)

كَانَ النَّاسُ اُمَّةً وَّاحِدَةً ۗ فَبَعَثَ اللّٰهُ النَّبِيّٖنَ مُبَشِّرِيْنَ وَمُنْذِرِيْنَ ۖ وَاَنْزَلَ مَعَهُمُ الْكِتٰبَ
بِالْحَقِّ لِيَحْكُمَ بَيْنَ النَّاسِ فِيْمَا اخْتَلَفُوْا فِيْهِ ۗ وَمَا اخْتَلَفَ فِيْهِ اِلَّا الَّذِيْنَ اُوْتُوْهُ مِنْ بَعْدِ
مَا جَآءَتْهُمُ الْبَيِّنٰتُ بَغْيًا بَيْنَهُمْ ۚ فَهَدَى اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لِمَا اخْتَلَفُوْا فِيْهِ مِنَ الْحَقِّ بِاِذْنِهٖ ۗ
وَاللّٰهُ يَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ۝

कानन्नासु उम्म-तंव्-वाहि-दतन्, फ़-ब-असल्लाहुन्नबिय्यी-न मुबश्शिरी-न व मुन्ज़िरी-न अन्ज़-ल म-अ़हुमुल्-किता-ब बिल्हक़्क़ि लियह्कु-म बैनन्नासि फ़ीमख़्त-लफ़ू फ़ीहि, व मख़्त-ल-फ़ फ़ीहि इल्लल्लज़ी-न	थे सब लोग एक दीन पर, फिर भेजे अल्लाह ने पैग़म्बर ख़ुशख़बरी सुनाने वाले और डराने वाले और उतारी उनके साथ किताब सच्ची कि फ़ैसला करे लोगों में जिस बात में वे झगड़ा करें। और नहीं झगड़ा डाला किताब में मगर उन्हीं लोगों ने जिन को किताब मिली थी, उसके बाद कि उनको

ऊतूहु मिम्-बअ्दि मा जाअत्हुमुल् बय्यिनातु बग़्यम्-बैनहुम् फ़-हदल्ला-हुल्लज़ी-न आमनू लिमख़्त-लफ़ू फ़ीहि मिनल्-हक़्क़ि बि-इज़्निही, वल्लाहु यह्दी मंय्यशा-उ इला सिरातिम्-मुस्तक़ीम (213)	पहुँच चुके साफ़ हुक्म, आपस की ज़िद से। फिर अब हिदायत की अल्लाह ने ईमान वालों को उस सच्ची बात की जिसमें वे झगड़ा कर रहे थे, अपने हुक्म से। और अल्लाह बतलाता है जिसको चाहे सीधा रास्ता। (213)

इस मज़्मून का पीछे से जोड़

ऊपर दीने हक़ से इख़्तिलाफ़ करने की इल्लत (सबब और वजह) दुनिया की मुहब्बत को बताया गया है, आगे इसी मज़्मून की ताईद फ़रमाते हैं कि मुद्दत से यही क़िस्सा चला आ रहा है कि हम स्पष्ट और खुली दलीलें दीने हक़ पर क़ायम करते हैं और दुनिया के तलबगार अपनी दुनियावी ग़र्ज़ों के सबब उसकी मुख़ालफ़त (विरोध) करते रहे।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(एक ज़माने में) सब आदमी एक ही तरीक़े पर थे (क्योंकि दुनिया की शुरूआत में हज़रत आदम अलैहिस्सलाम अपनी बीवी के साथ तशरीफ़ लाये और जो औलाद होती गई उनको दीने हक़ की तालीम फ़रमाते रहे और वे उनकी तालीम पर अ़मल करते रहे। एक मुद्दत इसी हालत में गुज़र गई फिर तबीयतों और मिज़ाजों के भिन्न होने की वजह से मक़ासिद व ग़र्ज़ों में इख़्तिलाफ़ "यानी मतभेद व विवाद" होना शुरू हुआ यहाँ तक कि एक मुद्दत के बाद आमाल व अ़क़ीदों में इख़्तिलाफ़ की नौबत आ गई) फिर (उस इख़्तिलाफ़ के दूर करने को) अल्लाह तआ़ला ने (अनेक) पैग़म्बरों को भेजा, जो कि (हक़ मानने वालों को) ख़ुशी (के वायदे) सुनाते थे और (न मानने वालों को अ़ज़ाब से) डराते थे और उन (पैग़म्बरों की मजमूई जमाअ़त) के साथ (आसमानी) किताबें भी ठीक तौर पर नाज़िल फ़रमाईं (और उन पैग़म्बरों का भेजना और किताबों का नाज़िल फ़रमाना) इस ग़र्ज़ से (था) कि अल्लाह तआ़ला (उन रसूलों व किताबों के ज़रिये से इख़्तिलाफ़ करने वाले) लोगों में उनके (मज़हबी) विवादित मामलों में फ़ैसला फ़रमा दें (क्योंकि रसूल व किताब सही और वास्तविक बात का इज़हार कर देते हैं और सही बात के मुतैयन होने से ज़ाहिर है कि हक़ीक़त के ख़िलाफ़ का ग़लत हो जाना मालूम हो जाता है, और यही फ़ैसला है और उन पैग़म्बरों के साथ किताबुल्लाह आने से चाहिये था कि उस किताब को क़ुबूल करते और उस पर अपने कामों का मदार रखकर अपने सब विवादों को मिटा देते, मगर बाज़ों ने ख़ुद उस किताब ही को न माना, और ख़ुद उसी में इख़्तिलाफ़ करना शुरू कर दिया), और उस किताब में (यह) इख़्तिलाफ़ और किसी ने नहीं किया मगर सिर्फ़ उन लोगों ने जिनको (शुरू में) वह किताब मिली थी (यानी इल्म और समझ रखने वालों ने, कि पहले मुख़ातब वही

लोग होते हैं दूसरे अवाम उनके साथ लग लिया करते हैं, और झगड़ा व विवाद भी कैसे वक़्त किया) उसके बाद कि उनके पास स्पष्ट दलीलें पहुँच चुकी थीं (यानी उनके ज़ेहन में सही बात बैठ चुकी थी, और इख़्तिलाफ़ किया किस वजह से? सिर्फ़) आपसी ज़िद्दा-ज़िद्दी की वजह से (और असली वजह ज़िद्दा-ज़िद्दी की दुनिया की तलब होती है, माल की मुहब्बत हो या रुतबे व पद की चाहत, पस हक़ की मुख़ालफ़त की असल वजह वही दुनिया की मुहब्बत ही ठहरी, और यही मज़मून था इससे पहले भी) फिर (काफ़िरों की यह मुख़ालफ़त कभी ईमान वालों को नुक़सान देने वाली नहीं हुई बल्कि) अल्लाह तआ़ला ने (हमेशा) ईमान वालों को वह हक़ अम्र "यानी हक़ बात और मामला" जिसमें इख़्तिलाफ़ करने वाले इख़्तिलाफ़ किया करते थे, अपने फ़ज़्ल व करम से (रसूलों और किताबों पर ईमान लाने की बदौलत) बतला दिया, और अल्लाह तआ़ला जिसको चाहते हैं उसको सही रास्ता बतला देते हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत में यह बयान किया गया है कि किसी ज़माने में तमाम इनसान एक ही मज़हब व मिल्लत (तरीक़े) और अ़क़ीदे व ख़्याल पर थे, जो मिल्लते हक़ और दीने फ़ितरत थी। फिर उनमें मिज़ाज व रुझान और राय व सोच के भिन्न होने से बहुत से विभिन्न ख़्यालात व अ़क़ीदे पैदा हो गये जिनमें यह फ़र्क़ करना दुश्वार था कि उनमें हक़ कौनसा है और बातिल कौनसा। हक़ को स्पष्ट करने और सही हक़ रास्ते को बतलाने के लिये अल्लाह तआ़ला ने अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम भेजे और उन पर किताबें और **वही** नाज़िल फ़रमाई। अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की जिद्दोजहद और तब्लीग़ व इस्लाह के बाद इनसान दो गिरोहों में बंट गये- एक वे जिन्होंने अल्लाह तआ़ला की भेजी हुई हिदायतों को क़ुबूल किया और अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के ताबेदार हो गये, जिनको **मोमिन** कहा जाता है। दूसरे वे जिन्होंने आसमानी हिदायतों और अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को झुठलाया, उनकी बात न मानी, ये लोग **काफ़िर** कहलाते हैं। इस आयत के पहले जुमले में इरशाद है:

كَانَ النَّاسُ اُمَّةً وَّاحِدَةً

इमाम राग़िब अस्फ़हानी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी किताब 'मुफ़रदातुल-क़ुरआन' में फ़रमाया है कि लफ़्ज़ 'उम्मतुन' अ़रबी लुग़त के एतिबार से हर ऐसी जमाअ़त को कहा जाता है जिसमें किसी वजह से संपर्क व एकता और गठजोड़ क़ायम हो, चाहे यह एकता नज़रियात व अ़क़ायद की हो या एक ज़माने में या किसी एक इलाक़े में जमा होने की, या किसी दूसरे रिश्ते यानी नसब, भाषा, रंग वग़ैरह की। मफ़्हूम इस जुमले का यह है कि किसी ज़माने में तमाम इनसान आपस में मिली-जुली और एक साथ मिलकर रहने वाली एक जमाअ़त थे। इसमें दो बातें क़ाबिले ग़ौर हैं:

अव्वल यह कि इस जगह एक होने से किस क़िस्म का एक होना और घुलना-मिलना मुराद है। **दूसरे** यह कि यह एकता किस ज़माने में थी। पहली बात का फ़ैसला तो इसी आयत के आख़िरी जुमले ने कर दिया, जिसमें इस एकता के बाद इख़्तिलाफ़ (भिन्नता) उत्पन्न होने का और विभिन्न राहों में से हक़ मुतैयन करने के लिये अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के भेजने का ज़िक्र है। क्योंकि यह

इख़्तिलाफ़ (विवाद व झगड़ा) जिसमें फ़ैसला करने के लिये अम्बिया अलैहिमुस्सलाम और आसमानी किताबें भेजी गई हैं ज़ाहिर है कि वह नस्ल, भाषा, रंग या वतन और ज़माने का इख़्तिलाफ़ न था बल्कि नज़रियात और अक़ीदों व ख़्यालात का इख़्तिलाफ़ था, इसी के मुक़ाबले से मालूम हुआ कि इस आयत में वह्दत (एकता) से भी फ़िक्र व ख़्याल और अक़ीदे व मस्लक की एकता मुराद है।

तो अब आयत का मतलब व मायने यह हो गये कि एक ज़माना ऐसा था जबकि तमाम इनसानी अफ़राद सिर्फ़ एक ही अक़ीदे व ख़्याल और एक ही मज़हब व मस्लक (विचारधारा) रखते थे, वह अक़ीदा व मस्लक क्या था इसमें दो संभावनायें हैं- एक यह कि सब तौहीद व ईमान के अक़ीदे पर मुत्तफ़िक़ थे, दूसरे यह कि सब कुफ़्र व गुमराही पर एक थे। मगर जमहूर मुफ़स्सिरीन के नज़दीक राजेह (वरीयता प्राप्त) यह है कि इस से मुराद सही अक़ीदे यानी तौहीद व ईमान पर सब का एक और जमा होना है। सूरः यूनुस में भी इसी मज़मून की एक आयत आई है। फ़रमायाः

وَمَا كَانَ النَّاسُ اِلَّآ اُمَّةً وَّاحِدَةً فَاخْتَلَفُوْا وَلَوْلَا كَلِمَةٌ سَبَقَتْ مِنْ رَّبِّكَ لَقُضِيَ بَيْنَهُمْ فِيْمَا فِيْهِ يَخْتَلِفُوْنَ٥

(سورة ١٠: آيت ١٩)

"यानी सब आदमी एक ही उम्मत (तरीक़े पर) थे, फिर आपस में झगड़ा और विवाद पड़ गया और अगर अल्लाह तआ़ला का यह पहले से तयशुदा फ़ैसला न होता (कि इस आ़लमे दुनिया में हक़ व बातिल, खरा खोटा, सच और झूठ मिले-जुले चलेंगे) तो अल्लाह की क़ुदरत इन सब झगड़ों का ऐसा फ़ैसला कर देती कि हक़ से इख़्तिलाफ़ करने वालों का नाम ही न रहता।"

और सूरः अम्बिया में फ़रमायाः

اِنَّ هٰذِهٖٓ اُمَّتُكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً وَّاَنَا رَبُّكُمْ فَاعْبُدُوْنِ٥ (سورة ٢١: آيت ٩٢)

"यह तुम्हारी जमाअ़त एक ही जमाअ़त है और मैं तुम्हारा रब हूँ, इसलिये सब मेरी ही इबादत करते रहो।"

इसी तरह सूरः मोमिनून में फ़रमायाः

وَاِنَّ هٰذِهٖٓ اُمَّتُكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً وَّاَنَا رَبُّكُمْ فَاتَّقُوْنِ٥ (سورة ٢٣: آيت ٥٢)

"यह तुम्हारी जमाअ़त एक ही जमाअ़त है और मैं तुम्हारा रब हूँ इसलिये मुझसे ही डरते रहो।"

इन तमाम आयतों से यह मालूम होता है कि इस जगह वह्दत (एक होने) से अक़ीदा व मस्लक की वह्दत और दीने हक़ तौहीद व ईमान में सब का मुत्तहिद (एकजुट) होना मुराद है।

अब यह देखना है कि यह दीने हक़ इस्लाम व ईमान पर तमाम इनसानों का इत्तिफ़ाक़ व इत्तिहाद किस ज़माने का वाक़िआ़ है। यह एकता कहाँ तक क़ायम रही? सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम में के मुफ़स्सिरीन (क़ुरआन के व्याख्यापकों) में से हज़रत उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हु और इब्ने ज़ैद रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि यह वाक़िआ़ 'आ़लमे अज़ल' (दुनिया के वजूद के पहले दिन) का है, जब तमाम इनसानों की रूहों को पैदा करके उनसे सवाल किया गया था 'अलस्तु बिरब्बिकुम्' यानी "क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ" और सब ने यह जवाब दिया था कि बेशक आप हमारे रब और परवर्दिगार हैं, किसी ने भी ख़ुद को अलग नहीं रखा था। उस वक़्त तमाम इनसान एक ही हक़ अक़ीदे पर क़ायम थे जिसका नाम ईमान व इस्लाम है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि यह अ़क़ीदे की वह्दत (एक होने) का वाक़िआ़ उस वक़्त का है जबकि आदम अ़लैहिस्सलाम अपनी बीवी मोहतरमा के साथ दुनिया में तशरीफ़ लाये थे और आपकी औलाद हुई और फैलती गई, वे सब के सब हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम के दीन और उन्हीं की तालीम व तल्क़ीन के ताबे तौहीद (अल्लाह के एक होने) के कायल थे, और सब के सब क़ाबील वग़ैरह को छोड़कर शरीअ़त के ताबेदार व फ़रमाँबरदार थे।

मुस्नद बज़्ज़ार में हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु के इस क़ौल के साथ यह भी मज़कूर है कि अ़क़ीदे का एक होना हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम से लेकर हज़रत इदरीस अ़लैहिस्सलाम तक क़ायम रहा, उस वक़्त तक सब के सब मुस्लिम और तौहीद के मोतक़िद थे और आदम अ़लैहिस्सलाम और इदरीस अ़लैहिस्सलाम के बीच का ज़माना दस क़र्न है, बज़ाहिर हर क़र्न से एक सदी मुराद है, तो कुल ज़माना एक हज़ार साल का हो गया।

और कुछ हज़रात ने यह भी फ़रमाया है कि यह वह्दते अ़क़ीदा (अ़क़ीदे की एकता) का ज़माना वह है जबकि नूह अ़लैहिस्सलाम की बददुआ़ से दुनिया में तूफ़ान आया और सिवाय उन लोगों के जो नूह अ़लैहिस्सलाम के साथ कश्ती में सवार हो गये थे बाक़ी सारी दुनिया ग़र्क़ हो गई थी। तूफ़ान ख़त्म होने के बाद जितने आदमी इस दुनिया में रहे वे सब मुसलमान, अल्लाह को एक मानने वाले और दीने हक़ की पैरवी करने वाले थे।

दर हक़ीक़त इन तीनों अक़्वाल में कोई इख़्तिलाफ़ (टकराव) नहीं, ये तीनों ज़माने ऐसे ही थे जिनमें सारे इनसान एक मिल्लत और एक उम्मत (एक रास्ते और दीन वाले) बने हुए दीने हक़ पर क़ायम थे।

आयत के दूसरे जुमले में इरशाद है:

فَبَعَثَ اللّٰهُ النَّبِيّٖنَ مُبَشِّرِيْنَ وَمُنْذِرِيْنَ وَاَنْزَلَ مَعَهُمُ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ لِيَحْكُمَ بَيْنَ النَّاسِ فِيْمَا اخْتَلَفُوْا فِيْهِ.

"यानी फिर अल्लाह तआ़ला ने पैग़म्बरों को भेजा जो ख़ुशी सुनाते थे और डराते थे और उनके साथ किताबें भी ठीक तौर पर नाज़िल फ़रमाई इस ग़र्ज़ से कि अल्लाह तआ़ला लोगों में उनके विवादित मामलों में फ़ैसला फ़रमा दें।"

यहाँ यह बात विचारनीय है कि ऊपर के जुमले में तमाम इनसानों का एक उम्मत और एक मिल्लत वाला होना बयान किया था और इस जुमले में इसी पर बात आगे बढ़ाते हुए यह फ़रमाया कि हमने अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और किताबें भेजीं ताकि झगड़े और विवाद का फ़ैसला किया जाये। इन दोनों जुमलों में बज़ाहिर जोड़ नहीं मालूम होता, क्योंकि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और किताबों के भेजने की इल्लत (सबब और कारण) लोगों का इख़्तिलाफ़ (झगड़ा, मतभेद और विवाद) है और इख़्तिलाफ़ उस वक़्त था नहीं। मगर जवाब बिल्कुल स्पष्ट है कि उक्त आयत की मुराद यह है कि दुनिया की शुरूआ़त में तमाम इनसान एक ही यानी हक़ के अ़क़ीदे के क़ायल और पाबन्द थे, फिर धीरे-धीरे मतभेद और झगड़े पैदा हो गये, इख़्तिलाफ़ात पैदा होने के बाद अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और किताबें भेजने की ज़रूरत पेश आई।

अब एक बात रह जाती है कि ऊपर सिर्फ़ 'उम्मते वाहिदा' (एक उम्मत) होने का ज़िक्र किया

गया, झगड़े और विवाद पैदा होने का ज़िक्र क्यों नहीं किया गया? जो लोग क़ुरआने करीम के हिक्मत भरे अन्दाज़ का कुछ ज्ञान रखते हैं उनके लिये इसका जवाब मुश्किल नहीं कि क़ुरआने करीम गुज़रे हालात के बयान में क़िस्सा कहानी या तारीख़ की किताबों के सारे क़िस्से को कहीं नक़ल नहीं करता, बल्कि बीच से वह हिस्सा छोड़ देता है जो उस कलाम के मज़मून से ख़ुद-ब-ख़ुद समझा जा सके। जैसे हज़रत यूसुफ़ अलैहिस्सलाम के क़िस्से में जो क़ैदी रिहा होकर आया और ख़्वाब की ताबीर हासिल करने के लिये उसने बादशाह से कहा कि मुझे यूसुफ़ अलैहिस्सलाम के पास भेज दो, तो क़ुरआन में उस क़ैदी की तजवीज़ नक़ल करने के बाद बात यहाँ से शुरू होती है:

يُوْسُفُ اَيُّهَا الصِّدِّيْقُ

यानी ऐ सच्चे यूसुफ़। इसका ज़िक्र नहीं किया कि बादशाह ने उसकी तजवीज़ को पसन्द किया और उसको जेलख़ाने में हज़रत यूसुफ़ अलैहिस्सलाम के पास भेजा, वह वहाँ पहुँचकर उनसे मुख़ातिब हुआ। क्योंकि पिछले और अगले जुमलों के मिलाने से ये सारी बातें अपने आप समझ में आ जाती हैं। इसी तरह इस आयत में मिल्लत के एक होने के बाद झगड़ा पैदा होने का तज़किरा इसलिये ज़रूरी नहीं समझा गया कि झगड़ों और विवादों का पैदा होना तो सारी दुनिया जानती है, हर वक़्त यह सब कुछ देखने में आता है, ज़रूरत इस बात के इज़हार की थी कि उन बहुत से विवादों और झगड़ों से पहले एक ज़माना ऐसा भी गुज़र चुका है जिसमें सारे इनसान एक ही मज़हब व मिल्लत और एक ही दीने हक़ के पैरोकार थे, इसी को बयान फ़रमाया। फिर जो झगड़े दुनिया में फैले और सब के देखने और अनुभव में आये उनके उत्पन्न होने का बयान करने की ज़रूरत न थी, हाँ यह बतलाया गया कि उन झगड़ों और विवादों में हक़ रास्ते की हिदायत और रहनुमाई का सामान हक़ तआ़ला ने क्या फ़रमाया। इसके बारे में इरशाद हुआ:

فَبَعَثَ اللّٰهُ النَّبِيّٖنَ

यानी हक़ तआ़ला ने अम्बिया अलैहिमुस्सलाम को भेजा जो दीने हक़ की पैरवी करने वालों को हमेशा के आराम व राहत की ख़ुशख़बरी और उससे मुँह मोड़ने वालों को दोज़ख़ के अ़ज़ाब की वईद (डरावा) सुना दें, और उनके साथ अपनी वही और किताबें भेजीं जो विभिन्न अ़क़ीदों व ख़्यालात में से सही और हक़ को स्पष्ट करके बतला दें। उसके बाद यह इरशाद फ़रमाया कि अम्बिया व रसूल अलैहिमुस्सलाम और आसमानी किताबों के खुले हुए फ़ैसलों के बाद भी यह दुनिया दो गिरोहों में तक़सीम हो गई- कुछ लोगों ने उन वाज़ेह (खुली और स्पष्ट) हिदायतों को क़ुबूल न किया और ताज्जुब की बात यह है कि क़ुबूल न करने वाले सबसे पहले वही लोग हुए जिनके पास ये अम्बिया अलैहिमुस्सलाम और अल्लाह की आयतें भेजी गई थीं, यानी अहले किताब यहूदी व ईसाई। और इससे ज़्यादा ताज्जुब की बात यह है कि आसमानी किताबों में कोई शक व शुब्हे और धोखा खाने की गुंजाईश न थी कि उनकी समझ में न आये या ग़लत-फ़हमी का शिकार हो जायें, बल्कि हक़ीक़त यह थी कि जानने-बूझने के बावजूद उन लोगों ने सिर्फ़ अपनी ज़िद व हठधर्मी से इनकार किया।

और दूसरा गिरोह वह हुआ जिनको अल्लाह तआ़ला ने हिदायत के रास्ते पर लगा दिया और जिसने अम्बिया व रसूल अलैहिमुस्सलाम और आसमानी किताबों के फ़ैसले ठण्डे दिल से तस्लीम किये,

इन्हीं दोनों गिरोहों का बयान क़ुरआने करीम ने सूरः तग़ाबुन में इस तरह फ़रमाया है:

خَلَقَكُمْ فَمِنْكُمْ كَافِرٌ وَّمِنْكُمْ مُّؤْمِنٌ. (٢:٦٤)

"यानी अल्लाह तआ़ला ने तुमको पैदा किया फिर तुम में से कुछ काफ़िर व मुन्किर हो गये कुछ मोमिन व मुस्लिम।"

ख़ुलासा-ए-मज़मून आयत 'कानन्नासु उम्मतंव्-वाहिदतन्' (यानी आयत नम्बर 213 जिसकी यह तफ़सीर चल रही है) का यह है कि पहले दुनिया के सब इनसान दीने हक़ पर क़ायम थे, फिर तबीयतों और मिज़ाजों के भिन्न होने से मक़ासिद व उद्देश्यों में भिन्नता पैदा हुई जिससे आपस में इख़्तिलाफ़ (मतभेद, झगड़ा और विवाद) होना शुरू हुआ। एक अ़रसे के बाद आमाल व अ़क़ीदों में इख़्तिलाफ़ (झगड़े) की नौबत आ गई, यहाँ तक कि हक़ व बातिल में धोखा और शुब्हा होने लगा तो अल्लाह तआ़ला ने अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और अपनी किताबें राहे हक़ की हिदायत करने के लिये और उसी दीने हक़ पर दोबारा क़ायम हो जाने के लिये भेजी जिस पर सब इनसान पहले क़ायम थे, लेकिन उन सब खुली और स्पष्ट हिदायतों और रोशन निशानियों के होते हुए कुछ लोगों ने माना और कुछ लोगों ने ज़िद और हठधर्मी की वजह से मुँह मोड़ने और इनकार का रास्ता इख़्तियार कर लिया।

चन्द मसाईल

मसलाः इस आयत से चन्द बातें मालूम हुई- अव्वल यह कि अल्लाह तआ़ला ने जो बहुत से अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और किताबें दुनिया में भेजीं, ये सब इस वास्ते थीं कि ये लोग जो दीने हक़ की एक मिल्लत को छोड़कर विभिन्न और अनेक फ़िर्क़ों में बंट गये हैं फिर उनको उसी एक मिल्लत पर क़ायम कर दें। अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का यह सिलसिला यूँ ही चलता रहा कि जब लोग उस हक़ रास्ते से बिचले (बहके) तो उनकी हिदायत के लिये अल्लाह तआ़ला ने कोई नबी भेजा और किताब उतारी कि उसके मुवाफ़िक़ चलें। फिर कभी बहके तो दूसरा नबी और किताब अल्लाह तआ़ला ने उसी हक़ रास्ते पर क़ायम करने के लिये भेज दिया। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे तन्दुरुस्ती एक है और बीमारियाँ बेशुमार, जब एक मर्ज़ (रोग) पैदा हुआ तो उसके मुवाफ़िक़ दवा और परहेज़ मुक़र्रर फ़रमाया, जब दूसरा मर्ज़ पैदा हुआ तो दूसरी दवा और परहेज़ उसके मुवाफ़िक़ बतलाया, अब आख़िर में ऐसा जामे नुस्ख़ा तजवीज़ फ़रमाया जो सारी बीमारियों से बचाने में उस वक़्त तक के लिये कामयाब साबित हो जब तक इस आ़लम (दुनिया) को बाक़ी रखना मन्ज़ूर हो। यह मुकम्मल और जामे नुस्ख़ा, एक जामे उसूले इलाज पिछले सब नुस्ख़ों के क़ायम-मक़ाम और आईन्दा से बेफ़िक्र करने वाला हो और वह जामे नुस्ख़ा इस्लाम है, जिसके लिये ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और क़ुरआन भेजे गये और पिछली किताबों में रद्दोबदल होकर जो पिछले अम्बिया की तालीमात ज़ाया और गुम हो जाने का सिलसिला ऊपर से चला आता था, जिसके सबब नये नबी और नई किताब की ज़रूरत पेश आती थी, उसका यह इन्तिज़ाम फ़रमा दिया गया कि क़ुरआने करीम को रद्दोबदल से महफ़ूज़ रखने का ज़िम्मा ख़ुद हक़ तआ़ला ने ले लिया और क़ुरआने करीम की तालीमात को क़ियामत तक उनकी असली सूरत में क़ायम और बाक़ी रखने के लिये अल्लाह जल्ल शानुहू ने

उम्मते मुहम्मदिया में कियामत तक एक ऐसी जमाअ़त कायम रखने का वायदा फ़रमा लिया जो हमेशा दीने हक़ पर कायम रहकर किताब व सुन्नत की सही तालीम मुसलमानों में फैलाती रहेगी, किसी की मुख़ालफ़त व दुश्मनी उन पर असर-अन्दाज़ न होगी। इसलिये इसके बाद नुबुव्वत के दरवाज़े और वही का बन्द हो जाना लाज़िमी चीज़ थी, आख़िर ख़त्मे-नुबुव्वत का ऐलान कर दिया गया।

ख़ुलासा यह है कि विभिन्न ज़मानों में अनेक अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और उनकी मुख़्तलिफ़ किताबें आने से कोई इस धोखे में न पड़ जाये कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और किताबें लोगों को विभिन्न फ़िर्कों में तक़सीम करने और बिखराव पैदा करने के लिये नाज़िल की गई हैं, बल्कि मंशा उन सब अम्बिया और किताबों का यह है कि जिस तरह पहले सारे इनसान एक ही दीने हक़ के पैरो होकर एक मिल्लत पर थे इसी तरह फिर उसी दीने हक़ पर सब जमा हो जायें।

मसलाः दूसरी बात यह मालूम हुई कि मज़हब की बिना पर क़ौमियत की तक़सीम मुस्लिम व ग़ैर-मुस्लिम का दो क़ौमी नज़रिया क़ुरआनी मंशा के ऐन मुताबिक़ है। आयतः

فَمِنْكُمْ كَافِرٌ وَّمِنْكُمْ مُّؤْمِنٌ. (سورة ٦٤: آيت ٢)

(सो तुम में से काफ़िर हैं और तुम में से मोमिन हैं) इस पर शाहिद (सुबूत) है। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि इस्लाम में इस दो क़ौमी नज़रिये की असल बुनियाद दर हक़ीक़त सही संयुक्त क़ौमियत पैदा करने पर है जो इनसानी दुनिया की पैदाईश के शुरू के दौर में क़ायम थी, जिसकी बुनियाद वतन पर न थी बल्कि हक़ के अ़क़ीदे और दीने हक़ की पैरवी पर थी। इरशादे क़ुरआनीः

كَانَ النَّاسُ اُمَّةً وَّاحِدَةً

(सब आदमी एक ही तरीक़े पर थे) ने बतलाया कि दुनिया की शुरूआत में सही एतिक़ाद व यक़ीन और दीने हक़ की पैरवी के एतिबार से एक सही और वास्तविक क़ौमी एकता क़ायम थी, बाद में लोगों ने इख़्तिलाफ़ (झगड़े) पैदा किये। अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम ने लोगों को उसी असली एकता की तरफ़ बुलाया, जिन्होंने उनकी दावत को क़ुबूल न किया वह उस क़ौमी एकता से कट गये और अलग क़ौम क़रार दिये गये।

मसलाः तीसरी बात इस आयत से यह मालूम हुई कि अज़ल (दुनिया के पहले दिन) से अल्लाह तआ़ला की सुन्नत (तरीक़ा) यही जारी है कि बुरे लोग हर भेजे गये नबी के ख़िलाफ़ और हर अल्लाह की किताब से इख़्तिलाफ़ को पसन्द करते रहे, और उनके मुक़ाबले व मुख़ालफ़त में पूरा ज़ोर ख़र्च करने के लिये आमादा रहे हैं, तो अब ईमान वालों को उनकी बद-सुलूकी और फ़साद से तंगदिल न होना चाहिये, जिस तरह काफ़िरों ने अपने बड़ों का तरीक़ा कुफ़्र व दुश्मनी और हज़राते अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की मुख़ालफ़त का इख़्तियार किया, इसी तरह नेक लोगों यानी मोमिनों को चाहिये कि वे अपने बुज़ुर्गों (यानी अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम) का रास्ता और अ़मल इख़्तियार करें, कि उन लोगों की तकलीफ़ें पहुँचाने और मुख़ालफ़तों पर सब्र करें और नसीहत व समझ और नर्मी के साथ उनको दीने हक़ की तरफ़ बुलाते रहें, और शायद इसी मुनासबत से अगली आयत में मुसलमानों को मुसीबतों व आफ़तों पर बरदाश्त और संयम बरतने और सब्र करने की तालीम की गई है।

اَمْ حَسِبْتُمْ اَنْ تَدْخُلُوا الْجَنَّةَ وَلَمَّا يَاْتِكُمْ مَّثَلُ الَّذِيْنَ خَلَوْا مِنْ قَبْلِكُمْ ۭ مَسَّتْهُمُ الْبَاْسَاۗءُ وَالضَّرَّاۗءُ وَزُلْزِلُوْا حَتّٰى يَقُوْلَ الرَّسُوْلُ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ مَتٰى نَصْرُ اللّٰهِ ۭ اَلَآ اِنَّ نَصْرَ اللّٰهِ قَرِيْبٌ

अम् हसिब्तुम् अन् तद्ख़ुलुल्-जन्न-त व लम्मा यअ्तिकुम् म-सलुल्लज़ी-न ख़लौ मिन् क़ब्लिकुम, मस्सत्हुमुल्-बअ्सा-उ वज़्ज़र्रा-उ व ज़ुल्ज़िलू हत्ता यक़ूलर्-रसूलु वल्लज़ी-न आमनू म-अ़हू मता नस्रुल्लाहि, अला इन्-न नस्रल्लाहि क़रीब (214)	क्या तुमको यह ख़्याल है कि जन्नत में चले जाओगे हालाँकि तुम पर नहीं गुज़रे हालात उन लोगों के जैसे जो हो चुके तुमसे पहले, कि पहुँची उनको सख़्ती और तकलीफ़ और झुड़झुड़ाये गये यहाँ तक कि कहने लगा रसूल और जो उसके साथ ईमान लाये- कब आयेगी अल्लाह की मदद? सुन रखो अल्लाह की मदद क़रीब है। (214)

इन आयतों का पिछले मज़मून से संबन्ध

ऊपर की आयतों में काफ़िरों का हमेशा से अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम व मोमिनों के साथ टकराव और मुख़ालफ़त करते रहना बयान हुआ था, जिसमें एक तरह से मुसलमानों को इस तौर पर तसल्ली देना भी मक़सूद था जिनको काफ़िरों के मज़ाक़ उड़ाने से तकलीफ़ होती थी कि यह मुख़ालफ़त तुम्हारे साथ नयी नहीं है हमेशा से होती आयी है। आगे उन मुख़ालिफ़ काफ़िरों से अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और मोमिनों को तरह-तरह की तकलीफ़ें और सख़्तियाँ पहुँचने को बयान फ़रमाते हैं, और इससे भी मुसलमानों को तसल्ली दिलाते हैं कि तुमको काफ़िरों से जो तकलीफ़ें पहुँचती हैं उन पर सब्र करना चाहिये, क्योंकि कामिल राहत तो आख़िरत के लिये मेहनत ही उठाने से ही है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(दूसरी बात सुनो) क्या तुम्हारा यह ख़्याल है कि जन्नत में (मशक़्क़त उठाए बग़ैर) जा दाख़िल होगे? हालाँकि (अभी कुछ मशक़्क़त तो उठाई ही नहीं, क्योंकि) तुमको अभी उन (मुसलमान) लोगों के जैसा कोई अ़जीब वाक़िआ पेश नहीं आया जो तुमसे पहले हो गुज़रे हैं। उन पर (मुख़ालिफ़ों के सबब) ऐसी-ऐसी तंगी और सख़्ती पेश आई और (मुसीबतों से) उनको यहाँ तक हिलाया गया कि (उस ज़माने के) पैग़म्बर तक और जो उनके साथ ईमान वाले थे (बेक़रार होकर) बोल उठे कि अल्लाह तआ़ला की (वायदा की गई) इमदाद कब होगी? (जिस पर उनको जवाब से तसल्ली की गई कि) याद रखो! बेशक अल्लाह तआ़ला की इमदाद (बहुत) नज़दीक (होने वाली) है।

मआरिफ़ व मसाईल

इस आयत में चन्द बातें ध्यान देने के क़ाबिल हैं:

पहली यह कि इस आयत से बज़ाहिर मालूम होता है कि बग़ैर मशक़्क़त व मेहनत के और बग़ैर मुसीबतों व आफ़तों में मुब्तला हुए कोई शख़्स जन्नत में न जायेगा, हालाँकि क़ुरआन पाक और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात से साबित है कि बहुत से गुनाहगार महज़ अल्लाह तआ़ला के लुत्फ़ व करम और मग़फ़िरत से जन्नत में दाख़िल होंगे, उन पर कोई मशक़्क़त भी न होगी। वजह यह है कि मशक़्क़त और मेहनत के दर्जे अलग-अलग हैं, अदना दर्जा नफ़्स व शैतान से लड़कर या दीने हक़ के मुख़ालिफ़ों के साथ मुख़ालफ़त करके अपने अ़क़ीदों का दुरुस्त करना है, और यह हर मोमिन को हासिल है। आगे औसत और आला दर्जे हैं, जिस दर्जे की मेहनत व मशक़्क़त होगी उसी दर्जे का जन्नत में दाख़िला होगा। इस तरह मेहनत व मशक़्क़त से कोई ख़ाली न रहा। एक हदीस में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया:

اَشَدُّ النَّاسِ بلاءً الانبیاء ثمّ الأمثل فالأمثل.

"सबसे ज़्यादा सख़्त बलायें और मुसीबतें अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को पहुँचती हैं, उनके बाद उनको जो उनके ज़्यादा क़रीब हैं।"

दूसरी बात यहाँ क़ाबिले ग़ौर यह है कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और उनके साथियों का यह अ़र्ज़ करना कि अल्लाह तआ़ला की मदद कब आयेगी, किसी शक व शुब्हे की वजह से न था, जो उनकी शान के ख़िलाफ़ है। बल्कि इस सवाल का मंशा यह था कि अल्लाह तआ़ला ने अगरचे मदद का वायदा फ़रमाया है मगर उसका वक़्त और मक़ाम मुतैयन नहीं फ़रमाया, इसलिये बेक़रारी की हालत में ऐसे अलफ़ाज़ अ़र्ज़ करने का मतलब यह था कि मदद जल्द भेजी जाये और ऐसी दुआ़ करना तवक्कुल (अल्लाह पर भरोसे) या नुबुव्वत के मक़ाम के ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि हक़ तआ़ला अपने बन्दों के रोने व गिड़गिड़ाने को पसन्द फ़रमाते हैं इसलिये अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और उम्मत के नेक लोग इसके सबसे ज़्यादा हक़दार हैं (कि वे उस अ़मल को करें जो अल्लाह तआ़ला को पसन्द है)।

يَسْئَلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ ؕ قُلْ مَآ اَنْفَقْتُمْ مِّنْ خَيْرٍ فَلِلْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ وَابْنِ السَّبِيْلِ ؕ وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ﴿۲۱۵﴾

यस्अलून-क मा-ज़ा युन्फ़िक़ू-न, क़ुल् मा अन्फ़क़्तुम् मिन् ख़ैरिन् फ़-लिल्वालिदैनि वल्-अक़रबी-न वल्-यतामा वल्-मसाकीनि वब्निस्सबीलि, व मा तफ़्अ़लू मिन्	तुझसे पूछते हैं- क्या चीज़ ख़र्च करें? कह दो कि जो कुछ तुम ख़र्च करो माल सो माँ-बाप के लिये और क़राबत वालों (रिश्तेदारों) के और यतीमों के और मोहताजों के और मुसाफ़िरों के, और जो

ख़ैरिन् फ़-इन्नल्ला-ह बिही अ़लीम (215)	कुछ करोगे तुम भलाई सो वह बेशक अल्लाह को ख़ूब मालूम है। (215)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 12- सदक़े के ख़र्च करने की जगहें

लोग आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) से पूछते हैं कि (सवाब के वास्ते) क्या चीज़ ख़र्च किया करें (और किस मौक़े पर ख़र्च किया करें)? आप फ़रमा दीजिए कि जो कुछ माल तुमको ख़र्च करना हो सो (उसका तय करना तो तुम्हारी हिम्मत पर है, मगर हाँ मौक़ा हम बतलाये देते हैं कि) माँ-बाप का हक़ है और रिश्तेदारों व क़रीबी लोगों का, और बिना बाप के बच्चों का, और मोहताजों का, और मुसाफ़िर का, और जो भी नेक काम करोगे (चाहे राहे ख़ुदा में ख़र्च करना हो या और कुछ हो) सो अल्लाह तआ़ला को उसकी ख़ूब ख़बर है (वह उस पर सवाब देंगे)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इससे पहली आयतों में मजमूई हैसियत से यह मज़मून बहुत ताकीद के साथ बयान हुआ है कि कुफ़्र व निफ़ाक़ को छोड़ो और इस्लाम में पूरी तरह दाख़िल हो जाओ। अल्लाह के हुक्म के मुक़ाबले में किसी की बात मत सुनो, अल्लाह तआ़ला की रज़ा के लिये जान और माल ख़र्च किया करो, और हर तरह की सख़्ती और तकलीफ़ पर सब्र व बरदाश्त से काम लो। अब यहाँ से इसी इताअ़त व फ़रमाँबरदारी और अल्लाह की राह में जान व माल ख़र्च करने के बारे में कुछ और तफ़सीलात बयान होती हैं जो कि माल, जान और दूसरे मामलात जैसे निकाह व तलाक़ वग़ैरह से सम्बन्धित हैं और ऊपर से जो अबवाबुल-बिर्र (नेकी के कामों) के अहकाम का सिलसिला जारी है उसमें दाख़िल हैं।

और इन जुज़ईयात का बयान भी एक ख़ास अन्दाज़ रखता है कि अक्सर इनमें से वो हैं जिनके मुताल्लिक़ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सवाल किया, उनके पूछने और सवाल करने का जवाब डायरेक्ट अल्लाह के अ़र्श से रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के माध्यम से दिया गया, इसको अगर यूँ समझा जाये कि हक़ तआ़ला ने ख़ुद फ़तवा दिया तो यह भी सही है, और क़ुरआने करीम की आयतः

قُلِ اللّٰهُ يُفْتِيْكُمْ فِيْهِنَّ. (سورة٤:٢٧)

में खुले लफ़्ज़ों में हक़ तआ़ला ने फ़तवा देने की निस्बत अपनी तरफ़ फ़रमाई है, इसलिये इस निस्बत में कोई दूर की बात और असंभव होने की बात भी नहीं।

और यह भी कहा जा सकता है कि ये फ़तवे रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हैं जो आपको वही के माध्यम से तल्क़ीन (तालीम) किये गये हैं। बहरहाल इस रुकूअ़ में शरीअ़त के जो अहकाम सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के चन्द सवालात के जवाबात में बयान हुए हैं वे एक ख़ास अहमियत रखते हैं। पूरे क़ुरआन में इस तरह सवाल व जवाब के अन्दाज़ से ख़ास अहकाम

तक़रीबन सत्रह जगह में आये हैं, जिनमें से सात तो इसी जगह सूरः ब-क़रह में हैं, एक सूरः मायदा में, एक सूरः अनफ़ाल में। ये नौ सवालात तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की तरफ़ से हैं सूरः आराफ़ में दो और सूरः बनी इस्राईल, सूरः कहफ़, सूरः तॉ-हा, सूरः नाज़िआ़त में एक-एक, ये कुल छह सवाल काफ़िरों की तरफ़ से हैं जिनका जवाब क़ुरआने करीम में जवाब के उनवान से दिया गया है।

मुफ़स्सिरे क़ुरआन हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि मैंने कोई जमाअ़त मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सहाबा से बेहतर नहीं देखी, कि दीन के साथ हद से ज़्यादा लगाव और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ हद से ज़्यादा मुहब्बत व ताल्लुक़ के बावजूद उन्होंने सवालात बहुत कम किये, कुल तेरह मसाईल में सवाल किया है जिनका जवाब क़ुरआन में दिया गया है, क्योंकि ये हज़रात बिना ज़रूरत के सवाल न करते थे। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

ऊपर ज़िक्र हुई आयतों में से पहली आयत में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का इस्तिफ़्ता (यानी सवाल पूछना) इन अलफ़ाज़ से नक़ल फ़रमाया गया है:

يَسْئَلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ

यानी "लोग आप से पूछते हैं कि क्या ख़र्च करें" यही सवाल इस रुकूअ़ में तीन आयतों के बाद फिर इन्हीं अलफ़ाज़ के साथ दोहराया गया है:

يَسْئَلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ

लेकिन इस एक ही सवाल का जवाब उक्त आयत में कुछ और दिया गया है और तीन आयतों के बाद आने वाले सवाल का जवाब दूसरा है।

इसलिये पहले यह समझना ज़रूरी है कि एक ही सवाल के दो अलग-अलग जवाब किस हिक्मत पर आधारित हैं, यह हिक्मत उन हालात व वाक़िआ़त में ग़ौर करने से वाज़ेह हो जाती है जिनमें ये आयतें नाज़िल हुई हैं। जैसे उक्त आयत का शाने नुज़ूल यह है कि अ़मर बिन जमूह रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से यह सवाल किया था:

مَانُنْفِقُ مِنْ اَمْوَالِنَا وَاَيْنَ نَضَعُهَا. (اخرجه ابن المنذر مظهری)

यानी "हम अपने मालों में से क्या ख़र्च करें और कहाँ ख़र्च करें।" और इब्ने जरीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि की रिवायत के मुवाफ़िक़ यह सवाल अकेले अ़मर इब्ने जमूह रज़ियल्लाहु अ़न्हु का नहीं था बल्कि आ़म मुसलमानों का सवाल था। इस सवाल के दो भाग हैं- एक यह कि माल में से क्या और कितना ख़र्च करें, दूसरे यह कि उसका ख़र्च करने का मौक़ा और जगह क्या हो, किन लोगों को दें।

और दूसरी आयत जो दो आयतों के बाद इसी सवाल पर मुश्तमिल है उसका शाने नुज़ूल (उतरने का सबब और मौक़ा) इब्ने अबी हातिम रहमतुल्लाहि अ़लैहि की रिवायत के मुताबिक़ यह है कि जब क़ुरआन में मुसलमानों को इसका हुक्म दिया गया कि अपने माल अल्लाह तआ़ला की राह में ख़र्च करें तो चन्द सहाबा किराम नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और अ़र्ज़ किया कि अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने का जो हुक्म हमें मिला है हम उसकी वज़ाहत (स्पष्टीकरण और तफ़सील) चाहते हैं कि क्या माल और कौनसी चीज़ अल्लाह की राह में ख़र्च किया करें? इस सवाल में सिर्फ़ एक ही भाग है यानी क्या ख़र्च करें? इस तरह इन दोनों सवालों का अन्दाज़

और प्रकार कुछ अलग हो गये कि पहले सवाल में क्या ख़र्च करें और कहाँ ख़र्च करें का सवाल था और दूसरे में सिर्फ़ क्या ख़र्च करें का सवाल है। और पहले सवाल के जवाब में जो कुछ क़ुरआन में इरशाद फ़रमाया गया उससे मालूम होता है कि सवाल के दूसरे भाग को यानी कहाँ ख़र्च करें, ज़्यादा अहमियत देकर इसका जवाब तो स्पष्ट तौर पर दिया गया और पहले हिस्से यानी क्या ख़र्च करें का जवाब ज़िमनी तौर पर दे देना काफ़ी समझा गया। अब क़ुरआनी अलफ़ाज़ में दोनों हिस्सों (भागों) पर नज़र डालें, पहले हिस्से यानी "कहाँ ख़र्च करें" के बारे में इरशाद होता है:

مَآ اَنْفَقْتُمْ مِّنْ خَيْرٍ فَلِلْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ وَابْنِ السَّبِيْلِ

"यानी जो कुछ भी तुमको अल्लाह तआ़ला के लिये ख़र्च करना हो उसके मुस्तहिक़ माँ-बाप और रिश्तेदार और बिना बाप के बच्चे और मिस्कीन और मुसाफ़िर हैं।"

और दूसरे हिस्से यानी क्या ख़र्च करें का जवाब ज़िमनी तौर पर इन अलफ़ाज़ से दिया गया:

وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ

"यानी तुम जो कुछ भलाई करोगे अल्लाह तआ़ला को उसकी ख़बर है।" इशारा इस बात की तरफ़ है कि अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से तुम पर कोई हद बन्दी और पाबन्दी नहीं कि माल की इतनी ही मिक़्दार ख़र्च करो बल्कि जो कुछ भी अपनी हिम्मत व गुंजाईश के मुवाफ़िक़ ख़र्च करोगे अल्लाह तआ़ला के पास उसका अज्र व सवाब पाओगे।

ग़र्ज़ कि पहली आयत में शायद यह सवाल करने वालों के सामने ज़्यादा अहमियत इसी सवाल की हो कि हम जो माल ख़र्च करें उसके ख़र्च करने का मौक़ा और जगह क्या हो, कहाँ ख़र्च करें, इसी लिये इसके जवाब में अहमियत के साथ ख़र्च करने के मौक़े और जगहें बयान फ़रमाये गये, और क्या ख़र्च करें इस सवाल का जवाब ज़िमनी तौर पर दे देना काफ़ी समझा गया। और बाद वाली आयत में सवाल सिर्फ़ इतना ही था कि हम क्या चीज़ और क्या माल ख़र्च करें इसलिये इसका यह जवाब इरशाद हुआ:

قُلِ الْعَفْوَ

यानी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमा दें कि जो कुछ अपनी ज़रूरतों से बचे वह ख़र्च किया करें। इन दोनों आयतों से अल्लाह तआ़ला के रास्ते में माल ख़र्च करने के बारे में चन्द हिदायतें व मसाईल मालूम हुए।

मसलाः- पहली यह कि दोनों आयतें फ़र्ज़ ज़कात के बारे में नहीं, क्योंकि फ़र्ज़ ज़कात के लिये तो माल का निसाब भी मुक़र्रर है और उसमें जितनी मिक़्दार (मात्रा) ख़र्च करना फ़र्ज़ है वह भी रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़रिये पूरी तरह मुतैयन व मुक़र्रर फ़रमा दी गई है। इन दोनों आयतों में न किसी निसाबे माल की क़ैद है न ख़र्च करने की मिक़्दार बतलाई गई है। इससे मालूम हुआ कि ये दोनों आयतें नफ़्ली सदक़ात के बारे में हैं। इससे यह शुब्हा भी दूर हो गया कि पहली आयत में ख़र्च का मौक़ा माँ-बाप को भी क़रार दिया गया है हालाँकि माँ-बाप को ज़कात देना हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीम के मुताबिक़ जायज़ नहीं, क्योंकि इन आयतों का ताल्लुक़ फ़रीज़ा-ए-ज़कात से है ही नहीं।

मसलाः- दूसरी हिदायत इस आयत से यह हासिल हुई कि माँ-बाप और दूसरे अ़ज़ीज़ रिश्तेदारों को जो कुछ बतौर हदिये के दिया या खिलाया जाता है अगर उसमें भी अल्लाह तआ़ला के हुक्म पर अ़मल करने की नीयत हो तो वह भी अज्र व सवाब का सबब और अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने में दाख़िल है।

मसलाः- तीसरी हिदायत यह हासिल हुई कि नफ़्ली सदक़ात में इसकी रियायत ज़रूरी है कि जो माल अपनी ज़रूरतों से ज़्यादा हो वही ख़र्च किया जाये, अपने बाल-बच्चों और घर वालों को तंगी में डालकर और उनके हक़ों को बरबाद करके ख़र्च करना सवाब नहीं। इसी तरह जिसके ज़िम्मे किसी का क़र्ज़ है अगर वह क़र्ज़े वाले को अदा न करे और नफ़्ली सदक़ात व ख़ैरात में उड़ाये तो यह अल्लाह तआ़ला के नज़दीक पसन्दीदा नहीं। फिर ज़रूरतों से ज़्यादा माल के ख़र्च करने का जो इरशाद इस आयत में है उसको हज़रत अबूज़र ग़िफ़ारी रज़ियल्लाहु अ़न्हु और कुछ दूसरे हज़रात ने वजूबी हुक्म क़रार दिया, कि अपनी ज़रूरतों से ज़्यादा माल ज़कात और तमाम हुक़ूक़ अदा करने के बाद भी अपनी मिल्क में जमा रखना जायज़ नहीं, ज़रूरतों से ज़्यादा जो कुछ है सब का सब सदक़ा कर देना वाजिब है, मगर जमहूर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम, ताबिईन हज़रात और दीन के इमाम हज़रात इस राय पर हैं कि क़ुरआन के फ़रमान का मतलब यह है कि जो कुछ अल्लाह की राह में ख़र्च करना हो वह ज़रूरत से ज़्यादा होना चाहिये, यह नहीं कि ज़रूरत से ज़्यादा जो कुछ हो उसको सदक़ा कर देना ज़रूरी या वाजिब है। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के अ़मल और तरीक़े से यही साबित होता है।

كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ وَهُوَ كُرْهٌ لَّكُمْ ۚ وَعَسَىٰ أَن تَكْرَهُوا شَيْئًا وَهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۖ وَعَسَىٰ أَن تُحِبُّوا شَيْئًا وَهُوَ شَرٌّ لَّكُمْ ۗ وَاللَّهُ يَعْلَمُ وَأَنتُمْ لَا تَعْلَمُونَ ﴿٢١٦﴾ يَسْأَلُونَكَ عَنِ الشَّهْرِ الْحَرَامِ قِتَالٍ فِيهِ ۖ قُلْ قِتَالٌ فِيهِ كَبِيرٌ ۖ وَصَدٌّ عَن سَبِيلِ اللَّهِ وَكُفْرٌ بِهِ وَالْمَسْجِدِ الْحَرَامِ وَإِخْرَاجُ أَهْلِهِ مِنْهُ أَكْبَرُ عِندَ اللَّهِ ۚ وَالْفِتْنَةُ أَكْبَرُ مِنَ الْقَتْلِ ۗ وَلَا يَزَالُونَ يُقَاتِلُونَكُمْ حَتَّىٰ يَرُدُّوكُمْ عَن دِينِكُمْ إِنِ اسْتَطَاعُوا ۚ وَمَن يَرْتَدِدْ مِنكُمْ عَن دِينِهِ فَيَمُتْ وَهُوَ كَافِرٌ فَأُولَٰئِكَ حَبِطَتْ أَعْمَالُهُمْ فِي الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ ۖ وَأُولَٰئِكَ أَصْحَابُ النَّارِ ۖ هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ ﴿٢١٧﴾ إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا وَالَّذِينَ هَاجَرُوا وَجَاهَدُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ أُولَٰئِكَ يَرْجُونَ رَحْمَتَ اللَّهِ ۚ وَاللَّهُ غَفُورٌ رَّحِيمٌ ﴿٢١٨﴾

ع ۲۶ / ۱۰

कुति-ब अ़लैकुमुल्-क़ितालु व हु-व कुर्हुल्-लकुम् व अ़सा अन् तक्रहू शैअंव्-व हु-व ख़ैरुल्लकुम् व अ़सा	फ़र्ज़ हुई तुमपर लड़ाई और वह बुरी लगती है तुमको और शायद कि बुरी लगे तुमको एक चीज़ और वह बेहतर हो तुम्हारे हक़ में,

अन् तुहिब्बू शैअंव्-व हु-व शर्रुल्-लकुम, वल्लाहु यअ्लमु व अन्तुम् ला तअ्लमून (216) ✿ यस्अलून-क अनिश्शह्रिल्-हरामि क़ितालिन् फ़ीहि, क़ुल् क़ितालुन् फ़ीहि कबीरुन्, व सद्दुन् अन् सबीलिल्लाहि व कुफ़्रुम् बिही वल्-मस्जिदिल्-हरामि, व इख़्राजु अह्लिही मिन्हु अक्बरु अिन्दल्लाहि वल्-फ़ित्नतु अक्बरु मिनल्-क़त्लि, व ला यज़ालू-न युक़ातिलू-नकुम् हत्ता यरुद्दूकुम् अन् दीनिकुम् इनिस्तताअ़ू, व मंय्यर्-तदिद् मिन्कुम् अन् दीनिही फ़-यमुत् व हु-व काफ़िरुन् फ़-उलाइ-क हबितत् अअ़्मालुहुम् फ़िद्दुन्या वल्-आख़िरति व उलाइ-क अस्हाबुन्नारि हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (217) इन्नल्लज़ी-न आमनू वल्लज़ी-न हाजरू व जाहदू फ़ी सबीलिल्लाहि उलाइ-क यर्जू-न रह्मतल्लाहि, वल्लाहु ग़फ़ूरुर्रहीम (218)	और शायद तुमको भली लगे एक चीज़ और वह बुरी हो तुम्हारे हक़ में, और अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते। (216) ✿ तुझसे पूछते हैं महीना हराम को कि उसमें लड़ना कैसा? कह दे उसमें लड़ाई बड़ा गुनाह है, और रोकना अल्लाह की राह से और उसको न मानना और मस्जिदे-हराम से रोकना और निकाल देना उसके लोगों को वहाँ से उससे भी ज़्यादा गुनाह है अल्लाह के नज़दीक, और लोगों को दीन से बिचलाना (बहकाना) क़त्ल से भी बढ़कर है और काफ़िर लोग तो हमेशा तुमसे लड़ते ही रहेंगे यहाँ तक कि तुमको फेर दें तुम्हारे दीन से अगर क़ाबू पायें। और जो कोई फिरे तुममें से अपने दीन से फिर मर जाये कुफ़्र की हालत में तो ऐसों के ज़ाया हुए अ़मल दुनिया और आख़िरत में, और वे लोग रहने वाले हैं दोज़ख़ में, वे उसमें हमेशा रहेंगे। (217) बेशक जो लोग ईमान लाये और जिन्होंने हिजरत की और लड़े अल्लाह की राह में वे उम्मीदवार हैं अल्लाह की रहमत के, और अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है। (218)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 13- जिहाद का फ़र्ज़ होना

जिहाद करना तुम पर फ़र्ज़ किया गया है और वह तुमको (तबई तौर पर) गिराँ "यानी भारी और

नागवार" (मालूम होता) है, और यह बात मुम्किन है कि तुम किसी चीज़ को गिराँ समझो और (हक़ीक़त में) वह तुम्हारे हक़ में ख़ैर (और मस्लेहत) हो, और यह (भी) मुम्किन है कि तुम किसी चीज़ को अच्छा समझो और (हक़ीक़त में) वह तुम्हारे हक़ में ख़राबी (का सबब) हो। और (हर चीज़ की असल हक़ीक़त को) अल्लाह तआ़ला जानते हैं और तुम (पूरा-पूरा) नहीं जानते, (अच्छे बुरे का फ़ैसला अपनी इच्छा की बुनियाद पर न करो जो कुछ अल्लाह तआ़ला का हुक्म हो जाये उसी को इजमाली तौर पर मस्लेहत समझकर उस पर कारबन्द रहा करो)।

हुक्म 14- सम्मानित महीने में लड़ाई व जंग की तहक़ीक़

(हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के चन्द सहाबा किराम का एक सफ़र में इत्तिफ़ाक़ से काफ़िरों के साथ मुक़ाबला हो गया, एक काफ़िर उनके हाथ से मारा गया और जिस दिन यह किस्सा हुआ वह **रजब** की पहली तारीख़ थी, मगर सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम उसको **जमादियुल-आख़िर** की तीस तारीख़ समझते थे, और रजब सम्मानित महीनों में से है। काफ़िरों ने इस वाक़िए पर ताना दिया कि मुसलमानों ने इज़्ज़त वाले महीने की इज़्ज़त व सम्मान का भी ख़्याल नहीं किया। मुसलमानों को इसकी फ़िक्र हुई और हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से पूछा, और कुछ रिवायतों में है कि ख़ुद क़ुरैश के कुछ काफ़िरों ने भी हाज़िर होकर एतिराज़ के तौर पर सवाल किया। इसका जवाब इरशाद होता है):

लोग आप से इज़्ज़त वाले महीने में क़िताल करने के बारे में सवाल करते हैं, आप फ़रमा दीजिए कि उसमें ख़ास तौर पर क़िताल करना (यानी जान-बूझकर) बड़ा जुर्म है (मगर मुसलमानों से यह फ़ेल जान-बूझकर सादिर नहीं हुआ बल्कि तारीख़ की तहक़ीक़ न होने के सबब ग़लती से ऐसा हो गया, यह तो तहक़ीक़ी जवाब है) और (इल्ज़ामी जवाब यह है कि काफ़िरों व मुश्रिकों का तो किसी तरह मुँह ही नहीं मुसलमानों पर एतिराज़ करने का, क्योंकि अगरचे सम्मानित महीने में लड़ना बड़ा जुर्म है लेकिन उन काफ़िरों की जो हरकतें हैं यानी) अल्लाह की राह (दीन) से (लोगों को) रोक-टोक करना (यानी मुसलमान होने पर तकलीफ़ें पहुँचाना कि डर के मारे लोग मुसलमान न हों) और अल्लाह तआ़ला के साथ कुफ़्र करना और मस्जिदे हराम (यानी काबा) के साथ कुफ़्र करना (कि वहाँ बहुत से बुत रख छोड़े थे और बजाय ख़ुदा की इबादत के उनकी इबादत और तवाफ़ करते थे) और जो लोग मस्जिदे हराम के अहल थे (यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और दूसरे मोमिन लोग) उनको (तंग और परेशान करके) उस (मस्जिदे हराम) से निकाल (यानी मक्का से जाने पर मजबूर कर) देना (जिससे हिजरत की नौबत यानी वतन छोड़ने की नौबत पहुँची, सो ये हरकतें इज़्ज़त वाले महीने में क़िताल करने से भी ज़्यादा) बहुत बड़ा जुर्म है अल्लाह के नज़दीक, (क्योंकि ये हरकतें दीने हक़ के अन्दर फ़ितना खड़ा करना है) और (ऐसे) फ़ितना उठाना (उस ख़ास) क़त्ल से (जो मुसलमानों से सादिर हुआ) कई दर्जे (बुराई में) बढ़कर है (क्योंकि उस क़त्ल से दीने हक़ को तो कोई नुक़सान नहीं पहुँचा, ज़्यादा से ज़्यादा अगर कोई जानकर करे तो ख़ुद ही गुनाहगार होगा और इन हरकतों से तो दीने हक़ को नुक़सान पहुँचता है कि उसकी तरक़्क़ी रुकती है) और ये काफ़िर तुम्हारे साथ हमेशा जंग (व झगड़े का सिलसिला जारी ही) रखेंगे, इस ग़र्ज़ से कि अगर (ख़ुदा न करे) क़ाबू पाएँ तो तुम

को तुम्हारे दीन (इस्लाम) से फेर दें (उनके इस फ़ेल से दीन के साथ उलझना और टकराव ज़ाहिर है)।

दीन से फिर जाने का अन्जाम

और जो शख़्स तुममें से अपने दीन (यानी इस्लाम) से फिर जाए फिर काफ़िर ही होने की हालत में मर जाए तो ऐसे लोगों के (नेक) आमाल दुनिया व आख़िरत में सब ग़ारत हो जाते हैं (और) ये लोग दोज़ख़ में हमेशा रहेंगे।

इज़्ज़त व सम्मान वाले महीने में क़िताल (लड़ाई और जंग) करने के बारे में उक्त जवाब सुनकर मुसलमानों को गुनाह न होने का तो इत्मीनान हो गया था मगर इस ख़्याल से दिल परेशान थे कि सवाब तो हुआ ही न होगा, आगे इसमें तसल्ली दी गई।

नीयत के सही होने पर सवाब का वायदा

हक़ीक़त में जो लोग ईमान लाए हों और जिन लोगों ने अल्लाह के रास्ते में वतन छोड़ा हो और जिहाद किया हो, ऐसे लोग तो अल्लाह की रहमत के उम्मीदवार हुआ करते हैं (और तुम लोगों में ये सिफ़ात मौजूद हैं, क्योंकि कोई भी ऐसा कारण नहीं जिससे इन सिफ़ात के न होने को साबित किया जा सके। चुनाँचे ईमान और हिजरत तो ज़ाहिर है, रहा इस ख़ास जिहाद में शुब्हा होना, सो चूँकि तुम्हारी नीयत तो जिहाद ही की थी लिहाज़ा हमारे नज़दीक वह भी जिहाद ही में शुमार है। फिर इन सिफ़ात के होते हुए तुम क्यों नाउम्मीद होते हो) और अल्लाह तआ़ला (इस ग़लती को) माफ़ कर देंगे (और ईमान व जिहाद और हिजरत की वजह से तुम पर) रहमत करेंगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

जिहाद के कुछ अहकाम

मसलाः- ऊपर ज़िक्र हुई आयतों में से पहली आयत में जिहाद के फ़र्ज़ होने का हुक्म इन अलफ़ाज़ के साथ आया हैः

كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ.

"यानी तुम पर जिहाद फ़र्ज़ किया गया।" इन अलफ़ाज़ से बज़ाहिर यह मालूम होता है कि जिहाद हर मुसलमान पर हर हालत में फ़र्ज़ है। क़ुरआन की कुछ आयतों और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात से मालूम होता है कि यह फ़रीज़ा फ़र्ज़े-ऐन (एक लाज़िमी फ़र्ज़) के तौर पर हर मुस्लिम पर लागू नहीं, बल्कि फ़र्ज़े-किफ़ाया है कि मुसलमानों की एक जमाअ़त इस फ़र्ज़ को अदा कर दे तो बाक़ी मुसलमान इस फ़र्ज़ से बरी समझे जायेंगे, हाँ किसी ज़माने या किसी मुल्क में कोई जमाअ़त भी जिहाद के फ़रीज़े को अदा करने वाली न रहे तो सब मुसलमान फ़र्ज़ छोड़ने के गुनाहगार हो जायेंगे। हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादः

اَلْجِهَادُ مَاضٍ اِلٰى يَوْمِ الْقِيَامَةِ

का यह मतलब है कि "क़ियामत तक ऐसी जमाअ़त का मौजूदा रहना ज़रूरी है जो जिहाद का

फ़रीज़ा अदा करती रहे।'' क़ुरआन मजीद की एक दूसरी आयत में इरशाद है:

فَضَّلَ اللّٰهُ الْمُجٰهِدِيْنَ بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ عَلَى الْقٰعِدِيْنَ دَرَجَةً وَّكُلًّا وَّعَدَ اللّٰهُ الْحُسْنٰى. (سورة ٤:٩٥)

"यानी अल्लाह तआ़ला ने मुजाहिदों को जिहाद छोड़ देने वालों पर फ़ज़ीलत दी है, और अल्लाह तआ़ला ने दोनों से भलाई का वायदा किया है।''

इसमें ऐसे लोगों से जो किसी उज़्र (मजबूरी) के सबब या किसी दूसरी दीनी ख़िदमत में मशग़ूल होने की वजह से जिहाद में शरीक न हों उनसे भी भलाई का वायदा ज़िक्र हुआ है। ज़ाहिर है कि अगर जिहाद हर मुसलमान पर फ़र्ज़े-ऐन होता तो इसके छोड़ने वालों से भलाई का वायदा होने की सूरत न थी। इसी तरह एक दूसरी आयत में है:

فَلَوْلَا نَفَرَ مِنْ كُلِّ فِرْقَةٍ مِّنْهُمْ طَآئِفَةٌ لِّيَتَفَقَّهُوْا فِي الدِّيْنِ. (سورة ٩:١٢٢)

"और क्यों न निकल खड़ी हुई तुम्हारी हर बड़ी जमाअ़त में से छोटी जमाअ़त इस काम के लिये कि वे दीन की समझ-बूझ हासिल करें।''

इसमें ख़ुद क़ुरआने करीम ने यह कामों की तक़सीम पेश फ़रमाई कि कुछ मुसलमान जिहाद का काम करें और कुछ दीन की तालीम में मशग़ूल रहें, और यह तभी हो सकता है जबकि जिहाद फ़र्ज़े ऐन न हो, बल्कि फ़र्ज़े किफ़ाया हो।

और बुख़ारी व मुस्लिम की हदीस है कि एक शख़्स ने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से जिहाद में शिर्कत की इजाज़त चाही तो आपने उससे पूछा- क्या तुम्हारे माँ-बाप ज़िन्दा हैं? उसने अ़र्ज़ किया कि हाँ ज़िन्दा हैं। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि "फिर जाओ माँ-बाप की ख़िदमत करके जिहाद का सवाब हासिल करो।'' इससे भी यह मालूम होता है कि जिहाद फ़र्ज़े किफ़ाया है। जब मुसलमानों की एक जमाअ़त जिहाद के फ़रीज़े को क़ायम किये हुए हो तो बाक़ी मुसलमान दूसरी ख़िदमतों और कामों में लग सकते हैं, हाँ अगर किसी वक़्त मुसलमानों का इमाम (हाकिम) ज़रूरत समझकर आम ऐलान कराये और सब मुसलमानों को जिहाद में शरीक होने की दावत दे तो फिर जिहाद सब पर फ़र्ज़े ऐन हो जाता है। क़ुरआने करीम ने सूरः तौबा में इरशाद फ़रमाया:

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَا لَكُمْ اِذَا قِيْلَ لَكُمُ انْفِرُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اثَّاقَلْتُمْ. (سورة ٩:٣٨)

"ऐ मुसलमानो! तुम्हें क्या हो गया है कि जब तुम से कहा जाता है कि अल्लाह की राह में निकलो तो तुम बोझल बन जाते हो।''

इस आयत में इसी आ़म ऐलान का हुक्म मज़कूर है। इसी तरह अगर ख़ुदा न करे किसी वक़्त काफ़िर किसी इस्लामी मुल्क पर हमलावर हों और मुक़ाबला करने वाली जमाअ़त उनके मुक़ाबले और अपनी रक्षा पर पूरी तरह क़ादिर (सक्षम) और काफ़ी न हो तो उस वक़्त भी यह फ़रीज़ा उस जमाअ़त के साथ-साथ पास वाले सब मुसलमानों पर आ़यद हो जाता है और अगर वे भी आ़जिज़ हों तो उनके पास वाले मुसलमानों पर, यहाँ तक कि पूरी दुनिया के हर-हर मुस्लिम फ़र्द पर ऐसे वक़्त जिहाद फ़र्ज़े ऐन हो जाता है। क़ुरआन मजीद की उपरोक्त तमाम आयतों के अध्ययन से जमहूर फ़ुक़हा व मुहद्दिसीन ने यह हुक्म निकाला है कि आ़म हालात में जिहाद फ़र्ज़े किफ़ाया है।

मसला:- इसी लिये जब तक जिहाद फ़र्ज़े किफ़ाया हो, औलाद को बग़ैर माँ बाप की इजाज़त के जिहाद में जाना जायज़ नहीं।

मसला:- जिस शख़्स के ज़िम्मे किसी का क़र्ज़ हो जब तक वह क़र्ज़ अदा न कर दे उसके लिये उस फ़र्ज़े किफ़ाया में हिस्सा लेना दुरुस्त नहीं, हाँ अगर किसी वक़्त आम बुलावे के सबब या काफ़िरों के घेरे में फंस जाने के कारण जिहाद सब पर फ़र्ज़े ऐन हो जाये तो उस वक़्त न माँ-बाप की इजाज़त शर्त है न शौहर की और न क़र्ज़ वाले की। इस आयत के आख़िर में जिहाद की तरग़ीब के लिये इरशाद फ़रमाया है कि जिहाद अगरचे तबई तौर पर तुम्हें भारी मालूम हो लेकिन ख़ूब याद रखो कि इनसानी समझ व अ़क़्ल, तदबीर व मेहनत, परिणामों और नतीजों के बारे में ज़्यादातर फ़ेल होती है, किसी लाभदायक चीज़ को नुक़सानदेह या नुक़सानदेह को लाभदायक समझ लेना बड़े से बड़े होशियार व अ़क़्लमन्द से भी असंभव नहीं। हर इनसान अगर अपनी उम्र में पेश आने वाली घटनाओं पर नज़र डाले तो अपनी ही ज़िन्दगी में उसको बहुत से वाक़िआ़त ऐसे नज़र पड़ेंगे कि वह किसी चीज़ को बहुत ही मुफ़ीद (लाभदायक) समझकर हासिल कर रहे थे और परिणाम स्वरूप यह मालूम हुआ कि वह हद से ज़्यादा नुक़सान देने वाली थी। या किसी चीज़ को बहुत ही नुक़सान देने वाली समझकर उससे बच रहे थे और अन्जाम कार यह मालूम हुआ कि वह बहुत ही मुफ़ीद थी। इनसानी अ़क़्ल व तदबीर की नाकामी इस मामले में ख़ूब ज़्यादा देखने में आती रहती है। इसलिये फ़रमाया कि जिहाद व क़िताल (लड़ाई) में अगरचे बज़ाहिर माल और जान का नुक़सान नज़र आता है लेकिन जब हक़ीक़तें सामने आयेंगी तो खुलेगा कि यह नुक़सान हरगिज़ नहीं था बल्कि पूरी तरह नफ़ा और हमेशा की राहत का सामान था।

सम्मानित महीनों में क़िताल का हुक्म

ज़िक्र हुई आयतों में से दूसरी आयत इस पर शाहिद है कि 'अश्हुरे हुरुम' यानी चार महीने रजब, ज़ीक़ादा, ज़िलहिज्जा और मुहर्रम में क़िताल (जंग और किसी को क़त्ल करना) हराम है। इसी तरह क़ुरआने करीम की अनेक आयतों में पूरी स्पष्टता के साथ 'अश्हुरे हुरुम' में क़िताल की मनाही आई है। जैसे एक जगह फ़रमायाः

مِنْهَآ اَرْبَعَةٌ حُرُمٌ. ذٰلِكَ الدِّيْنُ الْقَيِّمُ.

और हज्जतुल-विदा के जाने-पहचाने व मशहूर ख़ुतबे में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमायाः

منها اربعة حرم ثلاث متواليات و رجب مضر.

इन आयतों व रिवायतों से साबित होता है कि उक्त चार महीनों में क़िताल (जंग) हराम है, और यह हुर्मत (हराम होने का हुक्म) हमेशा के लिये है।

और इमामे तफ़सीर अ़ता बिन अबी रिबाह रहमतुल्लाहि अ़लैहि क़सम खाकर फ़रमाते थे कि यह हुक्म हमेशा के लिये बाक़ी है, और भी कई ताबिईन हज़रात इस हुक्म को साबित और ग़ैर-मन्सूख़ क़रार देते हैं (यानी यह हुक्म आज भी बाक़ी है, ख़त्म नहीं हुआ), मगर जमहूर फ़ुक़हा के नज़दीक

और बक़ौल इमाम जस्सास आम फ़ुक़हा-ए-अमसार के मस्लक पर यह हुक्म मन्सूख़ (रद्द और ख़त्म हो चुका) है, अब किसी महीने में क़िताल ममनू (वर्जित) नहीं।

अब रहा यह सवाल कि इसकी नासिख़ (रद्द और निरस्त करने वाली) कौनसी आयत है, इसमें फ़ुक़हा के क़ौल अलग-अलग हैं, कुछ ने फ़रमाया कि यह आयते करीमाः

قَاتِلُوا الْمُشْرِكِيْنَ كَآفَّةً. (سورة ٩:٣٦)

"इसकी नासिख़ (रद्द करने वाली) है, और अक्सर हज़रात ने इस आयत को नासिख़ क़रार दिया हैः

فَاقْتُلُوا الْمُشْرِكِيْنَ حَيْثُ وَجَدْتُّمُوْهُمْ. (سورة ٩:٥)

और लफ़्ज़ हैसु को इस जगह ज़माने के मायने में लिया है कि मुश्रिकों को जिस महीने और जिस ज़माने में पाओ क़त्ल कर दो। और कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि इस हुक्म का नासिख़ (रद्द और निरस्त करने वाला) रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का अपना अ़मल है कि ख़ुद आपने तायफ़ का घेराव 'अश्हुरे हुरुम' में फ़रमाया और हज़रत आ़मिर अश्अ़री को 'अश्हुरे हुरुम' में ही औतास के जिहाद के लिये भेजा, इसी बिना पर फ़ुक़हा की आ़म जमाअ़त इस हुक्म को मन्सूख़ (रद्द हो जाने वाला) क़रार देती है। इमाम जस्सास ने फ़रमाया- यह शहरों के फ़ुक़हा का क़ौल है।

तफ़सीर 'रूहुल-मआ़नी' ने इसी आयत के तहत में और बैज़ावी ने सूरः बराअत के पहले रुकूअ़ की तफ़सीर में 'अश्हुरे हुरुम' (सम्मानित महीनों) में क़िताल के हराम होने के रद्द और निरस्त होने पर उम्मत का इजमा (एक राय होना) नक़ल किया है। (तफ़सीरे बयानुल-क़ुरआन) मगर तफ़सीरे मज़हरी में मज़कूरा तमाम दलीलों का जवाब यह दिया है कि 'अश्हुरे हुरुम' के इज़्ज़त व एहतिराम वाला होने की वज़ाहत ख़ुद इस आयत में मौजूद है, जिसको 'आयतुस्सैफ़' कहा जाता है। यानीः

اِنَّ عِدَّةَ الشُّهُوْرِ عِنْدَ اللّٰهِ اثْنَا عَشَرَ شَهْرًا فِیْ كِتٰبِ اللّٰهِ يَوْمَ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ مِنْهَآ اَرْبَعَةٌ حُرُمٌ.

(سورة ٩: آيت ٣٦)

और यह आयत क़िताल (जंग व लड़ाई) की आयतों में सबसे आख़िर में नाज़िल हुई है, और आख़िरी हज का जो ख़ुतबा नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात से सिर्फ़ अस्सी रोज़ पहले हुआ है उसमें भी 'अश्हुरे हुरुम' की हुर्मत (इज़्ज़त व सम्मान) की वज़ाहत मौजूद है, इसलिये ज़िक्र हुई आयतों को इसका नासिख़ (रद्द और निरस्त करने वाला) नहीं कहा जा सकता, और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के द्वारा तायफ़ की घेराबन्दी ज़ीक़ादा में नहीं शव्वाल में हुई है इसलिये उसको भी नासिख़ नहीं कह सकते, अलबत्ता यह कहा जा सकता है कि 'अश्हुरे हुरुम' में क़िताल का हराम होना जो संबन्धित आयतों से मालूम होता है, उसमें से वह सूरत अलग कर दी गई है कि ख़ुद काफ़िर इन महीनों में मुसलमानों से क़िताल (लड़ाई) करने लगें तो जवाबी हमला और अपनी रक्षा मुसलमानों के लिये भी जायज़ है। उतने हिस्से को मन्सूख़ (निरस्त हुआ) कहा जा सकता है जिसका ख़ुलासा इस आयत में हैः

اَلشَّهْرُ الْحَرَامُ بِالشَّهْرِ الْحَرَامِ........الاية. (سورة ٢: ١٩٤)

तो ख़ुलासा यह हुआ कि क़िताल (जंग व क़त्ल करने) में शुरूआत करना तो इन महीनों में हमेशा के लिये हराम है मगर जब काफ़िर लोग इन महीनों में हमलावर हों तो रक्षात्मक लड़ाई और उनको क़त्ल करने की मुसलमानों को भी इजाज़त है जैसा कि इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने हज़रत जाबिर बिन अ़ब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से नक़ल किया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम किसी 'सम्मानित महीने' में उस वक़्त तक क़िताल न करते थे जब तक क़िताल की शुरूआत काफ़िरों की तरफ़ से न हो जाये।

दीन इस्लाम से फिर जाने का अन्जाम

ज़िक्र हुई आयतः

يَسْئَلُوْنَكَ عَنِ الشَّهْرِ الْحَرَامِ

(यानी आयत नम्बर 217) के आख़िर में मुसलमान होने के बाद कुफ़्र व बेदीनी इख़्तियार करने का यह हुक्म ज़िक्र फ़रमाया है किः

حَبِطَتْ اَعْمَالُهُمْ فِى الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ

यानी "उन लोगों के आमाल दुनिया व आख़िरत में सब ग़ारत हो जायेंगे।"

मसलाः- दुनिया में आमाल का ज़ाया (बरबाद) होना यह है कि उसकी बीवी निकाह से निकल जाती है, अगर उसका कोई मूरिस मुसलमान मरे तो उस शख़्स को मीरास का हिस्सा नहीं मिलता, इस्लाम की हालत में नमाज़, रोज़ा जो कुछ किया था सब ख़त्म और बेकार हो जाता है। मरने के बाद जनाज़े की नमाज़ नहीं पढ़ी जाती, मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में दफ़न नहीं होता।

और आख़िरत में ज़ाया होना यह है कि इबादतों में सवाब नहीं मिलता, हमेशा-हमेशा के लिये दोज़ख़ में दाख़िल हो जाता है।

मसलाः- अगर यह शख़्स फिर मुसलमान हो जाये तो आख़िरत में दोज़ख़ से बचने और दुनिया में आईन्दा के लिये इस्लाम के अहकाम का जारी होना तो यक़ीनी है लेकिन दुनिया में अगर हज कर चुका है तो वुस्अ़त व गुंजाईश अगर हो तो दोबारा उसका फ़र्ज़ होना न होना और आख़िरत में पिछले नमाज़ रोज़े के सवाब का बदला मिलना न मिलना इसमें इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है, इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि दोबारा हज को फ़र्ज़ कहते हैं, और पिछली नमाज़ व रोज़े पर सवाब मिलने के क़ायल नहीं, और इमाम शाफ़ई रहमतुल्लाहि अ़लैहि दोनों मामलों में इख़्तिलाफ़ करते हैं।

मसलाः- लेकिन जो काफ़िर असली हो और उस हालत में कोई नेक काम करे उसका सवाब अधर में रहता है, अगर कभी इस्लाम ले आया तो सब पर सवाब मिलता है और अगर कुफ़्र पर ही मर गया तो सब बेकार रह जाता है। हदीस में 'अस्लम्तु अ़ला मा अस्लफ़्तु मिन ख़ैरिन' इसी मायने में आया है।

मसलाः- ग़र्ज़ कि मुर्तद (दीन इस्लाम को छोड़ देने वाले) की हालत असली काफ़िर से बदतर है, इसी वास्ते असली काफ़िर से जिज़या (इस्लामी हुकूमत में रहने और जान, माल और अ़क़ीदे की हिफ़ाज़त का टैक्स) क़ुबूल हो सकता है और मुर्तद अगर इस्लाम न लाये अगर मर्द है तो क़त्ल कर

दिया जाता है अगर औरत है तो हमेशा की क़ैद की सज़ा दी जाती है, क्योंकि उससे इस्लाम का अपमान होता है, सरकारी अपमान इसी सज़ा के लायक़ है।

يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْخَمْرِ وَالْمَيْسِرِ ؕ قُلْ فِيْهِمَآ اِثْمٌ كَبِيْرٌ وَّمَنَافِعُ لِلنَّاسِ ۫ وَاِثْمُهُمَآ اَكْبَرُ مِنْ نَّفْعِهِمَا ؕ

यस्अलून-क अ़निल्-ख़म्रि वल्-मैसिरि क़ुल् फ़ीहिमा इस्मुन् कबीरुंव्-व मनाफ़िअ़ु लिन्नासि व इस्मुहुमा अक्बरु मिन्नफ़्अ़िहिमा,	तुझसे पूछते हैं हुक्म शराब का और जुए का, कह दे उन दोनों में बड़ा गुनाह है और फ़ायदे भी लोगों को, और उनका गुनाह बहुत बड़ा है उनके फ़ायदे से।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 15- शराब और जुए से संबन्धित

लोग आप से शराब और जुए के बारे में पूछते हैं, आप फ़रमा दीजिए कि इन दोनों (चीज़ों के इस्तेमाल) में गुनाह की बड़ी-बड़ी बातें भी (पैदा हो जाती) हैं और लोगों को (बाज़े) फ़ायदे भी हैं, और (वे) गुनाह की बातें उनके फ़ायदों से ज़्यादा बढ़ी हुई हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के सवालात और उनके जवाबात का जो सिलसिला इस सूरत में बयान हो रहा है इसमें यह आयत भी है। इसमें शराब और जुए के बारे में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का सवाल और अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से जवाब है, ये दोनों मसले बहुत ही अहम हैं, इसलिये किसी क़द्र तफ़सील के साथ इनकी पूरी हक़ीक़त और अहकाम सुनियेः

शराब का हराम होना और उससे संबन्धित अहकाम

इस्लाम के शुरूआ़ती दौर में जाहिलीयत की आ़म रस्मों की तरह शराब पीना भी आ़म था। जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हिजरत करके मदीना शरीफ़ तशरीफ़ लाये तो मदीना वालों में भी शराब पीने और जुआ खेलने का रिवाज था। आ़म लोग तो इन दोनों चीज़ों के सिर्फ़ ज़ाहिरी फ़ायदों को देखकर इन पर फ़रेफ़्ता थे, इनके अन्दर जो बहुत सी ख़राबियाँ और बुराईयाँ हैं उनकी तरफ़ नज़र नहीं थी, लेकिन अल्लाह की आ़दत यह भी है कि हर क़ौम और हर ख़ित्ते में कुछ अ़क़्ल वाले भी होते हैं जो तबीयत पर अ़क़्ल को ग़ालिब रखते हैं, कोई तबई इच्छा अगर अ़क़्ल के ख़िलाफ़ हो तो उस इच्छा के पास नहीं जाते। इस मामले में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मक़ाम तो बहुत ही बुलन्द था कि जो चीज़ किसी वक़्त हराम होने वाली थी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तबीयत उससे पहले ही नफ़रत करती थी, सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम में भी कुछ

ऐसे हज़रात थे जिन्होंने हलाल होने के ज़माने में भी कभी शराब को हाथ नहीं लगाया। मदीना तैयबा पहुँचने के बाद चन्द हज़राते सहाबा को उन ख़राबियों और नुक़सानात का ज़्यादा एहसास हुआ, हज़रत फ़ारूके आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु और हज़रत मुआज़ बिन जबल रज़ियल्लाहु अन्हु और चन्द अन्सारी सहाबा इसी एहसास की बिना पर नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और अर्ज़ किया कि शराब और जुआ इनसान की अक़्ल को भी ख़राब करते हैं और माल भी बरबाद करते हैं, इनके बारे में आपका क्या इरशाद है? इस सवाल के जवाब में यह बयान हुई आयत नाज़िल हुई। यह पहली आयत है जिसमें शराब और जुए से मुसलमानों को रोकने का शुरूआती क़दम उठाया गया।

इस आयत में बतलाया गया है कि शराब और जुए में अगरचे लोगों के कुछ ज़ाहिरी फ़ायदे ज़रूर हैं लेकिन इन दोनों में गुनाह की बड़ी-बड़ी बातें पैदा हो जाती हैं जो इनके मुनाफ़ों और फ़ायदों से बढ़ी हुई हैं, और गुनाह की बातों से वे चीज़ें मुराद हैं जो किसी गुनाह का सबब बन जायें जैसे शराब में सबसे बड़ी ख़राबी यह है कि अक़्ल व होश जाता रहता है जो तमाम कमालात और शर्फ़ इनसानी की जड़ है। क्योंकि अक़्ल ही एक ऐसी चीज़ है जो इनसानों को बुरे कामों से रोकती है, जब वह न रही तो हर बुरे काम के लिये रास्ता हमवार हो गया।

इस आयत में साफ़ तौर पर शराब को हराम तो नहीं कहा गया मगर उसकी ख़राबियाँ और बुराईयाँ बयान कर दी गयीं कि शराब की वजह से इनसान बहुत से गुनाहों और ख़राबियों में मुब्तला हो सकता है, गोया इसके छोड़ने के लिये एक क़िस्म का मश्विरा दिया गया है। यही वजह है कि इस आयत के नाज़िल होने के बाद कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम तो इस मश्विरे ही को क़ुबूल करके उसी वक़्त शराब को छोड़ बैठे और कुछ ने यह ख़्याल किया कि इस आयत ने शराब को हराम तो किया नहीं बल्कि दीनी ख़राबियों का सबब बनने की वजह से इसको गुनाह का सबब क़रार दिया है, हम इसका एहतिमाम करेंगे कि वे ख़राबियाँ और बुराईयाँ पैदा न हों, तो फिर शराब में कोई हर्ज नहीं, इसलिये पीते रहे यहाँ तक कि एक रोज़ यह वाक़िआ पेश आया कि हज़रत अ़ब्दुर्रहमान बिन औफ़ रज़ियल्लाहु अन्हु ने सहाबा में से अपने चन्द दोस्तों की दावत की, खाने के बाद दस्तूर के मुवाफ़िक़ शराब पी गई, उसी हाल में मग़रिब की नमाज़ का वक़्त आ गया, सब नमाज़ के लिये खड़े हो गये तो एक साहिब को इमामत के लिये आगे बढ़ाया गया, उन्होंने नशे की हालत में जो तिलावत शुरू की तो सूरः 'क़ुल या अय्युहल् काफ़िरून' को ग़लत पढ़ा, इस पर शराब से रोकने के लिये दूसरा क़दम उठाया गया और यह आयत नाज़िल हुईः

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقْرَبُوا الصَّلٰوةَ وَاَنْتُمْ سُكٰرٰى. (سورة ٤: ٤٣)

"यानी ऐ ईमान वालो! तुम नशे की हालत में नमाज़ के पास न जाओ।"

इसमें नमाज़ के ख़ास वक़्तों के अन्दर शराब को क़तई तौर पर हराम कर दिया गया, बाक़ी वक़्तों में इजाज़त रही। जिन हज़राते सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम ने पहली आयत नाज़िल होने के वक़्त शराब को न छोड़ा था इस आयत के नाज़िल होने के वक़्त उन्होंने शराब को बिल्कुल छोड़ दिया कि जो चीज़ इनसान को नमाज़ से रोके उसमें कोई ख़ैर नहीं हो सकती। जब नशे की हालत में नमाज़

की मनाही हो गई तो ऐसी चीज़ के पास न जाना चाहिये जो इनसान को नमाज़ से मेहरूम कर दे, मगर चूँकि नमाज़ के वक़्तों के अलावा शराब की हुर्मत (हराम होना) साफ़ तौर पर अब भी नाज़िल नहीं हुई थी इसलिये कुछ हज़रात अब भी नमाज़ के वक़्तों के अलावा दूसरे वक़्तों में पीते रहे, यहाँ तक कि एक और वाक़िआ पेश आया। हज़रत उतबान बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु ने चन्द सहाबा किराम की दावत की, जिनमें सअ़द बिन अबी वक़्क़ास रज़ियल्लाहु अन्हु भी थे, खाने के बाद दस्तूर के मुवाफ़िक़ शराब का दौर चला, नशे की हालत में अ़रब की आ़म आ़दत के मुताबिक़ शे'र व शायरी और अपनी-अपनी बड़ाईयों का बयान शुरू हुआ। सअ़द बिन अबी वक़्क़ास रज़ियल्लाहु अन्हु ने एक क़सीदा पढ़ा जिसमें मदीना के अन्सार की बुराई और अपनी क़ौम की तारीफ़ व प्रशंसा थी, इस पर एक अन्सारी नौजवान को ग़ुस्सा आ गया और ऊँट के जबड़े की हड्डी सअ़द रज़ियल्लाहु अन्हु के सर पर दे मारी जिससे उनको गहरा ज़ख़्म आ गया। हज़रत सअ़द रज़ियल्लाहु अन्हु रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और उस अन्सारी जवान की शिकायत की, उस वक़्त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दुआ फ़रमाईः

اَللّٰهُمَّ بَيِّنْ لَنَا فِي الْخَمْرِ بَيَانًا شَافِيًا.

"यानी या अल्लाह! शराब के बारे में हमें कोई स्पष्ट बयान और क़ानून अ़ता फ़रमा दे।" इस पर शराब के मुताल्लिक़ तीसरी आयत सूरः मायदा की तफ़सीली नाज़िल हो गई जिसमें शराब को पूरी तरह हराम क़रार दे दिया गया। आयत यह हैः

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنَّمَا الْخَمْرُ وَالْمَيْسِرُ وَالْاَنْصَابُ وَالْاَزْلَامُ رِجْسٌ مِّنْ عَمَلِ الشَّيْطٰنِ فَاجْتَنِبُوْهُ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ٥ اِنَّمَا يُرِيْدُ الشَّيْطٰنُ اَنْ يُّوْقِعَ بَيْنَكُمُ الْعَدَاوَةَ وَالْبَغْضَآءَ فِي الْخَمْرِ وَالْمَيْسِرِ وَيَصُدَّكُمْ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَعَنِ الصَّلٰوةِ فَهَلْ اَنْتُمْ مُّنْتَهُوْنَ ٥ (سورة ٥: ٩١)

"यानी ऐ ईमान वालो! बात यही है कि शराब और जुआ और बुत और जुए के तीर, ये सब गन्दी बातें शैतानी काम हैं, सो इससे बिल्कुल अलग-अलग रहो ताकि तुमको कामयाबी हो। शैतान तो यह चाहता है कि शराब और जुए के ज़रिये तुम्हारे आपस में बुग़ज़ और दुश्मनी पैदा कर दे और अल्लाह तआ़ला की याद से और नमाज़ से तुमको रोक दे, सो क्या अब भी बाज़ आओगे।"

शराब के धीरे-धीरे हराम होने के अहकाम

अल्लाह के अहकाम की असली और वास्तविक हिक्मतों को तो अह्कमुल-हाकिमीन ही जानता है, मगर शरीअ़त के अहकाम में ग़ौर करने से मालूम होता है कि इस्लामी शरीअ़त ने अहकाम में इनसानी जज़्बात की बड़ी रियायत फ़रमाई है ताकि इनसान को उनकी पैरवी में ज़्यादा तकलीफ़ न हो, ख़ुद क़ुरआने करीम ने फ़रमायाः

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا. (٢: ٢٨٦)

"यानी अल्लाह तआ़ला किसी इनसान को ऐसा हुक्म नहीं देता जो उसकी ताक़त और वुस्अ़त में न हो।"

शराब की धीरे-धीरे मनाही और हुर्मत की क़ुरआनी तारीख़ का ख़ुलासा यह है कि क़ुरआने करीम में शराब के बारे में चार आयतें नाज़िल हुई हैं जिनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है। उनमें से एक आयत सूरः ब-क़रह की है जिसकी तफ़सीर आप इस वक़्त देख रहे हैं, इसमें तो शराब से पैदा होने वाले गुनाहों और ख़राबियों का ज़िक्र करके छोड़ दिया गया है, हराम नहीं किया, गोया एक मश्विरा दिया कि यह छोड़ने की चीज़ है मगर छोड़ने का हुक्म नहीं दिया।

दूसरी आयत सूरः निसा की है:

لَا تَقْرَبُوا الصَّلٰوةَ وَاَنْتُمْ سُكٰرٰى

इसमें नमाज़ के ख़ास वक़्तों के अन्दर शराब को हराम क़रार दिया गया, बाक़ी वक़्तों में इजाज़त रही।

तीसरी और चौथी दो आयतें सूरः मायदा की हैं, जो ऊपर बयान हो चुकी हैं, उनमें साफ़ और क़तई तौर पर शराब को हराम क़रार दे दिया।

इस्लामी शरीअ़त ने शराब के हराम करने में इस तदरीज (दर्जा-ब-दर्जा क़दम उठाने) से इसलिये काम लिया कि उम्र भर की आ़दत ख़ास तौर पर नशे की आ़दत को छोड़ देना इनसानी तबीयत पर बहुत ही भारी और शाक़ होता, उलेमा ने फ़रमायाः

فِطَامُ الْعَادَةِ اَشَدُّ مِنْ فِطَامِ الرَّضَاعَةِ

"यानी जैसे बच्चे को माँ का दूध पीने की आ़दत छोड़ देना भारी मालूम होता है इनसान को अपनी किसी मुस्तक़िल की आ़दत को बदलना उससे ज़्यादा सख़्त और शदीद है।" इसलिये इस्लाम ने हकीमाना उसूल के मुताबिक़ अव्वल उसकी बुराई ज़ेहन में बैठाई, फिर नमाज़ों के वक़्तों में मना किया, फिर एक ख़ास मुद्दत के बाद क़तई तौर पर हराम कर दिया गया।

हाँ जिस तरह शुरूआ़त में शराब के हराम करने में आहिस्तगी और धीरे-धीरे हुक्म देने से काम लेना हिक्मत का तक़ाज़ा था इसी तरह हराम कर देने के बाद उसकी मनाही के क़ानून को पूरी सख़्ती के साथ नाफ़िज़ (लागू और जारी) करना भी हिक्मत ही का तक़ाज़ा था, इसलिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने शराब के बारे में पहले तो अ़ज़ाब की सख़्त वईदें (धमकियाँ) बतलाईं इरशाद फ़रमाया कि यह उम्मुल-ख़बाइस (तमाम बुराईयों की जड़) और उम्मुल-फ़ुवाहिश (तमाम बेहयाईयों की असल) है, इसको पीकर आदमी बुरे से बुरे गुनाह को अन्जाम दे सकता है।

एक हदीस में इरशाद फ़रमाया कि शराब और ईमान जमा नहीं हो सकते। ये रिवायतें नसाई शरीफ़ में हैं। और तिर्मिज़ी शरीफ़ में हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने शराब के बारे में दस आदमियों पर लानत फ़रमाई- निचोड़ने वाला, बनाने वाला, पिलाने वाला, उसको लादकर लाने वाला, और जिसके लिये लाई जाये, और उसका बेचने वाला, ख़रीदने वाला, उसको हिबा करने (यानी तोहफ़े में देने) वाला, उसकी आमदनी खाने वाला। और फिर सिर्फ़ ज़बानी तालीम व तब्लीग़ पर बस नहीं फ़रमाया बल्कि अ़मली और क़ानूनी तौर पर ऐलान फ़रमाया कि जिसके पास किसी क़िस्म की शराब मौजूद हो उसको फ़ुलाँ जगह जमा कर दे।

सहाबा किराम में हुक्म की तामील का बेमिसाल जज़्बा

फ़रमाँबरदार सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने पहला हुक्म पाते ही अपने-अपने घरों में जो शराब इस्तेमाल के लिये रखी थी उसको तो उसी वक़्त बहा दिया। हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु का बयान है कि जब हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुनादी ने मदीने की गलियों में यह आवाज़ दी कि शराब हराम कर दी गई है तो जिसके हाथ में जो बरतन शराब का था उसको वहीं फेंक दिया, जिसके पास कोई सबू या ख़ुम शराब का था उसको घर से बाहर लाकर तोड़ दिया। हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु उस वक़्त एक मज्लिस में जाम के दौर के साक़ी (पिलाने वाले) बने हुए थे, अबू तल्हा, अबू उबैदा बिन जर्राह, उबई बिन कअ़ब, हज़रत सुहैल रिज़वानुल्लाह अ़लैहिम अज्मईन जैसे बड़े मर्तबे वाले सहाबा मौजूद थे, मुनादी की आवाज़ कान में पड़ते ही सबने कहा कि अब यह शराब सब गिरा दो, इसके जाम व सबू (गिलास व सुराही वग़ैरह) तोड़ दो। कुछ रिवायतों में है कि हराम होने के ऐलान के वक़्त जिसके हाथ में शराब का जाम लबों तक पहुँचा हुआ था उसने वहीं से उसको फेंक दिया, मदीना में उस रोज़ शराब इस तरह बह रही थी जैसे बारिश की रौ का पानी, और मदीने की गलियों में लम्बे समय तक यह हालत रही कि जब बारिश होती तो शराब की बू और रंग मिट्टी में निखर आता था।

जिस वक़्त उनको यह हुक्म मिला कि जिसके पास किसी क़िस्म की शराब है वह फ़ुलाँ जगह जमा कर दे, उस वक़्त सिर्फ़ वे कुछ भण्डार रह गये थे जो तिजारत के माल की हैसियत से बाज़ार में थे, उनको फ़रमाँबरदार सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने बिना किसी संकोच के निर्धारित जगह पर जमा फ़रमा दिया, आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ख़ुद तशरीफ़ ले गये और अपने हाथ से शराब के बहुत से मश्कीज़ों को चाक कर दिया और बाक़ी दूसरे सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के हवाले करके चाक करा दिया। एक सहाबी जो शराब की तिजारत करते थे और मुल्के शाम से शराब मंगाया करते थे, इत्तिफ़ाक़ से उस ज़माने में अभी सारी रक़म जमा करके मुल्के शाम से शराब लेने के लिये गये हुए थे, और जब यह तिजारती माल लेकर वापस हुए तो मदीने में दाख़िल होने से पहले ही इनको हराम होने के ऐलान की ख़बर मिल गई, जाँनिसार सहाबी ने अपने पूरे सरमाये और मेहनत की कमाई को जिससे बड़े नफ़े की उम्मीदें लिये हुए आ रहे थे, हराम होने का ऐलान सुनकर उसी जगह एक पहाड़ी पर डाल दिया और ख़ुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और सवाल किया कि अब मेरे इस माल के बारे में क्या हुक्म है? और मुझको क्या करना चाहिये? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अल्लाह के फ़रमान के मुताबिक़ हुक्म दे दिया कि सब मश्कीज़ों को चाक करके शराब बहा दो। फ़रमाँबरदार और अल्लाह व रसूल के चाहने वाले ने बिना किसी झिझक के अपने हाथ से अपना पूरा सरमाया ज़मीन पर बहा दिया। यह भी इस्लाम का एक मोजिज़ा और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम की हैरत-अंगेज़ व बेमिसाल इताअ़त है जो इस वाक़िए में ज़ाहिर हुई, कि जिस चीज़ की आ़दत हो जाये सब जानते हैं कि उसका छोड़ना सख़्त दुश्वार है, और ये हज़रात भी उसके ऐसे आ़दी थे कि थोड़ी देर उससे सब्र करना दुश्वार था, अल्लाह के एक हुक्म और फ़रमाने नबवी ने उनकी आ़दतों में ऐसा अ़ज़ीमुश्शान इन्क़िलाब बरपा कर दिया कि अब ये

शराब और जुए से ऐसे नफ़रत करने वाले हैं जैसे इससे पहले इन चीज़ों के आ़दी थे।

इस्लामी सियासत और आ़म मुल्की सियासतों का ज़बरदस्त फ़र्क़

ऊपर बयान हुई आयतों फिर वाक़िआ़त में शराब के हराम होने के हुक्म पर मुसलमानों के अ़मल का एक नमूना सामने आ गया है जिसको इस्लाम का मोजिज़ा कहो या पैग़म्बर की तरबियत का बेमिसाल असर, या इस्लामी सियासत का लाज़िमी नतीजा, कि नशे की आ़दत जिसके छोड़ने का बहुत ज़्यादा दुश्वार होना हर शख़्स को मालूम है और अ़रब में इसका रिवाज इस हद तक पहुँचा हुआ था कि चन्द घन्टे इसके बग़ैर सब्र नहीं कर सकते थे। वह क्या चीज़ थी जिसने एक ही ऐलान की आवाज़ कान में पड़ते ही उन सब के मिज़ाजों को बदल डाला, उनकी आ़दतों में वह इन्क़िलाब पैदा कर दिया कि अब से चन्द मिनट पहले जो चीज़ बहुत ज़्यादा पसन्दीदा बल्कि ज़िन्दगी का सरमाया थी, वह चन्द मिनट के बाद हद से ज़्यादा नापसन्दीदा, बुरी, गन्दी और नापाक हो गई।

इसके विपरीत आजकी तरक़्क़ी याफ़्ता (विकसित) सियासत की एक मिसाल को सामने रख लीजिये कि अब से चन्द साल पहले अमेरिका के स्वास्थ्य विशेषज्ञों और समाज-सुधारकों ने जब शराब पीने की बेशुमार और अत्यन्त तबाह करने वाली ख़राबियों को महसूस करके मुल्क में शराब पीने को क़ानूनी तौर पर वर्जित करना चाहा तो उसके लिये अपने प्रचार व प्रसार के वे नये से नये माध्यम जो इस तरक़्क़ी याफ़्ता सियासत का बड़ा कमाल समझे जाते हैं, सब ही शराब पीने के ख़िलाफ़ ज़ेहन हमवार करने पर लगा दिये, सैंकड़ों अख़बार और रिसाले इसकी ख़राबियों पर मुश्तमिल मुल्क में लाखों की संख्या में प्रकाशित किये गये फिर अमेरिकी क़ानून में संशोधन करके शराब को रोकने का क़ानून नाफ़िज़ किया गया, मगर इन सब का असर जो कुछ अमेरिका में आँखों ने देखा और वहाँ के सियासत वालों की रिपोर्टों से दुनिया के सामने आया वह यह था कि उस तरक़्क़ी याफ़्ता और तालीम याफ़्ता क़ौम ने उस क़ानूनी मनाही के ज़माने में आ़म दिनों के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा शराब इस्तेमाल की, यहाँ तक कि मजबूर होकर हुकूमत को अपना क़ानून मन्सूख़ (रद्द) करना पड़ा।

अ़रब के मुसलमानों और मौजूदा तरक़्क़ी याफ़्ता अमेरिकनों के हालात व मामलात का यह बड़ा फ़र्क़ तो एक हक़ीक़त और वास्तविकता है जिसका किसी को इनकार करने की गुन्जाईश नहीं, यहाँ ग़ौर करने की बात यह है कि इस अ़ज़ीमुश्शान फ़र्क़ का असली सबब और राज़ क्या है।

ज़रा सा ग़ौर करें तो मालूम हो जायेगा कि इस्लामी शरीअ़त ने सिर्फ़ क़ानून को क़ौम की इस्लाह (सुधार) के लिये कभी काफ़ी नहीं समझा, बल्कि क़ानून से पहले उनकी ज़ेहनी तरबियत की और इबादत व परहेज़गारी और फ़िक्रे आख़िरत के अक्सीर नुस्ख़े से उनके मिज़ाजों में एक बड़ा इन्क़िलाब (बदलाव) लाकर ऐसे अफ़राद पैदा कर दिये जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की आवाज़ पर अपनी जान व माल और आबरू सब कुछ क़ुरबान करने के लिये तैयार हो जायें। मक्की ज़िन्दगी के पूरे दौर में यही अफ़राद तैयार करने का काम रियाज़तों व मेहनतों के ज़रिये होता रहा। जब जाँनिसारों की जमाअ़त तैयार हो गई उस वक़्त क़ानून जारी किया गया। ज़ेहनों को हमवार करने के लिये तो अमेरिका ने भी अपने बेमिसाल माध्यम और साधन इस्तेमाल करने में कोई कोताही नहीं की, उनके सामने सब कुछ था मगर आख़िरत की फ़िक्र नहीं थी और मुसलमानों की रग-रग में आख़िरत

की फ़िक्र समाई हुई थी।

काश! आज भी हमारे अ़क्लमन्द और विद्वान इस कीमियावी (बेहतरीन और अचूक) नुस्ख़े को इस्तेमाल करके देखें तो दुनिया को अमन व सुकून नसीब हो जाये।

शराब की ख़राबियों और फ़ायदों की तुलना

इस आयत में शराब और क़िमार (जुए) दोनों के मुताल्लिक़ क़ुरआने करीम ने यह बतलाया है कि इन दोनों में कुछ ख़राबियाँ भी हैं और कुछ फ़ायदे भी, मगर इनकी ख़राबियाँ और नुक़सानात फ़ायदों से बढ़े हुए हैं। इसलिये ज़रूरत है कि इस पर नज़र डाली जाये कि इनके फ़ायदे क्या हैं और ख़राबियाँ व नुक़सानात क्या, और फिर यह कि फ़ायदे से ज़्यादा ख़राबियाँ होने के क्या कारण हैं। आख़िर में चन्द फ़िक़्ही उसूल व क़ानून बयान किये जायेंगे जो इस आयत से समझ में आते हैं।

पहले शराब को ले लीजिये। इसके फ़ायदे तो आ़म लोगों में मशहूर व परिचित हैं कि इससे लज़्ज़त व ख़ुशी हासिल होती है और वक़्ती तौर पर क़ुव्वत में इज़ाफ़ा हो जाता है, रंग साफ़ हो जाता है, मगर इन मामूली वक़्ती फ़ायदों के मुक़ाबले में इसके नुक़सानात और ख़राबियाँ इतनी ज़्यादा और गहरी हैं कि शायद किसी दूसरी चीज़ में इतनी ख़राबियाँ और नुक़सानात न होंगे। इनसानी बदन पर शराब के नुक़सानात ये हैं कि वह धीरे-धीरे मेदे के काम (पाचन शक्ति की क्रिया) को फ़ासिद कर देती है, खाने की इच्छा कम कर देती है, चेहरे की शक्ल बिगाड़ देती है, पेट बढ़ जाता है, कुल मिलाकर तमाम अंगों और क़ुव्वतों पर यह असर होता है जो एक जर्मन डॉक्टर ने बयान किया है कि "जो शख़्स शराब का आ़दी हो चालीस साल की ही उम्र में उसके बदन की बनावट ऐसी हो जाती है जैसे साठ साला बूढ़े की" वह जिस्मानी और ताक़त के एतिबार से सठियाये हुए बूढ़ों की तरह हो जाता है। इसके अ़लावा शराब जिगर और गुर्दों को ख़राब कर देती है, टी. बी. की बीमारी शराब का ख़ास असर है, यूरोप के शहरों में टी. बी. की अधिकता का बड़ा सबब शराब ही को बतलाया जाता है। वहाँ के कुछ डॉक्टरों का क़ौल है कि यूरोप में आधी मौतें टी. बी. की बीमारी में होती हैं और आधी दूसरे रोगों में, और इस बीमारी की अधिकता यूरोप में उसी वक़्त से हुई जब से वहाँ शराब की कसरत (अधिकता) हुई।

यह तो शराब के जिस्मानी और बदनी नुक़सानात हैं, अब अ़क़्ल पर इसके नुक़सान को तो हर शख़्स जानता है मगर सिर्फ़ इतना ही जानते हैं कि शराब पीकर जब तक नशा रहता है उस वक़्त तक अ़क़्ल काम नहीं करती, लेकिन तजुर्बेकार लोगों और डॉक्टर हज़रात की तहक़ीक़ यह है कि नशे की आ़दत ख़ुद अ़क़्ल की क़ुव्वत को भी कमज़ोर कर देती है जिसका असर होश में आने के बाद भी रहता है। कई बार जुनून तक इसकी नौबत पहुँच जाती है। चिकित्सकों और डॉक्टरों की इस पर सहमति है कि शराब न बदन का हिस्सा बनती है और न इससे ख़ून बनता है जिसकी वजह से बदन में ताक़त आये बल्कि इसका काम सिर्फ़ यह होता है कि ख़ून में हैजान (उफान) पैदा कर देती है जिससे वक़्ती तौर पर ताक़त की ज़्यादती महसूस होने लगती है और यही ख़ून का वक़्ती जोश कई बार मौत का सबब बन जाता है, जिसको डॉक्टर हार्ट फ़ेल होने से ताबीर करते हैं।

शराब से 'शराईन' यानी वे रगें जिनके ज़रिये सारे बदन में रूह पहुँचती है सख़्त हो जाती हैं

जिससे बुढ़ापा जल्दी आ जाता है। शराब का असर इनसान के गले और साँस लेने पर भी ख़राब होता है जिसकी वजह से आवाज़ भारी हो जाती है और मुस्तकिल की खाँसी हो जाती है, और वही आख़िरकार टी. बी. तक नौबत पहुँचा देती है। शराब का असर नस्ल पर भी बुरा पड़ता है, शराबी की औलाद कमज़ोर रहती है और कई बार इसका नतीजा नस्ल के ख़ात्मे तक पहुँचता है।

यह बात याद रखने के क़ाबिल है कि शराब पीने की प्रारम्भिक हालत में बज़ाहिर इनसान अपने जिस्म में चुस्ती व चालाकी और क़ुव्वत महसूस करता है इसी लिये कुछ लोग जो इसमें मुब्तला होते हैं वे इन तिब्बी (डाक्टरी) तथ्यों का इनकार करते हैं लेकिन उन्हें मालूम होना चाहिये कि शराब का यह ज़हर ऐसा ज़हर है जिसका असर धीरे-धीरे ज़ाहिर होना शुरू होता है और कुछ अरसे के बाद ये सब नुक़सानात सामने आ जाते हैं जिनका ज़िक्र किया गया है।

शराब की एक बड़ी सामाजिक ख़राबी यह है कि वह अक्सर लड़ाई-झगड़े का सबब बनती है और फिर यह बुग़्ज़ व दुश्मनी दूर तक इनसान को नुक़सान पहुँचाती हैं। इस्लामी शरीअत की नज़र में यह ख़राबी सबसे बड़ी है, इसलिये क़ुरआन ने सूरः मायदा में ख़ास तौर पर इस ख़राबी का ज़िक्र फ़रमाया है:

اِنَّمَا يُرِيْدُ الشَّيْطٰنُ اَنْ يُّوْقِعَ بَيْنَكُمُ الْعَدَاوَةَ وَالْبَغْضَآءَ فِى الْخَمْرِ وَالْمَيْسِرِ. (سورة٥:٩١)

"शैतान चाहता है कि शराब और जुए के ज़रिये तुम्हारे आपस में बुग़्ज़ व दुश्मनी पैदा कर दे।"

शराब का एक नुक़सान और ख़राबी यह भी है कि मदहोशी के आलम में कई बार आदमी अपना पोशीदा राज़ बयान कर डालता है जिसका नुक़सान अक्सर बड़ा घातक होता है, ख़ास तौर पर वह अगर किसी हुकूमत का ज़िम्मेदार आदमी है और राज़ भी हुकूमत का राज़ है जिसके इज़हार से पूरे मुल्क में इन्क़िलाब आ सकता है, और मुल्की सियासत और जंगी मस्लेहतें सब बरबाद हो जाती हैं, होशियार जासूस ऐसे मौक़ों के इन्तिज़ार में रहते हैं।

शराब की एक ख़राबी यह भी है कि वह इनसान को एक खिलौना बना देती है जिसको देखकर बच्चे भी हंसते हैं, क्योंकि उसका कलाम और उसकी हरकतें सब असन्तुलित हो जाती हैं। शराब की एक बहुत बड़ी ख़राबी यह है कि वह उम्मुल-ख़बाईस (तमाम बुराईयों की जड़) है, इनसान को तमाम बुरे से बुरे अपराधों पर तैयार कर देती है, ज़िना और क़त्ल अक्सर इसके परिणाम होते हैं, और यही वजह है कि आम शराब ख़ाने ज़िना और क़त्ल के अड्डे होते हैं। ये शराब के जिस्मानी नुक़सानात हैं। और इसके रूहानी नुक़सानात तो ज़ाहिर ही हैं कि नशे की हालत में न नमाज़ हो सकती है न अल्लाह का ज़िक्र न और कोई इबादत, इसी लिये क़ुरआने करीम में शराब के नुक़सानों के बयान में फ़रमाया:

وَيَصُدَّكُمْ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَعَنِ الصَّلٰوةِ. (سورة٥:٩١)

यानी "शराब तुमको अल्लाह के ज़िक्र और नमाज़ से रोकती है।"

अब माली नुक़सान का हाल सुनिये जिसको हर शख़्स जानता है। किसी बस्ती में अगर एक शराब ख़ाना खुल जाता है तो वह पूरी बस्ती की दौलत को समेट लेता है। उसकी क़िस्में (ब्राँड) बेशुमार हैं और कई क़िस्में तो बेहद महंगी हैं। आंकड़े तैयार करने वाले कुछ लोगों ने सिर्फ़ एक शहर

में शराब का मजमूई ख़र्चा फ़्राँस मुल्क की पूरी मिल्कियत के कुल ख़र्च के बराबर बतलाया है।

यह शराब की दीनी, दुनियावी, जिस्मानी और रूहानी ख़राबियों व नुक़सानात की मुख़्तसर फ़ेहरिस्त है जिसको रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक कलिमे में इरशाद फ़रमाया है कि वह ''उम्मुल-ख़बाईस'' या ''उम्मुल-फ़वाहिश'' है। जर्मनी के एक डॉक्टर का यह मक़ूला कहावत की तरह मशहूर है, उसने कहा कि अगर आधे शराब ख़ाने बन्द कर दिये जायें तो मैं इसकी गारंटी लेता हूँ कि आधे शिफ़ा ख़ाने (अस्पताल) और आधे जेल ख़ाने बेज़रूरत होकर बन्द हो जायेंगे।

(तफ़सीरुल-मिनार मुफ़्ती अ़ब्दुहू पेज 226 जिल्द 2)

अ़ल्लामा तन्तावी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी किताब 'अल-जवाहिर' में इस सिलसिले की चन्द अहम मालूमात लिखी हैं, उनमें से कुछ यहाँ नक़ल की जाती हैं।

एक फ़्राँसीसी मुहक़्क़िक़ (शोधक) हेनरी अपनी किताब ''ख़्वातिर व सवानेह फ़िल-इस्लाम'' में लिखते हैं:

> ''बहुत ज़्यादा तबाहकुन हथियार जिससे पूरब वालों की जड़ उखाड़ी गयी और वह दो धारी तलवार जिससे मुसलमानों को क़त्ल किया गया, यह शराब थी। हमने 'अल-जज़ाइर' के लोगों के ख़िलाफ़ यह हथियार आज़माया, लेकिन उनकी इस्लामी शरीअ़त हमारे रास्ते में रुकावट बनकर खड़ी हो गई और वे हमारे इस हथियार से प्रभावित नहीं हुए और नतीजा यह निकला कि उनकी नस्ल बढ़ती ही चली गई। ये लोग अगर हमारे इस तोहफ़े को क़ुबूल कर लेते जिस तरह कि उनके एक मुनाफ़िक़ क़बीले ने इसको क़ुबूल कर लिया है तो यह भी हमारे सामने ज़लील व ख़्वार हो जाते। आज जिन लोगों के घरों में हमारी शराब के दौर चल रहे हैं वे हमारे सामने इतने हक़ीर व ज़लील हो गये हैं कि सर नहीं उठा सकते।''

अंग्रेज़ी क़ानून के एक माहिर बनताम लिखते हैं कि:

> ''इस्लामी शरीअ़त की बेशुमार ख़ूबियों में से एक ख़ूबी यह भी है कि इसमें शराब हराम है। हमने देखा कि जब अफ़्रीक़ा के लोगों ने इसे इस्तेमाल करना शुरू किया तो उनकी नस्लों में पागलपन घुसने लगा और यूरोप के जिन लोगों को इसका चस्का लग गया उनकी भी अ़क़्लों में तब्दीली आने लगी, लिहाज़ा अफ़्रीक़ा के लोगों के लिये भी इसकी मनाही और बन्दिश होनी चाहिये और यूरोपियन लोगों को भी इस पर सख़्त सज़ायें देनी चाहियें।''

ग़र्ज़ कि जिसे भले मानस ने भी ठंडे दिल से ग़ौर किया वह बेइख़्तियार पुकार उठा कि यह गंदगी है, शैतानी अ़मल है, ज़हर है, तबाही और बरबादी का ज़रिया है, इस उम्मुल-ख़बाईस (तमाम बुराईयों की जड़) से बाज़ आ जाओ। तो क्या तुम बाज़ आ जाओगे।

शराब के हराम होने और मनाही के मुताल्लिक़ क़ुरआने करीम की चार आयतों का बयान ऊपर आ चुका है। सूरः नहल में एक जगह और भी नशे की चीज़ों का ज़िक्र एक दूसरे अन्दाज़ से आया है, मुनासिब मालूम होता है कि उसको भी यहाँ ज़िक्र कर दिया जाये, ताकि शराब और नशे के बारे में तमाम क़ुरआनी इरशादात मजमूई तौर पर सामने आ जायें। वह आयत यह है:

وَمِنْ ثَمَرٰتِ النَّخِيْلِ وَالْاَعْنَابِ تَتَّخِذُوْنَ مِنْهُ سَكَرًا وَّرِزْقًا حَسَنًا، اِنَّ فِىْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً لِّقَوْمٍ يَّعْقِلُوْنَ. (١٦:٦٧)

"और खजूर और अंगूर के फलों से तुम लोग नशे की चीज़ और उम्दा खाने की चीज़ें बनाते हो, बेशक इसमें उन लोगों के लिये बड़ी दलील है जो अक़्ल रखते हैं।"

वज़ाहत व तफ़सीर

पिछली आयतों में हक़ तआ़ला की उन नेमतों का ज़िक्र था जो इनसानी ग़िज़ायें पैदा करने में अ़जीब व ग़रीब कारीगरी व क़ुदरत का प्रतीक हैं। इसमें पहले दूध का ज़िक्र किया जिसको क़ुदरत ने हैवानों के पेट में ख़ून और फ़ुज़ले (गोबर) की गंदगियों से अलग करके साफ़ सुथरी ग़िज़ा इनसान के लिये अ़ता कर दी, जिसमें इनसान को किसी अतिरिक्त कारीगरी की ज़रूरत नहीं। इसी लिये यहाँ लफ़्ज़ 'नुस्क़ीकुम' इस्तेमाल फ़रमाया कि हमने दूध पिलाया। इसके बाद फ़रमाया कि खजूर और अंगूर के कुछ फलों में से भी इनसान अपनी ग़िज़ा और नफ़े की चीज़ें बनाता है। इसमें इशारा इस तरफ़ है कि खजूर और अंगूर के फलों में से अपनी ग़िज़ा और फ़ायदे की चीज़ें बनाने में इनसानी हुनरमन्दी का कुछ दख़ल है और इसी दख़ल के नतीजे में दो तरह की चीज़ें बनाई गईं- एक नशा लाने वाली चीज़ जिसको ख़ुमुर या शराब कहा जाता है, दूसरी 'रिज़्क़े हसन' यानी उम्दा रिज़्क़ कि खजूर और अंगूर को तरोताज़ा खाने में इस्तेमाल करें, या सुखाकर जमा कर लें। मक़सद यह है कि अल्लाह तआ़ला ने अपनी कामिल क़ुदरत से खजूर और अंगूर के फल इनसान को दे दिये, और उनसे अपनी ग़िज़ा वग़ैरह बनाने का इख़्तियार भी दे दिया, अब यह इसका चयन करना है कि उससे क्या बनाये, नशा लाने वाली चीज़ बनाकर अ़क़्ल को ख़राब करे या ग़िज़ा बनाकर क़ुव्वत हासिल करे।

इस तफ़सीर के मुताबिक़ इस आयत से नशा लाने वाली शराब के हलाल होने पर कोई दलील नहीं पकड़ी जा सकती, क्योंकि यहाँ मक़सूद क़ुदरत की दी हुई चीज़ों और उनके इस्तेमाल की विभिन्न सूरतों का बयान है, जो हर हाल में अल्लाह की नेमत है, जैसे तमाम ग़िज़ायें और इनसानी फ़ायदे की चीज़ें कि उनको बहुत से लोग नाजायज़ तरीक़ों पर भी इस्तेमाल करते हैं, मगर किसी के ग़लत इस्तेमाल से असल नेमत नेमत होने से नहीं निकल जाती। इसलिये यहाँ यह तफ़सील बतलाने की ज़रूरत नहीं कि उनमें कौनसा इस्तेमाल हलाल है कौनसा हराम है, फिर भी एक बारीक इशारा इसमें भी इस तरफ़ कर दिया कि "सकर" (नशे) के मुक़ाबिल "रिज़्क़े हसन" (अच्छा रिज़्क़) रखा जिससे मालूम हुआ कि 'सकर' अच्छा रिज़्क़ नहीं। सकर के मायने जमहूर मुफ़स्सिरीन के नज़दीक नशा लाने वाली चीज़ के हैं। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी, क़ुर्तुबी, जस्सास)

नोटः- कुछ उलेमा ने इसके मायने सिरका या बिना नशे की नबीज़ के भी लिये हैं। (तफ़सीरे जस्सास, तफ़सीरे क़ुर्तुबी) मगर इस जगह इस इख़्तिलाफ़ (मतभेद) के नक़ल करने की ज़रूरत नहीं।

उम्मत का इस पर इत्तिफ़ाक़ (एक राय) है कि ये आयतें मक्की हैं, और शराब की हुर्मत (हराम होना) इसके बाद मदीना तैयबा में नाज़िल हुई। आयतों के उतरने के वक़्त अगरचे शराब हलाल थी और मुसलमान आ़म तौर पर पीते थे, मगर उस वक़्त भी इस आयत में इशारा इस तरफ़ कर दिया गया कि इसका पीना अच्छा नहीं, बाद में स्पष्ट तौर पर शराब को सख़्ती के साथ हराम करने के लिये क़ुरआनी अहकाम नाज़िल हो गये। (तफ़सीरे जस्सास और क़ुर्तुबी में इसकी तफ़सील मौजूद है)

जुए का हराम होना

इस्लाम से पहले ज़माने (जिसको जाहिलीयत का ज़माना कहा जाता है) में विभिन्न प्रकार के जुए प्रचलित थे, जिनमें एक क़िस्म यह भी थी कि ऊँट ज़िबह करके उसके हिस्से तक़सीम करने में जुआ खेला जाता था, कुछ को एक या ज़्यादा हिस्से मिलते कुछ मेहरूम रहते थे। मेहरूम रहने वाले को पूरे ऊँट की क़ीमत अदा करनी पड़ती थी, गोश्त सब फ़क़ीरों में तक़सीम किया जाता ख़ुद इस्तेमाल न करते थे।

इस ख़ास जुए में चूँकि फ़क़ीरों का फ़ायदा और जुआ खेलने वालों की सख़ावत भी थी इसी लिये इस खेल को फ़ख़्र व बड़ाई का सबब समझते थे, जो इसमें शरीक न होता उसको कन्जूस और मन्हूस कहते थे।

तक़सीम (बाँटने) की मुनासबत से 'क़िमार' (जुए) को 'मैसिर' कहा जाता है। तमाम सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात इस पर सहमत हैं कि 'मैसिर' में क़िमार यानी जुए की तमाम सूरतें दाख़िल और सब हराम हैं। इमाम इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी तफ़सीर में और इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'अहकामुल-क़ुरआन' में नक़ल किया है कि क़ुरआन के मुफ़स्सिरीन (व्याख्यापकों) हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास और हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा और हज़रत क़तादा, हज़रत मुआ़विया बिन सालेह, हज़रत अ़ता और हज़रत ताऊस रहमतुल्लाहि अ़लैहिम ने फ़रमायाः

الميسر القمار حتّٰى لعب الصّبيان بالكعاب والجوز

"यानी हर क़िस्म का क़िमार 'मैसिर' (जुआ) है यहाँ तक कि बच्चों का खेल लकड़ी के गुटकों और अख़रोट वग़ैरह के साथ भी।"

और हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमायाः

اَلْمُخَاطَرَةُ مِنَ الْقِمَارِ.

"यानी मुख़ातरा क़िमार में से है" (तफ़सीरे जस्सास) इमाम इब्ने सीरीन ने फ़रमाया जिस काम में मुख़ातरा हो वह मैसिर में दाख़िल है। (तफ़सीर रूहुल-बयान)

मुख़ातरा के मायने हैं कि ऐसा मामला किया जाये जो नफ़े व नुक़सान के बीच दायर हो, यानी यह भी एहतिमाल (संभावना) हो कि बहुत सा माल मिल जाये और यह भी कि कुछ न मिले, जैसे आजकल लॉटरी के विभिन्न तरीक़ों में पाया जाता है, ये सब क़िस्में **क़िमार** और **मैसिर** (जुए) में दाख़िल और हराम हैं। इसलिये मैसिर या क़िमार की तारीफ़ (परिभाषा) यह है कि जिस मामले में किसी माल का मालिक बनाने को ऐसी शर्त पर मौक़ूफ़ रखा जाये जिसके पाये जाने और न पाये जाने की दोनों जानिबें बराबर हों, और इसी बिना पर ख़ालिस नफ़े या ख़ालिस तावान (जुर्माने) बरदाश्त करने की दोनों जानिबें भी बराबर हों। (शामी पेज 355 जिल्द 5, किताबुल-ख़तर वल-इबाहा)

जैसे यह भी एहतिमाल है कि उमर पर तावान पड़ जाये और यह भी है कि राशिद पर पड़ जाये, इसकी जितनी क़िस्में और सूरतें पहले ज़माने में राईज (प्रचलित) थीं या आज राईज हैं या आगे पैदा

हों वे सब मैसिर, क़िमार और जुआ कहलायेंगी। मुअम्मे हल करने का चलता हुआ कारोबार और तिजारती लॉटरी की आम सूरतें सब इसमें दाख़िल हैं, हाँ अगर सिर्फ़ एक जानिब से इनाम मुक़र्रर किया जाये कि जो शख़्स फ़ुलाँ काम करेगा उसको यह इनाम मिलेगा इसमें कोई हर्ज नहीं बशर्तेकि उस शख़्स से कोई फ़ीस वसूल न की जाये, क्योंकि इसमें मामला नफ़े व नुक़सान के बीच दायर नहीं, बल्कि फ़ायदा होने और फ़ायदा न होने के बीच दायर (घूम रहा) है।

इसी लिये सही हदीसों में शतरंज और चौसर वग़ैरह को हराम क़रार दिया गया है जिनमें माल की हार-जीत पाई जाती है। ताश पर अगर रुपये की हार जीत हो तो वह भी मैसिर में दाख़िल है।

सही मुस्लिम में हज़रत बुरैदा रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत से मज़कूर है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जो शख़्स चौसर खेलता है वह गोया ख़िन्ज़ीर (सुअर) के गोश्त और ख़ून में अपने हाथ रंगता है, और हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया कि शतरंज मैसिर यानी जुए में दाख़िल है, और हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया- शतरंज तो चौसर से भी ज़्यादा बुरी है। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

इस्लाम की शुरूआत में शराब की तरह क़िमार (जुआ) भी हलाल था। मक्का में जब सूरः रूम की शुरू की आयतें 'अलिफ़ लाम मीम ग़ुलिबतिर्रूम.........' नाज़िल हुई और क़ुरआने करीम ने ख़बर दी कि इस वक़्त रूम अगरचे अपने मुक़ाबिल किसरा से मग़लूब हो गये लेकिन चन्द साल बाद फिर रूमी ग़ालिब आ जायेंगे और मक्का के मुश्रिक लोगों ने इसका इनकार किया तो हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अन्हु ने उनसे इसी तरह क़िमार की शर्त ठहराई, कि अगर इतने साल में रूमी ग़ालिब आ गये तो इतना माल तुम्हें देना पड़ेगा, यह शर्त मान ली गई और वाक़िआ क़ुरआन की ख़बर के मुताबिक़ पेश आया तो हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने यह माल वसूल किया, आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के पास लाये, आपने इस वाक़िए पर ख़ुशी का इज़हार फ़रमाया मगर माल को सदक़ा करने का हुक्म दे दिया। क्योंकि जो चीज़ आगे चलकर हराम होने वाली थी अल्लाह ने अपने रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को हलाल होने के ज़माने में भी उससे महफ़ूज़ फ़रमा दिया था, इसी लिये शराब और क़िमार से हमेशा आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने परहेज़ किया और ख़ास-ख़ास सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम भी इन चीज़ों से हमेशा महफ़ूज़ रहे।

एक रिवायत में है कि हज़रत जिब्रीले अमीन ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को ख़बर दी कि अल्लाह तआला के नज़दीक हज़रत जाफ़रे तय्यार की चार ख़स्लतें ज़्यादा महबूब हैं। आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हज़रत जाफ़र रज़ियल्लाहु अन्हु से पूछा कि आप में वे चार ख़स्लतें (आदतें) क्या हैं? अर्ज़ किया कि मैंने इसका इज़हार अब तक किसी से नहीं किया था मगर जबकि आपको अल्लाह तआला ने ख़बर दे दी तो अर्ज़ करता हूँ कि वे चार ख़स्लतें ये हैं- मैंने देखा कि शराब अक़्ल को ज़ाईल (प्रभावित और ख़राब) करती है इसलिये मैं कभी उसके पास नहीं गया। और मैंने बुतों को देखा कि उनके हाथ में किसी का नफ़ा व नुक़सान नहीं इसलिये जाहिलीयत में भी मैंने कभी बुतपरस्ती नहीं की। और मुझे चूँकि अपनी बीवी और लड़कियों के मामले में सख़्त ग़ैरत है इसलिये मैंने कभी ज़िना नहीं किया। और मैंने देखा कि झूठ बोलना कमीनेपन और ज़िल्लत की बात है इसलिये कभी जहालत में भी झूठ नहीं बोला। (तफ़सीर रूहुल-बयान)

जुए के समाजी और सामूहिक नुक़सानात

जुए के मुताल्लिक़ भी क़ुरआने करीम ने वही इरशाद फ़रमाया जो शराब के मुताल्लिक़ आया है कि इसमें कुछ नफ़े भी हैं मगर नफ़े से इसका नुक़सान बढ़ा हुआ है। इसके नफ़ों को तो हर शख़्स जानता है कि जीत जाये तो बैठे-बैठे एक फ़क़ीर बदहाल आदमी एक ही दिन में मालदार और सरमाये दार बन सकता है, मगर इसकी आर्थिक, सामूहिक, सामाजिक और रूहानी ख़राबियाँ और नुक़सानात को बहुत कम लोग जानते हैं। इसका मुख़्तसर बयान यह है कि जुए का खेल सारा इस पर दायर है कि एक शख़्स का नफ़ा दूसरे के नुक़सान पर मौक़ूफ़ है, जीतने वाले का नफ़ा ही नफ़ा हारने वाले के नुक़सान ही नुक़सान का नतीजा होता है। क्योंकि इस कारोबार से कोई दौलत बढ़ती नहीं वह उसी तरह जमी और रुकी हुई हालत में रहती है, इस खेल के ज़रिये एक की दौलत उसके पास से निकल कर दूसरे के पास पहुँच जाती हैं, इसलिये जुआ मजमूई हैसियत से क़ौम की तबाही और इनसानी अख़्लाक़ की मौत है, कि जिस इनसान को मख़्लूक़ को फ़ायदा पहुँचाने और हमदर्दी व ईसार का पैकर होना चाहिये वह एक ख़ूँख़ार दरिन्दे की ख़ासियत इख़्तियार कर ले, कि दूसरे भाई की मौत में अपनी ज़िन्दगी, उसकी मुसीबत में अपनी राहत, उसके नुक़सान में अपना नफ़ा समझने लगे और अपनी पूरी क़ाबलियत इस ख़ुदग़र्ज़ी पर ख़र्च करे, जबकि इसके विपरीत तिजारत और ख़रीद व बेच की जायज़ सूरतों का मामला है कि उनमें दोनों पक्षों का फ़ायदा होता है और तिजारत व व्यापार के ज़रिये मालों के तबादले से दौलत बढ़ती है और ख़रीदने और बेचने वाला दोनों उसका फ़ायदा महसूस करते हैं।

एक भारी नुक़सान जुए में यह है कि इसका आदी असल कमाई और मेहनत करने से आदतन मेहरूम हो जाता है, क्योंकि उसकी इच्छा यही रहती है कि बैठे बैठाये एक शर्त लगाकर दूसरे का माल चन्द मिनट में हासिल कर ले, जिसमें न कोई मेहनत है न मशक़्क़त। कुछ हज़रात ने जुए का नाम मैसिर रखने की यह वजह भी बयान की है कि इसके ज़रिये आसानी से दूसरे का माल अपना बन जाता है। जुए का मामला अगर दो-चार आदमियों के बीच दायर हो तो इसमें भी बयान हुए नुक़सानात बिल्कुल नुमायाँ नज़र आते हैं। लेकिन इस नये दौर में जिसको गहरी नज़र न रखने वाले और इसके परिणामों से नावाक़िफ़ कुछ लोग इसे तरक़्क़ी का दौर कहते हैं, जैसे शराब की नई-नई क़िस्में (ब्राँड) और नये-नये नाम रख लिये गये, सूद की नई-नई क़िस्में और नये-नये सामूहिक तरीक़े बैंकिंग के नाम से ईजाद कर लिये गये हैं, इसी तरह क़िमार और जुए की भी हज़ारों क़िस्में चल गईं, जिनमें बहुत सी क़िस्में ऐसी सामूहिक हैं कि क़ौम का थोड़ा-थोड़ा रुपया जमा हो जाता है और जो नुक़सान होता है वह उन सब पर तक़सीम होकर नुमायाँ नहीं रहता और जिसको यह रक़म मिलती है उसका फ़ायदा नुमायाँ होता है। इसलिये बहुत से लोग इसके व्यक्तिगत नफ़े को देखते हैं लेकिन क़ौम के सामूहिक नुक़सान पर ध्यान नहीं देते, इसलिये उनका ख़्याल इन नई क़िस्मों के जवाज़ (जायज़ होने) की तरफ़ चलता है हालाँकि इसमें वे सब नुक़सान मौजूद हैं जो दो-चार आदमियों के जुए में पाये जाते हैं, और एक एतिबार से इसका नुक़सान उस पुराने क़िस्म के क़िमार से बहुत ज़्यादा और इसके ख़राब असरात दूरगामी और पूरी क़ौम की बरबादी का सामान हैं। क्योंकि इसका लाज़िमी असर यह होगा कि मिल्लत के आम अफ़राद की दौलत घटती जायेगी और चन्द सरमाये दारों के सरमाये में और अधिक इज़ाफ़ा होता रहेगा, इसका लाज़िमी नतीजा यह होगा कि पूरी क़ौम की दौलत सिमट कर

सीमित अफ़राद और सीमित परिवारों में इकट्ठी हो जायेगी, जिसका अनुभव सट्टा बाज़ार और क़िमार की दूसरी क़िस्मों में रोज़मर्रा होता रहता है, और इस्लामी अर्थव्यवस्था का अहम उसूल यह है कि हर ऐसे मामले को हराम क़रार दिया जिसके ज़रिये दौलत पूरी मिल्लत से सिमट कर चन्द सरमायेदारों के हवाले हो सके। क़ुरआने करीम ने इसका ऐलान ख़ुद दौलत की तक़सीम का उसूल बयान करते हुए इस तरह फ़रमा दिया है:

كَيْ لَا يَكُوْنَ دُوْلَةً ۢ بَيْنَ الْاَغْنِيَآءِ مِنْكُمْ. (۷:۵۹)

यानी 'फ़ै' के माल की तक़सीम (बंटवारा) मुख़्तलिफ़ तब्क़ों में करने का जो उसूल क़ुरआन ने तय किया है उसका मंशा यह है कि दौलत सिमट कर सिर्फ़ सरमायेदारों में जमा न हो जाये।

क़िमार यानी जुए की ख़राबी यह भी है कि शराब की तरह क़िमार भी आपस में लड़ाई-झगड़े और फ़ित्तने-फ़साद का सबब होता है। हारने वाले को तबई तौर पर जीत जाने वाले से नफ़रत और दुश्मनी पैदा होती है, और यह सभ्यता और सामाजिक ज़िन्दगी के लिये सख़्त घातक चीज़ है। इसी लिये क़ुरआने हकीम ने ख़ास तौर पर इस ख़राबी को ज़िक्र फ़रमाया है:

اِنَّمَا يُرِيْدُ الشَّيْطٰنُ اَنْ يُّوْقِعَ بَيْنَكُمُ الْعَدَاوَةَ وَالْبَغْضَآءَ فِي الْخَمْرِ وَالْمَيْسِرِ وَيَصُدَّكُمْ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَعَنِ الصَّلٰوةِ. (۵:۹۱)

"शैतान तो यही चाहता है कि शराब और जुए के ज़रिये तुम्हारे आपस में दुश्मनी और बुग़्ज़ व नफ़रत पैदा कर दे और तुमको अल्लाह के ज़िक्र और नमाज़ से रोक दे।"

इसी तरह क़िमार (जुए) का एक लाज़िमी असर यह है कि शराब की तरह आदमी इसमें मस्त होकर अल्लाह के ज़िक्र और नमाज़ से ग़ाफ़िल हो जाता है, और शायद यही वजह है कि क़ुरआने करीम ने शराब और जुए को एक ही जगह एक अन्दाज़ से ज़िक्र फ़रमाया है कि मानवी तौर पर क़िमार (जुए) का भी एक नशा होता है जो आदमी को उसके भले-बुरे की फ़िक्र से ग़ाफ़िल कर देता है। मज़कूरा आयत में भी इन दोनों चीज़ों को जमा करके दोनों की ये ख़राबियाँ ज़िक्र फ़रमाई हैं कि वे आपस की दुश्मनी व नफ़रत का सबब बनती हैं, और ज़िक्रुल्लाह और नमाज़ से रोक बन जाती हैं।

क़िमार (जुए) की एक उसूली ख़राबी यह भी है कि यह बातिल (नाजायज़) तरीक़े पर दूसरे लोगों का माल हज़्म करने का एक तरीक़ा है कि बग़ैर किसी माक़ूल मुआवज़े के दूसरे भाई का माल ले लिया जाता है, इसी को क़ुरआने करीम ने इन अलफ़ाज़ में मना फ़रमाया है:

لَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ. (۲:۱۸۸)

"लोगों के माल बातिल (ग़लत) तरीक़े पर मत खाओ।"

क़िमार (जुए) में एक बड़ी ख़राबी यह भी है कि अचानक बहुत से घर बरबाद हो जाते हैं, लखपति आदमी फ़क़ीर बन जाता है जिससे सिर्फ़ यही शख़्स मुतास्सिर (प्रभावित) नहीं होता जिसने जुए का अपराध किया है, बल्कि इसका पूरा घराना और ख़ानदान मुसीबत में पड़ जाता है, और अगर ग़ौर किया जाये तो पूरी क़ौम इससे मुतास्सिर होती है, क्योंकि जिन लोगों ने उसकी माली साख को देखकर उससे मुआहदे (समझौते) और मामलात किये हुए हैं या क़र्ज़ दिये हुए हैं वह अब दिवालिया

हो जायेगा तो उन सब पर उसकी बरबादी का असर पड़ना लाज़िमी है।

क़िमार (जुए) में एक ख़राबी यह भी है कि इससे इनसान की काम करने की क़ुव्वत (क्षमता) सुस्त होकर वहमी मनाफ़े पर लग जाती है और वह बजाय इसके कि अपने हाथ या दिमाग़ की मेहनत से कोई दौलत बढ़ाता रहे उसकी फ़िक्र (सोच और लगन) इस पर सीमित होकर रह जाती है कि दूसरे की कमाई पर अपना क़ब्ज़ा जमाये।

यह मुख़्तसर फ़ेहरिस्त (सूची) है क़िमार (जुए) की ख़राबियों की जिनसे न सिर्फ़ इस जुर्म का करने वाला प्रभावित होता है बल्कि उसके सब मुताल्लिक़ीन, बाल-बच्चे व घर वाले और पूरी क़ौम मुतास्सिर होती है, इसी लिये क़ुरआने करीम ने फ़रमायाः

وَاِثْمُهُمَآ اَكْبَرُ مِنْ نَّفْعِهِمَا.

"यानी शराब व जुए की ख़राबियाँ उनके नफ़े से ज़्यादा हैं।"

चन्द फ़िक़्ही उसूल और फ़ायदे

इस आयत में शराब और जुए के कुछ फ़ायदों को तस्लीम करते हुए उनसे रुकने की हिदायत फ़रमाई गई है, जिससे एक अहम नतीजा यह निकल आया है कि किसी चीज़ या किसी काम में कुछ दुनियावी फ़ायदे होना इसके मनाफ़ी (ख़िलाफ़) नहीं है कि उसको शरई तौर पर हराम क़रार दिया जाये, क्योंकि जिस तरह महसूस चीज़ों में उस दवा और ग़िज़ा को नुक़सानदेह कहा जाता है जिसके नुक़सानात उसके फ़ायदे की तुलना में ज़्यादा सख़्त हों, वरना यूँ तो दुनिया की कोई बुरी से बुरी चीज़ भी फ़ायदे से ख़ाली नहीं। हलाक कर देने वाले ज़हर में, साँप और बिच्छु में, दरिन्दों में कितने फ़ायदे हैं, लेकिन मजमूई हैसियत से उनको नुक़सानदेह कहा जाता है और उनके पास जाने से बचने की हिदायत की जाती है। इसी तरह मानवी एतिबार से जिन कामों की ख़राबियाँ और नुक़सानात उनके फ़ायदों से ज़्यादा हों, शरई तौर पर उनको हराम कर दिया जाता है। चोरी, डाका, ज़िना, अग़वा, धोखा फ़रेब वग़ैरह वग़ैरह तमाम अपराधों में कौनसा जुर्म ऐसा है जिसमें कोई फ़ायदा नहीं, क्योंकि अगर ये बिल्कुल बेफ़ायदा होते तो कोई अ़क़्ल व होश वाला इनसान इनके पास न जाता, हालाँकि इन सब अपराधों में माहिर व प्रफ़ेक्ट वही लोग होते हैं जो होशियारी अ़क़्लमन्दी में मारूफ़ (मशहूर और जाने-माने) समझे जाते हैं। इसी से मालूम हुआ कि फ़ायदे तो कुछ न कुछ अपराधों में हैं मगर चूँकि उनके नुक़सानात उनके फ़ायदों से बढ़े हुए हैं इसलिये कोई अ़क़्लमन्द इनसान उनको मुफ़ीद और जायज़ नहीं कहता। इस्लामी शरीअ़त ने शराब और जुए को इसी उसूल के तहत हराम क़रार दिया है कि इनके फ़ायदों से ज़्यादा इनमें ख़राबियाँ और दीनी व दुनियावी नुक़सानात हैं।

एक और फ़िक़्ही ज़ाब्ता

इस आयत से यह भी मालूम हुआ कि फ़ायदे के हासिल करने से नुक़सान को दूर करना मुक़द्दम है। यानी एक काम के ज़रिये कुछ फ़ायदा भी हासिल होता है और साथ ही कोई नुक़सान भी पहुँचता है तो नुक़सान से बचने के लिये उस फ़ायदे को छोड़ देना ही ज़रूरी होता है, ऐसे फ़ायदे को नज़र अन्दाज़ कर दिया जाता है जो नुक़सान के साथ हासिल हो।

وَيَسْئَلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ ۬ قُلِ الْعَفْوَ ۭ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُوْنَ ۙ فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ۭ وَيَسْئَلُوْنَكَ عَنِ الْيَتٰمٰى ۭ قُلْ اِصْلَاحٌ لَّهُمْ خَيْرٌ ۭ وَاِنْ تُخَالِطُوْهُمْ فَاِخْوَانُكُمْ ۭ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ الْمُفْسِدَ مِنَ الْمُصْلِحِ ۭ وَلَوْ شَاۗءَ اللّٰهُ لَاَعْنَتَكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝ وَلَا تَنْكِحُوا الْمُشْرِكٰتِ حَتّٰى يُؤْمِنَّ ۭ وَلَاَمَةٌ مُّؤْمِنَةٌ خَيْرٌ مِّنْ مُّشْرِكَةٍ وَّلَوْ اَعْجَبَتْكُمْ ۚ وَلَا تُنْكِحُوا الْمُشْرِكِيْنَ حَتّٰى يُؤْمِنُوْا ۭ وَلَعَبْدٌ مُّؤْمِنٌ خَيْرٌ مِّنْ مُّشْرِكٍ وَّلَوْ اَعْجَبَكُمْ ۭ اُولٰۗىِٕكَ يَدْعُوْنَ اِلَى النَّارِ ښ وَاللّٰهُ يَدْعُوْٓا اِلَى الْجَنَّةِ وَالْمَغْفِرَةِ بِاِذْنِهٖ ۚ وَيُبَيِّنُ اٰيٰتِهٖ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ ۝

व यस्अलून-क मा-ज़ा युन्फ़िक़ू-न, क़ुलिल्-अ़फ़्-व कज़ालि-क युबय्यिनु-ल्लाहु लकुमुल्-आयाति लअ़ल्लकुम् त-तफ़क्करून (219) फ़िद्दुन्या वल्आख़ि-रति व यस्अलून-क अ़निल्-यतामा, क़ुल् इस्लाहुल्-लहुम् ख़ैरुन्, व इन् तुख़ालितूहुम् फ़-इख़्वानुकुम्, वल्लाहु यअ़्लमुल्-मुफ़्सि-द मिनल्-मुस्लिहि, व लौ शा-अल्लाहु ल-अअ़्न-तकुम, इन्नल्ला-ह अ़ज़ीज़ुन् हकीम (220) व ला तन्किहुल् मुश्रिकाति हत्ता युअ्मिन्-न, व ल-अ-मतुम् मुअ्मि-नतुन् ख़ैरुम्-मिम्-मुश्रि-कतिंव्-व लौ अअ़्-जबत्कुम् व ला तुन्किहुल् मुश्रिकी-न हत्ता युअ्मिनू, व ल-अ़ब्दुम्-मुअ्मिनुन् ख़ैरुम् मिम्-मुश्रिकिंव्-व लौ

और तुझसे पूछते हैं कि क्या ख़र्च करें? कह दे जो बचे अपने ख़र्च से, इसी तरह बयान करता है अल्लाह तुम्हारे वास्ते हुक्म ताकि तुम फ़िक्र करो (219) दुनिया व आख़िरत की बातों में। और तुझसे पूछते हैं यतीमों का हुक्म, कह दे संवारना उनके काम का बेहतर है, और अगर उनका ख़र्च मिला लो तो वे तुम्हारे भाई हैं और अल्लाह जानता है ख़राबी करने वाले और संवारने वाले को, और अगर अल्लाह चाहता तो तुम पर मशक्कत डालता, बेशक अल्लाह ज़बरदस्त है तदबीर वाला। (220) और निकाह मत करो मुश्रिक औरतों से जब तक वे ईमान न ले आयें और अलबत्ता मुसलमान बाँदी बेहतर है मुश्रिक बीबी से अगरचे वह तुमको भली लगे, और निकाह न करो मुश्रिक लोगों से जब तक वे ईमान न ले आयें और अलबत्ता मुसलमान ग़ुलाम

अअ्ज़-बकुम, उलाइ-क यद्अू-न इलन्नारि वल्लाहु यद्अू इलल्-जन्नति वल्-मग़्फ़ि-रति बि-इज़्निही व युबय्यिनु आयातिही लिन्नासि लअ़ल्लहुम् य-तज़क्करून (221) ✿	बेहतर है मुश्रिक से अगरचे वह तुमको भला लगे, वे बुलाते हैं दोज़ख़ की तरफ़ और अल्लाह बुलाता है जन्नत की तरफ़ और बख़्शिश की तरफ़ अपने हुक्म से, और बतलाता है अपने हुक्म लोगों को ताकि वे नसीहत क़ुबूल करें। (221) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 16- ख़र्च करने की मात्रा

और लोग आप से पूछते हैं कि (ख़ैर-ख़ैरात में) कितना ख़र्च किया करें। आप फ़रमा दीजिए कि जितना आसान हो (कि उसके ख़र्च करने से ख़ुद परेशान होकर दुनियावी तकलीफ़ में या किसी का हक़ ज़ाया करके आख़िरत की तकलीफ़ में न पड़ जायें), अल्लाह तआ़ला इसी तरह अहकाम को साफ़-साफ़ बयान फ़रमाते हैं ताकि तुम (को उनका इल्म हो जाये और उस इल्म की वजह से हर अ़मल करने से पहले) दुनिया व आख़िरत के मामलों में (उन अहकाम को) सोच लिया करो, (और सोचकर हर मामले में उन अहकाम के मुवाफ़िक़ अ़मल किया करो)।

हुक्म 17- यतीम के साथ मिलजुल कर रहना

(चूँकि शुरू में हिन्दुस्तान की तरह अ़रब में भी यतीमों का हक़ देने में पूरी एहतियात न थी, इसलिये यह धमकी सुनाई गई कि यतीमों का माल खाना ऐसा है जैसा दोज़ख़ के अंगारे पेट में भरना, तो सुनने वाले डर के मारे इतनी एहतियात करने लगे कि उनका खाना भी अलग पकवाते और अलग रखवाते, और इत्तिफ़ाक़ से अगर बच्चा कम खाता तो खाना बचता और सड़ता था, क्योंकि उसका इस्तेमाल न उन लोगों के लिये जायज़ था और न यतीम के माल को सदक़ा कर देने का इख़्तियार था, इस तरह तकलीफ़ भी होती और यतीम का नुक़सान भी। इसलिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया गया, इसके बारे में आयत में यह इरशाद आया-) और लोग आप से यतीम बच्चों (के ख़र्च अलग या साथ में रखने) का हुक्म पूछते हैं, आप फ़रमा दीजिए कि (असल मक़सूद हमारा उनके मालों को खाने की मनाही से यह है कि उनकी मस्लेहत को ज़ाया न किया जाये और जब ख़र्च साथ में रखने में उनकी मस्लेहत है तो) उनकी मस्लेहत की रियायत रखना (अलग ख़र्च रखने से जो ख़िलाफ़े मस्लेहत है) ज़्यादा बेहतर है। और अगर तुम उनके साथ ख़र्च शामिल रखो तो (कुछ डर की बात नहीं, क्योंकि) वे (बच्चे) तुम्हारे (दीनी) भाई हैं, (और भाई भाई शामिल रहा ही करते हैं) और अल्लाह तआ़ला मस्लेहत के ज़ाया करने वाले को और मस्लेहत की रियायत रखने वाले को (अलग-अलग) जानते हैं (इसलिये खाने-पीने में साझा ऐसा न होना चाहिये जिसमें यतीम की मस्लेहत ज़ाया हो जाये और बिना इल्म और बिना इरादे के कुछ कमी-बेशी हो भी जाये तो चूँकि

अल्लाह तआ़ला को उसकी नेक नीयती मालूम है इसलिये उस पर पकड़ न होगी), और अगर अल्लाह चाहते तो (इस मामले में सख़्त क़ानून मुक़र्रर करके) तुमको मुसीबत में डाल देते, (क्योंकि) अल्लाह तआ़ला ज़बरदस्त हैं (मगर क़ानून आसान इसलिये मुक़र्रर फ़रमाया कि वह) हिक्मत वाले (भी) हैं (ऐसा हुक्म नहीं देते जो न हो सके)।

हुक्म 18- काफ़िरों के साथ निकाह का मसला

और निकाह मत करो काफ़िर औ़रतों के साथ जब तक कि वे मुसलमान न हो जाएँ, और मुसलमान औ़रत (चाहे) बाँदी (क्यों न हो, वह हज़ार दर्जा) बेहतर है काफ़िर औ़रत से (चाहे वह आज़ाद औ़रत ही क्यों न हो), चाहे वह (काफ़िर औ़रत माल या सुन्दरता की वजह से) तुमको अच्छी ही मालूम हो (मगर फिर भी हक़ीक़त में मुसलमान औ़रत ही उससे अच्छी है)। और (इसी तरह अपने इख़्तियार की) औ़रतों को काफ़िर मर्दों के निकाह में मत दो, जब तक कि वे मुसलमान न हो जाएँ। और मुसलमान मर्द (चाहे) ग़ुलाम (ही क्यों न हो वह हज़ार दर्जे) बेहतर है काफ़िर मर्द से (चाहे वह आज़ाद ही क्यों न हो) चाहे वह (काफ़िर मर्द माल या रुतबे की वजह से) तुमको अच्छा ही मालूम हो (मगर फिर भी हक़ीक़त में मुसलमान ही उससे अच्छा है, और वजह उन काफ़िरों के बुरा होने और उनसे निकाह की मनाही की यह है कि) (क्योंकि) ये (काफ़िर) लोग दोज़ख़ (में जाने) की तहरीक देते हैं "यानी दोज़ख़ की ओर ले जाते हैं" (क्योंकि कुफ़्र की प्रेरणा देते हैं और उसका अन्जाम जहन्नम है), और अल्लाह तआ़ला जन्नत और मग़फ़िरत (के हासिल करने) की तहरीक देते हैं अपने हुक्म से (और उस हुक्म का ज़हूर इस तरह हुआ कि काफ़िरों के बारे में यह हुक्म सादिर फ़रमा दिया कि उनसे निकाह न किया जाये ताकि उनके उभारने के असर से पूरी हिफ़ाज़त रह सके और उससे महफ़ूज़ रहकर जन्नत और मग़फ़िरत हासिल हो जाये) और अल्लाह तआ़ला इस वास्ते आदमियों को अपने अहकाम बता देते हैं ताकि वे लोग नसीहत पर अ़मल करें (और जन्नत व मग़फ़िरत के हक़दार हो जायें)।

तफ़सीर 'बयानुल-क़ुरआन' से कुछ हिदायतें

मसलाः- जो क़ौम अपनी हालत और तौर-तरीक़े से अहले-किताब (आसमानी मज़हब को मानने वाले) समझे जाते हैं लेकिन अ़क़ायद की तहक़ीक़ करने से किताबी साबित न हों उस क़ौम की औ़रतों से निकाह दुरुस्त नहीं, जैसे आजकल उमूमन अंग्रेज़ों को आ़म लोग ईसाई समझते हैं हालाँकि तहक़ीक़ से उनके कुछ अ़क़ीदे बिल्कुल बेदीनी के साबित हुए कि न ख़ुदा के क़ायल न ईसा अ़लैहिस्सलाम की नुबुव्वत के मोतक़िद, न इन्जील के बारे में आसमानी किताब होने का एतिक़ाद, सो ऐसे लोग ईसाई नहीं, ऐसी जमाअ़त में की जो औ़रत हो उससे निकाह दुरुस्त नहीं, लोग बड़ी ग़लती करते हैं कि बिना तहक़ीक़ के यूरोप की औ़रतें ब्याह लाते हैं।

मसलाः- इसी तरह जो मर्द ज़ाहिरी हालत से मुसलमान समझा जाये लेकिन अ़क़ीदे उसके कुफ़्र तक पहुँचते हों उससे मुसलमान औ़रत का निकाह दुरुस्त नहीं, और अगर निकाह हो जाने के बाद ऐसे अ़क़ीदे ख़राब हो जायें तो निकाह टूट जाता है, जैसे आजकल बहुत से आदमी अपने मज़हब से

नावाक़िफ़ साईंस के असरात से अपने अक़ीदे तबाह कर डालते हैं, लड़की वालों पर वाजिब है कि प्याम (रिश्ता) आने के वक़्त पहले अक़ीदों की तहक़ीक़ कर लिया करें तब ज़बान दें।

मआरिफ़ व मसाईल

मुस्लिम व काफ़िर का आपस में निकाह करना नाजायज़ है

उक्त आयतों में एक अहम मसला यह बयान फ़रमाया गया कि मुसलमान मर्दों का निकाह काफ़िर औरतों से और काफ़िर मर्दों का निकाह मुसलमान औरतों से जायज़ नहीं। वजह यह है कि काफ़िर मर्द और औरतें इनसान को जहन्नम की तरफ़ ले जाने का सबब बनते हैं। क्योंकि मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ात, आपस की मुहब्बत व ताल्लुक़ और पूरी तरह तालमेल को चाहते हैं और बग़ैर इसके इन ताल्लुक़ात का असली मक़सद पूरा नहीं होता, और मुश्रिकों के साथ इस क़िस्म के मुहब्बत व दोस्ती के क़रीबी और गहरे ताल्लुक़ात का लाज़िमी असर यह है कि उनके दिल में भी कुफ़्र व शिर्क की तरफ़ मैलान पैदा हो या कम से कम कुफ़्र व शिर्क से नफ़रत उनके दिलों से निकल जाये, और इसका अन्जाम यह है कि ये भी कुफ़्र व शिर्क में मुब्तला हो जायें और उसका नतीजा जहन्नम है। इसलिये फ़रमाया गया कि ये लोग जहन्नम की तरफ़ दावत देते हैं और अल्लाह तआ़ला इनसान को जन्नत और मग़फ़िरत (बख़्शिश) की तरफ़ दावत देता है और साफ़-साफ़ अपने अहकाम बयान फ़रमा देता है, ताकि लोग नसीहत पर अ़मल करें। इस जगह चन्द बातें ध्यान देने के क़ाबिल हैं:

अव्वल यह कि इस आयत में लफ़्ज़ **मुश्रिक** से अगर मुतलक़ तौर पर **ग़ैर-मुस्लिम** मुराद हों तो क़ुरआने करीम की एक दूसरी आयत की बिना पर **अहले-किताब** (यहूदी व ईसाईयों) की ग़ैर-मुस्लिम औरतें इस हुक्म से अलग हैं, जिसमें इरशाद फ़रमाया गया है:

وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ. (سورة ٥:٥)

और अगर मुश्रिक से ख़ास वे ग़ैर-मुस्लिम मुराद हैं जो अहले किताब नहीं तो यह आयत अपनी जगह उन तमाम ग़ैर-मुस्लिमों को आ़म है जो किसी पैग़म्बर और आसमानी किताब पर ईमान नहीं रखते।

दूसरी बात क़ाबिले ग़ौर यह है कि मुस्लिम व काफ़िर के बीच दाम्पत्य (मियाँ-बीवी) के ताल्लुक़ात को हराम क़रार देने की जो वजह क़ुरआने करीम में बयान फ़रमाई गई है कि उनके साथ ऐसे क़रीबी ताल्लुक़ात कुफ़्र व शिर्क में मुब्तला हो जाने का सबब बन सकते हैं, यह बात तो बज़ाहिर तमाम ग़ैर-मुस्लिम फ़िर्क़ों में बराबर है, फिर अहले किताब की औरतों को इस हुक्म से अलग करने की क्या वजह है।

जवाब ज़ाहिर है कि अहले किताब का इख़्तिलाफ़ इस्लाम के साथ दूसरे ग़ैर-मुस्लिमों की तुलना में कम और हल्का है, क्योंकि इस्लामी अ़क़ीदों के तीन सुतून हैं- तौहीद, आख़िरत, रिसालत। इनमें से आख़िरत के अ़क़ीदे में तो अहले किताब यहूदी व ईसाई भी अपने असल मज़हब के एतिबार से मुसलमानों के साथ मुत्तफ़िक़ हैं, इसी तरह ख़ुदा के साथ किसी को शरीक ठहराना ख़ुद उनके असल मज़हब में भी कुफ़्र है, यह दूसरी बात है कि वे हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की अ़ज़मत व मुहब्बत में

हद से ज़्यादा बढ़ने में शिर्क तक जा पहुँचे।

अब बुनियादी इख़्तिलाफ़ सिर्फ़ यह रह जाता है कि वे नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को रसूल नहीं मानते और इस्लाम में यह अ़क़ीदा भी बुनियादी अ़क़ीदा है, इसके बग़ैर कोई इनसान मोमिन नहीं हो सकता। बहरहाल दूसरे ग़ैर-मुस्लिम फ़िर्क़ों के मुक़ाबले में अहले किताब का इख़्तिलाफ़ हल्का और कम है, इसलिये इसमें ख़राबी और बिगाड़ का ख़तरा ज़्यादा नहीं।

तीसरी बात क़ाबिले ग़ौर यह है कि जब अहले किताब का इख़्तिलाफ़ हल्का क़रार देकर उनकी औरतों से मुसलमान का निकाह जायज़ हुआ तो इसके उलट मुसलमान औरतों का निकाह भी ग़ैर-मुस्लिम अहले किताब से जायज़ हो जाना चाहिये, मगर ज़रा से ग़ौर करने से फ़र्क़ वाज़ेह हो जाता है कि औरत कुछ तो फ़ितरी तौर पर कमज़ोर है और फिर शौहर उस पर हाकिम और निगराँ बनाया गया है। उसके अ़क़ीदे व नज़रियात से औरत का प्रभावित हो जाना दूर की और बड़ी बात नहीं, इसलिये अगर मुसलमान औरत ग़ैर-मुस्लिम किताबी के निकाह में रहे तो उसके अ़क़ीदे ख़राब हो जाने का प्रबल अन्देशा है, इसके विपरीत ग़ैर-मुस्लिम किताबी औरत मुसलमान के निकाह में रहे तो उसके ख़्यालात का असर शौहर पर पड़ना उसूलन दूर की चीज़ है, कोई बेउसूली और हद से निकलने का शिकार हो जाये तो यह उसका अपना क़सूर है।

चौथी बात क़ाबिले ग़ौर यह है कि मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ात में जो कुछ असर होता है वह दोनों तरफ़ बराबर तौर पर होता है, इसलिये जैसे यह अन्देशा है कि मुसलमान के अ़क़ीदे ग़ैर-मुस्लिम से प्रभावित हो जायें इसी तरह यह भी तो अन्देशा है कि मामला इसके उलट हो, ग़ैर-मुस्लिम के अ़क़ीदे मुसलमान से मुतास्सिर हों और वही इस्लाम क़ुबूल कर ले, तो इसका तक़ाज़ा यह है कि मुस्लिम व ग़ैर-मुस्लिम के दाम्पत्य ताल्लुक़ात को ममनू (वर्जित) न किया जाये।

लेकिन यहाँ हिक्मत की बात यह है कि जब किसी चीज़ में एक नफ़े की उम्मीद भी हो और किसी नुक़सान का ख़तरा भी हो तो सही अ़क़्ल का तक़ाज़ा यह है कि नुक़सान से बचने का एहतिमाम नफ़े की फ़िक्र से ज़्यादा ज़रूरी है। फ़ारसी ज़बान का एक हकीमाना मक़ूला मशहूर है कि:

"अ़क़्लमन्द तिरयाक़ ब-यक़ीन व ज़हर बगुमाँ नख़ुरद्" (यानी कोई अ़क़्लमन्द शख़्स इस यक़ीन पर भी ज़हर को खाने की हिम्मत नहीं करता कि उसका यक़ीनी इलाज तिरयाक़ उसके पास है) इसलिये इस नफ़े की उम्मीद को नज़र-अन्दाज़ किया गया कि शायद वह ग़ैर-मुस्लिम मुतास्सिर होकर इस्लाम क़ुबूल कर ले, एहतिमाम इसका किया गया कि मुसलमान मुतास्सिर होकर कुफ़्र में मुब्तला न हो जाये।

पाँचवीं बात क़ाबिले ग़ौर यह है कि अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) की औरतों से मुसलमान मर्दों को निकाह की इजाज़त के भी मायने यह हैं कि अगर निकाह कर लिया जाये तो निकाह सही हो जायेगा, औलाद का नसब साबित होगा, लेकिन हदीस की रिवायतें इस पर सुबूत हैं कि यह निकाह भी पसन्दीदा नहीं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मुसलमान को अपने निकाह के लिये दीनदार नेक औरत तलाश करनी चाहिये ताकि ख़ुद उसके लिये भी दीन में मददगार साबित हो और उसकी औलाद को भी दीनदार होने का मौक़ा मयस्सर आये। और जब ग़ैर-दीनदार मुसलमान औरत से निकाह पसन्द नहीं किया गया तो किसी ग़ैर-मुस्लिम से कैसे पसन्द

किया जाता, यही वजह है कि हज़रत फ़ारूक़ आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु को जब ख़बर पहुँची कि इराक़ व शाम के मुसलमानों में कुछ ऐसे निकाहों की कसरत होने लगी तो अपने फ़रमान के द्वारा उनको इससे रोक दिया, और इस पर तवज्जोह दिलाई गई कि यह दाम्पत्य ताल्लुक़ दीनी एतिबार से भी मुस्लिम घरानों के लिये ख़राबी का सबब हैं और सियासी एतिबार से भी।

(किताबुल-आसार, इमाम मुहम्मद रह.)

और आज के ग़ैर-मुस्लिम अहले किताब (यहूदी व ईसाई) और उनके सियासी मक्र व फ़रेब और सियासी शादियाँ और मुस्लिम घरानों में दाख़िल होकर उनको अपनी तरफ़ माईल करना और उनके राज़ हासिल करना वग़ैरह, जिसका इक़रार ख़ुद कुछ ईसाई लेखकों की किताबों में मेजर जनरल अकबर की किताब "हदीसे दिफ़ा" में इसकी कुछ तफ़सीलात हवालों के साथ बयान की गयी हैं।

ऐसा मालूम होता है कि फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु की दूर तक देखने वाली नज़रें इन वाक़िआत को देख रही थीं, ख़ुसूसन इस ज़माने के यूरोप के अक्सर वे लोग जो ईसाई या यहूदी कहलाये जाते हैं, और जनसंख्या के रजिस्टरों में उनकी नागरिकता ईसाई या यहूदी लिखी जाती है अगर उनके हालात की तहक़ीक़ की जाये तो उनमें अधिकतर ऐसे लोग मिलेंगे जिनको ईसाईयत और यहूदियत से कोई ताल्लुक़ नहीं, वे बिल्कुल पक्के बेदीन हैं, न ईसा अ़लैहिस्सलाम को मानते हैं न इन्जील को, न मूसा अ़लैहिस्सलाम पर ईमान है न तौरात पर, न ख़ुदा तआ़ला पर न आख़िरत पर। ज़ाहिर है कि निकाह के हलाल होने का क़ुरआनी हुक्म ऐसे लोगों को शामिल नहीं, उनकी औ़रतों से निकाह क़तई हराम है, ऐसे लोग ज़ाहिर है कि क़ुरआनी आयत के इस ख़ास हुक्म और रियायत में शामिल नहीं होते:

وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ.

ग़ैर-मुस्लिमों की तरह उनकी औ़रतों के साथ निकाह भी क़तई हराम है।

وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْمَحِيْضِ قُلْ هُوَ اَذًى فَاعْتَزِلُوا النِّسَآءَ فِي الْمَحِيْضِ وَلَا تَقْرَبُوْهُنَّ حَتّٰى يَطْهُرْنَ فَاِذَا تَطَهَّرْنَ فَاْتُوْهُنَّ مِنْ حَيْثُ اَمَرَكُمُ اللّٰهُ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ التَّوَّابِيْنَ وَيُحِبُّ الْمُتَطَهِّرِيْنَ ۝ نِسَآؤُكُمْ حَرْثٌ لَّكُمْ فَاْتُوْا حَرْثَكُمْ اَنّٰى شِئْتُمْ وَقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ مُّلٰقُوْهُ وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ ۝

व यस्अलून-क अ़निल्-महीज़ि क़ुल् हु-व अ-ज़न् फ़अ़्तज़िलुन्निसा-अ फ़िल्-महीज़ि वला तक़्रबूहुन्-न हत्ता यत्हुर्-न फ़-इज़ा त-तह्हर्-न	और तुझसे पूछते हैं हुक्म हैज़ (औ़रतों को आने वाली माहवारी) का, कह दे वह गन्दगी है सो तुम अलग रहो औ़रतों से हैज़ (माहवारी) के वक़्त, और नज़दीक न होओ उनके जब तक पाक न होवें। फिर जब ख़ूब

फ़अ्तूहुन्-न मिन् हैसु अ-म-रकुमुल्लाहु, इन्नल्ला-ह युहिब्बुत्-तव्वाबी-न व युहिब्बुल् मु-त-तह्हिरीन (222) निसाउकुम् हर्सुल्-लकुम् फ़अ्तू हर्सकुम् अन्ना शिअ्तुम् व क़द्दिमू लि-अन्फ़ुसिकुम्, वत्तक़ुल्ला-ह वअ्लमू अन्नकुम् मुलाक़ूहु, व बश्शिरिल्-मुअ्मिनीन (223)	पाक हो जायें तो जाओ उनके पास जहाँ से हुक्म दिया तुमको अल्लाह ने, बेशक अल्लाह को पसन्द आते हैं तौबा करने वाले और पसन्द आते हैं गन्दगी से बचने वाले। (222) तुम्हारी औरतें तुम्हारी खेती हैं, सो जाओ अपनी खेती में जहाँ से चाहो और आगे की तदबीर करो अपने वास्ते और डरते रहो अल्लाह से, और जान रखो कि तुमको उससे मिलना है, और ख़ुशख़बरी सुना ईमान वालों को। (223)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 19- माहवारी में सोहबत की हुर्मत और पाकी की शर्तें

وَيَسْئَلُوْنَكَ عَنِ الْمَحِيْضِ (الى قوله) وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ٥

और लोग आप से माहवारी (की हालत में सोहबत वग़ैरह करने) का हुक्म पूछते हैं, आप फ़रमा दीजिये कि वह (माहवारी) गन्दगी की चीज़ है, तो माहवारी की हालत में औरतों (के साथ सोहबत करने) से अलग रहा करो, और (इस हालत में) उनसे निकटता मत करो जब तक वे (माहवारी से) पाक न हो जायें। फिर जब वे (औरतें) अच्छी तरह पाक हो जायें (कि नापाकी का शक व शुब्हा न रहे) तो उनके पास आओ-जाओ (यानी उनसे सोहबत करो) जिस जगह से तुमको ख़ुदा तआ़ला ने इजाज़त दी है (यानी आगे से), यक़ीनन अल्लाह तआ़ला मुहब्बत रखते हैं तौबा करने वालों से (जैसे इत्तिफ़ाक़न या बेएहतियाती से माहवारी की हालत में सोहबत कर बैठा, फिर सचेत होकर तौबा कर ली) और मुहब्बत रखते हैं पाक-साफ़ रहने वालों से (जो माहवारी की हालत में सोहबत करने से और दूसरी मना की गयी बातों से बचते हैं, और पाकी की हालत में इजाज़त सोहबत की देना फिर इस पाबन्दी के साथ इजाज़त देना कि आगे के मक़ाम में सोहबत हो, इसलिये है कि) तुम्हारी बीवियाँ तुम्हारे (लिए बतौर) खेत (के) हैं, (जिसमें नुत्फ़ा बीज के तौर पर और बच्चे की पैदावार के तौर पर है) सो अपने खेत में जिस तरफ़ से होकर चाहो आओ, (और जिस तरह खेतों में इजाज़त है इसी तरह बीवियों के पास पाकी की हालत में हर तरफ़ से आने की इजाज़त है, चाहे करवट से हो या पीछे से या आगे बैठकर हो या ऊपर नीचे लेटकर हो या जिस मुद्रा से हो, मगर आना हो हर हाल में खेत के

अन्दर, कि वह ख़ास आगे का मक़ाम है, क्योंकि पीछे का मौक़ा खेत के जैसा नहीं, उसमें सोहबत न हो। और इन लज़्ज़तों में ऐसे मश्ग़ूल मत हो जाओ कि आख़िरत ही को भूल जाओ बल्कि) और आईन्दा के लिए (भी) अपने लिए कुछ (नेक आमाल) करते रहो, और अल्लाह तआ़ला से (हर हाल में) डरते रहो और यह यक़ीन रखो कि बेशक तुम अल्लाह तआ़ला के सामने पेश होने वाले हो, और (ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) ऐसे ईमान वालों को (जो नेक काम करें, ख़ुदा से डरें, ख़ुदा तआ़ला के सामने जाने का यक़ीन रखें) ख़ुशी की ख़बर सुना दीजिए (कि उनको आख़िरत में हर तरह की नेमतें मिलेंगी)।

وَلَا تَجْعَلُوا اللّٰهَ عُرْضَةً لِّاَيْمَانِكُمْ اَنْ تَبَرُّوْا وَتَتَّقُوْا وَتُصْلِحُوْا بَيْنَ النَّاسِ ۭ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝

व ला तज्अ़लुल्ला-ह अ़ुर्-ज़तल्-लिऐमानिकुम् अन् तबर्रू व तत्तक़ू व तुस्लिहू बैनन्नासि, वल्लाहु समीअ़ुन् अ़लीम (224)	और मत बनाओ अल्लाह के नाम को निशाना अपनी क़समें खाने के लिये कि सुलूक करने से और परहेज़गारी से और लोगों में सुलह कराने से बच जाओ, और अल्लाह सब कुछ सुनता जानता है। (224)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 20- नेक काम न करने की क़सम की मनाही

और अल्लाह तआ़ला को अपनी क़समों के ज़रिये से इन उमूर (मामलों और बातों) का हिजाब मत बनाओ कि तुम नेकी के और तक़वे के और मख़्लूक़ के दरमियान सुधार के काम करो (यानी अल्लाह के नाम की यह क़सम न खाओ कि हम ये नेक काम न करेंगे), और अल्लाह तआ़ला सब कुछ सुनते जानते हैं (तो ज़बान संभाल कर बात करो और दिल में बुरे ख़्यालात मत लाओ)।

لَا يُؤَاخِذُكُمُ اللّٰهُ بِاللَّغْوِ فِيْٓ اَيْمَانِكُمْ وَلٰكِنْ يُّؤَاخِذُكُمْ بِمَا كَسَبَتْ قُلُوْبُكُمْ ۭ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ۝

ला युआख़िज़ुकुमुल्लाहु बिल्लग़्वि फ़ी ऐमानिकुम् व लाकिंय्युआख़िज़ुकुम् बिमा क-सबत् क़ुलूबुकुम, वल्लाहु ग़फ़ूरुन् हलीम (225)	नहीं पकड़ता तुमको अल्लाह बेहूदा (बेकार की) क़समों पर तुम्हारी, लेकिन पकड़ता है तुमको उन क़समों पर जिनका इरादा किया तुम्हारे दिलों ने, और अल्लाह बख़्शने वाला संयम बरतने वाला है। (225)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 21- झूठी क़सम खाने का हुक्म

अल्लाह तआ़ला तुम पर आख़िरत में पकड़ न फ़रमाएँगे तुम्हारी ऐसी बेहूदा क़समों पर (जिसमें बिना इरादे के झूठ बोला गया) लेकिन पकड़ फ़रमाएँगे उस झूठी क़सम पर जिसमें तुम्हारे दिलों ने (झूठ बोलने का) इरादा किया था, और अल्लाह तआ़ला बख़्शने वाले हैं (कि ऐसी बेहूदा क़सम पर पकड़ न फ़रमाई) हलीम "यानी बरदाश्त करने वाले और नर्मी बरतने वाले" हैं (कि इरादे से झूठी क़सम खाने की सज़ा में आख़िरत तक की मोहलत दी)।

لِلَّذِيْنَ يُؤْلُوْنَ مِنْ نِّسَآئِهِمْ تَرَبُّصُ اَرْبَعَةِ اَشْهُرٍ فَاِنْ فَآءُوْ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝ وَاِنْ عَزَمُوا الطَّلَاقَ فَاِنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝

लिल्लज़ी-न युअ्लू-न मिन्निसा-इहिम् तरब्बुसु अर्ब-अ़ति अश्हुरिन् फ़-इन् फ़ाऊ फ़-इन्नल्ला-ह ग़फ़ूरुर्रहीम (226) व इन् अ़-ज़मुत्तला-क़ फ़-इन्नल्ला-ह समीअुन् अ़लीम (227)	जो लोग क़सम खा लेते हैं अपनी औरतों के पास जाने से, उनके लिये मोहलत है चार महीने की, फिर अगर आपस में मिल गये तो अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है। (226) और अगर ठहरा लिया (तय कर लिया) छोड़ देने को तो बेशक अल्लाह सुनने वाला जानने वाला है। (227)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 22- ईला का हुक्म

لِلَّذِيْنَ يُؤْلُوْنَ (الى قوله) سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝

यानी जो लोग (बिना किसी मुद्दत की क़ैद लगाये या चार महीने या ज़ायद मुद्दत के लिये) क़सम खा बैठते हैं अपनी बीवियों के पास जाने की, उनके लिए चार महीने तक की मोहलत है। सो अगर (उन चार महीनों के अन्दर) ये लोग (अपनी क़सम को तोड़कर औ़रत की तरफ़) रुजू कर लें (तब तो निकाह बाक़ी रहेगा और) अल्लाह तआ़ला (ऐसी क़सम को तोड़ने का गुनाह कफ़्फ़ारे से) माफ़ कर देंगे (और चूँकि अब बीवी के हुक़ूक़ अदा करने लगा इसलिये उस पर) रहमत फ़रमा देंगे। और अगर बिल्कुल छोड़ ही देने का पुख़्ता इरादा कर लिया है (और इसलिये चार माह के अन्दर क़सम तोड़कर रुजू नहीं किया) तो (चार महीने गुज़रते ही क़तई तलाक़ पड़ जायेंगी और) अल्लाह तआ़ला (उनकी क़सम को भी) सुनते हैं (और उनके इस पुख़्ता इरादे को भी) जानते हैं (इसलिये इसके बारे में

मुनासिब हुक्म इरशाद फ़रमाया)।

وَالْمُطَلَّقٰتُ يَتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ ثَلٰثَةَ قُرُوْٓءٍ ؕ وَلَا يَحِلُّ لَهُنَّ اَنْ يَّكْتُمْنَ مَا خَلَقَ اللّٰهُ فِيْٓ اَرْحَامِهِنَّ اِنْ كُنَّ يُؤْمِنَّ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ وَبُعُوْلَتُهُنَّ اَحَقُّ بِرَدِّهِنَّ فِيْ ذٰلِكَ اِنْ اَرَادُوْٓا اِصْلَاحًا ؕ وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِيْ عَلَيْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۪ وَلِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ ؕ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ

वल्-मुतल्लक़ातु य-तरब्बस्-न बि-अन्फ़ुसिहिन्-न सलास-त क़ुरूइन्, व ला यहिल्लु लहुन्-न अंय्यक्तुम्-न मा ख़-लक़ल्लाहु फ़ी अर्हामिहिन्-न इन् कुन्-न युअ्मिन्-न बिल्लाहि वल्यौमिल्-आख़िरि, व बुअू-लतुहुन्-न अहक़्क़ु बि-रद्दिहिन्-न फ़ी ज़ालि-क इन् अरादू इस्लाहन्, व लहुन्-न मिस्लुल्लज़ी अ़लैहिन्-न बिल्मअ़्रूफ़ि व लिर्रिजालि अ़लैहिन्-न द-र-जतुन्, वल्लाहु अ़ज़ीज़ुन् हकीम (228) ❁	और तलाक़ वाली औरतें इन्तिज़ार में रखें अपने आपको तीन हैज़ (माहवारी) तक, और उनको हलाल नहीं कि छुपा रखें जो पैदा किया अल्लाह ने उनके पेट में अगर वे ईमान रखती हैं अल्लाह पर और पिछले (यानी क़ियामत के) दिन पर, और उनके शौहर हक़ रखते हैं उनके लौटा लेने का उस मुद्दत में अगर चाहें सुलूक से रहना, और औरतों का भी हक़ है जैसा कि मर्दों का उनपर हक़ है दस्तूर के मुवाफ़िक़, और मर्दों को औरतों पर फ़ज़ीलत है, और अल्लाह ज़बरदस्त है तदबीर वाला। (228) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 23, 24- तलाक़ पाई हुई औरत की इद्दत और लौटा लेने की मुद्दत का बयान

وَالْمُطَلَّقٰتُ يَتَرَبَّصْنَ (الى قوله) اِنْ اَرَادُوْٓا اِصْلَاحًا.

और तलाक़ दी हुई औरतें (जिनमें इतनी सिफ़तें हों- शौहर ने उनसे सोहबत या पूरी तन्हाई की हो, उनको माहवारी आती हो, आज़ाद हों, यानी शरई क़ायदे से बाँदी न हों) अपने आपको (निकाह से) रोके रखें तीन हैज़ (ख़त्म होने) तक, (और इसको इद्दत कहते हैं) और उन औरतों को यह बात हलाल नहीं कि ख़ुदा तआ़ला ने जो कुछ उनके रहम (बच्चेदानी) में पैदा किया हो (चाहे गर्भ हो या

हैज़) उसको छुपाएँ (क्योंकि उसके छुपाने से इद्दत का हिसाब ग़लत हो जायेगा) अगर वे औरतें अल्लाह तआला पर और क़ियामत के दिन पर यक़ीन रखती हैं (इस वजह से कि इस यक़ीन का तक़ाज़ा यह है कि अल्लाह तआला से डरें कि क़ियामत में नाफ़रमानी पर सज़ा न हो जाये) और उन औरतों के शौहर (जबकि उनको तलाक़े रजई मिली हो जिसका बयान आगे आयेगा) उनको (बिना दोबारा निकाह किए) फिर लौटा लेने का हक़ रखते हैं, उस इद्दत के अन्दर (और इस लौटा लेने को रजअ़त कहते हैं) शर्त यह है कि (रजअ़त करने से) इस्लाह "यानी भलाई और सुधार" का इरादा रखते हों, (वरना तंग करने के लिये रजअ़त करना बेमक़सद है, अगरचे रजअ़त तो हो ही जायेगी) और (यह हुक्म इस्लाह का इसलिये किया गया कि) औरतों के भी हुक़ूक़ हैं (मर्दों पर) जो कि (वाजिब होने के एतिबार से) उन्हीं के हुक़ूक़ की तरह हैं जो उन औरतों पर हैं (मर्दों के, कि उनको) (शरई) क़ायदे के मुवाफ़िक़ (अदा किया जाये), और (इतनी बात ज़रूर है कि) मर्दों का उनके मुक़ाबले में कुछ दर्जा बढ़ा हुआ है (इसलिये उनके हुक़ूक़ का अन्दाज़ औरतों के हुक़ूक़ के अन्दाज़ से बढ़ा हुआ है) और अल्लाह तआला ज़बरदस्त (हाकिम) हैं, (और) हकीम (भी) हैं।

आयत से संबन्धित मसाईल 'बयानुल-क़ुरआन' से

1. अगर जिन्सी इच्छा की ज़्यादती से माहवारी की हालत में सोहबत हो गई तो ख़ूब तौबा करना वाजिब है और कुछ ख़ैर-ख़ैरात भी दे दे तो ज़्यादा बेहतर है।

2. पीछे के मौक़े (पाख़ाने की जगह) में अपनी बीवी से भी सोहबत करना हराम है।

3. लग़्व (बेकार और बेहूदा) क़सम के दो मायने हैं- एक तो यह कि किसी गुज़री हुई बात पर झूठी क़सम बिना इरादे के निकल गई, या निकली तो इरादे से मगर उसको अपने गुमान में सही समझता है, जैसे अपने इल्म व गुमान के मुताबिक़ क़सम खा बैठा कि ज़ैद आ गया है, और वास्तव में वह आया न था, या भविष्य की किसी बात पर इस तरह क़सम निकल गई कि कहना चाहता था कुछ और बेइरादा मुँह से क़सम निकल गई, इसमें गुनाह नहीं होता, और इसको इसी वास्ते बेकार और बेहूदा कहते हैं, आख़िरत में इस पर पकड़ नहीं होगी। और इसके मुक़ाबले में जिस पर पकड़ और पूछ होने का ज़िक्र फ़रमाया है वह यह क़सम है जो इरादे से झूठी समझकर खाई हो, उसको ग़मूस कहते हैं उसमें गुनाह होता है मगर इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक कफ़्फ़ारा नहीं आता, और बेकार जो ऊपर बयान हुए मायनों में हो उस पर तो और भी कफ़्फ़ारा नहीं, इस आयत में उन्हीं दोनों का बयान है जिनमें कफ़्फ़ारा नहीं।

दूसरे मायने लग़्व (बेकार) के यह हैं जिस पर कफ़्फ़ारा न हो और उसको बेकार इसलिये कहेंगे कि दुनिया की पकड़ यानी कफ़्फ़ारा उस पर नहीं आता, इस मायने के लिहाज़ से लफ़्ज़ 'लग़्व' ग़मूस को भी शामिल है कि उसमें अगरचे गुनाह होता है लेकिन कफ़्फ़ारा नहीं आता। इसके मुक़ाबले में वह क़सम जिस पर कफ़्फ़ारा भी आता है 'मुन्अ़क़िदा' कहलाती है, उसकी हक़ीक़त यह है कि जान-बूझकर यूँ क़सम खाये कि मैं फ़ुलाँ काम करूँगा या फ़ुलाँ काम न करूँगा, इसमें क़सम के ख़िलाफ़ करने से कफ़्फ़ारा लाज़िम आता है।

4. अगर कोई क़सम खा ले कि अपनी बीवी से सोहबत न करूँगा, इसकी चार सूरतें हैं- एक यह

कि कोई मुद्दत निर्धारित न करे। दूसरे यह कि चार महीने की मुद्दत की क़ैद लगा दे। तीसरे यह कि चार माह से ज़्यादा की मुद्दत की क़ैद लगा दे। चौथे यह कि चार माह से कम की मुद्दत का नाम ले। पस पहली, दूसरी और तीसरी सूरत को शरीअ़त में ईला कहते हैं और इसका हुक्म यह है कि अगर चार माह के अन्दर अपनी क़सम तोड़ डाले और बीवी के पास चला आये तो क़सम का कफ़्फ़ारा दे और निकाह बाक़ी है, और अगर चार माह गुज़र गये और क़सम न तोड़ी तो उस औरत पर क़तई तलाक़ पड़ गई यानी बिना निकाह के रुजू करना दुरुस्त नहीं रहा, अलबत्ता अगर दोनों रज़ामन्दी से फिर निकाह कर लें तो दुरुस्त है, हलाले की ज़रूरत न होगी। और चौथी सूरत का हुक्म यह है कि अगर क़सम तोड़े तो कफ़्फ़ारा लाज़िम होगा और अगर क़सम पूरी कर ली तब भी निकाह बाक़ी है।

(तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

मआ़रिफ़ व मसाईल

मर्द व औरत के फ़र्क़ और मियाँ-बीवी के आपसी हुक़ूक़ और दर्जों पर एक जामे आयत

وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِىْ عَلَيْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ (الاٰية)

यह आयत औरतों और मर्दों के आपसी हुक़ूक़ व ज़िम्मेदारियों और उनके दर्जों के बयान में एक शरई क़ानून की हैसियत रखती है। इस आयत से पहले और इसके बाद कई रुकूअ़ तक इसी ज़ाब्ते (क़ानून) की अहम जुज़ईयात का बयान हुआ है।

इस्लाम में औरत का मर्तबा

इस जगह मुनासिब मालूम होता है कि पहले औरत के उस मर्तबे और मक़ाम का कुछ ख़ुलासा और वज़ाहत कर दी जाये जो इस्लाम ने उसे अ़ता किया है, जिसको समझ लेने के बाद यक़ीनी तौर पर इसको मानना पड़ता है कि एक इन्साफ़ भरे और सन्तुलित निज़ाम का तक़ाज़ा यही था, और यही वह मक़ाम है जिससे ऊँच-नीच या इधर-उधर हटना इनसान के दीन व दुनिया के लिये ज़बरदस्त ख़तरा बन जाता है।

ग़ौर किया जाये तो दुनिया में दो चीज़ें ऐसी होती हैं जो इस आ़लम की बक़ा और तामीर व तरक़्क़ी में बुनियाद और सुतून का दर्जा रखती हैं- एक औरत, दूसरे दौलत। लेकिन तस्वीर का दूसरा रुख़ देखा जाये तो यही दोनों चीज़ें दुनिया में ख़राबी व बिगाड़, ख़ून बहाने और तरह-तरह के फ़ितनों का सबब भी हैं। और ग़ौर करने से इस नतीजे पर पहुँचना कुछ दुश्वार नहीं कि ये दोनों चीज़ें अपनी असल में दुनिया की तामीर व तरक़्क़ी और उसकी रौनक़ का ज़रिया हैं, लेकिन जब कहीं इनको अपने असली मक़ाम और जगह से इधर-उधर कर दिया जाता है तो यही चीज़ें दुनिया में सबसे बड़ा ज़लज़ला बन जाती हैं।

क़ुरआन ने इनसान को ज़िन्दगी का निज़ाम (सिस्टम) दिया है, इसमें इन दोनों चीज़ों को अपने

अपने सही मक़ाम पर ऐसा रखा गया है कि इनके फ़ायदे व फल ज़्यादा से ज़्यादा हासिल हों, और फ़ितना व फ़साद का नाम न रहे। दौलत का सही मक़ाम, उसके हासिल करने के स्रोत और साधन और ख़र्च करने के तरीक़े और दौलत की तक़सीम का न्याय पूर्ण सिस्टम यह एक मुस्तक़िल इल्म है जिसको "इस्लाम की आर्थिक व्यवस्था" कहा जा सकता है, इसका बयान इन्शा-अल्लाह किसी और मौक़े पर होगा। अहक़र का रिसाला "तक़सीमे दौलत" भी ज़रूरी इशारों का काम दे सकता है।

इस वक़्त औरत और उसके हुक़ूक़ व ज़िम्मेदारियों का ज़िक्र है, इसके बारे में मज़कूरा आयत में यह इरशाद फ़रमाया गया है कि जिस तरह औरतों पर मर्दों के हुक़ूक़ हैं जिनकी अदायेगी ज़रूरी है इसी तरह मर्दों पर औरतों के हुक़ूक़ हैं जिनका अदा करना ज़रूरी है। हाँ इतना फ़र्क़ ज़रूर है कि मर्दों का दर्जा औरतों से बढ़ा हुआ है, और इसी के क़रीब-क़रीब मज़मून सूरः निसा की आयत में इस तरह आया है:

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ وَّبِمَآ اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ. (٤:٣٤)

"यानी मर्द हाकिम हैं औरतों पर इस वास्ते कि बड़ाई अल्लाह ने दी एक को एक पर और इस वास्ते कि ख़र्च किये उन्होंने अपने माल।"

इस्लाम से पहले समाज में औरत का दर्जा

इस्लाम से पहले जाहिलीयत के ज़माने में तमाम दुनिया की क़ौमों में जारी था कि औरत की हैसियत घरेलू इस्तेमाल की चीज़ों से ज़्यादा न थी। चौपायों (जानवरों) की तरह उसकी ख़रीद व फ़रोख़्त होती थी, उसको अपनी शादी-ब्याह में किसी क़िस्म का कोई इख़्तियार न था, उसके वली व सरपरस्त जिसके हवाले कर देते वहाँ जाना पड़ता था, औरत को अपने रिश्तेदारों की मीरास में से कोई हिस्सा न मिलता था बल्कि वह ख़ुद घरेलू चीज़ों की तरह मीरास का माल समझी जाती थी। वह मर्दों की मिल्कियत तसव्वुर की जाती थी, उसकी मिल्कियत किसी चीज़ पर न थी, और जो चीज़ें औरत की मिल्कियत कहलाती थीं उनमें उसको मर्द की इजाज़त के बग़ैर किसी क़िस्म के तसर्रुफ़ (इख़्तियार चलाने) का कोई अधिकार न था, हाँ उसके शौहर को हर क़िस्म का इख़्तियार था कि उसके माल को जहाँ चाहे और जिस तरह चाहे ख़र्च कर डाले, उसको पूछने का भी कोई हक़ न था यहाँ तक कि यूरोप के वे मुल्क जो आजकल दुनिया के सबसे ज़्यादा सभ्य देश समझे जाते हैं उनमें कुछ लोग इस हद को पहुँचे हुए थे कि औरत के इनसान होने को भी तस्लीम न करते थे।

औरत के लिये दीन व मज़हब में भी कोई हिस्सा न था, न उसको इबादत के क़ाबिल समझा जाता था न जन्नत के। रोमा की कुछ मज्लिसों में आपसी मश्विरे से यह तय किया गया था कि वह एक नापाक जानवर है जिसमें रूह नहीं। आम तौर पर बाप के लिये लड़की क़त्ल बल्कि ज़िन्दा दफ़ना देना जायज़ समझा जाता था, बल्कि यह अमल बाप के लिये इज़्ज़त की निशानी और शराफ़त का मेयार तसव्वुर किया जाता था। कुछ लोगों का यह ख़्याल था कि औरत को कोई भी क़त्ल कर दे न तो उस पर क़िसास (ख़ून के बदले ख़ून) वाजिब है न ख़ूनबहा (ख़ून का जुर्माना), और अगर शौहर मर जाये तो बीवी को भी उसकी लाश के साथ जलाकर सती कर दिया जाता था। रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की पैदाईश के बाद और आपकी नुबुव्वत से पहले सन् 586 हिजरी में

फ़्राँस ने औरत पर यह एहसान किया कि बहुत से मतभेदों के बाद यह क़रारदाद (परस्ताव) पास की कि औरत है तो इनसान मगर वह सिर्फ़ मर्द की ख़िदमत के लिये पैदा की गई है।

ग़र्ज़ यह कि पूरी दुनिया और इसमें बसने वाली तमाम क़ौमों और धर्मों ने औरत के साथ यह बर्ताव किया हुआ था जिसको सुनकर बदन के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस बेचारी मख़्लूक़ के लिये न कहीं अक़्ल व दानिश से काम लिया जाता था न अ़दल व इन्साफ़ से।

क़ुरबान जाईये रहमतुल्-लिल्आ़लमीन सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और आपके लाये हुए दीने हक़ के, जिसने दुनिया की आँखें खोलीं, इनसान को इनसान की क़द्र करना सिखलाया, अ़दल व इन्साफ़ का क़ानून जारी किया, औरतों के हुक़ूक़ मर्दों पर ऐसे लाज़िम किये जैसे औरतों पर मर्दों के हुक़ूक़ हैं। उसको आज़ाद व ख़ुदमुख़्तार बनाया, वह अपनी जान व माल की ऐसी ही मालिक क़रार दी गई जैसे मर्द, कोई शख़्स चाहे बाप-दादा ही हो बालिग़ औरत को किसी शख़्स के साथ निकाह करने पर मजबूर नहीं कर सकता, और अगर बिना उसकी इजाज़त के निकाह कर दिया जाये तो वह उसकी इजाज़त पर मौक़ूफ़ (टिका) रहता है, अगर नामन्ज़ूर कर दे तो बातिल (ख़त्म) हो जाता है। उसके माल में किसी मर्द को बग़ैर उसकी मर्ज़ी व इजाज़त के किसी तसर्रुफ़ (इख़्तियार चलाने) का कोई हक़ नहीं, शौहर के मरने या तलाक़ देने के बाद वह ख़ुदमुख़्तार (अपनी मर्ज़ी की मालिक) है, कोई उस पर ज़बरदस्ती नहीं कर सकता। अपने रिश्तेदारों की मीरास में उसको भी ऐसा ही हिस्सा मिलता है जैसे लड़कों को, उस पर ख़र्च करने और उसके राज़ी रखने को शरीअ़ते मुहम्मदिया ने एक इबादत क़रार दिया। शौहर उसके ज़रूरी हुक़ूक़ अदा न करे तो वह इस्लामी अ़दालत के ज़रिये उसको हुक़ूक़ अदा करने पर वरना तलाक़ पर मजबूर कर सकती है।

औरतों को मर्दों की सरदारी और निगरानी से बिल्कुल आज़ाद कर देना भी दुनिया के फ़साद का बहुत बड़ा सबब है

औरत को उसके मुनासिब हुक़ूक़ न देना ज़ुल्म व ज़्यादती और सख़्त दिली व बदबख़्ती थी जिसको इस्लाम ने मिटाया है। इसी तरह उनको खुले मुहार छोड़ देना और मर्दों की निगरानी व सरपरस्ती से आज़ाद कर देना, उसको अपने गुज़ारे और रोज़ी का ख़ुद कफ़ील (आत्मनिर्भर) बनाना भी उसकी हक़-तल्फ़ी और बरबादी है। न उसकी बनावट इसको सहन कर सकती है और न घरेलू कामों की ज़िम्मेदारी और औलाद के पालन-पोषण का अ़ज़ीमुश्शान काम जो फ़ितरी तौर पर उसके सुपुर्द है, वह इसको झेल सकता है।

इसके अ़लावा मर्दों की सरपरस्ती व निगरानी से निकल कर औरत पूरे इनसानी समाज के लिये बहुत बड़ा ख़तरा है जिससे दुनिया में फ़साद व रक्तपात और तरह-तरह के फ़ितने पैदा होना लाज़िमी और रोज़मर्रा की देखी जाने वाली चीज़ है, इसलिये क़ुरआने करीम ने औरतों के वाजिब और लाज़िमी हुक़ूक़ के बयान के साथ-साथ यह भी इरशाद फ़रमाया कि:

وَلِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ

यानी मर्दों का दर्जा औरतों से बढ़ा हुआ है। और दूसरे लफ़्ज़ों में यह कि मर्द उनके निगराँ और ज़िम्मेदार हैं।

मगर जिस तरह इस्लाम से पहले प्रथम जाहिलीयत के ज़माने में दुनिया की तमाम क़ौमें इस ग़लती का शिकार थीं कि औरतों को एक घरेलू सामान या जानवर की हैसियत में रखा हुआ था, इसी तरह इस्लाम के गिरावट के ज़माने में बाद की जाहिलीयत का दौर शुरू हुआ, उसमें पहली ग़लती की प्रतिक्रिया इसके विपरीत दूसरी ग़लती की सूरत में की जा रही है कि औरतों पर मर्दों की इतनी निगरानी और सरदारी से भी छुटकारा हासिल करने और कराने की लगातार कोशिश जारी है जिसके नतीजे में अश्लीलता व बेहयाई आम हो गई, दुनिया झगड़ों और फ़साद का घर बन गई, क़त्ल व ख़ून बहाने की इतनी अधिकता हो गई कि प्रथम जाहिलीयत को मात दे दी। अरब का मशहूर मक़ूला है:

اَلْجَاهِلُ اِمَّا مُفْرِطٌ اَوْ مُفَرِّطٌ

(यानी जाहिल आदमी कभी सही राह पर नहीं रहता, अगर हद से ज़्यादा करने से बाज़ आ जाता है तो कोताही और कमी में मुब्तला हो जाता है।)

यही हाल इस वक़्त दुनिया के लोगों का है कि या तो औरत को इनसान कहने और समझने के लिये भी तैयार न थे और आगे बढ़े तो यहाँ तक पहुँचे कि मर्दों की सरदारी व निगरानी जो मर्दों, औरतों और पूरी दुनिया के लिये पूरी तरह हिक्मत व मस्लेहत (बेहतरी) है इसका जुआ भी गर्दन से उतारा जा रहा है, जिसके बद नतीजे रोज़ाना आँखों के सामने आ रहे हैं। और यक़ीन कीजिये कि जब तक वे क़ुरआन के इस इरशाद के सामने न झुकेंगे ऐसे फ़ितने रोज़ बढ़ते रहेंगे।

आजकी हुकूमतें दुनिया में अमन स्थापित करने के लिये रोज़ नये-नये क़ानून बनाती हैं, इसके लिये नये-नये इदारे क़ायम करती हैं, करोड़ों रुपये उन पर ख़र्च होते हैं लेकिन फ़ितने जिस चश्मे से फूट रहे हैं उसकी तरफ़ ध्यान नहीं देतीं। अगर आज कोई कमीशन इस तहक़ीक़ के लिये बैठाया जाये कि फ़साद व ख़ून बहाने और आपसी जंग व झगड़े के असबाब की तहक़ीक़ करे तो ख़्याल यह है कि पचास फ़ीसद से ज़्यादा ऐसे अपराधों का सबब औरत और उसकी बेनकेल आज़ादी निकलेगी, मगर आजकी दुनिया में नफ़्स परस्ती के ग़लबे ने बड़े-बड़े अक़्लमन्दों की आँखों पर पर्दा डाला हुआ है नफ़्सानी इच्छाओं के ख़िलाफ़ किसी सुधारक क़दम को गवारा नहीं किया जाता।

अल्लाह तआ़ला हमारे दिलों को ईमान के नूर से रोशन फ़रमायें और अपनी किताब और अपने रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हिदायतों पर पूरा अमल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमायें कि वही दुनिया व आख़िरत में नेकबख़्ती का सरमाया है।

मसलाः- इस आयत के तहत में यह मालूम हुआ कि क़ुरआने हकीम ने मियाँ-बीवी को उनके ज़िम्मे आयद होने वाले फ़राईज़ (ज़िम्मेदारियाँ) बतलाये कि मर्दों के ज़िम्मे औरतों के हुक़ूक़ अदा करना ऐसा ही फ़र्ज़ है जैसे कि औरतों पर मर्दों के हुक़ूक़ का अदा करना फ़र्ज़ है। इसमें इशारा है कि हर फ़रीक़ को अपने हुक़ूक़ का मुतालबा करने के बजाय अपने फ़राईज़ पर नज़र रखना चाहिये और अगर वे ऐसा कर लें तो हुक़ूक़ के मुतालबे का क़िस्सा ही दरमियान में नहीं आयेगा, क्योंकि मर्द के फ़राईज़ ही औरत के हुक़ूक़ हैं और औरत के फ़राईज़ ही मर्द के हुक़ूक़ हैं। जब फ़राईज़ अदा हो गये

तो ख़ुद-ब-ख़ुद हुक़ूक़ अदा हो जायेंगे। आजकल दुनिया के सारे झगड़े यहाँ से चलते हैं कि हर शख़्स अपने हुक़ूक़ का मुतालबा तो सामने रखता है मगर अपने फ़राईज़ (ज़िम्मेदारियों) के अदा करने से ग़ाफ़िल है।

इसका नतीजा हुक़ूक़ के मुतालबे की जंग होती है जो आजकल आ़म तौर पर हुकूमतों और अ़वाम में, मियाँ-बीवी में और दूसरे मामले वालों में चली होती है। क़ुरआने करीम के इस इशारे ने मामले के रुख़ को यूँ बदला है कि हर शख़्स को चाहिये कि अपने फ़राईज़ पूरा करने का एहतिमाम करे, और अपने हुक़ूक़ के मामले में सहूलत देने और माफ़ी व दरगुज़र से काम ले। अगर क़ुरआन की इस तालीम पर दुनिया में अ़मल होने लगे तो घरों और ख़ानदानों के बल्कि मुल्कों और हुकूमतों के ज़्यादातर झगड़े और विवाद ख़त्म हो जायें।

मर्द व औ़रत में दर्जे का बढ़ा हुआ होना दुनियावी मामलात में है, आख़िरत की फ़ज़ीलत में इसका कोई असर नहीं

दुनिया में आ़लम की व्यवस्था, इनसानी फ़ितरत और ख़ुद औ़रतों की मस्लेहतों का तक़ाज़ा यही था कि मर्दों को औ़रतों पर एक क़िस्म की हाकमियत और निगरानी का न सिर्फ़ हक़ दिया जाये बल्कि उन पर लाज़िम किया जाये। इसी का बयान इस आयत में आया है:

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ

(मर्द औ़रतों पर हाकिम और निगराँ हैं) लेकिन इससे सब मर्दों का सब औ़रतों से अफ़ज़ल होना लाज़िम नहीं आता, क्योंकि अल्लाह के नज़दीक फ़ज़ीलत का सारा का सारा मदार ईमान और नेक अ़मल पर है। वहाँ दर्जों का बढ़ना व घटना ईमान और अ़मल के दर्जों के मुताबिक़ होता है। इसलिये आख़िरत के मामलात में यह ज़रूरी नहीं कि मर्दों ही का दर्जा औ़रतों से बुलन्द रहे, यह भी हो सकता है और आयात व रिवायात की वज़ाहत से मालूम होता है कि ऐसा होगा भी, कि कुछ औ़रतें अपनी नेकी व इबादत के ज़रिये बहुत से मर्दों से ऊँचे दर्जे पर हो जायेंगी, उनका दर्जा बहुत से मर्दों से बढ़ जायेगा।

क़ुरआने मजीद में शरीअ़त के अहकाम और आमाल की जज़ा व सज़ा और सवाब व अ़ज़ाब के बयान में अगरचे क़ुरआने करीम की वज़ाहत के मुताबिक़ औ़रतें और मर्द बिल्कुल बराबर हैं और जिन अहकाम में कुछ फ़र्क़ है उनको मुस्तक़िल तौर पर वज़ाहत के साथ बयान कर दिया गया है, लेकिन आ़म तौर पर ख़िताब मर्दों को किया गया है और सीग़े मुज़क्कर (पुरुष-लिंग अलफ़ाज़) के इस्तेमाल किये गये हैं, और यह बात सिर्फ़ क़ुरआने करीम के साथ मख़्सूस नहीं आ़म तौर पर हुकूमतों के क़ानूनों में भी सीग़े मुज़क्कर के इस्तेमाल किये जाते हैं, हालाँकि क़ानून मर्द व औ़रत के लिये आ़म होता है। इसका एक सबब तो वही फ़र्क़ है जिसका ज़िक्र क़ुरआने करीम की आयतों में बयान हुआ है, कि मर्दों को औ़रतों पर एक हैसियत से ऊँचा दर्जा हासिल है।

दूसरी बात शायद यह भी इसमें छुपी हो कि औ़रतों के ज़िक्र के लिये भी सतर (पर्दा और हिजाब) ही बेहतर है, लेकिन क़ुरआने करीम में जगह-जगह मर्दों की तरह औ़रतों का ज़िक्र न होने से

उनको ख़्याल पैदा हुआ तो उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अन्हा ने नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से इसका इज़हार किया तो सूरः अहज़ाब की यह आयत नाज़िल हो गई:

إِنَّ الْمُسْلِمِيْنَ وَالْمُسْلِمٰتِ وَالْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ وَالْقٰنِتِيْنَ وَالْقٰنِتٰتِ...... الاية (٣٣:٣٥)

जिसमें मर्दों के साथ-साथ औरतों का मुस्तक़िल स्पष्ट तौर पर ज़िक्र कर दिया गया कि नेकी व इबादत और इसकी वजह से हक़ तआ़ला की निकटता व रज़ा और जन्नत के दर्जों में औरतों का दर्जा मर्दों से कुछ कम नहीं (यह रिवायत नसाई, मुस्नद, अहमद और तफ़सीर इब्ने जरीर वग़ैरह में विस्तृत तौर पर मज़कूर है)।

और तफ़सीर इब्ने कसीर में एक रिवायत यह है कि कुछ मुसलमान औरतें नबी पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की पाक बीवियों के पास आयीं और कहा कि क़ुरआने करीम में जगह-जगह मर्दों का तो ज़िक्र है औरतों में से नबी करीम की पाक बीवियों का भी मुस्तक़िल तज़किरा है मगर आ़म मुसलमान औरतों का ज़िक्र नहीं, इस पर उक्त आयत नाज़िल हुई।

ख़ुलासा यह है कि दुनियावी निज़ाम में औरतों पर मर्दों का एक दर्जा ऊँचा और हाकिम होना उनकी मस्लेहत और हिक्मत (बेहतरी व भलाई) का तक़ाज़ा है, वरना अच्छे बुरे अ़मल की जज़ा व सज़ा और दर्जों का आख़िरत में कोई फ़र्क़ नहीं।

क़ुरआने करीम में एक दूसरी जगह यही मज़मून और भी वज़ाहत से इस तरह मज़कूर है:

مَنْ عَمِلَ صَالِحًا مِّنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَلَنُحْيِيَنَّهٗ حَيٰوةً طَيِّبَةً. (١٦:٩٧)

"यानी जो मर्द या औरत नेक अ़मल करे और वह मोमिन भी हो तो हम उसको पाकीज़ा ज़िन्दगी अ़ता करेंगे।"

इस तमहीद (भूमिका) के बाद आयत के असल अलफ़ाज़ पर ग़ौर कीजिये, इरशाद फ़रमाया:

لَهُنَّ مِثْلُ الَّذِىْ عَلَيْهِنَّ.

"यानी उनके हुक़ूक़ मर्दों के ज़िम्मे हैं जैसे कि उनके ज़िम्मे मर्दों के हुक़ूक़ हैं।" इसमें औरतों के हुक़ूक़ का ज़िक्र मर्दों के हुक़ूक़ से पहले किया जिसकी एक वजह तो यह है कि मर्द तो अपनी क़ुव्वत और ख़ुदा की दी हुई बरतरी की बिना पर औरत से अपने हुक़ूक़ वसूल कर ही लेता है, फ़िक्र औरतों के हुक़ूक़ की होनी चाहिये कि वे आ़दतन् अपने हुक़ूक़ ज़बरदस्ती वसूल नहीं कर सकतीं।

दूसरा इशारा इसमें यह भी है कि मर्दों को औरत के हुक़ूक़ अदा करने में पहल करनी चाहिये और यहाँ जो लफ़्ज़ "मिस्ल" के साथ दोनों के हुक़ूक़ के एक जैसा और बराबर होने का इरशाद है इसका यह मतलब तो हो ही नहीं सकता कि जिस तरह के काम मर्द करे उसी तरह के औरत भी करे, या इसके विपरीत हो, क्योंकि मर्द व औरत में कामों की तक़सीम और हर एक के फ़राईज़ (ज़िम्मेदारियाँ) फ़ितरी तौर पर अलग-अलग हैं। बल्कि मुराद यह है कि दोनों के हुक़ूक़ की अदायेगी बराबर तौर पर वाजिब है और इसमें कोताही और लापरवाही की सज़ा भी बराबर है।

यहाँ यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि क़ुरआने करीम ने एक मुख़्तसर से जुमले में हुक़ूक़ व फ़राईज़ (अधिकारों व ज़िम्मेदारियों) के एक अ़ज़ीमुश्शान दफ़्तर को कैसा समोया है, क्योंकि आयत के

मफ़्हूम में औरतों के तमाम हुक़ूक़ मर्दों पर और मर्दों के तमाम हुक़ूक़ औरतों पर दाख़िल और शामिल हैं। (बहरे मुहीत)।

इस जुमले के आख़िर में एक लफ़्ज़ 'बिल-मारूफ़' और बढ़ाकर आपस में पेश आने वाले झगड़ों का ख़ात्मा फ़रमा दिया कि हुक़ूक़ की अदायेगी परिचित तरीक़े पर की जाये, क्योंकि मारूफ़ के मायने यह हैं कि जो शरई तौर पर भी बुरा और नाजायज़ न हो और आ़म आ़दत और उर्फ़ के लिहाज़ से भी उसमें कोई सख़्ती और ज़्यादती न हो। इसका हासिल यह हुआ कि मियाँ-बीवी के हुक़ूक़ और उनको तकलीफ़ से बचाने के मामले में सिर्फ़ क़ानूनी ख़ानापुरी काफ़ी नहीं, बल्कि आ़म उर्फ़ व आ़दत के एतिबार से देखा जायेगा कि इस मामले में दूसरे को कोई तकलीफ़ या नुक़सान तो नहीं पहुँचता। जो चीज़ें उर्फ़ व आ़दत के एतिबार से तकलीफ़ और नुक़सान की क़रार दी जायें वे ममनू व नाजायज़ होंगी। जैसे बेरुख़ी, बेइल्तिफ़ाती या ऐसे काम और हरकतें जिनसे दूसरे को तकलीफ़ पहुँचे, ये चीज़ें क़ानूनी धाराओं में तो नहीं आ सकतीं मगर "बिल-मारूफ़" के लफ़्ज़ ने इन सब को अपने दायरे में ले लिया है। इसके बाद फ़रमायाः

وَلِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ

इसका मशहूर मतलब व मफ़्हूम तो यही है कि दोनों तरफ़ के हुक़ूक़ बराबर होने के बावजूद हक़ तआ़ला ने मर्दों को औरतों पर एक दर्जे की बढ़ोतरी और हाकमियत अ़ता फ़रमा दी है, और इसमें बड़ी हिक्मतें (बेहतरी) हैं जिसकी तरफ़ आयत के आख़िर के अलफ़ाज़ 'वल्लाहु अ़ज़ीज़ुन् हकीम' में इशारा फ़रमा दिया है। और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इस जुमले का मतलब यह भी बयान फ़रमाया है कि मर्दों को अल्लाह तआ़ला ने औरतों के मुक़ाबले में बड़ा दर्जा दिया है इसलिये उनको ज़्यादा संयम व बरदाश्त से काम लेना चाहिये कि अगर औरतों की तरफ़ से उनके हुक़ूक़ में कोई कोताही हो भी जाये तो उनका दर्जा यह है कि ये उसको बर्दाश्त करें और सब्र से काम लें और उनके हुक़ूक़ की अदायेगी में कोताही न करें। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

اَلطَّلَاقُ مَرَّتٰنِ ۪ فَاِمْسَاكٌۢ بِمَعْرُوْفٍ اَوْ تَسْرِيْحٌۢ بِاِحْسَانٍ ؕ وَلَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَاْخُذُوْا مِمَّآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ شَيْـًٔا اِلَّآ اَنْ يَّخَافَآ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ؕ فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۙ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا فِيْمَا افْتَدَتْ بِهٖ ؕ تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ فَلَا تَعْتَدُوْهَا ۚ وَمَنْ يَّتَعَدَّ حُدُوْدَ اللّٰهِ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ۝ فَاِنْ طَلَّقَهَا فَلَا تَحِلُّ لَهٗ مِنْۢ بَعْدُ حَتّٰى تَنْكِحَ زَوْجًا غَيْرَهٗ ؕ فَاِنْ طَلَّقَهَا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يَّتَرَاجَعَآ اِنْ ظَنَّآ اَنْ يُّقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ؕ وَتِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ يُبَيِّنُهَا لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ۝

अत्तलाकु मर्रतानि फ़-इम्साकुम्-बिमअ़्रूफ़िन् औ तस्रीहुम्	तलाके रजअ़ी है दो बार तक, उसके बाद रख लेना मुवाफ़िक दस्तूर के या छोड़ देना

बि-इह्सानिन्, व ला यहिल्लु लकुम् अन् तअ्ख़ुज़ू मिम्मा आतैतुमूहुन्-न शैअन् इल्ला अंय्यख़ाफ़ा अल्ला युक़ीमा हुदूदल्लाहि, फ़-इन् ख़िफ़्तुम् अल्ला युक़ीमा हुदूदल्लाहि फ़ला जुना-ह अ़लैहिमा फ़ीमफ़्तदत् बिही, तिल्-क हुदूदुल्लाहि फ़ला तअ्तदूहा व मंय्य-तअ़द्-द हुदूदल्लाहि फ़-उलाइ-क हुमुज़्ज़ालिमून (229) फ़-इन् तल्ल-क़हा फ़ला तहिल्लु लहू मिम्-बअ़्दु हत्ता तन्कि-ह ज़ौजन् ग़ैरहू, फ़-इन् तल्ल-क़हा फ़ला जुना-ह अ़लैहिमा अंय्य-तरा-जआ़ इन् ज़न्ना अंय्युक़ीमा हुदूदल्लाहि, व तिल्-क हुदूदुल्लाहि युबय्यिनुहा लिक़ौमिंय्-यअ़्लमून (230)	भली तरह से, और तुमको रवा (जायज़ और दुरुस्त) नहीं कि ले लो कुछ अपना दिया हुआ औरतों से मगर जबकि शौहर और औरत दोनों डरें इस बात से कि क़ायम न रख सकेंगे हुक्म अल्लाह का, फिर अगर तुम लोग डरो इस बात से कि वे दोनों क़ायम न रख सकेंगे अल्लाह का हुक्म तो कुछ गुनाह नहीं दोनों पर इसमें कि औरत बदला देकर छूट जाये, ये अल्लाह की बाँधी हुई हदें हैं सो इनसे आगे मत बढ़ो, और जो कोई बढ़ चले अल्लाह की बाँधी हुई हदों से सो वही लोग हैं ज़ालिम। (229) फिर अगर उस औरत को तलाक़ दी (यानी तीसरी बार) तो अब हलाल नहीं उसको वह औरत उसके बाद जब तक कि निकाह न करे किसी ख़ाविंद से उसके अ़लावा, फिर अगर तलाक़ दे दे दूसरा ख़ाविंद (पति) तो कुछ गुनाह नहीं उन दोनों पर कि आपस में मिल जायें, अगर ख़्याल करें कि क़ायम रखेंगे अल्लाह का हुक्म, और ये हदें बाँधी हुई हैं अल्लाह की, बयान फ़रमाता है इनको वास्ते जानने वालों के। (230)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 25- रजई तलाक़ की संख्या

(वह) तलाक़ दो बार की है, फिर (दो मर्तबा तलाक़ देने के बाद दो इख़्तियार हैं) चाहे (यह कि रुजू करके औरत को) क़ायदे के मुताबिक़ रख ले चाहे (यह कि रुजू न करे इद्दत पूरी होने दे और इस तरह) अच्छे तरीक़े से उसको छोड़ दे।

हुक्म 26- ख़ुला

और तुम्हारे लिए यह बात हलाल नहीं कि (बीवियों को छोड़ने के वक़्त उनसे) कुछ भी लो (अगरचे वह लिया हुआ) उसी (माल) में से (ही क्यों न हो) जो तुमने (ही) उनको (मेहर में) दिया था,

मगर (एक सूरत अलबत्ता हलाल है, वह) यह कि (कोई) मियाँ-बीवी (ऐसे हों कि) दोनों को अन्देशा हो कि (मियाँ-बीवी होने के हुक़ूक़ के बारे में) वे अल्लाह तआ़ला के ज़ाब्तों "यानी क़ानूनों" को क़ायम न कर सकेंगे। सो अगर तुमको (यानी मियाँ-बीवी को) यह अन्देशा हो कि वे दोनों ख़ुदावन्दी ज़ाब्तों को क़ायम न कर सकेंगे तो दोनों पर कोई गुनाह न होगा उस (माल के लेने-देने) में जिसको देकर औरत अपनी जान छुड़ा ले (बशर्तेकि मेहर से ज़्यादा न हो)। ये ख़ुदाई ज़ाब्ते (नियम व क़ानून) हैं सो तुम इनसे बाहर मत निकलना, और जो शख़्स ख़ुदाई ज़ाब्तों (को तोड़कर उन) से बाहर निकल जाए सो ऐसे लोग अपना ही नुक़सान करने वाले हैं।

हुक्म 27- तीन तलाक़ों के बाद हलाला

फिर अगर (दो तलाक़ों के बाद) कोई (तीसरी) तलाक़ (भी) दे दे तो फिर वह औरत उस (तीसरी तलाक़ देने) के बाद उस शख़्स के लिए हलाल न रहेगी, यहाँ तक कि वह उसके अ़लावा एक और शौहर के साथ (इद्दत के बाद) निकाह न करे (और बीवी होने का हक़ अदा न करे, यानी उससे सोहबत न की जाये)। फिर अगर यह दूसरा शौहर उसको तलाक़ दे दे (और इसकी इद्दत भी गुज़र जाये) तो इन दोनों पर इसमें कुछ गुनाह नहीं कि दोबारा (आपस में निकाह करके) बदस्तूर फिर मिल जाएँ, शर्त यह है कि दोनों ग़ालिब गुमान रखते हों कि (आईन्दा) ख़ुदाई ज़ाब्तों (क़ानूनों और हदों) को क़ायम रखेंगे। और ये ख़ुदावन्दी ज़ाब्ते (क़ानून) हैं, हक़ तआ़ला इनको बयान फ़रमाते हैं ऐसे लोगों के लिए जो समझदार हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

तलाक़ व निकाह के अहकाम पूरे क़ुरआने करीम में बहुत सी आयतों में आये हैं, मगर ये चन्द आयतें जो जहाँ बयान हुई हैं तलाक़ के मामले में अहम ज़ाब्तों (क़ानून) की हैसियत रखती हैं, इनको समझने के लिये पहले निकाह की शरई हैसियत को जानना ज़रूरी है।

निकाह व तलाक़ की शरई हैसियत और हकीमाना निज़ाम

निकाह की एक हैसियत तो आपसी मामले और बन्धन की है, जैसे ख़रीद व बेच और लेन-देन के मामलात होते हैं। दूसरी हैसियत एक सुन्नत और इबादत की है, इस पर तो तमाम उम्मत का इत्तिफ़ाक़ है कि निकाह आ़म मामलात व मुआ़हदों से ऊपर शरई इबादत व सुन्नत की एक हैसियत रखता है, इसी लिये निकाह के आयोजित होने के लिये उम्मत की सर्वसम्मति से कुछ ऐसी शर्तें ज़रूरी हैं जो ख़रीद व बेच के आ़म मामलात में नहीं होतीं।

अव्वल तो यह कि हर औरत से और हर मर्द से निकाह नहीं हो सकता, इसमें शरीअ़त का एक मुस्तक़िल क़ानून है जिसके तहत बहुत सी औरतों और मर्दों का आपस में निकाह नहीं हो सकता।

दूसरे तमाम मामलात व मुआ़हदों के आयोजित और मुकम्मल होने के लिये कोई गवाही शर्त नहीं, गवाही की ज़रूरत उस वक़्त पड़ती है जब दोनों फ़रीक़ों में झगड़ा और विवाद हो जाये, लेकिन निकाह ऐसा मामला नहीं, यहाँ इसके आयोजित (क़ायम) होने के लिये भी गवाहों का सामने होना शर्त

है, अगर दो मर्द व औरत बग़ैर गवाहों के आपस में निकाह कर लें और दोनों में कोई फ़रीक़ कभी इख़्तिलाफ़ व इनकार भी न करे उस वक़्त भी शरई तौर पर वह निकाह बातिल (नाजायज़) और कंडम है, जब तक गवाहों के सामने दोनों का ईजाब व क़ुबूल न हो, और सुन्नत यह है कि निकाह आ़म ऐलान के साथ किया जाये। इसी तरह की और बहुत सी शर्तें और आदाब हैं जो निकाह के मामले के लिये ज़रूरी या मस्नून हैं।

इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि और बहुत से दूसरे इमामों के नज़दीक तो निकाह में मामले और मुआ़हदे की हैसियत से ज़्यादा इबादत व सुन्नत की हैसियत ग़ालिब है और क़ुरआने करीम और हदीसे पाक की गवाही और सुबूत इस पर क़ायम हैं।

निकाह की यह संक्षिप्त हक़ीक़त मालूम करने के बाद तलाक़ को समझिये। तलाक़ का हासिल निकाह के मामले और मुआ़हदे को ख़त्म करना है। जिस तरह इस्लामी शरीअ़त ने निकाह के मामले और मुआ़हदे को एक इबादत की हैसियत देकर आ़म मामलात व मुआ़हदों की सतह से बुलन्द रखा है और बहुत सी पाबन्दियाँ इस पर लगाई हैं इसी तरह इस मामले का ख़त्म करना भी आ़म लेन-देन के मामलों की तरह आज़ाद नहीं रखा, कि जब चाहे जिस तरह चाहे इस मामले को ख़त्म कर दे और दूसरे से मामला कर ले, बल्कि इसके लिये एक ख़ास हकीमाना क़ानून बनाया जिसका बयान उक्त आयतों में किया गया है।

इस्लामी तालीमात का असल रुख़ यह है कि निकाह का मामला और मुआ़हदा उम्र भर के लिये हो, इसके तोड़ने और ख़त्म करने की कभी नौबत ही न आये। क्योंकि इस मामले के ख़त्म होने और टूटने का असर सिर्फ़ दो फ़रीक़ों पर नहीं पड़ता, नस्ल व औलाद की तबाही व बरबादी और कई बार ख़ानदानों और क़बीलों में फ़साद तक की नौबत आ पहुँचती है, और पूरा समाज इससे बुरी तरह प्रभावित होता है। इसी लिये जो कारण और वुजूहात इस मामले को तोड़ने का सबब बन सकते हैं क़ुरआन व सुन्नत की तालीमात ने उन तमाम असबाब को राह से हटाने का पूरा इन्तिज़ाम किया है। मियाँ-बीवी के हर मामले और हर हाल के लिये जो हिदायतें क़ुरआन व सुन्नत में बयान हुई हैं उन सब का हासिल यही है कि यह रिश्ता हमेशा ज़्यादा से ज़्यादा मज़बूत और स्थिर होता चला जाये, टूटने न पाये, नामुवाफ़क़त की सूरत में पहले समझाने-बुझाने की फिर डाँट-डपट और तंबीह की हिदायतें दी गईं, और अगर बात बढ़ जाये और इससे भी काम न चले तो ख़ानदान ही के चन्द अफ़राद को पंच और मध्यस्था करने वाला बनाकर मामला तय करने की तालीम दी। इस आयतः

حَكَمًا مِّنْ اَهْلِهٖ وَحَكَمًا مِّنْ اَهْلِهَا. (٤:٣٥)

में ख़ानदान ही के अफ़राद को बीच में पड़कर मामले को हल करने वाला बनाने का इरशाद किस क़द्र हकीमाना है कि अगर मामला ख़ानदान से बाहर गया तो बात बढ़ जाने और दिलों में ज़्यादा दूरी पैदा हो जाने का ख़तरा है।

लेकिन कई बार ऐसी सूरतें भी पेश आती हैं कि हालात के सुधार की तमाम कोशिशें नाकाम हो जाती हैं और निकाह के संबन्ध के मतलूबा फल और परिणाम हासिल होने के बजाय दोनों फ़रीक़ों का आपस में मिलकर रहना एक अ़ज़ाब बन जाता है। ऐसी हालत में मियाँ-बीवी के उस ताल्लुक़ का

ख़त्म कर देना ही दोनों पक्षों के लिये राहत और सलामती की राह हो जाती है। इसलिये इस्लामी शरीअ़त ने कुछ दूसरे धर्मों की तरह यह भी नहीं कहा कि निकाह का रिश्ता हर हाल में बाक़ी ही रखा जाये, उसको ख़त्म करने की कोई सूरत न रहे, बल्कि तलाक़ और निकाह को ख़त्म करने का क़ानून बनाया। तलाक़ का इख़्तियार तो सिर्फ़ मर्द को दिया जिसमें आ़दतन् सोच-विचार और संयम व बरदाश्त का माद्दा औरत से ज़्यादा होता है, औरत के हाथ में यह आज़ाद इख़्तियार नहीं दिया ताकि वक़्ती भावनाओं से मग़लूब हो जाना जो औरत के अन्दर मर्द की तुलना में ज़्यादा है वह तलाक़ का सबब न बन जाये।

लेकिन औरत को भी इस हक़ से बिल्कुल मेहरूम नहीं रखा कि वह शौहर के ज़ुल्म व सितम सहने ही पर मजबूर हो जाये, उसको यह हक़ दिया कि शरई हाकिम की अ़दालत में अपना मामला पेश करके और शिकायतों का सुबूत देकर निकाह तुड़वा सके या तलाक़ हासिल कर सके। फिर मर्द को तलाक़ का आज़ादाना इख़्तियार तो दे दिया मगर पहले तो यह कह दिया कि इस इख़्तियार का इस्तेमाल करना अल्लाह के नज़दीक बहुत ही नापसन्दीदा और बुरा है, सिर्फ़ मजबूरी की हालत में इजाज़त है। हदीस में अल्लाह के नबी का इरशाद है:

ابغض الحلال الى الله الطلاق.

"यानी हलाल चीज़ों में सबसे ज़्यादा नापसन्दीदा और बुरी चीज़ अल्लाह के नज़दीक तलाक़ है।"

दूसरी पाबन्दी यह लगाई कि ग़ुस्से के जोश की हालत में या किसी वक़्ती और हंगामी नागवारी में इस इख़्तियार को इस्तेमाल न करे, इसी हिक्मत (बेहतरी) के तहत माहवारी की हालत में तलाक़ देने को ममनू क़रार दिया, और पाकी की हालत में भी। जिस पाकी के ज़माने में सोहबत व हमबिस्तरी हो चुकी है उसमें तलाक़ देने को इस बिना पर ममनू क़रार दिया कि इसकी वजह से औरत की इद्दत लम्बी हो जायेगी, उसको तकलीफ़ होगी, इन दोनों चीज़ों के लिये क़ुरआने करीम का इरशाद यह आया:

فَطَلِّقُوْهُنَّ لِعِدَّتِهِنَّ. (٦٥:١)

यानी तलाक़ देना हो तो ऐसे वक़्त में दो जिसमें बिना वजह औरत की इद्दत लम्बी न हो। माहवारी की हालत में तलाक़ हुई तो मौजूदा माहवारी इद्दत में शुमार न होगी, उसके बाद पाकी का ज़माना और फिर पाकी के ज़माने के बाद माहवारी से इद्दत शुमार होगी और जिस पाकी में हमबिस्तरी हो चुकी है उसमें यह संभावना है कि गर्भ रह गया हो, तो इद्दत गर्भ के पैदा होने तक लम्बी हो जायेगी। तलाक़ देने के लिये मज़कूरा पाकी का वक़्त मुक़र्रर करने में भी यह हिक्मत (बेहतरी) है कि इस इन्तिज़ार के समय में बहुत मुम्किन है कि ग़ुस्सा दूर हो जाये, माफ़ी-तलाफ़ी होकर तलाक़ का इरादा ही बदल जाये।

तीसरी पाबन्दी यह लगाई कि निकाह का बन्धन तोड़ने और ख़त्म करने का तरीक़ा भी वह नहीं रखा जो आ़म ख़रीद व बेच के मामलों व मुआ़हदों का है, कि एक मर्तबा मुआ़हदा (समझौता) ख़त्म कर दिया तो उसी वक़्त उसी मिनट में दोनों फ़रीक़ आज़ाद हो गये और पहला मामला बिल्कुल ख़त्म हो गया। हर एक को इख़्तियार हो गया कि दूसरे से मुआ़हदा कर ले, बल्कि निकाह के मामले को

तोड़ने के लिये अव्वल तो इसके तीन दर्जे तलाक़ों की सूरत में रखे गये, फिर उस पर इद्दत की पाबन्दी लगा दी कि इद्दत पूरी होने तक निकाह के मामले के बहुत से असरात बाक़ी रहेंगे, औरत को दूसरा निकाह हलाल न होगा, मर्द के लिये भी कुछ पाबन्दियाँ बाक़ी रहेंगी।

चौथी पाबन्दी यह लगाई कि अगर साफ़ व खुले लफ़्ज़ों में एक या दो तलाक़ दी गई हैं तो तलाक़ देते ही निकाह नहीं टूटा बल्कि निकाह का रिश्ता इद्दत पूरी होने तक क़ायम है, इद्दत के दौरान अगर यह अपनी तलाक़ से रुजू कर ले तो पहला निकाह बहाल हो जायेगा।

लेकिन यह रुजू करने का इख़्तियार सिर्फ़ एक या दो तलाक़ तक सीमित कर दिया गया ताकि कोई ज़ालिम शौहर ऐसा न कर सके कि हमेशा तलाक़ देता रहे, फिर रुजू करके अपनी क़ैद में रखता रहे। इसलिये हुक्म यह दे दिया कि अगर किसी ने तीसरी तलाक़ भी दे दी तो अब उसको रुजू करने का भी इख़्तियार नहीं, बल्कि अगर दोनों राज़ी होकर आपस में दोबारा निकाह करना चाहें तो बग़ैर एक मख़्सूस सूरत के जिसका ज़िक्र आगे आता है दोबारा निकाह भी आपस में हलाल नहीं।

उक्त आयतों में इसी तलाक़ के निज़ाम (सिस्टम) के अहम अहकाम का ज़िक्र है, अब इन आयतों के अलफ़ाज़ पर ग़ौर कीजिये। पहली आयत में पहले तो इरशाद फ़रमायाः

اَلطَّلَاقُ مَرَّتٰنِ

यानी तलाक़ दो ही मर्तबा है। फिर इन दोनों मर्तबा की तलाक़ों में यह लचक रख दी कि इनसे निकाह बिल्कुल ख़त्म नहीं हुआ बल्कि इद्दत पूरी होने तक मर्द को इख़्तियार है कि रुजू करके बीवी को अपने निकाह में रोक ले, या फिर रुजू न करे इद्दत पूरी होने दे, इद्दत पूरी होने पर निकाह का ताल्लुक़ ख़त्म हो जायेगा। इसी मज़मून को इन अलफ़ाज़ में इरशाद फ़रमायाः

فَاِمْسَاكٌۢ بِمَعْرُوْفٍ اَوْ تَسْرِيْحٌۢ بِاِحْسَانٍ

यानी या तो शरई क़ायदे के मुताबिक़ रुजू करके बीवी को अपने निकाह में रोक ले या फिर ख़ूबसूरती और अच्छे अन्दाज़ के साथ उसकी इद्दत पूरी होने दे, ताकि वह आज़ाद हो जाये।

अभी तीसरी तलाक़ का ज़िक्र नहीं आया बीच में एक और मसला बयान फ़रमा दिया जो ऐसे हालात में उमूमन बहस में आ जाता है। वह यह कि कुछ ज़ालिम शौहर बीवी को न रखना चाहते हैं न उसके हुक़ूक़ की फ़िक्र करते हैं न तलाक़ देते हैं, बीवी तंग होती है उसकी मजबूरी से ये नाजायज़ फ़ायदा उठाकर तलाक़ देने के लिये उससे कुछ माल या कम से कम मेहर की माफ़ी या वापसी का मुतालबा करते हैं। क़ुरआने करीम ने इसको हराम क़रार दिया। इरशाद फ़रमायाः

وَلَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَاْخُذُوْا مِمَّآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ شَيْـًٔا

"यानी तुम्हारे लिये हलाल नहीं कि तलाक़ के मुआवज़े में उनसे अपना दिया हुआ माल और मेहर वग़ैरह वापस ले लो।"

अलबत्ता एक सूरत इस हुक्म से अलग और बाहर रखी कि उसमें मेहर की वापसी या माफ़ी जायज़ कर दी, वह यह कि औरत भी यह महसूस करे कि तबीयतों में दूरी और ताल-मेल न होने की वजह से मैं शौहर के हुक़ूक़ अदा नहीं कर सकती, और मर्द भी यही समझे तो ऐसी सूरत में यह भी जायज़ है कि मेहर की वापसी या माफ़ी के बदले में तलाक़ दी जाये और ली जाये।

यह ज़िमनी मसला बयान फ़रमाने के बाद फिर तीसरी तलाक़ का ज़िक्र इस तरह फ़रमायाः

فَاِنْ طَلَّقَهَا فَلَا تَحِلُّ لَهٗ مِنْۢ بَعْدُ حَتّٰى تَنْكِحَ زَوْجًا غَيْرَهٗ

यानी अगर उस शख़्स ने तीसरी तलाक़ भी दे डाली (जो शरई तौर पर पसन्दीदा न थी) तो अब निकाह का मामला बिल्कुल ख़त्म हो गया, उसको रुजू करने का कोई इख़्तियार न रहा। और चूँकि उसने शरई हदों को फलाँदा (पार किया) है, कि बिना वजह तीसरी तलाक़ दे दी तो उसकी सज़ा यह है कि अब अगर ये दोनों राज़ी होकर फिर आपस में निकाह करना चाहें तो वह भी नहीं कर सकते, अब इनके आपस में दोबारा निकाह के लिये शर्त यह है कि यह औरत (तलाक़ की इद्दत पूरी करके) किसी दूसरे मर्द से निकाह करे और बीवी के हुक़ूक़ अदा करके दूसरे शौहर के साथ रहे, फिर अगर इत्तिफ़ाक़ से वह दूसरा शौहर भी तलाक़ दे दे (या मर जाये) तो उसकी इद्दत पूरी करने के बाद पहले शौहर से निकाह हो सकता है। आयत के आख़िरी जुमलेः

فَاِنْ طَلَّقَهَا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يَّتَرَاجَعَا

का यही मतलब है।

तीन तलाक़ और उसके अहकाम की तफ़सील

यहाँ क़ुरआने करीम के अन्दाज़े बयान पर ग़ौर करने से यह बात पूरी तरह खुलकर सामने आ जाती है कि तलाक़ देने का असल शरई तरीक़ा यही है कि ज़्यादा से ज़्यादा दो तलाक़ तक पहुँचा जाये, तीसरी तलाक़ तक नौबत पहुँचाना मुनासिब नहीं। अलफ़ाज़े आयत 'अत्तलाक़ु मर्रतानि' (तलाक़ दो मर्तबा है) के बाद तीसरी तलाक़ को हर्फ़ 'इन' (अगर) के साथ 'फ़इन् तल्ल-क़हा' फ़रमाने में इसकी तरफ़ इशारा मौजूद है, वरना सीधी ताबीर यह थी कि 'अत्तलाक़ु सलासुन्' (तलाक़ें तीन हैं) कहा जाता, इसको छोड़कर यह ताबीर इख़्तियार करने में स्पष्ट इशारा है कि तीसरी तलाक़ तक पहुँचना नहीं चाहिये। यही वजह है कि इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहि और बहुत से फ़ुक़हा ने तीसरी तलाक़ की इजाज़त ही नहीं दी, वे इसको तलाक़े बिद्अ़त कहते हैं, और दूसरे फ़ुक़हा ने तीन तलाक़ को सिर्फ़ इस शर्त के साथ जायज़ क़रार दिया है कि अलग-अलग तीन पाकी के ज़मानों में तीन तलाक़ें दी जायें। इन फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) की इस्तिलाह में इसको भी तलाक़े सुन्नत के लफ़्ज़ से ताबीर कर दिया गया है, मगर इसका यह मतलब किसी के नज़दीक नहीं है कि इस तरह तीन तलाक़ें देना मस्नून और पसन्दीदा है, बल्कि 'तलाक़े बिद्अ़त' के मुक़ाबले में इसको 'तलाक़े सुन्नत' इस मायने से कह दिया गया है कि यह सूरत भी बिद्अ़त में दाख़िल नहीं।

क़ुरआन व सुन्नत के इरशादात और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन के अ़मल से तलाक़ की संख्याओं के बारे में जो कुछ साबित होता है उसका ख़ुलासा यह है कि जब तलाक़ देने के सिवा कोई चारा ही नहीं रहे तो तलाक़ का अच्छा तरीक़ा यह है कि सिर्फ़ एक तलाक़ उस पाकी की हालत में दे दे जिसमें सोहबत न की हो, और यह एक तलाक़ देकर छोड़ दे, इद्दत ख़त्म होने के साथ निकाह का रिश्ता ख़ुद टूट जायेगा, इसको फ़ुक़हा ने 'तलाक़े अहसन' (अच्छे अन्दाज़ की तलाक़) कहा है और हज़राते सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इसी को तलाक़ का बेहतर तरीक़ा क़रार दिया है।

इमाम इब्ने अबी शैबा रहमतुल्लाहि अलैहि ने अपने 'मुसन्नफ़' में हज़रत इब्राहीम नख़ई रहमतुल्लाहि अलैहि से नक़ल किया है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम तलाक़ देने में इसको पसन्द करते थे कि सिर्फ़ एक तलाक़ देकर छोड़ दी जाये और तलाक़ की इद्दत की तीन माहवारी पूरी होने दी जायें ताकि औरत आज़ाद हो जाये।

क़ुरआने करीम के उक्त अलफ़ाज़ से इसकी भी इजाज़त निकलती है कि दो तलाक़ तक दे दी जायें मगर "मर्रतानि" (दो मर्तबा) के लफ़्ज़ में इस तरफ़ इशारा फ़रमा दिया गया है कि दो तलाक़ एक साथ और एक वक़्त में न हों बल्कि दो पाकी के ज़मानों में अलग-अलग हों।

'अत्तलाक़ु तलाक़ानि' से भी दो तलाक़ की इजाज़त साबित हो सकती थी मगर 'मर्रतानि' एक तरतीब और एक के बाद दूसरी होने की तरफ़ इशारा करती है, जिससे मालूम होता है कि दो तलाक़ें हों तो अलग-अलग हों। मिसाल से यूँ समझिये कि कोई शख़्स किसी को दो रुपये एक दफ़ा दे दे तो इसको दो मर्तबा देना नहीं कहते, क़ुरआन के अलफ़ाज़ में दो मर्तबा देने का मक़सद यही है कि अलग-अलग पाकी के ज़माने में दो तलाक़ दी जायें। (तफ़सीर रूहुल-मआनी)

बहरहाल दो तलाक़ों तक क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ से साबित है, इसलिये फ़ुक़हा व इमामों की एक राय है कि यह 'तलाक़े सुन्नत' में दाख़िल है यानी बिदअ़त नहीं। तीसरी तलाक़ के अच्छा और पसन्दीदा न होने की तरफ़ तो ख़ुद क़ुरआन के अन्दाज़ में स्पष्ट इशारा पाया जाता है उसके नापसन्दीदा और बुरा होने में किसी का भी इख़्तिलाफ़ (मतभेद) नहीं।

और हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के एक इरशाद से तीसरी तलाक़ का नापसन्दीदा और बुरा होना साबित होता है। इमामे नसाई ने महमूद बिन लुबैद रहमतुल्लाहि अलैहि की रिवायत से नक़ल किया है कि:

اخبر رسول الله صلى الله عليه وسلم عن رجل طلق امرأته ثلاث تطليقات جميعا فقام غضبانا ثم قال ايلعب بكتاب الله وانابين اظهركم حتى قام رجل وقال يا رسول الله الا اقتله. (نسائی کتاب الطلاق ص ۹۸ ج ۲)

"रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को एक आदमी के बारे में ख़बर दी गई जिसने अपनी बीवी को एक साथ तीन तलाक़ें दी थीं, आप ग़ुस्सा होकर खड़े हो गये और फ़रमाया क्या अल्लाह की किताब के साथ खेल किया जाता है हालाँकि मैं तुम्हारे बीच मौजूद हूँ? इतने में एक आदमी खड़ा हो गया और कहने लगा ऐ अल्लाह के रसूल! क्या मैं उसको क़त्ल न कर दूँ?"

इस हदीस की सनद को हाफ़िज़ इब्ने क़य्यिम ने इमाम मुस्लिम की शर्त पर सही क़रार दिया है। (ज़ादुल-मआद) और जौहर नक़ी में अल्लामा मावरदी रहमतुल्लाहि अलैहि ने इस हदीस की सनद को सही और इमाम इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अलैहि ने उम्दा सनद, इमाम इब्ने हजर रहमतुल्लाहि अलैहि ने इसके रावियों को मोतबर और क़ाबिले भरोसा बनाया है।

इसी बिना पर हज़रत इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अलैहि और कुछ दूसरे इमामों और फ़ुक़हा ने तीसरी तलाक़ को बिल्कुल नाजायज़ और तलाक़े बिदअ़त क़रार दिया है। दूसरे इमामों ने तीन पाकी के ज़मानों में तीन तलाक़ों को अगरचे तलाक़े सुन्नत में दाख़िल कहकर तलाक़े बिदअ़त से निकाल दिया है मगर उसके नापसन्दीदा और बुरा होने में किसी को इख़्तिलाफ़ नहीं।

ख़ुलासा यह है कि इस्लामी शरीअत ने जो तलाक़ के तीन दर्जे तलाक़ों की सूरत में रखे हैं उसका यह मतलब हरगिज़ नहीं कि इन तीनों दर्जों को पार करना ज़रूरी या बेहतर है। बल्कि शरीअत का मंशा तो यह है कि अव्वल तो तलाक़ के लिये क़दम उठाना ही एक नापसन्दीदा और बुरा फ़ेल है, अगर मजबूरी में इस क़दम उठाने की नौबत आ जाये तो इसके कम से कम दर्जे यानी एक तलाक़ पर बस किया जाये और इद्दत गुज़रने दें, इद्दत ख़त्म होते ही यही एक तलाक़ निकाह के रिश्ते को ख़त्म करने के लिये काफ़ी हो जायेगी और औरत आज़ाद होकर दूसरे शख़्स से निकाह कर सकेगी। तलाक़ का यही तरीक़ा अच्छा कहलाता है, इस तरीक़े में यह हिक्मत और फ़ायदा भी है कि तलाक़ के स्पष्ट अलफ़ाज़ से एक तलाक़ देने की सूरत में दोनों फ़रीक़ों के लिये सुलह-सफ़ाई की राहें खुली रहेंगी, इद्दत ख़त्म होने से पहले-पहले तो सिर्फ़ तलाक़ से रुजू कर लेना निकाह के बाक़ी रखने के लिये काफ़ी होगा और इद्दत ख़त्म हो जाने के बाद अगरचे निकाह टूट चुकेगा और औरत आज़ाद हो जायेगी मगर फिर भी यह गुन्जाईश बाक़ी रहेगी कि अगर दोनों में अब सुलह-समझौता हो जाये और आपस में निकाह करना चाहें तो नया निकाह उसी वक़्त हो सकता है।

लेकिन अगर कोई शख़्स इस 'तलाक़े अहसन' के तरीक़े पर बस न करे, इद्दत के दौरान में एक और तलाक़ खुले और साफ़ लफ़्ज़ों में दे दे तो उसने निकाह ख़त्म करने के दो दर्जे तय कर लिये जिसकी ज़रूरत न थी, और ऐसा करना शरई तौर पर पसन्दीदा भी न था, मगर बहरहाल दो दर्जे तय हो गये, मगर इन दो दर्जों के तय हो जाने तक भी बात वहीं रही कि इद्दत के दौरान में रुजू करने का इख़्तियार बाक़ी है और इद्दत ख़त्म हो जाने के बाद दोनों पक्षों की रज़ामन्दी से नया निकाह हो सकता है, फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि दो तलाक़ तक पहुँचने में शौहर ने अपने इख़्तियारात की एक कड़ी और तोड़ डाली और उस सरहद पर पहुँच गया कि अगर अब एक मर्तबा भी तलाक़ दे दे तो मामला हमेशा के लिये ख़त्म हो जाये।

जिस शख़्स ने यह दो दर्जे तलाक़ के तय कर लिये उसके लिये आगे यह हिदायत दी गईः

فَإِمْسَاكٌ بِمَعْرُوْفٍ أَوْ تَسْرِيْحٌ بِإِحْسَانٍ

(कि चाहे तो क़ायदे के मुताबिक़ रोक रखे या अच्छे अन्दाज़ उसे अलग कर दे) इसमें 'फ़-इम्साकुम् बि-मअ़रूफ़िन्' के लफ़्ज़ों में दो हुक्म बतलाये गये- अव्वल यह कि इद्दत के दौरान रुजू कर लेना नये निकाह का मोहताज नहीं, बल्कि सिर्फ़ तलाक़ से रुजू करके रोक लेना काफ़ी है। अगर ऐसा कर लिया तो पहले ही निकाह की बुनियाद पर मियाँ-बीवी का ताल्लुक़ बहाल हो जायेगा।

दूसरे इसमें शौहर को यह हिदायत दी गई कि अगर उसका इरादा हालात के सुधार और सुलह व सफ़ाई के साथ ज़िन्दगी गुज़ारने का है तब जो रुजू करने का क़दम उठाये वरना छोड़ दे कि इद्दत गुज़रकर निकाह का ताल्लुक़ ख़त्म हो जाये, ऐसा न हो कि बग़ैर सुधार के इरादे के महज़ औरत को परेशान करने के लिये रुजू कर ले।

इसके मुक़ाबिल 'औ तस्रीहुम् बि-इहसान' फ़रमाया। 'तस्रीह' के मायने खोल देने और छोड़ देने के हैं। इससे इशारा कर दिया कि ताल्लुक़ ख़त्म करने के लिये किसी और तलाक़ या दूसरे किसी अ़मल की ज़रूरत नहीं, बग़ैर रुजू किये इद्दत हो जाना ही निकाह के ताल्लुक़ात ख़त्म करने के लिये काफ़ी है।

इमामे हदीस अबू दाऊद ने अबू रज़ीन असदी की रिवायत से नक़ल किया है कि इस आयत के नाज़िल होने पर एक शख़्स ने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से दरियाफ़्त किया कि अल्लाह तआ़ला ने 'अत्तलाक़ु मर्रतानि' (तलाक़ दो मर्तबा है) फ़रमाया, तीसरी तलाक़ का यहाँ क्यों ज़िक्र नहीं किया? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि 'औ तस्रीहुम् बि-इहसान' जो बाद में मज़कूर है वही तीसरी तलाक़ है। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

मतलब इसका जमहूर उलेमा के नज़दीक यह है कि जो काम निकाह के ताल्लुक़ात को पूरी तरह समाप्त करने का तीसरी तलाक़ से होता वही काम इस व्यवहार से हो जायेगा कि इद्दत के अन्दर रुजू न करे और जिस तरह 'रोकने' के साथ 'क़ायदे के मुताबिक़' की क़ैद लगाकर यह हिदायत फ़रमा दी कि रुजू करके बीवी को रोका जाये तो अच्छे सुलूक के साथ रोका जाये, इसी तरह 'तस्रीहुन' के साथ 'बि-इहसान' की क़ैद लगाकर यह हिदायत दे दी कि तलाक़ एक मामले का रद्द और ख़त्म करना है शरीफ़ इनसान का काम यह है कि जिस तरह मामला और मुआ़हदा ख़ुशदिली और अच्छे सुलूक के साथ किया जाता है इसी तरह अगर बन्धन को तोड़ने की ज़रूरत पेश आ जाये तो उसको भी गुस्से या लड़ाई झगड़े के साथ न करें, बल्कि वह भी एहसान व सुलूक के साथ करें कि रुख़्सत के वक़्त तलाक़ पाने वाली बीवी को कुछ तोहफ़ा कपड़े वग़ैरह का देकर रुख़्सत करें, जिसका ज़िक्र क़ुरआने करीम की दूसरी आयत में है:

مَتِّعُوْهُنَّ عَلَى الْمُوْسِعِ قَدَرُهٗ وَعَلَى الْمُقْتِرِ قَدَرُهٗ. (۲:۲۳۶)

"यानी तलाक़ पाने वाली बीवी को कुछ जोड़ा कपड़े का देकर रुख़्सत करें माली हैसियत के मुताबिक़।"

और अगर उसने इस पर भी ऐसा न किया बल्कि तीसरी तलाक़ भी दे डाली तो अब उसने अपने सारे इख़्तियारात शरीअ़त की दी हुई आसानियों को नज़र-अन्दाज़ करके बिना वजह और बिना ज़रूरत ख़त्म कर दिये, तो अब इसकी सज़ा यह है कि न रुजू हो सके और न बग़ैर दूसरी शादी के आपस में निकाह हो सके।

अगर किसी ने शरई तरीक़े के ख़िलाफ़ और नापसन्दीदा अन्दाज़ से तीन तलाक़ें दे दीं तो उसका असर क्या होगा?

इसका जवाब अ़क्ली और उर्फ़ी (आ़म सामाजिक चलन के) तौर पर तो यही है कि किसी फ़ेल का जुर्म व गुनाह होना उसके प्रभावी होने में कहीं भी रोक और बाधा नहीं होता। नाहक़ क़त्ल जुर्म व गुनाह है, मगर जिसको गोली या तलवार मारकर क़त्ल किया गया है वह तो क़त्ल हो ही जाता है, उसकी मौत तो इसका इन्तिज़ार नहीं करती कि यह गोली जायज़ तरीक़े से मारी गई है या नाजायज़ तरीक़े से। चोरी करना तमाम धर्मों में जुर्म व गुनाह है, मगर जो माल इस तरह ग़ायब कर दिया गया वह तो हाथ से निकल ही जाता है। इसी तरह तमाम गुनाहों और अपराधों का यही हाल है कि उनका जुर्म व गुनाह होना उनके असरदार (प्रभावी) होने में रोक और बाधा नहीं होता।

इस उसूल का तकाज़ा यही है कि शरीअत की दी हुई आसानियों को नज़र-अन्दाज़ करना और बिना वजह तलाक़ के अपने सारे इख़्तियारात को ख़त्म करके तीन तलाक़ तक पहुँचना अगरचे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नाराज़ी का सबब हुआ जैसा कि पहले बयान हुई रिवायत में लिखा जा चुका है, और इसी लिये जमहूरे उम्मत के नज़दीक यह फ़ेल नापसन्दीदा और कुछ के नज़दीक नाजायज़ है, मगर इन सब बातों के बावजूद जब किसी ने ऐसा क़दम उठा लिया तो इसका वही असर होना चाहिये जो जायज़ तलाक़ का होता, यानी तीन तलाक़ वाक़े हो जायें और रुजू करने (तलाक़ से वापसी और बीवी को निकाह में लौटाने) ही का इख़्तियार नहीं, नये निकाह का इख़्तियार भी छिन जाये।

और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का फ़ैसला इस पर शाहिद (गवाह और सुबूत) है कि गुस्से व नाराज़गी के इज़हार के बावजूद आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने तीन तलाक़ों को नाफ़िज़ (लागू) फ़रमाया जिसके बहुत से वाक़िआ़त हदीस की किताबों में मज़कूर हैं। और जिन उलेमा ने इस मसले पर मुस्तक़िल किताबें लिखी हैं उनमें उन वाक़िआ़त को जमा कर दिया है। हाल में मौलाना अबू ज़ाहिद मुहम्मद सरफ़राज़ साहिब की किताब "उम्दतुल-असास" भी इस मसले पर प्रकाशित हो गई है जो बिल्कुल काफ़ी है। यहाँ सिर्फ़ दो तीन हदीसें नक़ल की जाती हैं।

महमूद बिन लुबैद की रिवायत जो नसाई शरीफ़ के हवाले से ऊपर लिखी गई है उसमें तीन तलाक़ें एक वक़्त में देने पर इन्तिहाई नाराज़ी का इज़हार तो मन्क़ूल है, यहाँ तक कि कुछ सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने उस शख़्स को क़त्ल का हक़दार समझा मगर यह कहीं मन्क़ूल नहीं कि आपने उसकी तलाक़ को एक रजई तलाक़ क़रार देकर बीवी उसके हवाले कर दी हो।

बल्कि दूसरी रिवायत जो आगे आती है जिस तरह उसमें इसकी वज़ाहत मौजूद है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत उवैमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की एक वक़्त में तीन तलाक़ को बावजूद नाराज़गी के नाफ़िज़ फ़रमा दिया इसी तरह महमूद बिन लुबैद की उक्त हदीस के मुताल्लिक़ क़ाज़ी अबू बक्र इब्ने अ़रबी ने ये अलफ़ाज़ भी नक़ल किये हैं कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत उवैमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की तीन तलाक़ों की तरह इसकी भी तीन तलाक़ों को नाफ़िज़ फ़रमा दिया था। उनके अलफ़ाज़ ये हैं:

فلم يرده النّبی صلی اللّٰه علیه وسلم بل امضاه کما فی حدیث عویمر العجلانی فی اللعان حیث امضی طلاقه الثلاث ولم یردہٗ (تهذیب سنن ابی داؤد طبع مصر ص ۱۲۹ ج ۳ از عمدة الاثاث)

"तो रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उसे रद्द नहीं किया बल्कि उसे नाफ़िज़ फ़रमा दिया जैसा कि उवैमर अ़जलानी रज़ियल्लाहु अ़न्हु की लिआ़न वाली हदीस में है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनकी तीन तलाक़ों को नाफ़िज़ (लागू) फ़रमा दिया था और रद्द नहीं किया था।"

दूसरी हदीस हज़रत आ़यशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हा की सही बुख़ारी में इन अलफ़ाज़ में है:

ان رجلاً طلق امراته ثلاثًا فتزوجت فطلّق فسأل النبی صلی اللّٰه علیه وسلم اتحل للاوّل قال لا حتی یذوق عسیلتها کما ذاقها الاول. (صحیح بخاری ص ۷۹۱ ج ۲ صحیح مسلم ص ٤٦۳)

"एक आदमी ने अपनी बीवी को तीन तलाक़ दी, उस औरत ने दूसरी जगह निकाह किया तो उस दूसरे शौहर ने भी उसे तलाक़ दे दी। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से पूछा गया क्या यह औरत पहले शौहर के लिये हलाल है? आपने फ़रमाया नहीं! जब तक कि दूसरा शौहर उससे हमबिस्तरी करके लुत्फ़ न उठा ले, जिस तरह पहले शौहर ने किया था, उस वक़्त तक तलाक़ देने से पहले शौहर के लिये हलाल नहीं होगी।"

रिवायत के अलफ़ाज़ से ज़ाहिर यही है कि ये तीनों तलाक़ एक ही वक़्त में दी गई थीं, हदीस की शरहों फ़तहुल-बारी, उम्दतुल-क़ारी क़ुस्तुलानी वग़ैरह में रिवायत का मफ़्हूम यही क़रार दिया गया है कि एक वक़्त में तीन तलाक़ दी थीं, और हदीस में यह फ़ैसला मज़कूर है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इन तीन तलाक़ को नाफ़िज़ क़रार देकर यह हुक्म दिया कि जब तक दूसरे शौहर से हमबिस्तरी और सोहबत न हो जाये तो उसके तलाक़ देने से पहले शौहर के लिये हलाल नहीं होगी।

तीसरी रिवायत हज़रत उवैमर अ़जलानी रज़ियल्लाहु अ़न्हु की है कि उन्होंने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने अपनी बीवी से **लिआ़न** किया, और उसके बाद अ़र्ज़ कियाः

فلما فرغا قال عويمر كذبتُ عليها يا رسول الله ان امسكتها فطلّقها ثلاثًا قبل ان يا مره النبى صلى الله عليه وسلم. (صحيح بخارى فتح البارى ص ۳۰۱ ج ۹ صحيح مسلم ص ۱۸۹ ج ۱)

"पस जब वे दोनों लिआ़न से फ़ारिग़ हो गये तो उवैमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने कहा ऐ अल्लाह के रसूल! मैं इस पर झूठ बोलने वाला हूँगा अगर मैंने इसको अपने पास रख लिया, तो हज़रत उवैमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने उसको तीन तलाक़ें दे दीं इससे पहले कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उन्हें हुक्म देते।"

और हज़रत अबूज़र रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इस वाक़िए को हज़रत सहल बिन सअ़द रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से नक़ल करके ये अलफ़ाज़ नक़ल किये हैं:

فانفذه رسول الله صلى الله عليه وسلم وكان ماصنع عند رسول الله صلى الله عليه وسلم سنة قال سعد حضرت هٰذا عند رسول الله صلى الله عليه وسلم فمضت السنة بعد فى المتلاعنين ان يفرق بينهما ثم لا يجتمعان ابدًا. (ابو داؤد ص ۳۰٦ طبع اصح المطابع)

"तो रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उसे नाफ़िज़ फ़रमा दिया और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने जो कुछ पेश आया वह सुन्नत क़रार पाया। हज़रत सअ़द रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि उस मौक़े पर मैं रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास हाज़िर था, पस उसके बाद लिआ़न करने वालों के बारे में यह तरीक़ा राईज हो गया कि उनके बीच तफ़रीक़ (जुदाई और अ़लैहदगी) कर दी जाये और फिर वे कभी भी जमा न हों।"

इस हदीस में पूरी वज़ाहत के साथ साबित है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत उवैमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की एक वक़्त में दी हुई तीन तलाक़ को तीन ही क़रार देकर नाफ़िज़ (लागू और जारी) फ़रमाया है।

और मुहम्मद बिन लुबैद की पहली रिवायत में भी अबू बक्र इब्ने अ़रबी की रिवायत के मुताबिक़ तीन तलाक़ों को नाफ़िज़ करने का ज़िक्र मौजूद है, और फ़र्ज़ करो यह भी न होता तो यह कहीं मन्क़ूल नहीं कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उसको एक रजई तलाक़ क़रार देकर बीवी उसके सुपुर्द कर दी हो।

हासिल यह है कि मज़्कूरा तीनों हदीसों से यह साबित हो गया कि अगरचे एक वक़्त में तीन तलाक़ देना रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नज़दीक सख़्त नाराज़ी का सबब था मगर बहरहाल असर उनका यही हुआ कि तीनों तलाक़ें वाक़े (हो जाने वाली) क़रार दी गईं।

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु का वाक़िआ और उस पर शुब्हा व जवाब

ऊपर बयान हुई तहरीर से यह साबित हुआ कि एक वक़्त में दी हुई तीन तलाक़ को तीन क़रार देना ख़ुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का फ़ैसला था मगर यहाँ एक इश्काल (शुब्हा) हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु के एक वाक़िए से पैदा होता है जो सही मुस्लिम और हदीस की अक्सर किताबों में नक़ल किया गया है। उसके अलफ़ाज़ ये हैं:

عن ابن عباس قال كان الطلاق على عهد رسول الله صلى الله عليه وسلم و ابى بكر وسنتين من خلافة عمر طلاق الثلاث واحدة فقال عمر بن الخطاب ان الناس قد استعجلوا فى امر كانت لهم فيه اناة فلو امضينا عليهم فامضاه عليهم. (صحيح مسلم ٤٧٧ ج ١)

"हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में और हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अ़न्हु की ख़िलाफ़त के दौर में और हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की ख़िलाफ़त के शुरूआती दो सालों में तलाक़ का यह तरीक़ा था कि तीन तलाक़ों को एक क़रार दिया जाता था तो हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि लोग जल्दी करने लगे हैं एक ऐसे मामले में जिसमें उनके लिये मोहलत थी, तो मुनासिब रहेगा कि हम उसको उन पर नाफ़िज़ कर दें, तो आपने उन पर नाफ़िज़ कर दिया।"

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु का यह ऐलान फ़ुक़हा-ए-सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के मश्विरे से सहाबा व ताबिईन के आ़म मजमे में हुआ, किसी से इस पर इनकार या शक व शुब्हा मन्क़ूल नहीं, इसी लिये हाफ़िज़े हदीस इमाम इब्ने अ़ब्दुल-बर्र मालिकी ने इस पर इजमा (सब की सहमति) नक़ल किया है। ज़ुरक़ानी शरह मुवत्ता में ये अलफ़ाज़ हैं:

والجمهور على وقوع الثلاث بل حكى ابن عبد البر الاجماع قائلا ان خلافه لا يلتفت اليه.

(زرقانی شرح مؤطا ص ١٦٧ ج ٣)

"और जमहूरे उम्मत तीन तलाक़ों के वाक़े होने पर मुत्तफ़िक़ (सहमत) हैं बल्कि इब्ने अ़ब्दुल-बर्र ने इस पर इजमा (सब की एक राय) नक़ल करके फ़रमाया कि इसका विरोध करने वाले न होने के बराबर हैं जिसकी तरफ़ तवज्जोह नहीं की जायेगी।"

और शैखुल-इस्लाम इमाम नववी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने शरह मुस्लिम में फ़रमाया है:

قال الشافعي ومالك وابو حنيفة واحمد وجماهير العلماء من السلف والخلف يقع الثلاث، وقال طاؤس و بعض اهل الظاهر لا يقع بذالك الا وحدة. (شرح مسلم، ص ٤٧٨ ج ١)

"इमाम शाफ़ई, इमाम मालिक, इमाम अबू हनीफ़ा, इमाम अहमद रहमतुल्लाहि अ़लैहिम और पहले व बाद के जमहूर उलेमा ने फ़रमाया कि तीन तलाक़ें वाक़े हो जाती हैं, और ताऊस और कुछ अहले ज़ाहिर ने कहा कि इससे एक ही तलाक़ वाक़े होती है।"

इमाम तहावी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'मआनियुल-आसार' में फ़रमाया:

فخاطب عمرؓ بذلك الناس جميعا وفيهم اصحاب رسول الله صلى الله عليه وسلم رضى الله عنهم الذين قد علموا ما تقدم من ذالك في زمن رسول الله صلى الله عليه وسلم ينكر عليه منهم منكر ولم يد فعه دافع.

(شرح معانی الآثار ص ٢٩ ج ٢)

"पस हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इसके साथ लोगों को मुख़ातब फ़रमाया और उन लोगों में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के वे सहाबा भी थे जिनको इससे पहले रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने के तरीक़े का इल्म था, तो उनमें से किसी इनकार करने वाले ने इनकार नहीं किया और किसी रद्द करने वाले ने इसे रद्द नहीं किया।"

ज़िक्र हुए वाक़िए में अगरचे उम्मत के लिये अ़मल की राह सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात की सर्वसम्मति से मुक़र्रर हो गई कि एक वक़्त में तीन तलाक़ें देना अगरचे बुरा, नापसन्दीदा और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नाराज़ी का सबब है मगर इसके बावजूद जिसने इस ग़लती का जुर्म किया उसकी बीवी उस पर हराम हो जायेगी और बग़ैर दूसरे शख़्स से निकाह व तलाक़ के उसके लिये हलाल न होगी।

लेकिन इल्मी और वैचारिक तौर पर यहाँ दो सवाल पैदा होते हैं- अव्वल तो यह कि पहले गुज़री तहरीर में हदीस की कई रिवायतों के हवाले से यह बात साबित हो चुकी है कि एक वक़्त में तीन तलाक़ देने वाले पर ख़ुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने तीन तलाक़ को नाफ़िज़ फ़रमाया है, उसको रुजू करने या नया निकाह करने की इजाज़त नहीं दी, फिर इस वाक़िए में हज़रत अ़ब्दुल्लाह इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु के इस कलाम का क्या मतलब होगा कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में और सिद्दीक़ी दौर में और दो साल तक फ़ारूक़ी दौर में तीन तलाक़ को एक ही माना जाता था, फ़ारूक़े आज़म ने तीन तलाक़ का फ़ैसला फ़रमाया।

दूसरा सवाल यह है कि अगर वाक़िआ (हक़ीक़त) इसी तरह तस्लीम कर लिया जाये कि रसूले पाक के दौर और सिद्दीक़ी ख़िलाफ़त में तीन तलाक़ को एक माना जाता था तो फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इस फ़ैसले को कैसे बदल दिया? और फ़र्ज़ करो उनसे कोई ग़लती हो भी गई थी तो तमाम सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इसको कैसे तस्लीम कर लिया?

इन दोनों सवालों के हज़राते फ़ुक़हा व मुहद्दिसीन ने विभिन्न और अनेक जवाबात दिये हैं, उनमें साफ़ और बेतकल्लुफ़ जवाब वह है जिसको इमाम नववी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने शरह मुस्लिम में

ज़्यादा सही कहकर नक़ल किया है कि फ़ारूके आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु का यह फ़रमान और इस पर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम का इजमा (सहमत और एक राय होना) तीन तलाक़ की एक ख़ास सूरत के मुताल्लिक़ क़रार दिया जाये, वह यह कि कोई शख़्स तीन मर्तबा 'तुझको तलाक़, तुझको तलाक़, तुझको तलाक़' कहे। या 'मैंने तलाक़ दी, मैंने तलाक़ दी, मैंने तलाक़ दी' कहे।

यह सूरत ऐसी है कि इसके मायने में दो एहतिमाल (संभावनायें) होते हैं- एक यह कि कहने वाले ने तीन तलाक़ देने की नीयत से ये अलफ़ाज़ कहे हों, दूसरे यह कि तीन मर्तबा सिर्फ़ ताकीद (बात को पुख़्ता करने) के लिये कई बार कहा हो, तीन तलाक़ की नीयत न हो, और यह ज़ाहिर है कि नीयत का इल्म कहने वाले ही के इक़रार से हो सकता है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुबारक दौर में सच्चाई व ईमानदारी आ़म और ग़ालिब थी, अगर ऐसे अलफ़ाज़ कहने के बाद किसी ने यह बयान किया कि मेरी नीयत तीन तलाक़ की नहीं थी बल्कि सिर्फ़ ताकीद के लिये ये अलफ़ाज़ दोहराये थे तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उसके हलफ़ी बयान की तस्दीक़ फ़रमा देते और उसको एक ही तलाक़ क़रार देते थे।

इसकी तस्दीक़ हज़रत रुकाना रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस से होती है जिसमें मज़कूर है कि उन्होंने अपनी बीवी को लफ़्ज़ 'अलबत्ता' के साथ तलाक़ दे दी थी। यह लफ़्ज़ अ़रब की आ़म बोल-चाल में तीन तलाक़ के लिये बोला जाता था, मगर तीन इसका स्पष्ट मफ़्हूम नहीं था, और हज़रत रुकाना रज़ियल्लाहु अन्हु ने कहा कि मेरी नीयत तो इस लफ़्ज़ से तीन तलाक़ की नहीं थी बल्कि एक तलाक़ देने का इरादा था। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको क़सम दी, उन्होंने इस पर हलफ़ कर लिया तो आपने एक ही तलाक़ क़रार दी।

यह हदीस तिर्मिज़ी, अबू दाऊद, इब्ने माजा, दारमी में अनेक सनदों और विभिन्न अलफ़ाज़ के साथ मन्क़ूल है। बाज़ अलफ़ाज़ में यह भी है कि हज़रत रुकाना रज़ियल्लाहु अन्हु ने अपनी बीवी को तीन तलाक़ दे दी थीं मगर अबू दाऊद ने तरजीह इसको दी है कि दर असल हज़रत रुकाना रज़ियल्लाहु अन्हु ने लफ़्ज़ 'अलबत्ता' से तलाक़ दी थी, यह लफ़्ज़ चूँकि आ़म तौर पर तीन तलाक़ के लिये बोला जाता था इसलिये किसी रावी (रिवायत बयान करने वाले) ने इसको तीन तलाक़ से ताबीर कर दिया है।

बहरहाल इस हदीस से यह बात सर्वसम्मति से साबित है कि हज़रत रुकाना रज़ियल्लाहु अन्हु की तलाक़ को रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक उस वक़्त क़रार दिया जबकि उन्होंने हलफ़ के साथ बयान दिया कि मेरी नीयत तीन तलाक़ की नहीं थी। इससे भी यही साबित होता है कि उन्होंने तीन तलाक़ के अलफ़ाज़ स्पष्ट और साफ़ नहीं कहे थे वरना फिर तीन की नीयत न करने का कोई एहतिमाल (शुब्हा) ही न रहता, न उनसे सवाल की कोई ज़रूरत रहती।

इस वाक़िए ने यह बात वाज़ेह कर दी कि जिन अलफ़ाज़ में यह एहतिमाल (शुब्हा और गुंजाईश) हो कि तीन की नीयत की है या एक ही की ताकीद की है, उनमें आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हलफ़ी बयान पर एक क़रार दे दिया क्योंकि ज़माना सच्चाई और ईमानदारी का था, इसका एहतिमाल बहुत दूर की बात थी कि कोई शख़्स झूठी क़सम खा ले।

सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के ज़माने में और फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु के शुरूआती दौर में दो साल तक यही तरीक़ा जारी रहा, फिर हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अपने ज़माने में यह महसूस किया कि अब सच्चाई और ईमानदारी का मेयार घट रहा है और आगे चलकर हदीस की पेशीनगोई (भविष्यवाणी) के मुताबिक़ और घट जायेगा। दूसरी तरफ़ ऐसे वाक़िआ़त की अधिकता हो गई कि तीन मर्तबा तलाक़ के अलफ़ाज़ कहने वाले अपनी नीयत सिर्फ़ एक तलाक़ की बयान करने लगे तो यह महसूस किया गया कि आईन्दा इसी तरह तलाक़ देने वाले की नीयत के बयान की तस्दीक़ करके एक तलाक़ क़रार दी जाती रही तो दूर नहीं कि लोग शरीअ़त की दी हुई इस सहूलत को बेजा इस्तेमाल करने लगें, और बीवी को वापस लाने के लिये झूठ कह दें कि नीयत एक ही की थी। फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु की फ़िरास्त (दीनी समझ) और इन्तिज़ामे दीन में दूरबीनी को सब ही सहाबा ने दुरुस्त समझकर इत्तिफ़ाक़ किया, ये हज़रात रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मिज़ाज को पहचानने वाले थे, उन्होंने समझा कि अगर हमारे इस दौर में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मौजूद होते तो यक़ीनन वह भी अब दिलों की छुपी नीयत और मामले वाले के बयान पर मदार रखकर फ़ैसला न फ़रमाते, इसलिये क़ानून यह बना दिया कि अब जो शख़्स तीन मर्तबा लफ़्ज़ 'तलाक़' को दोहरायेगा उसकी तीन ही तलाक़ें क़रार दी जायेंगी, उसकी यह बात न सुनी जायेगी कि उसने नीयत सिर्फ़ एक तलाक़ की की थी।

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु के ऊपर बयान हुए वाक़िए में जो अलफ़ाज़ मन्क़ूल हैं वे भी इसी मज़मून की शहादत देते हैं। उन्होंने फ़रमायाः

انّ النّاس قد استعجلوا فی اَمرٍ کانت لھم فیہ اناۃ فلو امضینا علیھم

"लोग जल्दी करने लगे हैं एक ऐसे मामले में जिसमें उनके लिये मोहलत थी, तो मुनासिब रहेगा कि हम उसको उन पर नाफ़िज़ (लागू) कर दें।"

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु के इस फ़रमान और इस पर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के एक-राय होने की यह तौजीह (मतलब) जो बयान की गई है इसकी तस्दीक़ हदीस की रिवायतों से भी होती है और इससे इन दोनों सवालों का अपने-आप हल निकल आता है कि हदीस की रिवायत में ख़ुद नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से तीन तलाक़ को तीन ही क़रार देकर नाफ़िज़ करना कई वाक़िआ़त से साबित है, तो हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु का यह फ़रमाना कैसे सही हो सकता है कि ज़माना-ए-रिसालत में तीन को एक ही माना जाता था, क्योंकि मालूम हुआ कि ऐसी तलाक़ जो तीन के लफ़्ज़ से दी गई या तलाक़ को दोहराना तीन की नीयत से किया गया इसमें हुज़ूरे पाक के ज़माने में भी तीन ही क़रार दी जाती थीं, एक क़रार देने का ताल्लुक़ ऐसी तलाक़ से है जिसमें 'सलास' (तीन) की स्पष्टता न हो, या तीन तलाक़ देने का इक़रार न हो बल्कि तीन बतौर ताकीद के कहने का दावा हो।

और यह सवाल भी ख़त्म हो जाता है कि जब नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने तीन को एक क़रार दिया था तो फ़ारूक़े आज़म ने इसके ख़िलाफ़ क्यों किया, और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इससे इत्तिफ़ाक़ कैसे कर लिया। क्योंकि इस सूरत में फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु

अन्हु ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की दी हुई सहूलत के बेजा इस्तेमाल करने से रोका है, मआज़ल्लाह! आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के किसी फ़ैसले के ख़िलाफ़ यहाँ कोई शुब्हा और गुमान भी नहीं।

इस तरह तमाम इश्कालात (शुब्हात व एतिराज़ात) दूर हो गये। और तमाम तारीफ़ अल्लाह ही के लिये है। इस जगह तीन तलाक़ के मसले की मुकम्मल बहस और उसकी तफ़सीलात को समेटना मक़सूद नहीं, वह हदीस की व्याख्याओं में बहुत तफ़सील से है, और बहुत से उलेमा ने उसको विस्तृत रिसालों (किताबों) में भी खोलकर बयान कर दिया है, समझने के लिये इतना भी काफ़ी है। और तौफ़ीक़ देने वाला अल्लाह ही है और वही बेहतरीन मददगार है।

وَإِذَا طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ فَبَلَغْنَ أَجَلَهُنَّ فَأَمْسِكُوهُنَّ بِمَعْرُوفٍ أَوْ سَرِّحُوهُنَّ بِمَعْرُوفٍ ۚ وَلَا تُمْسِكُوهُنَّ ضِرَارًا لِّتَعْتَدُوا ۚ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَقَدْ ظَلَمَ نَفْسَهٗ ۚ وَلَا تَتَّخِذُوٓا اٰيٰتِ اللّٰهِ هُزُوًا ۚ وَّاذْكُرُوا نِعْمَتَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَمَآ اَنْزَلَ عَلَيْكُمْ مِّنَ الْكِتٰبِ وَالْحِكْمَةِ يَعِظُكُمْ بِهٖ ۚ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوٓا اَنَّ اللّٰهَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ﴿۲۳۱﴾ وَاِذَا طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ فَبَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ فَلَا تَعْضُلُوْهُنَّ اَنْ يَّنْكِحْنَ اَزْوَاجَهُنَّ اِذَا تَرَاضَوْا بَيْنَهُمْ بِالْمَعْرُوْفِ ۗ ذٰلِكَ يُوْعَظُ بِهٖ مَنْ كَانَ مِنْكُمْ يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۗ ذٰلِكُمْ اَزْكٰى لَكُمْ وَاَطْهَرُ ۗ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿۲۳۲﴾

لثلثة ۲۹ ع ۱۲

व इज़ा तल्लक़्तुमुन्निसा-अ फ़-बलग़्-न	और जब तलाक़ दी तुमने औरतों को फिर
अ-ज-लहुन्-न फ़-अम्सिकूहुन्-न	पहुँचें वे अपनी इद्दत को तो रख लो उनको
बिमअ्रूफ़िन् औ सर्रिहूहुन्-न	मुवाफ़िक़ दस्तूर के या छोड़ दो उनको भली
बिमअ्रूफ़िंव्-व ला तुम्सिकूहुन्-न	तरह से, और न रोके रखो उनको सताने के
ज़िरारल् लितअ्-तदू व मंय्यफ़्अ़ल्	लिये ताकि उन पर ज़्यादती करो, और जो
ज़ालि-क फ़-क़द् ज़-ल-म नफ़्सहू,	ऐसा करेगा वह बेशक अपना ही नुक़सान
व ला तत्तख़िज़ू आयातिल्लाहि	करेगा। और मत ठहराओ अल्लाह के
हुज़ुवंव्-वज़्कुरू निअ्-मतल्लाहि	अहकाम को हंसी, और याद करो अल्लाह का
अ़लैकुम् व मा अन्ज़-ल अ़लैकुम्	एहसान जो तुमपर है और उसको जो उतारी
मिनल्-किताबि वल्-हिक्मति	तुमपर किताब और इल्म की बातें कि तुम
यअ़िज़ुकुम् बिही, वत्तक़ुल्ला-ह	को नसीहत करता है उसके साथ, और डरते

वअ़्लमू अन्नल्ला-ह बिकुल्लि शैइन् अ़लीम (231) ✿ ▲	रहो अल्लाह से, और जान रखो कि अल्लाह सब कुछ जानता है। (231) ✿ ▲
व इज़ा तल्लक़्तुमुन्निसा-अ फ़-बलग़्-न अ-ज-लहुन्-न फ़ला तअ़्ज़ुलूहुन्-न अंय्यन्किह्-न अज़्वाजहुन्-न इज़ा तराज़ौ बैनहुम् बिल्मअ़्रूफ़ि, ज़ालि-क यू-अ़ज़ु बिही मन् का-न मिन्कुम् युअ्मिनु बिल्लाहि वल्यौमिल्-आख़िरि, ज़ालिकुम् अज़्का लकुम् व अत्हरु, वल्लाहु यअ़्लमु व अन्तुम् ला तअ़्लमून (232)	और जब तलाक़ दी तुमने औरतों को फिर वे पूरा कर चुकें अपनी इद्दत को तो अब न रोको उनको इससे कि वे निकाह कर लें अपने उन्हीं ख़ाविंदों से जबकि राज़ी हो जायें आपस में मुवाफ़िक़ दस्तूर के, यह नसीहत उसको की जाती है जो कि तुम में से ईमान रखता है अल्लाह पर और क़ियामत के दिन पर, इसमें तुम्हारे वास्ते बड़ी सुथराई (यानी सफ़ाई) है और बहुत पाकीज़गी, और अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते। (232)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 28- औरतों को अधर में रखने की मनाही

और जब तुमने औरतों को (रजई) तलाक़ दे दी हो, फिर वे अपनी इद्दत गुज़रने के क़रीब पहुँच जाएँ तो (या तो) तुम उनको क़ायदे के मुवाफ़िक़ (लौटा करके) निकाह में रहने दो या क़ायदे के मुवाफ़िक़ उनको रिहाई दो। और उनको तकलीफ़ पहुँचाने की ग़र्ज़ से मत रोको, इस इरादे से कि उन पर ज़ुल्म किया करोगे। और जो शख़्स ऐसा (बर्ताव) करेगा सो वह अपना ही नुक़सान करेगा। और अल्लाह तआ़ला के अहकाम को खेल न बनाओ, और हक़ तआ़ला की जो नेमतें तुम पर हैं उनको याद करो, और ख़ास कर इस किताब और हिक्मत की बातों को जो अल्लाह तआ़ला ने तुम पर (इस हैसियत से) नाज़िल फ़रमाई है कि तुमको इसके ज़रिये से नसीहत फ़रमाते हैं। और अल्लाह तआ़ला से डरते रहो और यक़ीन रखो कि अल्लाह तआ़ला हर चीज़ को ख़ूब जानते हैं।

हुक्म 29- औरतों को दूसरे निकाह से रोकने की मनाही

और जब तुम अपनी औरतों को तलाक़ दे दो और औरतें अपनी इद्दत की मियाद पूरी कर चुकें तो तुम उनको इस बात से मत रोको कि वे अपने (तजवीज़ किये हुए) शौहरों से निकाह कर लें, जबकि आपस में सब रज़ामन्द हो जायें क़ायदे के मुवाफ़िक़। इस मज़मून से नसीहत की जाती है उस शख़्स को जो तुम में से अल्लाह तआ़ला और क़ियामत के दिन पर यक़ीन रखता हो, इस नसीहत का क़ुबूल करना तुम्हारे लिये ज़्यादा सफ़ाई और ज़्यादा पाकी की बात है, और अल्लाह तआ़ला (तुम्हारी

मस्लेहतों को) जानते हैं तुम नहीं जानते।

मआरिफ़ व मसाईल

इनसे पहले भी दो आयतों में तलाक़ के क़ानून की अहम धाराओं और इस्लाम में तलाक़ का न्यायपूर्ण और सन्तुलित निज़ाम क़ुरआने करीम के हकीमाना अन्दाज़ के साथ बयान फ़रमाया गया है अब ऊपर बयान हुई दो आयतों में चन्द अहकाम व मसाईल ज़िक्र किये जाते हैं।

तलाक़ के अहकाम के बाद रोक रखने या निकाह को ख़त्म कर देने, दोनों के लिये ख़ास हिदायतें

पहली आयत में पहला मसला यह इरशाद हुआ है कि जब रजई तलाक़ पाने वाली औरतों की इद्दत गुज़रने के क़रीब आये तो शौहर को दो इख़्तियार हासिल हैं- एक यह कि रजअ़त करके उसको अपने निकाह में रहने दे, दूसरे यह कि रजअ़त न करे (यानी उसको वापस न लौटाये) और निकाह का ताल्लुक़ ख़त्म करके उसको बिल्कुल आज़ाद कर दे।

लेकिन दोनों इख़्तियारों के साथ क़ुरआने करीम ने यह क़ैद लगाई कि रखना हो तो क़ायदे के मुताबिक़ रखा जाये और छोड़ना हो तब भी शरई क़ायदे के मुताबिक़ छोड़ा जाये। इसमें 'बिल-मारूफ़' का लफ़्ज़ दोनों जगह अलग-अलग लाकर इसकी तरफ़ इशारा फ़रमा दिया है कि रजअ़त (वापस लौटा लेने) के लिये भी कुछ शर्तें और क़ायदे हैं, और आज़ाद करने के लिये भी। दोनों हालतों में से जिस को भी इख़्तियार करे शरई क़ायदे के मुवाफ़िक़ करे, सिर्फ़ वक़्ती गुस्से या जज़्बात में आकर न करे, दोनों सूरतों के शरई क़ायदों का कुछ हिस्सा तो ख़ुद क़ुरआन में बयान कर दिया गया है, बाक़ी तफ़सीलात रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बयान फ़रमाई हैं।

मिसाल के तौर पर अगर तलाक़ के वाक़िए के बाद जुदाई और अलग होने के नागवार परिणामों का ख़्याल करके राय यह हो जाये कि रजअ़त करके निकाह क़ायम रखना है तो इसके लिये शरीअ़त का क़ायदा यह है कि पिछले गुस्से व नाराज़ी को दिल से निकाल कर अच्छे अन्दाज़ के साथ ज़िन्दगी गुज़ारना और हुक़ूक़ की अदायेगी पहचानना मक़सूद न हो, इसी के लिये बयान हुई आयत में ये अलफ़ाज़ इरशाद फ़रमाये गये:

وَلَا تُمْسِكُوهُنَّ ضِرَارًا لِّتَعْتَدُوا.

"यानी औरतों को अपने निकाह में इसलिये न रोको कि उन पर ज़ुल्म करो।"

दूसरा क़ायदा रजअ़त का यह है जो सूरः तलाक़ में ज़िक्र किया गया है:

وَاَشْهِدُوْا ذَوَیْ عَدْلٍ مِّنْكُمْ وَاَقِيْمُوا الشَّهَادَةَ لِلّٰهِ. (٦٥:٢)

"और आपस में से दो मोतबर शख़्सों को गवाह कर लो फिर अगर गवाही की ज़रूरत पड़े तो ठीक-ठीक अल्लाह के वास्ते बिना किसी रियायत के गवाही दो।"

मतलब यह है कि जब रजअ़त का इरादा करो तो इस पर दो मोतबर मुसलमानों को गवाह बना लो, इसमें कई फ़ायदे हैं- एक यह कि अगर औरत की तरफ़ से रजअ़त के ख़िलाफ़ कोई दावा हो तो

इस गवाही से काम लिया जा सके।

दूसरे ख़ुद इनसान को अपने नफ़्स पर भी भरोसा नहीं करना चाहिये, अगर रजअ़त पर शहादत (गवाही) का क़ायदा न जारी किया जाये तो हो सकता है कि कोई शख़्स इद्दत पूरी गुज़र जाने के बाद भी अपनी ग़र्ज़ या शैतानी बहकावे में आकर यह दावा कर बैठे कि मैंने इद्दत गुज़रने से पहले रजअ़त कर ली थी।

इन ख़राबियों को रोकने के लिये क़ुरआन ने यह क़ायदा मुक़र्रर फ़रमा दिया कि रजअ़त करो तो उस पर दो मोतबर गवाह बना लो।

मामले का दूसरा रुख़ यह था कि इद्दत की मोहलत और सोच-विचार का वक़्त मिलने के बावजूद दिलों की नागवारी और नाराज़ी ख़त्म न हुई और ताल्लुक़ को ख़त्म ही करना है तो इस सूरत में बहुत अन्देशा होता है कि दुश्मनी और बदला लेने की भावना भड़क उठे जिसका असर दो शख़्सों से आगे बढ़कर दो ख़ानदानों तक पहुँच सकता है और दोनों तरफ़ की दुनिया व आख़िरत के लिये ख़तरा बन सकता है, इसकी बन्दिश के लिये मुख़्तसर तौर पर तो यही इरशाद फ़रमाया गया है कि:

أَوْ سَرِّحُوهُنَّ بِمَعْرُوفٍ

यानी छोड़ना और रिश्ता तोड़ना ही हो तो वह भी क़ायदे के मुवाफ़िक़ करें। इस क़ायदे की कुछ तफ़सीलात ख़ुद क़ुरआने करीम में बयान हुई हैं बाक़ी तफ़सीलात रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के क़ौली और अ़मली बयान से साबित हैं।

मसलन् इससे पहली आयत में इरशाद फ़रमायाः

وَلَا يَحِلُّ لَكُمْ أَنْ تَأْخُذُوا مِمَّا آتَيْتُمُوهُنَّ شَيْئًا

यानी बिना किसी शरई उज़्र के ऐसा न करो कि औरत से तलाक़ के मुआ़वज़े (बदले) में अपना दिया हुआ सामान या मेहर वापस ले लो, या कुछ और मुआ़वज़ा तलब करो।

और इसके बाद की एक आयत में इरशाद फ़रमायाः

وَلِلْمُطَلَّقٰتِ مَتَاعٌ بِالْمَعْرُوفِ حَقًّا عَلَى الْمُتَّقِيْنَ۝ (٢:٢٤١)

"सब तलाक़ दी हुई औरतों के लिये कुछ फ़ायदा पहुँचाना क़ायदे के मुताबिक़ मुक़र्रर हुआ है, उन पर जो अल्लाह से डरते हैं।"

फ़ायदा पहुँचाने की तफ़सीर रुख़्सत के वक़्त तलाक़ दी हुई औरत को कुछ तोहफ़ा नक़द या कम से कम एक जोड़ा कपड़े का देना है। इसमें तलाक़ देने वाले शौहर पर मुतल्लक़ा औरत के कुछ हुक़ूक़ वाजिब व लाज़िम करके और कुछ बतौर एहसान व सुलूक के लागू कर दिये गये हैं जो बुलन्द अख़्लाक़ और अच्छे बर्ताव की पाकीज़ा तालीम है, और जिसमें इस तरफ़ हिदायत है कि जिस तरह निकाह एक मामला और आपसी बन्धन था इसी तरह तलाक़ भी एक मामले का ख़त्म करना है और मामले के ख़त्म करने को दुश्मनी और जंग व झगड़े का सामान बनाने की कोई वजह नहीं, मामले का तोड़ना और ख़त्म करना भी ख़ूबसूरती और अच्छे अन्दाज़ के साथ होना चाहिये कि तलाक़ के बाद मुतल्लक़ा (तलाक़ पाने वाली) औरत को फ़ायदा पहुँचाया जाये।

इस फ़ायदे की तफ़सील यह है कि इद्दत के दिनों में उसको अपने घर में रहने दे, उसका पूरा

ख़र्च बरदाश्त करे, अगर मेहर अब तक नहीं दिया है और तन्हाई हो चुकी तो पूरा मेहर अदा करे और तन्हाई से पहले ही तलाक़ का वाक़िआ पेश आ गया है तो आधा मेहर दिल की ख़ुशी के साथ अदा करे। यह तो सब वाजिब हुक़ूक़ हैं जो तलाक़ देने वाले को लाज़िमी तौर पर अदा करने हैं और मुस्तहब और अफ़ज़ल (अच्छा और बेहतर) यह है कि मुतल्लक़ा औरत को रुख़्सत करने के वक़्त कुछ नक़द या कम से कम एक जोड़ा देकर रुख़्सत किया जाये। सुब्हानल्लाह! क्या पाकीज़ा तालीम है कि जो चीज़ें उर्फ़ में लड़ाई-झगड़े मरने-मारने के असबाब और ख़ानदानों की तबाही तक पहुँचाने वाली हैं उनको हमेशा की मुहब्बत व मुसर्रत में तब्दील कर दिया गया।

इन सब अहकाम के बाद इरशाद फ़रमायाः

وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَقَدْ ظَلَمَ نَفْسَهٗ

"यानी जो शख़्स अल्लाह की इन हदों के ख़िलाफ़ करेगा वह अपना ही नुक़सान करेगा", आख़िरत में तो ज़ाहिर है कि वहाँ हर ज़ुल्म व ज़्यादती का बदला अल्लाह की बारगाह में लिया जायेगा, और जब तक मज़लूम का बदला ज़ालिम से न ले लिया जायेगा वह आगे न बढ़ेगा।

और दुनिया में भी अगर अक़्ल व समझ और तजुर्बे के साथ ग़ौर किया जाये तो नज़र आयेगा कि कोई ज़ालिम बज़ाहिर तो मज़लूम पर ज़ुल्म करके अपना दिल ठंडा कर लेता है लेकिन उसके ख़राब नतीजे इस दुनिया में भी उसको अक्सर ज़लील व ख़्वार करते हैं और वह समझे या न समझे अक्सर ऐसी आफ़तों में मुब्तला होता है कि ज़ुल्म का नतीजा उसको दुनिया में भी कुछ न कुछ चखना पड़ता है। इसी को शैख़ सअ़दी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमायाः

पिन्दाश्त सितमगर कि जफ़ा बरमा कर्द
बर गर्दने वे बमानद् व बरमा ब-गुज़िश्त

(यानी हम पर ज़ुल्म करने वाले सितमगर अच्छी तरह जान ले कि तेरे सितम का वार हम पर से तो गुज़र गया मगर तेरी गर्दन पर उसका वार होना बाक़ी है। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**)

क़ुरआने करीम का हिक्मत भरा और ख़ास अन्दाज़े बयान यह है कि वह क़ानून को दुनिया के सज़ाओं की क़ानूनों की तरह बयान नहीं करता बल्कि तरबियत देने और शफ़क़त भरे अन्दाज़ में क़ानून का बयान उसकी हिक्मत व मस्लेहत की वज़ाहत, उसके ख़िलाफ़ करने में इनसान की मज़र्रत व नुक़सान का ऐसा सिलसिला बयान करता है जिसको देखकर कोई इनसान जो इनसानियत के लिबास से बाहर न हो उन अपराधों पर क़दम बढ़ा ही नहीं सकता, हर क़ानून के पीछे ख़ुदा का ख़ौफ़ और आख़िरत का हिसाब याद दिलाया जाता है।

निकाह और तलाक़ को खेल न बनाओ

दूसरा मसला इस आयत में यह इरशाद फ़रमाया गया कि अल्लाह तआ़ला की आयतों को खेल न बनाओः

وَلَا تَتَّخِذُوْٓا اٰيٰتِ اللّٰهِ هُزُوًا

खेल बनाने की एक तफ़सीर तो यह है कि निकाह व तलाक़ के लिये अल्लाह तआ़ला ने जो हदें और शर्तें मुक़र्रर कर दी हैं उनकी ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) करना। और दूसरी तफ़सीर हज़रत अबू दर्दा

रज़ियल्लाहु अन्हु से मन्क़ूल है वह यह कि इस्लाम से पहले ज़माने में कुछ लोग तलाक़ देकर या गुलाम आज़ाद करके मुकर जाते और कहते थे कि मैंने तो हंसी-मज़ाक़ में कह दिया था, तलाक़ या आज़ाद करने की नीयत नहीं थी। इस पर यह आयत नाज़िल हुई जिसने यह फ़ैसला कर दिया कि तलाक़ व निकाह को अगर किसी ने खेल या मज़ाक़ में भी पूरा कर दिया तो वो नाफ़िज़ हो जायेंगे नीयत न करने का उज़्र (बहाना) नहीं सुना जायेगा।

नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया है कि तीन चीज़ें ऐसी हैं जिनमें हंसी के तौर पर करना और वास्तविक तौर पर करना दोनों बराबर हैं- एक तलाक़, दूसरे आज़ाद करना, तीसरे निकाह। (इब्ने मर्दूया, हज़रत इब्ने अब्बास से, व इब्ने मुन्ज़िर, हज़रत उबादा बिन सामित से)

और हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से इस हदीस में ये अलफ़ाज़ मन्क़ूल हैं:

ثلاث جد هن جد وهزلهن جد النكاح والطلاق والرجعة.

"यानी तीन चीज़ें ऐसी हैं जिनको क़स्द व इरादे से कहना और हंसी-मज़ाक़ के तौर पर कहना बराबर है- एक निकाह, दूसरे तलाक़, तीसरे तलाक़ से रुजू करना।" (तफ़सीरे मज़हरी)

इन तीनों चीज़ों में शरई हुक्म यह है कि दो मर्द व औरत अगर निकाह का इरादा किये बग़ैर हंसी-हंसी में गवाहों के सामने निकाह का ईजाब व क़ुबूल कर लें तो भी निकाह बंध जाता है। इसी तरह अगर बिना इरादे के हंसी-हंसी में स्पष्ट तौर पर तलाक़ दे दे तो तलाक़ हो जाती है, या रजअ़त करे (एक या दो तलाक़ देने के बाद इद्दत के दौरान बीवी को वापस रख ले) तो रजअ़त हो जाती है। ऐसे ही किसी ग़ुलाम को हंसी में आज़ाद करने को कह दे तो ग़ुलाम-बाँदी आज़ाद हो जाते हैं, हंसी-मज़ाक़ कोई उज़्र नहीं माना जाता।

नोटः- ईजाब व क़ुबूल का मतलब यह है कि मर्द व औरत में से एक दूसरे के सामने यह अलफ़ाज़ कहे- मसलन् औरत कहे कि मैं अपने आपको तुम्हारे निकाह में देती हूँ और मर्द कहे कि मैंने क़ुबूल किया, और यह ईजाब व क़ुबूल दो गवाहों के सामने हो तो उनका निकाह हो गया।

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

इस हुक्म के बयान के बाद फिर क़ुरआने करीम ने अपने मख़्सूस अन्दाज़ में इनसान को हक़ तआ़ला की इताअ़त और आख़िरत के ख़ौफ़ का सबक़ दिया। इरशाद फ़रमायाः

وَاذْكُرُوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَمَآ اَنْزَلَ عَلَيْكُمْ مِّنَ الْكِتٰبِ وَالْحِكْمَةِ يَعِظُكُمْ بِهٖ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ○

"यानी याद करो अल्लाह तआ़ला की नेमत को जो तुम पर नाज़िल फ़रमाई और याद करो उस ख़ास नेमत को जो किताब की सूरत में तुम्हें दी गई, और अल्लाह से डरो और समझ लो कि अल्लाह तआ़ला हर चीज़ को ख़ूब जानते हैं।" तुम्हारी नीयतों, इरादों और दिलों में छुपे हुए भेदों से बा-ख़बर हैं। इसलिये अगर बीवी को तलाक़ देकर आज़ाद ही करना हो तो आपसी झगड़े और एक दूसरे की हक़-तल्फ़ी और ज़ुल्म से बचने बचाने की नीयत करो। गुस्से का बदला लेने के लिये या बीवी को ज़लील व रुस्वा करने या तकलीफ़ पहुँचाने की नीयत से न करो।

तलाक़ में असल यही है कि खुले लफ़्ज़ों में और 'रजई तलाक़' दी जाये

तीसरा मसला जिसकी तरफ़ इस आयत में इशारा किया गया यह है कि शरीअ़त व सुन्नत की नज़र में असल यही है कि कोई आदमी अगर तलाक़ देने पर मजबूर ही हो जाये तो साफ़ व स्पष्ट लफ़्ज़ों में एक तलाक़े रजई दे दे, ताकि इद्दत तक रजअ़त (वापस रखने) का हक़ बाक़ी रहे। ऐसे अलफ़ाज़ न बोले जिनसे फ़ौरी तौर पर मियाँ-बीवी का ताल्लुक़ ख़त्म हो जाये जिसको तलाक़े बाइन कहते हैं, और न तीन तलाक़ तक पहुँचे जिसके बाद आपस में फिर से नया निकाह करना भी हराम हो जाये। यह इशारा लफ़्ज़ 'तल्लक़्तुमुन्निसा-अ' को बिना किसी क़ैद के मुतलक़ ज़िक्र करने से हासिल हुआ, क्योंकि जो हुक्म इस आयत में बतलाया है वह अगरचे सिर्फ़ तलाक़े रजई एक दो तक के लिये है तलाक़े बाइन या तीन तलाक़ का यह हुक्म नहीं, मगर क़ुरआने करीम ने कोई क़ैद इसकी ज़िक्र न फ़रमाकर इस तरफ़ इशारा कर दिया कि शरई क़ानून के मुताबिक़ असल तलाक़ रजई तलाक़ ही है, दूसरी सूरतें कराहत या नापसन्दीदगी से ख़ाली नहीं।

तलाक़ पाने वाली औरतों को बिना शरई कारण के अपनी मर्ज़ी की शादी करने से रोकना हराम है

दूसरी आयत में उस ग़लत और ज़ालिमाना सुलूक से रोका गया है जो आम तौर पर मुतल्लक़ा (तलाक़ पाने वाली) औरतों के साथ किया जाता है कि उनको दूसरी शादी करने से रोका जाता है। पहला शौहर भी उमूमन अपनी मुतल्लक़ा बीवी को दूसरे शख़्स के निकाह में जाने से रोकता और इसको अपनी इज़्ज़त के ख़िलाफ़ समझता है। और कुछ ख़ानदानों में लड़की के वली और सरपरस्त भी उसको दूसरी शादी करने से रोकते हैं, और उनमें से कुछ इस लालच में रोकते हैं कि उसकी शादी पर हम कोई रक़म अपने लिये हासिल कर लें। कई बार मुतल्लक़ा औरत फिर अपने पहले शौहर से निकाह पर राज़ी हो जाती है, वे अब दोनों के राज़ी होने के बाद भी उनके आपसी निकाह से रोक और बाधा होते हैं। आज़ाद औरतों को अपनी मर्ज़ी की शादी से बिना शरई उज़्र के रोकना चाहे पहले शौहर की तरफ़ से हो या लड़की के सरपरस्तों (अभिभावकों) की तरफ़ से, बड़ा ज़ुल्म है। इस ज़ुल्म के बन्द करने को इस आयत में फ़रमाया गया है।

इस आयत का शाने नुज़ूल (उतरने का मौक़ा और सबब) भी एक ऐसा ही वाक़िआ है। सही बुख़ारी में है कि हज़रत मअ़क़ल बिन यसार रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अपनी बहन की शादी एक शख़्स के साथ कर दी थी, उसने तलाक़ दे दी और इद्दत भी गुज़र गई। उसके बाद यह शख़्स अपने फ़ेल (हरकत) पर शर्मिन्दा हुआ और चाहा कि दोबारा निकाह कर ले, उसकी बीवी यानी मअ़क़ल बिन यसार रज़ियल्लाहु अ़न्हु की बहन भी इस पर तैयार हो गई, लेकिन जब उस शख़्स ने हज़रत मअ़क़ल रज़ियल्लाहु अ़न्हु से इसका ज़िक्र किया तो उनको तलाक़ देने पर गुस्सा था, उन्होंने कहा कि मैंने

तुम्हारी इज़्ज़त की, अपनी बहन तुम्हारे निकाह में दे दी, तुमने उसकी यह क़द्र की कि उसको तलाक़ दे दी, अब फिर तुम मेरे पास आये हो कि दोबारा निकाह करूँ। ख़ुदा की क़सम! अब वह तुम्हारे निकाह में न लौटेगी।

इसी तरह एक वाक़िआ हज़रत जाबिर बिन अ़ब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु की चचाज़ाद बहन का पेश आया था। इन वाक़िआत पर उक्त आयत नाज़िल हुई जिसमें हज़रत मअ़क़ल रज़ियल्लाहु अ़न्हु और हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के इस रवैये को नापसन्द व नाजायज़ क़रार दिया गया।

सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सच्चे आ़शिक़ थे, आयते करीमा के सुनते ही हज़रत मअ़क़ल बिन यसार रज़ियल्लाहु अ़न्हु का सारा ग़ुस्सा ठंडा हो गया और ख़ुद जाकर उस शख़्स से बहन का दोबारा निकाह कर दिया, और क़सम का कफ़्फ़ारा अदा किया। इसी तरह हज़रत जाबिर बिन अ़ब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने भी हुक्म का पालन किया।

इस आयत के ख़िताब में वे शौहर भी दाख़िल हैं जिन्होंने तलाक़ दी है और लड़की के वली व सरपरस्त भी, दोनों को यह हुक्म दिया गया किः

فَلَا تَعْضُلُوْهُنَّ اَنْ يَّنْكِحْنَ اَزْوَاجَهُنَّ اِذَا تَرَاضَوْا بَيْنَهُمْ بِالْمَعْرُوْفِ.

"यानी मत रोके मुतल्लक़ा (तलाक़ पाने वाली) औ़रतों को इस बात से कि वे अपने तजवीज़ किये हुए शौहरों से निकाह करें।" चाहे पहले ही शौहर हों जिन्होंने तलाक़ दी थी या दूसरे लोग, मगर इसके साथ ही यह शर्त लगा दी गईः

اِذَا تَرَاضَوْا بَيْنَهُمْ بِالْمَعْرُوْفِ.

"यानी जब दोनों मर्द व औ़रत शरई क़ायदे के मुताबिक़ रज़ामन्द हो जायें।" तो निकाह से न रोको, जिसमें इशारा फ़रमाया गया कि अगर उन दोनों की रज़ामन्दी न हो कोई किसी पर ज़ोर ज़बरदस्ती करना चाहे तो सब को रोकने का हक़ है, या रज़ामन्दी भी हो मगर शरई क़ायदे के मुताबिक़ न हो, जैसे बिना निकाह के आपस में मियाँ-बीवी की तरह रहने पर रज़ामन्द हो जायें, या तीन तलाक़ों के बाद नाजायज़ तौर पर आपस में निकाह कर लें, या इद्दत के दिनों में दूसरे शौहर से निकाह का इरादा हो तो हर मुसलमान को ख़ास तौर से उन लोगों को जिनका उन मर्द व औ़रत के साथ ताल्लुक़ है रोकने का हक़ हासिल है, बल्कि अपनी हिम्मत व ताक़त के मुताबिक़ रोकना वाजिब है। इसी तरह कोई लड़की अपने सरपरस्तों (वली और अभिभावकों) की इजाज़त के बिना अपनी बराबरी वालों (बिरादरी) से बाहर दूसरे कुफ़्व (बराबरी) में निकाह करना चाहे या अपने मेहरे मिस्ल से कम पर निकाह करना चाहे जिसका असर ख़ानदान पर पड़ता है, जिसका उसको हक़ नहीं, तो यह रज़ामन्दी भी शरई क़ायदे के मुताबिक़ नहीं। इस सूरत में लड़की के सरपरस्तों को इस निकाह से रोकने का हक़ हासिल है।

'इज़ा तराज़ौ' (जब वे दोनों राज़ी हो जायें) के अलफ़ाज़ से इस तरफ़ भी इशारा हो गया कि आ़क़िला बालिग़ा लड़की का निकाह बग़ैर उसकी रज़ा या इजाज़त के नहीं हो सकता। आयत के आख़िर में तीन जुमले इरशाद फ़रमाये गये- एक यह किः

ذٰلِكَ يُوْعَظُ بِهٖ مَنْ كَانَ مِنْكُمْ يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ

"यानी ये अहकाम उन लोगों के लिये हैं जो अल्लाह पर और क़ियामत के दिन पर ईमान रखते हैं।" इसमें इशारा फ़रमा दिया गया कि अल्लाह पर और क़ियामत के दिन पर ईमान रखने का लाज़िमी नतीजा यह है कि आदमी अल्लाह के इन अहकाम का पूरा पाबन्द हो, और जो लोग इन अहकाम पर अ़मल करने में कोताही करते हैं वे समझ लें कि उनके ईमान में ख़लल है।

दूसरा जुमला यह इरशाद फ़रमाया कि:

ذٰلِكُمْ اَزْكٰى لَكُمْ وَاَطْهَرُ

"यानी इन अहकाम की पाबन्दी तुम्हारे लिये पाकी और सफ़ाई का ज़रिया है।"

इसमें इशारा फ़रमाया गया कि इनकी ख़िलाफ़वर्ज़ी (इन पर अ़मल न करने और उल्लंघन करने) का नतीजा गुनाहों की गन्दगी में लिप्तता और फ़ितना व फ़साद है। क्योंकि आ़क़िला बालिग़ा जवान लड़कियों को मुतलक़ तौर पर निकाह से रोका गया तो एक तरफ़ उन पर ज़ुल्म और उनकी हक़-तल्फ़ी है और दूसरी तरफ़ उनकी आबरू व पाकदामनी को ख़तरे में डालना है। तीसरे अगर ख़ुदा न करे वे किसी गुनाह में मुब्तला हों तो इसका वबाल उन लोगों पर भी पड़ेगा जिन्होंने उनको निकाह से रोका और आख़िरत के वबाल से पहले बहुत मुम्किन है कि उन मजबूर औ़रतों का यह गुनाहों में मुब्तला होना ख़ुद मर्दों में लड़ाई-झगड़े और क़त्ल व क़िताल तक नौबत पहुँचा दे, जैसा कि रात-दिन देखने में आता है। इस सूरत में आख़िरत के वबाल और अ़ज़ाब से पहले उनका अ़मल दुनिया ही में वबाल बन जायेगा। और अगर मुतलक़ तौर पर निकाह से तो न रोका मगर उनकी पसन्द के ख़िलाफ़ दूसरे शख़्स से निकाह पर मजबूर किया गया तो इसका नतीजा भी हमेशा की मुख़ालफ़त और फ़ितना व फ़साद या तलाक़ व ख़ुला होगा, जिसके नागवार प्रभाव ज़ाहिर हैं। इसलिये फ़रमाया गया कि उनको उनके तजवीज़ (तय और पसन्द) किये हुए शौहरों से निकाह करने से न रोकना ही तुम्हारे लिये पाकी और सफ़ाई का ज़रिया है।

तीसरा जुमला यह इरशाद फ़रमाया कि:

وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ۝

"यानी तुम्हारी मस्लेहतों को अल्लाह तआ़ला जानते हैं तुम नहीं जानते।"

इस इरशाद का मंशा यह है कि जो लोग मुतल्लक़ा (तलाक़ दी हुई) औ़रतों को निकाह से रोकते हैं वे अपने नज़दीक इसमें कुछ मस्लेहतें और फ़ायदे सोचते हैं, जैसे अपनी इ़ज़्ज़त व ग़ैरत का ख़्याल, या यह कि उनकी शादी के बदले कुछ माली फ़ायदा हासिल किया जाये। इस शैतानी जाल और बेजा मस्लेहत अन्देशी को दूर करने के लिये फ़रमाया गया कि अल्लाह तआ़ला तुम्हारी मस्लेहतों और फ़ायदों से ख़ूब वाक़िफ़ हैं, उनकी रियायत करके अहकाम देते हैं, और तुम चूँकि वास्तविकता, तथ्यों और मामलात के अन्जाम से बेख़बर हो इसलिये अपने नाक़िस ग़ौर व फ़िक्र और अधूरी राय से कभी ऐसी चीज़ों को मस्लेहत और फ़ायदा समझ लेते हो जिनमें तुम्हारी हलाकत व बरबादी है। तुम जिस इ़ज़्ज़त व ग़ैरत को थामते फिरते हो अगर मुतल्लक़ा औ़रतें बेक़ाबू हो गईं तो सब इ़ज़्ज़त ख़ाक में

मिल जायेगी और माली फ़ायदों के नाजायज़ तसव्वुरात (कल्पनाएँ) मुम्किन है कि तुम्हें ऐसे फ़ितनों और झगड़ों में मुब्तला कर दें, जिनमें माल के साथ जान का भी ख़तरा हो जाये।

क़ानून बनाने और उसको लागू करने में क़ुरआने करीम का बेनज़ीर हकीमाना उसूल

क़ुरआने करीम ने इस जगह एक क़ानून पेश फ़रमाया कि मुतल्लक़ा औरतों को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ निकाह से रोकना जुर्म है। इस क़ानून को बयान फ़रमाने के बाद इस पर अ़मल करने को आसान और इसके लिये अ़वाम के ज़ेहनों को हमवार करने के वास्ते तीन जुमले इरशाद फ़रमाये जिनमें से पहले जुमले में क़ियामत के दिन के हिसाब और अपराधों की सज़ा से डराकर इनसान को इस क़ानून पर अ़मल करने के लिये आमादा फ़रमाया। दूसरे जुमले में इस क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन करने) में जो ख़राबियाँ और इनसानियत के लिये नुक़सानात हैं उनको बतलाकर क़ानून की पाबन्दी के लिये तैयार किया। तीसरे जुमले में यह इरशाद फ़रमाया कि तुम्हारी अपनी मस्लेहत भी इसी में है कि ख़ुदा तआ़ला के बताये हुए क़ानून की पाबन्दी करो उसके ख़िलाफ़ करने में अगर तुम कोई मस्लेहत सोचते हो तो वह तुम्हारी नज़र की कोताही और परिणामों से बेख़बरी का नतीजा है।

क़ुरआने करीम का यह अन्दाज़ और तर्ज़े बयान सिर्फ़ यहीं नहीं बल्कि तमाम अहकाम में जारी है कि एक क़ानून बताया जाता है तो उसके साथ ही ख़ुदा तआ़ला और आख़िरत के हिसाब व अ़ज़ाब से डराया जाता है। हर क़ानून के आगे पीछे 'इत्तक़ुल्लाह' (अल्लाह से डरो) या 'इन्नल्ला-ह ख़बीरुम् बिमा तअ़्मलून' (अल्लाह तआ़ला को तुम्हारे हर काम की ख़बर है) 'इन्नल्ला-ह बिमा तअ़्मलू-न बसीर' (अल्लाह तआ़ला उस सब को देख रहा है जो तुम करते हो) वग़ैरह जुमले लगाये हुए हैं। क़ुरआन सारी दुनिया और क़ियामत तक आने वाली नस्लों के लिये ज़िन्दगी का एक मुकम्मल निज़ाम और ज़िन्दगी के हर शोबे (क्षेत्र) पर हावी क़ानून है। इसमें हदों और सज़ाओं का भी बयान है लेकिन इसकी अदा सारी दुनिया के क़ानून की किताबों से निराली है। इसका अन्दाज़े बयान हाकिमाना से ज़्यादा मुरब्बियाना है। इसमें हर क़ानून के बयान के साथ इसकी कोशिश की गई है कि कोई इनसान इस क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) करके सज़ा का मुस्तहिक़ न बने। दुनिया की हुकूमतों की तरह नहीं कि उन्होंने एक क़ानून बना दिया और उसका प्रचार व प्रसार कर दिया, जो कोई उस क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) करता है वह अपनी सज़ा ख़ुद भुगतता है।

इसके अ़लावा क़ुरआन के इस ख़ास अन्दाज़े बयान से एक दूर तक पहुँचने वाला बड़ा फ़ायदा यह है कि इसको देखने सुनने के बाद इनसान इस क़ानून की पाबन्दी सिर्फ़ इस बिना पर नहीं करता कि अगर ख़िलाफ़ करेगा तो दुनिया में उसको कोई सज़ा मिल जायेगी, बल्कि दुनिया की सज़ा से ज़्यादा अल्लाह तआ़ला की नाराज़ी और आख़िरत की सज़ा की फ़िक्र होती है, और इसी फ़िक्र की बिना पर उसका ज़ाहिर व बातिन, छुपी व ज़ाहिर हालत बराबर हो जाती है। वह किसी ऐसी जगह में भी क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं कर सकता जहाँ किसी ज़ाहिरी या ख़ुफ़िया पुलिस की भी पहुँच न हो, क्योंकि उसका अ़क़ीदा है कि अल्लाह तआ़ला जल्ल शानुहू हर जगह हाज़िर व नाज़िर और ज़र्रे-ज़र्रे से

बा-ख़बर हैं। यही सबब है कि क़ुरआनी तालीम ने रहन-सहन और ज़िन्दगी गुज़ारने के जो उसूल तैयार किये थे हर मुसलमान उसकी पाबन्दी को अपनी ज़िन्दगी का उद्देश्य ख़्याल करता था।

क़ुरआनी निज़ामे हुकूमत की यही विशेषता है कि उसमें एक तरफ़ क़ानून की हदों व पाबन्दियों का ज़िक्र है तो दूसरी तरफ़ तरग़ीब व तरहीब (शौक़ दिलाने व डराने) के ज़रिये इनसान के अख़्लाक़ व किरदार को ऐसा बुलन्द किया गया है कि क़ानूनी हदें व पाबन्दियाँ उसके लिये एक तबई चीज़ बन जाती हैं, जिसके सामने वह अपने जज़्बात और तमाम नफ़्सानी इच्छाओं को पीठ पीछे डाल देता है। दुनिया की हुकूमतों और क़ौमों की तारीख़ और उनमें जुर्म व सज़ा के वाक़िआत पर ज़रा गहरी नज़र डालिये तो मालूम होगा कि सिर्फ़ क़ानून से कभी किसी क़ौम या फ़र्द की इस्लाह (सुधार) नहीं होती, केवल पुलिस और फ़ौज से कभी अपराधों पर बन्दिश नहीं लग सकी है, जब तक क़ानून के साथ अल्लाह तआ़ला के ख़ौफ़ व अ़ज़मत का सिक्का उसके दिन पर न बैठे। अपराधों से रोकने वाली चीज़ दर असल अल्लाह का ख़ौफ़ और आख़िरत के हिसाब का डर है, यह न हो तो कोई शख़्स किसी से अपराधों को नहीं छुड़ा सकता।

وَالْوَالِدٰتُ يُرْضِعْنَ اَوْلَادَهُنَّ حَوْلَيْنِ كَامِلَيْنِ لِمَنْ اَرَادَ اَنْ يُّتِمَّ الرَّضَاعَةَ ؕ وَعَلَى الْمَوْلُوْدِ لَهٗ رِزْقُهُنَّ وَكِسْوَتُهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ؕ لَا تُكَلَّفُ نَفْسٌ اِلَّا وُسْعَهَا ۚ لَا تُضَآرَّ وَالِدَةٌ ۢ بِوَلَدِهَا وَلَا مَوْلُوْدٌ لَّهٗ بِوَلَدِهٖ ۚ وَعَلَى الْوَارِثِ مِثْلُ ذٰلِكَ ۚ فَاِنْ اَرَادَا فِصَالًا عَنْ تَرَاضٍ مِّنْهُمَا وَتَشَاوُرٍ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا ؕ وَاِنْ اَرَدْتُّمْ اَنْ تَسْتَرْضِعُوْٓا اَوْلَادَكُمْ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ اِذَا سَلَّمْتُمْ مَّآ اٰتَيْتُمْ بِالْمَعْرُوْفِ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝

वल्वालिदातु युरज़िअ़्-न औलादहुन्-न हौलैनि कामिलैनि लि-मन् अरा-द अंय्युतिम्मर्रज़ा-अ़-त, व अ़लल्-मौलूदि लहू रिज़्क़ुहुन्-न व किस्वतुहुन्-न बिल्मअ़्रूफ़ि, ला तुकल्लफ़ु नफ़्सुन् इल्ला वुस्अ़हा ला तुज़ार्-र वालि-दतुम् बि-व-लदिहा व ला मौलूदुल्लहू बि-व-लदिही, व अ़लल्-वारिसि मिस्लु ज़ालि-क फ़-इन् अरादा फ़िसालन् अ़न् तराज़िम्	और बच्चे वाली औरतें दूध पिलायें अपने बच्चों को दो साल पूरे जो कोई चाहे कि पूरी करे दूध की मुद्दत। और लड़के वाले यानी बाप पर है खाना और कपड़ा उन औरतों का मुवाफ़िक़ दस्तूर के, तकलीफ़ नहीं दी जाती किसी को मगर उसकी गुंजाईश के मुवाफ़िक़, न नुक़सान दिया जाये माँ को उसके बच्चे की वजह से और न उसको जिसका वह बच्चा है यानी बाप को उसके बच्चे की वजह से, और वारिसों पर भी यही लाज़िम है। फिर अगर माँ-बाप

मिन्हुमा व तशावुरिन् फ़ला जुना-ह अ़लैहिमा, व इन् अरत्तुम् अन् तस्तर्ज़िअू औलादकुम् फ़ला जुना-ह अ़लैकुम् इज़ा सल्लम्तुम् मा आतैतुम् बिल्मअ़्रूफ़ि, वत्तक़ुल्ला-ह वअ़्लमू अन्नल्ला-ह बिमा तअ़्मलू-न बसीर (233)	चाहें कि दूध छुड़ा लें यानी दो बरस के अन्दर ही अपनी रज़ा और मश्विरे से तो उनपर कुछ गुनाह नहीं, और अगर तुम लोग चाहो कि दूध पिलवाओ किसी दाया से अपनी औलाद को तो भी तुम पर कुछ गुनाह नहीं जबकि हवाले कर दो जो तुमने देना ठहराया था मुवाफ़िक़ दस्तूर के, और डरो अल्लाह से, और जान रखो कि अल्लाह तुम्हारे सब कामों को ख़ूब देखता है। (233)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 30- दूध पिलाना

और माँयें अपने बच्चों को पूरे दो साल दूध पिलाया करें (यह मुद्दत उसके लिए है) जो दूध पिलाने की तकमील करना चाहे। और जिसका बच्चा है (यानी बाप) उसके ज़िम्मे है उन माँओं का खाना और कपड़ा क़ायदे के मुवाफ़िक़, किसी शख़्स को हुक्म नहीं दिया जाता मगर उसकी बरदाश्त के मुवाफ़िक़। किसी माँ को तकलीफ़ न पहुँचाना चाहिए उसके बच्चे की वजह से, और न किसी के बाप को तकलीफ़ देनी चाहिए उसके बच्चे की वजह से और (अगर बाप ज़िन्दा न हो तो) इसी तरह (यानी ज़िक्र हुए तरीक़े के मुताबिक़) (बच्चे की परवरिश का इन्तिज़ाम) उसके (मेहरम रिश्तेदारों के) ज़िम्मे है जो (शरई तौर पर बच्चे का) वारिस (होने का हक़ रखता) हो। फिर (यह समझ लो कि) अगर दोनों (माँ और बाप दो साल से कम में) दूध छुड़ाना चाहें अपनी सहमति और मश्विरे से तो दोनों पर किसी क़िस्म का गुनाह नहीं, और अगर तुम लोग (माँ-बाप के होते हुए भी किसी ज़रूरी मस्लेहत से जैसे यह कि माँ का दूध अच्छा नहीं, बच्चे को नुक़सान होगा) अपने बच्चों को किसी और अन्ना का दूध पिलवाना चाहो तब भी तुम पर कोई गुनाह नहीं, जबकि उनके हवाले कर दो जो कुछ उनको देना किया है क़ायदे के मुवाफ़िक़। और हक़ तआ़ला से डरते रहो, और यक़ीन रखो कि अल्लाह तआ़ला तुम्हारे किए हुए कामों को ख़ूब देख रहे हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत में रज़ाअ़त यानी बच्चों को दूध पिलाने के बारे में अहकाम हैं, इससे पहली और बाद की आयतों में तलाक़ के अहकाम मज़कूर हैं, बीच में दूध पिलाने के अहकाम इस मुनासबत से ज़िक्र किये गये हैं कि उमूमन तलाक़ के बाद बच्चों की परवरिश और दूध पिलाने या पिलवाने के मामलों में झगड़े पेश आ जाते हैं और उनमें झगड़े फ़साद होते हैं, इसलिये इस आयत में ऐसे सन्तुलित अहकाम

बयान फ़रमा दिये गये जो औरत व मर्द दोनों के लिये आसान और मुनासिब हैं, चाहे दूध पिलाने या छुड़ाने के मामलात, निकाह क़ायम रहने की हालत में पेश आयें या तलाक़ देने के बाद, दोनों सूरतों में इसका एक ऐसा निज़ाम बतला दिया गया जिससे झगड़े फ़साद या किसी फ़रीक़ पर ज़ुल्म व ज़्यादती का रास्ता न रहे। जैसे आयत के पहले जुमले में इरशाद फ़रमाया:

وَالْوَالِدٰتُ يُرْضِعْنَ اَوْلَادَهُنَّ حَوْلَيْنِ كَامِلَيْنِ لِمَنْ اَرَادَ اَنْ يُّتِمَّ الرَّضَاعَةَ

यानी "माँयें अपने बच्चों को दूध पिलाया करें पूरे दो साल जबकि कोई प्रबल उज़्र उससे पहले दूध छुड़ाने के लिये मजबूर न करे।"

इस आयत से रज़ाअ़त (बच्चों को दूध पिलाने) के चन्द मसाईल मालूम हुए:

दूध पिलाना माँ के ज़िम्मे वाजिब है

अव्वल यह कि दूध पिलाना माँ के ज़िम्मे वाजिब है, बिना उज़्र किसी ज़िद या नाराज़ी के सबब दूध न पिलाये तो गुनाहगार होगी, और दूध पिलाने पर वह शौहर से कोई उजरत व मुआवज़ा (बदला) नहीं ले सकती जब तक वह उसके अपने निकाह में है, क्योंकि वह उसका अपना फ़र्ज़ है।

दूध पिलाने की पूरी मुद्दत

दूसरा मसला यह मालूम हुआ कि दूध पिलाने की पूरी मुद्दत दो साल है, जब तक कोई ख़ास उज़्र (मजबूरी) रुकावट न हो बच्चे का हक़ है कि यह मुद्दत पूरी की जाये।

इससे यह भी मालूम हुआ कि दूध पिलाने के लिये पूरी मुद्दत दो साल दी गई है उसके बाद दूध न पिलाया जाये, अलबत्ता क़ुरआन पाक की कुछ आयतों और हदीसों की बिना पर इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक अगर तीस महीने यानी ढ़ाई साल के अ़रसे में भी दूध पिला दिया तो 'अहकामे रज़ाअ़त' (दूध पिलाने के अहकाम) साबित हो जायेंगे और अगर बच्चे की कमज़ोरी वग़ैरह के उज़्र (मजबूरी) से ऐसा किया गया तो गुनाह भी न होगा। ढ़ाई साल पूरे होने के बाद बच्चे को माँ का दूध पिलाना तमाम इमामों के नज़दीक हराम है। इस आयत के दूसरे जुमले में इरशाद है:

وَعَلَى الْمَوْلُوْدِ لَهٗ رِزْقُهُنَّ وَكِسْوَتُهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ لَا تُكَلَّفُ نَفْسٌ اِلَّا وُسْعَهَا.

यानी "बाप के ज़िम्मे है माँओं का खाना और कपड़ा क़ायदे के मुताबिक़। किसी शख़्स को ऐसा हुक्म नहीं दिया जाता जिसको वह बरदाश्त न कर सके।"

इसमें पहली बात क़ाबिले ग़ौर यह है कि माँओं के लिये तो क़ुरआन ने लफ़्ज़ 'वालिदातु' (माँयें) इस्तेमाल किया मगर बाप के लिये मुख़्तसर लफ़्ज़ 'वालिदु' छोड़कर 'अल्मौलूदु लहू' (जिसका बच्चा है) इख़्तियार फ़रमाया, हाँलाकि क़ुरआन में दूसरी जगह लफ़्ज़ 'वालिद' (बाप) भी ज़िक्र हुआ है:

لَا يَجْزِىْ وَالِدٌ عَنْ وَّلَدِهٖ. (۳۱:۳۲)

मगर यहाँ वालिद की जगह 'मौलूद लहू' के इख़्तियार करने में एक ख़ास राज़ है, वह यह कि पूरे क़ुरआने करीम का एक ख़ास अन्दाज़ और तर्ज़े बयान है कि वह किसी क़ानून को दुनिया की हुकूमतों की तरह बयान नहीं करता बल्कि मुरब्बियाना और मुश्फ़िक़ाना (तरबियत और मेहरबानी के) तर्ज़ से

बयान करता है, और ऐसे अन्दाज़ से बयान करता है जिसको क़ुबूल करना और उस पर अ़मल करना इनसान के लिये आसान हो जाये।

यहाँ भी चूँकि बच्चे का नफ़क़ा (ख़र्चा) बाप के ज़िम्मे डाला गया है, हालाँकि वह माँ और बाप दोनों का बच्चा है, मुम्किन था कि बाप को यह हुक्म कुछ भारी मालूम हो, इसलिये बजाय वालिद (बाप) के 'मौलूदुन लहू' का लफ़्ज़ इख़्तियार किया (यानी वह शख़्स जिसका बच्चा है), इसमें इस तरफ़ इशारा कर दिया कि अगरचे बच्चे की पैदाईश में माँ और बाप दोनों की शिर्कत ज़रूर है, मगर बच्चा बाप ही का कहलाता है, नसब बाप ही से चलता है, और जब बच्चा उसका हुआ तो ख़र्च की ज़िम्मेदारी उसको भारी न मालूम होनी चाहिये।

बच्चे को दूध पिलाना माँ के ज़िम्मे और माँ का ज़रूरी ख़र्च बाप के ज़िम्मे है

तीसरा शरई मसला इस आयत से यह मालूम हुआ कि अगरचे दूध पिलाना माँ के ज़िम्मे है लेकिन माँ का 'नान व नफ़क़ा और ज़रूरियाते ज़िन्दगी' (रोटी कपड़ा और ज़रूरी ख़र्च) बाप के ज़िम्मे है, और यह ज़िम्मेदारी जिस वक़्त तक बच्चे की माँ उसके निकाह में या इद्दत में है उस वक़्त तक है और तलाक़ और इद्दत पूरी होने के बाद बीवी होने का नफ़क़ा तो ख़त्म हो जायेगा मगर बच्चे को दूध पिलाने का मुआ़वज़ा देना बाप के ज़िम्मे फिर भी लाज़िम रहेगा। (तफ़सीरे मज़हरी)

बीवी का ख़र्च शौहर की हैसियत के अनुसार होना चाहिये या बीवी की हैसियत के मुवाफ़िक़

चौथा मसलाः इस पर तो इत्तिफ़ाक़ है कि मियाँ बीवी दोनों अमीर मालदार हों तो नफ़क़ा (ख़र्चा) अमीरों जैसा वाजिब होगा और दोनों ग़रीब हों तो ग़रीबों जैसा ख़र्चा वाजिब होगा, अलबत्ता जब दोनों के माली हालात अलग-अलग हों तो इसमें फ़ुक़हा का इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है- 'हिदाया' के लेखक ने 'इमाम ख़िसाफ़' के इस क़ौल पर फ़तवा दिया है कि अगर औ़रत ग़रीब और मर्द मालदार हो तो उसका नफ़क़ा (ख़र्चा) दरमियानी हैसियत का दिया जायेगा कि ग़रीबों से ज़्यादा और मालदारों से कम, और इमाम करख़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक एतिबार शौहर के हाल का होगा। किताब 'फ़त्हुल-क़दीर' में बहुत से फ़ुक़हा का फ़तवा इस पर नक़ल किया है। वल्लाहु आलम

(फ़त्हुल-क़दीर पेज 422 जिल्द 3)

बयान हुई आयत में अहकाम के बाद इरशाद फ़रमायाः

لَا تُضَآرَّ وَالِدَةٌۢ بِوَلَدِهَا وَلَا مَوْلُودٌ لَّهٗ بِوَلَدِهٖ

यानी "न तो किसी माँ को उसके बच्चे की वजह से तकलीफ़ में डालना जायज़ है और न किसी बाप को उसके बच्चे की वजह से।" मतलब यह है कि बच्चे के माँ-बाप आपस में ज़िद्दा-ज़िद्दी न करें, जैसे माँ दूध पिलाने से माज़ूर हो और बाप उस पर यह ज़बरदस्ती करे कि आख़िर उसका भी तो

बच्चा है, यह मजबूर होगी और पिला देगी। या बाप ग़रीब है और माँ को कोई माज़ूरी भी नहीं फिर दूध पिलाने से इसलिये इनकार करे कि उसका भी तो बच्चा है, झक मारकर किसी से पिलवायेगा।

माँ को दूध पिलाने पर मजबूर करने या न करने की तफ़सील

لَا تُضَآرَّ وَالِدَةٌ ۢبِوَلَدِهَا

(यानी माँ को बच्चे की वजह से तकलीफ़ में न डाला जाये) से पाँचवाँ मसला यह मालूम हुआ कि माँ अगर बच्चे को दूध पिलाने से किसी ज़रूरत के सबब इनकार करे तो बाप को उसे मजबूर करना जायज़ नहीं, और अगर बच्चा किसी दूसरी औरत या जानवर का दूध नहीं लेता तो माँ को मजबूर किया जायेगा। यह मसला 'व ला मौलूदुल्-लहू बि-व-लदिही' (और न बाप को उसके बच्चे की वजह से परेशानी में डाला जाये) से मालूम हुआ।

औरत जब तक निकाह में है तो अपने बच्चे को दूध पिलाने की उजरत का मुतालबा नहीं कर सकती, तलाक़ व इद्दत के बाद कर सकती है

छठा मसला यह मालूम हुआ कि अगर बच्चे की माँ दूध पिलाने की उजरत माँगती है तो जब तक उसके निकाह या इद्दत के अन्दर है उजरत के मुतालबे का हक़ नहीं, यहाँ उसका नान व नफ़क़ा (रोटी कपड़ा और ज़रूरी ख़र्च) जो बाप के ज़िम्मे है वही काफ़ी है, अतिरिक्त उजरत का मुतालबा बाप को नुक़सान पहुँचाता है। और अगर तलाक़ की इद्दत गुज़र चुकी है और नफ़क़े की ज़िम्मेदारी ख़त्म हो चुकी है, अब अगर यह मुतल्लक़ा बीवी अपने बच्चे को दूध पिलाने का मुआ़वज़ा बाप से तलब करती है तो बाप को देना पड़ेगा, क्योंकि इसके ख़िलाफ़ करने में माँ का नुक़सान है। शर्त यह है कि यह मुआ़वज़ा उतना ही तलब करे जितना कोई दूसरी औरत लेती है, ज़्यादा का मुतालबा करेगी तो बाप को हक़ होगा कि वह उसके बजाय किसी अन्ना का दूध पिलवाये।

यतीम बच्चे को दूध पिलवाने की ज़िम्मेदारी किस पर है?

बयान हुई आयत में इसके बाद यह इरशाद है:

وَعَلَى الْوَارِثِ مِثْلُ ذٰلِكَ

यानी अगर बाप ज़िन्दा न हो तो बच्चे को दूध पिलाने या पिलवाने का इन्तिज़ाम उस शख़्स पर है जो बच्चे का जायज़ वारिस और मेहरम है। यानी अगर बच्चा मर जाये तो जिनको उसकी विरासत पहुँचती है वही बाप न होने की हालत में उसके नफ़क़े (ख़र्चे) के ज़िम्मेदार होंगे। अगर ऐसे वारिस कई हों तो हर एक पर मीरास के हिस्से के मुताबिक़ उसकी ज़िम्मेदारी आ़यद होगी। इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि यतीम बच्चे को दूध पिलवाने की ज़िम्मेदारी वारिस पर डालने से यह भी मालूम हुआ कि नाबालिग़ बच्चे का ख़र्चा दूध छुड़ाने के बाद भी वारिसों पर

होगा, क्योंकि दूध की कोई ख़ुसूसियत नहीं, मक़सूद बच्चे का गुज़ारा है। जैसे अगर यतीम बच्चे की माँ और दादा ज़िन्दा हैं तो ये दोनों उस बच्चे के मेहरम भी हैं और वारिस भी, इसलिये उसका नफ़्क़ा इन दोनों पर मीरास के हिस्से के एतिबार से आयद होगा, यानी एक तिहाई ख़र्चा माँ के ज़िम्मे और दो तिहाई दादा के ज़िम्मे होगा। इससे यह भी मालूम हो गया कि यतीम पोते का हक़ दादा पर अपने बालिग़ बेटों से भी ज़्यादा है, क्योंकि बालिग़ औलाद का नफ़्क़ा उसके ज़िम्मे नहीं और यतीम पोते का नफ़्क़ा उसके ज़िम्मे वाजिब है। हाँ मीरास में बेटों के मौजूद होते हुए पोते को हक़दार बनाना मीरास के उसूल और इन्साफ़ के ख़िलाफ़ है, कि ज़्यादा क़रीबी औलाद के होते हुए दूर वाले को देना उचित भी नहीं और सही बुख़ारी की इस हदीस के भी ख़िलाफ़ है:

لاَوْلٰی رجلٍ ذکرٍ

अलबत्ता दादा को यह हक़ है कि अगर ज़रूरत समझे तो यतीम पोते के लिये कुछ वसीयत कर जाये और यह वसीयत बेटों के हिस्से से ज़्यादा भी हो सकती है। इस तरह यतीम पोते की ज़रूरत को भी पूरा कर दिया गया और विरासत का उसूल कि क़रीब के होते हुए दूर वाले को न दिया जाये, यह भी सुरक्षित रहा।

दूध छुड़ाने के अहकाम

इसके बाद उक्त आयत में इरशाद होता है:

فَاِنْ اَرَادَا فِصَالًا عَنْ تَرَاضٍ مِّنْهُمَا وَتَشَاوُرٍ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا

"यानी अगर बच्चे के माँ-बाप दोनों आपस की रज़ामन्दी और आपसी मश्विरे से यह इरादा करें कि दूध पिलाने की मुद्दत (दो साल) से कम में ही दूध छुड़ा दें, चाहे माँ की माज़ूरी के सबब या बच्चे की किसी बीमारी के सबब तो इसमें भी कोई गुनाह नहीं।"

आपस के मश्विरे और रज़ामन्दी की शर्त इसलिये लगाई कि दूध छुड़ाने में बच्चे की मस्लेहत का ध्यान होना चाहिये, आपस के लड़ाई-झगड़े का बच्चे को तख़्ता-ए-मश्क़ न बनायें।

माँ के सिवा दूसरी औरत का दूध पिलवाने के अहकाम

आख़िर में इरशाद फ़रमाया गया:

وَاِنْ اَرَدْتُّمْ اَنْ تَسْتَرْضِعُوْٓا اَوْلَادَكُمْ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ اِذَا سَلَّمْتُمْ مَّآ اٰتَيْتُمْ بِالْمَعْرُوْفِ

यानी "अगर तुम यह चाहो कि अपने बच्चों की किसी मस्लेहत से माँ के बजाय किसी अन्ना का दूध पिलवाओ तो इसमें भी कुछ गुनाह नहीं, शर्त यह है कि दूध पिलाने वाली की जो उजरत मुक़र्रर की गई थी वह पूरी-पूरी अदा कर दें।"

और अगर उसको तयशुदा उजरत न दी गई तो उसका गुनाह उनके ज़िम्मे रहेगा।

इससे मालूम हुआ कि अगर माँ दूध पिलाने पर राज़ी है लेकिन बाप यह देखता है कि माँ का दूध बच्चे के लिये नुक़सानदेह है तो ऐसी हालत में उसको हक़ है कि माँ को दूध पिलाने से रोक दे और किसी अन्ना से दूध पिलवाये।

इससे एक बात यह भी मालूम हुई कि जिस औरत को दूध पिलाने पर रखा जाये उससे तन्ख़्वाह या उजरत का मामला पूरी सफ़ाई के साथ तय कर लिया जाये ताकि बाद में झगड़ा न पड़े, और फिर निर्धारित वक़्त पर वह तयशुदा उजरत उसको दे भी दे, उसमें टाल-मटोल न करे।

यह सब दूध पिलाने के अहकाम बयान करने के बाद फिर क़ुरआने करीम ने अपने मख़्सूस अन्दाज़ और ढंग के साथ क़ानून पर अमल को आसान करने और ज़ाहिर व ग़ायब हर हाल में उसका पाबन्द रखने के लिये अल्लाह तआ़ला के ख़ौफ़ और उसके कामिल इल्म का तसव्वुर सामने कर दिया। इरशाद होता है:

وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ○

यानी "अल्लाह तआ़ला से डरते रहो, और यह समझ लो कि अल्लाह तआ़ला तुम्हारे खुले और छुपे और ज़ाहिर व ग़ायब को पूरी तरह देख रहे हैं।" और वह तुम्हारे दिलों के छुपे इरादों और नीयतों से बा-ख़बर हैं। अगर किसी फ़रीक़ ने दूध पिलाने या छुड़ाने के मज़कूरा अहकाम की ख़िलाफ़वर्ज़ी की या बच्चे की मस्लेहत को नज़र-अन्दाज़ (अनदेखा) करके इस बारे में कोई फ़ैसला किया तो वह सज़ा का हक़दार होगा।

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنْكُمْ وَيَذَرُوْنَ اَزْوَاجًا يَّتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ اَرْبَعَةَ اَشْهُرٍ وَّعَشْرًا ۚ فَاِذَا بَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا فَعَلْنَ فِيْٓ اَنْفُسِهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۭ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ ۝ وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا عَرَّضْتُمْ بِهٖ مِنْ خِطْبَةِ النِّسَاۗءِ اَوْ اَكْنَنْتُمْ فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ ۭ عَلِمَ اللّٰهُ اَنَّكُمْ سَتَذْكُرُوْنَهُنَّ وَلٰكِنْ لَّا تُوَاعِدُوْهُنَّ سِرًّا اِلَّآ اَنْ تَقُوْلُوْا قَوْلًا مَّعْرُوْفًا ۬ وَلَا تَعْزِمُوْا عُقْدَةَ النِّكَاحِ حَتّٰى يَبْلُغَ الْكِتٰبُ اَجَلَهٗ ۭ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ فَاحْذَرُوْهُ ۚ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ۝

वल्लज़ी-न यु-तवफ़्फ़ौ-न मिन्कुम् व य-ज़रू-न अज़्वाजंय्य-तरब्बस्-न बिअन्फ़ुसिहिन्-न अर्ब-अ-त अश्हुरिंव्-व अ़श्रन् फ़-इज़ा बलग़्-न अ-ज-लहुन्-न फ़ला जुना-ह अ़लैकुम् फ़ीमा फ़-अ़ल्-न फ़ी अन्फ़ुसिहिन्-न बिल्मअ़्रूफ़ि, वल्लाहु बिमा तअ़्मलू-न ख़बीर (234) व ला	और जो लोग मर जायें तुम में से और छोड़ जायें अपनी औरतें तो चाहिए कि वे औरतें इन्तिज़ार में रखें अपने आपको चार महीने और दस दिन, फिर जब पूरा कर चुकें अपनी इद्दत को तो तुम पर कुछ गुनाह नहीं इस बात में कि करें वे अपने हक़ में क़ायदे के मुवाफ़िक़ और अल्लाह को तुम्हारे तमाम कामों की ख़बर है। (234) और कुछ गुनाह नहीं तुम पर इसमें कि इशारे में कहो

जुना-ह अ़लैकुम् फ़ीमा अ़र्रज़्तुम् बिही मिन् ख़ित्बतिन्निसा-इ औ अक्नन्तुम् फ़ी अन्फ़ुसिकुम, अ़लिमल्लाहु अन्नकुम् स-तज़्कुरू-नहुन्-न व ला-किल्ला तुवाअ़िदूहुन्-न सिर्रन् इल्ला अन् तक़ूलू क़ौलम्-मअ़्रूफ़न्, व ला तअ़्ज़िमू अुक़्दतन्-निकाहि हत्ता यब्लुग़ल्-किताबु अ-ज-लहू, वअ़्लमू अन्नल्ला-ह यअ़्लमु मा फ़ी अन्फ़ुसिकुम् फ़ह्-ज़रूहु वअ़्लमू अन्नल्ला-ह ग़फ़ूरुन् हलीम (235) ❁

निकाह का पैग़ाम उन औरतों को या पोशीदा रखो अपने दिल में, अल्लाह को मालूम है कि तुम अलबत्ता उन औरतों का ज़िक्र करोगे लेकिन उनसे निकाह का वादा न कर रखो छुपकर मगर यही कि कह दो कोई बात शरीअ़त के रिवाज के मुवाफ़िक़, और न इरादा करो निकाह का यहाँ तक कि पहुँच जाये निर्धारित इद्दत अपनी इन्तिहा (आख़िरी हद) को, और जान रखो कि अल्लाह को मालूम है जो कुछ तुम्हारे दिल में है सो उससे डरते रहो और जान रखो कि अल्लाह बख़्शने वाला और बरदाश्त करने वाला है। (235) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 31- शौहर की वफ़ात होने की सूरत में इद्दत का बयान

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنْكُمْ .....(الٰی قوله).... وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌo

और जो लोग तुम में वफ़ात पा जाते हैं और बीवियाँ छोड़ जाते हैं, वे बीवियाँ अपने आपको (निकाह वग़ैरह से) रोके रखें चार महीने और दस दिन, फिर जब अपनी (इद्दत की) मियाद ख़त्म कर लें तो तुमको कुछ गुनाह न होगा ऐसी बात (के जायज़ रखने) में कि वे औरतें अपनी ज़ात के लिए (निकाह की) कुछ कार्रवाई करें क़ायदे के मुवाफ़िक़, (अलबत्ता अगर कोई बात शरई क़ायदे-क़ानून के ख़िलाफ़ करें और तुम बावजूद रोक सकने के न रोको तो तुम भी गुनाह में शरीक होगे) और अल्लाह तआ़ला तुम्हारे कामों की ख़बर रखते हैं।

हुक्म 32- इद्दत में निकाह का पैग़ाम

और तुम पर कोई गुनाह नहीं होगा जो इन ज़िक्र की गई औरतों को (जो वफ़ात की इद्दत में हैं) (निकाह का) पैग़ाम देने के बारे में कोई बात इशारे में कहो (जैसे यह कि मुझको एक नेक औरत से निकाह की ज़रूरत है) या अपने दिल में (आईन्दा निकाह करने के इरादे को) छुपाओ (जब भी गुनाह नहीं, और वजह इस इजाज़त की यह है कि) अल्लाह तआ़ला को यह बात मालूम है कि तुम उन

औरतों का (ज़रूर) ज़िक्र-मज़कूर करोगे (सो ख़ैर! ज़िक्र-मज़कूर करो) लेकिन उनसे (साफ़ लफ़्ज़ों में) निकाह का वायदा (और गुफ़्तगू) मत करो, मगर यह कि कोई बात क़ायदे के मुवाफ़िक़ कहो (तो हर्ज नहीं, और वह बात क़ायदे के मुताबिक़ यही है कि इशारे में कहो), और तुम निकाह के ताल्लुक़ का (फ़िलहाल) इरादा भी मत करो, यहाँ तक कि इद्दत अपने मुक़र्ररा वक़्त पर ख़त्म हो जाए। और यक़ीन रखो इसका कि अल्लाह तआ़ला को इत्तिला है तुम्हारे दिलों की बात की, सो अल्लाह तआ़ला से डरते रहा करो (और नाजायज़ बात का दिल में इरादा भी मत किया करो), और (यह भी) यक़ीन रखो कि अल्लाह तआला माफ़ भी करने वाले हैं, और हलीम (बरदाश्त करने वाले) भी हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

'इद्दत' के कुछ अहकाम

1. जिसका शौहर मर जाये उसको इद्दत के अन्दर ख़ुशबू लगाना, सिंगार करना, सुर्मा और तेल बिना ज़रूरते दवा लगाना, मेहंदी लगाना, रंगीन कपड़े पहनना दुरुस्त नहीं, और खुले अलफ़ाज़ में दूसरे निकाह की बातचीत करना भी दुरुस्त नहीं, जैसा कि अगली आयत में आता है, और रात को दूसरे घर में रहना भी दुरुस्त नहीं। तर्जुमे में "निकाह" के साथ जो "वग़ैरह" कहा गया है इससे यही उमूर (बातें और चीज़ें) मुराद हैं, और यही हुक्म है उस औ़रत का जिस पर तलाक़े बाइन पड़ी हो, यानी जिसमें रुजू करना दुरुस्त नहीं, मगर उसको अपने घर से दिन में भी बिना सख़्त मजबूरी के निकलना दुरुस्त नहीं।

2. अगर चाँद रात (यानी इस्लामी महीने की पहली तारीख़ की रात) को शौहर की वफ़ात हुई तब तो ये चार महीने चाहे तीस के हों चाहे उन्तीस के हों चाँद के हिसाब से पूरे किये जायेंगे, और अगर चाँद रात के बाद वफ़ात हुई तो ये सब महीने तीस-तीस दिन के हिसाब से पूरे किये जायेंगे, पस कुल एक सौ तीस दिन पूरे करेंगे। इस मसले से बहुत लोग ग़ाफ़िल हैं और जिस वक़्त वफ़ात हुई हो जब यह मुद्दत गुज़र कर वही वक़्त आयेगा इद्दत ख़त्म हो जायेगी। और यह जो फ़रमाया कि अगर औ़रतें क़ायदे के मुताबिक़ कुछ करें तो तुमको भी गुनाह न होगा, इससे मालूम हुआ कि अगर कोई शख़्स कोई काम ख़िलाफ़े शरीअ़त करे तो औरों पर भी वाजिब होता है कि अगर उनमें ताक़त हो तो उसको रोकें वरना ये लोग भी गुनाहगार होते हैं। और क़ायदे के मुताबिक़ से यह मुराद है कि जो निकाह तजवीज़ (तय) हो वह शरई एतिबार से सही और जायज़ हो, हलाल होने की तमाम शर्तें वहाँ जमा हों।

لَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ إِنْ طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ مَا لَمْ تَمَسُّوهُنَّ أَوْ تَفْرِضُوا لَهُنَّ فَرِيضَةً ۚ وَمَتِّعُوهُنَّ ۚ عَلَى الْمُوسِعِ قَدَرُهُ وَعَلَى الْمُقْتِرِ قَدَرُهُ ۚ مَتَاعًا بِالْمَعْرُوفِ ۖ حَقًّا عَلَى الْمُحْسِنِينَ ۝ وَإِنْ طَلَّقْتُمُوهُنَّ مِنْ قَبْلِ أَنْ تَمَسُّوهُنَّ وَقَدْ فَرَضْتُمْ لَهُنَّ فَرِيضَةً فَنِصْفُ مَا فَرَضْتُمْ إِلَّآ أَنْ يَعْفُونَ أَوْ يَعْفُوَا الَّذِي بِيَدِهِ عُقْدَةُ النِّكَاحِ ۚ وَأَنْ تَعْفُوٓا أَقْرَبُ لِلتَّقْوَىٰ ۚ وَلَا تَنْسَوُا الْفَضْلَ بَيْنَكُمْ ۚ إِنَّ اللَّهَ بِمَا تَعْمَلُونَ بَصِيرٌ ۝

ला जुना-ह अ़लैकुम् इन् तल्लक़्तुमुन्-निसा-अ मा लम् तमस्सूहुन्-न औ तफ़्रिज़ू लहुन्-न फ़रीज़तंव्-व मत्तिअ़ूहुन्-न अ़लल्-मूसिअ़ि क़-दरुहू व अ़लल्-मुक़्तिरि क़-दरुहू मताअ़म्-बिल्मअ़्रूफ़ि हक़्क़न् अ़लल्-मुह्सिनीन (236) व इन् तल्लक़्तुमूहुन्-न मिन् क़ब्लि अन् तमस्सूहुन्-न व क़द् फ़रज़्तुम् लहुन्-न फ़री-ज़तन् फ़-निस्फ़ु मा फ़रज़्तुम् इल्ला अंय्यअ़्फ़ू-न औ यअ़्फ़ुवल्लज़ी बि-यदिही उ़क़्दतुन्-निकाहि, व अन् तअ़्फ़ू अक़्रबु लित्तक़्वा, व ला तन्सवुल्-फ़ज़्-ल बैनकुम, इन्नल्ला-ह बिमा तअ़्मलू-न बसीर (237)

कुछ गुनाह नहीं तुम पर अगर तलाक़ दो तुम औरतों को उस वक़्त कि उनको हाथ भी न लगाया हो, और न मुक़र्रर किया हो उनके लिये कुछ मेहर, और उनको कुछ ख़र्च दो गुंजाईश (हैसियत) वाले पर उसके मुवाफ़िक़ है और तंगी वाले पर उसके मुवाफ़िक़, जो ख़र्च कि क़ायदे के मुवाफ़िक़ है लाज़िम है नेकी करने वालों पर। (236) और अगर तलाक़ दो उनको हाथ लगाने से पहले और ठहरा चुके थे तुम उनके लिये मेहर तो लाज़िम हुआ आधा उसका कि तुम मुक़र्रर कर चुके थे, मगर यह कि दरगुज़र करें औरतें या दरगुज़र करे वह शख़्स कि उसके इख़्तियार में है गिरह (मामला) निकाह की यानी ख़ाविंद, और तुम मर्द दरगुज़र करो तो क़रीब है परहेज़गारी से, और न भुला दो एहसान करना आपस में, बेशक अल्लाह जो कुछ तुम करते हो ख़ूब देखता है। (237)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 33- सोहबत से पहले तलाक़ की सूरत में मेहर के वाजिब होने या न होने का बयान

'दुख़ूल' (यानी सोहबत होने) से पहले तलाक़ के मायने यह हैं कि मियाँ-बीवी में सही तन्हाई और मिलाप से पहले ही तलाक़ की नौबत आ जाये। इसकी दो सूरतें हैं- या तो उस निकाह के वक़्त निर्धारित मेहर की मिक़्दार (मात्रा) मुतैयन नहीं की गई, या मेहर की मात्रा मुतैयन कर दी गई। पहली सूरत का हुक्म पहले बयान किया गया है।

لَاجُنَاحَ عَلَيْكُمْ اِنْ طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ مَالَمْ تَمَسُّوْهُنَّ ..... (الى قوله)... حَقًّا عَلَى الْمُحْسِنِيْنَ○

यानी तुम पर (मेहर का) कुछ मुतालबा और पकड़ नहीं अगर बीवियों को ऐसी हालत में तलाक़ दे दो कि न उनको तुमने हाथ लगाया है और न उनके लिए कुछ मेहर मुक़र्रर किया है (सो इस सूरत में मेहर अपने ज़िम्मे मत समझो) और (सिर्फ़) उनको (एक) फ़ायदा पहुँचाओ (जोड़ा दे दो), गुंजाईश वाले के ज़िम्मे उसकी हैसियत के मुवाफ़िक़ है और तंगदस्त के ज़िम्मे उसकी हैसियत के मुवाफ़िक़। जोड़ा देना क़ायदे के मुवाफ़िक़ वाजिब है मामले के अच्छे लोगों पर (यानी सब मुसलमानों पर, क्योंकि अच्छा मामला करने का भी सब ही को हुक्म है, मुराद इससे एक जोड़ा कपड़े का देना है)।

और दूसरी सूरत का हुक्म यह है:

وَاِنْ طَلَّقْتُمُوْهُنَّ .....(الی قوله).... اِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌo

और अगर तुम उन बीवियों को तलाक़ दो इससे पहले कि उनको हाथ लगाओ और उनके लिए कुछ मेहर भी मुक़र्रर कर चुके थे तो (इस सूरत में) जितना मेहर तुमने मुक़र्रर किया हो उसका आधा (वाजिब) है (और आधा माफ़), मगर (दो सूरतें इस मजमूई हुक्म से अलग हैं- एक सूरत तो) यह कि वे औरतें (अपना आधा) भी माफ़ कर दें (तो इस सूरत में आधा भी वाजिब न रहा) या (दूसरी सूरत) यह (है) कि वह शख़्स रियायत कर दे जिसके हाथ में निकाह का ताल्लुक़ (रखना और तोड़ना) है (यानी शौहर पूरा मेहर ही उसको दे दे, तो इस सूरत में शौहर की मर्ज़ी से पूरा ही मेहर अदा करना होगा)। और (ऐ हक़ वालो) तुम्हारा (अपने हुक़ूक़ को) माफ़ कर देना (वसूल करने के मुक़ाबले में) तक़वे से ज़्यादा क़रीब है (क्योंकि माफ़ करने से सवाब मिलता है और सवाब का काम करना ज़ाहिर है कि तक़वे व परहेज़गारी की बात है), और आपस में एहसान (और रियायत) करने से ग़फ़लत न करो (बल्कि हर शख़्स दूसरे के साथ रियायत करने का ख़्याल रखा करे), बेशक अल्लाह तआ़ला तुम्हारे सब कामों को ख़ूब देखते हैं (तो तुम अगर किसी के साथ रियायत व एहसान करोगे अल्लाह तआ़ला उसका बेहतरीन बदला तुमको देंगे)। (बयानुल-क़ुरआन)

मआ़रिफ़ व मसाईल

لَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ ....(الی قوله)....... اِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌo

(यानी आयत नम्बर 237 व 238, जिनकी यह तफ़सीर बयान हो रही है) तलाक़ की, मेहर और सोहबत के लिहाज़ से चार सूरतें हो सकती हैं। उनमें से दो का हुक्म इन आयतों में बयान किया गया है, एक यह कि न मेहर मुक़र्रर हो न सोहबत व तन्हाई हुई हो। दूसरी यह कि मेहर तो मुक़र्रर हो लेकिन सोहबत व तन्हाई की नौबत न आये। तीसरी सूरत यह है कि मेहर भी मुक़र्रर हो और सोहबत की भी नौबत आये, इसमें जो मेहर मुक़र्रर किया है पूरा देना होगा, यह हुक्म क़ुरआन मजीद में दूसरे मक़ाम पर बयान किया गया है। चौथी सूरत यह है कि मेहर मुक़र्रर (तय) न किया और सोहबत या तन्हाई के बाद तलाक़ दी, इसमें 'मेहरे मिस्ल' पूरा देना होगा, यानी जो उस औ़रत की क़ौम में रिवाज है। इसका बयान भी एक दूसरी आयत में आया है।

ज़िक्र की गयी आयत में पहली दो क़िस्मों का हुक्म बयान किया गया है, उसमें से पहली सूरत

का हुक्म यह है कि मेहर कुछ वाजिब नहीं मगर शौहर पर वाजिब है कि अपने पास से औरत को कुछ दे दे, कम से कम यही कि एक जोड़ा कपड़े का दे दे। दर असल क़ुरआने करीम ने इस अ़तीये (तोहफ़े) की कोई मिक़्दार मुतैयन नहीं की, अलबत्ता बतला दिया कि मालदार को अपनी हैसियत के मुताबिक़ देना चाहिये, जिसमें इसकी तरग़ीब है कि गुंजाईश वाला इसमें तंगी से काम न ले। हज़रत हसन रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने ऐसे ही एक वाकिए में मुतल्लका औरत को बीस हज़ार का अ़तीया (दान और तोहफ़ा) दिया और क़ाज़ी शुरैह रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने पाँच सौ दिरहम का, और हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि मामूली दर्जा यह है कि एक जोड़ा कपड़े का दे दे। (क़ुर्तुबी)

और दूसरी सूरत का हुक्म यह है कि जिस औरत का मेहर निकाह के वक़्त मुक़र्रर हुआ हो और उसको सोहबत व सही तन्हाई से पहले तलाक़ दे दी हो तो मुक़र्रर किये हुए मेहर का आधा मर्द के ज़िम्मे वाजिब होगा, अलबत्ता अगर औरत माफ़ कर दे या मर्द पूरा दे दे तो इख़्तियारी बात है, जैसा कि आयतः

إِلَّآ أَن يَعْفُونَ أَوْ يَعْفُوَا۟ ٱلَّذِى بِيَدِهِۦ عُقْدَةُ ٱلنِّكَاحِ

(यानी माफ़ कर दें औरतें या मर्द रियायत करे यानी पूरा दे दे) से मालूम होता है।

1. मर्द के पूरा मेहर देने को भी माफ़ करने के लफ़्ज़ से शायद इसलिये ताबीर किया कि अ़रब वालों की आ़म आ़दत यह थी कि मेहर की रक़म शादी के साथ ही दे दी जाती थी, तो तन्हाई से पहले तलाक़ की सूरत में वह आधा वापस लेने का हक़दार हो गया। अब अगर वह रियायत करके अपना आधा वापस न ले तो यह भी माफ़ ही करना है, और माफ़ करने को अफ़ज़ल और परहेज़गारी से ज़्यादा क़रीब क़रार दिया, क्योंकि यह माफ़ी इसकी निशानी है कि निकाह का ताल्लुक़ ख़त्म करना और तोड़ना भी एहसान और अच्छे सुलूक के साथ हुआ, जो शरीअ़त का मक़सद और बड़े सवाब का सबब है, चाहे माफ़ी औरत की तरफ़ से हो या मर्द की तरफ़ से।

2. **'अल्लज़ी बि-यदिही उक़्दतुन्निकाहि'** (वह शख़्स जिसके हाथ में है निकाह का ताल्लुक़ बाक़ी रखना या न रखना) की तफ़सीर ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह फ़रमाई 'वलिय्यु उक़्दतुन्निकाहि अज़्ज़ौजु' यानी "निकाह के बन्धन का मालिक शौहर है।" यह हदीस 'दारे क़ुतनी' में अ़मर बिन शुऐब रहमतुल्लाहि अ़लैहि की रिवायत से नक़ल की गयी और उन्होंने अपने वालिद और दादा से इसे नक़ल किया है, और हज़रत अ़ली और हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा से भी। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

इससे यह भी साबित हो गया कि निकाह मुकम्मल हो जाने के बाद निकाह को क़ायम रखने या ख़त्म करने का मालिक शौहर है, तलाक़ वही दे सकता है, औरत का तलाक़ में कोई इख़्तियार नहीं।

حَـٰفِظُوا۟ عَلَى ٱلصَّلَوَٰتِ وَٱلصَّلَوٰةِ ٱلْوُسْطَىٰ وَقُومُوا۟ لِلَّهِ قَـٰنِتِينَ ۝

فَإِنْ خِفْتُمْ فَرِجَالًا أَوْ رُكْبَانًا ۖ فَإِذَآ أَمِنتُمْ فَٱذْكُرُوا۟ ٱللَّهَ كَمَا عَلَّمَكُم مَّا لَمْ تَكُونُوا۟ تَعْلَمُونَ ۝

हाफ़िज़ू अ़लस्स-लवाति वस्सलातिल्-वुस्ता व क़ूमू लिल्लाहि क़ानितीन (238) फ़-इन् ख़िफ़्तुम् फ़-रिजालन् औ रुक्बानन् फ़-इज़ा अमिन्तुम् फ़ज़्कुरुल्ला-ह कमा अ़ल्ल-मकुम् मा लम् तकूनू तअ्लमून (239)	ख़बरदार रहो सब नमाज़ों से और बीच वाली नमाज़ से, और खड़े रहो अल्लाह के आगे अदब से। (238) फिर अगर तुमको डर हो किसी का तो प्यादा पढ़ लो या सवार, फिर जिस वक़्त तुम अमन पाओ तो याद करो अल्लाह को जिस तरह कि तुमको सिखाया है जिसको तुम न जानते थे। (239)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 34- नमाज़ों की हिफ़ाज़त का बयान

इससे आगे पीछे तलाक़ वग़ैरह के अहकाम हैं बीच में नमाज़ के अहकाम बयान फ़रमाना इशारा इस तरफ़ है कि असल मक़सद अल्लाह की तरफ़ तवज्जोह है और रहन-सहन और मामलात के अहकाम से दूसरी मस्लेहतों के अ़लावा इस तवज्जोह की हिफ़ाज़त और तरक़्क़ी भी मक़सूद है। चुनाँचे जब उनको ख़ुदाई अहकाम समझकर अ़मल किया जायेगा तो तवज्जोह लाज़िम होगी, फिर यह कि इन अहकाम में बन्दों के हुक़ूक़ का अदा करना भी है और बन्दों के हुक़ूक़ को बरबाद करने से अल्लाह की बारगाह से दूरी होती है, जिसका लाज़िमी असर बन्दे और हक़ दोनों की तरफ़ से बेतवज्जोही है। चूँकि नमाज़ में यह तवज्जोह ज़्यादा ज़ाहिर है इसलिये इसके बीच में लाने से इस तवज्जोह के मक़सूद होने पर ज़्यादा दलालत होगी, ताकि बन्दा इस तवज्जोह को हर वक़्त ध्यान में रखे।

حٰفِظُوْا عَلَى الصَّلَوٰتِ وَالصَّلٰوةِ الْوُسْطٰى ..... (الی قوله).... مَا لَمْ تَكُوْنُوْا تَعْلَمُوْنَ ○

हिफ़ाज़त करो सब नमाज़ों की (आ़म तौर पर) और बीच वाली नमाज़ (यानी अ़सर) की (ख़ास तौर पर), और (नमाज़ में) खड़े हुआ करो अल्लाह के सामने आ़जिज़ बने हुए। फिर अगर तुमको (बाक़ायदा नमाज़ पढ़ने में किसी दुश्मन वग़ैरह का) अन्देशा हो तो खड़े-खड़े या सवारी पर चढ़े-चढ़े (जिस तरह बन सके चाहे क़िब्ले की तरफ़ भी मुँह हो या न हो और अगरचे रुकू व सज्दे सिर्फ़ इशारे ही से मुम्किन हों) पढ़ लिया करो (इस हालत में भी इस पर पाबन्दी रखो इसको छोड़ मत दो), फिर जब तुमको (बिल्कुल) इत्मीनान हो जाए (और अन्देशा ख़त्म हो जाये) तो तुम ख़ुदा तआ़ला की याद (यानी नमाज़ को अदा करना) उस तरीक़े से करो जो तुमको (इत्मीनान की हालत में) सिखलाया है, जिसको तुम (पहले से) न जानते थे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

कसरत से उलेमा का क़ौल कुछ हदीसों की दलील से यह है कि बीच वाली नमाज़ से मुराद अ़सर की नमाज़ है, क्योंकि इसके एक तरफ़ दो नमाज़ें दिन की हैं 'फ़जर' और 'ज़ोहर' और एक

तरफ़ दो नमाज़ें रात की हैं 'मग़रिब' और 'इशा'। इसकी ताकीद ख़ुसूसियत के साथ इसलिये की गई है कि अक्सर लोगों के लिये यह वक़्त काम की मसरूफ़ियत (व्यस्तता) का होता है और "आजिज़ी" की तफ़सीर हदीस में "ख़ामोशी" के साथ आई है।

इसी आयत से नमाज़ में बातें करने की मनाही हुई है, पहले कलाम करना दुरुस्त था, और यह नमाज़ खड़े-खड़े इशारे से जब सही होगी जब एक जगह खड़ा हो सके, और इसमें सज्दे का इशारा ज़रा ज़्यादा पस्त करे और चलने से नमाज़ नहीं होगी अलबत्ता जब ऐसा मुम्किन न हो जैसे ऐन लड़ाई का वक़्त है तो नमाज़ को क़ज़ा कर दिया जायेगा, दूसरे वक़्त पढ़ लें। (बयानुल-क़ुरआन)

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنْكُمْ وَيَذَرُوْنَ اَزْوَاجًا ۖۚ وَّصِيَّةً لِّاَزْوَاجِهِمْ مَّتَاعًا اِلَى الْحَوْلِ غَيْرَ اِخْرَاجٍ ۚ فَاِنْ خَرَجْنَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْ مَا فَعَلْنَ فِيْٓ اَنْفُسِهِنَّ مِنْ مَّعْرُوْفٍ ۗ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۞ وَلِلْمُطَلَّقٰتِ مَتَاعٌۢ بِالْمَعْرُوْفِ ۗ حَقًّا عَلَى الْمُتَّقِيْنَ ۞ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ۞

ع ٣١ ١٥

वल्लज़ी-न यु-तवफ़्फ़ौ-न मिन्कुम् व य-ज़रू-न अज़्वाजंव्-वसिय्यतल् लि-अज़्वाजिहिम् मताअन् इलल्-हौलि ग़ै-र इख़्राजिन् फ़-इन् ख़रज्-न फ़ला जुना-ह अलैकुम् फ़ी मा फ़अल्-न फ़ी अन्फ़ुसिहिन्-न मिम्-मअ्रूफ़िन्, वल्लाहु अज़ीज़ुन् हकीम (240) व लिल्मुतल्लक़ाति मताअुम्-बिल्मअ्रूफ़ि, हक़्क़न् अलल् मुत्तक़ीन (241) कज़ालि-क युबय्यिनुल्लाहु लकुम् आयातिही लअल्लकुम् तअ्क़िलून (242) ✿	और जो लोग तुममें से मर जायें और छोड़ जायें अपनी औरतें तो वे वसीयत कर दें अपनी औरतों के वास्ते ख़र्च देना एक साल तक बग़ैर निकालने के घर से, फिर अगर वे औरतें ख़ुद निकल जायें तो कुछ गुनाह नहीं तुम पर इसमें कि करें वे औरतें अपने हक़ में भली बात, और अल्लाह ज़बरदस्त है हिक्मत वाला। (240) और तलाक़ दी हुई औरतों के वास्ते ख़र्च देना है क़ायदे के मुवाफ़िक़ लाज़िम है परहेज़गारों पर। (241) इसी तरह बयान फ़रमाता है अल्लाह तआला तुम्हारे वास्ते अपने हुक्म ताकि तुम समझ लो। (242) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हुक्म 35- बेवा औरत की रिहाईश और ख़र्चा देने की कुछ सूरतों का बयान

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنكُمْ..... (الى قوله)..... وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ۝

और जो लोग वफ़ात पा जाते हैं तुम में से और छोड़ जाते हैं बीवियों को (उनके ज़िम्मे लाज़िम है कि) वे वसीयत कर जाया करें अपनी उन बीवियों के वास्ते एक साल तक (ज़रूरी ख़र्चे और घर में रिहाईश रखने से) फ़ायदा उठाने की, इस तौर पर कि वे घर से निकाली न जाएँ। हाँ अगर (चार महीने दस दिन के बाद या गर्भ के पैदा होने के बाद इद्दत गुज़ार कर) ख़ुद निकल जाएँ तो तुमको कोई गुनाह नहीं उस क़ायदे की बात में जिसको वे अपने बारे में (तजवीज़) करें (जैसे निकाह वग़ैरह), और अल्लाह तआ़ला ज़बरदस्त हैं (उनके ख़िलाफ़ हुक्म मत करो), हिक्मत वाले हैं (कि तमाम अहकाम में तुम्हारी मस्लेहतों का ध्यान रखा है, अगरचे तुम्हारी समझ में न आ सकें)।

وَلِلْمُطَلَّقٰتِ مَتَاعٌ ۢ بِالْمَعْرُوْفِ....... (الى قوله)..... لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ۝

और सब तलाक़ दी हुई औरतों के लिए कुछ-कुछ फ़ायदा पहुँचाना (किसी दर्जे में मुक़र्रर है) क़ायदे के मुवाफ़िक़, (और यह) मुक़र्रर हुआ है उन पर जो (शिर्क व कुफ़्र से) परहेज़ करते हैं (यानी मुसलमानों पर चाहे यह मुक़र्रर होना वाजिब के दर्जे में हो या मुस्तहब होने के दर्जे में) इसी तरह हक़ तआ़ला तुम्हारे (अ़मल करने के) लिये अपने अहकाम बयान फ़रमाते हैं, इस उम्मीद पर कि तुम (उनको) समझो (और अ़मल करो)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنكُمْ... (الى قوله)..... وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ۝

1. इस्लाम से पहले के ज़माने (जिसको जाहिलीयत का ज़माना कहा जाता है) में शौहर के मरने की इद्दत एक साल थी और इस्लाम में बजाय एक साल के चार महीने दस दिन मुक़र्रर हुए जैसा कि पहले गुज़री आयतः

يَتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ اَرْبَعَةَ اَشْهُرٍ وَّعَشْرًا

(यानी इसी सूरत की आयत नम्बर 234) से मालूम हो चुका है, मगर उसमें औरत की इतनी रियायत रखी गई थी कि चूँकि उस वक़्त तक मीरास का हुक्म नाज़िल न हुआ था और बीवी का कोई हिस्सा मीरास में मुक़र्रर न हुआ था बल्कि औरों के हक़ का मदार महज़ मुर्दे की वसीयत पर था जैसा कि आयतः

كُتِبَ عَلَيْكُمْ اِذَا حَضَرَ....... (سورة ٢: ١٨٠)

की तफ़सीर में मालूम हो चुका है, इसलिये यह हुक्म हो गया था कि अगर औरत अपनी मस्लेहत से शौहर के तर्के (छोड़े हुए माल) में रहना चाहे तो साल भर तक उसको रहने का हक़ हासिल है, और उसी के तर्के से इस मुद्दत में उसको **नान व नफ़क़ा** (खाना कपड़ा और ज़रूरी ख़र्च) भी दिया जाये। इस आयत में इसी का बयान है, और शौहरों को हुक्म है कि इस तरह की वसीयत कर जाया करें। और चूँकि यह हक़ औरत का था उसको इसके वसूल करने न करने का इख़्तियार हासिल था इसलिये वारिसों को तो घर से निकालना जायज़ न था, लेकिन ख़ुद उसको जायज़ था कि ख़ुद उसके घर न रहे और अपना मीरास का हक़ छोड़ दे बशर्तेकि इद्दत पूरी हो चुके, और निकाह वग़ैरह सब दुरुस्त था, और यही मुराद है **क़ायदे की बात** से।

अलबत्ता इद्दत के अन्दर निकलना और निकाह करना वग़ैरह सब गुनाह था, औरत के लिये भी और जो मना कर सके और न रोके उसके लिये भी। फिर जब मीरास की आयत नाज़िल हुई, घर-बार और छोड़े हुए माल में से औरत का हक़ मिल गया सो अपने हिस्से में रहे और अपने हिस्से से ख़र्च करे, यह आयत मन्सूख़ हो गई (यानी अब इसका हुक्म बाक़ी नहीं रहा)।

وَلِلْمُطَلَّقٰتِ مَتَاعٌ ۢ بِالْمَعْرُوْفِ

2. मुतल्लक़ा (तलाक़ दी हुई) औरतों को 'मताअ़' यानी फ़ायदा पहुँचाना इससे पहली आयत में भी आ चुका है, मगर वह सिर्फ़ दो क़िस्म की तलाक़ दी हुई औरतों के लिये था, जिनको सोहबत व तन्हाई से पहले तलाक़ हो गई हो। एक को फ़ायदा पहुँचाना यह था कि जोड़ा दिया जाये, दूसरी को फ़ायदा पहुँचाना यह था कि आधा मेहर दिया जाये। अब वह तलाक़ वालियाँ रह गईं जिनको सोहबत या तन्हाई के बाद तलाक़ दी जाये, सो उनमें जिसका मेहर मुक़र्रर किया गया हो उसको फ़ायदा पहुँचाना यह है कि पूरा मेहर देना चाहिये, और जिसका मेहर मुक़र्रर न किया जाये उसके लिये सोहबत किये जाने के बाद 'मेहरे मिस्ल' वाजिब है। यह **मताअ़** मुतलक़ फ़ायदा पहुँचाने के मायने में इस तफ़सील से तो वाजिब है, और अगर मताअ़ से मुराद ख़ास फ़ायदा यानी तोहफ़ा या जोड़ा देना ही लिया जाये तो एक मुतल्लक़ा (तलाक़ वाली औरत) को तो देना वाजिब है जिसका ज़िक्र पहले आ चुका है और बाक़ी सब क़िस्मों में मुस्तहब (अच्छा और पसन्दीदा) है। और अगर **मताअ़** से मुराद नफ़क़ा (ख़र्च) लिया जाये तो जिस तलाक़ में इद्दत है उसमें इद्दत गुज़रने तक वाजिब है, चाहे तलाक़े रजई हो या बाइन। ग़र्ज़ कि आयत अपने उमूमी अलफ़ाज़ से सब सूरतों को शामिल है।

اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ خَرَجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ وَهُمْ اُلُوْفٌ حَذَرَ الْمَوْتِ ۠
فَقَالَ لَهُمُ اللّٰهُ مُوْتُوْا ۣ ثُمَّ اَحْيَاهُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَذُوْ فَضْلٍ عَلَى النَّاسِ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ
لَا يَشْكُرُوْنَ ۝ وَقَاتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝

अलम् त-र इलल्लज़ी-न ख़-रजू मिन् दियारिहिम् व हुम् उलूफ़ुन् ह-ज़रल् -मौति फ़क़ा-ल लहुमुल्लाहु मूतू सुम्-म अह्याहुम, इन्नल्ला-ह लज़ू फ़ज़्लिन् अ़लन्नासि व लाकिन्-न अक्सरन्नासि ला यश्कुरून (243) व क़ातिलू फ़ी सबीलिल्लाहि वअ़्लमू अन्नल्ला-ह समीअ़ुन् अ़लीम (244)	क्या न देखा तूने उन लोगों को जो कि निकले अपने घरों से और वे हज़ारों थे मौत के डर से, फिर फ़रमाया उनको अल्लाह ने कि मर जाओ फिर उनको ज़िन्दा कर दिया, बेशक अल्लाह फ़ज़्ल करने वाला है लोगों पर लेकिन अक्सर लोग शुक्र नहीं करते। (243) और लड़ो अल्लाह की राह में और जान लो कि अल्लाह बेशक ख़ूब सुनता जानता है। (244)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुख़ातब!) क्या तुझको उन लोगों का क़िस्सा तहक़ीक़ नहीं हुआ जो कि अपने घरों से निकल गए थे और वे लोग हज़ारों ही थे मौत से बचने के लिए। सो अल्लाह तआ़ला ने उनके लिए (हुक्म) फ़रमा दिया कि मर जाओ (सब मर गये), फिर उनको ज़िन्दा कर दिया। बेशक अल्लाह तआ़ला बड़ा फ़ज़्ल करने वाले हैं लोगों (के हाल) पर, मगर अक्सर लोग शुक्र नहीं करते। (इस क़िस्से में ग़ौर करके) अल्लाह की राह में क़िताल करो और यक़ीन रखो इस बात का कि अल्लाह तआ़ला ख़ूब सुनने वाले (और) ख़ूब जानने वाले हैं (जिहाद करने और न करने वालों की बातें सुनते और हर एक की नीयत जानते हैं, और सब को मुनासिब जज़ा देंगे)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

ये तीन आयतें जो ऊपर बयान हुई हैं इनमें दिल में उतर जाने वाले एक अ़जीब अन्दाज़ में अल्लाह तआ़ला की राह में जान व माल की क़ुरबानी पेश करने की हिदायत है। इन अहकाम के बयान करने से पहले तारीख़ का एक अहम वाक़िआ़ ज़िक्र किया गया है, जिससे वाज़ेह हो जाता है कि मौत व ज़िन्दगी अल्लाह की तक़दीर के ताबे है, जंग व जिहाद में जाना मौत का सबब नहीं, और बुज़दिली से जान चुराना मौत से बचने का ज़रिया नहीं। तफ़सीर इब्ने कसीर में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम और ताबिईन हज़रात के हवाले से इस वाक़िए की वज़ाहत (व्याख्या) यह बयान की है कि बनी इस्राईल की कोई जमाअ़त एक शहर में बस्ती थी और वहाँ कोई सख़्त वबा (महामारी) ताऊन वग़ैरह फैला। ये लोग जो तक़रीबन दस हज़ार की संख्या में थे घबरा उठे और मौत के ख़ौफ़ से उस शहर को छोड़कर सब के सब दो पहाड़ों के बीच एक लम्बे-चौड़े मैदान में जाकर बस गये। अल्लाह तआ़ला ने उन पर और दुनिया की दूसरी क़ौमों पर यह वाज़ेह करने के लिये कि मौत से कोई शख़्स भाग कर जान नहीं छुड़ा सकता, दो फ़रिश्ते भेज दिये जो मैदान के दोनों सिरों पर आ खड़े हुए

और कोई ऐसी आवाज़ दी जिससे सब के सब एक ही वक़्त में मर गये, एक भी ज़िन्दा न रहा। आस पास के लोगों को जब इस वाक़िए की इत्तिला हुई, यहाँ पहुँचे, दस हज़ार इनसानों के कफ़न-दफ़न का इन्तिज़ाम आसान न था इसलिये उनके गिर्द एक इहाता (दीवार और हद) खींचकर हज़ीरा जैसा बना दिया। उनकी लाशें दस्तूर के अनुसार गल-सड़ गईं, हड्डियाँ पड़ी रह गईं। एक लम्बे समय के बाद बनी इस्राईल के एक पैग़म्बर जिनका नाम हिज़क़ील अलैहिस्सलाम बतलाया गया है, उस मक़ाम पर गुज़रे। उस हज़ीरे में जगह-जगह इनसानी हड्डियों के ढाँचे बिखरे हुए देखकर हैरत में रह गये, वही के ज़रिये उनको उन लोगों का पूरा वाक़िआ बतला दिया गया। हज़रत हिज़क़ील अलैहिस्सलाम ने दुआ की कि या अल्लाह! इन लोगों को फिर ज़िन्दा फ़रमा दे। अल्लाह तआला ने उनकी दुआ क़ुबूल फ़रमाई और उन्हें हुक्म दिया गया कि आप इन टूटी-फूटी हड्डियों को इस तरह संबोधित फ़रमायें:

ايتها العظام البالية ان الله يأمرك ان تجتمعي

"ऐ पुरानी हड्डियो! अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है कि हर जोड़ की हड्डी अपनी जगह जमा हो जाये।"

पैग़म्बर की ज़बान से ख़ुदा तआला का हुक्म उन हड्डियों ने सुना और हुक्म की तामील की। जिनको दुनिया बेअक़्ल व बेशऊर समझती है मगर दुनिया के हर ज़र्रे-ज़र्रे की तरह वो भी फ़रमान व हुक्म के ताबे और अपने वजूद के मुनासिब अक़्ल व समझ रखती हैं और अल्लाह तआला की फ़रमाँबरदार हैं। क़ुरआने करीम ने आयत:

اَعْطٰى كُلَّ شَيْءٍ خَلْقَهٗ ثُمَّ هَدٰىO (سورة ٢٠: ٥٠)

में इसकी तरफ़ इशारा फ़रमाया है यानी "अल्लाह तआला ने हर चीज़ को पैदा फ़रमाया फिर उसको उसके मुनासिबे हाल हिदायत फ़रमाई।" मौलाना रूमी रहमतुल्लाहि अलैहि ने ऐसे ही मामलों के मुताल्लिक़ फ़रमाया है:

ख़ाक व बाद व आब व आतिश बन्दा अन्द
बा-मन व तू मुर्दा बा-हक़ ज़िन्दा अन्द

"कि मिट्टी, हवा, पानी और आग फ़रमाँबरदार हैं। अगरचे हमें तुम्हें ये बेजान और मुर्दा मालूम होते हैं मगर अल्लाह तआला के साथ इनका जो मामला है वह ज़िन्दों की तरह है, कि ज़िन्दों की तरह उसके हुक्म की तामील करते हैं।" मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

बहरहाल एक आवाज़ पर हर इनसान की हड्डियाँ अपनी-अपनी जगह लग गईं, फिर हुक्म हुआ कि अब उनको यह आवाज़ दो:

ايتها العظام ان الله يأمرك ان تكتسى لحمًا و عصبًا وجلدًا.

"यानी ऐ हड्डियो! अल्लाह तआला तुम्हें हुक्म देता है कि अपना गोश्त पहन लो और पट्ठे और खाल दुरुस्त कर लो।"

यह कहना था कि हड्डियों का हर ढाँचा उनके देखते-देखते एक मुकम्मल लाश बन गई, फिर हुक्म हुआ कि अब रूहों को यह ख़िताब किया जाये:

ايتها الارواح ان الله يأمرك ان ترجع كل روح الى الجسد الذى كانت تعمره.

"यानी ऐ रूहो! तुम्हें अल्लाह तआ़ला हुक्म देता है कि अपने-अपने बदनों में लौट आयें, जिनकी तामीर व हयात (बनाव और ज़िन्दगी) उनसे वाबस्ता थी।"

यह आवाज़ देते ही उनके सामने सारी लाशें ज़िन्दा होकर खड़ी हो गयीं और हैरत से चारों तरफ़ देखने लगीं। सब की ज़बानों पर यह थाः

سُبْحَانَكَ لَا اِلٰهَ اِلَّا اَنْتَ

सुब्हान-क ला इला-ह इल्ला अन्-त

"पाक है तेरी ज़ात, तेरे सिवा कोई माबूद नहीं।"

यह हैरतनाक वाक़िआ़ दुनिया के फ़लॉस्फ़रों और विद्वानों के लिये विचार की दावत और क़ियामत के इनकारियों पर न कटने वाली दलील होने के साथ इस हिदायत पर भी मुश्तमिल है कि मौत के ख़ौफ़ से भागना चाहे जिहाद से हो या किसी वबा व ताऊन (बीमारी व महामारी) से, अल्लाह तआ़ला और उसकी तक़दीर पर ईमान रखने वाले के लिये मुम्किन नहीं, जिसका यह ईमान है कि मौत का एक निर्धारित वक़्त है, न उससे एक सैकिंड पहले आ सकती है और न एक सैकिंड बाद में। इसलिये यह हरकत फ़ुज़ूल भी है और अल्लाह तआ़ला की नाराज़ी का सबब होने की वजह भी।

अब इस वाक़िए को क़ुरआन के अलफ़ाज़ से देखिये- वाक़िआ़ बयान करने के लिये क़ुरआन ने फ़रमायाः

اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ خَرَجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ

यानी "क्या आपने उन लोगों के वाक़िए को नहीं देखा जो अपने घरों से मौत के डर से निकल खड़े हुए थे।"

यहाँ यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि यह वाक़िआ़ नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने से हज़ारों साल पहले का है, उसके देखने का हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सवाल ही नहीं हो सकता, तो यहाँ 'क्या आपने नहीं देखा' फ़रमाने का क्या मंशा है? क़ुरआन के मुफ़स्सिरीन ने फ़रमाया है कि ऐसे तमाम मौक़ों पर जहाँ हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को लफ़्ज़ 'अलम् त-र' (क्या आपने नहीं देखा) के साथ ख़िताब किया गया है हालाँकि वाक़िआ़ आपके ज़माने से पहले का है जिसके देखने की कोई कल्पना नहीं हो सकती, इन सब मौक़ों पर देखने से दिल का देखना मुराद होता है, जिसके मायने हैं इल्म व जानकारी। यानी 'अलम् त-र' ऐसे मौक़ों पर 'अलम् तअ़्लम्' (क्या आप नहीं जानते) के मायने में होता है, लेकिन उसको लफ़्ज़ 'अलम् त-र' से ताबीर करने में हिक्मत उस वाक़िए के मशहूर और परिचित होने की तरफ़ इशारा करना है कि यह वाक़िआ़ ऐसा यक़ीनी है जैसे कोई आज देख रहा हो और देखने के क़ाबिल हो। 'अलम् त-र' के बाद हर्फ़ 'इला' बढ़ाने से अ़रबी भाषा के ग्रामर के एतिबार से इसकी तरफ़ इशारा भी होता है।

इसके बाद क़ुरआन में उनकी एक बड़ी तायदाद होने का बयान फ़रमाया गयाः

وَهُمْ اُلُوْفٌ

यानी "वे लोग हज़ारों की संख्या में थे।" इस तायदाद के निर्धारण में रिवायतें अलग-अलग हैं लेकिन अ़रबी ज़बान के ग्रामर के एतिबार से यह लफ़्ज़ जमा कसरत है, जिसका इतलाक़ दस से कम

पर नहीं होता। इससे मालूम हुआ कि उनकी संख्या दस हज़ार से कम न थी।

इसके बाद इरशाद है:

فَقَالَ لَهُمُ اللّٰهُ مُوْتُوْا

यानी "कह दिया उनको अल्लाह तआ़ला ने कि मर जाओ" अल्लाह तआ़ला का यह हुक्म डायरेक्ट भी हो सकता है और किसी फ़रिश्ते के ज़रिये भी। जैसे दूसरी आयत में इरशाद है:

اِذَآ اَرَادَ شَيْئًا اَنْ يَّقُوْلَ لَهٗ كُنْ فَيَكُوْنُ٥ (٨٢:٣٦)

कि "जब वह किसी चीज़ का इरादा फ़रमाता है तो उसको फ़रमा देता है 'हो जा' पस वह हो जाती है।" इसके बाद फ़रमाया है:

اِنَّ اللّٰهَ لَذُوْفَضْلٍ عَلَى النَّاسِ

यानी "अल्लाह तआ़ला बड़ा फ़ज़्ल करने वाले हैं लोगों पर" इसमें वह फ़ज़्ल भी दाख़िल है जो बनी इस्राईल की उस क़ौम को दोबारा ज़िन्दा करके फ़रमाया और यह फ़ज़्ल भी शामिल है जो यह वाक़िआ़ उम्मते मुहम्मदिया को बतलाकर उनके लिये सबक़ लेने का ज़रिया बनाया।

आख़िर में ग़ाफ़िल-सिफ़त इनसान को ग़फ़लत से जगाने के लिये फ़रमायाः

وَلٰكِنَّ اَكْثَرَالنَّاسِ لَا يَشْكُرُوْنَ٥

यानी "अल्लाह तआ़ला के फ़ज़्ल व रहमत के हज़ारों मज़ाहिर (निशानियाँ और ज़ाहिर होने के मौक़े) इनसान के सामने आते रहते हैं, मगर इसके बावजूद अक्सर इनसान शुक्रगुज़ार नहीं होते।"

आयत से संबन्धित मसाईल

इस आयत से चन्द मसाईल और अहकाम समझ में आते हैं उनकी कुछ तफ़सील बयान की जाती है।

तदबीर पर तक़दीर ग़ालिब है

अव्वल यह कि तक़दीरे इलाही के मुक़ाबले में कोई तदबीर कारगर नहीं हो सकती और जिहाद से या ताऊन वग़ैरह से भागना जान बचाने का ज़रिया नहीं हो सकता, और न उनमें क़ायम रहना मौत का सबब होता है, बल्कि मौत का एक वक़्त मुतैयन है, न उसमें कमी हो सकती है न ज़्यादती।

जिस बस्ती में कोई वबा ताऊन वग़ैरह हो उसमें जाना या वहाँ से भागकर कहीं और जाना दोनों नाजायज़ हैं

दूसरा मसला यह है कि जिस शहर में कोई वबाई रोग ताऊन वग़ैरह फैल जाये वहाँ से भागकर दूसरी जगह जाना जायज़ नहीं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशाद में इस पर इतना इज़ाफ़ा और है कि दूसरे लोगों को वहाँ जाना भी दुरुस्त नहीं। हदीस में है:

ان هذا السقم عذب به الامم قبلكم فاذاسمعتم به فى الارض فلا تدخلوها واذوقع بارض وانتم بها فلا تخرجوا فرارًا. (بخارى و مسلم، ابن كثير)

"यानी इस बीमारी (ताऊन) के ज़रिये अल्लाह तआ़ला ने तुम से पहली क़ौमों पर अ़ज़ाब नाज़िल फ़रमाया है, सो जब तुम यह सुनो कि किसी शहर में ताऊन वग़ैरह वबाई रोग फैल रहा है तो वहाँ न जाओ, और अगर किसी बस्ती में यह मर्ज़ फैल जाये और तुम वहाँ मौजूद हो तो वहाँ से भागकर न निकलो।"

तफ़सीरे क़ुर्तुबी में है कि हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने एक मर्तबा मुल्के शाम जाने के इरादे से सफ़र किया। मुल्के शाम की सरहद पर तबूक के क़रीब एक मक़ाम सरग़ है वहाँ पहुँचकर मालूम हुआ कि मुल्के शाम में सख़्त ताऊन फैला हुआ है, यह ताऊन मुल्के शाम की तारीख़ में एक बड़ा हादसा था, यह ताऊन **अ़मवास** के नाम से मशहूर है, क्योंकि सब से पहले यह ताऊन एक बस्ती अ़मवास नाम की में शुरू हुआ जो बैतुल-मुक़द्दस के क़रीब है फिर सारे मुल्क में फैल गया, हज़ारों इनसान जिनमें बहुत से सहाबा किराम और ताबिईन हज़रात भी थे, इस ताऊन में शहीद हुए।

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने ताऊन की शिद्दत की ख़बर सुनी तो उसी मक़ाम पर ठहरकर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से मश्विरा किया कि हमें मुल्के शाम में इस वक़्त जाना चाहिये या वापस होना मुनासिब है। उस वक़्त जितने हज़रात मश्विरे में शरीक थे उनमें कोई ऐसा न था जिसने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से इसके बारे में कोई हुक्म सुना हो, बाद में हज़रत अ़ब्दुर्रहमान बिन औ़फ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इत्तिला दी कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद इस मामले के मुताल्लिक़ यह है:

انّ رسول الله صلی الله علیه وسلم ذکر الوجع فقال رجزوعذابٌ عُذِّبَ به الامم ثم بقی منه بقیة فیذهب المرّة ویأتی الاخری فمن سمع به بارض فلا یقدمنّ علیه ومن کان بارض وقع بها فلا یخرج فرارًا منه، رواه البخاری عن اسامة بہ زید واخرجه الائمة بمثله.

"रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने (ताऊनी गिल्टी के) दर्द का ज़िक्र किया तो फ़रमाया कि यह एक अ़ज़ाब है जिससे कुछ उम्मतों को अ़ज़ाब दिया गया था, फिर उसका कुछ बक़ीया (असर) रह गया। अब उसका यह हाल है कि कभी चला जाता है और फिर आ जाता है। तो जो शख़्स यह सुने कि ज़मीन के फ़ुलाँ ख़ित्ते में यह अ़ज़ाब आया हुआ है तो उसको चाहिये कि उस इलाक़े में न जाये, और जो शख़्स उस ख़ित्ते (मक़ाम और इलाक़े) में पहले से मौजूद हो तो ताऊन से भागने के लिये वहाँ से न निकले।" (बुख़ारी वग़ैरह)

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने जब यह हदीस सुनी तो साथियों को वापसी का हुक्म दे दिया। हज़रत अबू उबैदा रज़ियल्लाहु अ़न्हु मुल्के शाम के आ़मिल व अमीर (गवर्नर) भी उस मज्लिस में मौजूद थे, फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु का यह हुक्म सुनकर फ़रमाने लगे:

افرارًا من قدر الله

यानी "क्या आप अल्लाह तआ़ला की तक़दीर से भागना चाहते हैं?" फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने जवाब में फ़रमाया- अबू उबैदा! काश यह बात कोई और कहता, यानी तुम्हारी ज़बान से ऐसी बात क़ाबिले ताज्जुब है। और फिर फ़रमाया:

نعم نفرّمن قدر الله الٰى قدر الله.

"बेशक हम अल्लाह की तक़दीर से अल्लाह ही की तक़दीर की तरफ़ भागते हैं।"

मतलब यह था कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह अल्लाह ही के हुक्म के मुताबिक़ कर रहे हैं जिसको रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बयान फ़रमाया है।

ताऊन के बारे में हुज़ूरे पाक के इरशाद की हिक्मतें

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के उक्त इरशाद से मालूम हुआ कि जिस शहर या बस्ती में ताऊन (प्लेग) वग़ैरह वबाई (महामारी के) रोग फैले हुए हों, बाहर वालों को वहाँ जाना ममनू (वर्जित) है, और वहाँ के रहने वालों को उस जगह से मौत के ख़ौफ़ से भागना ममनू है।

और इसके साथ इस्लाम का बुनियादी अ़क़ीदा यह है कि न किसी जगह जाना मौत का सबब है न कहीं से भागना निजात (बचाव) का सबब। इस अहम अ़क़ीदे के होते हुए बयान हुआ हुक्म बड़ी दूरगामी हिक्मतों पर आधारित है। बाहर वालों को वहाँ जाने से रोकने की एक हिक्मत तो यह है कि मुम्किन है कि वहाँ पहुँचकर किसी की उम्र ख़त्म हो चुकी है और उस रोग में मुब्तला होकर उसका इन्तिक़ाल हो गया तो मरने वाले को कभी यह गुमान होगा कि अगर मैं यहाँ न आता तो ज़िन्दा रहता, और दूसरों को भी यही ख़्याल होगा कि यहाँ आने से उसकी मौत वाक़े हुई, हालाँकि जो कुछ हुआ वह पहले से लिखा हुआ था, उसकी उम्र उतनी ही थी कहीं भी रहता उस वक़्त उसकी मौत लाज़िमी थी। इस हुक्म में मुसलमानों को अ़क़ीदे के एतिबार से असमंजस में पड़ने से बचाया गया कि वे ग़लत-फ़हमी का शिकार न हों।

दूसरी हिक्मत यह भी है कि हक़ तआ़ला ने इनसान को यह हिदायत दी है कि जिस जगह तकलीफ़ पहुँचने का ख़तरा हो या जहाँ हलाक होने का अन्देशा हो वहाँ न जांये, बल्कि जहाँ तक हो सके ऐसी चीज़ों से बचने की फ़िक्र करे जो उसके लिये नुक़सानदेह या हलाकत का सबब बन सकती हैं, और अपनी जान की हिफ़ाज़त हर इनसान के ज़िम्मे वाजिब क़रार दी है। इस क़ायदे का तक़ाज़ा भी यही है कि तक़दीरे इलाही पर पूरा ईमान रखते हुए एहतियाती तदबीरों में कमी न करे, और एक तदबीर यह भी है कि ऐसी जगह न जाये जहाँ जान का ख़तरा हो।

इसी तरह उस बस्ती के रहने वालों को मौत के ख़ौफ़ की बिना पर वहाँ से भागने की मनाही में भी बहुत सी हिक्मतें हैं।

एक हिक्मत तो सामूहिक और सार्वजनिक है कि अगर यह भागने का सिलसिला चला तो अमीर, पैसे वाले और क़ुदरत व ताक़त वाले आदमी तो भाग जायेंगे मगर बस्ती में ऐसे कमज़ोर और बड़े-बूढ़े मर्द व औरत का होना भी आ़दतन लाज़िमी है जो कहीं जाने पर क़ुदरत नहीं रखते, उनका हश्र क्या होगा। अव्वल तो वे तन्हा रहकर दहशत व घबराहट ही से मरने लगेंगे, फिर उनमें जो बीमार हैं उनकी ख़बरगीरी कौन करेगा, मर जायेंगे तो दफ़न-कफ़न का इन्तिज़ाम कैसे होगा।

दूसरी हिक्मत यह है कि जो लोग उस जगह मौजूद हैं असंभव नहीं कि उनमें उस रोग के जरासीम असर कर चुके हों, ऐसी हालत में वे सफ़र करेंगे तो और ज़्यादा मुसीबतों और मशक़्क़तों के शिकार होंगे, सफ़र की हालत में बीमार हुए तो ज़ाहिर है कि उन पर क्या गुज़रेगी। इब्ने मदीनी ने

उलेमा का यह क़ौल नक़ल किया है कि:

مافراحد من الوباء فسلم۔ (قرطبی)

"यानी जो शख़्स वबा (फैलने वाली बीमारी) से भागता है वह कभी सालिम नहीं रहता।"

तीसरी हिक्मत यह भी है कि अगर उनमें मर्ज़ (बीमारी) के जरासीम फैल चुके हैं तो ये विभिन्न बस्तियों में पहुँचेंगे तो वहाँ वबाई जरासीम फैलेंगे और अगर अपनी जगह सब्र व तवक्कुल के साथ ठहरे रहे तो बहुत मुम्किन है कि रोग से निजात हासिल हो जाये और फ़र्ज़ करो उसी बीमारी में मौत मुक़द्दर थी तो उनको अपने सब्र व साबित-क़दमी की वजह से शहादत का दर्जा मिलेगा जैसा कि हदीस में इरशाद है:

روی البخاری عن یحیٰی بن یعمر عن عائشةؓ انها اخبرته انها سألت رسول اللّٰه صلی اللّٰه علیه وسلم عن الطاعون فاخبرها النبی صلی اللّٰه علیه وسلم انّه کان عذابًا یبعثه اللّٰه علی من یشاء فجعله اللّٰه رحمة للمؤمنین فلیس من عبد یقع الطاعون فیمکث فی بلده صابرًا یعلم انّه لن یصیبه الا ما کتب اللّٰه له الاکان له مثل اجر شهید وهذا تفسیر لقوله صلی اللّٰه علیه وسلم الطاعون شهادة والمطعون شهید. (قرطبی ص ۲۳۵ ج ۳)

"इमाम बुख़ारी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने यहया बिन यामर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से नक़ल किया है कि हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने उनको ख़बर दी है कि उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से ताऊन के मुताल्लिक़ सवाल किया था, तो आपने उनको बतलाया कि यह बीमारी असल में अ़ज़ाब की हैसियत से नाज़िल हुई थी और जिस क़ौम को अ़ज़ाब देना मन्ज़ूर होता था उस पर भेज दी जाती थी। फिर अल्लाह तआ़ला ने इसको मोमिनों के लिये रहमत बना दिया। तो जो अल्लाह का बन्दा ताऊन फैलने के बाद अपनी बस्ती में सब्र व सुकून के साथ ठहरा रहे और यह यक़ीन व एतिक़ाद रखे कि उसको सिर्फ़ वही मुसीबत पहुँच सकती है जो अल्लाह तआ़ला ने उसके लिये लिख दी है तो ऐसे शख़्स को शहीद के बराबर सवाब मिलेगा। और यही मतलब है उस हदीस का जिसमें इरशाद है कि ताऊन शहादत है और ताऊन ग्रस्त शख़्स शहीद है।"

कुछ ख़ास सूरतें इस हुक्म से बाहर हैं

हदीस के अलफ़ाज़ में 'फ़ला तख़्रुजू फ़िरारम् मिन्हु' (कि वहाँ से भागने के लिये मत निकलो) आया है। इससे मालूम हुआ कि अगर कोई शख़्स मौत से भागने के लिये नहीं बल्कि अपनी किसी दूसरी ज़रूरत से दूसरी जगह चला जाये तो वह इस मनाही में दाख़िल नहीं। इसी तरह अगर किसी शख़्स का अ़क़ीदा अपनी जगह पुख़्ता हो कि यहाँ से दूसरी जगह चला जाना मुझे मौत से निजात नहीं दे सकता, अगर मेरा वक़्त आ गया है तो जहाँ जाऊँगा मौत लाज़िमी है और अगर वक़्त नहीं आया तो यहाँ रहने से भी मौत नहीं आयेगी, यह अ़क़ीदा पुख़्ता रखते हुए केवल आब व हवा की तब्दीली के लिये यहाँ से चला जाये तो वह भी इस मनाही से अलग और बाहर है।

इसी तरह कोई आदमी किसी ज़रूरत से उस जगह में दाख़िल हो जहाँ वबा फैली हुई है और

अक़ीदा उसका पुख़्ता हो कि यहाँ आने से मौत नहीं आयेगी, वह अल्लाह की मशीयत के ताबे है, तो ऐसी हालत में उसके लिये वहाँ जाना भी जायज़ होगा।

तीसरा मसला इस आयत से यह निकलता है कि मौत के ख़ौफ़ से जिहाद से भागना भी हराम है। क़ुरआने करीम में यह मसला दूसरी जगह ज़्यादा तफ़सील और वज़ाहत से आया है जिसमें कुछ ख़ास सूरतों को अलग भी कर दिया गया है।

जो मज़मून इस आयत का है तक़रीबन यही मज़मून दूसरी आयत में जिहाद से भागने वालों या उसमें शामिल न होने वालों के बारे में आया है। इरशाद यह है:

اَلَّذِيْنَ قَالُوْا لِاِخْوَانِهِمْ وَ قَعَدُوْا لَوْ اَطَاعُوْنَا مَا قُتِلُوْا قُلْ فَادْرَءُوْا عَنْ اَنْفُسِكُمُ الْمَوْتَ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ٥

(سورة۳:۱٦۸)

"यानी कुछ लोग ख़ुद भी जिहाद में शरीक न हुए और जिहाद में शरीक होकर शहीद हो जाने वालों के बारे में लोगों से कहते हैं कि इन लोगों ने हमारी बात न सुनी इसलिये मारे गये, अगर ये हमारी बात मानते तो क़त्ल न होते। (नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को हुक्म हुआ कि) आप उनसे फ़रमा दें कि अगर मौत से बचना तुम्हारे इख़्तियार में है तो औरों की क्या फ़िक्र करते हो तुम ख़ुद अपनी फ़िक्र करो और अपने आपको मौत से बचा लो। यानी जिहाद में जाने न जाने पर मौत मौक़ूफ़ नहीं, तुम्हें घर बैठे हुए भी आख़िर मौत आयेगी।"

क़ुदरत के करिश्मों से है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के सबसे बड़े जंगी जरनल सैफ़ुल्लाह हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अ़न्हु जिनकी इस्लामी उम्र सारी जिहाद ही में गुज़री है वह किसी जिहाद में शहीद नहीं हुए, बीमार होकर घर में वफ़ात पाई। वफ़ात के क़रीब अपने बिस्तर पर मरने का अफ़सोस करते हुए घर वालों को ख़िताब करके फ़रमाया कि मैं फ़ुलाँ-फ़ुलाँ अज़ीमुश्शान जंगों और जिहादों में शरीक हुआ और मेरे बदन का कोई हिस्सा ऐसा नहीं जिसमें तीर, नेज़े या चोट के ज़ख़्म का असर व निशान न हो, मगर अफ़सोस है कि अब गधे की तरह बिस्तर पर मर रहा हूँ। ख़ुदा तआ़ला बुज़दिलों को आराम न दे, उनको मेरी नसीहत पहुँचाओ।

इस आयत में बनी इस्राईल का यह वाक़िआ़ एक प्रस्तावना और भूमिका के तौर पर लाया गया था, अगली आयत में जिहाद व क़िताल का हुक्म दिया गया जो इस क़िस्से के ज़िक्र करने से असल मक़सूद था कि जिहाद में जाने को मौत या भागने को निजात न समझो, बल्कि अल्लाह तआ़ला के अहकाम की तामील करके दोनों जहान की कामयाबी हासिल करो, अल्लाह तआ़ला तुम्हारी सब बातें सुनने वाले और जानने वाले हैं।

तीसरी आयत में अल्लाह तआ़ला की राह में माल ख़र्च करने की फ़ज़ीलत का ज़िक्र है।

مَنْ ذَا الَّذِيْ يُقْرِضُ اللّٰهَ قَرْضًا حَسَنًا فَيُضٰعِفَهٗ لَهٗٓ اَضْعَافًا كَثِيْرَةً ۚ وَاللّٰهُ يَقْبِضُ وَيَبْصُۜطُ ۪ وَاِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ۝

मन् ज़ल्लज़ी युक़्रिज़ुल्ला-ह क़र्ज़न् ह-सनन् फ़-युज़ाअि-फ़हू लहू अज़्आफ़न् कसीर-तन्, वल्लाहु यक़्बिज़ु व यब्सुतु व इलैहि तुर्जअून (245)	कौन शख़्स है ऐसा जो क़र्ज़ दे अल्लाह को अच्छा कर्ज़ फिर दोगुना कर दे अल्लाह उसको कई गुना, और अल्लाह ही तंगी कर देता है और वही कशाइश करता (यानी रिज़्क़ की आसानी कर देता) है, और उसी की तरफ़ तुम लौटाये जाओगे। (245)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

जिहाद वग़ैरह ख़ैर के कामों में ख़र्च करने की तरग़ीब

(ऐसा) कौन शख़्स है जो अल्लाह तआला को क़र्ज़ दे अच्छे तौर पर क़र्ज़ देना (यानी इख़्लास के साथ) फिर अल्लाह तआला उस (क़र्ज़ के सवाब) को बढ़ाकर बहुत-से हिस्से कर दे, और (इसका अन्देशा मत करो कि ख़र्च करने से माल कम हो जायेगा, क्योंकि यह तो) अल्लाह (ही के क़ब्ज़े में है वही) कमी करते हैं और (वही) फ़राख़ी "यानी वुस्अ़त" करते हैं (कुछ ख़र्च करने न करने पर इसका असली मदार नहीं), और तुम उसी की तरफ़ (मरने के बाद) ले जाये जाओगे (सो उस वक़्त नेक काम में ख़र्च करने की जज़ा और वाजिब मौक़े पर ख़र्च न करने की सज़ा तुमको मिलेगी)।

मआरिफ़ व मसाईल

يُقْرِضُ اللّٰهَ قَرْضًا حَسَنًا.

1. (क़र्ज़ दे अल्लाह तआला को अच्छे तौर पर क़र्ज़ देना) क़र्ज़ से मुराद नेक अ़मल करना और अल्लाह तआला के रास्ते में ख़र्च करना है, इसको दूसरे मायनों में क़र्ज़ कह दिया वरना सब अल्लाह तआला ही की मिल्क है। मतलब यह है कि जैसे क़र्ज़ का बदला ज़रूर दिया जाता है इसी तरह तुम्हें ख़र्च करने का बदला ज़रूर मिलेगा। और बढ़ाने का बयान एक हदीस में आया है कि एक ख़ुर्मा (खजूर या छुहारा) अल्लाह तआला के रास्ते में ख़र्च किया जाये तो ख़ुदा तआला उसको इतना बढ़ाते हैं कि वह उहुद पहाड़ से बड़ा हो जाता है।

अल्लाह तआला को क़र्ज़ देने का यह मतलब भी बयान किया गया है कि उसके बन्दों को क़र्ज़ दिया जाये, और उनकी ज़रूरत पूरी की जाये। चुनाँचे हदीस शरीफ़ में क़र्ज़ देने की बहुत फ़ज़ीलत बयान हुई है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

مامن مسلم یقرض مسلمًا قرضًا مرّۃ الاکان کصد قتہ مرّتین. (مظہری بحوالہ ابن ماجہ)

"जो मुसलमान दूसरे मुसलमान को क़र्ज़ दे देता है यह क़र्ज़ देना अल्लाह तआला के रास्ते में उस माल के दो दफ़ा सदका करने के बराबर है।"

2. अ़ल्लामा इब्ने अ़रबी फ़रमाते हैं कि इस आयत को सुनकर लोगों के तीन फ़िर्क़े हो गये- पहला फ़िर्क़ा उन बदनसीब लोगों का है जिन्होंने यह आयत सुनकर कहा कि मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) का रब हमारी तरफ़ मोहताज है, और हम ग़नी (मालदार) हैं। इसका जवाब क़ुरआने करीम की एक और आयत में यूँ दिया गयाः

لَقَدْ سَمِعَ اللّٰهُ قَوْلَ الَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّ اللّٰهَ فَقِيْرٌ وَّنَحْنُ اَغْنِيَآءُ. (سورة٣:١٨١)

(कि अल्लाह तआ़ला ने उन लोगों की बात सुन ली जिन्होंने कहा कि अल्लाह फ़क़ीर है और हम मालदार हैं) दूसरा फ़िर्क़ा उन लोगों का है जिन्होंने इस आयत को सुनकर इसके ख़िलाफ़ किया और बुख़्ल (कन्जूसी) ही को इख़्तियार किया। माल की तरफ़ ज़्यादा रुचि और उसके लालच ने उनको इस तरह बाँध लिया कि उनको अल्लाह तआ़ला के रास्ते में ख़र्च करने की तौफ़ीक़ ही नहीं हुई। तीसरा फ़िर्क़ा उन मुख़्लिस मुसलमानों का है जिन्होंने फ़ौरन ही इस आयत पर अ़मल कर लिया और अपना पसन्दीदा माल अल्लाह के रास्ते में दे दिया जैसा कि हज़रत अबू दह्दाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु वग़ैरह। जब यह आयत नाज़िल हुई तो हज़रत अबू दह्दाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और आप से पूछा ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ बाप आप पर क़ुरबान हों, क्या अल्लाह तआ़ला हम से क़र्ज़ माँगते हैं हालाँकि वह क़र्ज़ के मोहताज व ज़रूरत मन्द नहीं? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया हाँ अल्लाह तआ़ला यह चाहते हैं कि इसके ज़रिये से तुमको जन्नत में दाख़िल कर दें। हज़रत अबू दह्दाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने यह सुनकर कहा ऐ अल्लाह के रसूल! हाथ बढ़ायें। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हाथ बढ़ा दिया। हज़रत अबू दह्दाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने कहना शुरू कियाः

"मैं खजूर के दो बाग़ों का मालिक हूँ, इसके अ़लावा मेरी मिल्क में कुछ नहीं, मैं अपने दोनों बाग़ अल्लाह तआ़ला को क़र्ज़ देता हूँ।"

आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनसे फ़रमाया एक अल्लाह के रास्ते में वक़्फ़ कर दो और दूसरा अपने बाल-बच्चों और घर वालों की आर्थिक ज़रूरत के लिये बाक़ी रखो। हज़रत अबू दह्दाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने कहा- आप गवाह रहिये उन दोनों में से बेहतरीन बाग़ जिसमें खजूर के छह सौ पेड़ हैं, उसको मैं अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करता हूँ। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया अल्लाह तुम्हें उसके बदले जन्नत अ़ता करेंगे।

हज़रत अबू दह्दाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु अपने घर आये और बीवी को इसकी इत्तिला दी तो वह भी अबू दह्दाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु के इस बेहतरीन सौदे पर बहुत ख़ुश हुईं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

كَمْ مِّنْ عِذْقٍ رَدَاحٍ وَدَارٍ فَيَاحٍ لأبي الدّحداح. (قرطبى)

"खजूरों से लबरेज़ बेशुमार दरख़्त और कुशादा (खुले और बड़े) महल किस क़द्र अबू दह्दाह के लिये तैयार हैं (यानी जन्नत में)।"

3. क़र्ज़ में वापसी के वक़्त अगर ज़्यादती की शर्त न ठहराई गई हो और अपनी तरफ़ से क़र्ज़ से कुछ ज़्यादा अदा कर दिया तो यह पसन्दीदा है, रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

ان خيار كم احسنكم قضاءً.

"तुम में बेहतरीन शख़्स वह है जो अपने हक़ (क़र्ज़) को अच्छे तरीक़े से अदा करे।"

लेकिन अगर ज़्यादती की शर्त ठहराई गई तो वह हराम और सूद है।

أَلَمْ تَرَ إِلَى الْمَلَإِ مِنْ بَنِيٓ إِسْرَآءِيلَ مِنْ بَعْدِ مُوسَىٰٓ إِذْ قَالُوا لِنَبِيٍّ لَّهُمُ ابْعَثْ لَنَا مَلِكًا نُّقَاتِلْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ ۖ قَالَ هَلْ عَسَيْتُمْ إِن كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ أَلَّا تُقَاتِلُوا ۖ قَالُوا وَمَا لَنَآ أَلَّا نُقَاتِلَ فِي سَبِيلِ اللَّهِ وَقَدْ أُخْرِجْنَا مِن دِيَٰرِنَا وَأَبْنَآئِنَا ۖ فَلَمَّا كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقِتَالُ تَوَلَّوْا إِلَّا قَلِيلًا مِّنْهُمْ ۗ وَاللَّهُ عَلِيمٌۢ بِالظَّٰلِمِينَ ۝ وَقَالَ لَهُمْ نَبِيُّهُمْ إِنَّ اللَّهَ قَدْ بَعَثَ لَكُمْ طَالُوتَ مَلِكًا ۚ قَالُوٓا أَنَّىٰ يَكُونُ لَهُ الْمُلْكُ عَلَيْنَا وَنَحْنُ أَحَقُّ بِالْمُلْكِ مِنْهُ وَلَمْ يُؤْتَ سَعَةً مِّنَ الْمَالِ ۚ قَالَ إِنَّ اللَّهَ اصْطَفَىٰهُ عَلَيْكُمْ وَزَادَهُۥ بَسْطَةً فِي الْعِلْمِ وَالْجِسْمِ ۖ وَاللَّهُ يُؤْتِي مُلْكَهُۥ مَن يَشَآءُ ۚ وَاللَّهُ وَٰسِعٌ عَلِيمٌ ۝ وَقَالَ لَهُمْ نَبِيُّهُمْ إِنَّ ءَايَةَ مُلْكِهِۦٓ أَن يَأْتِيَكُمُ التَّابُوتُ فِيهِ سَكِينَةٌ مِّن رَّبِّكُمْ وَبَقِيَّةٌ مِّمَّا تَرَكَ ءَالُ مُوسَىٰ وَءَالُ هَٰرُونَ تَحْمِلُهُ الْمَلَٰٓئِكَةُ ۚ إِنَّ فِي ذَٰلِكَ لَءَايَةً لَّكُمْ إِن كُنتُم مُّؤْمِنِينَ ۝ فَلَمَّا فَصَلَ طَالُوتُ بِالْجُنُودِ قَالَ إِنَّ اللَّهَ مُبْتَلِيكُم بِنَهَرٍ فَمَن شَرِبَ مِنْهُ فَلَيْسَ مِنِّي وَمَن لَّمْ يَطْعَمْهُ فَإِنَّهُۥ مِنِّيٓ إِلَّا مَنِ اغْتَرَفَ غُرْفَةًۢ بِيَدِهِۦ ۚ فَشَرِبُوا مِنْهُ إِلَّا قَلِيلًا مِّنْهُمْ ۚ فَلَمَّا جَاوَزَهُۥ هُوَ وَالَّذِينَ ءَامَنُوا مَعَهُۥ قَالُوا لَا طَاقَةَ لَنَا الْيَوْمَ بِجَالُوتَ وَجُنُودِهِۦ ۚ قَالَ الَّذِينَ يَظُنُّونَ أَنَّهُم مُّلَٰقُوا اللَّهِ كَم مِّن فِئَةٍ قَلِيلَةٍ غَلَبَتْ فِئَةً كَثِيرَةًۢ بِإِذْنِ اللَّهِ ۗ وَاللَّهُ مَعَ الصَّٰبِرِينَ ۝ وَلَمَّا بَرَزُوا لِجَالُوتَ وَجُنُودِهِۦ قَالُوا رَبَّنَآ أَفْرِغْ عَلَيْنَا صَبْرًا وَثَبِّتْ أَقْدَامَنَا وَانصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ الْكَٰفِرِينَ ۝ فَهَزَمُوهُم بِإِذْنِ اللَّهِ وَقَتَلَ دَاوُۥدُ جَالُوتَ وَءَاتَىٰهُ اللَّهُ الْمُلْكَ وَالْحِكْمَةَ وَعَلَّمَهُۥ مِمَّا يَشَآءُ ۗ وَلَوْلَا دَفْعُ اللَّهِ النَّاسَ بَعْضَهُم بِبَعْضٍ لَّفَسَدَتِ الْأَرْضُ وَلَٰكِنَّ اللَّهَ ذُو فَضْلٍ عَلَى الْعَٰلَمِينَ ۝

अलम् त-र इलल्-म-लइ मिम्-बनी इस्राई-ल मिम्-बअ्दि मूसा। इज़्	क्या न देखा तूने एक जमाअ़त बनी इस्राईल को मूसा के बाद। जब उन्होंने कहा अपने

क़ालू लि-नबिय्यिल्-लहुमुब्अ़स् लना मलिकन्नुक़ातिल् फ़ी सबीलिल्लाहि, क़ा-ल हल् अ़सैतुम् इन् कुति-ब अ़लैकुमुल्-क़ितालु अल्ला तुक़ातिलू, क़ालू व मा लना अल्ला नुक़ाति-ल फ़ी सबीलिल्लाहि व क़द् उख़्रिजना मिन् दियारिना व अब्ना-इना, फ़-लम्मा कुति-ब अ़लैहिमुल्-क़ितालु तवल्लौ इल्ला क़लीलम् मिन्हुम, वल्लाहु अ़लीमुम्-बिज़्ज़ालिमीन (246) व क़ा-ल लहुम् नबिय्युहुम् इन्नल्ला-ह क़द् ब-अ़-स लकुम् तालू-त मलिकन्, क़ालू अन्ना यकूनु लहुल्मुल्कु अ़लैना व नह्नु अहक़्क़ु बिल्मुल्कि मिन्हु व लम् युअ्-त स-अ़तम् मिनल्-मालि, क़ा-ल इन्नल्लाहस्तफ़ाहु अ़लैकुम् व ज़ा-दहू बस्त-तन् फ़िल्-इल्मि वल्-जिस्मि, वल्लाहु युअ्ती मुल्कहू मंय्यशा-उ, वल्लाहु वासिअुन् अ़लीम (247) व क़ा-ल लहुम् नबिय्युहुम् इन्-न आय-त मुल्किही अंय्यअ्ति-यकुमुत्ताबूतु फ़ीहि सकीनतुम् मिर्रब्बिकुम् व बक़िय्यतुम् मिम्मा त-र-क आलु मूसा व आलु हारू-न

नबी से मुक़र्रर करो हमारे लिये एक बादशाह ताकि हम लड़ें अल्लाह की राह में। पैग़म्बर ने कहा क्या तुम से भी यह उम्मीद और अपेक्षा है कि अगर हुक्म हो लड़ाई का तो तुम उस वक़्त न लड़ो। वे बोले हमको क्या कि हम न लड़ें अल्लाह की राह में? और हम तो निकाल दिये गये अपने घरों से और बेटों से, फिर जब हुक्म हुआ उनको लड़ाई का तो वे सब फिर गये मगर थोड़े से उनमें के, और अल्लाह तआ़ला ख़ूब जानता है गुनाहगारों को। (246) और फ़रमाया उनसे उनके नबी ने- बेशक अल्लाह ने मुक़र्रर फ़रमा दिया तुम्हारे लिये तालूत को बादशाह, कहने लगे क्योंकर हो सकती है उसको हुकूमत हम पर और हम ज़्यादा मुस्तहिक़ हैं सल्तनत के उससे, और उसको नहीं मिली कशाइश (वुस्अ़त और फ़रागत) माल में। पैग़म्बर ने कहा बेशक अल्लाह ने पसन्द फ़रमाया उसको तुम पर और ज़्यादा फ़राख़ी दी उसको इल्म और जिस्म में और अल्लाह देता है मुल्क अपना जिसको चाहे, और अल्लाह है फ़ज़्ल करने वाला सब कुछ जानने वाला। (247) और कहा बनी इस्राईल से उनके नबी ने कि तालूत की सल्तनत की निशानी यह है कि आये तुम्हारे पास एक सन्दूक़ कि जिसमें दिल की तसल्ली व सुकून है तुम्हारे रब की तरफ़ से, और कुछ बची हुई चीज़ें हैं उनमें से जो

तह्मिलुहुल्-मलाइ-कतु, इन्-न फ़ी ज़ालि-क लआ-यतल्-लकुम् इन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन (248) ❁ फ़-लम्मा फ़-स-ल तालूतु बिल्जुनूदि क़ा-ल इन्नल्ला-ह मुब्तलीकुम बि-न-हरिन् फ़-मन् शरि-ब मिन्हु फ़लै-स मिन्नी, व मल्लम् यत्अम्हु फ़-इन्नहू मिन्नी इल्ला मनिग़्त-र-फ़ ग़ुर्फ़तम् बि-यदिही, फ़-शरिबू मिन्हु इल्ला क़लीलम् मिन्हुम, फ़-लम्मा जा-व-ज़हू हु-व वल्लज़ी-न आमनू म-अ़हू क़ालू ला ताक़-त लनल्-यौ-म बिजालू-त व जुनूदिही, क़ालल्लज़ी-न यज़ुन्नू-न अन्नहुम् मुलाक़ुल्लाहि कम् मिन् फ़ि-अतिन् क़लीलतिन् ग़-लबत् फ़ि-अतन् कसी-रतम् बि-इज़्निल्लाहि, वल्लाहु म-अ़स्साबिरीन (249) व लम्मा ब-रज़ू लिजालू-त व जुनूदिही क़ालू रब्बना अफ़्रिग़् अ़लैना सब्रंव्-व सब्बित् अक़्दामना वन्सुर्ना अ़लल्-क़ौमिल् काफ़िरीन (250) फ़-ह-ज़मूहुम् बि-इज़्निल्लाहि व क़-त-ल दावूदु जालू-त व आताहुल्लाहुल्-मुल्-क वल्-हिक्म-त

छोड़ गयी थी मूसा और हारून की औलाद, और उठा लायेंगे उस सन्दूक़ को फ़रिश्ते, बेशक उसमें पूरी निशानी है तुम्हारे वास्ते अगर तुम यक़ीन रखते हो। (248) ❁ फिर जब बाहर निकला तालूत फ़ौजें लेकर कहा बेशक अल्लाह तुम्हारी आज़माईश करता है एक नहर से, सो जिसने पानी पिया उस नहर का तो वह मेरा नहीं और जिसने उसको न चखा तो वह बेशक मेरा है, मगर जो कोई भरे एक चुल्लू अपने हाथ से। फिर पी लिया सब ने उसका पानी मगर थोड़ों ने उनमें से, फिर जब पार हुआ तालूत और ईमान वाले साथ उसके तो कहने लगे ताक़त नहीं हमको आज जालूत और उसके लश्करों से लड़ने की, कहने लगे वे लोग जिनको ख़्याल था कि उनको अल्लाह से मिलना है- बहुत बार थोड़ी जमाअ़त ग़ालिब हुई बड़ी जमाअ़त पर अल्लाह के हुक्म से, और अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है। (249) और जब सामने हुए जालूत के और उसकी फ़ौजों के तो बोले ऐ रब हमारे! डाल दे हमारे दिलों में सब्र और जमाये रख हमारे पाँव और हमारी मदद कर इस काफ़िर क़ौम पर। (250) फिर शिकस्त दी मोमिनों ने जालूत के लश्कर को अल्लाह के हुक्म से और मार डाला दाऊद ने जालूत को, और दी दाऊद को अल्लाह

व अ़ल्ल-महू मिम्मा यशा-उ, व लौ ला दफ़्अुल्लाहिन्ना-स बअ़्-ज़हुम् बि-बअ़्ज़िल् ल-फ़-स-दतिल्-अर्ज़ु व लाकिन्नल्ला-ह ज़ू फ़ज़्लिन् अ़लल्-आ़लमीन (251)	ने सल्तनत और हिक्मत और सिखाया उनको जो चाहा, और अगर न होता दफ़ा करा देना अल्लाह का एक को दूसरे से तो ख़राब हो जाता मुल्क, लेकिन अल्लाह बहुत मेहरबान है जहान के लोगों पर। (251)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

इस मक़ाम में असल मक़सद जिहाद व क़िताल की ज़्यादा तरग़ीब है, ऊपर का क़िस्सा इसी की तम्हीद है। अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने का मज़मून इसी की ताईद है। आगे तालूत व जालूत का क़िस्सा इसी की ताकीद है तथा अल्लाह तआ़ला ने इस क़िस्से में तंगी व फ़राख़ी का भी मुशाहदा करा दिया जिसका ज़िक्र पहले गुज़री आयत 'वल्लाहु यक़्बिज़ु व यब्सुतु' में आया है, कि फ़क़ीर को बादशाह बनाना और बादशाह से बादशाहत छीन लेना सब उसी के इख़्तियार में है।

तालूत और जालूत का क़िस्सा

(ऐ मुख़ातब!) क्या तुझको बनी इस्राईल की जमाअ़त का क़िस्सा जो मूसा के बाद हुआ है तहक़ीक़ नहीं हुआ (जिससे पहले उन पर काफ़िर जालूत ग़ालिब आ चुका था, और उनके कई राज्य दबा लिये थे) जबकि उन लोगों ने अपने एक पैग़म्बर से कहा कि हमारे लिए एक बादशाह मुक़र्रर कर दीजिये कि हम (उसके साथ होकर) अल्लाह की राह में (जालूत से) क़िताल करें। उन पैग़म्बर ने फ़रमाया- क्या यह एहतिमाल "यानी शक व अन्देशा" नहीं कि अगर तुमको जिहाद का हुक्म दिया जाए तो तुम (उस वक़्त) जिहाद न करो? वे लोग कहने लगे कि हमारे वास्ते ऐसा कौनसा सबब होगा कि हम अल्लाह की राह में जिहाद न करें? हालाँकि (जिहाद के लिये एक प्रेरणा भी है, वह यह कि) हम (उन काफ़िरों के हाथों) अपनी बस्तियों और अपने बेटों से भी जुदा कर दिए गए हैं (क्योंकि उनकी कुछ बस्तियाँ भी काफ़िरों ने दबा ली थीं और उनकी औलाद को भी क़ैद कर लिया गया था) फिर जब उन लोगों को जिहाद का हुक्म हुआ तो बहुत थोड़े-से लोगों को छोड़कर (बाक़ी) सब फिर गए (जैसा कि आगे जिहाद की ग़र्ज़ से बादशाह के मुक़र्रर होने का और उन लोगों के फिर जाने का तफ़सील से बयान आता है)। और अल्लाह तआ़ला ज़ालिमों को (यानी हुक्म के ख़िलाफ़ करने वालों को) ख़ूब जानते हैं (सब को मुनासिब सज़ा देंगे)।

और उन लोगों से उनके पैग़म्बर ने फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने तुम पर तालूत को बादशाह मुक़र्रर फ़रमाया है। वे कहने लगे उनको हम पर हुक्मरानी का हक़ कैसे हासिल हो सकता है? हालाँकि उनके मुक़ाबले में हम हुक्मरानी के ज़्यादा हक़दार हैं, और उनको तो कुछ माली गुंजाईश भी

नहीं दी गई (क्योंकि तालूत ग़रीब आदमी थे)। उन पैग़म्बर ने (जवाब में) फ़रमाया कि (अव्वल तो) अल्लाह तआ़ला ने तुम्हारे मुक़ाबले में उनको चुना है (और चुनाव की मस्लेहतों को अल्लाह तआ़ला ख़ूब जानते हैं), और (दूसरे सियासत व हुक्मरानी के) इल्म और जसामत "यानी डील-डोल और जिस्मानी ताक़त" में उनको ज़्यादती दी है (और बादशाह होने के लिये इस इल्म की ज़्यादा ज़रूरत है ताकि मुल्की इन्तिज़ाम पर क़ादिर हो और जसामत भी इस मायने में कि मुवाफ़िक़ व मुख़ालिफ़ के दिल में वक़अ़त व रौब हो), और (तीसरे) अल्लाह तआ़ला (मालिकुल-मुल्क हैं) अपना मुल्क जिसको चाहें दें (उनसे कोई सवाल का हक़ नहीं रखता), और (चौथे) अल्लाह तआ़ला वुस्अ़त देने वाले हैं (उनको माल दे देना क्या मुश्किल है जिसके एतिबार से तुमको शुब्हा हुआ और) जानने वाले हैं (कि कौन बादशाहत की क़ाबलियत रखता है)।

और (जब उन लोगों ने पैग़म्बर से यह दरख़्वास्त की कि अगर कोई ज़ाहिरी दलील भी उनकी अल्लाह की तरफ़ से बादशाह होने की हम देख लें तो और ज़्यादा इत्मीनान हो जाये, उस वक़्त) उनसे उनके पैग़म्बर ने फ़रमाया कि उनके (अल्लाह की जानिब से) बादशाह होने की यह निशानी है कि तुम्हारे पास वह सन्दूक़ (बिना तुम्हारे लाये हुए) आ जाएगा जिसमें तस्कीन (और बरकत) की चीज़ है तुम्हारे रब की तरफ़ से (यानी तौरात, और तौरात का अल्लाह की जानिब से होना ज़ाहिर है) और कुछ बची हुई चीज़ें हैं जिनको (हज़रत) मूसा (अ़लैहिस्सलाम) और (हज़रत) हारून (अ़लैहिस्सलाम) छोड़ गये हैं (यानी उन हज़रात के कुछ कपड़े वग़ैरह, ग़र्ज़ कि) उस सन्दूक़ को फ़रिश्ते ले आएँगे। इस (तरह के सन्दूक़ के आ जाने) में तुम लोगों के वास्ते पूरी निशानी है अगर तुम यक़ीन लाने वाले हो।

फिर जब (बनी इस्राईल ने तालूत को बादशाह तस्लीम कर लिया और जालूत के मुक़ाबले के लिये लोग जमा हो गये और) तालूत फ़ौजों को लेकर (अपने मक़ाम यानी बैतुल-मुक़द्दस से अ़मालिक़ा की तरफ़) चले तो उन्होंने (अपने साथ वाले पैग़म्बर की वही के ज़रिये दरियाफ़्त करके साथियों से) कहा कि हक़ तआ़ला (जमे रहने और न जमने में) तुम्हारा इम्तिहान करेंगे एक नहर के ज़रिये (जो रास्ते में आयेगी और तुम प्यास की सख़्ती के वक़्त उस पर गुज़रोगे), सो जो शख़्स उससे (बहुत अधिकता के साथ) पानी पियेगा तो वह मेरे साथियों में नहीं, और जो उसको ज़बान पर भी न रखे (दर असल हुक्म यही है) वह मेरे साथियों में है, लेकिन जो शख़्स अपने हाथ से एक चुल्लू भर ले (तो इतनी छूट और रियायत है। ग़र्ज़ कि वह नहर रास्ते में आई प्यास की थी शिद्दत), सो सबने उससे (बहुत ज़्यादा) पीना शुरू कर दिया मगर थोड़े से आदमियों ने उनमें से (एहतियात की, किसी ने बिल्कुल न पिया किसी ने चुल्लू से ज़्यादा न पिया होगा)। सो जब तालूत और जो मोमिन हज़रात उनके साथ थे नहर के पार उतर गये (और अपने मजमे को देखा तो थोड़े से आदमी रह गये, उस वक़्त बाज़े आदमी आपस में) कहने लगे कि आज तो (हमारा मजमा इतना कम है कि इस हालत में) हम में जालूत और उसके लश्कर से मुक़ाबले की ताक़त मालूम नहीं होती। (यह सुनकर) ऐसे लोग जिनको यह ख़्याल (पेशे-नज़र) था कि वे अल्लाह तआ़ला के सामने पेश होने वाले हैं, कहने लगे कि कितनी ही बार (ऐसे वाक़िआ़त हो चुके हैं कि) बहुत-सी छोटी-छोटी जमाअ़तें बड़ी-बड़ी जमाअ़तों पर ख़ुदा के हुक्म से ग़ालिब आ गई हैं (असल चीज़ जमाव और मज़बूती है) और अल्लाह तआ़ला मुस्तक़िल रहने और जमने वालों का साथ देते हैं।

और जब (अ़मालिक़ा के इलाक़े में पहुँचे और) जालूत और उसकी फ़ौजों के सामने मैदान में आ गये तो (दुआ में हक़ तआ़ला से) कहने लगे- ऐ हमारे परवर्दिगार! हम पर (यानी हमारे दिलों पर) इस्तिक़लाल "यानी मज़बूती और मुस्तक़िल मिज़ाजी" (ग़ैब से) नाज़िल फ़रमाईये और (मुक़ाबले के वक़्त) हमारे क़दम जमाये रखिये और हमको इस काफ़िर क़ौम पर ग़ालिब कीजिए। फिर तालूत वालों ने जालूत वालों को ख़ुदा तआ़ला के हुक्म से शिकस्त दे दी और दाऊद (अ़लैहिस्सलाम) ने (जो कि उस वक़्त तालूत के लश्कर में थे और उस वक़्त तक नुबुव्वत वग़ैरह न मिली थी) जालूत को क़त्ल कर डाला (और कामयाब व विजयी वापस आये) और (उसके बाद) उनको (यानी दाऊद अ़लैहिस्सलाम को) अल्लाह तआ़ला ने हुकूमत और हिक्मत (यहाँ हिक्मत से मुराद नुबुव्वत है) अ़ता फ़रमाई, और भी जो-जो मन्ज़ूर हुआ उनको तालीम फ़रमाया (जैसे बग़ैर उपकरणों और यंत्रों के ज़िरह बनाना और जानवरों की बोली समझना। आगे इस वाक़िए की सार्वजनिक मस्लेहत बयान फ़रमाते हैं) और अगर यह बात न होती कि अल्लाह तआ़ला बाज़े आदमियों को (जो कि फ़साद और बिगाड़ फैलाने वाले हों) बाज़ों के ज़रिये से (जो कि सुधारक हों वक़्त वक़्त पर) दफ़ा करते रहा करते हैं (यानी अगर सुधारकों को बिगाड़ करने वालों पर ग़ालिब न करते रहते) तो सरज़मीन "यानी दुनिया" (पूरी की पूरी) फ़साद और बिगाड़ से भर जाती, लेकिन अल्लाह तआ़ला बड़े फ़ज़्ल वाले हैं जहान वालों पर (इसलिये वक़्त वक़्त पर सुधार फ़रमाते रहते हैं)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

اِذْقَالُوْا لِنَبِیٍّ لَّھُمُ ابْعَثْ لَنَا مَلِکًا نُّقَاتِلْ فِیْ سَبِیْلِ اللّٰہِ

1. उन बनी इस्राईल ने हक़ तआ़ला के अहकाम को छोड़ दिया था, अ़मालिक़ा के काफ़िर उन पर मुसल्लत कर दिये गये, इस वक़्त उन लोगों को इस्लाह (सुधार) की फ़िक्र हुई और जिस नबी का यहाँ ज़िक्र है उनका नाम शमोईल मशहूर है।

اَنْ یَّاْتِیَکُمُ التَّابُوْتُ

2. बनी इस्राईल में एक सन्दूक़ चला आता था उसमें तबर्रुकात (बरकत की चीज़ें) थे हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम वग़ैरह अम्बिया के। बनी इस्राईल उस सन्दूक़ को लड़ाई में आगे रखते, अल्लाह तआ़ला उसकी बरकत से फ़तह देता। जब जालूत बनी इस्राईल पर ग़ालिब आया तो यह सन्दूक़ भी वह ले गया था। जब अल्लाह तआ़ला को सन्दूक़ का पहुँचाना मन्ज़ूर हुआ तो यह किया कि वे काफ़िर जहाँ सन्दूक़ को रखते वहीं वबा और बला आती, पाँच शहर वीरान हो गये, मजबूर होकर दो बैलों पर उसको लाद कर हाँक दिया, फ़रिश्ते बैलों को हंकाकर तालूत के दरवाज़े पर पहुँचा गये, बनी इस्राईल इस निशानी को देखकर तालूत की बादशाहत पर यक़ीन लाये और तालूत ने जालूत पर फ़ौजी चढ़ाई कर दी और मौसम बहुत गर्म था।

قَالَ اِنَّ اللّٰہَ مُبْتَلِیْکُمْ بِنَھَرٍ

3. इस इम्तिहान की हिक्मत और वजह अहक़र के ज़ौक़ में यह मालूम होती है कि ऐसे मौक़ों पर जोश व ख़रोश (उत्साह) में भीड़ भड़का बहुत हो जाया करता है, लेकिन वक़्त पर जमने वाले

कम होते हैं और उस वक़्त ऐसों का उखड़ जाना बाक़ी लोगों के पाँव भी उखाड़ देता है। अल्लाह तआ़ला को ऐसे लोगों का अलग करना मन्ज़ूर था। इसका यह इम्तिहान मुक़र्रर किया गया जो कि बहुत ही मुनासिब है, क्योंकि क़िताल (जंग और लड़ाई) में जमाव और सख़्त मेहनत की ज़रूरत होती है, सो प्यास की तेज़ी के वक़्त बे-मन्नत के पानी मिलने पर सब्र करना जमाव और सब्र की दलील और अंधे बावलों की तरह जा गिरना बेसब्री और न जमने की दलील है। आगे आम आ़दत के ख़िलाफ़ एक बात का ज़िक्र है कि ज़्यादा पानी पीने वाले ग़ैबी तौर पर भी ज़्यादा बेकार और काम करने से आ़जिज़ हो गये, जैसा कि तफ़सीर रूहुल-मआ़नी में इब्ने अबी हातिम रहमतुल्लाहि अ़लैहि की रिवायत से हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत नक़ल की है, और इस क़िस्से में जो अहवाल व अक़वाल (हालात और बातें) बयान हुई हैं उनसे मालूम होता है कि उनमें तीन क़िस्म के लोग थे:

1. नाक़िस ईमान वाले जो इम्तिहान में पूरे न उतरे।
2. कामिल ईमान वाले जो इम्तिहान में पूरे उतरे मगर अपनी कम तायदाद की उनको फ़िक्र हुई।
3. बहुत ज़्यादा कामिल, जिनको यह भी फ़िक्र नहीं हुई।

تِلْكَ اٰيٰتُ اللّٰهِ نَتْلُوْهَا عَلَيْكَ بِالْحَقِّ ۭ وَاِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ ۝

तिल्-क आयातुल्लाहि नत्लूहा अ़लै-क बिल्हक़्क़ि, व इन्न-क ल-मिनल्-मुर्सलीन (252)	ये आयतें अल्लाह की हैं हम तुझको सुनाते हैं ठीक-ठीक, और तू बेशक हमारे रसूलों में है। (252)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

चूँकि क़ुरआने करीम का एक बड़ा मक़सद नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत को साबित करना भी है इसलिये जिस जगह मज़मून के साथ मुनासबत होती है उसको दोहरा दिया जाता है। इस मौक़े पर इस क़िस्से की सही-सही ख़बर देना जबकि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने न किसी से पढ़ा न कहीं सुना न देखा, एक मोजिज़ा है, जो आपकी नुबुव्वत की सही दलील है, इसलिये इन आयतों में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत पर दलील पकड़ते हैं।

नुबुव्वते मुहम्मदिया पर दलील पकड़ना

ये (आयतें जिनमें यह क़िस्सा ज़िक्र हुआ) अल्लाह तआ़ला की आयतें हैं जो सही-सही तौर पर हम तुमको पढ़-पढ़कर सुनाते हैं, और (इससे साबित होता है कि) आप बेशक पैग़म्बरों में से हैं।

तीसरा पारः तिल्करुसुलु

تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ ۘ مِنْهُمْ مَّنْ كَلَّمَ اللّٰهُ وَرَفَعَ بَعْضَهُمْ دَرَجٰتٍ ؕ وَاٰتَيْنَا عِيْسَى ابْنَ مَرْيَمَ الْبَيِّنٰتِ وَاَيَّدْنٰهُ بِرُوْحِ الْقُدُسِ ؕ وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ مَا اقْتَتَلَ الَّذِيْنَ مِنْ بَعْدِهِمْ مِّنْ بَعْدِ مَا جَآءَتْهُمُ الْبَيِّنٰتُ وَلٰكِنِ اخْتَلَفُوْا فَمِنْهُمْ مَّنْ اٰمَنَ وَمِنْهُمْ مَّنْ كَفَرَ ؕ وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ مَا اقْتَتَلُوْا ۟ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَفْعَلُ مَا يُرِيْدُ ۝

तिल्करुसुलु फ़ज़्ज़ल्ना बअ्-ज़हुम अला बअ्ज़िन्। मिन्हुम् मन् कल्लमल्लाहु व र-फ़-अ़ बअ्-ज़हुम द-रजातिन्, व आतैना ईसब्-न मर्यमल्-बय्यिनाति व अय्यद्नाहु बिरूहिल्कुदुसि, व लौ शाअल्लाहु मक्त-तलल्लज़ी-न मिम्-बअ्दिहिम् मिम्-बअ्दि मा जाअत्हुमुल्-बय्यिनातु व लाकिनिख़्त-लफ़ू फ़-मिन्हुम् मन् आम-न व मिन्हुम् मन् क-फ़-र, व लौ शाअल्लाहु मक्त-तलू, व लाकिन्नल्ला-ह यफ़्अ़लु मा युरीद (253) ✿	ये सब रसूल (अ़लैहिमुस्सलाम) फ़ज़ीलत दी हमने इनमें बाज़ को बाज़ से, कोई तो वह है कि कलाम फ़रमाया उससे अल्लाह ने और बुलन्द किये बाज़ों के दर्जे और दिये हमने ईसा मरियम के बेटे को स्पष्ट मोजिज़े और कुव्वत दी उसको रूहुल-कुदुस यानी जिब्राईल से, और अगर अल्लाह चाहता तो न लड़ते वे लोग जो हुए उन पैग़म्बरों के बाद इसके बावजूद कि पहुँच चुके उनके पास साफ़ हुक्म, लेकिन उनमें इख़्तिलाफ़ (मतभेद और झगड़ा) पड़ गया, फिर कोई तो उनमें ईमान लाया और कोई काफ़िर हुआ, और अगर अल्लाह चाहता तो वे आपस में न लड़ते, लेकिन अल्लाह करता है जो चाहे। (253) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ये हज़राते मुर्सलीन (जिनका ज़िक्र अभी 'व इन्न-क ल-मिनल् मुर्सलीन' यानी पिछले पारे की आख़िरी आयत में आया है, ऐसे हैं कि हमने उनमें से बाज़ों को बाज़ों पर फ़ौक़ियत दी है (मिसाल के तौर पर) बाज़े उनमें वे हैं जो अल्लाह तआ़ला से (बिना फ़रिश्ते के माध्यम के) हम-कलाम हुए हैं (मुराद मूसा अ़लैहिस्सलाम हैं) और बाज़ों को उनमें से बहुत-से दर्जों में (आला मक़ाम से) नवाज़ा।

और हमने (हज़रत) ईसा बिन मरियम (अलैहिस्सलाम) को खुली-खुली दलीलें (यानी मोजिज़े) अता फ़रमाईं, और हमने उनकी ताईद रूहुल-क़ुदुस (यानी जिब्राईल अलैहिस्सलाम) से फ़रमाई (हर वक़्त यहूद से उनकी हिफ़ाज़त करने के लिये साथ रहते थे), और अगर अल्लाह तआ़ला को मन्ज़ूर होता तो (उम्मत के) जो लोग इन (पैग़म्बरों) के बाद हुए हैं (कभी दीन में झगड़े करके) आपस में क़त्ल व क़िताल न करते, बाद इसके कि उनके पास (हक़ बात की) दलीलें (पैग़म्बरों के द्वारा) पहुँच चुकी थीं (जिनका तक़ाज़ा था दीने हक़ के क़ुबूल करने पर मुत्तफ़िक़ रहना) लेकिन (चूँकि अल्लाह तआ़ला को कुछ हिक्मतें मन्ज़ूर थीं इसलिये उनमें धार्मिक सहमति पैदा नहीं की) वे लोग (आपस में दीन में) मुख़्तलिफ़ हुए, सो उनमें कोई तो ईमान लाया और कोई काफ़िर रहा, (फिर उस मतभेद और झगड़े में नौबत क़त्ल व क़िताल की भी पहुँच गई) और अगर अल्लाह तआ़ला को मन्ज़ूर होता तो वे लोग आपस में क़त्ल व क़िताल न करते, लेकिन अल्लाह तआ़ला (अपनी हिक्मत से) जो चाहते हैं (अपनी क़ुदरत से) वही करते हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

1. "**तिल्करुंसुलु........**" (ये सब रसूल.......) इस मज़मून में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को एक तरह से तसल्ली देना है क्योंकि जब आपका रसूल होना दलील से साबित था जिसको "व इन्न-क ल-मिनल् मुर्सलीन" (बेशक आप रसूलों में हैं) में भी फ़रमाया है और फिर भी इनकारी लोग न मानते थे तो यह आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के रंज व अफ़सोस का सबब था इसलिये अल्लाह तआ़ला ने यह बात सुना दी कि और भी पैग़म्बर मुख़्तलिफ़ दर्जों के गुज़रे हैं, लेकिन ईमान किसी की उम्मत में आ़म नहीं हुआ, किसी ने मुवाफ़क़त की किसी ने मुख़ालफ़त की, और इसमें भी अल्लाह तआ़ला की हिक्मतें होती हैं अगरचे हर शख़्स को उनका पता न चल सके मगर मुख़्तसर तौर पर इतना अ़क़ीदा रखना ज़रूरी है कि इसमें अल्लाह की कोई हिक्मत ज़रूर है।

تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ.

2. "उनमें से बाज़ों को बाज़ों पर हमने बरतरी दी......." यहाँ यह शुब्हा पेश आ सकता है कि यह आयत स्पष्ट तौर पर इस बात पर दलालत कर रही है कि कुछ अम्बिया कुछ से अफ़ज़ल हैं हालाँकि हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

لا تفضلوا بين انبيآء الله.

कि "अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के बीच तफ़ज़ील न किया करो (यानी किसी को किसी से ऊँचे दर्जे या कम दर्जे का मत बताओ)।"

और फ़रमायाः

لا تخيّروني على موسٰى.

"मुझे मूसा अ़लैहिस्सलाम पर फ़ज़ीलत न दो।"

और फ़रमायाः

لااقول ان احدًا افضل من يونس بن متّى.

"मैं नहीं कह सकता कि कोई यूनुस बिन मता अ़लैहिस्सलाम से अफ़ज़ल है।"

इन हदीसों में अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम में से किसी को किसी पर फ़ज़ीलत देने (बड़े दर्जे वाला बताने) की मनाही बयान की गयी है।

जवाब यह है कि हदीसों का मतलब यह है कि दलील के बग़ैर अपनी राय से किसी को किसी पर फ़ज़ीलत न दो, इसलिये कि किसी नबी के अफ़ज़ल होने के मायने यह हैं कि अल्लाह के यहाँ उनका मर्तबा बहुत ज़्यादा है, और ज़ाहिर है कि इसका इल्म राय और अन्दाज़े से हासिल नहीं हो सकता, लेकिन क़ुरआन व हदीस की किसी दलील से अगर कुछ अम्बिया की कुछ पर फ़ज़ीलत (बड़ाई और बरतरी) मालूम हो गई तो उसके मुताबिक़ एतिक़ाद रखा जायेगा।

रहा आपका यह इरशाद किः

لا اقول ان احدا افضل من یونس بن متٰی

"मैं नहीं कह सकता कि कोई यूनुस बिन मता अ़लैहिस्सलाम से अफ़ज़ल है।"

औरः

لا تخیرونی علٰی موسٰی

"मुझे मूसा अ़लैहिस्सलाम पर फ़ज़ीलत न दो।"

तो यह उस वक़्त से मुताल्लिक़ है जबकि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को यह इल्म नहीं दिया गया था कि आप तमाम अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम से अफ़ज़ल हैं, बाद में वही के द्वारा आपको यह बात बतला दी गई और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से आपने इसका इज़हार भी फ़रमा दिया। (तफ़सीरे मज़हरी)

مِنْهُمْ مَّنْ كَلَّمَ اللّٰهُ.......الخ

3. "उनमें वह हैं जिनसे अल्लाह ने बिना किसी माध्यम के कलाम किया....." मूसा अ़लैहिस्सलाम के साथ हम-कलामी अगरचे फ़रिश्ते के माध्यम के बग़ैर हुई मगर बिना पर्दे के न थी, पस सूरः शूरा की आयतः

مَاكَانَ لِبَشَرٍ اَنْ يُّكَلِّمَهُ اللّٰهُ.......... الخ (۴۲:۵۱)

जिसमें बेहिजाब (बिना आड़ और पर्दे के) कलाम की नफ़ी की गई, उससे कुछ टकराव न रहा, अलबत्ता मौत के बाद बेहिजाब कलाम होना भी शरअ़न् मुम्किन है। पस सूरः शूरा की वह आयत दुनिया के एतिबार से है।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَنْفِقُوْا مِمَّا رَزَقْنٰكُمْ مِّنْ قَبْلِ اَنْ يَّاْتِيَ يَوْمٌ لَّا بَيْعٌ فِيْهِ وَلَا خُلَّةٌ وَّلَا شَفَاعَةٌ ؕ وَالْكٰفِرُوْنَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू अन्फ़िक़ू मिम्मा र-ज़क़्नाकुम् मिन् क़ब्लि	ऐ ईमान वालो! ख़र्च करो उसमें से जो हमने तुमको रोज़ी दी उस दिन के आने से

अंय्यअ्ति-य यौमुल्-ला बैअुन् फ़ीहि व ला ख़ुल्लतुंव्-व ला शफ़ाअ़तुन्, वल्-काफ़िरू-न हुमुज़्ज़ालिमून (254)	पहले कि जिसमें न ख़रीद व फ़रोख़्त है और न आशनाई (ताल्लुक़ात व जान-पहचान) और न सिफ़ारिश, और जो काफ़िर हैं वही हैं ज़ालिम। (254)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने में जल्दी करना

ऐ ईमान वालो! ख़र्च करो उन चीज़ों में से जो हमने तुमको दी हैं, इससे पहले कि वह (क़ियामत का) दिन आ जाए जिसमें (कोई चीज़ नेक आमाल का बदल न हो सकेगी, क्योंकि उसमें) न तो ख़रीद व बेच होगी (कि कोई चीज़ देकर नेक आमाल ख़रीद लो) और न (ऐसी) दोस्ती होगी (कि कोई तुमको अपने नेक आमाल दे दे) और न (अल्लाह की इजाज़त के बग़ैर) कोई सिफ़ारिश होगी (जिससे नेक आमाल की तुमको ज़रूरत न रहे) और काफ़िर लोग ही ज़ुल्म करते हैं (कि आमाल और माल को बेमौक़ा इस्तेमाल करते हैं, इस तरह कि बदनी और माली नेक कामों को छोड़ते और बदनी व माली नाफ़रमानी को अपनाते हैं, तुम तो ऐसे मत बनो)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस सूरत में इबादतों और मामलात के बारे में बहुत सारे वो अहकाम बयान फ़रमाये जिन तमाम पर अ़मल करना नफ़्स को नागवार और भारी है, और तमाम आमाल में ज़्यादा दुश्वार इनसान को जान और माल का ख़र्च करना होता है, और अल्लाह के अक्सर अहकाम जो देखे जाते हैं वो या तो जान के बारे में हैं या माल के बारे में, और गुनाह में बन्दे को जान या माल की मुहब्बत और रियायत ही अक्सर मुब्तला करती है। गोया इन दोनों की मुहब्बत गुनाहों की जड़ और इनसे निजात तमाम नेक कामों में आसानी का सबब है, इसलिये इन अहकाम को बयान फ़रमाकर क़िताल (अल्लाह के रास्ते में लड़ाई) और इन्फ़ाक़ (ख़र्च करने) को बयान फ़रमाना मुनासिब हुआः

وَقَاتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ.......... الخ

(और क़िताल व जिहाद करो अल्लाह के रास्ते में) में पहले का बयान था और:

مَنْ ذَا الَّذِيْ يُقْرِضُ اللّٰهَ......... الخ

(कौन है जो अल्लाह को क़र्ज़ दे..........) में दूसरे का ज़िक्र है। इसके बाद तालूत के क़िस्से से पहले (यानी जान ख़र्च करने) की ताकीद हुई तो अबः

اَنْفِقُوْا مِمَّا رَزَقْنٰكُمْ..... الخ

(ख़र्च करो जो कुछ हमने तुमको दिया है........) से दूसरे (माल ख़र्च करने) की ताकीद मन्ज़ूर है। और चूँकि माल के ख़र्च करने पर इबादतों और मामलात के बहुत से उमूर मौक़ूफ़ (निर्भर और टिके)

हैं तो इसके बयान में ज़्यादा तफ़सील और ताकीद से काम लिया। चुनाँचे अब जो रुकूअ़ आते हैं उनमें से अधिकतर में दूसरी बात यानी माल ख़र्च करने का ज़िक्र है।

ख़ुलासा-ए-मतलब यह हुआ कि अ़मल का वक़्त अभी है, आख़िरत में तो न अ़मल बिकते हैं न कोई दोस्ती की बिना पर देता है, न कोई सिफ़ारिश से छुड़ा सकता है जब तक पकड़ने वाला न छोड़े।

اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ اَلْحَيُّ الْقَيُّوْمُ ۚ لَا تَاْخُذُهٗ سِنَةٌ وَّلَا نَوْمٌ ۭ لَهٗ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ مَنْ ذَا الَّذِيْ يَشْفَعُ عِنْدَهٗٓ اِلَّا بِاِذْنِهٖ ۭ يَعْلَمُ مَا بَيْنَ اَيْدِيْهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ ۚ وَلَا يُحِيْطُوْنَ بِشَيْءٍ مِّنْ عِلْمِهٖٓ اِلَّا بِمَا شَاۗءَ ۚ وَسِعَ كُرْسِيُّهُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ ۚ وَلَا يَـــُٔـــوْدُهٗ حِفْظُهُمَا ۚ وَھُوَ الْعَلِيُّ الْعَظِيْمُ ۝

अल्लाहु ला इला-ह इल्ला हु-व अल्-हय्युल्-क़य्यूमु ला तअ्ख़ुज़ुहू सि-नतुंव्-व ला नौमुन्, लहू मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि, मन् ज़ल्लज़ी यश्फ़अु अ़िन्दहू इल्ला बि-इज़्निही, यअ़्लमु मा बै-न ऐदीहिम व मा ख़ल्फ़हुम व ला युहीतू-न बिशैइम् मिन् अ़िल्मिही इल्ला बिमा शा-अ वसि-अ कुर्सिय्युहुस्समावाति वल्अर्-ज़ व ला यऊदुहू हिफ्ज़ुहुमा व हुवल्-अ़लिय्युल् अ़ज़ीम (255)	अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, ज़िन्दा है सब का थामने वाला, नहीं पकड़ सकती उसको ऊँघ और न नींद। उसी का है जो कुछ आसमानों और ज़मीन में है, और ऐसा कौन है जो सिफ़ारिश करे उसके पास मगर उसकी इजाज़त से, जानता है जो कुछ ख़लक़त के रू-ब-रू (सामने) है और जो कुछ उनके पीछे है, और वे सब इहाता नहीं कर सकते किसी चीज़ का उसकी मामूलात में से मगर जितना कि वही चाहे, गुंजाईश है उसकी कुर्सी में तमाम आसमानों और ज़मीन को, और भारी नहीं उसको थामना उनका, और वही है सबसे बरतर अ़ज़मत (बड़ाई) वाला। (255)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

अल्लाह तआ़ला (ऐसा है कि) उसके सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं, ज़िन्दा है (जिसको कभी मौत नहीं आ सकती) संभालने वाला है (तमाम आ़लम का) न उसको ऊँघ दबा सकती है और न नींद (दबा सकती है) उसी की मिल्कियत में हैं सब जो कुछ (भी) आसमानों में (मौजूद चीज़ें) हैं और जो कुछ ज़मीन में हैं। ऐसा कौन शख़्स है जो उसके पास (किसी की) सिफ़ारिश कर सके बिना उसकी

इजाज़त के, वह जानता है उन (तमाम मौजूद चीज़ों) के तमाम हाज़िर व ग़ायब हालात को, और वे मौजूदात उसकी मालूमात में से किसी चीज़ को अपने इल्मी इहाते "यानी जानकारी के घेरे" में नहीं ला सकते, मगर जिस क़द्र (इल्म देना वही) चाहे। उसकी कुर्सी (इतनी बड़ी है कि उस) ने सब आसमानों और ज़मीन को अपने अन्दर ले रखा है, और अल्लाह तआला को उन दोनों (आसमान व ज़मीन) की हिफ़ाज़त कुछ भारी नहीं गुज़रती, और वह बुलन्द शान वाला और अज़ीमुश्शान है।

मआरिफ़ व मसाईल

आयतुल-कुर्सी के ख़ास फ़ज़ाईल

यह आयत क़ुरआने करीम की बहुत ही बड़े रुतबे वाली आयत है। हदीसों में इसके बड़े फ़ज़ाईल व बरकतें ज़िक्र हुई हैं। मुस्नद अहमद की रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इसको सब आयतों से अफ़ज़ल फ़रमाया है, और एक दूसरी रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मालूम किया कि क़ुरआन में कौनसी आयत सबसे ज़्यादा अ़ज़ीम है? उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अ़र्ज़ किया 'आयतुल-कुर्सी'! नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनकी तस्दीक़ करते हुए फ़रमाया ऐ अबू मुन्ज़िर तुम्हें इल्म मुबारक हो।

हज़रत अबूज़र रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से पूछा या रसूलल्लाह! क़ुरआन में सबसे अ़ज़ीम आयत कौनसी है? आपने फ़रमाया आयतुल-कुर्सी।

(इब्ने कसीर, मुस्नद अहमद की रिवायत से)

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- सूरः ब-क़रह में एक आयत है जो क़ुरआन की तमाम आयतों की सरदार है, वह जिस घर में पढ़ी जाये शैतान उससे निकल जाता है।

नसाई शरीफ़ की एक रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- जो शख़्स हर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद आयतुल-कुर्सी पढ़ा करे तो उसको जन्नत में दाख़िल होने के लिये सिवाय मौत के कोई चीज़ रोक नहीं है, यानी मौत के बाद फ़ौरन वह जन्नत के आसार और राहत व आराम को देखने लगेगा।

इस आयत में अल्लाह जल्ल शानुहू की ज़ाती और सिफ़ाती तौहीद का बयान एक अ़जीब व ग़रीब अन्दाज़ में बयान किया गया है, जिसमें अल्लाह जल्ल शानुहू का मौजूद होना, ज़िन्दा होना, सुनने और देखने वाला होना, कलाम करने वाला होना, अपनी ज़ात से मौजूद होना, हमेशा से होना और हमेशा बाक़ी रहने वाला होना, सब कायनात का मूजिद व ख़ालिक़ होना, तब्दीलियों और तास्सुरात से ऊपर होना, तमाम कायनात का मालिक होना, बड़ाई और बुज़ुर्गी वाला होना कि उसके आगे कोई बग़ैर उसकी इजाज़त के बोल नहीं सकता। ऐसी कामिल क़ुदरत का मालिक होना कि सारे आ़लम और उसकी कायनात को पैदा करने, बाक़ी रखने और उनका स्थिर निज़ाम क़ायम रखने से उसको न कोई थकान पेश आती है न सुस्ती, ऐसे मुकम्मल इल्म का मालिक होना जिससे किसी खुली

या छुपी चीज़ का कोई ज़र्रा या क़तरा बाहर न रहे। यह मुख़्तसर मफ़्हूम है इस आयत का, अब तफ़सील के साथ इसके अलफ़ाज़ के मायने सुनिये।

इस आयत में दस जुमले हैं। पहला जुमला है:

اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ

'अल्लाहु ला इला-ह इल्ला हु-व' इसमें लफ़्ज़ अल्लाह इस्मे ज़ात है जिसके मायने हैं "वह ज़ात जो तमाम कमालात की जामे और तमाम कमियों व नुक़्सों से पाक है।" 'ला इला-ह इल्ला हु-व' में उसी ज़ात का बयान है कि इबादत के क़ाबिल उस ज़ात के सिवा कोई चीज़ नहीं।

दूसरा जुमला है:

اَلْحَيُّ الْقَيُّوْمُ

'अल्हय्युल-क़य्यूमु' लफ़्ज़ हय्यु के मायने अ़रबी ज़बान में हैं 'ज़िन्दा'। अस्मा-ए-इलाही (अल्लाह के पाक नामों) में से यह लफ़्ज़ लाकर यह बतलाना है कि वह हमेशा ज़िन्दा और बाक़ी रहने वाला है, वह मौत से बालातर है। लफ़्ज़ **क़य्यूम** क़ियाम से निकला है, क़ियाम के मायने खड़ा होना, क़ायम खड़ा होने वाले को कहते हैं। क़य्यूम और क़ियाम मुबालग़े के सीग़े कहलाते हैं, इनके मायने हैं वह जो क़ायम रहकर दूसरों को क़ायम रखता और संभालता है। क़य्यूम हक़ तआ़ला की ख़ास सिफ़त है जिसमें कोई मख़्लूक़ शरीक नहीं हो सकती, क्योंकि जो चीज़ें ख़ुद अपने वजूद और बाक़ी रहने में किसी दूसरे की मोहताज हों वह किसी दूसरी चीज़ को क्या संभाल सकती हैं? इसलिये किसी इनसान को क़य्यूम कहना जायज़ नहीं। जो लोग अ़ब्दुल-क़य्यूम के नाम को बिगाड़ कर सिर्फ़ क़य्यूम बोलते हैं वे गुनाहगार होते हैं।

अल्लाह जल्ल शानुहू के अस्मा-ए-सिफ़ात (सिफ़ाती नामों) में हय्यु व क़य्यूम का मजमूआ़ बहुत से हज़रात के नज़दीक इस्मे आज़म है। हज़रत अ़ली मुर्तज़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि बदर की लड़ाई में मैंने एक वक़्त यह चाहा कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को देखूँ कि आप क्या कर रहे हैं। पहुँचा तो देखा कि आप सज्दे में पड़े हुए बार-बार 'या हय्यु या क़य्यूमु या हय्यु या क़य्यूमु' कह रहे हैं।

तीसरा जुमला है:

لَا تَاْخُذُهٗ سِنَةٌ وَّلَا نَوْمٌ

'ला तअ्ख़ुज़ुहू सि-नतुंव्-व ला नौमुन' लफ़्ज़ **सि-नतुन** ऊँघ को कहते हैं जो नींद के शुरूआ़ती आसार होते हैं, और **नौम** मुकम्मल नींद को। इस जुमले का मफ़्हूम यह है कि अल्लाह तआ़ला ऊँघ और नींद सबसे बरी व बुलन्द है। पिछले जुमले में क़य्यूम ने जब इनसान को यह बतलाया कि अल्लाह शानुहू सारे आसमानों ज़मीनों और इनमें समाने वाली तमाम कायनात को थामे और संभाले हुए है और सारी कायनात उसी के सहारे क़ायम है, तो एक इनसान का ख़्याल अपनी फ़ितरत के मुताबिक़ इस तरफ़ जाना मुम्किन है कि जो ज़ाते पाक इतना बड़ा काम कर रही है उसको किसी वक़्त थकान भी होनी चाहिये, कुछ वक़्त आराम और नींद के लिये भी होना चाहिये। इस दूसरे जुमले में सीमित इल्म व समझ और सीमित क़ुदरत रखने वाले इनसान को इस पर सचेत कर दिया

कि अल्लाह जल्ल शानुहू को अपने ऊपर या दूसरी मख़्लूक़ात पर क़ियास (अन्दाज़ा) न करे, अपने जैसा न समझे, वह मिस्ल व मिसाल (किसी के जैसा होने, या यह कि कोई उसके जैसा हो इस) से बालातर है। उसकी कामिल क़ुदरत के सामने ये सारे काम न कुछ मुश्किल हैं न उसके लिये थकान का सबब हैं, और उसकी पाक ज़ात तमाम तास्सुरात (प्रभावों) और थकान व सुस्ती और ऊँघ व नींद से बालातर (ऊँची व बुलन्द) है।

चौथा जुमला है:

لَهٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ وَمَا فِی الْاَرْضِ

'लहू मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्-अर्ज़ि' इसके शुरू में लफ़्ज़ लहू का लाम मालिक बनाने के मायने के लिये आया है जिसके मायने यह हुए कि तमाम चीज़ें जो आसमानों या ज़मीन में हैं सब अल्लाह तआ़ला की मम्लूक (मिल्कियत में) हैं। वह मुख़्तार है जिस तरह चाहे उनमें इख़्तियार चलाये।

पाँचवाँ जुमला है:

مَنْ ذَا الَّذِیْ یَشْفَعُ عِنْدَهٗٓ اِلَّا بِاِذْنِهٖ

'मन् ज़ल्लज़ी यश्फ़अु अिन्दहू इल्ला बि-इज़्निही' यानी "ऐसा कौन है जो उसके आगे किसी की सिफ़ारिश कर सके बग़ैर उसकी इजाज़त के।" इसमें चन्द मसाईल बयान फ़रमा दिये हैं।

अव्वल यह कि जब अल्लाह तआ़ला कायनात का मालिक है, कोई उससे बड़ा और उसके ऊपर हाकिम नहीं तो कोई उससे किसी काम के बारे में पूछताछ करने का भी हक़दार नहीं। वह जो हुक्म जारी फ़रमायें उसमें किसी को चूँ व चरा करने की मजाल नहीं, हाँ यह हो सकता था कि कोई शख़्स किसी की सिफ़ारिश व शफ़ाअ़त करे सो इसको भी वाज़ेह फ़रमा दिया कि अल्लाह की बारगाह में किसी को दम मारने की मजाल नहीं, हाँ कुछ अल्लाह तआ़ला के मक़बूल बन्दे हैं जिनको ख़ास तौर पर कलाम और शफ़ाअ़त की इजाज़त दे दी जायेगी। ग़र्ज़ कि बिना इजाज़त कोई किसी की सिफ़ारिश व शफ़ाअ़त भी न कर सकेगा। हदीस में है, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मेहशर में सबसे पहले मैं सारी उम्मतों की शफ़ाअ़त करूँगा, इसी का नाम मक़ामे महमूद है, जो हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़ुसूसियतों में से है।

छठा जुमला है:

یَعْلَمُ مَا بَیْنَ اَیْدِیْهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ

'यअ़्लमु मा बै-न ऐदीहिम व मा ख़ल्फ़हुम्' यानी "अल्लाह तआ़ला उन लोगों के आगे पीछे के तमाम हालात व वाक़िआ़त से वाक़िफ़ व बाख़बर है" आगे और पीछे का यह मतलब भी हो सकता है कि उनके पैदा होने से पहले और पैदा होने के बाद के तमाम हालात व वाक़िआ़त हक़ तआ़ला के इल्म में हैं, और यह मफ़्हूम भी हो सकता है कि आगे से मुराद वे हालात हैं जो इनसान के लिये खुले हुए हैं और पीछे से मुराद उससे छुपे हुए वाक़िआ़त व हालात हों, तो मायने यह होंगे कि इनसान का इल्म तो कुछ चीज़ों पर है और कुछ पर नहीं, कुछ चीज़ें उसके सामने खुली हुई हैं मगर अल्लाह जल्ल शानुहू के सामने ये सब चीज़ें बराबर हैं, उसका इल्म इन सब चीज़ों को बराबर तौर पर घेरे हुए है, और इन दोनों मतलबों में कोई टकराव नहीं, आयत की वुस्अ़त में ये दोनों दाख़िल हैं।

सातवाँ जुमला है:

وَلَا يُحِيطُوْنَ بِشَيْءٍ مِّنْ عِلْمِهٖٓ اِلَّا بِمَا شَآءَ

'व ला युहीतू-न बिशैइम् मिन् अ़िल्मिही इल्ला बिमा शा-अ' यानी "इनसान और तमाम मख़्लूक़ात अल्लाह के इल्म के किसी हिस्से का भी इहाता (घेराव) नहीं कर सकते, मगर अल्लाह तआ़ला ही ख़ुद जिसको इल्म का जितना हिस्सा अ़ता करना चाहें सिर्फ़ उतना ही उसको इल्म हो सकता है।" इसमें बतला दिया कि तमाम कायनात के ज़र्रे-ज़र्रे का मुकम्मल इल्म सिर्फ़ अल्लाह जल्ल शानुहू की ख़ुसूसी सिफ़त है, इनसान या कोई मख़्लूक़ उसमें शरीक नहीं हो सकती।

आठवाँ जुमला है:

وَسِعَ كُرْسِيُّهُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ

'वसि-अ़ कुरसिय्युहुस्समावाति वल-अर्-ज़' यानी "उसकी कुर्सी इतनी बड़ी है जिसकी वुस्अ़त के अन्दर सातों आसमान और ज़मीन समाये हुए हैं।" अल्लाह जल्ल शानुहू बैठने-उठने और मकान व दायरे से बालातर हैं, इस क़िस्म की आयतों को अपने मामलात पर क़ियास न किया जाये, इसकी कैफ़ियत व हक़ीक़त का इल्म और समझना इनसानी अ़क़्ल से ऊपर की बात है, अलबत्ता हदीस की मुस्तन्द रिवायतों से इतना मालूम होता है कि अ़र्श और कुर्सी बहुत अ़ज़ीमुश्शान जिस्म हैं जो तमाम आसमान और ज़मीन से कई दर्जे बड़े हैं।

अ़ल्लामा इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने हज़रत अबूज़र ग़िफ़ारी रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से नक़ल किया है कि उन्होंने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मालूम किया कि कुर्सी क्या और कैसी है? आपने फ़रमाया क़सम है उस ज़ात की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है कि सातों आसमानों और ज़मीनों की मिसाल कुर्सी के मुक़ाबले में ऐसी है जैसे एक बड़े मैदान में कोई हल्क़ा (छल्ला, गोल चीज़) अंगूठी जैसा डाल दिया जाये।

और कुछ दूसरी रिवायतों में है कि अ़र्श के सामने कुर्सी की मिसाल भी ऐसी ही है जैसे एक बड़े मैदान में अंगूठी का छल्ला।

नवाँ जुमला है:

وَلَا يَئُوْدُهٗ حِفْظُهُمَا

'व ला यऊदुहू हिफ़्ज़ुहुमा' यानी "अल्लाह तआ़ला को इन दोनों अ़ज़ीम मख़्लूक़ात आसमान व ज़मीन की हिफ़ाज़त कुछ भारी नहीं मालूम नहीं होती" क्योंकि उस क़ादिरे मुतलक़ की कामिल क़ुदरत के सामने ये सब चीज़ें बहुत ही आसान हैं।

दसवाँ आख़िरी जुमला है:

وَهُوَ الْعَلِيُّ الْعَظِيْمُ○

'व हुवल-अ़लिय्युल् अ़ज़ीम' यानी "वह बुलन्द शान वाला और अ़ज़ीमुश्शान है।" पिछले नौ जुमलों में हक़ तआ़ला की ज़ात व सिफ़ात के कमालात बयान हुए हैं, उनको देखने और समझने के बाद हर अ़क़्ल रखने वाला इनसान यही कहने पर मजबूर है कि हर इज़्ज़त व बड़ाई और बुलन्दी व

बरतरी की मालिक व हक़दार वही पाक ज़ात है। इन दस जुमलों में अल्लाह जल्ल शानुहू की सिफ़ाते कमाल और उसकी तौहीद का मज़मून पूरी वज़ाहत और तफ़सील के साथ आ गया।

لَآ اِكْرَاهَ فِى الدِّيْنِ قَدْ تَّبَيَّنَ الرُّشْدُ مِنَ الْغَىِّ فَمَنْ يَّكْفُرْ بِالطَّاغُوْتِ وَ يُؤْمِنْۢ بِاللّٰهِ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى لَا انْفِصَامَ لَهَا وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ

ला इक्रा-ह फ़िद्दीनि क़त्तबय्यनर्रुश्दु मिनल्-ग़य्यि फ़-मंय्यक्फ़ुर् बित्ताग़ूति व युअ्मिम्-बिल्लाहि फ़-क़दिस्तम्स-क बिल्-अुर्वतिल्-वुस्क़ा लन्फ़िसा-म लहा, वल्लाहु समीअुन् अ़लीम (256)	ज़बरदस्ती नहीं दीन के मामले में, बेशक अलग हो चुकी है हिदायत गुमराही से, अब जो कोई न माने गुमराह करने वालों को और यक़ीन लाये अल्लाह पर तो उसने पकड़ लिया हल्क़ा मज़बूत जो टूटने वाला नहीं, और अल्लाह सब कुछ सुनता जानता है। (256)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

दीन (इस्लाम के क़ुबूल करने) में ज़बरदस्ती (का अपने आप में कोई मौक़ा) नहीं, (क्योंकि) हिदायत यक़ीनन गुमराही से मुम्ताज़ "अलग और नुमायाँ" हो चुकी है (यानी इस्लाम का हक़ होना दलीलों से स्पष्ट हो चुका है तो इसमें ज़बरदस्ती करने का मौक़ा ही क्या है, ज़बरदस्ती तो नापसन्दीदा चीज़ पर मजबूर करने से होती है। और जब इस्लाम की ख़ूबी यक़ीनन साबित है) तो जो शख़्स शैतान से बद-एतिक़ाद हो और अल्लाह तआ़ला के साथ अच्छा एतिक़ाद रखे (यानी इस्लाम क़ुबूल कर ले) तो उसने बड़ा मज़बूत हल्क़ा थाम लिया जो किसी तरह टूट नहीं सकता, और अल्लाह (ज़ाहिरी बातों को) ख़ूब सुनने वाले हैं और (अन्दर के हालात को) ख़ूब जानने वाले हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस्लाम को मज़बूत पकड़ने वाला चूँकि हलाकत और मेहरूमी से महफ़ूज़ रहता है, इसलिये उसको ऐसे शख़्स से तश्बीह (मिसाल) दी जो किसी मज़बूत रस्सी का हल्क़ा हाथ में मज़बूत थामकर गिरने से सुरक्षित रहता है, और जिस तरह ऐसी रस्सी टूटकर गिरने का ख़तरा नहीं और यूँ कोई रस्सी ही छोड़ दे तो और बात है, इसी तरह इस्लाम में किसी क़िस्म की हलाकत और घाटे व मेहरूमी नहीं है और ख़ुद कोई इस्लाम को ही छोड़ दे तो और बात है। (बयानुल-क़ुरआन)

इस आयत को देखते हुए कुछ लोग यह एतिराज़ करते हैं कि इस आयत से मालूम होता है कि दीन में ज़बरदस्ती नहीं है हालाँकि इस्लाम में जिहाद और क़िताल की तालीम इसके विपरीत है।

अगर ज़रा ग़ौर से देखा जाये तो मालूम हो जाता है कि यह एतिराज़ सही नहीं है, इसलिये कि इस्लाम में जिहाद और क़िताल की तालीम लोगों को ईमान क़ुबूल करने पर मजबूर करने के लिये नहीं

है, वरना जिज़्या लेकर काफ़िरों को अपनी ज़िम्मेदारी में रखने और उनकी जान व माल और आबरू की हिफ़ाज़त करने के इस्लामी अहकाम कैसे जारी होते, बल्कि फ़साद को दूर करने के लिये है, क्योंकि फ़साद अल्लाह तआ़ला को नापसन्द है काफ़िर जिसके पीछे लगे रहते हैं। चुनाँचे अल्लाह तआ़ला फ़रमाते हैं:

وَيَسْعَوْنَ فِي الْاَرْضِ فَسَادًا وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ الْمُفْسِدِيْنَ○ (٦٤:٥)

"ये लोग ज़मीन में फ़साद करते फिरते हैं और अल्लाह तआ़ला फ़साद करने वालों को पसन्द नहीं करता।"

इसलिये अल्लाह तआ़ला ने जिहाद और क़िताल (अल्लाह के रास्ते में लड़ाई) के ज़रिये से उन लोगों के फ़साद (बिगाड़ और ख़राबी) को दूर करने का हुक्म दिया है। पस उन लोगों का क़त्ल ऐसा ही है जैसे साँप, बिच्छू और दूसरे तकलीफ़ देने वाले जानवरों का क़त्ल करना।

इस्लाम ने औ़रतों, बच्चों, बूढ़ों और अपाहिजों वग़ैरह के क़त्ल को ऐन जिहाद के मैदान में भी सख़्ती से रोका है, क्योंकि वे फ़साद करने पर क़ादिर नहीं होते। ऐसे ही उन लोगों के भी क़त्ल करने को रोका है जो जिज़्या (टैक्स) अदा करने का वायदा करके क़ानून के पाबन्द हो गये हों।

इस्लाम के इस व्यवहार से स्पष्ट हो जाता है कि वह जिहाद और क़िताल से लोगों को ईमान क़ुबूल करने पर मजबूर नहीं करता बल्कि इससे वह दुनिया में ज़ुल्म व सितम को मिटाकर अ़दल व इन्साफ़ और अमन व अमान क़ायम रखना चाहता है। हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने एक ईसाई बुढ़िया को इस्लाम की दावत दी तो इसके जवाब में उसने कहा:

اَنَا عَجُوْزٌ كَبِيْرَةٌ وَالْمَوْتُ اِلَيَّ قَرِيْبٌ

"यानी मैं एक मरने के क़रीब बुढ़िया हूँ, आख़िरी वक़्त में अपना मज़हब क्यों छोड़ूँ?" हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने यह सुनकर उसको ईमान पर मजबूर नहीं किया बल्कि यही आयत तिलावत फ़रमाई 'ला इक्रा-ह फ़िद्दीनि' यानी "दीन में ज़बरदस्ती नहीं है।"

दर हक़ीक़त ईमान के क़ुबूल करने पर ज़ोर-ज़बरदस्ती मुम्किन भी नहीं है, इसलिये कि ईमान का ताल्लुक़ ज़ाहिरी अंगों से नहीं है बल्कि दिल के साथ है, और ज़ोर-ज़बरदस्ती का ताल्लुक़ सिर्फ़ ज़ाहिरी अंगों से होता है और जिहाद व क़िताल से सिर्फ़ ज़ाहिरी अंग (बदन के हिस्से) ही मुतास्सिर हो सकते हैं, लिहाज़ा इसके ज़रिये से ईमान के क़ुबूल करने पर ज़बरदस्ती मुम्किन ही नहीं है। इससे साबित हुआ कि जिहाद व क़िताल की आयतें इस आयत यानी 'ला इक्रा-ह फ़िद्दीनि' से टकराने वाली और इसके विपरीत नहीं हैं। (तफ़सीरे मज़हरी, तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

اَللّٰهُ وَلِيُّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا يُخْرِجُهُمْ مِّنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ ۗ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَوْلِيٰٓـُٔهُمُ الطَّاغُوْتُ يُخْرِجُوْنَهُمْ مِّنَ النُّوْرِ اِلَى الظُّلُمٰتِ ۗ اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۞

अल्लाहु वलिय्युल्लज़ी-न आमनू युख़्रिजुहुम् मिनज़्ज़ुलुमाति इलन्नूरि, वल्लज़ी-न क-फ़रू औलिया-उहुमुत्-ताग़ूतु युख़्रिजू-नहुम् मिनन्नूरि इलज़्ज़ुलुमाति, उलाइ-क अस्हाबुन्-नारि हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (257) ✿	अल्लाह मददगार है ईमान वालों का, निकालता है उनको अंधेरों से रोशनी की तरफ़। और जो लोग काफ़िर हुए उनके रफ़ीक़ (साथी) हैं शैतान, निकालते हैं उनको रोशनी से अंधेरों की तरफ़, यही लोग हैं दोज़ख़ में रहने वाले, वे उसी में हमेशा रहेंगे। (257) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

اَللّٰهُ وَلِیُّ الَّذِیْنَ اٰمَنُوْا.... (الٰی قوله)........ خٰلِدُوْنَ ۝

अल्लाह तआला साथी है उन लोगों का जो ईमान लाये, उनको (कुफ़्र की) अन्धेरियों से निकालकर या बचाकर (इस्लाम के) नूर की तरफ़ लाता है। और जो लोग काफ़िर हैं उनके साथी शयातीन हैं (इनसानों में से या जिन्नों में से), वे उनको (इस्लाम के) नूर से निकालकर या बचाकर (कुफ़्र की) अन्धेरियों की तरफ़ ले जाते हैं, ऐसे लोग (जो इस्लाम छोड़कर कुफ़्र इख़्तियार करें) दोज़ख़ में रहने वाले हैं (और) ये लोग उसमें हमेशा-हमेशा रहेंगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत से ईमान का सबसे बड़ी नेमत और कुफ़्र का सबसे बड़ी मुसीबत होना भी मालूम हुआ, और यह भी कि काफ़िरों की दोस्ती में भी ज़ुल्मत (अंधकार और गुमराही) है।

اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِیْ حَآجَّ اِبْرٰهٖمَ فِیْ رَبِّهٖۤ اَنْ اٰتٰىهُ اللّٰهُ الْمُلْكَ ۘ اِذْ قَالَ اِبْرٰهٖمُ رَبِّیَ الَّذِیْ یُحْیٖ وَیُمِیْتُ ۙ قَالَ اَنَا اُحْیٖ وَاُمِیْتُ ؕ قَالَ اِبْرٰهٖمُ فَاِنَّ اللّٰهَ یَاْتِیْ بِالشَّمْسِ مِنَ الْمَشْرِقِ فَاْتِ بِهَا مِنَ الْمَغْرِبِ فَبُهِتَ الَّذِیْ كَفَرَ ؕ وَاللّٰهُ لَا یَهْدِی الْقَوْمَ الظّٰلِمِیْنَ ۝

अलम् त-र इलल्लज़ी हाज्-ज इब्राही-म फ़ी रब्बिही अन् आताहुल्लाहुल्-मुल्क। इज़् क़ा-ल इब्राहीमु रब्बियल्लज़ी युह़्यी व युमीतु क़ा-ल अ-न उह़्यी व उमीतु,	क्या न देखा तूने उस शख़्स को जिसने झगड़ा किया इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) से उस के रब के बारे में इस वजह से कि दी थी अल्लाह ने उसको सल्तनत। जब कहा इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) ने- मेरा रब वह है जो ज़िन्दा करता है और मारता है, वह बोला

क़ा-ल इब्राहीमु फ़-इन्नल्ला-ह यअ्ती बिश्शम्सि मिनल्मश्रिकि फ़अ्ति बिहा मिनल्-मग़्रिबि फ़-बुहितल्लज़ी क-फ़-र, वल्लाहु ला यह्दिल् क़ौमज़्ज़ालिमीन (258)	मैं भी जिलाता हूँ और मारता हूँ। कहा इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने बेशक वह लाता है सूरज को मश्रिक़ (पूरब) से अब तू ले आ उसको मग़रिब (पश्चिम) से, तब हैरान रह गया वह काफ़िर, और अल्लाह सीधी राह नहीं दिखाता बेइन्साफ़ों को। (258)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुख़ातब!) क्या तुझको उस शख़्स का क़िस्सा मालूम नहीं हुआ (यानी नमरूद का) जिसने (हज़रत) इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) से मुबाहसा किया था, अपने परवर्दिगार के (वजूद के) बारे में (यानी तौबा-तौबा वह ख़ुदा के वजूद ही का इनकारी था) इस वजह से कि ख़ुदा तआ़ला ने उसको हुकूमत दी थी (यानी चाहिये तो यह था कि नेमते हुकूमत पर एहसान मानता और ईमान लाता, इसके उलट इनकार और कुफ़्र शुरू कर दिया। और यह मुबाहसा उस वक़्त शुरू हुआ था) जब इब्राहीम ने (उसके पूछने पर कि ख़ुदा कैसा है जवाब में) फ़रमाया कि मेरा परवर्दिगार ऐसा है कि वह ज़िन्दा करता है और मारता है (यानी ज़िन्दा करना और मारना उसकी क़ुदरत में है, वह कूढ़ मग़ज़ जिलाने मारने का मतलब तो समझा नहीं) कहने लगा कि (यह काम तो मैं भी कर सकता हूँ कि) मैं भी ज़िन्दा करता हूँ और मारता हूँ (चुनाँचे जिसको चाहूँ क़त्ल कर दूँ यह तो मारना है और जिसको चाहूँ क़त्ल से माफ़ कर दूँ यह जिलाना है)। इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने (जब देखा कि बिल्कुल ही भद्दी अ़क़्ल का है कि इसको जिलाना और मारना समझता है हालाँकि जिलाने की हक़ीक़त बेजान चीज़ में जान डाल देना है इसी तरह मारने का मामला समझो, और अन्दाज़े से यह मालूम हो गया कि यह जिलाने और मारने की हक़ीक़त समझेगा नहीं इसलिये इस ज़रूरत से दूसरे जवाब की तरफ़ मुतवज्जह हुए और) फ़रमाया- (अच्छा) अल्लाह तआ़ला सूरज को (हर दिन) पूरब से निकालता है तू (एक ही दिन) पश्चिम से निकाल (कर दिखला) दे, इस पर चकित रह गया वह काफ़िर (और कुछ जवाब बन न आया, इसका तक़ाज़ा तो यह था कि वह हिदायत को क़ुबूल करता मगर वह अपनी गुमराही पर जमा रहा इसलिये हिदायत न हुई) और अल्लाह तआ़ला (की आदत है कि) ऐसे बेजा राह पर चलने वालों को हिदायत नहीं फ़रमाते।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत से मालूम हुआ कि जब अल्लाह तआ़ला किसी काफ़िर को दुनियावी इ़ज़्ज़त व रुतबा और मुल्क व सल्तनत अ़ता कर दें तो उस नाम से ताबीर करना जायज़ है तथा इससे यह भी मालूम होता है कि ज़रूरत के वक़्त मुनाज़रा और बहस करना भी जायज़ है ताकि हक़ व बातिल में फ़र्क़ ज़ाहिर हो जाये। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

बाज़ों को यह शुब्हा हुआ कि उसको यह कहने की गुन्जाईश थी कि अगर ख़ुदा मौजूद है तो वही पश्चिम से सूरज निकाले। इस शुब्हे का जवाब यह है कि उसके दिल में बिना इख़्तियार यह बात पड़ गई कि ख़ुदा ज़रूर है और यह पूरब से सूरज निकालना उसी का काम है और वह पश्चिम से भी निकाल सकता है, और यह शख़्स पैग़म्बर है इसके कहने से ज़रूर ऐसा होगा और ऐसा करने से दुनिया में भारी बदलाव पैदा होगा, कहीं और लेने के देने न पड़ जायें। मसलन् लोग इस मोजिज़े (क़ुदरती करिश्मे) को देखकर मुझसे बदगुमान (और विमुख) होकर उनकी राह पर हो लें, ज़रा सी हुज्जत में सल्तनत जाती रहे। यह जवाब तो इसलिये न दिया, और दूसरा जवाब कोई था ही नहीं इसलिये हैरान रह गया। (तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

اَوْ كَالَّذِیْ مَرَّ عَلٰى قَرْيَةٍ وَّهِیَ خَاوِيَةٌ عَلٰى عُرُوْشِهَا ۚ قَالَ اَنّٰى يُحْیٖ هٰذِهِ اللّٰهُ بَعْدَ مَوْتِهَا ۚ فَاَمَاتَهُ اللّٰهُ مِائَةَ عَامٍ ثُمَّ بَعَثَهٗ ۚ قَالَ كَمْ لَبِثْتَ ۚ قَالَ لَبِثْتُ يَوْمًا اَوْ بَعْضَ يَوْمٍ ۚ قَالَ بَلْ لَّبِثْتَ مِائَةَ عَامٍ فَانْظُرْ اِلٰى طَعَامِكَ وَشَرَابِكَ لَمْ يَتَسَنَّهْ ۚ وَانْظُرْ اِلٰى حِمَارِكَ وَلِنَجْعَلَكَ اٰيَةً لِّلنَّاسِ وَانْظُرْ اِلَى الْعِظَامِ كَيْفَ نُنْشِزُهَا ثُمَّ نَكْسُوْهَا لَحْمًا ۚ فَلَمَّا تَبَيَّنَ لَهٗ ۙ قَالَ اَعْلَمُ اَنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ قَدِيْرٌ ۝

औ कल्लज़ी मर्-र अ़ला क़र्यतिंव्-व हि-य ख़ावि-यतुन् अ़ला अुरूशिहा क़ा-ल अन्ना युह्यी हाज़िहिल्लाहु बअ्-द मौतिहा फ़-अमातहुल्लाहु मि-अ-त आ़मिन् सुम्-म ब-अ़-सहू, क़ा-ल कम् लबिस्-त, क़ा-ल लबिस्तु यौमन् औ बअ्-ज़ यौमिन्, क़ा-ल बल्लबिस्-त मि-अ-त आ़मिन् फ़न्ज़ुर् इला तआ़मि-क व शराबि-क लम् य-तसन्नह्। वन्ज़ुर् इला हिमारि-क व लिनज्अ़-ल-क आयतल् लिन्नासि वन्ज़ुर् इलल्-अ़िज़ामि कै-फ़ नुन्शिज़ुहा सुम्-म नक्सूहा लह्मन्,

क्या न देखा तूने उस शख़्स को कि गुज़रा वह एक शहर पर और वह गिर पड़ा था अपनी छतों पर, बोला क्योंकि ज़िन्दा करेगा इसको अल्लाह मर जाने के बाद। फिर मुर्दा रखा उस शख़्स को अल्लाह ने सौ साल, फिर उठाया उसको कहा तू कितनी देर यहाँ रहा? बोला मैं रहा एक दिन या एक दिन से कुछ कम, कहा नहीं! बल्कि तू रहा सौ साल, अब देख अपना खाना और पीना, सड़ नहीं गया। और देख अपने गधे को और हमने तुझको नमूना बनाना चाहा लोगों के वास्ते, और देख हड्डियों की तरफ़ कि हम उनको किस तरह उभार कर जोड़ देते

फ़-लम्मा तबय्य-न लहू क़ा-ल अअ्लमु अन्नल्ला-ह अ़ला कुल्लि शैइन् क़दीर (259)	हैं, फिर उन पर पहनाते हैं गोश्त, फिर जब उस पर ज़ाहिर हुआ यह हाल तो कह उठा कि मुझको मालूम है कि बेशक अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है। (259)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

اَوْ كَالَّذِىْ مَرَّ عَلٰى قَرْيَةٍ وَّهِىَ خَاوِيَةٌ...... (الى قوله) ......اَنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌo

क्या तुमको इस तरह का क़िस्सा भी मालूम है जैसे एक शख़्स था कि (चलते-चलते) एक बस्ती पर ऐसी हालत में उसका गुज़र हुआ कि उसके मकानात अपनी छतों पर गिर गए थे (यानी पहले छतें गिरीं फिर उन पर दीवारें गिर गईं। मुराद यह है कि किसी हादसे से वह बस्ती वीरान हो गई थी, और सब आदमी मर-मरा गये थे। वह शख़्स यह हालत देखकर हैरत से) कहने लगा कि (मालूम नहीं) अल्लाह तआ़ला इस बस्ती (के मुर्दों) को इसके मरने के बाद किस कैफ़ियत से (क़ियामत में) ज़िन्दा करेंगे (यह तो यक़ीन था कि अल्लाह तआ़ला क़ियामत में मुर्दों को जिला देंगे मगर उस वक़्त के जिलाने का जो ख़्याल ग़ालिब हुआ तो इस मामले के अ़जीब होने की वजह से एक हैरत सी दिल पर ग़ालिब आ गई, और चूँकि ख़ुदा तआ़ला एक काम को कई तरह कर सकते हैं इसलिये तबीयत इसकी इच्छुक हुई कि ख़ुदा जाने ज़िन्दा करना किस सूरत से होगा? अल्लाह तआ़ला को मन्ज़ूर हुआ कि इसका तमाशा उसको दुनिया ही में दिखला दूँ ताकि एक नज़ीर के सामने आ जाने से लोगों को हिदायत हो) सो (इसलिये) अल्लाह तआ़ला ने उस शख़्स (की जान क़ब्ज़ करके उस) को सौ साल तक मुर्दा रखा, फिर (सौ साल के बाद) उसको ज़िन्दा करके उठाया (और फिर) पूछा कि तू कितनी मुद्दत इस हालत में रहा? उस शख़्स ने जवाब दिया कि एक दिन रहा हूँगा या एक दिन से भी कम (मतलब यह था कि बहुत ही कम समय) अल्लाह तआ़ला ने फ़रमाया कि नहीं! बल्कि तू (इस हालत में) सौ साल रहा है (और अगर अपने बदन के अन्दर तब्दीली न होने से ताज्जुब हो) तो अपने खाने पीने (की) चीज़ को देख ले कि (ज़रा भी) नहीं सड़ी-गली। (एक क़ुदरत तो हमारी यह है) और (दूसरी क़ुदरत देखने के वास्ते) अपने (सवारी के) गधे की तरफ़ नज़र कर (कि गल-सड़कर क्या हाल हो गया है और हम जल्द ही उसको तेरे सामने ज़िन्दा किये देते हैं) और (हमने तुझको इसलिये मारकर ज़िन्दा किया है) ताकि हम तुझको (अपनी क़ुदरत की) एक नज़ीर लोगों के लिए बना दें (कि इस नज़ीर से भी क़ियामत के दिन ज़िन्दा होने पर दलील ले सकें) और (अब इस गधे की) हड्डियों की तरफ़ नज़र कर कि हम उनको किस तरह मिलाकर तैयार किए देते हैं, फिर उन पर गोश्त चढ़ाए देते हैं (फिर उसमें जान डाल देते हैं, ग़र्ज़ कि ये सब बातें यूँ ही कर दी गयीं) फिर जब यह सब कैफ़ियत उस शख़्स को (ख़ुद देखकर) वाज़ेह हो गई तो (बेइख़्तियार जोश में आकर) कह उठा कि मैं (दिल से) यक़ीन रखता हूँ कि बेशक अल्लाह तआ़ला हर चीज़ पर पूरी क़ुदरत रखते हैं।

وَاِذۡ قَالَ اِبۡرٰهٖمُ رَبِّ اَرِنِىۡ كَيۡفَ تُحۡىِ الۡمَوۡتٰى ؕ قَالَ اَوَلَمۡ تُؤۡمِنۡ ؕ قَالَ بَلٰى وَلٰـكِنۡ لِّيَطۡمَئِنَّ قَلۡبِىۡ ؕ قَالَ فَخُذۡ اَرۡبَعَةً مِّنَ الطَّيۡرِ فَصُرۡهُنَّ اِلَيۡكَ ثُمَّ اجۡعَلۡ عَلٰى كُلِّ جَبَلٍ مِّنۡهُنَّ جُزۡءًا ثُمَّ ادۡعُهُنَّ يَاۡتِيۡنَكَ سَعۡيًا ؕ وَاعۡلَمۡ اَنَّ اللّٰهَ عَزِيۡزٌ حَكِيۡمٌ

३५ ع ٣

व इज़् का-ल इब्राहीमु रब्बि अरिनी कै-फ़ तुह्यिल्-मौता, का-ल अ-व लम् तुअ्मिन्, का-ल बला व लाकिल्लियत्-मइन्-न क़ल्बी, का-ल फ़-ख़ुज़् अर्ब-अ़तम् मिनत्तैरि फ़सुर्हुन्-न इलै-क सुम्मज्अ़ल् अ़ला कुल्लि ज-बलिम् मिन्हुन्-न जुज़्अन् सुम्मद्अुहुन्-न यअ्ती-न-क सअ्यन्, वअ्लम् अन्नल्ला-ह अ़ज़ीज़ुन् हकीम (260) ✿	और याद कर जब कहा (हज़रत) इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) ने ऐ परवर्दिगार मेरे! दिखला दे मुझको क्योंकर ज़िन्दा करेगा तू मुर्दे। फ़रमाया क्या तूने यक़ीन नहीं किया? कहा क्यों नहीं! लेकिन इस वास्ते कि चाहता हूँ कि तस्कीन (पूरी तरह तसल्ली) हो जाये मेरे दिल को। फ़रमाया तू पकड़ ले चार जानवर उड़ने वाले, फिर उनको हिला ले अपने साथ (यानी उनको अपने साथ ख़ूब लगाव रखने वाला बना), फिर रख दे हर पहाड़ पर उनके बदन का एक-एक टुकड़ा, फिर उनको बुला, चले आयेंगे तेरे पास दौड़ते हुए। और जान ले कि बेशक अल्लाह ज़बरदस्त है हिक्मत वाला। (260) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और उस वक़्त (के वाक़िए) को याद करो जबकि इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) ने (हक़ तआ़ला से) अ़र्ज़ किया कि ऐ मेरे परवर्दिगार! मुझको (यह) दिखला दीजिए कि आप मुर्दों को (क़ियामत में मसलन्) किस कैफ़ियत से ज़िन्दा करेंगे (यानी ज़िन्दा करने का तो यक़ीन है लेकिन ज़िन्दा करने की विभिन्न सूरतें और कैफ़ियतें हो सकती हैं, वह मालूम नहीं, इसलिये वह मालूम करने को दिल चाहता है। इस सवाल से किसी कम-समझ आदमी को यह शुब्हा हो सकता था कि अल्लाह की पनाह! इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम को मरने के बाद ज़िन्दा होने पर ईमान व यक़ीन नहीं, इसलिये हक़ तआ़ला ने ख़ुद यह सवाल क़ायम करके बात खोल दी, चुनाँचे इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम से इस सवाल के जवाब में पहले) इरशाद फ़रमाया- क्या तुम (इस पर) यक़ीन नहीं लाये? उन्होंने (जवाब में) अ़र्ज़ किया कि यक़ीन क्यों न लाता, लेकिन इस ग़र्ज़ से यह दरख़्वास्त करता हूँ कि (ज़िन्दा करने की वह ख़ास सूरत देखने से) मेरे दिल को सुकून हो जाए (ज़ेहन दूसरे एहतिमालात से चक्कर में न पड़ जाये)। इरशाद हुआ कि अच्छा तो तुम चार पक्षी लो फिर उनको (पालकर) अपने लिए हिला लो (ताकि उनकी ख़ूब

पहचान हो जाये) फिर (सब को ज़िबह करके और हड्डियों पंखों समेत उनका क़ीमा सा करके उसके कई हिस्से करो और कई पहाड़ अपनी मर्ज़ी से चुन करके) हर पहाड़ पर उनमें का एक-एक हिस्सा रख दो (और) फिर उन सब को बुलाओ, (देखो) तुम्हारे पास (ज़िन्दा होकर) सब दौड़ते चले आएँगे। और ख़ूब यक़ीन रखो इस बात का कि हक़ तआ़ला ज़बरदस्त (क़ुदरत वाले) हैं (सब कुछ कर सकते हैं। फिर भी कुछ बातें नहीं करते हैं इसकी वजह यह है कि वह) हिक्मत वाले (भी) हैं (हर काम हिक्मत व मस्लेहत के मुताबिक़ करते हैं)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम की दरख़्वास्त, मौत के बाद ज़िन्दा होने को देखना और शुब्हात का ख़ात्मा

यह तीसरा क़िस्सा है जो ज़िक्र हुई आयत में बयान फ़रमाया गया है। जिसका ख़ुलासा यह है कि ख़लीलुल्लाह हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने हक़ तआ़ला से यह दरख़्वास्त की कि मुझे यह दिखा दीजिये कि आप मुर्दों को किस तरह ज़िन्दा करेंगे? हक़ तआ़ला ने इरशाद फ़रमाया कि इस दरख़्वास्त की क्या वजह है? क्या आपको हमारी कामिल क़ुदरत पर यक़ीन नहीं कि वह हर चीज़ पर हावी (छाई हुई) है। हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने अपना वास्तविक हाल अ़र्ज़ किया कि यक़ीन तो कैसे न होता, क्योंकि आपकी कामिल क़ुदरत के प्रदर्शन हर वक़्त हर आन देखने में आते रहते हैं और सोच विचार करने वाले के लिये ख़ुद उसकी अपनी ज़ात (वजूद) में और कायनात के ज़र्रे-ज़र्रे में इसको देखा जाता है, लेकिन इनसानी फ़ितरत है कि जिस काम को आँखों से न देखे या उसका अनुभव न करे चाहे वह कितना ही यक़ीनी हो उसमें उसके ख़्यालात बिखरे रहते हैं कि यह कैसे और किस तरह होगा? यह ज़ेहनी बिखराव दिली सुकून और इत्मीनान में ख़लल-अन्दाज़ होता है, इसलिये यह देखने की दरख़्वास्त की गई ताकि मुर्दों को ज़िन्दा करने की जो बहुत सी सूरतें और कैफ़ियतें हो सकती हैं उनमें ज़ेहन बिखराव का शिकार न हो और दिल को सुकून व इत्मीनान हो जाये।

हक़ तआ़ला ने उनकी दरख़्वास्त क़ुबूल फ़रमाकर उनको यह चीज़ दिखाने के लिये भी एक ऐसी अ़जीब सूरत तजवीज़ फ़रमाई जिसमें इनकार करने वालों के तमाम शुब्हात और शंकाओं के दूर करने और ख़ात्मे का भी मुशाहदा हो जाये। वह सूरत यह थी कि आपको हुक्म दिया गया कि चार परिन्दे जानवर अपने पास जमा कर लें, फिर उनको पास रखकर हिला (यानी अपने आप से ख़ूब घुला-मिला) लें कि वे ऐसे हिल जायें कि आपके बुलाने से आ जाया करें और उनकी पूरी तरह पहचान भी हो जाये, यह शुब्हा न रहे कि शायद कोई दूसरा परिन्दा आ गया हो। फिर उन चारों को ज़िबह करके और हड्डियों और पंखों समेत उनका ख़ूब क़ीमा सा करके उसके कई हिस्से कर दें और फिर अपनी तजवीज़ से अलग-अलग पहाड़ों पर उस क़ीमे का एक-एक हिस्सा रख दें, फिर उनको बुलायें तो वे अल्लाह तआ़ला की कामिल क़ुदरत से ज़िन्दा होकर दौड़े-दौड़े आपके पास आ जायेंगे।

तफ़सीर रूहुल-मआ़नी में इब्ने मुन्ज़िर की सनद से हज़रत हसन रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने ऐसा ही किया, फिर उनको पुकारा तो फ़ौरन हड्डी से हड्डी, पंख से

पंख, ख़ून से ख़ून, गोश्त से गोश्त मिल-मिलाकर सब अपनी-अपनी असली हालत में ज़िन्दा होकर दौड़ते हुए इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के पास आ गये। हक़ तआ़ला ने फ़रमाया कि ऐ इब्राहीम! क़ियामत के दिन मैं इसी तरह सब हिस्सों और जिस्मों को जमा करके एक दम उनमें जान डाल दूँगा।

क़ुरआन के अलफ़ाज़ में 'यअ्तीन-क सअ्या' आया है कि ये परिन्दे दौड़ते हुए आयेंगे, जिससे मालूम हुआ कि उड़कर नहीं आयेंगे, क्योंकि आसमान में उड़कर आने में नज़रों से ओझल होकर बदल जाने का शुब्हा हो सकता है, ज़मीन पर चलकर आने में ये बिल्कुल सामने रहेंगे। इस वाक़िए में हक़ तआ़ला ने मरने के बाद क़ियामत के दिन ज़िन्दा होने का ऐसा नमूना हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम को दिखलाया जिसने मुश्रिकों और इनकार करने वालों को यह दिखाकर उनके सारे शुब्हात को दूर कर दिया।

मौत के बाद ज़िन्दगी और आख़िरत के जहान की ज़िन्दगी पर सबसे बड़ा इश्काल इनकार करने वालों (काफ़िरों) को यही होता है कि इनसान मरने के बाद मिट्टी हो जाता है, फिर यह मिट्टी कहीं हवा के साथ उड़ जाती है कहीं पानी के साथ बह जाती है, कहीं दरख़्तों और खेतों की शक्ल में बरामद होती है, फिर उसका ज़र्रा-ज़र्रा दुनिया के दूर-दराज़ इलाक़ों में फैल जाता है, उन बिखरे हुए ज़र्रों और इनसानी अंगों को जमा कर देना और फिर उनमें रूह डाल देना गहराई से न देखने वाले इनसान की इसलिये समझ में नहीं आता कि वह सब को अपनी क़ुदरत व हैसियत पर क़ियास करता है, वह अपने से ऊपर की और नाक़ाबिले अन्दाज़ा क़ुदरत में ग़ौर नहीं करता।

हालाँकि अगर वह ज़रा सा अपने ही वजूद में ग़ौर कर ले तो उसे नज़र आये कि आज भी उसका वजूद सारी दुनिया में बिखरे हुए अजज़ा (हिस्सों, अंशों) व ज़र्रों का मजमूआ है। इनसान की पैदाईश जिन माँ-बाप के ज़रिये होती है और जिन ग़िज़ाओं से उनका ख़ून और जिस्म बनता है वह ख़ुद जहान के विभिन्न गोशों से सिमटे हुए ज़र्रे होते हैं। फिर पैदाईश के बाद इनसान जिस ग़िज़ा के ज़रिये पलता-बढ़ता है, जिससे उसका ख़ून और गोश्त पोस्त बनता है उसमें ग़ौर करे तो उसकी ग़िज़ाओं में एक-एक चीज़ ऐसी है जो तमाम दुनिया के विभिन्न ज़र्रों से बनी हुई है। दूध पीता है तो वह किसी गाय, भैंस या बकरी के हिस्से हैं और इन जानवरों में ये हिस्से उस घास दाने से पैदा हुए जो उन्होंने खाये हैं। ये घास दाने मालूम नहीं किस-किस ज़मीन के इलाक़े से आये हैं और सारी दुनिया में फिरने वाली हवाओं ने कहाँ-कहाँ के ज़र्रों को उनके तैयार करने और बढ़ाने में शामिल कर दिया है। इसी तरह दुनिया का दाना-दाना, फल, तरकारियाँ और इनसान की तमाम ग़िज़ायें और दवायें जो उसके बदन का हिस्सा बनती हैं वे दुनिया के किस-किस गोशे से किस-किस तरह हक़ तआ़ला की कामिल क़ुदरत और स्थिर निज़ाम ने एक इनसान के बदन में जमा फ़रमा दिये। अगर ग़ाफ़िल और कम-नज़र इनसान दुनिया को छोड़कर अपने ही तन-बदन की तहक़ीक़ (रिसर्च) करने बैठ जाये तो उसको यह नज़र आयेगा कि उसका वजूद ख़ुद ऐसे बेशुमार हिस्सों से तैयार शुदा है जो कोई पूरब का है कोई पश्चिम का, कोई दक्षिणी दुनिया का कोई उत्तरी हिस्से का। आज भी दुनिया भर में फैले हुए हिस्से क़ुदरत के स्थिर निज़ाम ने उसके बदन में जमा फ़रमा दिये हैं और मरने के बाद ये हिस्से (तत्व) फिर उसी तरह बिखर जायेंगे, तो अब दूसरी मर्तबा फिर उनका जमा फ़रमा देना उसकी कामिल क़ुदरत के लिये क्या दुश्वार है जिसने पहली मर्तबा उसके वजूद में उन बिखरे हुए ज़र्रों को जमा

फ़रमा दिया था।

बयान हुए वाक़िए पर चन्द सवालात और उनके जवाबात

ऊपर ज़िक्र हुई आयत के मज़मून में चन्द सवालात पैदा होते हैं:

अव्वल यह कि हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम को यह सवाल ही क्यों पैदा हुआ जबकि वह हक़ तआ़ला की कामिल क़ुदरत पर ईमान लाने में उस वक़्त की सारी दुनिया से ज़्यादा यक़ीन रखने वाले थे?

इसका जवाब उस तक़रीर के अन्दर आ चुका है जो ऊपर की गई है कि दर हक़ीक़त हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम का सवाल किसी शक व शुब्हे की बिना पर था ही नहीं, बल्कि सवाल का मंशा सिर्फ़ यह था कि हक़ तआ़ला क़ियामत में मुर्दों को ज़िन्दा करेंगे, उनकी कामिल क़ुदरत से यह किसी तरह भी नामुम्किन या हैरत-अंगेज़ बात नहीं बल्कि यक़ीनी है, लेकिन मुर्दे को ज़िन्दा करने का काम इनसान की ताक़त से बाहर है, उसने कभी किसी मुर्दे को ज़िन्दा होते हुए नहीं देखा और मुर्दे को ज़िन्दा करने की कैफ़ियतें व सूरतें विभिन्न हो सकती हैं। इनसान की फ़ितरत है कि जो चीज़ उसके देखने और अनुभव में न हो उसकी कैफ़ियतों की खोज लगाने की फ़िक्र में रहा करता है, उसमें उसका ख़्याल विभिन्न राहों पर चलता है, जिसमें ज़ेहनी बिखराव की तकलीफ़ भी बरदाश्त करता है, उस ज़ेहनी बिखराव को दूर करके दिल को सुकून मिल जाने ही का नाम इत्मीनान है। उसी के लिये हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम ने यह दरख़्वास्त पेश फ़रमाई थी।

इसी से यह भी मालूम हो गया कि ईमान और इत्मीनान में क्या फ़र्क़ है। ईमान उस इख़्तियारी यक़ीन का नाम है जो इनसान को रसूल (अल्लाह के पैग़म्बर) के एतिमाद पर किसी ग़ैब की बात के बारे में हासिल हो जाये, और इत्मीनान दिल के सुकून का नाम है। कई बार नज़रों से ग़ायब किसी चीज़ पर पूरा यक़ीन तो होता है मगर दिल को सुकून इसलिये नहीं होता कि उसकी कैफ़ियतों का इल्म नहीं होता, यह सुकून सिर्फ़ देखने और अनुभव करने से हासिल हो सकता है। हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम को भी मौत के बाद की ज़िन्दगी पर तो कामिल ईमान व यक़ीन था सवाल सिर्फ़ ज़िन्दा करने की कैफ़ियत (अन्दाज़ और तरीक़े) के बारे में था।

दूसरा सवाल यह है कि जब हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम का सवाल ज़िन्दा करने की कैफ़ियत के बारे में था, असल मौत के बाद ज़िन्दा होने में कोई शक व शुब्हा न था तो फिर अल्लाह तआ़ला के इरशाद 'अ-व लम् तुअ्मिन्' यानी "क्या आपको यक़ीन नहीं?" फ़रमाने का कोई मौक़ा नहीं रहता।

जवाब यह है कि जो सवाल हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने पेश फ़रमाया कि असल वाक़िए में कोई शक नहीं लेकिन इस सवाल का एक मतलब तो यही है कि ज़िन्दा करने की कैफ़ियत मालूम करना मन्ज़ूर है। सवाल के इन्हीं अलफ़ाज़ का एक दूसरा मलतब भी हो सकता है जो असल क़ुदरत में शुब्हे या इनकार से पैदा हुआ करता है, जैसे आप किसी बोझ के बारे में यह यक़ीन रखते हैं कि फ़ुलाँ आदमी इसको नहीं उठा सकता और आप उसका आ़जिज़ होना ज़ाहिर करने के लिये कहें कि

देखें तुम कैसे इस बोझ को उठाते हो। चूँकि इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के सवाल का यह ग़लत मफ़्हूम भी कोई ले सकता था इसलिये हक़ तआ़ला ने इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम को इस ग़लत बात से बरी साबित करने के लिये ही यह इरशाद फ़रमाया कि क्या आपको यक़ीन नहीं। ताकि इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम इसके जवाब में 'बला' (यक़ीन क्यों न रखता) फ़रमाकर बोहतान बाँधने वालों की चपेट से निकल जायें।

तीसरा सवाल यह है कि हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के इस सवाल से कम से कम इतना तो मालूम हुआ कि उनको मरने के बाद की ज़िन्दगी पर इत्मीनान हासिल न था, हालाँकि हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है कि आपने फ़रमाया- अगर ग़ैब के आ़लम से पर्दा उठा दिया जाये तो मेरे यक़ीन व इत्मीनान में कोई इज़ाफ़ा न होगा, क्योंकि मुझे ईमान बिल-ग़ैब ही से कामिल इत्मीनान हासिल है। तो जब बाज़े उम्मतियों को इत्मीनान का दर्जा हासिल है तो यह कैसे हो सकता है कि अल्लाह के ख़लील हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम को इत्मीनान का दर्जा हासिल न हो?

इसके बारे में यह समझ लेना चाहिये कि इत्मीनान के भी बहुत से दर्जे हैं- एक वह इत्मीनान है जो औलिया-अल्लाह (अल्लाह वालों) और सिद्दीक़ीन को हासिल होता है, और इत्मीनान का एक उससे आला मक़ाम है जो आ़म अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को हासिल होता है, और एक उससे भी आला और ऊँचा है जो ख़ास-ख़ास को दिखा देने की सूरत में अ़ता फ़रमाया जाता है।

हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु को जो दर्जा इत्मीनान का हासिल था वह बिला-शुब्हा हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम को हासिल था बल्कि इत्मीनान का उससे आला दर्जा जो नुबुव्वत के मर्तबे के साथ ख़ास है, उस इत्मीनान में हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम दूसरे सब उम्मतियों से बढ़े हुए थे। फिर जिसको वह तलब फ़रमा रहे हैं वह इत्मीनान का सबसे आला मक़ाम है, जो ख़ास-ख़ास अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को अ़ता फ़रमाया जाता है, जैसे सरवरे कायनात सय्यिदुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को जन्नत व दोज़ख़ का मुशाहदा कराकर (दिखाकर) ख़ास इत्मीनान बख़्शा गया।

ग़र्ज़ यह कि इस सवाल की वजह से यह कहना भी सही नहीं कि इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम को इत्मीनान हासिल न था, यहाँ यह कह सकते हैं कि वह कामिल इत्मीनान जो मुशाहदे (किसी चीज़ को देखने) से हासिल हुआ करता है वह न था, इसी के लिये यह दरख़्वास्त फ़रमाई थी।

आयत के आख़िर में फ़रमायाः

اَنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌO

यानी "अल्लाह तआ़ला ज़बरदस्त हैं और हिक्मत वाले हैं।" ज़बरदस्त होने में कामिल क़ुदरत का बयान फ़रमाया और हिक्मत वाला कहकर इसकी तरफ़ इशारा कर दिया कि हिक्मत के तक़ाज़े के तहत हर एक को मौत के बाद की ज़िन्दगी का मुशाहदा (दिखाना) नहीं कराया जाता, वरना हक़ जल्ल शानुहू के लिये कोई दुश्वारी नहीं कि हर इनसान को मुशाहदा करा (दिखा) दें, मगर फिर ग़ैब (बिना देखे) पर ईमान की जो फ़ज़ीलत है वह क़ायम नहीं रह सकती।

مَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ كَمَثَلِ حَبَّةٍ اَنْۢبَتَتْ سَبْعَ سَنَابِلَ فِيْ كُلِّ سُنْۢبُلَةٍ مِّائَةُ حَبَّةٍ ۗ وَاللّٰهُ يُضٰعِفُ لِمَنْ يَّشَآءُ ۗ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ۝ اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ثُمَّ لَا يُتْبِعُوْنَ مَآ اَنْفَقُوْا مَنًّا وَّلَآ اَذًى ۙ لَّهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝ قَوْلٌ مَّعْرُوْفٌ وَّمَغْفِرَةٌ خَيْرٌ مِّنْ صَدَقَةٍ يَّتْبَعُهَآ اَذًى ۗ وَاللّٰهُ غَنِيٌّ حَلِيْمٌ ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تُبْطِلُوْا صَدَقٰتِكُمْ بِالْمَنِّ وَالْاَذٰى ۙ كَالَّذِيْ يُنْفِقُ مَالَهٗ رِئَآءَ النَّاسِ وَلَا يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۗ فَمَثَلُهٗ كَمَثَلِ صَفْوَانٍ عَلَيْهِ تُرَابٌ فَاَصَابَهٗ وَابِلٌ فَتَرَكَهٗ صَلْدًا ۗ لَا يَقْدِرُوْنَ عَلٰى شَيْءٍ مِّمَّا كَسَبُوْا ۗ وَاللّٰهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الْكٰفِرِيْنَ ۝ وَمَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمُ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ وَتَثْبِيْتًا مِّنْ اَنْفُسِهِمْ كَمَثَلِ جَنَّةٍ ۢ بِرَبْوَةٍ اَصَابَهَا وَابِلٌ فَاٰتَتْ اُكُلَهَا ضِعْفَيْنِ ۚ فَاِنْ لَّمْ يُصِبْهَا وَابِلٌ فَطَلٌّ ۗ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝ اَيَوَدُّ اَحَدُكُمْ اَنْ تَكُوْنَ لَهٗ جَنَّةٌ مِّنْ نَّخِيْلٍ وَّاَعْنَابٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۙ لَهٗ فِيْهَا مِنْ كُلِّ الثَّمَرٰتِ ۙ وَاَصَابَهُ الْكِبَرُ وَلَهٗ ذُرِّيَّةٌ ضُعَفَآءُ ۚ فَاَصَابَهَآ اِعْصَارٌ فِيْهِ نَارٌ فَاحْتَرَقَتْ ۗ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُوْنَ ۝

ع ٣٦

म-सलुल्लज़ी-न युन्फ़िक़ू-न अम्वालहुम फ़ी सबीलिल्लाहि क-म-सलि हब्बतिन् अम्ब-तत् सब्-अ सनाबि-ल फ़ी कुल्लि सुम्बुलतिम् मि-अतु हब्बतिन्, वल्लाहु युज़ाअिफ़ु लिमंय्यशा-उ, वल्लाहु वासिअुन् अ़लीम (261) अल्लज़ी-न युन्फ़िक़ू-न अम्वालहुम् फ़ी सबीलिल्लाहि सुम्-म ला युत्बिअ़ू-न मा अन्फ़क़ू मन्नंव्-व ला अ-ज़ल्-लहुम् अज्रुहुम् अिन्-द	मिसाल उन लोगों की जो ख़र्च करते हैं अपने माल अल्लाह की राह में ऐसी है कि जैसे एक दाना, उससे उगें सात बालें, हर बाली में सौ-सौ दाने, और अल्लाह बढ़ाता है जिसके वास्ते चाहे, और अल्लाह बेहद बख़्शिश करने वाला है, सब कुछ जानता है। (261) जो लोग ख़र्च करते हैं अपने माल अल्लाह की राह में, फिर ख़र्च करने के बाद न एहसान रखते हैं और न सताते हैं, उन्हीं के लिये है सवाब उनका अपने रब के

रब्बिहिम् व ला ख़ौफ़ुन् अ़लैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून (262) क़ौलुम् मअ्रूफ़ुंव्-व मग़्फ़ि-रतुन् ख़ैरुम् मिन् स-द-क़तिंय्-यत्बअुहा अज़न्, वल्लाहु ग़निय्युन् हलीम (263) या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ला तुब्तिलू स-दक़ातिकुम् बिल्मन्नि वल्-अज़ा कल्लज़ी युन्फ़िक़ु मालहू रिआ-अन्नासि व ला युअ्मिनु बिल्लाहि वल्-यौमिल्-आख़िरि, फ़-म-सलुहू क-म-सलि सफ़्वानिन् अ़लैहि तुराबुन् फ़-असाबहू वाबिलुन् फ़-त-र-कहू सल्दन्, ला यक़्दिरू-न अ़ला शैइम् मिम्मा क-सबू, वल्लाहु ला यह्दिल्-क़ौमल् काफ़िरीन (264) व म-सलुल्लज़ी-न युन्फ़िक़ू-न अम्वालहुमुब्तिग़ा-अ मर्ज़ातिल्लाहि व तस्बीतम् मिन् अन्फ़ुसिहिम् क-म-सलि जन्नतिम्-बिरब्वतिन् असाबहा वाबिलुन् फ़-आतत् उकु-लहा ज़िअ्फ़ैनि फ़-इल्लम् युसिब्हा वाबिलुन् फ़-तल्लुन्, वल्लाहु बिमा तअ्मलू-न बसीर (265) अ-यवद्दु अ-हदुकुम अन्

यहाँ, और न डर है उन पर और न वे ग़मगीन होंगे। (262) जवाब देना नरम और दरगुज़र (माफ़ करना या नज़र अन्दाज़) करना बेहतर है उस ख़ैरात से जिसके बाद हो सताना, और अल्लाह बेपरवाह है बहुत ज़्यादा बरदाश्त वाला। (263) ऐ ईमान वालो! मत ज़ाया करो अपनी ख़ैरात एहसान रखकर और तकलीफ़ देकर उस शख़्स की तरह जो ख़र्च करता है अपना माल लोगों के दिखाने को और यक़ीन नहीं रखता है अल्लाह पर और क़ियामत के दिन पर, सो उसकी मिसाल ऐसी है जैसे साफ़ पत्थर कि उस पर पड़ी है कुछ मिट्टी फिर बरसा उस पर ज़ोर का मींह (बारिश) तो कर छोड़ा उसको बिल्कुल साफ़, कुछ हाथ नहीं लगता ऐसे लोगों के सवाब उस चीज़ का जो उन्होंने कमाया, और अल्लाह नहीं दिखाता सीधी राह काफ़िरों को। (264) और मिसाल उनकी जो ख़र्च करते हैं अपने माल अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने को और अपने दिलों को साबित करकर, ऐसी है जो एक बाग़ है ऊँची ज़मीन पर, उस पर पड़ा ज़ोर का मींह तो लाया वह बाग़ अपना फल दोगुना, और अगर न पड़ा उस पर मींह (बारिश) तो फुहार ही काफ़ी है, और अल्लाह तुम्हारे कामों को ख़ूब देखता है। (265) क्या पसन्द आता है तुम में से किसी को यह कि हो उसका एक बाग़ खजूर का

तकू-न लहू जन्नतुम् मिन्-नख़ीलिंव्-व अअ्नाबिन् तज्री मिन् तह्तिहल्-अन्हारु लहू फ़ीहा मिन् कुल्लिस्स-मराति व असाबहुल्-कि-बरु व लहू ज़ुर्रिय्यतुन् ज़ु-अफ़ा-उ फ़-असाबहा इअ्सारुन् फ़ीहि नारुन् फ़ह्त-रक़त्, कज़ालि-क युबय्यिनुल्लाहु लकुमुल्-आयाति लअ़ल्लकुम त-तफ़क्करून (266) ❁	और अंगूर का, बहती हों नीचे उसके नहरें, उसको उस बाग़ में और भी सब तरह का मेवा हो हासिल, और आ गया उस पर बुढ़ापा और उसकी औलाद हैं ज़ईफ़ (कमज़ोर), तब आ पड़ा उस बाग़ पर एक बगूला जिसमें आग थी, जिससे वह बाग़ जल उठा। यूँ समझाता है तुमको अल्लाह आयतें ताकि तुम ग़ौर करो। (266) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

जो लोग अल्लाह की राह में (यानी नेक कामों में) अपने मालों को ख़र्च करते हैं, उनके ख़र्च किए हुए मालों की हालत (अल्लाह के नज़दीक) ऐसी है जैसे एक दाने की हालत जिससे (फ़र्ज़ करो) सात बालें जमें (और) हर बाल के अन्दर सौ दाने हों (इसी तरह ख़ुदा तआ़ला उनका सवाब सात सौ हिस्से तक बढ़ाता है) और यह बढ़ोतरी ख़ुदा तआ़ला जिसको चाहता है (उसके इख़्लास और मशक़्क़त के मुताबिक़) अ़ता फ़रमाता है, और अल्लाह तआ़ला बड़ी वुस्अ़त वाले हैं (उनके यहाँ किसी चीज़ की कमी नहीं, वह सब को यह बढ़ोतरी दे सकते हैं, मगर साथ ही) जानने वाले (भी) हैं (इसलिये इख़्लासे नीयत वग़ैरह को देखकर अ़ता फ़रमाते हैं)।

जो लोग अपना माल अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं, फिर ख़र्च करने के बाद न तो (जिसको दिया है उस पर ज़बान से) एहसान जतलाते हैं और न (बर्ताव से उसको) तकलीफ़ पहुँचाते हैं। उन लोगों को उन (के आमाल) का सवाब मिलेगा उनके परवर्दिगार के पास (जाकर), और न (क़ियामत के दिन) उन पर कोई ख़तरा होगा और न वे ग़मगीन होंगे (कुछ पास न होने के वक़्त) मुनासिब बात कह देना और (अगर माँगने वाला बदतमीज़ी से ग़ुस्सा दिलाये या ज़ोर देकर माँगने से तंग करे तो उससे) दरगुज़र करना (हज़ार दर्जे) बेहतर है ऐसी ख़ैरात (देने) से जिसके बाद तकलीफ़ पहुँचाई जाए। और अल्लाह तआ़ला (ख़ुद) ग़नी हैं (किसी के माल की उनको हाजत नहीं, जो कोई ख़र्च करता है अपने वास्ते, फिर तकलीफ़ किस बिना पर पहुँचायी जाये और तकलीफ़ देने पर जो फ़ौरन सज़ा नहीं देते इसकी वजह यह है कि वह) हलीम (भी) हैं।

ऐ ईमान वालो! तुम एहसान जतलाकर या तकलीफ़ पहुँचाकर अपनी ख़ैरात (के सवाब बढ़ने) को बरबाद मत करो, जिस तरह वह शख़्स (ख़ुद ख़ैरात के असल सवाब ही को बरबाद कर देता है) जो अपना माल ख़र्च करता है (सिर्फ़) लोगों को दिखलाने की ग़र्ज़ से, और ईमान नहीं रखता अल्लाह

पर और क़ियामत के दिन पर (ईमान की नफ़ी करने से अन्दाज़ा होता है कि इससे मुराद मुनाफ़िक़ है)। सो उस शख़्स की हालत ऐसी है जैसे एक चिकना पत्थर (फ़र्ज़ करो उस पर) जब कुछ मिट्टी (आ गई) हो (और उस मिट्टी में कुछ घास-फूँस जम आया हो) फिर उस पर ज़ोर की बारिश पड़ जाए सो उसको (जैसा था वैसा ही) बिल्कुल साफ़ कर दे (इसी तरह उस मुनाफ़िक़ के हाथ से अल्लाह की राह में कुछ ख़र्च हो गया जो ज़ाहिर में एक नेक अ़मल मालूम होता है, जिसमें सवाब की उम्मीद है लेकिन उसके निफ़ाक़ ने उस शख़्स को वैसा ही कोरा सवाब से ख़ाली छोड़ दिया चुनाँचे क़ियामत में) ऐसे लोगों को अपनी कमाई ज़रा भी हाथ न लगेगी (क्योंकि कमाई नेक अ़मल है और उसका हाथ लगना सवाब का मिलना है, और सवाब मिलने की शर्त ईमान और इख़्लास है और उन लोगों में यह है ही नहीं, क्योंकि रियाकार भी हैं और काफ़िर भी हैं) और अल्लाह तआ़ला काफ़िर लोगों को (क़ियामत के दिन सवाब के घर यानी जन्नत का) रास्ता न बतलायेंगे (क्योंकि कुफ़्र की वजह से उनका कोई अ़मल मक़बूल नहीं हुआ जिसका सवाब आख़िरत में ज़ख़ीरा होता, और वहाँ हाज़िर होकर उसके सिले में जन्नत में पहुँचाये जाते)।

और उन लोगों के ख़र्च किए हुए माल की हालत जो अपने मालों को ख़र्च करते हैं अल्लाह तआ़ला की रिज़ा हासिल करने की ग़र्ज़ से (जो कि ख़ास इस अ़मल से होगी), और इस ग़र्ज़ से कि अपने नफ़्सों (को इस कठिन काम का आ़दी बनाकर उन) में पुख़्तगी पैदा करें (ताकि दूसरे नेक आमाल सहूलत से पैदा हुआ करें)।

पस उन (लोगों के सदक़ों और ख़र्च किये गये मालों) की हालत एक बाग़ की तरह है जो किसी टीले पर हो कि (उस जगह की हवा लतीफ़ फल देने वाली होती है और) उस पर ज़ोर की बारिश पड़ी हो, फिर वह (बाग़ हवा की लताफ़त और बारिश के सबब दूसरे बाग़ों से या और दफ़ा से) दोगुना (चौगुना) फल लाया हो। और अगर ऐसी ज़ोर की बारिश न पड़े तो हल्की फुहार (यानी थोड़ी सी बारिश) भी उसको काफ़ी है (क्योंकि ज़मीन और मौक़ा उसका अच्छा है) और अल्लाह तआ़ला तुम्हारे कामों को ख़ूब देखते हैं। (इसलिये जब वह इख़्लास देखते हैं सवाब बढ़ा देते हैं)।

भला तुम में से किसी को यह बात पसन्द है कि उसका एक बाग़ हो खजूरों और अंगूरों का (यानी ज़्यादा पेड़ उसमें इनके हों और) उस (बाग़) के (पेड़ों के) नीचे नहरें बहती हों (जिससे वह ख़ूब तरोताज़ा और हरे-भरे हों और) उस शख़्स के यहाँ उस बाग़ में (खजूरों और अंगूरों के अ़लावा) और भी हर क़िस्म के (मुनासिब) मेवे हों। और उस शख़्स का बुढ़ापा आ गया हो (जो कि ज़रूरत का वक़्त ज़्यादा होता है) और अहल व अ़याल "यानी घर वाले और बाल बच्चे" भी हों जिनमें (कमाने की) ताक़त न हो, (इस सूरत में अहल व अ़याल से भी ज़्यादा ख़बरगीरी की उसको अपेक्षा नहीं होगी। बस रोज़गार और गुज़ारे का साधन सिर्फ़ वही बाग़ हुआ) सो (ऐसी हालत में यह क़िस्सा हो कि) उस बाग़ पर बगूला आए जिसमें आग का (माद्दा) हो, फिर (उससे) वह बाग़ जल जाए। (ज़ाहिर बात है किसी को अपने लिये यह बात पसन्द नहीं आ सकती।

फिर यह बात भी तो इसी के जैसी है कि पहले सदक़ा दिया या कोई नेक काम किया जिसके क़ियामत में कारामद होने की उम्मीद हो, जो हद से ज़्यादा ज़रूरत का वक़्त होगा और क़ुबूलियत का ज़्यादा मदार इन्हीं नेकियों पर होगा। फिर ऐसे वक़्त में मालूम हो कि हमारे एहसान जतलाने या ग़रीब

को तकलीफ़ देने से हमारी नेकियाँ ख़त्म या बेबरकत हो गयीं, उस वक़्त कैसी हसरत और अफ़सोस होगा कि कैसी-कैसी तमन्नाओं का ख़ून हो गया। पस जब तुम मिसाल में दिये गये वाक़िए को पसन्द नहीं करते तो नेकियों के बरबाद होने को कैसे गवारा करते हो) अल्लाह तआ़ला इसी तरह नज़ीरें (मिसालें) बयान फ़रमाते हैं तुम्हारे (समझाने के) लिए ताकि तुम सोचा करो (और सोचकर उसके मुवाफ़िक़ अ़मल किया करो)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

यह सूरः ब-क़रह का छत्तीसवाँ रुकूअ़ है जो आयत नम्बर 261 से शुरू होता है। अब सूरः ब-क़रह के पाँच रुकूअ़ बाक़ी हैं जिनमें आख़िरी रुकूअ़ में तवक्कुल से सम्बन्धित और अहम उसूली चीज़ों का बयान है। इससे पहले चार रुकूअ़ में आयत नम्बर 261 से 283 तक कुल 23 आयतें हैं जिनमें मालों से संबन्धित ख़ास हिदायतें और ऐसे इरशादात हैं, कि अगर दुनिया आज उन पर पूरी तरह आ़मिल हो जाये तो आर्थिक व्यवस्था का वह मसला ख़ुद-ब-ख़ुद हल हो जाये जिसमें आजकी दुनिया हर तरफ़ भटक रही है। कहीं सरमायेदारी का निज़ाम है तो कहीं उसका रद्दे-अ़मल इश्तिराकियत और इश्तिमालियत का निज़ाम है और इन निज़ामों के आपसी टकराव ने दुनिया को क़त्ल व क़िताल और लड़ाई-झगड़ों का एक जहन्नम बना रखा है। इन आयतों में इस्लाम के आर्थिक सिस्टम के एक अहम पहलू का बयान है जिसके दो हिस्से हैं:

1. अपनी ज़रूरत से ज़्यादा माल को अल्लाह तआ़ला की रज़ा के लिये ज़रूरत मन्द, ग़रीब लोगों पर ख़र्च करने की तालीम, जिसको सदक़ा व ख़ैरात कहा जाता है।

2. दूसरे सूद के लेन-देन को हराम क़रार देकर उससे बचने की हिदायतें।

इनमें से पहले दो रुकूअ़ सदक़ा व ख़ैरात के फ़ज़ाईल और उसकी तरग़ीब और उससे संबन्धित अहकाम व हिदायतों पर मुश्तमिल हैं, और आख़िरी दो रुकूअ़ सूदी कारोबार की हुर्मत व मनाही और क़र्ज़ व उधार के जायज़ तरीक़ों के बयान में हैं।

जो आयतें ऊपर लिखी गई हैं उनमें पहले अल्लाह की राह में ख़र्च करने के फ़ज़ाईल का बयान फ़रमाया गया है, इसके बाद ऐसी शर्तों का बयान है जिनके ज़रिये सदक़ा ख़ैरात अल्लाह के नज़दीक क़ाबिले क़ुबूल और सवाब का ज़रिया बन जाये। फिर ऐसी चीज़ों का बयान है जो इनसान के सदक़ा व ख़ैरात को बरबाद करके 'नेकी बरबाद गुनाह लाज़िम' का मिस्दाक़ बना देती हैं।

इसके बाद दो मिसालें बयान की गई हैं- एक उन ख़र्चों और सदक़ों की जो अल्लाह के नज़दीक मक़बूल हों, दूसरे उन ख़र्चों और सदक़ों की जो ग़ैर-मक़बूल (अस्वीकारीय) और फ़ासिद (बुरे) हों।

ये पाँच मज़मून हैं जो इस रुकूअ़ में बयान हुए हैं।

यहाँ इन मज़ामीन से पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि क़ुरआने करीम ने अल्लाह के रास्ते में माल ख़र्च करने को कहीं **'इन्फ़ाक़'** के लफ़्ज़ से बयान फ़रमाया है कहीं **'इतआ़म'** के लफ़्ज़ से, कहीं **'सदक़े'** के लफ़्ज़ से और कहीं **'ईता-ए-ज़कात'** (ज़कात देने) के लफ़्ज़ से। इन क़ुरआनी अलफ़ाज़ और इनके जगह-जगह इस्तेमाल पर नज़र करने से मालूम होता है कि लफ़्ज़ **इन्फ़ाक़, इतआ़म, सदक़ा** आ़म हैं जो हर क़िस्म के सदक़े ख़ैरात और अल्लाह की रज़ा हासिल करने के लिये हर क़िस्म

के ख़र्च को शामिल हैं, चाहे फ़र्ज़ व वाजिब हों या नफ़्ली और मुस्तहब। और फ़र्ज़ ज़कात के लिये क़ुरआन ने एक अलग और नुमायाँ लफ़्ज़ 'ईता-ए-ज़कात' (ज़कात देना) इस्तेमाल फ़रमाया है जिसमें इसकी तरफ़ इशारा है कि इस ख़ास सदक़े के लिये हासिल करने और ख़र्च करने दोनों में कुछ ख़ुसूसियतें हैं।

इस रुकूअ में अधिकतर लफ़्ज़ इन्फ़ाक़ से और कहीं लफ़्ज़ सदक़े से ताबीर की गई है, जिसका मफ़्हूम यह है कि यहाँ आम सदक़ों व नेकियों का बयान है, और जो अहकाम यहाँ ज़िक्र किये गये हैं वे हर क़िस्म के सदक़ों और अल्लाह के लिये ख़र्च करने की सब सूरतों को शामिल और हावी हैं।

अल्लाह की राह में ख़र्च करने की एक मिसाल

पहली आयत में इरशाद फ़रमाया है कि जो लोग अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं यानी हज में या जिहाद में, या फ़क़ीर व मिस्कीन और बेवाओं और यतीमों पर, या इमदाद की नीयत से अपने रिश्तेदारों व दोस्तों पर, इसकी मिसाल ऐसी है जैसे कोई शख़्स एक दाना गेहूँ का अच्छी (उपजाऊ) ज़मीन में बोये। उस दाने से गेहूँ का एक पौधा निकले जिसमें सात ख़ोशे (गुच्छे और बाल) गेहूँ के पैदा हों और हर ख़ोशे में सौ दाने हों जिसका नतीजा यह हुआ कि एक दाने से सात सौ दाने हासिल हो गये।

मतलब यह हुआ कि अल्लाह की राह में ख़र्च करने वाले का अज्र व सवाब एक से लेकर सात सौ तक पहुँचता है। एक पैसा ख़र्च करे तो सात सौ पैसों का सवाब हासिल हो सकता है।

सही व मोतबर हदीसों में है कि एक नेकी का सवाब उसका दस गुना मिलता है और सात सौ गुना तक पहुँच सकता है। हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि जिहाद और हज में एक दिरहम ख़र्च करने का सवाब सात सौ दिरहम के बराबर है। यह रिवायत इब्ने कसीर ने मुस्नद अहमद के हवाले से बयान की है।

ग़र्ज़ यह कि इस आयत ने बतलाया कि अल्लाह की राह में एक रुपया ख़र्च करने वाले का सवाब सात सौ रुपये ख़र्च करने के बराबर मिलता है।

सदक़ा क़ुबूल होने की सकारात्मक शर्तें

लेकिन क़ुरआने हकीम ने इस मज़मून को बजाय मुख़्तसर और साफ़ लफ़्ज़ों में बयान करने के गेहूँ के दाने की मिसाल की सूरत में बयान फ़रमाया, जिसमें इस बात की तरफ़ इशारा है कि जिस तरह काश्तकार एक गेहूँ के दाने से सात सौ दाने उसी वक़्त हासिल कर सकता है जबकि यह दाना उम्दा हो, ख़राब न हो, और दाना डालने वाला काश्तकार भी काश्तकारी के फ़न से पूरी तरह वाक़िफ़ हो, और जिस ज़मीन में डाले वह भी उम्दा ज़मीन हो। क्योंकि इनमें से अगर एक चीज़ भी कम हो गई तो या तो यह दाना ज़ाया हो जायेगा, एक दाना भी न निकलेगा, और या फिर ऐसा फलदायक न होगा कि एक दाने से सात सौ दाने बन जायें।

इसी तरह आम नेक आमाल और ख़ुसूसन अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने की मक़बूलियत और अज्र व सवाब में ज़्यादती के लिये भी यही तीन शर्तें हैं कि जो माल अल्लाह की राह में ख़र्च करे वह

पाक और हलाल हो। क्योंकि हदीस में है कि अल्लाह तआ़ला पाक और हलाल माल के सिवा किसी चीज़ को क़ुबूल नहीं फ़रमाते।

दूसरे ख़र्च करने वाला भी नेक-नीयत और नेक हो, बुरी नीयत या नाम व नमूद के लिये ख़र्च करने वाला उस नावाक़िफ़ काश्तकार की तरह है जो दाने को किसी ऐसी जगह डाल दे कि वह ज़ाया (बरबाद) हो जाये।

तीसरे जिस पर ख़र्च करे वह भी सदक़े का मुस्तहिक़ (पात्र) हो, किसी ना-अहल पर ख़र्च करके बरबाद न करे। इस तरह इस मिसाल से अल्लाह की राह में ख़र्च करने की बहुत बड़ी फ़ज़ीलत भी मालूम हो गई, और साथ ही इसकी तीन शर्तें भी, कि हलाल माल से ख़र्च करे और ख़र्च करने का तरीक़ा भी सुन्नत के मुताबिक़ हो और हक़दारों को तलाश करके उन पर ख़र्च करे, सिर्फ़ जेब से निकाल डालने से यह फ़ज़ीलत हासिल नहीं होती।

दूसरी आयत में सदक़ा करने के सही और मस्नून तरीक़े का बयान इस तरह फ़रमाया गया है कि जो लोग अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं, फिर ख़र्च करने के बाद न एहसान जतलाते हैं और न जिनको दिया गया है उनको कोई तकलीफ़ पहुँचाते हैं, उनका सवाब उनके रब के पास महफ़ूज़ है, न उन पर आईन्दा के लिये कोई ख़तरा है और न गुज़रे हुए पर कोई रंज व ग़म।

सदक़ा क़ुबूल होने की नकारात्मक शर्तें

इस आयत में सदक़े के क़ुबूल होने की दो मनफ़ी शर्तें बयान फ़रमाई गई हैं- एक यह कि देकर एहसान न जतायें। दूसरे यह कि जिसको दें उसको अ़मली तौर पर ज़लील व ख़्वार न समझें और कोई ऐसा बर्ताव न करें जिससे वह अपना अपमान व ज़िल्लत महसूस करे या उसको तकलीफ़ पहुँचे।

तीसरी आयत **'क़ौलुम् मअ़्रूफ़ुन्'** में भी सदक़े व ख़ैरात के अल्लाह के नज़दीक मक़बूल होने की इन दो शर्तों की और अधिक वज़ाहत की गई है जिनका बयान इससे पहली आयत में हो चुका है। एक यह कि माल अल्लाह की राह में ख़र्च करके किसी पर एहसान न जतलायें, दूसरे यह कि जिसको दें उसके साथ कोई ऐसा बर्ताव न करें जिससे वह अपनी ज़िल्लत व अपमान महसूस करे या जिससे उसको तकलीफ़ पहुँचे।

वज़ाहत इस तरह की गई कि ग़रीबी या माज़ूरी की हालत में माँगने वाले के जवाब में कोई माक़ूल व मुनासिब उज़्र पेश कर देना, और अगर माँगने वाला बदतमीज़ी से गुस्सा दिला दे तो उससे दरगुज़र (माफ़) करना हज़ार दर्जे बेहतर है ऐसी ख़ैरात देने से जिसके बाद उसको तकलीफ़ पहुँचाई जाये, और अल्लाह तआ़ला ख़ुद ग़नी व हलीम (मालदार व बरदाश्त करने वाले) हैं। उनको किसी के माल की ज़रूरत नहीं, जो ख़र्च करता है अपने नफ़े के लिये करता है। तो एक अ़क़्लमन्द इनसान को ख़र्च करने के वक़्त इसका लिहाज़ रखना चाहिये कि मेरा किसी पर एहसान नहीं, मैं अपने नफ़े के लिये ख़र्च कर रहा हूँ। और अगर लोगों की तरफ़ से कोई नाशुक्री भी महसूस करे तो अख़्लाक़े इलाही के ताबे होकर माफ़ी व दरगुज़र से काम ले (यानी जिस तरह अल्लाह तआ़ला बन्दों के साथ माफ़ी और बरदाश्त का मामला फ़रमाते हैं, अल्लाह की इसी सिफ़त की पैरवी करे)।

चौथी आयत में इसी मज़मून को दूसरे उनवान से और भी ताकीद के साथ इस तरह इरशाद

फ़रमाया कि अपने सदक़ों को बरबाद न करो, ज़बान से एहसान जतलाकर या बर्ताव से तकलीफ़ पहुँचाकर।

इससे वाज़ेह हो गया कि जिस सदक़े व ख़ैरात के बाद एहसान जतलाने या सदक़े के हक़दारों को तकलीफ़ पहुँचाने की सूरत हो जाये वह सदक़ा बातिल और बेकार हो जाता है, उस पर कोई सवाब नहीं। इस आयत में सदक़े के क़ुबूल होने की एक और शर्त का इस तरह बयान फ़रमाया है कि जो शख़्स लोगों के दिखावे और नाम व शोहरत के वास्ते ख़र्च करता है और अल्लाह तआ़ला और क़ियामत पर ईमान नहीं रखता उसकी मिसाल ऐसी है जैसे किसी साफ़ पत्थर पर कुछ मिट्टी जम जाये और उसमें कोई दाना बोये, फिर उस पर ज़ोर की बारिश पड़ जाये और वह उसको बिल्कुल साफ़ कर दे। ऐसे लोगों को अपनी कमाई ज़रा भी हाथ न लगेगी, और अल्लाह तआ़ला काफ़िर लोगों को रास्ता न दिखलायेंगे। इससे सदक़े व ख़ैरात के क़ुबूल होने की यह शर्त मालूम हुई कि ख़ालिस अल्लाह तआ़ला की रज़ा तलब करने और आख़िरत के सवाब की नीयत से ख़र्च करे, दिखलावे या नाम व नमूद की नीयत से न हो। नाम व नमूद की नीयत से ख़र्च करना, अपने माल को बरबाद करना है। और आख़िरत पर ईमान रखने वाला मोमिन भी अगर कोई ख़ैरात केवल नाम व नमूद और दिखावे के लिये करता है तो उसका भी यही हाल है कि उसको कोई सवाब नहीं मिलता। फिर इस जगह 'ला युअ्मिनु बिल्लाहि' के इज़ाफ़े से शायद इस तरफ़ इशारा करना मन्ज़ूर है कि "दिखावे" और नाम व नमूद के लिये काम करना उस शख़्स से तसव्वुर ही नहीं किया जा सकता जो अल्लाह तआ़ला और क़ियामत के दिन पर ईमान रखता है, दिखावा करना उसके ईमान में ख़लल की अ़लामत और निशानी है।

आयत के आख़िर में जो यह इरशाद है कि अल्लाह तआ़ला काफ़िर लोगों को रास्ता न दिखलायेंगे, इसका मतलब यह है कि अल्लाह तआ़ला की भेजी हुई हिदायतें और आयतें जो सब इनसानों के लिये आ़म हैं, काफ़िर जो इन हिदायतों पर नज़र नहीं करते बल्कि मज़ाक़ उड़ाते हैं इसके नतीजे में अल्लाह तआ़ला उनको तौफ़ीक़ से मेहरूम कर देते हैं, जिसका असर यह होता है कि वे कोई हिदायत क़ुबूल नहीं करते।

पाँचवीं आयत में ख़र्च करने और सदक़े के मक़बूल होने की एक मिसाल बयान फ़रमाई है कि जो लोग अपने माल ख़ालिस अल्लाह तआ़ला की रज़ा हासिल करने की नीयत से ख़र्च करते हैं कि अपने नफ़्सों में पुख़्तगी पैदा करें, उनकी मिसाल ऐसी है जैसे कोई बाग़ हो किसी टीले पर और उस पर ज़ोर की बारिश पड़ी हो, फिर वह अपना फल लाया हो दोगुना, और अगर ऐसे ज़ोर की बारिश न भी पड़े तो हल्की फुहार भी उसके लिये काफ़ी है, और अल्लाह तआ़ला तुम्हारे कामों को ख़ूब देखते जानते हैं।

इसमें नीयत के ख़ालिस और सही होने और उक्त शर्तों की रियायत के साथ अल्लाह तआ़ला की राह में ख़र्च करने की बड़ी फ़ज़ीलत इस मिसाल से वाज़ेह कर दी गई कि नेक-नीयती और इख़्लास के साथ थोड़ा भी ख़र्च किया जाये तो वह काफ़ी और आख़िरत में कारामद है।

छठी आयत में सदक़े व ख़ैरात में ज़िक्र हुई शर्तों की ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) करने पर सदक़े के बातिल व मरदूद होने का बयान भी एक मिसाल में इस तरह वाज़ेह फ़रमाया कि क्या तुम में से

किसी को यह बात पसन्द है कि उसका एक बाग़ हो खजूर और अंगूरों का, उसके नीचे नहरें बहती हों और उस शख़्स के बाग़ में हर क़िस्म के मेवे हों, और उस शख़्स का बुढ़ापा आ गया हो और उसके अहल व अ़याल (बाल-बच्चे और घर वाले) भी हों जिनमें ताक़त नहीं, इन हालात में उस बाग़ पर एक बगूला आये जिसमें आग हो, फिर वह बाग़ जल जाये। अल्लाह तआ़ला इसी तरह मिसालें बयान फ़रमाते हैं तुम्हारे लिये ताकि तुम सोचा करो।

मतलब यह है कि शर्तों के ख़िलाफ़ सदक़ा करने की मिसाल ऐसी ही है कि देखने में वह सदक़ा करके आख़िरत के लिये बहुत सारा ज़ख़ीरा जमा कर रहा है लेकिन अल्लाह के नज़दीक यह ज़ख़ीरा कुछ भी काम नहीं आता।

और इस मिसाल में जो चन्द क़ैदें बढ़ाई गईं कि उसका बुढ़ापा आ गया, उसके औलाद भी है और औलाद भी छोटे बच्चे जो ज़ईफ़ व कमज़ोर हैं। इन क़ैदों का मक़सद यह है कि जवानी की हालत में किसी का बाग़ या खेती जल जाये तो उसे यह उम्मीद हो सकती है कि फिर बाग़ लगा लूँगा, और जिस शख़्स के औलाद न हो और उसको दोबारा बाग़ लगाने की उम्मीद भी न हो, बाग़ जल जाने के बाद भी उसको कोई ख़ास फ़िक्र रोज़ी-रोटी की नहीं होती, अकेला आदमी जिस तरह चाहे तंगी-परेशानी से गुज़ारा कर सकता है। और अगर औलाद भी हो मगर नेक और जवान हों जिनसे यह उम्मीद की जाये कि वे बाप का हाथ बटायेंगे और मदद करेंगे, ऐसी सूरत में भी इनसान को बाग़ के जल जाने या उलट जाने पर भी कुछ ज़्यादा सदमा नहीं होता, क्योंकि औलाद की फ़िक्र से फ़ारिग़ है बल्कि औलाद उसका भी बोझ उठा सकती है। ग़र्ज़ कि ये तीनों क़ैदें सख़्त ज़रूरत को बयान करने के लिये लाई गईं कि ऐसा शख़्स जिसने अपना माल और मेहनत ख़र्च करके एक बाग़ लगाया और वह बाग़ तैयार होकर फल भी देने लगा, और उसी हालत में उसका बुढ़ापा और कमज़ोरी का ज़माना भी आ गया और यह शख़्स बाल-बच्चोंदार भी है और बाल-बच्चे भी छोटे और कमज़ोर हैं तो इन हालात में अगर लगाया हुआ बाग़ जल जाये तो सदमा सख़्त और ज़बरदस्त होगा, और तकलीफ़ बेहद होगी।

इसी तरह जिस शख़्स ने रियाकारी से (दिखावे के लिये) सदक़ा व ख़ैरात किया। गोया उसने बाग़ लगाया, फिर मौत के बाद उसकी हालत उस बूढ़े जैसी हो गई जो कमाने और दोबारा बाग़ लगाने की ताक़त व हिम्मत नहीं रखता, क्योंकि मौत के बाद इनसान का कोई अ़मल ही नहीं रहा, और जिस तरह बाल-बच्चों दार बूढ़ा इसका बहुत मोहताज होता है कि पिछली कमाई महफ़ूज़ हो ताकि कमज़ोरी और बुढ़ापे में काम आये, और अगर उस हालत में उसका बाग़ और माल व मता जल जाये तो उसके दुख और दर्द की इन्तिहा न रहेगी। इसी तरह यह सदक़ा व ख़ैरात जो दिखावे व नमूद के लिये किया गया था, ऐन ऐसे वक़्त हाथ से जाता रहेगा जबकि वह उसका बहुत ज़रूरत मन्द होगा।

इस पूरी आयत का ख़ुलासा यह हुआ कि सदक़ा व ख़ैरात के अल्लाह के नज़दीक मक़बूल होने की एक बड़ी शर्त इख़्लास है कि ख़ालिस अल्लाह तआ़ला की रज़ा तलब करने के लिये ख़र्च किया जाये, किसी नाम व नमूद का उसमें दख़ल न हो।

अब इस पूरे रुकूअ़ की तमाम आयतों पर एक बार फिर नज़र डालिये तो अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने और सदक़ा व ख़ैरात के अल्लाह के नज़दीक मक़बूल होने की छह शर्तें मालूम होंगी:

अव्वल उस माल का हलाल होना जो अल्लाह की राह में ख़र्च किया जाये।

दूसरे सुन्नत के तरीक़े के मुताबिक़ ख़र्च करना।

तीसरे सही जगह और मौक़े में ख़र्च करना।

चौथे ख़ैरात देकर एहसान न जतलाना।

पाँचवे ऐसा कोई बर्ताव न करना जिससे उन लोगों का अपमान (या उनको तकलीफ़) हो जिनको यह माल दिया गया है।

छठे जो कुछ ख़र्च किया जाये नेक और ख़ालिस नीयत के साथ ख़ालिस अल्लाह तआ़ला की रज़ा हासिल करने के लिये हो, दिखावे और नाम के लिये न हो।

दूसरी शर्त यानी सुन्नत तरीक़े के मुताबिक़ ख़र्च करना। इसका मतलब यह है कि अल्लाह तआ़ला की राह में ख़र्च करते वक़्त इसका लिहाज़ रहे कि किसी हक़दार की हक़-तल्फ़ी न हो। अपने अ़याल (घर वालों और बाल-बच्चों) की रज़ामन्दी के बग़ैर उनके ज़रूरी ख़र्चे बन्द या कम करके सदक़ा व ख़ैरात करना कोई सवाब का काम नहीं, ज़रूरत मन्द वारिसों को मेहरूम करके सारे माल को सदक़ा व ख़ैरात या वक़्फ़ कर देना सुन्नत की तालीम के ख़िलाफ़ है। फिर अल्लाह तआ़ला की राह में ख़र्च करने की हज़ारों सूरतें हैं।

सुन्नत तरीक़ा यह है कि ख़र्च के मौक़े और मक़ाम की अहमियत और ज़रूरत की शिद्दत का लिहाज़ करके ख़र्च के मौक़े का चयन किया जाये, आ़म तौर पर ख़र्च करने वाले इसकी रियायत नहीं करते।

तीसरी शर्त का हासिल यह है कि सवाब होने के लिये सिर्फ़ इतनी बात काफ़ी नहीं कि अपने ख़्याल में किसी को नेक समझकर नेक-नीयती से उस पर ख़र्च कर दे, बल्कि यह भी ज़रूरी है कि ख़र्च करने का वह मौक़ा व मक़ाम शरीअ़त की रू से जायज़ और अच्छा भी हो। कोई शख़्स नाजायज़ खेल-तमाशों के लिये अपनी जायदाद वक़्फ़ कर दे तो वह बजाय सवाब के अ़ज़ाब का मुस्तहिक़ होगा, यही हाल उन तमाम कामों का है जो शरीअ़त की रू से अच्छे और पसन्दीदा नहीं हैं।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْفِقُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَمِمَّآ اَخْرَجْنَا لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ ۠ وَلَا تَيَمَّمُوا
الْخَبِيْثَ مِنْهُ تُنْفِقُوْنَ وَلَسْتُمْ بِاٰخِذِيْهِ اِلَّآ اَنْ تُغْمِضُوْا فِيْهِ ۭ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ حَمِيْدٌ ۝
اَلشَّيْطٰنُ يَعِدُكُمُ الْفَقْرَ وَيَاْمُرُكُمْ بِالْفَحْشَاۗءِ ۚ وَاللّٰهُ يَعِدُكُمْ مَّغْفِرَةً مِّنْهُ وَفَضْلًا ۭ وَاللّٰهُ
وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ۝ يُّؤْتِي الْحِكْمَةَ مَنْ يَّشَاۗءُ ۚ وَمَنْ يُّؤْتَ الْحِكْمَةَ فَقَدْ اُوْتِيَ خَيْرًا كَثِيْرًا ۭ وَمَا
يَذَّكَّرُ اِلَّآ اُولُوا الْاَلْبَابِ ۝ وَمَآ اَنْفَقْتُمْ مِّنْ نَّفَقَةٍ اَوْ نَذَرْتُمْ مِّنْ نَّذْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ
يَعْلَمُهٗ ۭ وَمَا لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ اَنْصَارٍ ۝ اِنْ تُبْدُوا الصَّدَقٰتِ فَنِعِمَّا ھِىَ ۚ وَاِنْ تُخْفُوْھَا وَتُؤْتُوْھَا
الْفُقَرَاۗءَ فَهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۭ وَيُكَفِّرُ عَنْكُمْ مِّنْ سَيِّاٰتِكُمْ ۭ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ ۝ لَيْسَ
عَلَيْكَ ھُدٰىھُمْ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَهْدِيْ مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ فَلِاَنْفُسِكُمْ ۭ وَمَا تُنْفِقُوْنَ

إِلَّا ابْتِغَاءَ وَجْهِ اللَّهِ ۚ وَمَا تُنْفِقُوا مِنْ خَيْرٍ يُوَفَّ إِلَيْكُمْ وَأَنْتُمْ لَا تُظْلَمُونَ ۝ لِلْفُقَرَاءِ الَّذِينَ أُحْصِرُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ لَا يَسْتَطِيعُونَ ضَرْبًا فِي الْأَرْضِ يَحْسَبُهُمُ الْجَاهِلُ أَغْنِيَاءَ مِنَ التَّعَفُّفِ تَعْرِفُهُمْ بِسِيمَاهُمْ لَا يَسْأَلُونَ النَّاسَ إِلْحَافًا ۗ وَمَا تُنْفِقُوا مِنْ خَيْرٍ فَإِنَّ اللَّهَ بِهِ عَلِيمٌ ۝ الَّذِينَ يُنْفِقُونَ أَمْوَالَهُمْ بِاللَّيْلِ وَالنَّهَارِ سِرًّا وَعَلَانِيَةً فَلَهُمْ أَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू अन्फ़िक़ू मिन् तय्यिबाति मा कसब्तुम व मिम्मा अख़्रज्ना लकुम् मिनल्-अर्ज़ि व ला त-यम्म-मुल्-ख़बी-स मिन्हु तुन्फ़िक़ू-न व लस्तुम बि-आख़िज़ीहि इल्ला अन् तुग़्मिज़ू फ़ीहि, वअ्लमू अन्नल्ला-ह ग़निय्युन् हमीद (267) अश्शैतानु यअिदुकुमुल्-फ़क्-र व यअ्मुरुकुम बिल्फ़ह्शा-इ वल्लाहु यअिदुकुम् मग़्फ़ि-रतम् मिन्हु व फ़ज़्लन्, वल्लाहु वासिअुन् अ़लीम (268) युअ्तिल्-हिक्म-त मंय्यशा-उ व मंय्युअ्तल्-हिक्म-त फ़-क़द् ऊति-य ख़ैरन् कसीरन्, व मा यज़्ज़क्करु इल्ला उलुल्-अल्बाब (269) व मा अन्फ़क़्तुम् मिन् न-फ़-क़तिन् औ नज़र्तुम् मिन्-नज़्रिन् फ़-इन्नल्ला-ह यअ्लमुहू,

ऐ ईमान वालो! ख़र्च करो सुथरी (पाक और उम्दा) चीज़ें अपनी कमाई में से और उस चीज़ में से कि जो हमने पैदा किया तुम्हारे वास्ते ज़मीन से। और इरादा न करो गन्दी चीज़ का उसमें से कि उसको ख़र्च करो, हालाँकि तुम उसको कभी न लोगे मगर यह कि आँख बचा जाओ, और जान रखो कि अल्लाह बेपरवाह है, ख़ूबियों वाला। (267) शैतान वादा देता है तुमको तंगदस्ती (ग़ुर्बत) का और हुक्म करता है बेहयाई का, और अल्लाह वादा देता है तुमको अपनी बख़्शिश और फ़ज़्ल का और अल्लाह बहुत कशाईश (वुस्अ़त) वाला है, सब कुछ जानता है। (268) इनायत करता है समझ जिसको चाहे और जिसको समझ मिली है उसको बड़ी ख़ूबी मिली, और नसीहत वही क़ुबूल करते हैं जो अ़क्ल वाले हैं। (269) और जो ख़र्च करोगे तुम ख़ैरात या क़ुबूल करोगे कोई मन्नत तो बेशक अल्लाह को सब मालूम है और इनायत करता है समझ जिसको चाहे, और जिसको

व मा लिज़्ज़ालिमी-न मिन् युअ्तिल्-हिक्म-त मंय्यशा-उ व मंय्युअ्तल्-हिक्म-त फ़-क़द् ऊति-य ख़ैरन् कसीरन्, व मा यज़्ज़क्करु इल्ला उलुल्-अल्बाब (269) व मा अन्फ़क़्तुम् मिन् न-फ़-क़तिन् औ नज़र्तुम् मिन्-नज़्रिन् फ़-इन्नल्ला-ह यअ्लमुहू, व मा लिज़्ज़ालिमी-न मिन् अन्सार (270) इन् तुब्दुस्स-दक़ाति फ़-निअ़िम्मा हि-य व इन् तुख़्फ़ूहा व तुअ्तूहल्-फ़ु-क़रा-अ फ़हु-व ख़ैरुल्लकुम व युकफ़्फ़िरु अन्कुम् मिन् सय्यिआतिकुम, वल्लाहु बिमा तअ्मलून ख़बीर (271) लै-स अ़लै-क हुदाहुम् व लाकिन्नल्ला-ह यह्दी मंय्यशा-उ, व मा तुन्फ़िक़ू मिन् ख़ैरिन् फ़-लिअन्फ़ुसिकुम्, व मा तुन्फ़िक़ू-न इल्लब्तिग़ा-अ वज्हिल्लाहि, व मा तुन्फ़िक़ू मिन् ख़ैरिंय्-युवफ़्-फ़ इलैकुम् व अन्तुम् ला तुज़्लमून (272) लिल्फ़ु-क़रा--इल्लज़ी-न उह्सिरू फ़ी सबीलिल्लाहि ला यस्ततीअू-न ज़र्बन् फ़िल्अर्ज़ि यह्सबुहुमुल्-जाहिलु अग़्निया-अ

समझ मिली है उसको बड़ी ख़ूबी मिली, और नसीहत वही क़ुबूल करते हैं जो अक़्ल वाले हैं। (269) और जो ख़र्च करोगे तुम ख़ैरात या क़ुबूल करोगे कोई मन्नत तो बेशक अल्लाह को सब मालूम है और ज़ालिमों का कोई मददगार नहीं। (270) अगर ज़ाहिर करके दो ख़ैरात तो क्या अच्छी बात है, और अगर उसको छुपाओ और फ़क़ीरों को पहुँचाओ तो वह बेहतर है तुम्हारे हक़ में, और दूर करेगा कुछ गुनाह तुम्हारे, और अल्लाह तुम्हारे कामों से ख़ूब ख़बरदार है। (271) तेरा ज़िम्मा नहीं उनको राह पर लाना और लेकिन अल्लाह राह पर ला दे जिसको चाहे, और जो कुछ ख़र्च करोगे तुम माल सो अपने ही वास्ते जब तक कि ख़र्च करोगे अल्लाह ही की रज़ा ढूँढने में, और जो ख़र्च करोगे ख़ैरात सो पूरी मिलेगी तुमको और तुम्हारा हक़ न रहेगा। (272) ख़ैरात उन फ़क़ीरों के लिये है जो रुके हुए हैं अल्लाह की राह में, चल-फिर नहीं सकते मुल्क में, समझे उनको नावाक़िफ़ मालदार उनके सवाल न करने से,

मिनत्त-अ़फ़्फ़ुफ़ि तअ़्रिफ़ुहुम् बिसीमाहुम् ला यस्अलूनन्ना-स इल्हाफ़न्, व मा तुन्फ़िक़ू मिन् ख़ैरिन् फ़-इन्नल्ला-ह बिही अ़लीम (273) ❁ ❖	तू पहचानता है उनको उनके चेहरे से, नहीं सवाल करते लोगों से लिपट कर। और जो कुछ ख़र्च करोगे काम की चीज़ वह बेशक अल्लाह को मालूम है। (273) ❁ ❖
अल्लज़ी-न युन्फ़िक़ू-न अम्वालहुम् बिल्लैलि वन्नहारि सिर्रंव्-व अ़लानि-यतन् फ़-लहुम् अज्रुहुम् अिन्-द रब्बिहिम् व ला ख़ौफ़ुन् अ़लैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून (274)	जो लोग ख़र्च करते हैं अपने माल अल्लाह की राह में रात को और दिन को छुपाकर और ज़ाहिर में तो उनके लिये सवाब है उनका अपने रब के पास, और न डर है उन पर और न वे ग़मगीन होंगे। (274)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! (नेक काम में) ख़र्च किया करो उम्दा चीज़ को अपनी कमाई में से और (उम्दा चीज़ को) उसमें से जो कि हमने तुम्हारे (काम में लाने के) लिए ज़मीन से पैदा किया है। और रद्दी (नाकारा) चीज़ की तरफ़ नीयत मत ले जाया करो कि उसमें से ख़र्च करो, हालाँकि (वैसी ही चीज़ अगर कोई तुमको तुम्हारे वाजिब हक़ के बदले या सौग़ात में देने लगे तो) तुम कभी उसके लेने वाले नहीं हो, हाँ मगर देखकर टाल (और रियायत कर) जाओ (तो और बात है), और यक़ीन रखो कि अल्लाह तआ़ला किसी के मोहताज नहीं (जो ऐसी नाकारा चीज़ों से ख़ुश हों), तारीफ़ के लायक़ हैं (यानी ज़ात व सिफ़ात में कामिल हैं तो उनके दरबार में चीज़ भी कामिल तारीफ़ के लायक़ ही पेश करनी चाहिये)।

शैतान तुमको मोहताजी से डराता है (कि अगर ख़र्च करोगे या अच्छा माल ख़र्च करोगे तो मोहताज हो जाओगे) और तुमको बुरी बात (यानी कन्जूसी) का मश्विरा देता है, और अल्लाह तुमसे वायदा करता है (ख़र्च करने पर और अच्छी चीज़ ख़र्च करने पर) अपनी तरफ़ से गुनाह माफ़ कर देने का और ज़्यादा देने का (यानी चूँकि नेक जगह ख़र्च करना नेकी है और नेकी से गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो जाता है, लिहाज़ा इससे गुनाह भी माफ़ होते हैं और हक़ तआ़ला किसी को दुनिया में भी और आख़िरत में तो सभी को ख़र्च का बदला भी ज़्यादा करके देते हैं), और अल्लाह तआ़ला वुस्अ़त वाले हैं (वह सब कुछ दे सकते हैं) ख़ूब जानने वाले हैं (नीयत के मुवाफ़िक़ फल देते हैं। और ये सब मज़ामीन बहुत ज़ाहिर हैं लेकिन इनको वही समझता है जिसको दीन की समझ हो और अल्लाह तआ़ला) दीन की समझ जिसको चाहते हैं दे देते हैं, और (सच तो यह है कि) जिसको दीन की समझ

मिल जाए उसको बड़ी ख़ैर की चीज़ मिल गई (क्योंकि दुनिया की कोई नेमत इसके बराबर नफ़ा देने वाली नहीं) और नसीहत वही लोग क़ुबूल करते हैं जो अ़क्ल वाले हैं (यानी जो सही अ़क्ल रखते हैं)।

और तुम लोग जो किसी क़िस्म का ख़र्च करते हो या किसी तरह की नज़्र "यानी मन्नत" मानते हो, सो हक़ तआ़ला को यक़ीनन सब की इत्तिला है, और बेजा काम करने वालों का (क़ियामत में) कोई साथी (और हिमायती) न होगा। अगर तुम सदक़ों को ज़ाहिर करके दो तब भी अच्छी बात है, और अगर उनको छुपाओ और (छुपाकर) फ़क़ीरों को दे दो तो यह छुपाना तुम्हारे लिए ज़्यादा बेहतर है, और अल्लाह तआ़ला (उसकी बरकत से) तुम्हारे कुछ गुनाह भी दूर कर देंगे। अल्लाह तआ़ला तुम्हारे किए हुए कामों की ख़ूब ख़बर रखते हैं (चूँकि बहुत से सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम काफ़िरों को मस्लेहत के तहत ख़ैरात न देते थे कि शायद इसी तदबीर से कुछ लोग मुसलमान हो जायें और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने भी यही राय दी थी इसलिये इस आयत में दोनों तरह के ख़िताब करके इरशाद फ़रमाते हैं कि ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) उन (काफ़िरों) को हिदायत पर ले आना कुछ आपके ज़िम्मे (फ़र्ज़ या वाजिब) नहीं (जिसके लिये इतनी दूर-दराज़ की सोची जाये) लेकिन (यह तो) ख़ुदा तआ़ला (का काम है) जिसको चाहें हिदायत पर ले आएँ (आपका काम सिर्फ़ हिदायत का पहुँचा देना है चाहे कोई हिदायत पर आये या न आये, और हिदायत का पहुँचा देना कुछ इस रोक लेने और मनाही पर मौक़ूफ़ नहीं)।

और (ऐ मुसलमानो!) जो कुछ तुम ख़र्च करते हो अपने फ़ायदे की ग़र्ज़ से करते हो, और (उस फ़ायदे का बयान यह है कि) तुम और किसी ग़र्ज़ से ख़र्च नहीं करते सिवाय हक़ तआ़ला की पाक ज़ात की रज़ा हासिल करने के (कि सवाब उसके लवाज़िम में से है और यह हर ज़रूरत मन्द की ज़रूरत पूरी करने से हासिल होती है, फिर ग़रीब मुसलमान को क्यों ख़ास रखा जाये) और (तथा) जो कुछ माल ख़र्च कर रहे हो यह सब (यानी इसका बदला और सवाब) पूरा-पूरा तुम (ही) को (आख़िरत में) मिल जाएगा, और तुम्हारे लिए इसमें ज़रा कमी न की जाएगी (सो तुमको अपने बदले से मतलब रखना चाहिये और बदला हर हाल में मिलेगा। फिर तुमको इससे क्या बहस कि हमारा सदक़ा मुसलमान ही को मिले, काफ़िर को न मिले। सदक़ात) असल हक़ उन ज़रूरत मन्दों का है जो क़ैद हो गए हों अल्लाह की राह (यानी दीन की ख़िदमत) में (और इसी दीन की ख़िदमत में घिर जाने और मशग़ूल रहने से) वे लोग (रोज़ी-रोटी कमाने के लिये) कहीं मुल्क में चलने-फिरने की (आ़दतन) संभावना नहीं रखते, (और) नावाक़िफ़ उनको मालदार ख़्याल करता है उनके सवाल से बचने के सबब से, (अलबत्ता) तुम उनको उनके तर्ज़ (हालत) से पहचान सकते हो (क्योंकि तंगदस्ती व फ़ाक़े से चेहरे और बदन पर थोड़ा बहुत असर ज़रूर आ जाता है, और यूँ) वे लोगों से लिपट कर माँगते नहीं फिरते (जिससे कोई उनको ज़रूरत मन्द समझे। यानी माँगते ही नहीं, क्योंकि अक्सर जो लोग माँगने के आ़दी हैं वे लिपट ही कर माँगते हैं) और (उन लोगों की ख़िदमत करने को) जो माल ख़र्च करोगे बेशक हक़ तआ़ला को उसकी ख़ूब इत्तिला है (दूसरे लोगों को देने से उनकी ख़िदमत करने का ज़्यादा सवाब देंगे)।

जो लोग ख़र्च करते हैं अपने मालों को रात और दिन में (यानी वक़्त को ख़ास किए बग़ैर), खुले

और छुपे तौर पर (यानी हालात को ख़ास किए बग़ैर), सो उन लोगों को उनका सवाब मिलेगा (क़ियामत के दिन) अपने रब के पास (जाकर), और न (उस दिन) उन पर कोई ख़तरा (वाक़े होने वाला है) है और न वे ग़मगीन होंगे।

मआरिफ़ व मसाईल

इससे पहले वाले रुकूअ़ में अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने का बयान था, अब उसी से सम्बन्धित बातों का अधिक बयान इस रुकूअ़ की सात आयतों में किया गया है, जिसकी तफ़सील इस प्रकार हैः

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْفِقُوْا..... (الى قوله) .....غَنِيٌّ حَمِيْدٌo

इस आयत के उतरने के मौक़े और सबब को देखते हुए **तय्यिब** के मायने उम्दा के लिये गये हैं क्योंकि कुछ लोग ख़राब चीज़ें ले आते थे, इस पर यह पूरी आयत नाज़िल हुई थी। और कुछ हज़रात ने लफ़्ज़ के आ़म होने से तय्यिब की तफ़सीर हलाल से की है, क्योंकि कोई भी चीज़ पूरी उम्दा तभी होती है जब हलाल भी हो। पस इस बिना पर आयत में इसकी भी ताकीद होगी, और पहली तफ़सीर पर दूसरी दलीलों से इस ताकीद को साबित किया जायेगा और याद रखो कि यह उस शख़्स के लिये है जिसके पास उम्दा चीज़ हो और फिर वह बुरी निकम्मी चीज़ ख़र्च करे, जैसा कि लफ़्ज़ 'मा कसब्तुम' और 'अख़्रजना' उसके मौजूद होने पर और 'ला तयम्ममुल् ख़बी-स मिन्हु तुन्फ़िक़ू-न' जान-बूझकर निकम्मी (बुरी और नाक़िस) चीज़ ख़र्च करने पर दलालत कर रहा है। और जिसके पास अच्छी चीज़ हो ही नहीं वह इस मनाही से बरी है, और उसकी वह बुरी चीज़ भी मक़बूल है।

लफ़्ज़ **'मा कसब्तुम'** से कुछ उलेमा ने यह मसला निकाला है कि बाप का अपने बेटे की कमाई से खाना जायज़ है, जैसा कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का क़ौल हैः

اَوْلَادُكُمْ مِنْ طَيِّبِ اَكْسَابِكُمْ فَكُلُوْا مِنْ اَمْوَالِ اَوْلَادِكُمْ هَنِيْئًا. (قرطبى)

"तुम्हारी औलाद तुम्हारी कमाई का एक पाकीज़ा हिस्सा है पस तुम अपनी औलाद की कमाई में से मज़े से खाओ।"

उश्री ज़मीन के अहकाम

مِمَّآ اَخْرَجْنَا لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ

"मिम्मा अख़्रज्ना लकुम् मिनल्-अरज़ि" में लफ़्ज़ 'अख़्रजना' से इशारा इस बात क़ी तरफ़ है कि उश्री ज़मीन में उश्र वाजिब है। इस आयत के आ़म होने से इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने दलील पकड़ी है कि उश्री ज़मीन की हर पैदावार पर चाहे वह कम हो या ज़्यादा उश्र वाजिब है। सूरः अन्आ़म की आयतः

اٰتُوْا حَقَّهٗ يَوْمَ حَصَادِهٖ (٦:١٤١)

उश्र के वाजिब होने में बिल्कुल स्पष्ट और वाज़ेह है। **उश्र** व **ख़िराज** इस्लामी शरीअ़त के दो इस्तिलाही लफ़्ज़ हैं। इन दोनों में एक बात साझा है कि इस्लामी हुकूमत की तरफ़ से ज़मीनों पर लगाये गये टैक्स की एक हैसियत इन दोनों में है, फ़र्क़ यह है कि उश्र सिर्फ़ टैक्स नहीं बल्कि इसमें

टैक्स से ज़्यादा असली हैसियत माली इबादत की है ज़कात की तरह, इसी लिये इसको 'ज़कातुल-अर्ज़' (ज़मीन की ज़कात) भी कहा जाता है। और 'ख़िराज' ख़ालिस टैक्स है जिसमें इबादत की कोई हैसियत नहीं। मुसलमान चूँकि इबादत के अहल और पाबन्द हैं, उनसे जो ज़मीन की पैदावार का हिस्सा लिया जाता है उसको उश्र कहते हैं, और ग़ैर-मुस्लिम चूँकि इबादत के अहल नहीं उनकी ज़मीनों पर जो कुछ आयद किया जाता है उसका नाम ख़िराज है। अमली तौर पर ज़कात और उश्र में यह भी फ़र्क़ है कि सोना चाँदी और तिजारत के माल पर ज़कात साल भर गुज़रने के बाद लागू होती है, और उश्र ज़मीन से पैदा और हासिल होते ही वाजिब हो जाता है।

दूसरा फ़र्क़ यह भी है कि अगर ज़मीन से कोई पैदावार न हो तो उश्र ज़िम्मे से उतर जाता है लेकिन तिजारत के माल और सोने चाँदी पर अगर कोई नफ़ा भी न हो तब भी साल पूरा होने पर उन पर ज़कात फ़र्ज़ होगी। उश्र व ख़िराज के मसाईल की तफ़सील का यह मौक़ा नहीं, मसाईल की किताबों में बयान हुए हैं और अहक़र ने अपनी किताब "निज़ामुल-आराज़ी" में भी तफ़सील से लिख दिया है, जिसमें पाकिस्तान व हिन्दुस्तान की ज़मीनों के ख़ुसूसी अहकाम भी लिखे गये हैं।

اَلشَّيْطٰنُ يَعِدُكُمُ الْفَقْرَ..... (الى قوله) .....وَمَا يَذَّكَّرُ اِلَّآ اُولُوا الْاَلْبَابِo

जिस किसी के दिल में यह ख़्याल आये कि अगर ख़ैरात करूँगा तो मुफ़लिस (ग़रीब और कंगाल) हो जाऊँगा, और हक़ तआ़ला की ताकीद सुनकर भी उसकी हिम्मत न हो और दिल चाहे कि अपना माल ख़र्च न करे और अल्लाह के वायदे से मुँह फेरकर शैतानी वायदे पर तबीयत को मैलन और भरोसा हो तो उसको यक़ीन कर लेना चाहिये कि यह मज़मून शैतान की तरफ़ से है। यह न कहे कि "शैतान की तो हमने कभी सूरत भी नहीं देखी, हुक्म करना तो दरकिनार रहा" और अगर यह ख़्याल आये कि सदक़ा ख़ैरात करने से गुनाह बख़्शे जायेंगे और माल में भी तरक़्क़ी और बरकत होगी तो जान ले कि यह मज़मून अल्लाह की तरफ़ से आया है, और ख़ुदा का शुक्र करे और अल्लाह के ख़ज़ाने में कमी नहीं। वह सब के ज़ाहिर व बातिन नीयत व अ़मल को ख़ूब जानता है।

हिक्मत के मायने और तफ़सीर

يُّؤْتِى الْحِكْمَةَ مَنْ يَّشَآءُ

"युअ्तिल् हिक्म-त मंय्यशा-उ" लफ़्ज़ हिक्मत क़ुरआने करीम में बार-बार आया है और हर जगह इसकी तफ़सीर में अलग-अलग और विभिन्न मायने बयान किये गये हैं। तफ़सीर 'बहरे मुहीत' में इस जगह मुफ़स्सिरीन (क़ुरआन के व्याख्यापकों) के तमाम अक़वाल को जमा किया है, वो तक़रीबन तीस हैं, मगर आख़िर में फ़रमाया कि दर हक़ीक़त ये सब अक़वाल एक-दूसरे से क़रीब और मिले हुए हैं, इनमें कोई इख़्तिलाफ़ (टकराव) नहीं, सिर्फ़ ताबीर का फ़र्क़ है। क्योंकि लफ़्ज़ हिक्मत, एहकाम का मस्दर है, जिसके मायने हैं किसी अ़मल या क़ौल को उसकी तमाम सिफ़तों के साथ मुकम्मल करना। इसी लिये 'बहरे मुहीत' में सूरः ब-क़रह की आयतः

اٰتٰهُ اللّٰهُ الْمُلْكَ وَالْحِكْمَةَ. (٢:٢٥١)

जो हज़रत दाऊद अ़लैहिस्सलाम के बारे में है, इसकी तफ़सीर में फ़रमायाः

وَالْحِكْمَةُ وَضْعُ الْاُمُوْرِ فِىْ مَحَلِّهَا عَلَى الصَّوَابِ وَكَمَالُ ذٰلِكَ اِنَّمَا يَحْصَلُ بِالنُّبُوَّةِ.

"हिक्मत के असली मायने हर चीज़ को उसके मौक़े और जगह में रखने के हैं और इसका कमाल सिर्फ़ नुबुव्वत से हासिल हो सकता है, इसलिये यहाँ 'हिक्मत' की तफ़सीर नुबुव्वत से की गई है।"

इमाम राग़िब अस्फ़हानी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'मुफ़रदातुल-क़ुरआन' में फ़रमाया कि लफ़्ज़ हिक्मत जब हक़ तआ़ला के लिये इस्तेमाल किया जाये तो मायने तमाम चीज़ों की पूरी मारिफ़त (पहचान) और स्थिर ईजाद के होते हैं, और जब ग़ैरुल्लाह की तरफ़ इसकी निस्बत की जाती है तो मौजूदात (मौजूद चीज़ों) की सही मारिफ़त और उसके मुताबिक़ अ़मल मुराद होता है।

इसी मफ़्हूम की ताबीरें मुख़्तलिफ़ अलफ़ाज़ में की गई हैं, किसी जगह इससे मुराद क़ुरआन है, किसी जगह हदीस, किसी जगह सही इल्म, कहीं नेक अ़मल, कहीं सच्ची बात, कहीं अ़क़्ले सलीम, कहीं दीनी समझ, कहीं राय का सही होना और कहीं अल्लाह से डरना, और आख़िरी मायने तो ख़ुद हदीस में भी ज़िक्र हुए हैं:

رأس الحكمة خشية الله

यानी असल हिक्मत ख़ुदा तआ़ला से डरना है। और आयतः

يُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ. (٢:٦٢)

में हिक्मत की तफ़सीर सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात से हदीस व सुन्नत नक़ल की गयी है। और कुछ हज़रात ने यह फ़रमाया कि आयत ज़ेरे नज़र (यानी जिस आयत का बयान चल रहा है) 'युअ्तल-हिक्म-त' में ये सब चीज़ें मुराद हैं। (तफ़सीर बहरे मुहीत, पेज 320 जिल्द 2)

और ज़ाहिर यही क़ौल है, और क़ुरआनी इरशादः

وَمَنْ يُّؤْتَ الْحِكْمَةَ فَقَدْ اُوْتِيَ خَيْرًا كَثِيْرًا

से भी इसकी तरफ़ इशारा निकलता है। मायने इसके यह हैं कि जिस शख़्स को हिक्मत दे दी गई उसको बहुत बड़ी ख़ैर दे दी गई। वल्लाहु आलम

وَمَآ اَنْفَقْتُمْ مِّنْ نَّفَقَةٍ ....(الى قوله)........ وَمَا لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ اَنْصَارٍO

"किसी क़िस्म के ख़र्च करने में" सब ख़र्च आ गये, वह भी जिसमें उक्त सब शर्तों की रियायत हो और वह भी जिसमें सब की या कुछ की रियायत न हो। जैसे अल्लाह के रास्ते में ख़र्च न हो बल्कि नाफ़रमानी और गुनाह की जगह में हो, या ख़र्च करने में दिखावा शामिल हो या ख़र्च करके उस पर एहसान जतलाना हो, या हलाल या उम्दा माल न हो। इसी तरह 'नज़्र' (मन्नत) के आ़म होने में सब मन्नतें आ गईं, जैसे माली इबादत की मन्नत और इसी मुनासबत से ख़र्च करने के साथ मन्नत को लाये हैं, या बदनी इबादत की मन्नत हो। फिर वह मुतलक़ (बिना किसी क़ैद और शर्त के) हो या किसी मामले के साथ जुड़ी हुई हो। फिर यह कि उसको पूरा किया गया हो या न किया गया हो। और मक़सूद इस कहने से यह है कि अल्लाह तआ़ला को इन सब चीज़ों का इल्म है, वह इसकी जज़ा (बदला) देंगे। यह इसलिये सुनाया ताकि हदों और शर्तों की रियायत की तरग़ीब और रियायत न

करने से डराना हो जाये। और बेजा काम करने वालों से वे लोग मुराद हैं जो ज़रूरी शर्तों की रियायत नहीं करते, उनको खुले लफ़्ज़ों में वईद (सज़ा की धमकी) सुना दी।

اِنْ تُبْدُوا الصَّدَقٰتِ فَنِعِمَّا هِیَ...... (الی قوله)......... وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِیْرٌ٥

बज़ाहिर यह आयत फ़र्ज़ और नफ़िल सब सदक़ों को शामिल है, और सब में छुपाना ही अफ़ज़ल है। इसमें दीनी मस्लेहत भी है कि दिखावे से बचाव है, लेने वाला भी नहीं शर्माता। और दुनियावी मस्लेहत भी है कि अपने माल की मिक़्दार (मात्रा और कुल मालियत) आम लोगों पर ज़ाहिर नहीं होती। और छुपाने के बेहतर होने से मुराद आयत में अपनी ज़ात के एतिबार से है, पस अगर किसी मौक़े पर किसी कारण से ज़ाहिर करने को तरजीह हो जाये तो वह इस छुपाने के ख़िलाफ़ नहीं, जैसे किसी आदमी पर यह शुब्हा किया जाने लगे कि यह कुछ देता ही नहीं, तो वहाँ इस तोहमत से बचने और इसे दूर करने के लिये, इसी तरह किसी जगह यह हो कि इसको ख़र्च करता देखकर और लोगों को भी इसकी तरग़ीब होगी और वे भी अल्लाह के रास्ते में देंगे तो उस जगह ज़ाहिर कर देना चाहिये। यह अफ़ज़लियत (बेहतर होने) के ख़िलाफ़ नहीं माना जायेगा।

يُكَفِّرُ عَنْكُمْ مِّنْ سَيِّاٰتِكُمْ

गुनाहों का कफ़्फ़ारा होना कुछ छुपाने के साथ तो ख़ास नहीं, सिर्फ़ इस बात पर तंबीह करने के लिये छुपाने के साथ इसका ज़िक्र किया है कि छुपाने में तुझे अगर कोई ज़ाहिरी फ़ायदा नज़र न आये तो तंगदिल नहीं होना चाहिये। इसलिये कि तुम्हारे गुनाह अल्लाह तआ़ला माफ़ करता है और यह तुम्हारे लिये बहुत बड़ा फ़ायदा है।

لَيْسَ عَلَيْكَ هُدٰهُمْ.... (الی قوله).... وَاَنْتُمْ لَا تُظْلَمُوْنَ٥

इस आयत में बतलाया गया है कि असल में तुम्हारी नीयत भी अपना ही नफ़ा हासिल करने की है, और वास्तव में भी हासिल ख़ास तुम ही को होगा, फिर इन फ़ालतू की चीज़ों पर क्यों नज़र की जाती है कि यह नफ़ा ख़ास इसी तरीक़े से हासिल किया जाये कि मुसलमान ही को सदक़ा दें और काफ़िर को न दें।

यहाँ यह बात भी समझ लीजिये कि इस सदक़े से मुराद नफ़्ली सदक़ा (आम ख़ैरात) है जिसका **ज़िम्मी काफ़िर** को भी देना जायज़ है। ज़कात मुराद नहीं है, क्योंकि वह सिवाय मुसलमान के किसी दूसरे को देना जायज़ नहीं। (तफ़सीरे मज़हरी)

मसला 1. हर्बी काफ़िर को किसी क़िस्म का सदक़ा वग़ैरह देना जायज़ नहीं।

मसला 2. काफ़िर ज़िम्मी यानी ग़ैर-हर्बी को सिर्फ़ ज़कात व उश्र देना जायज़ नहीं और दूसरे वाजिब व नफ़्ली सदक़ात सब जायज़ हैं, और आयत में ज़कात दाख़िल नहीं।

नोटः- ज़िम्मी वह काफ़िर है जो इस्लामी हुकूमत में टैक्स देकर रहता हो जिसके जान व माल और इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी इस्लामी हुकूमत लेती है। और **हर्बी** वह काफ़िर है जो मुसलमानों से लड़ने वाला हो, यानी जिन काफ़िरों से मुसलमानों की जंग जारी हो वह उन्हीं में से या उस मुल्क का हो। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

لِلْفُقَرَآءِ الَّذِيْنَ اُحْصِرُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ........ (الى قوله)......فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌo

इस आयत से मालूम हुआ कि अगर कोई फ़क़ीर क़ीमती कपड़े पहने हुए हो तो उसकी वजह से उसको ग़नी (मालदार) नहीं कहा जायेगा बल्कि उसको फ़क़ीर ही कहा जायेगा और ऐसे आदमी को ज़कात देना भी सही होगा। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

'तअ्रिफ़ुहुम बिसीमाहुम्' से मालूम हुआ कि निशानियों को देखकर हुक्म लगाना सही है। चुनाँचे अगर कोई मुर्दा इस क़िस्म का पाया जाये कि उस पर ज़ुन्नार (जनेऊ) है और उसका ख़तना भी नहीं किया हुआ तो उसको मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में दफ़न नहीं किया जायेगा। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

'ला यस्अलूनन्ना-स इल्हाफ़ा' इस आयत से बज़ाहिर यह समझ में आता है कि वे लिपट कर नहीं माँगते, लेकिन बग़ैर लिपट कर माँगने की नफ़ी नहीं है। चुनाँचे कुछ हज़रात का यही क़ौल है, लेकिन जमहूर के नज़दीक इसके मायने यह हैं कि वे सवाल बिल्कुल ही नहीं करते। तफ़सीरे क़ुर्तुबी में है:

لِاَنَّهُمْ مُتَعَفِّفُوْنَ عَنِ الْمَسْاَلَةِ عِفَّةً تَامَّةً. (قرطبى)

"इसलिये कि वे सवाल करने से पूरी तरह बचते हैं।"

आठवीं आयतः

اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ بِالَّيْلِ وَالنَّهَارِ

(यानी आयत 274) में उन लोगों के बड़े अज्र और फ़ज़ीलत का बयान है जो अल्लाह की राह में ख़र्च करने के आदी हैं। तमाम हालात व वाक़िआत में रात में और दिन में, छुपे और खुले हर तरह अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करते रहते हैं। इसके तहत में यह भी बतला दिया कि सदक़ा व ख़ैरात के लिये कोई वक़्त मुक़र्रर नहीं, न रात और दिन की कोई तख़्सीस है, इस तरह पोशीदा और ऐलान के साथ दोनों तरह से अल्लाह की राह में ख़र्च करना सवाब है बशर्तेकि इख़्लास (नेक नीयत) के साथ ख़र्च किया जाये, नाम और दिखाना मक़सूद न हो। छुपे तौर पर ख़र्च करने की फ़ज़ीलत भी उसी हद तक है कि सार्वजनिक तौर पर ख़र्च करने के लिये कोई ज़रूरत तक़ाज़ा न करती हो, और जहाँ ऐसी ज़रूरत हो वहाँ खुले तौर पर (सब के सामने) ख़र्च करना ही अफ़ज़ल है।

तफ़सीर 'रूहुल-मआनी' में इब्ने असाकिर के हवाले से नक़ल किया है कि हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अन्हु ने चालीस हज़ार दीनार अल्लाह की राह में इस तरह ख़र्च किये कि दस हज़ार दिन में, दस हज़ार रात में, दस हज़ार छुपे तौर पर, दस हज़ार ऐलानिया। कुछ मुफ़स्सिरीन ने इस आयत का शाने नुज़ूल (उतरने का मौक़ा और सबब) हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अन्हु के इसी वाक़िए को लिखा है। इसके शाने नुज़ूल के बारे में और भी कई क़ौल हैं।

الَّذِيْنَ يَأْكُلُوْنَ الرِّبٰوا لَا يَقُوْمُوْنَ اِلَّا كَمَا يَقُوْمُ الَّذِيْ يَتَخَبَّطُهُ
الشَّيْطٰنُ مِنَ الْمَسِّ ۭ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْٓا اِنَّمَا الْبَيْعُ مِثْلُ الرِّبٰوا ۘ وَاَحَلَّ اللّٰهُ الْبَيْعَ وَحَرَّمَ الرِّبٰوا ۭ
فَمَنْ جَاۗءَهٗ مَوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّهٖ فَانْتَهٰى فَلَهٗ مَا سَلَفَ ۭ وَاَمْرُهٗٓ اِلَى اللّٰهِ ۭ وَمَنْ عَادَ فَاُولٰۗىِٕكَ
اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝ يَمْحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا وَيُرْبِي الصَّدَقٰتِ ۭ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ كُلَّ كَفَّارٍ اَثِيْمٍ ۝
اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ وَاَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ لَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَذَرُوْا مَا بَقِيَ مِنَ الرِّبٰٓوا اِنْ كُنْتُمْ
مُّؤْمِنِيْنَ ۝ فَاِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا فَاْذَنُوْا بِحَرْبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ۚ وَاِنْ تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوْسُ اَمْوَالِكُمْ ۚ
لَا تَظْلِمُوْنَ وَلَا تُظْلَمُوْنَ ۝ وَاِنْ كَانَ ذُوْ عُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ اِلٰى مَيْسَرَةٍ ۭ وَاَنْ تَصَدَّقُوْا خَيْرٌ
لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝ وَاتَّقُوْا يَوْمًا تُرْجَعُوْنَ فِيْهِ اِلَى اللّٰهِ ۣ ثُمَّ تُوَفّٰى كُلُّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ
وَهُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ ۝

अल्लज़ी-न यअ्कुलूनर्रिबा ला यक़ूमू-न इल्ला कमा यक़ूमुल्लज़ी य-तख़ब्बतुहुश्-शैतानु मिनल्मस्सि, ज़ालि-क बि-अन्नहुम् क़ालू इन्नमल्-बैअु मिस्लुर्रिबा। व अहल्लल्लाहुल्-बै-अ् व हर्रमर्रिबा, फ़-मन् जा-अहू मौअि-ज़तुम् मिर्रब्बिही फ़न्तहा फ़-लहू मा स-ल-फ़, व अम्रुहू इलल्लाहि, व मन् आ-द फ़-उलाइ-क अस्हाबुन्नारि हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (275) यम्हक़ुल्लाहुर्रिबा व युर्बिस्-सदक़ाति, वल्लाहु ला युहिब्बु कुल्-ल कफ़्फ़ारिन् असीम (276)

जो लोग खाते हैं सूद, नहीं उठेंगे क़ियामत को मगर जिस तरह उठता है वह शख़्स कि जिसके हवास (होश) खो दिये हों जिन्न ने लिपट कर। यह हालत उनकी इस वास्ते होगी कि उन्होंने कहा कि सौदागरी (व्यापार) भी तो ऐसी ही है जैसे सूद लेना, हालाँकि अल्लाह ने हलाल किया है सौदागरी (तिजारत) को और हराम किया है सूद को। फिर जिसको पहुँची नसीहत अपने रब की तरफ़ से और वह बाज़ आ गया तो उसके वास्ते है जो पहले हो चुका, और मामला उसका अल्लाह के हवाले है, और जो कोई फिर लेवे सूद तो वही लोग हैं दोज़ख़ वाले, वे उसमें हमेशा रहेंगे। (275) मिटाता है अल्लाह सूद और बढ़ाता है ख़ैरात को,

इन्नल्लज़ी-न आमनू व अमिलुस्-सालिहाति व अक़ामुस्सला-त व आतवुज़्ज़का-त लहुम् अज्रुहुम् अिन्-द रब्बिहिम् व ला ख़ौफ़ुन् अ़लैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून (277) या अय्युहल्लज़ी-न आमनुत्तक़ुल्ला-ह व ज़रू मा बक़ि-य मिनर्रिबा इन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन (278) फ़-इल्लम् तफ़्अ़लू फ़अ्-ज़नू बि-हर्बिम् मिनल्लाहि व रसूलिही व इन् तुब्तुम् फ़-लकुम् रुऊसु अम्वालिकुम् ला तज़्लिमू-न व ला तुज़्लमून (279) व इन् का-न ज़ू अुस्रतिन् फ़-नज़ि-रतुन् इला मैस-रतिन्, व अन् तसद्दक़ू ख़ैरुल्लकुम् इन् कुन्तुम् तअ्लमून (280) वत्तक़ू यौमन् तुर्जअ़ू-न फ़ीहि इलल्लाहि, सुम्-म तुवफ़्फ़ा कुल्लु नफ़्सिम् मा क-सबत् व हुम् ला युज़्लमून (281) ✿

और अल्लाह ख़ुश नहीं किसी नाशुक्रे गुनाहगार से। (276) जो लोग ईमान लाये और अमल नेक किये और क़ायम रखा नमाज़ को और देते रहे ज़कात, उनके लिये है सवाब उनका उनके रब के पास, और न उनको ख़ौफ़ है और न वे ग़मगीन होंगे। (277) ऐ ईमान वालो! डरो अल्लाह से और छोड़ दो जो कुछ बाक़ी रह गया है सूद, अगर तुमको यक़ीन है अल्लाह के फ़रमाने का। (278) पस अगर नहीं छोड़ते तो तैयार हो जाओ लड़ने को अल्लाह से और उसके रसूल से, और अगर तौबा करते हो तो तुम्हारे वास्ते है असल माल तुम्हारा, न तुम किसी पर ज़ुल्म करो और न तुम पर कोई। (279) और अगर है तंगदस्त (परेशानी में) तो मोहलत देनी चाहिए कशाईश (हालात सुधरने और बेहतर) होने तक, और बख़्श दो तो बहुत बेहतर है तुम्हारे लिये अगर तुमको समझ है। (280) और डरते रहो उस दिन से जिस दिन लौटाये जाओगे अल्लाह की तरफ़, फिर पूरा दिया जायेगा हर शख़्स को जो कुछ उसने कमाया और उन पर ज़ुल्म न होगा। (281) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

जो लोग सूद खाते हैं (यानी लेते हैं) नहीं खड़े होंगे (क़ियामत में क़ब्रों से) मगर जिस तरह खड़ा होता है ऐसा शख़्स जिसको ख़ब्ती बना दिया हो शैतान ने लिपट कर (यानी हैरान व मदहोश)। यह सज़ा इसलिए होगी कि उन (सूद खाने वाले) लोगों ने (सूद के हलाल होने पर दलील देने के तौर पर) कहा था कि बै "यानी तिजारत" भी तो सूद की तरह है (क्योंकि उसमें भी उद्देश्य नफ़ा हासिल

करना होता है और बै यक़ीनन हलाल है, फिर सूद भी जो कि उसके जैसा है हलाल होना चाहिये) हालाँकि (दोनों में खुला फ़र्क़ है कि) अल्लाह तआ़ला ने (जो कि मालिक हैं अहकाम के) बै को हलाल फ़रमाया है और सूद को हराम क़रार दिया है (इससे ज़्यादा और क्या फ़र्क़ होगा)।

फिर जिस शख़्स को उसके परवर्दिगार की तरफ़ से (इस बारे में) नसीहत पहुँची और वह (इस सूद के काम और इस कुफ़्र के क़ौल से यानी हलाल कहने से) बाज़ आ गया (यानी हराम समझने लगा और लेना भी छोड़ दिया) तो जो कुछ (इस हुक्म के आने से) पहले (लेना) हो चुका है वह उसी का रहा (यानी शरीअ़त के ज़ाहिरी हुक्म से उसकी यह तौबा क़ुबूल हो गई और लिया हुआ माल उसी की मिल्क है) और (बातिन का) मामला उसका (कि वह दिल से बाज़ आया है या दिखावे के तौर पर तौबा कर ली है, यह) ख़ुदा के हवाले रहा। (अगर दिल से तौबा की होगी तो अल्लाह के यहाँ लाभदायक होगी वरना बेकार होगी, तुमको बदगुमानी का कोई हक़ नहीं)। और जो शख़्स (ज़िक्र हुई नसीहत सुनकर भी इसी क़ौल और इसी फ़ेल की तरफ़) फिर लौट जाए 'यानी दोबारा सूदी मामले में मशग़ूल हो जाए' तो (इसकी वजह से कि उनका यह काम ख़ुद बड़ा ज़बरदस्त गुनाह है) ये लोग दोज़ख़ में जाएँगे (और इस वजह से कि उनका यह क़ौल कुफ़्र है इसलिये) वे उस (दोज़ख़) में हमेशा रहेंगे।

(और अगरचे सूद लेने से फ़िलहाल माल बढ़ता नज़र आता है लेकिन परिणाम स्वरूप) अल्लाह तआ़ला सूद को मिटाते हैं (कभी तो दुनिया ही में सब बरबाद हो जाता है वरना आख़िरत में तो यक़ीनी बरबाद है, क्योंकि वहाँ इस पर अ़ज़ाब होगा) और (इसके विपरीत सदक़ा देने में अगरचे फ़िलहाल माल घटता मालूम होता है लेकिन अन्जाम के एतिबार से अल्लाह तआ़ला) सदक़ों को बढ़ाते हैं (कभी तो दुनिया में भी वरना आख़िरत में तो यक़ीनन बढ़ता है, क्योंकि वहाँ इस पर बहुत सारा सवाब मिलेगा जैसा कि ऊपर आयतों में बयान हुआ)। और अल्लाह पसन्द नहीं करते किसी कुफ़्र करने वाले को (बल्कि उससे नफ़रत रखते हैं जो कि ज़िक्र किये गये क़ौल के जैसे कुफ़्रिया कलिमात मुँह से बके, और इसी तरह पसन्द नहीं करते) किसी गुनाह के काम करने वाले को (जो कि उक्त फ़ेल यानी सूद के जैसे बड़े गुनाहों का करने वाला हो)।

बेशक जो लोग ईमान लाए और उन्होंने नेक काम किए और (ख़ास तौर पर) नमाज़ की पाबन्दी की और ज़कात दी, उनके लिए उनका सवाब होगा उनके परवर्दिगार के पास, और (आख़िरत में) उन पर कोई ख़तरा (वाक़े होने वाला) नहीं होगा, और न वे (किसी मक़सूद के हासिल न होने से) ग़मगीन होंगे।

ऐ ईमान वालो! अल्लाह तआ़ला से डरो और जो कुछ सूद का बक़ाया है उसको छोड़ दो अगर तुम ईमान वाले हो (क्योंकि ईमान का तक़ाज़ा यही है कि अल्लाह की फ़रमाँबरदारी की जाये)। फिर अगर तुम (इस पर अ़मल) न करोगे तो ऐलान सुन लो जंग का अल्लाह की तरफ़ से और उसके रसूल की तरफ़ से (यानी तुम पर जिहाद होगा)। और अगर तुम तौबा कर लोगे तो तुमको तुम्हारे असल माल मिल जाएँगे। (इस क़ानून के बाद) न तुम किसी पर ज़ुल्म करने पाओगे (कि तुम असल माल से ज़्यादा लेने लगो) और न तुम पर कोई ज़ुल्म करने पायेगा (कि तुम्हारा असल माल भी न दिलाया जाये)। और अगर (क़र्ज़दार) तंगदस्त (ग़रीब और माली तंगी में) हो (और इसलिये निर्धारित

वक़्त पर न दे सके) तो (उसको) मोहलत देने का हुक्म है ख़ुशहाली तक (यानी जब उसके पास अदा करने की गुंजाईश हो), और यह (बात) कि (बिल्कुल) माफ़ ही कर दो और ज़्यादा बेहतर है तुम्हारे लिए, अगर तुमको (इसके सवाब की) ख़बर हो।

और (मुसलमानो!) उस दिन से डरो जिसमें तुम (सब) अल्लाह तआ़ला की पेशी में लाये जाओगे। फिर हर शख़्स को उसका किया हुआ (यानी उसका बदला) पूरा-पूरा मिलेगा, और उन पर किसी क़िस्म का ज़ुल्म न होगा (तो तुम पेशी के लिये अपनी कारगुज़ारी दुरुस्त रखो, और किसी क़िस्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी मत करो)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों में सूद की हुर्मत (हराम होने) और उसके अहकाम का बयान शुरू हुआ है। यह मसला कई हैसियतों से बहुत अहम है, एक तरफ़ सूद पर क़ुरआन व सुन्नत की सख़्त वईदें (सज़ा की धमकियाँ) और दूसरी तरफ़ दुनिया की अर्थ व्यवस्था में इसका अनिवार्य जुज़ (हिस्सा) बन जाना और इससे निजात की मुश्किलों का मसला बहुत तफ़सील चाहता है, और कई हैसियतों से इस पर ग़ौर करना है।

अव्वल इस बारे में क़ुरआन की आयतों की सही तफ़सीर और सही हदीसों के इरशादात में ग़ौर करके यह मुतैयन करना कि क़ुरआन व सुन्नत की इस्तिलाह में 'रिबा' (सूद) क्या चीज़ है? और किन-किन मामलों को शामिल है? और इसकी हुर्मत (हराम होना) किस हिक्मत व मस्लेहत पर आधारित है, इसमें किस क़िस्म के नुक़सानात हैं?

दूसरी हैसियत इसकी अक़्ली और आर्थिक है कि क्या वास्तव में सूद व रिबा ऐसी चीज़ है जो दुनिया की आर्थिक तरक़्क़ी की गारंटर हो सके और जिसको नज़र-अन्दाज़ करने का लाज़िमी नतीजा तिजारत और आ़म अर्थ व्यवस्था की तबाही हो, या सारा चक्कर सिर्फ़ ख़ुदा तआ़ला और आख़िरत से ग़ाफ़िल दिमाग़ों की पैदावार है, वरना बग़ैर इसके भी तमाम आर्थिक समस्यायें हल हो सकती हैं, और न सिर्फ़ मुश्किलों का हल बल्कि दुनिया में आर्थिक अमन व इत्मीनान सूद के छोड़ने पर मौक़ूफ़ है, और यह कि दुनिया की आर्थिक परेशानियों और मुसीबतों का सबसे बड़ा सबब सूद व रिबा है।

यह दूसरी बहस एक आर्थिक मसला है, जिसके तहत में बहुत सी बुनियादी और उनसे पैदा होने वाली लम्बी बहसें हैं जिनका ताल्लुक़ क़ुरआनी तफ़सीर से नहीं, इसलिये इस जगह पहली ही बहस पर इक्तिफ़ा (बस) किया जाता है, वह भी अच्छी-ख़ासी लम्बी है।

ये छह आयतें हैं जिनमें सूद की हुर्मत (हराम होने) और अहकाम का बयान है। इनमें से पहली आयत के पहले जुमले में सूदख़ोरों के बुरे अन्जाम और मेहशर में उनकी रुस्वाई और गुमराही का ज़िक्र है। इरशाद है कि जो लोग सूद खाते हैं वे नहीं खड़े होते मगर जिस तरह खड़ा होता है वह आदमी जिसको किसी शैतान जिन्न ने लिपट कर ख़बती (अ़क़्ल से मदहोश) बना दिया हो। हदीस में है कि खड़े होने से मुराद मेहशर में क़ब्र से उठना है कि सूदख़ोर जब क़ब्र से उठेगा तो उस पागल व मजनूँ की तरह उठेगा जिसको किसी शैतान जिन्न ने ख़बती बना दिया हो।

इस जुमले से एक बात तो यह मालूम हुई कि जिन्नात व शयातीन के असर से इनसान बेहोश

या मजनूँ हो सकता है, और तजुर्बेकारों के निरंतर अनुभव इस पर शाहिद (गवाह और सुबूत) हैं, और हाफ़िज़ इब्ने क़य्यिम जोज़ी रहमतुल्लाहि अलैहि ने लिखा है कि डॉक्टर और फ़ल्सफ़ी हज़रात ने भी इसको तस्लीम किया है कि सरअ़ (सरदर्द), बेहोशी या जुनून विभिन्न और अनेक कारणों से हुआ करता है, उनमें कई बार जिन्नात व शयातीन का असर भी इसका सबब होता है। जिन लोगों ने इसका इनकार किया है उनके पास सिवाय ज़ाहिरी तौर पर एक मुश्किल काम होने के और कोई दलील नहीं।

दूसरी बात यह ग़ौर-तलब (सोचने के लायक़) है कि क़ुरआन ने यह नहीं फ़रमाया कि सूदख़ोर मेहशर में पागल या मजनूँ होकर उठेंगे, बल्कि दीवाना-पन या बेहोशी की एक ख़ास सूरत का ज़िक्र किया है, जैसे किसी को शैतान ने लिपट कर ख़बती बना दिया हो। इसमें शायद यह इशारा है कि बेहोश व मजनूँ तो कई बार चुपचाप पड़ा भी रहता है, उनका यह हाल न होगा बल्कि शैतान के ख़बती बनाये हुओं की तरह बकवास और दूसरी पागलपन की हरकतों के कारण पहचाने जायेंगे।

और शायद इस तरफ़ भी इशारा हो कि बीमारी से बेहोश या मजनूँ हो जाने के बाद चूँकि एहसास बिल्कुल बातिल हो जाता है, उसको तकलीफ़ या अ़ज़ाब का भी एहसास नहीं रहता, उनका यह हाल न होगा बल्कि आसेब के चपेट में आये हुए की तरह तकलीफ़ व अ़ज़ाब को पूरी तरह महसूस करेगा।

अब यहाँ यह देखना है कि जुर्म व सज़ा में कोई मुनासबत (जोड़) होनी चाहिये। अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से जो सज़ा किसी शख़्स या जमाअ़त के किसी जुर्म के मुक़ाबले में दी जाती है वह यक़ीनन उस जुर्म के मुनासिब होती है, इसलिये सूदख़ोरों को ख़बती बनाकर मेहशर में उठाना शायद इसका इज़हार है कि सूदख़ोर रुपये-पैसे के लालच में इस क़द्र मदहोश होता है कि उसको न किसी ग़रीब पर रहम आता है न किसी की शर्म रुकावट होती है। वह चूँकि अपनी ज़िन्दगी में दर हक़ीक़त बेहोश था इसलिये मेहशर में भी उसी हालत में उठाया गया। या यह सज़ा इसलिये दी गयी कि दुनिया में उसने अ़क़्ली रंग में अपनी बे-अ़क़्ली को ज़ाहिर किया कि बै (तिजारत) को सूद के जैसा क़रार दिया इसलिये उसको बे-अ़क़्ल करके उठा दिया गया।

यहाँ यह बात भी क़ाबिले ज़िक्र है कि आयत में सूद खाने का ज़िक्र है और मुराद मुतलक़ तौर पर सूद लेना और उसका इस्तेमाल करना है, चाहे खाने में इस्तेमाल करे या लिबास या मकान और उसके फ़र्नीचर में, लेकिन इसको "खाने" के लफ़्ज़ से इसलिये ताबीर किया कि जो चीज़ खाई जाये उसकी वापसी का कोई इमकान नहीं रहता, इसके विपरीत दूसरी ज़रूरतों के इस्तेमाल में जो चीज़ आये उसको वापस लिया-दिया जा सकता है, इसलिये मुकम्मल क़ब्ज़े और तसर्रुफ़ को खा जाने के लफ़्ज़ से ताबीर किया जाता है, और न सिर्फ़ अ़रबी ज़बान में बल्कि उर्दू, फ़ारसी वग़ैरह अक्सर ज़बानों (भाषाओं) का यही मुहावरा है।

इसके बाद दूसरे जुमले में सूदख़ोरों की इस सज़ा की वजह यह बयान फ़रमाई है कि उन लोगों ने दो जुर्म किये, एक तो सूद के ज़रिये हराम माल खाया, दूसरे उसको हलाल समझा और हराम कहने वालों के जवाब में यह कहा कि ख़रीद-फ़रोख़्त (यानी कारोबार) भी तो रिबा (सूद और मुनाफ़े) ही की तरह है। जिस तरह सूद के ज़रिये नफ़ा हासिल किया जाता है इसी तरह ख़रीद-बेच के ज़रिये नफ़ा

मक्सूद है। अगर सूद हराम है तो ख़रीद-बेच भी हराम होनी चाहिये, हालाँकि इसके हराम होने का कोई क़ायल नहीं। इस जगह बज़ाहिर इस मक़ाम का तक़ाज़ा यह था कि लोग यूँ कहते कि सूद भी तो बै की तरह है, जब बै हलाल है तो सूद भी हलाल होना चाहिये। मगर उन्होंने ने बयान का अन्दाज़ बदलकर हराम कहने वालों पर एक क़िस्म का मज़ाक़ किया कि तुम सूद को हराम कहते हो तो बै को भी हराम कहो।

तीसरे जुमले में उन लोगों के इस क़ौल का जवाब हक़ तआ़ला ने यह दिया कि ये लोग बै को सूद की तरह और उसके बराबर क़रार देते हैं, हालाँकि अल्लाह के हुक्म की वजह से इन दोनों में ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है, कि अल्लाह तआ़ला ने एक को हलाल क़रार दिया और दूसरे को हराम, फिर दोनों बराबर कैसे हो सकते हैं।

इस जवाब में यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि उन लोगों का एतिराज़ तो अ़क़्ली तौर पर था कि जब दोनों मामलों का मक़सद नफ़ा कमाना है तो दोनों का हुक्म एक ही होना चाहिये, अल्लाह तबारक व तआ़ला ने उनके अ़क़्ली शुब्हे का जवाब अ़क़्ली तौर पर फ़र्क़ बयान करके नहीं दिया बल्कि हाकिमाना अन्दाज़ में यह जवाब दिया कि हर चीज़ का मालिक अल्लाह जल्ल शानुहू है, वही हर चीज़ के नफ़े व नुक़सान और भले-बुरे को पूरी तरह जानता है, जब उसने एक को हलाल और दूसरे को हराम क़रार दे दिया तो समझ लो कि जिस चीज़ को हराम किया है उसमें ज़रूर कोई नुक़सान और कोई ख़बासत है, चाहे आ़म इनसान उसको महसूस करे या न करे। क्योंकि कुल आ़लम के निज़ाम की पूरी हक़ीक़त और उसके नफ़े व नुक़सान को सिर्फ़ वही अ़लीम व ख़बीर जान सकता है जिसके इल्म से दुनिया जहान का कोई ज़र्रा छुपा हुआ नहीं है। आ़लम (दुनिया) के अफ़राद या जमाअ़तें अपने-अपने फ़ायदों व नुक़सानों को पहचान सकते हैं, पूरे आ़लम के नफ़े व नुक़सान को नहीं जान सकते। कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं कि वे किसी शख़्स या जमाअ़त के हक़ में मुफ़ीद (लाभदायक) नज़र आती हैं मगर पूरी क़ौम या पूरे मुल्क के लिये उसमें नुक़सान होता है।

इसके बाद तीसरे जुमले में यह इरशाद है कि सूद हराम होने से पहले जिस शख़्स ने कोई रक़म जमा कर ली थी लेकिन जब सूद को हराम क़रार दे दिया गया तो अगर आगे के लिये उसने तौबा कर ली और इससे बाज़ आ गया तो इससे पहले जमा की हुई रक़म शरीअ़त के ज़ाहिरी हुक्म से उसी की हो गई और बातिनी मामला उसका कि वह दिल से बाज़ आया या दिखावे के लिये तौबा कर ली और दिल से नहीं बदला, उसका यह मामला ख़ुदा के हवाले रहा।

अगर दिल से तौबा की है तो अल्लाह के यहाँ फ़ायदे मन्द होगी वरना बेकार होगी। आ़म लोगों को बदगुमानी करने का हक़ नहीं है। और जो शख़्स नसीहत सुनकर भी उसी क़ौल व फ़ेल की तरफ़ फिर लौट जाये तो चूँकि यह फ़ेल यानी सूदख़ोरी गुनाह है, ये लोग दोज़ख़ में जायेंगे, और चूँकि उनका यह क़ौल कि सूद तिजारत की तरह हलाल है, कुफ़्र है, इसलिये वे दोज़ख़ में हमेशा रहेंगे।

दूसरी आयत में जो यह इरशाद है कि अल्लाह तआ़ला सूद को मिटाते हैं और सदक़ों को बढ़ाते हैं। यहाँ सूद के साथ सदक़ों का ज़िक्र एक ख़ास मुनासबत से लाया गया है, कि सूद और सदक़ा दोनों की हक़ीक़त में भी तज़ाद (टकराव) है और उनके नतीजे भी एक दूसरे के विपरीत हैं और उमूमन इन दोनों कामों के करने वालों की ग़र्ज़ व नीयत भी अलग-अलग होती है।

हक़ीक़त का तज़ाद (टकराव और अलग होना) तो यह है कि सदक़े में तो बग़ैर किसी मुआ़वज़े के अपना माल दूसरों को दिया जाता है और सूद में बग़ैर किसी मुआ़वज़े के दूसरे का माल लिया जाता है। इन दोनों कामों के करने वालों की नीयत और ग़र्ज़ इसलिये एक दूसरे से अलग और ख़िलाफ़ है कि सदक़ा करने वाला महज़ अल्लाह तआ़ला की रज़ा हासिल करने और आख़िरत के सवाब के लिये अपने माल को कम या ख़त्म कर देने का फ़ैसला करता है और सूद लेने वाला अपने मौजूदा माल पर नाजायज़ ज़्यादती का इच्छुक है। और नतीजों का अलग-अलग और एक दूसरे से विपरीत होना क़ुरआने करीम की इस आयत से वाज़ेह हुआ कि अल्लाह तआ़ला सूद से हासिल होने वाले माल को या उसकी बरकत को मिटा देते हैं, और सदक़ा करने वाले के माल या उसकी बरकत को बढ़ाते हैं। जिसका हासिल यह होता है कि माल की हवस करने वाले का मक़सद पूरा नहीं होता, और अल्लाह तआ़ला की राह में ख़र्च करने वाला जो अपने माल की कमी पर राज़ी था उसके माल में बरकत होकर उसका माल या उसके फल व फ़ायदे बढ़ जाते हैं।

यहाँ यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि आयत में सूद को मिटाने और सदक़ों को बढ़ाने का क्या मतलब है? कुछ मुफ़स्सिरीन ने फ़रमाया कि यह मिटाना और बढ़ाना आख़िरत से संबन्धित है कि सूद ख़ोर को उसका माल आख़िरत में कुछ काम न आयेगा बल्कि उसके लिये वबाल बन जायेगा, और सदक़ा ख़ैरात करने वालों का माल आख़िरत में उनके लिये हमेशा की नेमतों और राहतों का ज़रिया बनेगा, और यह बिल्कुल ज़ाहिर है जिसमें शक व शुब्हे की गुन्जाईश नहीं। और ज़्यादातर मुफ़स्सिरीन ने फ़रमाया है कि सूद का मिटाना और सदक़ों का बढ़ाना आख़िरत के लिये तो है ही मगर इसके कुछ आसार दुनिया में भी देखने में आ जाते हैं।

सूद जिस माल में शामिल हो जाता है कई बार तो वह माल ख़ुद हलाक व बरबाद हो जाता है और पिछले माल को भी साथ ले जाता है। जैसे कि रिबा (सूद) और सट्टे के बाज़ारों में इसका हमेशा तजुर्बा होता रहता है कि बड़े-बड़े करोड़पति और सरमायेदार देखते देखते दीवालिया और कंगाल बन जाते हैं। बिना सूद की तिजारतों में भी नफ़े व नुक़सान के एहतिमाल रहते हैं और बहुत से ताजिरों को नुक़सान भी किसी तिजारत में हो जाता है, लेकिन ऐसा नुक़सान कि कल करोड़पति था और आज एक-एक पैसे की भीख का मोहताज है यह सिर्फ़ सूद और सट्टे के बाज़ारों में ही होता है। और तजुर्बेकारों के बेशुमार बयानात इस बारे में मशहूर व मारूफ़ हैं कि सूद का माल फ़ौरी तौर पर कितना ही बढ़ जाये लेकिन वह आ़म तौर पर पायेदार और बाक़ी नहीं रहता, जिसका फ़ायदा औलाद और नस्लों में चले, अक्सर कोई न कोई आफ़त पेश आकर उसको बरबाद कर देती है। हज़रत मअ़मर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि हमने बुज़ुर्गों से सुना है कि सूदख़ोर पर चालीस साल गुज़रने नहीं पाते कि उसके माल पर महाक़ (यानी घाटा) आ जाता है।

और अगर ज़ाहिरी तौर पर माल ज़ाया व बरबाद भी न हो तो उसके फ़ायदे व बरकात और लाभों से मेहरूमी तो यक़ीनी और लाज़िमी है। क्योंकि यह बात कुछ छुपी नहीं कि सोना चाँदी ख़ुद तो न मक़सूद है न कारामद, न उससे किसी की भूख मिट सकती है न प्यास, न सर्दी न गर्मी से बचने के लिये ओढ़ा बिछाया जा सकता है, न वह कपड़ों और बरतनों का काम दे सकता है, फिर उसको हासिल करने और महफ़ूज़ रखने में हज़ारों मशक़्क़तें उठाने का मंशा एक अ़क़्लमन्द इनसान के

नज़दीक इसके सिवा नहीं हो सकता कि सोना चाँदी ज़रिया हैं ऐसी चीज़ों के हासिल करने का कि जिनसे इनसान की ज़िन्दगी ख़ुशगवार बन सके, और वह राहत व इज़्ज़त की ज़िन्दगी गुज़ार सके, और इनसान की फ़ितरी इच्छा होती है कि यह राहत व इज़्ज़त जिस तरह उसे हासिल हुई उसकी औलाद और मुताल्लिक़ीन (संबन्धियों) को भी हासिल हो।

यही वे चीज़ें हैं जो माल व दौलत के फ़ायदे व लाभ कहला सकती हैं, इसके नतीजे में यह कहना बिल्कुल सही होगा कि जिस शख़्स को यह लाभ और फ़ायदे हासिल हुए उसका माल एक हैसियत से बढ़ गया अगरचे देखने में कम नज़र आये, और जिसको ये फ़ायदे व लाभ कम हासिल हुए उसका माल एक हैसियत से घट गया अगरचे देखने में ज़्यादा नज़र आये।

इस बात को समझ लेने के बाद सूद का कारोबार और सदक़ा व ख़ैरात के आमाल का जायज़ा लीजिये तो यह बात देखने और अनुभव में आ जायेगी कि सूदख़ोर का माल अगरचे बढ़ता हुआ नज़र आता है मगर वह बढ़ना ऐसा है कि जैसे किसी इनसान का बदन वरम वग़ैरह से बढ़ जाये, वरम की ज़्यादती भी तो बदन ही की ज़्यादती है मगर कोई समझदार इनसान उस ज़्यादती को पसन्द नहीं कर सकता, क्योंकि वह जानता है कि यह ज़्यादती मौत का पैग़ाम है। इसी तरह सूदख़ोर का माल कितना ही बढ़ जाये मगर माल के फ़ायदे व लाभ यानी राहत व इज़्ज़त से हमेशा मेहरूम रहता है।

यहाँ शायद किसी को यह शुब्हा हो कि आज तो सूदख़ोरों को बड़ी से बड़ी राहत व इज़्ज़त हासिल है। वे कोठियों, बंगलों के मालिक हैं, ऐश व आराम के सारे सामान मुहैया हैं, खाने-पीने, पहनने और रहने-सहने की ज़रूरतों बल्कि फ़ालतू की और बेकार चीज़ें भी सब उनको हासिल हैं, नौकर-चाकर और शान व शौकत के तमाम सामान मौजूद हैं। लेकिन ग़ौर किया जाये तो हर शख़्स समझ लेगा कि राहत के सामानों और राहत में बड़ा फ़र्क़ है। राहत का सामान तो फ़ैक्ट्रियों और कारख़ानों में बनता और बाज़ारों में बिकता है, वह सोने चाँदी के बदले हासिल हो सकता है, लेकिन जिसका नाम राहत है न वह किसी फ़ैक्ट्री में बनती है न किसी मंडी में बिकती है, वह एक ऐसी रहमत है जो डायरेक्ट हक़ तआ़ला की तरफ़ से दी जाती है। वह कई बार हज़ारों सामानों के बावजूद हासिल नहीं हो सकती। एक नींद की राहत को देख लीजिये कि उसके हासिल करने के लिये यह तो कर सकते हैं कि सोने के लिये मकान को बेहतर से बेहतर बनायें, हवा और रोशनी का पूरा सन्तुलन हो, मकान का फ़र्नीचर देखने के लायक़ दिल को ख़ुश करने वाला हो। चारपाई, गद्दे और तकिये मर्ज़ी के मुताबिक़ हों, लेकिन क्या नींद का आ जाना इन सामानों के मुहैया होने पर लाज़िमी है? अगर आपको कभी इत्तिफ़ाक़ न हुआ हो तो हज़ारों वे इनसान इसका जवाब नफ़ी में देंगे जिनको किसी परेशानी के सबब नींद नहीं आती। अब अमेरिका जैसे मालदार सभ्य मुल्क के बारे में कुछ रिपोर्टों से मालूम हुआ कि वहाँ पछत्तर फ़ीसद आदमी नींद की गोलियों के बग़ैर सो ही नहीं सकते, और कई बार नींद लाने वाली दवायें भी जवाब दे देती हैं। नींद के सामान तो आप बाज़ार से ख़रीद लाये मगर नींद आप किसी बाज़ार से किसी क़ीमत पर नहीं ला सकते। इसी तरह दूसरी राहतों और लज़्ज़तों का हाल है कि उनके सामान तो रुपये-पैसे के ज़रिये हासिल हो सकते हैं मगर राहत व लज़्ज़त का हासिल होना ज़रूरी नहीं।

यह बात समझ लेने के बाद सूदख़ोरों के हालात का जायज़ा लीजिये तो उनके पास आपको सब कुछ मिलेगा मगर राहत का नाम न पायेंगे। वे अपने करोड़ डेढ़ करोड़ और डेढ़ करोड़ दो करोड़ बनाने में ऐसे मस्त नज़र आयेंगे कि न उनको अपने खाने-पहनने का होश है न अपने बीवी-बच्चों का। कई-कई मिल चल रहे हैं, दूसरे मुल्कों से जहाज़ आ रहे हैं, उनकी उधेड़बुन ही में सुबह से शाम और शाम से सुबह हो जाती है। अफ़सोस है कि इन दीवानों ने राहत के सामान ही का नाम राहत समझ लिया है, और वास्तव में राहत से कोसों दूर हैं। यह हाल तो उनकी राहत का है।

अब इज़्ज़त को देख लीजिये- ये लोग चूँकि सख़्त-दिल और बेरहम हो जाते हैं, इनका पेशा ही यह होता है कि ग़रीबों और ग़रीबी या नादार लोगों की नादारी से फ़ायदा उठायें, उनका ख़ून चूसकर अपने बदन को पालें, इसलिये मुम्किन नहीं कि लोगों के दिलों में उनकी कोई इज़्ज़त व सम्मान हो। अपने मुल्क के बनियों और मुल्के शाम के यहूदियों की तारीख़ पढ़ लीजिये, उनके हालात को देख लीजिये, उनकी तिजोरियाँ कितने ही सोने चाँदी और जवाहिरात से भरी हुई हों लेकिन दुनिया के किसी कोने में इनसानों के किसी तब्क़े में उनकी कोई इज़्ज़त नहीं, बल्कि उनके इस अ़मल का लाज़िमी नतीजा यह होता है कि ग़रीब मुफ़लिस लोगों के दिलों में उनकी तरफ़ से बुग़्ज़ व नफ़रत पैदा होती है। और आजकल तो दुनिया की सारी जंगें इसी बुग़्ज़ व नफ़रत का प्रतीक हैं। मेहनत व सरमाये की जंग ने ही दुनिया में इश्तिराकियत और इश्तिमालियत के नज़रिये पैदा किये, कम्यूनिज़्म की विनाशकारी गतिविधियाँ इसी बुग़्ज़ व नफ़रत का नतीजा हैं, जिनसे पूरी दुनिया क़त्ल व क़िताल और जंग व झगड़े का जहन्नम बनकर रह गई है।

यह हाल तो उनकी राहत व इज़्ज़त का है और तजुर्बा गवाह है कि सूद का माल सूदख़ोर की आने वाली नस्लों की ज़िन्दगी को भी कभी ख़ुशगवार नहीं बनाता, या ज़ाया हो जाता है या उसकी नहूसत से वे भी माल व दौलत के हक़ीक़ी फ़ायदों से मेहरूम व ज़लील रहते हैं। लोग यूरोप के सूदख़ोरों की मिसाल से शायद फ़रेब में आयें कि वे लोग तो सब के सब ख़ुशहाल हैं और उनकी नस्लें भी फूलती फलती हैं, लेकिन अव्वल तो उनकी ख़ुशहाली का संक्षिप्त ख़ाका अ़र्ज़ कर चुका हूँ। दूसरे उनकी मिसाल तो ऐसी है कि कोई आदमख़ोर दूसरे इनसानों का ख़ून चूसकर अपना बदन पालता हो और ऐसे कुछ इनसानों का जत्था एक मौहल्ले में आबाद हो जाये, आप किसी को उस मौहल्ले में ले जाकर दिखायें कि ये सब के सब बड़े तन्दुरुस्त और फले-फूले हुए हैं। लेकिन एक अ़क़्लमन्द आदमी को जो इनसानियत की बेहतरी का इच्छुक है सिर्फ़ उस मौहल्ले को नहीं देखना बल्कि उसके मुक़ाबिल उन बस्तियों को भी देखना है जिनका ख़ून चूसकर उनको अधमरा कर दिया गया है, उस मौहल्ले और उन बस्तियों के मजमूए पर नज़र डालने वाला कभी उस मौहल्ले के फलने-फूलने पर ख़ुश नहीं हो सकता, और मजमूई हैसियत से उनके अ़मल को इनसानी तरक़्क़ी का ज़रिया नहीं बता सकता, बल्कि उसको इनसान की हलाकत व बरबादी ही कहने पर मजबूर होगा।

इसके मुक़ाबले में सदक़ा ख़ैरात करने वालों को देखिये कि उनको कभी इस तरह माल के पीछे हैरान व परेशान न पायेंगे, उनको राहत के सामान अगरचे कम हासिल हों मगर सामान वालों से ज़्यादा इत्मीनान और दिल का सुकून जो असली राहत है, उनको हासिल होगी। दुनिया में हर इनसान

उनको इज़्ज़त की नज़र से देखेगा।

يَمْحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا وَيُرْبِى الصَّدَقٰتِ

खुलासा यह है कि इस आयत में जो यह इरशाद है कि अल्लाह तआ़ला सूद को मिटाता और सदके को बढ़ाता है, यह मज़मून आख़िरत के एतिबार से तो बिल्कुल साफ़ है ही, दुनिया के एतिबार से भी अगर ज़रा हक़ीक़त समझने की कोशिश की जाये तो बिल्कुल खुला हुआ है। यही है मतलब उस हदीस का जिसमें नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

انّ الرِّبٰوا وَاِن کثُر فَاِن عاقبته تصیر الی قلّ.

"यानी सूद अगरचे कितना ही ज़्यादा हो जाये मगर अन्जामकार नतीजा उसका क़िल्लत (कम होना ही) है।"

यह रिवायत मुस्नद अहमद और इब्ने माजा में ज़िक्र की गयी है।

आयत के आख़िर में इरशाद हैः

وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ كُلَّ كَفَّارٍ اَثِيْمٍ۝

यानी "अल्लाह तआ़ला पसन्द नहीं करते किसी कुफ़्र करने वाले को किसी गुनाह का काम करने वाले को।" इसमें इशारा फ़रमा दिया है कि जो लोग सूद को हराम ही न समझें वे कुफ़्र में मुब्तला हैं और जो हराम समझने के बावजूद अ़मली तौर पर उसमें मुब्तला हैं वे गुनाहगार फ़ासिक़ हैं।

तीसरी आयत में नेक मोमिनों जो नमाज़, रोज़ा और ज़कात के पाबन्द हैं, उनके बड़े अज्र और आख़िरत की राहत का ज़िक्र है। चूँकि इससे पहली आयत में सूदख़ोरों के लिये जहन्नम के अ़ज़ाब और उनकी ज़िल्लत व रुस्वाई का ज़िक्र आया था, क़ुरआने करीम के आ़म अन्दाज़ के मुताबिक़ इसके साथ ही ईमान और नेक अ़मल के पाबन्द नमाज़ व ज़कात अदा करने वालों के सवाब और आख़िरत के दर्जों का ज़िक्र कर दिया गया।

चौथी आयतः

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَذَرُوْا مَا بَقِىَ مِنَ الرِّبٰوٓا اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ۝

का ख़ुलासा यह है कि सूद व रिबा की हुर्मत (हराम होना) नाज़िल होने के बाद जो सूद की बक़ाया रक़में किसी के ज़िम्मे बाक़ी थीं उनका लेना-देना भी हराम कर दिया गया।

तफ़सील इसकी यह है कि सूद की हुर्मत (हराम होना) नाज़िल होने से पहले अ़रब में आ़म तौर पर सूद का रिवाज फैला हुआ था। उक्त आयतों से पहली आयतों में इसकी मनाही आई तो आ़दत के अनुसार तमाम मुसलमानों ने सूद के मामलात बन्द कर दिये, लेकिन कुछ लोगों की सूद की बक़ाया रक़में दूसरे लोगों पर थीं, इसी में यह वाक़िआ़ पेश आया कि बनू सक़ीफ़ और बनू मख़ज़ूम के आपस में सूदी मामलात का सिलसिला था, और बनू सक़ीफ़ के लोगों का कुछ सूदी मुतालबा बनू मख़ज़ूम की तरफ़ था। बनू मख़ज़ूम मुसलमान हो गये तो इस्लाम लाने के बाद उन्होंने सूद की रक़म अदा करना जायज़ न समझा, उधर बनू सक़ीफ़ के लोगों ने मुतालबा शुरू किया, क्योंकि ये लोग मुसलमान नहीं हुए थे मगर मुसलमानों से समझौता कर लिया था। बनू मख़ज़ूम के लोगों ने कहा कि

इस्लाम में दाख़िल होने के बाद हम अपनी इस्लामी कमाई को सूद की अदायेगी में ख़र्च न करेंगे।

यह झगड़ा मक्का मुकर्रमा में पेश आया, उस वक़्त मक्का फ़तह हो चुका था। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ से मक्का के अमीर हज़रत मुआ़ज़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु और दूसरी रिवायत में अ़त्ताब बिन असीद रज़ियल्लाहु अ़न्हु थे। उन्होंने इस झगड़े का क़ज़िया नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हुक्म मालूम करने के मक़सद से लिख भेजा, इस पर क़ुरआन की यह आयत नाज़िल हुई जिसका ख़ुलासा यह है कि इस्लाम में दाख़िल होने के बाद सूद के पिछले तमाम मामलात ख़त्म कर दिये जायें, पिछला सूद भी वसूल न किया जाये सिर्फ़ असल माल वसूल किया जाये।

यह इस्लामी क़ानून लागू और जारी किया गया तो मुसलमान तो इसके पाबन्द थे ही, जो ग़ैर-मुस्लिम क़बीले सुलह व समझौते के तौर पर इस्लामी क़ानून को क़ुबूल कर चुके थे वे भी इसके पाबन्द हो चुके थे, लेकिन इसके बावजूद जब हज्जतुल-विदा के ख़ुतबे में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस क़ानून का ऐलान किया तो इसका इज़हार फ़रमाया कि यह क़ानून किसी ख़ास शख़्स या क़ौम या मुसलमानों के माली फ़ायदों को निगाह में रखकर नहीं बल्कि पूरी इनसानियत की तरक़्क़ी व भलाई और बेहतरी के लिये जारी किया गया है। इसी लिये हम सबसे पहले मुसलमानों की बहुत बड़ी सूद की रक़म जो ग़ैर-मुस्लिमों के ज़िम्मे थी उसको छोड़ते हैं, तो अब उनको भी अपने बक़ाया सूद की रक़म छोड़ने में कोई उज़्र न होना चाहिये। चुनाँचे इस ख़ुतबे में इरशाद फ़रमायाः

الا ان کل ربا کان فی الجاھلیۃ موضوع عنکم کلہ لکم رؤس اموالکم لا تظلمون ولا تظلمون واول ربا موضوع ربا العباس ابن عبد المطلب کلہ. (ابن کثیر بحوالہ ابن ابی حاتم)

"यानी ज़माना-ए-जाहिलीयत (इस्लाम से पहले के दौर) में जो सूदी मामलात किये गये सब का सूद छोड़ दिया गया, अब हर शख़्स को असल रक़म मिलेगी, सूद की ज़्यादा रक़म न मिलेगी। न तुम ज़्यादती वसूल करके किसी पर ज़ुल्म कर सकोगे और न कोई असल माल में कमी करके तुम पर ज़ुल्म कर सकेगा। और सबसे पहले जो सूद छोड़ा था वह अ़ब्बास बिन अ़ब्दुल-मुत्तलिब का सूद है जिसकी बहुत भारी रक़में ग़ैर-मुस्लिमों के ज़िम्मे सूद के तौर पर बनती थीं।"

क़ुरआने करीम की उक्त आयत में इसी वाक़िए की तरफ़ इशारा और बक़ाया सूद छोड़ने का हुक्म बयान किया गया है। इस आयत को शुरू इस तरह किया गया कि मुसलमानों को ख़िताब करके पहले 'इत्तक़ुल्लाह' (अल्लाह से डरो) का हुक्म सुनाया कि अल्लाह तआ़ला से डरो, इसके बाद असल मसले का हुक्म बतलाया गया। यह क़ुरआने हकीम का वह ख़ास अन्दाज़ है जिसमें वह दुनिया भर की क़ानून की किताबों से अलग और ख़ास दर्जा रखता है, कि जब कोई ऐसा क़ानून बनाया जाता है जिस पर अ़मल करने में लोगों को कुछ दुश्वारी मालूम हो तो उसके आगे पीछे अल्लाह तआ़ला के सामने पेशी, आमाल के हिसाब और आख़िरत के अ़ज़ाब व सवाब का ज़िक्र करके मुसलमानों के दिलों और ज़ेहनों को उस पर अ़मल करने के लिये तैयार किया जाता है, उसके बाद हुक्म सुनाया जाता है। यहाँ भी पिछले लागू सूद की रक़म का छोड़ देना इनसानी तबीयत पर बोझ हो सकता था इसलिये पहले 'इत्तक़ुल्लाह' फ़रमाया, उसके बाद हुक्म दियाः

ذَرُوْا مَا بَقِيَ مِنَ الرِّبٰوا

यानी छोड़ दो बक़ाया सूद को। आयत के आख़िर में फ़रमायाः

اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ

यानी अगर तुम ईमान वाले हो। इसमें इशारा कर दिया कि ईमान का तक़ाज़ा यह है कि अल्लाह के हुक्म की इताअत की जाये, उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी ईमान के मनाफ़ी है। यह हुक्म चूँकि तबीयतों पर भारी था इसलिये हुक्म से पहले 'इत्तक़ुल्लाह' (अल्लाह से डरो) और हुक्म के बाद 'इन कुन्तुम मुअ्मिनीन' (अगर तुम ईमान वाले हो) के इरशाद मिला दिये गये।

इसके बाद पाँचवीं आयत में इस हुक्म की मुख़ालफ़त (विरोध और उल्लंघन) करने वालों को सख़्त वईद (सज़ा की धमकी) सुनाई गई। जिसका मज़मून यह है कि अगर तुम ने सूद को न छोड़ा तो अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल की तरफ़ से ऐलाने जंग सुन लो। यह सख़्त वईद ऐसी है कि कुफ़्र के सिवा और किसी बड़े से बड़े गुनाह पर क़ुरआन में ऐसी वईद (धमकी) नहीं आई। फिर इस आयत के आख़िर में इरशाद फ़रमाया हैः

وَاِنْ تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوْسُ اَمْوَالِكُمْ لَا تَظْلِمُوْنَ وَلَا تُظْلَمُوْنَ۝

यानी "अगर तुम तौबा कर लो और आगे के लिये सूद की बक़ाया रक़म छोड़ने का इरादा कर लो तो तुम्हें तुम्हारे असल माल मिल जायेंगे, न तुम असल माल से ज़्यादा हासिल करके किसी पर ज़ुल्म करने पाओगे और न कोई असल माल में कमी या देर करके तुम पर ज़ुल्म करने पायेगा।" इसमें असल रासुल-माल देने को इस शर्त के साथ मशरूत किया है कि तुम तौबा कर लो और आगे के लिये सूद छोड़ने का इरादा कर लो, तब असल माल मिलेगा।

इससे बज़ाहिर इस तरफ़ इशारा होता है कि अगर सूद छोड़ने का इरादा करके तौबा न की तो असल माल भी न मिलेगा। सो इसकी तफ़सील यह है कि अगर मुसलमान हो जाने के बावजूद सूद को हराम ही न समझे, इसलिये सूद छोड़ने के लिये तौबा नहीं करता, तब तो यह शख़्स इस्लाम से ख़ारिज और मुर्तद (धर्मभ्रष्ट) हो गया, जिसका हुक्म यह है कि मुर्तद (दीन इस्लाम से फिर जाने वाले) का माल उसकी मिल्क से निकल जाता है, फिर जो इस्लाम लाने के बाद की कमाई है वह उसके मुसलमान वारिसों को मिल जाती है और जो कुफ़्र के दौर की कमाई है वह बैतुल-माल में जमा कर दी जाती है। इसलिये सूद से तौबा न करना अगर हलाल समझने की बिना पर हो तो उसको असल माल भी न मिलेगा, और अगर हलाल तो नहीं समझता मगर अ़मली तौर पर बाज़ नहीं आता और उसके साथ जत्था (गुट) बनाकर इस्लामी हुकूमत का मुक़ाबला करता है तो वह बाग़ी है, उसका भी सब माल ज़ब्त करके बैतुल-माल (इस्लामी सरकारी ख़ज़ाने) में अमानत रखा जाता है कि जब यह तौबा कर ले तब इसका माल इसको वापस दे दिया जाये, शायद इस क़िस्म की जुज़्इयात की तरफ़ इशारा करने के लिये शर्त की सूरत में फ़रमाया गयाः

وَاِنْ تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوْسُ اَمْوَالِكُمْ

यानी अगर तुम तौबा न करोगे तो तुम्हारे असल माल भी ज़ब्त हो जायेंगे।

इसके बाद छठी आयत में सूदख़ोरी की इनसानियत को तबाह करने वाली हरकत के मुक़ाबिल पाकीज़ा अख़्लाक़ और ग़रीबों व नादारों के साथ सहूलत का मामला करने और अच्छे बर्ताव की तालीम दी जाती है। इरशाद होता है:

وَإِنْ كَانَ ذُوْ عُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ إِلٰى مَيْسَرَةٍ وَأَنْ تَصَدَّقُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ

यानी "अगर तुम्हारा क़र्ज़दार तंगदस्त (ग़रीब और नादार) हो, तुम्हारा क़र्ज़ अदा करने पर क़ादिर न हो तो शरीअत का हुक्म यह है कि उसको हालात बेहतर होने और गुंजाईश पैदा होने के वक़्त तक मोहलत दी जाये, और अगर तुम उसको अपना क़र्ज़ माफ़ ही कर दो तो यह तुम्हारे लिये ज़्यादा बेहतर है।"

सूदख़ोरों की आदत तो यह होती है कि अगर कोई क़र्ज़दार मुफ़लिस है और निर्धारित मियाद पर वह क़र्ज़ अदा नहीं कर सकता तो सूद की रक़म असल में जमा करके सूद-दर-सूद का सिलसिला चलाते हैं, और सूद की मात्रा भी और बढ़ा देते हैं।

यहाँ अल्लाह तआ़ला ने यह क़ानून बना दिया कि अगर कोई क़र्ज़दार वाक़ई मुफ़लिस (ग़रीब) है, क़र्ज़ अदा करने पर क़ादिर नहीं तो उसको तंग करना जायज़ नहीं, बल्कि उसको उस वक़्त तक मोहलत देनी चाहिये जब तक कि वह अदा करने पर क़ादिर न हो जाये, साथ ही इसकी तरग़ीब भी दे दी कि उस ग़रीब को अपना क़र्ज़ माफ़ कर दो तो यह तुम्हारे लिये ज़्यादा बेहतर है।

यहाँ माफ़ करने को क़ुरआन ने **सदक़ा** के लफ़्ज़ से ताबीर फ़रमाया है जिसमें इशारा है कि यह माफ़ी तुम्हारे लिये सदक़े के हुक्म में होकर बहुत बड़े सवाब का ज़रिया होगी, साथ ही यह जो फ़रमाया कि माफ़ कर देना तुम्हारे लिये ज़्यादा बेहतर है, हालाँकि बज़ाहिर तो उनके लिये नुक़सान का सबब है कि सूद तो छोड़ा ही था असल माल भी गया, मगर क़ुरआन ने इसको बेहतर फ़रमाया। इसकी दो वजह हैं- अव्वल तो यह कि यह बेहतरी इस दुनिया की चन्द दिन की ज़िन्दगी के बाद सामने आ जायेगी जबकि इस बेक़ीमत माल के बदले में जन्नत की हमेशा की नेमतें उसको मिलेंगी।

दूसरे शायद इसमें इस तरफ़ भी इशारा हो कि दुनिया में भी तुम इस अ़मल की बेहतरी को देख लोगे कि तुम्हारे माल में बरकत होगी। बरकत की हक़ीक़त यह है कि थोड़े माल में काम बहुत निकल जायें, यह ज़रूरी नहीं कि माल की मात्रा या तादाद बढ़ जाये। सो यह साफ़ देखने में आता है कि सदक़ा ख़ैरात करने वालों के माल में बेशुमार बरकत होती है, उनके थोड़े माल से इतने काम निकल आते हैं कि हराम माल वालों के बड़े-बड़े मालों से वो काम नहीं निकलते।

और जिस माल में बेबरकती होती है उसका यह हाल होता है कि जिस मक़सद के लिये ख़र्च करता है वह मक़सद हासिल नहीं होता, या ग़ैर-मक़सूद चीज़ों में जैसे दवा, इलाज और डॉक्टरों की फ़ीसों में ऐसे मालदारों की बड़ी-बड़ी रक़में ख़र्च हो जाती हैं, जिसका ग़रीबों को कभी साबक़ा नहीं पड़ता। अव्वल तो अल्लाह तआ़ला उनको तन्दुरुस्ती की नेमत अ़ता फ़रमाते हैं कि इलाज में कुछ ख़र्च करने की ज़रूरत ही न रहे, और अगर कभी बीमारी आई भी तो मामूली ख़र्चों से तन्दुरुस्ती हासिल हो जाती है। इस लिहाज़ से ग़रीब व नादार क़र्ज़दार को क़र्ज़ माफ़ कर देना जो बज़ाहिर उसके लिये नुक़सानदेह नज़र आता था इस क़ुरआनी तालीम को सामने रखें तो वह एक मुफ़ीद और नफ़ा देने वाला काम बन गया।

मुफ़लिस व ग़रीब क़र्ज़दार के साथ नर्मी व आसानी की तालीम के लिये सही हदीसों में जो इरशादात आये हैं उनके चन्द जुमले सुनिये- तबरानी की एक हदीस में है कि जो शख़्स यह चाहे कि उसके सर पर उस दिन अल्लाह तआ़ला की रहमत का साया हो जबकि उसके सिवा किसी को कोई साया सर छुपाने के लिये नहीं मिलेगा तो उसको चाहिये कि तंगदस्त क़र्ज़दार के साथ नर्मी और आसानी का मामला करे या उसको माफ़ कर दे।

इसी मज़मून की हदीस सही मुस्लिम में भी है। और मुस्नद अहमद की एक हदीस में है कि जो शख़्स किसी मुफ़लिस क़र्ज़दार को मोहलत देगा तो उसको हर दिन उतनी रक़म के सदक़े का सवाब मिलेगा जितनी उस क़र्ज़दार के ज़िम्मे वाजिब है, और यह हिसाब क़र्ज़ की मियाद पूरा होने से पहले मोहलत देने का है, और जब क़र्ज़ की मियाद पूरी हो जाये और वह शख़्स अदा करने पर क़ादिर न हो उस वक़्त अगर कोई मोहलत देगा तो उसको हर दिन उसकी दोगुनी रक़म सदक़ा करने का सवाब मिलेगा।

एक हदीस में है कि जो शख़्स चाहे कि उसकी दुआ़ क़ुबूल हो या उसकी मुसीबत दूर हो तो उसको चाहिये कि तंगदस्त क़र्ज़दार को मोहलत दे दे।

इसके बाद आख़िरी आयत में फिर क़ियामत के दिन का ख़ौफ़ और मेहशर के हिसाब किताब और सवाब व अ़ज़ाब के ज़िक्र पर सूद के अहकाम की आयतों को ख़त्म किया। इरशाद फ़रमायाः

وَاتَّقُوْا يَوْمًا تُرْجَعُوْنَ فِيْهِ اِلَى اللّٰهِ ثُمَّ تُوَفّٰى كُلُّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ وَهُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ۝

यानी "डरो उस दिन से जिसमें तुम सब अल्लाह तआ़ला के सामने पेशी में लाये जाओगे, फिर हर शख़्स को अपने-अपने अ़मल का पूरा-पूरा बदला मिलेगा।"

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि यह आयत उतरने के एतिबार से सबसे आख़िरी आयत है, इसके बाद कोई आयत नाज़िल नहीं हुई। इसके इकत्तीस दिन बाद नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात हो गई। और कुछ रिवायतों में सिर्फ़ नौ दिन बाद वफ़ात होना मज़कूर है।

यहाँ तक रिबा (सूद) के अहकाम से सम्बन्धित सूरः ब-क़रह की आयतों की तफ़सीर आई है, रिबा (सूद) की हुर्मत व मनाही पर क़ुरआने करीम में सूरः ब-क़रह में ज़िक्र हुई सात आयतें और सूरः आले इमरान में एक आयत, सूरः निसा में दो आयतें आई हैं, और एक आयत सूरः रूम में भी है जिसकी तफ़सीर में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है। कुछ हज़रात ने उसको भी सूद ब्याज के मफ़्हूम पर महमूल किया है, बाज़ ने दूसरी तफ़सीर बयान की है। इस तरह क़ुरआने करीम की दस आयतें हैं जिनमें सूद व रिबा के अहकाम बयान हुए हैं।

सूद की पूरी हक़ीक़त बतलाने से पहले मुनासिब मालूम होता है कि उन बाक़ी आयतों का तर्जुमा और तफ़सीर भी इसी जगह लिख दी जाये जो सूरः आले इमरान, सूरः निसा और सूरः रूम में आई हैं, ताकि तमाम आयतें एक जगह होकर सूद की हक़ीक़त समझने में आसानी हो।

सूरः आले इमरान के तेरहवें रुकूअ़ की आयत नम्बर 130 यह हैः

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَاْكُلُوا الرِّبٰوٓا اَضْعَافًا مُّضٰعَفَةً وَّاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ۝ (٣: ١٣٠)

यानी "ऐ ईमान वालो! सूद मत खाओ हिस्से से ज़्यादा, और अल्लाह तआ़ला से डरो, उम्मीद है कि तुम कामयाब हो।"

इस आयत के नाज़िल होने का एक ख़ास वाक़िआ़ है कि अ़रब के जाहिली दौर में सूदख़ोरी का आ़म तौर पर यह तरीक़ा था कि एक ख़ास निर्धारित मियाद के लिये उधार सूद पर दिया जाता था, और जब वह मियाद आ गई और क़र्ज़दार उसकी अदायेगी पर क़ादिर न हुआ तो उसको और मोहलत इस शर्त पर दी जाती थी कि सूद की दर बढ़ा दी जाये, इसी तरह दूसरी मियाद पर भी अदायेगी न हुई तो सूद की दर और बढ़ा दी। यह वाक़िआ़ तफ़सीर की आ़म किताबों में ख़ास तौर पर 'लुबाबुन्नुक़ूल' में इमाम मुजाहिद रहमतुल्लाहि अ़लैहि की रिवायत से बयान किया गया है।

अ़रब के जाहिली (यानी इस्लाम से पहले के) दौर की इस मिल्लत को मिटा देने वाली रस्म को मिटाने के लिये यह आयत नाज़िल हुई, इसी लिये इस आयत में 'अज़्आफ़म् मुज़ाअ़-फ़तन्' (यानी कई हिस्से ज़्यादा) फ़रमाकर उनके रिवाजी तरीक़े की निंदा, एकता को ख़त्म करने और ख़ुदग़र्ज़ी पर तंबीह (चेतावनी) फ़रमाकर इसको हराम क़रार दिया। इसके मायने यह नहीं कि कई गुना बढ़ाकर न हो तो हराम नहीं, क्योंकि सूरः ब-क़रह और सूरः निसा में पूरी तरह सूद की हुर्मत साफ़-साफ़ बयान हुई है, कई गुना बढ़ाकर हो या न हो। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे क़ुरआने करीम में जगह-जगह फ़रमाया गया है:

لَا تَشْتَرُوْا بِاٰيٰتِیْ ثَمَنًا قَلِيْلًا

"यानी मेरी आयतों के बदले में थोड़ी सी क़ीमत मत लो।" इसमें थोड़ी सी क़ीमत इसलिये फ़रमाया कि अल्लाह की आयतों के बदले में अगर पूरी दुनिया की सल्तनत भी ले ले तो वह थोड़ी ही क़ीमत होगी। इसके मायने यह नहीं कि क़ुरआन की आयतों के बदले में थोड़ी क़ीमत लेना तो हराम है और ज़्यादा लेना जायज़ है। इसी तरह इस आयत में 'कई हिस्से ज़्यादा' का लफ़्ज़ उनके शर्मनाक तरीक़े पर विचार करने के लिये लाया गया, हुर्मत (हराम होने) की शर्त नहीं।

और अगर सूद के रिवाजी तरीक़ों पर ग़ौर किया जाये तो यह भी कहा जा सकता है कि जब सूदख़ोरी की आ़दत पड़ जाये तो फिर वह सूद सिर्फ़ सूद ही नहीं रहता बल्कि लाज़िमी तौर पर कई गुना बढ़ाकर हो जाता है, क्योंकि जो रक़म सूद से हासिल होकर सूदख़ोर के माल में शामिल हुई तो अब उस सूद की ज़्यादा रक़म को भी सूद पर चलायेगा तो सूद कई हिस्से हो जायेगा, और यही सिलसिला आगे चला तोः

اَضْعَافًا مُّضٰعَفَةً

(कई गुना ज़्यादा) हो जायेगा। इस तरह हर सूद कई हिस्से ज़्यादा बनकर रहेगा।

और सूरः निसा में दो आयतें सूद के बारे में यह हैं:

فَبِظُلْمٍ مِّنَ الَّذِيْنَ هَادُوْا حَرَّمْنَا عَلَيْهِمْ طَيِّبٰتٍ اُحِلَّتْ لَهُمْ وَبِصَدِّهِمْ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ كَثِيْرًا ٥ وَّ اَخْذِهِمُ الرِّبٰوا وَقَدْ نُهُوْا عَنْهُ وَاَكْلِهِمْ اَمْوَالَ النَّاسِ بِالْبَاطِلِ وَ اَعْتَدْنَا لِلْكٰفِرِيْنَ مِنْهُمْ عَذَابًا اَلِيْمًا ٥ (٤:١٦١.١٦٠)

"यानी यहूद के इन्हीं बड़े-बड़े जुर्मों व अपराधों के सबब हमने बहुत सी पाकीज़ा चीज़ें जो उनके

लिये हलाल थीं उन पर हराम कर दीं, और इसके सबब कि वे बहुत आदमियों को सही राह से रोकने वाले बन जाते थे, और इस सबब से कि वे सूद लिया करते थे हालाँकि उनको इससे मनाही की गई थी, और इस सबब से कि वे लोगों का माल नाहक़ तरीक़े से खा जाते थे, और हमने उन लोगों के लिये जो उनमें काफ़िर हैं दर्दनाक सज़ा का सामान मुक़र्रर कर रखा है।''

इन दोनों आयतों से मालूम हुआ कि मूसा अ़लैहिस्सलाम की शरीअ़त में भी सूद हराम था और यहूद ने जब इसकी मुख़ालफ़त (उल्लंघन) की तो दुनिया में भी उनको यह मुनासिब सज़ा दी गई कि उन्होंने दुनिया के लालच की ख़ातिर हराम खाना शुरू कर दिया तो अल्लाह ने उन पर कुछ हलाल चीज़ें भी हराम फ़रमा दीं।

और सूरः रूम के चौथे रुकूअ़ की आयत नम्बर 39 में है:

وَمَآ اٰتَيْتُمْ مِّنْ رِّبًا لِّيَرْبُوَاْ فِيْٓ اَمْوَالِ النَّاسِ فَلَا يَرْبُوْا عِنْدَاللّٰهِ وَمَآ اٰتَيْتُمْ مِّنْ زَكٰوةٍ تُرِيْدُوْنَ وَجْهَ اللّٰهِ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُضْعِفُوْنَ۝ (۳۰:۳۹)

''यानी जो चीज़ तुम इसलिये दोगे कि वह लोगों के माल में पहुँचकर ज़्यादा हो जाये तो यह अल्लाह तआ़ला के नज़दीक नहीं बढ़ता, और जो ज़कात दोगे जिससे अल्लाह तआ़ला की रज़ा मतलूब हो तो ऐसे लोग ख़ुदा के पास बढ़ाते रहेंगे।''

कुछ मुफ़स्सिरीन हज़रात ने लफ़्ज़ रिबा और ज़्यादती पर नज़र करके इस आयत को भी सूद ब्याज पर महमूल फ़रमाया है, और यह तफ़सीर फ़रमाई है कि सूद ब्याज के लेने में अगरचे बज़ाहिर माल की ज़्यादती नज़र आती है मगर दर हक़ीक़त वह ज़्यादती (बढ़ोतरी) नहीं। जैसे किसी शख़्स के बदन पर वरम (सूजन) हो जाये तो बज़ाहिर वह उसके जिस्म में ज़्यादती है लेकिन कोई अ़क़्लमन्द उसको ज़्यादती समझकर ख़ुश नहीं होता बल्कि उसको हलाकत का पैग़ाम समझता है। इसके मुक़ाबिल ज़कात व सदक़ात देने में अगरचे बज़ाहिर माल में कमी आती है मगर वास्तव में वह कमी नहीं बल्कि हज़ारों ज़्यादतियों का सबब है। जैसे कोई शख़्स गन्दे और ख़राब माद्दे के निकालने के लिये जुल्लाब (ख़राब माद्दे को निकालने वाली दवा) लेता है या फ़सद खुलवाकर (सींगी लगवा कर) ख़ून निकलवाता है तो बज़ाहिर वह कमज़ोर नज़र आता है और उसके बदन में कमी महसूस होती है मगर जानने वालों की नज़र में यह कमी उसकी ज़्यादती और क़ुव्वत की शुरूआ़त है।

और तफ़सीर के कुछ उलेमा ने इस आयत को सूद व ब्याज की मनाही पर महमूल ही नहीं फ़रमाया बल्कि इसका यह मतलब क़रार दिया है कि जो शख़्स किसी को अपना माल इख़्लास व नेक नीयती से नहीं बल्कि इस नीयत से दे कि मैं उसको यह चीज़ दूँगा तो वह मुझे इसके बदले में इससे ज़्यादा देगा, जैसे बहुत सी बिरादरियों में न्यौते की रस्म है कि वह हदिये के तौर पर नहीं बल्कि बदला लेने की ग़र्ज़ से दी जाती है। यह देना चूँकि अल्लाह तआ़ला को राज़ी करने के लिये नहीं बल्कि अपनी ग़र्ज़ के लिये है इसलिये आयत में फ़रमाया कि इस तरह अगरचे ज़ाहिर में माल बढ़ जाये मगर वह अल्लाह के नज़दीक नहीं बढ़ता, हाँ! जो ज़कात सदक़ात अल्लाह तआ़ला को राज़ी करने के लिये दिये जायें उनमें अगरचे बज़ाहिर माल घटता है मगर अल्लाह के नज़दीक वह दोगुना और चार गुना होता जाता है।

इस तफ़सीर पर उक्त आयत का वह मज़मून हो जायेगा जो दूसरी एक आयत में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ख़िताब करके इरशाद फ़रमाया हैः

وَلَا تَمْنُنْ تَسْتَكْثِرُ. (٦:٧٤)

यानी "आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम किसी पर एहसान इस नीयत से न करें कि उसके बदले में कुछ माल की ज़्यादती आपको हासिल हो जायेगी।"

और सूरः रूम की इस आयत में बज़ाहिर यह दूसरी तफ़सीर ही राजेह (ज़्यादा बेहतर और वरीयता प्राप्त) मालूम होती है, अव्वल तो इसलिये कि सूरः रूम मक्की है जिसके लिये अगरचे ज़रूरी नहीं कि उसकी हर आयत मक्की हो मगर ग़ालिब गुमान मक्की होने का ज़रूर है जब तक उसके ख़िलाफ़ कोई सुबूत न मिले, और आयत के मक्की होने की सूरत में इसको सूद के हराम होने के मफ़्हूम पर इसलिये महमूल नहीं किया जा सकता कि सूद के हराम होने का हुक्म मदीने में नाज़िल हुआ है। इसके अ़लावा इस आयत से पहले जो मज़मून आया है उससे भी दूसरी तफ़सीर ही का रुझान मालूम होता है, क्योंकि इससे पहले इरशाद हैः

فَاٰتِ ذَا الْقُرْبٰى حَقَّهٗ وَالْمِسْكِيْنَ وَابْنَ السَّبِيْلِ ذٰلِكَ خَيْرٌ لِّلَّذِيْنَ يُرِيْدُوْنَ وَجْهَ اللّٰهِ. (٣٨:٣٠)

"क़राबतदार (रिश्तेदार) को उसका हक़ दिया करो, मिस्कीन और मुसाफ़िर को भी, यह उन लोगों के लिये बेहतर है जो अल्लाह की रज़ा के तालिब हैं।"

इस आयत में रिश्तेदारों, मिस्कीनों और मुसाफ़िरों पर ख़र्च करने के सवाब होने के लिये यह शर्त लगाई गई है कि उसमें नीयत अल्लाह तआ़ला की रज़ा हासिल करने की हो, तो इसके बाद वाली आयते मज़कूरा में इसकी वज़ाहत इस तरह की गई कि अगर माल किसी को इस ग़र्ज़ से दिया जाये कि उसका बदला उसकी तरफ़ से ज़्यादा मिलेगा तो यह अल्लाह तआ़ला की रज़ा हासिल करने के लिये ख़र्च न हुआ, इसलिये इसका सवाब न मिलेगा।

बहरहाल सूद की मनाही के मसले में इस आयत को छोड़कर भी पहले ज़िक्र हुई बहुत सी आयतें आई हैं जिनमें से सूरः आले इमरान की एक आयत (नम्बर 130) में कई हिस्से ज़्यादा करके सूद की हुर्मत बयान की गई है और बाक़ी सब आयतों में हर तरह के सूद की हुर्मत (हराम होने) का बयान है। इस तफ़सील से यह तो वाज़ेह हो गया कि सूद चाहे कई गुना ज़्यादा करके और सूद दर सूद हो या ऐकल सूद, हर हालत में हराम है, और हराम भी ऐसा सख़्त कि इसकी मुख़ालफ़त (उल्लंघन) करने पर अल्लाह और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ से ऐलाने जंग सुनाया गया है।

सूद व रिबा के मसले की कुछ और वज़ाहत व तफ़सील

आजकल रिबा (सूद) चूँकि आ़म व्यापार-व्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा और सुतून बन गया है इसलिये जब किताब व सुन्नत (क़ुरआन व हदीस) की आयतों व रिवायतों में इसकी हुर्मत व मनाही सामने आती है तो आ़म तबीयतें इसकी हक़ीक़त को समझने समझाने के वक़्त इसकी हुर्मत से हिचकिचाती हैं और हीले-बहाने तलाशने की तरफ़ माईल होती हैं। मुझे यह अ़र्ज़ करना है कि बहस का आंकलन करके उसके हर पहलू पर अलग-अलग सोच-विचार और चिंतन-मंथन करना चाहिये, एक

दूसरे में गड्मड् करने का नतीजा बहस के उलझने के सिवा कुछ नहीं होता। यहाँ बहस के तीन हिस्से (यानी बुनियादी बिन्दू) हैं:

अव्वल यह कि क़ुरआन व सुन्नत में रिबा (सूद) की क्या हक़ीक़त है और वह किन-किन सूरतों को शामिल है?

दूसरे यह कि इस रिबा (सूद) की हुर्मत (हराम होना) व मनाही किस हिक्मत व मस्लेहत पर आधारित है?

तीसरे यह कि सूद व रिबा कितना ही बुरा सही लेकिन आजकल की दुनिया में वह अर्थव्यवस्था और कारोबार का अहम हिस्सा (बल्कि प्रधान अंश) बन चुका है, अगर क़ुरआनी अहकाम के अनुसार इसको छोड़ दिया जाये तो बैंक व तिजारत का सिस्टम कैसे चलेगा?

असल सूद की परिभाषा में कभी कोई अस्पष्टता नहीं रही

एक मुग़ालते और धोखे का जवाब

अब सुनिये कि लफ़्ज़ रिबा अ़रबी ज़बान का परिचित लफ़्ज़ है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नबी बनकर तशरीफ़ लाने और क़ुरआन के नाज़िल होने से पहले अ़रब के जाहिली दौर में भी यह लफ़्ज़ जान-पहचाना था और न सिर्फ़ जाना-पहचाना बल्कि रिबा का लेन-देन आ़म तौर पर जारी था। बल्कि सूरः निसा की आयात से यह भी मालूम हुआ कि रिबा का लफ़्ज़ और इसके मामलात तौरात के ज़माने में भी मारूफ़ (जाने-पहचाने) थे, और तौरात में भी इसको हराम क़रार दिया गया था।

ज़ाहिर है कि ऐसा लफ़्ज़ जो पुराने ज़माने से अ़रब और उसके आस-पास के इलाक़ों में मारूफ़ (परिचित और जाना-पहचाना) चला आता है और उस पर लेन-देन का रिवाज चल रहा है, और क़ुरआन उसकी हुर्मत (हराम होने) व मनाही बयान करने के साथ यह भी ख़बर देता है कि मूसा अ़लैहिस्सलाम की उम्मत पर भी सूद व रिबा हराम किया गया था, इस लफ़्ज़ की हक़ीक़त कोई ऐसी अस्पष्ट और ग़ैर-वाज़ेह चीज़ नहीं हो सकती जिसके समझने समझाने में दुश्वारियाँ पेश आयें।

यही वजह है कि जब सन् 8 हिजरी में सूरः ब-क़रह की आयतें रिबा की हुर्मत के बारे में नाज़िल हुईं तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से कहीं मन्क़ूल नहीं कि उनको लफ़्ज़ रिबा की हक़ीक़त समझने में कोई शुब्हा व धोखा पेश आया हो और हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से दूसरे मामलात की तरह इसकी तहक़ीक़ की नौबत आई हो, बल्कि जिस तरह शराब की हुर्मत (हराम होना) नाज़िल होते ही सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने उस पर अ़मल किया, इसी तरह रिबा की हुर्मत नाज़िल होते ही रिबा के सब मामलात छोड़ दिये। पिछले ज़माने के मामलात में मुसलमानों का जो रिबा (सूद) ग़ैर-मुस्लिमों के ज़िम्मे वाजिबुल-अदा (बक़ाया) था वह भी मुसलमानों ने छोड़ दिया और जो ग़ैर-मुस्लिमों का मुसलमानों के ज़िम्मे वाजिबुल-अदा था और मुसलमान मनाही का हुक्म आने के बाद उसको देना नहीं चाहते थे उसका झगड़ा मक्का के हाकिम की अ़दालत में पेश हुआ, उन्होंने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मालूम किया तो इसका फ़ैसला सूरः ब-क़रह की आयतों में

आसमान से नाज़िल हुआ कि पिछले ज़माने के बक़ाया सूद का लेन-देन भी अब जायज़ नहीं।

और इसमें चूँकि ग़ैर-मुस्लिमों को यह शिकायत का मौक़ा मिल सकता था कि एक इस्लामी क़ानून के हुक्म की वजह से हमारा रुपया क्यों मारा जाये तो इसको दूर करने के लिये रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हज्जतुल-विदा (आख़िरी हज) के ख़ुतबे में यह वाज़ेह कर दिया कि इस शरई हुक्म का असर सिर्फ़ ग़ैर-मुस्लिमों पर नहीं बल्कि मुसलमानों पर भी बराबर तौर पर है और सबसे पहले जो सूद की रक़म छोड़ी गई वह हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के चचा मोहतरम हज़रत अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की बहुत बड़ी रक़म थी।

ग़र्ज़ यह कि रिबा की मनाही होने के वक़्त रिबा का मफ़्हूम कुछ मख़्फ़ी (छुपा या अस्पष्ट) न था, आ़म तौर पर जाना-पहचाना था। वही रिबा जिसको अ़रब के लोग रिबा कहते थे और उसका लेन-देन करते थे, क़ुरआन ने हराम किया और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उसको सिर्फ़ अख़्लाक़ी अन्दाज़ में नहीं बल्कि मुल्की क़ानून की हैसियत से नाफ़िज़ (लागू और जारी) फ़रमाया। अलबत्ता कुछ ऐसी सूरतों को भी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने रिबा में शामिल क़रार दिया जिनको आ़म तौर पर रिबा (सूद) नहीं समझा जाता था, उन्हीं सूरतों को मुतैयन करने में हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु को इश्काल (शुब्हा) पेश आया और उन्हीं में इज्तिहाद करने वाले इमामों के नज़रियों में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हुआ, वरना असल रिबा जिसको अ़रब वाले रिबा कहते थे न उसमें किसी को शुब्हे का मौक़ा था न उसमें किसी का इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हुआ।

अब सुनिये अ़रब का मुरव्वजा (प्रचलित) रिबा क्या था? इमामे तफ़सीर इब्ने जरीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने हज़रत मुजाहिद रहमतुल्लाहि अ़लैहि से नक़ल किया है कि जो रिबा जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने) में जारी था और क़ुरआन ने उसे मना किया वह यह था कि किसी को एक निर्धारित मियाद के लिये क़र्ज़ देकर उस पर असल रासुल-माल से ज़्यादा तयशुदा ज़्यादती लेते थे, और अगर निर्धारित मियाद पर वह क़र्ज़ अदा न हो सका तो और मियाद इस शर्त पर बढ़ा देते थे कि सूद में इज़ाफ़ा किया जाये, यही मज़मून हज़रत क़तादा और तफ़सीर के दूसरे इमामों से नक़ल किया गया है।

(तफ़सीर इब्ने जरीर पेज 96 जिल्द 3)

उन्दुलुस के मशहूर इमामे तफ़सीर अबू हय्यान ग़रनाती की तफ़सीर 'बहरे मुहीत' में भी जाहिलीयत के रिबा की यही सूरत लिखी है कि उधार देकर उस पर नफ़ा लेते और जितनी मुद्दत उधार की बढ़ जाये उतना ही सूद उस पर बढ़ा देने का नाम रिबा था। अ़रब के इसी जाहिली दौर के लोग यह कहते थे कि जैसे ख़रीद व बेच में नफ़ा लेना जायज़ है इसी तरह अपना रुपया उधार पर देकर नफ़ा लेना भी जायज़ होना चाहिये, क़ुरआने करीम ने इसको हराम क़रार दिया और बै व रिबा के अहकाम का अलग-अलग होना वाज़ेह फ़रमाया।

यही मज़मून तमाम मुस्तनद (विश्वसनीय) किताबों- तफ़सीर इब्ने कसीर, तफ़सीरे कबीर और रूहुल-मआ़नी वग़ैरह में मोतबर रिवायतों के साथ मन्क़ूल है।

अ़ल्लामा इब्ने अ़रबी ने अहकामुल-क़ुरआन में फ़रमायाः

اَلرِّبٰوا فِی اللُّغَةِ الزِّیَادَةُ وَالْمُرَادُ بِهٖ فِی الْاٰیَةِ کُلُّ زِیَادَةٍ لَا یُقَابِلُهَا عِوَضٌ. (ص: ۱۰۱ ج ۲)

यानी रिबा के मायने असल लुग़त में ज़्यादती के हैं, और आयत में इससे मुराद वह ज़्यादती है जिसके मुक़ाबले में कोई माल न हो, बल्कि महज़ उधार और उसकी मियाद हो।

इमाम राज़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी तफ़सीर में फ़रमाया कि रिबा की दो क़िस्में हैं- एक ख़रीद व बेच के मामलात के अन्दर, दूसरे उधार का रिबा। और अ़रब के जाहिली दौर में दूसरी क़िस्म ही राईज और परिचित थी कि वे अपना माल किसी को निर्धारित मियाद के लिये देते थे और हर महीने उसका नफ़ा लेते थे, और अगर निर्धारित मियाद पर अदायेगी न कर सका तो मियाद और बढ़ा दी जाती थी बशर्तेकि वे सूद की रक़म बढ़ा देते, यही जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने) का रिबा था जिसको क़ुरआन ने हराम किया।

इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अहकामुल-क़ुरआन में रिबा के मायने यह बयान किये हैं:

هُوَالْقَرْضُ الْمَشْرُوْطُ فِيْهِ الْاَجَلُ وَزِيَادَةُ مَالٍ عَلَى الْمُسْتَقْرِضِ.

"यानी वह क़र्ज़ है जिसमें किसी मियाद के लिये इस शर्त पर क़र्ज़ दिया जाये कि क़र्ज़दार उसको असल माल से ज़्यादा कुछ रक़म अदा करेगा।"

हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने रिबा की तारीफ़ (परिभाषा) यह फ़रमाई है:

كل قرض جر نفعا فهو ربا.

"यानी जो क़र्ज़ नफ़ा हासिल करे वह रिबा है।"

यह हदीस जामे सग़ीर में है और अ़ज़ीज़ी ने इसको हसन कहा है।

ख़ुलासा यह है कि उधार देकर उस पर नफ़ा लेने का नाम रिबा है जो अ़रब के जाहिली ज़माने में राईज और मारूफ़ (प्रचलित और परिचित) था, जिसको क़ुरआने करीम की उक्त आयत ने स्पष्ट तौर पर हराम क़रार दिया, और इन आयतों के नाज़िल होते ही सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने उसको छोड़ दिया और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़ानूनी विवादों में इसको नाफ़िज़ फ़रमाया। इसमें न कोई ग़ैर-वाज़ेह बात थी न संक्षिप्ता, न इसमें किसी को कोई शक व शुब्हा और भ्रम पेश आया।

अलबत्ता नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने रिबा के मफ़्हूम (मतलब और मायने) में ख़रीद व बेच की चन्द सूरतों को भी दाख़िल फ़रमाया जिनको अ़रब के लोग रिबा (सूद) न समझते थे जैसे छह चीज़ों की ख़रीद व बेच में यह हुक्म दिया कि अगर उनका तबादला किया जाये तो बराबर सराबर होना चाहिये, और नक़द हाथ के हाथ होना चाहिये, उसमें कमी-बेशी की गई या उधार किया गया तो वह भी रिबा (सूद) है। ये छह चीज़ें सोना, चाँदी, गेहूँ, जौ, खजूर और अंगूर हैं।

इसी उसूल के मातहत अ़रब में मामलात की जो चन्द सूरतें मुज़ाबना और मुहाक़ला के नाम से राईज (प्रचलित) थीं रिबा (सूद) की आयतें नाज़िल होने के बाद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको रिबा में शामिल क़रार देकर मना फ़रमाया।

(इब्ने कसीर, मुस्तद्रक हाकिम पेज 327 जिल्द 1 के हवाले से)

नोटः- मुज़ाबना यह है कि पेड़ पर लगे हुए फल को टूटे हुए फलों के बदले में अन्दाज़े से फ़रोख़्त किया जाये। और मुहाक़ला यह कि खड़े खेत के ग़ल्ले गन्दुम, चना वग़ैरह को ख़ुश्क साफ़

किये हुए ग़ल्ला गन्दुम या चने से अन्दाज़ा लगाकर फ़रोख़्त किया जाये। अन्दाज़े में चूँकि कमी-बेशी की संभावना रहती है इसलिये इसको मना किया गया।

इसमें यह बात क़ाबिले ग़ौर थी कि इन छह चीज़ों की ख़ुसूसियत है या इनके अ़लावा और भी कुछ चीज़ें इनके हुक्म में हैं, और अगर हैं तो उनका ज़ाब्ता (क़ायदा और क़ानून) क्या है? किस-किस सूरत को रिबा (सूद) में दाख़िल समझा जाये। यही इश्काल हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु को पेश आया, जिसकी बिना पर आपने फ़रमायाः

ان اية الرّبٰوا من اخر مانزل من القراٰن وان النبی صلی اللّٰہ علیه وسلم قبض قبل ان یبنیه لنافدعوا الربوا والریبة. (احکام القرآن، جصاص، ص ۵۵۱، و تفسیر ابن کثیر بحواله ابن ماجه، ص ۳۲۸ ج ۱)

"यानी रिबा वाली आयत क़ुरआन की आख़िरी आयतों में है, इसकी पूरी तफ़सीलात बयान फ़रमाने से पहले रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात हो गई, इसलिये अब एहतियात लाज़िम है, रिबा को तो छोड़ना ही है, जिस सूरत में रिबा का शुब्हा भी हो उसको भी छोड़ देना चाहिये।"

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु की मुराद ख़रीद व बेच के मामलों की वे सूरतें और उनकी तफ़सीलात हैं जो अ़रब के जाहिली ज़माने में रिबा (सूद) नहीं समझी जाती थीं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको रिबा में दाख़िल क़रार देकर हराम फ़रमाया, बाक़ी असल रिबा जो तमाम अ़रब में परिचित व मशहूर था और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने उसको छोड़ा, रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उसका क़ानून नाफ़िज़ फ़रमाया और हज्जतुल-विदा के ख़ुतबे में उसका ऐलान किया उसमें फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु को कोई शुब्हा या असमंजसता होने की कोई संभावना नहीं। फिर जब फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु को रिबा की जिन ख़ास सूरतों में इश्तिबाह (शुब्हा और दुविधा) पेश आया तो उसका हल यह तजवीज़ फ़रमाया कि जिन सूरतों में रिबा (सूद) का शुब्हा भी हो उनको भी छोड़ दिया जाये।

मगर हैरत है कि आज कुछ वे लोग जो यूरोप की ज़ाहिरी टिप-टॉप (चमक-दमक), दौलत मन्दी और व्यापार के मौजूदा सिस्टम वग़ैरह में सूद के एक अहम पार्ट बन जाने से मरऊब हैं, उन्होंने फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु के इरशाद का यह नतीजा निकाला कि रिबा का मफ़्हूम ही ग़ैर-वाज़ेह और अस्पष्ट रह गया था, इसलिये इसमें राय की गुंजाईश है। जिसके ग़लत होने की काफ़ी चीज़ें (दलीलें) सामने आ चुकी हैं। 'अहकामुल-बयान' में अ़ल्लामा इब्ने अ़रबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने उन लोगों पर सख़्त कटाक्ष किया है जिन्होंने इस फ़ारूक़ी इरशाद की बिना पर रिबा की आयतों को मुख़्तसर (संक्षिप्त) और ग़ैर-तफ़सीली कहा था।

अ़ल्लामा इब्ने अ़रबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'अहकामुल-बयान' में फ़रमायाः

اِنْ مَنْ زَعَمَ اَنَّ هٰذِهِ الْاٰيَةَ مُجْمَلَةٌ فَلَمْ يَفْهَمْ مَقَاطِعَ الشَّرِيْعَةِ فَاِنَّ اللّٰهَ تَعَالٰى اَرْسَلَ رَسُوْلَهٗ اِلٰى قَوْمٍ هُوَ مِنْهُمْ بِلُغَتِهِمْ وَاَنْزَلَ عَلَيْهِ كِتَابَهٗ تَيْسِيْرًا مِّنْهُ بِلِسَانِهٖ وَلِسَانِهِمْ وَالرِّبَا فِي اللُّغَةِ الزِّيَادَةُ وَالْمُرَادُ بِهٖ فِي الْاٰيَةِ كُلُّ زِيَادَةٍ لَا يُقَابِلُهَا عِوَضٌ.

"यानी जिसने यह कहा कि यह आयत मुज्मल (मुख़्तसर और ग़ैर-वाज़ेह) है उसने शरीअ़त की वज़ाहतों को नहीं समझा, क्योंकि अल्लाह तआ़ला ने अपने रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ऐसी क़ौम की तरफ़ भेजा कि वह ख़ुद उसी क़ौम में से थे, उन्हीं की ज़बान में भेजा, उनपर आसानी के लिये उन्हीं की ज़बान में अपनी किताब नाज़िल फ़रमाई, और लफ़्ज़ **रिबा** के मायने उनकी ज़बान में ज़्यादती के हैं, और मुराद आयत में वह ज़्यादती है जिसके मुक़ाबले में माल नहीं बल्कि मियाद है।"

और इमाम राज़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने तफ़सीरे कबीर में फ़रमाया कि रिबा की दो क़िस्में हैं- एक उधार का रिबा, दूसरे नक़द बै में ज़्यादा लेने का रिबा। पहली क़िस्म वह है जो जाहिलीयत के ज़माने में मशहूर व परिचित थी और जाहिलीयत के ज़माने के लोग उसका लेन-देन करते थे। और दूसरी क़िस्म वह है जो हदीस ने बयान की, कि फ़ुलाँ-फ़ुलाँ चीज़ों की ख़रीद व बेच में कमी ज़्यादती रिबा (सूद) में दाख़िल है।

और किताब 'अहकामुल-क़ुरआन' में इमाम जस्सास फ़रमाते हैं कि रिबा की दो क़िस्में हैं- एक ख़रीद व बेच के अन्दर, दूसरी बग़ैर ख़रीद व बेच के। और जाहिलीयत के ज़माने के लोगों का रिबा (सूद) यही दूसरी क़िस्म का था, और इसकी परिभाषा यह है कि वह क़र्ज़ जिसमें मियाद के हिसाब से कोई नफ़ा लिया जाये। और यही मज़मून इब्ने रुश्द ने हिदायतुल-मुज्तहिद में लिखा है और क़र्ज़ उधार पर नफ़ा लेने के रिबा का हराम होना क़ुरआन, सुन्नत और उम्मत के इजमा (सर्वसम्मति) से साबित किया है।

इमाम तहावी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'शरह मआ़नियुल-आसार' में इस विषय पर बड़ी तफ़सील से कलाम करते हुए यह बतलाया है कि क़ुरआन में जो रिबा बयान हुआ है उससे स्पष्ट और वाज़ेह तौर पर वह रिबा मुराद है जो उधार वाले क़र्ज़ पर लिया दिया जाता था और उसी को जाहिलीयत (इस्लाम से पहले) के ज़माने में रिबा कहा जाता था। इसके बाद नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बयान और आपकी सुन्नत से दूसरी क़िस्म के रिबा का इल्म हुआ जो ख़रीद व बेच की ख़ास-ख़ास क़िस्मों में कमी-ज़्यादती या उधार करने का नाम है, और इस रिबा (ज़्यादती) के हराम होने पर भी रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुतवातिर हदीसें आई हैं, मगर इस क़िस्म के रिबा की तफ़सीलात पूरी वाज़ेह न होने के सबब इसमें कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को इश्काल (शुब्हा) पेश आया और फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) के इख़्तिलाफ़ात (मतभेद) हुए।

(मआ़नियुल-आसार पेज 232 जिल्द 1)

और हज़रत शाह वलीयुल्लाह रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने "हुज्जतुल्लाहिल-बालिग़ा" में फ़रमाया है कि रिबा एक हक़ीक़ी (वास्तविक) है और एक वह जो रिबा के हुक्म में है। हक़ीक़ी (असली) रिबा उधार वाले क़र्ज़ पर ज़्यादती लेने का नाम है, और रिबा के हुक्म में वह है जिसका बयान हदीस में आया कि कुछ ख़ास चीज़ों की ख़रीद व बेच में ज़्यादती लेने को रिबा कहा गया है। और एक हदीस में जो आया है:

لاربا الا فی النسیة (رواہ البخاری)

यानी रिबा (सूद) सिर्फ़ उधार में है। इसका यही मतलब है कि हक़ीक़ी और असल रिबा जिसको

आ़म तौर पर रिबा समझा और कहा जाता है वह उधार पर नफ़ा लेने का नाम है, उसके अ़लावा जितनी क़िस्में उसके साथ मिली और जुड़ी हुई हैं वे सब हुक्म के एतिबार से रिबा में दाख़िल हैं।

इस तफ़सील से चन्द चीज़ें स्पष्ट हो गईं

अव्वल यह कि क़ुरआन नाज़िल होने से पहले रिबा एक जानी-पहचानी चीज़ थी, उधार क़र्ज़ पर मियाद के हिसाब से ज़्यादती को रिबा कहा जाता था।

दूसरे यह कि क़ुरआन में रिबा (सूद) का हराम होना नाज़िल होते ही सब सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इस रिबा को छोड़ दिया। इसके मायने समझने समझाने में किसी को न इश्काल (शुब्हा) पेश आया न भूल लगी।

तीसरे यह कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने छह चीज़ों के बारे में यह इरशाद फ़रमाया कि उनकी आपस में ख़रीद व बेच में बराबरी शर्त है, कम ज़्यादा होना रिबा (सूद) में दाख़िल है, और उनमें उधार करना भी रिबा में दाख़िल है। ये छह चीज़ें सोना, चाँदी, गेहूँ, जौ, खजूर और अंगूर हैं, और इसी क़ानून के तहत अ़रब में मुरव्वजा (जारी) ख़रीद व बेच की क़िस्मों **मुज़ाबना** और **मुहाक़ला** वग़ैरह को हराम क़रार दिया गया। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इस इरशाद में छह चीज़ों की ख़रीद व बेच में कमी बेशी और उधार को तो स्पष्ट तौर पर रिबा (सूद) में दाख़िल करके हराम क़रार दे दिया था, लेकिन इसमें यह बात बूझने और ग़ौर व फ़िक्र का महल थी कि यह हुक्म इन छह चीज़ों के साथ मख़्सूस है या दूसरी चीज़ों में भी है, और इसका उसूल व क़ायदा क्या है? उस ज़ाब्ते (उसूल व क़ायदे) में फ़ुक़हा (उलेमा) ने अपने-अपने ग़ौर व फ़िक्र और समझ-बूझ से विभिन्न सूरतें तजवीज़ कीं, और चूँकि यह ज़ाब्ता ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बयान न फ़रमाया था इसमें संदेह रहने के सबब हज़रत फ़ारूके आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इस पर दुख व अफ़सोस का इज़हार किया कि काश रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ख़ुद ही इसका कोई ज़ाब्ता (उसूल और क़ायदा) बयान फ़रमा देते तो संदेह व शुब्हे की हालत में इत्मीनान पैदा हो जाता, और फिर यह इरशाद फ़रमाया कि जहाँ रिबा का शुब्हा भी हो उससे बचना चाहिये।

चौथे यह मालूम हुआ कि असली और हक़ीक़ी रिबा जिसको फ़ुक़हा ने क़ुरआन के रिबा या क़र्ज़ के रिबा के नाम से नामित किया है, वही है जो अ़रब में परिचित और प्रचलित था, यानी क़र्ज़ उधार पर मियाद के हिसाब से नफ़ा लेना। दूसरी क़िस्म के रिबा जो हदीस में बतलाये गये वे सब इसी रिबा के साथ जुड़े हुए, शामिल और इसी के हुक्म में हैं, और जो कुछ ख़िलाफ़ व इख़्तिलाफ़ (मतभेद व विवाद) उम्मत में हुआ वह सब रिबा के इसी दूसरी क़िस्म के मामलात में हुआ, पहली क़िस्म का रिबा जो क़ुरआन का रिबा कहलाता है उसके हराम होने में पूरी उम्मते मुहम्मदिया में कभी कोई इख़्तिलाफ़ (मतभेद) नहीं हुआ।

और आजकल जो रिबा इनसानी अर्थव्यवस्था का मदार समझा जाता है और सूद के मसले में जिस पर बहस है वह यही रिबा है जिसकी हुर्मत (हराम होना) क़ुरआन की सात आयतों, चालीस से ज़्यादा हदीसों और उम्मत के इजमा (एक राय होने और सहमति) से साबित है।

रिबा की दूसरी क़िस्म जो ख़रीद व बेच के ज़िमन में होती है, न उसका रिवाज आ़म है न उसमें

कोई बहस करने की ज़रूरत है।

यहाँ तक यह बात वाज़ेह हो गई कि क़ुरआन व सुन्नत में रिबा (सूद) की हक़ीक़त क्या है जो सूद के मसले की पहली बात है।

सूद के हराम होने की हिक्मत व मस्लेहत

इसके बाद दूसरी बहस इसकी है कि रिबा (सूद) की हुर्मत (हराम होने) व मनाही किस हिक्मत व मस्लेहत पर आधारित है और इसमें वो कौनसे रूहानी या आर्थिक नुक़सानात हैं जिनकी वजह से इस्लाम ने इसको इतना बड़ा गुनाह क़रार दिया है।

इस जगह पहले यह समझ लेना ज़रूरी है कि दुनिया की सारी मख़्लूक़ात और उनके मामलात में ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसमें कोई भलाई या फ़ायदा न हो। साँप, बिच्छू, भेड़िया, शेर और संखिया जैसे क़ातिल ज़हर में भी इनसान के लिये हज़ारों फ़ायदे हैं:

कोई बुरा नहीं क़ुदरत के कारख़ाने में

चोरी, डाका, बदकारी, रिश्वत, इनमें कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसमें कुछ न कुछ फ़ायदा न हो, मगर हर मज़हब व मिल्लत और हर मक्तबे फ़िक्र (विचारधारा) में यह देखा जाता है कि जिस चीज़ के फ़ायदे ज़्यादा और नुक़सान कम हैं उसको नाफ़े व मुफ़ीद कहा जाता है, और जिसकी ख़राबियाँ और नुक़सानात ज़्यादा और नफ़े कम हैं उसको नुक़सानदेह और बेकार समझा जाता है। क़ुरआने करीम ने भी शराब और जुए को हराम क़रार देते हुए इसका ऐलान फ़रमाया कि इनमें बड़े गुनाह भी हैं और लोगों के कुछ फ़ायदे भी, मगर इनके गुनाह का वबाल इनके फ़ायदों के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा है, इसलिये इन चीज़ों को अच्छा या मुफ़ीद नहीं कहा जा सकता है बल्कि इनको निहायत नुक़सानदेह और तबाह करने वाली समझकर इनसे बचना लाज़िम है।

रिबा यानी **सूद** का भी यही हाल है, इसमें सूदख़ोर के लिये कुछ वक़्ती नफ़ा ज़रूर नज़र आता है लेकिन इसका दुनिया व आख़िरत का वबाल उस नफ़े के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा सख़्त है।

हर चीज़ के नफ़े व नुक़सान या अच्छाईयों व बुराईयों की तुलना करने में यह बात भी हर अक़्लमन्द के नज़दीक ग़ौर करने के क़ाबिल होती है कि अगर किसी चीज़ में नफ़ा महज़ वक़्ती और आपातकालीन हो और नुक़सान उसका देरपा या हमेशा का हो तो उसको कोई अक़्लमन्द मुफ़ीद चीज़ों की फ़ेहरिस्त (सूची) में शामिल नहीं कर सकता। इसी तरह अगर किसी चीज़ का नफ़ा शख़्सी और व्यक्तिगत हो और उसका नुक़सान पूरी मिल्लत और जमाअत को पहुँचता हो तो उसको भी कोई अक़्लमन्द इनसान मुफ़ीद नहीं कह सकता। चोरी और डाके में चोर डाकू का तो नफ़ा (फ़ायदा) खुला हुआ है मगर वह पूरी मिल्लत के लिये नुक़सानदेह और उनके अमन व सुकून को बरबाद करने वाला है, इसी लिये कोई इनसान चोरी और डाके को अच्छा नहीं कहता।

इस तमहीद के बाद सूद के मसले पर नज़र डालिये तो इसमें ज़रा सा ग़ौर करने से मालूम होगा कि इसमें सूदख़ोर के वक़्ती और हंगामी फ़ायदे के मुक़ाबले में उसका रूहानी और अख़्लाक़ी नुक़सान इतना शदीद है कि वह उसको इनसानियत से निकाल देता है, और यह कि उसका जो वक़्ती नफ़ा है वह भी सिर्फ़ उसकी ज़ात का नफ़ा है, उसके मुक़ाबले में पूरी मिल्लत को ज़बरदस्त नुक़सान और

आर्थिक संकट का शिकार होना पड़ता है। लेकिन दुनिया का हाल यह है कि जब इसमें कोई चीज़ रिवाज पा जाती है तो उसकी ख़राबियाँ नज़रों से ओझल हो जाती हैं और सिर्फ़ उसके फ़ायदे सामने रह जाते हैं, अगरचे वो फ़ायदे कितने ही मामूली, घटिया और वक़्ती हों, उसके नुक़सानात की तरफ़ ध्यान नहीं जाता अगरचे वे कितने ही ज़्यादा और आ़म हों।

रस्म व रिवाज इनसानी तबीयतों के लिये एक क्लोरोफ़ार्म है जो उसको बेहिस बना देता है। बहुत कम अफ़राद होते हैं जो प्रचलित रस्म व रिवाज पर तहक़ीक़ी नज़र डालकर यह समझने की कोशिश करें कि इसमें फ़ायदे कितने हैं और नुक़सान कितना, बल्कि अगर किसी के सचेत करने से उसके नुक़सानात सामने भी आ जायें तो रस्म व रिवाज की पाबन्दी उसको सही रास्ते पर नहीं आने देती।

सूद व रिबा इस ज़माने में एक वबाई मर्ज़ (महामारी की तरह फैलने वाले रोग) की सूरत इख़्तियार कर चुका है और इसका रिवाज सारी दुनिया को अपनी लपेट में ले चुका है। इसने इनसानी फ़ितरत का ज़ायक़ा बदल दिया है कि कड़वे को मीठा समझने लगी, और जो चीज़ पूरी इनसानियत के लिये आर्थिक बरबादी का सबब है उसको आर्थिक समस्या का हल समझा जाने लगा। आज अगर कोई विचारक और विद्वान इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता है तो उसको दीवाना समझा जाता है।

यह सब कुछ है लेकिन वह डॉक्टर डॉक्टर नहीं बल्कि इनसानियत का डाकू है जो किसी मुल्क में वबा फैल जाने को और इलाज के ग़ैर-प्रभावी होने को देखने की बिना पर अब यह तय करे कि लोगों को यह समझाये कि यह बीमारी बीमारी ही नहीं बल्कि ऐन शिफ़ा और ऐन राहत है। माहिर डॉक्टर का काम ऐसे वक़्त में भी यही है कि लोगों को उस रोग और उसके नुक़सान से आगाह करता रहे और इलाज की तदबीरें बताता रहे।

अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम मख़्लूक़ के सुधार के ज़िम्मेदार होकर आते हैं, वे कभी इसकी परवाह नहीं करते कि कोई उनकी बात सुनेगा या नहीं, वे अगर लोगों के सुनने और मानने का इन्तिज़ार किया करते तो सारी दुनिया कुफ़्र व शिर्क ही से आबाद रहती, कलिमा ला इला-ह इल्लल्लाहु का मानने वाला उस वक़्त कौन था जब ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इसकी तब्लीग़ व तालीम का हुक्म अल्लाह की तरफ़ से मिला था?

सूद व रिबा को अगरचे आजकी अर्थव्यवस्था में रीढ़ की हड्डी समझा जाने लगा है लेकिन हक़ीक़त वह है जो आज भी बाज़ यूरोप के विद्वानों और विचारकों ने तस्लीम की कि वह अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी नहीं बल्कि रीढ़ की हड्डी में पैदा हो जाने वाला एक कीड़ा है जो उसको खा रहा है। मगर अफ़सोस है कि आजकल के इल्म व फ़न वाले भी कभी रस्म और रिवाज के तंग दायरे से आज़ाद होकर इस तरफ़ नज़र नहीं करते और सैंकड़ों बरस के तजुर्बे भी उनको इस तरफ़ मुतवज्जह (आकर्षित) नहीं करते कि सूद व रिबा का लाज़िमी नतीजा यह है कि अल्लाह की आ़म मख़्लूक़ और तमाम मिल्लत फ़क्र व फ़ाक़े और आर्थिक संकट का शिकार हो, और वे ग़रीब से और ज़्यादा ग़रीब होते चले जायें और चन्द सरमायेदार पूरी मिल्लत के माल से फ़ायदा उठाकर या यूँ कहिये कि मिल्लत का ख़ून चूसकर अपना बदन बढ़ाते और पालते चले जायें। और हैरत है कि जब कभी उन हज़रात के सामने इस हक़ीक़त को बयान किया जाता है तो इसके झुठलाने के लिये हमें

अमेरिका और इंग्लैंड के बाज़ारों में लेजाकर सूद की बरकतों (फ़ायदों) का मुशाहदा कराना चाहते हैं और यह दिखलाना चाहते हैं कि ये लोग सूद व रिबा की बदौलत कैसे फले और फूले हैं। लेकिन इसकी मिसाल तो ऐसी है जैसे कोई आदम ख़ोरों की किसी क़ौम और उनके अ़मल की बरकतों को दिखलाने के लिये आपको आदम ख़ोरों के मौहल्ले में लेजाकर यह दिखलाये कि ये कितने मोटे ताज़े और तन्दुरुस्त हैं, और इससे यह साबित करे कि उनका यह अ़मल बेहतरीन अ़मल है।

लेकिन उसको किसी समझदार आदमी से साबक़ा पड़े तो वह कहेगा कि तुम आदम ख़ोरों के अ़मल की बरकतें (बढ़ोतरी और ज़्यादती) आदम ख़ोरों के मौहल्ले में नहीं दूसरे मौहल्लों में जाकर देखो, जहाँ सैंकड़ों हज़ारों मुर्दे पड़े हुए हैं जिनका ख़ून और गोश्त खाकर ये दरिन्दे पले हैं। इस्लाम और इस्लामी शरीअ़त कभी ऐसे अ़मल को दुरुस्त और मुफ़ीद नहीं मान सकती जिसके नतीजे में पूरी इनसानियत और मिल्लत तबाही का शिकार हो, और कुछ अफ़राद या उनके जत्थे फूलते-फलते चले जायें।

सूद व रिबा की आर्थिक ख़राबियाँ

सूद व रिबा में अगर कोई दूसरा ऐब भी इसके सिवा न होता कि इसके नतीजे में चन्द अफ़राद का नफ़ा और पूरी इनसानियत का नुक़सान है तो यही इसकी मनाही और क़ाबिले नफ़रत होने के लिये काफ़ी था, हालाँकि इसमें इसके अ़लावा और भी आर्थिक ख़राबियाँ और रूहानी तबाहकारियाँ पाई जाती हैं।

पहले इसको समझिये कि सूद के ज़रिये मिल्लत की तबाही और ख़ास अफ़राद का नफ़ा क्योंकर है। सूद व रिबा के महाजनी और पुराने तरीक़ों में तो ऐसा भोंडापन था कि आ़म मिल्लत का नुक़सान और किसी ख़ास फ़र्द का नफ़ा हर मोटी अ़क्ल वाले को भी समझ में आ जाता था, मगर आजकल की नई रोशनी जिसको नई अंधेरी कहना ज़्यादा मुनासिब है, इसने जिस तरह शराब को मशीनों में साफ़ करके, चोरी और डाके की नई-नई शक्लें ईजाद करके, बदकारी व बेहयाई के नये-नये ढंग निकाल करके सब को ऐसा सभ्य और मुहज़्ज़ब बना लिया है कि ऊपरी नज़र वालों को इसकी अन्दुरूनी ख़राबियाँ नज़र न आयें, इसी तरह रिबा और सूद के लिये बजाय शख़्सी और निजी दुकानों के साझा कम्पनियाँ बना ली हैं जिनको बैंक कहा जाता है, और अब दुनिया की आँखों में धूल झोंकने के लिये यह बतलाया जाता है कि रिबा के इस नये तरीक़े से पूरी मिल्लत का फ़ायदा है, क्योंकि अ़वाम जो अपने रुपये से तिजारत करना नहीं जानते या सरमाये की कमी की बिना पर नहीं कर सकते, उन सब का रुपया बैंकों में जमा होकर उनमें से हर एक को चाहे कम ही सही कुछ न कुछ नफ़ा सूद के नाम से मिल जाता है, और बड़े ताजिरों को यह मौक़ा उपलब्ध कराते हैं कि वे बैंकों से सूदी क़र्ज़ लेकर बड़ी तिजारत करके फ़ायदा उठाते हैं, इस तरह सूद ऐसी मुबारक चीज़ बन गई कि सारी मिल्लत के अफ़राद को इससे नफ़ा पहुँच रहा है।

लेकिन ज़रा इन्साफ़ से काम लिया जाये तो यह वह धोखा है जो शराब की गंदी भट्टियों को साफ़ सुथरे होटलों में और अ़स्मत फ़रोशी के अड्डों को सिनेमाओं और नाईट क्लबों में तब्दील करके ज़हर को तिर्याक़ (अमृत) और नुक़सान को नफ़ा बनाकर दिखलाने के लिये अ़मल में लाई गई है और जिस

तरह समझदार पर यह बात रोशन है कि अख़्लाक़ को बरबाद करने वाले अपराध को नया लिबास पहनाने का नतीजा इसके सिवा नहीं कि ये अपराध पहले से ज़्यादा हो गये और इनका ज़हर पहले से ज़्यादा तेज़ हो गया। इसी तरह सूद व रिबा की इस नई शक्ल ने सूद के चन्द आने प्रति फ़ीसद अवाम के मुँह को लगाकर एक तरफ़ उनको अपने जुर्म का शरीक कर लिया और दूसरी तरफ़ अपने लिये इस जुर्म के अमल का ग़ैर-महदूद (असीमित) मैदान फ़राहम कर लिया।

कौन नहीं जानता कि यह चन्द आने फ़ीसद का सूद जो सेविंग बैंकों और डाकख़ानों से लोगों को मिलता है, यह किसी तरह उनकी रोज़ी-रोटी के लिये काफ़ी नहीं हो सकता, इसलिये वे मजबूर हैं कि अपना पेट भरने के लिये कोई मज़दूरी या नौकरी तलाश करें। तिजारत की तरफ़ अव्वल तो उनकी नज़र ख़ुद नहीं जाती और अगर किसी को इस तरफ़ तवज्जोह भी हो जाये तो पूरी मिल्लत का सरमाया बैंकों में जमा होकर जो सूरत तिजारत की बन गई है उसमें किसी छोटे सरमाये वाले का दाख़िल होना ख़ुद अपनी मौत को दावत देने से कम नहीं, क्योंकि बैंक कोई बड़ा सरमाया क़र्ज़ पर सिर्फ़ उसी को दे सकते हैं जिसकी बाज़ार में अपनी साख हो और बड़ा कारोबार हो। दस लाख के मालिक को एक करोड़ क़र्ज़ मिल सकता है, वह अपने ज़ाती रुपये के मुक़ाबले में दस गुना ज़्यादा की तिजारत चला सकता है, और थोड़े सरमाये वाले की न कोई साख होती है न बैंक उस पर एतिमाद करते हैं कि उनको दस गुना ज़्यादा क़र्ज़ दे दें। एक हज़ार की मालियत वाले को दस हज़ार तो क्या एक हज़ार मिलना भी मुश्किल है, और जबकि एक शख़्स जो एक लाख की मिल्कियत रखने वाला हो नौ लाख बैंक का सरमाया लगाकर दस लाख की तिजारत करता है, और फ़र्ज़ कर लीजिये कि उसको एक रुपया फ़ीसद नफ़ा होता है तो गोया उसको अपने एक लाख पर दस फ़ीसद नफ़ा हुआ, इसके मुक़ाबले में अगर कोई शख़्स अपने सिर्फ़ ज़ाती रुपये से एक लाख की तिजारत करता है उसको एक लाख पर सिर्फ़ एक ही फ़ीसद का नफ़ा होगा, जो उसके ज़रूरी ख़र्चों के लिये भी काफ़ी न होंगे।

उधर मार्किट में बड़े सरमाये वालों को ख़ास सामान जिस रेट और रियायत के साथ मिलता है वह छोटे सरमायेदारों को मयस्सर नहीं आ सकता, इसलिये छोटे सरमाये वाला बेदम और मोहताज होकर रह जाता है। और अगर उसकी शामत आई और उसने भी किसी ऐसी तिजारत में हाथ डाल दिया तो बड़े सरमाये वाला उसको अपनी ख़ुदाई का शरीक समझकर कुछ अपनी गिरह से नुक़सान उठाकर भी बाज़ार को ऐसा डाउन कर देता है कि छोटे सरमाये वाला असल और नफ़े सब से हाथ धो बैठता है। इसका नतीजा यह है कि तिजारत सिर्फ़ उन चन्द अफ़राद में सीमित होकर रह जाती है जो बड़े सरमायेदार हैं।

1. यह मिल्लत पर कितना बड़ा ज़ुल्म है कि सारी मिल्लत असली तिजारत से मेहरूम होकर सिर्फ़ बड़े सरमायेदारों की मोहताज बन जाये, उनको वह जितना नफ़ा देना चाहें बख़्शिश के तौर पर दे दें।

2. और दूसरे इससे बड़ा नुक़सान जिसकी लपेट में पूरा मुल्क आ जाता है यह है कि ऐसी सूरत में चीज़ों के रेट पर उन बड़े सरमायेदारों को क़ब्ज़ा बन जाता है, वे महंगे से महंगा फ़रोख़्त करके अपनी गिरह मज़बूत कर लेते और पूरी मिल्लत की गिरहें खुलवा लेते हैं और क़ीमत बढ़ाने के लिये जब चाहें माल की फ़रोख़्त बन्द कर देते हैं। अगर सारी मिल्लत का सरमाया बैंकों के ज़रिये खींचकर उन ख़ुदग़र्ज़ लोगों की परवरिश न की जाती और ये मजबूर होते कि सिर्फ़ अपने ज़ाती सरमाये से

तिजारत करें, तो न छोटे सरमाये वालों को यह मुसीबत पेश आती और न ये ख़ुदग़र्ज़ दरिन्दे पूरी तिजारत के नाख़ुदा (मालिक) बनते। छोटे सरमाये वालों की तिजारत के फ़ायदे सामने आते तो दूसरों का हौसला बढ़ता, तिजारत का कारोबार आम होता, जिससे हर एक का स्टॉफ़ अलग होता, जिससे हज़ारों ज़रूरतमन्दों की रोज़ी पैदा होती और तिजारती नफ़ा भी आम होता और चीज़ों के सस्ता होने पर भी यक़ीनन असर पड़ता, क्योंकि आपसी मुक़ाबला (कम्पटिशन) ही ऐसी चीज़ है जिसके ज़रिये कोई आदमी इस पर तैयार होता है कि अपना नफ़ा कम कर ले। इस अ़य्यारी मक्कारी के रास्ते ने पूरी क़ौम को एक घातक बीमारी लगा दी और दूसरे उसकी ज़ेहनियत (सोच और मानसिकता) ख़राब कर दी कि इस बीमारी ही को शिफ़ा समझने लगे।

3. बैंकों के सूद से मिल्लत का एक तीसरा आर्थिक नुक़सान और देखिये कि जिस शख़्स का सरमाया दस हज़ार है और वह बैंक से सूदी क़र्ज़ लेकर एक लाख का व्यापार करता है, अगर कहीं उसका सरमाया डूब गया और तिजारत में उसको नुक़सान पहुँच गया और वह दीवालिया हो गया तो ग़ौर कीजिये कि नुक़सान सिर्फ़ दस फ़ीसद तो उस पर पड़ा बाक़ी नब्बे फ़ीसद नुक़सान पूरी मिल्लत का हुआ, जिनका सरमाया बैंक से लेकर उसने लगाया था। अगर बैंक ने दीवालिया होने वाले के नुक़सान को फ़िलहाल ख़ुद ही बरदाश्त कर लिया तो यह ज़ाहिर है कि बैंक तो क़ौम की जेब है, उसका नुक़सान परिणाम स्वरूप क़ौम पर आकर पड़ेगा, जिसका हासिल यह हुआ कि सरमायेदार को जब तक नफ़ा होता रहा तो नफ़े का वह तन्हा मालिक था, उसमें मिल्लत के लिये कुछ न था, या बहुत मामूली था, और जब नुक़सान आया तो नब्बे फ़ीसद नुक़सान पूरी मिल्लत पर पड़ गया।

4. सूद से एक आर्थिक नुक़सान यह भी है कि सूदख़ोर जब घाटे में आ जाये तो फिर वह पनपने के क़ाबिल नहीं रहता, क्योंकि इतना सरमाया तो था नहीं जिसके नुक़सान को बरदाश्त कर सके, नुक़सान के वक़्त उस पर दोहरी मुसीबत होती है- एक तो अपना नफ़ा और सरमाया गया और ऊपर से बैंक के क़र्ज़ में दब गया, जिसकी अदायेगी के लिये उसके पास कोई साधन नहीं। और बिना सूदी कारोबार में अगर सारा सरमाया भी किसी वक़्त चला जाये तो फ़क़ीर ही होगा, क़र्ज़दार तो न होगा।

सन् 1954 ई. में पाकिस्तान में रूई के व्यापार पर क़ुरआनी इरशाद के मुताबिक़ महाक़ की आफ़त आई और हुकूमत ने करोड़ों रुपये का नुक़सान उठाकर ताजिरों को संभाला, मगर किसी ने इस पर ग़ौर नहीं किया कि वह सब सूद की नहूसत थी, क्योंकि कॉटन (रूई) के ताजिरों ने उस कारोबार में ज़्यादातर सरमाया बैंकों का लगाया हुआ था, अपना सरमाया बराये नाम था। अल्लाह के हुक्म और उसके फ़ैसले से रूई का बाज़ार इतना गिर गया कि उसके दाम एक सौ पच्चीस से गिरकर दस पर आ गये, ताजिर इस क़ाबिल न रहे कि बैंकों में मार्जन पूरी करने के लिये रुपया वापस दें, मजबूर होकर मार्केट बन्द कर दी गई और हुकूमत से फ़रियाद की। हुकूमत ने दस के बजाय नब्बे के दाम लगाकर ख़ुद माल ख़रीदा और करोड़ों रुपये का नुक़सान बरदाश्त करके उन ताजिरों को दीवालिया होने से बचा लिया। हुकूमत का रुपया किसका था? वही बेचारी ग़रीब मिल्लत व क़ौम का। ग़र्ज़ कि बैंकों के कारोबार का खुला हुआ नतीजा यह है कि पूरी मिल्लत के सरमाये से चन्द अफ़राद नफ़ा उठाते हैं और जहाँ नुक़सान हो जाये तो वह पूरी क़ौम व मिल्लत पर पड़े।

अपने को आगे बढ़ाने और मिल्लत को तबाह करने की एक और चाल

सूद व रिबा की मिल्लत कुशी (क़ौम को बरबाद करने) और चन्द लोगों को फ़ायदा पहुँचाने का मुख़्तसर सा नक़्शा आपके सामने आ चुका है। इसके साथ एक और होशियारी और चालाकी देखिये कि सूदख़ोरों ने जब अपने तजुर्बे से भी इस चीज़ को महसूस किया जो क़ुरआन का इरशाद है:

يَمْحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا

यानी "सूद के माल में महाक़ की आफ़तें आना लाज़िमी हैं" जिसके नतीजे में दीवालिया होना पड़ता है, तो इन आफ़तों से बचने के लिये दो मुस्तकिल इदारे बनाये- एक बीमा (इन्श्योरेंस) दूसरे सट्टे का बाज़ार। क्योंकि तिजारत में नुक़सान आने की दो वजह हो सकती हैं एक कोई आसमानी आफ़त कि जहाज़ डूब गया या जल गया, या कोई और ऐसी ही आफ़त आ गई। दूसरे यह कि सामान का भाव उसकी क़रीद की क़ीमत से कम हो गया। इन दोनों सूरतों में लगा हुआ सरमाया चूँकि अपना नहीं बल्कि मिल्लत का साझा सरमाया है इसलिये उनका नुक़सान कम और मिल्लत का ज़्यादा है, मगर उन्होंने इस थोड़े से नुक़सान को भी मिल्लत ही के सर पर डालने के लिये एक तो बीमा कम्पनियाँ खोलीं जिसमें बैंकों की तरह पूरी मिल्लत का सरमाया जमा रहता है और जब किसी आसमानी व क़ुदरती आफ़त से उन सूद ख़ोरों पर कोई नुक़सान आता है तो बीमे के ज़रिये वह पूरा नुक़सान भी मिल्लत के साझा सरमाये पर डाल देते हैं।

लोग समझते हैं कि बीमा कम्पनियाँ ख़ुदा की रहमत हैं, डूबते को सहारा देती हैं, लेकिन उनकी हक़ीक़त को देखें तो यहाँ भी वही फ़रेब है कि अचानक आने वाली आफ़तों और घटनाओं के वक़्त इमदाद का लालच देकर मिल्लत का सरमाया जमा किया गया, मगर उससे भारी रक़मों का फ़ायदा तो सिर्फ़ ऊँचे सरमायेदारों को मिलता है जो कई बार ख़ुद ही अपनी घिसी-पिटी और पुरानी मोटर को आग लगाकर या कहीं टकराकर और बीमा कम्पनियों से रक़म लेकर नई मोटर ख़रीदना चाहते हैं, सौ में से एक दो कोई ग़रीब भी ऐसा होता होगा जिसको नागहानी मौत के सबब कुछ पैसे मिल जायें।

और दूसरी क़िस्म यानी भाव घट जाने के ख़तरे से बचने के लिये सट्टे का बाज़ार गर्म किया, उस सट्टे के ज़रिये मिल्लत के तमाम अफ़राद को प्रभावित किया ताकि जो नुक़सान उनको क़ीमत घट जाने की वजह से होने वाला था वह फिर मिल्लत पर मुन्तकिल कर दें।

इस मुख़्तसर बयान में आपने इतना समझ लिया होगा कि बैंकों का सूद और उसकी तिजारत पूरी इनसानियत के लिये फ़क्र व फ़ाक़े और आर्थिक परेशानी का कारण और सबब है, हाँ चन्द मालदार अफ़राद के मालों में इससे इज़ाफ़ा भी होता है, जिसका ख़ुलासा यह है कि मिल्लत बिगड़ती है और चन्द अफ़राद बनते हैं, और मुल्क का सरमाया सिमट कर उनके हाथों में आ जाता है। आम हुकूमतों ने इस बड़ी ख़राबी को महसूस तो किया लेकिन इसका इलाज यह तजवीज़ किया कि बड़े सरमायेदारों के लिये इन्कम टैक्स की दर बढ़ा दी, यहाँ तक कि आख़िरी दर एक रुपये में से साढ़े पन्द्रह आने कर दी गई, ताकि सरमाया उनके पास से मुन्तकिल होकर फिर क़ौमी ख़ज़ाने में पहुँच

जाये। लेकिन सब को मालूम है कि इस क़ानून के नतीजे में आम तौर पर कारख़ानों के हिसाब फ़र्ज़ी और जाली बनने लगे और बहुत सा सरमाया हुकूमत से छुपाने के लिये फिर दफ़ीनों (छुपी रक़मों यानी नम्बर दो की दौलत) की शक्ल में मुन्तक़िल होने लगा।

ख़ुलासा यह है कि दौलत सिमट कर क़ौम के चन्द अफ़राद में मुक़ैयद (जमा) हो जाने का ज़बरदस्त नुक़सान मुल्क के आर्थिक और माली हालात के लिये सब पर वाज़ेह है, इसी लिये इन्कम टैक्स की दर इतनी ज़्यादा बढ़ाई जाती है, लेकिन तजुर्बा गवाह है कि यह तदबीर बीमारी का इलाज साबित न हुई जिसकी बड़ी वजह यह है कि बीमारी के असली सबब को नहीं पहचाना गया, इसलिये इलाज की मिसाल यह हो गई कि:

दर ब-बस्त व दुश्मन अन्दर ख़ाना बूद

कि दरवाज़ा बन्द कर दिया और दुश्मन को घर के अन्दर ही रहने दिया।

दौलत बड़े सरमायेदारों की तरफ़ सिमटने का असली सबब सिर्फ़ सूदी कारोबार और क़ौमी सरमाये से ख़ास-ख़ास अफ़राद का बेजा नफ़ा उठाना है। जब तक इस्लाम की तालीमात के मुताबिक़ इसको बन्द न किया जाये, और इसको रिवाज न दिया जाये कि हर शख़्स सिर्फ़ अपने सरमाये से तिजारत करे उस वक़्त तक इस बीमारी का इलाज नहीं हो सकता।

एक शुब्हा और उसका जवाब

इस जगह यह सवाल पैदा होता है कि बैंकों के ज़रिये पूरी क़ौम का सरमाया जमा होकर कुछ न कुछ तो फ़ायदा अवाम को भी मिला चाहे वह कितना ही कम हो और बड़े सरमायेदारों ने उससे ज़्यादा फ़ायदा हासिल कर लिया हो, लेकिन अगर यह बैंकों में सरमाया जमा करने का तरीक़ा न हो तो इसका नतीजा वही होगा जो पहले ज़माने में था कि लोगों का सरमाया दफ़ीनों और ख़ज़ीनों की शक्ल में ज़मीन के अन्दर रहा करता था, जिससे न उनको फ़ायदा होगा न किसी दूसरे शख़्स को।

इसका जवाब यह है कि इस्लाम ने जिस तरह सूद को हराम क़रार देकर उसका दरवाज़ा बन्द किया है कि पूरी क़ौम की दौलत सिमट कर ख़ास-ख़ास सरमायेदारों में महदूद (सीमित) हो जाये, इसी तरह ज़कात का फ़रीज़ा सरमाया टैक्स की सूरत में आयद करके हर मालदार को इस पर मजबूर कर दिया है कि वह अपने सरमाये को जाम हालात में न रखे बल्कि तिजारत और कारोबार में लगाये क्योंकि ज़कात सरमाया टैक्स की सूरत में होने की बिना पर अगर कोई शख़्स अपना रुपया या सोना चाँदी दफ़ीना करके रखता है तो हर साल उसका चालीसवाँ हिस्सा ज़कात में निकलते निकलते सरमाया फ़ना हो जायेगा, इसलिये हर समझदार इनसान इस पर मजबूर होगा कि सरमाये को काम में लगाकर उससे फ़ायदा उठाये, दूसरों को फ़ायदा पहुँचाये और उसी नफ़े में से ज़कात अदा करे।

ज़कात का फ़रीज़ा एक हैसियत से तिजारत की तरक़्क़ी का ज़मानती है

इससे यह भी मालूम हो गया कि ज़कात का फ़रीज़ा अदा करने में जैसे यह अज़ीमुश्शान फ़ायदा

छुपा है कि क़ौम के ग़रीब व मिस्कीन लोगों की इमदाद हो, इसी तरह मुसलमानों के आर्थिक हालात को दुरुस्त करने के लिये भी तिजारत की तरग़ीब का यह फ़रीज़ा एक बेहतरीन ज़रिया है, क्योंकि हर इनसान जब यह देखेगा कि नक़्द सरमाये को बन्द रखने का नतीजा यह है कि नफ़ा तो कुछ हुआ नहीं और साल के ख़त्म पर चालीसवाँ हिस्सा कम हो गया, तो ज़रूर उसको इस तरफ़ तवज्जोह करनी पड़ेगी कि इस माल को किसी तिजारत पर लगाये। और दूसरी तरफ़ चूँकि सूद है, रुपया चलाना हराम ठहरा तो तिजारत की यह सूरत न रहेगी कि लाखों इनसानों के सरमाये से सिर्फ़ एक इनसान तिजारत करे, बल्कि हर मालदार ख़ुद तिजारत में आने की फ़िक्र करेगा, और जबकि बड़े सरमायेदार भी सिर्फ़ अपने ही सरमाये से तिजारत करेंगे तो छोटे सरमाये वालों को तिजारत में वो मुश्किलें पेश न आयेंगी जो बैंकों से सूदी रुपया लेकर बड़ी तिजारत चलाने की सूरत में पेश आती हैं। इस तरह पूरे मुल्क में तिजारत और उसके फ़ायदे आम होंगे और उसके नतीजे में मुल्क के ग़रीबों व फ़क़ीरों को फ़ायदा पहुँचेगा।

सूद की रूहानी बीमारियाँ

यहाँ तक सूद की आर्थिक और माली तबाहकारी का ज़िक्र था, अब सुनिये कि सूदी कारोबार इनसान के अख़्लाक़ और रूहानी कैफ़ियतों पर कैसे बुरा प्रभाव डालता है।

1. इनसानी अख़्लाक़ में सबसे बड़ा जौहर ईसार व सख़ावत (अपनी ज़रूरत पर दूसरे की ज़रूरत को तरजीह देने और दान-पुन) का है, कि ख़ुद तकलीफ़ उठाकर दूसरों को राहत पहुँचाने का जज़्बा हो। सूद के कारोबार का लाज़िमी असर यह होता है कि यह जज़्बा फ़ना हो जाता है, सूदख़ोर अपने पास से किसी को नफ़ा पहुँचाना तो क्या दूसरे को अपनी कोशिश और अपने सरमाये से अपने बराबर आता नहीं देख सकता।

2. वह मुसीबत के मारे पर रहम खाने के बजाय उसकी मुसीबत से नाजायज़ फ़ायदा उठाने की फ़िक्र में रहता है।

3. सूदख़ोरी के नतीजे में माल की हिर्स (लालच और हवस) इतनी बढ़ जाती है कि उसमें मस्त होकर अपने भले और बुरे को भी नहीं पहचानता, उसके बुरे अन्जाम से बिल्कुल ग़ाफ़िल हो जाता है।

क्या सूद के बग़ैर कोई कारोबार नहीं चल सकता?

रिबा (सूद) की हक़ीक़त और उसकी दीनी व दुनियावी ख़राबियों का बयान किसी क़द्र तफ़सील से आ चुका है। अब तीसरी बहस यह बाक़ी है कि रिबा की आर्थिक और रूहानी ख़राबियाँ और क़ुरआन व सुन्नत में इसकी सख़्त हुर्मत व मनाही तो वाज़ेह हो गई लेकिन मौजूदा दौर में जबकि रिबा (सूद) ही तिजारत का अहम हिस्सा और अनिवार्य अंग बना हुआ है, सारी दुनिया के कारोबार इसी पर चल रहे हैं, इससे निजात हासिल करने की तदबीर क्या है। बैंक सिस्टम को छोड़ देना इस ज़माने में गोया तिजारत को बन्द कर देना है।

इसका जवाब यह है कि जब कोई बीमारी आ़म होकर वबा की सूरत इख़्तियार कर ले तो इलाज मुआ़लजा दुश्वार हो जाता है लेकिन बेकार नहीं होता, हालात के सुधार की कोशिशें अन्जामकार

कामयाब होती हैं, अलबत्ता सब्र व जमाव और हिम्मत से काम लेने की ज़रूरत होती है। क़ुरआने करीम ही में अल्लाह तआ़ला का यह भी इरशाद है:

مَا جَعَلَ عَلَيْكُمْ فِى الدِّيْنِ مِنْ حَرَجٍ. (٧٨:٢٢)

"यानी अल्लाह तआ़ला ने दीन के मामले में तुम पर कोई तंगी नहीं डाली।"

इसलिये ज़रूरी है कि रिबा (सूद) से बचने का कोई ऐसा रास्ता ज़रूर होगा जिसमें आर्थिक और माली नुक़सान भी न हो, अन्दरूनी और बाहरी तिजारत के दरवाज़े भी बन्द न हों और रिबा (सूद) से निजात भी हो जाये।

इसमें पहली बात तो यही है कि ऊपरी नज़र में बैंकिंक के मौजूदा उसूल को देखते हुए आ़म तौर पर यह समझा जाता है कि बैंक सिस्टम का मदार ही सूद पर है, इसके बग़ैर बैंक चल ही नहीं सकते, लेकिन यह ख़्याल कतई सही नहीं, सूद के बग़ैर भी बैंक सिस्टम इसी तरह क़ायम रह सकता है बल्कि इससे बेहतर और लाभदायक व मुफ़ीद सूरत में आ सकता है, अलबत्ता इसके लिये ज़रूरत है कि शरीअ़त के माहिर कुछ हज़रात और बैंक सिस्टम के माहिर कुछ लोगों के मश्विरे और सहयोग से उसके उसूल नये सिरे से तैयार करें तो कामयाबी कुछ दूर नहीं, और जिस दिन बैंक सिस्टम शरई उसूल पर आ गया तो इन्शा-अल्लाह तआ़ला दुनिया देख लेगी कि इसमें पूरी मिल्लत व क़ौम की कैसी फ़लाह (भलाई और कामयाबी) है। उन उसूल व क़ायदों की वज़ाहत का यह मौक़ा नहीं, जिनकी बिना पर बैंक सिस्टम बग़ैर रिबा (सूद) के चलाया जा सकता है।

नोटः- अहक़र ने चन्द उलेमा के मश्विरे से बिना सूद की बैंकारी का मसौदा अ़रसा हुआ तैयार कर भी दिया था और बैंकारी के कुछ माहिर हज़रात ने मौजूदा दौर में उसको क़ाबिले अ़मल तस्लीम भी कर लिया था और कुछ हज़रात ने उसको शुरू भी करना चाहा मगर अभी तक आ़म ताजिरों की तवज्जोह इस तरफ़ न होने के सबब और हुकूमत की तरफ़ से उसको मन्ज़ूरी हासिल न होने के सबब वह चल नहीं सका।

रिबा और सूद की एक ज़रूरत कुछ तिजारती ग़र्ज़ों के लिये होती है, इसका इन्तिज़ाम तो बैंक के मौजूदा उसूल में तरमीम (संशोधन) के ज़रिये हो जायेगा, और दूसरी ज़रूरत सूद व रिबा में मुब्तला होने की फ़क़ीर व हाजतमन्द लोगों की अचानक की और वक़्ती ज़रूरतें हुआ करती हैं, इसका बेहतरीन इलाज इस्लाम में पहले से ज़कात व सदक़ाते वाजिबा की सूरत में मौजूद है, लेकिन दीन और इल्मे दीन से बेख़बरी और बेपरवाई का नतीजा है जिसने आजकल ज़कात के सिस्टम को भी बेकार कर दिया है। बेशुमार मुसलमान हैं जो नमाज़ की तरह ज़कात के पास नहीं जाते, और जो लोग निकालते भी हैं उनमें अक्सर बड़े सरमाये वाले हज़रात हिसाब करके पूरी ज़कात अदा नहीं करते, और जो लोग पूरी ज़कात निकालते हैं तो वे सब ज़कात को निकालना ही जानते हैं कि अपनी जेब से निकाल दें, हालाँकि अल्लाह का हुक्म ज़कात के निकालने का नहीं बल्कि अदा करने का है और अदा करना तब सही हो सकता है जब उसके हक़दारों को पहुँचाकर उनकी मालिकाना क़ब्ज़ा दे दिया जाये।

अब ग़ौर कीजिये कि ऐसे मुसलमान कितने हैं जो हक़दार और पात्र लोगों को तलाश करने की

फ़िक्र करें, फिर उनको पहुँचाने का एहतिमाम करें। मुसलमान क़ौम कितनी ही कम सरमाये वाली सही लेकिन अगर हर मुसलमान जिस पर ज़कात फ़र्ज़ है वह ज़कात पूरी अदा करे और अदा करने का सही तरीक़ा इख़्तियार करे कि मुस्तहिक़ लोगों को पहुँचाये और अदा करने की पाबन्दी करे तो यक़ीनन किसी मुसलमान को इसकी ज़रूरत न रहे कि वह क़र्ज़ की ज़रूरत से सूद व रिबा में मुब्तला हो। और अगर शरई क़ायदे के मुताबिक़ इन्साफ़ वाली इस्लामी हुकूमत बन जाये और उसके तहत शरई बैतुल-माल क़ायम हो जाये, और तमाम मुसलमानों के ज़ाहिरी मालों की ज़कात उसमें जमा हुआ करे तो उस बैतुल-माल (इस्लामी सरकारी ख़ज़ाने) से हर एक ज़रूरत मन्द की ज़रूरत पूरी की जा सकती है और किसी बड़ी रक़म की ज़रूरत पड़ जाये तो बतौर क़र्ज़ भी बग़ैर सूद के दिया जा सकता है, और इस तरह बेकार फिरने वालों को छोटी दुकानें कराकर या किसी उद्योग में लगाकर भी काम में लगाया जा सकता है। किसी यूरोपियन माहिर ने सही कहा कि मुसलमानों का ज़कात का निज़ाम ऐसी चीज़ है कि अगर मुसलमान उसके पाबन्द हो जायें तो इस क़ौम में कोई मुफ़लिस और मुसीबत का मारा नज़र न आये।

ग़र्ज़ कि इस ज़माने में सूद व रिबा के मामलात वबा की तरह फैल जाने से यह समझ बैठना सही नहीं कि मौजूदा ज़माने में सूद का कारोबार छोड़ देना आर्थिक और माली तौर पर ख़ुदकुशी के बराबर है, और इस ज़माने में आदमी सूदी कारोबार करने में माज़ूर है।

हाँ यह ज़रूर है कि जब तक पूरी क़ौम या उसकी कोई बड़ी जमाअ़त या कोई इस्लामी हुकूमत पूरी तवज्जोह के साथ इस काम का तय न कर ले, अकेले-दुकेले के लिये दुश्वारी ज़रूर है, मगर माज़ूर फिर भी नहीं कहा जा सकता।

इस वक़्त हमारे इस बयान के दो मक़सद हैं- अव्वल यह कि मुसलमानों की जमाअ़तें और हुकूमतें जो इस काम को सही तौर पर कर सकती हैं इस तरफ़ मुतवज्जह हों और मुसलमानों को बल्कि पूरी दुनिया को सूद के मन्हूस असरात (प्रभावों) से निजात दिलायें।

दूसरे यह कि कम से कम इल्म सब का सही हो जाये, बीमारी को बीमारी तो समझने लगें, हराम को हलाल समझने का दूसरा गुनाह जो पहले गुनाह से ज़्यादा बड़ा है कम से कम उसके तो करने वाले न हों। अ़मली गुनाह में तो कुछ न कुछ ज़ाहिरी फ़ायदा भी है लेकिन यह दूसरा इल्मी और अ़क़ीदे का गुनाह कि उसको हलाल साबित करने की कोशिश की जाये, पहले से ज़्यादा बड़ा भी है और बेहूदा व फ़ुज़ूल भी, क्योंकि सूद को हराम समझने और अपने गुनाह को मानने में तो कोई माली नुक़सान भी नहीं होता, कोई तिजारत भी बन्द नहीं होती, हाँ जुर्म के इक़रार का नतीजा यह ज़रूर होता है कि किसी वक़्त तौबा की तौफ़ीक़ हो जाने से उससे बचने की तदबीर सोचें।

इस वक़्त इसी मक़सद को सामने रखते हुए आख़िर में हदीस की चन्द रिवायतें और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात भी पेश करता हूँ जो उन्हीं क़ुरआनी आयतों का बयान है जिनमें सूद व रिबा की सख़्त मनाही और इस पर सख़्त अ़ज़ाब की वईदें (धमकियाँ) आई हैं, ताकि गुनाह के गुनाह होने का एहसास तो जागे और उससे बचने की फ़िक्र हो। कम से कम यह सूरत तो न रहे कि इस हराम को हलाल बनाकर एक गुनाह के दो गुनाह बना लें, और बड़े-बड़े नेक दीनदार

मुसलमान जो रात को तहज्जुद और ज़िक्रुल्लाह में गुज़ारें सुबह जब दुकान या कारख़ाने में पहुँचें तो उन्हें यह ख़्याल भी न आये कि हम सूद व जुए के मामलात में मुब्तला होकर कुछ गुनाह कर रहे हैं।

सूद के बारे में रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के फ़रमान

1. रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि सात हलाक करने वाली चीज़ों से बचो। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने दरियाफ़्त किया या रसूलल्लाह! वे क्या हैं? आपने फ़रमाया एक अल्लाह तआला के साथ (इबादत में या उसकी मख़्सूस सिफ़ात में) किसी ग़ैरुल्लाह को शरीक करना। दूसरे जादू करना। तीसरे किसी शख़्स को नाहक़ क़त्ल करना। चौथे सूद खाना। पाँचवे यतीम का माल खाना। छठे जिहाद के वक़्त मैदान से भागना। सातवें किसी पाक दामन औरत पर तोहमत लगाना। (यह हदीस सही बुख़ारी और मुस्लिम में है)

2. रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मैंने आज रात दो शख़्सों को देखा जो मेरे पास आये, मुझे बैतुल-मुक़द्दस तक ले गये, फिर हम आगे चले तो एक ख़ून की नहर देखी जिसके अन्दर एक आदमी खड़ा हुआ है और दूसरा आदमी उसके किनारे पर खड़ा है। जब यह नहर वाला आदमी उससे बाहर आना चाहता है तो किनारे वाला आदमी उसके मुँह पर पत्थर मारता है जिसकी चोट से भागकर वह फिर वहीं चला जाता है जहाँ खड़ा था। फिर वह निकलने का इरादा करता है तो फिर यह किनारे वाला आदमी यही मामला करता है। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम फ़रमाते हैं कि मैंने अपने उन दोनों साथियों से पूछा कि यह क्या माजरा है जो मैं देख रहा हूँ? उन्होंने बतलाया कि ख़ून की नहर में क़ैद किया हुआ आदमी सूद खाने वाला (अपने अमल की सज़ा पा रहा) है। यह हदीस सही बुख़ारी किताबुल-बुयूअ़ में है।

3. रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सूद लेने वाले पर भी लानत फ़रमाई और सूद देने वाले पर भी, और कुछ रिवायतों में सूदी मामले पर गवाही देने वाले और उसकी तहरीर लिखने वाले पर भी लानत आई है।

और सही मुस्लिम की एक रिवायत में फ़रमाया कि ये सब गुनाह में बराबर हैं, और कुछ रिवायतों में गवाह और लिखने वाले पर लानत उस सूरत में है जबकि उनको इसका इल्म हो कि यह सूद का मामला है।

4. और रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद है कि चार आदमी ऐसे हैं कि उनके बारे में अल्लाह तआला ने अपने ऊपर लाज़िम कर लिया है कि उनको जन्नत में दाख़िल न करे और जन्नत की नेमत न चखने दे। वे चार ये हैं- शराब पीने का आदी, सूद खाने वाला, यतीम का माल नाहक़ खाने वाला और अपने माँ-बाप की नाफ़रमानी करने वाला। (यह रिवायत मुस्तद्रक हाकिम में है)

5. नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि आदमी जो सूद का एक दिरहम खाता है वह छत्तीस मर्तबा बदकारी से ज़्यादा सख़्त गुनाह है। और कुछ रिवायतों में है कि जो गोश्त

हराम माल से बना हो उसके लिये आग ही ज़्यादा मुस्तहिक़ है। इसी के साथ कुछ रिवायतों में है कि किसी मुसलमान की आबरू उतारना सूद से भी ज़्यादा सख़्त गुनाह है। (यह रिवायत मुस्नद अहमद तबरानी वग़ैरह में है)

6. और एक हदीस में है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस बात से मना फ़रमाया कि फल को क़ाबिले इस्तेमाल होने से पहले फ़रोख़्त किया जाये, और फ़रमाया कि जब किसी बस्ती में बदकारी और सूद का कारोबार फैल जाये तो उसने अल्लाह तआ़ला के अ़ज़ाब को अपने ऊपर दावत दे दी। (यह रिवायत मुस्तद्रक हाकिम में है)

7. और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जब किसी क़ौम में सूद के लेन देन का रिवाज हो जाये तो अल्लाह तआ़ला उन पर ज़रूरतों की महंगाई मुसल्लत कर देता है और जब किसी क़ौम में रिश्वत आ़म हो जाये तो दुश्मनों का रौब व ग़लबा उन पर हो जाता है। (यह रिवायत मुस्नद अहमद में है)

8. और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मेराज की रात में जब हम सातवें आसमान पर पहुँचे तो मैंने अपने ऊपर एक रअ़द व बर्क़ (कड़क और बिजली) को देखा, उसके बाद हम एक ऐसी क़ौम पर गुज़रे जिनके पेट रिहाईशी मकानों की तरह फूले और फैले हुए हैं, जिनमें साँप बिच्छु भरे हैं, जो बाहर से नज़र आ रहे हैं। मैंने जिब्रील अ़लैहिस्सलाम से पूछा कि ये कौन लोग हैं? उन्होंने फ़रमाया कि ये सूदख़ोर हैं। (यह रिवायत मुस्नद अहमद की है)

9. और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत औफ़ बिन मालिक रज़ियल्लाहु अ़न्हु से फ़रमाया कि उन गुनाहों से बचो जो माफ़ नहीं किये जाते, उनमें से एक ग़नीमत के माल की चोरी है और दूसरा सूद ख़ाना। (तबरानी)

10. और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जिस शख़्स को तुमने क़र्ज़ दिया हो उसका हदिया भी क़ुबूल न करो (ऐसा न हो कि उसने यह हदिया क़र्ज़ के बदले और दबाव में दिया हो जो सूद है, इसलिये उसका हदिया क़ुबूल करने से भी एहतियात करनी चाहिये)।

रिबा (सूद) की तारीफ़ (परिभाषा), उसकी हक़ीक़त और उसकी दुनियावी तबाहकारी के बारे में क़ुरआन मजीद की सात आयतें और नबी करीम सल्ल. की हदीसों के दस इरशादात इस जगह बयान हो चुके हैं, सोचने समझने वाले मुसलमान के लिये इतना काफ़ी है और इस मसले के बाक़ी बचे पहलुओं पर बहस और मुकम्मल तहक़ीक़ के लिये अहक़र की एक मुस्तक़िल किताब "मसला-ए-सूद" (उर्दू में) प्रकाशित हो चुकी है (उसको देख सकते हैं)।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا

تَدَايَنْتُمْ بِدَيْنٍ اِلٰٓى اَجَلٍ مُّسَمًّى فَاكْتُبُوْهُ ۭ وَلْيَكْتُبْ بَّيْنَكُمْ كَاتِبٌۢ بِالْعَدْلِ ۠ وَلَا يَاْبَ

كَاتِبٌ اَنْ يَّكْتُبَ كَمَا عَلَّمَهُ اللّٰهُ فَلْيَكْتُبْ ۚ وَلْيُمْلِلِ الَّذِيْ عَلَيْهِ الْحَقُّ وَلْيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ وَلَا يَبْخَسْ

مِنْهُ شَيْـــًٔا ۭ فَاِنْ كَانَ الَّذِيْ عَلَيْهِ الْحَقُّ سَفِيْهًا اَوْ ضَعِيْفًا اَوْ لَا يَسْتَطِيْعُ اَنْ يُّمِلَّ هُوَ فَلْيُمْلِلْ

وَلْيُهٗ بِالْعَدْلِ ؕ وَاسْتَشْهِدُوْا شَهِيْدَيْنِ مِنْ رِّجَالِكُمْ ۚ فَاِنْ لَّمْ يَكُوْنَا رَجُلَيْنِ فَرَجُلٌ وَّامْرَاَتٰنِ
مِمَّنْ تَرْضَوْنَ مِنَ الشُّهَدَآءِ اَنْ تَضِلَّ اِحْدٰىهُمَا فَتُذَكِّرَ اِحْدٰىهُمَا الْاُخْرٰى ؕ وَلَا يَاْبَ الشُّهَدَآءُ
اِذَا مَا دُعُوْا ؕ وَلَا تَسْـَٔمُوْٓا اَنْ تَكْتُبُوْهُ صَغِيْرًا اَوْ كَبِيْرًا اِلٰٓى اَجَلِهٖ ؕ ذٰلِكُمْ اَقْسَطُ عِنْدَ اللّٰهِ وَاَقْوَمُ
لِلشَّهَادَةِ وَاَدْنٰٓى اَلَّا تَرْتَابُوْٓا اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً حَاضِرَةً تُدِيْرُوْنَهَا بَيْنَكُمْ فَلَيْسَ
عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَلَّا تَكْتُبُوْهَا ؕ وَاَشْهِدُوْٓا اِذَا تَبَايَعْتُمْ ۪ وَلَا يُضَآرَّ كَاتِبٌ وَّلَا شَهِيْدٌ ؕ وَاِنْ تَفْعَلُوْا
فَاِنَّهٗ فُسُوْقٌۢ بِكُمْ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ وَيُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُ ؕ وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ۝ وَاِنْ كُنْتُمْ عَلٰى سَفَرٍ
وَّلَمْ تَجِدُوْا كَاتِبًا فَرِهٰنٌ مَّقْبُوْضَةٌ ؕ فَاِنْ اَمِنَ بَعْضُكُمْ بَعْضًا فَلْيُؤَدِّ الَّذِى اؤْتُمِنَ اَمَانَتَهٗ
وَلْيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ ؕ وَلَا تَكْتُمُوا الشَّهَادَةَ ؕ وَمَنْ يَّكْتُمْهَا فَاِنَّهٗٓ اٰثِمٌ قَلْبُهٗ ؕ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ۝

ع ٣٩

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू इज़ा तदायन्तुम् बिदैनिन् इला अ-जलिम् मुसम्मन् फ़क्तुबूहु, वल्यक्तुब् बैनकुम् कातिबुम् बिल्अ़द्लि व ला यअ्-ब कातिबुन् अंय्यक्तु-ब कमा अ़ल्ल-महुल्लाहु फ़ल्यक्तुब् वल्युम्लिलिल्लज़ी अ़लैहिल्-हक़्क़ु वल्यत्तक़िल्ला-ह रब्बहू व ला यब्ख़स् मिन्हु शैअन्, फ़-इन् कानल्लज़ी अ़लैहिल्-हक़्क़ु सफ़ीहन् औ ज़अ़ीफ़न् औ ला यस्ततीअ़ु अंय्युमिल्-ल हु-व फ़ल्युम्लिल् वलिय्युहू बिल्अ़द्लि, वस्तश्हिदू शहीदैनि मिर्रिजालिकुम् फ़-इल्लम् यकूना रजुलैनि फ़-रजुलुंव्-	ऐ ईमान वालो! जब तुम आपस में मामला करो उधार का किसी निर्धारित वक़्त तक तो उसको लिख लिया करो, और चाहिए कि लिख दे तुम्हारे दरमियान कोई लिखने वाला इन्साफ़ से। और इनकार न करे लिखने वाला इससे कि लिख दे जैसा सिखाया उस को अल्लाह ने, सो उसको चाहिए कि लिख दे और बतलाता जाये वह शख़्स कि जिस पर क़र्ज़ है और डरे अल्लाह से जो उसका रब है, और कम न करे उसमें से कुछ। फिर अगर वह शख़्स जिस पर क़र्ज़ है बेअ़क़्ल है या ज़ईफ़ (कमज़ोर व बूढ़ा) है या आप नहीं बतला सकता तो बतला दे कारगुज़ार उसका इन्साफ़ से, और गवाह करो दो गवाह अपने मर्दों में से, फिर अगर न हों दो मर्द तो एक मर्द और दो औरतें उन लोगों में से कि जिनको तुम पसन्द करते हो

वम्र-अतानि मिम्मन् तर्ज़ौ-न मिनश्शु-हदा-इ अन् तज़िल्-ल इह्दाहुमा फ़-तुज़क्कि-र इह्दाहुमल्-उख़्रा, व ला यअ्बश्शु-हदा-उ इज़ा मा दुअ़ू, व ला तस्अमू अन् तक्तुबूहु सग़ीरन् औ कबीरन् इला अ-जलिही, ज़ालिकुम् अक़्सतु अिन्दल्लाहि व अक़्वमु लिश्शहा-दति व अद्ना अल्ला तर्ताबू इल्ला अन् तकू-न तिजारतन् हाज़ि-रतन् तुदीरूनहा बैनकुम् फ़लै-स अ़लैकुम् जुनाहुन् अल्ला तक्तुबूहा, व अश्हिदू इज़ा तबायअ्तुम् व ला युज़ार्-र कातिबुंव्-व ला शहीदुन्, व इन् तफ़्अ़लू फ़-इन्नहू फ़ुसूक़ुम् बिकुम, वत्तक़ुल्ला-ह, व युअ़ल्लिमुकुमुल्लाहु, वल्लाहु बिकुल्लि शैइन् अ़लीम (282) व इन् कुन्तुम् अ़ला स-फ़रिंव्-व लम् तजिदू कातिबन् फ़रिहानुम् मक़्बू-ज़तुन्, फ़-इन् अमि-न बअ्ज़ुकुम् बअ्ज़न् फ़ल्युअद्दिल्-लज़िअ्तुमि-न अमान-तहू वल्यत्तक़िल्ला-ह रब्बहू, व ला तक्तुमुश्शहाद-त, व मंय्यक्तुम्हा

गवाहों में, ताकि अगर भूल जाये एक उनमें से तो याद दिला दे उसको दूसरी, और इनकार न करें गवाह जिस वक़्त बुलाये जायें, और काहिली (सुस्ती) न करो उसके लिखने से छोटा हो मामला या बड़ा उसकी मियाद तक। इसमें पूरा इन्साफ़ है अल्लाह के नज़दीक और बहुत दुरुस्त रखने वाला है गवाही को और नज़दीक है कि शुब्हे में न पड़ो, मगर यह कि सौदा हो हाथों-हाथ लेते देते हो उसको आपस में तो तुम पर कुछ गुनाह नहीं अगर उसको न लिखो, और गवाह कर लिया करो जब तुम सौदा करो, और नुक़सान न करे लिखने वाला और न गवाह, और अगर ऐसा करो तो यह गुनाह की बात है तुम्हारे अन्दर, और डरते रहो अल्लाह से और अल्लाह तुमको सिखलाता है और अल्लाह हर एक चीज़ को जानता है। (282) और अगर तुम सफ़र में हो और न पाओ कोई लिखने वाला तो गिरवी हाथ में रखनी चाहिए, फिर अगर एतिबार करे एक दूसरे का तो चाहिए कि पूरा करे वह शख़्स कि जिस पर एतिबार किया अपनी अमानत को, और डरता रहे अल्लाह से जो रब है उसका, और मत छुपाओ गवाही को और जो शख़्स उसको छुपाये तो बेशक गुनाहगार

फ़-इन्नहू आसिमुन् क़ल्बुहू, वल्लाहु बिमा तअ्मलू-न अ़लीम (283) ❁	है दिल उसका, और अल्लाह तुम्हारे कामों को ख़ूब जानता है। (283) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! जब उधार का मामला करने लगो (चाहे दाम उधार हों या जो चीज़ ख़रीदनी है वह उधार हो जैसे बै-ए-सलम में) एक निर्धारित मियाद तक (के लिए) तो उस (की याद्दाश्त व दस्तावेज़) को लिख लिया करो। और यह ज़रूरी है कि तुम्हारे आपस में (जो) कोई लिखने वाला (हो वह) इन्साफ़ के साथ लिखे (यानी किसी की रियायत करके मज़मून में कमी-ज़्यादती न करे) और लिखने वाला लिखने से इनकार भी न करे, जैसा कि अल्लाह तआ़ला ने उसको (लिखना) सिखला दिया, उसको चाहिए कि लिख दिया करे, और (लिखने वाले को) वह शख़्स (बतला दे और) लिखवा दे जिसके ज़िम्मे हक़ वाजिब हो (क्योंकि दस्तावेज़ का हासिल हक़ का इक़रार करना होता है तो जिसके ज़िम्मे हक़ है उसी का इक़रार ज़रूरी ठहरा) और (लिखाते वक़्त) अल्लाह तआ़ला से जो कि उसका परवर्दिगार है डरता रहे, और उस (हक़) में से ज़र्रा बराबर (बतलाने में) कमी न करे।

फिर जिस शख़्स के ज़िम्मे हक़ वाजिब था वह अगर कम-अ़क़्ल (यानी मंदबुद्धि या मजनूँ) हो या कमज़ोर बदन वाला (यानी नाबालिग़ हो या बहुत ज़्यादा बूढ़ा) हो या (और किसी इत्तिफ़ाक़ी कारण से) ख़ुद (बयान करने की और) लिखाने की क़ुदरत न रखता हो (जैसे गूँगा है और लिखने वाला उसका इशारा नहीं समझता, या जैसे दूसरे देश का रहने वाला है और उसकी भाषा अलग है और लिखने वाला उसकी बोली नहीं समझता) तो (ऐसी हालत में) उसका कारकुन ठीक-ठीक तौर पर लिखाए। और दो शख़्सों को अपने मर्दों में से गवाह (भी) कर लिया करो (और शरई तौर पर दावे के सुबूत का यही गवाह असल मदार हैं चाहे दस्तावेज़ न हो, और ख़ाली दस्तावेज़ बग़ैर गवाहों के ऐसे मामलों में हुज्जत और मोतबर नहीं, दस्तावेज़ लिखना सिर्फ़ याद्दाश्त की आसानी के लिये रहे कि उसका मज़मून देखकर और सुनकर तबई तौर पर अक्सर तमाम वाक़िआ़ याद आ जाता है जैसा कि अभी आगे क़ुरआन ही में आता है)।

फिर अगर वे दो गवाह मर्द (मयस्सर) न हों तो एक मर्द और दो औरतें (गवाह बना ली जाएँ) ऐसे गवाहों में से जिनको तुम (उनके मोतबर होने की वजह से) पसन्द करते हो (और एक मर्द की जगह दो औरतें इसलिये तजवीज़ की गईं) ताकि उन दोनों औरतों में से कोई एक भी (गवाही के किसी हिस्से को चाहे ज़ेहन से या गवाही के वक़्त बयान करने से) भूल जाए तो उनमें की एक दूसरी को याद दिला दे (और याद दिलाने के बाद गवाही का मज़मून मुकम्मल हो जाये) और गवाह भी इनकार न किया करें जब (गवाह बनने के लिए) बुलाए जाया करें (कि इसमें मदद करना है अपने भाई की) और तुम उस (क़र्ज़) के (बार-बार) लिखने से उकताया मत करो, चाहे वह (मामला क़र्ज़ का) छोटा हो या बड़ा हो। यह लिख लेना इन्साफ़ को ज़्यादा क़ायम रखने वाला है अल्लाह के नज़दीक और गवाही का ज़्यादा दुरुस्त रखने वाला है और इस बात के लिए ज़्यादा मुनासिब है कि

तुम (मामले के मुताल्लिक़) किसी शुब्हे में न पड़ो (इसलिये लिख ही लेना अच्छा है), मगर यह कि कोई सौदा हाथों-हाथ हो, जिसको आपस में लेते देते हो तो उसके न लिखने में तुम पर कोई इल्ज़ाम (और नुक़सान) नहीं। और (इतना उसमें भी ज़रूर कर लिया करो कि उसकी) ख़रीद व बेच के वक़्त गवाह कर लिया करो (शायद कल को कोई बात निकल आये, जैसे बेचने वाला कहने लगे कि मुझको दाम ही वसूल नहीं हुए या यह चीज़ मैंने बेची ही नहीं, या ख़रीदने वाला कहने लगे कि मैंने तो वापस करने का इख़्तियार भी ले लिया था या अभी तो बेची हुई चीज़ पूरी मेरे पास नहीं पहुँची) और (जिस तरह हमने ऊपर लिखने वाले और गवाह को मना किया है कि लिखने और गवाही देने से इनकार न करें इसी तरह हम तुमको भी ताकीद करते हैं कि तुम्हारी तरफ़ से) किसी लिखने वाले को तकलीफ़ न दी जाए और न किसी गवाह को (जैसे अपनी मस्लेहत के लिये उनकी किसी मस्लेहत में ख़लल डाला जाये) और अगर तुम ऐसा करोगे तो इसमें तुमको गुनाह होगा, और ख़ुदा से डरो (और जिन कामों से उसने मना किया है वो मत करो) और अल्लाह (का तुम पर एहसान है कि) तुमको (मुफ़ीद अहकाम की) तालीम फ़रमाता है और अल्लाह तआ़ला सब चीज़ों के जानने वाले हैं (तो वह फ़रमाँबरदार और नाफ़रमान को भी जानते हैं, हर एक को मुनासिब बदला देंगे)।

और अगर तुम (क़र्ज़ का मामला कराने के वक़्त) कहीं सफ़र में हो और (दस्तावेज़ लिखने के वास्ते वहाँ) कोई लिखने वाला न पाओ, सो (ऐसी हालत में इत्मीनान का ज़रिया) रहन (गिरवी) रखने की चीज़ें (हैं) जो (क़र्ज़ लेने वाले की तरफ़ से हक़ वाले के) क़ब्ज़े में दे दी जाएँ। और अगर (ऐसे वक़्त में भी) एक दूसरे का एतिबार करता हो (और इसलिये रहन की ज़रूरत न समझे) तो जिस शख़्स का एतिबार कर लिया गया है (यानी क़र्ज़ लेने वाला) उसको चाहिए कि दूसरे का हक़ (पूरा-पूरा) अदा कर दे, और अल्लाह तआ़ला से जो कि उसका परवर्दिगार है डरे (और उसका हक़ न मारे)। और गवाही को मत छुपाया करो, और जो शख़्स उसको छुपाएगा उसका दिल गुनाहगार होगा, और अल्लाह तआ़ला तुम्हारे किए हुए कामों को ख़ूब जानते हैं (सो अगर कोई छुपायेगा तो अल्लाह तआ़ला को उसका इल्म ज़रूर है सो वह सज़ा देंगे)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

क़र्ज़ और उधार के लिये इक़रार नामा लिखने की हिदायत और उससे संबन्धित अहकाम

ज़िक्र हुई आयतों में मामलात के क़ानून जिनको आजकल के क़ानून में समझौते और संधि कहा जाता है, उसके अहम उसूल का बयान है, और इसके बाद गवाही देने के क़ानून के ख़ास उसूल का ज़िक्र है।

आजकल तो ज़माना लिखने लिखाने का है, और तहरीर ही इनसान की ज़बान की क़ायम-मक़ाम बन गई है, लेकिन आप चौदह सौ साल पहले के ज़माने की तरफ़ मुड़कर देखिये तो उस वक़्त दुनिया का सब कारोबार सिर्फ़ ज़बानी होता था, लिखने लिखाने और दस्तावेज़ मुहैया करने का उसूल न था,

सबसे पहले क़ुरआन ने इस तरफ़ तवज्जोह दिलाई और फ़रमायाः

إِذَا تَدَايَنتُم بِدَيْنٍ إِلَىٰ أَجَلٍ مُّسَمًّى فَاكْتُبُوهُ

यानी "जब तुम आपस में उधार का मामला किया करो किसी निर्धारित मुद्दत के लिये तो उसको लिख लिया करो।"

इसमें एक उसूल तो यह बतलाया कि उधार के मामलों की दस्तावेज़ लिखनी चाहिये ताकि भूल-चूक या इनकार के वक़्त काम आये।

दूसरा मसला यह बयान फ़रमाया गया कि उधार का मामला जब किया जाये तो उसकी मियाद ज़रूर मुक़र्रर की जाये, बिना मुद्दत तय किये उधार देना-लेना जायज़ नहीं, क्योंकि इससे झगड़े फ़साद का दरवाज़ा खुलता है। इसी वजह से फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने फ़रमाया कि मियाद भी ऐसी मुक़र्रर होनी चाहिये जिसमें कोई शुब्हा और अस्पष्टता न हो, महीने और तारीख़ के साथ तय की जाये, कोई ग़ैर-वाज़ेह मियाद न रखें। जैसे खेती कटने के वक़्त, क्योंकि वह मौसम के भिन्न होने से आगे पीछे हो सकता है। और चूँकि लिखना उस ज़माने में आ़म न था और आज भी आ़म होने के बाद दुनिया की बहुत बड़ी आबादी वही है जो लिखना नहीं जानती, तो यह मुम्किन था कि लिखने वाला कुछ का कुछ लिख दे जिससे किसी का नफ़ा और किसी का नुक़सान हो जाये, इसलिये इसके बाद इरशाद फ़रमायाः

وَلْيَكْتُب بَّيْنَكُمْ كَاتِبٌ بِالْعَدْلِ.

यानी "यह ज़रूरी है कि तुम्हारे बीच कोई लिखने वाला इन्साफ़ के साथ लिखे।"

इसमें एक तो इस तरफ़ हिदायत की गई कि कातिब (लिखने वाला) किसी फ़रीक़ का मख़्सूस आदमी न हो बल्कि ग़ैर-जानिबदार (निष्पक्ष) हो, ताकि किसी को शुब्हा और संदेह न रहे। दूसरे कातिब को हिदायत की गई कि इन्साफ़ के साथ लिखे, दूसरे के फ़ानी नफ़े के लिये अपना हमेशा का नुक़सान न करे। इसके बाद कातिब को इसकी हिदायत की गई कि अल्लाह तआ़ला ने उसको यह हुनर दिया है कि वह लिख सकता है, इसका शुक्राना यह है कि वह लिखने से इनकार न करे।

इसके बाद यह बतलाया गया कि दस्तावेज़ की लिखाई किस की तरफ़ से हो तो फ़रमायाः

وَلْيُمْلِلِ الَّذِي عَلَيْهِ الْحَقُّ

यानी "लिखवा दे वह आदमी जिसके ज़िम्मे हक़ है।" जैसे सौदा ख़रीदा और क़ीमत का उधार किया तो जिस शख़्स के ज़िम्मे उधार है वह दस्तावेज़ का मज़मून लिखवा दे, क्योंकि यह उसकी तरफ़ से इक़रार नामा होगा, और लिखवाने में भी यह संदेह था कि कोई कमी-बेशी कर दे इसलिये फ़रमायाः

وَلْيَتَّقِ اللَّهَ رَبَّهُ وَلَا يَبْخَسْ مِنْهُ شَيْئًا.

यानी "अल्लाह तआ़ला से जो उसका परवर्दिगार है डरता रहे और हक़ के लिखवाने में ज़र्रा बराबर कमी न करे। मामलात में कभी ऐसा भी होता है कि जिस शख़्स पर हक़ बनता हो वह कम-अ़क्ल या सठिया हुआ बूढ़ा या नाबालिग़ बच्चा या गूँगा हो या कोई दूसरी ज़बान बोलने वाला हो जिसको लिखने वाला नहीं समझता, इसलिये दस्तावेज़ लिखवाने पर उसको क़ुदरत नहीं होती, इसलिये

इसके बाद फ़रमाया कि अगर ऐसी सूरत पेश आये तो उनकी तरफ़ से उनका वली (अभिभावक और वकील) लिखवाये। मजनूँ और नाबालिग़ की तरफ़ से तो वली का होना ज़ाहिर है कि उनके सारे मामलात वली ही के द्वारा हुआ करते हैं और गूँगे या दूसरी ज़बान बोलने वाले का वली भी यह काम कर सकता है। और अगर वह किसी को अपना वकील बना ले तो भी हो सकता है। क़ुरआन में इस जगह लफ़्ज़ वली दोनों मायनों को शामिल है।

क़ानूने गवाही के चन्द अहम उसूल

यहाँ तक मामलात में दस्तावेज़ लिखने और लिखवाने के अहम उसूल का बयान था, आगे यह बतलाया गया कि दस्तावेज़ की सिर्फ़ तहरीर को काफ़ी न समझें बल्कि उस पर गवाह भी बना लें, ताकि अगर किसी वक़्त आपसी विवाद पेश आ जाये तो अ़दालत में उन गवाहों की गवाही से फ़ैसला हो सके। यही वजह है कि फ़ुक़हा (उलेमा) रहमतुल्लाहि अ़लैहिम ने फ़रमाया कि महज़ तहरीर शरई तौर पर हुज्जत नहीं जब तक कि उस पर शरई गवाही मौजूद न हो, ख़ाली तहरीर पर कोई फ़ैसला नहीं किया जा सकता। आजकल की आ़म अ़दालतों का भी यही दस्तूर है कि तहरीर पर ज़बानी तस्दीक़ व गवाही के बग़ैर कोई फ़ैसला नहीं करतीं।

गवाही के लिये दो मर्द या एक मर्द और दो औ़रतें होना ज़रूरी हैं

इसके बाद गवाही के क़ानून के चन्द अहम उसूल बतलाये गये जैसे:

1. गवाह दो मर्द या एक मर्द दो औ़रतें होना ज़रूरी हैं। एक अकेला मर्द या सिर्फ़ दो औ़रतें आ़म मामलात की गवाही के लिये काफ़ी नहीं।

गवाहों की शर्तें

2. दूसरे यह कि गवाह मुसलमान हों, लफ़्ज़ 'मिर्रिजालिकुम' में इसकी तरफ़ हिदायत की गई है।

3. तीसरे यह कि गवाह मोतबर और आ़दिल हों जिनके क़ौल पर भरोसा किया जा सके, बदकार व फ़ासिक़ न हों।

مِمَّنْ تَرْضَوْنَ مِنَ الشُّهَدَآءِ

(जिन पर तुम्हें एतिबार हो) में यह हुक्म मज़कूर है।

बिना किसी शरई कारण के गवाही देने से इनकार करना गुनाह है

इसके बाद लोगों को यह हिदायत की गई कि जब उनको किसी मामले में गवाह बनाने के लिये बुलाया जाये तो वे आने से इनकार न करें, क्योंकि गवाही ही हक़ को ज़िन्दा रखने का ज़रिया और झगड़े चुकाने का तरीक़ा है, इसलिये इसको अहम क़ौमी ख़िदमत समझकर तकलीफ़ बरदाश्त करें।

इसके बाद फिर मामलात के दस्तावेज़ लिखने की ताकीद करते हुए फ़रमाया कि मामला छोटा हो या बड़ा सब को लिखना चाहिये, इसमें उकतायें नहीं, क्योंकि मामलात का लिख लेना इन्साफ़ को क़ायम रखने, सही गवाही देने और शक व शुब्हे से बचने के लिये बेहतरीन ज़रिया है, हाँ अगर कोई मामला हाथ दर हाथ हो या उधार न हो तो उसको अगर न लिखें तब भी कुछ हर्ज नहीं, मगर इतना उसमें भी किया जाये कि मामले पर गवाह बना लें कि शायद किसी वक़्त दोनों पक्षों में कोई झगड़ा व विवाद पेश आ जाये। जैसे बेचने वाला कहे कि क़ीमत वसूल नहीं हुई या ख़रीदने वाला कहे कि मुझे बेची गयी चीज़ पूरी वसूल नहीं हुई, तो इस झगड़े के फ़ैसले में गवाही काम आयेगी।

इस्लाम में अ़दल व इन्साफ़ को क़ायम करने का अहम उसूल कि गवाहों को कोई नुक़सान या तकलीफ़ न पहुँचे

आयत के शुरू में लिखने वालों को यह हिदायत की गई है कि वे लिखने या गवाह बनने से इनकार न करें, तो यहाँ यह एहतिमाल था कि लोग उनको परेशान करेंगे, इसलिये आयत के आख़िर में फ़रमायाः

وَلَا يُضَآرَّ كَاتِبٌ وَّلَا شَهِيْدٌ

यानी "किसी लिखने वाले या गवाही देने वाले को नुक़सान न पहुँचाया जाये।"

यानी ऐसा न करें कि अपनी मस्लेहत और फ़ायदे के लिये उनकी मस्लेहत और फ़ायदे में ख़लल डालें। फिर फ़रमायाः

وَاِنْ تَفْعَلُوْا فَاِنَّهٗ فُسُوْقٌۢ بِكُمْ

यानी "अगर तुमने लिखने वाले या गवाह को नुक़सान पहुँचाया तो इसमें तुमको गुनाह होगा।"

इससे मालूम हुआ कि लिखने वाले या गवाह को नुक़सान पहुँचाना हराम है, इसी लिये फ़ुक़हा (दीन के उलेमा) ने फ़रमाया कि अगर लिखने वाला अपने लिखने की मज़दूरी माँगे या गवाह अपने आने-जाने का ज़रूरी ख़र्च तलब करे तो यह उसका हक़ है, इसको अदा न करना भी उसको नुक़सान पहुँचाने में दाख़िल और नाजायज़ है। इस्लाम ने अपने इन्साफ़ पूर्ण सिस्टम में जिस तरह गवाह को गवाही देने पर मजबूर किया है और गवाही छुपाने को सख़्त गुनाह क़रार दिया है इसी तरह इसका भी इन्तिज़ाम किया कि लोग गवाही से बचने पर मजबूर न हो जायें, इसी दो तरफ़ा एहतियात का यह असर था कि हर मामले में सच्चे बेग़र्ज़ गवाह मिल जाते और फ़ैसले हक़ के मुताबिक़ जल्द और आसान हो जाते। आजकी दुनिया ने इस क़ुरआनी उसूल को नज़र-अन्दाज़ कर दिया है तो अ़दालत का सारा निज़ाम बरबाद हो गया। वाक़िए के असली और सच्चे गवाह मिलना तक़रीबन बन्द हो गये, हर शख़्स गवाही से जान चुराने पर मजबूर हो गया। वजह यह है कि जिसका नाम गवाही में आ गया अगर मामला पुलिस और फ़ौजदारी का है तो रोज़ वक़्त-बे-वक़्त थानेदार साहिब उसको बुला भेजते हैं और कई बार घन्टों बैठाये रखते हैं, दीवानी अ़दालतों में भी गवाह के साथ ऐसा मामला किया जाता है जैसे वह कोई मुजरिम है। फिर रोज़-रोज़ मुक़द्दमे की पेशियाँ बदलती हैं, तारीख़ें लगती हैं, गवाह

बेचारा अपना कारोबार, मज़दूरी और ज़रूरतें छोड़कर आने पर मजबूर है, वरना वॉरंट के ज़रिये गिरफ़्तार कर लिया जायेगा, इसलिये कोई शरीफ़ कारोबारी आदमी किसी मामले में गवाह बनना अपने लिये एक अज़ाब समझने और जहाँ तक हो उससे बचने पर मजबूर कर दिया गया, सिर्फ़ पेशेवर गवाह मिलते हैं जिनके यहाँ झूठ-सच में कोई फ़र्क़ नहीं होता। क़ुरआने हकीम ने इन बुनियादी ज़रूरतों को अहमियत के साथ बतलाकर इन तमाम ख़राबियों का दरवाज़ा बन्द फ़रमाया।

आयत के आख़िर में इरशाद है:

وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَيُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُ وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ۝

यानी "डरो अल्लाह से, और अल्लाह तआ़ला तुम्हें सही उसूलों की तालीम देता है (यह उसका एहसान है) और अल्लाह तआ़ला हर चीज़ का जानने वाला है।"

चूँकि इस आयत में बहुत से अहकाम आये हैं, कुछ फ़ुक़हा ने बीस अहम फ़िक़्ही मसाईल इस आयत से निकाले हैं, और क़ुरआने करीम की आ़म आ़दत है कि क़ानून बयान करने से पहले और बाद में ख़ौफ़े ख़ुदा और क़ियामत के दिन का ख़ौफ़ दिलाकर लोगों के ज़ेहनों को हुक्म के पालन के लिये तैयार करता है। इसी तरीक़े के मुताबिक़ इस आयत का समापन ख़ौफ़े ख़ुदावन्दी पर किया और यह बतलाया कि अल्लाह तआ़ला पर कोई चीज़ छुपी हुई नहीं, अगर तुम किसी नाजायज़ बहाने से भी कोई ख़िलाफ़वर्ज़ी (हुक्म का उल्लंघन) करोगे तो अल्लाह को धोखा नहीं दे सकते।

दूसरी आयत में दो अहम मज़मून बयान फ़रमाये गये- एक यह कि उधार के मामले में अगर कोई यह चाहे कि भरोसे के लिये कोई चीज़ गिरवी रख ले तो इसकी भी इजाज़त है, मगर इसमें लफ़्ज़ "मक़्बूज़ह्" से इस तरफ़ इशारा पाया जाता है कि गिरवी रखी हुई चीज़ से नफ़ा उठाना उसके लिये जायज़ नहीं। गिरवी रखने वाले को सिर्फ़ इतना हक़ है कि क़र्ज़ वसूल होने तक उसकी चीज़ पर अपना क़ब्ज़ा रखे और उसके फ़ायदे और लाभ वे सब असल मालिक का हक़ हैं।

दूसरा मज़मून यह इरशाद फ़रमाया कि जिस शख़्स को किसी विवादित मामले का सही इल्म हो वह गवाही को न छुपाये, और अगर उसने छुपाया तो उसका दिल गुनाहगार है। दिल को इसलिये गुनाहगार फ़रमाया कि कोई शख़्स इसको ख़ाली ज़बान ही का गुनाह न समझे, क्योंकि पहले इरादा तो दिल ही से हुआ है, इसलिये पहला गुनाह दिल ही का है।

لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۗ وَاِنْ تُبْدُوْا مَا فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ اَوْ تُخْفُوْهُ يُحَاسِبْكُمْ بِهِ اللّٰهُ ۗ فَيَغْفِرُ لِمَنْ يَّشَاۤءُ وَيُعَذِّبُ مَنْ يَّشَاۤءُ ۗ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ۝

लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि व इन् तुब्दू मा फ़ी अन्फ़ुसिकुम् औ तुख़्फ़ूहु युहासिब्कुम्	अल्लाह ही का है जो कुछ कि आसमानों और ज़मीन में है, और अगर ज़ाहिर करोगे अपने जी की बात या छुपाओगे उसको हिसाब लेगा उसका तुमसे अल्लाह, फिर

बिहिल्लाहु, फ़-यग़्फ़िरु लिमंय्यशा-उ व युअ़ज़्ज़िबु मंय्यशा-उ, वल्लाहु अ़ला कुल्लि शैइन् क़दीर (284)	बख़्शेगा जिसको चाहे और अ़ज़ाब करेगा जिसको चाहे, और अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है। (284)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

अल्लाह तआ़ला ही की मिल्क हैं सब (मख़्लूक़ात) जो कुछ कि आसमानों में हैं और जो कुछ ज़मीन में हैं (जैसे ख़ुद ज़मीन व आसमान भी उसी की मिल्क में हैं)। और (जब वह मालिक हैं तो उनको अपनी मम्लूका चीज़ों में हर तरह का क़ानून बनाने का हक़ है, इसमें किसी को कलाम करने की मजाल न होनी चाहिये जैसा कि एक क़ानून यह है कि) जो बातें (ग़लत अ़क़ीदों या बुरे अख़्लाक़ या गुनाहों पर पुख़्ता इरादे की) तुम्हारे नफ़्सों में हैं उनको अगर तुम (ज़बान और अपने बदनी अंगों से) ज़ाहिर करोगे (जैसे ज़बान से कुफ़्र का कलिमा कह दिया या अपने तकब्बुर, हसद वग़ैरह का ख़ुद इज़हार कर दिया, या किसी गुनाह को कर डाला जिसका इरादा था) या कि (दिल ही में) छुपाओगे (दोनों हालतों में) हक़ तआ़ला तुमसे (दूसरे गुनाहों की तरह इनका) हिसाब लेंगे, फिर (हिसाब लेने के बाद कुफ़्र व शिर्क के अ़लावा) जिसके लिए (बख़्शना) मन्ज़ूर होगा बख़्श देंगे और जिसको (सज़ा देना) मन्ज़ूर होगा सज़ा देंगे, और अल्लाह तआ़ला हर चीज़ पर पूरी क़ुदरत रखने वाले हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

पहली आयत में गवाही के इज़हार का हुक्म और छुपाने की मनाही बयान हुई थी, यह आयत भी उसी मज़मून का आख़िरी हिस्सा (पूरक) है। इसमें इनसान को चेताया गया है कि गवाही का छुपाना हराम है, अगर तुमने मामले को जानते हुए छुपाया तो रब्बे अ़लीम व ख़बीर तुम से इसका हिसाब लेगा। हज़रत इब्ने अ़ब्बास, हज़रत इक्रिमा, इमाम शअ़बी और इमाम मुजाहिद से यही तफ़सीर नक़ल की गयी है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

और अलफ़ाज़ के आ़म होने के एतिबार से यह आ़म है जो तमाम एतिक़ादों इबादतों और मामलों को शामिल है। हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु का मशहूर क़ौल इस आयत की तफ़सीर में यही है, और मायने आयत के यह हैं कि हक़ तआ़ला अपनी मख़्लूक़ के तमाम आमाल का मुहासबा (जाँच) फ़रमायेंगे, वह अ़मल भी जिसको वे कर गुज़रे हैं और वह भी जिसका दिल से पुख़्ता इरादा कर लिया और उसको दिल में छुपाकर रखा मगर अ़मल की नौबत नहीं आई, जैसा कि सही बुख़ारी व मुस्लिम में हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से मन्क़ूल है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है कि मोमिन क़ियामत के दिन अल्लाह तआ़ला से क़रीब किया जायेगा, यहाँ तक कि हक़ तआ़ला उसके एक-एक गुनाह को याद दिलायेंगे और सवाल करेंगे- तू जानता है कि तूने यह गुनाह किया था? मोमिन बन्दा इक़रार करेगा, हक़ तआ़ला फ़रमायेंगे कि मैंने दुनिया में भी तेरी पर्दापोशी की और तेरा गुनाह लोगों में ज़ाहिर नहीं होने दिया और मैं आज

इसको माफ़ करता हूँ और नेकियों का आमाल नामा उसको दे दिया जायेगा, लेकिन काफ़िरों और मुनाफ़िक़ों के गुनाहों को आम मजमे में बयान किया जायेगा।

और एक हदीस में है कि अल्लाह तआला क़ियामत के दिन फ़रमायेगा- यह वह दिन है जिसमें पोशीदा (छुपी) चीज़ों का जायज़ा लिया जायेगा और दिलों के छुपे राज़ खोले जायेंगे और यह कि आमाल लिखने वाले मेरे फ़रिश्तों ने तो तुम्हारे सिर्फ़ वे आमाल लिखे हैं जो ज़ाहिर थे और मैं उन चीज़ों को भी जानता हूँ जिन पर फ़रिश्तों को इत्तिला नहीं, और न उन्होंने वे चीज़ें तुम्हारे आमाल नामे में लिखी हैं, और अब वे सब तुम्हें बतलाता हूँ और उन पर पूछगछ करता हूँ। फिर जिसको चाहूँगा बख़्श दूँगा और जिसको चाहूँगा अ़ज़ाब दूँगा। फिर मोमिनों को माफ़ कर दिया जायेगा और काफ़िरों को अ़ज़ाब दिया जायेगा। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

यहाँ यह शुब्हा हो सकता है कि हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का यह इरशाद है:

إِنَّ اللّٰهَ تَجَاوَزَ عَنْ أُمَّتِيْ عَمَّا حَدَّثَتْ أَنْفُسُهَا مَالَمْ يَتَكَلَّمُوْ أَوْ يَعْلَمُوْا بِهٖ. (قرطبی)

"अल्लाह तआ़ला ने मेरी उम्मत को माफ़ कर दिया है वह जो उनके दिल में ख़्याल आया, जब तक उसको ज़बान से न कहा या अ़मल न किया हो।"

इससे मालूम होता है कि दिल के इरादे पर कोई अ़ज़ाब व नाराज़गी नहीं है। इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि यह हदीस दुनिया के अहकाम से संबन्धित है, तलाक़, ग़ुलाम-बाँदी को आज़ाद करना, बै, हिबा वग़ैरह महज़ दिल में इरादा कर लेने से लागू नहीं हो जाते, जब तक उनको ज़बान से या अ़मल से न किया जाये। और आयत में जो कुछ ज़िक्र हुआ है वह आख़िरत के अहकाम से मुताल्लिक़ है इसलिये मज़मून में कोई टकराव नहीं। और कुछ दूसरे उलेमा हज़रात ने इस शुब्हे का जवाब यह दिया है कि जिस हदीस में दिल की छुपी हुई चीज़ों की माफ़ी बयान हुई है उससे मुराद वे वस्वसे और ग़ैर-इख़्तियारी ख़्यालात हैं जो इनसान के दिल में बग़ैर इरादे के आ जाते हैं, बल्कि उनके ख़िलाफ़ का इरादा करने पर भी वे आते रहते हैं। ऐसे ग़ैर-इख़्तियारी ख़्यालात और वस्वसों को इस उम्मत के लिये हक़ तआ़ला ने माफ़ कर दिया है, और इस आयत में जिस हिसाब और पूछगछ का ज़िक्र है उससे मुराद वे इरादे और नीयतें हैं जो इनसान अपने इरादे और इख़्तियार से अपने दिल में जमाता है और उसको अ़मल में लाने की कोशिश भी करता है, फिर इत्तिफ़ाक़ से कुछ रुकावटें पेश आ जाने की बिना पर उन पर अ़मल नहीं कर सकता। क़ियामत के दिन उनका मुहासबा (पूछताछ और जायज़ा) होगा, फिर हक़ तआ़ला जिसको चाहें अपने फ़ज़्ल व करम से बख़्श दें जिसको चाहें अ़ज़ाब दें, जैसा कि बुख़ारी व मुस्लिम की बयान हुई हदीस में गुज़र चुका है।

चूँकि उक्त आयत के ज़ाहिरी अलफ़ाज़ में दोनों क़िस्म के ख़्यालात दाख़िल हैं चाहे इख़्तियारी हों या ग़ैर-इख़्तियारी, इसलिये जब यह आयत नाज़िल हुई तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को सख़्त फ़िक्र व ग़म लाहिक़ हो गया कि अगर ग़ैर-इख़्तियारी (अपने आप आने वाले) ख़्यालों व वस्वसों पर भी पकड़ होने लगी तो कौन निजात पायेगा। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इस फ़िक्र को रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया तो आपने सब को यह तल्क़ीन (हिदायत) फ़रमाई

कि जो कुछ अल्लाह का हुक्म नाज़िल हुआ उसकी तामील व इताअ़त का पुख़्ता इरादा करो और कहो 'समिअ़्ना व अतअ़्ना' "यानी हमने हुक्म सुन लिया और तामील की।" सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इसके मुताबिक़ किया और इस पर क़ुरआन का यह जुमला नाज़िल हुआः

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا

"यानी अल्लाह तआ़ला किसी शख़्स को उसकी क़ुदरत व ताक़त से ज़्यादा तकलीफ़ नहीं देता।"

जिसका हासिल यह है कि ग़ैर-इख़्तियारी (अपने आप आये हुए) वस्वसे और ख़्यालात पर पकड़ नहीं होगी। इस पर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को इत्मीनान हो गया। यह हदीस सही मुस्लिम में हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से नक़ल की गई है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी) यह पूरी आयत आगे आ रही है।

और 'तफ़सीर-ए-मज़हरी' में है कि इनसान पर जो अ़मल अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से फ़र्ज़ किये गये हैं या हराम किये गये हैं वे कुछ तो बदन के ज़ाहिरी हिस्सों से मुताल्लिक़ हैं- नमाज़, रोज़ा, ज़कात, हज और तमाम मामलात इसी क़िस्म में दाख़िल हैं, और कुछ आमाल व अहकाम वे भी हैं जो इनसान के दिल और बातिन (अन्दर की हालत) से ताल्लुक़ रखते हैं- ईमान व एतिक़ाद के तमाम मसाईल तो इसी में दाख़िल हैं, और कुफ़्र व शिर्क जो सबसे ज़्यादा हराम व नाजायज़ हैं उनका ताल्लुक़ भी इनसान के दिल से ही है। अच्छे अख़्लाक़ तवाज़ो, सब्र, क़नाअ़त, सख़ावत वग़ैरह, इसी तरह बुरे अख़्लाक़ तकब्बुर, जलन, बुग़ज़, दुनिया की मुहब्बत, लालच वग़ैरह ये सब चीज़ें एक दर्जे में क़तई तौर पर हराम हैं, इन सब का ताल्लुक़ भी इनसान के ज़ाहिरी अंगों से नहीं बल्कि दिल और बातिन (अन्दर यानी दिल की हालत) से है।

इस आयत में हिदायत की गई है कि जिस तरह ज़ाहिरी आमाल का हिसाब क़ियामत में लिया जायेगा इसी तरह बातिनी (दिल के) आमाल का भी हिसाब होगा और ख़ता पर भी पकड़ होगी। यह आयत सूरः ब-क़रह के आख़िर में लाई गई, इसमें बड़ी हिक्मत है। क्योंकि सूरः ब-क़रह क़ुरआने करीम की ऐसी बड़ी और अहम सूरत है जिसमें अल्लाह के अहकाम का बहुत बड़ा हिस्सा आ गया है, इस सूरत में उसूली और फ़ुरूअ़ी, ज़िन्दगी और आख़िरत के मुताल्लिक़ अहम हिदायतें नमाज़, ज़कात, रोज़ा, क़िसास, हज, जिहाद, पाकी, तलाक़, इद्दत, ख़ुला, दूध पिलाने, शराब के हराम होने, सूद और क़र्ज़, लेन-देन के जायज़ व नाजायज़ तरीक़ों का तफ़सीली बयान आ गया है, इसी लिये हदीस में इस सूरत का नाम "सनामुल-क़ुरआन" भी आया है, यानी क़ुरआन का सबसे बुलन्द हिस्सा। और इन तमाम अहकाम की तामील में सब की रूह और जड़ इख़्लास है, यानी किसी काम को करना या उससे बचना दोनों ख़ालिस अल्लाह तआ़ला की रज़ा हासिल करने के लिये हों, उनमें नाम व नमूद (दिखावा) या दूसरी नफ़्सानी ग़र्ज़ें शामिल न हों। और यह ज़ाहिर है कि इख़्लास का ताल्लुक़ इनसान के बातिन और दिल से है, सब का ठीक होना उसी पर मौक़ूफ़ है, इसलिये सूरत के आख़िर में इस आयत के ज़रिये इनसान को तंबीह कर दी गई कि फ़राईज़ की अदायेगी या हराम चीज़ों से बचने के मामले में मख़्लूक़ के सामने तो बहाने बाज़ी के ज़रिये भी बचने का रास्ता इख़्तियार किया जा सकता है मगर हक़ तआ़ला अ़लीम व ख़बीर (सब कुछ जानने वाला और हर चीज़ की ख़बर रखने वाला) है, उससे

कोई चीज़ भी छुपी नहीं, इसलिये जो कुछ करे यह समझ कर करे कि एक निगराँ मेरे सब ज़ाहिरी और बातिनी हालात को लिख रहा है और सब का हिसाब क़ियामत के दिन देना है। यही वह रूह (असल चीज़) है जो क़ुरआने करीम इनसानों में पैदा करता है कि हर क़ानून के शुरू या आख़िर में ख़ौफ़े ख़ुदा और आख़िरत की फ़िक्र का ऐसा मुहाफ़िज़ (निगराँ) उनके दिलों पर बैठाता है कि वह रात की अंधेरी में और तन्हाईयों में भी किसी हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) करता हुआ डरता है।

اٰمَنَ الرَّسُوْلُ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِ مِنْ رَّبِّهٖ وَالْمُؤْمِنُوْنَ ۭ كُلٌّ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَكُتُبِهٖ وَرُسُلِهٖ ۣ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْ رُّسُلِهٖ ۣ وَقَالُوْا سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا ڭ غُفْرَانَكَ رَبَّنَا وَاِلَيْكَ الْمَصِيْرُ ۝ لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا ۭ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَعَلَيْهَا مَا اكْتَسَبَتْ ۭ رَبَّنَا لَا تُؤَاخِذْنَآ اِنْ نَّسِيْنَآ اَوْ اَخْطَاْنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا تَحْمِلْ عَلَيْنَآ اِصْرًا كَمَا حَمَلْتَهٗ عَلَي الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا تُحَمِّلْنَا مَا لَا طَاقَةَ لَنَا بِهٖ ۚ وَاعْفُ عَنَّا ۪ وَاغْفِرْ لَنَا ۪ وَارْحَمْنَا ۪ اَنْتَ مَوْلٰىنَا فَانْصُرْنَا عَلَي الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ۝

ع ٤٠ ٨

आ-मनर्रसूलु बिमा उन्ज़ि-ल इलैहि मिर्रब्बिही वल्मुअ्मिनून, कुल्लुन् आम-न बिल्लाहि व मलाइ-कतिही व कुतुबिही व रुसुलिही, ला नुफ़र्रिकु बै-न अ-हदिम् मिर्रुसुलिही, व क़ालू समिअ्ना व अ-तअ्ना ग़ुफ़रान-क रब्बना व इलैकल् मसीर (285) ला युकल्लिफ़ुल्लाहु नफ़्सन् इल्ला वुस्अहा, लहा मा क-सबत् व अ़लैहा मक्त-सबत्, रब्बना ला तुआख़िज़्ना इन्-नसीना औ अख़्तअ्ना, रब्बना व ला तह्मिल् अ़लैना इस्रन् कमा हमल्तहू अ़लल्लज़ी-न मिन् क़ब्लिना,	मान लिया रसूल ने जो कुछ उतरा उस पर उसके रब की तरफ़ से और मुसलमानों ने भी सब ने माना, अल्लाह को और उसके फ़रिश्तों को और उसकी किताबों को और उसके रसूलों को। कहते हैं कि हम जुदा (फ़र्क़ और अलग) नहीं करते किसी को उसके पैग़म्बरों में से, और कह उठे कि हमने सुना और क़ुबूल किया, तेरी बख़्शिश चाहते हैं ऐ हमारे रब! और तेरी ही तरफ़ लौटकर जाना है। (285) अल्लाह तकलीफ़ नहीं देता किसी को मगर जिस क़द्र उसकी गुंजाईश है। उसी को मिलता है जो उसने कमाया और उसी पर पड़ता है जो उसने किया। ऐ हमारे रब! न पकड़ हमको अगर हम भूलें या चूकें। ऐ रब हमारे! और न रख हम पर बोझ भारी जैसा रखा था हम से अगले लोगों पर।

रब्बना व ला तुहम्मिल्ना मा ला ताक़-त लना बिही वअ्फ़ु अ़न्ना, वग़्फ़िर् लना, वर्हम्ना, अन्-त मौलाना फ़न्सुर्ना अ़लल्-क़ौमिल् काफ़िरीन (286) ✿	ऐ रब हमारे! और न उठवा हम से वह बोझ कि जिसकी हमको ताक़त नहीं, और दरगुज़र (माफ़) कर हम से और बख़्श हमको और रहम कर हम पर, तू ही हमारा रब है, मदद कर हमारी काफ़िरों पर। (286) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

एतिक़ाद रखते हैं रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) उस चीज़ (के हक़ होने) का जो उनके पास उनके रब की तरफ़ से नाज़िल की गई है (यानी क़ुरआन) और (दूसरे) मोमिनीन भी (इसका एतिक़ाद रखते हैं। (आगे क़ुरआन पर एतिक़ाद रखने की तफ़सील है कि किस-किस चीज़ के अ़क़ीदा रखने को क़ुरआन पर एतिक़ाद रखना कहा जायेगा) सब के सब (रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी और दूसरे मोमिन भी) अ़क़ीदा रखते हैं अल्लाह के साथ (कि वह मौजूद है और अकेला है और ज़ात व सिफ़ात में कामिल है) और उसके फ़रिश्तों के साथ (कि वे मौजूद हैं और गुनाहों से पाक हैं और विभिन्न कामों पर मुक़र्रर हैं) और उसकी किताबों के साथ (कि असल में सब सच्ची हैं) और उसके पैग़म्बरों के साथ (कि वे पैग़म्बर हैं और सच्चे हैं और पैग़म्बरों पर अ़क़ीदा रखना उनका इस तौर पर है कि यह कहते हैं) कि हम उसके पैग़म्बरों में से किसी में (अ़क़ीदा रखने में) तफ़रीक़ नहीं करते (कि किसी को पैग़म्बर समझें किसी को न समझें) और उन सब ने यूँ कहा कि हमने (आपका इरशाद) सुना और (उसको) ख़ुशी से माना, हम आपकी बख़्शिश चाहते हैं ऐ हमारे परवर्दिगार! और आप ही की तरफ़ (हम सब को) लौटना है।

(यानी हमने जो पहली आयत में कहा है कि दिलों की छुपी बातों पर भी मुहासबा (पूछताछ) होगा, इससे मुराद ग़ैर-इख़्तियारी बातें नहीं बल्कि सिर्फ़ इख़्तियारी बातें हैं, क्योंकि) अल्लाह तआ़ला किसी शख़्स को (शरीअ़त के अहकाम में) पाबन्द नहीं बनाता (यानी उन बातों को वाजिब या हराम नहीं फ़रमाता) मगर उसी का जो उसकी ताक़त (और इख़्तियार) में हो। उसको सवाब भी उसी का मिलेगा जो इरादे से करे, और उस पर अ़ज़ाब भी उसी का होगा जो इरादे से करे (और जो वुस्अ़त से बाहर है उसका ज़िम्मेदार व पाबन्द नहीं किया गया और जिसके साथ इरादा जुड़ा हुआ नहीं, न उसका सवाब है न अ़ज़ाब। और वस्वसे व ख़्यालात ताक़त से बाहर हैं तो उनके आने को हराम और उनके न आने देने को वाजिब नहीं किया, और न उन पर अ़ज़ाब रखा)।

ऐ हमारे रब! हम पर पकड़ न फ़रमाईये अगर हम भूल जाएँ या चूक जाएँ। ऐ हमारे रब! (हमारी यह भी दरख़्वास्त है कि) और हम पर कोई सख़्त हुक्म न भेजिए जैसे हमसे पहले लोगों पर आपने भेजे थे। ऐ हमारे रब! और (हम यह भी दरख़्वास्त करते हैं कि) हम पर (तकलीफ़ का) कोई ऐसा बोझ (दुनिया या आख़िरत में) न डालिए जिसकी हमको सहार न हो, और दरगुज़र कीजिए हमसे,

और बख़्श दीजिए हमको, और रहम कीजिए हम पर, आप हमारे काम बनाने वाले हैं (और काम बनाने वाला तरफ़दार होता है) सो आप हमको काफ़िर लोगों पर ग़ालिब कीजिए।

मआरिफ़ व मसाईल

इन दो आयतों के ख़ास फ़ज़ाईल

ये सूरः ब-क़रह की आख़िरी दो आयतें हैं। सही मोतबर हदीसों में इन दो आयतों के बड़े-बड़े फ़ज़ाईल ज़िक्र हुए हैं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जिस शख़्स ने रात को ये दो आयतें पढ़ लीं तो ये उसके लिये काफ़ी हैं।

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- अल्लाह तआ़ला ने दो आयतें जन्नत के ख़ज़ानों में से नाज़िल फ़रमाई हैं जिनको तमाम मख़्लूक़ की पैदाईश से दो हज़ार साल पहले ख़ुद रहमान ने अपने हाथ से लिख दिया था। जो शख़्स उनको इशा की नमाज़ के बाद पढ़ ले तो वे उसके लिये तहज्जुद के क़ायम-मक़ाम हो जाती हैं। 'मुस्तद्रक हाकिम' और 'बैहक़ी' की रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- अल्लाह ने सूरः ब-क़रह को उन दो आयतों पर ख़त्म फ़रमाया है जो मुझे उस ख़ास ख़ज़ाने से अ़ता फ़रमाई हैं जो अ़र्श के नीचे है, इसलिये तुम ख़ास तौर पर उन आयतों को सीखो और अपनी औ़रतों और बच्चों को सिखाओ। इसी लिये हज़रत फ़ारूक़े आज़म और हज़रत अ़ली मुर्तज़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा ने फ़रमाया कि हमारा ख़्याल यह है कि कोई आदमी जिसको कुछ भी अ़क़्ल हो वह सूरः ब-क़रह की इन दोनों आयतों को पढ़े बग़ैर न सोयेगा, इन दोनों आयतों की मानवी ख़ुसूसियात तो बहुत हैं लेकिन एक नुमायाँ ख़ुसूसियत यह है कि सूरः ब-क़रह में शरीअ़त के ज़्यादातर अहकाम मुख़्तसर या तफ़सीली तौर पर ज़िक्र कर दिये गये हैं- एतिक़ादात, इबादात, मामलात, अख़्लाक़, रहन-सहन वग़ैरह।

आख़िरी दो आयतों में से पहली आयत में हुक्म मानने वाले मोमिनों की तारीफ़ की गई है जिन्होंने अल्लाह जल्ल शानुहू के तमाम अहकाम पर लब्बैक कहा और तामील के लिये तैयार हो गये। और दूसरी आयत में एक शुब्हे का जवाब दिया गया जो इन दोनों आयतों से पहली आयत में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को पैदा हो गया था, और साथ ही अपने बेहिसाब फ़ज़्ल व रहमत का ज़िक्र फ़रमाया गया, वह यह था कि जब क़ुरआने करीम की यह आयत नाज़िल हुई:

وَاِنْ تُبْدُوْا مَا فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ اَوْ تُخْفُوْهُ يُحَاسِبْكُمْ بِهِ اللّٰهُ

"जो कि तुम्हारे दिलों में है तुम उसको ज़ाहिर करो या छुपाओ हर हाल में अल्लाह तआ़ला तुम से उसका हिसाब लेंगे।"

आयत की असल मुराद तो यह थी कि अपने इख़्तियार व इरादे से जो कोई अ़मल अपने दिल में करोगे उसका हिसाब होगा, ग़ैर-इख़्तियारी वस्वसे (ख़्यालात) और भूल-चूक इसमें दाख़िल ही न थी, लेकिन देखने में क़ुरआन के अलफ़ाज़ आ़म थे, उनके आ़म होने से यह समझा जाता था कि इनसान के दिल में ग़ैर-इख़्तियारी तौर पर कोई ख़्याल आ जायेगा तो उसका भी हिसाब होगा। सहाबा किराम

रज़ियल्लाहु अ़न्हुम यह सुनकर घबरा उठे और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! अब तक तो हम यह समझते थे कि हम जो काम अपने इरादे और इख़्तियार से करते हैं हिसाब उन ही आमाल का होगा, ग़ैर-इख़्तियारी ख़्यालात जो दिल में आ जाते हैं उनका हिसाब न होगा, मगर इस आयत से मालूम हुआ कि हर ख़्याल पर जो दिल में आये हिसाब होगा, इसमें तो अ़ज़ाब से निजात पाना सख़्त दुश्वार है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को अगरचे आयत की सही मुराद मालूम थी मगर अलफ़ाज़ के आ़म होने को सामने रखते हुए आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपनी तरफ़ से कुछ कहना पसन्द न फ़रमाया बल्कि **वही** (अल्लाह की तरफ़ से पैग़ाम आने) का इन्तिज़ार किया और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को यह तल्क़ीन (हिदायत) फ़रमाई कि अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से जो हुक्म आये चाहे आसान हो या दुश्वार मोमिन का काम यह नहीं कि उसके मानने में ज़रा भी संकोच करे, तुमको चाहिये कि अल्लाह तआ़ला के तमाम अहकाम सुनकर यह कहो:

سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا غُفْرَانَكَ رَبَّنَا وَاِلَيْكَ الْمَصِيْرُo

यानी "ऐ हमारे परवर्दिगार! हमने आपका हुक्म सुना और उसकी इताअ़त की। ऐ हमारे परवर्दिगार! अगर हुक्म की तामील में हमसे कोई कोताही या भूल-चूक हुई हो तो उसको माफ़ फ़रमा दे क्योंकि हमारा सब का लौटना आप ही की तरफ़ है।"

सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म के मुताबिक़ ऐसा ही किया, अगरचे उनके ज़ेहन में यह ख़्याल खटक रहा था कि बेइख़्तियार दिल में आने वाले ख़्यालात और वस्वसों से बचना तो सख़्त दुश्वार है। इस पर अल्लाह तआ़ला ने ये सूरः ब-क़रह की आख़िरी दो आयतें नाज़िल फ़रमाईं, जिनमें से पहली आयत में मुसलमानों की तारीफ़ और दूसरी में उस आयत की असली तफ़सीर बतलाई गई जिसमें सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को शुब्हा पेश आया था। अब पहली आयत के अलफ़ाज़ देखिये:

اٰمَنَ الرَّسُوْلُ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِ مِنْ رَّبِّهٖ وَالْمُؤْمِنُوْنَ كُلٌّ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَكُتُبِهٖ وَرُسُلِهٖ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْ رُّسُلِهٖ وَقَالُوْا سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا غُفْرَانَكَ رَبَّنَا وَاِلَيْكَ الْمَصِيْرُo

यानी "ईमान रखते हैं रसूल उस चीज़ पर जो उनके पास नाज़िल हुई उनके रब की तरफ़ से। इसमें तो हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तारीफ़ फ़रमाई और इसमें बजाय आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का नामे मुबारक लेने के लफ़्ज़ रसूल फ़रमाकर आपकी बड़ाई व ताज़ीम को वाज़ेह कर दिया। इसके बाद फ़रमाया **'वल्-मुअ्मिनू-न'** यानी जिस तरह आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का अपनी वही पर ईमान व एतिक़ाद है इसी तरह आ़म मोमिनों का भी एतिक़ाद है, और बयान का जो अन्दाज़ इस जुमले में इख़्तियार फ़रमाया कि पहले पूरा जुमला आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ईमान के ज़िक्र में लाया गया उसके बाद मोमिनों के ईमान का अलग तज़किरा किया गया, इसमें इशारा है कि अगरचे ईमान के वजूद में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सब मुसलमान शरीक हैं लेकिन ईमान के दर्जों के एतिबार से इन दोनों में बड़ा फ़र्क़ है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इल्म देखने और सुनने की बिना पर है और दूसरे मुसलमानों का इल्म ग़ैब पर ईमान लाने

और आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के देखने की बिना पर।

इसके बाद उस संक्षिप्त ईमान की तफ़सील बतलाई जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और आ़म मोमिनों में शरीक था कि वह ईमान था अल्लाह तआ़ला के मौजूद और एक होने पर, और तमाम कामिल सिफ़तों वाला होने पर, और फ़रिश्तों के मौजूद होने पर, और अल्लाह तआ़ला की किताबों और सब रसूलों के सच्चा होने पर।

इसके बाद इसकी वज़ाहत फ़रमाई कि इस उम्मत के मोमिन लोग पिछली उम्मतों की तरह ऐसा न करेंगे कि अल्लाह के रसूलों में आपसी फ़र्क़ कर डालें कि किसी नबी को मानें और किसी को न मानें, जैसे यहूदियों ने हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम को और ईसाईयों ने हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को नबी माना मगर ख़ातिमुल-अम्बिया हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को नबी न माना। इस उम्मत की यह तारीफ़ फ़रमाई कि यह अल्लाह के किसी रसूल का इनकार नहीं करते और फिर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के उस जुमले पर उनकी तारीफ़ की गई जो उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशाद के मुवाफ़िक़ ज़बान से कहा था:

سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا غُفْرَانَكَ رَبَّنَا وَاِلَيْكَ الْمَصِيْرُ.

"ऐ हमारे परवर्दिगार! हमने आपका हुक्म सुना और उसकी इताअ़त की। ऐ हमारे परवर्दिगार! अगर हुक्म की तामील में हमसे कोई कोताही या भूल-चूक हुई हो तो उसको माफ़ फ़रमा दे क्योंकि हमारा सब का लौटना आप ही की तरफ़ है।"

इसके बाद दूसरी आयत में एक ख़ास अन्दाज़ से वह शुब्हा दूर किया गया जो पिछली आयत के कुछ जुमलों से पैदा हो सकता था कि दिल में छुपे हुए ख़्यालात पर हिसाब हुआ तो अ़ज़ाब से कैसे बचेंगे। इरशाद फ़रमाया:

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا.

यानी "अल्लाह तआ़ला किसी शख़्स को उसकी ताक़त से ज़्यादा काम का हुक्म नहीं देते।" इसलिये ग़ैर-इख़्तियारी तौर पर जो ख़्यालात और वस्वसे दिल में आ जायें और फिर उन पर कोई अ़मल न हो तो वे सब अल्लाह तआ़ला के नज़दीक माफ़ हैं, हिसाब और पकड़ सिर्फ़ उन कामों पर होगी जो इख़्तियार और इरादे से किये जायें।

तफ़सील इसकी यह है कि जिस तरह इनसान के आमाल व अफ़आ़ल जो हाथ पैर, आँख और ज़बान वग़ैरह से ताल्लुक़ रखते हैं, जिनको ज़ाहिरी आमाल कहा जाता है, उनकी दो क़िस्में हैं- एक इख़्तियारी जो इरादे और इख़्तियार से किये जायें। जैसे इरादे से बोलना, इरादे से किसी को मारना। दूसरे ग़ैर-इख़्तियारी जो बिना इरादे के हो जायें, जैसे ज़बान से कहना चाहता था कुछ और निकल गया कुछ, या कपकपी की वजह से बिना इख़्तियार हाथ को हरकत हुई, उससे किसी को तकलीफ़ पहुँच गई, इनमें सब को मालूम है कि हिसाब-किताब और जज़ा व सज़ा इख़्तियार के कामों के साथ मख़्सूस हैं, ग़ैर-इख़्तियारी कामों का न इनसान पाबन्द है न उन पर उसको सवाब या अ़ज़ाब होता है।

इसी तरह वे काम जिनका ताल्लुक़ बातिन यानी दिल के साथ है, उनकी भी दो क़िस्में हैं- एक इख़्तियारी जैसे कुफ़्र व शिर्क का अ़क़ीदा, जिसको इरादे व इख़्तियार के साथ दिल में जमाया है, या

सोच समझकर इरादे के साथ अपने आपको बड़ा समझना जिसको तकब्बुर कहा जाता है, या पक्का इरादा करना कि शराब पियूँगा। और दूसरे ग़ैर-इख़्तियारी काम जैसे बग़ैर इरादे के दिल में किसी बुरे ख़्याल का आ जाना। इनमें भी हिसाब व किताब और पकड़ सिर्फ़ इख़्तियारी कामों पर है, ग़ैर-इख़्तियारी पर नहीं।

इस तफ़सीर से जो ख़ुद क़ुरआन ने बयान कर दी सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को इत्मीनान हो गया कि ग़ैर-इख़्तियारी वस्वसों और ख़्यालात का हिसाब व किताब और उन पर अ़ज़ाब व सवाब न होगा। इसी मज़मून को आख़िर में और ज़्यादा स्पष्ट करने के लिये फ़रमाया है:

لَهَا مَا كَسَبَتْ وَعَلَيْهَا مَا اكْتَسَبَتْ.

यानी "इनसान को सवाब भी उस काम का होता है जो इरादे से करे और अ़ज़ाब भी उस काम पर होता है जो इरादे से करे।"

और मुराद यह है कि शुरूआ़त में डायरेक्ट तौर पर उस अ़मल का सवाब या अ़ज़ाब होगा जो इरादे से करे, किसी ऐसे अ़मल का सवाब व अ़ज़ाब प्रत्यक्ष रूप से हो जाना जिसका उसने इरादा नहीं किया इसके ख़िलाफ़ नहीं। इससे इस शुब्हे का जवाब हो गया कि कई बार आदमी को बिना इरादे के भी सवाब या अ़ज़ाब होता है, जैसा कि क़ुरआन शरीफ़ की दूसरी आयतों और हदीस की बहुत सी रिवायतों से साबित है कि जो आदमी कोई ऐसा नेक काम करे जिससे दूसरे लोगों को भी उस नेकी की तौफ़ीक़ हो जाये तो जब तक लोग वह नेक काम करते रहेंगे उसका सवाब उस पहले वाले को भी मिलता रहेगा। इसी तरह अगर किसी शख़्स ने कोई तरीक़ा गुनाह का जारी किया तो आगे चलकर जितने लोग उस गुनाह में मुब्तला होंगे उनका वबाल उस शख़्स को भी पहुँचेगा जिसने सबसे पहले यह बुरा तरीक़ा जारी किया था। इसी तरह हदीस की रिवायतों से साबित है कि कोई शख़्स अपने अ़मल का सवाब दूसरे आदमी को देना चाहे तो उसको यह सवाब पहुँचता है। इन सब सूरतों में बग़ैर इरादे के इनसान को सवाब या अ़ज़ाब हो रहा है।

इस शुब्हे का जवाब यह है कि यह ज़ाहिर है कि यह सवाब व अ़ज़ाब अप्रत्यक्ष रूप से उसको नहीं पहुँचा बल्कि दूसरे के वास्ते से पहुँचा है। इसके अ़लावा जो वास्ता (माध्यम) बना है उसमें उसके अपने अ़मल और इख़्तियार को भी दख़ल ज़रूर है, क्योंकि जिस शख़्स ने किसी का ईजाद किया हुआ अच्छा या बुरा तरीक़ा इख़्तियार किया उसमें पहले शख़्स के इख़्तियारी अ़मल का दख़ल ज़रूर है अगरचे उसने उस ख़ास असर का इरादा न किया हो। इस तरह कोई किसी को ईसाले सवाब (सवाब पहुँचाना) तभी करता है जब उसने उस पर कोई एहसान किया हो, इस लिहाज़ से यह दूसरे के अ़मल का सवाब व अ़ज़ाब भी दर हक़ीक़त अपने अ़मल ही का सवाब या अ़ज़ाब है।

बिल्कुल आख़िर में क़ुरआने करीम ने मुसलमानों को एक ख़ास दुआ़ की तल्क़ीन (तालीम) फ़रमाई जिसमें भूल-चूक और बिना किसी वास्ते के, ग़लती से किसी काम के हो जाने की माफ़ी तलब की गई है। फ़रमायाः

رَبَّنَا لَا تُؤَاخِذْنَا إِنْ نَّسِينَا أَوْ أَخْطَأْنَا.

"ऐ हमारे परवर्दिगार! भूल-चूक और ख़ता पर हम से पूछगछ (पकड़) न फ़रमा।" फिर फ़रमायाः

رَبَّنَا وَلَا تَحْمِلْ عَلَيْنَآ اِصْرًا كَمَا حَمَلْتَهٗ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِنَا، رَبَّنَا وَلَا تُحَمِّلْنَا مَا لَا طَاقَةَ لَنَا بِهٖ

"यानी ऐ हमारे परवर्दिगार हम पर भारी और सख़्त आमाल का बोझ न डालिये जैसा हमसे पहले लोगों (बनी इस्राईल) पर डाला गया है, और हम पर ऐसे फ़राईज़ (ज़िम्मेदारी) लागू न फ़रमाईये जिनकी हम ताक़त नहीं रखते।"

इससे मुराद वे सख़्त आमाल हैं जो बनी इस्राईल पर आयद (लागू) थे कि कपड़ा पानी से पाक न हो बल्कि काटना जलाना पड़े, और क़त्ल के बग़ैर तौबा क़ुबूल न हो। या मुराद यह है कि दुनिया में हम पर अ़ज़ाब नाज़िल न किया जाये जैसा कि बनी इस्राईल के बुरे आमाल पर किया गया। और ये सब दुआयें हक़ तआ़ला ने क़ुबूल फ़रमाने का इज़हार भी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़रिये कर दिया।

अल्लाह तआ़ला का करम व एहसान है कि सूरः ब-क़रह की तफ़सीर पूरी हुई।

बन्दा मुहम्मद शफ़ी अ़फ़ल्लाहु अ़न्हु
25 ज़ीक़ादा सन् 1388 हिजरी

SADAQALLAHUL AZEEM

कुछ अलफ़ाज़ और उनके मायने

इस्लामी महीनों के नामः- मुहर्रम, सफ़र, रबीउल-अव्वल, रबीउस्सानी, जमादियुल-अव्वल, जमादियुस्सानी, रजब, शाबान, रमज़ान, शव्वाल, ज़ीक़ादा, ज़िलहिज्जा।

चार मशहूर आसमानी किताबें

तौरातः- वह आसामानी किताब जो हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम पर उतरी।

ज़बूरः- वह आसमानी किताब जो हज़रत दाऊद अ़लैहिस्सलाम पर उतरी।

इन्जीलः- वह आसमानी किताब जो हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम पर उतरी।

क़ुरआन मजीदः- वह आसामानी किताब जो हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर नाज़िल हुई। यह आख़िरी आसमानी किताब है।

चार बड़े फ़रिश्ते

हज़रत जिब्राईलः- अल्लाह तआ़ला का एक ख़ास फ़रिश्ता जो अल्लाह का पैग़ाम (वही) उसके रसूलों के पास लाता था।

हज़रत इस्राफ़ीलः- अल्लाह का एक ख़ास फ़रिश्ता जो इस दुनिया को तबाह करने के लिये सूर फूँकेगा।

हज़रत मीकाईलः- अल्लाह का एक ख़ास फ़रिश्ता जो बारिश का इन्तिज़ाम करने और मख़्लूक़ को रोज़ी पहुँचाने पर मुक़र्रर है।

हज़रत इज़्राईलः- अल्लाह का एक ख़ास फ़रिश्ता जो जानदारों की जान निकालने पर लगाया गया है।

रिश्ते और निस्बतें

अबूः- बाप (जैसे अबू हुज़ैफ़ा)।

इब्नः- बेटा, पुत्र (जैसे इब्ने उमर)।

उम्मः- माँ (जैसे उम्मे कुलसूम)।

बिन्तः- बेटी, पुत्री (जैसे बिन्ते उमर)।

वज़न व पैमाईश

ओक़ियाः- चालीस दिरहम का वज़न, अंग्रेज़ी औंस के बराबर।

क़िन्तारः- एक वज़न (40 ओक़िया, क़रीब सवा सैर)।

क़ीरातः- दिरहम के बारहवें हिस्से के बराबर एक वज़न।

दिरहमः- चाँदी का एक सिक्का जो क़रीब साढ़े पाँच माशे का होता है।

दीनारः- अरब में सोने का एक सिक्का जिसका वज़न डेढ़ दिरहम के बराबर होता है।

फ़र्सख़ः- क़रीब आठ किलो मीटर, तीन मील हाशमी।

मुदः- एक सैर का वज़न।

मिस्क़ालः- सोने का एक सिक्का जिसका वज़न साढ़े चार माशे होता है।

साअ़ः- 234 तौले का एक वज़न।

अ़बाः- लम्बा कोट, चौग़ा, जुब्बा।

अज़लः- शुरू, मख़्लूक़ की पैदाईश का दिन। वह समय जिसकी कोई शुरूआ़त न हो।

अ़जायबातः- अनोखी या हैरत-अंगेज़ चीज़ें।

अ़ज़ाबः- गुनाह की सज़ा, तकलीफ़, दुख, मुसीबत।

अज्रः- नेक काम का बदला, सवाब, फल।

अ़क़ीदाः- दिल में जमाया हुआ यक़ीन, ईमान, एतिबार, आस्था आदि। इसका बहुवचन **अ़क़ीदे** और **अ़क़ायद** आता है।

अ़दमः- नापैदी, न होना।

अबदः हमेशगी। वह ज़माना जिसकी कोई इन्तिहा न हो।

अय्यामे-तशरीक़ः- बक़र-ईद के बाद के तीन दिन।

अमानतः- सुपुर्द की हुई चीज़।

अमीनः- अमानतदार।

अ़लीमः- जानने वाला, अल्लाह तआ़ला का एक सिफ़ाती नाम।

अहकामः- **हुक्म** का बहुवचन, मायने हैं फ़रमान, इरशाद, शरई फ़ैसला आदि।

आयतः- निशान, क़ुरआनी आयत का एक टुकड़ा, एक रुकने की जगह का नाम जो गोल दायरे की शक्ल में होती है।

आबख़ोराः- पानी पीने का छोटा सा मिट्टी का बरतन।

आख़िरतः- परलोक, दुनिया के बाद की ज़िन्दगी।

इस्मे आज़मः- अल्लाह तआ़ला के नामों में से एक बड़ाई वाला नाम, इसके ज़रिये दुआ़ की क़बूलियत का अवसर बढ़ जाता है।

इबरानीः- यहूदियों की भाषा, किनआ़न वालों की ज़बान, इब्र की औलाद यानी इस्राईली।

इल्लिय्यूनः- बड़े और ऊँचे दर्जे के लोग, जन्नती।

इजमाः- जमा होना, एकमत होना, मुसलमान उलेमा का किसी शरई मामले पर एकमत होना।

ईलाः- शौहर का बीवी के पास चार महीने या इससे ज़्यादा समय के लिये न जाने की क़सम ले लेना।

इस्तिग़फ़ारः- तौबा करना, बख़्शिश चाहना।

उज़्रः- बहाना, हीला, सबब, हुज्जत, एतिराज़, पकड़, माफ़ी, माफ़ी चाहना, इनकार।

एहरामः- बिना सिली एक चादर और तहबन्द। मुराद वह कपड़ा और लिबास है जिसको पहनकर

हज और उमरे के अरकान अदा किये जाते हैं।

कहानतः- ग़ैब की बात बताना, फ़ाल कहना, भविष्यवाणी करना।

कफ़्फ़ाराः- गुनाह को धो देने वाला, गुनाह या ख़ता का बदला, क़ुसूर का दंड जो ख़ुदा तआ़ला की तरफ़ से मुक़र्रर है। प्रायश्चित।

क़ियासः- अन्दाज़ा, अटकल, जाँच।

क़िसासः- बदला, इन्तिक़ाम, ख़ून का बदला ख़ून।

कूज़ाः- डोंगा।

ख़ल्क़ः- मख़्लूक़, सृष्टि।

ख़ालिक़ः- पैदा करने वाला। अल्लाह तआ़ला का एक सिफ़ाती नाम।

ख़ियानतः- दग़ा, धोखा, बेईमानी, बद्-दियानती, अमानत में चोरी।

ख़ुशूअ़ व ख़ुज़ूअ़ः- आ़जिज़ी करना, गिड़गिड़ाना, सर झुकाना, विनम्रता इख़्तियार करना।

ख़ुतबाः- तक़रीर, नसीहत, संबोधन।

ख़ुलाः- बीवी का कुछ माल वग़ैरह देकर अपने पति से तलाक़ लेना।

गज़्वाः- वह जिहाद जिसमें ख़ुद रसूले ख़ुदा सल्ल. शरीक हुए हों। दीनी जंग।

ग़ैबः- ग़ैर-मौजूदगी, पोशीदगी की हालत, जो आँखों से ओझल हो। जो अभी भविष्य में हो।

ज़माना-ए-जाहिलीयतः- अ़रब में इस्लाम से पहले का ज़माना और दौर।

ज़िरहः- लोहे का जाली दार कुर्ता जो लड़ाई में पहनते हैं। आजकल बुलेट-प्रूफ़ जाकेट।

जिहादः- कोशिश, जिद्दोजहद, दीन की हिमायत के लिये हथियार उठाना, जान व माल की क़ुरबानी देना।

ज़िनाः- बदकारी, हराम कारी।

जिज़्याः- वह टैक्स जो इस्लामी हुकूमत में ग़ैर-मुस्लिमों से लिया जाता है। बच्चे, बूढ़े, औ़रतें और धर्मगुरु इससे बाहर रहते हैं। इस टैक्स के बदले हुकूमत उनके जान माल आबरू की सुरक्षा करती है।

ज़िहारः- एक क़िस्म की तलाक़, फ़िक़्ह की इस्तिलाह में मर्द का अपनी बीवी को माँ बहन या उन औ़रतों से तशबीह देना जो शरीअ़त के हिसाब से उस पर हराम हैं।

टट्टीः- बाँस का छप्पर, पर्दा खड़ा करना, क़नात।

तक़दीरः- वह अन्दाज़ा जो अल्लाह तआ़ला ने पहले दिन से हर चीज़ के लिये मुक़र्रर कर दिया है। नसीब, क़िस्मत, भाग्य।

तर्काः- मीरास, मरने वाले की जायदाद व माल।

तौहीदः- एक मानना, ख़ुदा तआ़ला के एक होने पर यक़ीन करना।

तस्दीक़ः- सच होने की पुष्टि करना, साबित करना।

तकज़ीबः- झुठलाना, झूठ बोलने का इल्ज़ाम लगाना।

तरदीदः- किसी बात को रद्द करना, खण्डन करना।

तहरीफ़:- बदल देना, तहरीर में असल अलफ़ाज़ बदल कर और कुछ लिख देना, या तर्जुमा करने में जान-बूझकर ग़लत मायने करना।

तिलावत:- पढ़ना, क़ुरआन शरीफ़ पढ़ना।

तजल्ली:- पर्दा हटना, ज़ाहिर होना, रोशनी, चमक, उजाला आदि।

तरग़ीब:- शौक़, इच्छा, किसी काम के करने पर उभारना।

तवाफ़:- अल्लाह के घर का चक्कर लगाना।

तमत्तोअ़, इफ़राद, क़िरान:- ये हज की क़िस्में हैं।

तावील:- शरह, व्याख्या, बयान, बचाव की दलील, ज़ाहिरी मतलब से किसी बात को फेर देना।

दारुल-हरब:- वह देश जहाँ मुसलमानों का जान, माल और धर्म सुरक्षित नहीं।

दारुल-अमन:- वह मुल्क जहाँ मुसलमानों को अमन-अमान हासिल है।

दारुल-इस्लाम:- वह देश जहाँ इस्लामी हुकूमत हो।

दियत:- ख़ून की क़ीमत, वह माल जो मक़्तूल के वारिस क़ातिल से लें।

नफ़्ख़:- फूँकना, फूँक मारना।

नफ़्ख़ा/नफ़्ख़ा-ए-सूर:- वह सूर जो क़ियामत के दिन हज़रत इस्राफ़ील अ़लैहिस्सलाम के ज़रिये फूँका जायेगा।

नस्ख़:- तरदीद, निरस्त करना।

निफ़ाक़/मुनाफ़क़त:- ज़ाहिर में दोस्ती अन्दर में दुश्मनी। बिगाड़।

नुबुव्वत:- नबी होना, पैग़म्बरी।

नासिख़:- मिटाने वाला, निरस्त करने वाला।

पेशवा:- रहबर, सरदार, अगुवाई करने वाला।

पारा:- टुकड़ा, हिस्सा।

फ़िदया:- नक़द मुआवज़ा, ख़ून बहा, माल या रुपया जिसे देकर छुटकारा हो जाये।

फ़िका:- इस्लामी क़ानून। शरीअ़त के अहकाम की मालूमात।

फ़र्ज़े-ऐन:- लाज़िमी और ज़रूरी काम, ज़रूरी फ़र्ज़।

फ़र्ज़े-किफ़ाया:- वह फ़र्ज़ और दायित्व जो चन्द आदमियों के अदा करने से सब की तरफ़ से अदा हो जाये जैसे नमाज़े जनाज़ा। अगर कोई भी उसको अदा न करे तो सब के सब गुनाहगार होंगे।

फ़ाल:- शगुन, ग़ैब की बात मालूम करना।

बैतुल-माल:- इस्लामी सरकार का ख़ज़ाना।

बरगुज़ीदा:- चुना हुआ, मुन्तख़ब, ख़ास किया हुआ, पसन्दीदा।

बुराक़:- वह जन्नती सवारी जिस पर सवार होकर हज़रत मुहम्मद सल्ल. मेराज की रात आसमानों के सफ़र पर तशरीफ़ ले गये।

बेसत:- रिसालत, पैग़म्बर का ज़माना (ख़ास कर हज़रत मुहम्मद सल्ल. का ज़माना), पैग़म्बर का

भेजा जाना।

बिद्अतः- दीन में कोई नई बात या नई रस्म निकालना। नया दस्तूर, नई रस्म।

बैअतः- मुरीद बनना, फ़रमाँबरदारी का अ़हद।

बरज़ख़ः- मरने के बाद से कियामत तक की ज़िन्दगी, आड़, पर्दा।

बातिलः- झूठ, बेअसल, नाहक़, ग़लत वग़ैरह-वग़ैरह।

मग़फ़िरतः- बख़्शिश, निजात, छुटकारा।

मोजिज़ाः- वह काम जो इनसानी अ़क्ल व सोच और ताक़त से बाहर हो। चमत्कार, आ़जिज़ कर देने वाली चीज़, नबी के द्वारा ज़ाहिर होने वाली कोई ख़िलाफ़े मामूल बात।

मन्सूख़ः- रद्द किया गया, निरस्त किया गया, छोड़ दिया गया।

मुस्तहबः- पसन्दीदा। इबादात में वह फ़ेल जिसे नबी करीम सल्ल. ने पसन्द फ़रमाकर ख़ुद किया हो या उसका सवाब बयान फ़रमाया हो।

मुबाहः- जायज़, रवा, वैध, दुरुस्त, हलाल।

मक्रूहः- नापसन्दीदा, बुरा। वह बात जो बाज़ इमामों के नज़दीक हलाल और बाज़ के नज़दीक नाजायज़ हो।

मरवीः- रिवायत किया गया, बयान किया गया।

माज़िरतः- उ़ज़्र, बहाना, हीला।

मन्न व सलवाः- वह खाना जो हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम के लश्कर बनी इस्राईल पर मुल्क शाम के जंगल में नाज़िल हुआ था।

मेहशरः- कियामत के दिन इकट्ठा होने की जगह, कियामत।

मीरासः- मरने वाले का छोड़ा हुआ माल व जायदाद जो उसकी तरफ़ से हक़दारों को मिलती है।

मसाईलः- पूछी गयी बात, दीनी बात, इसका एक वचन मसला है।

मबऊसः- भेजा हुआ, उठाया हुआ।

मोहकमः- मज़बूत, स्थिर, पायदार, मुस्तकिल, पक्का।

मुबाहलाः- किसी विवादित मसले को अल्लाह तआ़ला पर छोड़ते हुए बद-दुआ़ करना कि जो झूठा हो वह बरबाद हो जाये।

रजमः- संगसारी, पत्थर मार-मारकर हलाक करना।

(कुछ अलफ़ाज़ और उनके मायने अन्य जिल्दों के आख़िर में देखें)

(अलफ़ाज़ के मायनों के लिये 'फ़ीरोज़ुल्लुग़ात' 'मिस्बाहुल्लुग़ात' 'आसान उसुले हदीस' और 'मआ़रिफ़ुल-मिश्कात' से मदद ली गयी है)

(मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)

◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆